सप्तत्रिंशः सर्गः

वंशस्थवृत्तम्

अथात्र यद्वृत्तमतीव पावनं पुरैव तु श्रेणिक लोकहर्षणम् ।
दशार्हमुख्यस्य [1]सुसौर्यवासिनः शृणु प्रवक्ष्येऽवहितस्तदद्भुतम् ॥१॥
जिनस्य नेमेस्त्रिदिवावतारतः पुरैव षण्मासपुरस्सरा सुरैः ।
प्रवर्तिता तज्जननावधिर्गृहे हिरण्यवृष्टिः पुरुहूतशासनात् ॥२॥
तया पतन्त्या वसुधारयार्धभाक्त्रिकोटिसंख्यापरिमाणया जगत् ।
प्रतर्पितं प्रत्यहमर्थि सर्वतः क्व पात्रभेदोऽस्ति धनप्रवर्षिणाम् ॥३॥
दिशां मुखेभ्यः समितास्तदाश्रिता दिशां कुमार्यः परिचर्यया शिवाम् ।
दिशां च चक्रस्य जयं जगत्त्रये दिशन्त्यपत्येन जिनेन जिष्णुना ॥४॥
समेत्य पत्यातिशयप्रदर्शनादतीव संहृष्टमतिः शिवान्यदा ।
ददर्श सा [2]सुप्तमिमान् निशान्तरे प्रशंसितान् स्वप्नवरान् हि षोडश ॥५॥
समन्ततोऽश्रान्तमदाम्बुनिर्झरः प्रतिध्वनिव्याप्तदिगिन्द्रपो द्विपः ।
तया तमालासितभृङ्गझङ्कृतिरलोकि कैलास इवाचलाचलः[3] ॥६॥
सुशृङ्गमुत्तुङ्गककुत्खनत्खुरं प्रलम्बसास्नायतबालधीक्षणम् ।
सितं घनोद्रेकितधीरमम्बिकामहोक्षमक्षिप्रियमैक्षत क्षणम् ॥७॥

अथानन्तर—गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! दशार्होंमें मुख्य सौर्यपुर निवासी राजा समुद्रविजयके यहाँ भगवान्‌के गर्भमें आनेके पहलेसे ही जो लोकको हर्षित करनेवाला परम पवित्र आश्चर्य हुआ था उसे मैं कहता हूँ सो सावधान होकर सुनो ॥१॥ भगवान् नेमि जिनेन्द्रके स्वर्गावतारसे छह माह पहलेसे लेकर जन्मपर्यन्त—पन्द्रह मास तक इन्द्रकी आज्ञासे राजा समुद्रविजयके घर देवोंने धनकी वर्षा जारी रखी ॥२॥ वह धनकी धारा प्रतिदिन, तीन बार साढ़े तीन करोड़की संख्याका परिमाण लिये हुए पड़ती थी और उसने सब ओर याचक जगत्‌को सन्तुष्ट कर दिया था सो ठीक ही है क्योंकि धनकी वर्षा करनेवालोंको पात्र भेद कहाँ होता है ?॥३॥ उस समय पूर्वादि दिशाओंके अग्रभागसे आयी हुई दिक्कुमारी देवियाँ परिचर्या द्वारा माता शिवादेवीकी सेवा कर रही थीं और उससे यह सूचित कर रही थीं कि जो विजयी जिन बालक माताके गर्भमें आनेवाला है उसने तीनों जगत्‌में समस्त दिशाओंके समूहको जीत लिया है ॥४॥ पतिके साथ मिलकर नाना प्रकारके अतिशय देखनेसे जिसकी बुद्धि अत्यन्त हर्षित हो रही थी ऐसी शिवादेवीने एक दिन रात्रिमें सोते समय नीचे लिखे सोलह उत्तम स्वप्न देखे ॥५॥

पहले स्वप्नमें उसने इन्द्रका वह ऐरावत हाथी देखा जिसके सब ओरसे निरन्तर लगातार मदरूपी जलके निर्झर झर रहे थे, जिसने अपनी ध्वनिसे दिशाओंको व्याप्त कर रखा था, जिसपर तमालके समान काले-काले भ्रमर झंकार कर रहे थे और जो कैलास पर्वतके समान स्थिर था ॥६॥ दूसरे स्वप्न में अम्बिकाका वह महावृषभ देखा जिसके सुन्दर सींग थे, जिसकी कांदोल ऊँची उठ रही थी, जिसके खुर पृथिवीको खोद रहे थे, जिसकी सास्ना—गलकम्बल अत्यन्त लम्बी थी, जिसकी पूँछें और आँखें अत्यन्त दीर्घ थीं, जो रंगमें सफ़ेद था, मेघकी गर्जनाके समय गम्भीर

---

१. सुशौर्यवासिनः घ. । २. सुप्तं यथा स्यात्तथा । पूततमान्-ख. । स्वप्न इमान् म. । ३. अचलाचलः इति, अचलाचलः स्थिर इत्यर्थः । चलाचलः ख., चलाऽमलः क. इवाचलोऽचलः ग. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विलङ्घितक्ष्माभृतमग्रशैलगं मृगाङ्कलेखाङ्कुशदंष्ट्रमायतम् ।
दिगन्तविश्रान्तनिनादमाविशत्शरत्पयोदाभमिभारिमैक्षत ॥८॥
महेभकुम्भाभकुचाभिभैः शुभैः कृताभिषेकां कुटगन्धवारिभिः ।
करश्रिताम्भोजपुटां ददर्श सा विकासिपद्मासनवर्तिनीं श्रियम् ॥९॥
स्रजौ प्रलम्बे विमलाम्बरे वरे रजोरुणीभूतषडङ्घ्रिमण्डले ।
भुजे निजे वा कुसुमातिकोमले सजागरेवावहिता व्यलोकत ॥१०॥
निरस्य नैशं निशितैरुपागतं करैस्तमोजालमलं निशाकरम् ।
निरभ्रिते व्योम्नि प्रपश्यति स्म स्थिराट्टहासं रजनीवरस्त्रियाः ॥११॥
दिनं दिनं दृश्यमुखं दिवाकरं सुसान्ध्यसिन्दूरपरागपिञ्जरम् ।
पुरन्दराशासुपुरन्ध्रिनन्दनं चिरं धृतं दृष्टिसुखं ददर्श सा ॥१२॥
तडिच्चलाङ्गं सरसीवराङ्गनाविलोलसल्लोचनयुग्ममायतम् ।
परस्परस्नेहभरं तयारमद् व्यलोकि सन्मत्स्ययुगं विमत्सरम् ॥१३॥
सुसौरभाम्भोभरकुम्भयुग्मकं मुखाहिताम्भोरुहमम्बुजेक्षणा ।
सुशातकुम्भात्मकमभ्यलोकत स्वभावसूद्यत्कुचकुम्भसंनिभम् ॥१४॥
शुभाम्बुपूर्णं जलपुष्पराजितं सुराजहंसादिविहङ्गसंगतम् ।
महासरोऽदर्शि ततो मनोहरं मनो निजं वा शुचि निर्मलं तया ॥१५॥

शब्द कर रहा था तथा नेत्रोंके लिए अत्यन्त प्रिय था ॥७॥ तीसरे स्वप्नमें एक ऐसा सिंह देखा जो पर्वतोंको लाँघनेवाला था, पर्वतके अग्रभागपर स्थित था, चन्द्रमाकी कला अथवा अंकुशके समान दाँढ़ोंको धारण करनेवाला था, शरीरका अत्यन्त लम्बा था, जिसका शब्द दिशाओंके अन्तमें विश्राम कर रहा था और जो शरद् ऋतुके घुमड़ते हुए मेघके समान सफेद था ॥८॥ चौथे स्वप्नमें वह लक्ष्मी देखी जो किसी बड़े हाथीके गण्डस्थलोंके समान स्थूल स्तनोंसे युक्त थी, शुभ हाथी घड़ोंमें रखे हुए सुगन्धित जलसे जिसका अभिषेक कर रहे थे, जो अपने हाथमें कमल लिये हुए थी और खिले हुए कमलोंके आसनपर बैठी थी ॥९॥ पाँचवें स्वप्नमें जागती हुईके समान सावधान शिवादेवीने निर्मल आकाशमें लटकती हुई दो ऐसी उत्तम मालाएँ देखीं जिन्होंने अपने परागसे भ्रमरोंके समूहको लाल-लाल कर दिया था और जो अपनी भुजाओंके समान फूलोंसे भी कहीं अधिक सुकोमल थीं (पक्षमें फूलोंके द्वारा अत्यन्त कोमल थीं) ॥१०॥ छठे स्वप्नमें उसने निरभ्र आकाशके बीच ऐसा चन्द्रमा देखा जो अपनी तीक्ष्ण किरणों (पक्षमें हाथों) से रात्रिके सघन अन्धकारके समूहको नष्ट कर उदित हुआ था और रात्रिरूपी स्त्रीके स्थिर अट्टहासके समान जान पड़ता था ॥११॥ सातवें स्वप्नमें ऐसा सूर्य देखा जिसका मुख सम्पूर्ण दिन दर्शनीय था, जो सन्ध्याकी लालीरूपी सिन्दूरकी परागसे पिंजर वर्ण था, पूर्व दिशारूपी स्त्रीके पुत्रके समान जान पड़ता था और नेत्रोंके लिए चिरकाल तक सुख उत्पन्न करनेवाला था ॥१२॥ आठवें स्वप्नमें उसने मत्स्योंका वह युगल देखा जो बिजलीके समान चंचल शरीरका धारक था, सरसीरूपी उत्तम स्त्रीके चंचल एवं समीचीन नेत्रोंके युगलके समान जान पड़ता था, लम्बा था, पारस्परिक स्नेहसे भरा हुआ था, क्रीड़ा कर रहा था और ईर्ष्यासे रहित था ॥१३॥ नौवें स्वप्नमें कमललोचना शिवादेवीने अत्यन्त सुगन्धित जलसे भरे हुए दो ऐसे कलश देखे जिनके मुखपर कमल रखे हुए थे, जो उत्तम स्वर्णसे निर्मित थे और स्वभावसे उठते हुए कुचकलशके समान जान पड़ते थे ॥१४॥ तदनन्तर दशवें स्वप्नमें उसने एक ऐसा बड़ा सरोवर देखा जो शुभ जलसे भरा हुआ था, कमलोंसे सुशोभित था, राजहंस आदि उत्तम पक्षियोंसे युक्त था, मनको हरण करनेवाला था और अपने

१. विलम्बित—म. । २. करोद्धृताम्भोजपुटां ख. । ३. सुसाध्य—म. । ४. मुखावहिताम्भोरुह—म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रघूर्णितोत्तुङ्गतरङ्गमङ्गुरं प्रवालमुक्तामणिपुष्पशोभितम् ।
महार्णवं फेनिलमुद्धतं भ्रमद्विभीषणग्राहगृहं निरैक्षत ॥१६॥
नखाग्रदंष्ट्रादृढदृष्टिभासुरज्वलत्सटाटोपगृहीतेन्द्रधारितम् ।
मणिप्रभारञ्जितदिग्वधूमुखं ददर्श सिंहासनमासनं श्रियः ॥१७॥
विचित्रभक्ति ध्वजकोटिसंचलं सुवैजयन्तीभुजमालयानटत् ।
प्रलम्बमुक्तामणिमालिकोज्ज्वलं विमानमालोकि तया नभस्तले ॥१८॥
[1]फणामणिद्योतविभिन्नभूतमःफणीन्द्रकन्याकलगीतसंकुलम् ।
ज्वलन्मणि प्रैक्षि भुवः समुद्गतं फणीन्द्रभास्वद्भवनं महत्तया ॥१९॥
सपद्मरागोज्ज्वलवज्रपूर्वकं प्रकृष्टमाणिक्यमहाशिखाकुलम् ।
व्यलोकतेन्द्रायुधरुद्धदिङ्मुखं सुरत्नराशिं गगनस्पृशं शिवा[3] ॥२०॥
शिखाकरालं शिखिनं मुखं दिशां प्रकाशयन्तं [4]शुचिशोचिषा निशि ।
ददर्श संदर्शितसौम्यविग्रहं सविग्रहा श्रीरिव तोषपोषिणी ॥२१॥
अनन्तरं स्वप्नगणस्य कम्पयन् सुरासनान्याविशदम्बिकाननम् ।
सितेभरूपो भगवान् दिवश्च्युतः प्रकाशयन् कार्तिकशुक्लषष्ठिकाम् ॥२२॥

मनके समान पवित्र एवं निर्मल था ॥१५॥ ग्यारहवें स्वप्नमें एक ऐसा महासागर देखा जो उठती हुई ऊँची-ऊँची लहरोंसे भंगुर था, मूँगा, मोती, मणि और पुष्पोंसे सुशोभित था, फेनसे युक्त था, उद्धत था, तथा घूमते हुए भयंकर मगरमच्छोंका घर था ॥१६॥ बारहवें स्वप्नमें लक्ष्मीका आसनभूत एक ऐसा सिंहासन देखा जिसे नखोंके अग्रभाग एवं डाँढ़ोंसे मजबूत, दृष्टिसे देदीप्यमान और चमकती हुई सटाओंसे युक्त सिंह धारण किये हुए थे तथा मणियोंकी कान्तिसे जिसने दिशा-रूप स्त्रियोंके मुखको रक्त वर्ण कर दिया था ॥१७॥ तेरहवें स्वप्नमें उसने आकाशतलमें ऐसा विमान देखा जो नाना प्रकारके बेल-बूटोंसे युक्त था, ध्वजाओंके अग्रभागसे चंचल था, उत्तम पताकारूपी भुजाओंकी मालासे जो नृत्य करता हुआ-सा जान पड़ता था, और जो लटकती हुई मोतियों और मणियोंकी मालाओंसे उज्ज्वल था ॥१८॥ चौदहवें स्वप्नमें उसने नागेन्द्रका एक ऐसा विशाल देदीप्यमान भवन देखा जो फणाओंपर स्थित मणियोंके प्रकाशसे पृथिवीके अन्धकारको नष्ट करनेवाली नागकन्याओंके मधुर संगीतसे व्याप्त था, देदीप्यमान मणियोंसे जगमगा रहा था और पृथिवीसे ऊपर प्रकट हुआ था ॥१९॥ पन्द्रहवें स्वप्नमें शिवा देवीने उत्तम रत्नोंकी एक ऐसी राशि देखी जो पद्मरागमणि तथा चमकते हुए हीरोंके सहित थी, उत्तमोत्तम मणियोंकी बड़ी-बड़ी शिखाओंसे व्याप्त थी, इन्द्र-धनुषसे दिशाओंके अग्रभागको रोकनेवाली थी, तथा आकाशका स्पर्श कर रही थी ॥२०॥ और शरीरधारिणी लक्ष्मीके समान सन्तोषको पुष्ट करनेवाली शिवा देवीने सोलहवें स्वप्नमें ऐसी अग्नि देखी जो शिखाओंसे भयंकर थी, रात्रिके समय अपनी उज्ज्वल किरणों-से दिशाओंके अग्रभागको प्रकाशित कर रही थी तथा अपना सौम्य रूप दिखला रही थी ॥२१॥ इस प्रकार स्वप्न दर्शनके बाद कार्तिक शुक्ला षष्ठीके दिन देवोंके आसनोंको कम्पित करते हुए भगवान्‌ने स्वर्गसे च्युत हो सफेद हाथीका रूप धरकर माताके मुखमें प्रवेश किया। **भावार्थ**—आनुपूर्वी नामकर्मके उदयसे भगवान्‌के आत्म-प्रदेशोंका आकार तो पूर्व शरीरके समान ही रहता है। यहाँ जो 'सफेद हाथीका रूप धरकर' कहा गया है उसका तात्पर्य यह है कि माताने सोलह स्वप्न देखनेके बाद देखा था कि एक सफेद हाथी आकाशसे उतरकर हमारे मुखमें प्रविष्ट हुआ

१. द्विज-(?) म. । २. फणामणीनां द्योतेन विभिन्नं भूतमो याभिः तथाभूता या फणीन्द्रकन्यास्तासां कलं मधुरं यद् गीतं तेन संकुलम् । ३. शुभा म. । ४. शुचिरोचिषां म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुनः पुनर्जागरणेन सान्तराननन्तरायानिति तान् विलोक्य सा ।
विनिद्रनेत्रा जयगीतमङ्गलैरनालसा तल्पतलं ततोऽत्यजत् ॥२३॥
प्रभातकाले कृतमङ्गलाङ्गिका कुतूहलादेत्य पतिं प्रणामिनी ।
क्रमेण तान् स्वप्नवरान्न्यवेदयत् प्रसन्नधीरित्यगदीत्स तत्फलम् ॥२४॥
प्रिये यदुत्पत्तिमियं वदत्यहर्दिनं पतन्ती वसुवृष्टिरद्भुता ।
सुदिक्कुमार्यो भवतीमुपासते यदर्थमास्थात्त्वयि सोऽद्य तीर्थकृत् ॥२५॥
किमत्र ते स्वप्नफलं निगद्यते वरोरु यत्तीर्थकरप्रसूरसि ।
प्रपत्स्यते सोऽपि महान् महीयसां जगत्त्रये यत्तदवेहि कथ्यते ॥२६॥
[2]अनेकपोऽनेक[3]पलोकनादलं विलम्बितानेकपविभ्र[4]मो गतैः ।
जगत्त्रये ते तनयस्तनूदरि प्रकाममेकाधिपतित्वमेष्यति ॥२७॥
अलंकरिष्यत्यकलङ्कधीः कुलं जगत्त्रयं चात्र जगद्गुरुर्गुणैः ।
गवां कुलं वा वृषभो वृषेक्षणाद्वृषेक्षणः स्कन्धधृतिः सुतस्तव ॥२८॥
महावलेपानखिलाननेकपान् करिष्यते सिंहवदुज्झितोन्मदान् ।
अनन्तवीर्यः स हि सिंहदर्शनात् महैकधीरोऽन्ततपोवनेश्वरः ॥२९॥

है ॥२२॥ इस प्रकार बार-बार जागनेसे जिनमें अन्तर पड़ रहा था ऐसे पूर्वोक्त निरन्तराय—निर्विघ्न सोलह स्वप्नोंको देखकर जय-जयकार और मंगलमय संगीतसे माता शिवा देवीके नेत्र निद्रारहित हो गये तथा आलस्यरहित होकर उसने शय्या छोड़ दी ॥२३॥ प्रातःकाल होनेपर जिसने शरीरपर मंगलमय अलंकार धारण किये थे ऐसी शिवादेवीने कुतूहलवश पतिके पास जाकर उन्हें प्रणाम किया तथा रात्रिमें देखे हुए सब स्वप्न क्रम-क्रमसे सुना दिये। तदनन्तर प्रसन्न बुद्धिके धारक राजा समुद्रविजयने उन स्वप्नोंका इस प्रकार फल कहा—॥२४॥

हे प्रिये ! यह प्रतिदिन पड़नेवाली आश्चर्यकारिणी धनकी वृष्टि जिसकी उत्पत्ति कह रही है, तथा दिक्कुमारी देवियाँ जिसके लिए आपकी सेवा करती हैं वह तीर्थंकर आज तुम्हारे गर्भमें आकर विराजमान हुआ है ॥२५॥ हे सुन्दर जाँघोंवाली प्रिये ! यहाँ तेरे स्वप्नोंका फल क्या कहा जाये ? क्योंकि तू तीर्थंकरकी माता है। तेरे तीर्थंकर पुत्र उत्पन्न होगा। यद्यपि स्वप्नोंका इतना ही फल पर्याप्त है तथापि वह तीनों लोकोंका परम गुरु जिस फलको प्राप्त होगा वह कहा जाता है सो समझ ॥२६॥

हे कृशोदरि ! तूने स्वप्नमें अनेकप—हाथी देखा है उसका फल यह है कि तेरा पुत्र अनेकप—अनेक जीवोंकी रक्षा करनेवाला होगा। अपनी चालसे हाथीकी चालको विडम्बित करनेवाला होगा और तीनों जगत्में इच्छाके अनुरूप एक आधिपत्यको प्राप्त होगा ॥२७॥ हे प्रिये ! बैल देखनेसे तेरा पुत्र निर्मल बुद्धिका धारक, तथा जगत्का गुरु होगा और जिस प्रकार बैल गायोंके कुलको अलंकृत करता है उसी प्रकार वह गुणोंसे अपने कुल तथा तीनों जगत्को अलंकृत करेगा। वह बैलके समान उज्ज्वल नेत्र तथा उन्नत कन्धोंको धारण करनेवाला होगा ॥२८॥ सिंह देखनेसे वह अनन्त वीर्यका धारक होगा और जिस प्रकार सिंह मदोन्मत्त हाथियोंको मदरहित कर देता है उसी प्रकार वह अत्यधिक गर्वको धारण करनेवाले समस्त पुरुषोंको गर्वरहित कर देगा। वह महान्, अद्वितीय धीर, वीर और अन्तमें तपोवनका स्वामी होगा अर्थात् दीक्षा लेकर कठिन तपश्चरण

१. स हि म. । २. अनेकान् पाति रक्षतीति अनेकपः । ३. हस्तिदर्शनात् । ४. विलम्बितोऽनुकृतः अनेकपस्य हस्तिनो विभ्रमो येन सः । ५. धीरोग्रतपोवनेश्वरः क. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यदैक्षि लक्ष्मीरभिषेकिणी ततः प्रसूतमात्रस्य गिरीन्द्रमस्तके ।
सुरासुरेन्द्रैर्दयितेऽभिषिच्यते गिरिस्थिरः क्षीरसमुद्रवारिभिः ॥३०॥
स्रजोः सुगन्धायतयोः प्रदर्शनाज्जगत्त्रयव्यापियशाः सुगन्धिभाक् ।
निरन्तरं लोकमलोकमप्यसावनन्तदृग्ज्ञानदृशा तनिष्यति ॥३१॥
स चन्द्रसंदर्शनतः सुदर्शने [1]महादयाचन्द्रिकया सुदर्शनः ।
जिनेन्द्रचन्द्रो जगतां तमोऽन्तकृन्निरन्तराह्लादकरो भविष्यति ॥३२॥
समस्ततेजस्विजनस्य भूयसा निजेन तेजांसि विजित्य तेजसा ।
जगन्ति तेजोनिधिरर्कदर्शनात्करिष्यति ध्वस्ततमांसि ते सुतः ॥३३॥
सुखं कृतक्रीडझषद्वयेक्षणादवाप्य सौख्यं विषयोप[2]भोगजम् ।
अनन्तमन्ते सुखमाप्स्यति ध्रुवं शिवालयेऽसौ शिवदेवि ! नन्दनः ॥३४॥
सुपूर्णकुम्भद्वयदर्शनात्ततो गृहं प्रपूर्णं निधिभिर्भविष्यति ।
जगन्मुदापूर्णमनोरथस्य हि प्रभावतस्तस्य शरीरजस्य ते ॥३५॥
विचित्रपुष्पाम्बुजखण्डदर्शनादशेषसल्लक्षणलक्षितः सुतः ।
विदाहितृष्णातृषितान्वितृष्णधीरिहैव निर्वाणमयान् करिष्यति ॥३६॥
महासमुद्रस्य महामृतात्मनः समुद्रगम्भीरमतिर्विलोकनात् ।
[3]श्रुताम्बुधिं नीतिमहासरिद्धितं स पाययिष्यत्युपदेशकृज्जनान् ॥३७॥
सुरत्नसिंहासनदर्शनेन स स्फुरन्मणिद्योतितिरीटपाणिभिः ।
परीतमारोक्ष्यति देवदानवैः परार्घ्यसिंहासनमूर्ध्वशासनः ॥३८॥

करेगा ॥२९॥ हे वल्लभे ! जो तूने अभिषेकसे युक्त लक्ष्मी देखी है उसका फल यह है कि उत्पन्न होते ही तेरे पुत्रका सुरेन्द्र और असुरेन्द्र सुमेरु पर्वतके मस्तकपर क्षीरसागरके जलसे अभिषेक करेंगे और वह पर्वतके समान स्थिर होगा ॥३०॥ सुगन्धित मालाओंके देखनेसे यह सूचित होता है कि वह पुत्र तीनों जगत्में व्याप्त यशसे सहित होगा, उत्तम सुगन्धिको प्राप्त होगा और अपने अनन्तज्ञान तथा अनन्तदर्शनरूपी दृष्टिके द्वारा समस्त लोक और अलोकको भी व्याप्त करेगा ॥३१॥ हे सुन्दरि ! चन्द्रमाके देखनेसे वह जिनेन्द्र चन्द्र, अत्यधिक दयारूपी चन्द्रिकासे सुन्दर होगा, जगत्के अज्ञानरूपी अन्धकारको नष्ट करनेवाला होगा और समस्त जगत्के निरन्तर आह्लादको करनेवाला होगा ॥३२॥ सूर्यके देखनेसे तेरा वह पुत्र तेजका भाण्डार होगा, और अपने बहुत भारी तेजके द्वारा समस्त तेजस्वी जनोंके तेजको जीतकर तीनों लोकोंको अन्धकारसे रहित करेगा ॥३३॥ हे शिव देवि ! सुखसे क्रीड़ा करती हुई मछलियोंका युगल देखनेसे यह सूचित होता है कि तुम्हारा पुत्र विषयोंके उपभोगसे उत्पन्न सुखको पाकर अन्तमें मोक्षके अनन्त सुखको अवश्य ही प्राप्त होगा ॥३४॥ सुवर्ण कलशोंका युगल देखनेसे यह सिद्ध होता है कि तुम्हारा पुत्र हर्षपूर्वक जगत्के मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला होगा और उसके प्रभावसे यह घर निधियोंसे परिपूर्ण हो जायेगा ॥३५॥ नाना प्रकारके पुष्पोंसे युक्त कमल सरोवरके देखनेसे तुम्हारा वह पुत्र समस्त उत्तम लक्षणोंसे युक्त होगा, तृष्णारहित बुद्धिका धारक होगा और अत्यधिक दाह उत्पन्न करनेवाली तृष्णारूपी प्याससे पीड़ित मनुष्योंको इसी संसारमें सन्तोषसे युक्त-सुखी करेगा ॥३६॥ अमृतमय महासागरके देखनेसे यह सूचित होता है कि तुम्हारा पुत्र समुद्रके समान गम्भीर बुद्धिका धारक होगा, तथा उपदेश देकर जगत्के जीवोंको कीर्तिरूपी महानदियोंसे परिपूर्ण श्रुतज्ञानरूपी सागरका पान करायेगा ॥३७॥ उत्तम रत्नोंसे जटित सिंहासन देखनेसे यह प्रकट

---

१. महोदयाचन्द्रिकया म. । महोदयचन्द्रिकया ग. । २. विषयोपयोगजं म. । ३. श्रुताम्बुधिर्नीति म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विमाननाथामरनाथकोटिभिः[1] प्रपूजिताङ्घ्रिः सुविमानदर्शनात् ।
[2]विमानसाधिः महतो महोदयो विमानमुख्यादवतीर्णवानिह[3] ॥३९॥
भवेत्तु भेत्ता भवपञ्जरस्य स फणीन्द्रनिर्यद्भवनावलोकनात् ।
सुतोऽन्वितश्चापि मतिश्रुतावधिप्रधाननेत्रत्रितयेन जायते ॥४०॥
बहुप्रकारस्फुरदंशुरञ्जितं द्युरत्नराशिप्रविलोकनात्सुतम् ।
प्रतीहि नानागुणरत्नराशिना श्रयिष्यमाणं शरणाश्रिताश्रयम् ॥४१॥
शिखावलीलीढनभस्तलोज्ज्वलत्प्रदक्षिणावर्तविधूमवह्नितः ।
निरीक्षिताद्ध्यानमहाहुताशनः स कर्मकक्षं सकलं प्रधक्ष्यति ॥४२॥
किरीटसत्कुण्डलपूर्वभूषणाः प्रभावतस्तस्य मदीयशासनम् ।
अलंकरिष्यन्त्यनुकूलसेवकाः सुरेश्वराः प्राकृतपार्थिवा इव ॥४३॥
श्लथात्मधम्मिल्ललसन्निजस्रजः समेखलानूपुरमञ्जुशिञ्जिताः ।
प्रसाधनादावनुभावतोऽस्य ते सुरेन्द्रसुन्दर्य उपासनोद्यताः ॥४४॥
जनिष्यमाणेन जिनेन्द्रभानुना प्रतीहि तेनात्र पवित्रकर्मणा ।
स्ववंशमात्मानमिमं च मां जगत्पवित्रितं भूषितमुद्धृतं[4] तथा ॥४५॥

होता है कि तुम्हारे पुत्रकी आज्ञा सर्वोपरि होगी और वह देदीप्यमान मणियोंसे जगमगाते मुकुटोंपर हाथ लगाये हुए देव-दानवोंसे घिरे उत्तम सिंहासनपर आरूढ़ होगा ॥३८॥ उत्तम विमानके देखनेसे यह सूचित होता है कि विमानोंके स्वामी इन्द्रोंकी पंक्तियोंसे उसके चरण पूजित होंगे, वह मानसिक व्यथासे रहित होगा, महान् अभ्युदयका धारक होगा और बहुत बड़े मुख्य विमानसे वह यहाँ अवतार लेगा ॥३९॥

नागेन्द्रके निकलते हुए भवनको देखनेसे यह प्रकट होता है कि तुम्हारा वह पुत्र संसाररूपी पिंजड़ेको भेदनेवाला होगा और मति श्रुत तथा अवधिज्ञानरूपी तीन प्रमुख नेत्रोंसे युक्त होगा ॥४०॥ आकाशमें रत्नोंकी राशि देखनेसे तुम यह विश्वास करो कि तुम्हारा पुत्र बहुत प्रकारकी देदीप्यमान किरणोंसे अनुरंजित होगा, नाना प्रकारके गुणरूपी रत्नोंकी राशि उसका आश्रय लेगी और वह शरणागत जीवोंको आश्रय देनेवाला होगा ॥४१॥ और ज्वालाओंके समूहसे व्याप्त आकाशमें देदीप्यमान तथा दक्षिणावर्तसे युक्त निर्धूम अग्निके देखनेसे यह सिद्ध होता है कि तुम्हारा पुत्र ध्यानरूपी महाप्रचण्ड अग्निको प्रकट कर समस्त कर्मोंके वनको जलावेगा ॥४२॥

हे प्रिये ! उस पुत्रके प्रभावसे मुकुट तथा उत्तम कुण्डल आदि आभूषणोंसे सुशोभित इन्द्र साधारण राजाओंके समान अनुकूल सेवक होकर मेरी आज्ञाका अलंकृत करेंगे ॥४३॥ अपनी चोटीमें गुँथी हुई जिनकी निजकी मालाएँ ढीली हो रही हैं तथा जो मेखला और नूपुरोंकी मनोहर झंकारसे युक्त हैं ऐसी इन्द्रकी इन्द्राणियाँ इसके प्रभावसे सजावट आदिके कार्यमें तेरी सेवा करनेके लिए सदा उद्यत रहेंगी ॥४४॥ हे प्रिये ! यहाँ पवित्र कर्म करनेवाला जो जिनेन्द्ररूपी सूर्य उत्पन्न होनेवाला है उससे तुम अपने वंशको, अपने आपको, इस मुझको तथा समस्त जगत्को पवित्रित भूषित एवं संसार-सागरसे उद्धृत समझो ॥४५॥

---

१. विमाननाथोऽमरनाथ-म. । २. विगतो मानसाधिः मानसी व्यथा यस्य सः । ३. एकोनचत्वारिंशत्तमः श्लोकः 'ग' पुस्तके एवं पठितः—'विमानसंदर्शनतो नुता नतो विमाननाथामरनाथकोटिभिः । प्रपूजिताङ्घ्रिर्महतो महोदयो विमानमुख्यादवतीर्णवानिह ॥३९॥ ४. मुद्धतं म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निशम्य सा स्वप्नफलं पतीरितं प्रतुष्टचित्ता सुतमङ्कवर्तिनम् ।
विचिन्त्य चक्रे जिनपूजनादिकाः क्रियाः प्रशस्ता जनतामनोहराः ॥४६॥
[1]जिनोद्भवे स्वप्नफलानुकीर्तनं पवित्रसुस्तोत्रमिदं दिने दिने ।
प्रभातसंध्यासमये पठन् जनः स्मरंश्च शृण्वन् श्रयते जिनश्रियम् ॥४७॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ स्वप्नफलकथनो नाम सप्तत्रिंशः सर्गः ।

□

इस प्रकार पतिके द्वारा कहे हुए स्वप्नके फलको सुनकर रानी शिवादेवीका चित्त बहुत ही सन्तुष्ट हुआ। और पूर्वोक्त गुण विशिष्ट पुत्र मेरी गोदमें आ ही गया है, ऐसा विचारकर वह समस्त जनसमूहके मनको हरनेवाली जिनपूजा आदि उत्तम क्रियाएँ करने लगीं ॥४६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो मनुष्य, जिनेन्द्र भगवान्‌के जन्मसे सम्बद्ध स्वप्नोंके फलका वर्णन करनेवाले इस स्तोत्रका प्रतिदिन प्रातः-सन्ध्याके समय पाठ करता है, स्मरण करता है, अथवा श्रवण करता है वह जिनेन्द्र भगवान्‌की लक्ष्मीको प्राप्त होता है ॥४७॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंश पुराणमें स्वप्नोंके फलका वर्णन करनेवाला सैंतीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥३७॥

□

---

१. जिनोद्भवस्वप्नफलानुकीर्तनं क. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अष्टत्रिंशः सर्गः

पृथिवीच्छन्दः

जिनेन्द्रपितरौ ततो धनपतिः सुरेन्द्राज्ञया स्वभक्तिभरतोऽपि च स्वयमुपेत्य[1] तीर्थोदकैः ।
शुभैः समभिषिच्य तौ सुरभिपारिजातोद्भवैः सुगन्धवरभूषणैर्भुवनदुर्लभैः प्रार्चयत् ॥१॥
पुरैव परिशोधिते विदितदिक्कुमारीगणैर्बभार विमलोदरे प्रथमगर्भमुद्यत्प्रभम् ।
स्वबन्धुजनसिन्धुवृद्धिकरमस्ततापोदयं शिवाय जगतां शिवा शशिनमम्बरश्रीरिव ॥२॥
चकार न वियोजितत्रिवलिभङ्गशोभामसौ न च श्वसनबाधिताधरसुपल्लवां[2] नालसाम् ।
स्तनस्तवकभारनम्रतनुमध्यसुस्त्रीलतां नितान्तकृपयेव तां फलभरो न चावाधत ॥३॥
निगूढनिजगर्भसंभवतनोरिव व्यक्तये पयोधरभरो ययावतितरां पयःपूर्णताम् ।
तदुद्वहनगौरवादिव विशेषविस्तीर्णतां जगाम जघनस्थली निविडमेखलाबन्धना ॥४॥
मनो भुवनरक्षणे सकलतत्त्वसंवीक्षणे[3] वचोऽपि हितभाषणे निखिलसंशयोत्पेषणे ।
वपुर्व्रतविभूषणे विनयपोषणे चोचितं बभूव जिनवैभवादतितरां शिवायास्तदा ॥५॥
महामृतरसाशनैः सुरवधूभिरापादितैरनन्तगुणकान्तिवीर्यकरणैः समास्वादितैः ।
जिनेन्द्रजननीतनुस्तनुरपि प्रभाभिर्दिशो दशापि कनकप्रभा विदधतीव विद्युद्बभौ ॥६॥

तदनन्तर इन्द्रकी आज्ञा और अपनी भक्तिके भारसे कुबेरने स्वयं आकर शुभ तीर्थजलसे भगवान्‌के माता-पिताका अच्छी तरह अभिषेक किया और मनोज्ञ कल्पवृक्षोंसे उत्पन्न अन्यजन-दुर्लभ सुगन्ध और उत्तमोत्तम आभूषणोंसे उनकी पूजा की ॥१॥ जिस प्रकार आकाशकी लक्ष्मी अपने निर्मल उदरमें चन्द्रमाको धारण करती है उसी प्रकार भगवान्‌की माता शिवादेवीने प्रसिद्ध दिक्कुमारी देवियोंके द्वारा पहलेसे ही शुद्ध किये हुए अपने निर्मल उदरमें जगत्‌के कल्याणके लिए सर्वप्रथम उस गर्भको धारण किया जो उठती हुई प्रभासे युक्त था, अपने बन्धुजनरूपी समुद्रकी वृद्धिको करनेवाला था, तथा सन्तापके उदयको दूर करनेवाला था ॥२॥ उस गर्भरूपी फलके भारने अत्यधिक दयासे प्रेरित होकर ही मानो स्तनरूपी गुच्छोंके भारसे नम्रीभूत एवं पतली कमरवाली शिवादेवीरूपी लताको रंचमात्र भी बाधा नहीं पहुँचायी थी। न तो उसकी त्रिवलि-रूपी तरंगकी शोभाको नष्ट किया था, न श्वासोच्छ्वाससे उसके अधररूपी पल्लवको बाधित किया था और न उसे आलस्यसे युक्त ही होने दिया था ॥३॥ अपने अत्यन्त गूढ़ गर्भमें भगवान्‌के शरीरकी जो उत्पत्ति हुई थी उसे प्रकट करनेके लिए ही मानो शिवादेवीके स्तनोंका भार अत्यधिक दूधसे परिपूर्णताको प्राप्त हो गया था तथा मेखलाके सघन बन्धनसे युक्त उसकी नितम्ब-स्थली उस स्तनके भारको धारण करनेके गौरवसे ही मानो अत्यधिक विस्तृत हो गया थी ॥४॥ उस समय भगवान्‌के प्रभावसे शिवादेवीका मन संसारकी रक्षा करने तथा समस्त तत्त्वोंके अव-लोकन करनेमें अभ्यस्त रहता था, वचन सब प्रकारके संशयको नष्ट करनेवाले हितकारी भाषण-में अभ्यस्त रहता था और शरीर व्रतरूपी आभूषणके धारण करने तथा विनयके पोषण करनेमें अभ्यस्त रहता था ॥५॥ भगवान्‌की माता, देवांगनाओंके द्वारा सम्पादित एवं अनन्तगुणी कान्ति और बलको बढ़ानेवाला अमृतमय आहार करती थीं इसलिए उनका शरीर कृश होनेपर भी अपनी प्रभासे दशों दिशाओंको सुवर्ण जैसी कान्तिका धारक करता हुआ बिजलीके समान सुशो-

---

१. –मुदेत्य म. । २. पल्लवं म. । ३. संदीक्षणे ग. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करीन्द्रमकरस्फुरत्तुरगतुङ्गमीनावली महारथसुयानपात्रनृपवाहिनीसंमुखैः ।
विशद्भिरनुकूलगैः समभिवर्धितो[1]ऽद्धोर्मिभिः समुद्रविजयोऽन्वहं पृथुसमुद्रलीलां वहन् ॥७॥
जिनेशजनकौ जगद्वलयवेलयाभ्यर्चितौ परस्परविवर्धमानपृथुसंमदौ नित्यशः ।
महेन्द्रवरशासनाभिरतदेवदेवीकृतप्रभूतिविभवान्वितौ गमयतः स्म मासान्नव ॥८॥
ततः कृतसुसंगमे निशि निशाकरे चित्रया प्रशस्तसमवस्थिते ग्रहगणे समस्ते शुभे ।
असूत तनयं शिवा शिवदशुद्ध[2]वैशाखर्जे त्रयोदशतिथौ जगज्जयनकारिणं हारिणम् ॥९॥
त्रिबोधशुचिचक्षुषा दशशताष्टसल्लक्षणैः सुलक्षितसुनीलनीरजवपुर्वपुर्बिभ्रता ।
जिनेन निज[3]शोचिषा बहु। णीकृतं मण्डलं प्रसूतिभवनोदरे[4] मणिगणप्रदीपार्चिषाम् ॥१०॥
विपाण्डरपयोधरां दिवमखण्डचन्द्राननां निशि स्फुरिततारकानिकरमण्डनां[5] हारिणीम् ।
तरङ्गभुजपञ्जरोदरविवर्तिनीं स्वेच्छया चुचुम्ब मदनाम्बुधिः सति जिनेन्द्रचन्द्रोदये ॥११॥
गभीरगिरिराजनाभिकुलशैलकण्ठाकुलस्तनोच्छ्वलद्वाहिनीनिवहहारभाराधरा ।
चचाल कृतनर्त[6]नेव मुदितात्र जम्बूमती समुद्रवलयाम्बरा रणितवेदिकामेखला ॥१२॥

भित हो रहा था ॥६॥ हाथीरूपी मगरमच्छों, उछलते हुए उन्नत अश्वरूपी मीन-समूहों, बड़े-बड़े रथरूपी जहाजों, राजाओंकी सेनारूपी नदियों और जहाँ-तहाँ प्रवेश करते हुए मित्रोंरूपी तरंगोंसे प्रतिदिन वृद्धिको प्राप्त हुए राजा समुद्रविजय उस समय सचमुच ही विशाल समुद्रकी शोभाको धारण करते हुए वृद्धिगत हो रहे थे ॥७॥ इस प्रकार जो जगद्वलयरूपी वेलासे पूजित थे, परस्परमें जिनका विशाल हर्ष निरन्तर बढ़ रहा था और जो इन्द्रकी आज्ञामें लीन देव-देवियोंके द्वारा की हुई विभूतिसे सहित थे ऐसे भगवान्के माता-पिताने गर्भके नौ माह सानन्द व्यतीत किये ॥८॥

तदनन्तर वैशाख शुक्ल त्रयोदशीकी शुभ तिथिमें रात्रिके समय जब चन्द्रमाका चित्रा नक्षत्रके साथ संयोग था और समस्त शुभग्रहोंका समूह जब यथायोग्य उत्तम स्थानोंपर स्थित था तब शिवादेवीने समस्त जगत्को जीतनेवाले अतिशय सुन्दर पुत्रको उत्पन्न किया ॥९॥ जो तीन ज्ञानरूपी उज्ज्वल नेत्रोंके धारक थे तथा एक हजार आठ लक्षणोंसे युक्त नील कमलके समान सुन्दर शरीरको धारण कर रहे थे ऐसे जिनबालकने अपनी कान्तिके द्वारा, प्रसूतिकागृहके भीतर व्याप्त मणिमय दीपकोंके कान्तिसमूहको कई गुणा अधिक कर दिया था ॥१०॥ उस समय जिनेन्द्र-रूपी चन्द्रमाका उदय होनेपर जो धवल पयोधर—मेघोंको धारण करनेवाली थी (पक्षमें धवल स्तनोंसे युक्त थी) अखण्ड—पूर्ण चन्द्रमा ही जिसका मुख था, (पक्षमें पूर्ण चन्द्रमाके समान जिसका मुख था), देदीप्यमान ताराओंके समूह ही जिसके आभूषण थे, (पक्षमें देदीप्यमान ताराओंके समूहके समान जिसके आभूषण थे), जो अत्यन्त सुन्दरी थी (पक्षमें हारसे सुशोभित थी), और जो तरंगरूपी भुजपंजरके मध्यमें वर्तमान थी ऐसी—आकाशरूपी स्त्रीका मदनरूपी महा-सागरने अपनी इच्छानुसार चुम्बन किया था ॥११॥

उस समय जो सुमेरुरूपी गम्भीर नाभिसे युक्त थी, कुलाचलरूपी कण्ठ और स्तनोंसे सहित थी, बहती हुई नदियोंके समूहरूपी हारके भारको धारण करनेवाली थी, समुद्रका घेरा ही जिसका वस्त्र था तथा शब्दायमान वेदिका ही जिसकी मेखला थी, ऐसी जम्बूद्वीपकी भूमि चल-विचल हो गयी जिससे ऐसी जान पड़ती थी मानो हर्षके वशीभूत हो नृत्य ही कर रही

१. समभिवर्धितः + अद्धा + ऊर्मिभिः इतिच्छेदः । समभ्यवर्धतोर्द्धोर्मिभिः ग. । २. शुच्यग्रज-म. । शुद्धयग्रज क., ख. । ३. जिनरोचिषा म. । ४. भवनोपरे म. । ५. मण्डनाहारिणीम् म. । ६. वर्तनेव ग. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुत्तरमुखोज्ज्वलः शिवपदोत्तमाङ्गस्तदा नवानुदिशसद्धनुर्नवविमानकग्रीवकः ।
सुकल्पवपुरन्तराधरजगत्कटीजङ्घकस्त्रिलोकपुरुषोऽचलत्कटिकरो नटित्वा स्फुटम् ॥१३॥
अभूद्भवनवासिनां जगति तारशङ्खस्वनो रराट पटहः पटुर्झटिति भौमलोकेऽखिले ।
रवेर्जगति सिंहनाद उरुघोषघण्टानदत्सुकल्पभवने जिनप्रभववैभवाद्वै स्वयम् ॥१४॥
जगत्त्रितयवासिनश्चलितमौलिसिंहासनास्ततोऽसुरसुराधिपाः प्रणिहितावधिस्वेक्षणाः ।
प्रबुध्य जिनजन्म जातपुरुसंमदाः संपदा प्रचेलुरिह भारतं प्रति चतुर्णिकायामरैः[1] ॥१५॥
विशुद्धतमदृष्टयो मुकुटकोटिसंघट्टित–स्फुरत्कटकरत्नरश्मिखचिताखिलाशामुखाः ।
प्रणेमुरहमिन्द्रदेवनिवहास्तु तत्र स्थिताः पदान्यभिसमेत्य सप्त हरिविष्टरेभ्यो जिनम् ॥१६॥
क्षितेरसुरनागविद्युदनलानिलद्वीपसत्सुपर्णसुमहोदधिस्तनितदिक्कुमाराभिधाः ।
समुद्ययुरितस्ततो भवनवासिनो भास्वरास्तदा विदधतो दिशो दश दशप्रकारामराः ॥१७॥
सुकिंपुरुषकिन्नरामरमहोरगा राक्षसाः पिशाचसुरभूरिभूतवरयक्षगन्धर्वकाः ।
मनोहरणदक्षगीतबहुनृत्ययुक्ताङ्गनाः समीयुरिह मध्यलोकरतयोऽष्टधा व्यन्तराः ॥१८॥
गणश्च [2]शुचिशोचिषां प्रथितपञ्चधाज्योतिषां ग्रहर्क्षशशिभास्करप्रततताराकाख्यापुषाम् ।
बभौ युगपदापतन्निजविमानकेभ्योऽधिकं विधातुमिव चोद्यतो जगदिहापरं ज्योतिषाम् ॥१९॥

हो ॥१२॥ जो अनुत्तर विमानरूपी मुखसे उज्ज्वल था, मोक्षरूपी मस्तकसे सहित था, नौ अनुदिश-रूपी ठोड़ीसे युक्त था, नौ ग्रैवेयकरूपी ग्रीवाको धारण करनेवाला था, स्वर्गरूपी शरीरसे सहित था, तथा मध्यम लोकरूपी कमर और अधोलोकरूपी जंघाओंसे युक्त था ऐसा तीन लोकरूपी पुरुष उस समय चंचल हो उठा था सो ऐसा जान पड़ता था मानो कमरपर हाथ रखकर नृत्य ही कर रहा हो ॥१३॥ उस समय जिनेन्द्र भगवान्‌के जन्मके प्रभावसे भवनवासी देवोंके लोकमे अपने आप शंखोंका जोरदार शब्द होने लगा। समस्त व्यन्तर देवोंके लोकमें शीघ्र ही जोरदार पटह शब्द होने लगे। सूर्यलोकमें सिंहनाद होने लगा और कल्पवासी देवोंके भवनोंमें विशाल शब्द करनेवाले घण्टा बज उठे ॥१४॥ तदनन्तर जिनके मुकुट और सिंहासन कम्पायमान हो रहे थे, जिन्होंने अपने अवधिज्ञानरूपी नेत्रको प्रयुक्त किया था, और उसके द्वारा जिनेन्द्र भगवान्‌के जन्मको जानकर जिन्हें अत्यधिक हर्ष उत्पन्न हुआ था, ऐसे तीनों लोकोंमें रहनेवाले सुरेन्द्र तथा असुरेन्द्र चतुर्णिकायके देवोंको साथ ले बड़ी विभूतिसे भरत क्षेत्रकी ओर चल पड़े ॥१५॥ हाथ जोड़कर मस्तकसे लगाते समय मुकुटोंके अग्रभागसे टकराये हुए कटकोंके रत्नोंको किरणोंसे जिन्होंने समस्त दिशाओंके अग्रभाग व्याप्त कर दिये थे ऐसे अत्यन्त शुद्ध सम्यग्दर्शनके धारक अहमिन्द्र देव, यद्यपि अपने-अपने ही निवासस्थानोंमें स्थित रहे थे तथापि उन्होंने सिंहासनोंसे सात कदम सामने आकर जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार किया था ॥१६॥ असुरकुमार, नागकुमार, विद्युत्-कुमार, अग्निकुमार, वायुकुमार, द्वीपकुमार, महोदधिकुमार, स्तनितकुमार और उदधिकुमार ये दश प्रकारके भवनवासी देव, दशों दिशाओंको देदीप्यमान करते हुए जहाँ-तहाँ पृथिवीसे ऊपर आने लगे ॥१७॥ जिनकी स्त्रियाँ मनको हरण करनेमें दक्ष, गीत तथा नाना प्रकारके नृत्योंसे युक्त थीं, ऐसे किंपुरुष, किन्नर, महोरग, राक्षस, पिशाच, भूत, यक्ष और गन्धर्व ये मध्यलोकमें विशिष्ट प्रीतिके रखनेवाले आठ प्रकारके व्यन्तर देव चारों ओरसे आने लगे ॥१८॥ उज्ज्वल किरणोंसे युक्त ग्रह, नक्षत्र, चन्द्रमा, सूर्य और तारा नामको धारण करनेवाले पाँच प्रकारके प्रसिद्ध ज्योतिषी देवोंका समूह एक साथ अपने-अपने विमानोंसे यहाँ आता हुआ ऐसा सुशोभित होने लगा मानो वह पृथिवीपर एक दूसरा ही ज्योतिषलोक बनानेके लिए उद्यत हुआ हो ॥१९॥

१. चतुर्निकायामराः क.। २. शुचिरोचिषां म.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यथास्वमपि सप्तभिः प्रथमकल्पनाथादयोऽप्यनीकनिवहैर्वृता युगपदच्युतेन्द्रोत्तराः ।
प्रतिस्वमपि सप्तभिः सकलकल्पजैः षोडश प्रमोदवशवर्तिनः समभिजग्मुरिन्द्राः सुरैः ॥२०॥
अनेकमुखदत्तसत्कमलखण्डपत्रावली[1]सुरूपसुरसुन्दरीललितनाटकोद्भासिनम् ।
हिमाद्रिमिव जङ्गमं निजवधूभिरैरावतं करीन्द्रमधिरूढवानभिरराज सौधर्मपः ॥२१॥
अनीकमथ यौवजं[2] रचितसप्तकक्षान्तरं गृहीतवलयाकृतिप्रकृतिपौरुषाधिष्ठितम् ।
परीत्य कुलिशायुधं कुलिशपूर्वशस्त्राटवीनिरुद्धगगनान्तरं भृशमशोभत त्रैदशम् ॥२२॥
जवेन लघु लङ्घयद्द्रुतसमीरणं हेषितप्रयोजि[3]तवियोजितत्रिभुवनान्तरालं तथा ।
बृहद्बहिरवर्तत प्रवितत हयानीकमप्यरं गगनवारिधेरधितरङ्गरङ्गायितम् ॥२३॥
सुमुग्धमुखकोश[4]कैर्नयनपुण्डरीकैर्निजैर्ललत्ककुदवालधिश्रुतिसुगात्रसास्नापुटैः[5] ।
सुवर्णखुरशृङ्गकैः प्रतिवृषं वृषानीकमप्युवाह परितः स्थितं विपुलकान्तिमिन्दुप्रभाम् ॥२४॥
विभिन्नमपि सप्तधा स्वयमभेद्यमप्यद्रिभिर्नभोवलयसागरे त्रिदशयानपात्रायितम् ।
प्रभाविजितविस्फुरद्रविरथं रथानीकमप्यमादतिमनोहरं वलयवत्परिक्षेपकम् ॥२५॥
विकर्णघनशीकरैः करिभिरूर्ध्वलीलाकरैः प्रवृत्तगुरुगर्जितैर्गुरुतरैरिवाम्भोधरैः ।
महामरुदधिष्ठितैः सुघटितं गजानीकमप्यनेकरचनान्तरं व्यतनुत श्रियं प्रावृषः ॥२६॥
स्वरैरपि च सप्तभिर्मधुरमूर्छनाकोमलैः सवीणवरवंशतालरवमिश्रितैराश्रितैः ।
प्रपूर्णभुवनोदरं[6] बहिरतोऽप्यनीकं बभौ युवत्यमरबन्धुरं धृतिकरं तु गन्धर्वजम् ॥२७॥

जो यथायोग्य अपनी-अपनी सात प्रकारकी सेनाओंके सहित थे, ऐसे प्रथम स्वर्गसे लेकर सोलहवें स्वर्ग तकके सोलह इन्द्र, आनन्दके वशीभूत हो समस्त स्वर्गोंके देवोंके साथ यहाँ आ पहुँचे ॥२०॥ सौधर्मेन्द्र अपनी स्त्रियोंके साथ उस ऐरावत नामक गजराजपर बैठा हुआ सुशोभित हो रहा था, जो चलते-फिरते हिमालयके समान जान पड़ता तथा अनेक मुखोंके भीतर दाँतोंपर विद्यमान कमल-समूहकी कलिकाओंपर नृत्य करती हुई देवांगनाओंके सुन्दर नृत्यसे सुशोभित था ॥२१॥ इन्द्रको चारों ओरसे घेरे हुए देवोंकी वह सेना सुशोभित हो रही थी जिसने सात कक्षाओंका विभाग किया था, जो गोल आकारके सहित थी, स्वाभाविक पुरुषार्थसे युक्त थी, तथा वज्र आदि शस्त्रोंके वनसे जिसने आकाशके अन्तरालको रोक रखा था ॥२२॥ तदनन्तर घोड़ोंकी बहुत बड़ी विराट् सेना थी जो अपने वेगसे शीघ्रगामी वायुको शीघ्र ही जीत रही थी। जो अपनी हिनहिनाहटसे तीन लोकके अन्तरालको संयुक्त तथा वियुक्त कर रही थी, और आकाश-रूपी समुद्रकी उठती हुई तरंगोंके समूहके समान जान पड़ती थी ॥२३॥ तदनन्तर बैलोंकी वह सेना चारों ओर खड़ी थी जो कि सुन्दर मुख, सुन्दर अण्डकोश, नयन कमल, मनोहर कांदौल, पूँछ, शब्द, सुन्दर शरीर, सास्ना, सुवर्णमय खुर और सींगोंसे युक्त थी तथा अत्यधिक कान्तिसे युक्त चन्द्रमाकी प्रभाको धारण कर रही थी ॥२४॥ तदनन्तर रथोंकी वह सेना भी सुशोभित हो रही थी जो स्वयं सात प्रकारसे विभिन्न होनेपर भी पर्वतोंसे अभेद्य थी, आकाशरूपी सागर-में जो देवोंके यानपात्रके समान जान पड़ती थी, प्रभासे जिसने सूर्यके देदीप्यमान रथको जीत लिया था, जो अत्यन्त मनोहर थी और जिसका घेरा वलयके समान सुशोभित था ॥२५॥ तत्पश्चात् जो चारों ओर जलके छींटोंकी वर्षा कर रहे थे, जिनके शुण्डादण्ड ऊपरकी ओर उठे हुए थे, जो बहुत भारी गर्जना कर रहे थे, जो आकारमें बहुत भारी थे, एवं जो बड़े-बड़े देवों-से अधिष्ठित थे, ऐसे मेघोंकी समानता धारण करनेवाले हाथियोंसे रचित, अनेक प्रकारकी रच-नाओंसे युक्त हाथियोंकी सेना भी वर्षा ऋतुकी शोभा विस्तृत कर रही थी ॥२६॥ हाथियोंकी

---

१. दन्तसत्कमल म., दन्तदन्तसरकमल ग. । २. योधजं म., ख. । देवजं घ. । ३. प्रघोषित ग. । ४. कौशि-कैर्नयन म. । कौशकैर्नयन ग. । ५. पटैः ग. । ६. अपूर्णभुवनोपरम् म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समस्तरसपुष्टिकं वलयहारिगात्रोत्करैर्मनःकुसुममञ्जरीरमरभूरुहामाहरत् ।
प्रनृत्यदुरुनर्तकीमयमनीकमप्यम्बरे नितम्बभरमन्थरं निचितमाविरासीत्तथा ॥२८॥
सहस्रगुणितोदिता चतुरशीतिरेषु स्फुटं प्रमाणमपि सप्तसु प्रथमसप्तकक्षास्वतः ।
परं द्विगुणमेतदेव सकलेषु कक्षान्तरेष्वनीकवलयेष्वियं क्रमभिदासमाप्तेः स्थितिः ॥२९॥
यथायथमनीकिनः सकलनाकलोकाधिपा जिनेन्द्रजननाभिषेककरणाय यावद्वियत् ।
वितत्य पुरमाव्रजन्ति मुदितास्तु तावद्दिशां कुमार्य उपकुर्वते निखिलजातकर्मादृताः ॥३०॥
तथाहि विजया स्मृता जगति वैजयन्ती परा परोक्तिरपराजिता प्रवदिता जयन्ती वरा ।
तथैव सह नन्दया भवति चापरानन्दया सनन्द्यभिधवर्धना हृदयनन्दिनन्दोत्तरा ॥३१॥
कुचानिव निजानिमा विगलदङ्गशृङ्गारसद्रसेन भरितान् भृशं विपुलतुङ्गभृङ्गारकान् ।
समूहुरभिरामकानमलहारभारोज्ज्वला ज्वलन्मणिविभूषणश्रवणकुण्डलोद्भासिताः ॥३२॥
तथैव सयशोधरा प्रथितसुप्रबुद्धामरी सुकीर्तिरपि सुस्थिता प्रणिधिरत्र लक्ष्मीमती ।
विचित्रगुणचित्रया सह वसुंधरा चाप्यमू गृहीतमणिदर्पणा दिश इवेन्दुमत्यो बभुः ॥३३॥
इला नवमिकासुरासहितपीतपद्मावती तथैव पृथिवी परप्रवरकाञ्चना चन्द्रिका ।
प्रभास्फुटिततारकामरणभूषिता भास्वराः सचन्द्ररजनीनिभा धृतसितातपत्रा बभुः ॥३४॥

सेनाके बाद गन्धर्वोंकी वह सेना सुशोभित हो रही थी जिसने मधुर मूर्छनासे कोमल वीणा, उत्कृष्ट बाँसुरी और तालके शब्दसे मिश्रित सातों प्रकारके आश्रित स्वरोंसे जगत्के मध्यभागको पूर्ण कर दिया था, जो देव-देवांगनाओंसे सुशोभित थी एवं सबको आनन्द उत्पन्न करनेवाली थी ॥२७॥ गन्धर्वोंकी सेनाके बाद उत्कृष्ट नृत्य करनेवाली नर्तकियोंकी वह सेना भी आकाशमें प्रकट हुई थी जो कि नितम्बोंके भारसे मन्द-मन्द चल रही थी, समस्त रसोंको पुष्ट करनेवाली थी और वलयोंसे सुशोभित अपने शरीरोंसे देवरूपी वृक्षोंके मनरूपी पुष्पमंजरीको ग्रहण कर रही थी ॥२८॥ प्रत्येक सेनामें सात-सात कक्षाएँ थीं। उनमें-से प्रथम कक्षामें चौरासी हजार घोड़े, बैल आदि थे फिर दूसरी-तीसरी आदि कक्षाओंमें क्रमसे दूने-दूने होते गये थे ॥२९॥

अपनी-अपनी सेनाओंसे युक्त समस्त इन्द्र, भगवान्का जन्माभिषेक करनेके लिए आकाशमें व्याप्त हो जब-तक सूर्यपुर आते हैं तब-तक प्रसन्नतासे युक्त एवं आदरसे भरी दिक्कुमारी देवियाँ भगवान्का समस्त जातकर्म करने लगीं ॥३०॥ देवियोंमें निर्मल हारोंके धारण करनेसे सुशोभित एवं चमकते हुए मणियोंके आभूषण और कानोंके कुण्डलोंसे विभूषित, जगत्-प्रसिद्ध विजया, वैजयन्ती, अपराजिता, जयन्ती, नन्दा, आनन्दा, नन्दिवर्धना और हृदयको आनन्दित करनेवाली नन्दोत्तरा नामकी देवियाँ अपने स्तनोंके समान स्थूल, तथा अंगसे विगलित होते हुए शृंगार रसके समान निर्मल जलसे भरी हुई बड़ी ऊँची झारियाँ लिये हुए थीं ॥३१-३२॥ यशोधरा, सुप्रसिद्धा, सुकीर्ति, सुस्थिता, प्रणिधि, लक्ष्मीमती, विचित्र गुणोंसे युक्त चित्रा और वसुन्धरा ये देवियाँ मणिमय दर्पण लेकर खड़ी थीं और चन्द्रमासे युक्त दिशाओंके समान सुशोभित हो रही थीं ॥३३॥

इला, नवमिका, सुरा, पीता, पद्मावती, पृथ्वी, प्रवरकांचना और चन्द्रिका नामकी देवियाँ, प्रभासे देदीप्यमान ताराओंके समान आभूषणोंसे सुशोभित तथा देदीप्यमान थीं। ये देवियाँ भगवान्की मातापर सफेद छत्र लगाये हुए थीं और चन्द्रमाके सहित रात्रियोंके समान

---

१. बलमहारि–म. । २. प्रनृत्यपुरुनर्तकी म. । ३. मप्यम्बरै–म. । ४. करुणाय म. । ५. परा म. । ६. पीठपद्मावती म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रिया च धृतिराशया च वरवारुणी पुण्डरीकिणी स्फुरदलम्बुसा च सह मिश्रकेशी ह्रिया ।
सचामरकरा इमा बभुरुदारफेनावलीतरङ्गकुलसंकुला इव कुलापगाः संगताः ॥३५॥
कनत्कनकचित्रया सहितया पुनश्चित्रया त्रिलोकसुरविश्रुतत्रिशिरसा च सूत्रामणिः ।
कुमार्य इव विद्युतो विलसितैर्जिनस्यान्तिके तमोनुद इवाबभुर्जलधरस्य विद्युल्लताः ॥३६॥
सहैव रुचकप्रभा रुचकया तदाद्याभया परा च रुचकोज्ज्वला सकलविद्युदग्रेसराः ।
दिशां च विजयादयो युवतयश्चतस्रो वरा जिनस्य विदधुः परं सविधि जातकर्माश्रिताः ॥३७॥
चतुर्विधसुरासुरा लघु समेत्य तावत्परं कुबेरजनिताद्भुतप्रथमशोभमुच्चैर्ध्वजम् ।
परीत्य जिनभक्तितस्त्रिदशनाथलोकश्रियं विजेतुमिव चोद्यतं ददृशुरादृताः सेन्द्रकाः ॥३८॥
प्रविश्य नगरं ततः शतमखः स्वयं सत्सखः शिवास्पदसमीपगः स्थितिविदादिदेशादृताम् ।
शचीं शुचिमचापलां समुपनेतुमीशं शिशुं प्रसूतिगृहमाविशन्निति तदा बभौ सादरा ॥३९॥
विकृत्य सुरमायया शिशुमिहापरं निद्रया प्रयोज्य जिनमातरं प्रणतिपूर्वकं यत्नतः ।
प्रगृह्य मृदुपाणिना शिशुमदादसौ स्वामिने प्रणम्य शिरसा ददावमरराट् कराभ्यां जिनम् ॥४०॥
[2]जितेन्दुमुखचन्द्रकं विजितपुण्डरीकेक्षणं विशेषविजितासितोत्पलवनश्रियं तं श्रिया ।
निरीक्ष्य जित[3]पद्मपाणिचरणं सहस्रेक्षणः सहस्रगणनेक्षणैरपि ययौ न तृप्तिं तदा ॥४१॥

जान पड़ती थीं ॥३४॥ श्री, धृति, आशा, वारुणी, पुण्डरीकिणी, अलम्बुसा, मिश्रकेशी और ह्री आदि देवियाँ हाथोंपर चामर लिये खड़ी थीं तथा अधिक फेनावली और तरंगोंसे युक्त आयी हुई कुलनदियों—गंगा आदि नदियोंके समान सुशोभित हो रही थीं ॥३५॥ देदीप्यमान कनकचित्रा, चित्रा, तीन लोकके देवोंमें प्रसिद्ध त्रिशिरा और सूत्रामणि, ये विद्युत्कुमारी देवियाँ उस समय जिनेन्द भगवान्के समीप अपनी चेष्टाओंसे ऐसी सुशोभित हो रही थीं मानो मेघके समीप अन्धकारको नष्ट करनेवाली बिजलीरूपी लताएँ ही हों ॥३६॥ उस समय समस्त विद्युत्कुमारियोंमें प्रधान रुचकप्रभा, रुचका, रुचकाभा और रुचकोज्ज्वला तथा दिक्कुमारियोंमें प्रधान विजय आदि चार देवियाँ विधिपूर्वक भगवान्का जातकर्म कर रही थीं ॥३७॥

भगवान्के जन्मोत्सवके पूर्व ही कुबेरने सूर्यपुरकी अद्भुत शोभा बना रखी थी। उसके महलोंपर बड़ी-बड़ी ऊँची-ऊँची ध्वजाएँ फहरा रही थीं तथा वह इन्द्रलोककी शोभाको जीतनेके लिए उद्यत सरीखा जान पड़ता था। अपने-अपने इन्द्रों सहित चारों निकायोंके सुर और असुर आदरके साथ शीघ्र ही आकर जिनेन्द्र भगवान्की भक्तिसे उस नगरकी तीन प्रदक्षिणाएँ दे उसकी शोभा देखने लगे ॥३८॥ तदनन्तर सज्जनोंके सखा और मर्यादाको जाननेवाला इन्द्र नगरमें प्रवेश कर शिवादेवीके महलके समीप खड़ा हो गया और हीसे उसने आदरसे युक्त, पवित्र एवं चंचलतासे रहित इन्द्राणीको जात बालकके लानेका आदेश दिया। पतिकी आज्ञानुसार इन्द्राणीने प्रसूतिका-गृहमें प्रवेश किया। उस समय आदरसे भरी इन्द्राणी अत्यधिक सुशोभित हो रही थी ॥३९॥ वहाँ उसने यत्नपूर्वक जिन-माताको प्रणाम कर मायामयी निद्रामें सुला दिया तथा देव-मायासे एक दूसरा बालक बनाकर उनके समीप लिटा दिया। तदनन्तर इन्द्राणीने कोमल हाथोंसे जिन-बालकको उठाकर अपने स्वामी—इन्द्रके लिए दे दिया और देवोंके राजा इन्द्रने शिरसे जिन-बालकको प्रणाम कर दोनों हाथोंसे उन्हें ले लिया ॥४०॥ जिन्होंने अपने मुखरूपी चन्द्रमाके द्वारा चन्द्रमाको जीत लिया था, नेत्रोंसे पुण्डरीक—सफेद कमलको जीत लिया था, शरीरकी कान्तिसे नील कमलोंके वनकी शोभाको प्रमुख रूपसे पराजित कर दिया था और अपने हाथों तथा पैरोंसे कमलोंको पराभूत कर दिया था ऐसे जिनेन्द्र बालकको उस समय इन्द्र एक हजार नेत्रोंसे भी देखकर तृप्तिको प्राप्त नहीं हुआ—उसकी देखनेकी उत्कण्ठा ज्यों-

१. स्थितिविद् + आदिदेश + आदृताम् । २. जिनेन्द्रमुख–म., ग. । ३. जिनपद्म–म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विधाय स सुरद्विपस्फटिकभूभृतो मस्तके जिनेन्द्रशिशुमिन्द्रनीलमणितुङ्गचूडामणिम्[1] ।
चचाल चलचामरातपनिवारणोच्चैरुचिश्चलोर्मिकुलसंकुलो जलनिधिर्यथा फेनिलः ॥४२॥
सुरेभवदनत्रिके दशगुणे द्वयोश्चाष्ट ते रदाः प्रतिरदं सरः सरसि पद्मिनी तत्र च ।
भवन्ति मुखसंख्यया सहितपद्मपत्राण्यपि प्रशस्तरसभाविता[2] प्रतिदलं [3]नटत्यप्सराः ॥४३॥
तथाविधविभूतिभिः समुपगम्य मेरुं सुराः परीत्य पृथु पाण्डुकाख्यवनखण्डमभ्येत्य ते ।
जिनेन्द्रमतिरुद्र[4]पाण्डुकशिलातले कोमले सुपञ्चशतकार्मुकोच्चहरिविष्टरेऽतिष्ठपन् ॥४४॥
ततश्च धृतपूजनोपकरणेषु देवाङ्गनागणेषु परितः स्थितेष्वभिनवोत्सवानन्दिषु ।
नटत्सु कुतपोत्कटप्रकटनाटकेषु[5] स्फुटप्रकृष्टरसभावहावलयरञ्जितस्वर्गिषु ॥४५॥
रटत्पटहशङ्खशब्दहरिनादभेरीरवैर्गिरीन्द्रसुबृहद्गुहाप्रतिनिनादसंवर्धितैः ।
दिगन्तरविसर्पिभिर्जिनगुणैरिव प्रस्फुटैरशेषभुवनोदरे श्रुतिसुखावहैः पूरिते ॥४६॥
नभस्तलमितस्ततः स्थगयति स्फुरत्सौरभे विचित्रपटवासधूपपटले सुपुष्पोत्करे ।
सुगन्धयति बन्धुरे परमगन्धहृद्ये दिशां मुखानि मुखपाण्डुकप्रभवमातरिश्वन्यलम् ॥४७॥
गृहीतबहुविग्रहः सुरपरिग्रहो वासवः समारभत भक्तितो जिनमहाभिषेकं स्वयम् ।
विधातुममराहृतैस्तु मणिहेमकुम्भच्युतैः पयोमयपयोनिधेः शुभपयोभिरुद्गन्धिभिः ॥४८॥

[चतुर्भिः कलापकम्]

की-त्यों बनी रही ॥४१॥ वह इन्द्र जिनके मस्तकपर इन्द्रनील मणिका ऊँचा चूड़ामणि सुशोभित हो रहा था, ऐसे जिन-बालकको ऐरावत हाथीरूपी स्फटिकमय पर्वतके मस्तकपर विराजमान कर चला। उस समय वह इन्द्र चंचल चामर और छत्रोंसे अतिशय शोभायमान था और उनसे ऐसा जान पड़ता था मानो चंचल तरंगोंके समूहसे युक्त फेनसे भरा समुद्र ही चला जा रहा हो ॥४२॥

ऐरावत हाथीके बत्तीस मुख थे, प्रत्येक मुखमें आठ-आठ दाँत थे, प्रत्येक दाँतपर एक-एक सरोवर था, प्रत्येक सरोवरमें एक-एक कमलिनी थी, एक-एक कमलिनीमें बत्तीस-बत्तीस पत्र थे और एक-एक पत्रपर उत्तम रससे भरी हुई एक-एक अप्सरा नृत्य कर रही थी ॥४३॥ उस प्रकारकी लोकोत्तर विभूतिके साथ देव लोग मेरु पर्वतके समीप पहुँचे तथा उसकी परिक्रमा देकर पाण्डुक नामक विशाल वनखण्डमें प्रविष्ट हुए। वहाँ उन्होंने विशाल पाण्डुकशिलाके ऊपर जो पाँच सौ धनुष ऊँचा सिंहासन है उसपर जिन-बालकको विराजमान किया ॥४४॥

तदनन्तर पूजाके उपकरणोंको धारण करनेवाले एवं नवीन उत्सवसे आनन्दित देवांगनाओंके समूह जब चारों ओर खड़े थे, स्पष्ट तथा श्रेष्ठ रस, भाव, हाव और लयसे देवोंको अनुरंजित करनेवाले श्रेष्ठ नृत्यकारोंके समूह जब नृत्य कर रहे थे, सुमेरु पर्वतकी सुविशाल गुफाओंसे गूँजनेवाली प्रतिध्वनिसे वृद्धिगत, दिशाओंके अन्तरालमें फैलनेवाले, जिनेन्द्र भगवान्के गुणोंके समान अत्यन्त प्रकट, एवं कानोंको सुख देनेवाले बजते हुए नगाड़ों और शंखोंके शब्द तथा सिंहनाद और भेरियोंकी ध्वनियोंसे जब संसारका मध्यभाग परिपूर्ण हो रहा था, प्रकट होती हुई सुगन्धिसे युक्त, नाना प्रकारके पटवास, धूपोंके समूह और उत्तमोत्तम पुष्पोंके समूह जब इधर-उधर आकाशतलको व्याप्त कर रहे थे, और मुखरूपी पाण्डुक वनसे उत्पन्न उत्कृष्ट गन्धसे हृदयको प्रिय लगनेवाली सुन्दर वायु जब दिशाओंके मुखको अत्यन्त सुगन्धित कर रही

१. चूलामणि क., ख., ग.। २. भाविताः म., ग.। ३. नटन्त्यप्सराः म., ग.। ४. -मतिरुद्र म.। ५. नाटकपेटकः (ग. टि.)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहुत्रिदशपङ्क्तिभिः प्रमदपूरिताभिर्नभः स्फुरन्मणिगणोज्ज्वलत्कलशपाणिभिः सर्वतः ।
सुमेरुगिरिपञ्चमाम्बुनिधिमध्यमध्यासितं रराज बहुरज्जुभिस्तदिव नीयमानं तदा ॥४९॥
गृहाण कलशं लघु क्षिप नयाशु संधारय प्रभुं च मम संमुखं त्वमिति कर्णरम्यारवैः
करात्करमितस्ततः सुरगणस्य कुम्भावली श्रिया श्रयति पाण्डुकं वनमिवोरुहंसावली ॥५०॥
[2]सुवर्णमणिरत्नरौप्यमयकुम्भकाल्यो बभुः प्रवेगमरुतां[3] वशा रविशशाङ्कमाला यथा ।
सुपक्षपुटदीप्तिभिः खचितदिङ्मुखाः खे रयोत्पतद्गरुडहंसपङ्क्तय इव ययानेकशः ॥५१॥
शताध्वरभुजोद्धृतैर्जलधरैरिवोद्गर्जितैः सहस्रगणनैर्घटैः शुचिपयोभिरावर्जितैः ।
जिनोऽभिषवमाप्नुवन् धवलमद्रिराजं व्यधाद्दधाति धवलात्मतामधवलो हि शुद्धाश्रयात् ॥५२॥
सतोषमपरेऽपि ते निखिलकल्पनाथादयो[5] यथेष्टमभिषेचनं विदधुरम्बुभिर्निर्मलैः ।
जिनस्य जिनशासनाधिगमशस्तरागोदयाः प्रकाशिततनूरुहास्तनुतरात्मजन्माब्धयः[6] ॥५३॥
ततः सुरपतिस्त्रियो जिनमुपेत्य शच्यादयः सुगन्धितनुपूर्वकैर्मृदुकराः समुद्वर्तनम् ।
प्रचक्रुरभिषेचनं शुभपयोभिरुच्चैर्घटैः पयोधरभरैर्निजैरिव समं समावर्जितैः ॥५४॥

थी तब अनेक शरीरोंको धारण करनेवाले इन्द्रने देवोंके साथ भक्तिपूर्वक, देवोंके द्वारा लाये हुए, मणिमय और सुवर्णमय कुम्भोंसे च्युत, अत्यन्त सुगन्धित क्षीरसागरके शुभ जलसे जिनेन्द्र भगवान्‌का स्वयं महाभिषेक करना शुरू किया ॥४५-४८॥ उस समय सुमेरु पर्वत और क्षीरसागरके मध्य आकाशमें, हर्षसे भरी एवं देदीप्यमान मणियोंके समूहसे उज्ज्वल कलश हाथमें लिये देवोंकी पंक्तियाँ सब ओर खड़ी थीं उनसे उस समय वह आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो बहुत-सी रस्सियोंसे बाँधकर कहीं ले जाया जा रहा हो ॥४९॥ उस समय वहाँ 'कलश लो, जल्दी दो, और तुम भगवान्‌को शीघ्र ही मेरे सम्मुख धारण करो' इस प्रकार कानोंके लिए प्रिय शब्द हो रहे थे। तथा वह कलशोंकी पंक्ति देव-समूहके एक हाथसे दूसरे हाथमें जाती हुई शोभापूर्वक पाण्डुक वनमें ऐसी प्रवेश कर रही थी मानो बड़े-बड़े हंसोंकी पंक्ति ही प्रवेश कर रही हो ॥५०॥ आकाशमें वेगशाली देवोंके वशीभूत (हाथोंमें स्थित) सुवर्ण, मणि, रत्न और चाँदीसे निर्मित कलशोंकी पंक्तियाँ आकाशमें ऐसी सुशोभित हो रही थीं मानो सुन्दर पंखोंकी कान्तिसे दिशाओंको व्याप्त करती हुई वेगसे उड़नेवाले गरुड़ और हंसोंकी अनेक पंक्तियाँ ही हों ॥५१॥ इन्द्रकी भुजाओंके द्वारा उठाये हुए, मेघोंके समान गर्जना करनेवाले एवं उज्ज्वल जलसे भरे हुए हजार कलशोंसे अभिषेकको प्राप्त होनेवाले भगवान्‌ने मेरुपर्वतको सफेद कर दिया सो ठीक ही है क्योंकि शुद्ध पदार्थके आश्रयसे अशुद्ध भी शुद्धताको प्राप्त हो जाता है। **भावार्थ**—भगवान्‌के अभिषेक जलसे मेरु पर्वत सफेद-सफेद दिखने लगा ॥५२॥

जिनशासनकी प्राप्तिसे जिनके प्रशस्त रागका उदय हो रहा था, जिनके शरीरमें रोमांच प्रकट हुए थे और जिनका संसाररूपी सागर अत्यन्त अल्प रह गया था ऐसे अन्य समस्त स्वर्गोंके इन्द्रोंने भी बड़े सन्तोषके साथ इच्छानुसार निर्मल जलसे जिनेन्द्र भगवान्‌का अभिषेक किया था ॥५३॥ तदनन्तर कोमल हाथोंको धारण करनेवाली शची आदि इन्द्राणियोंने आकर सुगन्धित द्रव्योंसे भगवान्‌को उद्वर्तन—उबटन किया और अपने ही स्तनोंके समान सुशोभित एक साथ उठाये हुए, शुभ जलसे परिपूर्ण कलशोंके द्वारा उनका अभिषेक किया ॥५४॥

१. तदवनीयमानं म. । २. सुवर्णमयरूपकान्तिमय–म. । ३. प्रवेगमरतां म. । ४. –माप्नुयाद्धवल– म. । ५. समस्तदेवेन्द्रादयः । ६. जन्माधयः म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कूलमणिभूषणस्रगनुलेपनोद्भासितं प्रयोज्य शुभपर्वतं विभुमरिष्टनेम्याख्यया ।
सुरासुरगणास्ततः स्तुतिभिरित्थमिन्द्रादयः परीत्य परितुष्टुवुर्जिनमिनं[1] सुपृथ्वीश्रियाम्[2] ॥५५॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ जन्माभिषेकवर्णनो नामाष्टत्रिंशः सर्गः ॥३८॥

□

तदनन्तर इन्द्र आदि समस्त सुर और असुरोंके समूहने उत्तम वस्त्र, मणिमय आभूषण, माला तथा विलेपनसे सुशोभित, कल्याणके पर्वत, एवं अतिशय विशाल लक्ष्मीके स्वामी श्री जिनेन्द्र देवका अरिष्टनेमि नाम रखकर उनकी प्रदक्षिणा दी और उसके बाद नाना प्रकारकी स्तुतियोंसे उनका स्तवन किया ॥५५॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंश पुराणमें भगवान्‌के जन्माभिषेकका वर्णन करनेवाला अड़तीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥३८॥

□

१. जिनमिति म. । २. श्रियम् म., ग. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकोनचत्वारिंशः सर्गः

[1]सकलश्रुतमत्यवधिप्रविकासिविशुद्धविलासनिनिद्र विशिष्ट-
विलोचनदृष्टिविदृष्टसमस्तचराचरतत्त्वजगत्त्रितय ।
त्रितयात्मकदर्शनबोधचरित्रविनिर्मलरत्नविराजितपूर्व[2]-
भवोग्रतपोयुतषोडशकारणसंचिततीर्थंकरप्रकृते ॥१॥
प्रकृतेः स्थितितोऽनुभवाच्च विशिष्टतराद्भुतपुण्यमहोदय-
मारुतवेगविचालितदेवनिकायकुलाचलसेवितपादयुग ।
युगमुख्य मुखाम्बुजदर्शनतृप्तिविवर्जितभव्यमधुव्रतधीर-
तरस्तवनध्वनिबृंहितदुन्दुभिनादनिवेदितशुद्धयशः ॥२॥
यशसा धवलीकृतजन्मपवित्रितभारतवर्ष महाहरिवंश-
महोदयशैलशिखामणिबालदिवाकरदीप्तिजितार्कवपुः ।
वपुषाधिककान्तिभृताजितपूर्णशशाङ्क, विभो ! हरिनीलमणि-
द्युतिमण्डलमण्डितदिङ्मुखमण्डल नेमिजिनेन्द्र ! नमो भवते ॥३॥
भवतेह भुवां त्रितये भवता गुरुणा परमेश्वर विश्वजनीन
महेच्छधिया प्रतिपादितमप्रतिमप्रतिमारहितम् ।
हितमुक्तिपथं प्रथितं विधिवत् प्रतिपद्य विधाय[3] तपो विविधं
विधिना प्रविधूय कुकर्ममलं सकलं भुवि भव्यजनः प्रणतः ॥४॥

इन्द्र, नेमि जिनेन्द्रकी इस प्रकार स्तुति करने लगा— हे प्रभो ! आपने समस्त श्रुतज्ञान, मतिज्ञान और अवधिज्ञानसे विकसित, शुद्ध चेष्टाओंके धारक, जागरूक एवं विशिष्ट पदार्थोंको दिखलानेवाली दृष्टिके द्वारा समस्त चराचर पदार्थोंसे युक्त तीनों जगत्को अच्छी तरह देख लिया है। आपने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रके भेदसे त्रिविधताको प्राप्त निर्मल रत्नोंसे सुशोभित पूर्वभव सम्बन्धी उग्र तपसे युक्त सोलह कारण भावनाओंके द्वारा तीर्थंकर नामक पुण्य प्रकृतिका संचय किया है ॥१॥ उसी तीर्थंकर प्रकृतिकी स्थिति तथा अनुभागबन्धके कारण अत्यन्त विशिष्ट एवं अद्भुत पुण्यके महोदयरूपी वायुके वेगसे आपने देवसमूहरूपी कुलाचलोंको विचलित किया है। उन्होंने आपके चरण युगलकी सेवा की है। आप युगमें मुख्य हैं तथा आपके मुख कमलके देखने सम्बन्धी तृप्तिसे रहित भव्यजीवरूपी भ्रमरोंके अत्यधिक स्तवनोंको ध्वनिसे वृद्धिगत दुन्दुभियोंके शब्दसे आपका शुद्ध यश प्रकट हो रहा है ॥२॥ हे नाथ ! आपने यशसे शुक्लीकृत जन्मसे समस्त भारतवर्षको पवित्र किया है। अत्यन्त श्रेष्ठ हरिवंशरूप विशाल उदयाचलके शिखामणिस्वरूप बालदिनकर-जैसी कान्तिसे आपने सूर्यके शरीरको जीत लिया है। हे विभो ! आपने अधिक कान्तिको धारण करनेवाले शरीरके द्वारा पूर्णचन्द्रको जीत लिया है एवं इन्द्रनील मणि-जैसी कान्तिके समूहसे आपने समस्त दिशाओंके मुखमण्डलको सुशोभित कर दिया है इसलिए हे नेमि जिनेन्द्र ! आपको नमस्कार हो ॥३॥ हे परमेश्वर ! हे विश्वजनीन ! हे अप्रतिम—हे अनुपम ! आप तीनों लोकोंके गुरु हैं, एवं उत्कट बुद्धिके धारक हैं। यहाँ उत्पन्न होते ही आपने अनुपम, प्रसिद्ध एवं मोक्षका जो हितकारी मार्ग बतलाया है उसे स्वीकारकर तथा नाना प्रकारका तपकर भव्यजीव समस्त पापकर्मरूपी मलको विधिपूर्वक नष्ट कर

१. त्रोटकद्वयनिर्मितः कश्चित् छन्दो-विशेषः (?)। २. तीर्थकरनाम्नः स्थितेरनुभागोदयाच्च (ग. टि.)।
३. विधायि म.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रणतप्रिय[1] ! संप्रति जन्मजरामरणामयभीममहामवदुःख-
समुद्रमपारमतीत्य समेष्यति मोक्षमशेषजगच्छिखरम् ।
शिखराग्रसमग्रगुणाश्रयसिद्धमहापरमेष्ठिमहोपचयं
प्रवदन्ति[2] च यं मुनयः परमं पदमेकमिहाक्षरमात्महितम् ॥५॥
महितं महतां महदात्मगतं सततोदयमन्तविवर्जितमूर्जित-
सत्त्वसुखं प्रतिलभ्यमलभ्यममव्यजनैः खलु यत्र सुखम् ।
सुखमत्र यदीश्वरविश्वजगत्प्रभुताप्रतिबद्धमपि[3] त्रिदशे-
न्द्रनरेन्द्रपुरस्सरदेवमनुष्यविशेषमहाभ्युदयप्रभवम् ॥६॥
प्रभवप्रलयस्थितिधर्मपदार्थनिरूपणनैपुणशासन शासन
तावकशासनसेवनयैव भविष्यति नान्यमताश्रयतः ।
श्रयतामिति निश्चयमेत्य भवन्ति भवत्यविभूति[4]मतिप्रवणाः[5]
सततं तनुभृन्निवहा भुवि येऽत्र त एव जिनेन्द्र कृतित्वमिताः ॥७॥
प्रियसर्वहितार्थवचोविभवं विभवं सुरभीकृतदिग्विवरं
वरसंहतिसंस्थितिरूपयुतं युतसर्वसुलक्षणपङ्क्तिरुचिम् ।
रुचिमत्पयसा समदेहरसं रसभावविदं मलमुक्ततनुं
तनुजस्विदिहीनमनन्ततया ततया संहितं[6] भुवि वीर्यतया ॥८॥

तोटकवृत्तम्

यतयात्मधिया[7] जितनात्मभुवं[8] भुवमभ्यतरां सुखसस्यभृताम्[9] ।
भृतविश्व ! भवन्तमनन्तगुणं गुणकाङ्क्षितया वयमीश नताः ॥९॥

पृथिवीमें वन्दनीय होंगे ॥४॥ हे प्रणतप्रिय ! हे भक्तवत्सल ! अब आप जन्म-जरा-मरणरूपी रोगोंसे भयंकर संसाररूपी महादुःखके अपार सागरको पार कर मोक्षस्वरूप, समस्त लोकको उस शिखर-को प्राप्त होंगे जहाँपर उत्कृष्ट सीमाको प्राप्त समस्त गुणोंके आधारभूत सिद्ध भगवान्‌रूप महा-परमेष्ठी विराजमान रहते हैं और जिसे मुनिगण उत्कृष्ट, अद्वितीय, अविनाशी एवं आत्म-हितकारी पद कहते हैं ॥५॥ जहाँका उत्तम, महान्, आत्मगत, निरन्तर उदयमें रहनेवाला, अन्तरहित और अनन्त बलसम्पन्न सुख महापुरुषोंको ही प्राप्त हो सकता है अभव्य जीवोंको नहीं। हे स्वामिन्! आप उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य स्वभाववाले पदार्थोंके निरूपण करनेमें निपुण शासनका उपदेश करनेवाले हैं। इस संसारमें समस्त जगत्‌की प्रभुतासे सम्बद्ध एवं इन्द्र, नरेन्द्र आदि देव और मनुष्योंके विशेष महान् अभ्युदयोंका कारणभूत जो सुख है वह भी आपके शासनकी सेवासे ही प्राप्त होगा। अन्य मतोंके आश्रयसे नहीं। इसलिए सब आपका ही आश्रय लेवें इस प्रकार आपके विषयमें निश्चय—दृढ़ श्रद्धाको प्राप्त कर जो प्राणी इस पृथिवीमें नर्ग्रन्थ बुद्धिके धारण करनेमें प्रवीण होते हैं—निर्ग्रन्थ मुद्रा धारण करते हैं हे जिनेन्द्र ! वे ही प्राणी इस संसारमें कृतकृत्यताको प्राप्त होते हैं ॥६-७॥ हे भगवन्! आप प्रिय एवं सर्वहितकारी वचनोंके वैभवसे सहित हैं, संसारका अन्त करनेवाले हैं, आपने दिशाओंके अन्तरालको सुगन्धित कर दिया है, आप उत्कृष्ट संहनन, उत्कृष्ट संस्थान और उत्कृष्ट रूपसे युक्त हैं, आप समस्त लक्षणोंसे सुशोभित हैं, आपके शरीरका रस—रुधिर दूधके समान है, आप रस और भावको जाननेवाले हैं, आपका शरीर मलसे रहित है, पसीनासे रहित है, आप पृथिवीमें व्याप्त अनन्त बलसे सहित हैं ॥८॥ आपने संयमरूप आत्मबुद्धिसे कामदेवको जीत लिया है। आप सुखरूपी

१. प्रणतिप्रिय म.। २. प्रविदन्ति म.। ३. प्रतिबुद्धमपि म.। ४. -त्यभिभूति म.। ५. नति ग.। ६. -महितम् ग.। ७ जिनयात्मभुवम्। ८. कामदेवम् (ग. टि.)। ९. सुखसस्यभृतम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोधकवृत्तम्

योजनभूरिसहस्रनभोगं भोगकरत्वमिवाचलनाथम् ।
नाथ ! परं स्नपनासनमिद्धमिद्धमतिः कुरुते क उदारः ॥१०॥
ईदृशमीश विभुत्वममानं मानधनामरमानवमान्यम् ।
मान्यतमोऽन्यतमो भुवि ना[1] को नाकभवोऽपि[2] जिनैति यथा त्वम् ॥११॥
शैशव एव जनातिगसत्त्वः सत्त्वहितो भुवनत्रयनूतः ।
नूतनभक्तिभरेण नतानां तानवमानस[3]सौख्यकरस्त्वम्[4] ॥१२॥
कामकरीन्द्रमृगेन्द्र नमस्ते क्रोधमहाहिविराज[5] नमस्ते ।
मानमहीधरवज्र नमस्ते लोभमहावनदाव नमस्ते ॥१३॥
ईश्वरताधरधीर नमस्ते विष्णुतया युत देव नमस्ते ।
अर्हदचिन्त्यपदेश नमस्ते ब्रह्मपदप्रतिबन्ध[6] नमस्ते ॥१४॥
सत्यवचोनिचयैः सुरसंघा इत्यभिनुत्य जिनं प्रणिपत्य ।
तारकमुग्रभवाद्वरमेकं याचितवन्त इनं वरबोधिम् ॥१५॥

सस्यसे परिपूर्ण एवं अत्यन्त रक्षणीय भूमिकी रक्षा करनेवाले हैं। हे सबके रक्षक भगवन् ! इस तरह आप अनन्त गुणोंके धारक हैं। हे नाथ ! आपके गुणोंकी अभिलाषासे हम आपके प्रति नम्रीभूत हैं—आपको नमस्कार करते हैं ॥९॥ हे नाथ ! यह अनेकों हजार योजन ऊँचा पर्वतोंका राजा सुमेरु पर्वत भी मानो आपके योगका साधन हो गया। सो आपके सिवाय प्रचण्ड बुद्धिको धारण करनेवाला ऐसा कौन महापुरुष है जो इसे श्रेष्ठ तथा देदीप्यमान स्नानपीठ बना सकनेको समर्थ है ॥१०॥

हे ईश ! यह आपका ऐश्वर्य अपरिमित है, मानरूपी धनके धारक बड़े-बड़े देव तथा मनुष्योंके द्वारा माननीय है। हे जिनेन्द्र ! इस संसारमें स्वर्गमें उत्पन्न होनेवाला भी ऐसा कौन दूसरा माननीय पुरुष है जो आपके समान ऐश्वर्यको प्राप्त कर सके ॥११॥ हे भगवन् ! बाल्यकालमें भी आप लोकोत्तर पराक्रमके धारक हैं, प्राणियोंके हितकारक हैं, तीनों लोकोंके द्वारा स्तुत हैं तथा आप नूतन भक्तिके भारसे नम्रीभूत मनुष्योंके लिए शारीरिक और मानसिक सुखके करनेवाले हैं ॥१२॥ हे प्रभो ! आप कामरूपी गजराजको नष्ट करनेके लिए सिंहके समान हैं इसलिए आपको नमस्कार हो। आप क्रोधरूपी महानागको वश करनेके लिए पक्षिराज—गरुड़के समान हैं इसलिए आपको नमस्कार हो। आप मानरूपी पर्वतको चकनाचूर करनेके लिए वज्रके समान हैं अतः आपको नमस्कार हो और आप लोभरूपी महावनको भस्म करनेके लिए दावानलके समान हैं इसलिए आपको नमस्कार हो ॥१३॥ आप ईश्वरताके धारण करनेमें धीर-वीर हैं अतः आपको नमस्कार हो। हे देव ! आप विष्णुतासे युक्त हैं अतः आपको नमस्कार हो। आप अर्हन्तरूप अचिन्त्य पदके स्वामी हैं अतः आपको नमस्कार हो और आप ब्रह्म पदको प्राप्त करनेवाले हैं अतः आपको नमस्कार हो ॥१४॥ इस प्रकार सत्य वचनोंके समूहसे देवोंने भगवान्‌की स्तुति कर उन्हें प्रणाम किया तथा भयंकर संसारसे पार करनेवाले भगवान्‌से उन्होंने यही एक वर माँगा कि हे भगवन् ! हम लोगोंको उत्तम बोधिकी प्राप्ति हो ॥१५॥

---

१. ना पुरुषः भटः किंनामधेय इत्यर्थः। २. नाकभुवोऽपि ग.। ३. मानव म.। ४. शारीरिकमानसिकसौख्यविधायकः। ५. क्रोधमहानागगरुड़। ६. ब्रह्मपथप्रतिबन्ध म., ग.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वृत्तानुगन्धिगद्यम्

अथ मथितमहामृताम्भोधिसंशुद्धपीयूषपिण्डातिपानातिदोषाच्चिराज्जीर्यमाणेष्विवोद्गीर्यमाणेषु तत्खण्डखण्डेषु, शङ्खेषु खे खेदमुक्तैः सुरैस्तोषपोषादनीषन्मनीषैर्भृशं पूर्यमाणेषु तद्यथा वाद्यमानोरुगम्भीरभेरीमृदङ्गानकादिप्रभूताततातोद्यशब्देषु संवृत्तजैनेन्द्रजन्माभिषेकोत्सवोद्घोषणायेव निश्शेषलोकान्तदिक्चक्रवालान्तराक्रान्तिमभ्युत्थितेषु प्रनृत्यत्सु विद्याधरव्रातदेवाङ्गनानुङ्गसंगीतनादाभिरामातिशृङ्गारहास्याद्भुतोद्यद्रसोदारवागङ्गसत्त्वस्फुटाहार्यहार्यात्मदिव्याभिनेयप्रवृत्ताप्सरोवृन्दबन्धेषु, सौधर्मकल्पाधिपः संभ्रमाद्विभ्रमभ्राजमानोद्यदैरावतस्कन्धमारोप्य संवृत्यधीरं जिनेन्द्रं सितच्छत्रशोभं चलच्चामरालीभिरावीज्यमानं प्रगीताप्सरोलोकसंगीयमानातिशुद्धात्मकीर्तिं चचालाचलेन्द्रादनीकैरशेषैरशेषं नभोभागमापूर्य शौर्यशैलैरलं यादवेन्द्रैर्मृगेन्द्रैरिवाध्यासितं प्रथितविबुधनिकायैः पथि प्रस्थितैः सप्रमोदैः प्रणामप्रणुतिप्रगीतिप्रयोगप्रवृत्तैर्यथायोगमभिनन्द्यमानो महानन्दमापादयन् पादपद्मोपसेवासनाथस्य नाथस्त्रिलोकामराधीशलोकस्य लोकातिवर्तिप्रवृत्तं परमपारमैश्वर्यमत्यद्भुतं संदधानः, शिवानन्दनो, नन्द वर्धस्व जीवेति वेत्यादि पुण्याभिधानैस्तदा स्तूयमानः कुलाद्रिप्रसूतिप्रभूताच्छतोयापगावीचिसंतानसंसर्गशीतात्मना भोगभूभूरुहाणां

अथानन्तर खेद-रहित एवं विशाल बुद्धिके धारक देव सन्तोषकी अधिकतासे आकाशमें जिन शंखोंको अधिक मात्रामें फूँक रहे थे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो अमृतके महासागरके मथनेसे जो अत्यन्त शुद्ध अमृतका पिण्ड निकला था उसे अधिक मात्रामें पी जानेके दोषसे देव लोग चिरकाल तक पचा नहीं सके इसलिए उन्होंने उगल दिया हो उसी पीयूष-पिण्डके टुकड़े हों। शंखोंके शब्दोंके साथ-साथ बजाये जानेवाले अत्यधिक गम्भीर ध्वनिसे युक्त भेरी, मृदंग तथा पटह आदिको एवं अधिक मात्रासे बजनेवाली बाँसुरी और वीणाके शब्द, 'श्री जिनेन्द्र भगवान्‌के जन्माभिषेकका उत्सव हो चुका है' इसकी घोषणा करनेके लिए ही मानो जब समस्त लोकके अन्त तक एवं समस्त दिशाओंके अन्तरालमें व्याप्त होनेके लिए उठ रहे थे। और जब विद्याधरोंके समूह एवं देवांगनाओंके उन्नत संगीतमय शब्दोंसे सुन्दर श्रेष्ठ शृंगार, हास्य और अद्भुत रससे परिपूर्ण वाचिक, आंगिक, सात्त्विक और आहार्य इन चार प्रकारके अपने सुन्दर दिव्य अभिनेयोंके प्रकट करनेमें प्रवृत्त अप्सराओंके समूह सुन्दर नृत्य कर रहे थे। तब सौधर्म स्वर्गका इन्द्र, सम्भ्रम पूर्वक विभ्रमोंसे शोभायमान उठते हुए ऐरावत हाथीके कन्धेपर धीर-वीर जिनेन्द्रको विराजमान कर सुमेरु पर्वतसे उस शौर्यपुरकी ओर चला जो शूरवीरताके पर्वत एवं सिंहोंके समान बलवान् यादववंशी राजाओंसे अधिष्ठित था। उस समय जिनेन्द्र भगवान्‌के ऊपर सफेद छत्र सुशोभित हो रहा था, चंचल चमरोंकी पंक्तियाँ उनपर ढोरी जा रही थीं, और प्रकृष्ट गीतोंसे युक्त अप्सराओंके समूह उनकी अत्यन्त विशुद्ध कीर्ति गा रहे थे। सौधर्मेन्द्रने उस समय समस्त आकाशको सब प्रकारकी सेनाओंसे पूर्ण कर रखा था। मार्गमें चलते हुए, हर्षसे परिपूर्ण, प्रणाम, स्तुति तथा संगीतके प्रयोगमें लीन प्रसिद्ध देवोंके समूह भगवान्‌का यथायोग्य अभिनन्दन कर रहे थे। त्रिलोक सम्बन्धी इन्द्रोंका समूह भगवान्‌के चरणकमलोंकी सेवामें तत्पर था और भगवान् उसे महान् आनन्द प्राप्त करा रहे थे। इस प्रकार जो लोकोत्तर एवं अत्यन्त आश्चर्यकारी परम ऐश्वर्यको धारण कर रहे थे, शिवादेवीके पुत्र थे, 'समृद्धिको प्राप्त होओ' 'बढ़ते रहो' 'जीवित रहो' इत्यादि पुण्य शब्दोंसे उस समय जिनकी स्तुति हो रही थी, कुलाचलोंसे उत्पन्न अत्यधिक स्वच्छ जलसे युक्त महानदियोंकी तरंगोंके संसर्गसे शीतल, भोगभूमि सम्बन्धी कल्पवृक्षोंके रंग-बिरंगे पुष्प-समूहके संयोगसे आश्चर्यकारी सुगन्धिको धारण करनेवाले तथा खेद दूर करनेके लिए सम्भ्रमपूर्वक बहुत

१. चक्रवालोत्तराक्रान्ति म.। २. वाराङ्ग म.। ३. –दनेकै–म.। ४. –मापूर्वशैले–म.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विचित्रप्रसूनप्रतानप्रसंगेन सौगन्ध्यमत्यद्भुतं बिभ्रता संभ्रमेणातिदूराच्च खेदापनोदार्थमभ्युत्थितेनेव मित्रेण गात्रानुकूलेन मन्दानिलेन प्रभुस्तीर्थकृत्कोमलाङ्गः समालिङ्ग्यमानो मनोहारिबाल्यानुरूपाम्बरोद्भासिभूषाविशेषोद्धमाल्योज्ज्वलो बालकल्पद्रुमोद्दामशोभातिशायी घनश्याममूर्तिः सितोद्गन्धिसच्चन्दनेनोपदिग्धः स्फुरत्सान्द्रचन्द्रातपाश्लिष्टरुन्द्रेन्द्रनीलाद्रिलक्ष्मीधरो देवसेनावृतः शीघ्रमुल्लङ्घ्य काष्ठामुदीचीमधिष्ठानमात्मीयमुच्चैर्ध्वजव्रातवादित्रधीरध्वनिव्याप्तदिक्चक्रवालाम्बरं दिव्यगन्धाम्बुवर्षाभिषिक्तापतत्पुष्पवर्षोपरुद्धोरुरथ्यापथं श्रीनिधानं विधानेन माङ्गल्यसंसंगिना चारुसौर्यं पुरं प्रापदैश्वर्यमाश्चर्यभूतं भुवि प्राकटं विश्वलोकस्य कुर्वन्नसौ नेमिनाथः। जिनशिशुमशिशुश्रियं शौरिसौर्यप्रजाशुंभदम्भोजिनीबालभास्वन्तमुत्तुङ्गमातङ्गराजोत्तमाङ्गस्थमादाय तं मातुरुत्संगमानीय शक्रः स्वयंविक्रियाशक्तियुक्तः सहस्रं भुजां भासुरांसस्थलश्रीपुषां स [1]प्रकृत्य प्रसार्योरुसौन्दर्यसंदर्भगर्भामरस्त्रीसहस्राणि चित्रं प्रनृत्यन्ति बिभ्रद्भुजेष्वग्रतो यादवानां मुदा पश्यतां विश्वकाश्यप्यधीशत्वलाभादपि प्राज्यलाभं हृदि ध्यायतां स्फारिताक्षं क्षणारब्धसत्ताण्डवाखण्डशोभाप्रयोगान्वितं वाद्य[2]जातिप्रतानप्रवृद्धाभिनेयं सभ्रूक्षोभलीलं सदिक्चक्रभेदं सभूमिप्रपातं[3] महानन्दसन्नाटकं राज्यदक्षो ननाट स्फुटीभूतनानारसोदारभावं ततोऽर्हद्गुरुं देवराजः प्रणम्य प्रपूज्यान्य-

दूरसे सम्मुख आये हुए मित्रके समान, शरीरके अनुकूल मन्द-मन्द समीरसे जिनका आलिंगन हो रहा था, जो प्रभु थे, तीर्थंकर थे, कोमल शरीरके धारक थे, जो मनको हरण करनेवाले तथा बाल्य अवस्थाके अनुरूप वस्त्रोंसे सुशोभित विशिष्ट आभूषणोंसे युक्त थे, देदीप्यमान मालाओंसे उज्ज्वल थे, बाल कल्पवृक्षकी उत्कृष्ट शोभाको तिरस्कृत करनेवाले थे, मेघके समान श्यामर्मूतिके धारक थे, सफेद एवं उत्कृष्ट गन्धसे युक्त उत्तम चन्दनसे लिप्त थे और इसके कारण जो उदित होती हुई सघन चांदनीसे आलिंगित प्रगाढ़ इन्द्रनीलमणिके पर्वतकी शोभाको धारण कर रहे थे, और देवोंकी सेनासे आवृत थे ऐसे नेमिजिनेन्द्र शीघ्र ही उत्तर दिशाको उल्लंघ कर अपने उस सौर्यपुर नगरमें जा पहुँचे जहाँकी दिशाओंका अन्तराल और आकाश ऊँची-ऊँची ध्वजाओंके समूह तथा वादित्रोंकी गम्भीर ध्वनिसे व्याप्त था, जहाँके बड़े-बड़े मार्ग, दिव्य और सुगन्धित जलकी वृष्टिसे सींचे जाकर फूलोंकी पड़ती हुई वर्षासे रुके हुए थे, जो लक्ष्मीका भण्डार था तथा मंगलाचारमय विधि-विधानसे सुन्दर था, उस समय भगवान् नेमिनाथ पृथिवीपर समस्त लोगोंको आश्चर्यमें डालनेवाले आश्चर्यको प्रकट कर रहे थे।

बालक होनेपर भी जिनकी शोभा बालकों जैसी नहीं थी अर्थात् जो प्रकृतिसे वयस्कके समान सुन्दर थे। जो कृष्ण तथा सौर्यपुरकी प्रजारूपी शोभायमान कमलिनीको विकसित करनेके लिए बालसूर्य थे और जो अतिशय ऊँचे ऐरावत—गजराजके मस्तकपर विराजमान थे ऐसे जिन-बालकको लेकर इन्द्रने उन्हें माताकी गोदमें दिया। तदनन्तर विक्रिया शक्तिसे युक्त इन्द्रने स्वयं देदीप्यमान कन्धोंकी शोभाको पुष्ट करनेवाली हजार भुजाएँ बनाकर उन्हें फैलाया तथा उनपर अत्यधिक सौन्दर्यसे युक्त नाना प्रकारका नृत्य करनेवाली हजारों देवियोंको धारण किया। तत्पश्चात् इस लीलाको जब सामने बैठे हुए यादव लोग बड़े हर्षसे देख रहे थे तथा अपने हृदयमें जब इसे समस्त पृथ्वीके स्वामित्वके लाभसे भी अधिक समझ रहे थे तब राज्यमें दक्ष इन्द्रने महानन्द नामका वह उत्तम नाटक किया जिसने सबके नेत्रोंको विस्तृत कर दिया था, अर्थात् जिसे सब टकटकी लगाकर देख रहे थे। उत्सवपूर्वक प्रारम्भ किये हुए उत्तम ताण्डव नृत्यकी अखण्ड शोभाके प्रयोगसे सहित था, नाना प्रकारके वादित्रोंकी जातियोंके

१. प्रकृत्यपसार्यो म.। २. बाह्यजातिप्रतानप्रवृत्ताभिनेयं म., वाद्यजतिप्रभानुप्रवृद्धाभिनेयं ग.। ३. प्रयातं म.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मर्त्यैरनर्घ्यैरलभ्यैर्विभूषादिभिर्भूषयित्वा जिनस्यामृताहारमुख्यत्कराङ्गुष्ठके[1] दक्षिणे न्यस्य रक्षानिमित्तं वयस्यान् कुमारान् सुराणां सुरेन्द्रः कुमारस्य सम्यग्निरूप्याप्रमत्तं कुबेरं वयोभेदकालर्तुयोगं विभोः क्षेमयोग्यं विधेयं समस्तं त्वयेति स्थिरं ज्ञापयित्वा समापृच्छ्य जैनौ गुरू तावनुज्ञां ततः प्राप्यसंप्राप्तलाभः कृतार्थं निजं मन्यमानो यथायातमन्यैरशेषैः सुरेन्द्रैश्चतुर्भेददेवानुगैर्यातवान् सिद्धयात्रस्ततो दिक्कुमार्योऽपि संवृत्तकार्याः समासाद्य तामार्यपुत्रीं सपुत्रीं शिवां संप्रणम्य प्रहृष्टाः प्रजग्मुर्निजस्थानदेशान् दिशस्ता दश द्योतयन्त्यः शरीरप्रभाभिर्जगन्नेमिचन्द्रोऽपि शुभ्रैर्गुणग्रामसान्द्रांशुजालैः समाह्लादयन् बालभावेऽप्यबालक्रियो[2] लालितो बन्धुवर्गामरैर्वर्द्धमानो रराज श्रिया।

स्तवनमिदमरिष्टनेमीश्वरस्येष्टजन्माभिषेकाभिसंबन्धमाक्रान्तलोकत्रयातिप्रभावस्य पापापनोदस्य पुण्यैकमार्गस्य संसारसारस्य मोक्षोपकण्ठस्य भव्यप्रजानां प्रमोदस्य कर्तुः प्रमादस्य हर्तुर्धर्मस्योपनेतुर्मुदा श्रूयमाणस्य स्मर्यमाणस्य च संकीर्त्यमानस्य संकीर्तनं पठ्यमानं समाकर्ण्यमानं सदा चिन्त्यमानं

समूहसे जिसमें अभिनेय अंश वृद्धिको प्राप्त हो रहे थे, जो भौंहोंके क्षोभकी लीलासे सहित था, दिङ्मण्डलके भेदसे सहित था, पृथ्वीके प्रतापसे सहित था, और नाना रसोंके कारण जिसमें उदार-भाव प्रकट हो रहा था।

तदनन्तर इन्द्रने भगवान्‌के माता-पिताको प्रणाम किया, उनकी पूजा की, अन्य मनुष्योंके लिए दुष्प्राप्य अमूल्य आभूषण आदिसे उन्हें विभूषित किया, रक्षाके निमित्त जिनेन्द्रके दाहिने हाथका अँगूठेमें अमृतमय मुख्य आहार निक्षिप्त किया। क्रीड़ाके लिए भगवान्‌की समान अवस्थाको धारण करनेवाले देवकुमारोंको उनके पास नियुक्त किया, कुबेरको यह आज्ञा दी कि तुम भगवान्‌की अवस्था, काल और ऋतुके अनुकूल उनके कल्याणके योग्य समस्त व्यवस्था करना। इस प्रकार इन्द्र यह आज्ञा देकर भगवान्‌के माता-पितासे पूछकर तथा उनकी आज्ञा प्राप्त कर अपने आपको कृतकृत्य मानता हुआ चार निकायके देवोंसे अनुगत समस्त इन्द्रोंके साथ जैसा आया था वैसा चला गया। इन्द्रकी यात्रा सफल हुई।

तदनन्तर अपना-अपना कार्य पूरा कर दिक्कुमारी देवियोंने आर्यपुत्री, जिनबालक सहित माता—शिवादेवीके पास आकर उन्हें प्रणाम किया और उसके बाद वे प्रकृष्ट हर्षसे युक्त अपने शरीरकी प्रभाओंसे दशों दिशाओंको देदीप्यमान करती हुई अपने-अपने स्थानोंपर चली गयीं। इधर गुण-समूहरूपी किरणोंके समूहसे समस्त जगत्‌को आनन्दित करनेवाले, बालक होनेपर भी वृद्धा-जैसी क्रियासे युक्त, बन्धुवर्ग तथा देवोंके द्वारा लालित नेमिजिनेन्द्ररूपी चन्द्रमा दिन-प्रतिदिन बढ़ते हुए लक्ष्मीसे सुशोभित होने लगे।

गौतम स्वामी कहते हैं कि यह स्तवन उन नेमिजिनेन्द्रके जन्माभिषेकसे सम्बन्ध रखनेवाला है जिनके सातिशय प्रभावने तीनों लोकोंको व्याप्त कर रखा है, जो पापको दूर करनेवाले हैं, एक पुण्यका ही मार्ग बतानेवाले हैं, संसारमें सारभूत हैं, मोक्षके निकट हैं, भव्य जीवोंको हर्ष उत्पन्न करनेवाले हैं, प्रमादको हरनेवाले हैं, धर्मका उपहार देनेवाले हैं, सब लोग बड़े हर्षसे जिनका नाम श्रवण करते हैं, जिनका स्मरण करते हैं और जिनका अच्छी तरह कीर्तन करते हैं। पढ़ा गया, सुना गया और सदा चिन्तवन किया गया यह स्तोत्र इस लोकमें साक्षात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूपी सम्पत्तिको करता है, मानसिक और शारीरिक सुख प्रदान करता है, शान्ति करता है, पुष्टि करता है, तुष्टि और

१. मुख्यं म.। २. क्रियोल्लालितो ग.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यक्त्वज्ञानचारित्ररत्नत्रयस्याभिसंपत्करं [1]चैत्तशारीरसौख्यप्रदं शान्तिकं पौष्टिकं तुष्टिसंपत्तिसंपादि साक्षादिहामुत्र चानेककल्याणसंप्राप्तिहेतोः प्रपुण्यास्रवस्य स्वयं कारणं वारणं सर्वपापास्रवाणां सहस्रस्य विध्वंसकरणं दारुणस्यापि पूर्वत्र सर्वत्र चानेहसि स्नेहमोहादिभावेन[2] संचितस्यैनसः। स्तोत्रमुख्यं जिनेन्द्रे[3] विधेयादिदं भक्तिभारं परम्।

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ जन्माभिषेके इन्द्रस्तुतिवर्णनो नाम एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥३९॥

□

सम्पत्तिको सम्पन्न करता है तथा परलोकमें अनेक कल्याणोंकी प्राप्तिमें कारणभूत उत्कृष्ट पुण्यास्रवका स्वयं कारण है, समस्त पाप कर्मोंके हजारों प्रकारके आस्रवोंका निवारण करता है और पूर्वभवमें सर्वदा स्नेह तथा मोह आदि भावोंसे संचित भयंकरसे भयंकर पापोंका नाश करता है। यह मुख्य स्तोत्र, जिनेन्द्र भगवान्‌में सातिशय भक्ति उत्पन्न करे।

इस प्रकार अरिष्टनेमिपुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंश पुराणमें जन्माभिषेकके समय इन्द्र द्वारा कृत स्तुतिका वर्णन करनेवाला उनतालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥३९॥

□

१. चैवं म.। २. स्नेहमोदिभावेन म.। ३. जिनेन्द्र ग.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चत्वारिंशः सर्गः

अथ श्रुत्वा जरासन्धो भ्रातुर्वधमसौ मृधे[1] । शोकसिन्धौ निमग्नोऽरिक्रोधपोतेन धारितः ॥१॥
समस्तयदुनाशाय समस्तनयपौरुषः । सोऽभ्यमित्रममीर्गन्तुं मित्रवर्गमजिज्ञपत् ॥२॥
प्रभोस्तस्य समादेशान्नानादेशाधिपा नृपाः । चतुरङ्गबलोत्तुङ्गाः श्रिताः स्वामिहितैषिणः ॥३॥
दत्तप्रयाणमेनं त्वनन्तसैन्याब्धिवर्त्तिनम् । विविदुर्यदुशार्दूलाश्चतुराश्चारचक्षुषः ॥४॥
ततः श्रुतवयोवृद्धा वृष्णिभोजकुलोत्तमाः । कर्त्तुमारेभिरे मन्त्रमिति तत्त्वनिरूपिणः ॥५॥
त्रिखण्डाखण्डिताज्ञोऽन्यैः प्रचण्डश्चण्डशासनः । चक्रखड्गगदादण्डरत्नाद्यस्त्रबलोद्धतः ॥६॥
कृतज्ञः कृतदोषेषु प्रणतेषु कृतक्षमः । [2]अस्मास्वनपकारः प्रागुपकारैकतत्परः ॥७॥
जामातृभ्रातृघातोत्थपराभवरजोमलम् । प्रमार्ष्टुं कोपवानस्मान्मागधोऽभ्येत्य बिभ्यतः ॥८॥
दैवपौरुषसामर्थ्यमस्मदीयमतिस्मयः । प्रकटीभूतमप्येष पश्यन्नपि न पश्यति ॥९॥
कृष्णस्य पुण्यसामर्थ्यं[3] पौरुषं च बलस्य च । बाल्यादारभ्य निःशेषमिदं परमवैभवम् ॥१०॥
नेमितीर्थकरस्यापि देवेन्द्रासनकम्पिनः । प्रभुत्वं च स्फुटीभूतं बालस्यापि जगत्त्रये ॥११॥

अथानन्तर—युद्धमें भाईका वध सुनकर शोकरूपी सागरमें डूबता हुआ जरासन्ध, शत्रुओं-पर उत्पन्न हुए क्रोधरूपी जहाजके द्वारा बचाया गया था। भावार्थ—भाई अपराजितके मरनेसे जरासन्धको जो दुःख हुआ था उससे वह अवश्य ही मर जाता परन्तु शत्रुओंसे बदला लेनेके क्रोधने उसकी रक्षा कर दी ॥१॥ समस्त नय और पराक्रममें निपुण जरासन्धने समस्त यादवोंका नाश करनेके लिए मनमें पक्का विचार कर लिया और निर्भीक हो शत्रुके सम्मुख जानेके लिए मित्रोंके समूहको आज्ञा दे दी ॥२॥ स्वामीकी आज्ञा पाकर उसके हितकी इच्छा करनेवाले नाना देशोंके राजा अपनी-अपनी चतुरंग सेनाओंसे युक्त हो आ पहुँचे ॥३॥ इधर अनन्त सेनारूपी सागरके मध्यमें वर्तमान जरासन्धने जब यादवोंकी ओर प्रयाण किया तब गुप्तचररूपी नेत्रोंको धारण करनेवाले चतुर यादवोंने शीघ्र ही उसका पता चला लिया ॥४॥ तदनन्तर जो शास्त्र और अवस्थामें वृद्ध थे तथा पदार्थका यथार्थ स्वरूप निरूपण करनेवाले थे ऐसे वृष्णिवंश एवं भोजवंशके प्रधान पुरुष इस प्रकार मन्त्र करनेके लिए तत्पर हुए ॥५॥

वे कहने लगे कि तीन खण्डोंमें इसकी आज्ञा अन्य पुरुषोंके द्वारा कभी खण्डित नहीं हुई। यह अत्यन्त उग्र है, इसका शासन भी अत्यन्त उग्र है, चक्र, खड्ग, गदा तथा दण्डरत्न आदि अस्त्रोंके बलसे यह उद्धत है, किये हुए उपकारको माननेवाला है, जो मनुष्य अपराध कर नम्रीभूत हो जाते हैं उनपर यह क्षमा कर देता है, हम लोगोंका इसने पहले कभी अपकार नहीं किया, उपकार करनेमें ही निरन्तर तत्पर रहा है किन्तु अब माता और भाईके वधसे उत्पन्न पराभवरूपी रजके मलको दूर करनेके लिए क्रोधयुक्त हुआ है और भयभीत होते हुए हम लोगोंके सम्मुख आ रहा है ॥६–८॥ यह इतना अहंकारी है कि हम लोगोंकी दैव और पुरुषार्थ सम्बन्धी सामर्थ्यको जो कि अत्यन्त प्रकट है देखता हुआ भी नहीं देख रहा है ॥९॥ कृष्णके पुण्यका सामर्थ्य और बलरामका पौरुष—यह सब परम वैभव बालक अवस्था ही से प्रकट हो रहा है। इन्द्रोंके आसन-को कम्पित कर देनेवाले नेमिनाथ तीर्थंकर यद्यपि इस समय बालक हैं तथापि उनका प्रभुत्व तीनों जगत्में प्रकट हो चुका है। वह यह भी नहीं सोच रहा है कि जिस तीर्थंकरका पालन

१. रणे। २. अस्मास्वनपकारेषु प्रागुपकारतत्परः (म. टि.)। ३. पूर्णं इत्यपि (म. टि.)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यस्यानुपालनव्यग्राः[1] समग्रा लोकपालिनः । तत्तीर्थकृत्कुले को वा मानुषोऽपकरिष्यति ॥१२॥
करेण कः स्पृशेदज्ञः कृशानुमकृशार्चिषम् । तीर्थकृद्बलकृष्णान् वा कोऽभ्येति विजिगीषया ॥१३॥
प्रतिशत्रुरयं राजा जरासन्धोऽस्य हिंसकौ । ध्रुवमत्र समुद्भूतौ रामनारायणाविमौ ॥१४॥
तदत्र यावदापत्य सपक्षः कृष्णपावके । प्रतिशत्रुपतङ्गोऽयं भस्मीभवति न स्वयम् ॥१५॥
तावदाशु वयं शूरं[2] शौरिमस्मद्वशं परम् । विगृह्यासनयोगेन योजयामो जयोन्मुखम् ॥१६॥
स्वीकृत्य वारुणीमाशां कानिचिद्दिवसानि वै । विगृह्यासनमेवं हि कार्यसिद्धिरसंशया ॥१७॥
आसीनानेवमप्यस्मानभ्येति यदि मागधः । रणातिथ्यं प्रकृत्यैनं प्रेषयामो[3] रणप्रियम् ॥१८॥
इति संमन्त्र्य ते मन्त्रं प्रकाश्य कटके स्वके । [4]आनन्दिनीनिनादेन प्रयाणकमजिज्ञपन् ॥१९॥
भेर्यास्तस्या रवं श्रुत्वा चतुरङ्गबलं ततः । यदुभोजकुलक्ष्माभृत्प्रधानमचलद्बलम् ॥२०॥
माथुरैः शौर्यपूर्यश्च वीर्यपूर्यः प्रजास्तदा । समं स्वाम्यनुरागेण स्वयमेव प्रतस्थिरे ॥२१॥
प्रजाः प्रकृतिभिः[5] सर्वाश्चातुर्वर्णाः सधार्मिकाः । प्रस्थानं मेनिरे स्थानादुद्यानक्रीडया समम् ॥२२॥
अष्टादशेति संख्याताः कुलकोट्यः प्रमाणतः । अप्रमाणधनाकीर्णा निर्यान्ति स्म यदुप्रियाः ॥२३॥
प्रशस्ततिथिनक्षत्रयोगवारादिलब्धयः । सुलब्धसुकुला भूपा जग्मुरल्पैः प्रयाणकैः ॥२४॥
देशानुल्लङ्घ्य निःशेषान् प्रतीचीं प्रति गच्छताम् । बभूव विपुलस्तेषामुपान्ते विन्ध्यपर्वतः ॥२५॥
गजकाननरम्यस्य सिंहशार्दूलशालिनः । शृङ्गालीढाम्बरस्यास्य श्रीर्जहार मनो नृणाम् ॥२६॥

करनेके लिए समस्त लोकपाल व्यग्र रहते हैं उस तीर्थंकरके कुलका कौन मनुष्य अपकार कर सकेगा ? ऐसा कौन अज्ञानी है जो बड़ी-बड़ी ज्वालाओंको धारण करनेवाली अग्निका हाथसे स्पर्श करेगा और ऐसा कौन बलवान् है जो जीतनेकी इच्छासे तीर्थंकर, बलभद्र और कृष्णका सामना करेगा ? ॥१०–१३॥ यह राजा जरासन्ध प्रतिनारायण है और इसके मारनेवाले ये बलभद्र तथा नारायण यहाँ निश्चित ही उत्पन्न हो चुके हैं ॥१४॥ इसलिए जबतक यह प्रतिनारायणरूपी पतंग, अपने पक्षों (सहायकों, पक्षमें पंखों) के साथ आकर कृष्णरूपी अग्निमें स्वयं भस्म नहीं हो जाता है तबतक हम लोग शीघ्र ही विग्रहके बाद अन्यत्र आसन ग्रहण कर शूर-वीर कृष्णको विजयके सम्मुख करें। इस समय हम लोगोंको पश्चिम दिशाका आश्रय कर कुछ दिनों तक चुप बैठ रहना उचित है क्योंकि ऐसा करनेसे कार्यकी सिद्धि निःसन्देह होगी ॥१५–१७॥ हम लोग इस तरह शान्तिसे चुप रहेंगे फिर भी यदि जरासन्ध हमारा सामना करेगा तो हम लोग युद्ध द्वारा सत्कार कर उसे यमराजके पास भेज देंगे ॥१८॥ इस प्रकार परस्पर सलाह कर उन्होंने वह मन्त्रणा अपने कटकमें प्रकट की और भेरीके शब्दसे नगरमें प्रस्थान करनेकी आज्ञा दे दी ॥१९॥ भेरीका शब्द सुनकर यादव और भोजवंशी राजाओंकी चतुरंग सेना चल पड़ी ॥२०॥ मथुरा, शौर्यपुर और वीर्यपुरकी प्रजाने स्वामीके अनुरागसे साथ ही प्रस्थान कर दिया ॥२१॥ धर्मात्माजनोंसे युक्त ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि चारों वर्णकी प्रजाने राजा, मन्त्री आदि प्रकृतिके साथ होनेवाले उस प्रस्थानको ऐसा माना जैसे अपने स्थानसे वनक्रीड़ाके लिए ही जा रहे हैं ॥२२॥ उस समय अपरिमित धनसे युक्त अठारह करोड़ यादव शौर्यपुरसे बाहर निकले थे ॥२३॥ उत्तम तिथि, नक्षत्र, योग और वार आदिको प्राप्त हुए वे उच्चकुलीन राजा, छोटे-छोटे पड़ावों द्वारा गमन करते थे ॥२४॥ तदनन्तर अनेक देशोंका उल्लंघन कर जब वे पश्चिम दिशाकी ओर गमन कर रहे थे तो विशाल विन्ध्याचल पर्वत उनके समीपस्थ हुआ अर्थात् क्रमशः गमन करते हुए वे विन्ध्याचलके समीप जा पहुँचे ॥२५॥ जो हाथियोंके वनोंसे सुन्दर था, सिंह और व्याघ्रोंसे

---

१. पालने व्यग्राः म. । २. वसुदेवजं कृष्णम् । ३. रणः प्रियो यस्य तं यममित्यर्थः । ४. भेरीशब्देन । ५. 'स्वाम्यमात्यं सुहृत्कोषराष्ट्रदुर्गबलानि च । राज्याङ्गानि प्रकृतयः पौराणां श्रेणयोऽपि च' ॥ इत्यमरः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुवर्त्म जरासन्धं तत्रायातं निशम्य ते । प्रत्यैक्षन्त महोत्साहा यदवोऽपि युयुत्सवः ॥२७॥
अल्पमन्तरमालोक्य देवताः सेनयोस्तयोः । भरतार्द्धनिवासिन्यः कालदैवनियोगतः ॥२८॥
विकृत्य दिव्यसामर्थ्यादन्तरे चितिकाश्च ताः । अग्निज्वालापरीतांस्तान्[1] दर्शयांचक्रिरेऽरये[2] ॥२९॥
चतुरङ्गबलं तच्च दह्यमानमितस्ततः । पश्यति स्म जरासन्धो ज्वालालीलीढविग्रहम् ॥३०॥
ज्वालारुद्धपथस्तत्र विश्रान्तनिजसाधनः । अपृच्छद्रुदतीमेकां स्थविरीभूय देवताम् ॥३१॥
दह्यते विपुलः कस्य स्कन्धावारोऽयमाकुलः । किमर्थं रोदिषि त्वं च वद वृद्धे ! यथास्थितम् ॥३२॥
इति पृष्टा समाचष्टे तस्मायस्राविलेक्षणा । शोकं निगृह्य कृच्छ्रेण रुद्धे कण्ठेऽपि मन्युना ॥३३॥
वदामि शृणु तेजस्विन् ! यथादृष्टं यतो जनः । निवेद्य महते दुःखान्महतोऽपि विमुच्यते ॥३४॥
अस्ति राजगृहे राजा जरासन्ध इति श्रुतिः । सत्यसन्धः स यः शास्ति सागरान्तां वसुंधराम् ॥३५॥
वाडवार्चिश्छलेनास्य नूनमम्बुनिधावपि । प्रज्वलन्ति द्विषां शान्त्यै प्रतापदहनार्चिषः ॥३६॥
आत्मापराधबाहुल्यात्सशल्यहृदयास्ततः । यादवाः क्वापि संत्रस्ताः प्रयान्तः प्रियजीविताः ॥३७॥
ते काश्यप्यामपश्यन्तः सन्तः सशरणं क्वचित् । प्रविश्य दहनं याताः शरणं मरणं परम् ॥३८॥
कुलक्रमागता तेषां भुजिष्या भूभुजामहम् । स्वामिदुर्मृतिदुःखार्ता रोदिमि प्रियजीविता ॥३९॥

सुशोभित था, और अपनी चोटियोंसे आकाशका चुम्बन कर रहा था ऐसे उस विन्ध्याचलकी शोभाने मनुष्योंका मन हर लिया ॥२६॥ 'मार्गमें पीछे-पीछे जरासन्ध आ रहा है' यह सुनकर अत्यधिक उत्साहसे भरे हुए यादव लोग भी युद्धकी इच्छा करते हुए उसकी प्रतीक्षा करने लगे ॥२७॥ उन दोनोंकी सेनाओंमें थोड़ा अन्तर देखकर समय और भाग्यके नियोगसे अर्धभरत क्षेत्रमें निवास करनेवाली देवियोंने अपने दिव्य सामर्थ्यसे विक्रिया कर बहुत-सी चिताएँ रच दीं और शत्रुके लिए यह दिखा दिया कि यादव लोग अग्निकी ज्वालाओंसे व्याप्त हैं ॥२८-२९॥ जरासन्धने, ज्वालाओंके समूहसे जिसका शरीर व्याप्त था ऐसी जलती हुई चतुरंग सेनाको जहाँ-तहाँ देखा ॥३०॥ ज्वालाओंसे जब जरासन्धका मार्ग रुक गया तब उसने अपनी सेना वहीं ठहरा दी और बुढ़ियाका रूप धरकर रोती हुई एक देवीसे पूछा कि 'हे वृद्धे ! यह किसका विशाल कटक व्याकुल हो जल रहा है ? और तू यहाँ क्यों रो रही है ? सब ठीक-ठीक कह'। उस समय वृद्धाके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त थे तथा उसका कण्ठ यद्यपि शोकसे रुँधा हुआ था तथापि जरासन्धके इस प्रकार पूछनेपर बड़ी कठिनाईसे शोकको रोककर वह कहने लगी ॥३१-३३॥

हे प्रतापी राजन् ! मैंने जो कुछ देखा है वह कहती हूँ क्योंकि यह एक साधारण बात है कि जो मनुष्य महापुरुषके लिए अपना दुःख निवेदन करता है वह बड़े-से-बड़े दुःखसे विमुक्त हो जाता है—छूट जाता है ॥३४॥ राजगृह नगरमें जरासन्ध नामका एक वह सत्यप्रतिज्ञ राजा है जो समुद्रान्त पृथिवीका शासन करता है ॥३५॥ जान पड़ता है कि उसकी प्रतापरूपी अग्निकी ज्वालाएँ शत्रुओंको शान्त करनेके लिए बड़वानलके छलसे समुद्रमें भी देदीप्यमान रहती हैं ॥३६॥ अपने अपराधोंकी बहुलतासे यादव लोग जरासन्धकी ओरसे सदा सशल्यहृदय रहते थे इसलिए उससे भयभीत हो प्राण बचानेके लिए कहीं भाग निकले। परन्तु समस्त पृथिवीमें जब उन्होंने कहीं किसीको शरण देनेवाला नहीं देखा तब वे अग्निमें प्रवेश कर मरणकी ही उत्तम शरणमें जा पहुँचे अर्थात् अग्निमें जलकर निःशल्य हो गये ॥३७-३८॥ मैं उन राजाओंकी वश-परम्परासे चली आयी दासी हूँ। मुझे अपना जीवन प्रिय था इसलिए मैं उनके साथ नहीं जल सकी परन्तु अपने स्वामीके कुमरणके दुःखसे दुःखी होकर रो रही हूँ ॥३९॥ जिनके पीछे जरासन्ध

---

१. परीतास्तान् म. । २. चक्रिरे रये म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यादवाः कौरवा भोजाः प्रजाः प्रकृतिभिः सह । अनुलग्नजरासन्धाः प्रलीना हुतभुग्मुखे ॥४०॥
अहं तु दुःखसंभारनिलयीकृतविग्रहा । सग्रहेव वियोगार्त्ता प्रःणिमि प्राणवल्लभा ॥४१॥
श्रुत्वेति जरतीवाक्यं जरासन्धोऽतिविस्मितः । श्रद्धयान्धकवृष्णीनामन्वयान्तममन्यत ॥४२॥
द्राग् निवृत्य निजं स्थानं सोऽध्यास्य सह बान्धवैः । विपन्नेभ्यो जलं दत्त्वा कृतकृत्य इव स्थितः ॥४३॥
यदवोऽपि ययुः स्वेच्छमुपकण्ठमुदन्वतः । एलावनलतासंगसद्गन्धानिलवीजितम् ॥४४॥
अपरार्णवमासृत्य दूरदेशनिवेशनाः । यथास्वं ते नृपास्तस्थुः प्रजाः प्रकृतयस्तथा ॥४५॥

शार्दूलविक्रीडितम्

पार्ष्णिग्राहितयानुमार्गमघृणो लग्नोऽतिनिर्बन्धतः
संधावन् परनाशमाशु कुपितः कर्त्तुं च मर्त्तुं स्वयम् ।
ज्वालारुद्धपृथो न्यवर्त्तत रिपुर्यद्धन्यसर्वक्रिया-
स्तज्जैनाः कथयन्ति तावदनयोः पुण्योदयः श्रूयताम् ॥४६॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ हरिवंशयादवप्रस्थानवर्णनो नाम चत्वारिंशः सर्गः ॥४०॥

□

लगा हुआ था ऐसे यदुवंशी, कुरुवंशी तथा भोजवंशी राजाओंकी प्रजा अपने मन्त्री आदिके साथ अग्निके मुखमें प्रविष्ट हो चुकी है ॥४०॥ परन्तु मुझ अभागिनीको अपने प्राण प्यारे रहे इसलिए मेरा शरीर दुःखके भारका स्थान हो रहा है तथा उन सबके वियोगसे दुःखी हो मैं पिशाचसे ग्रस्त-की तरह साँसें भर रही हूँ—जी रही हूँ ॥४१॥

वृद्धाके इस प्रकार वचन सुनकर जरासन्ध बहुत विस्मित हुआ और उसके वचनोंका विश्वास कर अन्धकवृष्णियोंके वंशका नाश मानने लगा ॥४२॥ वह उसी समय अपने स्थानपर वापस लौट आया और वहाँ रहकर मृतक जनोंके लिए बन्धुजनोंके साथ जलांजलि देकर कृत-कृत्यकी तरह निश्चिन्ततासे रहने लगा ॥४३॥ उधर यादव लोग भी अपनी इच्छानुसार इलायची-के वनकी लताओंके समागमसे सुगन्धित वायुके द्वारा वीजित समुद्रके तटपर जा पहुँचे ॥४४॥ इस प्रकार पश्चिम समुद्रके पास आकर दूर देशमें ठहरे हुए वे सब राजा, प्रजा तथा मन्त्री आदि लोग यथायोग्य स्थानोंमें स्थित हो गये ॥४५॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि देखो, अत्यन्त निर्दय और कुपित जरासन्ध अत्यधिक हठसे मार्ग-में यादवोंके पीछे लगा और शत्रुका नाश करने तथा स्वयं मरनेके लिए शीघ्र दौड़ा परन्तु ज्वालाओंसे मार्ग रुक जानेके कारण चूँकि लौट आया इसलिए समस्त उत्तम क्रियाओंको करनेवाले जिनेन्द्र भक्त जन कहते हैं कि वह उन दोनोंका पुण्योदय ही श्रवण करने योग्य था। भावार्थ—अपने-अपने पुण्योदयसे ही दोनोंकी रक्षा हुई थी ॥४६॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें हरिवंश और यादवोंके प्रस्थानका वर्णन करनेवाला चालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥४०॥

□

१. क्रियस्त–ग. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकचत्वारिंशः सर्गः

दिदृक्षया ततो याताः क्षत्रियाः क्षुब्धतोयधेः । ते दशार्हमहाभोजविष्णुनेमीश्वरादयः ॥१॥
ततः शीकरिणं मत्तमिव दिक्करिणं मुहुः । झषस्फुरणलीलेषदुन्मीलननिमीलनम् ॥२॥
महत्त्वस्पर्द्धयेवोर्ध्वमूर्मिदोर्मण्डलैश्चलैः । आस्फालयितुमाकाशमाशानुगतमूर्जितम्[1] ॥३॥
घूर्णमानमुदीर्णोग्रमकरग्राहविग्रहम् । [2]मकराकरमैक्षन्त मकरीकरिणीवृतम् ॥४॥
अलब्धपारमुद्युक्तैरप्यनुत्पन्नबुद्धिभिः । अतिगम्भीरतायोगादलङ्घितनिजस्थितिम् ॥५॥
तुङ्गभङ्गतरङ्गोद्यदङ्गपूर्णमहार्णसम् । पुराणमार्गसंपातनदीमुखमनोहरम् ॥६॥
अनर्घ्यात्ममहारत्नमुक्ताकरमनादिकम् । वैपुल्यस्वच्छतासंगादङ्गीकृतनभःश्रियम् ॥७॥

तदनन्तर समुद्रविजय आदि दशार्ह, महाभोज, वृष्णि, कृष्ण तथा नेमिजिनेन्द्र आदि क्षत्रिय लहराते हुए समुद्रको देखनेकी इच्छासे उसके समीप गये ॥१॥ उस समय उस समुद्रमें जहाँ-तहाँ जलके छींटे बिखर रहे थे। उनसे ऐसा जान पड़ता था मानो मदोन्मत्त दिग्गज ही हो और मछलियोंके बार-बार उछलने तथा नीचे आनेकी लीलासे ऐसा जान पड़ता था मानो नेत्रोंको कुछ-कुछ खोल रहा हो और बन्द कर रहा हो ॥२॥ वह समुद्र ऊँची उठती हुई अपनी चंचल तरंगरूपी भुजाओंके समूहसे ऐसा जान पड़ता था मानो विशाल आकाशसे ईर्ष्या कर समस्त दिशाओंसे युक्त आकाशका आस्फालन करनेके लिए ही उद्यत हुआ हो ॥३॥ जो लहरोंसे चारों ओर घूम रहा था, जिसके भीतर बड़े-बड़े भयंकर मगर-मच्छ उछल-कूद कर रहे थे, एवं जो मकरी-रूपी हस्तिनियोंसे घिरा हुआ था ऐसे समुद्रको उन सबने देखा ॥४॥ उस समय वह समुद्र, जिनेन्द्र भगवान्के द्वारा निरूपित शास्त्र-रूपी सागरके समान जान पड़ता था क्योंकि जिस प्रकार बुद्धिहीन मनुष्य उद्योग करनेपर भी जिनेन्द्र-निरूपित शास्त्ररूपी सागरका पार प्राप्त नहीं कर पाते हैं उसी प्रकार बुद्धिहीन (नौकानिर्माण आदिकी बुद्धिसे रहित) मनुष्य उद्यम करनेपर भी उस समुद्रका पार नहीं प्राप्त कर पा रहे थे। जिस प्रकार जिनेन्द्र-निरूपित शास्त्ररूपी सागरकी अपनी स्थिति, अत्यन्त गम्भीरताके योगसे अलंघित है अर्थात् उसका कोई उल्लंघन नहीं कर सकता है उसी प्रकार उस समुद्रकी अपनी स्थिति भी अत्यधिक गम्भीरता—गहराईके योगसे अलंघित थी अर्थात् उसे लाँघकर कोई नहीं जा सकता था। जिस प्रकार जिनेन्द्र-निरूपित शास्त्ररूपी सागर, उत्कृष्ट भंगरूपी तरंगोंसे युक्त अंग—द्वादशांगरूपी महाजलसे युक्त है उसी प्रकार वह समुद्र भी ज्वारभाटा, तरंग तथा फेन आदि उठते हुए अंगोंसे पूर्ण महाजलसे युक्त था। जिस प्रकार जिनेन्द्र-निरूपित शास्त्ररूपी सागर पुराणोंमें निरूपित नाना मार्गोंके समूहरूपी नदियोंके अग्रभागसे मनोहर है उसी प्रकार वह समुद्र भी पुराण—जीर्ण-शीर्ण मार्गको बहाकर लानेवाले नदियोंके अग्रभागसे मनोहर था अर्थात् उसमें अनेक नदियाँ आकर मिल रही थीं। जिस प्रकार जिनेन्द्र-निरूपित शास्त्ररूपी सागर सर्वश्रेष्ठ आत्मद्रव्य, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूपी महारत्न तथा मुक्त जीवरूपी मुक्ताफलोंका आकर—खान है उसी प्रकार वह समुद्र भी अमूल्य—श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त बड़े-बड़े रत्न तथा मुक्ताफलोंका आकर—खान था; जिस प्रकार जिनेन्द्र-निरूपित शास्त्ररूपी सागर अनादिक है—अर्थ सामान्यकी दृष्टिसे अनादि है

---

१. वर्जितम् क.। २. मकराकार म.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मान्तःस्थापितानन्तजीवरक्षादृढव्रतम् । अलङ्घितपदं सर्वैर्वादिभिर्विजिगीषुभिः ॥८॥
निरस्यन्तमनन्तानुबन्धितापमुपाश्रिताम्[1] । मुखेन स्पर्शनेनापि स्वावगाहेन किं पुनः ॥९॥
निशम्यार्णवमुद्गीर्णमिव शास्त्रार्णवं जिनैः । पिप्रिये राजकं राजदाकीर्णकुसुमाञ्जलिः ॥१०॥
नेमिनाथागमोद्भूतसंमदेनेव भूरिणा । नृत्यन्निवोर्मिदोर्वार्द्धिर्बभौ शङ्खस्वनोद्धुरः ॥११॥
प्रवालमौक्तिकैरर्घ्यं स्वतरङ्गकरैः किरन् । स्वागतं व्याजहारेव हरये मुखरोम्बुधिः ॥१२॥
युगप्रधानमम्भोधिर्बलं वीक्ष्य झषेक्षणः । अम्भःस्थलैः समुद्यद्भिरभ्युत्तिष्ठन्निवाबभौ ॥१३॥
समुद्रविजयाक्षोभ्यभोजादिविषयां मुदम् । आविष्कुर्वन्निवाभात्स्वां समुद्रः फेनमण्डलैः ॥१४॥

उसी प्रकार वह समुद्र भी *अनादिक—असदृश जलसे युक्त है। जिस प्रकार जिनेन्द्र-निरूपित शास्त्ररूपी सागर विशालता और निर्दोषताके संयोगसे आकाशकी लक्ष्मीको स्वीकृत करता है—आकाशके समान जान पड़ता है उसी प्रकार वह समुद्र भी अपने विस्तार और स्वच्छताके कारण आकाशकी लक्ष्मीको स्वीकृत कर रहा था। जिस प्रकार जिनेन्द्र-निरूपित शास्त्ररूपी सागर अपने भीतर अनन्त जीवोंकी रक्षारूप दृढ़ व्रतको धारण करता है अर्थात् अनन्त जीवोंकी रक्षा-रूप सुदृढ़ व्रतको धारण करनेका उपदेश देता है उसी प्रकार वह समुद्र भी अपने भीतर रहनेवाले अनन्त जीवोंकी रक्षारूप दृढ़व्रतको धारण करता था—अपने भीतर रहनेवाले अनन्त जीवोंकी रक्षा करता था। जिस प्रकार जिनेन्द्र-निरूपित शास्त्ररूपी सागर, विजयकी इच्छा रखनेवाले समस्त वादियोंके द्वारा अलंघित पद है अर्थात् समस्त वादी उसके एक पदका भी खण्डन नहीं कर सकते हैं उसी प्रकार वह समुद्र भी बक-झक करनेवाले समस्त विजयाभिलाषी लोगोंके द्वारा अलंघित पद था अर्थात् उसके एक स्थानका भी कोई उल्लंघन नहीं कर सकता था। जिस प्रकार जिनेन्द्र-निरूपित शास्त्ररूपी सागर अपने मुख अथवा स्पर्शसे ही शरणागत मनुष्योंके अनन्तानुबन्धी सम्बन्धी सन्तापको दूर करता है फिर अपने अवगाहन, मनन, चिन्तन आदिके द्वारा तो कहना ही क्या है? उसी प्रकार वह समुद्र भी अपने अग्रभाग अथवा स्पर्शसे ही समीपमें आये हुए मनुष्योंके अगणित एवं सन्ततिबद्ध सन्तापको दूर करता था फिर अपने अवगाहनकी तो बात ही क्या थी? इस प्रकार जिनेन्द्र भगवान्के द्वारा निरूपित शास्त्र-रूपी सागरके समान उस समुद्रको देखकर वह राजाओंका समूह अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उस समय वह समुद्र बिखरी हुई पुष्पांजलियोंसे सुशोभित हो रहा था, तरंगोंसे लहरा रहा था और शंखोंके शब्दसे व्याप्त था। इसलिए ऐसा जान पड़ता था मानो भगवान् नेमिनाथके आगमनसे उत्पन्न अत्यधिक हर्षसे ही उसने पुष्पांजलियाँ बिखेरी हों, तरंगरूपी भुजाओंको ऊपर उठाकर वह नृत्य कर रहा हो और शंखध्वनिके बहाने हर्षध्वनि कर रहा हो ॥५–११॥ वह अपने तरंगरूपी हाथोंके द्वारा मूँगा और मोतियोंका अर्घ्य बिखेर रहा था तथा गर्जनासे मुखर होनेके कारण मानो कृष्णके लिए स्वागत शब्दका उच्चारण ही कर रहा हो ॥१२॥ उस समुद्रमें मछलियाँ उछल रही थीं उससे ऐसा जान पड़ता था मानो वह मछलियाँरूपी नेत्रोंसे युगके प्रधान श्री बलदेवको देखकर उछलते हुए जलसे उठकर उनका सत्कार ही कर रहा हो ॥१३॥ समुद्रमें जो फेनोंके समूह उठ रहे थे उनसे ऐसा जान पड़ता था मानो समुद्रविजय, अक्षोभ्य तथा भोजक वृष्णि आदि राजाओंको देख उनके निमित्तसे होनेवाले अपने हर्षको ही प्रकट कर रहा हो ॥१४॥

१. –मुपाश्रितम् म.।

* न विद्यते आदिः सदृशो यस्य तत् अनादि, तथाभूतं कं जलं यस्मिन् सः अनादिकः तम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ततस्तिथौ प्रशस्तायां कृतमङ्गलसंनिधिः । कृष्णः स्थानेप्सया चक्रे सबलोऽष्टमभक्तकम् ॥१५॥
दभशय्याश्रिते तस्मिन् कृतपञ्चगुरुस्तवे । नियमस्थितया धीरे समुद्रस्य तटे स्थिते ॥१६॥
गोतमाख्यः सुरो वार्द्धिं सौधर्मेन्द्रनिदेशतः । न्यवर्तयदरं शक्तः कृतकालान्तरस्थितिम् ॥१७॥
वासुदेवस्य पुण्येन भक्त्या तीर्थकरस्य च । सद्यो द्वारवतीं चक्रे कुबेरः परमां पुरीम् ॥१८॥
नगरी द्वादशायामा नवयोजनविस्तृतिः । वज्रप्राकारवलया समुद्रपरिखावृता ॥१९॥
रत्नकाञ्चननिर्माणैः प्रासादैर्बहुभूमिकैः । रुन्धाना गगनं रेजे साऽलकेव दिवश्च्युता ॥२०॥
वापीपुष्करिणीदीर्घदीर्घिकासरसीह्रदैः । पद्मोत्पलादिसंछन्नैरक्षया स्वादुवारिभिः ॥२१॥
भास्वत्कल्पलतारूढकल्पवृक्षोपशोभितैः । नागवल्लीलवङ्गादिपूगादीनां च सद्वनैः ॥२२॥
प्रासादाः संगतास्तस्यां हेमप्राकारगोपुराः । सर्वत्र सुखदा रेजुर्विचित्रमणिकुट्टिमाः ॥२३॥
रथ्याभिरभिरामान्तःप्रपाभिश्च सदादिभिः[1] । राज्ञां सर्वप्रजानां च वासयोग्या व्यराजत ॥२४॥
सर्वरत्नमयैस्तुङ्गैर्जिनेन्द्रभवनैरसौ । प्राकारतोरणोपेतै रेजे सोपवनैः पुरी ॥२५॥
आग्नेयादिषु मध्येऽस्या दिक्षु प्रासादपङ्क्तयः । समुद्रविजयादीनां दशानां क्रमतो बभुः ॥२६॥
तन्मध्ये सर्वतोभद्रः कल्पवृक्षलतावृतः । प्रासादः केशवस्याभात्तदाष्टादशभूमिकः ॥२७॥
अन्तःपुरसुतादीनां योग्याः प्रासादमालिकाः । शौरिसौधमुपाश्रित्य परितोऽतिबभासिरे ॥२८॥

तदनन्तर किसी प्रशस्त तिथिमें मंगलाचारकी विधिको जाननेवाले कृष्णने अपने बड़े भाई बलदेवके साथ स्थान प्राप्त करनेकी अभिलाषासे अष्टमभक्त अर्थात् तीन दिनका उपवास किया ॥१५॥ तत्पश्चात् पंचपरमेष्ठियोंका स्तवन करनेवाले धीर-वीर कृष्ण, जब समुद्रके तटपर नियमोंमें स्थित होनेके कारण डाभकी शय्यापर उपस्थित थे तब सौधर्मेन्द्रकी आज्ञासे गोतम नामक शक्तिशाली देवने आकर समुद्रको शीघ्र ही दूर हटा दिया। वह समुद्र वहाँ कालान्तरमें आकर स्थित हो गया था ॥१६-१७॥ तदनन्तर श्रीकृष्णके पुण्य और श्री नेमिनाथ तीर्थंकरकी सातिशय भक्तिसे कुबेरने वहाँ शीघ्र ही द्वारिका नामकी उत्तम पुरीकी रचना कर दी ॥१८॥ वह नगरी बारह योजन लम्बी, नौ योजन चौड़ी, वज्रमय कोटके घेरासे युक्त तथा समुद्ररूपी परिखासे घिरी हुई थी ॥१९॥ रत्न और स्वर्णसे निर्मित अनेक खण्डोंके बड़े-बड़े महलोंसे आकाशको रोकती हुई वह द्वारिकापुरी आकाशसे च्युत अलकापुरीके समान सुशोभित हो रही थी ॥२०॥ कमल तथा नीलोत्पलों आदिसे आच्छादित, स्वादिष्ट जलसे युक्त वापी, पुष्करिणी, बड़ी-बड़ी वापिकाएँ, सरोवर और ह्रदोंसे युक्त थी ॥२१॥ देदीप्यमान कल्पलताओंसे आलिंगित कल्पवृक्षोंके समान सुशोभित पान-लौंग तथा सुपारी आदिके उत्तमोत्तम वनोंसे सहित थी ॥२२॥ वहाँ सुवर्णमय प्राकार और गोपुरोंसे युक्त बड़े-बड़े महल विद्यमान थे तथा सभी स्थानोंपर सुख देनेवाले रंग-बिरंगे मणिमय फर्श शोभायमान थे ॥२३॥ जिनके बीच-बीचमें प्याऊ तथा सदावर्त आदिका प्रबन्ध था ऐसी लम्बी-चौड़ी सड़कोंसे वह नगरी बहुत सुन्दर जान पड़ती थी तथा वह राजाओं और समस्त प्रजाके निवासके योग्य सुशोभित थी ॥२४॥ सब प्रकारके रत्नोंसे निर्मित प्राकार और तोरणोंसे युक्त एवं बाग-बगीचोंसे सहित ऊँचे-ऊँचे जिनमन्दिरोंसे वह नगरी अत्यधिक सुशोभित हो रही थी ॥२५॥ इस नगरीके बीचोंबीच आग्नेय आदि दिशाओंमें समुद्रविजय आदि दशों भाइयोंके क्रमसे महल सुशोभित हो रहे थे ॥२६॥ उन सब महलोंके बीचमें कल्पवृक्ष और लताओंसे आवृत, अठारह खण्डोंसे युक्त श्रीकृष्णका सर्वतोभद्र नामका महल सुशोभित हो रहा था ॥२७॥ अन्तःपुर तथा पुत्र आदिके योग्य महलोंकी पंक्तियाँ श्रीकृष्णके भवनका

---

१. –रभिरामाभिः क. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वान्तःपुरगृहालीभिः प्रासादः परिवारितः । शुशुभे बलदेवस्य वाप्युद्यानादिभूषितः ॥२९॥
तत्प्रासादपुरःशक्रसभामण्डपसन्निभः । श्रीसभामण्डपोऽभासीन्मार्तण्डकरखण्डनः ॥३०॥
उग्रसेनादिभूपानां योग्या भवनकोटयः । [1]साष्टकक्षान्तरास्तत्र सर्वेषामपि रेजिरे ॥३१॥
अशक्यवर्णनां दिव्यां बहुद्वारवतीं पुरीम् । निर्माय वासुदेवाय [2]राजराजो न्यवेदयत् ॥३२॥
किरीटं वरहारं च कौस्तुभं पीतवाससी । भूषानक्षत्रमालादि वस्तु लोके सुदुर्लभम् ॥३३॥
गदां कुमुद्वतीं शक्तिं खड्गं नन्दकसंज्ञकम् । शार्ङ्गं धनुश्च तूणीरयुग्मं वज्रमयान् शरान् ॥३४॥
सर्वायुधयुतं दिव्यं रथं सगरुडध्वजम् । चामराणि सितच्छत्रं हरये धनदो ददौ ॥३५॥
मेचकं वस्त्रयुगलं मालां च मुकुटं गदाम् । लाङ्गलं मुसलं चापं सशरं शरधिद्वयम् ॥३६॥
रथं दिव्यास्त्रसंपूर्णमुच्चैस्तालध्वजोर्जितम् । कुबेरः कामपालाय[3] ददौ छत्रादिभिः सह ॥३७॥
भ्रातरोऽपि दशार्हास्ते वस्त्राभरणपूर्वकैः । संप्राप्तपूजनास्तेन भोजाद्याश्च नृपाः कृताः ॥३८॥
तीर्थकृत्पुनरन्यूनैर्वयोयोग्यैः सुवस्तुभिः । प्राज्यैः पूजनमेवासौ किं तत्र बहुवर्णनैः ॥३९॥
प्रविशन्तु पुरीं सर्वे भवन्त इति रैपतिः[4] । तानुक्त्वा पूर्णभद्रं च संदिश्यान्तर्हितः क्षणात् ॥४०॥
ततो यादवसङ्घास्तावभिषिच्याम्बुधेस्तटे । जयशब्देन संघुष्य हृष्टा हलगदाधरौ ॥४१॥
विविशुर्द्वारिकां भूत्या चतुरङ्गबलान्विताः । सप्रजाः कृतपुण्यास्ते प्राप्तां दिवमिव स्वयम् ॥४२॥
पूर्णभद्रोपदिष्टेषु भद्रेषु भवनेष्वमी । [5]यथायथं सुखं तस्थुः प्रजाश्च निजसंस्थया ॥४३॥

आश्रय कर चारों ओर सुशोभित हो रही थीं ॥२८॥ अन्तःपुरके घरोंकी पंक्तियोंसे घिरा एवं वापिका तथा बगीचा आदिसे विभूषित बलदेवका भवन सुशोभित हो रहा था ॥२९॥ बलदेवके महलके आगे एक सभामण्डप सुशोभित था जो इन्द्रके सभामण्डपके समान था और अपनी दीप्तिसे सूर्यकी किरणोंका खण्डन करनेवाला था ॥३०॥ उस नगरीमें उग्रसेन आदि सभी राजाओंके योग्य महलोंकी पंक्तियाँ सुशोभित थीं जो आठ-आठ खण्डकी थीं ॥३१॥ जिसका वर्णन करना शक्य नहीं था तथा जो अनेक द्वारोंसे युक्त थी ऐसी सुन्दर नगरीकी रचना कर कुबेरने श्रीकृष्णसे निवेदन किया अर्थात् नगरी रची जानेकी सूचना श्रीकृष्णको दी ॥३२॥ उसी समय कुबेरने श्रीकृष्णके लिए मुकुट, उत्तम हार, कौस्तुभमणि, दो पीत-वस्त्र, लोकमें अत्यन्त दुर्लभ नक्षत्रमाला आदि आभूषण, कुमुद्वती नामकी गदा, शक्ति, नन्दक नामका खड्ग, शार्ङ्ग नामका धनुष, दो तरकश, वज्रमय बाण, सब प्रकारके शस्त्रोंसे युक्त एवं गरुड़की ध्वजासे युक्त दिव्य रथ, चमर और श्वेत छत्र प्रदान किये ॥३३-३५॥ साथ ही बलदेवके लिए दो नील-वस्त्र, माला, मुकुट, गदा, हल, मुसल, धनुष-बाणोंसे युक्त दो तरकश, दिव्य अस्त्रोंसे परिपूर्ण एवं तालकी ऊँची ध्वजासे सबल रथ और छत्र आदि दिये ॥३६-३७॥ समुद्रविजय आदि दसों भाई तथा भोज आदि राजाओंका भी कुबेरने वस्त्र, आभरण आदिके द्वारा खूब सत्कार किया ॥३८॥ श्री नेमिनाथ तीर्थंकर अपनी अवस्थाके योग्य उत्तमोत्तम वस्तुओंके द्वारा पूजाको प्राप्त हुए ही थे। इस विषयका अधिक वर्णन करनेसे क्या प्रयोजन है? ॥३९॥ 'आप सब लोग नगरीमें प्रवेश करें' इस प्रकार सबसे कहकर और पूर्णभद्र नामक यक्षको सन्देश देकर कुबेर क्षणभरमें अन्तर्हित हो गया ॥४०॥

तदनन्तर यादवोंके संघने समुद्रके तटपर श्रीकृष्ण और बलदेवका अभिषेक कर हर्षित हो उनकी जयजयकार घोषित की ॥४१॥ तत्पश्चात् जिन्होंने पुण्यका संचय किया था ऐसे श्रीकृष्ण आदिने चतुरंग सेना और समस्त प्रजाके साथ, प्राप्त हुए स्वर्गके समान उस द्वारिकापुरीमें बड़े वैभवसे प्रवेश किया ॥४२॥ पूर्णभद्र यक्षके द्वारा बतलाये हुए मंगलमय भवनोंमें प्रजाके

१. अष्टखगाः (ग. टि.)। २. कुबेरः। ३. बलभद्राय। ४. कुबेरः। ५. यथा स्वेच्छं म.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माथुराः सौर्यजा[1] [2]वीर्यपुरपौराः पुरा यथा । यथास्वं [3]कृतसंकेतसंनिवेशा ययुर्धृतिम् ॥४४॥
पुर्यामर्धचतुर्थानि दिनानि धनदाज्ञया । यक्षा ववृषुरक्षीणधनधान्यादि धामसु ॥४५॥
तत्र स्थितस्य कृष्णस्य प्रतापेन वशीकृताः । अपरान्तिकभूपालाः शासनं प्रतिपेदिरे ॥४६॥
बहुराजसहस्राणां तनयाः स सहस्रशः । परिणीय ततो रेमे यथेष्टं द्वारिकापतिः ॥४७॥
तत्र नेमिकुमारोऽपि कुमार इव चन्द्रमाः । संवर्धते स्म निःशेषकलानिलयविग्रहाः ॥४८॥
दशार्हवदनाम्भोजविकासकरणोदयः । बालभानुर्बभासेऽसौ ज्योतिर्धूततमस्तरः ॥४९॥
रामदामोदरानन्दं प्रत्यहं प्रतिवर्धयन् । चकार क्रीडितं बाल्ये पौरनेत्रमनोहरम् ॥५०॥
समस्तयदुपत्नीनां करात्करमितस्ततः । अलंकुर्वन्नलंरूपी स ययौ यौवनोदयम् ॥५१॥
प्रव्यक्तलक्षणे तत्र यूनि श्यामाम्बुजेक्षणे । विश्रान्तदृष्टिमन्यत्र नेतुं शेकुर्न योषितः ॥५२॥
जिनरूपशरो दूराज्जगतो हृदयस्थलीम् । बिभेद न पुनर्जैनीं पररूपशरायतिः ॥५३॥
नोपमा जिनरूपस्य नोपमेयं क्षितौ यतः । उपमानोपमेयार्थं खिद्यते स्म हरिस्ततः ॥५४॥
स्वान्तरङ्गजनैर्जातु क्रियमाणासु केलिषु । स्वविवाहकथास्वीशः स्मेरास्यो लज्जते स्वयम् ॥५५॥
बोधत्रयाम्बुनिर्धूतमोहनीयकलङ्कजम् । न तस्य भूतिधूलीभिर्धूसरीकृतमान्तरम् ॥५६॥

सब लोग अपने परिवारके साथ यथायोग्य सुखसे ठहर गये ॥४३॥ मथुरा, सूर्यपुर और वीर्यपुरके निवासी लोग अपने-अपने मोहल्लोंके पूर्व-जैसे ही नाम रखकर यथायोग्य सन्तोषको प्राप्त हुए ॥४४॥ कुबेरकी आज्ञासे यक्षोंने इस नगरीके समस्त भवनोंमें साढ़े तीन दिन तक अटूट धन-धान्यादिकी वर्षा की थी ॥४५॥ जब श्रीकृष्ण वहाँ रहने लगे तब उनके प्रतापसे वशीभूत हो पश्चिमके राजा उनकी आज्ञा मानने लगे ॥४६॥ तदनन्तर द्वारिकापुरीके स्वामी श्रीकृष्ण अनेक राजाओंकी हजारों कन्याओंके साथ विवाह कर वहाँ इच्छानुसार क्रीड़ा करने लगे ॥४७॥

जिनका शरीर समस्त कलाओंका स्थान था ऐसे नेमिकुमार भी वहाँ बालचन्द्रमाके समान दिनों-दिन बढ़ने लगे ॥४८॥ जिनका उदय यादवोंके मुख-कमलको विकसित करनेवाला था, एवं जिन्होंने अपनी ज्योतिसे अन्धकारके समूहको नष्ट कर दिया ऐसे नेमिकुमाररूपी बालसूर्य अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥४९॥ प्रतिदिन बलभ और श्रीकृष्णके आनन्दको बढ़ाते हुए नेमिकुमार बाल्य अवस्थामें नगरनिवासी लोगोंके नेत्र और मनको हरण करनेवाली क्रीड़ा करते थे ॥५०॥ अतिशय रूपके धारक भगवान् नेमिनाथ जहाँ-तहाँ समस्त यादवोंकी स्त्रियोंके एक हाथसे दूसरे हाथको सुशोभित करते हुए यौवन अवस्थाको प्राप्त हुए ॥५१॥ जिनके शरीरमें अनेक शुभ लक्षण प्रकट थे, तथा जिनके नेत्र नील कमलके समान थे ऐसे युवा नेमिकुमारपर लगी दृष्टिको स्त्रियाँ दूसरी जगह ले जानेमें समर्थ न हो सकीं ॥५२॥ भगवान्के रूपरूपी बाणने दूरसे ही जगत्के जीवोंकी हृदयस्थलीको भेद दिया था परन्तु उनकी हृदयस्थलीको दूसरोंका रूपरूपी बाणोंका समूह नहीं भेद सका था। भावार्थ—यौवन प्रकट होनेपर भी भगवान्के हृदयमें कामकी बाधा उत्पन्न नहीं हुई थी ॥५३॥ चूँकि पृथिवीतलपर भगवान्के रूपकी न उपमा थी न उपमेय ही था इसलिए भगवान्के रूपके विषयमें उपमान और उपमेयके लिए इन्द्रको खेद-खिन्न होना पड़ा ॥५४॥ क्रीड़ाओंके समय अपने कुटुम्बी जनोंके द्वारा अपने विवाहकी चर्चा की जानेपर नेमिजिनेन्द्र मन्द-मन्द मुसकराते हुए स्वयं लज्जित हो उठते थे ॥५५॥ तीन ज्ञानरूपी जलके द्वारा जिसके भीतरका मोहरूपी कलंक धुल गया था ऐसा भगवान्का अन्तःकरण वैभव-रूपी धूलसे धूसर नहीं हुआ ॥५६॥

---

१. सौरजा म., ग. । २. वीरपुर म., ग. । ३. पूर्वपूर्वस्वनाम्ना (ग. टि.) ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शालिनीच्छन्दः

[1]जैनैर्वा[2]ष्णैर्वैष्णवैर्बालभद्रैश्चन्द्रालोकप्राकटैः सद्गुणौघैः ।
[5]स्पृष्टात्यर्थं हृष्टलोकोर्मिरामाद्वेलेवाब्धेर्द्वारिका द्वारकान्ता[6] ॥५७॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ द्वारवतीनिवेशवर्णनो नाम एकचत्वारिंशः सर्गः ॥३५॥

□

गौतम स्वामी कहते हैं कि जो नेमिजिनेन्द्र, भोजक वृष्णि, कृष्ण और बलभद्रके उत्तम गुणोंके समूहरूपी प्रकट चाँदनीसे स्पृष्ट थी, जिसमें हर्षसे भरे लोग तरंगोंके समान उछल रहे थे तथा जो द्वारोंसे सुन्दर थी ऐसी द्वारिकापुरी समुद्रकी वेलाके समान अत्यधिक सुशोभित हो रही थी ॥५७॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंश पुराणमें द्वारिकापुरीका वर्णन करनेवाला इकतालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥४१॥

□

१. नेमिजिनसंबन्धिभिः । २. वृष्णीनामिमे वार्ष्णास्तैः । ३. विष्णोरिमे वैष्णवास्तैः श्रीकृष्णसंबन्धिभिः । ४. बलभद्रस्येमे बालभद्रास्तैः । ५. स्पष्टात्यर्थं म. । ६. द्वारैः कान्ता मनोहरा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वाचत्वारिंशः सर्गः

अथ सभ्यसमाकीर्णामन्यदा यादवीं सभाम् । आजगाम नभोगामी नारदो नभसो मुनिः ॥१॥
आपिशङ्गजटाभारश्मश्रुकूर्चः शशिद्युतिः । विद्युद्वलयविद्योतिशारदाम्बुधरोपमः ॥२॥
विचित्रवर्णविस्तीर्णयोगपट्टविभूषितः । परिवेषवतो बिभ्रदौषधीशस्य विभ्रमम् ॥३॥
[1]चलद्दुकूलकौपीनपरिधानपरिच्युतः । दिवोऽनुग्रहबुद्ध्येव जगतः कल्पपादपः ॥४॥
देहस्थितेन शुद्धेन त्रिगुणेनोज्ज्वलीकृतः । यज्ञोपवीतसूत्रेण स रत्नत्रितयेन वा ॥५॥
असाधारणरूपेण गौरवाधानहेतुना । नैष्ठिकब्रह्मचर्येण पाण्डित्येनेव मण्डितः ॥६॥
शुद्धप्रकृतिरत्यन्तमरिषड्वर्गवर्जितः । राज्योदय इवोदारो राजलोकस्य पूजितः ॥७॥
द्वारिकाविभवालोकस्वशिरःकम्पविग्रहम् । तेऽवतीर्णं तमालोक्य सहसोत्थाय पार्थिवाः[2] ॥८॥
नमस्यासनदानादि सोपचारेण सक्रमम् । पूजयन्ति स्म संमानमात्रेण परितोषिणम् ॥९॥
जिनकृष्णबलालोकसंभाषणसुखामृतम् । पीत्वाप्यतृप्तनेत्रस्तमध्यतिष्ठत्सभार्णवम् ॥१०॥
पूर्वापरविदेहानां जिनेन्द्राणां कथामृतैः । समेरुवन्दनोदन्तैर्मनोऽमीषामतर्पयत् ॥११॥

अथानन्तर किसी समय आकाशमें गमन करनेवाले नारद मुनि आकाशसे उतरकर सभासदोंसे भरी हुई यादवोंकी सभामें आये ॥१॥ उन नारदजीकी जटाएँ, दाढ़ी और मूँछ कुछ-कुछ पीले रंगकी थीं तथा वे स्वयं चन्द्रमाके समान शुक्ल कान्तिके धारक थे इसलिए बिजलियोंके समूहसे सुशोभित शरद् ऋतुके मेघके समान जान पड़ते थे ॥२॥ वे रंग-बिरंगे एक विस्तृत योग-पट्टसे विभूषित थे इसलिए परिवेष (मण्डल) से युक्त चन्द्रमाकी शोभा धारण कर रहे थे ॥३॥ उनका कौपीन और चद्दर हवासे मन्द-मन्द हिल रहा था इसलिए वे उनसे ऐसे जान पड़ते थे मानो जगत्का उपकार करनेकी इच्छासे आकाशसे कल्प वृक्ष ही नीचे आ गिरा हो ॥४॥ वे अपने शरीरपर स्थित तीन लरके उस शुद्ध यज्ञोपवीत सूत्रसे अत्यन्त उज्ज्वल थे जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीन गुणोंके समान जान पड़ता था ॥५॥ वे जिस प्रकार असाधारण पाण्डित्यसे सुशोभित थे उसी प्रकार गौरवकी उत्पत्तिके असाधारण कारणरूप नैष्ठिक ब्रह्मचर्यसे सुशोभित थे ॥६॥ वे राजाओंके उत्कृष्ट राज्योदयके समान समस्त राजाओंके पूजनीय थे क्योंकि जिस प्रकार राज्योदय शुद्धप्रकृति अर्थात् भ्रष्टाचार-रहित मन्त्री आदि प्रकृतिसे सहित होता है उसी प्रकार नारद भी शुद्धप्रकृति अर्थात् निर्दोष स्वभावके धारक थे और राज्योदय जिस प्रकार शत्रुओंके षड्वर्गसे रहित होता है उसी प्रकार नारद भी काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य इन छह अन्तरंग शत्रुओंसे रहित थे ॥७॥ द्वारिकाका वैभव देख, आश्चर्यसे जिनका शिर तथा शरीर कम्पित हो रहा था ऐसे नारदजीको आकाशसे नीचे उतरते देख सब राजा लोग सहसा उठकर खड़े हो गये ॥८॥ सम्मान मात्रसे सन्तुष्ट हो जानेवाले नारदजीको सबने नमस्कार तथा आसन-दान आदि उपचारोंसे क्रमपूर्वक सम्मान किया ॥९॥ श्री नेमिजिनेन्द्र, कृष्ण नारायण और बलभद्रके दर्शन तथा सम्भाषणसे उत्पन्न सुखरूपी अमृतका पान करके भी जिनके नेत्र तृप्त नहीं हुए थे ऐसे नारद मुनि सभारूप सागरके मध्यमें अधिष्ठित हुए—विराजमान हुए ॥९-१०॥ तत्पश्चात् नारदने पूर्व-पश्चिम विदेह क्षेत्रमें उत्पन्न तीर्थंकरोंकी

---

१. चलद्दुकूलकौपीनपरिधानपरिच्युतः ग., घ. ङ., म. । २. पार्थिवः म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तावेऽत्र गणिज्येष्ठं श्रेणिकोऽपृच्छदित्यसौ । क एष नारदो नाथ ! कुतो वाऽस्य समुद्भवः ॥१२॥
गण्युवाच वचो गण्यः शृणु श्रेणिक मण्यते । उत्पत्तिरन्त्यदेहस्य[1] नारदस्य स्थितिस्तथा ॥१३॥
आसीत्सौर्यपुरस्यान्ते दक्षिणे तापसाश्रमः । वसन्ति तापसास्तस्मिन् फलमूलादिवृत्तयः ॥१४॥
सुमित्रस्तापसस्तत्र स सोमयशसि स्त्रियाम् । उञ्छवृत्तिः शशिच्छायं पुत्रमेकमजीजनत् ॥१५॥
तमुत्तानशयं यावत्तौ संस्थाय तरोरधः । उञ्छवृत्त्यर्थमायातौ नगरं क्षुत्पिपासितौ ॥१६॥
संक्रीडमानमेकान्ते तावत्तं जृम्भकामराः । दृष्ट्वा पूर्वभवस्नेहान्नीत्वा वैताढ्यपर्वतम् ॥१७॥
मणिकाञ्चनसंज्ञायां गुहायां तत्र तं शिशुम् । कल्पवृक्षसमुद्भूतैर्दिव्याहारैरवर्द्धयन् ॥१८॥
स्वेष्टायं तेऽष्टवर्षाय सरहस्यं जिनागमम् । देवास्तस्मै ददुस्तुष्टा विद्यां चाकाशगामिनीम् ॥१९॥
नारदो बहुविद्योऽसौ नानाशास्त्रविशारदः । संयमासंयमं लेभे साधुः साधुनिषेवया ॥२०॥
कन्दर्पस्य विजेतापि कन्दर्पनिभविभ्रमः । [2]सकन्दर्पप्रियो हासलीलोऽभूल्लोभवर्जितः ॥२१॥
अन्त्यदेहः प्रकृत्यैव निःकषायोऽप्यसौ क्षितौ । रणप्रेक्षाप्रियः प्रायो जातो जल्पाकमास्करः[3] ॥२२॥
जिनजन्माभिषेकादिमहातिशयदर्शने । कुतूहलितया लोकं परिभ्रमति विभ्रमी ॥२३॥

कथारूप अमृतसे तथा मेरु पर्वतकी वन्दनाके समाचारोंसे उन सबके मनको सन्तुष्ट किया ॥११॥

इसी अवसरमें राजा श्रेणिकने गौतम गणधरसे पूछा कि हे नाथ ! यह नारद कौन है ? और इसकी उत्पत्ति किससे हुई है ? इसके उत्तरमें पूज्य गणधर देव कहने लगे कि हे श्रेणिक ! चरमशरीरी नारदकी उत्पत्ति तथा स्थिति कहता हूँ सो श्रवण कर ॥१२-१३॥

सौर्यपुरके पास दक्षिण दिशामें एक तापसोंका आश्रम था उसमें फल-मूल आदिका भोजन करनेवाले अनेक तापस रहते थे ॥१४॥ वहाँ उञ्छ वृत्तिसे आजीविका करनेवाले एक सुमित्र नामक तापसने अपनी सोमयशा नामक स्त्रीमें चन्द्रमाके समान कान्तिवाला एक पुत्र उत्पन्न किया ॥१५॥

भूख और प्याससे पीड़ित सुमित्र और सोमयशा, दोनों दम्पती चित्त सोनेवाले उस बच्चेको एक वृक्षके नीचे रखकर उञ्छ वृत्तिके लिए जबतक नगरमें आये तबतक एकान्तमें क्रीड़ा करते हुए उस बालकको देखकर जृम्भक नामक देव पूर्वभवके स्नेहसे उठाकर वैताढ्यपर्वत-पर ले गये। वहाँ उन्होंने मणिकांचन नामक गुहामें उस बालकको रखकर कल्प वृक्षोंसे उत्पन्न दिव्य आहारसे उसका पालन-पोषण किया ॥१६-१८॥ वह बालक देवोंको बहुत ही इष्ट था इसलिए जब वह आठ वर्षका हुआ तब उन्होंने सन्तुष्ट होकर उसे रहस्यसहित जिनागम और आकाशगामिनी विद्या प्रदान की ॥१९॥ वही नारदके नामसे प्रसिद्ध हुआ। नारद अनेक विद्याओंका ज्ञाता तथा नाना शास्त्रोंमें निपुण था। वह साधुके वेषमें रहता था तथा साधुओंकी सेवासे उसने संयमासंयम—देशव्रत प्राप्त किया था। वह कामको जीतनेवाला होकर भी कामके समान विभ्रमको धारण करता था, कामी मनुष्योंको प्रिय था, हास्यरूप स्वभावसे युक्त था, लोभसे रहित था, चरमशरीरी था, यद्यपि स्वभावसे ही निष्कषाय था तथापि पृथ्वीमें युद्ध देखना उसे बहुत प्रिय था, अधिकतर वह अधिक बोलनेवालोंमें शिरोमणि था, और जिनेन्द्र भगवान्के जन्माभिषेक आदि महान् अतिशयोंके देखनेका कुतूहली होनेसे विभ्रमपूर्वक लोकमें परिभ्रमण करता रहता था ॥२०-२३॥

१. चरमशरीरस्य (ग. टि., म. टि.)। नारदस्य चरमशरीरत्वमाम्नायविरुद्धमस्ति। २२ तमे श्लोकेऽपि 'अन्त्यदेहः' इत्यस्य स्थाने 'अत्यदेहः' इति पाठो योजनीयः (प. ला.)। २. कन्दर्पेण सह वर्तन्ते इति सकन्दर्पास्तेषां प्रियः (ग. टि.)। ३. वाचालभानुः (ग. टि.)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स एष नारदो राजन् परिपृच्छ्य यदूत्तमान् । केशवान्तःपुरं द्रष्टुं प्रविष्टोऽन्तःपुरालयम् ॥२४॥
तत्र विष्णोर्महादेवीं प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम् । धृतप्रसाधनां साध्वीं करस्थे मणिदर्पणे ॥२५॥
प्रेक्षमाणां निजं रूपं सत्यभामां विदूरतः । अद्राक्षीन्नारदः साक्षाद् दृष्टेरतिमिव स्थिताम् ॥२६॥
स्वरूपालोकनाक्षिप्तचेतसा सत्यया यतिः । न दृष्टः सहसा रुष्टो निर्जगाम ततो द्रुतम् ॥२७॥
दध्याविति स लोकेऽस्मिन् सविद्याधरभूचराः । मामुत्थाय नमस्यन्ति राज्ञामन्तःपुरस्त्रियः ॥२८॥
सत्यभामा त्वियं रूपमदगर्वितमानसा । धिग् मां नालोकतेस्मापि धृष्टा विद्याधरात्मजा ॥२९॥
तदस्या रूपसौभाग्यगर्वपर्वतचूरणम् । प्रतिपक्षवधूवज्रसंपातेन[1] करोम्यहम् ॥३०॥
रूपसौभाग्यतो ह्यन्यां सत्यभामातिशातिनीम् । हरिर्लघु लभेत् कन्यां बहुरत्ना वसुंधरा ॥३१॥
ततः पश्यामि भाभाया निश्वासश्याममाननम् । कुतोऽनर्थविमोक्षः स्यात् कुपिते मयि नारदे ॥३२॥
इति ध्यायन् खमुत्पत्य कुण्डिनाख्यमयात्पुरम् । यत्र भीष्मो नृपस्तिष्ठत्यरिभीष्मो महान्वयः ॥३३॥
रुक्मीति तनयस्तस्य नयपौरुषपोषणः । रुक्मिणी च शुभा कन्या कलागुणविशारदा ॥३४॥
तां ददर्श च शुद्धान्ते शुद्धान्तःकरणः श्रिताम् । पितृस्वस्रानुरागिण्या संध्ययेवोदयश्रियम् ॥३५॥
सौलक्षण्यं च सौरूप्यं सौभाग्यं त्रिजगद्गतम् । गृहीत्वेव हरे पुण्यैः परमैस्तां विनिर्मिताम् ॥३६॥
पाणिपादमुखाम्भोजजङ्घोरुजघनश्रिया । रोमराजिभुजानाभिकुचोदरतनुत्विषा ॥३७॥

हे राजन्! यह वही नारद, यादवोंसे पूछकर श्रीकृष्णका अन्तःपुर देखनेके लिए अन्तःपुरके महलमें प्रविष्ट हुआ ॥२४॥ उस समय कृष्णकी महादेवी सत्यभामा, जो उन्हें प्राणोंसे भी अधिक प्रिय थी, आभूषणादि धारण कर हाथमें स्थित मणिमय दर्पणमें अपना रूप देख रही थी। नारदने उस साध्वीको दूरसे ही देखा। वह उनकी दृष्टिके सामने साक्षात् रतिके समान जान पड़ती थी। अपना रूप देखनेमें जिसका चित्त उलझा हुआ था ऐसी सत्यभामा नारदको न देख सकी इसलिए वह सहसा रुष्ट हो वहाँसे शीघ्र ही बाहर निकल आये ॥२५-२७॥ बाहर आकर वह विचार करने लगे कि इस संसारमें समस्त विद्याधर और भूमिगोचरी राजा तथा उनके अन्तःपुरोंकी स्त्रियाँ उठकर मुझे नमस्कार करती हैं परन्तु यह विद्याधरकी लड़की सत्यभामा इतनी ढीठ है कि इसने सौन्दर्यके मदसे गर्वितचित्त हो मेरी ओर देखा भी नहीं अतः इसे धिक्कार है ॥२८-२९॥ अब मैं सपत्नीरूपी वज्रपातके द्वारा इसके सौन्दर्य, सौभाग्य और गर्वरूपी पर्वतको अभी हाल चूर-चूर करता हूँ ॥३०॥ रूप और सौभाग्यमें सत्यभामाको अतिक्रान्त करनेवाली अन्य कन्याको श्रीकृष्ण शीघ्र ही प्राप्त कर सकते हैं क्योंकि यह पृथ्वी अनेक रत्नोंसे युक्त है। सपत्नीके आनेपर मैं सत्यभामाके मुखको श्वासोच्छ्वाससे मलिन देखूँगा। मुझ नारदके कुपित होनेपर इसका अनर्थसे छुटकारा कैसे हो सकता है? ॥३१-३२॥ इस प्रकार विचार करते हुए नारद आकाशमें उड़कर उस कुण्डिनपुरमें जा पहुँचे, जहाँ शत्रुओंके लिए भयंकर महाकुलीन राजा भीष्म रहते थे ॥३३॥ उनके नीति और पौरुषको पुष्ट करनेवाला रुक्मी नामका पुत्र था तथा कला और गुणोंमें निपुण रुक्मिणी नामकी एक शुभ कन्या थी ॥३४॥ निर्मल अन्तःकरणके धारक नारदने, राजा भीष्मके अन्तःपुरमें, अनुराग—प्रेमको धारण करनेवाली फुआसे युक्त उस रुक्मिणी नामक कन्याको देखा जो अनुराग—लालिमाको धारण करनेवाली सन्ध्यासे युक्त सूर्यकी उदयकालीन लक्ष्मीके समान जान पड़ती थी ॥३५॥ वह कन्या ऐसी जान पड़ती थी मानो तीनों जगत्के उत्तम लक्षण, उत्तम रूप और उत्तम भाग्यको लेकर नारायण-कृष्णके उत्कृष्ट पुण्यके द्वारा ही रची गयी हो ॥३६॥ वह कन्या अपने हाथ, पैर, मुखकमल, जंघा और स्थूल नितम्बकी शोभासे,

---

१. सन्तापेन म., ग.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भ्रूकर्णाक्षिशिरःकण्ठघोणाधरपुटाभया[1] । अभिभूयोपमाः सर्वाः स्थितां जगति तां पराम् ॥३८॥
दृष्ट्वाऽसौ विस्मितो दध्यौ दृष्टानेकाङ्गनोत्तमः । अहो रूपस्य पर्यन्ते कन्येयं वर्त्तते भुवि ॥३९॥
संयोज्य हरिणा कन्यामनन्यसदृशीमिमाम् । भनज्मि सत्यभामाया रूपसौभाग्यदुर्मदम् ॥४०॥
इति ध्यायन्तमायातं नारदं वीक्ष्य रुक्मिणी । अभ्युत्तस्थौ रणद्भूषा स्वभावविनयैकभूः ॥४१॥
साञ्जलिः प्रणनामासौ प्रत्युपेत्य तमादरात् । [2]द्वारिकापतिपत्याप्त्या सोऽभ्यनन्दयदानताम् ॥४२॥
प्रश्नितेन तया तेन द्वारावत्या विकीर्त्तने । कृतेऽनुरागिणी कृष्णे रुक्मिणी नितरामभूत् ॥४३॥
कृष्णं भीष्मसुताचित्तभित्तौ नारदचित्रकृत् । वर्णरूपवयोविद्धं विलिख्य बहिरुद्ययौ ॥४४॥
विलिख्य पट्टके स्पष्टं रुक्मिण्या रूपमद्भुतम् । हरयेऽदर्शयद्गत्वा चित्तसंमोहकारणम् ॥४५॥
दृष्ट्वा चित्रगतां कन्यां श्यामां स्त्रीलक्षणाञ्चिताम् । पप्रच्छ हरिरित्येवं द्विगुणादरसंगतः ॥४६॥
कस्येयं भगवन् ! कन्या विचित्रा पट्टके त्वया । दुष्करं मानुषीं क्षिप्त्वा[3] विचित्रा सुरकन्यका ॥४७॥
इति पृष्टोऽवदत्सोऽस्मै यथावृत्तमवञ्चकः । श्रुत्वा सौरिरपि प्राप्तश्चिन्तां कन्याकरग्रहे ॥४८॥
काले पितृष्वसा तस्मिन्नेकान्ते हितकाम्यया । रुक्मिणीमित्यभाषिष्ट सर्ववृत्तान्तवेदिनी ॥४९॥
आकर्णय वचो बाले कदाचिदतिमुक्तकः । दिव्यचक्षुरिहायातस्त्वां दृष्ट्वाऽवददित्यसौ ॥५०॥

रोमराजि, भुजा, नाभि, स्तन, उदर तथा शरीरकी कान्तिसे, भौंह, कान, नेत्र, शिर, कण्ठ, नाक और अधरोष्ठकी आभासे संसारकी समस्त उपमाओंको अभिभूत–तिरस्कृत कर उत्कृष्ट-रूपसे स्थित थी ॥३७–३८॥ अनेक उत्तमोत्तम स्त्रियोंको देखनेवाले नारद उस कन्याको देखकर आश्चर्यमें पड़ गये तथा इस प्रकार विचार करने लगे कि 'अहो ! यह कन्या तो पृथिवीपर रूपकी चरम सीमामें विद्यमान है—सबसे अधिक रूपवती है ॥३९॥ जो अपनी सानी नहीं रखती ऐसी इस कन्याको कृष्णके साथ मिलाकर मैं सत्यभामाके रूप तथा सौभाग्य-सम्बन्धी दुष्ट अहंकारको अभी हाल खण्डित किये देता हूँ' ॥४०॥

इस प्रकार विचार करते हुए नारदको आये देख, शब्दायमान भूषणोंसे युक्त तथा स्वाभाविक विनयकी भूमि रुक्मिणी उठकर खड़ी हो गयी ॥४१॥ उसने हाथ जोड़कर बड़े आदरसे सम्मुख जाकर नारदको प्रणाम किया तथा नारदने भी 'द्वारिकाके स्वामी तुम्हारे पति हों' इस आशीर्वादसे उस नम्रीभूत कन्याको प्रसन्न किया ॥४२॥ उसके पूछनेपर जब नारदने द्वारिकाका वर्णन किया तब वह कृष्णमें अत्यन्त अनुरक्त हो गयी ॥४३॥ अन्तमें नारदरूपी चित्रकार, रुक्मिणीके हृदयकी दीवालपर वर्ण, रूप तथा अवस्थासे युक्त कृष्णका चित्र खींचकर बाहर चले गये ॥४४॥

बाहर आकर नारदने रुक्मिणीका आश्चर्यकारी रूप स्पष्ट रूपसे चित्रपर लिखा और चित्तमें विभ्रम उत्पन्न करनेवाला वह रूप उन्होंने जाकर श्रीकृष्णके लिए दिखाया ॥४५॥ नवयौवनवती तथा स्त्रियोंके लक्षणोंसे युक्त उस चित्रगत कन्याको देखकर कृष्णने दुगुने आदरसे युक्त हो नारदसे इस प्रकार पूछा कि हे भगवन् ! यह किसकी विचित्र कन्या आपने चित्रपटपर अंकित की है ? यह तो मानुषीका तिरस्कार करनेवाली कोई विचित्र देव-कन्या जान पड़ती है ॥४६–४७॥ कृष्णके इस प्रकार पूछनेपर छल-रहित नारदने सब समाचार ज्योंका-त्यों सुना दिया तथा उसे सुनकर कृष्ण उसके साथ विवाह करनेकी चिन्ता करने लगे ॥४८॥

उधर सब समाचारको जाननेवाली फुआने हितकी इच्छासे एकान्तमें ले जाकर योग्य समयमें रुक्मिणीसे इस प्रकार कहा कि हे बाले ! तू मेरे वचन सुन। किसी समय अवधि-ज्ञानके धारक अतिमुक्तक मुनि यहाँ आये थे। उन्होंने तुझे देखकर कहा था कि 'यह कन्या स्त्रियोंके

१. पुटोभया म. । २. द्वारिकापतिरेव पतिस्तस्याप्तिः प्राप्तिस्तया । ३. क्षिप्ता म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्त्रीलक्षणवती लक्ष्मीरिव वक्षःस्थलाश्रिता । बालेयं वासुदेवस्य भविष्यति भविष्यतः ॥५१॥
षोडशानां सहस्राणां विष्णोः स्त्रीगुणसंयुजाम् । अन्तरन्तःपुरस्त्रीणां प्रभुत्वमियमेष्यति ॥५२॥
इत्यादिश्य तदा यातः सिद्धादेशो महामुनिः । कथा चान्तर्हिता विष्णोः कियन्तंचिदनेहसम् ॥५३॥
पुनर्जन्मकथेवेयं नारदेन कथा कृता । यदि सत्यमिदं सर्वं सत्यं वेद्मि मुनेर्वचः ॥५४॥
त्वं पुनः शिशुपालाय बाले ! बान्धवतां युजे । सुप्रभुत्वभृता भ्रात्रा रुक्मिणा[1] किल दीयसे[2] ॥५५॥
विवाहसमयस्तेऽपि प्रत्यासन्नस्तु वर्तते । अद्य श्वो वा त्वदर्थं च शिशुपालः किलैष्यति ॥५६॥
विदर्भपतिपुत्री तन्निशम्य वचनं जगौ । कथमस्य मुनेर्वाक्यमन्यथा भवति क्षितौ ॥५७॥
तन्मदीयमभिप्रायं कथंचिदपि सत्वरम् । द्वारिकापतये यत्नात् प्रापयेति स मत्प्रियः ॥५८॥
इति श्रुत्वा मनो ज्ञात्वा कन्यकायाः पितृष्वसा । विससर्ज रहस्येनं लेखमात्रेन सत्वरम् ॥५९॥
त्वन्नामग्रहणाहारप्रीणितप्राणधारिणी । हरे ! काङ्क्षति ते रक्ता रुक्मिणी हरणं त्वया ॥६०॥
शुक्लाष्टम्यां हि माघस्य यदि माधव ! रुक्मिणीम् । त्वमेत्य हरसि क्षिप्रं तवेयमविसंशयम् ॥६१॥
अन्यथा तु वितीर्णायाश्चैद्याय गुरुबान्धवैः । त्वद्लाभे भवेदस्याः शरणं मरणं हरे ! ॥६२॥
नागवल्यपदेशेन बाह्योद्यानस्थितामिमाम् । तदवश्यं त्वमागत्य स्वीकुरुष्व कृपापरः ॥६३॥
लेखार्थमिति तत्त्वार्थमधिगम्य स माधवः । सावधानमनास्तस्थौ रुक्मिणीहरणं प्रति ॥६४॥

उत्तम लक्षणोंसे युक्त है अतः लक्ष्मीके समान होनहार नारायण श्रीकृष्णके वक्षःस्थलका आलिंगन प्राप्त करेगी। कृष्णके अन्तःपुरमें स्त्रियोंके योग्य गुणोंसे युक्त सोलह हजार रानियाँ होंगी, उन सबमें यह प्रभुत्वको प्राप्त होगी—उन सबमें प्रधान बनेगी।' इस प्रकार कहकर अमोघवादी मुनिराज उस समय चले गये और कुछ समय तक कृष्णकी चर्चा अन्तर्हित रही आयी। परन्तु आज नारदने पुनर्जन्मकी कथाके समान यह कथा पुनः उठायी है। यदि यह सब सत्य है तो मैं समझती हूँ कि मुनिराजके उक्त वचन सत्य ही निकलेंगे। परन्तु हे बाले! विचारणीय बात यह है कि तेरा भाई रुक्मी जो अत्यधिक प्रभावको धारण करनेवाला है वह तुझे बन्धुपनेको धारण करनेवाले शिशुपालके लिए दे रहा है। तेरे विवाहका समय भी निकट है और आज-कलमें तेरे लिए शिशुपाल यहाँ आनेवाला है ॥४९–५६॥

फुआके ऐसे वचन सुन रुक्मिणीने कहा कि मुनिराजके वचन पृथिवीपर अन्यथा कैसे हो सकते हैं ॥५७॥ इसलिए आप मेरे अभिप्रायको किसी तरह शीघ्र ही प्रयत्न कर द्वारिकापतिके पास भेज दीजिए। वही मेरे पति होंगे ॥५८॥ कन्याके यह वचन सुनकर तथा उसका अभिप्राय जानकर फुआने शीघ्र ही एक विश्वासपात्र आदमीके द्वारा गुप्त रूपसे यह लेख श्रीकृष्णके पास भेज दिया ॥५९॥ लेखमें लिखा था कि हे कृष्ण! रुक्मिणी आपमें अनुरक्त है तथा आपके नामग्रहणरूपी आहारसे सन्तुष्ट हो प्राण धारण कर रही है। यह आपके द्वारा अपना हरण चाहती है। हे माधव! यदि माघ शुक्ला अष्टमीके दिन आप आकर शीघ्र ही रुक्मिणीका हरण कर ले जाते हैं तो निःसन्देह यह आपकी होगी। अन्यथा पिता और बान्धवजनोंके द्वारा यह शिशुपालके लिए दे दी जायेगी और उस दशामें आपकी प्राप्ति न होनेसे मरना ही इसे शरण रह जायेगा अर्थात् यह आत्म-घात कर मर जायेगी। यह नागदेवकी पूजाके बहाने आपको नगरके बाह्य उद्यानमें स्थित मिलेगी सो आप दयालु हो अवश्य ही आकर इसे स्वीकृत करें ॥६०–६३॥ इस प्रकार लेखके यथार्थ भावको ज्ञात कर कृष्ण, रुक्मिणीका हरण करनेके लिए सावधानचित्त हो गये ॥६४॥

१. रुक्मिणी म.। २. दीयते म.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कन्यादानकृतारम्भविदर्भेश्वरवाक्यतः । चेदीनामीश्वरः[1] प्राप्तो वैदर्भपुरमादरात् ॥६५॥
बलेन महता तस्य चतुरङ्गेण रागिणा । [2]मण्डिताशान्तरं जातं कुण्डिनं नगरं तदा ॥६६॥
इतश्चावसरज्ञेन नारदेन रहस्यरम् । चोदितो हरिरप्याप्तो गूढवृत्तः सहाग्रजः ॥६७॥
दत्तनागबलिः कन्या पुरोपवनवर्त्तिनी । पितृष्वस्रादिभिर्युक्ता माधवेन निरीक्षिता ॥६८॥
श्रुतीन्धनसमृद्धोऽनुरागबन्धहुताशनः । अतिवृद्धिं तदा प्राप्तस्तयो[3]र्दर्शनवायुना ॥६९॥
कृतोचितकथस्तत्र रुक्मिणीमाह माधवः । त्वदर्थमागतं भद्रे ! विद्धि मां हृदयस्थितम् ॥७०॥
सत्यं यदि मयि प्रेम त्वया बद्धमनुत्तरम् । तदेहि रथमारोह मन्मनोरथपूरणि ॥७१॥
पितृष्वस्राऽपि साऽवाचि योऽतिमुक्तकभाषितः । स एव तव कल्याणि वरः[4] पुण्यैरिहाहृतः ॥७२॥
यत्रापि पितरौ भद्रे ! दातारौ दुहितुर्मतौ । तत्राऽपि विधिपूर्वौ तौ ततो ज्येष्ठो विधिर्गुरुः ॥७३॥
सानुरक्तां त्रपायुक्तां श्रीमत्यास्तनयां[5] ततः । रथमारोपयद्बाहुभ्यामुत्क्षिप्यामीलितेक्षणः ॥७४॥
निर्वाहकस्तयोरासीत्[6]दान्योन्यसुखावहः । सर्वाङ्गीणस्तनुस्पर्शः प्रथमो मन्मथार्त्तयोः ॥७५॥
सुगन्धिमुखनिश्वासस्तयोरन्योन्ययोगतः । वास्यवासकमावस्थो वशीकरणतामगात् ॥७६॥
विमुखीकृतचैद्येन संमुखीकृतविष्णुना । विधिनैकेन रुक्मिण्यास्तत्कल्याणमनुष्ठितम् ॥७७॥

इधर कन्यादानकी तैयारी करनेवाले विदर्भेश्वर—राजा भीष्मके कहे अनुसार शिशुपाल आदरके साथ कुण्डिनपुर जा पहुँचा ॥६५॥ उस समय उसकी रागसे युक्त बहुत भारी चतुरंगिणी सेनासे कुण्डिनपुरके दिग्दिगन्त सुशोभित हो उठे ॥६६॥ इधर अवसरको जाननेवाले नारदने शीघ्र ही आकर एकान्तमें कृष्णको प्रेरित किया सो वे भी बड़े भाई बलदेवके साथ गुप्त रूपसे कुण्डिनपुर आ पहुँचे ॥६७॥ रुक्मिणी नागदेवकी पूजा कर फुआ आदिके साथ नगरके बाह्य उद्यानमें पहलेसे ही खड़ी थी सो कृष्णने उसे अच्छी तरह देखा ॥६८॥ उन दोनोंकी जो अनुरागरूपी अग्नि एक दूसरेके श्रवणमात्र ईंधनसे युक्त थी वह उस समय एक दूसरेको देखने रूप वायुसे अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हो गयी ॥६९॥ कृष्णने यथायोग्य चर्चा करनेके बाद वहाँ रुक्मिणीसे कहा कि 'हे भद्रे ! मैं तुम्हारे लिए ही आया हूँ और जो तुम्हारे हृदयमें स्थित है वही मैं हूँ ॥७०॥ यदि सचमुच ही तूने मुझमें अपना अनुपम प्रेम लगा रखा है तो हे मेरे मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली प्रिये ! आओ रथपर सवार होओ' ॥७१॥ फुआने भी रुक्मिणीसे कहा कि हे कल्याणि ! अतिमुक्तक मुनिने जो तुम्हारा पति कहा था वही यह तुम्हारे पुण्यके द्वारा खींचकर यहाँ लाया गया है ॥७२॥ हे भद्रे ! जहाँ माता-पिता पुत्रीके देनेवाले माने गये हैं वहाँ वे कर्मोंके अनुसार ही देनेवाले माने गये हैं इसलिए सबसे बड़ा गुरु कर्म ही है ॥७३॥

तदनन्तर जिनके नेत्र कुछ-कुछ निमीलित हो रहे थे ऐसे श्रीकृष्णने अनुराग और लज्जासे युक्त रुक्मिणीको अपनी दोनों भुजाओंसे उठाकर रथपर बैठा दिया ॥७४॥ कामकी व्यथासे पीड़ित उन दोनोंका जो सर्व-प्रथम सर्वांगीण शरीरका स्पर्श हुआ था वह उन दोनोंके लिए परस्पर सुखका देनेवाला हुआ था ॥७५॥ उन दोनोंके मुखसे जो सुगन्धित श्वास निकल रहा था वह परस्पर मिलकर एक दूसरेको सुगन्धित कर रहा था तथा एक दूसरेको वशमें करनेके लिए वशीकरणमन्त्रपनेको प्राप्त हो रहा था ॥७६॥ रुक्मिणीका वह कल्याण, शिशुपालको विमुख और कृष्णको सम्मुख करनेवाले एक विधि—पुराकृत कर्मके द्वारा ही किया गया था। भावार्थ—रुक्मिणीका जो कृष्णके साथ संयोग हुआ था उसमें उसका पूर्वकृत कर्म ही प्रबल कारण था क्योंकि उसने पूर्वनिश्चित योजनाके साथ आये हुए शिशुपालको विमुख कर दिया था और अना-

१. शिशुपालः । २. शोभितदिगन्तरालम् । ३. कृष्णरुक्मिण्योः । ४. कल्याणवरः म. । ५. तनया म. । ६. –रासीदन्योन्य म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रुक्मिणः शिशुपालस्य भीष्मस्य च हरिस्ततः । रुक्मिणीहरणोदन्तं दत्त्वा रथमचोदयत् ॥७८॥
पाञ्चजन्यमतो दध्मौ मुखरीकृतदिग्मुखम् । सुघोषं तु बलः शङ्खं चुक्षोभारिबलं ततः ॥७९॥
रुक्मी विदितवृत्तान्तः शिशुपालश्च सत्वरौ । धीरौ धीरौ परिप्राप्तौ रथिनौ रथिनौ प्रति ॥८०॥
रथैः षष्टिसहस्रैस्तैः करिणामयुतेन च । त्रिभिः शतसहस्रैश्च वाजिनां वायुरंहसाम् ॥८१॥
असिचक्रधनुःपाणिबहुलक्षपदातिभिः । ग्रसमानौ दिशो शेषा निकटत्वमुपागतौ ॥८२॥
अर्धासनसुखासीनां सान्त्वयन् भीष्मजां हरिः । ग्रामाकरसरःसिन्धूर्दर्शयन् प्रययौ शनैः ॥८३॥
अथ रौद्रं बलं प्राप्तमन्वीक्ष्य हरिणेक्षणा । रुक्मिण्युवाच भर्त्तारमपायपरिशङ्किनी ॥८४॥
भ्राता मे कुपितः प्राप्तः संप्रत्येष[1] महारथः । शिशुपालश्च तन्नाथ[2] न मन्ये स्वन्तमात्मनः ॥८५॥
युवयोः पृथुसेनाभ्यामाभ्यां जाते महारणे । विजयं प्रति संशीतिरहो मे मन्दभाग्यता ॥८६॥
ब्रुवाणामिति तां शार्ङ्गी मा भैषीर्मृदुमानसे । बहुत्वेन किमन्येषां मयि सत्त्ववति स्थिते ॥८७॥
[3]इत्युक्त्वाऽसौ क्षुरप्रेण क्षिप्रमप्राकृतास्त्रवित् । अयत्नेनैव चिच्छेद तालवृक्षं पुरःस्थितम् ॥८८॥
अङ्गुलीयकनद्धं च वज्रं संचूर्ण्य पाणिना । तस्याः संदेहमामूलं चिच्छेद यदुनन्दनः ॥८९॥
ततः सा प्राञ्जलिः प्राह प्रियसामर्थ्यवेदिनी । नाथ ! यत्नेन मे भ्राता रक्षणीयस्त्वयाहवे ॥९०॥

यास आये हुए श्रीकृष्णको सम्मुख कर दिया था ॥७७॥

तदनन्तर श्रीकृष्णने रुक्मिणीके भाई रुक्मी, शिशुपाल और भीष्मको रुक्मिणीके हरणका समाचार देकर अपना रथ आगे बढ़ा दिया ॥७८॥ उसी समय श्रीकृष्णने दिशाओंको मुखरित करनेवाला अपना पांचजन्य और बलदेवने अपना सुघोष नामका शंख फूँका जिससे शत्रुकी सेना क्षोभयुक्त हो गयी ॥७९॥ समाचार मिलते ही रुक्मी और शिशुपाल दोनों धीर-वीर, बड़ी शीघ्रतासे रथोंपर सवार हो, धीर-वीर एवं रथोंपर सवार होकर जानेवाले कृष्ण और बलदेवका सामना करनेके लिए पहुँचे ॥८०॥ साठ हजार रथों, दश हजार हाथियों, वायुके समान वेगशाली तीन लाख घोड़ों और खड्ग, चक्र, धनुष, हाथमें लिये कई लाख पैदल सिपाहियोंके द्वारा शेष दिशाओंको ग्रस्त करते हुए वे दोनों वीर निकटताको प्राप्त हुए ॥८१-८२॥ इधर अर्धासनपर बैठी रुक्मिणीको सान्त्वना देते एवं ग्राम, खानें, सरोवर तथा नदियोंको दिखाते हुए श्रीकृष्ण धीरे-धीरे जा रहे थे ॥८३॥

तदनन्तर भयंकर सेनाको आयी देख मृगनयनी रुक्मिणी अनिष्टकी आशंका करती हुई स्वामीसे बोली कि 'हे नाथ ! क्रोधसे युक्त यह मेरा भाई महारथी रुक्मी और शिशुपाल अभी हाल आ रहे हैं इसलिए मैं अपना भला नहीं समझती ॥८४-८५॥ विशाल सेनासे युक्त इन दोनोंके साथ एकाकी आप दोनोंका महायुद्ध होनेपर विजयमें सन्देह है। अहो ! मैं बड़ी मन्द भाग्यवती हूँ' ॥८६-८७॥ इस प्रकार कहती हुई रुक्मिणीसे श्रीकृष्णने कहा कि 'हे कोमल हृदये ! भयभीत न हो, मुझ पराक्रमीके रहते हुए दूसरोंकी संख्या बहुत होनेपर भी क्या हो सकता है ?' इस प्रकार कहकर असाधारण अस्त्रके जाननेवाले श्रीकृष्णने अपने बाणसे सामने खड़े हुए तालवृक्षको अनायास ही काट डाला ॥८८॥ और अँगूठीमें जड़े हुए हीराको हाथसे चूर्ण कर उसके सन्देहको जड़-मूलसे नष्ट कर दिया ॥८९॥

तदनन्तर इन कार्योंसे पतिकी शक्तिको जाननेवाली रुक्मिणीने हाथ जोड़कर कहा कि

---

१. संप्रत्येव म. । २. सन्नाथ क. । ३. सप्ताशीतितमात् श्लोकादग्रे घ., ग., ङ., म. पुस्तकेषु निम्नाङ्कितौ श्लोकौ अधिकावुपलभ्येते ।

तयोक्तं मुनिरादेशः सप्ततालानृजून् पुमान् । यश्छिनत्त्येकबाणेन स हरिर्नान्यथा शुभे ॥१॥
तद्वचः शौरिणा श्रुत्वा क्रमेणाक्रम्य तत्स्थिरम् । स चिच्छेद क्षुरप्रेणाप्यनृजुं तालमण्डलीम् ॥२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवमस्त्विति संत्रस्तां सान्त्वयित्वा[1] प्रियां हरिः । न्यवर्त्तयद्रथं वेगादभ्यमित्रं[2] हली तथा ॥९१॥
रुष्टयोः शरजालेन द्विष्टसैन्यं ततोऽनयोः । श्लिष्टं ननाश विध्वस्तक्लिष्टदर्पमभिद्रुतम् ॥९२॥
[3]हरिणेव रणे रौद्रे हरिणा[4] दमघोषजः[5] । हलिना भीष्मजो राजा भीष्माकारः पुरस्कृतः ॥९३॥
द्वन्द्वयुद्धे[6] शिरस्तुङ्गं शिशुपालस्य पातितम् । विष्णुना यशसा साकं सायकेन विदूरतः ॥९४॥
हली जर्जरितं कृत्वा रथेन सह रुक्मिणम् । प्राणशेषमपाकृत्य कृती कृष्णयुतो ययौ ॥९५॥
रुक्मिणीं परिणीयासौ गिरौ रैवतके हरिः । विभूत्या परया तुष्टः सबन्धुरविशत् पुरीम् ॥९६॥
स्वं विवेश गृहं शौरी रेवतीदर्शनोत्सुकः । शार्ङ्गपाणिरपि प्रीतो नववध्वा युतो निजम् ॥९७॥

पृथिवीच्छन्दः

अनेकरथचक्रचूर्णि विजिगीषुतेजोहरं निरीक्ष्य शिशुपालघाति[7] चरितं हरेराहवे ।
वपुः स्वमुपसंहरन् करसहस्रतीक्ष्णोऽप्यरं गतोऽस्तगिरिगह्वरं ग्रहणशङ्कयेवांशुमान् ॥९८॥
अनेन घनरागिणा समनुवर्त्तिता रागिणी महोदयनिषेविणाप्यनुरतेन पूर्वं तु या ।
तयाऽस्तमितसंपदं तमनुवृत्तया संध्यया कुसुम्भकुसुमाभया तदनुरक्तता दर्शिता ॥९९॥

हे नाथ ! आपके द्वारा युद्धमें मेरा भाई यत्नपूर्वक रक्षणीय है अर्थात् उसकी आप अवश्य रक्षा कीजिए ॥९०॥ 'ऐसा ही होगा' इस प्रकार भयभीत प्रियाको सान्त्वना देकर श्रीकृष्ण तथा बलभद्रने बड़े वेगसे शत्रुकी ओर अपने रथ घुमा दिये ॥९१॥ तदनन्तर रोषसे भरे हुए इन दोनोंके बाणोंके समूहसे मुठभेड़को प्राप्त हुई शत्रुकी सेना चारों ओर भागकर नष्ट हो गयी तथा उसका सब अहंकार नष्ट-भ्रष्ट हो गया ॥९२॥ भयंकर युद्धमें सिंहके समान शूर-वीर कृष्णने शिशुपालको और बलदेवने भयंकर आकारको धारण करनेवाले भीष्मपुत्र राजा रुक्मीको सामने किया ॥९३॥ द्वन्द्व-युद्धमें श्रीकृष्णने अपने बाणके द्वारा यशके साथ-साथ शिशुपालका ऊँचा मस्तक दूर जा गिराया ॥९४॥ और बलदेवने रथके साथ-साथ रुक्मीको इतना जर्जर किया कि उसके प्राण ही शेष रह गये । तदनन्तर कुशल बलदेव कृष्णके साथ वहाँसे चल दिये ॥९५॥ रैवतक (गिरनार) पर्वतपर श्रीकृष्णने विधि-पूर्वक रुक्मिणीके साथ विवाह किया और उसके पश्चात् उत्कृष्ट विभूतिसे सन्तुष्ट हो भाई—बलदेवके साथ द्वारिकापुरीमें प्रवेश किया ॥९६॥ रेवतीके देखनेके लिए उत्सुक बलदेवने अपने महलमें प्रवेश किया और प्रीतिसे युक्त कृष्णने भी नववधूके साथ अपने महलमें प्रवेश किया ॥९७॥

तदनन्तर सूर्य अस्त होनेके सम्मुख हुआ सो ऐसा जान पड़ता था मानो युद्धमें अनेक रथोंके चक्रको चूर्ण करनेवाला, विजिगीषु राजाओंके तेजको हरनेवाला एवं शिशुपालका घात करनेवाला कृष्णका चरित देखकर वह अपने आपके पकड़े जानेकी आशंकासे भयभीत हो गया था इसीलिए तो हजार किरणोंसे तीक्ष्ण होनेपर भी वह अपने शरीरको संकुचित कर अस्ताचलकी गुफामें चला गया था ॥९८॥ प्रातःकालके समय राग (प्रेम—पक्षमें ललाई) से युक्त जिस सन्ध्याको सूर्यने महान् उदय (उदय—पक्षमें वैभव)के धारक होनेपर भी तीव्र राग (प्रेम—पक्षमें ललाई) से युक्त हो अपने बदलेके प्रेमसे अच्छी तरह अनुवर्तित किया था अर्थात् सन्ध्याको रागयुक्त देख अपने आपको भी रागयुक्त किया था उस सन्ध्याने अब सायंकालके समय कुसुम्भके फूलके समान लाल वर्ण हो किरणरूप सम्पत्तिके नष्ट हो जानेपर भी सूर्यके प्रति अपनी अनुरक्तता दिखलायी थी । भावार्थ—'सूर्यने महान् अभ्युदयसे युक्त होनेपर भी मेरे प्रति राग धारण

१. शान्तयित्वा म. । २. दस्य मित्रं म. । ३. सिंहेनेव । ४. कृष्णेन । ५. शिशुपालः । ६. द्वन्द्वयुक्ते म. । ७. घात—म., ग. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ततोऽञ्जनमहारजोमलिनमूर्त्तिभिर्मोहनैः प्रभञ्जनवशैरिव प्रतिभयावहैरुद्धतैः ।
तमःपटलपातकैरभिपतद्भिरत्युन्मुखैः खलैरिव निरन्तरैर्जगदभिह्रुतं च द्रुतम् ॥१००॥
किरन्नमृतदीधितिर्बहुलमन्धकारं करैः तृषेव जनलोचनैः सपदि पीयमानस्ततः ।
जगन्मदनदीपनस्तपनजातसंतापनुत् सुखाय सुखिनामपि[1] प्रकटमुज्जगामोदयम् ॥१०१॥
विकासमगमद् विधोः कुमुदिनी करामर्शनाज्जगत्यखिलजन्तुभिः सह निजप्रियाप्रोषितैः ।
तदा न खलु पद्मिनी विरहदीप्तचक्राह्वयैरहो प्रमदहेतवोऽपि सुखयन्ति नो दुःखितान् ॥१०२॥
प्रदोषसमये ततो मुषितमानिनीमानके प्रवृत्तवति दम्पतिप्रमदसंपदापादने ।
सुधाधवलचन्द्रिकाधवलितेषु हर्म्येषु ते मनोज्ञवनितासखास्तु परिरेभिरे यादवाः ॥१०३॥
मुरारिरपि रुक्मिणीतनुलताद्विरेफस्तदा चिरं रमितया तयारमत रम्यमूर्त्तिर्निशि ।
अशेत शयनस्थले मृदुनि गूढगूढाङ्गनाघनस्तनभुजाननस्पर्शलब्धनिद्रासुखः ॥१०४॥
ततः प्रमितयामिनीनिखिलयामभेदा मदप्रसुप्तयदुकामिनीजनभियेव नीचोच्चकैः ।
क्रमेण पटुपक्षपातसुभगाश्चुकूजुः कलं क्षपाक्षयनिवेदिनो विविधचूडकाः कुक्कुटाः ॥१०५॥
तथा प्रथमबुद्धया प्रथमसंध्ययेवोषसि प्रशस्तकरपद्मया विहितदेहसंवाहनः ।
विबुध्य हरिराश्रितां श्रियमिव व्यलोकिष्ट तां रतिव्यतिकरस्फुरत्परिमलां ह्रिया संनताम् ॥१०६॥

किया था इसलिए इस विपत्तिके समय मुझे भी इसके प्रति राग धारण करना चाहिए' यह विचारकर ही मानो सन्ध्याने सूर्यास्तके समय लालिमा धारण कर ली ॥९९॥ तदनन्तर अंजनकी महारजके समान काले, मोह उत्पन्न करनेवाले, प्रचण्ड पवनके समान भयंकर, उद्धत, सब ओर फैलनेवाले, उन्मुख एवं अन्तर-रहित अन्धकारके समूहरूपी पापोंसे जगत् शीघ्र ही ऐसा आच्छादित हो गया मानो दुर्जनोंसे ही व्याप्त हुआ हो ॥१००॥ तत्पश्चात् जो अपनी किरणोंसे गाढ़ अन्धकारको दूर हटा रहा था, मनुष्योंके नेत्र तृषासे पीड़ित होकर ही मानो जिसका शीघ्र पान कर रहे थे, जो जगत्के जीवोंको कामकी उत्तेजना करनेवाला था और जो सूर्यसे उत्पन्न हुए सन्तापको नष्ट कर रहा था ऐसा चन्द्रमा सुखी मनुष्योंके सुखको और भी अधिक बढ़ानेके लिए उदयको प्राप्त हुआ ॥१०१॥ उस समय जगत्में समस्त जीवोंके साथ-साथ, चन्द्रमाकी किरणोंके स्पर्शसे कुमुदिनी विकासको प्राप्त हुई और अपनी प्रियासे वियुक्त विरहसे देदीप्यमान चक्रवाकोंके साथ-साथ कमलिनी विकासको प्राप्त नहीं हुई सो ठीक ही है क्योंकि दुःखी मनुष्योंको हर्षके कारण सुख नहीं पहुँचा सकते ॥१०२॥ तदनन्तर मानवती स्त्रियोंके मानको हरनेवाले एवं दम्पतियोंको हर्षरूपी सम्पत्तिके प्राप्त करानेवाले प्रदोष कालके प्रवृत्त होनेपर वे यादव अपनी सुन्दर स्त्रियोंके साथ चूनाके समान उज्ज्वल चांदनीसे शुभ्र महलोंमें क्रीड़ा करने लगे ॥१०३॥ जो रुक्मिणीके शरीररूपी लतापर भ्रमरके समान जान पड़ते थे ऐसे सुन्दर शरीरके धारक कृष्ण भी रात्रिके समय चिरकाल तक रमण की हुई रुक्मिणीके साथ क्रीड़ा करते रहे और क्रीड़ाके अनन्तर कोमल शय्यापर उसके गाढ़ आलिंगित स्थूल स्तन, भुजा और मुखके स्पर्शसे निद्रा सुखको प्राप्त कर सो रहे ॥१०४॥ तदनन्तर रात्रिके समस्त भेदोंको जाननेवाले, उत्तम पंखोंकी फड़फड़ाहटसे सुन्दर, रात्रिके अन्तकी सूचना देनेवाले और नाना प्रकारकी कलँगियोंसे युक्त मुर्गे पहले नीची और बादमें ऊँची ध्वनिसे सुन्दर बांग देने लगे सो उससे ऐसा जान पड़ता था मानो 'मदमें सोयी हुई यदु स्त्रियाँ जाग न जायें' इस भयसे ही वे एक साथ न चिल्लाकर क्रम-क्रमसे चिल्लाते थे ॥१०५॥ प्रातःकालमें प्रातः सन्ध्याके समान रुक्मिणी पहले जाग गयी और अपने उत्तम करकमलोंसे कृष्णका शरीर दबाने लगी। उसके कोमल हाथोंका

---

१. सखा सुमुखिनामपि म., ग., घ. । २. जघनस्तन ग. । ३. अत्र छन्दोभङ्गः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभातपटहस्फुटध्वननशङ्खसंगीतकप्रघोषघनगर्जिताम्बुधिनिनादिनी द्वारिका ।
गृहं गृहमितोऽमुतो बुधितराजलोकामवद् यथायथमनुष्ठितस्वकनियोगसर्वप्रजा ॥१०७॥
परैर्घटितमप्यतो विघटयन् पदार्थं झटित्युपेत्य [1]घटयन्पटुर्विघटितं समर्थक्रियः ।
परं भुवनचक्षुरुज्ज्वलमनिद्रमभ्युदयौ यथा जिनवचःपथो विधिरिवाऽथ वा भानुमान् ॥१०८॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यस्य कृतौ रुक्मिणीहरणवर्णनो नाम द्वाचत्वारिंशः सर्गः ॥४२॥

□

स्पर्श पा श्रीकृष्ण भी जाग गये और जागकर उन्होंने रतिक्रीड़ाके कारण जिसके शरीरसे सुगन्धि निकल रही थी तथा जो लज्जासे नम्रीभूत थी ऐसी रुक्मिणीको पासमें बैठी लक्ष्मीके समान देखा ॥१०६॥ उस समय द्वारिकापुरी प्रातःकालके नगाड़ोंके जोरदार शब्दों, शंखों, मधुर संगीतों और मेघोंकी उत्कृष्ट गर्जनाके समान समुद्रकी गम्भीर गर्जनाके शब्दोंसे गूँज उठी। इधर-उधर घर-घर राजा और प्रजाके लोग जाग उठे तथा यथायोग्य अपने-अपने कार्योंमें सब प्रजा लग गयी ॥१०७॥ तदनन्तर जो शीघ्र ही आकर दूसरोंके द्वारा संयोजित पदार्थको यहाँसे दूर हटा रहा था, तथा दूसरोंके द्वारा वियोजित पदार्थको मिला रहा था, अत्यन्त चतुर था, समर्थ था, जगत्का उज्ज्वल एवं जागृत रहनेवाला उत्कृष्ट नेत्र था, जो जिनेन्द्र भगवान्के वचनमार्गके समान था अथवा विधाताके समान था ऐसा सूर्य उदयको प्राप्त हुआ। **भावार्थ**—रात्रिके समय चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र आदि कान्तिमान् पदार्थ अपने साथ अन्धकारको भी थोड़ा-बहुत स्थान दे देते हैं पर सूर्य आते ही साथ उस अन्धकारको पृथिवीतलसे दूर हटा देता है। इसी प्रकार रात्रिके समय चकवा-चकवी परस्पर वियुक्त हो जाते हैं परन्तु सूर्य उदय होते ही उन्हें मिला देता है ॥१०८॥

इस प्रकार अरिष्टनेमिपुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें रुक्मिणी-हरणका वर्णन करनेवाला बयालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥४२॥

□

१. प्रतिपत्य दुर्विघटितं म., ख., घ., ङ.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रिचत्वारिंशः सर्गः

सत्यभामागृहाभ्यर्णमाकीर्णं द्रव्यसंपदा । धिष्ण्यं विष्णुर्ददौ दिव्यं रुक्मिण्यै परिवारवत्[1] ॥१॥
महत्तरप्रतीहारीभृत्यादिपरिवारिता[2] । यानाश्वरथयुग्यादि पत्या गौरविताऽतुषत् ॥२॥
ज्ञात्वा भामा[3] हरीष्टां तां भामां भासातिशायिनीम् । सा सेर्ष्याऽपि हरिं धीरा रहः क्रीडास्वरीरमत् ॥३॥
एकदा मुखताम्बूलं निष्ठ्यूतं भीष्मजन्मना[4] । सोंऽशुकान्तेन[5] संगोप्य सत्यभामागृहं गतः ॥४॥
स्वभावमुखसौगन्ध्यबद्धभ्रान्तालिमण्डलम् । अहरत्सत्यभामा तद् भ्रान्त्या सद्गन्धवस्त्विति ॥५॥
वर्णगन्धाढ्यमापिष्य समालभत चादरात् । हसिता हरिचन्द्रेण सा चुक्रोश तमीर्ष्यया ॥६॥
सौभाग्यातिशयं सत्या सपत्न्या हरिचेष्टितैः । विदित्वा रूपलावण्यं द्रष्टुमभ्युत्सुकाऽभवत् ॥७॥
भवदच्च पतिं नाथ ! रुक्मिणीं मम दर्शय । श्रोत्रयोरिव संहृष्टिं नेत्रयोरपि मे कुरु ॥८॥
प्रतिपद्य स तद्वाक्यमन्तर्गूढो विनिर्गतः । मणिवाप्यास्तटे कान्तां संस्थाप्य पुनरागतः ॥९॥
आनयामि तवाभीष्टां विशोद्यानमिति प्रियाम् । संप्रेष्यानुगतस्तस्थौ गुल्मसंगूढविग्रहः ॥१०॥
तावच्च मणिवाप्यन्ते मणिभूषणधारिणीम् । पादाग्रेण स्थितां चूतलतामालम्ब्य पाणिना ॥११॥
प्रोल्लसत्स्थूलधम्मिल्लां वामहस्तेन बिभ्रतीम् । स्तनभारनतामूर्ध्वफलन्यस्तायतेक्षणाम् ॥१२॥

श्रीकृष्णने सत्यभामाके महलके पास, नाना प्रकारकी सम्पदाओंसे व्याप्त एवं योग्य परिजनोंसे सहित एक सुन्दर महल रुक्मिणीके लिए दिया ॥१॥ उसे महत्तरिका, द्वारपालिनी तथा सेवक आदि परिजनोंसे युक्त किया। नाना प्रकारके वाहन घोड़े, रथ, बैल आदि दिये तथा पट्टरानी पदसे उसका गौरव बढ़ाया जिससे वह बहुत ही सन्तुष्ट हुई ॥२॥ इधर सत्यभामाको जब पता चला कि श्रीकृष्ण समस्त स्त्रियोंको अतिक्रान्त करनेवाली एक स्त्री लाये हैं और वह उन्हें अत्यधिक प्रिय है तब वह ईर्ष्यासे सहित होनेपर भी बड़ी धीरतासे उन्हें नाना प्रकारकी क्रीड़ाओंमें रमण कराने लगी ॥३॥

एक दिन कृष्ण रुक्मिणीके द्वारा उगले हुए मुखके पानको वस्त्रके छोरमें छिपाकर सत्यभामाके घर गये। वह पान स्वभावसे ही सुगन्धित था और उसपर रुक्मिणीके मुखकी सुगन्धिने चार चाँद लगा दिये थे इसलिए उसपर भ्रमरोंका समूह आ बैठा था। 'यह कोई सुगन्धित पदार्थ है' इस भ्रान्तिसे सत्यभामाने उसे ले लिया और उत्तम वर्ण तथा गन्धसे युक्त उस पानके उगालको अच्छी तरह पीसकर अपने शरीरपर लगा लिया। यह देख श्रीकृष्णने उसकी खूब हँसी उड़ायी जिससे वह ईर्ष्यावश उनके प्रति आगबबूला हो गयी ॥४-६॥

कृष्णकी चेष्टाओंसे सौतके सौभाग्यका अतिशय जानकर सत्यभामा उसका रूप-लावण्य देखनेके लिए उत्सुक हो गयी ॥७॥ और एक दिन पतिसे बोली कि 'हे नाथ ! मुझे रुक्मिणी दिखलाइए, कानोंकी तरह मेरे नेत्रोंको भी हर्ष उपजाइए' ॥८॥ सत्यभामाकी बात स्वीकृत कर वे हृदयमें कुछ रहस्य छुपाये हुए गये और मणिमय वापिकाके तटपर रुक्मिणीको खड़ा कर पुनः सत्यभामाके पास आ गये ॥९॥ तदनन्तर 'तुम उद्यानमें प्रवेश करो, मैं तुम्हारी इष्ट रुक्मिणीको अभी लाता हूँ' यह कहकर उन्होंने सत्यभामाको तो आगे भेज दिया और आप स्वयं पीछेसे जाकर किसी झाड़ीके ओटमें शरीर छिपाकर खड़े हो गये ॥१०॥ मणिमय आभूषणोंको धारण करनेवाली रुक्मिणी मणिमय वापिकाके समीप एक हाथसे आम्रकी लता पकड़कर पंजोंके बल

---

१. परिचारवत् घ. । २. परिवारताः म. । ३. सत्यभामा । ४. रुक्मिण्या । ५. सोंऽशुकान्त्येन म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निरूप्य रुक्मिणीं सत्या देवतामिव रूपिणीम् । देवतेयमिति ध्यात्वा विकीर्य कुसुमाञ्जलिम् ॥१३॥
निपत्य पादयोस्तस्याः स्वसौभाग्यमयाचत । विपक्षस्य तु दौर्भाग्यमीर्ष्याशल्यकलङ्किता ॥१४॥
अन्तरेऽत्र हरिः सत्यां हारिस्मितमुखोऽवदत् । अपूर्वं दर्शनं स्वस्रोरहो वृत्तं नयान्वितम् ॥१५॥
श्रुत्वा तत्सत्यभामोचे ज्ञाततत्त्वा रुषान्विता । किं भवान्नयदिच्छं[1] नौ दर्शनं किं तवेति [2]तम् ॥१६॥
कृतकृष्णवचा भामां[3] रुक्मिणी विनयात्ततः । ननाम कुलजातानां विनयः सहजो मतः ॥१७॥
विहृत्य चिरमुद्यानं लतामण्डपमण्डितम् । ताभ्यामधोक्षजो यातो निवृत्तो भवनं निजम् ॥१८॥
ताभ्यामेकदिनौपम्यमनेकेषु दिनेष्वतः । तस्य यात्सु सुखाम्भोधिवर्त्तिनः शौर्यशालिनः ॥१९॥
दुर्योधनोऽन्यदा दूतं हरये प्रियपूर्वकम् । प्रजिघाय धनस्नेहः स हास्तिनपुराधिपः ॥२०॥
यः प्रागुत्पत्स्यते यस्या रुक्मिणीसत्यभामयोः । सूनुरुत्पत्स्यमानायाः स वरो दुहितुर्मम ॥२१॥
इति दूतवचः श्रुत्वा प्रीतः संपूज्य तं हरिः । विससर्ज स पत्येऽतः कार्यसिद्धिं न्यवेदयत् ॥२२॥
तां वार्त्तामुपलभ्याऽसौ भामा [4]भीष्मात्मजान्तिकम् । व्यसृजन्निजदूतीस्ताः पादयोः प्रणता जगुः ॥२३॥
स्वामिनि ! स्वामिनी नस्त्वामिति वक्ति वचो वरम् । अवतंसमिव श्लाघ्यं कुरु कर्णे मनस्विनी ॥२४॥
आवयोः प्रथमं यस्यास्तनयोऽत्र भविष्यति । सुतां दुर्योधनस्यासौ भाविनीं परिणेष्यति ॥२५॥

खड़ी थी। उस समय वह अपनी अतिशय सुशोभित बड़ी मोटी चोटी बायें हाथसे पकड़े थी। स्तनोंके भारसे वह नीचेको झुक रही थी तथा ऊपर लगे हुए फलपर उसके बड़े-बड़े नेत्र लग रहे थे। देवीके समान सुन्दर रूपको धारण करनेवाली रुक्मिणीको देखकर सत्यभामाने समझा कि 'यह देवी है' इसलिए उसने उसके सामने फूलोंकी अंजलि बिखेरकर तथा उसके चरणोंमें गिरकर अपने सौभाग्य और सौतके दौर्भाग्यकी याचना की। वह ईर्ष्यारूपी शल्यसे कलंकित जो थी ॥११-१४॥ इसी समय मन्द-मन्द मुसकाते हुए श्रीकृष्णने आकर सत्यभामासे कहा कि अहा ! दो बहिनोंका यह नीतियुक्त अपूर्व मिलन हो लिया ? ॥१५॥ श्रीकृष्णके वचन सुन सत्यभामा सब रहस्य जान गयी और कुपित हो बोली कि अरे ! क्या आप हैं ? हम दोनोंका इच्छानुरूप दर्शन हो इसमें आपको क्या मतलब ? ॥१६॥ तदनन्तर कृष्णके वचन स्वीकारकर रुक्मिणीने सत्यभामाको विनयपूर्वक नमस्कार किया सो ठीक ही है क्योंकि उच्च कुलमें उत्पन्न हुए मनुष्योंके विनय स्वभावसे ही होता है ॥१७॥ श्रीकृष्ण लतामण्डपोंसे सुशोभित उद्यानमें उन दोनों रानियोंके साथ चिरकाल तक क्रीड़ा कर अपने महलमें लौट गये ॥१८॥

तदनन्तर सुखसागरमें निमग्न एवं पराक्रमसे सुशोभित कृष्णके अनेक दिन उन दोनों रानियोंके साथ जब एक दिनके समान व्यतीत हो रहे थे तब एक दिन अत्यधिक स्नेहसे युक्त हस्तिनापुरके राजा दुर्योधनने इस प्रिय समाचारके साथ कृष्णके पास अपना दूत भेजा कि 'आपकी रुक्मिणी और सत्यभामा रानियोंमें-से जिसके पहले पुत्र उत्पन्न होगा वह यदि मेरे पुत्री उत्पन्न हुई तो उसका पति होगा' ॥१९-२१॥ दूतके उक्त वचन सुनकर श्रीकृष्ण बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने दूतका सम्मान कर उसे विदा किया। दूतने भी अपने स्वामीके लिए कार्य सिद्ध होनेका समाचार कह सुनाया ॥२२॥

यह समाचार सुनकर सत्यभामाने रुक्मिणीके पास अपनी दूतियाँ भेजीं और वे रुक्मिणीके चरणोंमें नम्रीभूत हो कहने लगीं कि हे स्वामिनि ! हम लोगोंकी स्वामिनि—सत्यभामा आपसे कुछ उत्तम वचन कह रही हैं सो हे मानवति ! आभरणकी तरह उस प्रशंसनीय वचनको आप कानमें धारण करें—श्रवण करें। वह वचन यह है कि 'हम दोनोंमें-से जिसके पहले पुत्र होगा वह दुर्योधनकी होनहार पुत्रीको विवाहेगा यह निश्चित हो चुका है। उस विवाहके समय जिनके पुत्र

१. -दित्थं म.। २. तवेरितं ग.। ३. कृतकृष्णवचो भामा म., ग.। ४. भीष्मजान्तिकं म.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्रापत्यविहीनाया विलूनालकबल्लरीम् । [1]स्नास्यतस्तामधः कृत्वा पादयोस्तु वधूवरौ ॥२६॥
प्रशस्यं च यशस्यं च यशोभागिनि भागिनि । यदि ते रोचते कार्यमिदमार्येऽनुमन्यताम् ॥२७॥
कर्णामृतमिवाकर्ण्य तन्निवृत्य जगावसौ । तथाऽस्त्विति ततो गत्वा ताः स्वामिन्यै न्यवेदयन्[2] ॥२८॥
रुक्मिणी तु शिरःस्नाता शयिता शयने निशि । स्वप्ने हंसविमानेन विजहार किलाम्बरे ॥२९॥
विबुद्धा च समाचख्यौ पत्ये स्वप्नमसौ जगौ । सुपुत्रस्ते वियच्चारी भविताऽत्र महानिति ॥३०॥
वचः पत्युरसौ श्रुत्वा विकासमगमद् वधूः । तेजसांऽशुमतः श्लिष्टा पद्मिनीव दिनानने ॥३१॥
अवतीर्याऽच्युतेन्द्रस्तु रुक्मिणीगर्भमाश्रितः । पूरयन् परमानन्दमुपेन्द्रस्य जनस्य च ॥३२॥
तत्काले सत्यभामापि शिरःस्नातवती सती । अधत्त स्वश्च्युतं गर्भे सुतं सुस्वप्नपूर्वकम् ॥३३॥
वर्धमानौ च तौ गर्भौ वर्धमानयशोलतौ । वर्द्धमानां मुदं मात्रोः पितुश्चाकुरुतां पराम् ॥३४॥
पूर्वप्रसवमासेऽत्र प्रसूता रुक्मिणी सुतम् । नरलक्षणसंपूर्णं सत्यापि युगपन्निशि ॥३५॥
प्रहिताश्च हितास्ताभ्यां युगपन्निशि वर्द्धकाः । शिरोऽन्ते सत्यया विष्णोः पादान्ते तस्थुरन्यया ॥३६॥
प्रबुद्धश्च [3]हरिर्दिष्टयै रुक्मिणीपुत्रजन्मना । आनन्दितो ददौ तेभ्यः स्वाङ्गस्पृष्टं विभूषणम् ॥३७॥
परावृत्य पुनः पश्यन् सत्यभामाजनैः स्तुतः । पुत्रोत्पत्त्या ददौ तुष्टस्तेभ्योऽप्यर्थं जनार्दनः ॥३८॥

न होगा उसकी कटी हुई केश-लताको पैरोंके नीचे रखकर वधू और वर स्नान करेंगे'। यह कार्य बहुत ही प्रशस्त तथा यशको बढ़ानेवाला है इसलिए हे यशस्विनि ! हे भाग्यशालिनि ! हे आर्ये ! यदि आपको रुचता है—अच्छा लगता है तो स्वीकृति दीजिए ॥२३-२७॥ कानोंके लिए अमृतके समान आनन्द देनेवाले उस वचनको सुनकर रुक्मिणीने सन्तुष्ट हो 'तथास्तु' कह दिया और दूतियोंने जाकर अपनी स्वामिनी—सत्यभामाके लिए वह समाचार कह सुनाया ॥२८॥

तदनन्तर चतुर्थ स्नानके बाद रुक्मिणी जब रात्रिमें शय्यापर सोयी तब उसने स्वप्नमें हंसविमानके द्वारा आकाशमें विहार किया ॥२९॥ जागनेपर उसने वह स्वप्न पतिदेव श्रीकृष्णके लिए कहा और उसके उत्तरमें उन्होंने कहा कि तुम्हारे आकाशमें विहार करनेवाला कोई महान् पुत्र होगा ॥३०॥ पतिके वचन सुनकर रुक्मिणी, प्रातःकालके समय सूर्यकी किरणोंसे संसर्गको प्राप्त हुई कमलिनीके समान विकासको प्राप्त हुई ॥३१॥ तदनन्तर श्रीकृष्ण तथा अन्य समस्त जनोंके परम आनन्दको बढ़ाता हुआ अच्युतेन्द्र, स्वर्गसे अवतार ले रुक्मिणीके गर्भमें आया ॥३२॥

उसी समय सत्यभामाने भी शिरसे स्नान कर उत्तम स्वप्नपूर्वक स्वर्गसे च्युत हुए पुत्रको गर्भमें धारण किया ॥३३॥ जिनकी यशरूपी लता बढ़ रही थी ऐसे बढ़ते हुए दोनों गर्भोंने अपनी-अपनी माताओं और पिताके परम आनन्दको वृद्धिगत किया ॥३४॥ प्रसवका महीना पूर्ण होनेपर रुक्मिणीने उत्तम मनुष्यके लक्षणोंसे युक्त पुत्र उत्पन्न किया और उसीके साथ-साथ सत्यभामाने भी रात्रिमें उत्तम पुत्रको जन्म दिया ॥३५॥ दोनों ही रानियोंने हितके इच्छुक एवं शुभ समाचार देनेवाले पुरुष रात्रिके ही समय एक साथ श्रीकृष्णके पास भेजे। उस समय श्रीकृष्ण शयन कर रहे थे इसलिए सत्यभामाके द्वारा भेजे सेवक उनके सिरके पास और रुक्मिणीके द्वारा भेजे सेवक उनके चरणोंके समीप खड़े हो गये ॥३६॥ जब श्रीकृष्ण जगे तो पहले उनकी दृष्टि चरणोंके पास खड़े सेवकोंपर पड़ी। उन्होंने भाग्य-वृद्धिके लिए पहले रुक्मिणीके पुत्र-जन्मका समाचार सुनाया जिससे प्रसन्न होकर कृष्णने उन्हें अपने शरीरपर स्थित आभूषण पुरस्कारमें दिये ॥३७॥ तदनन्तर जब कृष्णने मुड़कर दूसरी ओर देखा तो सत्यभामाके सेवकजनोंने उनकी स्तुति कर उन्हें

---

१. स्नास्येते म., ख., आस्येते ग., ङ., घ.। २. न्यवेदयत् म.। ३. हरिर्दृष्ट्यै म.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस्यामेव च वेलायां बलवान् नभसा व्रजन् । धूमकेतुर्विमानस्थो धूमकेतुरिवासुरः ॥३९॥
स्तम्भितेन विमानेन कथंचिदपि विस्मितः । अधोऽवलोकमानोऽसौ विभङ्गज्ञानलोचनः ॥४०॥
रुक्मिण्याः सुतमालोक्य रोषाऽरुणनिरीक्षणः । दर्शनेन्धनसंदीप्तपूर्ववैरविभावसुः ॥४१॥
महारक्षाधिकारस्य परिवारजनस्य सः । रुक्मिण्याश्च महानिद्रां निपात्यापत्यपातकः ॥४२॥
शिशुमुद्धृत्य बाहुभ्यां महीध्रमिव गौरवात् । नभः समुद्ययौ नीलो [1]नीलबुद्धिर्महासुरः ॥४३॥
हस्ताभ्यां किमु मृद्नामि पूर्ववैरिणमेनकम् । [2]खगेभ्यो नखनिर्भिन्नं खे वलिं विकिरामि किम् ॥४४॥
नक्रचक्रमहारौद्रे मकरग्राहसंकुले । पातयामि समुद्रे किं क्षुद्रं मे द्रोहिणं रिपुम् ॥४५॥
अथवा मांसपिण्डेन मारितेनामुनाऽत्र किम् । [3]त्यक्तश्चापेतरक्षस्तु स्वयमेव मरिष्यति ॥४६॥
इति संचिन्त्य पुण्येन शिशोरेव महासुरः । पश्यन्नवततारातो विदूरखदिराटवीम् ॥४७॥
अधस्तक्षशिलायास्तं निधायार्भकमाशु सः । धूमकेतुरिवादृश्यो धूमकेतुरभूत्ततः ॥४८॥
तदनन्तरमेवात्र मेघकूटपुराधिपः । कालसंवर इत्याख्यः सार्द्धं कनकमालया ॥४९॥
प्राप्तो भौमविहारेण विमानेन वियच्चरः । शिशोस्तस्य प्रभावेण खण्डितास्य गतिस्तदा ॥५०॥
किमेतदित्यसौ ध्यात्वा परं विस्मयमागतः । अवतीर्य शिलां [4]पृथ्वीमुच्छ्वसन्तीं व्यलोकत ॥५१॥
समुत्क्षिप्य शिलां स्वैरमपसार्य स दृष्टवान् । अक्षताङ्गमनङ्गाभमर्भकं कनकप्रभम् ॥५२॥

सत्यभामाके पुत्रोत्पत्तिका समाचार सुनाया जिससे सन्तुष्ट होकर कृष्णने उन्हें भी पुरस्कारमें धन दिया ॥३८॥

उसी समय अग्निके समान देदीप्यमान धूमकेतु नामका एक महाबलवान् असुर विमानमें बैठकर आकाशमार्गसे जाता हुआ रुक्मिणीके महलपर आया ॥३९॥ आतेके ही साथ उसका विमान रुक गया जिससे कुछ आश्चर्यमें पड़कर वह नीचेकी ओर देखने लगा। वह विभंगावधि-ज्ञानरूपी नेत्रको धारण करनेवाला था ही इसलिए उसके द्वारा रुक्मिणीके पुत्रको देख क्रोधसे उसके नेत्र लाल हो गये और दर्शनरूपी ईन्धनसे उसकी पूर्व वैररूपी अग्नि भड़क उठी। उस पापीने आते ही कड़ी रक्षामें नियुक्त पहरेदारोंको, परिवारके लोगोंको तथा स्वयं रुक्मिणीको महानिद्रामें निमग्न कर पुत्रको उठा लिया और वजनमें पर्वतके समान भारी उस पुत्रको दोनों भुजाओंसे लेकर वह मलिनबुद्धि एवं श्यामरंगका धारक महाअसुर आकाशमें उड़ गया ॥४०-४३॥ आकाशमें ले जाकर वह विचार करने लगा कि इस पूर्व भवके वैरीको क्या मैं हाथोंसे मसल डालूँ ? या नखोंसे चीरकर आकाशमें पक्षियोंके लिए इसकी बलि बिखेर दूँ ? अथवा मुझसे द्रोह करनेवाले इस क्षुद्र शत्रुको नाकोंके समूहसे महाभयंकर एवं मगरों और ग्राहोंके समूहसे भरे हुए समुद्रमें गिरा दूँ ? अथवा यह मांसका पिण्ड तो है ही। इसके मारनेसे क्या लाभ है ? यह रक्षकोंसे रहित ऐसा ही छोड़ दिया जायेगा तो अपने-आप मर जायेगा ॥४४-४६॥ बालकके पुण्यसे इस प्रकार विचार करता वह महासुर जा रहा था कि दूरसे खदिर अटवीको देख वह नीचे उतरा ॥४७॥ और वहाँ तक्षशिलाके नीचे उस बालकको रखकर वह धूमकेतु नामका असुर, धूमकेतु ताराके समान शीघ्र ही अदृश्य हो गया ॥४८॥

तदनन्तर उसी समय मेघकूट नगरका राजा कालसंवर, अपनी कनकमाला रानीके साथ पृथिवीके समस्त स्थलोंपर विहार करता हुआ विमान-द्वारा आकाश-मार्गसे वहाँ आया सो बालकके प्रभावसे उसकी गति रुक गयी ॥४९-५०॥ 'यह क्या है' इस प्रकार विचारकर कालसंवर परम आश्चर्यको प्राप्त हुआ। नीचे उतरकर उसने हिलती हुई एक बड़ी मोटी शिला देखी ॥५१॥ स्वेच्छासे शिला हटाकर जब उसने देखा तो उसके नीचे अक्षत शरीर, कामदेवके समान आभा-

१. मलिनाशयः । २. पक्षिभ्यः । ३. त्यक्तश्चापदरक्षस्तु म. । ४. विशालाम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गृहीत्वा करुणोपेतः प्रियायै दातुमुद्यतः । तनयस्तेऽनपत्याया गृहाणेति प्रियंवदः ॥५३॥
प्रसार्य करयुग्मं सा पुनः संकोच्य कोविदा । अनिच्छन्तीव संतस्थे खेचरी दीर्घदर्शिनी ॥५४॥
प्रिये ! किमिदमित्युक्ते सा जगौ तव सूनवः । महाभिजनसंपन्नाः सन्ति पञ्चशतानि ते ॥५५॥
तैरज्ञातकुलं दृष्टैस्ताड्यमानं शिरस्यमुम् । न शक्नोमि तदा द्रष्टुं तन्मे वरमपुत्रता ॥५६॥
इत्युक्ते सान्त्वयित्वा[1] तां गृहीत्वा कर्णपत्रकम् । युवराजोऽयमित्युक्त्वा पट्टमस्य बबन्ध सः ॥५७॥
ततो जग्राह तुष्टा सा तनयं नयशालिनी । सपुत्रौ तौ प्रविष्टौ च मेघकूटपुरं परम्[2] ॥५८॥
गूढगर्भा महादेवी प्रसूता तनयं शुभम् । इति वार्त्तां पुरे कृत्वा कोविदः कालसंवरः ॥५९॥
नृत्यद्विद्याधरीवृन्दं[3] सिञ्जत्सिञ्जीरबन्धुरम् । तस्य पुण्यनिधानस्य जन्मोत्सवमकारयत् ॥६०॥
प्रकृष्टद्युम्नधामत्वात् प्रद्युम्न इति संज्ञितः । कुमारो वर्द्धते तत्र कुमारशतसेवितः ॥६१॥
इतश्च रुक्मिणी सूनुं विबुद्धा नेक्षते यदा । वृद्धधात्रीभिरित्युच्चैः सह द्रष्टुं ततस्तदा ॥६२॥
विललाप च हा पुत्र ! हृतः केनापि वैरिणा । विधिना निधिमादर्श्य नेत्रं मेऽपहृतं कथम् ॥६३॥
वियोजिता मया नूनमपत्येन भवान्तरे । काचन स्त्री न हीदृक्षं भवेत्फलमहेतुकम् ॥६४॥
विलापमिति कुर्वन्त्यां रुक्मिण्यां करुणावहम् । रोदनध्वनिरुत्तस्थौ परिवारस्य मांसलः ॥६५॥

वाला एवं सुवर्णके समान कान्तिमान् वह बालक देखा ॥५२॥ दयासे युक्त हो कालसंवरने उस बालकको उठा लिया और 'तुम्हारे पुत्र नहीं है इसलिए यह तुम्हारा पुत्र हुआ, लो' इस प्रकार मधुर शब्द कहकर अपनी प्रियाको देनेके लिए उद्यत हुआ ॥५३॥ पहले तो विद्याधरी कनकमालाने दोनों हाथ पसार दिये पर पीछे चतुर एवं दूर तक देखनेवाली उस विद्याधरीने अपने हाथ संकोच लिये और इस प्रकार खड़ी हो गयी मानो पुत्रको चाहती ही न हो ॥५४॥ 'प्रिये ! यह क्या है ?' इस प्रकार पतिके कहनेपर उसने कहा कि आपके उच्च कुलमें उत्पन्न हुए पाँच सौ पुत्र हैं ॥५५॥ सो जब वे इस अज्ञात कुलवाले पुत्रको अहंकारसे उन्मत्त हो शिरमें थप्पड़ मारेंगे तब मैं वह दृश्य देखनेको समर्थ न हो सकूँगी इसलिए मेरा निपूती रहना ही अच्छा है ॥५६॥

रानीके इस प्रकार कहनेपर कालसंवरने उसे सान्त्वना दी और कानका सुवर्ण-पत्र ले 'यह युवराज है' ऐसा कहकर उसे पट्ट बाँध दिया ॥५७॥ तदनन्तर नीति-निपुण कनकमालाने सन्तुष्ट होकर वह पुत्र ले लिया। और पुत्रसहित दोनों मेघकूट नामक श्रेष्ठ नगरमें प्रविष्ट हुए ॥५८॥ अतिशय निपुण राजा कालसंवरने नगरमें यह घोषणा कराकर कि 'गूढ़ गर्भको धारण करनेवाली महादेवी कनकमालाने आज शुभ पुत्रको जन्म दिया है' पुण्यके भण्डारस्वरूप उस पुत्रका जन्मोत्सव कराया। जन्मोत्सवमें विद्याधरियोंके समूह नृत्य कर रहे थे और उनके नूपुरोंकी रुनझुन न्यारी ही शोभा प्रकट कर रही थी ॥५९–६०॥ स्वर्णके समान श्रेष्ठ कान्तिका धारक होनेसे उसका प्रद्युम्न नाम रखा गया। वहाँ सैकड़ों विद्याधर-कुमारोंके द्वारा सेवित होता हुआ वह प्रद्युम्नकुमार दिनों-दिन बढ़ने लगा ॥६१॥

इधर द्वारिकापुरीमें जब रुक्मिणी जागृत हुई तो उसने पुत्रको नहीं देखा। तदनन्तर वृद्ध धायोंके साथ उसने उसे जहाँ-तहाँ देखा पर जब प्रयत्न सफल नहीं हुआ तब वह जोर-जोरसे इस प्रकार विलाप करने लगी कि हाय पुत्र ! तुझे कौन हर ले गया है ? विधाताने मेरे नेत्रोंको निधि दिखाकर क्यों छीन ली है ? अवश्य ही मैंने दूसरे जन्ममें किसी स्त्रीको पुत्रसे वियुक्त किया होगा नहीं तो कारणके बिना यह ऐसा फल कैसे प्राप्त होता ? ॥६२–६४॥ रुक्मिणीके इस प्रकार करुण विलाप करनेपर परिवारके लोग भी रोने लगे और इस तरह रोनेका एक जोरदार शब्द उठ खड़ा हुआ ॥६५॥

१. शान्तयित्वा म. । २. पुरम् म. । ३. वृन्दं सिञ्जत् म., ग. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ततो विदितवृत्तान्तो वासुदेवः सबान्धवः । संप्राप्य सहसा तत्र कलत्रैः [1]सुकलत्रिभिः ॥६६॥
आक्रन्दनस्वनप्राप्तसंक्रन्दनपुरःसरः । निनिन्द भुजवीर्यं स्वं प्रमादं च [2]सनन्दकः ॥६७॥
अवदच्च वचो दक्षो दैवपौरुषयोः परम् । दैवमेव परं लोके धिक् पौरुषमकारणम् ॥६८॥
अन्यथा कथमुत्खातखड्गधारावभासिनः । ह्रियेत वासुदेवस्य ममापि तनयः परैः ॥६९॥
इत्यादि बहुवादी स रुक्मिणीमाह मा प्रिये । शोकिनी भूरिहात्यर्थं धीरे ! धारय धीरताम् ॥७०॥
नाल्पः कल्पच्युतः पुत्रो जातस्तव ममापि यः । भवितव्यमिहैतेन भुवने भोगभागिना ॥७१॥
गवेषयामि [3]तल्लोके तं लोकनयनोत्सवम् । सूक्ष्मदृष्टिरिवोद्बिम्बं प्रतिपच्चन्द्रमम्बरे ॥७२॥
सान्त्वयित्वाश्रुसंधौतकपोलयुगलां प्रियाम् । माधवोऽन्वेषणे सूनोरुपायपरमोऽभवत् ॥७३॥
काले तत्र हरिं प्राप्तो नारदोऽनारतोद्यमः । श्रुतवार्त्तश्च शोकेन क्षणं निश्चलतां गतः ॥७४॥
आननानि यदूनां स पश्यति स्म सविस्मयः । क्लान्तानि हिमदग्धानि पद्मानीव समन्ततः ॥७५॥
ततो निरस्तमन्युश्च प्रत्युवाच जनार्दनम् । वीर ! शोककलिं मुञ्च सुतवार्त्तामहं लभे ॥७६॥
योऽतिमुक्तक इत्यासीदवधिज्ञानवान् मुनिः । स केवलमयं नेत्रं लब्ध्वा निर्वाणमाश्रितः ॥७७॥
योऽपि नेमिकुमारोऽत्र ज्ञानत्रयविलोचनः । जानन्नपि न स ब्रूयान्न विद्मो केन हेतुना ॥७८॥
अतः पूर्वविदेहेषु गत्वा सीमन्धरं जिनम् । संपृच्छ्य पुत्रवार्त्तां ते प्रापयामीति नारदः ॥७९॥
दत्तोत्तरो विनिर्गत्य रुक्मिणीभवनं गतः । शोकप्रालेयनिर्दग्धं दृष्ट्वा तन्मुखपङ्कजम् ॥८०॥

तदनन्तर सब वृत्तान्त जानकर भाई-बान्धवों एवं अन्य सुन्दर स्त्रियोंके साथ कृष्ण भी वहाँ शीघ्र आ पहुँचे। रोनेका शब्द सुनकर बलदेव भी आ गये। अपने नन्दक नामक खड्गको हाथमें लिये श्रीकृष्ण अपनी भुजाओंके पराक्रम तथा अपने प्रमादकी निन्दा करने लगे ॥६६–६७॥ वचन बोलनेमें अतिशय चतुर श्रीकृष्ण कहने लगे कि 'दैव और पुरुषार्थमें दैव ही परम बलवान् है। संसारमें इस अकारण पुरुषार्थको धिक्कार है ॥६८॥ अन्यथा उभारी हुई तलवारकी धारासे सुशोभित मुझ वासुदेवका भी पुत्र दूसरोंके द्वारा किस प्रकार हरा जाता ?' ॥६९॥ इत्यादि बहुत बोलनेवाले श्रीकृष्णने रुक्मिणीसे कहा कि 'हे प्रिये ! इस विषयमें अधिक शोकयुक्त न होओ। हे धीरे ! धीरता धारण करो ॥७०॥ जो पुत्र स्वर्गसे च्युत हो तुम्हारे और हमारे उत्पन्न हुआ है वह साधारण पुत्र नहीं है। उसे इस संसारमें अवश्य ही भोगोंका भोगनेवाला होना चाहिए ॥७१॥ इसलिए जिस प्रकार सूक्ष्म दृष्टि मनुष्य आकाशमें सूक्ष्म विम्बको धारण करनेवाले प्रतिपदाके चन्द्रमाको खोजते हैं उसी प्रकार मैं लोगोंके नेत्रोंको आनन्द देनेवाले तेरे पुत्रको लोकमें सर्वत्र खोजता हूँ ॥७२॥

इस प्रकार आँसुओंसे जिसके दोनों कपोल धुल रहे थे ऐसी प्रिया रुक्मिणीको शान्त कर श्रीकृष्ण पुत्रके खोजनेमें उपाय करने लगे ॥७३॥ उसी समय निरन्तर उद्यम करनेवाले नारद ऋषि वहाँ श्रीकृष्णके पास आये और सब समाचार सुनकर शोकसे क्षणभरके लिए निश्चलताको प्राप्त हो गये ॥७४॥ उन्होंने सब ओर तुषारसे जले कमलोंके समान मुरझाये हुए यादवोंके मुख बड़े आश्चर्यके साथ देखे ॥७५॥ तदनन्तर शोक दूर कर नारदने कृष्णसे कहा कि 'हे वीर ! शोक छोड़ो, मैं पुत्रका समाचार लाता हूँ ॥७६॥ यहाँ जो अवधिज्ञानी अतिमुक्तक मुनिराज थे वे तो केवलज्ञानरूपी नेत्रको प्राप्त कर मोक्ष जा चुके हैं ॥७७॥ और जो तीन ज्ञानके धारक नेमिकुमार हैं वे जानते हुए भी नहीं कहेंगे। किस कारणसे नहीं कहेंगे ? यह हम नहीं जानते। इसलिए मैं पूर्वविदेह क्षेत्रमें जाकर तथा सीमन्धर भगवान्से पूछकर पुत्रका सब समाचार तेरे लिए प्राप्त कराऊँगा' ॥७८–७९॥ श्रीकृष्णका उत्तर पा नारद वहाँसे निकल रुक्मिणीके भवन पहुँचे और

१. सुनितम्बयुक्तैरित्यर्थः । सकलत्रिभिः म., ग. । २. नन्दकनामखड्गसहितः । ३. तल्लोकं म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शोकवानपि चित्तेन बहिर्धैर्यमुपाश्रितः । अभ्युत्थायार्चितस्तस्या न्यषीदन्निकटासने ॥८१॥
सा तं पितृसमं दृष्ट्वा रुरोदोन्मुक्तकण्ठकम् । सज्जनोपनिधौ शोकः पुराणोऽपि नवायते ॥८२॥
तस्याः शोकसमुद्रं स प्रक्षिपन्निव दक्षिणः । आह्लादयन्मनोऽवादीदिति नारदसंमुनिः ॥८३॥
त्यज रुक्मिणि ! शोकं त्वं क्वचिज्जीवति ते [1]सुतः । कथंचिदपि नीतोऽपि केनचित्पूर्ववैरिणा ॥८४॥
दीर्घजीवितसद्भावं ननु तस्य महात्मनः । निवेदयति संभूतिर्वासुदेवात् त्वयि ध्रुवम् ॥८५॥
संयोगाश्च वियोगाश्च प्राणिनां प्राणवत्सले । वत्से भवन्ति संसारे सुखदुःखविधायिनः ॥८६॥
तत्र कर्मवशज्ञानां ज्ञानोन्मीलितधीदृशाम् । प्रभवन्ति न ते वत्से यदूनामिव शत्रवः ॥८७॥
जिनशासनतत्त्वज्ञा संसृतिस्थितिवेदिनी । मा भूः शोकवशा वार्त्तां त्वत्सुतस्य लभे लघु ॥८८॥
इति तां नारदस्तन्वीमनुशिष्य वचोऽमृतैः । प्रयातो वियदुत्पत्य सीमन्धरजिनान्तिकम् ॥८९॥
[2]विषये पुष्कलावत्यां नृसुरासुरसेवितम् । नगर्यां पुण्डरीकिण्यामर्हन्तं स तमैक्षत ॥९०॥
कृताञ्जलिपुटस्तोत्रपवित्रीकृतवाग्मुखः । प्रणम्य जिनमासीनः स नरेन्द्रसभान्तरे ॥९१॥
तत्र पद्मरथश्चक्री पञ्चचापशतोच्छ्रितिः । दशचापोच्छ्रितिं पश्यन्नारदं नरशंसितम् ॥९२॥
कौतुकात्करपद्माभ्यामास्थायापृच्छदीश्वरम् । मर्त्याकृतिरयं नाथ ! कीटः किमभिधानकः ॥९३॥
ततः प्राह जिनस्तत्त्वं जम्बूद्वीपस्य भारते । नारदो वासुदेवस्य नवमस्य हितोद्यतः ॥९४॥

वहाँ शोकरूपी तुषारसे जले हुए रुक्मिणीके मुख-कमलको देख स्वयं हृदयसे शोक करने लगे परन्तु बाह्यमें धैर्यको धारण किये रहे। रुक्मिणीने उठकर उनका सत्कार किया। अनन्तर वे उसीके निकट आसनपर बैठ गये ॥८०–८१॥ रुक्मिणी पिताके तुल्य नारदको देखकर गला फाड़-फाड़कर रोने लगी सो ठीक ही है क्योंकि सज्जनोंके समीप पुराना शोक भी नवीनके समान हो जाता है ॥८२॥ अत्यन्त चतुर नारदमुनि, उसके शोक-सागरको हलका करनेके लिए ही मानो मनको आनन्दित करते हुए इस प्रकार वचन बोले ॥८३॥

हे रुक्मिणी ! तू शोक छोड़, तेरा पुत्र कहीं जीवित है भले ही उसे पूर्वभवका कोई वैरी किसी तरह हरकर ले गया है। श्रीकृष्णसे तुझमें जो उसकी उत्पत्ति हुई है यही उस महात्माके दीर्घायुष्यको सूचित कर रही है ॥८४–८५॥ हे प्रिय पुत्री ! तू जानती है कि इस संसारमें प्राणियों-को सुख-दुःख उत्पन्न करनेवाले संयोग और वियोग होते ही रहते हैं ॥८६॥ परन्तु जो कर्मोंकी अधीनताको जाननेवाले हैं एवं ज्ञानके द्वारा उन्मीलित बुद्धिरूपी नेत्रोंको धारण करनेवाले हैं ऐसे यादवोंके ऊपर वे संयोग और वियोग शत्रुओंके समान अपना प्रभाव नहीं जमा सकते हैं ॥८७॥ तू तो जिन-शासनके तत्त्वको जाननेवाली एवं संसारकी स्थितिकी जानकार है अतः शोकके वशीभूत मत हो। मैं शीघ्र ही तेरे पुत्रका समाचार लाता हूँ ॥८८॥ इस प्रकार वचनरूपी अमृतसे उस कृशांगीको समझाकर नारदमुनि आकाशमें उड़ सीमन्धर भगवान्‌के समीप जा पहुँचे ॥८९॥ वहाँ पुष्कलावती देशकी पुण्डरीकिणी नगरीमें मनुष्य, सुर और असुरोंसे सेवित सीमन्धर जिनेन्द्रके उन्होंने दर्शन किये ॥९०॥ हाथ जोड़ मुखसे पवित्र स्तोत्रका उच्चारण कर उन्होंने जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार किया और उसके बाद वे राजाओंकी सभामें जा बैठे ॥९१॥

वहाँ उस समय पाँच सौ धनुषकी ऊँचाईवाला पद्मरथ चक्रवर्ती बैठा था। दश धनुष ऊँचे नर-प्रशंसित नारदको देखते ही उसने उन्हें कौतुकवश अपने हस्त-कमलोंसे उठाकर भगवान्‌से पूछा कि हे नाथ ! यह मनुष्यके आकारका कीड़ा कौन-सा है ? और इसका क्या नाम है ? ॥९२–९३॥ तदनन्तर सीमन्धर भगवान्‌ने सब रहस्य कहा। उन्होंने बताया कि यह जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रके नौवें नारायणके हितमें उद्यत रहनेवाला नारद है ॥ ९४ ॥

१. सुतं म. । २. विषयेषु म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किमर्थमागतो भर्त्तरिहायमिति पृच्छते[1] । मूलतः कथितं सर्वं चक्रिणे धर्मचक्रिणा ॥९५॥
प्रद्युम्न इति नाम्नाऽसौ पितृभ्यां योक्ष्यते पुनः । संप्राप्ते षोडशे वर्षे प्राप्तषोडशलाभकः ॥९६॥
स प्रज्ञप्तिमहाविद्याप्रद्योतितपराक्रमः । देवानामपि सर्वेषामजय्योऽत्र भविष्यति ॥९७॥
कीदृशं चरितं तस्य हृतो वा केन हेतुना । इति पृष्टो जिनोऽभाणीत्तस्मै नारदसंनिधौ ॥९८॥
इह भारतवर्षेऽभूद्विषये मगधाभिधे । शालिग्रामेऽग्रजन्मासौ सोमदेव इति श्रुतः ॥९९॥
अग्निला ब्राह्मणी तस्य स्वाहेवाग्नेः सुखावहा । अग्निभूतिरभूत्तस्या वायुभूतिश्च नन्दनः ॥१००॥
बभूवतुरिमौ भूमौ वेदवेदार्थकोविदौ । छादितान्यद्विजच्छायौ यथा शुक्रबृहस्पती ॥१०१॥
वेदार्थभावनाजातजातिवादातिगर्वितौ । वाचाटौ चाटुभिः पित्रोर्लालितौ भोगतत्परौ ॥१०२॥
द्विरष्टवर्षेषु स्त्रीषु स्वर्गबुद्धिं प्रकृत्य तौ । जातावत्यन्तविद्विष्टौ परलोककथां प्रति ॥१०३॥
अन्यदागत्य संघेन महता नन्दिवर्द्धनः । तत्रोद्याने गुरुस्तस्थौ श्रुतसागरपारगः ॥१०४॥
तद्वन्दनार्थमद्वन्द्वं चातुर्वर्ण्यमहाजनम् । निर्गच्छन्तं समालोक्य कारणं तावपृच्छताम् ॥१०५॥
निवेदितं ततस्ताभ्यां द्विजेनैकेन साधुना । [2]महच्छ्रमणसंघस्य वन्दनार्थमिति स्फुटम् ॥१०६॥
अस्मत्परः परः कोऽपि वन्दनीयोऽस्ति भूतले । पश्यामस्तस्य माहात्म्यमिति तौ मानिनौ गतौ ॥१०७॥

यह सुन चक्रवर्तीने फिर पूछा कि हे स्वामिन् ! यह यहाँ किसलिए आया है ? इसके उत्तरमें धर्मचक्रके प्रवर्तक सीमन्धर भगवान्ने चक्रवर्तीके लिए प्रारम्भसे लेकर सब समाचार कहा । साथ ही यह भी कहा कि उस बालकका प्रद्युम्न नाम है । वह सोलहवाँ वर्ष आनेपर सोलह लाभोंको प्राप्त कर अपने माता-पिताके साथ पुनः मिलेगा । प्रज्ञप्ति नामक महाविद्यासे जिसका पराक्रम चमक उठेगा ऐसा वह प्रद्युम्न इस पृथिवीपर समस्त देवोंके लिए भी अजय्य हो जावेगा ॥९५–९७॥

चक्रवर्तीने फिर पूछा—'प्रभो ! प्रद्युम्नका चरित कैसा है ? और वह किस कारणसे हरा गया ?' इसके उत्तरमें सीमन्धर जिनेन्द्रने चक्रवर्तीके लिए नारदके सन्निधानमें प्रद्युम्नका निम्न प्रकार चरित कहा ॥९८॥

भरतक्षेत्र सम्बन्धी मगध देशके शालिग्राम नामक गाँवमें सोमदेव नामका एक ब्राह्मण रहता था ॥९९॥ अग्निकी स्वाहाके समान उसकी अग्निला नामकी ब्राह्मणी थी जो उसे बहुत ही सुख देनेवाली थी । उस ब्राह्मणीसे सोमशर्माके अग्निभूति और वायुभूति नामके दो पुत्र हुए ॥१००॥ ये दोनों ही पुत्र, पृथिवीपर वेद तथा वेदार्थमें अत्यन्त निपुण हो गये । इन्होंने अपने प्रभावसे अन्य ब्राह्मणोंकी प्रभाको आच्छादित कर दिया तथा शुक्र और बृहस्पतिके समान देदीप्यमान होने लगे ॥१०१॥ वेदार्थकी भावनासे उत्पन्न जातिवादसे गर्वित, बकवास करनेवाले, माता-पिताके प्रिय वचनोंसे पले-पुसे ये दोनों पुत्र भोग-वासनामें तत्पर हो गये । जब वे सोलह वर्षके हुए तो स्त्रियोंको ही स्वर्ग समझने लगे और परलोककी कथासे अत्यन्त द्वेष करने लगे ॥१०२–१०३॥

तदनन्तर किसी समय श्रुतरूप सागरके पारगामी नन्दिवर्धन नामके गुरु विशाल संघके साथ आकर शालिग्रामके बाहर उपवनमें ठहर गये ॥१०४॥ चारों वर्णके महाजन आकुलतारहित हो उनकी वन्दनाके लिए जा रहे थे सो उन्हें देख दोनों ब्राह्मण-पुत्रोंने उसका कारण पूछा ॥१०५॥ तदनन्तर एक सरलस्वभावी ब्राह्मणने उन्हें स्पष्ट बताया कि मुनियोंका एक बड़ा संघ आया है । उसीकी वन्दनाके लिए हम लोग जा रहे हैं ॥१०६॥ ब्राह्मणका उत्तर सुन दोनों पुत्र विचारने लगे कि 'पृथिवीतलपर हम लोगोंसे बढ़कर दूसरा वन्दनीय है ही कौन ? चलो हम भी उसका माहात्म्य देखें' इस प्रकार विचारकर मानसे भरे दोनों पुत्र उपवनकी ओर चले ॥१०७॥

१. पृच्छति म. । २. 'महाश्रमणसंघस्य' इति सुष्ठु भाति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राप्तावपश्यतां विप्रावधिज्ञानचक्षुषम् । जनसागरमध्यस्थं साध्विन्द्रं धर्मवादिनम् ॥१०८॥
महिषाभ्यामिव क्षोभो माभूदाभ्यामिहाधुना । सद्धर्मश्रवणस्येति शुश्रूषुहितबुद्धिना ॥१०९॥
साधुनावधिनेत्रेण दूरात्सात्यकिना तकौ । इत आगम्यतां विप्रावित्याहूतौ पुरःस्थितौ ॥११०॥
ततो लोकस्तकौ दृष्ट्वा [1]सावष्टम्भौ यतेः पुरः । [2]आपुपूर पयःपूरैः प्रावृषीव महानदः ॥१११॥
अतः प्राह यतिः प्राप्तौ कुतः पण्डितमानिनौ । प्राहतुस्तौ न किं ज्ञातौ शालिग्रामादिहागतौ ॥११२॥
सात्यकिः प्राह सत्यं भोः शालिग्रामादुपागतौ । किंत्वनाद्यन्तसंसारे संसरन्तौ कुतो गतेः ॥११३॥
अन्यस्यापि च दुर्बोधमेतदित्युदिते यतिः । नैवमित्यगदीद् विप्रौ ! श्रूयतां कथयाम्यहम् ॥११४॥
ग्रामस्यास्यैव सीमान्ते शृगालौ कर्मनिर्मितौ । युवां परस्परप्रीतौ जातौ जन्मन्यनन्तरे ॥११५॥
आसीत्प्रवरको नाम्ना ग्रामेऽत्रैव कृषीबलः । विप्रः प्रकृष्य स क्षेत्रं महावर्षानिलार्दितः ॥११६॥
मुक्त्वोपकरणं क्षेत्रे वटवृक्षतलेऽखिलम् । कम्पमानशरीरोऽगात् क्षुद्रोगातिवशीकृतः ॥११७॥
सप्ताहोरात्रवर्षेण प्राणिसंहारकारिणा । आर्द्रोपकरणं ताभ्यां तिर्यग्भ्यां भक्षितं क्षुधा ॥११८॥
जातोदरमहाशूलौ प्रसह्यासह्यवेदनाम् । अकामनिर्जरायोगादर्जितेनोर्जितायुषा ॥११९॥

उस समय अवधिज्ञानरूपी नेत्रके धारक, साधुशिरोमणि नन्दिवर्धनगुरु, समुद्रके समान अपार जन-समूहके मध्यमें स्थित हो धर्मका उपदेश दे रहे थे। जब दोनों ब्राह्मण उनके पास पहुँचे तब 'भैंसाओंके समान इन दोनोंसे इस समय यहाँ समीचीन धर्मके श्रवणमें बाधा न आवे' इस प्रकार श्रोताओंका हित चाहनेवाले अवधिज्ञानी सात्यकि मुनिने उन दोनों ब्राह्मणोंको दूरसे देख 'हे ब्राह्मणो ! यहाँ आइए' इस तरह बुला लिया और आकर वे उनके सामने बैठ गये ॥१०८-११०॥ तदनन्तर उन अहंकारी ब्राह्मणोंको सात्यकि मुनिराजके सामने बैठा देख, लोगोंने आ-आकर उनके सामनेकी भूमिको उस प्रकार भर दिया जिस प्रकार कि वर्षाऋतुमें महानद जलके प्रवाहसे भर देता है। **भावार्थ**—कौतुकसे प्रेरित हो लोग मुनिराजके पास आ गये ॥१११॥

तदनन्तर मुनिराजने कहा कि हे विद्वानो ! आप लोग कहाँ से आये हैं ? इसके उत्तरमें ब्राह्मणोंने कहा कि क्या आप नहीं जानते इसी शालिग्रामसे आये हैं ॥११२॥ सात्यकि मुनिराजने कहा कि हाँ यह तो सत्य है कि आप शालिग्रामसे आये हैं परन्तु यह तो बताइए कि इस अनादि-अनन्त संसारमें भ्रमण करते हुए आप किस गतिसे आये हैं ? ॥११३॥ ब्राह्मणोंने कहा कि यह बात तो हम लोग ही क्या दूसरेके लिए भी दुर्ज्ञेय है अर्थात् इसे कोई नहीं जान सकता। तब मुनिराजने कहा कि हे ब्राह्मणो ! सुनो, यह बात नहीं है कि कोई नहीं जान सकता, सुनिए, मैं कहता हूँ ॥११४॥

तुम दोनों भाई इस जन्मसे पूर्व जन्ममें इसी शालिग्रामकी सीमाके निकट अपने कर्मसे दो शृगाल थे और दोनों ही परस्परकी प्रीतिसे युक्त थे ॥११५॥ इसी ग्राममें एक प्रवरक नामका ब्राह्मण किसान रहता था। एक दिन वह खेतको जोतकर निश्चिन्त हुआ ही था कि बड़े जोरसे वर्षा होने लगी तथा तीव्र आँधी आ गयी। उनसे वह बहुत पीड़ित हुआ, उसका शरीर कांपने लगा और भूख-रूपी रोगने भी उसको खूब सताया जिससे वह खेतके पास ही वटवृक्षके नीचे अपना चमड़ेका उपकरण छोड़कर घर चला गया ॥११६-११७॥ प्राणियोंका संहार करने-वाली वह वर्षा लगातार सात दिन-रात तक होती रही। इस बीचमें दोनों शृगाल भूखसे अत्यन्त व्याकुल हो उठे और उन्होंने उस किसानका वह भीगा हुआ उपकरण खा लिया ॥११८॥ कुछ समय बाद पेटमें बहुत भारी शूलकी वेदना उठनेसे उन दोनों शृगालोंको असह्य वेदना सहन करनी पड़ी। अकामनिर्जराके योगसे उन्हें प्रशस्त आयुका बन्ध हो गया

---

१. सगर्वौ। २. आययुश्च म.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालं कृत्वा युवां जातौ जातिगौरवगर्वितौ । अग्निभूतिर्मरुद्भूतिः सोमदेवस्य देहजौ ॥१२०॥
पापपाकेन दौर्गत्यं सौगत्यं पुण्यपाकतः । जीवानां जायते तत्र जातिगर्वेण किं वृथा ॥१२१॥
प्राप्तः पामरको दृष्ट्वा क्रोष्टारौ नष्टजीवितौ । दृती कृत्वा कृती गेहे तिष्ठतोऽद्यापि तद्दृती ॥१२२॥
सोऽपि मृत्वा सुतस्यैव सुतो भूत्वातिमानवान् । जातिस्मरः स्मरच्छायो मृषा मूक इव स्थितः ॥१२३॥
स एष बन्धुमध्यस्थो मामतीव विलोकते । इत्युक्त्वाहूय तं मूकं सात्यकिः सत्यवाग् जगौ ॥१२४॥
स त्वं पामरको विप्रः प्राप्तस्तोकस्य[1] तोकताम्[2] । शोकं च मूकभावं च मुञ्च मुञ्च वचोऽमृतम् ॥१२५॥
जायतेऽत्र नटस्येव संसारे स्वाभिभृत्ययोः । पितृपुत्रकयोर्मातृभार्ययोश्च विपर्ययः ॥१२६॥
घटीयन्त्रघटीजाले जटिले कुटिले भवे । उत्तराधर्यमायान्ति जन्तवः सततभ्रमाः ॥१२७॥
इति विज्ञाय निस्सारं घोरं संसारसागरम् । कुरु पुत्र ! दयामूलं व्रताख्यं सारसंग्रहम् ॥१२८॥
इति साक्षात्कृते तेन प्रत्यये यतिना द्विजः । पपात पादयोस्तस्य प्रदक्षिणपुरःसरम् ॥१२९॥
आनन्दास्रपरीताक्षः पुनरुत्थाय विस्मयी । जगाद गद्गदालापः कृताञ्जलिपुटालिकः ॥१३०॥
अहो सर्वज्ञकल्पस्त्वं वस्तुनस्तत्त्वमीश्वरः । अत्रस्थः[3] पश्यसि स्पष्टं[4] जगत्त्रितयगोचरम् ॥१३१॥
उन्मीलितं मनोनेत्रमज्ञानपटलाविलम् । त्वया नाथ ! ममेहाद्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ॥१३२॥

और उसके फलस्वरूप मरकर वे सोमदेव ब्राह्मणके जातिके गर्वसे गर्वित अग्निभूत और वायुभूति नामके तुम दोनों पुत्र हुए ॥११९–१२०॥ पापके उदयसे प्राणियोंको दुर्गति मिलती है और पुण्यके उदयसे सुगति प्राप्त होती है इसलिए जातिका गर्व करना वृथा है ॥१२१॥ वर्षा बन्द होनेपर जब किसान खेतपर पहुँचा तो वहाँ मरे हुए दोनों शृगालोंको देखकर उठा लाया और उनकी मशकें बनवाकर कृत-कृत्य हो गया। वे मशकें उसके घरमें आज भी रखी हैं ॥१२२॥ तीव्र मानसे युक्त प्रवरक भी समय पाकर मर गया और अपने पुत्रके ही पुत्र हुआ। वह कामदेवके समान कान्तिका धारक है तथा जाति स्मरण होनेसे झूठ-मूठ ही गूँगाके समान रहता है ॥१२३॥ देखो, वह अपने बन्धुजनोंके बीचमें बैठा मेरी ओर टकटकी लगाकर देख रहा है। इतना कहकर सत्यवादी सात्यकि मुनिराजने उस गूँगेको अपने पास बुलाकर कहा कि तू वही ब्राह्मण किसान अपने पुत्रका पुत्र हुआ है। अब तू शोक और गूँगेपनको छोड़ तथा वचनरूपी अमृतको प्रकट कर—स्पष्ट बात-चीत कर अपने बन्धुजनोंको हर्षित कर ॥१२४–१२५॥ इस संसारमें नटके समान स्वामी और सेवक, पिता और पुत्र, माता तथा स्त्रीमें विपरीतता देखी जाती है अर्थात् स्वामी सेवक हो जाता है, सेवक स्वामी हो जाता है, पिता पुत्र हो जाता है, पुत्र पिता हो जाता है, और माता स्त्री हो जाती है, स्त्री माता हो जाती है ॥१२६॥ यह संसार रेंहटमें लगी घटियोंके जालके समान जटिल तथा कुटिल है। इसमें निरन्तर भ्रमण करनेवाले जन्तु ऊँच-नीच अवस्थाको प्राप्त होते ही हैं ॥१२७॥ इसलिए हे पुत्र ! संसाररूपी सागरको निःसार एवं भयंकर जानकर दयामूलक व्रतका सारपूर्ण संग्रह कर ॥१२८॥ इस प्रकार मुनिराजने जब उसके गूँगेपनका कारण प्रत्यक्ष दिखा दिया तब वह तीन प्रदक्षिणा देकर उनके चरणोंमें गिर पड़ा ॥१२९॥ उसके नेत्र आनन्द के आँसुओंसे व्याप्त हो गये। वह बड़े आश्चर्यके साथ खड़ा हो हाथ जोड़ मस्तकसे लगा गद्गद वाणीसे कहने लगा ॥१३०॥

'भगवन् ! आप सर्वज्ञके समान हैं, ईश्वर हैं, यहाँ बैठे-बैठे ही तीनों लोक सम्बन्धी वस्तुके यथार्थ स्वरूपको स्पष्ट जानते हैं ॥१३१॥ हे नाथ ! मेरा मनरूपी नेत्र अज्ञानरूपी पटलसे मलिन हो रहा था सो आज आपने उसे ज्ञानरूपी अंजनकी सलाईसे खोल दिया

१. पुत्रस्य । २. पुत्रताम् । ३. अत्रेत्यं म., ग. । ४. स्पृष्टं म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनादौ भवकान्तारे महामोहान्धकारिते । भ्रमतो मे मुने ! जातो बन्धुस्त्वं मार्गदर्शनः ॥१३३॥
प्रसीद भगवन् ! दीक्षां देहि दैगम्बरीमिति । प्रसाद्य[1] गुरुमासाद्य जग्राहानुमतां सताम् ॥१३४॥
चरितं तस्य विप्रस्य श्रुत्वा दृष्ट्वा च तादृशम् । श्रामण्यं केचिदापन्नाः केचित् श्रावकतां पराम् ॥१३५॥
तावग्निवायुभूती तु विलक्षौ लोकगर्हितौ । स्वनिकेतं पुनर्यातौ पितृभ्यामपि निन्दितौ ॥१३६॥
कायोत्सर्गस्थितं रात्रौ मुनिमेकान्तवर्त्तिनम्[2] । जिघांसू[3] खड्गहस्तौ तौ यक्षेण स्तम्भितौ स्थितौ ॥१३७॥
प्रभाते च जनो दृष्ट्वा तौ यतेः पार्श्वयोः स्थितौ । निनिन्द निन्दिताचारौ तावेतौ पातकाविति ॥१३८॥
तावचिन्तयतां साधोः प्रभावोऽयमहो महान् । आवामयत्नतो येन स्तम्भितौ स्तम्भतां गतौ ॥१३९॥
कथंचिद् यदि मोक्षः स्यादस्माकं कृच्छ्रतोऽमुतः । जिनधर्मं प्रपत्स्यामो दृष्टसामर्थ्यमित्यपि ॥१४०॥
तावत्तद्व्यसनं श्रुत्वा पितरौ शीघ्रमागतौ । पादलग्नौ मुनिं तं तौ प्रसादयितुमुद्यतौ ॥१४१॥
करुणावानसौ योगी योगं संहृत्य सुस्थितः । क्षेत्रपालकृतं ज्ञात्वा तमाह विनयस्थितम् ॥१४२॥
क्षम्यतां यक्ष ! दोषोऽयमनयोरनयोद्भवः । कर्मप्रेरितयोः प्रायः कुरु कारुण्यमङ्गिनोः ॥१४३॥
इत्यासाद्य मुनेराज्ञां राज्ञामिव नियोगतः । यथाज्ञापयसीत्युक्त्वा विससर्ज स तौ तदा ॥१४४॥

है ॥१३२॥ महामोहरूपी अन्धकारसे व्याप्त इस अनादि संसार-अटवीमें भ्रमण करते हुए मुझे आपने सच्चा मार्ग दिखलाया है इसलिए हे मुनिराज ! आप ही मेरे बन्धु हैं ॥१३३॥ हे भगवन् ! प्रसन्न होइए और मुझे दैगम्बरी दीक्षा दीजिए !' इस प्रकार गुरुको प्रसन्न कर तथा उनके निकट आ उस गूँगे ब्राह्मणने सत्पुरुषोंके लिए इष्ट दैगम्बरी दीक्षा धारण कर ली ॥१३४॥ उस ब्राह्मण-का पूर्वोक्त चरित सुनकर तथा देखकर कितने ही लोग मुनिपदको प्राप्त हो गये और कितने ही श्रावक अवस्थाको प्राप्त हुए ॥१३५॥

अग्निभूति और वायुभूति अपने पूर्वभव सुन बड़े लज्जित हुए । लोगोंने भी उन्हें बुरा कहा इसलिए वे चुप-चाप अपने घर चले गये । वहाँ माता-पिताने भी उनकी निन्दा की ॥१३६॥ रात्रि-के समय सात्यकि मुनिराज कहीं एकान्तमें कायोत्सर्ग मुद्रासे स्थित थे सो उन्हें अग्निभूति और वायुभूति तलवार हाथमें ले मारना ही चाहते थे कि यक्षने उन्हें कील दिया जिससे वे तलवार उभारे हुए ज्योंके-त्यों खड़े रह गये ॥१३७॥ प्रातःकाल होनेपर लोगोंने मुनिराजके पास खड़े हुए उन दोनोंको देखा और 'ये वही निन्दित कार्यके करनेवाले पापी ब्राह्मण हैं' इस प्रकार कहकर उनकी निन्दा की ॥१३८॥ अग्निभूति, वायुभूति सोचने लगे कि देखो, मुनिराजका यह कितना भारी प्रभाव है कि जिनके द्वारा अनायास ही कीले जाकर हम दोनों खम्भे-जैसी दशाको प्राप्त हुए हैं ॥१३९॥ उन्होंने मनमें यह भी संकल्प किया कि यदि किसी तरह इस कष्टसे हम लोगोंका छुटकारा होता है तो हम अवश्य ही जिनधर्म धारण करेंगे क्योंकि उसकी सामर्थ्य हम इस तरह प्रत्यक्ष देख चुके हैं ॥१४०॥

उसी समय उनका कष्ट सुन उनके माता-पिता शीघ्र दौड़े आये और मुनिराजके चरणोंमें गिरकर उन्हें प्रसन्न करनेका उद्यम करने लगे ॥१४१॥ करुणाके धारक मुनिराज अपना योग समाप्त कर जब विराजमान हुए तब उन्होंने यह सब क्षेत्रपालके द्वारा किया जान विनयपूर्वक बैठे क्षेत्रपालसे कहा कि—'यक्ष ! यह इनका अनीतिसे उत्पन्न दोष क्षमा कर दिया जाये । कर्मसे प्रेरित इन दोनों प्राणियोंपर दया करो' ॥१४२–१४३॥ इस प्रकार राजाओंकी आज्ञाके समान मुनिराजकी आज्ञा प्राप्त कर 'जैसी आपकी आज्ञा हो' यह कह क्षेत्रपालने दोनोंको छोड़ दिया ॥१४४॥

१. प्रासाद्य म., ग. । २. वर्त्तिनौ म., ग. । ३. जिघांसौ म., ग. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनिमासाद्य तौ धर्मं श्रुत्वा द्विविधमप्यतः । अणुव्रतानि संगृह्य श्रावकत्वमुपागतौ ॥१४५॥
अनुपाल्य चिरं धर्मं सम्यग्दर्शनभावितौ । कालेन कालधर्मेण जातौ सौधर्मवासिनौ ॥१४६॥
अश्रद्धाय मतं जैनं पितरौ तु मृतौ तयोः । [1]जातौ कुयोनिपान्थौ तौ यतो मिथ्यात्वमोहितौ ॥१४७॥
देवौ देवसुखं भुक्त्वा च्युत्वाऽयोध्यानिवासिनः । जातौ समुद्रदत्तस्य धारिण्यां श्रेष्ठिनः सुतौ ॥१४८॥
पूर्णभद्रस्तयोर्ज्येष्ठो मणिभद्रोऽनुजोऽभवत् । अविराधितसम्यक्त्वौ तौ च शासनवत्सलौ ॥१४९॥
गुरोर्महेन्द्रसेनाच्च धर्मं श्रुत्वा पितानयोः । तत्पुरेश्वरराजश्च भव्याश्चान्ये प्रवव्रजुः ॥१५०॥
अन्यदा मुनिपूजार्थं रथेन प्रस्थितौ पुरः । चाण्डालं सारमेयीं च तौ दृष्ट्वा स्नेहमागतौ ॥१५१॥
वन्दित्वा तद्गुरुं भक्त्या पृच्छतः स्म सविस्मयौ । शुनीचाण्डालयोः स्नेहः स्वामिन्नौ किमभूदिति॥१५२॥
गुरुराहावधिज्ञानज्ञातलोकत्रयस्थितिः । विप्रजन्मनि यौ तौ वां पितरौ ताविमौ यतः ॥१५३॥
निशम्येति गुरुं नत्वा गत्वा तौ धर्ममूचतुः । भवान्तरकथाप्रायमुपशान्तौ ततस्तकौ ॥१५४॥
निर्वेदी दीनतां त्यक्त्वा त्यक्त्वाहारं चतुर्विधम् । मासेन श्वपचो मृत्वा भूत्वा नन्दीश्वरोऽमरः ॥१५५॥
सारमेयीं पुरेऽत्रैव राजपुत्रित्वमागताम् । अबोधयदसावेत्य स्वयंवरगतां सतीम् ॥१५६॥

तदनन्तर मुनिराजके समीप आकर अग्निभूति, वायुभूतिने मुनि और श्रावकके भेदसे दो प्रकारका धर्म श्रवण किया और अणुव्रत धारण कर श्रावक पद प्राप्त किया ॥१४५॥ सम्यग्दर्शनकी भावनासे युक्त दोनों ब्राह्मणपुत्र चिरकाल तक धर्मका पालन कर मृत्युको प्राप्त हो सौधर्म स्वर्गमें देव हुए ॥१४६॥ उनके माता-पिताको जैनधर्मकी श्रद्धा नहीं हुई इसलिए वे मिथ्यात्वसे मोहित हो मरकर कुगतिके पथिक हुए ॥१४७॥

अग्निभूति, वायुभूतिके जीव जो सौधर्म स्वर्गमें देव हुए थे, स्वर्गके सुख भोग, वहाँसे च्युत हुए और अयोध्या नगरीमें रहनेवाले समुद्रदत्त सेठकी धारिणी नामक स्त्रीसे पुत्र उत्पन्न हुए ॥१४८॥ उनमें बड़े पुत्रका नाम पूर्णभद्र और छोटे पुत्रका नाम मणिभद्र था। इस पर्यायमें भी दोनोंने सम्यक्त्वकी विराधना नहीं की थी तथा दोनों ही जिन-शासनसे स्नेह रखनेवाले थे ॥१४९॥ तदनन्तर काल पाकर इन दोनोंके पिता, अयोध्याके राजा तथा अन्य भव्य जीवोंने महेन्द्रसेन गुरुसे धर्म श्रवण कर जिन-दीक्षा धारण कर ली ॥१५०॥ किसी समय पूर्णभद्र और मणिभद्र, रथपर सवार हो मुनिपूजाके लिए नगरसे जा रहे थे सो बीचमें एक चाण्डाल तथा कुत्तीको देखकर स्नेहको प्राप्त हो गये ॥१५१॥

मुनिराजके पास जाकर दोनोंने भक्तिपूर्वक उन्हें नमस्कार किया। तदनन्तर आश्चर्यसे युक्त हो उन्होंने पूछा कि हे स्वामिन्! कुत्ती और चाण्डालके ऊपर हम दोनोंको स्नेह किस कारण उत्पन्न हुआ? ॥१५२॥

अवधिज्ञानके द्वारा तीनों लोकोंकी स्थितिको जाननेवाले मुनिराजने कहा कि ब्राह्मण-जन्ममें तुम्हारे जो माता-पिता थे वे ही ये कुत्ती और चाण्डाल हुए हैं सो पूर्वभवके कारण इनपर तुम्हारा स्नेह हुआ है ॥१५३॥ इस प्रकार सुनकर तथा मुनिराजको नमस्कारकर दोनों भाई कुत्ती और चाण्डालके पास पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने उन दोनोंको धर्मका उपदेश दिया तथा पूर्वभवकी कथा सुनायी जिससे वे दोनों ही शान्त हो गये ॥१५४॥ चाण्डालने संसारसे विरक्त हो दीनता छोड़ चारों प्रकारके आहारका त्याग कर दिया और एक माहका संन्यास ले मरकर नन्दीश्वर द्वीपमें देव हुआ ॥१५५॥ कुत्ती इसी नगरमें राजाकी पुत्री हुई। इधर राजपुत्रीका स्वयंवर हो रहा था। जिस समय वह स्वयंवरमें स्थित थी उसी समय पूर्वोक्त नन्दीश्वर देवने

---

१. यातौ म., ग.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञातसंसारनिःसारा सम्यक्त्वपरिभाविता । सितैकवसना कन्या प्राव्रजन्नवयौवना ॥१५७॥
अनुष्ठाय चिरं श्रेष्ठं श्रावकव्रतमुत्तमम् । संलिख्य[1] भ्रातरौ जातौ सौधर्मे सुरसत्तमौ ॥१५८॥
च्युत्वा पुनरयोध्यायां हेमनाभस्य भूपतेः । धरावत्यां सुतौ भूतौ मधुकैटभनामकौ ॥१५९॥
अभिषिच्य मधुं राज्ये यौवराज्ये च कैटभम् । हेमनाभो महाभागो व्रतं जैनेन्द्रमग्रहीत् ॥१६०॥
मधुकैटभवीरौ तावेकवीरौ धरातले । भूतावद्भुततेजस्कौ सूर्याचन्द्रमसाविव ॥१६१॥
[2]अक्षुण्णः क्षुद्रसामन्तैरन्धकार इवैतयोः । गिरिदुर्गमुपाश्रित्य भीमकः प्रत्यवस्थितः ॥१६२॥
तद्वशीकरणार्थं तौ चेलतुर्मधुकैटभौ । प्राप्तौ वटपुरं यत्र वीरसेनोऽवतिष्ठते ॥१६३॥
अभ्युद्गतेन तेनासौ प्रीतेन मधुरादरात् । सान्तःपुरेण वीरेण स्वामिभक्त्यातिमानितः ॥१६४॥
चन्द्राभा चन्द्रिकेवास्य मानिनी रूपमानिनी । अहरन्मधुराजस्य मनो मधुरभाषिणी ॥१६५॥
शस्त्रशास्त्रकठोरापि चन्द्राभादर्शनान्मधोः । आर्द्रभावमगाद् बुद्धिश्चन्द्रकान्तशिला यथा ॥१६६॥
राज्यं यदनया युक्तं रूपसौभाग्ययुक्तया । सुखाय तदहं मन्ये वियुक्तं तु विषोपमम् ॥१६७॥
चन्द्राभयोपगूढस्य महोदयमहीभृतः । संपूर्णस्येव चन्द्रस्य कलङ्कोऽप्यतिशोभते ॥१६८॥

आकर उसे सम्बोधा ॥१५६॥ जिससे संसारको असार जान सम्यक्त्वकी भावनासे युक्त उस नवयौवनवती राजपुत्रीने एक सफेद साड़ीका परिग्रह रख आर्यिकाकी दीक्षा ली ॥१५७॥

पूर्णभद्र और मणिभद्र नामक दोनों भाई चिरकाल तक श्रावकके उत्तम एवं श्रेष्ठ व्रतका पालन कर अन्तमें सल्लेखना द्वारा सौधर्म स्वर्गमें उत्तम देव हुए ॥१५८॥ पश्चात् स्वर्गसे च्युत होकर अयोध्या नगरीके राजा हेमनाभकी धरावती रानीमें मधु और कैटभ नामक पुत्र हुए ॥१५९॥ तदनन्तर किसी दिन राज्यगद्दीपर मधुका और युवराजपदपर कैटभका अभिषेक कर महानुभाव राजा हेमनाभने जिनदीक्षा धारण कर ली ॥१६०॥ मधु और कैटभ पृथिवीतलपर अद्वितीय वीर हुए। वे दोनों सूर्य और चन्द्रमाके समान अद्भुत तेजके धारक थे ॥१६१॥

तदनन्तर जो क्षुद्र सामन्तोंके द्वारा वशमें नहीं किया जा सका था ऐसा अन्धकारके समान भयंकर भीमक नामका एक राजा पहाड़ी दुर्गका आश्रय पा मधु और कैटभके विरुद्ध खड़ा हुआ सो उसे वश करनेके लिए दोनों भाई चले। चलते-चलते वे उस वटपुर नगरमें पहुँचे जहाँ वीरसेन राजा रहता था ॥१६२-१६३॥ प्रसन्नतासे युक्त राजा वीरसेनने सम्मुख आकर बड़े आदरसे मधुकी अगवानी की और स्वामि-भक्तिसे प्रेरित हो अपने अन्तःपुरके साथ उसका खूब सम्मान किया ॥१६४॥

राजा वीरसेनकी एक चन्द्राभा नामकी स्त्री थी जो चन्द्रिकाके समान सुन्दर और मानवती थी। मधुर-मधुर भाषण करनेवाली उस चन्द्राभाने राजा मधुका मन हर लिया ॥१६५॥ जिस प्रकार अत्यन्त कठोर चन्द्रकान्तमणिकी शिला, चन्द्रमाको देखनेसे, आर्द्रभावको प्राप्त हो जाती है उसी प्रकार शस्त्र और शास्त्रोंके अभ्याससे अत्यन्त कठोर होनेपर भी मधु राजाकी बुद्धि चन्द्राभाको देखनेसे आर्द्रभावको प्राप्त हो गयी ॥१६६॥ वह विचार करने लगा कि जो राज्य, रूप और सौभाग्यसे युक्त इस चन्द्राभासे सहित है उसे ही मैं सुखका कारण मानता हूँ और इससे रहित राज्यको विषके समान समझता हूँ ॥१६७॥ जिस प्रकार पूर्ण चन्द्रमाका कलंक भी सुशोभित होता है उसी प्रकार चन्द्राभाके द्वारा आलिंगित मुझ राजाधिराजका कलंक भी शोभा देगा। भावार्थ—परस्त्रीके सम्पर्कसे यद्यपि मेरा अपवाद होगा—मैं कलंकी कहलाऊँगा तथापि चन्द्रमाके कलंकके समान मेरा वह कलंक शोभाका ही कारण होगा ॥१६८॥ जिस प्रकार

१. सल्लेखनां कृत्वा। २. अक्षुद्रः म., ग.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चन्द्राभासंगसंजातविकासस्य सुगन्धिताम् । कुमुदाकरराजस्य पङ्कगन्धो न बाधते ॥१६९॥
इति संचित्य रागान्धः स तस्या हरणे मनः । न्यधत्त मधुरुर्वीशो मतिमानपि मान्यपि ॥१७०॥
ततो भीमकमुद्वृत्तं वशीकृत्य कृती मधुः । अयोध्यापुरमागत्य चन्द्राभाहृतमानसः ॥१७१॥
सान्तःपुरान् स्वसामन्तान् स्वपुरं स्वपुरस्थितान् । सत्वरं सत्त्वसंपन्नः समाहूय यथायथम् ॥१७२॥
सर्वान् संपूज्य संपूज्य विचित्राम्बरभूषणैः । विससर्ज निजावासान् प्रसादाह्लादिताननान् ॥१७३॥
अतिसंमान्य सस्त्रीकं तथा वटपुरेश्वरम् । अजीगमदतिप्रीतं प्रीतिपूर्वं निजास्पदम् ॥१७४॥
चन्द्राभायास्तु यद् योग्यमद्याप्याभरणं वरम् । न सज्जमिति तावत्सा तेन रुद्ध्वा निजीकृता ॥१७५॥
प्रभुत्वमखिलस्त्रीणां महादेवीपदेन सः । दत्त्वा कामान् यथाकामं न्यषेवत तया मधुः ॥१७६॥
तस्याः कौमारभर्त्ता तु वियोगानलदीपितः । उन्मत्ततां परां प्राप्तः पर्यटन् क्षितिमाकुलः ॥१७७॥
चन्द्राभालापवार्त्तार्त्तः पुररथ्यासु पर्यटन् । धूसरो वीक्षितो जातु प्रासादस्थितया तया ॥१७८॥
जातकारुण्ययावाचि[1] मधुराजस्ततोऽनया । नाथ ! पूर्वपतिं पश्य भ्रमन्तं मे प्रलापिनम् ॥१७९॥
तस्मिन्नवसरे चण्डैस्तैः कश्चित्पारदारिकः । गृहीत्वा दर्शितस्तस्मै नृपाय न्यायवेदिने ॥१८०॥
किमहो[2] देवदण्डोऽस्य तेनोक्तं सोऽपराधवान् । अत्यन्तपापभागेष तस्मादस्य विधीयते ॥१८१॥

चन्द्रिकाके संगसे विकसित कुमुदवनकी सुगन्धिको कीचड़की दुर्गन्ध नष्ट नहीं कर सकती उसी प्रकार चन्द्राभाके संगसे प्रफुल्लित मेरी कीर्तिको अपवादरूपी कीचड़की दुर्गन्ध नष्ट नहीं कर सकेगी ॥१६९॥ राजा मधु यद्यपि बहुत बुद्धिमान् और अभिमानी था तथापि रागसे अन्धा होनेके कारण उसने उक्त विचार कर चन्द्राभाके हरण करनेमें अपना मन लगाया—उसके हरनेका मनमें पक्का निश्चय कर लिया ॥१७०॥

तदनन्तर उच्छृङ्खल राजा भीमकको वशकर कृतकृत्य होता हुआ राजा मधु अयोध्या नगरीमें वापस आ गया। वहाँ चूँकि चन्द्राभाके द्वारा उसका मन हरा गया था इसलिए उसने बड़े उत्साहसे युक्त हो अपने समस्त सामन्तोंको अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ शीघ्र ही अपने नगरमें बुलाया और यथायोग्य नाना प्रकारके वस्त्राभूषणोंसे सबका सत्कारकर उन्हें अपने-अपने घर विदा कर दिया। स्वामीके द्वारा यह सत्कार प्राप्तकर सबके मुख प्रसन्नतासे विकसित हो रहे थे। वटपुरका राजा वीरसेन भी अपनी स्त्री चन्द्राभाके साथ वहाँ आया था सो राजा मधुने उसका बहुत भारी सत्कार कर उसे यह कहकर अपने घरके लिए विदा कर दिया कि चन्द्राभाके योग्य आभूषण अभी तक तैयार नहीं हो सके हैं इसलिए तैयार होनेपर भेज देंगे। भोला-भाला वीरसेन चला गया और चन्द्राभाको रोककर राजा मधुने अपनी स्त्री बना ली। महादेवीका पद देकर उसने चन्द्राभाको समस्त स्त्रियोंका प्रभुत्व प्रदान किया। इस प्रकार वह उसके साथ मनचाहे भोग भोगने लगा ॥१७१–१७६॥ इधर चन्द्राभाका पहलेका पति उसकी विरहरूपी अग्निसे प्रदीप्त हो अत्यधिक उन्मत्तताको प्राप्त हो पृथिवीपर बड़ी व्यग्रतासे इधर-उधर घूमने लगा ॥१७७॥ एक दिन वह 'चन्द्राभा चन्द्राभा' इस प्रकारके आलापकी वार्तासे दुखी हुआ धूलि-धूसरित हो नगरकी गलियोंमें घूम रहा था कि महलपर खड़ी चन्द्राभाने उसे देख लिया ॥१७८॥ देखते ही के साथ उसके हृदयमें दया उमड़ आयी। उसने पास ही बैठे राजा मधुसे कहा कि हे नाथ ! देखो यह मेरा पूर्व पति कैसा प्रलाप करता हुआ घूम रहा है ॥१७९॥

उसी अवसरपर कुछ क्रूर कर्मचारियोंने परस्त्रीसेवन करनेवाले किसी पुरुषको पकड़कर न्यायके वेत्ता राजा मधुके लिए दिखाया और कहा कि हे देव ! इसके लिए कौन-सा दण्ड योग्य है ? राजा मधुने उत्तर दिया कि यह अपराधी अत्यन्त पापी है इसलिए इसके हाथ पाँव तथा

१. यातकारुण्यया म., ग. । २. किमिह म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हस्तपादशिरच्छेदं देहदण्डं भयास्पदम् । देव्या चोक्तं तदा देव ! अयं दोषो न किं तव ॥१८२॥
[1]तद्वचसा स म्लानो हि हिमानीहतपद्मवत् । चिन्तयेदनया तथ्यं ममोक्तं हितमिच्छया ॥१८३॥
परस्त्रीहरणं सत्यं दुर्गतेर्दुःखकारणम् । ज्ञात्वा विरागिणं कान्तमूचे सापि विरागिणी ॥१८४॥
किं भोगैरीदृशैः कृत्यं परस्त्रीविषयैः प्रभो । किंपाकसदृशैः स्वामिन् ! दुःखदैः प्रीणकैरपि ॥१८५॥
भोगास्ते स्वपरयोर्ये नोपतापस्य हेतवः । सम्मताः साधुलोकस्य नेतरे विषयात्मकाः ॥१८६॥
इति प्रबोध्यमानोऽयं मधुश्चन्द्राभया शनैः । मुमोच सुदृढीभूतं मोहकादम्बरोमदम् ॥१८७॥
जगाद च स तां देवीं प्रसन्नमतिरादरात् । साधु ! साधु ! त्वया साध्वि ! प्रतिपादितमत्र मे ॥१८८॥
न युक्तमीदृशं कर्म पुंसामाचरितुं सताम् । परपीडाकरं वाढं परत्रेह च पापकृत् ॥१८९॥
मादृक्षोऽपि यदीदृक्षं कर्म लोकविगर्हितम् । करोति तत्र किं वाच्यमव्युत्पन्नः पृथग्जनः ॥१९०॥
स्वकलत्रेऽपि यत्रायं रागोऽत्यर्थं निषेवितः । कर्मबन्धस्य हेतुः स्यात् किं पुनः परयोषिति ॥१९१॥
ज्ञानाङ्कुशनिरुद्धोऽपि मनोमत्तमहाद्विपः । उत्पथेन नयत्युग्रः किमत्र कुरुते बुधः ॥१९२॥
निरुद्ध्य निशितैर्दण्डैरनङ्कुशमनोगजम् । प्रवर्त्तयन्ति ये मार्गे केचिदेवात्र ते भटाः ॥१९३॥
दण्डैर्मनोगजो मत्तो रतिवासितया हृतः । यावन्न युज्यते तावत् कुतस्तस्य [2]मदक्षतिः ॥१९४॥
प्रयत्नेन मनोहस्ती यावन्नात्र वशीकृतः । तावदारोहकस्यापि भयायैव न शान्तये ॥१९५॥

शिर काटकर इसे भयंकर शारीरिक दण्ड दिया जाये। देवी चन्द्राभाने उसी समय कहा कि हे देव ! क्या यह अपराध आपने नहीं किया है ? आपने भी तो परस्त्रीहरणका अपराध किया है ॥१८०-१८२॥ चन्द्राभाके उक्त वचन सुनते ही राजा मधु तुषारसे पीड़ित कमलके समान म्लान हो गया—उसके मुखकी कान्ति नष्ट हो गयी। वह विचार करने लगा कि मेरा हित चाहने वाली इस चन्द्राभाने यह सत्य ही कहा है ॥१८३॥ सचमुच ही परस्त्रीहरण दुर्गतिके दुःखका कारण है। पतिको विरागी देख चन्द्राभाने भी विरक्त हो कहा कि हे प्रभो ! इन परस्त्रीविषयक भोगोंसे क्या प्रयोजन है ? हे नाथ ! ये भोग यद्यपि वर्तमानमें सुख पहुँचानेवाले हैं तथापि परिपाक काल-में किंपाक फलके समान दुःखदायी हैं। सज्जन पुरुषोंको वे ही भोग इष्ट होते हैं जो निज और पर के सन्तापके कारण नहीं हैं। अन्य विषयरूप भोगोंको सत्पुरुष भोग नहीं मानते ॥१८४-१८६॥

चन्द्राभाके द्वारा इस प्रकार समझाये जानेपर राजा मधुने धीरे-धीरे मोहरूपी मदिराके सुदृढ़ मदको छोड़ दिया ॥१८७॥ और बड़ी प्रसन्नतासे आदरपूर्वक उससे कहा कि ठीक, ठीक, हे साध्वि ! तुमने बहुत अच्छी बात कही ॥१८८॥ यथार्थमें सत्पुरुषोंको ऐसा काम करना उचित नहीं जो परलोक तथा इस लोकमें दूसरोंको पीड़ा पहुँचानेवाला तथा पापको बढ़ानेवाला हो ॥१८९॥ जब मेरे जैसा प्रबुद्ध व्यक्ति भी ऐसा लोक-निन्द्य कार्य करता है तब अविवेकी साधारण मनुष्यकी तो बात ही क्या है ? ॥१९०॥ जहाँ अपनी स्त्रीके विषयमें भी सेवन किया हुआ यह अत्यधिक राग कर्मबन्धका कारण है वहाँ परस्त्रीविषयक रागकी तो कथा ही क्या है ? ॥१९१॥ यह मनरूपी मदोन्मत्त महा हाथी ज्ञानरूपी अंकुशसे रोके जानेपर भी इस जीवको कुमार्गमें ले जाता है। यहाँ विद्वान् क्या करे ? ॥१९२॥ जो इस अनंकुश मनरूपी गजको तीक्ष्ण दण्डोंसे रोककर सुमार्गमें ले जाते हैं ऐसे शूर-वीर पुरुष संसारमें विरले ही हैं ॥१९३॥ रतिरूपी हस्तिनीके द्वारा हरा हुआ यह मनरूपी मत्त हाथी जबतक इन्द्रिय-विजयरूपी दण्डोंसे युक्त नहीं किया जाता है तबतक इसके मदका नाश कैसे हो सकता है ? ॥१९४॥ यह मनरूपी हाथी जबतक प्रयत्नपूर्वक वशमें नहीं किया गया है तबतक यह चढ़नेवालेके लिए भयका ही कारण रहता है, शान्तिका नहीं ॥१९५॥

१. तद्वचसामलाभो हि हेमन्ते पद्मवन्नृपः ग. । २. मदक्षितिः म., ग. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुवशस्तु मनोहस्ती तपोमयरणक्षितौ । पापसेनां निगृह्णाति साध्वाधोरणनोदितः ॥१९६॥
शब्दरूपरसस्पर्शगन्धसस्याभिलाषिणः । हृषीकमृगयूथस्य मनोमारुतहारिणः ॥१९७॥
निरुध्य प्रसभं धैर्यं दृढवागुरया चितम् । चिरसंचितपापस्य करोमि तपसा क्षयम् ॥१९८॥
इत्याभाष्य मनोवेगं निगृह्य विदधे मधुः । धियं बोधपयोधौ तां तापस्ये तापशान्तये ॥१९९॥
आगत्य च तदाऽयोध्यां नाम्ना विमलवाहनः । मुनिर्मुनिसहस्रेण सहस्राम्रवनेऽवसत् ॥२००॥
मधुः सकैटभः श्रुत्वा तमयात्सवधूजनः । प्रपूज्य विधिना धर्मं शुश्राव च विशेषतः ॥२०१॥
भोगसंसारशारीरपुरवैराग्यसंगतः । प्रवव्राज सह भ्रात्रा क्षत्रियैर्बहुभिर्मधुः ॥२०२॥
विशुद्धान्वयसंभूताः शतशोऽथ सहस्रशः । प्राव्रजन् व्रतशीलाढ्याश्चन्द्राभाद्या नृपस्त्रियः ॥२०३॥
माधवोऽपि निजं राज्यं ररक्ष कुलवर्धनः । वर्धमानः शरीरेण पौरुषेण जयेन च ॥२०४॥
चक्रतुस्तौ तपो घोरं राजानौ मधुकैटभौ । व्रतगुप्तिसमित्याढ्यौ निर्ग्रन्थौ ग्रन्थवर्जितौ ॥२०५॥
एक एव तयोरासीदङ्गोपाङ्गपरिग्रहः । न बाह्याभ्यन्तरासंगादङ्गोपाङ्गपरिग्रहः ॥२०६॥
षष्ठाष्टमादिषण्मासपर्यन्तोपोषितावृषी । निःशेषैरागमोक्तैस्तौ चक्रतुः कर्मनिर्जराम् ॥२०७॥
उत्तुङ्गगिरिशृङ्गेषु तयोरातापनस्थयोः । स्वेदस्य बिन्दवः पेतुर्विलीनस्येव कर्मणः ॥२०८॥
वर्षासु जीवरक्षार्थं वृक्षमूलस्थयोर्वपुः । युधीव [1]शरधाराभिर्न भिन्नं धृतिकण्टकम्[2] ॥२०९॥

इसके विपरीत अच्छी तरह वशमें किया हुआ मनरूपी हाथी, साधुरूपी महावतके द्वारा प्रेरित हो तपरूपी रणभूमिमें पापरूपी सेनाको अच्छी तरह रोक लेता है ॥१९६॥ शब्द, रूप, रस, स्पर्श और गन्धरूपी धान्यकी अभिलाषा रखनेवाले एवं मनरूपी वायुसे प्रेरित हो चौकड़ी भरनेवाले इस इन्द्रियरूपी मृगोंके झुण्डके संचित धैर्यको ध्यानरूपी मजबूत जालसे जबरदस्ती रोककर मैं तपके द्वारा चिरसंचित पापका अभी हाल क्षय करता हूँ ॥१९७-१९८॥ इस प्रकार कहकर तथा मनके वेगको रोककर राजा मधुने ज्ञानरूपी जलसे धुली हुई अपनी बुद्धिको सन्तापकी शान्तिके लिए तपश्चरणमें लगाया ॥१९९॥

उसी समय विमलवाहन नामक मुनिराज एक हजार मुनियोंके साथ अयोध्या नगरीमें आकर उसके सहस्राम्रवनमें ठहर गये ॥२००॥ मुनियोंके आगमनका समाचार सुन राजा मधु, अपने छोटे भाई कैटभ और स्त्रीजनोंके साथ उनके दर्शन करनेके लिए गया। विधिपूर्वक उनकी पूजा कर उसने विशेष रूपसे धर्मश्रवण किया ॥२०१॥ तथा भोग, संसार, शारीरिक सुख एवं नगर आदिसे विरक्त हो उसने भाई कैटभ तथा अन्य अनेक क्षत्रियोंके साथ जिन-दीक्षा ले ली ॥२०२॥ विशुद्ध कुलमें उत्पन्न तथा व्रत और शीलसे युक्त चन्द्राभा आदि सैकड़ों-हजारों रानियाँ भी दीक्षित हो गयीं—आर्यिका बन गयीं ॥२०३॥ राजा मधुके बाद उसका पुत्र कुलवर्धन, जो शरीर, पुरुषार्थ तथा विजयसे निरन्तर बढ़ रहा था अपने कुलकी रक्षा करने लगा ॥२०४॥

राजा मधु और कैटभ घोर तप करने लगे। वे व्रत गुप्ति और समितिसे युक्त थे तथा परिग्रहसे रहित निर्ग्रन्थ-मुनिराज थे ॥२०५॥ उस समय उन दोनोंके एक अंगोपांग ही परिग्रह था अथवा बाह्य और आभ्यन्तर आसक्तिका अभाव होनेसे अंगोपांग भी परिग्रह नहीं था ॥२०६॥ वे दोनों मुनि वेला-तेलाको आदि लेकर छह-छह माहके उपवास करते थे और आगममें प्रतिपादित समस्त आचरणोंसे कर्मोंकी निर्जरा करते थे ॥२०७॥ जब कभी वे ऊँचे-ऊँचे पहाड़ोंकी चोटियोंपर आतापन योग लेकर विराजमान होते थे तब उनके शरीरसे पसीनाकी बूँदें टपकने लगती थीं और ऐसी जान पड़ती थीं मानो कर्म ही गल-गलकर नीचे गिर रहे हों ॥२०८॥ वर्षाऋतुमें जीवोंकी रक्षा-

१. जलधाराभिः पक्षे बाणधाराभिः । २. धैर्यकवचयुक्तम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यामिनीषु मनीषिभ्यां हैमनीषु हिमानिलाः । सेहिरे प्रतिमास्थाभ्यां देहच्छायाब्जिनीप्लुषः ॥२१०॥
अनुप्रेक्षामिरुद्धाभिर्धर्मचारित्रशुद्धिभिः । चक्रतुः संवरं धीरौ परीषहजयेन च ॥२११॥
स्वाध्यायध्यानयोगस्थौ वैय्यावृत्यक्रियोद्यतौ । रत्नत्रयविशुद्धया तौ दृष्टौ दृष्टान्ततां गतौ ॥२१२॥
बहुवर्षसहस्राणि संचितोरुतपोधनौ । मधुकैटभयोगीशौ शल्यदोषविवर्जितौ ॥२१३॥
अन्ते संमेदमारुह्य प्रायोपगमनेन तौ । मासक्षपणयोगेन समाराध्योज्झिताङ्गकौ ॥२१४॥
आरणाच्युतकल्पे ताविन्द्रसामानिकौ प्रभू । देवीदेवसहस्राणां [1]जातौ प्रत्येकमीश्वरौ ॥२१५॥
द्वाविंशतिपयोराशिप्रमाणपरमायुषौ । बुभुजाते सुखं सम्यक् सम्यग्दर्शनभावितौ ॥२१६॥
अवतीर्य मधुर्जातो रुक्मिणीकुक्षि भूमणिः । कृष्णस्य भारते पुत्रो नाम्ना प्रद्युम्न इत्यसौ ॥२१७॥
कैटभोऽपि दिवश्च्युत्वा भ्रातास्यैव भविष्यति । जाम्बवत्यां महादेव्यां शम्बः कृष्णनिभद्युतिः ॥२१८॥
जन्मान्तरमहाप्रीत्या परस्परहितोद्यतौ । धीरौ चरमदेहौ तौ शम्बप्रद्युम्नसुन्दरौ ॥२१९॥
कान्ताविरहसंतापादार्तध्यानपरायणः । भ्रान्त्वा संसारकान्तारं चिरं वटपुरप्रभुः ॥२२०॥
मनुष्यभावमापन्नः स भूत्वाऽज्ञानतापसः । धूमकेतुरिवोद्दीप्तो धूमकेतुरभूत्सुरः ॥२२१॥

के लिए वे विहार बन्द कर वृक्षोंके नीचे विराजमान रहते थे। उस समय धैर्यरूपी कवचको धारण करनेवाला उनका शरीर युद्धमें बाणोंकी पंक्तिके समान जलकी धाराओंसे खण्डित नहीं होता था। भावार्थ—वर्षा योगके समय वे वृक्षोंके नीचे बैठते थे और जलकी अविरल धाराओंको बड़े धैर्यके साथ सहन करते थे ॥२०९॥ हेमन्त ऋतुकी रात्रियोंमें वे प्रतिमा योगसे विराजमान रहकर शरीरकी कान्तिरूपी कमलिनीको जलानेवाली तुषार वायुको बड़ी शान्तिसे सहन करते थे ॥२१०॥ वे दोनों धीर, वीर, मुनिराज, उत्तम अनुप्रेक्षाओं, दशधर्मों, चारित्रकी शुद्धियों और परीषह जयके द्वारा संवर करते थे ॥२११॥ वे स्वाध्याय, ध्यान तथा योगमें स्थित रहते थे, वैयावृत्त्य करनेमें उद्यत रहते थे और रत्नत्रयकी विशुद्धताके द्वारा दृष्टान्तपनेको प्राप्त देखे गये थे ॥२१२॥ इस प्रकार अनेक हजार वर्ष तक जिन्होंने तपरूपी विशाल धनका संचय किया था और जो शल्यरूपी दोषसे सदा दूर रहते थे ऐसे मधु और कैटभ मुनिराज अन्तमें सम्मेदाचलपर आरूढ़ हुए और वहाँ एक महीनेका प्रायोपगमन संन्यास लेकर उन्होंने समाधिपूर्वक शरीरका त्याग किया ॥२१३-२१४॥ शरीर त्यागकर वे आरण और अच्युत स्वर्गमें हजारों देव-देवियोंके स्वामी इन्द्र और सामानिक देव हुए ॥२१५॥ वहाँ बाईस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयुको धारण करनेवाले वे दोनों सम्यग्दृष्टि देव स्वर्गके उत्तम सुखका उपभोग करने लगे ॥२१६॥

उनमें जो मधुका जीव था वह स्वर्गसे च्युत हो भरत क्षेत्रमें कृष्ण नारायणकी रुक्मिणी रानीके उदररूपी भूमिका मणि बन प्रद्युम्न नामक पुत्र हुआ ॥२१७॥ और जो कैटभका जीव था वह भी स्वर्गसे च्युत हो कृष्णकी जाम्बवती पट्टरानीमें कृष्णके समान कान्तिको धारण करनेवाला प्रद्युम्नका शम्ब नामका छोटा भाई होगा ॥२१८॥ प्रद्युम्न और शम्ब दोनों ही भाई अत्यन्त धीर-वीर चरमशरीरी एवं सुन्दर थे और दूसरे जन्मसम्बन्धी महाप्रीतिके कारण परस्पर एक दूसरेके हित करनेमें उद्यत रहते थे ॥२१९॥

वटपुरका स्वामी राजा वीरसेन चन्द्राभाके विरहजन्य सन्तापसे आर्तध्यानमें तत्पर रहता हुआ चिर काल तक संसाररूपी अटवीमें भ्रमण करता रहा ॥२२०॥ अन्तमें मनुष्य पर्यायको प्राप्त कर वह अज्ञानी तापस हुआ और आयुके अन्तमें मरकर धूमकेतु—अग्निके समान प्रचण्ड धूमकेतु नामका देव हुआ ॥२२१॥

१. यातौ म.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राक्स्त्रीवैरानुबन्धेन स प्रबोधमुपेयुषा । शिशुं व्ययोजयन्मात्रा धिग्वैरं पापवर्धनम् ॥२२२॥
प्रद्युम्नो रक्षितोऽपायात्स्वपुण्यैः पूर्वसंचितैः । पुण्यानामेव सामर्थ्यमपायपरिरक्षणे ॥२२३॥
सीमंधरजिनेन्द्रेण तदानीमिति भाषितम् । श्रुत्वा पद्मरथश्चक्री प्रणनाम प्रमोदवान् ॥२२४॥
नारदोऽपि जिनं नत्वा प्रमोदेन वशीकृतः । समुत्पत्य मरुन्मार्गे मेघकूटं समाययौ ॥२२५॥
कालसंवरमानन्द्य पुत्रलाभोत्सवेन सः । देवीं कनकमालां च स्तुत्वा पुत्रवतीं मुहुः ॥२२६॥
रुक्मिण्यास्तनुजं दृष्ट्वा कुमारशतसेवितम् । गूढवृत्तप्रमोदेन रोमाञ्चमभजत्परम् ॥२२७॥
प्रणामेनार्चितस्तेषां दत्त्वाशिषमतिद्रुतम् । विथदुत्पत्य संप्राप्तो द्वारिकां नारदो मुनिः ॥२२८॥
यथागतं यथादृष्टं यथाश्रुतमशेषतः । स प्रद्युम्नकथां कृत्वा यादवेभ्यो मुदं ददौ ॥२२९॥
देवीं च रुक्मिणीं दृष्ट्वा विकासिमुखपङ्कजः । सीमंधरजिनेन्द्रोक्तं प्रतिपाद्य पुनर्जगौ ॥२३०॥
दृष्टो रुक्मिणि ते पुत्रो मया क्रीडन् कुमारकः । खचरेशगृहे देवकुमार इव रूपवान् ॥२३१॥
लब्धषोडशलाभोऽयं कृतप्रज्ञप्तिसंग्रहः । अमोघं षोडशे वर्षे समेष्यति सुतस्तव ॥२३२॥
[1]तस्यागमनवेलायामुद्याने तव रुक्मिणि । शिखी कूजिष्यतेऽत्युच्चैरकाले प्रियसूचनः ॥२३३॥
शुष्का तद्गतवेलायामुद्यानमणिवापिका । सुतागमनवेलायां पूर्यते साम्बुजाम्बुना ॥२३४॥
तव शोकापनोदाय शोकापनुदसूचकः । अशोकः पादपोऽकाले मुञ्चत्यङ्कुरपल्लवान् ॥२३५॥

ज्यों ही उसे पूर्वजन्मसम्बन्धी वैरका स्मरण आया त्यों ही उसने बालक प्रद्युम्नको मातासे वियुक्त कर दिया सो आचार्य कहते हैं कि पापको बढ़ानेवाले इस वैर-भावको धिक्कार है ॥२२२॥ अपने पूर्व-संचित पुण्यने प्रद्युम्नकी मृत्युसे रक्षा की सो ठीक ही है क्योंकि अपायसे रक्षा करनेमें पुण्यकी ही सामर्थ्य कारण है ॥२२३॥ इस प्रकार उस समय सीमन्धर जिनेन्द्रके द्वारा प्रतिपादित प्रद्युम्नका चरित श्रवण कर चक्रवर्ती राजा पद्मरथने बड़ी प्रसन्नतासे जिनेन्द्र भगवान्‌को प्रणाम किया ॥२२४॥

इधर आनन्दके वशीभूत हुए नारद, सीमन्धर जिनेन्द्रको नमस्कार कर आकाशमार्गमें जा उड़े और मेघकूट नामक पर्वतपर आ पहुँचे ॥२२५॥ वहाँ पुत्रलाभके उत्सवसे नारदने कालसंवर राजाका अभिनन्दन किया तथा पुत्रवती कनकमाला नामकी देवीकी स्तुति की ॥२२६॥ सैकड़ों कुमार जिसकी सेवा कर रहे थे ऐसे रुक्मिणी-पुत्रको देख नारदको बड़ी प्रसन्नता हुई और वे प्रसन्नताके वेगको मनमें छिपाये हुए परम रोमांचको प्राप्त हुए ॥२२७॥ कालसंवर आदिने नमस्कार कर नारदका सम्मान किया। तदनन्तर आशीर्वाद देकर वे बहुत ही शीघ्र आकाशमें उड़कर द्वारिका आ पहुँचे ॥२२८॥ वहाँ आकर जिस प्रकार गये, जिस प्रकार देखा और जिस प्रकार सुना वह सब प्रकट कर नारदने प्रद्युम्नकी कथा कर यादवोंके लिए हर्ष प्रदान किया ॥२२९॥ तदनन्तर जिनका मुखकमल खिल रहा था ऐसे नारदने रुक्मिणी रानीको देखकर उसे सीमन्धर जिनेन्द्रके द्वारा कहा सब समाचार कह सुनाया ॥२३०॥ अन्तमें उन्होंने कहा कि हे रुक्मिणि ! मैंने विद्याधरोंके राजा कालसंवरके घर क्रीड़ा करता हुआ तुम्हारा पुत्र देखा है। वह देवकुमारके समान अत्यन्त रूपवान् है ॥२३१॥ सोलह लाभोंको प्राप्त कर तथा प्रज्ञप्तिविद्याका संग्रह कर तुम्हारा वह पुत्र सोलहवें वर्षमें अवश्य ही आवेगा ॥२३२॥

हे रुक्मिणि ! जब उसके आनेका समय होगा तब तेरे उद्यानमें असमयमें ही प्रिय समाचार-को सूचित करनेवाला मयूर अत्यन्त उच्च स्वरसे शब्द करने लगेगा ॥२३३॥ तेरे उद्यानमें जो मणिमयी वापिका सूखी पड़ी है वह उसके आगमनके समय कमलोंसे सुशोभित जलसे भर जावेगी ॥२३४॥ तुम्हारा शोक दूर करनेके लिए, शोक दूर होनेकी सूचना देनेवाला अशोक वृक्ष

१. सुतागमन ख., घ. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूकीभूय स्थितास्तावद्यावत्प्रद्युम्नदूरता । प्रत्यासन्ने पुनर्मूका मूकभावं विमुञ्चति ॥२३६॥
सुतागमनवेलैतैर्निमित्तैर्लक्ष्यतां स्फुटैः । सीमंधरविभोर्वाक्यं मान्यथामंस्त मानिता ॥२३७॥
आकर्ण्य नारदीयं तद्रुक्मिणी वचनं हितम् । श्रद्धाय प्रणतावोचदिति सा प्रस्नुतस्तनी ॥२३८॥
बन्धुकार्यमिदं साधु वात्सल्योद्यतचेतसा । कृतं त्वयाद्य मे सद्यो भगवन्परदुष्करम् ॥२३९॥
पुत्रशोकाग्निदग्धाहं निरालम्बा त्वया मुने । दत्त्वा साधारिता धीर ! नाथ ! हस्तावलम्बनम् ॥२४०॥
प्रोक्तं सीमंधरेशेन सर्वज्ञेनेह यद्यथा । तत्तथास्ति ममावश्यं जीवन्त्याः पुत्रदर्शनम् ॥२४१॥
जीवामि जिनवाक्येन कठिनीभूतमानसा । व्रज त्वमधुना स्वेच्छं पुनर्दर्शनमस्तु ते ॥२४२॥
सप्रणाममिति प्रोक्तो दत्ताशीर्नारदो ययौ । मुक्तशोका हरेरिच्छां पूरयन्तीव सा स्थिता ॥२४३॥

द्रुतविलम्बितवृत्तम्

[1]मनुजदेवनरामरमर्त्यजं विबुधजं च शिवाभ्युदयावहम् ।
मदनशम्बपुराचरितं जनश्चरतु भक्तिमना जिनशासने ॥२४४॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ शम्बप्रद्युम्नवर्णनो नाम त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥४३॥

□

असमयमें ही अंकुर और पल्लवोंको धारण करने लगेगा ॥२३५॥ तेरे यहाँ जो गूंगे हैं वे तभी तक गूँगे रहेंगे जबतक कि प्रद्युम्न दूर है। उसके निकट आते ही वे गूँगापन छोड़ देवेंगे ॥२३६॥ इन प्रकट हुए लक्षणोंसे तू पुत्रके आगमनका समय जान लेना। सीमन्धर भगवान्‌के वचनोंको अन्यथा मत मान ॥२३७॥ इस प्रकार नारदके हितकारी वचन सुन रुक्मिणीके स्तनोंसे दूध झरने लगा। वह श्रद्धापूर्वक प्रणाम कर इस प्रकार कहने लगी कि हे भगवन् ! वात्सल्य प्रकट करनेमें जिनका चित्त सदा उद्यत रहता है ऐसे आपने आज यह मेरा उत्तम बन्धुजनोंका ऐसा कार्य किया है जो दूसरोंके लिए सर्वथा दुष्कर है ॥२३८–२३९॥ हे मुने ! हे धीर ! हे नाथ ! मैं पुत्रको शोकाग्निमें निराधार जल रही थी सो आपने हाथका सहारा दे मुझे बचा लिया है ॥२४०॥ सीमन्धर भगवान्‌ने जो कहा है वह वैसा ही है और मुझे विश्वास हो गया है कि मेरे जीते रहते अवश्य ही पुत्रका दर्शन होगा ॥२४१॥ मैं अपना हृदय कठोर कर जिनेन्द्र भगवान्‌के कहे अनुसार जीवित रहूँगी। अब आप इच्छानुसार जाइए और मुझे आपका दर्शन फिर भी प्राप्त हो इस बातका ध्यान रखिए ॥२४२॥ इस प्रकार नारदसे निवेदन कर रुक्मिणीने उन्हें प्रणाम किया और नारद आशीर्वाद देकर चले गये। तदनन्तर रुक्मिणी शोक छोड़ श्रीकृष्णकी इच्छाको पूर्ण करती हुई पूर्वकी भाँति रहने लगी ॥२४३॥

इस सर्गमें कुमार प्रद्युम्न और शम्बके पूर्वभवोंका चरित लिखा गया है जिसमें उनके मनुष्यसे देव, देवसे मनुष्य, मनुष्यसे देव, देवसे मनुष्य, पुनः मनुष्यसे देव और देवसे मनुष्य तकका चरित बताया गया है तथा यह भी बताया गया है कि ये दोनों अन्तमें मोक्षके अभ्युदयको प्राप्त करेंगे इसलिए जिनशासनमें भक्ति रखनेवाले भव्यजन इस चरितका अच्छी तरह आचरण करें—ध्यानसे इसे पढ़ें-सुनें ॥२४४॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें शम्ब और प्रद्युम्नका वर्णन करनेवाला तैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥४३॥

□

१. विप्रपुत्रौ, सौधर्मे देवौ, श्रेष्ठिनो मणिभद्रपूर्णभद्रौ पुत्रौ, पुनः सौधर्मे देवौ, मधुकैटभौ, अच्युते देवौ ततः प्रद्युम्नशम्बकुमारौ—(ग. टि.)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुश्चत्वारिंशः सर्गः

भामायास्तनुजः श्रीमान् भानुभामण्डलद्युतिः । भानुर्नाम्ना महिम्नासौ ववृधे बालभानुवत् ॥१॥
भानुना वर्धमानेन [1]भानुभानुनिभौजसा । सूनुना सत्यभामाया मानशैलः प्रवर्धितः ॥२॥
अन्यदा नारदोऽवादि कृष्णेन भगवन् ! कुतः । आगतोऽस्यद्युनास्यं ते कथयत्यधिकां मुदम् ॥३॥
सोऽवोचद्दक्षिणश्रेण्यामस्ति जम्बूपुरे खगः । जाम्बवः शिवचन्द्रास्य चन्द्रास्या वल्लभा तयोः ॥४॥
विश्वक्कृतयशाः पुत्रो विश्वक्सेन इतिश्रुतिः । कन्या जाम्बवती नाम्ना श्रीरिव स्वयमागता ॥५॥
जाह्नवीमवतीर्णां तु सखीभिः स्नातुमुद्यताम् । चन्द्रलेखामिवोदारां कान्ततारामिरावृताम् ॥६॥
गङ्गाद्वारगतामङ्गतुङ्गच्छन्नपयोधराम् । हर वीर पराशक्यां जाम्बवस्येव वाहिनीम् ॥७॥
इति नारदवाक्येन सस्नेहेन हरिस्तदा । प्रोद्दीपितः समुत्तस्थौ घृतेनेव हुताशनः ॥८॥
अनावृष्टिबलोपेतस्तं प्रदेशमितोऽचिरात् । प्रारब्धमज्जनक्रीडामपश्यत्कन्यकां हरिः ॥९॥
सहसा कन्ययादर्शि हरिरिन्दीवरद्युतिः । ततोऽङ्गजेन तौ विद्धौ शरैः पञ्चभिरेकदा ॥१०॥
दोर्भ्यामालिङ्ग्य तां गाढैः सुखामीलितलोचनाम् । आमीलितेक्षणो जह्रे ह्रेपितश्रीरतिह्रियम् ॥११॥

रानी सत्यभामाका जो पुत्र था वह श्रीमान् तथा सूर्यके प्रभामण्डलके समान देदीप्यमान था इसलिए उसका भानु नाम रखा गया। वह भानु प्रातःकालके सूर्यके समान अपनी महिमासे बढ़ने लगा ॥१॥ सूर्यकी किरणोंके समान तेजका धारक भानु ज्यों-ज्यों बढ़ता जाता था त्यों-त्यों सत्यभामाका मानरूपी पर्वत बढ़ता जाता था ॥२॥ तदनन्तर किसी समय नारद कृष्णकी सभामें आये तो कृष्णने उनसे पूछा—भगवन् ! इस समय कहाँसे आ रहे हैं ? आपका मुख किसी बड़े भारी हर्षको प्रकट कर रहा है ॥३॥ नारदने कहा—विजयार्ध पर्वतकी दक्षिणश्रेणीमें एक जम्बूपुर नामका नगर है। उसमें जाम्बव नामका विद्याधर रहता है, उसकी शिवचन्द्रा नामकी चन्द्रमुखी भार्या है। उन दोनोंके सब ओर यशको फैलानेवाला विश्वक्सेन नामका पुत्र तथा जाम्बवती नामकी कन्या है। जाम्बवती क्या है मानो स्वयं आयी हुई लक्ष्मी ही है ॥४–५॥ वह इस समय सखियोंके साथ स्नान करनेके लिए गंगा नदीमें उतरी है और सुन्दर ताराओंसे घिरी चन्द्रमाकी कलाके समान उत्तम जान पड़ती है। वह गंगाके द्वारमें स्थित है तथा ऊँचे उठे वस्त्राच्छादित स्तनोंसे युक्त है। वह जाम्बव नाम पर्वतसे निकली नदीके समान है एवं दूसरेके लिए प्राप्त करना अशक्य है अथवा अपने पिता जाम्बवकी सेनाके समान दूसरेके लिए वश करना अशक्य है ॥६–७॥

इस प्रकार स्नेहसे युक्त नारदके इन वचनोंसे श्रीकृष्ण उस समय उस प्रकार उत्तेजित हो उठे जिस प्रकार कि घीसे अग्नि उत्तेजित हो उठती है ॥८॥ वे *अनावृष्टि और उसकी सेनाको साथ ले शीघ्र ही उस स्थानकी ओर चल पड़े। वहाँ जाकर उन्होंने स्नान-क्रीड़ाको प्रारम्भ करनेवाली जाम्बवतीको देखा ॥९॥ उसी समय सहसा नील कमलके समान कान्तिके धारक श्रीकृष्णपर कन्या जाम्बवतीकी दृष्टि भी जा पड़ी। तदनन्तर कामदेवने एक ही साथ अपने पाँचों बाणोंसे दोनोंको वेध दिया ॥१०॥ अवसर देख श्रीकृष्णने श्री, रति और ह्रीदेवीको लज्जित करनेवाली जाम्बवतीका दोनों भुजाओंसे गाढ़ आलिंगन किया। तदनन्तर जिनके नेत्र कुछ-कुछ निमीलित हो रहे थे ऐसे श्रीकृष्ण, स्पर्शजन्य सुखसे निमीलित नेत्रोंवाली उस कन्याको हर

---

१. सूर्यकिरणतुल्यतेजसा । २. गङ्गाद्वारवती ख. । ३. तुङ्गवृत्तपयोधरां म. । ४. जाम्बवो नाम पर्वतः तस्य वाहिनी नदी तामिव । * अथवा अनावृष्टि और बलदेवको साथ ले ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सखीनामभवत्तुङ्गस्तत्र चाक्रन्दनस्वनः । समीपशिविरव्यापी कन्याहरणकारणः ॥१२॥
श्रुत्वा कन्यापिता क्रुद्धः खड्गोद्यतकरः खगेट् । खमुत्पत्य[1] लघु प्राप्तः कनत्खेटकहस्तकः ॥१३॥
अनावृष्टिस्ततस्तस्य खेटको खड्गपाणिकम् । रणातिथ्यं स खे कृत्वा बबन्ध खचराधिपम् ॥१४॥
आनीय नीतिविद्वीरो विष्णवे तमदर्शयत् । सूनुं जामातरि न्यस्य स ययौ तपसे वनम् ॥१५॥
जाम्बवत्या विवाहेन परमानन्दमाश्रितः । विश्वक्सेनयुतो विष्णुर्द्वारिकामगमन्निजाम् ॥१६॥
प्रासादस्योपकण्ठे च रुक्मिण्या मुदितात्मनः । प्रासादं प्रददौ दिव्यं जाम्बवत्यै जनार्दनः ॥१७॥
संमान्य भ्रातरं तस्या विसृज्य निजमास्पदम् । अरीरमदिमां भोगी भोगैर्भूतलदुर्लभैः ॥१८॥
परस्परगृहाजस्रगत्यागमनवर्धिता । रुक्मिणीजाम्बवत्याः प्राग्जाता प्रीतिरखण्डिता ॥१९॥
श्लक्ष्णधीः श्लक्ष्णरोमाख्यो राजाभूत्सिंहलेश्वरः । तद्वशीकृतये शौरिर्जातु दूतमजीगमत् ॥२०॥
गत्वागत्याशु दूतस्तं प्रतिकूलमवेदयत् । लक्ष्मणां लक्षणोपेतां तत्कन्यां चापि शार्ङ्गिणः ॥२१॥
सत्वरं स ततो गत्वा हलिना सह संमदी । समुद्रं स्नातुमायातामद्राक्षीदायतेक्षणाम् ॥२२॥
द्रुमसेनं महावीर्यं हत्वा सेनापतिं युधि । हृत्वा चेतः [2]स्वरूपेण रूपिणीमहरत्पुनः ॥२३॥
उपयम्य समानीय लक्ष्मणां लक्ष्मणप्रभुः । जाम्बवत्या गृहाभ्यर्णगृहे [3]रमयति स्म ताम् ॥२४॥

लाये ॥११॥ उसी समय वहाँ कन्या हरणके कारण उसकी सखियोंका जोरदार रोनेका शब्द हुआ जो समीपवर्ती शिविरमें फैल गया ॥१२॥ शब्दको सुन, क्रोधसे भरा कन्याका पिता विद्याधरोंका राजा जाम्बव, हाथमें तलवार और देदीप्यमान ढाल ले आकाश-मार्गसे चलकर शीघ्र ही वहाँ आ पहुँचा ॥१३॥ उसे आया देख आकाशगामी अनावृष्टिने आकाशमें कुछ देर तक तो उसका युद्धके द्वारा अतिथि-सत्कार किया। तदनन्तर हाथमें तलवारको धारण करनेवाले उस विद्याधर राजा जाम्बवको उसने बाँध लिया ॥१४॥ नीतिके ज्ञाता वीर अनावृष्टिने उसे लाकर श्रीकृष्णको दिखाया। इस घटनासे राजा जाम्बवको वैराग्य उत्पन्न हो गया जिससे वह अपने पुत्र विश्वक्सेनको श्रीकृष्णके अधीन कर तपके लिए वनको चला गया ॥१५॥ जाम्बवतीके विवाहसे परम आनन्दको प्राप्त हुए श्रीकृष्ण विश्वक्सेनको साथ ले अपनी द्वारिका नगरीको चले गये ॥१६॥ जाम्बवतीके आगमनसे रुक्मिणीको भी हर्ष हुआ, इसलिए श्रीकृष्णने रुक्मिणीके महलके समीप ही जाम्बवतीके लिए सुन्दर महल दिया ॥१७॥

जाम्बवतीके भाई विश्वक्सेनका सम्मान कर उसे अपने स्थानपर विदा किया और पृथिवीतलमें दुर्लभ भोगोंसे जाम्बवतीके साथ क्रीड़ा करने लगे ॥१८॥ रुक्मिणी और जाम्बवतीमें जो प्रीति प्रथम उत्पन्न हुई थी वह परस्पर एक-दूसरेके महलमें आने-जानेसे बढ़ती गयी तथा अखण्ड रूपमें परिणत हो गयी ॥१९॥

उसी समय सिंहलद्वीपमें सूक्ष्मबुद्धिका धारक श्लक्ष्णरोम नामका राजा रहता था। उसे वश करनेके लिए किसी समय कृष्णने अपना दूत भेजा ॥२०॥ दूतने वहाँ जाकर और शीघ्र ही वापस आकर श्रीकृष्णको उसके प्रतिकूल होनेकी खबर दी और साथ ही यह भी खबर दी कि उसके उत्तम लक्षणोंसे युक्त एक लक्ष्मणा नामकी कन्या है ॥२१॥ तदनन्तर हर्षसे युक्त श्रीकृष्ण बलदेवके साथ शीघ्र ही वहाँ गये। वहाँ जाकर उन्होंने स्नान करनेके लिए समुद्रमें आयी हुई दीर्घलोचना लक्ष्मणाको देखा ॥२२॥ तदनन्तर अपने रूपसे उसके चित्तको हरकर और महाशक्तिशाली द्रुमसेन नामक सेनापतिको युद्धमें मारकर श्रीकृष्ण उस रूपवती लक्ष्मणाको हर लाये ॥२३॥ द्वारिकामें लाकर उसके साथ विधिपूर्वक विवाह किया और जाम्बवतीके महलके समीप उसे महल

१. समुत्पत्य म. । २. सुरूपेण घ. । ३. स रमतिस्म क., ख., ग. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस्या भ्राता महासेनः समागत्य नतो हरिम् । संमान्य मानिना मुक्तः सिंहलद्वीपमभ्यगात् ॥२५॥
राष्ट्रवर्धन इत्यासीत्सुराष्ट्राधिपतिर्नृपः । अजाखुरी पुरी चास्य विनया वनितोत्तमा ॥२६॥
तस्यां नमुचिनाम्नाभूत्तनयो नयविक्रमी । तनया च सुसीमाख्या सुसीमा वसुधा यथा ॥२७॥
युवराजः स नमुचिः क्षितिविश्रुतपौरुषः । राज्ञोऽवमन्यते मान्यानभिमानमहागिरिः ॥२८॥
नमुचिश्च सुसीमा च समुद्रं स्नातुमागतौ । हितेन हरये तेन नारदेन निवेदितौ ॥२९॥
प्रभासतीर्थतीरस्थसैन्यं तं सीरिणा हरिः । गत्वा निहत्य हृत्वा तां कन्यां द्वारवतीमगात् ॥३०॥
लक्ष्मणाभवनाभ्यर्णं सौवर्णं भुवनोत्तमम् । दत्वा सौधं यथारंस्त सीमन्तिन्या सुसीमया ॥३१॥
राष्ट्रवर्धनराजोऽपि सुतायै सुपरिच्छदम् । प्रजिघाय रथेभादिप्राभृतं प्रभवे तथा[1] ॥३२॥
सिन्धुदेशाधिपो मेरुरिक्ष्वाकुकुलवर्धनः । पुरे वीतभये चासीच्चन्द्रवत्यस्य भामिनी ॥३३॥
गौरी नामाभवत्तस्यां गौरी वर्णेन कन्यका । गौरीव रूपिणी विद्या [2]गौरीतिरहितेव सा ॥३४॥
दूतप्रेषणपूर्वं स मेरुः प्रेषयति स्म ताम् । नैमित्तिकवचःस्मर्ता हरये हरिणेक्षणाम्[3] ॥३५॥
परिणीय हरिर्गौरीं [4]मनोहरणकारिणीम् । सुसीमासदनाभ्यर्णं प्रादात्प्रासादमुच्चकैः ॥३६॥
अरिष्टपुरनाथस्य सीरिणो मातुलस्य तु । राज्ञो हिरण्यनाभस्य श्रीकान्तायां सुयोषिति ॥३७॥

दे रमण करने लगे ॥२४॥ लक्ष्मणाका भाई महासेन कृष्णके पास आकर नम्रीभूत हुआ और मानी कृष्णके द्वारा सम्मान-पूर्वक विदा पाकर अपने सिंहलद्वीपको चला गया ॥२५॥

उसी समय सुराष्ट्र देशमें एक राष्ट्रवर्धन नामका राजा था। अजाखुरी उसकी नगरी थी और विनया नामकी रानी थी जो समस्त स्त्रियोंमें उत्तम थी ॥२६॥ विनया नामक रानीसे उसके नमुचि नामका पुत्र हुआ था जो नीति और पराक्रमका भण्डार था। इसी प्रकार एक सुसीमा नामकी पुत्री थी जो कि उत्तम सीमासे युक्त पृथिवीके समान जान पड़ती थी ॥२७॥ युवराज नमुचिका पराक्रम समस्त पृथिवीमें प्रसिद्ध था। वह अभिमानका मानो बड़ा ऊँचा पर्वत था और माननीय राजाओंका निरन्तर तिरस्कार करता रहता था ॥२८॥ एक दिन युवराज नमुचि और उसकी बहन सुसीमा दोनों ही स्नान करनेके लिए समुद्रतटपर आये। इधर हितकारी नारदने श्रीकृष्णके लिए उन दोनोंकी खबर दी ॥२९॥ श्रीकृष्ण खबर पाते ही बलदेवके साथ वहाँ गये और प्रभास तीर्थके तीरपर जिसकी सेना ठहरी हुई थी ऐसे उस नमुचिको मारकर तथा कन्या सुसीमाको हरकर द्वारिका आ गये ॥३०॥ वहाँ लक्ष्मणाके भवनके समीप सुवर्णमय उत्तम महल देकर उसके साथ इच्छानुसार क्रीड़ा करने लगे ॥३१॥

तदनन्तर सुसीमाके पिता राजा राष्ट्रवर्धनने भी पुत्रीके लिए उत्तमोत्तम वस्त्राभूषण और श्रीकृष्णके लिए रथ, हाथी आदिकी भेंट भेजी ॥३२॥

उसी समय सिन्धुदेशके वीतभय नामक नगरमें इक्ष्वाकु वंशको बढ़ानेवाला मेरु नामका राजा रहता था, उसकी चन्द्रवती नामकी भार्या थी ॥३३॥ उससे उसके एक गौरी नामकी कन्या उत्पन्न हुई थी जो गौरवर्णकी थी, रूपवती गौर विद्याके समान थी अथवा ईतियोंसे रहित पृथिवीके समान जान पड़ती थी ॥३४॥ निमित्तज्ञानीने बताया था कि यह नौवें नारायण श्रीकृष्णकी स्त्री होगी, इसलिए उसके वचनोंका स्मरण रखनेवाले राजा मेरुने पहले तो श्रीकृष्णके पास दूत भेजा और उसके बाद मृगलोचना गौरीको भेजा ॥३५॥ श्रीकृष्णने मनको हरनेवाली गौरीको विवाहकर उसके लिए सुसीमाके भवनके समीप ऊँचा महल प्रदान किया ॥३६॥

उसी समय बलदेवके मामा राजा हिरण्यनाभ अरिष्टपुर नगरमें राज्य करते थे। उनकी

---

१. यथा म. । २. ईतिरहिता गौरिव पृथिवी इव । ३. हरिणेक्षणा म. । ४. मनोहरणसारिणीं म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पद्मावतीं समुत्पन्नां कन्यां पद्मामिव स्वयम् । स्वयंवरगतां श्रुत्वा संप्राप्तौ रामकेशवौ ॥३८॥
सगौरवमिमौ दृष्टावनावृष्टिपुरस्सरौ । प्रीत्या हिरण्यनाभेन स्वजनस्नेहवर्धनौ ॥३९॥
पित्रा हिरण्यनाभस्य सत्रा प्राव्रजदग्रजः । पुरैव रेवतो नाम्ना महिम्ना यो वनश्रितः ॥४०॥
चतस्रस्तत्सुताः कन्या रेवती बन्धुमत्यपि । सीता राजीवनेत्रा च ता दत्ताः सीरिणे पुरा ॥४१॥
स्वयंवरे प्रवृत्तेऽत्र हृत्वा पद्मावतीं हठात् । रणशौण्डान्ममर्दाशु शौरिराहवदक्षिणः ॥४२॥
परिणीय सभार्यौ तौ भ्रातरौ भ्रातृभिर्युतौ । द्वारिकामरमायातावरंसातां सुरोपमौ ॥४३॥
गौरीगृहसमीपे च पद्मावत्यै गृहं हरिः । प्रदाय प्रमदोपेतः प्रसादपरमोऽभवत् ॥४४॥
नगर्यां पुष्कलावत्यां गान्धारविषयेऽभवत् । भूभृदिन्द्रगिरिस्तस्य मेरुसत्यभिधा प्रिया ॥४५॥
सुतो हिमगिरिस्तस्यां जातो हिमगिरिस्थिरः । गान्धारी दुहिता चार्वी गन्धर्वादिकलाधिका ॥४६॥
भ्रात्रा हयपुरीन्द्राय सुमुखाय ततो हरिः । दीयमानां विदित्वैनां नारदादरमागतात् ॥४७॥
गत्वा हिमगिरिं हत्वा प्रतिकूलं रणाजिरे । तां हृत्वानीय सौम्यास्यामुपयम्य ससंमदः ॥४८॥
पद्मावत्या गृहोपान्ते गान्धार्यै भवनं वरम् । वितीर्य धैर्यसंपन्नामेनां भोगैरमानयत् ॥४९॥
महादेवीभिरिष्टाभिरष्टभिरवरोधने । प्रसाधिताभिराशाभिरिव ताभिरुपासितः ॥५०॥
विन्दन् भोगफलं भूरि गोविन्दः पुण्यवृक्षजम् । संददज्जनतानन्दं ननन्द पुरुषौरुषः ॥५१॥

श्रीकान्ता नामकी उत्तम स्त्री थी। उससे उनके पद्मावती नामकी कन्या उत्पन्न हुई थी जो साक्षात् लक्ष्मीके समान जान पड़ती थी। 'उसका स्वयंवर हो रहा है' यह सुनकर अनावृष्टिके साथ-साथ बलदेव और कृष्ण भी वहाँ गये ॥३७-३८॥ आत्मीयजनोंके साथ स्नेह बढ़ानेवाले इन दोनोंको राजा हिरण्यनाभने बड़े गौरव और प्रेमके साथ देखा ॥३९॥ हिरण्यनाभका बड़ा भाई रेवत जो पिताके साथ पहले ही दीक्षित हो वनमें रहने लगा था उसकी चार कन्याएँ १ रेवती, २ बन्धुमती, ३ सीता और ४ राजीवनेत्रा बलदेवके लिए पहले ही दी जा चुकीं ॥४०-४१॥ जब पद्मावतीका स्वयंवर होने लगा तब युद्धनिपुण श्रीकृष्ण, उसे हठपूर्वक हर ले आये और रणमें जिन्होंने शूरवीरता दिखायी उन्हें शीघ्र ही नष्ट कर डाला ॥४२॥ तदनन्तर विवाह कर अपनी-अपनी स्त्रियोंको साथ लिये दोनों भाई, भाइयोंके साथ शीघ्र ही द्वारिका आये और देवोंके समान क्रीड़ा करने लगे ॥४३॥ हर्षित श्रीकृष्ण गौरीके महलके समीप पद्मावतीके लिए महल देकर बहुत प्रसन्न हुए ॥४४॥

उसी समय गान्धार देशकी पुष्कलावती नगरीमें एक इन्द्रगिरि नामका राजा रहता था। उसकी मेरुसती नामकी स्त्री थी। उससे उसके हिमगिरिके समान स्थिर हिमगिरि नामका पुत्र था और गान्धारी नामकी सुन्दरी पुत्री थी जो गन्धर्व आदि कलाओंमें अत्यन्त निपुण थी ॥४५-४६॥ शीघ्रतासे आये हुए नारदसे श्रीकृष्णको जब यह विदित हुआ कि गान्धारीका भाई उसे हयपुरीके राजा सुमुखको दे रहा है तब वे शीघ्र ही जाकर रणांगणमें प्रतिकूल हिमगिरिको मारकर गान्धारीको हर लाये एवं उस सौम्यमुखीके साथ विवाह कर बहुत हर्षित हुए ॥४७-४८॥ उन्होंने पद्मावतीके महलके समीप गान्धारीके लिए उत्तम महल दिया और उस धैर्यशालिनीको उत्तम भोगोंसे सम्मानित किया ॥४९॥ इस प्रकार जो वशीकृत आठ दिशाओंके समान उन आठ इष्ट पट्टरानियोंसे अन्तःपुरमें सदा सेवित रहते थे, जो पुण्यरूपी वृक्षसे उत्पन्न भोगरूपी विशाल फलका उपभोग करते थे, जन-समूहको आनन्द प्रदान करते थे, एवं प्रबल पराक्रमके धारक थे ऐसे श्रीकृष्ण समृद्धिको प्राप्त हुए ॥५०-५१॥ गौतमस्वामी

१. अरं शीघ्रम् । २. नारदात् + अरम् + आगतात् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्रुतविलम्बितम्

कृतरणं परिभूय[1] पुरःस्थितं रिपुगणं तृणवत्क्षणमात्रतः ।
वरवधूवररत्नमयत्नतः श्रयति भव्यजनो जिनधर्मकृत् ॥५२॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यस्य कृतौ जाम्बवत्यादिमहादेवीलाभवर्णनो नाम चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥४४॥

□

कहते हैं कि जिनधर्मको धारण करनेवाला भव्य जीव युद्धमें सामने खड़े शत्रुओंके समूहको क्षणमात्रमें तृणके समान पराजित कर अनायास ही उत्तमोत्तम स्त्रीरूपी रत्नोंको प्राप्त कर लेता है ॥५२॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंश पुराणमें जाम्बवती आदि महादेवियोंके लाभका वर्णन करनेवाला चवालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥४४॥

□

१. प्रविभूय म., ग. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पञ्चचत्वारिंशः सर्गः

अथ प्राप्ता महासत्त्वास्तदा द्वारवतीं पुरीम् । भागिनेया दशार्हाणां प्रसिद्धाः पञ्च पाण्डवाः ॥१॥
युधिष्ठिरोऽर्जुनो ज्येष्ठो भीमसेनो महाबलः । नकुलः सहदेवश्च पञ्चैते पाण्डुनन्दनाः ॥२॥
[1]मागधोऽत्रान्तरेऽप्राक्षीत्प्राञ्जलिर्गणनायकम् । अन्वये भगवन् ! कस्य पाण्डुः पाण्डवनन्दनाः ॥३॥
गण्याह कुरुराजानामन्ववाये महोदये । शान्तिकुन्थ्वरनामानो यत्र तीर्थकरास्त्रयः ॥४॥
आदितः कुरुवंश्यानां चतुर्वर्गोपसेविनाम् । कतिचिन्मागधाख्यामि शृणु नामानि भूभृताम् ॥५॥
कुरुजाङ्गलदेशस्य कुरुभूमिसमस्य हि । अभूतां भूषणे भूपौ यौ हास्तिनपुरे परे ॥६॥
श्रेयान् सोमप्रभश्चेति कुरुवंशविशेषकौ । नाभेयसमकालौ तौ दानधर्मस्य नायकौ ॥७॥
तत्र सोमप्रभस्याभूत्कुमारो [2]जयनायकः । मेघस्वरस्स एवात्र भरतेन कृताभिधः ॥८॥
तस्मात्कुरुरभूत्तस्मात्कुरुचन्द्रस्तु नन्दनः । ततः शुभंकरो राजा जातो धृतिकरस्ततः ॥९॥
राज्ञां कोटिषु कालेन समतीतासु भूरिषु । जिनान्तरेषु चानेकसागरोपमकोटिषु ॥१०॥
धृतिदेवो धृतिकरो गङ्गदेवादयस्तथा । धृतिमित्र[3]धृतिक्षेमसुव्रतव्रातमन्दराः ॥११॥
श्रीचन्द्रसुप्रतिष्ठाद्या व्यतीताः शतशो नृपाः । धृतपद्मो धृतेन्द्रश्च धृतवीर्यः प्रतिष्ठितः ॥१२॥
इत्यादिषु व्यतीतेषु धृतिदृष्टिर्धृतिद्युतिः । धृतिप्रीतिकराद्याश्च व्यतीताः कुरुवंशजाः ॥१३॥
ततो भ्रमरघोषाख्यो हरिघोषो हरिध्वजः । सूर्यघोषः सुतेजाश्च पृथुश्च पृथिवीपतिः ॥१४॥
इभवाहननामाद्याः समतीतास्ततो नृपाः । विजयाख्यो महाराजो जयराजस्ततोऽभवत् ॥१५॥

अथानन्तर किसी दिन यादवोंके भानेज महापराक्रमी, राजा पाण्डुके पुत्र युधिष्ठिर, अर्जुन, महाबलवान् भीमसेन, नकुल और सहदेव ये पाँचों पाण्डव द्वारिकापुरी आये ॥१-२॥ इसी बीचमें राजा श्रेणिकने हाथ जोड़कर गौतमगणधरसे पूछा कि हे भगवन् ! पाण्डु और पाण्डव किसके वंशमें उत्पन्न हुए हैं ? ॥३॥ गौतमस्वामीने कहा कि पाण्डु और पाण्डव कुरुवंशमें हुए हैं जिसमें कि शान्ति, कुन्थु और अर ये तीन तीर्थंकर हुए हैं ॥४॥ हे मगधेश्वर ! अब मैं प्रारम्भसे लेकर चतुर्वर्गकी सेवा करनेवाले कुरुवंशी राजाओंके कुछ नाम कहता हूँ सुनो ॥५॥

शोभामें देवकुरु-उत्तरकुरुकी तुलना करनेवाले कुरुजांगल देशके हस्तिनापुर नगरमें जो आभूषणस्वरूप श्रेयान् और सोमप्रभ नामके दो राजा हुए थे वे कुरुवंशके तिलक थे, भगवान् वृषभदेवके समकालीन थे और दानतीर्थके नायक थे ॥६-७॥ उनमें सोमप्रभके जयकुमार नामका पुत्र हुआ। वह जयकुमार ही आगे चलकर भरत चक्रवर्तीके द्वारा 'मेघस्वर' इस नामसे सम्बोधित किया गया ॥८॥ जयकुमारसे कुरु पुत्र हुआ। कुरुके कुरुचन्द्र, कुरुचन्द्रके शुभंकर और शुभंकरके धृतिकर पुत्र हुआ ॥९॥

तदनन्तर कालक्रमसे अनेक करोड़ राजा और अनेक सागर प्रमाण तीर्थंकरोंका अन्तराल काल व्यतीत हो जानेपर धृतिदेव, धृतिकर, गंगदेव, धृतिमित्र, धृतिक्षेम, सुव्रत, व्रात, मन्दर, श्रीचन्द्र और सुप्रतिष्ठ आदि सैकड़ों राजा हुए। तदनन्तर धृतपद्म, धृतेन्द्र, धृतवीर्य, प्रतिष्ठित आदि राजाओंके हो चुकनेपर धृतिदृष्टि, धृतिद्युति, धृतिकर, प्रीतिकर आदि हुए ॥१०-१३॥ तत्पश्चात् भ्रमरघोष, हरिघोष, हरिध्वज, सूर्यघोष, सुतेजस्, पृथु और इभवाहन आदि राजा हुए। तदनन्तर विजय, महाराज और जयराज हुए ॥१४-१५॥ इनके पश्चात् उसी

१. श्रेणिकः । २. जननायकः म. । ३. धृतिक्षेत्र म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ततः सनत्कुमारोऽभूच्चतुर्थश्चक्रवर्तिनाम् । रूपपाशसमाकृष्टसुरबोधितदीक्षितः ॥१६॥
सुकुमारः सुतस्तस्य तस्माद्वरकुमारकः । विश्वो वैश्वानरश्चाभूद्विश्वकेतुर्बृहद्ध्वजः ॥१७॥
विश्वसेनस्ततो जातो यस्यैरा प्राणवल्लभा । तत्सुतः पञ्चमश्चक्री शान्तिः षोडशतीर्थकृत् ॥१८॥
नारायणो नरहरिः प्रशान्तिः शान्तिवर्धनः । शान्तिचन्द्रः शशाङ्काङ्कः कुरुश्च कुरुवंशजाः ॥१९॥
एवमाद्येष्वतीतेषु सूर्योऽभूद्यस्य भामिनी । श्रीमती तीर्थकृत्कुन्थुस्तयोश्चक्रधरोऽपि सः ॥२०॥
अतिक्रान्तेषु भूपेषु ततोऽपि बहुषु क्रमात् । राजा सुदर्शनो जातो यस्य मित्रा प्रियाङ्गना ॥२१॥
तयोरर इति ख्यातः सप्तमश्चक्रवर्तिनाम् । कृती तीर्थकराणांच यतोऽष्टादशसंख्यकः ॥२२॥
ततः सुचारुश्चारुश्च चारुरूपोऽथ वीर्यवान् । चारुपद्मस्तथान्येषु समतीतेषु राजसु ॥२३॥
पद्ममालः सुभौमश्च जातः पद्मरथो नृपः । ततश्चक्री महापद्मो विष्णुपद्मो तु तत्सुतौ ॥२४॥
सुपद्मः पद्मदेवश्च कुलकीर्तिस्ततः परः । कीर्तिः सुकीर्तिकीर्ती तौ वसुकीर्त्तिश्च वीर्यवान् ॥२५॥
वासुकिर्वासवाभिख्यो वसुः सुवसुरेव च । पुरुवंशश्रियो नाथः श्रीवसुश्च वसुंधरः ॥२६॥
जज्ञे वसुरथस्तस्मादिन्द्रवीर्यश्च वीर्यवान् । चित्रो विचित्रो वीर्योऽथ विचित्रोऽपि महाबलः ॥२७॥
ततो विचित्रवीर्योऽभूत्ततश्चित्ररथो नृपः । महारथो धृतरथो वृषानन्तो वृषध्वजः ॥२८॥
श्रीव्रतो व्रतधर्मा च धृतो धारण एव च । महासरः प्रतिसरः शरः पारशरो नृपः ॥२९॥
शरद्वीपश्च राजासौ द्वीपो द्वीपायनो नृपः । सुशान्तिः शान्तिभद्रश्च शान्तिषेणश्च भूपतिः ॥३०॥
भर्त्ता योजनगन्धाया राजपुत्र्यास्तु शन्तनुः । तनयः शन्तनोर्भूद्धृतव्यास इति स्मृतिः ॥३१॥
धृतधर्मा ततस्तस्य तनयोऽपि धृतोदयः । धृततेजा धृतयशा धृतमानो धृतो नृपः ॥३२॥
ततोऽपि धृतराजोऽभूत्तस्य तिस्रः प्रियाङ्गनाः । अम्बिकाम्बालिकाम्बाख्या वेद्याभिजनसंभवाः ॥३३॥
धृतराष्ट्रश्च पाण्डुश्च विदुरश्च विदां वरः । यथाक्रममभी तासां तिसृणां तनयास्त्रयः ॥३४॥

वंशमें चतुर्थ चक्रवर्ती सनत्कुमार हुए जो रूपपाशसे खिंचकर आये हुए देवोंके द्वारा सम्बोधित हो दीक्षित हो गये थे ॥१६॥ सनत्कुमारके सुकुमार नामका पुत्र हुआ। उसके बाद वरकुमार, विश्व, वैश्वानर, विश्वकेतु और बृहद्ध्वज नामक राजा हुए। तदनन्तर विश्वसेन राजा हुए जिनकी स्त्रीका नाम ऐरा था। इन्हींके पंचम चक्रवर्ती और सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथ हुए ॥१७-१८॥ इनके पश्चात् नारायण, नरहरि, प्रशान्ति, शान्तिवर्धन, शान्तिचन्द्र, शशांकांक और कुरु राजा हुए ॥१९॥ इत्यादि राजाओंके व्यतीत होनेपर इसी वंशमें सूर्य नामक राजा हुए जिनकी स्त्रीका नाम श्रीमती था। उन दोनोंके भगवान् कुन्थुनाथ उत्पन्न हुए जो तीर्थंकर भी थे और चक्रवर्ती भी थे ॥२०॥ तदनन्तर क्रम-क्रमसे बहुत राजाओंके व्यतीत हो जानेपर सुदर्शन नामक राजा हुए जिनकी स्त्रीका नाम मित्रा था। इन्हीं दोनोंके सप्तम चक्रवर्ती अठारहवें तीर्थंकर अरनाथ हुए ॥२१-२२॥ उनके बाद सुचारु, चारु, चारुरूप और चारुपद्म राजा हुए। तदनन्तर अन्य राजाओंके हो चुकनेपर इसी वंशमें पद्ममाल, सुभौम और पद्मरथ राजा हुए। उनके बाद महापद्म चक्रवर्ती हुए। उनके विष्णु और पद्म नामक दो पुत्र हुए ॥२३-२४॥ तदनन्तर सुपद्म, पद्मदेव, कुलकीर्ति, कीर्ति, सुकीर्ति, कीर्ति, वसुकीर्ति, वासुकि, वासव, वसु, सुवसु, श्रीवसु, वसुन्धर, वसुरथ, इन्द्रवीर्य, चित्र, विचित्र, वीर्य, विचित्र, विचित्रवीर्य, चित्ररथ, महारथ, धृतरथ, वृषानन्त, वृषध्वज, श्रीव्रत, व्रतधर्मा, धृत, धारण, महासर, प्रतिसर, शर, पारशर, शरद्वीप, द्वीप, द्वीपायन, सुशान्ति, शान्तिभद्र, शान्तिषेण, योजनगन्धा राजपुत्रीके भर्ता शन्तनु और शन्तनुके राजा धृतव्यास पुत्र हुए ॥२५-३१॥ तदनन्तर धृतधर्मा, धृतोदय, धृततेज, धृतयश, धृतमान और धृत हुए। धृतके धृतराज नामक पुत्र हुआ। उसकी अम्बिका, अम्बालिका और अम्बा नामकी तीन स्त्रियाँ थीं जो उच्चकुलमें उत्पन्न हुई थीं ॥३२-३३॥ उनमें अम्बिकासे धृतराष्ट्र,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भीष्मोऽपि शन्तनोरेव संताने रुक्मणः पिता । यस्य गङ्गाभिधा माता राजपुत्री पवित्रधीः ॥३५॥
धृतराष्ट्रस्य तनया दुर्योधनपुरस्सराः । नयपौरुषसंपन्नाः परस्परहिते रताः ॥३६॥
पाण्डोः कुन्त्यां समुत्पन्नः कर्णः कन्याप्रसंगतः । युधिष्ठिरोऽर्जुनो भीम ऊढायामभवंस्त्रयः ॥३७॥
नकुलः सहदेवश्च कुलस्य तिलकौ सुतौ । मद्र्यामद्रिस्थिरौ जातौ पञ्च ते पाण्डुनन्दनाः ॥३८॥
पाण्डौ स्वर्गं गते देव्यां भद्र्यां च जिनधर्मतः । पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च राज्येऽभूवन्विरोधिनः ॥३९॥
विभज्य कौरवं राज्यं भुञ्जतां समभागतः । पञ्चानामेकतस्तेषामितरेषां तथैकतः ॥४०॥
भीष्मश्च विदुरो द्रोणो मध्यस्थाः शकुनिः पुनः । मन्त्री दुर्योधनस्येष्टाः शशरोमादयस्तथा ॥४१॥
अजर्यं सह कर्णेन वर्यं दुर्योधनस्य तु । जरासन्धेन नैभृत्यं[1] निभृतस्यामवत्तराम् ॥४२॥
भार्गवाचार्यकं द्रोणो धनुर्वेदविशारदः । कौन्तेयधार्तराष्ट्राणां चक्रे मध्यस्थभावतः ॥४३॥
भार्गवाचार्यवंशोऽपि शृणु श्रेणिक वर्ण्यते । द्रोणाचार्यस्य विख्याता शिष्याचार्यपरम्परा ॥४४॥
आत्रेयः प्रथमस्तत्र तच्छिष्यः [2]कौथुमिः सुतः । तस्याभूदमरावर्तः सितस्तस्यापि नन्दनः ॥४५॥
वामदेवः सुतस्तस्य तस्यापि च [3]कपिष्ठलः । जगत्स्थामा सरवरस्तस्य शिष्यः शरासनः ॥४६॥
तस्माद्रावण इत्यासीत्तस्य विद्रावणः सुतः । विद्रावणसुतो द्रोणः सर्वभार्गववन्दितः ॥४७॥
अश्विन्यामभवत्तस्मादश्वत्थामा धनुर्धरः । रणे यस्य प्रतिस्पर्धी पार्थ एव धनुर्धरः ॥४८॥

अम्बालिकासे पाण्डु और अम्बासे ज्ञानिश्रेष्ठ विदुर ये तीन पुत्र हुए ॥३४॥ भीष्म भी शन्तनुके ही वंशमें उत्पन्न हुए थे। धृतराजके भाई रुक्मण उनके पिता थे और पवित्र बुद्धिको धारण करनेवाली राजपुत्री गंगा उनकी माता थी ॥३५॥ राजा धृतराष्ट्रके दुर्योधन आदि सौ पुत्र थे जो नय-पौरुषसे युक्त तथा परस्पर एक दूसरेके हित करनेमें तत्पर थे ॥३६॥ राजा पाण्डुकी स्त्रीका नाम कुन्ती था, जिस समय राजा पाण्डुने गन्धर्व विवाह कर कुन्तीसे कन्या अवस्थामें सम्भोग किया था उस समय कर्ण उत्पन्न हुए थे और विवाह करनेके बाद युधिष्ठिर, अर्जुन और भीम ये तीन पुत्र हुए ॥३७॥ इन्हीं पाण्डुकी माद्री नामकी दूसरी स्त्री थी उससे नकुल और सहदेव ये दो पुत्र उत्पन्न हुए। ये दोनों ही पुत्र कुलके तिलकस्वरूप थे और पर्वतके समान स्थिर थे। युधिष्ठिर-को आदि लेकर तीन तथा नकुल और सहदेव ये पाँच पाण्डव कहलाते थे ॥३८॥ जब राजा पाण्डु और रानी माद्री जिन-धर्मके प्रसादसे स्वर्गवासी हो गये तब पाण्डव और दुर्योधनादि धार्तराष्ट्र राज्य-विषयको लेकर एक दूसरेके विरोधी हो गये ॥३९॥ जब इनका विरोध बढ़ने लगा तब भीष्म, विदुर, द्रोण, मन्त्री शकुनि तथा दुर्योधनके मित्र शशरोम आदिने मध्यस्थ बनकर कौरवोंके राज्यके बराबर दो भाग कर दिये। एक भाग युधिष्ठिर आदि पाँच पाण्डवोंको मिला और दूसरा भाग दुर्योधन आदि सौ कौरवोंको प्राप्त हुआ ॥४०-४१॥

इधर दुर्योधनकी कर्णके साथ उत्तम मित्रता हो गयी और जरासन्धके साथ स्थिर बैठकें होने लगीं ॥४२॥ द्रोणाचार्य धनुर्विद्यामें अत्यन्त निपुण थे और वे मध्यस्थ-भावसे पाण्डवों तथा कौरवोंके लिए भार्गवाचार्यका काम करते थे अर्थात् दोनोंको समान रूपसे धनुर्विद्याका उपदेश देते थे ॥४३॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक! द्रोणाचार्यकी शिष्य और आचार्योंकी परम्परा तो प्रसिद्ध है अतः उसे छोड़ भार्गवाचार्यकी वंशपरम्पराका वर्णन करता हूँ उसे सुन ॥४४॥ भार्गवका प्रथम शिष्य आत्रेय था, उसका शिष्य कौथुमि पुत्र था, कौथुमिका अमरावर्त, अमरा-वर्तका सित, सितका वामदेव, वामदेवका कपिष्ठल, कपिष्ठलका जगत्स्थामा, जगत्स्थामाका सरवर, सरवरका शरासन, शरासनका रावण, रावणका विद्रावण और विद्रावणका पुत्र द्रोणाचार्य था जो समस्त भार्गव वंशियोंके द्वारा वन्दित था—सब लोग उसे नमस्कार करते थे ॥४५-४७॥ द्रोणाचार्य-

१. नैर्वत्यं ग.। २. कौण्डिनिः म.। ६. कपिष्टकः म.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पार्थप्रतापविज्ञानमात्सर्योपहता अथ । दुर्योधनादयः कर्तुं संधिदूषणमुद्यताः ॥४९॥
पञ्च कौरवराज्यार्धमेकतः[1] शतमेकतः । भुञ्जन्ति किमितोऽन्यस्स्यादन्याय्यमिति ते जगुः ॥५०॥
समुद्रा इव चत्वारस्ततः परुषवायुभिः । अपि प्रसन्नगम्भीराः क्षुभिताः पाण्डुनन्दनाः ॥५१॥
छादयामि द्विषच्छैलं शरधाराभिरुच्छ्रितम् । इत्युत्थितोऽर्जुनोऽम्भोदः शमितोऽग्रजवायुना ॥५२॥
दृष्ट्या दहामि दायादशतमित्युदितं ब्रुवन् । मन्त्रेणाशीशमज्ज्यायान् स्फुरद्भीमभुजङ्गमम् ॥५३॥
अहितापकुलान्ताय[2] नकुलोऽपि[3] कृतोद्यमः । ज्येष्ठेन सनयं रुद्धो भुजपञ्जरयन्त्रितः ॥५४॥
भस्मयामि लघु द्वेषिवनखण्डमिति ज्वलन् । अशामि[4] ज्येष्ठमेघेन सहदेवदवानलः ॥५५॥
वसतां शान्तचित्तानां दिनैः कतिपयैरपि । प्रसुप्तानां गृहं तेषां दीपितं धृतराष्ट्रजैः ॥५६॥
विबुध्य सहसा मात्रा सत्रा ते पञ्चपाण्डवाः । सुरङ्गया विनिःसृत्य गताः क्वाप्यपभीरवः ॥५७॥
ततोऽपरागो लोकस्य जातो दुर्योधनं प्रति । क्व वा पापानुरागाढ्ये नापरागः सतो भवेत् ॥५८॥

को अश्विनी नामक स्त्रीसे अश्वत्थामा नामक पुत्र हुआ था। यह अश्वत्थामा बड़ा धनुर्धारी था और युद्धमें एक अर्जुन ही उसका प्रतिस्पर्धी था—अर्जुन ही उसकी बराबरी कर सकता था अन्य नहीं ॥४८॥

तदनन्तर अर्जुनके प्रताप और विज्ञानसे ईर्ष्या रखनेवाले दुर्योधन आदि कौरव सन्धिमें दोष लगानेके लिए उद्यत हो गये अर्थात् अर्जुनके लोकोत्तर प्रताप और अनुपम सूझ-बूझसे ईर्ष्या कर कौरव लोग राज्यके विषयमें पहले जो सन्धि हो चुकी थी उसमें दोष लगाने लगे ॥४९॥ वे कहने लगे कि कौरवोंके आधे राज्यको एक ओर तो सिर्फ पाँच पाण्डव भोगते हैं और एक ओर आधे राज्यको हम सौ भाई भोगते हैं—इससे बढ़कर अन्यायपूर्ण कार्य और क्या होगा ? ॥५०॥ दुर्योधनादिकका यह विचार पाण्डवोंने भी सुना। पाण्डवोंमें युधिष्ठिर शान्तिप्रिय व्यक्ति थे अतः उन्होंने इस ओर कुछ ध्यान नहीं दिया परन्तु शेष चार पाण्डव प्रसन्न तथा गम्भीर होनेपर भी उस तरह क्षोभको प्राप्त हो गये जिस तरह कि प्रचण्ड वायुसे चारों दिशाओंके चार समुद्र क्षोभको प्राप्त हो जाते हैं ॥५१॥ अर्जुनरूपी मेघ यह कहता हुआ उठकर खड़ा हो गया कि मैं उठते हुए इस शत्रुरूपी पर्वतको बाणरूपी जलकी धारासे अभी हाल आच्छादित किये देता हूँ परन्तु युधिष्ठिररूपी वायुने उसे शान्त कर दिया ॥५२॥ भीमरूपी भुजंग यह कहकर उठ खड़ा हुआ कि मैं सौ-के-सौ हिस्सेदारोंको अपनी दृष्टिसे अभी भस्म किये देता हूँ परन्तु बड़े भाई युधिष्ठिरने उसे मन्त्रके द्वारा शान्त कर दिया ॥५३॥ नकुल भी, नकुल (नेवला) के समान शत्रुरूपी सर्पोंके सन्तापदायी कुलका अन्त करनेके लिए उद्यम करने लगा परन्तु अग्रज—युधिष्ठिरने उसे अपने भुजरूपी पिंजरेमें कैद कर रोक रखा ॥५४॥ और सहदेवरूपी दावानल यह कहता हुआ देदीप्यमान होने लगा कि मैं शत्रुरूपी वनखण्डको अभी हाल भस्म किये देता हूँ परन्तु बड़े भाई—युधिष्ठिररूपी मेघने उसे शान्त कर दिया ॥५५॥

तदनन्तर सब पाण्डव शान्तचित्त होकर रहने लगे। कुछ दिनों बाद जब वे गहरी नींदमें सो रहे थे तब कौरवोंने उनके घरमें आग लगवा दी ॥५६॥ सहसा उनकी नींद खुल गयी और पाँचोंके पाँच पाण्डव माताको साथ ले सुरंगसे निकलकर निर्भय हो कहीं चले गये ॥५७॥ इस घटनासे जनताका दुर्योधनके प्रति विद्वेष उमड़ पड़ा सो ठीक ही है क्योंकि पापमें अनुराग रखनेवाले किस पुरुषपर सज्जनोंको विद्वेष नहीं होता ? अर्थात् सभीपर होता है ॥५८॥

---

१. राज्यार्धं म., ग.। २. अहितानां शत्रूणामपकृष्टं कुलमपकुलं तस्यान्तस्तस्मै, पक्षे तापेनोपलक्षितं कुलं तापकुलं अहीनां सर्पाणां यत् तापकुलं तस्यान्तस्तस्मै। ३. नकुलः पाण्डवः पक्षे नकुलो जन्तुविशेषः। ४. शान्तः कृतः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रलीनानेव तान्मत्वा पाण्डवान् गोत्रजास्ततः । निवृत्ता इव ते तस्थुः कृतकालोचितक्रियाः ॥५९॥
नदीं गङ्गां समुत्तीर्य कौन्तेयास्तु महाधियः । कृतवेषपरावर्तास्ते पूर्वां दिशमाश्रिताः ॥६०॥
कुन्तीगतिवशेनैते गच्छन्तः सुखमिच्छया । कौशिकाख्यां पुरीं प्राप्ता वर्णो यत्र नरेश्वरः ॥६१॥
तस्य प्रभावती भार्या सुता कुसुमकोमला । जनानुरागतस्तांस्तान्[2] श्रुत्वा दृष्टवती तदा ॥६२॥
युधिष्ठिरकुमारेन्दुदर्शनेन सुदर्शना । कन्याकुमुद्वती धन्या विकासमगमत्परम् ॥६३॥
अचिन्तयदसौ तस्य भाविनी प्रियभामिनी । इह जन्मनि मे भूयादयमेव परो वरः ॥६४॥
ज्ञात्वाभिप्रायमस्याः स संजातप्रेमबन्धनः । आशाबन्धं प्रदर्श्यागात्संज्ञयैव करग्रहे ॥६५॥
प्रतीक्षमाणया तस्य तया भूयः समागमम् । नीयते स्म विनोदैः स्वैः कालः कन्याजनोचितैः ॥६६॥
ततस्ते ललिताकाराः स्वभावेन सहोदराः । द्विजवेषभृतो जग्मुर्जनचित्तापहारिणः ॥६७॥
आसनं शयनं तेषां भोजनं च मनोहरम् । सुखेनैव सुपुण्यानामचिन्तितमभूत्तदा ॥६८॥
पुनस्तापसवेषेण प्राप्ताः श्लेष्मान्तकं वनम् । ते तापसाश्रमे रम्ये विशश्रमुरिहार्चिताः ॥६९॥
वसुंधरपुरेशस्य विन्ध्यसेनस्य देहजा । वसन्तसुन्दरीनाम्ना नर्मदा[3]जास्ति तत्र च ॥७०॥
युधिष्ठिराय सा दत्ता पुरैव गुरुभिर्वरा । दग्धवार्तामुपश्रुत्य निन्दितस्वपुराकृता ॥७१॥
जन्मान्तरेऽपि काङ्क्षन्ती तस्य कान्तस्य दर्शनम् । तपश्चरितुमारब्धा तत्र सा तापसाश्रमे ॥७२॥

तदनन्तर कुटुम्बके लोगोंने समझा कि पाण्डव तो इसी आगमें भस्म हो चुके हैं इसीलिए वे मरणोत्तरकाल होनेवाली क्रियाओंको कर निश्चिन्त-जैसे होकर रहने लगे ॥५९॥

इधर महाबुद्धिमान् पाण्डव गंगा नदीको पार कर तथा वेष बदलकर पूर्व दिशाकी ओर गये ॥६०॥ माता कुन्ती धीरे-धीरे चल पाती थी इसलिए वे उसकी चालके अनुसार इच्छापूर्वक सुखसे धीरे-धीरे चलते हुए उस कौशिक नामकी नगरीमें पहुँचे जहाँ वर्ण नामका राजा रहता था ॥६१॥ राजा वर्णकी स्त्रीका नाम प्रभावती था और उससे उसके कुसुमकोमला नामकी पुत्री उत्पन्न हुई थी। पाण्डवोंपर लोगोंका अधिक अनुराग था इसलिए कुसुमकोमलाने भी उनका नाम सुना तथा उन्हें देखा ॥६२॥ वह भाग्यशालिनी सुन्दर कन्यारूपी कुमुदिनी, युधिष्ठिररूपी चन्द्रमाको देखनेसे परम विकासको प्राप्त हो गयी ॥६३॥ जो युधिष्ठिरकी प्रिय स्त्री होनेवाली थी ऐसी कन्या कुसुमकोमला उन्हें देख मनमें विचार करने लगी कि इस जन्ममें मेरे यही उत्तम पति हों ॥६४॥ कन्याके अभिप्रायको जानकर युधिष्ठिरके भी प्रेमरूपी बन्धन समुत्पन्न हो गया और वे इशारेसे विवाहकी आशा दिखा आगे चले गये ॥६५॥ कुसुमकोमला, उनके पुनः समागमकी प्रतीक्षा करती हुई कन्याजनोंके योग्य विनोदोंसे समय बिताने लगी ॥६६॥

तदनन्तर जो स्वभावसे ही सुन्दर आकारके धारक थे ऐसे वे पाँचों भाई ब्राह्मणका वेष रख, मनुष्योंके चित्तको हरते हुए आगे चले ॥६७॥ वे सब महापुण्यशाली जीव थे इसलिए उस अज्ञातवासके समय भी उन्हें मनोहर आसन, शयन और भोजन सुखपूर्वक अचिन्तित रूपसे प्राप्त होते रहते थे ॥६८॥ तत्पश्चात् वे तापसके वेषमें श्लेष्मान्तक नामक वनमें पहुँचे वहाँ तापसोंके सुन्दर तपोवनमें उन्होंने विश्राम किया और तापसोंने उनका अच्छा सत्कार किया ॥ ६९ ॥ उस आश्रममें वसुन्धरपुरके राजा विन्ध्यसेनकी वसन्तसुन्दरी नामकी पुत्री, जो कि नर्मदा नामक स्त्रीसे उत्पन्न हुई थी रहती थी ॥७०॥ यह कन्या गुरुजनोंने युधिष्ठिरके लिए पहले ही दे रखी थी परन्तु जब उनके जल जानेका समाचार सुना तब वह अपने पूर्वकृत कर्मकी निन्दा करती हुई इस इच्छासे कि 'उन प्राणनाथका दर्शन इस जन्ममें न हो सका तो जन्मान्तरमें हो', तपस्वियोंके उस आश्रममें तप करने लगी थी ॥७१-७२॥

१. -मासुताः म. । २. तास्तान् म. । ३. नर्मदायाश्च तत्र च क. । नर्मदायास्ति—ग., घ., ङ. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदाररूपलावण्या दुकूलपटसाटिका । जटिला वटशाखेव स्निग्धच्छाया व्यराजत ॥७३॥
आकर्णायतनेत्राभ्यां स्वधरेण[1] मुखेन्दुना । जघनस्तनभारेण मनो हरति तापसी ॥७४॥
पूज्या तापसलोकस्य सकलस्य तपोवनम् । अकरोत्पावनं तन्वी चन्द्रलेखेव निर्मला ॥७५॥
कौन्तेयानां कृतातिथ्या तापसोचितवृत्तिभिः । जहार हारिवाक्यासौ क्षुत्पिपासापथश्रमम् ॥७६॥
कुन्ती पप्रच्छ तां प्रीत्या बाले ! कमलकोमले । नवे वयसि वैराग्यं कुतो जातमतिव्रते[2] ॥७७॥
इति सानुनयं प्रष्टा राजपुत्री जगौ गिरा । मनो मधुरया तेषां हरन्ती हरिणेक्षणा ॥७८॥
साधु पृष्टं त्वया पूज्ये ! श्रूयतामत्र कारणम् । सज्जनो हि मनोदुःखं निवेदितमुदस्यति[3] ॥७९॥
कौरवाय पुरैवाहं कौन्तेयायाग्रजाय हि । स्वभावोदारचेष्टाय गुरुभिर्विनिवेदिता ॥८०॥
समातृभ्रातृकस्यास्य मदपुण्यप्रभावतः । श्रुत्वा वार्ता जनेभ्यो या न स्मर्तुमपि शक्यते ॥८१॥
दाहदुःखमृतं कान्तं युक्तं तेनैव वर्त्मना । अनुमर्तुं तु तापस्ये शक्तिहीनतया स्थिता ॥८२॥
निशम्येति वचः सौम्या सा जगौ भाविनीं स्नुषाम् । कृतं भद्रं त्वया भद्रे कुर्वन्त्या प्राणरक्षणम् ॥८३॥
अन्यथा चिन्तयत्येष[4] मित्रे मित्रजनो जने । अन्यथा विधिरप्यस्मादर्थ्यते[5] दीर्घदर्शिता ॥८४॥
कल्याणहेतवः प्राणाः कल्याणि ! मम वाक्यतः । तपस्यन्त्यापि धार्यन्तां जीवन्ती भद्रमाप्स्यसि ॥८५॥

वह अतिशय रूप और लावण्यकी धारक थी, सुन्दर स्वच्छ साड़ीसे सुशोभित थी, शिरपर जटाएँ रखाये हुई थी और स्निग्ध कान्तिसे सहित थी इसलिए पायोंको धारण करनेवाली स्निग्ध छायासे सहित वटवृक्षकी शाखाके समान सुशोभित हो रही थी ॥७३॥ वह तापसी कानों तक लम्बे नेत्र, सुन्दर ओठ, मुखरूपी चन्द्रमा एवं नितम्ब और स्तनोंके भारसे सबका मन हरती थी ॥७४॥ वह समस्त तापसोंके द्वारा पूज्य थी, चन्द्रमाकी कलाके समान कृश तथा निर्मल थी और अपने आवाससे उस तपोवनको पवित्र करती थी ॥७५॥ मधुर वचन बोलनेवाली उस तापसीने तापसोंके योग्य वृत्तिसे पाण्डवोंका अतिथि-सत्कार किया तथा उनकी भूख-प्यास और मार्गकी थकावटको दूर किया ॥७६॥

एक दिन कुन्तीने बड़े प्रेमसे उससे पूछा कि हे कमलके समान कोमलांगी बेटी ! तुझे नयी अवस्थामें ही वैराग्य किस कारणसे हो गया है जिससे तूने यह कठिन व्रत धारण कर रखा है ? ॥७७॥ इस प्रकार स्नेहके साथ पूछी जानेपर मृगनेत्री राजपुत्री मनोहर वाणीसे उनका मन हरती हुई बोली कि हे पूज्ये ! आपने ठीक पूछा है, मेरे वैराग्यका कारण सुनिए क्योंकि सज्जन पुरुष बताये हुए मनके दुःखको दूर कर देते हैं ॥७८–७९॥ मेरे गुरुजनोंने मुझे स्वभावसे उत्तम चेष्टाके धारक पाण्डवोंके बड़े भाई युधिष्ठिरके लिए पहले ही दे रखा था ॥८०॥ परन्तु मेरे पापके प्रभावसे माता और भाइयोंके साथ उनके विषयका जो समाचार लोगोंसे सुना है उसका स्मरण भी नहीं किया जा सकता ॥८१॥ 'मेरा पति दाहके दुःखसे मरा है इसलिए मुझे भी उसी मार्गसे मरना युक्त था परन्तु मैं शक्तिहीन होनेके कारण उस मार्गसे मर नहीं सकी इसलिए तपस्या करने लगी हूँ' ॥८२॥

तापसीके वचन सुन उसे होनहार पुत्रवधू जान सौम्य स्वभावकी धारक कुन्तीने कहा कि हे भद्रे ! तूने बहुत उत्तम किया जो प्राणोंकी रक्षा की ॥८३॥ मित्रजन, मित्रजनके विषयमें कुछ अन्य विचार करते हैं और भाग्य उससे विपरीत कुछ अन्य ही कार्य कर देता है इसलिए दीर्घदर्शिताकी आकांक्षा की जाती है ॥८४॥ हे कल्याणि ! प्राण कल्याणके कारण हैं इसलिए मेरे

---

१. सुष्ठु अधरः स्वधरः तेन । २. जातमितिव्रते म. । ३. दूरीकरोति । ४. चिन्तयत्येषा म., घ., ग., ङ । ५. -दर्घ्यते म., घ., ग., ङ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तद्देवान्ववदत्पाण्डोः प्रथमस्तनयो यतः । धर्मं चाकथयद्युक्तमणुशीलगुणव्रतैः ॥८६॥
परस्परं समालापे मनः प्रीतिकरेऽनयोः । वर्तमाने तदा कन्या मनसामन्यतेति सा ॥८७॥
राजलक्षणयुक्तः स किं स्यादेष युधिष्ठिरः । समातृकोऽनुशास्तीह मामतीव कृपान्वितः ॥८८॥
सर्वथा मम पुण्येन गण्येन तपसापि च । सत्यसन्धः प्रियो जीव्यादनाहतिरिहोद्यमी ॥८९॥
यियासवस्तु युक्तानां पुनर्दर्शनमस्त्विति । सम्मानिताः[2] प्रियालापैरयुरस्थाच्च साशया ॥९०॥
[3]समुद्रविजयः श्रुत्वा स्वसृस्वस्त्रीयमारणम् । मारणाय कुरूणां स प्राप्तः कुपितमानसः ॥९१॥
जरासन्धस्ततः प्राप्य स्वयमेव महादरः । यदूनां कौरवाणां च संधिमापाद्य यातवान् ॥९२॥
इतोऽपि तापसाकारं त्यक्त्वेति द्विजवेषिणः । प्रयान्तो भ्रातरः कुन्त्या प्रापुरीहापुरं परम् ॥९३॥
भीमसेनो महाभीमं भृङ्गाभं भृङ्गराक्षसम् । मनुजाशनमुद्वास्य [4]तत्रास त्रासमङ्गिनाम् ॥९४॥
वीतभीभ्यः प्रजाभ्यस्ते [5]प्राप्तपूजाः समातृकाः । व्रजन्तः स्वेच्छया प्रापुस्त्रिशृङ्गाख्यं महापुरम् ॥९५॥
प्रचण्डवाहनस्तत्र प्रचण्डश्चण्डकर्मणाम् । आसीन्नृपतिरस्येष्टा वनिता विमलप्रभा ॥९६॥
रूपातिशयसंपूर्णाः पूर्णचन्द्रसमाननाः । कलापारमिताः सर्वास्तयोर्दुहितरो दश ॥९७॥

कहनेसे तू तपस्या करती हुई भी इन्हें अवश्य धारण कर। यदि जीवित रहेगी तो कल्याणको अवश्य प्राप्त करेगी ॥८५॥ पाण्डुके प्रथम पुत्र—युधिष्ठिरने भी माता कुन्तीके ही वचनोंका अनुवाद किया—वही बात कही और अणुव्रत, शीलव्रत तथा गुणव्रतोंसे युक्त धर्मका उपदेश दिया ॥८६॥ उस समय युधिष्ठिर तथा कन्याका, मनमें प्रीति उत्पन्न करनेवाला जो परस्पर वार्तालाप हुआ था उससे कन्याने मनमें यह समझा अर्थात् यह शंका उसके मनमें उत्पन्न हुई कि क्या यह राजाओंके लक्षणोंसे युक्त वही युधिष्ठिर हैं जो दयासे युक्त हो माताके साथ यहाँ मुझे अत्यधिक उपदेश दे रहे हैं ? मेरे पुण्य अथवा गणनीय आदरणीय तपसे ही यहाँ प्रकट हुए हैं। ये दृढ़प्रतिज्ञ और उद्यमी प्रिय, कुमार यहाँ बिना किसी आघातसे चिर काल तक जीवित रहें ॥८७-८९॥

युधिष्ठिर आदि पाण्डव जब वहाँसे जाने लगे तब उस कन्याने 'आप शिष्ट जनोंका फिरसे दर्शन प्राप्त हो' यह कह मधुर वार्तालापसे उनका सम्मान किया। वे चले गये और कन्या युधिष्ठिरकी प्राप्तिकी आशासे उसी तपोवनमें रहने लगी ॥९०॥ इधर जब राजा समुद्रविजयने सुना कि दुर्योधनने हमारी बहन तथा भानजोंको महलमें जलाकर मार डाला है तब वे कुपित हो कौरवोंको मारनेके लिए आये ॥९१॥ तदनन्तर महान् आदरसे युक्त जरासन्धने स्वयं आकर यादवों और कौरवोंके बीच सन्धि करा दी। सन्धि कराकर जरासन्ध अपनी राजधानीको चला गया ॥९२॥

इधर पाण्डव तापसोंका वेष छोड़ सामान्य ब्राह्मणके वेषमें विचरण करने लगे और माता कुन्तीके साथ चलते-चलते सब ईहापुर नामक उत्तम नगरमें पहुँचे ॥९३॥ वहाँ एक भ्रमरके समान काला भृंगराक्षस नामका महाभयंकर नरभोजी राक्षस मनुष्योंको दुःखी कर रहा था सो भीमसेनने उसे नष्ट कर वहाँके निवासियोंका भय दूर किया ॥९४॥ जिनका भय नष्ट हो गया था ऐसे प्रजाके लोगोंने मातासहित पाण्डवोंका खूब सत्कार किया। तदनन्तर इच्छानुसार चलते हुए वे त्रिशृंग नामक महानगरमें पहुँचे ॥९५॥ वहाँ क्रूरकर्मा मनुष्योंके लिए तीव्र दण्ड देनेवाला प्रचण्डवाहन नामका राजा था। उसकी विमलप्रभा नामकी प्रिय स्त्री थी ॥९६॥ उन दोनोंके दश पुत्रियाँ थीं जो सबकी-सब रूपके अतिशयसे युक्त, पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाली और

१. -दन्याहति म । २. सम्मानिता म. । ३. ९१-९२- तमौ श्लोकौ क-पुस्तके केनापि रेखां दत्त्वा न्यक्कृतौ ।
४. तत्र + आस । तत्र = नगरे, अङ्गिनां त्रासम् , आस = क्षिप्तवान् । ५. प्राप्तपूजा म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आद्या गुणप्रभा तासु सुप्रभा ह्रीश्रियौ रतिः । पद्मा चेन्दीवरा विश्वाचर्या[1] चाशोकया सह ॥९८॥
युधिष्ठिराय ताः सर्वाः पूर्वमेव निवेदिताः । लब्ध्वा [2]तस्यान्यथा वार्त्तामणुव्रतधराः स्थिताः ॥९९॥
इभ्योऽपि प्रियमित्राख्यस्तत्र पुर्यां सपर्यया । अन्ववर्तत कौन्तेयान्[3] पुरुषान्तरविद्धनी ॥१००॥
सोमिनी मामिनी तस्य कन्या नयनसुन्दरी । सौन्दर्येण स्वरूपेण नयनानन्ददायिनी ॥१०१॥
युधिष्ठिराय वीराय प्रागेव प्रतिपादिता । राजपुत्र्यो यथा पूर्वास्तथा सा तद्गता स्थिता[4] ॥१०२॥
राजा सभार्य इभ्यश्च महापुरुषवेदिनौ । कुन्तीपुत्राय ताः कन्या ज्यायसे दातुमिच्छतः ॥१०३॥
तास्तु [5]निश्चिन्तचित्तत्वादन्यलोकगतोऽपि हि । स एष पतिरस्माकमिति नेच्छन्ति तं द्विजम् ॥१०४॥
ततोऽपि नगराद्याता [6]नगराजस्थिरात्मकाः । प्राप्ताश्चम्पापुरीं तेऽमी कर्णो यत्र महानृपः ॥१०५॥
तत्र भीमो महानागं पुरमध्ये मदोत्कटम् । प्रकोड्य[7] निर्मदीचक्रे[8] कर्णसंक्षोभकृत्कृती ॥१०६॥
ततोऽपि वैदिशं [9]याता पुरं सुरपुरोपमम् । राजा वृषध्वजो यत्र युवराजो दृढायुधः ॥१०७॥
दिशावली प्रिया राज्ञो दिशानन्दा तु नन्दना । दिशासु विदिताकारा दिशामिव विशुद्धता ॥१०८॥
भीमो राजगृहे राज्ञा गम्भीरस्वरदर्शनः । अदृश्यत दृशां[10] कान्तो भिक्षार्थी किल रूपवान् ॥१०९॥

कलाओंमें पारंगत थीं ॥९७॥ उनके नाम थे—१ गुणप्रभा, २ सुप्रभा, ३ ह्री, ४ श्री, ५ रति, ६ पद्मा, ७ इन्दीवरा, ८ विश्वा, ९ आचर्या और १० अशोका। इनमें गुणप्रभा ज्येष्ठ थी ॥९८॥ ये सभी कन्याएँ पहले युधिष्ठिरके लिए प्रदान की गयी थीं परन्तु बादमें उनका अन्यथा समाचार प्राप्त कर वे अणुव्रतोंको धारण करनेवाली श्राविकाएँ बन गयी थीं ॥९९॥ उसी त्रिशृंगपुरमें एक प्रियमित्र नामका सेठ रहता था जो बहुत भारी धनी तथा पुरुषोंके अन्तरको समझनेवाला था। पाण्डवोंको विशिष्ट पुरुष समझ उसने उनका बहुत सत्कार किया ॥१००॥ उसकी सोमिनी नामकी स्त्री थी और उससे उसके स्वरूप तथा सौन्दर्यसे नेत्रोंको आनन्द देनेवाली नयनसुन्दरी नामकी कन्या हुई थी ॥१०१॥ यह कन्या वीर युधिष्ठिरके लिए पहले ही दे दी गयी थी इसलिए वह भी पूर्वोक्त राजपुत्रियोंके समान अणुव्रत धारण कर रहती थी ॥१०२॥ राजा प्रचण्डवाहन और अपनी स्त्रीसहित सेठ प्रियमित्र, ब्राह्मणवेषधारी पाण्डवोंको महापुरुष समझते थे इसलिए ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिरके लिए वे सब कन्याएँ देना चाहते थे ॥१०३॥ परन्तु कन्याओंने अपने मनमें यह दृढ़ निश्चय कर लिया था कि 'युधिष्ठिर भले ही परलोक चले गये हों पर इस भवमें वे ही मेरे पति हैं अन्य नहीं।' इस निश्चयसे उन्होंने ब्राह्मणवेषधारी युधिष्ठिरको अन्य पुरुष समझ स्वीकृत नहीं किया ॥१०४॥

तदनन्तर सुमेरुके समान स्थिरचित्तके धारक वे सब पाण्डव उस नगरसे भी चल दिये और चलते-चलते चम्पापुरीमें पहुँचे जहाँ महाराजा कर्ण राज्य करते थे ॥१०५॥ वहाँ एक मदोन्मत्त बड़ा हाथी नगरमें उपद्रव मचा रहा था सो कुशल भीमने क्रीड़ा कर उसे मदरहित कर दिया। भीमकी यह वीरता देख कर्णको क्षोभ उत्पन्न हुआ ॥१०६॥ वहाँसे चलकर वे इन्द्रपुरके समान सुन्दर वैदिशपुर पहुँचे। उस समय वहाँका राजा वृषध्वज था और युवराज दृढायुध था ॥१०७॥ राजा वृषध्वजकी रानीका नाम दिशावली था और उसके दिशानन्दा नामकी पुत्री थी। दिशाओंकी विशुद्धताके समान दिशानन्दाकी सुन्दरता समस्त दिशाओंमें प्रसिद्ध थी ॥१०८॥ एक दिन गम्भीर स्वर और गम्भीर दृष्टिको धारण करनेवाले, नेत्रप्रिय रूपवान् भीम भिक्षाकी

१. विश्वाचार्या म.। २. युधिष्ठिरस्य। ३. कौन्तेया म.। ४. स्थिताः म.। ५. निश्चित म.। ६. नगराज इव सुमेरुरिव स्थिर आत्मा येषां ते। ७. प्रक्रीडन् क.। ८. वर्ण–म.। ९. जाताः क., ग., घ., म.। १०. दृशा कान्ता म.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञात्वा महानरं तं च कन्यामादाय तां नृपः । सान्तःपुरः पुरः स्थित्वा जगाद मधुरं वचः ॥११०॥
तवानुरूपकन्येयं दीयते प्रतिपद्यताम् । भिक्षा[1] प्रसारय श्रीमन्[2] पाणिं पाणिग्रहं प्रति ॥१११॥
अपूर्वेयमहो भिक्षा नेदृशीं प्रति सांप्रतम् । स्वातन्त्र्यमिति सभाष्य गत्वा तेभ्यो न्यवेदयत् ॥११२॥
सार्धं मासमिह स्थित्वा पुरे जग्मुरमी ततः । तरीत्य(?)नर्मदां नर्मप्रवणां विन्ध्यमाविशन् ॥११३॥
संध्याकारेऽन्तरद्वीपे संध्याकारे पुरे नृपः । हिडम्बवंशसंभूतः सिंहघोषोऽवतिष्ठते ॥११४॥
देवी सुदर्शना तस्य सुता हृदयसुन्दरी । मेघवेगः त्रिकूटेन्द्रो याचित्वा तां न लब्धवान् ॥११५॥
यो[3] हनिष्यति तं विन्ध्ये गदाविद्याप्रसाधकम् । भर्त्ता हृदयसुन्दर्या इति नैमित्तिकागमः ॥११६॥
द्रुमकोटरमध्यास्य साधयन्तं खगं गदाम् । तयैव गदया सार्गं[4] भीमोऽपीपतदेकदा[5][6] ॥११७॥
ततो हृदयसुन्दर्या भीमसेनस्य संगमः । हैडिम्बेन च संबन्धः संबभूव महोत्सवः ॥११८॥
विहृत्य विविधान् देशान् दाक्षिणात्यान् महोदयाः । ते हास्तिनपुरं गन्तुं प्रवृत्ताः पाण्डुनन्दनाः॥११९॥
प्राप्ता मार्गवशाद्विश्वे माकन्दीं नगरीं दिवः । प्रतिच्छन्दस्थितिं[7] दिव्यान् दधाना देवविभ्रमान्[8] ॥१२०॥
द्रुपदोऽस्यास्तदा भूपस्तस्य भोगवती प्रिया । धृष्टद्युम्नादयः पुत्राः प्रत्येकं दृष्टशक्तयः ॥१२१॥

अभिलाषासे राजमहलमें गये। वहाँ राजा वृषध्वजने उन्हें देखा ॥१०९॥ देखते ही उसने समझ लिया कि यह कोई महापुरुष है इसलिए वह कन्या दिशानन्दाको लेकर अपने अन्तःपुरके साथ भीमके आगे खड़ा हो गया और इस प्रकारके मधुर वचन कहने लगा ॥११०॥ 'हे श्रीमन्! यह कन्या ही आपके लिए अनुरूप भिक्षा है इसलिए इसे स्वीकृत कीजिए, पाणिग्रहणके लिए हाथ पसारिए' ॥१११॥ भीमने कहा कि 'अहा! यह भिक्षा तो अपूर्व रही, इस समय ऐसी भिक्षा स्वीकृत करनेके लिए मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ'। उक्त उत्तर दे भीमने अपने आवासस्थानपर आकर युधिष्ठिर आदिके लिए यह समाचार सुनाया ॥११२॥ तदनन्तर ये सब इस नगरमें डेढ़ मास तक रहे। उसके बाद क्रीड़ाओंके प्रदान करनेमें निपुण नर्मदा नदीको पार कर विन्ध्याचलमें प्रविष्ट हुए ॥११३॥ विन्ध्याचलके बीच सन्ध्याके आकारका एक अन्तरद्वीप था। उसके सन्ध्याकार नामक नगरमें हिडिम्बवंशमें उत्पन्न राजा सिंहघोष रहता था ॥११४॥ उसकी सुदर्शना नामकी स्त्री थी और उससे हृदयसुन्दरी नामकी पुत्री उत्पन्न हुई थी। त्रिकूटाचलका स्वामी मेघवेग उस हृदयसुन्दरीको चाहता था और उसके निमित्त उसने राजा सिंहघोषसे याचना भी की थी परन्तु वह उसे प्राप्त नहीं कर सका ॥११५॥ हृदयसुन्दरीके विषयमें निमित्तज्ञानियोंने यह कहा था कि 'विन्ध्याचलपर गदाविद्याको सिद्ध करनेवाले विद्याधरको जो मारेगा वही हृदयसुन्दरीका पति होगा' ॥११६॥ भीमने विन्ध्याचलपर जाकर देखा कि एक विद्याधर वृक्षकी कोटरमें बैठकर गदाको सिद्ध कर रहा है। देखते ही भीमने वह गदा हाथमें ले ली और उसीके प्रहारसे उस वृक्षको एक साथ गिरा दिया ॥११७॥ तदनन्तर भीमका हृदयसुन्दरीके साथ समागम हुआ। हिडिम्बवंशी राजा सिंहघोषके साथ पाण्डवोंका यह सम्बन्ध महान् हर्षका कारण हुआ ॥११८॥

तदनन्तर महान् अभ्युदयको धारण करनेवाले पाण्डव दक्षिणके नाना देशोंमें बिहार कर हस्तिनापुर जानेके लिए उद्यत हुए ॥११९॥ मार्गके वश चलते-चलते वे सब, स्वर्गके प्रतिबिम्बको धारण करनेवाली माकन्दी नगरी पहुँचे। उस समय सुन्दर शरीरसे सुशोभित पाण्डव देवोंके विभ्रमको धारण कर रहे थे—देवोंके समान जान पड़ते थे ॥१२०॥ वहाँका राजा द्रुपद था, उसकी स्त्रीका नाम भोगवती था और उन दोनोंके धृष्टद्युम्न आदि अनेक

१. भिक्षां क., ख., ग., घ.। २. श्रीमान् म., श्रीमन् ख., थ.। ३. हतिष्यति म.। ४. सवृक्षं। ५. पातयामास। ६. सोऽङ्गं भीमोऽपापट्यदेकदा म.। ७. दिव्यां म.। ८. देवविभ्रमाः म. दिव्यां दधानां देवविभ्रमाः घ.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूपलावण्यसौभाग्यकलालंकृतविग्रहा । द्रौपदी तनया तस्य द्रुपदस्योपमोज्झिता ॥१२२॥
तस्याः कृते कृताः सर्वे [1]मनोजेन नृपात्मजाः । सग्रहा इव याचन्ते नानोपायनपाणयः ॥१२३॥
दाक्षिण्यभङ्गभीतेन द्रुपदेन ततो नृपाः । विश्वे चन्द्रकवेधार्थमाहूताः कन्यकार्थिनः ॥१२४॥
द्रौपदीग्रहवश्यानां [2]काश्यप्यामिह भूभृताम् । कर्णदुर्योधनादीनां माकन्द्यां निवहोऽभवत् ॥१२५॥
सुरेन्द्रवर्धनः खेन्द्रः स्वसुतावरमार्गणैः । धनुर्गाण्डीवमादेशाद्दिव्यं तत्र तदाऽकरोत् ॥१२६॥
चण्डगाण्डीवकोदण्डमण्डलीकरणक्षमः । राधावेधसमर्थो यो द्रौपद्याः स भवेत्पतिः ॥१२७॥
इतीमां घोषणां श्रुत्वा द्रोणकर्णादयो नृपाः । समेत्य मण्डलीभूय कोदण्डमभितः स्थिताः ॥१२८॥
देवताधिष्ठितायास्तैश्चापयष्टेः प्रदर्शनम् । आसीत्सत्या इवाशक्यं स्पर्शनाकर्षणे कुतः ॥१२९॥
भाविना स्वामिना पश्चादर्जुनेन [3]सदर्जुना । दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा तदाकृष्टा स सतीव वशं स्थिता ॥१३०॥
आरोप्याकृष्य पार्थेन धनुर्ज्यास्फालिताक्षिभिः[4] । भ्रान्तं बधिरितं कर्णैः कर्णादीनां पटुध्वनौ ॥१३१॥
वितर्कः कर्कशं दृष्ट्वा तं तेषामित्यभूदयम् । सहजैः सहजैश्वर्यो मृत्वोत्पन्नः किमर्जुनः ॥१३२॥
धन्विनः स्थानमन्यस्य सामान्यस्येदृशं कुतः । अहो दृष्टिरहो मुष्टिरहो सौष्ठवमित्यपि ॥१३३॥

पुत्र थे जो एकसे-एक बढ़कर बलवान् थे ॥१२१॥ राजा द्रुपदकी एक द्रौपदी नामकी पुत्री भी थी जिसका शरीर रूप, लावण्य, सौभाग्य तथा अनेक कलाओंसे अलंकृत था एवं जो अपने सौन्दर्यके विषयमें सानी नहीं रखती थी ॥१२२॥ कामदेवने सब राजपुत्रोंको उसके लिए पागल-सा बना दिया था इसलिए वे नाना प्रकारके उपहार हाथमें ले उसकी याचना करते थे ॥१२३॥ तदनन्तर 'किस-किससे बुराई की जाये' यह विचार दाक्षिण्य-भंगसे भयभीत राजा द्रुपदने कन्याकी इच्छा रखनेवाले सब राजकुमारोंको चन्द्रक यन्त्रका वेध करनेके लिए आमन्त्रित किया ॥१२४॥ इस पृथिवीपर द्रौपदीरूप ग्रहके वशीभूत हुए कर्ण, दुर्योधन आदि जितने राजा थे उन सबका झुण्ड माकन्दी नगरीमें इकट्ठा हो गया ॥१२५॥ उसी समय सुरेन्द्रवर्धन नामका एक विद्याधर राजा अपनी पुत्रीके योग्य वर खोजनेके लिए वहाँ आया और उसने राजा द्रुपदकी आज्ञासे गाण्डीव नामक धनुषको वरकी परीक्षाका साधन निश्चित किया ॥१२६॥ उस समय यह घोषणा की गयी कि 'जो अत्यन्त भयंकर गाण्डीव धनुषको गोल करने एवं राधावेध (चन्द्रकवेध) में समर्थ होगा वही द्रौपदीका पति होगा' ॥१२७॥ इस घोषणाको सुनकर वहाँ जो द्रोण तथा कर्ण आदि राजा आये थे वे सब गोलाकार हो धनुषके चारों ओर खड़े हो गये ॥१२८॥ परन्तु सती स्त्रीके समान देवोंसे अधिष्ठित उस धनुष-यष्टिका देखना भी उनके लिए अशक्य था फिर छूना और खींचना तो दूर रहा ॥१२९॥

तदनन्तर जब सब परास्त हो गये तब द्रौपदीके होनहार पति एवं सदा सरल प्रकृतिको धारण करनेवाले अर्जुनने उस धनुष-यष्टिको देखकर तथा छूकर ऐसा खींचा कि वह सती स्त्रीके समान इनके वशीभूत हो गयी ॥१३०॥ जब अर्जुनने खींचकर उसपर डोरी चढ़ायी और उसका आस्फालन किया तो उसके प्रचण्ड शब्दमें कर्ण आदि राजाओंके नेत्र फिर गये तथा कान बहरे हो गये ॥१३१॥ तीक्ष्ण आकृतिके धारक पार्थको देखकर कर्ण आदिके मनमें यह तर्क उत्पन्न हुआ कि क्या स्वाभाविक ऐश्वर्यको धारण करनेवाला अर्जुन अपने भाइयोंके साथ मरकर यहाँ पुनः उत्पन्न हुआ है ? ॥१३२॥ अर्जुनके सिवाय अन्य सामान्य धनुर्धारीका ऐसा खड़ा होना कहाँ सम्भव है ? अहा ! इसकी दृष्टि, इसकी मुट्ठी और इसकी चतुराई—सभी आश्चर्यकारी हैं ॥१३३॥

१. मनोवेगैर्नृपात्मजाः म., क. । २. पृथिव्याम् 'क्षोणी ज्या काश्यपी क्षितिः' इति धनंजयः । ३. सदा सर्वदा ऋजुना सरलेन । ४. क्षितिः म. (?) ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भ्रमच्चक्रसमारूढो बाणं संधृत्य दक्षिणः । लक्ष्यं चन्द्रकवेधाख्यं विव्याध[1] नृपसंनिधौ ॥१३४॥
द्रौपदी च द्रुतं मालां कन्धरेऽभ्येत्य बन्धुरे । अकरोत्करपद्माभ्यामर्जुनस्य वरेच्छया ॥१३५॥
विप्रकीर्णा तदा माला सहसा सहवर्तिनाम् । पञ्चानामपि गात्रेषु चपलेन नभस्वता ॥१३६॥
ततश्चपललोकस्य तत्त्वमूढस्य कस्यचित् । [2]वाचो विचेरुरित्युच्चैर्वृताः पञ्चानयेत्यपि ॥१३७॥
सद्गन्धस्य सुवृक्षस्य तुङ्गस्य फलितस्य सा । पुष्पितेव लताभासीदर्जुनस्याङ्गमाश्रिता ॥१३८॥
ततः कुन्त्याः समीपं सा [3]धीरमञ्जीरबन्धना । अग्रतः पश्यतां राज्ञां नीतानीतिविदां विदा ॥१३९॥
संनह्य ते नृपाः केचिदनुयाता युयुत्सवः । निषिद्धा अपि यत्नेन द्रुपदेन नयैषिणा ॥१४०॥
अर्जुनेन च भीमेन धृष्टद्युम्नेन च त्रिभिः । धन्विभिर्दूरतो रुद्धा नाभितः पदमप्यदुः ॥१४१॥
धृष्टद्युम्नरथस्थेन स्वनामाङ्कः किरीटिना । द्रौणस्याङ्के शरः क्षिप्तः सर्वसंबन्धवाचकः ॥१४२॥
द्रोणाश्वत्थामवीराभ्यां भीष्मेण विदुरेण च । वाचितः सर्वसंबन्धः प्रमदं प्रददौ[4] परम् ॥१४३॥
द्रुपदस्य सगोत्रस्य द्रोणादीनां च सौख्यतः[5] । शङ्खवादित्रनिर्घोषा[6]जाताः पाण्डवसंगमे ॥१४४॥
जातबान्धवसंबन्धे परमानन्ददायिनि । संवृत्या नन्दिताः पञ्च तेऽमी दुर्योधनादिभिः ॥१४५॥
द्रौपदी दीपिकेवासौ स्नेहसंभारपूरिता । पाणिग्रहणयोगेन दिदीपेऽर्जुनधारिता ॥१४६॥

उधर राजा लोग ऐसा विचार कर रहे थे इधर अत्यन्त चतुर अर्जुन डोरीपर बाण रख झटसे चलते हुए चक्रपर चढ़ गया और राजाओंके देखते-देखते उसने शीघ्र ही चन्द्रकवेध नामका लक्ष्य बेध दिया ॥१३४॥ उसी समय द्रौपदीने शीघ्र ही आकर वरकी इच्छासे अर्जुनकी झुकी हुई सुन्दर ग्रीवामें अपने दोनों कर-कमलोंसे माला डाल दी ॥१३५॥ उस समय जोरदार वायु चल रही थी इसलिए वह माला टूटकर साथ खड़े हुए पाँचों पाण्डवोंके शरीरपर जा पड़ी ॥१३६॥ इसलिए विवेकहीन किसी चपल मनुष्यने जोर-जोरसे यह वचन कहना शुरू कर दिया कि इसने पाँच कुमारोंको वरा है ॥१३७॥ जिस प्रकार किसी सुगन्धित, ऊँचे एवं फलोंसे युक्त वृक्षपर लिपटी फूली लता सुशोभित होती है उसी प्रकार अर्जुनके समीप खड़ी द्रौपदी सुशोभित हो रही थी ॥१३८॥ तदनन्तर कुशल अर्जुन नूपुरोंके निश्चल बन्धनसे युक्त उस द्रौपदीको अनीतिज्ञ राजाओंके आगेसे उनके देखते-देखते माता कुन्तीके पास ले चला ॥१३९॥ युद्ध करनेके लिए उत्सुक राजाओंको यद्यपि नीतिचतुर राजा द्रुपदने रोका था तथापि कितने ही राजा जबर्दस्ती अर्जुनके पीछे लग गये ॥१४०॥ परन्तु अर्जुन, भीम और धृष्टद्युम्न इन तीनों धनुर्धारियोंने उन्हें दूरसे ही रोक दिया। ऐसा रोका कि न आगे न पीछे कहीं एक डग भी रखनेके लिए समर्थ नहीं हो सके ॥१४१॥

तदनन्तर धृष्टद्युम्नके रथपर आरूढ़ अर्जुनने अपने नामसे चिह्नित एवं समस्त सम्बन्धोंको सूचित करनेवाला बाण द्रोणाचार्यकी गोदमें फेंका ॥१४२॥ द्रोण, अश्वत्थामा, भीष्म और विदुरने जब उस समस्त सम्बन्धोंको सूचित करनेवाले बाणको बाँचा तो उसने सबको परम हर्ष प्रदान किया ॥१४३॥ पाण्डवोंका समागम होनेपर राजा द्रुपद, कुटुम्बी जन, तथा द्रोणाचार्य आदिको जो महान् सुख उत्पन्न हुआ था। उससे शंख और बाजोंके शब्द होने लगे ॥१४४॥ परम आनन्दको देनेवाले भाइयोंके इस समागमपर दुर्योधन आदिने भी ऊपरी स्नेह दिखाया और पाँचों पाण्डवोंका अभिनन्दन किया ॥१४५॥ जिस प्रकार स्नेह—तेलके समूहसे भारी दीपिका किसीके पाणिग्रहण—हाथमें धारण करनेसे अत्यधिक देदीप्यमान होने लगती है उसी प्रकार स्नेह—प्रेमके भारसे भरी द्रौपदी, पाणिग्रहण—विवाहके योगसे

१. विव्याथ म.। २. वाचोदितोरु म., घ.। ३. धीरगा जीवबन्धना म.। ४. प्रपदौ म.। ५. सौख्यतां म.। सौख्यतः घ., ख.। ६. निर्घोषाज्जाताः म.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवाहमङ्गलं दृष्ट्वा द्रौपद्यर्जुनयोर्नृपाः । [1]प्रयाताः पाण्डवैर्युक्तः स्थानं दुर्योधनोऽप्यगात् ॥१४७॥
अर्धराज्यविभागेन ते हास्तिनपुरे पुनः । तस्थुर्दुर्योधनाद्याश्च पाण्डवाश्च यथायथम् ॥१४८॥
आनाय्यानाय्यवृत्तोऽसौ ज्येष्ठं कन्याः पुरातनीः । विवाह्य सुखिताश्चक्रे भीमसेनो निजोचिताः ॥१४९॥
स्नुषाबुद्धिरभूत्तस्यां ज्येष्ठयोरर्जुनस्त्रियाम् । द्रौपद्यां [2]यमलस्यापि मातरीवानुवर्तनम् ॥१५०॥
तस्याः श्वसुरबुद्धिस्तु पाण्डाविव तयोरभूत् । अर्जुनप्रेमसंरुद्धमौचित्यं देवरद्वये ॥१५१॥
अत्यन्तशुद्धवृत्तेषु [3]येऽभ्याख्यानपरायणाः । तेषां तत्प्रभवं पापं को निवारयितुं क्षमः ॥१५२॥
सद्भूतस्यापि दोषस्य परकीयस्य भाषणम् । पापहेतुरमोघः स्यादसद्भूतस्य किं पुनः ॥१५३॥
प्राकृतानामपि प्रीत्या समानधनता धने । न [4]स्त्रीषु त्रिषु लोकेषु प्रसिद्धानां किमुच्यते ॥१५४॥
महापुरुषकोटीस्थकूटदोषविभाषिणाम् । असतां कथमायाति न जिह्वा शतखण्डताम् ॥१५५॥
वक्ता श्रोता च पापस्य यन्नात्र फलमश्नुते । तदमोघममुत्रास्य वृद्ध्यर्थमिति बुद्ध्यताम् ॥१५६॥
वक्तुः श्रोतुश्च सद्बुद्ध्या यथा पुण्यमयी श्रुतिः । श्रेयसे विपरीताय तथा पापमयी श्रुतिः ॥१५७॥

अर्जुनके द्वारा धारण की हुई अत्यधिक देदीप्यमान होने लगी ॥१४६॥ राजा लोग द्रौपदी और अर्जुनका विवाह-मंगल देखकर अपने-अपने स्थानपर चले गये और दुर्योधन भी पाण्डवोंको साथ ले हस्तिनापुर पहुँच गया ॥१४७॥ दुर्योधनादि सौ भाई और पाण्डव आधे-आधे राज्यका विभाग कर पुनः पूर्वकी भाँति रहने लगे ॥१४८॥ उज्ज्वल चारित्रके धारक युधिष्ठिर तथा भीमसेनने पहले अज्ञातवासके समय अपने-अपने योग्य जिनकन्याओंको स्वीकृत करनेका आश्वासन दिया था उन्हें बुलाकर तथा उनके साथ विवाह कर उन्हें सुखी किया ॥१४९॥ द्रौपदी अर्जुनकी स्त्री थी, उसमें युधिष्ठिर और भीमकी बहू-जैसी बुद्धि थी और सहदेव तथा नकुल उसे माताके समान मानते थे ॥१५०॥

द्रौपदीकी भी पाण्डुके समान युधिष्ठिर और भीममें श्वसुर बुद्धि थी और सहदेव तथा नकुल इन दोनों देवरोंमें अर्जुनके प्रेमके अनुरूप उचित बुद्धि थी ॥१५१॥ गौतम-स्वामी कहते हैं कि जो अत्यन्त शुद्ध आचारके धारक मनुष्योंकी निन्दा करनेमें तत्पर रहते हैं उनके उस निन्दासे उत्पन्न हुए पापका निवारण करनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥१५२॥ दूसरेके विद्यमान दोषका कथन करना भी पापका कारण है फिर अविद्यमान दोषके कथन करनेकी तो बात ही क्या है ? वह तो ऐसे पापका कारण होता है जिसका फल कभी व्यर्थ नहीं जाता—अवश्य ही भोगना पड़ता है ॥१५३॥ साधारणसे-साधारण मनुष्योंमें प्रीतिके कारण यदि समानधनता होती है तो धनके विषयमें ही होती है स्त्रियोंमें नहीं होती। फिर जो तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हैं उनकी तो बात ही क्या है ? ॥१५४॥ महापुरुषोंकी कोटिमें स्थित पाण्डवोंके मिथ्या दोष कथन करनेवाले दुष्टोंकी जिह्वाके सौ खण्ड क्यों नहीं हो जाते ? ॥१५५॥ पापका वक्ता और श्रोता जो इस लोकमें उसका फल नहीं प्राप्त कर पाता है वह मानो परलोकमें वृद्धिके लिए ही सुरक्षित रहता है ऐसा समझना चाहिए। **भावार्थ**—जिस पापका फल वक्ता और श्रोताको इस जन्ममें नहीं मिल पाता है उसका फल परभवमें अवश्य मिलता है और ब्याजके साथ मिलता है ॥१५६॥ सद्बुद्धिसे पुण्यरूप कथाओंका सुनना वक्ता और श्रोताके लिए जिस प्रकार कल्याणका कारण माना गया है उसी प्रकार पापरूप कथाओंका सुनना उनके लिए अकल्याणका कारण माना गया है ॥१५७॥ इसलिए असत्यरूप दोषसे उद्धत वाणीको छोड़ो, और

१. आयाताः पाण्डवैर्युक्ता म., घ. । २. सहदेवनकुलयोः म. । ३. योऽभ्याख्यान–म. । ४. स्त्रीचरित्रलोकेषु म., घ. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्रुतविलम्बितवृत्तम्

त्यजत वाचमसत्यमलोद्धतां भजत [1]सत्यवचोनिरवद्यताम् ।
[2]निजयशोविशदां सगुणोद्यतां विजयिनीं त्विह विश्वविदोदिताम्[3] ॥१५८॥
सुभृतमाचरणं शरणं भवेदसुभृतां विपदीह [4]पराभवे ।
सुचरितस्य फलं नयपौरुषं परिभवत्यहितस्य हि तां रुषम् ॥१५९॥
शिखिशिखावलिधर्मघनागमः परनिराकरणैकजिनागमः ।
विविधलाभनिधिर्धियतां जनैर्व्रतविधिः[5] श्रुतवर्तिकृताञ्जनैः ॥१६०॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ कुरुवंशोत्पत्तिपाण्डवधार्तराष्ट्राणां च पार्थद्रौपदीलाभवर्णनो नाम पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ॥४५॥

□

सत्य वचनसे उत्पन्न उस निर्मलताका सेवन करो जो अपने यशसे विशद है, गुणी मनुष्योंके प्राप्त करनेमें उद्यत है। इस लोकमें विजय प्राप्त करानेवाली है और सर्वज्ञदेवके द्वारा निरूपित है ॥१५८॥ इस संसारमें विपत्ति और पराभवके समय अच्छी तरहसे आचरित अपना आचरण ही प्राणियोंके लिए शरण है क्योंकि सदाचारका फल जो नीति और पौरुष है वह शत्रुके उस रोषको परिभूत कर देता है—दूर कर देता है ॥१५९॥ जो अग्निकी शिखावलीसे वर्धमान धर्म-रूपी ग्रीष्म कालको नष्ट करनेके लिए वर्षा ऋतुके समान है, दूसरोंका निराकरण करनेके लिए एक जिनागम है, और नाना प्रकारके लाभोंका भण्डार है, ऐसा व्रतविधान, श्रुतरूपी अंजनकी शलाकाका प्रयोग करनेवाले मनुष्योंके द्वारा अवश्य ही धारण करने योग्य है ॥१६०॥

इस प्रकार अरिष्टनेमिपुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें कुरुवंशकी उत्पत्ति, पाण्डव और धार्तराष्ट्रोंके समागम तथा अर्जुनको द्रौपदीके लाभका वर्णन करनेवाला पैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥४५॥

□

१. सत्यवचसः निरवद्यता तां । २. निजयशोविशदाशगुणोद्यतां म. । निजयशो विशदं न गुणोद्यतां क. । ३. अथवा विजयिनीं त्विह वित्थ विदोऽद्य ताम् इति पाठः क पुस्तकटिप्पणकृत इह संगतः लोके, हे विदः हे पण्डिताः अद्य अधुना, ताम् वाचं, विजयिनीं वित्थ जानीथ । ४. पुराभवे ख., ङ. । ५. व्रतविधिश्रुतवर्ति- क. व्रतविधिप्रतिपादकश्रुतवर्त्या कृतमञ्जनं यः इति क-प्रति टिप्पणी ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

षट्चत्वारिंशः सर्गः

अथ मानितबन्धूनां पाण्डवानां गजाह्वये । नगरे नगधीराणां काले गच्छति भोगिनाम् ॥१॥
प्रत्यहं [1]परया भूत्या वर्धमानानमूनमी[2] । पञ्चापि शतमालोक्य पूर्ववच्चलिताः स्थितेः ॥२॥
तं शकुन्युपदेशेन सद्यो द्यूते विजित्य सः । [3]पञ्चज्येष्ठं शतज्येष्ठः[4] सानुजं सानुजोऽगदीत् ॥३॥
गन्तव्यं यत्र ते नाम श्रूयते न युधिष्ठिर । स्थातव्यं सत्यसंधेन त्वया प्रच्छन्नवर्तिना[5] ॥४॥
इत्युक्तं [6]प्रतिपद्यासौ शमितभ्रातृमण्डलः । निरैत्परिच्छदं त्यक्त्वा द्वादशाब्दधृतावधिः ॥५॥
[7]अनुयातार्जुनं प्रेम्णा प्रमदेन च पूरिता । द्रौपदीन्दुमिव ज्योत्स्ना कृतकृष्णनिजस्थितिः (?) ॥६॥
ततस्ते धैर्यसंपन्नाः सुवीर्या नरकुञ्जराः । क्रमेण सहिताः प्राप्ता रम्यां कालाञ्जलाटवीम् ॥७॥
प्रकीर्णकासुरीसूनुः सुतारस्तत्र खेचरः । असुरोद्गीतनगरादागत्य रमते तदा ॥८॥
कान्तया कुसुमावल्या रममाणं वनान्तरे । किरातवेषिणं कान्तं युक्तं शावरविद्यया ॥९॥
किरातवेषभृत्पत्न्या सह क्रीडन् यदृच्छया । ददर्श खेचरं चापी चापिनं स धनंजयः ॥१०॥
अकस्माच्च तयोर्जाते दर्शने सहसानयोः । बभूव विषमं युद्धं दिव्येषुच्छन्नदिङ्मुखम् ॥११॥
भुजयुद्धे ततो लग्ने भुजेन दृढमुष्टिना । जघानोरसि तं पार्थः खचरं बलिनं बली ॥१२॥

अथानन्तर बन्धुओंका सम्मान करनेवाले पर्वतोंके समान धीर-वीर पाण्डवोंका भोग भोगते हुए हस्तिनापुरमें सुखसे समय व्यतीत होने लगा ॥१॥ पाँचों पाण्डव उत्कृष्ट विभूतिसे प्रतिदिन वृद्धिको प्राप्त हो रहे थे, उन्हें देख सौ कौरव पहलेके समान पुनः मर्यादासे विचलित हो गये ॥२॥ एक बार शकुनिके उपदेशसे दुर्योधनने युधिष्ठिरको शीघ्र ही जुआमें जीत लिया। जीत लेनेपर अपने छोटे भाइयोंके साथ मिलकर दुर्योधनने भीमसेन आदि छोटे भाइयोंसे युक्त युधिष्ठिरसे कहा कि हे युधिष्ठिर! चूँकि तुम सत्यवादी हो—तुम्हारे द्वारा की हुई प्रतिज्ञा कभी मिथ्या नहीं होती इसलिए तुम्हें अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार यहाँसे चला जाना चाहिए और छिपकर वहाँ रहना चाहिए जहाँसे तुम्हारा नाम भी सुनाई न दे सके ॥३-४॥ दुर्योधनके इस कथनको सुनकर यद्यपि भीमसेन आदि भाइयोंको क्षोभ उत्पन्न हुआ तथापि युधिष्ठिर उन्हें शान्त कर बारह वर्षकी लम्बी अवधिके लिए सब राज्य-पाट छोड़ हस्तिनापुरसे बाहर निकल गये ॥५॥ जिस प्रकार चाँदनी चन्द्रमाके पीछे-पीछे चलती है उसी प्रकार प्रेम और हर्षसे भरी द्रौपदी अर्जुनके पीछे-पीछे चलने लगी ॥६॥

तदनन्तर धैर्यसे सम्पन्न, उत्तम शक्तिसे सुशोभित एवं एक-दूसरेके हित करनेमें तत्पर वे सब श्रेष्ठ पुरुष क्रम-क्रमसे कालांजला नामक अटवीमें पहुँचे ॥७॥ उस समय वहाँ प्रकीर्णकासुरीका पुत्र सुतार नामका विद्याधर असुरोद्गीत नामक नगरसे आकर क्रीड़ा कर रहा था ॥८॥ वह शावरी विद्यासे युक्त था अतः किरातका सुन्दर वेष रख अपनी कुसुमावली नामक स्त्रीके साथ क्रीड़ा कर रहा था ॥९॥ उसकी स्त्री भी किरातका वेष रखे थी और दोनों इच्छानुसार साथ-साथ क्रीड़ा कर रहे थे। धनुर्धारी अर्जुनने धनुर्धारी उस विद्याधरको देखा ॥१०॥ उन दोनोंने ज्योंही अकस्मात् एक-दूसरेको देखा त्योंही उनमें भयंकर युद्ध होने लगा। ऐसा युद्ध कि जिसमें दिशाएँ दिव्य बाणोंसे आच्छादित हो गयीं ॥११॥ तदनन्तर उन दोनोंमें बाहुयुद्ध होनेपर बलवान्

---

१. परमा म.। २. कौरवाः। ३. युधिष्ठिरं। ४. दुर्योधनः। ५. वैरिणा म.। ६. प्रतिपाद्यासौ म.। ७. अनुजाता–म., घ.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पतिभिक्षां ययाचेऽसावर्जुनं कुसुमावली । मुक्तः स तं प्रणम्यागाद्रौप्याद्रेर्दक्षिणां क्षितिम् ॥१३॥
गता क्रमेण ते धीराः पुरं मेघदलाभिधम् । सिंहो नरेश्वरो यत्र कान्ता कनकमेखला ॥१४॥
तनया कनकावर्ता तयोरत्यन्तसुन्दरी । मेघेभ्यालकयोश्चारुलक्ष्मीः कान्ता शरीरजा ॥१५॥
ते चादेशवशात्कन्ये भीमो भीमांसवेषभृत् । भिक्षार्थमागतो लेभे पुण्यस्य किमु दुष्करम् ॥१६॥
विश्रम्य तत्र ते सौम्या दिनानि कतिचित्सुखम् । याताः क्रमेण पुन्नागा[2] विषयं कौशलाभिधम् ॥१७॥
स्थित्वा तत्रापि सौख्येन मासान् कतिपयानपि । प्राप्ता रामगिरिं प्राग् यो रामलक्ष्मणसेवितः ॥१८॥
चैत्यालया जिनेन्द्राणां यत्र चन्द्रार्कभासुराः । कारिता रामदेवेन संभान्ति[3] शतशो गिरौ ॥१९॥
नानादेशगतैर्भव्यैर्वन्द्यन्ते या दिने दिने । वन्दितास्ता जिनेन्द्राणां प्रतिमाः पाण्डुनन्दनैः ॥२०॥
चित्रं चिक्रीड तत्राद्रौ द्रौपद्या सहितोऽर्जुनः । लतागृहेषु रम्येषु सीतयेव रघूत्तमः ॥२१॥
अविज्ञातसुखच्छेदा स्वेच्छया विहृतिं श्रिताः । निन्युरेकादशाब्दानि धन्यास्ते मान्यचेष्टिताः ॥२२॥
अतः परं पुनः प्राप्ता विराटपुटभेदनम् । विराटो यत्र राजासौ भार्या यस्य सुदर्शना ॥२३॥
अव्यक्ताः पाण्डवास्तत्र द्रौपदी च विचक्षणा । विराटनगरे तस्थुर्विराटस्यातिपूजिताः ॥२४॥
यथायथं विनोदेन तत्र संवसतां सताम् । [4]प्रयाति सुखिनां काले प्रमादरहितात्मनाम् ॥२५॥

अर्जुनने दृढ़ मुट्ठी बाँधकर उस बलवान् विद्याधरकी छातीपर भुजासे मजबूत प्रहार किया। जिससे घबड़ाकर विद्याधरकी स्त्री कुसुमावली अर्जुनसे पतिकी भिक्षा माँगने लगी। फलस्वरूप अर्जुनने उसे छोड़ दिया और वह उन्हें प्रणाम कर विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें चला गया ॥१२-१३॥

तदनन्तर वे धीर-वीर क्रम-क्रमसे मेघदल नामक उस नगरमें पहुँचे जहाँ सिंह नामका राजा राज्य करता था। राजा सिंहकी स्त्रीका नाम कनकमेखला था और उन दोनोंके कनकावर्ता नामकी अत्यन्त सुन्दरी कन्या थी। उसी नगरीमें मेघ नामक सेठ और अलका नामक सेठानीके चारुलक्ष्मी नामकी एक सुन्दर कन्या और थी ॥१४-१५॥ निमित्तज्ञानीके आदेशानुसार भिक्षाके लिए गये हुए भयंकर कन्धोंको धारण करनेवाले भीमसेनने उन दोनों कन्याओंको प्राप्त किया सो ठीक ही है क्योंकि पुण्यके लिए क्या कार्य कठिन है ? ॥१६॥ सौम्य प्रकृतिके धारक उन श्रेष्ठ पुरुषोंने कुछ दिन तक वहाँ विश्राम किया। तदनन्तर क्रम-क्रमसे चलकर वे कौशल नामक देशमें पहुँचे ॥१७॥ वहाँ भी कुछ महीने तक सुखसे ठहरकर वे उस रामगिरि पर्वतपर पहुँचे जो कि पहले राम और लक्ष्मणके द्वारा सेवित हुआ था ॥१८॥ तथा जिस पर्वतपर रामचन्द्रजीके द्वारा बनवाये हुए चन्द्रमा और सूर्यके समान देदीप्यमान, सैकड़ों जिन-मन्दिर सुशोभित हो रहे थे ॥१९॥ नाना देशोंसे आये हुए भव्य जीव प्रतिदिन जिन-प्रतिमाओंकी वन्दना करते थे, पाण्डवोंने भी उन प्रतिमाओंकी बड़ी भक्तिसे वन्दना की ॥२०॥ जिस प्रकार सीताके साथ रामचन्द्रजीने क्रीड़ा की थी उसी प्रकार उस पर्वतके सुन्दर-सुन्दर लतागृहोंमें अर्जुन द्रौपदीके साथ नाना प्रकारकी क्रीड़ा करता था ॥२१॥ जिन्होंने कभी सुखके विच्छेदका अनुभव नहीं किया था, जो स्वेच्छासे जहाँ-तहाँ विहार करते थे और मान्य चेष्टाओंके धारक थे ऐसे उन भाग्यशाली पाण्डवोंने उस पर्वतपर ग्यारह वर्ष व्यतीत कर दिये ॥२२॥

तदनन्तर वहाँसे चलकर वे उस विराटनगरमें पहुँचे जहाँ विराट नामका राजा रहता था। राजा विराटकी स्त्रीका नाम सुदर्शना था ॥२३॥ पाण्डव और अत्यन्त कुशल द्रौपदी—सब अपने-आपको छिपाकर राजा विराटसे सम्मानित हो विराटनगरमें रहने लगे ॥२४॥ इस प्रकार विनोदपूर्वक वहाँ रहते हुए प्रमादरहित पाण्डवोंका सुखसे समय बीतने लगा ॥२५॥ अब इनसे सम्बन्ध रखनेवाली दूसरी घटना लिखी जाती है—

१. मघह्यालकया-ग., घ., ङ.। २. पुरुषश्रेष्ठाः। ३. संभाति म.। ४. गच्छति सति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चूलिका नगरी राजा चूलिकस्तस्य कामिनी । विकचा विकचाब्जास्या शतपुत्रपवित्रिता ॥२६॥
कीचकः प्रथमस्तेषां प्रथमश्चण्डकर्मणाम् । रूपयौवनविज्ञानशौर्यद्रव्यमदाविलः[1] ॥२७॥
विराटनगरं जातु स्वसारं स सुदर्शनाम् । आगतो द्रष्टुमत्रैतां दृष्टवान् द्रौपदीं सतीम् ॥२८॥
गन्धयुक्तिविशेषेण सुगन्धीकृतदिङ्मुखाम् । रूपलावण्यसौभाग्यगुणपूरितविग्रहाम् ॥२९॥
तस्यां दर्शनमात्रेण मानिनोऽपि मनोगतम् । दैन्यमन्यत्र यातस्य तस्य तन्मयतां[2] गतम् ॥३०॥
अनेकोपाययोगैस्तामुपलोभयतामुना । स्वतोऽपि परतोऽप्यस्या नालाभि हृदये स्थितिः ॥३१॥
प्रत्याख्यातस्य धृष्टस्य तृणीभूतस्य तस्य सा । निर्बन्धं भीमसेनाय शैलन्ध्री तं न्यवेदयत् ॥३२॥
ततः कुपितचित्तोऽसौ शैलन्ध्रीवेषभृद्बली । प्रदोषे कृतसंकेतमेकान्ते मदनातुरम् ॥३३॥
वारीबन्धमिवायातं स्पर्शान्धं गन्धवारणम् । कण्ठे जग्राह बाहुभ्यां स्पर्शामीलितलोचनाम् ॥३४॥
भूमौ निपात्य पादाभ्यामुरस्याक्रम्य कामिनम् । पिपेष मुष्टिनिर्घातैर्निर्घातैरिव भूधरम् ॥३५॥
तथा तस्य तदा श्रद्धां प्रपूर्य परयोषिति । अमुचद् व्रज पापेति दयमानो महामनाः ॥३६॥
महावैराग्यसंपन्नस्ततो विषयहेतुकम् । प्राव्रजत्कीचकः श्रित्वा मुनीन्द्रं रतिवर्धनम् ॥३७॥

इसी पृथिवीतलपर एक चूलिका नामकी नगरी थी। उसके राजाका नाम चूलिक था। राजा चूलिककी, विकसित कमलके समान मुखवाली एवं सौ पुत्रोंसे पवित्र विकचा नामकी स्त्री थी ॥२६॥ विकचाके सौ पुत्रोंमें सबसे बड़े पुत्रका नाम कीचक था। यह कीचक क्रूरकर्मा मनुष्योंमें अग्रणी था तथा रूप, यौवन, विज्ञान, शूर-वीरता और धनके मदसे मलिन था ॥२७॥ एक बार वह कीचक, अपनी बहन सुदर्शनाको देखनेके लिए विराटनगर आया। वहाँ उसने द्रौपदीको देखा ॥२८॥ उस समय द्रौपदी किसी विशिष्ट सुगन्धित पदार्थके संयोगसे समस्त दिशाओंको सुगन्धित कर रही थी एवं रूप, लावण्य, सौभाग्य आदि गुणोंसे उसका शरीर परिपूर्ण था ॥२९॥ यद्यपि कीचक मानी था तथापि उसका मन देखते ही द्रौपदीके विषयमें दीनताको प्राप्त हो गया। वह वहाँसे अन्यत्र जाता था तब भी उसका मन द्रौपदीके साथ तन्मयताको ही प्राप्त रहता था ॥३०॥ कीचकने अनेक उपायोंसे द्रौपदीको स्वयं लुभाया तथा दूसरोंके द्वारा भी उसे प्रलोभन दिखलाये पर वह उसके हृदयमें स्थितिको प्राप्त न कर सका ॥३१॥ द्रौपदी उसे तृणके समान तुच्छ समझती थी और उसे मना भी कर चुकी थी पर वह अपनी धृष्टता नहीं छोड़ता था अतः विवश हो शैलन्ध्री (सैरन्ध्री) का वेष धारण करनेवाली द्रौपदीने एक दिन उसकी इस दुर्हठकी शिकायत भीमसेनसे कर दी ॥३२॥ फिर क्या था, भीमसेनका हृदय क्रोधसे उबल उठा। उन्होंने कामातुर कीचकको द्रौपदीके द्वारा सायंकालके समय एकान्त स्थानमें मिलनेका संकेत करा दिया और आप स्वयं शैलन्ध्री (द्रौपदी) का वेष रख उस स्थानपर पहुँच गये। आप अत्यन्त बलवान् तो थे ही ॥३३॥ जिस प्रकार हस्तिनीके स्पर्शसे अन्धा मदोन्मत्त हाथी बन्धनके स्थानमें स्वयं आ जाता है उसी प्रकार मदनातुर कीचक उस संकेत-स्थानमें स्वयं आ गया। तदनन्तर स्पर्शजन्य आनन्दके अतिरेकसे जिसके नेत्र निमीलित हो रहे थे ऐसे उस कीचकके कण्ठको द्रौपदीका वेष धारण करनेवाले भीमसेनने अपनी दोनों भुजाओंसे आलिंगित किया और पृथिवीपर पटककर उसकी छातीपर दोनों पैरोंसे चढ़ गये। जिस प्रकार वज्राघातसे किसी पर्वतको चूर-चूर किया जाता है उसी प्रकार मजबूत मुक्कोंके प्रहारसे उसे चूर-चूर कर दिया। इस प्रकार उसकी परस्त्रीविषयक आकांक्षाको पूर्ण कर महामना भीमसेनने दयायुक्त हो 'अरे पापी जा' यह कह उसे छोड़ दिया ॥३४-३६॥

तदनन्तर विषयोंका प्रत्यक्ष फल देख कीचकको उनसे अत्यन्त वैराग्य उत्पन्न हो गया

---

१. विज्ञानं शौर्य म.। २. द्रौपदीमयताम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुप्रेक्षाभिरात्मानं भावयन् भावशुद्धितः । रत्नत्रयमसौ शुद्धं श्रुतवान् कर्तुमुद्यतः ॥३८॥
कीचकं शतसंख्यास्ते भ्रातरो भ्रान्तचेतसः । अदृष्ट्वा कुपिता [1]दुष्टाश्चितकाग्निमचिन्वत ॥३९॥
तत्र चि[2]क्षिप्सवः पापाः शैलन्ध्रीं बलशालिनः । क्षिप्तास्ते तत्र भीमेन भस्मसाद्भावमागताः ॥४०॥
एकेनैवाह्व[3]यं नीतास्ते भीमेन मदोद्धताः । बहवोऽपि हि हिंस्यन्ते सिंहेनैकेन दन्तिनः ॥४१॥
अथासौ कीचकः साधुरेकान्तोद्यानमध्यगः । पर्यङ्कासनयोगस्थो यक्षेणैक्षि कदाचन ॥४२॥
तस्य चित्तपरीक्षार्थं द्रौपदीवेषमाश्रितः । निशीथेऽदर्शयद्रूपमात्मनो मदनालसम् ॥४३॥
साधुना वधिरेणेव रम्यालापश्रुतौ स्थितम् । रूपं दृष्टिविला[4]साढ्यामन्धेनेव मनोहरम् ॥४४॥
गुप्तेन्द्रियकलापस्य मनःशुद्धिमुपेयुषः । साधोस्तस्य समुत्पन्नमवधिज्ञानलोचनम् ॥४५॥
उपसंहृतयोगं तं प्रणम्यासौ सुरस्ततः । मुनिमक्षमयन्नाथ क्षमस्वेति पुनः पुनः ॥४६॥
पुनः प्रणम्य पप्रच्छ द्रौपदीमोहकारणम् । कारणेन विना न स्यात्तादृग्मोहसमुद्भवः ॥४७॥
कतिचित्पूर्वजन्मानि द्रौपद्याः स्वस्य चेत्यसौ । कीचकाख्योऽवदद्योगी यक्षाय प्रणतात्मने ॥४८॥
तरङ्गिणीसरित्तीरे वेगवत्याश्च संगमे । म्लेच्छोऽहमभवद्रौद्रः क्षुद्रः क्षुद्रासुमद्रिपुः ॥४९॥

जिससे उसने रतिवर्धन नामक मुनिराजके पास जाकर दीक्षा धारण कर ली ॥३७॥ कीचक मुनि अनुप्रेक्षाओंके द्वारा आत्माकी भावना करते—आत्माका स्वरूप विचारते, शास्त्रोंका स्वाध्याय करते और भाव-शुद्धिके द्वारा रत्नत्रयको शुद्ध करनेके लिए उद्यम करने लगे ॥३८॥ कीचकके सौ भाइयोंने जब कीचकको नहीं देखा तो वे बहुत ही घबड़ाये। उन्होंने जहाँ-तहाँ उसकी खोज की पर कहीं नहीं दिखा। उसी समय उन्हें एक जलती हुई चिताकी अग्नि दिखी। किसीने बता दिया कि वह कीचककी ही चिता है, यह सुन वे सब भाई बहुत ही कुपित हुए। वे सोचने लगे कि कीचककी यह दशा इस शैलन्ध्रीने ही की है इसलिए वे कुपित होकर उसे (शैलन्ध्रीका वेष धारण करनेवाले भीमको) उसी चितामें डालनेकी इच्छा करने लगे। परन्तु भीमसेनने उनकी बलवत्ता ठिकाने लगा दी और एक-एक कर सबको जलती हुई उस चितामें डाल दिया जिससे सब जलकर राख हो गये ॥३९-४०॥ देखो, एक ही भीमसेनने मदसे उद्धत हुए अनेक पुरुषोंको नामावशिष्ट कर दिया—मरणको प्राप्त करा दिया सो ठीक ही है क्योंकि एक सिंह अनेकों हाथियोंको नष्ट कर देता है ॥४१॥

अथानन्तर किसी दिन कीचक मुनि एकान्त उपवनके मध्यमें विराजमान थे। वे उस समय पद्मासनसे योगारूढ हो निश्चल बैठे थे कि एक यक्षने उन्हें देखा ॥४२॥ उनके चित्तकी परीक्षा करनेके लिए वह यक्ष आधी रातके समय द्रौपदीका रूप रख उनके पास पहुँचा और कामसे अलसाया हुआ रूप उन्हें दिखाने लगा ॥४३॥ परन्तु मुनिराज कीचक, उसके सुन्दर आलापके सुननेमें बहिरे-जैसे हो गये और दृष्टिके विलाससे युक्त उसका मनोहर रूप देखनेके लिए अन्धेके समान हो गये ॥४४॥ जिन्होंने अपनी इन्द्रियोंके समूहकी अच्छी तरह रक्षा की थी तथा जो मनकी शुद्धिको प्राप्त हो रहे थे ऐसे उन कीचक मुनिराजको उसी समय अवधिज्ञान उत्पन्न हो गया ॥४५॥ तदनन्तर ध्यान समाप्त होनेपर यक्षने उन्हें प्रणाम किया और 'हे नाथ! क्षमा कीजिए' इस प्रकार बार-बार कहकर उनसे क्षमा माँगी ॥४६॥ तत्पश्चात् यक्षने पुनः नमस्कार कर उनसे द्रौपदीके प्रति मोह उत्पन्न होनेका कारण पूछा क्योंकि बिना कारणके उस प्रकारके मोहकी उत्पत्ति नहीं हो सकती ॥४७॥ उत्तरस्वरूप मुनिराज कीचक, नम्रीभूत यक्षके लिए अपने तथा द्रौपदीके कुछ पूर्वभव इस प्रकार कहने लगे ॥४८॥

एक समय मैं, तरंगिणी नामक नदीके तटपर जहाँ वेगवती नामक नदीका संगम होता

१. दृष्टा म., घ. । २. विक्षिप्सवः म. । ३. नामावशेषं मरणमित्यर्थः (ग. टि.) । ४. विलासाभ्या-म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधुदर्शनतः शान्तः [1]प्रापमर्यमनुष्यताम् । धनदेवः पिता चात्र माता मे सुकुमारिका ॥५०॥
कुमारदेवसंज्ञोऽहं मात्रा च मम सुव्रतः । मारितः साधुराहारं दत्त्वा विषविमिश्रितम् ॥५१॥
प्रविश्य नरकं पापा दुःखं साधुवधोद्भवम् । अनुभूय पुनस्तिर्यग्नारकेष्वटतिस्म सा ॥५२॥
अत्रतोऽहमपि भ्रान्त्वा संसारं तीव्रवेदनम् । मातरिश्वतया वृत्तो(?) नुन्नोंहोमातरिश्वभिः[2] ॥५३॥
सितेन तापसेनान्ते जनितो मधुसंज्ञकः । तापस्यां मृगशृङ्गिण्यां प्रवृद्धस्तापसाश्रमे ॥५४॥
मुनेर्विनयदत्तस्य दानमाहात्म्यदर्शनात् । प्रव्रज्य स्वर्गमारुह्य जातोऽहं कीचकश्च्युतः ॥५५॥
चिरं पर्यट्य संसारं सुदुःखं सुकुमारिका । मानुषी दुर्भगीभूता भूताभूता[3]सुखावहा ॥५६॥
सा चानुमतिका नाम्ना सनिदानतपोयुता । जातेयं द्रौपदी तेन मोहोऽस्यां मे महानभूत् ॥५७॥

वसन्ततिलकावृत्तम्

माता स्वसा च तनुजा प्रियकामिनीत्वं मातृस्वसृत्वदुहितृत्वमुपैति पत्नी ।
संसारचक्रपरिवर्तिनि जीवलोके ही संकरव्यतिकरौ नियतौ भवेताम् ॥५८॥
वैचित्र्यमेतदवगम्य भवस्य भव्या वैराग्यमेत्य सुखतो महतोऽप्यमुष्य ।
संसारकारणनिवृत्तधियः सुवृत्ता मोक्षार्थमेव महता तपसा यतन्ताम् ॥५९॥
इत्यादि तस्य वचनं मुनिकीचकस्य श्रुत्वा सुरः सुरवधूभिरमा तदानीम् ।
सम्यक्त्वरत्नवरभूषणभूषितात्मा नत्वा गुरुं धृतियुतोऽन्तरधाद्वनान्ते ॥६०॥

था, क्षुद्र मनुष्योंका वैरी क्षुद्र नामका म्लेच्छ था, उस समय मेरे परिणाम अत्यन्त रौद्र रूप थे ॥४९॥ एक बार अचानक ही मुनिराजके दर्शन कर मैं अत्यन्त शान्त हो गया और वैश्य कुलमें मनुष्य पर्यायको प्राप्त हुआ। इस समय मेरे पिता धनदेव और माता सुकुमारिका थी तथा मेरा निजका नाम कुमारदेव था। एक बार मेरी माताने विष मिला आहार देकर एक सुव्रत नामक मुनिको मार डाला ॥५०-५१॥ उसके फलस्वरूप वह पापिनी नरक पहुँची और वहाँ मुनिके घातसे उत्पन्न दुःख भोगकर तिर्यंच तथा नरकगतिके दुःख भोगती रही ॥५२॥ मैं भी संयमसे रहित था इसलिए तीव्र वेदनावाले संसारमें भटककर पापरूपी पवनसे प्रेरित हुआ अपनी माताके जीवके कुत्ता हुआ। तदनन्तर तापसोंके किसी तपोवनमें सित नामक तापसके द्वारा मृगशृंगिणी नामक तापसीके मधु नामका पुत्र हुआ तथा तापसोंके आश्रममें ही मैं वृद्धिको प्राप्त हुआ ॥५३-५४॥ एक दिन किसी श्रावकने विनयदत्त नामक मुनिराजको आहार दान दिया। उसका माहात्म्य देख मैंने दीक्षा ले ली और उसके फलस्वरूप स्वर्गारोहण कर वहाँसे च्युत होता हुआ कीचक हुआ ॥५५॥ माता सुकुमारिका चिरकाल तक भ्रमण कर संसारमें तीव्र दुःख भोगती रही। अन्तमें वह दौर्भाग्यसे युक्त दुःखोंको भोगनेवाली मानुषी हुई ॥५६॥ अनुमतिका उसका नाम था। अन्तमें वह निदान सहित तपसे युक्त हो द्रौपदी हुई है। इसी कारण इसमें मुझे मोह उत्पन्न हो गया था ॥५७॥ देखो, माता बहन हो जाती है, पुत्री प्रिय स्त्री हो जाती है, और स्त्री, माता, बहन तथा पुत्रीपनेको प्राप्त हो जाती है। आश्चर्यकी बात है कि संसाररूपी चक्रके साथ घूमनेवाले जीवोंमें संकर और व्यतिकर नियमसे होते रहते हैं ॥५८॥ इसलिए हे भव्यजनो! संसारकी इस विचित्रताको अच्छी तरह समझकर वैषयिक सुखसे भले ही वह कितना ही महान् क्यों न हो विरक्त होओ और संसारके कारणोंसे विरक्त हो सदाचारके धारी बन विशाल तपसे मोक्षके लिए ही यत्न करो ॥५९॥

इस प्रकार कीचक मुनिके वचन सुन उस यक्षने अपनी देवियोंके साथ-साथ अपनी

१. वैश्यकुलम् 'ऊरव्या ऊरुजा अर्या वैश्या भूमिस्पृशो विशः' इत्यभिधानात्। 'अर्यः स्वामिवैश्ययोः' इति पाणिनिसूत्रम्। –मार्यमनुष्यताम् म., क., ख., ग., घ.। २. पापपवनैः। ३. भूतामाता सुखावहा घ.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संपूज्यमानचरणो नृसुरासुरौघैः कृत्वा तपो द्विविधमन्तरमूढधीर्यः ।
लोके प्रकाश्य जिनमार्गमनर्गलं संप्राप्तं परं पदमनत्ययमात्मशुद्ध्या ॥६१॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ कीचकनिर्वाणगमनो नाम षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥४६॥

□

आत्माको उस समय सम्यग्दर्शनरूपी उत्कृष्ट रत्नोंके आभूषणोंसे आभूषित किया। तदनन्तर वह बड़े हर्षसे मुनिराजको नमस्कार कर वनके अन्तमें अन्तर्हित हो गया–छिप गया ॥६०॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि अन्तरंगमें विवेक बुद्धिको धारण करनेवाला जो मनुष्य, अन्तरंग और बहिरंगके भेदसे दोनों प्रकारका तप करता है वह मनुष्य देव तथा असुरोंके समूहसे पूजित-चरण होता हुआ लोकमें निर्बाध जिनमार्गको प्रकाशित करता है और आत्मशुद्धिके द्वारा अविनाशी परम पदको प्राप्त होता है ॥६१॥

इस प्रकार अरिष्टनेमिपुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें कीचकके निर्वाण गमनका वर्णन करनेवाला छयालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥४६॥

□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सप्तचत्वारिंशः सर्गः

कीचकानुजवृत्तान्ते गोग्रहे तदनन्तरे । वृत्ते भीमार्जुनोग्राग्निभस्मितारिवनान्तरे ॥१॥
अभिन्ननिजमर्यादा भिन्नदुश्शासनान्तराः । पाण्डवाः पाण्डुभवने [1]संहताः [2]सुनया इव ॥२॥
संपूर्णावधयो गत्वा धर्मराजस्य ते युधि । सह दुर्योधनेनास्थुः संमता मुनयो यथा ॥३॥
ततः पूरितसर्वाशाः सर्वार्थामृतवर्षिणः । [3]तेऽप्यूनुष्पदमत्युच्चैः प्रावृषेण्या इवाम्बुदाः ॥४॥
[4]तत्प्रसाद्यापि चुक्षोभ गान्धारीयशतं पुनः । नेयस्य जलवर्गस्य सुप्रसादः कियच्चिरम् ॥५॥
कृते दायादवर्गेण पूर्ववत्संधिदूषणे । प्रशमय्य तनून् भ्रातॄन् प्रागिवासौ युधिष्ठिरः ॥६॥
अनिच्छन् स्वच्छधीर्धीरः कृपावान् कौरवाहितम् । मात्रा भ्रात्रादिभिर्भूयः श्रितवान् दक्षिणां दिशम् ॥७॥
स विन्ध्यवनमध्यास्य तपस्यन्तं निजाश्रमे । दृष्ट्वा विदुरमानम्य शशंस सानुजैः सह ॥८॥
कृतार्थं पूज्य ते जन्म संपरित्यज्य संपदः । स्थितोऽभयो जिनेन्द्रोक्ते मोक्षमार्गे महातपाः ॥९॥
विशुद्धं दर्शनं यत्र तत्त्वश्रद्धानलक्षणम् । ज्ञानं सर्वार्थविद्योति चारित्रमनवद्यकम् ॥१०॥

अथानन्तर कीचकके छोटे भाइयोंका वृत्तान्त और उसके बाद जिसमें भीम तथा अर्जुनकी कोपाग्निसे शत्रुरूपी वनका अन्तराल भस्म हो गया था ऐसा गायोंका पकड़ना आदि घटनाएँ हो चुकीं तब अपनी मर्यादाको खण्डित न करनेवाले होकर भी दुःशासन (खोटा शासन अथवा दुःशासन नामक कौरवके अन्तरको) विदीर्ण करनेवाले पाण्डव समीचीन नयोंके समान एक-दूसरेके अनुकूल रहते हुए अपने पिता पाण्डुके भवनमें एकत्रित हुए ॥१-२॥ अबतक उनकी अज्ञात निवासकी अवधि पूर्ण हो चुकी थी इसलिए धर्मराज—युधिष्ठिरकी आज्ञासे वे भीमसेन आदि, युद्धमें दुर्योधनके साथ जा खड़े हुए और जिस प्रकार मुनि सबको सम्मत—इष्ट होते हैं उसी प्रकार वे पाण्डव भी सबको सम्मत—इष्ट थे ॥३॥ तदनन्तर जिस प्रकार समस्त दिशाओंको पूर्ण करके और सर्वहितकारी जलकी वर्षा करनेवाले वर्षाकालिक मेघ अत्यन्त उन्नत उत्तम पदको प्राप्त कर लेते हैं उसी प्रकार सबके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले एवं समस्त अर्थरूपी अमृतकी वर्षा करनेवाले वे पाण्डव भी अत्यन्त उच्च पदको प्राप्त हुए। **भावार्थ**—पाण्डव हस्तिनापुर आकर रहने लगे और सबकी दृष्टिमें उच्च माने जाने लगे ॥४॥

तदनन्तर दुर्योधनादिक सौ भाई ऊपरसे उन्हें प्रसन्न रखकर हृदयमें पुनः क्षोभको प्राप्त होने लगे—भीतर-ही-भीतर उन्हें परास्त करनेके उपाय करने लगे सो ठीक ही है क्योंकि इधर-उधर बहनेवाले जलमें स्वच्छता कितने समय तक रह सकती है ? ॥५॥ दुर्योधनादिकने पहलेके समान फिरसे सन्धिमें दोष उत्पन्न करना शुरू कर दिया और उससे भीम, अर्जुन आदि छोटे भाई फिरसे उत्तेजित होने लगे परन्तु युधिष्ठिर उन्हें शान्त करते रहे ॥६॥ स्वच्छ बुद्धिके धारक, धीर-वीर एवं दयालु युधिष्ठिर कौरवोंका कभी अहित नहीं विचारते थे इसलिए वे माता तथा भाई आदि परिवारके साथ पुनः दक्षिण दिशाकी ओर चले गये ॥७॥ चलते-चलते युधिष्ठिर विन्ध्यवनमें पहुँचे। वहाँ अपने आश्रममें रहकर तपस्या करनेवाले विदुरको देखकर उन्होंने अपने सब भाइयोंके साथ उन्हें नमस्कार किया और उनकी इस प्रकार स्तुति की ॥८॥ हे पूज्य ! आपका ही जन्म सफल है जो आप सम्पदाओंका परित्याग कर जिनेन्द्रोक्त मोक्षमार्गमें महातप करते हुए निर्भय स्थित हैं ॥९॥ जिस मार्गमें तत्त्वश्रद्धानरूप निर्मल सम्यग्दर्शन, समस्त पदार्थोंको प्रकाशित करने-

१. संहृताः म. । २. सुघना इव म. । ३. ऊनुः प्राप्ताः (ङ. टि.) तेप्यनुष्पदं—म. । ४. प्रासाद्यापि म. घ. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्रतगुप्तिसमित्यक्षकषायजयसंयमाः । यत्र मार्गे स्थितास्तत्र सिद्ध्यन्ति त्वादृशोऽचिरात् ॥११॥
इति मार्गस्तुतिं कृत्वा तं च स्तुत्वा कृतानतिः । द्वारिकां ज्ञातिभिर्ज्ञातः संविवेश सहानुजैः ॥१२॥
उत्सवः परमो जातः स्वसृस्वस्त्रीयसंगमे । समुद्रविजयादीनां दशानां चिरदर्शिनाम् ॥१३॥
नेमीशहरिरामादिदशार्हसुतसुन्दराः । अन्तःपुराणि सर्वाणि प्रजाश्च तुतुषुस्तदा ॥१४॥
यथाक्रममशेषाणां दर्शने दर्शनोत्सवे । जाते परस्परं तेषां स्वजनानां सुखावहे ॥१५॥
यदुपाण्डववर्गौ तौ मेनाते मिलितौ मुदा । अपकारमपि त्यक्त्वा सूपकारं परैः कृतम् ॥१६॥
ततः प्रासादवर्येषु पञ्च पञ्चसु विष्णुना । निरूपितेषु ते तस्थुः सर्वभोगप्रदायिषु ॥१७॥
ज्येष्ठो लक्ष्मीमतीं लेभे भीमः शेषवतीं ततः । सुभद्रामर्जुनः कन्यां कनिष्ठौ विजयां रतिम् ॥१८॥
दशार्हतनयास्तास्ते परिणीय यथाक्रमम् । रेमिरेऽमूभिरिष्टाभिः पाण्डवास्त्रिदशोपमाः ॥१९॥
कथेयं कुरुवीरस्य कथिता ते समासतः । प्रद्युम्नस्याधुना वच्मि शृणु श्रेणिक चेष्टितम् ॥२०॥
विजयार्धगिरौ रम्ये प्रद्युम्नोऽसौ कलागुणैः । विधुवद्बन्धुमुद्वार्धिं सहावर्धत वर्धयन् ॥२१॥
विद्याधरोचिता विद्या स विद्याधरपुत्रकः । वियद्यानादिका बाल्ये जग्राहाशु महोद्यमः ॥२२॥
बाल्यादारभ्य लावण्यरूपसौभाग्यपौरुषैः । सोऽरिमित्रनरस्त्रीणामस्त्रीधूर्तैर्मनोऽहरत् ॥२३॥
यौवनं स परिप्राप्तः प्राप्तसर्वास्त्रकौशलः । हृदयेषु युवा यूनां प्रहरन्नपि वल्लभः ॥२४॥

वाला ज्ञान और निर्दोष चारित्र प्रतिपादित है एवं व्रत, गुप्ति, समिति तथा इन्द्रिय और कषाय-को जीतनेवाले संयमका निरूपण किया गया है उस मार्गमें स्थित हो आप-जैसे महानुभाव शीघ्र ही सिद्ध अवस्थाको प्राप्त हो जाते हैं ॥१०-११॥ इस प्रकार जिनेन्द्रोक्त मार्ग तथा महामुनि विदुरकी स्तुति कर युधिष्ठिर द्वारिका पहुँचे। यादवोंको पाण्डवोंके आगमनका जब पता चला तो उन्होंने इनका बड़ा स्वागत किया और छोटे भाइयोंके साथ युधिष्ठिरने द्वारिकामें प्रवेश किया ॥१२॥ समुद्रविजय आदि दशों भाइयोंने बहन तथा अपने भानजोंको बहुत समयके बाद देखा था इसलिए इन सबके समागमसे उन्हें परम हर्ष हुआ ॥१३॥ भगवान् नेमिनाथ, कृष्ण, बलदेव आदि समस्त यादव कुमार, समस्त अन्तःपुर और प्रजाके सब लोग उस समय बहुत ही सन्तुष्ट हुए ॥१४॥ नेत्रोंको आनन्द देनेवाला पाण्डवों तथा समस्त स्वजनोंका वह दर्शन—परस्पर-का मिलना सबके लिए सुखदायी हुआ ॥१५॥ यादव और पाण्डव परस्पर मिलकर हर्षसे ऐसा मानने लगे कि शत्रुओंने हमारा अपकार नहीं उपकार ही किया है। भावार्थ—यदि दुर्योधनादिक अपकार न करते तो हम लोग इस तरह परस्पर मिलकर आनन्दका अनुभव नहीं कर सकते थे, अतः उनका किया अपकार अपकार नहीं प्रत्युत उपकार है ऐसा सब लोग मानने लगे ॥१६॥

तदनन्तर श्रीकृष्णके द्वारा दिखलाये हुए भोगोपभोगकी सब सामग्रीसे युक्त पाँच उत्तमो-त्तम महलोंमें पाँचों पाण्डव पृथक्-पृथक् रहने लगे ॥१७॥ युधिष्ठिरने लक्ष्मीमती, भीमने शेषवती, अर्जुनने सुभद्रा, सहदेवने विजया और नकुलने रति नामक कन्याको प्राप्त किया ॥१८॥ यथा-क्रम से पूर्वोक्त यादव-कन्याओंको विवाह कर देवोंकी उपमाको धारण करनेवाले पाण्डव उन इष्ट स्त्रियों-के साथ क्रीड़ा करने लगे ॥१९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! इस प्रकार मैंने तेरे लिए संक्षेपसे कुरुवीरकी कथा कही। अब मैं प्रद्युम्नकी चेष्टाएँ कहता हूँ सो सुन ॥२०॥

अत्यन्त रमणीय विजयार्ध पर्वतपर कलारूपी गुणोंके द्वारा बन्धु-जनोंके हर्षरूपी सागरको बढ़ाता हुआ प्रद्युम्न चन्द्रमाके समान बढ़ने लगा ॥२१॥ विद्याधरपुत्र प्रद्युम्नने बड़े उद्यमके साथ बाल्यकालमें ही आकाशगामिनी आदि विद्याधरोंके योग्य विद्याओंको शीघ्र ही सीख लिया था ॥२२॥ वह बाल्य अवस्थासे ही लेकर अस्त्रके समान अपने लावण्य, रूप, सौभाग्य और पौरुषके द्वारा शत्रु-मित्र पुरुष तथा स्त्रियोंके मनको हरण करता था ॥ २३ ॥ यौवनको प्राप्त होते ही प्रद्युम्न समस्त अस्त्र-शस्त्रोंमें कुशल हो गया। अपने सौन्दर्यके कारण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन्मथो मदनः कामः कामदेवो मनोभवः । इत्यन्वर्थाभिधानः स नानङ्गोऽनङ्गनामकः ॥२५॥
युद्धे सिंहरथं जित्वा जितपञ्चशतात्मजम् । कालसंवरभूपाय सकामोऽदर्शयत्कृती ॥२६॥
तादृशं तनयं दृष्ट्वा संतुष्टः कालसंवरः । मेने श्रेणीद्वयं दृप्तं वशीकृतमिवात्मनाम् ॥२७॥
महाराज्यपदोदारफलपुष्पं नृपोऽस्य सः । यौवराजमहापट्टं बबन्ध च विधानतः ॥२८॥
शतानि तनयाः पञ्च कालसंवरभूभृतः । चिन्तयन्ति ततोऽपायं मदनस्य समन्ततः ॥२९॥
आसने शयने वस्त्रे ताम्बूलेऽशनपानके । नालं छलयितुं ते तं छलान्वेषणतत्पराः ॥३०॥
अन्यदा तु विनीतोऽसौ नीतो नीत्यानुकूलकः । कुमारस्तैः कुमारौघैः सिद्धायतनगोपुरम् ॥३१॥
नोदितस्तैः समारूढो गोपुराग्रं सवेगवान् । विद्याकोशं तिरीटं च लेभे तद्वासिनोऽमरात् ॥३२॥
प्रविष्टश्च पुनर्वेगान्महाकालगुहामसौ । खड्गं सखेटकं लेभे छत्रचामरसंयुतम् ॥३३॥
लेभे नागगुहायां च पादपीठं सुराद्वरम् । नागशय्यासनं वीणां विद्यां प्रासादकारिणीम् ॥३४॥
मकरध्वजमुत्तुङ्गं वाप्यां युद्धे जितात्सुरात् । अग्निकुण्डेऽग्निसंशोध्यं वस्त्रयुग्ममवाप्य सः ॥३५॥
मेषाकृतिगिरौ लेभे कर्णकुण्डलयोर्द्वयम् । मौलिं चामृतमालां च पाण्डुके मर्कटामरात् ॥३६॥

तरुण प्रद्युम्न यद्यपि अन्य युवाओंके हृदयपर प्रहार करता था—उनमें मात्सर्य उत्पन्न करता था तथापि वह सबको प्रिय था ॥२४॥ मन्मथ, मदन, काम, कामदेव और मनोभव इत्यादि सार्थक नामोंसे वह युक्त था। यद्यपि वह अनंग—शरीरसे रहित नहीं था तथापि लोग उसे अनंग कहते थे। **भावार्थ**—प्रद्युम्न कामदेव पदका धारक था। साहित्यमें कामका एक नाम अनंग है इसलिए प्रद्युम्न भी अनंग कहलाता था ॥२५॥ अतिशय कुशल प्रद्युम्नने, पाँच-सौ पुत्रोंको जीतनेवाले सिंहरथको युद्धमें जीतकर कालसंवरको दिखा दिया। **भावार्थ**—उस समय एक सिंहरथ नामका विद्याधर कालसंवरके विरुद्ध था उसे जीतनेके लिए उसने अपने पाँच-सौ पुत्र भेजे थे परन्तु सिंहरथने उन सबको पराजित कर दिया था। प्रद्युम्न ऐसा कुशल शूरवीर था कि उसने उसे युद्धमें जीतकर कालसंवरके आगे डाल दिया ॥२६॥ ऐसे वीर पुत्रको देखकर कालसंवर बड़ा सन्तुष्ट हुआ और विजयार्धकी दोनों श्रेणियोंको अपने वशीभूत मानने लगा ॥२७॥ इसीसे प्रभावित हो राजाने प्रद्युम्नके लिए विधि-विधानपूर्वक युवराज पदका वह महापट्ट बाँध दिया जो महाराज्यपदरूपी उत्कृष्ट फलके लिए पुष्पके समान था ॥२८॥ इस घटनासे राजा कालसंवरके जो पाँच-सौ पुत्र थे वे सब ओरसे प्रद्युम्नके नाशका उपाय सोचने लगे ॥२९॥ वे निरन्तर छलके खोजनेमें तत्पर रहने लगे। परन्तु बैठने, सोने, वस्त्र, पान तथा भोजन, पानी आदिके समय वे उसे छलनेके लिए समर्थ नहीं हो सके ॥३०॥

किसी एक समय नीतिके अनुकूल आचरण करनेवाले कुमारोंके समूह, विनीत प्रद्युम्नकुमारको सिद्धायतनके गोपुरके समीप ले गये और इस प्रकारकी प्रेरणा करने लगे कि 'जो इस गोपुरके अग्रभागपर चढ़ेगा वह उसपर रहनेवाले देवसे विद्याओंका खजाना तथा मुकुट प्राप्त करेगा'। साथियोंसे इस प्रकार प्रेरित हो कुमार वेगसे गोपुरके अग्रभागपर चढ़ गया और वहाँके निवासी देवसे विद्याओंका खजाना तथा मुकुट ले आया ॥३१-३२॥ तदनन्तर भाइयोंसे प्रेरित हो वेगसे महाकाल नामक गुहामें घुस गया और वहाँसे तलवार, ढाल, छत्र तथा चमर ले आया ॥३३॥ वहाँसे निकलकर नागगुहामें गया और वहाँके निवासी देवसे उत्तम पादपीठ, नागशय्या, आसन, वीणा तथा भवन बना देनेवाली विद्या ले आया ॥३४॥ वहाँसे आकर किसी वापिकामें गया और युद्धमें जीते हुए देवसे मकरके चिह्नसे चिह्नित ऊँची ध्वजा प्राप्त कर निकला। तदनन्तर अग्निकुण्डमें प्रविष्ट हुआ सो वहाँसे अग्निसे शुद्ध किये दो वस्त्र ले आया ॥३५॥ तत्पश्चात् मेषाकृति पर्वतमें प्रवेश कर कानोंके दो कुण्डल ले आया। उसके बाद पाण्डुक नामक वनमें प्रवेश कर वहाँके निवासी मर्कट नामक देवसे मुकुट और अमृतमयी माला लेकर लौटा ॥३६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विद्याकरिवरं प्राप कपित्थवनदेवतः । वल्मीके क्षुरिकां चापि कवचं मुद्रिकादिकम् ॥३७॥
शरावपर्वते लेभे कटिसूत्रमुरश्छदम् । कामः कटककेयूरकण्ठिकाभरणं शुभम् ॥३८॥
शूकरासुरतः शङ्खं दिव्यं प्राप शरासनम् । हारं सुरेन्द्रजालं च मनोवेगाद्विकीलितात् ॥३९॥
मनोवेगरिपोर्लेभे वसन्तखचरात्ततः । कन्यां नरेन्द्रजालं च तयोः सख्यस्य कारकः ॥४०॥
चापं च कौसुमं प्रापदर्जुनो भवनाधिपात् । उन्मादमोहसंतापमदशोककरान् शरान् ॥४१॥
अन्यां नागगुहां यातश्चन्दनागुरुमालिकाः । पौष्पं छत्रं च शयनं लेभे तत्र तु पार्थिवात् ॥४२॥
स दुर्जयवने लेभे जयन्तगिरिवर्तिनी । खेटवायुसरस्वत्यो रतिं कामः शरीरजाम् ॥४३॥
षोडशेष्वपि चैतेषु लाभस्थानेषु मन्मथम् । लब्धानेकमहालाभं दृष्ट्वा विस्मितमानसाः ॥४४॥
ज्ञात्वा पुण्यस्य माहात्म्यं कुमाराः संवरादयः । [1]शंश्रित्वा मदनेनामा[2] निजं नगरमाययुः ॥४५॥
लब्धं दिव्यं रथं शुभ्रैर्वृषैर्व्यूढमधिष्ठितः । चापी पञ्चशरी छत्री ध्वजी दिव्यविभूषणी ॥४६॥
मनो हरन्नरस्त्रीणां मदनो मदनेषुभिः । मेघकूटं प्रविष्टोऽसौ कुमारशतवेष्टितः ॥४७॥
सप्रणामस्ततो दृष्ट्वा प्रद्युम्नः कृष्णसंवरम् । धिष्ण्यं कनकमालायाः प्रस्थितः स रथे स्थितः ॥४८॥
तथा च स्थितनेपथ्यं नेत्रपथ्यं न दूरतः । दृष्ट्वा कनकमाला तं भावं कमपि संश्रिता ॥४९॥
रथादुत्तीर्य विनतं शंसित्वाघ्राय मस्तके । आसयित्वान्तिके तं सास्पर्शयन्मृदुपाणिना ॥५०॥

कपित्थ नामक वनमें गया तो वहाँके निवासी देवसे विद्यामय हाथी ले आया। वल्मीक वनमें प्रवेश कर वहाँके निवासी देवसे छुरी, कवच तथा मुद्रिका आदि ले आया ॥३७॥ शराव नामक पर्वतमें वहाँके निवासी देवसे कटिसूत्र, कवच, कड़ा, बाजूबन्द और कण्ठाभरण आदि प्राप्त किये ॥३८॥ शूकर नामक वनमें शूकरदेवसे शंख और सुन्दर धनुष प्राप्त किया तथा वहींपर कीले हुए मनोवेग नामक विद्याधरसे हार और इन्द्रजाल प्राप्त किया ॥३९॥ मनोवेगका वैरी वसन्त विद्याधर था, कुमारने उन दोनोंकी मित्रता करा दी इसलिए उससे एक कन्या तथा नरेन्द्रजाल प्राप्त किया ॥४०॥ आगे चलकर एक भवनमें प्रवेश कर उसके अधिपति देवसे पुष्पमय धनुष और उन्माद, मोह, सन्ताप, मद तथा शोक उत्पन्न करनेवाले बाण प्राप्त किये ॥४१॥ तदनन्तर एक दूसरी नागगुहामें गया तो वहाँके स्वामी देवसे चन्दन तथा अगुरुकी मालाएँ, फूलोंका छत्र और फूलोंकी शय्या प्राप्त की ॥४२॥ तदनन्तर जयन्तगिरिपर वर्तमान दुर्जय नामक वनमें गया और वहाँसे विद्याधर वायु तथा उसकी सरस्वती नामक स्त्रीसे उत्पन्न रति नामक पुत्री लेकर लौटा ॥४३॥ इस प्रकार इन सोलहों लाभके स्थानोंमें जिसे अनेक महालाभोंकी प्राप्ति हुई थी ऐसे प्रद्युम्न कुमारको देखकर संवर आदि कुमारोंके चित्त आश्चर्यसे चकित हो गये। तदनन्तर पुण्यका माहात्म्य समझ शान्ति धारण कर वे प्रद्युम्नके साथ अपने नगर वापस आ गये ॥४४-४५॥ जो प्राप्त हुए सफेद बैलोंसे जुते दिव्य रथपर आरूढ़ था, धनुष, पाँच बाण, छत्र, ध्वजा और दिव्य आभूषणोंसे आभूषित था तथा कामके बाणोंसे पुरुष और स्त्रियोंके मनको हर रहा था ऐसे प्रद्युम्नने सैकड़ों कुमारोंसे परिवृत हो मेघकूट नामक नगरमें प्रवेश किया ॥४६-४७॥

पहुँचते ही उसने नमस्कार कर कालसंवरके दर्शन किये और उसके बाद उसी भाँति रथपर बैठा हुआ कनकमालाके घरकी ओर प्रस्थान किया ॥४८॥ उस प्रकारकी वेषभूषासे युक्त तथा नेत्रोंके लिए आनन्ददायी प्रद्युम्नको समीप आया देख कनकमाला किसी दूसरे ही भावको प्राप्त हो गयी ॥४९॥ रथसे नीचे उतरकर नम्रीभूत हुए प्रद्युम्नकी कनकमालाने बहुत प्रशंसा की, उसका मस्तक सूँघा, उसे पासमें बैठाया और कोमल हाथसे उसका स्पर्श

---

१. संश्रित्वा म., ग. । २. सह ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाढमोहोदयात्तस्यास्ततः परवशात्मनः । कर्षन्तो हृदयक्षोणीं प्रवृत्ता दुर्मनोरथाः ॥५१॥
स्वाङ्गैरस्याङ्गसङ्गं या लभेत शयने सकृत् । कामिनी भुवने सैका शेषास्त्वाकृतिमात्रकम् ॥५२॥
रूपलावण्यसौभाग्यवैदग्ध्यं गुणगोचरम् । [1]कामाश्लेषस्य सौलभ्ये दौर्लभ्ये स्यात्तृणं तु मे ॥५३॥
इतिप्रवृत्तसंकल्पामसंभावितत्तन्मनाः । तां प्रणम्य स लब्धाशीः प्रद्युम्नः स्वगृहं गतः ॥५४॥
इतिप्रबलदुःखेयं खेचरी निखिलाः क्रियाः । विसस्मार स्मराश्लेषसुखलाभ[2]मनोरथा ॥५५॥
अस्वस्थामपरेद्युस्तां प्रद्युम्नो द्रष्टुमागतः । अद्राक्षीद्बिसिनीपत्रपर्यस्ततनुमाकुलाम् ॥५६॥
पृच्छति स्म स तां कामः शरीरास्वास्थ्यकारणम् । इङ्गितैराङ्गिकैः[3] सापि[4] वाचिक्यैश्च व्यबोधयत् ॥५७॥
वैपरीत्यं ततो ज्ञात्वा निन्दित्वा कर्मचेष्टितम् । स मात्रपत्यसंबन्धप्रत्यायनपरोऽभवत् ॥५८॥
सापि तस्मै यथावृत्तमादिमध्यावसानतः । अटवीलाभसंवृद्धिविद्यालाभानवेदयत् ॥५९॥
स्वसंबन्धं ततः श्रुत्वा संदिग्धार्थमतिर्गतः । दृष्ट्वा सागरचन्द्राख्यं मुनिं चैत्यगृहे मुदा ॥६०॥
नत्वा पृष्ट्वा ततो ज्ञात्वा सर्वान् पूर्वभवान्निजान् । तथा कनकमालायाश्चन्द्राभायाः पुरा भवे ॥६१॥
सम्यग्दर्शनसंशुद्धो ज्ञातप्रज्ञप्तिलाभकः । गत्वा शीलधनोऽप्राक्षीन्मदनो मदनातुराम्[5] ॥६२॥

किया ॥५०॥ तदनन्तर मोहका तीव्र उदय होनेसे उसकी आत्मा विवश हो गयी और हृदयरूपी भूमिको खोदते हुए अनेक खोटे विचार उसके मनमें उठने लगे ॥५१॥ वह विचारने लगी कि जो स्त्री शय्यापर अपने अंगोंसे इसके अंगोंके स्पर्शको एक बार भी प्राप्त कर लेती है संसारमें वही एक स्त्री है अन्य स्त्रियाँ तो स्त्रीकी आकृतिमात्र हैं ॥५२॥ यदि मुझे प्रद्युम्नका आलिंगन प्राप्त होता है तो मेरा रूप, लावण्य, सौभाग्य तथा चातुर्य सफल है और दुर्लभ रहता है तो यह सब मेरे लिए तृणके समान तुच्छ है ॥५३॥ जिसके मनमें कनकमालाके ऐसे विचारोंकी कल्पना भी नहीं थी ऐसा प्रद्युम्न, पूर्वोक्त संकल्प-विकल्प करनेवाली कनकमालाको प्रणाम कर तथा आशीर्वाद प्राप्तकर अपने घर चला गया ॥५४॥

उधर प्रद्युम्नके आलिंगनजन्य सुखको प्राप्त करनेकी जिसको लालसा लग रही थी ऐसी विद्याधरी कनकमाला प्रबल दुःखसे दुःखी हो सब काम-काज भूल गयी ॥५५॥ दूसरे दिन उसके अस्वस्थ होनेका समाचार पा प्रद्युम्न उसे देखने गया तो क्या देखता है कि कनकमाला कमलिनीके पत्तोंकी शय्यापर पड़ी हुई बहुत व्याकुल हो रही है ॥५६॥ प्रद्युम्नने उससे शरीरकी अस्वस्थताका कारण पूछा तो उसने शरीर और वचनसम्बन्धी चेष्टाओंसे अपना अभिप्राय प्रकट किया ॥५७॥ तदनन्तर इस विपरीत बातको जानकर और कर्मकी चेष्टाओंकी निन्दा कर प्रद्युम्न उसे माता और पुत्रका सम्बन्ध बतलानेमें तत्पर हुआ ॥५८॥ इसके उत्तरमें कनकमालाने भी उसे आदि, मध्य और अन्त तक जैसा वृत्तान्त हुआ था वह सब बतलाते हुए कहा कि तू मुझे अटवीमें किस प्रकार मिला, किस प्रकार तेरा लालन-पालन हुआ और किस प्रकार मुझे विद्याओंका लाभ हुआ ॥५९॥ कनकमालासे अपना सम्बन्ध सुन प्रद्युम्नके मनमें संशय उत्पन्न हुआ जिससे वह स्पष्ट पूछनेके लिए जिन-मन्दिरमें विद्यमान सागरचन्द्र मुनिराजके पास गया और हर्षपूर्वक उन्हें नमस्कार कर उसने उनसे अपने सब पूर्वभव पूछे। पूर्वभव ज्ञात कर उसे यह भी मालूम हो गया कि यह कनकमाला पूर्वभवमें चन्द्राभा थी ॥६०-६१॥ शुद्ध सम्यग्दर्शनके धारक प्रद्युम्नको मुनिराजसे यह भी विदित हुआ कि तुझे कनकमालासे प्रज्ञप्ति विद्याका लाभ होनेवाला है। तदनन्तर शीलरूपी धनको धारण करनेवाले प्रद्युम्नने जाकर कामसे पीड़ित कनकमालासे प्रज्ञप्ति विद्याके विषयमें पूछा ॥६२॥

१. प्रद्युम्नालिङ्गनस्य । २. लाभः मनोरथा म. । ३. –राङ्गितैः म. घ., ङ, –रागितैः ग. । ४. सोऽपि म. । ५. मदनातुरम् म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दृष्ट्वा हृष्टा जगौ तं सा शृणु काम भणामि ते । गौरीं प्रज्ञप्तिविद्यां च त्वं गृहाण यदीच्छसि ॥६३॥
ततः प्रसाद इच्छामि दीयतामितिवादिने । ददौ विधियुते विद्ये विद्याधरदुरासदे ॥६४॥
प्रसारितकरो विद्ये गृहीत्वा प्रमदी स ताम् । प्राणविद्याप्रदानान्मे गुरुस्त्वमिति सद्वचाः ॥६५॥
त्रिःपरीत्य प्रणम्याग्रे स्थितः सुकरशेखरः । अपत्योचितमादेशं याचित्वा स्वोचितं ययौ ॥६६॥
छलिताहमिति ज्ञात्वा सातिकोपवशात्ततः । कक्षवक्षःकुचोद्देशान्[1] नखक्षतभृतोऽकरोत् ॥६७॥
सादर्शयच्च पत्येऽङ्गं नाथ प्रद्युम्नचेष्टितम् । पश्येत्यपत्यसंभारं प्रत्येतिस्म स चापि तत् ॥६८॥
आहूय रहसि क्रुद्धः पुत्रपञ्चशतानि सः । आदिदेशान्यदुर्बोधं प्रद्युम्नो मार्यतामिति ॥६९॥
लब्धादेशास्ततस्तुष्टास्ते तमादाय सादराः । अन्येद्युरगमन्पापा वापीं कालाम्बुनामिकाम् ॥७०॥
निपत्य युगपत्सर्वे तस्योपरि जिघांसवः[2] । प्राचूचुदन् जलक्रीडां वाप्यां कुर्म इति द्विषः ॥७१॥
[3]कर्णे कथितमेतस्य ततः प्रज्ञप्तिविद्यया । याथातथ्यमिति क्रोधादन्तर्हिततनुः क्षणात् ॥७२॥
पपात मायया वाप्यां निर्घाता इव निर्घृणाः । तेऽपि सर्वे समं पेतुरस्योपरि जिघांसवः ॥७३॥
ऊर्ध्वपादानधोवक्त्रानेकशेषानमूनसौ । स्तम्भयित्वानुजं कृत्वा पञ्चचूडमजीगमत् ॥७४॥

प्रद्युम्नको आया देख कनकमालाने उससे कहा कि हे काम ! मैं एक बात कहती हूँ सुन, यदि तू मुझे चाहता है तो मैं तुझे गौरी और प्रज्ञप्ति नामक विद्याएँ कहती हूँ–बतलाती हूँ—तू ग्रहण कर ॥६३॥ तदनन्तर 'यह आपकी प्रसन्नता है, मैं आपको चाहता हूँ, विद्याएँ मुझे दीजिए' इस प्रकार कहनेवाले प्रद्युम्नके लिए कनकमालाने विद्याधरोंको दुष्प्राप्य दोनों विद्याएँ विधिपूर्वक दे दीं ॥६४॥ हाथ फैलाकर दोनों विद्याओंको ग्रहण करता हुआ प्रद्युम्न बड़ा प्रसन्न हुआ। जब वह विद्याएँ ले चुका तब इस प्रकारके उत्तम वचन बोला कि 'पहले अटवीसे लाकर आपने मेरी रक्षा की अतः प्राणदान दिया और अभी विद्यादान दिया—इस तरह प्राणदान और विद्यादान देनेसे आप मेरी गुरु हैं'। इस प्रकारके उत्तम वचन कह तीन प्रदक्षिणाएँ दे वह हाथ जोड़ शिरसे लगाकर सामने खड़ा हो गया और पुत्रके उचित जो भी आज्ञा मेरे योग्य हो सो दीजिए, इस प्रकार याचना करने लगा। कनकमाला चुप रह गयी और प्रद्युम्न थोड़ी देर वहाँ रुककर चला गया ॥६५-६६॥'मैं इस तरह इसके द्वारा छली गयी हूँ' यह जान कनकमालाने तीव्र क्रोधवश अपने कक्ष, वक्षःस्थल तथा स्तनोंको स्वयं ही नखोंके आघातसे युक्त कर लिया ॥६७॥ और पतिके लिए अपना शरीर दिखाते हुए कहा कि हे नाथ ! अपत्यजनोंके योग्य (?) यह प्रद्युम्नकी करतूत देखो। पतिने भी स्त्रीके इस प्रपंचपर विश्वास कर लिया ॥६८॥ राजा कालसंवर इस घटनासे बहुत ही क्रुद्ध हुआ। उसने एकान्तमें बुलाकर अपने पाँच सौ पुत्रोंसे कहा कि 'जिस तरह किसी अन्यको पता न चल सके उस तरह इस प्रद्युम्नको मार डाला जाये' ॥६९॥

तदनन्तर पिताकी आज्ञा पा हर्षसे फूले हुए वे पापी कुमार बड़े आदरसे दूसरे दिन प्रद्युम्नको साथ लेकर कालाम्बु नामक वापिका पर गये ॥७०॥ और एक साथ सब प्रद्युम्नपर कूदकर उसके घातकी इच्छा रखते हुए उसे बार-बार प्रेरित करने लगे कि चलो वापीमें जलक्रीड़ा करें ॥७१॥ उसी समय प्रज्ञप्ति विद्याने प्रद्युम्नके कानमें सब बात ज्योंकी-त्यों कह दी। सुनकर प्रद्युम्नको बहुत क्रोध आया और वह उसी क्षण मायासे अपना मूल शरीर कहीं छिपा कृत्रिम शरीरसे वापिकामें कूद पड़ा। उसके कूदते ही वज्रके समान निर्दय एवं मारनेके इच्छुक सब कुमार एक साथ उसके ऊपर कूद पड़े ॥७२-७३॥ प्रद्युम्नने एकको शेष बचा सभी कुमारोंको ऊपर पैर और नीचे मुख कर कील दिया और एक भाईको पाँच चोटियोंका धारक बना खबर देनेके लिए कालसंवरके पास भेज दिया ॥७४॥

१. कचोद्देशान् म. । २. जिघित्सवः म. । ३. कर्णो म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुत्रोदन्तं ततः श्रुत्वा द्विगुणक्रोधदीपितः । सन्नह्य सर्वसैन्येन संप्राप्तः कालसंवरः ॥७५॥
विद्याविकृतसैन्येन प्रद्युम्नेन ततश्चिरम् । युद्ध्वाभग्नोऽति भग्नेच्छः स गत्वा कृष्णसंवरः ॥७६॥
ऊचे कनकमालां तां देहि प्रज्ञप्तिमित्यरम् । स्तन्येन सह बाल्येऽस्मै मया दत्तेति सावदत् ॥७७॥
ज्ञातमायादुरीहोऽसौ पुनरागत्य मानवान् । युध्यमानोऽमुना बद्धो निहितो हि शिलातले ॥७८॥
तदानीमेव संप्राप्तो नारदोऽतिविशारदः । प्रद्युम्नेन कृताभ्यर्चः संबन्धमखिलं जगौ ॥७९॥
कालसंवरमुन्मुच्य क्षमयित्वा ततोऽवदत् । पूर्वकर्मवशेच्छाया मातुर्मे क्षम्यतामिति ॥८०॥
[1]निरुपायानुपायज्ञो मुक्त्वा पञ्चशतान्यपि । भ्रातृस्नेहपरः कामः क्षमयित्वा पुनः पुनः ॥८१॥
आपृष्टेन स तुष्टेन कालसंवरभूभृता । विसृष्टो रुक्मिणीकृष्णदर्शनोत्सुकमानसः ॥८२॥
प्रणम्य पितरं स्नेहान्नारदेन सहाम्बरम् । अथारूढो विमानेन द्वारिकागमनं प्रति ॥८३॥
संकथाभिर्विचित्राभिर्नभस्यागच्छतोस्तयोः । अतिक्रान्तेमपुरयोः सैन्यं दृष्टिपथेऽभवत् ॥८४॥
कस्येदमटवीमध्ये पूज्य सैन्यमधो महत् । पश्चिमाशामुखं याति क्व किमर्थमतिद्रुतम् ॥८५॥
संपृष्टः कामदेवेन नारदोऽप्यगदीदिति । शृणु काम कथालेशं कथयामि तवाधुना ॥८६॥
अस्ति दुर्योधनो राजा कुरुवंशविभूषणः । दुर्योधनो द्विषां युद्धे स हास्तिनपुरे वरे ॥८७॥

तदनन्तर पुत्रोंका समाचार सुन द्विगुणित क्रोधसे देदीप्यमान होता हुआ कालसंवर युद्धकी तैयारी कर सब सेनाके साथ वहाँ पहुँचा ॥७५॥ उधर प्रद्युम्नने भी विद्याके प्रभावसे एक सेना बना ली सो उसके साथ चिर काल तक युद्ध कर कालसंवर हार गया और जीवनकी आशा छोड़ जाकर कनकमालासे बोला कि 'तू मुझे शीघ्र ही प्रज्ञप्ति नामक विद्या दे।' कनकमालाने कहा कि 'मैं तो बाल्य अवस्थामें दूधके साथ वह विद्या प्रद्युम्नके लिए दे चुकी हूँ' ॥७६-७७॥ तदनन्तर स्त्रीकी मायापूर्ण दुश्चेष्टाको जानकर मानी कालसंवर पुनः युद्धके मैदानमें आकर युद्ध करने लगा और प्रद्युम्नने उसे बाँधकर एक शिलातलपर रख दिया ॥७८॥ उसी समय अत्यन्त निपुण नारदजी वहाँ आ पहुँचे। प्रद्युम्नने उनका सम्मान किया। तदनन्तर नारदने सब सम्बन्ध कहा ॥७९॥ तदनन्तर राजा कालसंवरको बन्धनसे मुक्त कर प्रद्युम्नने क्षमा माँगते हुए उनसे कहा कि माता कनकमालाने जो भी किया है वह पूर्व कर्मके वशीभूत होकर ही किया है अतः उसे क्षमा कीजिए ॥८०॥ उपायके ज्ञाता प्रद्युम्नने जिनका कुछ भी उपाय नहीं चल रहा था ऐसे पाँच सौ कुमारोंको भी छोड़ दिया और भ्रातृस्नेहके प्रकट करनेमें तत्पर हो उनसे बार-बार क्षमा माँगी ॥८१॥

तदनन्तर रुक्मिणी और कृष्णके दर्शनके लिए जिसका मन अत्यन्त उत्सुक हो रहा था ऐसे प्रद्युम्नने जानेके लिए राजा कालसंवरसे आज्ञा माँगी और उसने भी सन्तुष्ट होकर उसे विदा कर दिया ॥८२॥ तत्पश्चात् स्नेहपूर्वक पिताको प्रणाम कर प्रद्युम्न, द्वारिका जानेके लिए नारदके साथ-साथ विमान द्वारा आकाशमें आरूढ़ हुआ ॥८३॥ नाना प्रकारकी कथाओंके द्वारा आकाशमें आते हुए दोनों जब हस्तिनापुरको पार कर कुछ आगे निकल आये तब एक सेना उनके दृष्टिपथमें आयी—एक सेना उन्हें दिखाई दी ॥८४॥ सेनाको देख प्रद्युम्नने नारदसे पूछा कि 'हे पूज्य! यह अटवीके बीच नीचे किसकी बड़ी भारी सेना विद्यमान है? इस सेनाका मुख पश्चिम दिशाकी ओर है। यह बड़ी तेजीसे कहाँ और किसलिए जा रही है?' इस प्रकार प्रद्युम्नके पूछनेपर नारदने कहा कि हे प्रद्युम्न! सुनो, मैं इस समय तुझसे एक कथाका कुछ अंश कहता हूँ ॥८५-८६॥

कुरुवंशका अलंकारभूत एक दुर्योधन नामका राजा है जो युद्धमें शत्रुओंके लिए सचमुच

---

१. निरपायानु. म., घ.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अग्रजाय मया देया रुक्मिणीसत्यभामयोः । दुहितेति प्रतिज्ञातं पूर्वं प्रीतेन तेन च ॥८८॥
अग्रजस्त्वं ततो जातो विष्णवे विनिवेदितः । भानुश्च सत्यभामायास्तदनन्तरमान्तरैः ॥८९॥
अकस्माद् गच्छता क्वापि [1]हृतस्त्वं धूमकेतुना । विषण्णा रुक्मिणी जाता सत्यभामा तु तोषिणी ॥९०॥
अविज्ञातभवद्वार्तो दुर्योधनयशोधनः । कन्यकामुदधिं नाम्ना भानवे प्राहिणोदसौ ॥९१॥
[2]भाविनीन ततः सेयं महासाधनरक्षिता । द्वारिकां प्रस्थिता कन्या भानवे किल भाविनी ॥९२॥
श्रुत्वा नारदमाकाशे स्थापयित्वा क्षणं ततः । सोऽवतीर्य पुरस्तस्थौ शाबरं वेषमाश्रितः ॥९३॥
केशवेन वितीर्णं मे शुल्कं दत्वा तु गम्यताम् । इत्युक्ते कैश्चिदित्युक्तं प्रार्थ्यतां प्रार्थितं तव ॥९४॥
यदत्र निखिले सैन्ये सारभूतमितीरिते । ईरितं सारभूतात्र कन्यकेति समन्युभिः ॥९५॥
यद्येवं दीयतां मह्यं सैवेत्युक्ते जगुः परे । विष्णुना जनितो न त्वं स प्राह जनितस्विति ॥९६॥
असंबद्धप्रलापस्य धृष्टतां पश्यतेति ते । धनुःकोटिभिरुत्सार्य प्रवृत्ता गन्तुमुद्यताः ॥९७॥
ततः शाबरसेनाभिर्विद्यया विकृतात्मभिः । दुर्योधनबलं जित्वा कन्यामादाय खं श्रितः ॥९८॥
दिव्यरूपं तमालोक्य कन्या त्यक्तभया ततः । हृष्टा नारदवाक्येन बुद्धतत्त्वा समाश्वसीत् ॥९९॥

ही दुर्योधन है (जिसके साथ युद्ध करना कठिन है) और वह हस्तिनापुर नामके उत्तम नगरमें रहता है ॥८७॥ एक बार पहले प्रसन्न होकर उसने कृष्णसे प्रतिज्ञा की थी कि यदि मेरे कन्या हुई और आपकी रुक्मिणी तथा सत्यभामा रानियोंके पुत्र हुए तो जो पुत्र पहले होगा उसके लिए मैं अपनी कन्या दूँगा ॥८८॥ तदनन्तर रुक्मिणीके तुम और सत्यभामाके भानु साथ ही साथ उत्पन्न हुए परन्तु रुक्मिणीके सेवकोंने कृष्ण महाराजके लिए पहले तुम्हारी खबर दी इसलिए तुम 'अग्रज' घोषित किये गये और सत्यभामाके स्वजनोंने पीछे खबर दी इसलिए उसका पुत्र भानु 'अनुज' घोषित किया गया ॥८९॥ तदनन्तर अकस्मात् कहीं जाता हुआ धूमकेतु नामका असुर तुम्हें हर ले गया इसलिए तुम्हारी माता रुक्मिणी बहुत दुखी हुई और सत्यभामा सन्तुष्ट हुई ॥९०॥ जब आपका कुछ समाचार नहीं मिला तब यशरूपी धनको धारण करनेवाले दुर्योधनने अपनी उदधिकुमारी नामकी कन्या सत्यभामाके पुत्र भानुके लिए भेज दी ॥९१॥ हे स्वामिन् ! नाना भावोंको धारण करनेवाली यह वही कन्या बड़ी भारी सेनासे सुरक्षित हो द्वारिकाको जा रही है तथा सत्यभामाके पुत्र भानुकी स्त्री होनेवाली है ॥९२॥

यह सुन प्रद्युम्नने नारदको तो वहीं आकाशमें खड़ा रखा और आप उसी क्षण नीचे उतरकर भीलका वेष रख सेनाके सामने खड़ा हो गया ॥९३॥ वह कहने लगा कि 'कृष्ण महाराजने मेरे लिए जो शुल्क देना निश्चित किया है वह देकर जाइए'। भीलके इस प्रकार कहनेपर कुछ लोगोंने कहा कि 'माँग क्या चाहता है' ? ॥९४॥ भीलने उत्तर दिया कि 'इस समस्त सेनामें जो वस्तु सारभूत हो वही चाहता हूँ'। उसके इस प्रकार कहनेपर लोगोंने क्रोध दिखाते हुए कहा कि 'सेनामें सारभूत तो कन्या है'। भीलने फिर कहा कि 'यदि ऐसा है तो वही कन्या मुझे दी जाये'। यह सुन लोगोंने कहा कि 'तू विष्णु—कृष्णसे उत्पन्न नहीं हुआ है'—कन्या उसे दी जायेगी जो विष्णुसे उत्पन्न होगा। भीलने जोर देकर कहा कि 'मैं विष्णुसे उत्पन्न हुआ हूँ'। 'इस असम्बद्ध बकनेवालेकी धृष्टता तो देखो' यह कह उसे धनुषकी कोटीसे अलग हटाकर लोग ज्योंही आगे जानेके लिए उद्यत हुए त्योंही वह विद्याके द्वारा निर्मित भीलोंकी सेनासे दुर्योधनकी सेनाको जीतकर तथा कन्या लेकर आकाशमें जा पहुँचा ॥९५-९८॥ विमानमें पहुँचकर प्रद्युम्नने अपना असली रूप रख लिया अतः सुन्दर रूपको धारण करनेवाले उसको देखकर कन्या निर्भय हो गयी और नारदके कहनेसे यथार्थ बातको जान हर्षित हो सुखकी साँस लेने लगी ॥९९॥

१. हृतस्त्वं म. । २. भाविनीव म., ख. । भाविनी + इन इतिच्छेदः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विमानं [1]कामगं [2]कामः समारुह्य समं तया । नारदेन च संप्राप्तो द्वारिकां द्वारहारिणीम् ॥१००॥
अपश्यत्स विदूरेण सागरेण गरीयसा । प्राकारेण च तां गुप्तां गोपुराट्टालसंकुलाम् ॥१०१॥
बाह्यबाह्यालिकां भानुरश्वव्यायामहेतुना । निर्गतोऽदर्शि कामेन गगनस्थविमानिना ॥१०२॥
तुरगस्वरया दिव्यः [3]स्थविराकारधारिणा । नीतो भानुकुमारार्थमारूढस्तं स हारिणम् ॥१०३॥
बाह्यमानेन तेनासौ कुमारः कामरूपिणा । खलीकृत्य चिरं नीतः स्थविरान्तं निजेच्छया ॥१०४॥
अवतीर्णस्ततो भानुरहो कौशलमित्यलम् । हसितः साट्टहासेन करास्फालनकारिणा ॥१०५॥
जरन्नारोप्यमाणस्तु भानुलोकेन तं चिरम् । खलीकृत्य व्यलीकेन व्यालाश्वस्थः स्वयं ययौ ॥१०६॥
मायामर्कटमायाश्वैर्मामोपवनभङ्गकृत् । अशोषयन्महावापीं मायया मदनस्तदा ॥१०७॥
मक्षिकादंशमशकैः सकरस्पन्दनं नृपम् । निवर्त्य द्वारि चिक्रीड खरमेषरथी चिरम् ॥१०८॥
व्यामोह्य पौरलोकं च विविधक्रीडया चिरम् । वसुदेवेन संक्रीड्य मेषयुद्धेन संमदी ॥१०९॥
भोजनेऽग्रासने विप्रः सत्यायाः सोऽग्रजन्मनः । खलीकृत्यासनैर्लग्नैश्छर्दिकाहारकोऽगमत् ॥११०॥

अथानन्तर कन्या उदधिकुमारी और नारद मुनिके साथ, इच्छानुकूल गमन करनेवाले विमानपर आरूढ़ होकर प्रद्युम्न, द्वारोंसे सुन्दर द्वारिका नगरी जा पहुँचा ॥१००॥ दूरसे ही उसने विशाल सागर और कोटसे सुरक्षित एवं गोपुर और अट्टालिकाओंसे व्याप्त द्वारिकाको देखा ॥१०१॥ उसी समय सत्यभामाका पुत्र भानुकुमार, घोड़ेको व्यायाम करानेके लिए नगरीके बाह्य मैदानमें आया था उसे प्रद्युम्नने देखा। देखते ही वह विमानको आकाशमें खड़ा रख पृथिवीपर आया और वृद्धका रूप रख सुन्दर घोड़ा लेकर भानुकुमारके पास पहुँचा। बोला कि मैं यह घोड़ा भानुकुमारके लिए लाया हूँ। देखते ही भानुकुमार उस सुन्दर घोड़ापर सवार हो गया ॥१०२-१०३॥ इच्छानुकूल रूपको धारण करनेवाले उस घोड़ेने भानुकुमारको बहुत देर तक तंग किया और बादमें वह भानुकुमारको साथ ले अपनी इच्छानुसार उस वृद्धके पास ले आया। भानुकुमार घोड़ासे नीचे उतर आया और वृद्धने अट्टहास कर तथा हाथसे घोड़ाका आस्फालन कर व्यंग्यपूर्ण भाषामें हँसी उड़ाते हुए भानुकुमारसे कहा कि अहो! घोड़ाके चलानेमे आपकी बड़ी चतुराई है? ॥१०४-१०५॥ साथ ही वृद्धने यह भी कहा कि मैं बहुत बूढ़ा हो गया हूँ स्वयं मुझसे घोड़ापर बैठते नहीं बनता। यदि कोई मुझे बैठा दे तो मैं अपना कौशल दिखाऊँ। साथ ही भानुकुमारके लोग उसे घोड़ापर चढ़ानेके लिए उद्यम करने लगे परन्तु प्रद्युम्नने अपना शरीर इतना भारी कर लिया कि उन अनेक लोगोंको उसका उठाना दुर्भर हो गया। इस प्रकार अपनी मायासे उन सब लोगोंको तंग कर वह वृद्ध रूपधारी प्रद्युम्न उस घोड़ेपर स्वयं चढ़ गया और अपना कौशल दिखाता हुआ चला गया ॥१०६॥ तदनन्तर उसने मायामयी वानरों और मायामयी घोड़ोंसे सत्यभामाका उपवन उजाड़ डाला तथा मायासे उसकी बड़ी भारी वापिका सुखा दी ॥१०७॥ नगरके द्वारपर राजा श्रीकृष्ण आ रहे थे उन्हें देख उसने मायामयी मक्खियों और डाँस-मच्छरोंको इतनी अधिक संख्यामें छोड़ा कि उनका आगे बढ़ना कठिन हो गया और हाथ हिलाते हुए उनसे लौटते ही बना। तदनन्तर वह गधे और मेढ़ेके रथपर सवार हो नगरमें चिरकाल तक क्रीड़ा करता रहा ॥१०८॥ इस प्रकार नाना तरहकी क्रीड़ाओंसे नगरवासियोंको मोहित कर उसने बड़ी प्रसन्नतासे अपने बाबा वसुदेवके साथ मेषयुद्धसे क्रीड़ा की ॥१०९॥

तदनन्तर सत्यभामाके महलमें पहुँचा। वहाँ ब्राह्मणोंका भोज होनेवाला था सो प्रद्युम्न एक ब्राह्मणका रूप रख सबसे आगेके आसनपर जा बैठा। एक अपरिचित ब्राह्मणको आगे बैठा देख सब ब्राह्मण कुपित हो गये तब लगे हुए आसनोंसे उसने उन ब्राह्मणोंको खूब तंग किया।

१. यथेच्छगामि। २. प्रद्युम्नः। ३. दिव्यस्थविराकार—म., ग.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विकृत्य क्षौल्लकं वेषं मातृमोदकभक्षिणा । [1]मामादेशकरस्तेन नापितश्च तिरस्कृतः ॥१११॥
संकर्षणस्य हत्वेच्छां पादाकर्षणकारिणः । आरराम चिरं स्वेच्छं लोकविस्मयकृत्कृती ॥११२॥
प्रद्युम्नागमचिह्नानि पूर्वोक्तानि तदा परम्[2] । प्रस्नुतस्तनकुम्भाया मातुरध्यक्षतां ययुः ॥११३॥
साऽतोऽचिन्तयदत्यन्तविस्मिता मे सुतो न्वयम्[3] । कृतरूपपरावृत्तिरागतः षोडशाब्दके ॥११४॥
तां प्रद्युम्नकुमारोऽपि तत्क्षणं प्रकृतिस्थितः । सुतस्नेहमितीरित्वा मातरं प्रणनाम सः ॥११५॥
[4]सानन्दा साकुलाक्षी तं रुक्मिणी तनयं नतम् । परिष्वज्य जहौ दुःखमश्रुभिः सहसा चितम् ॥११६॥
दर्शनामृतसिक्ताया पुलकव्यपदेशतः । प्रत्यङ्गरोमकूपेभ्यः सुतस्नेह इवोद्ययौ ॥११७॥
तयोः कुशलसंप्रश्ने संवृत्ते मातृपुत्रयोः । माता पुत्रमवोचत्तं चित्तनिर्वृत्तिदायिनम् ॥११८॥
धन्या कनकमालासौ पुत्र ! पुत्रफलं यया । बालक्रीडावलोकाख्यमनुभूतं शिशोस्तव ॥११९॥
इत्युक्ते प्रणिपत्यासौ जगाद नयनोत्सवः । बालभावमहं मातर्दर्शयामीह दृश्यताम् ॥१२०॥
ततः स तत्क्षणं जातस्तदहर्जातदारकः । आस्वादितकराङ्गुष्ठः प्रोत्फुल्लनयनोत्पलः ॥१२१॥

तत्पश्चात् उस विप्रभोजमें जितना भोजन बना था वह सब प्रद्युम्नने खा लिया। जब कुछ भी न बचा तो सत्यभामाको कृपण बता खाये हुए भोजनको वमन द्वारा वहीं उगल वह वहाँसे बाहर चला गया ॥११०॥ अब वह क्षुल्लकका वेष रख माता रुक्मिणीके महलमें गया, वहाँ उसने माता रुक्मिणीके द्वारा दिये हुए लड्डू खाये। उसी समय सत्यभामाका आज्ञाकारी नाई रुक्मिणीके शिरके बाल लेनेके लिए उसके घर आया सो प्रद्युम्नने सब समाचार जान उसका खूब तिरस्कार किया ॥१११॥ सत्यभामाकी शिकायत सुन बलदेव रुक्मिणीके महलपर आनेको उद्यत हुए तो प्रद्युम्न एक ब्राह्मणका रूप रख द्वारपर पैर फैलाकर पड़ रहा। बलदेवने उसे दूर हटनेके लिए कहा पर वह टससे मस नहीं हुआ और कहने लगा कि आज सत्यभामाके घर बहुत भोजन कर आया हूँ हमसे उठते नहीं बनता। कुपित हो बलदेवने उसकी टाँग पकड़कर खींचन। चाहा पर उसने विद्याबलसे टाँगको इतना मजबूत कर लिया कि वे खींचते-खींचते तंग आ गये। इस प्रकार नाना विद्याओंमें कुशल प्रद्युम्न अपनी इच्छानुसार लोगोंको आश्चर्य उत्पन्न करता हुआ चिरकाल तक क्रीड़ा करता रहा ॥११२॥

उसी समय, प्रद्युम्नके आनेके जो चिह्न पहले नारदने कहे थे वे माता रुक्मिणीको प्रत्यक्ष दिखने लगे और उसके स्तनरूपी कलशोंसे अत्यधिक दूध झरने लगा ॥११३॥ अत्यन्त आश्चर्यमें पड़कर वह विचार करने लगी कि कहीं सोलह वर्ष व्यतीत होनेके बाद मेरा पुत्र ही तो रूप बदलकर नहीं आ गया है ? ॥११४॥ उसी क्षण प्रद्युम्नने भी अपने असली रूपमें प्रकट हो पुत्रका स्नेह प्रकट कर माताको प्रणाम किया ॥११५॥ पुत्रको देखते ही रुक्मिणी आनन्दसे भर गयी, उसके नेत्र हर्षके आँसुओंसे व्याप्त हो गये और वह नम्रीभूत पुत्रका आलिंगन कर चिरसंचित दुःखको आँसुओंके द्वारा तत्काल छोड़ने लगी ॥११६॥ पुत्रके दर्शनरूपी अमृतसे सींची हुई रुक्मिणीके शरीरमें प्रत्येक रोम-कूपसे रोमांच निकल आये थे उनसे ऐसा जान पड़ता था मानो पुत्रका स्नेह ही फूट-फूटकर प्रकट हो रहा हो ॥११७॥ तदनन्तर जब माता और पुत्र परस्पर कुशल समाचार पूछ चुके तब माताने चित्तके लिए अत्यधिक सन्तोष प्रदान करनेवाले पुत्रसे कहा कि हे पुत्र ! वह कनकमाला धन्य है जिसने तेरी बाल्य अवस्थाकी बाल-क्रीड़ाओंके देखने रूप पुत्र जन्मके फलका उपभोग किया ॥११८-११९॥ माताके इतना कहते ही नेत्रोंको आनन्द प्रदान करनेवाले प्रद्युम्नने नमस्कार कर कहा कि हे मातः ! मैं यहाँ ही अपनी बाल-चेष्टाएँ दिखलाता हूँ, देख। ॥१२०॥ तदनन्तर वह उसी क्षण एक दिनका बालक बन गया और नेत्ररूपी नील कमलको

१. नामादेश—म.। २. परे म., ग.। ३. सुतो नु + अयम् इतिच्छेदः। ४. सानन्दसाकुलाक्षी म.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ततः स्तनंधयो जातो गृहीतस्तनचूचुकः । तथोत्तानशयो मातुः करपल्लवसौख्यदः ॥१२२॥
संसर्पन्नुरसा जातस्तथोत्तिष्ठन्पतन्पुनः । मातुः कराङ्गुलौ लग्नो मणिकुट्टिमसर्पणः ॥१२३॥
पांशुक्रीडां विधायाम्बाकण्ठलग्नो व्यधात्सुखम् । कलालापस्मिताह्लादिवदनो वदनेक्षणः ॥१२४॥
मनोहरशिशुक्रीडापूरिताम्बामनोरथः । स्वभावस्थितदेहस्थो नत्वा विज्ञाप्य तां सुतः ॥१२५॥
क्षिप्रमुत्क्षिप्य बाहुभ्यां वियति प्रकटस्थितः । जगाद श्रूयतां सर्वैरिह यादवपार्थिवैः ॥१२६॥
युष्माकं पश्यतामेव लक्ष्मीरिव हरेः प्रिया । ह्रियते रुक्मिणी देवी यादवाः परिरक्ष्यताम् ॥१२७॥
इत्युक्त्वा शङ्खमापूर्य नारदोदधिकन्ययोः । विमाने स्थापयित्वा तां युद्धार्थं वियति स्थितः ॥१२८॥
विनिर्ययुस्ततः पुर्या योद्धुं सन्नह्य यादवाः । चतुरङ्गबलोपेताः पञ्चायुधविचक्षणाः ॥१२९॥
विद्याबलेन निश्शेषं कामो यादवसाधनम् । मोहयित्वाम्बरस्थेन युयुधे हरिणा चिरम् ॥१३०॥
अस्त्रकौशलवैफल्ये कृते कृष्णस्य सूनुना । प्रौढदृष्टी महादोर्भ्यां योद्धुं वीरौ समुच्छ्रितौ ॥१३१॥
विमुक्तनारदेनोभौ वियत्यागत्य वेगिना । वारितौ तौ पितापुत्रसंबन्धविनिवेदिना ॥१३२॥
ततः प्रणतमाश्लिष्य प्रद्युम्नं [1]प्रमदी हरिः । आनन्दाश्रुपरीताक्षः समयोजयदाशिषा ॥१३३॥
मायया शायितं सैन्यं समुत्थाप्य सविद्यया । तुष्टो बान्धवलोकेन मदनः प्राविशत्पुरीम् ॥१३४॥
रुक्मिणीजाम्बवत्यौ ते जातपुत्रसमागमे । तदा चीकरतां तोषादुत्सवं वत्सवत्सले ॥१३५॥

फुला-फुलाकर हाथका अँगूठा चूसने लगा ॥१२१॥ कुछ देर बाद वह माताके स्तनका चूचक मुँहमें दाबकर दूध पीने लगा तथा चित्त लेटकर माताके कर-पल्लवोंको सुख उपजाने लगा ॥१२२॥ फिर छातीके बल सरकने लगा। पुनः उठनेका प्रयत्न करता परन्तु फिर नीचे गिर पड़ता। तदनन्तर माताकी हाथकी अँगुली पकड़ मणिमय फर्शपर चलने लगा ॥१२३॥ तदनन्तर धूलिमें खेलता-खेलता आकर माताके कण्ठसे लिपटकर उसे सुख उपजाने लगा और कभी माताके मुखकी ओर नेत्र लगा मुसकराता हुआ तोतली बोली बोलने लगा ॥१२४॥ इस प्रकार मनोहर बाल-क्रीड़ाओंसे माताका मनोरथ पूर्ण कर वह अपने असली रूपमें आ गया और नमस्कार कर बोला कि मैं तुझे आकाशमें लिये चलता हूँ ॥१२५॥

तदनन्तर वह दोनों भुजाओंसे शीघ्र ही रुक्मिणीको ऊपर उठा आकाशमें खड़ा हो कहने लगा कि 'समस्त यादव राजा सुनें। मैं तुम लोगोंके देखते-देखते लक्ष्मीकी भाँति सुन्दर श्रीकृष्णकी प्रिया रुक्मिणीको हरकर ले जा रहा हूँ। हे यादवो! शक्ति हो तो उसकी रक्षा करो' ॥१२६-१२७॥ इस प्रकार कहकर तथा शंख फूँककर उसने रुक्मिणीको तो विमानमें नारद और उदधि-कुमारोंके पास बैठा दिया और स्वयं युद्धके लिए आकाशमें आ खड़ा हुआ ॥१२८॥ तदनन्तर चतुरंग सेनाओंसे सहित और पाँचों प्रकारके शस्त्र चलानेमें निपुण यादव राजा, युद्धके लिए तैयार हो नगरीसे बाहर निकले ॥१२९॥ प्रद्युम्न विद्याबलसे यादवोंकी सब सेनाको मोहित कर आकाशमें स्थित कृष्णके साथ चिरकाल तक युद्ध करता रहा ॥१३०॥ अन्तमें प्रद्युम्नने जब कृष्णके अस्त्र-कौशलको निष्फल कर दिया तब प्रौढ़ दृष्टिको धारण करनेवाले दोनों वीर अपनी बड़ी-बड़ी भुजाओंसे युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए ॥१३१॥ उसी समय रुक्मिणीके द्वारा प्रेरित नारदने आकाशमें शीघ्र ही आकर पिता-पुत्रका सम्बन्ध बतला दोनों वीरोंको युद्ध करनेसे रोका ॥१३२॥

तदनन्तर नम्रीभूत पुत्रका आलिंगन कर श्रीकृष्ण परम हर्षको प्राप्त हुए और हर्षके आँसुओं-से नेत्रोंको व्याप्त करते हुए उसे आशीर्वाद देने लगे ॥१३३॥ तत्पश्चात् मायासे सुलायी हुई सेनाको विद्यासे उठाकर प्रद्युम्नने सन्तुष्ट हो बन्धुजनोंके साथ-साथ नगरीमें प्रवेश किया ॥१३४॥ जिन्हें पुत्रकी प्राप्ति हुई थी ऐसी पुत्रवत्सला रानी रुक्मिणी और जाम्बवतीने उस समय हर्षसे बहुत

१. प्रमदं म.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मान्यो मान्याभिरन्यस्त्रीह्रीकरीभिरसौ[1] ततः । मनोभूर्वरकन्याभिः कल्याणममजत्परम् ॥१३६॥

पृथिवीच्छन्दः

कनत्कनकमालया कनकमालया [2]सेशया
विवाहसमयाप्तया सममिदृष्टकल्याणकः ।
विवाह्य विधिना वधूरुदधिपूर्विका मन्मथो
जिनेन्द्रवरशासनोर्जितसुखोदयः सोऽन्वभूत् ॥१३७॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ कुरुवंशप्रद्युम्नमातृपितृसमागमवर्णनो नाम सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥४७॥

□

उत्सव कराया ॥१३५॥ तदनन्तर मान्य प्रद्युम्नकुमार अन्य स्त्रियोंको लज्जा उत्पन्न करनेवाली उत्तमोत्तम मान्य कन्याओंके साथ उत्तम विवाह-मंगलको प्राप्त हुआ ॥१३६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि स्वर्णकी देदीप्यमान मालासे युक्त रानी कनकमालाने अपने पति कालसंवर विद्याधरके साथ विवाहके समय आकर जिसके विवाहरूप कल्याणको देखा था एवं जिनेन्द्र भगवान्‌के उत्कृष्ट शासनके प्रभावसे जिसे बहुत भारी सुखकी प्राप्ति हुई थी ऐसा प्रद्युम्नकुमार उदधिकुमारी आदि कन्याओंको विधिपूर्वक विवाहकर उनका उपभोग करने लगा ॥१३७॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंश पुराणमें कुरुवंश तथा प्रद्युम्नका माता-पिताके साथ समागमका वर्णन करनेवाला सैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥४७॥

□

१. श्रीकरीभि—म. ग. । २. ईशेन पत्या सह वर्तमाना सेशा तया । सेवया म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अष्टचत्वारिंशः सर्गः

अथ शम्बस्य संभूतिं सुभानोश्च यथाक्रमम् । कथयामि यथावृत्तं शृणु श्रेणिक हारिणीम् ॥१॥
देवः कैटभपूर्वोऽसौ पूर्वमुक्तोऽच्युतोद्भवः । हरये हारिणं हारं ददौ भामासुतार्थिने ॥२॥
प्रदोषसमये हारं तं प्रद्युम्नप्रयोगतः । सत्यारूपधरां भुक्त्वा लेभे जाम्बवतीं हरेः ॥३॥
कैटभश्च तदा च्युत्वा पुण्यादप्रच्युतोदयः । श्रितो जाम्बवतीगर्भं सागता च निजं गृहम् ॥४॥
हरिं सत्यापि संप्राप्ता संप्राप्तमदनोदया । रमिता च दधे गर्भं सा स्वर्गच्युतसर्भकम् ॥५॥
वर्धते स्म ततो हर्षो गर्भयोर्वर्धमानयोः । पितृमातृसबन्धूनां[1] सिन्धूनामिव चन्द्रयोः ॥६॥
पूर्णेषु नवमासेषु शम्बं जाम्बवती सुतम् । सुषुवे सत्यभामापि सुभानुं भानुमास्वरम् ॥७॥
हृष्टा प्रद्युम्नशम्बाभ्यां रुक्मिणी जाम्बवत्यपि । भामा भानुसुभानुभ्यां श्रिताभ्यामुदयश्रियम् ॥८॥
हरेरन्यास्वपि स्त्रीषु जाताः पुत्रा यथायथम् । यदूनां हृदयानन्दाः सत्यसत्त्वयशोऽधिकाः ॥९॥
शम्बः क्रीडासु सर्वासु कुमारशतसेवितः । जित्वा सुभानुमाक्रम्य विक्रमी रमतेतराम् ॥१०॥
रुक्मिणी रौक्मिणेयाय वैदर्भीं रुक्मिणः सुताम् । ययाचे न ददौ कन्यां सोऽपि पूर्वविरोधतः ॥११॥
गत्वा मातङ्गवेषेण शम्बप्रद्युम्नसंवरौ । बलादाहरतां कन्यां रुक्मिणं परिभूय तौ ॥१२॥

अथानन्तर गौतम गणधरने कहा कि हे श्रेणिक ! अब मैं आगमानुसार क्रमसे शम्ब तथा सुभानु कुमारकी मनोहर उत्पत्तिका वर्णन करता हूँ तुम सुनो ॥१॥

राजा मधुका भाई कैटभ जिसका पहले वर्णन आ चुका है, अच्युत स्वर्गमें देव हुआ था। जब उसकी वहांकी आयु समाप्त होनेको आयी तब वह सत्यभामाके लिए पुत्रकी इच्छा रखनेवाले श्रीकृष्णके लिए एक सुन्दर हार दे गया ॥२॥ सायंकालके समय प्रद्युम्नके प्रयोगसे सत्यभामाका रूप धारण कर रानी जाम्बवतीने कृष्णके साथ उपभोग कर वह हार प्राप्त कर लिया ॥ ३ ॥ पुण्यके उदयसे उसी समय अखण्ड अभ्युदयको धारण करनेवाला कैटभका जीव स्वर्गसे च्युत हो जाम्बवतीके गर्भमें आ गया। गर्भ धारण कर रानी जाम्बवती अपने घर आ गयी ॥ ४ ॥ तदनन्तर सत्यभामा भी कृष्णके पास पहुँची और कामके उदयको प्राप्त हो श्रीकृष्णके साथ रमण कर उसने भी स्वर्गसे च्युत किसी शिशुको गर्भमें धारण किया ॥५॥ तदनन्तर दोनों रानियोंका गर्भ बढ़ने लगा और जिस प्रकार चन्द्रमाओंके बढ़नेपर समुद्रोंका हर्ष बढ़ने लगता है उसी प्रकार उन दोनों रानियोंके गर्भके बढ़नेपर माता-पिता तथा कुटुम्बी जनोंका हर्ष बढ़ने लगा ॥६॥ तदनन्तर नौ माह पूर्ण होनेपर रानी जाम्बवतीने शम्ब नामक पुत्रको और रानी सत्यभामाने सूर्यके समान देदीप्यमान सुभानु नामक पुत्रको उत्पन्न किया ॥७॥ इधर अभ्युदयको प्राप्त प्रद्युम्न और शम्बसे रुक्मिणी तथा जाम्बवती हर्षको प्राप्त हुईं उधर भानु और सुभानुसे सत्यभामा भी अत्यधिक हर्षित हुई ॥८॥ कृष्णकी अन्य स्त्रियोंमें भी यथायोग्य अनेक पुत्र उत्पन्न हुए जो यादवोंके हृदयको आनन्द देनेवाले तथा सत्य, पराक्रम और यशसे अत्यधिक सुशोभित थे ॥९॥ सैकड़ों कुमारोंसे सेवित पराक्रमी शम्ब, समस्त क्रीड़ाओंमें सुभानुको दबा देता था और उसे जीतकर सातिशय क्रीड़ा करता था ॥१०॥

रुक्मिणीके भाई रुक्मीकी एक वैदर्भी नामकी कन्या थी। रुक्मिणीने उसे प्रद्युम्नके लिए माँगा परन्तु रुक्मीने पूर्व विरोधके कारण उसके लिए वह कन्या न दी ॥११॥ यह सुन शम्ब और प्रद्युम्न दोनों भीलके वेषमें गये और रुक्मीको पराजित कर बलपूर्वक उस कन्याको हर

---

१. स्वबन्धूनां म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिणीय ततः कामः कन्यामन्यामिव श्रियम् । अरीरमदरं भोगैर्द्वारिकायां मनोरमैः ॥१३॥
दक्षो जित्वा सुभानुं तं द्यूते प्रेक्षणकेक्षणे । शम्बो ददाति सर्वस्य लोकस्य सकलं धनम् ॥१४॥
क्रीडया स पुनर्जिग्ये पक्षिणोर्बहुजल्पिनोः । गन्धयुक्तिप्रयोगेण पुनः सदसि शार्ङ्गिणः ॥१५॥
अग्निशोध्येन दिव्येन सवस्त्रयुगलेन तम् । दिव्यालंकारयोगेन जिगाय सदसि प्रभोः ॥१६॥
बलदर्शनतो जित्वा तमसौ हृष्टविष्णुतः । मासं लब्ध्वा पुना राज्यं चक्रे दुर्ललिताः क्रियाः ॥१७॥
ताडितः पुनरुद्वृत्तः पित्रा प्रणयकोपिना । [1]युग्येन कन्यकारूपः सत्योत्संगमतोऽविशत् ॥१८॥
सत्या सुतार्थमानीतां विवाह्य [2]वरकन्यकाम् । आविश्चकार रूपं स्वं शम्बो लोकस्य पश्यतः ॥१९॥
एकस्यामेव रात्रौ तु कन्यकानां शतेन सः । कल्याणस्नानकं[3] स्नात्वा मातृसौख्यकरोऽभवत् ॥२०॥
सत्यभामादिदेवीनां कुमाराः शतशस्तदा । विवाह्य बहुशः कन्याश्चिक्रीडुः शक्रकीर्तयः ॥२१॥
क्रीडापूर्वं गतो गेहमन्यदा मान्यमात्मनः । पितामहमिति प्राह शम्बः प्रणतिपूर्वकम् ॥२२॥
युष्माभिः सर्वकालेन क्लेशेन खचराङ्गनाः । पर्यटद्भिः क्षितौ लब्धाः पूज्यपूज्या मनोरमाः ॥२३॥
अक्लेशेनैकरात्रेण मया तु गृहवर्तिना । परिणीताः शतं कन्याः पश्यतान्तरमावयोः ॥२४॥
वसुदेवस्ततः प्राह वत्स त्वमिषुवत्पुनः । [4]क्षिप्तोऽपि गृहमध्येऽपि दूरमन्तरमावयोः ॥२५॥

लाये ॥१२॥ तदनन्तर दूसरी लक्ष्मीके समान सुन्दर उस कन्याको विवाहकर प्रद्युम्न द्वारिका नगरीमें उसे मनोहर भोगोंसे शीघ्र ही क्रीड़ा कराने लगा ॥१३॥ शम्ब जुआ खेलनेमें बहुत चतुर था। एक दिन उसने सबके देखते-देखते जुआमें सुभानुका सब धन जीत लिया और सब लोगोंको बाँट दिया ॥१४॥ नाना प्रकारकी बोली बोलनेवाले पक्षियोंकी क्रीड़ासे शम्बने सुभानु कुमारको जीत लिया। एक कृष्णकी सभामें दोनों कुमारोंके बीच सुगन्धिकी परखमें शास्त्रार्थ हो पड़ा जिसमें शम्बने सुभानुको पुनः हरा दिया ॥१५॥ एक बार उसने अग्निमें शुद्ध किये हुए दो दिव्य वस्त्रों तथा दिव्य अलंकारोंको प्राप्त कर राजा कृष्णकी सभामें सुभानुको जीत लिया ॥१६॥ एक बार अपना बल दिखाकर उसने सुभानु कुमारको ऐसा जीता कि कृष्ण महाराज उसपर एकदम प्रसन्न हो गये। कृष्णने उससे वर माँगनेका आग्रह किया जिससे एक माहका राज्य प्राप्त कर उसने बहुत विपरीत क्रियाएँ कीं ॥१७॥ प्रणय कोपको धारण करनेवाले कृष्णने उस दुराचारी शम्बको बहुत ताड़ना दी। एक दिन शम्बकुमार कन्याका रूप धारण कर रथमें सवार हो सत्यभामाकी गोदमें जा प्रविष्ट हुआ ॥१८॥ सत्यभामाने समझा कि यह कन्या मेरे पुत्र सुभानुके लिए ही लायी गयी है इसलिए उसने सुभानुके साथ विवाह करा दिया परन्तु विवाहके बाद ही शम्बकुमारने लोगोंके देखते-देखते अपना असली रूप प्रकट कर दिया ॥१९॥ उसने एक ही रात्रिमें सौ कन्याओंके साथ विवाह सम्बन्धी मांगलिक स्नान कर अपनी माता जाम्बवतीको बहुत सुखी किया ॥२०॥ इन्द्रके समान कीर्तिको धारण करनेवाले सत्यभामा आदि रानियोंके सैकड़ों कुमार भी उस समय अनेक कन्याओंको विवाह कर इच्छानुसार क्रीड़ा करने लगे ॥२१॥ एक दिन शम्ब अपने मान्य पितामह वसुदेवके घर गया और प्रणाम कर क्रीड़ापूर्वक इस प्रकार कहने लगा—हे पूज्य ! आपने पृथिवीपर बहुत समय तक क्लेश उठाते हुए भ्रमण किया तब कहीं आप विद्याधरोंकी पूज्य एवं मनोहर कन्याएँ प्राप्त कर सके परन्तु मैंने घर बैठे बिना किसी क्लेशके एक ही रात्रिमें सौ कन्याओंके साथ विवाह कर लिया। आप हम दोनोंके अन्तरको देखिए ॥२२-२४॥ यह सुन वसुदेवने कहा कि वत्स ! तू बाणके समान दूसरेसे (प्रद्युम्नसे) प्रेरित हो चलता है और फिर तेरी चाल भी कहाँ है ? सिर्फ घरमें ही। इसीलिए हम दोनोंमें बहुत अन्तर

१. रथेन (ग. टि.)। २. वरकन्यकाः म.। ३. कल्याणस्नातकं म.। ४. बाणवत्परप्रेरितः प्रद्युम्नप्रेरितश्चलसि (ग. टि.)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मया खेटपुराम्भोधिमकरेण समं निजम् । द्वारिकाकूपमण्डूकः पण्डितम्मन्य मन्यसे ॥२६॥
अनुभूतं श्रुतं दृष्टं यन्मयातिमनोहरम् । विद्याधरपुरेष्वेतदन्येषामतिदुर्लभम् ॥२७॥
इत्युक्ते प्रणतेनोक्तः शम्बेनानकदुन्दुभिः । शुश्रूषाम्यार्य वृत्तं ते भण्यतामिति सादरम् ॥२८॥
स प्राहानन्दभेर्या त्वं वत्स बोधय यादवान् । कथयामि [1]समस्तानां सहैव चरितं निजम् ॥२९॥
तथा कृते समस्तेभ्यो यादवेभ्यः सविस्तरम् । कलत्रादिसमेतेभ्यो वृत्तं तेनाकथि स्वकम् ॥३०॥
लोकालोकविभागोक्तिं हरिवंशानुकीर्तनम् । स्वक्रीडा सौर्यलोकोक्तिनिर्गमं च ततो निजम् ॥३१॥
इत्यादि चरितं दिव्यं दिव्यमानुषसंभवम् । प्रद्युम्नशम्बसंभूतिभूतिपर्यवसानकम् ॥३२॥
वसुदेवस्य सर्वोऽपि सर्वविद्याधरीमयः । अन्तःपुरजनो हृष्टः श्रुतस्मरणसंगतः ॥३३॥
श्रुत्वा सभाजनाश्चापि वृद्धस्त्रीयुवबालकाः । [2]यदवोऽन्तःपुराण्येषां कुरवो द्वारिकाजनाः ॥३४॥
विस्मयं परमं प्राप्ताः शशंसुः संशयोज्झिताः । वसुदेवं शिवाद्याश्च देव्यः पीतकथारसाः ॥३५॥
यथायथं नृपा जग्मुरावासान्वासिताम्बराः । अन्तःपुराणि सर्वेषां रक्षितानि सुरक्षकैः ॥३६॥
कथा पुनर्नवीभूता प्रतिवेश्म दिने दिने । जाता जनस्य साश्चर्या वसुदेवमयी कथा ॥३७॥
नत्वा पृष्टवते [3]भूयः श्रेणिकाय गणी जगौ । कुमारान् कतिचित्पुर्यामिति वीरवचःक्रमात् ॥३८॥

है ॥२५॥ मैं विद्याधरोंके नगररूपी समुद्रोंका मगर हूँ और तू द्वारिकारूपी कूपका मेढक है फिर भी हे पण्डितमन्य ! तू अपने आपको मेरे समान मानता है ॥२६॥ मैंने विद्याधरोंके नगरोंमें जो कुछ अनुभव किया, देखा तथा सुना है वह अत्यन्त मनोहारी है और दूसरोंके लिए अतिशय दुर्लभ है ॥२७॥ वसुदेवके इस प्रकार कहनेपर शम्बने नमस्कार कर आदरपूर्वक उनसे कहा कि हे आर्य ! मैं आपका वृत्तान्त सुनना चाहता हूँ कृपा कर कहिए ॥२८॥ इसके उत्तरमें वसुदेवने कहा कि हे वत्स ! तू आनन्दभेरी बजवाकर समस्त यादवोंको इसकी सूचना दे। सबके लिए मैं साथ ही अपना चरित्र कहूँगा ॥२९॥ तदनन्तर आनन्दभेरीके बजवानेपर जब स्त्री-पुत्रादि सहित समस्त यादव एकत्रित हो गये तब वसुदेवने उनके लिए विस्तारपूर्वक अपना सब वृत्तान्त कहा ॥३०॥ उन्होंने लोकालोकके विभागका वर्णन किया, हरिवंशकी परम्पराका निरूपण किया, अपनी क्रीड़ाओंका कथन किया, सौर्यपुरके लोगोंने राजा समुद्रविजयसे मेरी क्रीड़ाओंसे होनेवाली लोगोंकी विपरीत चेष्टाएँ कहीं, तदनन्तर मैं छलसे सौर्यपुरसे निकलकर बाहर चला गया···· यह निरूपण किया। इस प्रकार प्रद्युम्न और शम्बकी उत्पत्ति तथा उनकी विभूतिपर्यन्त अपना मनुष्य तथा विद्याधरोंसे सम्बन्ध रखनेवाला दिव्य चरित कह सुनाया ॥३१-३२॥ वसुदेवके अन्तःपुरमें जो विद्याधर स्त्रियाँ थीं वे सब उनका यह चरित सुन पूर्व वृत्तान्तको स्मरण करती हुई अत्यन्त हर्षित हुईं ॥३३॥ सभासद् लोग, वृद्ध पुरुष, स्त्री, युवा, बालक, समस्त यदुवंशी, इनके अन्तःपुर, पाण्डव तथा द्वारिकाके अन्य लोग, वसुदेवके उक्त चरितको सुनकर परम आश्चर्यको प्राप्त हुए और शिवा आदि देवियाँ वसुदेवके इस कथारूपी रसका पान कर संशयरहित हो उनकी प्रशंसा करने लगीं ॥३४-३५॥ सुगन्धित वस्त्रोंको धारण करनेवाले सब राजा यथायोग्य अपने-अपने स्थानोंपर चले गये और सबके अन्तःपुर भी पहरेदारोंसे सुरक्षित हो अपने-अपने स्थानोंपर पहुँच गये ॥३६॥ अनेक आश्चर्योंसे युक्त वसुदेवकी कथा फिरसे ताजी हो गयी और पुनः प्रतिदिन घर-घर होने लगी ॥३७॥

तदनन्तर नमस्कार कर पूछनेवाले राजा श्रेणिकके लिए गौतम गणधर, भगवान् महावीर स्वामीकी दिव्यध्वनिके अनुसार कुछ कुमारोंका इस प्रकार वर्णन करने लगे ॥३८॥

---

१. समात्तानां म. । २. यादवोऽन्तः—म. । ३. भूपः म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उग्रसेनस्य तनया धरो गुणधरोऽपि च । युक्तिको दुर्धरश्चापि सागरश्चन्द्रसंज्ञकः ॥३९॥
उग्रसेनपितृव्यस्य शान्तनस्य सुतास्त्वमी । महासेनशिविस्वस्थविषदानन्तमित्रकाः[1] ॥४०॥
महासेनस्य तनयः सुषेण इति नामतः । हृदिको विषमित्रस्य शिवेः सत्यक इत्यसौ ॥४१॥
हृदिकात्कृतिधर्मासौ दृढधर्मा च देहजः । सत्यकाद्वज्रधर्मोऽभूदसंगस्तु तदङ्गजः ॥४२॥
समुद्रविजयोद्भूता महासत्यदृढाधिकाः । नेमयोऽरिष्टनेमीशः सुनेमिर्जयसेनकः ॥४३॥
महीजयः सुफल्गुश्च तेजःसेनो मयस्तथा । मेघाख्यः शिवनन्दश्च चित्रको गौतमादयः ॥४४॥
अक्षोभ्यस्योद्धवः सुनूर्वचःक्षुमितवारिधिः । अम्भोधिजलधी चान्यौ वामदेवदृढव्रतौ ॥४५॥
तनयाः पञ्च विख्याता जाताः स्तिमितसागरात् । ऊर्मिमान् वसुमान्वीरः पातालस्थिर इत्यमी ॥४६॥
विद्युत्प्रभो नरपतिर्माल्यवान् गन्धमादनः । इत्यमी सत्यसत्त्वाढ्यास्त्रयो हिमवतः सुताः ॥४७॥
विजयस्यापि षट् पुत्रा निष्कम्पोऽकम्पनो [2]बलिः । [3]युगन्तः केशरी धीमानलम्बुष इति श्रुताः ॥४८॥
महेन्द्रो मलयः सह्यो गिरिः शैलो नगोऽचलः । इत्येतेऽन्वर्थनामानः सप्ताचलशरीरजाः ॥४९॥
धरणस्यात्मजाः पञ्च वासुकिः स धनंजयः । कर्कोटकः शतमुखो विश्वरूपश्च नामतः ॥५०॥
दुष्पूरो दुर्मुखाभिख्यो दुर्दर्शो दुर्धरोऽपि च । सूनवः पूरणस्यामी चत्वारश्चतुरक्रियाः ॥५१॥
पुत्राः षडभिचन्द्रस्य चन्द्रनिर्मलकीर्तयः । चन्द्रः शशाङ्कचन्द्राभौ शशी सोमोऽमृतप्रभः ॥५२॥
तनया वसुदेवस्य बहुसंख्या महाबलाः । नामतः कतिचिद्वच्मि श्रणु श्रेणिक तानहम् ॥५३॥
पुत्रौ विजयसेनाया अक्रूरक्रूरनामकौ । ज्वलनानिलवेगाख्यौ श्यामाख्यायाः शरीरजौ ॥५४॥
पुत्राः गन्धर्वसेनायास्त्रयो लोका इव त्रयः । वायुवेगोऽमितगतिर्महेन्द्रगिरिरित्यसौ ॥५५॥

धर, गुणधर, युक्तिक, दुर्धर, सागर और चन्द्र ये राजा उग्रसेनके पुत्र थे ॥३९॥ महासेन, शिवि, स्वस्थ, विषद और अनन्तमित्र ये उग्रसेनके चाचा राजा शान्तनके पुत्र थे ॥४०॥ इनमें महासेनके सुषेण, विषमित्रके हृदिक, शिविके सत्यक, हृदिकके कृतिधर्मा और दृढधर्मा, सत्यकके वज्रधर्मा और वज्रधर्माके असंग नामका पुत्र हुआ ॥४१-४२॥ राजा समुद्रविजयके महानेमि, सत्यनेमि, दृढनेमि, भगवान् अरिष्टनेमि, सुनेमि, जयसेन, महीजय, सुफल्गु, तेजःसेन, मय, मेघ, शिवनन्द, चित्रक और गौतम आदि अनेक पुत्र हुए ॥४३-४४॥ अक्षोभ्यके, अपने वचनोंसे समुद्रको क्षुभित करनेवाला उद्धव, अम्भोधि, जलधि, वामदेव और दृढव्रत ये पांच पुत्र प्रसिद्ध थे। स्तिमितसागरसे ऊर्मिमान्, वसुमान्, वीर और पातालस्थिर ये चार पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥४५-४६॥ राजा विद्युत्प्रभ, माल्यवान्, और गन्धमादन ये तीन हिमवत्के पुत्र थे तथा ये तीनों ही सत्यव्रत और पराक्रमसे युक्त थे ॥४७॥ निष्कम्प, अकम्पन, वलि, युगन्त, केशरिन् और बुद्धिमान् अलम्बुष ये छह पुत्र विजयके प्रसिद्ध थे ॥४८॥ महेन्द्र, मलय, सह्य, गिरि, शैल, नग और अचल, सार्थक नामोंको धारण करनेवाले ये सात पुत्र अचलके थे ॥४९॥ वासुकि, धनंजय, कर्कोटक, शतमुख और विश्वरूप ये पाँच पुत्र धरणके थे ॥५०॥ दुष्पूर, दुर्मुख, दुर्दर्श और दुर्धर, चतुर क्रियाओंको धारण करनेवाले ये चार पुत्र पूरणके थे ॥५१॥ चन्द्र, शशांक, चन्द्राभ, शशिन्, सोम और अमृतप्रभ चन्द्रमाके समान निर्मल कीर्तिको धारण करनेवाले ये छह पुत्र अभिचन्द्रके थे ॥५२॥ और वसुदेवके महाबलवान् अनेक पुत्र थे। हे श्रेणिक ! मैं यहाँ उनमें-से कुछके नाम कहता हूँ सो सुन ॥५३॥

वसुदेवकी विजयसेना रानीसे अक्रूर और क्रूर नामके दो पुत्र हुए थे। श्यामा नामक रानीसे ज्वलन और अग्निवेग ये दो पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥५४॥ गन्धर्वसेनासे वायुवेग, अमितगति और महेन्द्रगिरि ये तीन पुत्र हुए थे। ये तीनों पुत्र ऐसे जान पड़ते थे मानो तीनों लोक ही

१. विषादानन्त-म. । २. बलः म. । २. युगान्तः म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अमात्यदुहितुर्जाताः पद्मावत्याः सुतास्त्रयः । दारुर्वृद्धार्थनामा च दारुक इत्युदीरिताः ॥५६॥
द्वौ नीलयशसः पुत्रौ धीरौ सिंहमतङ्गजौ । नारदो मरुदेवोऽपि सोमश्रीतनयौ वरौ ॥५७॥
[1]मित्रश्रियः सुमित्राख्यः कपिलः कपिलात्मजः । पद्मश्च पद्मकाख्यश्च पद्मावत्याः शरीरजौ ॥५८॥
अश्वसेनोऽश्वसेनाया पौण्ड्राया पौण्ड्र एव तु । रत्नगर्भः सुगर्भश्च रत्नवत्याः सुतौ मतौ ॥५९॥
सोमदत्तसुतायास्तु चन्द्रकान्तशशिप्रभौ । वेगवान्वायुवेगश्च वेगवत्यास्तनूभवौ ॥६०॥
दृढमुष्टिरनावृष्टिर्हिममुष्टिश्च ते त्रयः । पुत्रा मदनवेगाया मदनप्रतिमागताः ॥६१॥
बन्धुषेणस्तथा सिंहसेनो बन्धुमतीसुतौ । प्रियङ्गुसुन्दरीसूनुः शीलायुध इति श्रुतिः ॥६२॥
द्वौ सुतौ तु प्रभावत्या गन्धारः पिङ्गलस्तथा । जरत्कुमारवाह्लीकौ जरायास्तनयौ स्मृतौ ॥६३॥
अवन्त्याः सुमुखश्चैव दुर्मुखश्च महारथः । रोहिण्या बलदेवश्च सारणश्च विदूरथः ॥६४॥
तनूजौ बालचन्द्राया वज्रदंष्ट्रामितप्रभौ । देवकीतनुजो विष्णुरितीमे वसुदेवजाः ॥६५॥
उन्मुण्डो निषधश्चासौ प्रकृतिद्युतिरप्यतः । चारुदत्तो ध्रुवः पीठः स शक्रन्दमनोऽपि च ॥६६॥
श्रीध्वजो नन्दनश्चैव धीमान् दशरथस्तथा । देवनन्दश्च विख्यातो विद्रुमः शन्तनुः परः ॥६७॥
पृथुः शतधनुश्चैव नरदेवो महाधनुः । रोमशैत्यादयः पुत्रा बहवो बलिनस्तथा ॥६८॥
भानुः सुभानुर्भीमौ च महाभानुसुभानुकौ । बृहद्रथश्चाग्निशिखो विष्णुसंजय एव च ॥६९॥
अकम्पनो महासेनो धीरो गम्भीरनामकः । उदधिर्गौतमश्चापि वसुधर्मा प्रसेनजित् ॥७०॥
सूर्यश्च चन्द्रवर्मा च चारुकृष्णश्च विश्रुतः । सुचारुर्देवदत्तश्च भरतः शङ्खसंज्ञकः ॥७१॥
प्रद्युम्नशम्बनामाद्याः केशवस्य शरीरजाः । शस्त्रास्त्रशास्त्रनिष्णाताः सर्वे युद्धविशारदाः ॥७२॥
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च यादवानां यशस्विनाम् । पैतृस्वस्रीयाः स्वस्रीयाः कुमारास्ते सहस्रशः ॥७३॥

हों ॥५५॥ मन्त्रीकी पुत्री पद्मावतीसे दारु, वृद्धार्थ और दारुक ये तीन पुत्र हुए ॥५६॥ नीलयशाके सिंह और मतंगज ये दो धीर-वीर पुत्र थे। सोमश्रीके नारद और मरुदेव ये दो पुत्र थे ॥५७॥ मित्रश्रीसे सुमित्र, कपिलासे कपिल और पद्मावतीसे पद्म तथा पद्मक ये दो पुत्र हुए थे ॥५८॥ अश्वसेनासे अश्वसेन, पौण्ड्रासे पौण्ड्र और रत्नवतीसे रत्नगर्भ तथा सुगर्भ ये दो पुत्र हुए थे ॥५९॥ सोमदत्तकी पुत्रीसे चन्द्रकान्त और शशिप्रभ तथा वेगवतीसे वेगवान् और वायुवेग ये दो पुत्र हुए थे ॥६०॥

दृढमुष्टि, अनावृष्टि और हिममुष्टि ये तीन पुत्र मदनवेगासे उत्पन्न हुए थे। ये तीनों ही पुत्र कामदेवकी उपमाको प्राप्त थे ॥६१॥ बन्धुषेण और सिंहसेन ये बन्धुमतीके पुत्र थे तथा शीलायुध प्रियंगसुन्दरीका पुत्र था ॥६२॥ रानी प्रभावतीसे गन्धार और पिंगल ये दो तथा रानी जरासे जरत्कुमार और वाह्लीक ये दो पुत्र हुए थे ॥६३॥ अवन्तीसे सुमुख, दुर्मुख और महारथ, रोहिणीसे बलदेव, सारण तथा विदूरथ, बालचन्द्रासे वज्रदंष्ट्र और अमितप्रभ और देवकीसे कृष्ण पुत्र हुए थे। इस प्रकार वसुदेवके पुत्रोंका वर्णन किया ॥६४–६५॥

उन्मुण्ड, निषध, प्रकृतिद्युति, चारुदत्त, ध्रुव, पीठ, शक्रन्दमन, श्रीध्वज, नन्दन, धीमान्, दशरथ, देवनन्द, विद्रुम, शन्तनु, पृथु, शतधनु, नरदेव, महाधनु और रोमशैत्यको आदि लेकर बलदेवके अनेक पुत्र थे ॥६६–६८॥ भानु, सुभानु, भीम, महाभानु, सुभानुक, बृहद्रथ, अग्निशिख, विष्णुंजय, अकम्पन, महासेन, धीर, गम्भीर, उदधि, गौतम, वसुधर्मा, प्रसेनजित्, सूर्य, चन्द्रवर्मा, चारुकृष्ण, सुचारु, देवदत्त, भरत, शंख, प्रद्युम्न तथा शम्ब आदि कृष्णके पुत्र थे। ये सभी पुत्र शस्त्र, अस्त्र तथा शास्त्रमें निपुण और युद्धमें कुशल थे ॥६९–७२॥ उन यशस्वी यादवोंके पुत्र

१. मित्राश्रयः म.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च कुमाराणां महौजसाम् । मनोभवस्वरूपाणां रमन्ते रमणप्रियाः ॥७४॥

शार्दूलविक्रीडितम्

नित्यं द्वारवती पुरी परिगता वीरैः कुमारैरिमै-
निर्गच्छद्भिरितस्ततो रथगजारूढैर्विशद्भिस्तथा ।
नानावेषधरैः प्रचण्डचरितैः पौरप्रजाह्लादिभि-
र्बभ्राजे भवनामरैरिव पुरी पाताललोकस्थिता ॥७५॥

स्रग्धराच्छन्दः

प्रायः स्वर्गच्युतानां जिनपथचरितोदारपुण्योदयानां
कीर्त्यानां कीर्त्यमानं चरितमिदमिह श्रीकुमारोत्तमानाम् ।
संशृण्वन्त्येकमत्या मतिविभवयुताः श्रद्दधाना जना ये
कौमारं यौवनं च व्यपगमितरुजस्ते वयो निर्विशन्ति ॥७६॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ यदुकुलकुमारोद्देशवर्णनो नाम अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥४८॥

□

और पौत्र, बुआके लड़के तथा भानजे भी हजारोंकी संख्यामें थे ॥७३॥ इस प्रकार सब मिलाकर महाप्रतापी तथा कामदेवके समान सुन्दर रूपको धारण करनेवाले साढ़े तीन करोड़ कुमार, क्रीड़ाके प्रेमी हो निरन्तर क्रीड़ा करते रहते थे ॥७४॥

निरन्तर रथ तथा हाथियोंपर सवार हो बाहर निकलते तथा भीतर प्रवेश करते हुए, नाना वेषोंके धारक, प्रबल पराक्रमी और नगरवासी प्रजाको आनन्द उत्पन्न करनेवाले इन वीर कुमारोंसे युक्त द्वारावती नगरी उस समय भवनवासी देवोंसे युक्त पातालपुरीके समान सुशोभित हो रही थी ॥७५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि प्रायः स्वर्गसे च्युत होकर आये हुए तथा जिनेन्द्र-प्रणीत मार्गका अनुसरण करनेसे सातिशय पुण्यका संचय करनेवाले इन प्रशंसनीय उत्तम यदु-कुमारोंके इस कहे जानेवाले चरितको जो बुद्धिमान् मनुष्य एकाग्रचित्त होकर सुनते हैं तथा श्रद्धान करते हैं वे समस्त रोगोंको दूर कर कौमार और यौवन अवस्थाका उपभोग करते हैं—उनकी वृद्धावस्था छूट जाती है ॥७६॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें यदुवंशके कुमारोंका नामोल्लेख करनेवाला अड़तालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥४८॥

□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकोनपञ्चाशः सर्गः

नर्कुटकच्छन्दः[1]

अथ मधुसूदनावरजया वरया जगतामवितथकन्यया[2] शशिविशुद्धयशोवरया ।
प्रथितसुदुर्भरप्रथमयौवनभूरिभरः प्रकटमभारि हारिगुणभूषणभूषितया ॥१॥
नखमणिमण्डलेन्दुललिताङ्गुलिपल्लवयोरकृतकरक्तताहसितभास्वदलक्तकयोः ।
मृदुपदपद्मयोः प्रपदभागसमोन्नतयोर्जगति यदीययोरुपमयापगतं त्रपया ॥२॥
दृढगुणगूढगुल्फनिजजानुमनोहरयोः प्रतिपदमानुपूर्व्यपरिवृत्तविलोमशयोः ।
निरुपमजङ्घयोर्जघनभूरिभरक्षमयोः सविरसमल्लयोर्न हि यदीयकयोरुपमा ॥३॥
मृदुपरिवृत्तपाण्डुरगुणं विगलद्वहलस्थिरवरकान्तिदीप्तिरसपूरितमूरुयुगम् ।
करिकरयष्टिवृत्तकदलीमृदिमानमतिप्रथितमतीत्य सत्यगुणचारि यदीयमभात् ॥४॥
बहुरसपूर्णवर्णकुलशैलभवप्रमदाप्रमदविधायिपुण्यसरितः कलहंसगतेः ।
गुरुजघनस्थलीपुलिनभूमिरभूमिरसौ कुसुमरथस्य शुम्भितनितम्बतटा बिबभौ ॥५॥
तनुमृदुरोमराजिलतयातिविनीलरुचा[9] जननयनाभिराप्रनिजनाभिगभीरतया ।
तनुमध्यबन्धनवलित्रयविचित्रतया ललितवधूजनेष्वतिविराजितमत्रतया[10] ॥६॥

अथानन्तर कृष्णकी छोटी बहन जगत्में उत्तम, चन्द्रमाके समान निर्मल यशको धारण करनेवाली एवं मनोहर गुणरूपी आभूषणोंसे भूषित यशोदाकी पुत्री (जो कृष्णके बदलेमें आयी थी)ने अतिशय प्रसिद्ध प्रथम यौवनके बहुत भारी भारको धारण किया ॥१॥ जिनके अंगुलिरूपी पल्लव श्रेष्ठ नखरूपी चन्द्रमण्डलसे सुशोभित थे, जिन्होंने अपनी स्वाभाविक ललाईसे देदीप्यमान महावरकी हँसी की थी, तथा जो अग्रभागमें समान रूपसे ऊँचे उठे हुए थे ऐसे उसके कोमल चरण-कमलोंकी उपमा उस समय लज्जासे ही मानो संसारमें कहीं चली गयी थी। उसके कोमल चरण-कमल अनुपम थे ॥२॥ जो अत्यन्त मजबूत एवं गूढ गाँठों और घुटनोंसे मनोहर थी, उत्तरोत्तर बढ़ती हुई गोलाईसे सुशोभित एवं रोमरहित थी, नितम्बोंका बहुत भारी भार धारण करनेमें समर्थ थी, और जो परस्परके प्रतिस्पर्धी मल्लके समान जान पड़ती थी ऐसी उसकी अनुपम जंघाओंकी उस समय कहीं उपमा नहीं रही ॥३॥ जो कोमल गोल और शुभ्र थे, जिनसे अत्यधिक स्थायी एवं श्रेष्ठ कान्ति चू रही थी, जो दीप्तिरूपी रससे परिपूर्ण थे, हाथीकी सूँड़ और गोल कदलीकी सुकुमारताको उल्लंघन कर विद्यमान थे, अतिशय प्रसिद्ध थे और यथार्थ गुणोंसे युक्त थे, ऐसे उसके दोनों ऊरु उस समय अत्यधिक सुशोभित होने लगे ॥४॥ कलहंसके समान सुन्दर चालसे सुशोभित उस कन्याकी स्थूल जघनस्थली, अनेक रसोंसे परिपूर्ण वर्णवाले कुलाचलोंसे उत्पन्न स्त्रियोंके लिए हर्ष उत्पन्न करनेवाले पुण्यरूपी, नदीकी उस पुलिन भूमि—तट भूमिके समान सुशोभित होने लगी जो कामकी अभूमि—अगोचर तथा नितम्बरूपी सुन्दर तटोंसे युक्त थी ॥५॥ वह कन्या, सूक्ष्म, कोमल और अत्यन्त काली रोमराजिसे, मनुष्योंके नेत्रोंको

---

१. "हयदशभिर्नजौ अजजला गुरु नर्कुटकम्" इति लक्षणात् (वृत्तरत्नाकरस्य)। २. यशोदायाः कन्यया (ङ. टि.)। ३. वरनिर्मलपल्लवयोः क., अतिनिर्मल ङ., रतिनिर्मल—म.। ४. अकृतकरकृता हसित (?) म.। ५. प्रमदभागसमन्वितयोः म., पादस्याग्रं प्रपदः। ६. सविरसमत्ययोः क., सविरसमल्पयोः म.। ७. स्थिरकर—क., ख., ङ., म.। ८. नितम्बतटेव बभौ म.। ९. विनीतरुचा म.। १०. -मत्रपया म.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उरसि नितान्तनीलनिजचूचुकयोरसकौ कठिनसुवृत्तपीवरपयोधरयोर्भरतः ।
अमृतरसक्षयक्षरणभीहरिनीलमणिस्थिरतरमुद्रिकोत्कनककुम्भवहेव बभौ ॥७॥
भुजलतयोः शिरीषमृदुपीनवरांसकयोः वरकमलप्रभापटलपाटलपल्लवयोः ।
कुरुवकताम्रकम्रनखपुष्पकयोर्वपुषस्वनुकृतमुद्रकोशकरशाखकयोर्विबभौ ॥८॥
अकठिनकम्बुकण्ठचिबुकापरबिम्बफलप्रहसितपाण्डुगण्डकुटिलभ्रुललाटतटी—
द्विगुणितकोमलोत्पलसुनालसुकर्णभृता चिरमनयात्यभासि धवलासितदीर्घदृशा ॥९॥
प्रमितशिरस्यतिभ्रमरकान्तिकनत्कुटिलप्रकटकटीतटीपतितकेशकलापमसौ ।
शशिवदना प्रकाशमवहद्विहसद्दशना प्रशिथिलकामपाशमिव लोकवशीकरणम् ॥१०॥
करपदमुद्रिकाकटकनूपुरपूर्वकसत्प्रथितचतुर्दशाभरणभूषणभूततनुः ।
प्रविलसदङ्गरागमृदुवस्त्रमहास्रगियं स्थगयति कन्यकोचितसुखा वपुषा युवतीः ॥११॥
पितृसुतपूर्वकस्य यदुसर्वकुलस्य जनैरुचितसपर्यया विहितगौरवभूमिरसौ ।
सकलकलाकलगुणकलापमहावसतिः सकलसरस्वती स्वयमिव स्वजनोपविधौ ॥१२॥
इति समये प्रयाति तु कदाचिदसौ प्रणतैरुपहसिता प्रयाद्भिरवशाद्बलराजसुतैः ।
विचिपिटनासिकं रहसि दर्पणके स्वमुखं स्फुटमवलोक्य तद्भवविरागमगात्प्रपिता ॥१३॥

आनन्द देनेवाली अपनी नाभिकी गहराईसे और शरीरके मध्यमें स्थित त्रिवलियों—तीन रेखाओंकी विचित्रतासे संसारकी समस्त सुन्दर स्त्रियोंके बीच अत्यधिक सुशोभित होने लगी ॥६॥ वक्षःस्थलपर अत्यन्त नील चूचुकसे युक्त कठोर गोल और स्थूल स्तनोंका भार धारण करनेसे वह कन्या ऐसी सुशोभित होने लगी मानो 'अमृत रसका घर खिरकर कहीं नष्ट न हो जाये' इस भयसे इन्द्रनील मणिकी मजबूत मुहरसे युक्त देदीप्यमान सुवर्णके दो कलश ही धारण कर रही हो ॥७॥ शिरीषके फूलके समान कोमल मोटी और उत्तम कन्धोंसे युक्त, उत्तम कमलकी कान्तिके समूहके समान लाल-लाल हथेली रूप पल्लवोंसे सहित, कुरुबकके फूलके समान लाल एवं सुन्दर नखरूपी पुष्पोंसे सुशोभित तथा मूँगकी कोशोंका अनुकरण करनेवाली अंगुलियोंसे युक्त भुजारूपी लताओंसे वह अत्यधिक सुशोभित होने लगी ॥८॥ कोमल शंखके समान कण्ठ, ठुड्डी, अधरोष्ठरूपी बिम्बीफल, प्रकृष्ट हास्यसे युक्त श्वेत कपोल, कुटिल भौंहें, ललाट तट एवं द्विगुणित कोमल नील कमलकी उत्तम डण्ठलके समान कानोंको धारण करनेवाली और सफेद काले तथा विशाल नेत्रोंसे सहित वह कन्या चिर काल तक अत्यधिक सुशोभित होने लगी ॥९॥ हास्ययुक्त दाँतोंसे सहित वह चन्द्रमुखी कन्या, सुन्दर शिरपर भ्रमरोंकी कान्तिको तिरस्कृत करनेवाले देदीप्यमान घुँघराले एवं विस्तृत कटि-तटपर पड़े प्रकाशमान उस केशसमूहको धारण कर रही थी, जो लटकते हुए काम-पाशके समान लोगोंको वश करनेवाला था ॥१०॥ हाथ और पैरोंमें स्थित अँगूठी, कड़े तथा नूपुर आदि समीचीन एवं प्रसिद्ध चौदह आभरणोंसे जिसका शरीर आभूषणस्वरूप हो रहा था, जो शोभायमान अंगराग, कोमल वस्त्र और महामालाओंको धारण कर रही थी तथा जिसे कन्याओंके उचित समस्त सुख उपलब्ध थे ऐसी वह कन्या अपने शरीरके द्वारा संसारकी अन्य युवतियोंको आच्छादित कर रही थी—तिरस्कृत कर रही थी ॥११॥ वह पिता, पुत्र आदि समस्त यदुवंशके मनुष्योंके द्वारा योग्य सत्कारके द्वारा किये हुए गौरवकी भूमि थी, समस्त कलाओं और मनोहर गुणोंके समूहकी महावसतिका थी और कुटुम्बी जनोंके समीप स्वयं शरीरधारिणी सरस्वतीके समान जान पड़ती थी ॥१२॥

इस प्रकार समय व्यतीत होनेपर कदाचित् बलदेवके पुत्रोंने आकर उसे नमस्कार किया

---

१. क्षयो निवासः (क. टि.)। २. वपुषस्तनुकृत-म., वपुषास्वनकृत-ङ.। ३. प्रसहित म.। ४. युवती म.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुरि विधृतार्जिकागणमहत्तरिकापदया व्रतधरपादमूलमितया सह सुव्रतया ।
[1]सुगुरुरपृच्छयत प्रणतया निजपूर्वकृतं स्फुरदवधीक्षणः क्षणमसाविति तां न्यगदीत् ॥१४॥
तव दुहितः सुराष्ट्रविषये विषयेन्द्रियजैर्विगतभवे[2] सुखैरतिविमूर्छितमूढधिया ।
[3]परुषतयाभिरूपपदमुद्वहताङ्गभृता[4]नभृतमनङ्कुशं निभृतमात्ममनोनयनम् ॥१५॥
अतिविषमं तपो घटयतो मृतशायिकया शकटमृषेरुपर्युपरि हितं तदा त्वकया ।
विमृदितनासिकापुटतटस्य मुनेः स्खलनं मनसि न जातमीषदपि धीरतया धृतया ॥१६॥
अजनितजीवघातगुणतो नरके पतनं तव हि मनाग्न जातमृषिगात्रवधादिह तु ।
अजनि विनासिकस्य वदनस्य महाविकृतिः फलति फलं स्वकर्मजगतां हि यथाविहितम् ॥१७॥
सकृदपि जीवघातकृदघादसकृत्परतः परवशघातदुःखमभियास्यति जन्तुरिह ।
अवयवघातकृत् सकृदपि स्वकृतैरसकृदवयवघातमेष्यति सदेति जिनस्य वचः ॥१८॥
वचनमनस्तनुभिरभियः[5] परुषाः पुरुषाः पुरुषवधादिषु प्रभुतया प्रयतन्त इह ।
दुरितमहाप्रभुः परभवेषु जनेषु पुनः प्रभवति दुःखदानचतुरश्चतुरेष्वपि हि ॥१९॥[6]

और जाते समय अपने अल्हड़ स्वभावसे उसे 'चिपटी नाकवाली' कहकर चिढ़ा दिया। उसने एकान्तमें दर्पणमें प्रतिबिम्बित चिपटी नाकसे युक्त अपना मुख देखा जिससे वह लज्जित होती हुई उस पर्यायसे विरक्त हो गयी ॥१३॥ उसने नगरमें विद्यमान आर्यिकाओंके समूहकी प्रधान सुव्रता नामक गणिनीके चरणोंकी शरण प्राप्त की और उन्हें साथ लेकर वह व्रतधर नामक मुनिराजके चरणमूलमें गयी। उन्हें नमस्कार कर उसने उक्त मुनिराजसे पूछा कि 'हे भगवन्! मैंने पूर्वभवमें क्या पाप किया था जिससे मुझे यह कुरूप प्राप्त हुआ है।' इसके उत्तरमें अवधिज्ञानरूपी नेत्रको विकसित करनेवाले मुनिराज उससे इस प्रकार कहने लगे—॥१४॥

हे पुत्री! पूर्वभवमें तेरा जीव सुराष्ट्र देशमें उत्तम रूपको धारण करनेवाला पुरुष था। वहाँ विषय और इन्द्रियजन्य सुखोंसे अत्यन्त मूढ़ बुद्धि होनेके कारण वह क्रूरतावश विषयोंमें स्वच्छन्द हुए अपने मन और नेत्रोंको स्वाधीन नहीं रख सका ॥१५॥ एक बार एक मुनि मृतशय्यासे अत्यन्त विषम तप तप रहे थे। तूने उनपर अपनी गाड़ी चला दी जिससे उनकी नाक पिचक गयी। मुनिराजने अपने मनमें बहुत भारी धीरता धारण कर रखी थी इसलिए इस घटनासे उनके मनमें कुछ भी क्षोभ उत्पन्न नहीं हुआ ॥१६॥ मुनिराजके जीवका घात नहीं हुआ था इसलिए तेरा नरक वास नहीं हुआ। किन्तु उनके शरीरका कुछ घात हुआ था इसलिए इस जन्ममें तेरा मुख नासिकासे रहित हो महाविकृत हुआ है। ठीक ही है संसारमें जो जैसा कर्म करता है उसे वैसा ही फल प्राप्त होता है ॥१७॥ जिनेन्द्र भगवान्का यह कहना है कि जो प्राणी इस संसारमें एक बार भी किसी जीवका घात करता है वह उसके पापसे पर-भवमें दूसरोंके द्वारा घात होनेके दुःखको प्राप्त होगा और जो किसीके अवयवका एक बार भी घात करता है वह अपने किये पापके अनुसार अनेक बार अवयवके घातको प्राप्त होगा ॥१८॥ जो क्रूर मनुष्य, प्रभुताके कारण निर्भय हो मन, वचन, कायसे मनुष्य आदि प्राणियोंके वधमें प्रयत्न करते हैं परभवोंमें वे कितने ही चतुर क्यों न हों दुःख देनेमें चतुर पापरूपी महाप्रभु उनपर बार-बार अपना प्रभाव जमाता है—उन्हें बार-बार दुःख देता है ॥१९॥ इसलिए स्वपर हितको चाहनेवाले प्राणियोंको भले ही वे राजा क्यों न हों सदा परहिंसा आदि पापोंसे दूर रहना चाहिए।

१. सुरगुरु म. । २. विगतभये म., ङ. । ३. कठोरतया (क. टि.) । पुरुषतया म., ख., ङ. । ४. निवभृतं म., ङ. । ५. रभि यः पुरुषाः परुषाः म. । ६. दुःखदानचरश्चतुरेष्वपि हि म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत इह जन्तुभिः परवधादिनिवृत्तिपरैः स्वपरहितैः सदापि भवितव्यमपि प्रभुभिः ।
न हि भवपद्धतौ भवभृतामिह संसरतां [1]स्वकृतभुजां सतां प्रतिभवति सदा प्रभुता ॥२०॥
इति वचनं गुरोरभिनिशम्य कृतावनतिः प्रगतवती तया सह महत्तरिकार्यिकया ।
व्रतमदधाद्विमोच्य हि सकाखिलबन्धुजनं सितवसनावृतस्तनमरोद्धृतकालकचा[2] ॥२१॥
व्यपहृतभूषणस्रगियमात्मकराङ्गुलिभिर्निकचितकेशभारनिखिलोत्खननं तु तदा ।
प्रविदधती बभौ कुसुमकोमलबाहुलता स्फुटमिव [3]धीकुटीकुटिलशल्यकुलोद्धरणम् ॥२२॥
जघनमुरः कुचावुदरमाचरणं च वपुः सुमृदुदुकूलकैकवसनेन कृतावरणम् ।
[4]सुविदधती सती चिरमराजत सा च तदा वृतसिकतास्थलाच्छपयसा शरदीव नदी ॥२३॥
स्वजनकृताभिनिष्क्रमणपूजनिकां जनिकां पुरुतपसां[5] निशाम्य नवसंयतिकां हि तकाम् ।
अजनि महाजनस्य सकलस्य तदेतिमतिः सधृतिः सरस्वती किमु तपस्यति किं नु रतिः ॥२४॥
व्रतगुणसंयमोपवसनादितपोभिरसौ प्रतिदिनभावनाभिरपि भावितभावयुता ।
वसति तपस्यया वसतिरागमगीतगिरां पुरुगुणसंयुता[6] गणनिवासगता सततम् ॥२५॥
बहुषु तु वर्षवासरगणेषु गतेषु ततो जिनजननाभिनिष्क्रमणनिर्वृतिभूमिषु सा ।
कृतविहृतिः कदाचन गता पृथुसार्थवशान्निजसहधर्मिणीभिरुरुविन्ध्यमहागहनम् ॥२६॥

क्योंकि संसारमें भ्रमण करनेवाले प्राणी अपने द्वारा किये हुए कर्मोंका फल भोगते हैं उनकी प्रभुता—राज्य अवस्था सदा स्थित नहीं रहती ॥२०॥

इस प्रकार गुरुके वचन सुन वह, सुव्रत गणिनीके साथ चली आयी और समस्त बन्धु जनोंका त्यागकर उसने सफेद साड़ीसे स्तनोंको ढक तथा काले केशोंको उखाड़कर आर्यिकाका व्रत धारण कर लिया ॥२१॥ जिसने आभूषण और मालाएँ उतारकर फेंक दी थीं तथा जिसकी बाहुरूपी लताएँ फूलोंके समान कोमल थीं ऐसी वह कन्या उस समय अपने हाथकी कोमल अँगुलियोंसे अपने बँधे हुए समस्त बालोंको उखाड़ती हुई ऐसी जान पड़ती थी मानो बुद्धिरूपी कुटीके भीतर विद्यमान शल्योंके समूहको ही उखाड़ रही हो ॥२२॥ जघन, वक्षःस्थल, स्तन, उदर और चरणोंपर्यन्त समस्त शरीरको एक अत्यन्त कोमल वस्त्रसे आच्छादित करती हुई वह सती उस समय चिरकाल तक शरद् ऋतुकी उस नदीके समान सुशोभित हो रही थी जिसने स्वच्छ जलसे अपने बालुमय स्थलको ढक रखा था ॥२३॥ कुटुम्बी-जनोंने जिसकी दीक्षा-कालीन पूजा की थी और जो बड़े-बड़े तपोंको जन्म देनेवाली थी ऐसी उस नव-दीक्षिता आर्यिकाको देखकर उस समय समस्त महाजनोंके हृदयमें यही बुद्धि उत्पन्न होती थी कि क्या यह धैर्यसहित सरस्वती है अथवा रति तपस्या कर रही है ॥२४॥ व्रत, गुण, संयम तथा उपवास आदि तपों एवं प्रतिदिन भायी जानेवाली अनित्य आदि भावनाओंसे जो विशुद्ध भावोंको प्राप्त हुई थी, जो आगमोक्त अनेक पाठोंकी वसतिका थी, उत्तमोत्तम गुणोंसे सहित थी, और सदा आर्यिकाओंके समूहके साथ निवास करती थी ऐसी वह आर्यिका तपस्या करती हुई रहती थी ॥२५॥

तदनन्तर बहुत वर्षों और दिनोंके समूह व्यतीत हो जानेपर वह जिनेन्द्र भगवान्‌के जन्म, दीक्षा और निर्वाण कल्याणककी भूमियोंमें विहार कर किसी समय बहुत बड़े संघकी प्रेरणासे अपनी सहधर्मिणियोंके साथ विन्ध्याचलके विशाल वनमें जा निकली ॥२६॥ और रात्रिके

१. सुकृत—क., ङ., म. । २. कुचा म. । ३. धीरेव कुटी तत्र कुटिलशल्यकुलस्योद्धरणं पुनः त्रोटनं कुर्वती इति क पुस्तके टिप्पणी ।—मिवोद्धरणं म., बलोद्धरणं ङ. । ४. स्वविदधती म. । ५. पुरुतपसं क., ख., ङ., म. । ६. संयता म., ङ. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निशि निशितासिनिर्मलनिशातमनास्त्वसकौ प्रतिपथ[1]मास्थिता प्रतिमया प्रतिमाप्रतिमा ।
वरशवरसेनया स्फुटमदर्शि [2]निशानिभया बहुधनसार्थपातविधये द्रुतमागतया ॥२७॥
इह वनदेवता स्थितवतीयमिति प्रणतैः शबरशतैरितिस्ववरदानमयाच्यत सा ।
भगवति वः प्रसादनिरुपद्रविणो द्रविणं यदभिलभेमहि प्रथमकिङ्करका वयकम् ॥२८॥
इति तु वनेचरैः कृतमनोरथकैः पृथुकैः प्रबलतया सुसार्थममितः पुनरापतितैः ।
[3]विनिहतसार्थसार्थकतयान्तमितैः प्रतिमास्थितियुतसंयतास्थितिभुवीदमदर्शि तु तैः ॥२९॥
प्रशमसमाधिभागनशनस्थितिमामरणादुपगतपुण्डरीकाद्[4]दुरुपलुवचण्डतया ।
स्वयमुपपद्य सा दिवमगात्प्रतिमाप्तमृतिर्मधुमथनस्वसा स्खलति न स्थितितः सुजनः ॥३०॥
नखमुखदंष्ट्रिकाविकटकोटिविपाटितया यदपि कलेवरखण्डमुपार्जितधर्मतया ।
मृतिमितया विमुक्तमविमुक्तसमाधितया तदपि कराङ्गुलित्रिकशेषमशेषमभूत् ॥३१॥
रुधिरविलिप्त[5]गुप्तपथभूतलमाकुलिताः सकलमितस्ततस्तदभिवीक्ष्य तदा शबराः ।
धृतिरिह वध्यते वरददेवतया रुधिरे इति विनिधाय दैवतमदस्त्रिकराङ्गुलिभिः ॥३२॥
वनमहिषं निपात्य विषमं विषमाः परितः परुषकिरातका रुधिरमांसवलिप्रकरम् ।
[7]विचकररुन्मग्नमशकमक्षिकमक्षिविषं प्रविततविस्रगन्धदुरभीकृतदिग्वलयम् ॥३३॥

समय, तीक्ष्ण तलवारके समान निर्मल एवं निर्विकल्प चित्तको धारण करनेवाली वह प्रतिमातुल्य आर्यिका किसी मार्गके सम्मुख प्रतिमायोगसे विराजमान हो गयी। उसी समय किसी बहुत धनी संघपर आक्रमण करनेके लिए रात्रिके समान काली भीलोंकी एक बड़ी सेना शीघ्रतासे वहाँ आयी और उसने प्रतिमायोगसे विराजमान उस आर्यिकाको देखा ॥२७॥ 'यह यहाँ वनदेवी विराजमान है' यह समझकर सैकड़ों भीलोंने नमस्कार कर उससे अपने लिए यह वरदान माँगा कि 'हे भगवति ! यदि आपके प्रसादसे निरुपद्रव रहकर हम लोग धन प्राप्त कर सकेंगे तो हम आपके पहले दास होंगे' ॥२८॥ इस प्रकारका मनोरथ कर भीलोंका वह विशाल समूह बड़ी मजबूतीसे चारों ओरसे यात्रियोंके उस संघपर टूट पड़ा और उसे मारकर तथा लूटकर कृतकृत्य होता हुआ जब वह वापस समीपमें आया तो उसने प्रतिमायोगसे स्थित आर्यिकाके खड़े होनेके स्थानपर यह देखा ॥२९॥ जब भील लोग आर्यिकाके दर्शन कर आगे बढ़ गये तब वहाँ एक सिंहने आकर उनपर घोर उपसर्ग शुरू कर दिया। उपसर्ग देख उन्होंने बड़ी शान्तिसे समाधि धारण की और मरण पर्यन्तके लिए अनशनपूर्वक रहनेका नियम ले लिया। तदनन्तर प्रतिमायोगमें ही मरणकर वे स्वर्ग गयीं सो ठीक ही है क्योंकि सज्जन पुरुष अपनी मर्यादासे कभी विचलित नहीं होते ॥३०॥ निरन्तर धर्मका उपार्जन करनेवाली एवं गृहीत समाधिको न छोड़नेवाली उस आर्यिकाका शरीर सिंहके नख, मुख और डाढ़ोंके अग्रभागसे विदीर्ण होनेके कारण यद्यपि छूट गया था तथापि उसके हाथकी तीन अँगुलियाँ वहाँ शेष बच रही थीं यही तीन अँगुलियाँ उन भीलोंको दिखाई दीं ॥३१॥ खूनसे विलिप्त होनेके कारण जिसका मार्ग अन्तर्हित हो गया था ऐसी वहाँकी समस्त भूमिको उन भीलोंने उस समय बड़ी आकुलतासे यहाँ-वहाँ देखा पर कहीं उन्हें वह आर्यिका नहीं दिखी। अन्तमें उन्होंने निश्चय किया कि वरदान देनेवाली वह देवी इस रुधिरमें ही सन्तोष धारण करती है इसलिए हाथकी उन तीन अँगुलियोंको वहीं देवता रूपसे विराजमान कर दिया और बड़े-बड़े जंगली भैंसाओंको मारकर उन विषम एवं क्रूर भीलोंने सब

१. प्रतिपथया स्थिता प्रविशया प्रतिमा । २ रात्रिप्रभातुल्यया—कृष्णया । ३. विनिहित–म., क., ख., ङ. । ४. उपगतसिंहात् । ५. द्रुतपल्लवचण्डतया म. । ६. विलुप्त–म. । ७. विचकररुद्रमग्नशकमक्षिक म.—विचकररुद्रमद्यशशकमक्षिक ग. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुगतगताममूं परमकारुणिकां तपसा जगति जनस्ततः प्रभृति निरागसमत्र[1] जडः ।
वनचरदर्शितेन नु पथा नरकाभिमुखः पिशितवशो निहन्ति हि पशून् महिषप्रभृतीन् ॥३४॥
न हि महिषास्त्रपानविधिका[2] न हि शूलकरा न हि सुरदुर्गतावपि परस्परघातकता ।
रचयति भित्तिमात्रमुपलभ्य कविः कवितां सदसतीं यथा च लिखति स्फुटचित्रकरः ॥३५॥
सदपि दुरीहितं रहसिजं हि परस्य परैः सदसि निगद्यमानमवमावहतीति[3] सताम् ।
मतमिदमस्य तु प्रकटनं जगतामसतो न नरकपातहेतुरिति कस्य सतो वचनम् ॥३६॥
अवितथमित्यमी वितथमेव शठाः कवयः स्वपरमहारयो विदधते विकथाकथनम् ।
परवधकापथेषु भुवि तेषु तथेति जनः सुर-रव-मूढधीः पतति गड्डरिकाकटवत् ॥३७॥
क्व परदयापरः परमधर्मपथो भुवने विधिवदनुष्ठितस्तनुभृतां सुखदः प्रकटः ।
क्व च परघातजो नरकहेतुरधर्मकलिः कुकविविकल्पितः खलकलौ खलु धर्मतया ॥३८॥
प्रकटितलोकपालचरिताः[4] खललोकभयात्तनुभृदनुग्रहं विदधतः परिरक्षणतः ।
समहिषमेषघातमधिदैवमत्र नृपाः विदधति यत्र तत्र कुजनेषु तु कैव कथा ॥३९॥
कथमपि कार्यसिद्धिमुपलभ्य हि दैवघशात्प्रतिनिधिदेवताकृतमिति प्रतिपद्य नरः ।
निजवपुरायुधैः सुविनिकृत्य ददद्रुधिरं परतनुकर्तने भवति वा स कथं सघृणः ॥४०॥

ओर खून एवं मांसकी बलि चढ़ाना शुरू कर दी। इस बलिदानसे वहाँ मक्खियाँ और मच्छर उतराने लगे, वह स्थान आँखोंके लिए विषके समान दिखाई पड़ने लगा। तथा फैली हुई सड़ी बाससे वहाँकी दिशाएँ दुर्गन्धित हो गयीं ॥३२-३३॥ यद्यपि वह आर्यिका परम दयालु थी, निष्पाप थी और तपके प्रभावसे उत्तम गतिको प्राप्त हुई थी तथापि इस संसारमें मांसके लोभी नरकगामी मूर्ख जन भीलोंके द्वारा दिखलाये हुए मार्गसे चलकर उसी समयसे भैंसा आदि पशुओंको मारने लगे ॥३४॥ उत्तम देवगतिकी बात छोड़िए निकृष्ट देवगतिमें भी कोई देव भैंसाओंका रुधिर पान करनेवाले एवं हाथोंमें त्रिशूल धारण करनेवाले नहीं हैं और न उनमें परस्पर एक दूसरेका मारना ही है फिर भी कवि स्फुट चित्रकारके समान जरा-सी भित्तिका आधार पा सत्पुरुषोंको भी दूषण लगानेवाली कविता लिख डालते हैं ॥३५॥

दूसरेकी एकान्तमें होनेवाली सत्य कुचेष्टाका भी सभामें दूसरोंके द्वारा कहा जाना पाप बन्धका कारण है—यह सत्पुरुषोंका मत है। फिर किसीके अविद्यमान दोषको संसारके सामने प्रकट करना नरकगतिका कारण नहीं है यह किस सत्पुरुषका वचन है ? अर्थात् किसीका नहीं ॥३६॥ स्व-परके महावैरी ये धूर्त कवि असत्यको सत्य है ऐसा बताकर विकथाओंका कथन करते हैं और 'ये देवताओंके वचन हैं' ऐसा समझ मूर्ख प्राणी पृथिवीपर, परका वध करना आदि कुमार्गोंमें भेड़िया-धसानके समान गिरते चले जाते हैं ॥३७॥ विधिपूर्वक आराधना करनेपर प्राणियोंको सुख देनेवाला, परजीवोंकी दयामें तत्पर संसारमें प्रकट हुआ परम धर्मका मार्ग कहाँ ? और दुष्ट कलिकालमें कुकवियोंके द्वारा धर्मरूपसे कल्पित, परघातसे उत्पन्न, नरकका कारण अधर्मकी कलह कहाँ ? **भावार्थ**—धर्म और अधर्ममें महान् अन्तर है ॥३८॥ जिन्होंने लोकपालका चरित प्रकट किया है और जो दुष्टजनोंके भयसे रक्षाकर जीवोंपर सदा अनुग्रह करते हैं ऐसे राजा भी जहाँ इस संसार-में देवताओंको लक्ष्य कर भैंसा तथा मेष आदि जन्तुओंका घात करते हैं वहाँ अन्य क्षुद्र मनुष्योंकी तो कथा ही क्या है ? ॥३९॥ भाग्यवश किसी तरह कार्यकी सिद्धिको पाकर 'यह प्रतिनिधिभूत देवता-के द्वारा ही कार्य सिद्ध हुआ है' ऐसा मान जो मनुष्य शस्त्रोंसे अपने ही शरीरको चीर खूनकी बलि देने लगता है वह दूसरोंके शरीरके छेदनेमें दयासहित कैसे हो सकता है ? **भावार्थ**—मनुष्यकी

१. निष्पापाम् । २. महिषास्त्रपानवधिका म. । ३. -मावहतीहि म. । ४. खलु लोकभयात्तनु-म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विपुलसपर्यया प्रणतलोकसुतोषितया विगतविपर्ययत्वगुणया जगतीष्टवरः ।
यदि हि वितीर्यते वरदया वरदेवतया न भवति कश्चिदप्यभिमतेन जनो विकलः ॥४१॥
प्रतिनिधिराश्रयश्च सधनस्य परस्य कृतिः प्रतिदिनदीपतैलवलिपुष्पविधिः परतः ।
अथ च वरं परस्य नियतं प्रददाति वृतं जडजनदेवता जगति हास्यमिदं परमम् ॥४२॥
प्रतिकृतिरर्चिता भुवि कृतार्थजिनाधिपतेरधिगतभक्तिभिर्द्रविणभावविधार्चनया[1] ।
फलति फलं परत्र परिणामविशेषवशादभिमतकल्पवृक्षलतिकेव जनाभिमतम् ॥४३॥
[2]अपथनिपातपातनघनानुमतैरशुभैस्त्रिभिरशुभास्रवो भवति दुर्गतिहेतुरलम् ।
पथि यतिभाषिते स्वकृतकारकतानुमतैर्भवति शुभास्रवः सुगतिहेतुरपीह शुभैः ॥४४॥
मनसि शुभे निजे वचसि वा वपुषि [3]प्रगुणे किमिति न पुण्यमेव जगदेकगतं कुरुते ।
घटयति पापमेव [4]विगुणेस्तु कृतैः करणैर्गुरुतरमत्र कारणमहो गुरुकर्मकृतम् ॥४५॥
तिमिरमरं त्रिमूढिमयमत्र दृढं जगतः स्थगयदलं पवित्रनेत्रमनौषधकम् ।
तदिह जनो दिदृक्षुरपि तत्त्वमतत्त्वमपि प्रतिपदमाकुलः किमु निरूपयितुं क्षमते ॥४६॥

कार्यसिद्धि तो अपने पूर्वकृत कर्मके अनुसार होती है परन्तु देवताकी प्रतिनिधि रूप मूर्तिकी उपासना करनेवाला मनुष्य उस सिद्धिको उस मूर्तिके द्वारा किया हुआ मानता है इसलिए प्रसन्न होकर शस्त्रोंसे ही अंगोंको छेदकर खूनकी बलि देने लगता है। जो अपने ही अंगोंको छेद डालता है उसे दूसरेके अंग छेदनेमें दया कहाँ हो सकती है ? ॥४०॥ नम्रीभूत मनुष्योंने बहुत बड़ी पूजासे जिसे अच्छी तरह सन्तुष्ट कर लिया है और जिसका विद्वेषरूप विपरीत गुण दूर हो गया है ऐसी वर देनेवाली उत्कृष्ट देवीके द्वारा यदि संसारमें इष्ट वर दिया जाता है तो किसी भी मनुष्यको इष्ट सामग्रीसे रहित नहीं होना चाहिए। **भावार्थ**—जब सभी लोग पूजाके द्वारा देवताको सन्तुष्ट कर उससे इष्ट वरदान प्राप्त कर सकते हैं तब सभीको इष्ट वस्तुओंसे भरपूर होना चाहिए ॥४१॥ जिसकी मूर्ति और मन्दिरका निर्माण अन्य धनवान् मनुष्यका कार्य है, तथा जिसकी प्रतिदिन काम आनेवाली दीप, तेल, बलि, पुष्प आदिकी विधि सदा दूसरोंसे पूर्ण होती है वह मूर्खजनोंकी देवता दूसरोंके लिए मांगा हुआ वरदान निश्चित रूपसे देती है यह संसारमें बड़ी हँसीकी बात है। **भावार्थ**—जो अपनी मूर्ति और मन्दिर स्वयं नहीं बना सकती तथा प्रतिदिन उपयोगमें आनेवाले दीपक, तेल, नैवेद्य और फूल आदिके लिए जिसे दूसरोंका मुँह देखना पड़ता है वह दूसरोंके लिए क्या वरदान देगी ? ॥४२॥ पृथिवीपर भक्तजनों द्वारा द्रव्य, भाव, पूजासे पूजी हुई कृतकृत्य जिनेन्द्र भगवान्‌की प्रतिमा, अपने-अपने विशिष्ट परिणामोंके अनुसार परभवमें इष्ट कल्पवृक्षकी लताके समान मनुष्योंके इष्ट मनोरथरूप फलको फलती है ॥४३॥ कुमार्गमें स्वयं प्रवृत्त होना, दूसरेको प्रवृत्त कराना और प्रवृत्त होते हुए को अनुमति देना इन तीन अशुभ प्रवृत्तियोंसे अशुभ कर्मोंका आस्रव होता है जो कि दुर्गतिका मुख्य कारण है और मुनिराजके द्वारा बताये हुए मार्गमें स्वयं प्रवृत्त होना, दूसरेको प्रवृत्त कराना और प्रवृत्त होते हुए को अनुमति देना इन तीन शुभ प्रवृत्तियोंसे शुभ कर्मोंका आस्रव होता है जो कि सुगतिका मुख्य कारण है ॥४४॥ इस प्रकार जब अपने ही शुभ मन, शुभ वचन और शुभ कायसे पुण्यबन्ध होता है और वे शुभ मन आदि अपने अधीन हैं तब संसारके समस्त प्राणी एक पुण्य कर्मको ही क्यों नहीं करते ? किन्तु उसके विपरीत किये हुए निरर्थक कार्योंसे पाप ही क्यों करते हैं ? अहो ! जान पड़ता है कि इसमें पूर्वबद्ध बहुत भारी कर्मोंके द्वारा किया हुआ बहुत बड़ा कारण है ॥४५॥ अहो ! देवमूढ़ता, शास्त्रमूढ़ता और गुरु-

१. विधार्थतया म., विधार्थनया ग. । २. अपथनिघातनिघातन–म., ग. । ३. प्रगुणो म. । ४. विगुणैः सकृतैः म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतिनिचिताग्निवायुजलभूमिलतातरुभिः क्षितिरपचेतनैश्च गृहकल्पितदैवतकैः ।
रविविधुतारकाग्रहगणैर्जननेत्रपथैर्गगनमतोऽस्तु मूढिरिह कस्य जनस्य न वा ॥४७॥
सदसदनेकमेकमथ नित्यमनित्यमपि स्वकपररूपभेदमपि शेषमशेषपरम् ।
गुणगुणिकार्यकारणभिदाद्यखिलात्मतया जगदिदमित्यमी नियमिनो दृढमूढतया ॥४८॥
यदि च परस्परव्युदसनव्यसनाः स्युर्मृषा स्फुटमितरेतरेक्षणतया नमृषा हि तथा ।
निगमनसंग्रहव्यवहृतिप्रमुखाश्च नयाः सकलनयप्रमाणपरिनिश्चितवस्तुनि याः ॥४९॥
[1]पुरुषपुरस्सरेऽभिरुचिरन्यनिवृत्तिरुचेर्मुनिपति[2]शासनाभिनिरतस्य जनस्य हि सा ।
सुगतिमयत्नतो विशति सिद्धिसुखान्वयिनीं[3] शुभमखिलार्थगोचरमुदारचरित्रमपि ॥५०॥
व्रतगुणशीलराशिरतिघोरतपो विविधं विमलमिदं यतो भवति दर्शनशुद्धियुतम् ।
[4]जननजरामृतिक्षयकरीं सुखदां भुवि तां भजतु जनस्ततो जिनगुणग्रहणाभिरता ॥५१॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ दुर्गोत्पत्तिवर्णनो
नामैकोनपञ्चाशः सर्गः ॥४९॥

मूढ़ता इन तीन मूढ़ताओंरूप अन्धकारका समूह बहुत प्रबल है, वह जगत्के जीवोंके पवित्र नेत्रको अच्छी तरह आच्छादित कर रहा है और इसकी कोई ओषधि भी नहीं है। इसी अन्धकारके कारण देखनेका इच्छुक मनुष्य भी पद-पदपर आकुल होता हुआ तत्त्व और अतत्त्वको देखनेमें क्या समर्थ हो पाता है ? अर्थात् नहीं हो पाता ॥४६॥ यह पृथिवी अग्नि, वायु, जल, भूमि, लता और वृक्षोंसे तथा मन्दिरोंमें कल्पित अचेतन देवोंसे व्याप्त है और आकाश मनुष्योंके नेत्रगोचर सूर्य, चन्द्र, तारा तथा ग्रहोंके समूहसे व्याप्त है इसलिए इनके विषयमें किसे मूढता नहीं होगी ? **भावार्थ**—पृथिवी और आकाश कल्पित देवताओंसे भरे हुए हैं इसलिए विवेकसे विचारकर यथार्थ देवका निर्णय करना चाहिए ॥४७॥ यह संसार कथंचित् सत् है, कथंचित् असत् है, कथंचित् एक है, कथंचित् अनेक है, कथंचित् नित्य है, कथंचित् अनित्य है, कथंचित् स्वरूप है, कथंचित् पररूप है, कथंचित् सान्त है, कथंचित् अनन्त है, और गुण-गुणी तथा कार्य-कारणके भेदसे अनेक रूप है फिर भी ये संसारके प्राणी गाढ़ मूढ़ताके कारण एकान्तवादमें निमग्न हैं ॥४८॥ समस्त नयों और प्रमाणोंके द्वारा निश्चित वस्तुके विषयमें जो नैगम, संग्रह तथा व्यवहार आदि प्रमुख नय माने गये हैं वे यदि परस्परमें एक दूसरेका निषेध करते हैं तो मिथ्या हैं और परस्पर एक दूसरेपर दृष्टि रखते हैं तो समीचीन हैं ॥४९॥ अन्य देवताओंकी रुचिसे रहित एवं जिनेन्द्र भगवान्के शासनमें निरत मनुष्यकी जो जीव आदि तत्त्वोंमें प्रगाढ़ श्रद्धा है उसकी वही श्रद्धा बिना किसी प्रयत्नके मोक्ष-सुखसे सम्बन्ध जोड़नेवाली सुगति अथवा सम्यग्ज्ञानको और शुभ एवं समस्त पदार्थोंको विषय करनेवाले उत्कृष्ट चारित्रको भी प्राप्त होती है। **भावार्थ** - मनुष्यकी श्रद्धारूप परिणति ही सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्रकी प्राप्तिका कारण है ॥५०॥ यह व्रत गुण और शीलकी राशि तथा नाना प्रकारका अत्यन्त घोर तप चूँकि दर्शनकी शुद्धिसे युक्त होनेपर ही निर्मल होता है इसलिए जिनेन्द्र भगवान्के गुण-ग्रहण करनेमें तत्पर मनुष्यको चाहिए कि वह जन्म, बुढ़ापा और मृत्युका क्षय करनेवाली एवं सुखदायी दर्शनकी शुद्धिका आराधन करे—अपने सम्यग्दर्शनको निर्मल बनावे ॥५१॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंश पुराणमें दुर्गाकी उत्पत्तिका वर्णन करनेवाला उनचासवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥४९॥

---

१. पुरुषपुरस्सरोभि- म. । २. मुनिपतिशासनाशासनाभिरतस्य म. । ३. सिद्धिसुखान्वयिनं म., क. ।
४. भवपारमपारमनन्तं यियासु च चेन्मनः म., ङ. । अस्मिन् पाठे छन्दोभङ्गः अनन्तपदस्य वैयर्थ्यं च वर्तते ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पञ्चाशत्तमः सर्गः

इतः [1]केनापि वणिजा ह्यनर्घ्यैर्मणिराशिभिः । जरासन्धो नृपो दृष्टः [2]स्वक्रयाणकहेतुना ॥१॥
दृष्ट्वा कस्मात्समानीताः प्रोवाच मगधेश्वरः । [3]द्वारवत्याः प्रभो एते यत्र राजाऽच्युतो बली ॥२॥
यादवेन्द्रशिवादेव्योर्नेमिस्तीर्थकरोऽभवत् । मासान् पञ्चदश तत्र रत्नवृष्टिः कृता सुरैः ॥३॥
यादवानां च माहात्म्यं श्रुत्वा राजगृहाधिपः । वणिजः तार्किकेभ्यश्च जातः कोपारुणेक्षणः[4] ॥४॥
यदुवृद्धिमिति श्रुत्वा श्रुतवृद्धिविलोचनम् । प्रणम्य गणिनं भूपः श्रेणिकोऽपृच्छदित्यसौ ॥५॥
मणिराशिष्विवाम्भोधौ महागुणमरीचिषु । प्रख्यातेष्वखिले लोके यादवेष्वतिभूरिषु ॥६॥
अनेकाहवनिर्व्यूढदृढवीर्ये हरौ श्रुते । किमचेष्टत राजासौ [5]भगवन्मगधाधिपः ॥७॥
ततो गणभृदाचख्यावनयोर्नरमुख्ययोः । वृत्तं श्रेणिकभूपाय शुश्रूषावहितात्मने ॥८॥
बुद्धवार्तो जरासन्धः सन्धिं प्रति पराङ्मुखः । प्रमुख्यैर्मन्त्रिभिः सत्रा मन्त्रमारमते स्म[6] सः ॥९॥
उपेक्षिताः कुतो हेतोर्मन्त्रिणो [7]भणतारयः । वार्धौ प्रवृद्धसंतानास्तरङ्गा इव भङ्गुराः ॥१०॥
मन्त्रिणो हि प्रभोश्चक्षुर्निर्मलं चारचक्षुषः । ते कथं स्वामिनं स्वं च वञ्चयन्ति पुरः स्थिताः ॥११॥
यदि नाम महैश्वर्यप्रमत्तेन [8]मया द्विषः । नालक्ष्यन्त प्रतन्वाना युष्माभिस्तु कथं तु ते ॥१२॥
नोच्छिद्येरन्महोद्योगैर्जातमात्रा यदि द्विषः । दुःखयन्ति दुरन्तास्ते व्याधयः कुपिता इव ॥१३॥

इधर कोई एक वणिक् अपना खरीदा हुआ माल बेचनेके लिए बहुत-से अमूल्य मणि लेकर राजा जरासन्धसे मिला ॥१॥ उन मणियोंको देखकर राजा जरासन्धने उससे पूछा कि ये मणि तुम कहाँसे लाये हो ? इसके उत्तरमें वणिक्ने कहा कि हे स्वामिन् ! ये मणि उस द्वारिकापुरीसे आये हैं जहाँ अत्यन्त पराक्रमी राजा कृष्ण रहते हैं ॥२॥ यादवोंके स्वामी समुद्रविजय और उनकी रानी शिवा देवीके जब नेमिनाथ तीर्थंकर उत्पन्न हुए थे तब पन्द्रह मास तक देवोंने रत्न-वृष्टि की थी ॥३॥ उन्हीं रत्नोंमें-से ये रत्न लाया हूँ। वणिक् तथा मन्त्रियोंसे इस प्रकार यादवोंका माहात्म्य सुनकर जरासन्ध क्रोधसे लाल-लाल नेत्रोंका धारक हो गया ॥४॥ इस प्रकार यादवोंकी वृद्धि सुनकर राजा श्रेणिकने श्रुतज्ञान रूपी नेत्रके धारक गौतम गणधरको नमस्कार कर पूछा कि हे भगवन् ! महागुण रूपी किरणोंसे सुशोभित, समुद्रमें मणियोंकी राशिके समान समस्त लोकमें प्रख्यात अत्यधिक यादवोंमें जब जरासन्धने अनेक युद्धोंमें जिनका दृढ़ पराक्रम परिपूर्णता-को प्राप्त हो चुका था ऐसे कृष्णका नाम सुना तब उसकी क्या चेष्टा हुई ? सो कृपा कर कहिए ॥५-७॥ तदनन्तर गौतम गणधर, श्रवण करनेके लिए उत्सुक राजा श्रेणिकके लिए दोनों नर-श्रेष्ठ—जरासन्ध और कृष्णका चरित इस प्रकार कहने लगे—॥८॥

यादवोंका समाचार जानकर जरासन्ध सन्धिसे विमुख हो गया और मुख्य मन्त्रियोंके साथ मन्त्र करने लगा ॥९॥ उसने पूछा कि हे मन्त्रियो ! बताओ तो सही समुद्रमें बढ़ती हुई तरंगोंके समान भंगुर शत्रु आजतक उपेक्षित कैसे रहे आये ? ॥९-१०॥ गुप्तचर रूपी नेत्रोंसे युक्त राजाके मन्त्री ही निर्मल चक्षु हैं फिर वे सामने खड़े रहकर स्वामीको तथा अपने-आपको क्यों धोखा देते हैं ? ॥११॥ यदि महान् ऐश्वर्यसे मत्त रहनेवाले मैंने उन शत्रुओंको नहीं देखा तो आप लोगोंसे अदृष्ट कैसे रह गये ? आप लोगोंने उन्हें क्यों नहीं देखा ? ॥१२॥ यदि शत्रु उत्पन्न होते

१. केनचिद्वणिजा अनर्घै०, म., ख., घ. । २. स्वक्रियाणक—म. । ३. 'नारायणः क्षमां शास्ति द्वारावत्याः प्रभो बली' म. । ४. कोपारुणो दृशोः ग. । ५. भगवान्मगधाधिपः । ६. -मारम्यते स्म सः म. । ७. भरतारयः म. । ८. महाद्विषः म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कंसं जामातरं हत्वा भ्रातरं चापराजितम् । प्रविष्टाः शरणं दुष्टा यादवा यादसांपतिम्[1] ॥१४॥
यद्यप्यनवगाह्याब्धिगम्भीरोदरमाश्रिताः । उपायानायनिःकृष्टा वध्यास्ते मे झषा यथा ॥१५॥
[2]द्वारिकामधितिष्ठन्तः संतिष्ठन्ते कुतोऽभयाः । तावदेव हि ते यावन्न मे कोपानलो ज्वलेत् ॥१६॥
इयन्तं कालमज्ञाता ज्ञातिभिः सह सुस्थिताः । ज्ञातानामधुना तेषां सुस्थितिर्मद्द्विषां कुतः ॥१७॥
साम्नश्चोपप्रदानस्य न ते स्थानं कृतागसः । ततो युष्माभिरेकान्तात्स्थाप्यतां भेददण्डयोः ॥१८॥
दण्डोपायप्रधानं तं स्वामिनं मन्त्रिणस्ततः[3] । प्रशाम्य प्रणताः प्रोचुः प्रसादपदवीस्थिताः ॥१९॥
आकर्ण्यतां यथा नाथ विदन्तोऽपि वयं द्विषाम् । द्वारिकायां [4]महावृद्धिं कालयापनया स्थिताः ॥२०॥
यादवान्वयसंभूताः स्वर्भुवामपि [5]दुर्जयाः । श्रीनेमिर्वासुदेवश्च बलदेवश्च ते त्रयः ॥२१॥
स्वर्गावतारकाले यः पूजितो वसुवृष्टिभिः । सुरेन्द्रैरभिषिक्तश्च जिनो जन्मनि [6]मन्दरे ॥२२॥
स कथं युधि जीयेत भवतामररक्षितः । युक्तेनापि समस्तेन राजकेन भुवस्तले ॥२३॥
बलकेशवयोश्चापि सामर्थ्यं भवता न किम् । तच्छ्रुतं बहुयुद्धेषु शिशुपालवधादिषु ॥२४॥
यत्पक्षाः पाण्डवाश्चण्डाः प्रतापार्जितकीर्तयः । विद्याधराश्च बहवो वैवाहिकपथस्थिताः ॥२५॥
कोट्यो यत्र कुमाराणां प्रसिद्धा रणशालिनाम् । स्वामिन्नर्धचतुर्थास्ते जीयन्ते यादवाः कथम् ॥२६॥
अन्तरस्थानप्यपां पत्युस्तान् कदाचिदपेक्षया । मद्गीता इति मामंस्था नयमार्गविदो यदून् ॥२७॥

ही महान् प्रयत्नपूर्वक नष्ट नहीं किये जाते हैं तो वे कोपको प्राप्त हुई बीमारियोंके समान दुःख देते हैं और उनका अन्त अच्छा नहीं होता ॥१३॥ ये दुष्ट यादव मेरे जमाई कंस और भाई अपराजितको मारकर समुद्रकी शरणमें प्रविष्ट हुए हैं ॥१४॥ यद्यपि वे प्रवेश करनेके अयोग्य समुद्रके मध्यभागमें स्थित हैं तथापि उपाय रूपी जलसे खींचकर मछलियोंके समान मेरे वध्य हैं ॥१५॥ द्वारिकामें रहते हुए वे निर्भय क्यों हैं ? अथवा वे तभीतक निर्भय रह सकते हैं जबतक कि मेरी क्रोधाग्नि प्रज्वलित नहीं हुई है ॥१६॥ इतने समयतक मुझे उनका पता नहीं था इसलिए अपने कुटुम्बीजनोंके साथ वे सुखसे रहे आये पर अब मुझे पता चल गया है इसलिए उनका सुखपूर्वक रहना कैसे हो सकता है ? ॥१७॥ तीव्र अपराध करनेवाले वे साम और दानके स्थान नहीं हैं इसलिए आपलोग एकान्तरूपसे उन्हें भेद और दण्डके ही पक्षमें रखिए ॥१८॥

तदनन्तर प्रधान रूपसे दण्डको ही उपाय समझनेवाले स्वामी जरासन्धको शान्त कर प्रसादके मार्गमें स्थित मन्त्रियोंने नम्रीभूत हो कहा कि हे नाथ ! हमलोग शत्रुओंकी द्वारिकामें होनेवाली महा वृद्धिको जानते हुए भी समय व्यतीत करते रहे इसका कारण सुनिए ॥१९-२०॥ यादवोंके वंशमें उत्पन्न हुए श्री नेमिनाथ तीर्थंकर श्री कृष्ण और बलदेव ये तीन महानुभाव इतने बलवान् हैं कि मनुष्योंकी तो बात ही क्या देवोंके लिए भी उनका जीतना कठिन है ॥२१॥ स्वर्गावतारके समय जो रत्नोंकी वृष्टिसे पूजित हुआ था, जन्मके समय इन्द्रोंने सुमेरु पर्वतपर जिसका अभिषेक किया था और देव जिसकी सदा रक्षा करते हैं वह नेमि जिनेन्द्र युद्धमें आपके द्वारा कैसे जीता जा सकता है अथवा पृथिवी तलके समस्त राजा भी इकट्ठे होकर उसे कैसे जीत सकते हैं ? ॥२२-२३॥ शिशुपालके वधको आदि लेकर जो अनेक युद्ध हुए उनमें क्या आपने बलदेव और कृष्णकी उस लोकोत्तर सामर्थ्यको नहीं सुना ? ॥२४॥ प्रतापसे कीर्तिको उपार्जित करनेवाले महातेजस्वी पाण्डव तथा विवाह सम्बन्धसे अनुकूलता दिखलानेवाले अनेक विद्याधर इस समय जिनके पक्षमें हैं ॥२५॥ और जिनके साढ़े तीन करोड़ कुमार रणविद्यामें कुशल हैं वे यादव कैसे जीते जा सकते हैं ? ॥२६॥ नय मार्गके जानकार

१. प्रति म. । २. द्वारिकावधि तिष्ठन्तः म., ग. । ३. मन्त्रिणस्तथा म. । ४. महावृद्धिः म. । ५. दुर्जयां म. । ६. मन्दिरे म. । मन्दरे = मेरौ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दैवकालबलोपेता देवताकृतरक्षणाः । सुप्तव्याघ्रोपमा देव ! तावत्तिष्ठन्तु यादवाः ॥२८॥
आस्महे वयमप्यत्र कालयापनया प्रभो ! । स्वाज्ञ स्वपर कालानां याप्यावस्था हि शस्यते ॥२९॥
अनयावस्थयासीने त्वयि तेषां प्रकोपिनाम् । द्विषां प्रतिविधानाय प्रतिपद्यस्व पौरुषम् ॥३०॥
इत्यादि मन्त्रिभिः पथ्यं तथ्यं विज्ञापितं प्रभुः । नाग्रहीत्क्षयकाले हि ग्राही ग्राहं न मुञ्चति ॥३१॥
सचिवानपकर्ण्याशु प्रकोपाय नृपो द्विषाम् । दूतं सोऽजितसेनाख्यं प्राहिणोद्द्वारिकां पुरीम् ॥३२॥
स प्राच्यानां प्रतीच्यानामपाच्यानां च भूभृताम् । उदीच्यानामगस्थानां मध्यदेशाधिवासिनाम् ॥३३॥
चतुरङ्गबलेशानां शासनानतिलङ्घिनाम् । दूतानजीगमत्क्षिप्रमायान्त्विति पराक्रमी ॥३४॥
दूतदर्शनमात्रेण कर्णदुर्योधनादयः । ते संप्राप्ता जरासंधं सत्यसंधाहितैषिणः ॥३५॥
नृपैस्तैरनुयातोऽसौ तनयाद्यैर्महाबलैः । निमित्तैर्वार्यमाणोऽपि प्रतस्थेऽरिजिगीषया ॥३६॥
स दूतोऽजितसेनोऽपि स्वामिकार्यहितः पुरीम् । सुद्वारां द्वारिकां प्राप सुकृतीव दिवं कृती ॥३७॥
प्रविश्य नगरीं रम्यामनेकाद्भुतसंकुलाम् । दृश्यमानो जनैः पौरैराससाद नृपालयम् ॥३८॥
अशेषयादवाकीर्णां भोजपाण्डवसंयुताम् । सभां स प्राविशद्विष्णोः प्रतीहारनिवेदितः ॥३९॥
कृतप्रणतिरध्यास्य दापितासनमग्रतः । वक्तुं प्रारभत स्वामिबललाभावलेपतः ॥४०॥
आकर्ण्यतां समाधाय मनः सकलयादवैः । यया शास्ति महाराजो मागधः परमेश्वरः ॥४१॥

यदु किसी समय किसी अपेक्षा समुद्रके मध्य जाकर रहे थे। वे 'हमसे भयभीत हैं' ऐसा मत समझिए ॥२७॥ इसलिए हे देव ! जो दैव और कालके बलसे सहित हैं, देव जिनकी रक्षा करते हैं और जो सोते हुए सिंहके समान हैं ऐसे यादव उधर द्वारिकामें सुखसे रहें और इधर हम लोग भी समय व्यतीत करते हुए सुखसे रहें क्योंकि हे उत्तम आज्ञाके धारक ! प्रभो ! जिसमें अपना और परका समय सुखसे व्यतीत हो वही अवस्था प्रशंसनीय कही जाती है ॥२८-२९॥ आपके इस अवस्थासे रहनेपर भी यदि वे क्रोध करते हैं तो उनका प्रतिकार करनेके लिए पुरुषार्थको स्वीकृत करो ॥३०॥ इसे आदि लेकर मन्त्रियोंने यद्यपि हितकारी एवं सत्य निवेदन किया तथापि जरासन्धने उसे कुछ भी ग्रहण नहीं किया सो ठीक ही है क्योंकि विनाशके समय हठी मनुष्य अपना हठ नहीं छोड़ता ॥३१॥

राजा जरासन्धने मन्त्रियोंको अनसुना कर शत्रुओंको शीघ्र ही कुपित करनेके लिए अजितसेन नामक दूतको द्वारिकापुरी भेजा ॥३२॥ पराक्रमी राजा जरासन्धने चतुरंग सेनाओंके स्वामी, एवं आज्ञाका उल्लंघन न करनेवाले पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर दिशाओं, पर्वतों एवं मध्यदेशके निवासी राजाओंको 'आप लोग जल्दी आइए' यह कहकर दूत भेजे ॥३३-३४॥ दूतको देखते ही सत्यप्रतिज्ञ एवं हितको चाहनेवाले कर्ण, दुर्योधन आदि राजा, जरासन्धके पास आ पहुँचे ॥३५॥ उक्त राजा तथा महाबलवान् पुत्र आदि कुटुम्बीजन जिसके पीछे-पीछे चल रहे थे ऐसा जरासन्ध, खोटे निमित्तोंसे रोके जानेपर भी शत्रुओंको जीतनेकी इच्छासे चल पड़ा ॥३६॥

उधर जिस प्रकार पुण्य कार्य करनेवाला कुशल मनुष्य स्वर्ग जा पहुँचता है उसी प्रकार स्वामीके कार्यमें लगा हुआ अजितसेन दूत भी उत्तमोत्तम द्वारोंसे युक्त द्वारिका नगरीमें जा पहुँचा ॥३७॥ अनेक आश्चर्यकारी रचनाओंसे व्याप्त सुन्दर द्वारिकापुरीमें प्रवेशकर नगरवासीजनोंके द्वारा देखा गया वह दूत क्रम-क्रमसे राजमहलमें पहुँचा ॥३८॥ द्वारपालके द्वारा सूचना देनेपर उसने समस्त यादवोंसे व्याप्त एवं भोज और पाण्डवोंसे युक्त श्रीकृष्णकी सभामें प्रवेश किया ॥३९॥ प्रणाम करनेके बाद आगे दिलाये हुए आसनपर बैठकर उसने स्वामीके बलकी प्राप्तिसे उत्पन्न घमण्डसे इस प्रकार बोलना शुरू किया ॥४०॥

वह बोला कि राजाधिराज महाराज जरासन्ध जो आज्ञा देते हैं उसे समस्त यादव मन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यूयमेव स्फुटं ब्रूत किमनिष्टं कृतं मया । युष्माकं येन साशङ्काः प्रविष्टाः सागरोदरम् ॥४२॥
सापराधतया यूयं यद्यप्युद्भूतभीतयः । दुर्गं श्रितास्तथाप्यस्मन्नभयं नमतैत्य माम् ॥४३॥
अथ दुर्गबलाद्यूयं तिष्ठतानतिवर्जिताः । एषोऽहं सागरं पीत्वा बलैः कुर्वे कदर्थनाम् ॥४४॥
अज्ञातावस्थितीनां च कालदेशबलं बलम् । अधुना ज्ञातवार्तानां कालदेशबलं कुतः ॥४५॥
वचोहरवचः श्रुत्वा कुपिता निखिला नृपाः । कृष्णादयो जगुस्तत्र भ्रूकुटीकुटिलाननाः ॥४६॥
आयास्यासन्नकालोऽसौ समस्तबलसंयुतः । रणातिथ्यं ददामोऽस्मै सङ्ग्रामोत्कण्ठिता वयम् ॥४७॥
इत्युक्त्वा स विसृष्टस्तै रूक्षवाग्वज्रताडितः । गत्वा स्वस्वामिने [1]पूर्वं निवेद्य कृतितां गतः ॥४८॥
विमलामलशार्दूलाः समुद्रविजयं ततः । मन्त्रिणो मन्त्रनिपुणाः संमन्त्र्येति व्यजिज्ञपन् ॥४९॥
शान्तये साम लोकस्य[2] स्यात्स्वपक्षविपक्षयोः । मागधेन समं साम तस्माद्राजन् प्रयुञ्ज्महे ॥५०॥
ज्ञातिवर्गः समस्तोऽयं कुमारनिकरादिकः । अपायबहुले युद्धे संशयः कुशलं प्रति ॥५१॥
सन्ति योधा यथास्माकममोघशरवर्षिणः । साधनो मागधस्यापि तथैव भुवि विश्रुतः ॥५२॥
तदेकस्यापि हि ज्ञातेरपायो रणमूर्धनि । यथा शत्रोस्तथास्माकमतिदुःखकरो भवेत् ॥५३॥
अतो विश्वजनीनार्थं साम तावत्प्रशस्यते । तदर्थं प्रेष्यतां दूतो [3]मागधान्तिकमस्मयात् ॥५४॥

स्थिर कर सुनें ॥४१॥ उनका कहना है कि आप ही लोग स्पष्ट बताओ कि मैंने आपका क्या अनिष्ट किया है ? जिससे कि भयभीत हो आप लोग समुद्रके मध्यमें जा बसे हो ॥४२॥ यद्यपि अपराधी होनेके कारण भयभीत हो तुम लोगोंने दुर्गका आश्रय लिया है तथापि मुझसे तुम्हें भय नहीं है, तुम लोग आकर मुझे नमस्कार करो ॥४३॥ यदि दुर्गका बल पा तुम लोग बिना नमस्कार किये यहाँ रहोगे तो यह मैं समुद्रको पीकर सेनाओंके द्वारा तुम्हारी अभी हाल दुर्दशा कर दूँगा ॥४४॥ जब-तक तुम्हारे यहाँ रहनेका पता नहीं था तभी तक तुम्हें काल और देशका बल, बल था पर आज पता चल जानेपर काल और देशका बल कैसे रह सकता है ? ॥४५॥

दूतके उक्त वचन सुनकर कृष्ण आदि समस्त राजा कुपित हो उठे और भौंहोंसे मुखको कुटिल करते हुए कहने लगे कि जिसकी मृत्यु निकट आ पहुँची है ऐसा तुम्हारा राजा समस्त सेनाओंके साथ आ रहा है सो युद्धके द्वारा हम उसका सत्कार करेंगे। हम लोग संग्रामके लिए उत्कण्ठित हैं ॥४६-४७॥ इस प्रकार कहकर यादवोंने दूतको विदा किया। वह उनके रूक्ष वचनरूपी वज्रसे ताड़ित होता हुआ द्वारिकासे चलकर अपने स्वामीके पास गया और सब समाचार कहकर कृतकृत्यताको प्राप्त हुआ ॥४८॥ तदनन्तर दूतके चले जानेपर मन्त्र करनेमें निपुण विमल, अमल और शार्दूल नामक मन्त्रियोंने सलाह कर राजा समुद्रविजयसे इस प्रकार निवेदन किया ॥४९॥

हे राजन् ! क्योंकि साम, स्वपक्ष और परपक्षके लोगोंको शान्तिका कारण होगा इसलिए हम लोग जरासन्धके साथ सामका ही प्रयोग करें। यह जो कुमारोंका समूह आदि है वह सब स्वजनोंका समूह है। अपायबहुल युद्धमें इन सबकी कुशलताके प्रति सन्देह है ॥५०-५१॥ जिस प्रकार हमारी सेनामें अमोघ बाणोंकी वर्षा करनेवाले योद्धा हैं उसी प्रकार जरासन्धकी सेना भी पृथिवीमें प्रसिद्ध है ॥५२॥ युद्धके अग्रभागमें यदि एक भी स्वजन की मृत्यु हो जायेगी तो वह जिस प्रकार शत्रुके लिए दुःखका कारण होगी उसी प्रकार हमारे लिए भी दुःखका कारण हो सकती है ॥५३॥ इसलिए सबकी भलाईके लिए साम ही प्रशंसनीय उपाय है। अतः अहंकारको छोड़कर साम-शान्तिके लिए जरासन्धके पास दूत भेजा जाये ॥५४॥ हाँ, सामके द्वारा शान्त करनेपर भी

१. पूर्वी म. । २. दण्डस्य म. । ३. माधवान्तिक-म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मागधः शाम्यमानोऽपि साम्ना यदि न शाम्यति । तदा तदुचितं कुर्मः को दोषः सामयोजने ॥५५॥
इति मन्त्रिभिरामन्त्र्य राजा विज्ञापितस्तदा । को दोष इति संमन्त्र्य लोहजङ्घमजीगमत् ॥५६॥
स दक्षः शौर्यसंपन्नः कुमारो नीतिलोचनः । जगाम निजसैन्येन जरासन्धेन सन्धये ॥५७॥
पूर्वमालवमासाद्य कृतसैन्यनिवेशनः । प्राप्तौ कान्तारभिक्षार्थं कान्तारे सार्थयोगिनौ ॥५८॥
मासोपवासिनौ दृष्ट्वा तिलकानन्दनन्दकौ । प्रतिगृह्यान्नपानाद्यैः पञ्चाश्चर्याणि लब्धवान् ॥५९॥
तीर्थं देवावताराख्यं ततः प्रभृति भूतले । भूतं भूतसहस्राणां पापोपशमकारणम् ॥६०॥
दूतो गत्वा जरासन्धं संधानं प्रत्यसंमुखम् । प्रत्यबोधयदेकान्ते प्रतिबोधनपण्डितः ॥६१॥
लोहजङ्घवचोऽत्यन्तप्रसन्नः प्रतिपन्नवान् । स सन्धानं जरासन्धः षण्मासावधिकं ततः ॥६२॥
दूतः पूजां नृपात्प्राप्य स प्राप्य द्वारिकां ततः । समुद्रविजयाद्यर्थं निवेद्य स्थितवान् कृति ॥६३॥
साम्येनैव ततो वर्षे साभग्रीप्रत्यपेक्षया । पूर्णे [1]पूर्णमहासन्धौ महासामन्तसंततिः[2] ॥६४॥
जरासन्धोऽत्र संप्राप्तः सैन्यसागररुद्धदिक् । कुरुक्षेत्रं महाक्षत्रप्रधानप्रधनोचितम् ॥६५॥
पूर्वमभ्येत्य तत्रैव केशवोऽपरसागरः । तस्थावापूर्यमाणः सन् वाहिनीनिवहैर्निजैः ॥६६॥
तत्रापाच्या नृपाः केचिदुदीच्याश्चापरान्तिकाः । संबन्धिनः सृता विष्णुं सकलैः स्वबलैर्युताः ॥६७॥

यदि जरासन्ध शान्त नहीं होता है तो हम लोग फिर उसके अनुरूप कार्य करेंगे। इस प्रकार साम उपायके अवलम्बन करनेमें क्या दोष है ? ॥५५॥

इस प्रकार मन्त्र कर मन्त्रियोंने जब राजा समुद्रविजयसे कहा तो उन्होंने उत्तर दिया कि 'क्या दोष है ?' दूत भेजा जाये। इस प्रकार सलाह कर उन्होंने लोहजंघ कुमारको भिजवा दिया ॥५६॥ कुमार लोहजंघ बहुत ही चतुर, शूर-वीर और नीतिरूपी नेत्रका धारक था। वह अपनी सेना ले जरासन्धके साथ सन्धि करनेके लिए चला ॥५७॥ पूर्वमालव देशमें पहुँचकर उसने वहांके वनमें अपनी सेनाका पड़ाव डाला, वहाँ साथ-साथ विचरनेवाले तिलकानन्द और नन्दन नामक दो मुनिराज आये। वे दोनों मुनि मासोपवासी थे और 'वनमें आहार मिलेगा तो लेंगे अन्यथा नहीं' यह नियम ले वनमें विहार कर रहे थे। उन्हें देख कुमार लोहजंघने उन्हें पडगाह-कर आहार दिया और उसके फलस्वरूप पंचाश्चर्य प्राप्त किये ॥५८–५९॥ उसी समयसे वह स्थान पृथिवीतलपर 'देवावतार' नामक तीर्थ बन गया और हजारों प्राणियोंके पाप शान्त होनेका कारण हो गया ॥६०॥

जरासन्ध यद्यपि सन्धि करनेके पक्षमें नहीं था तथापि समझानेमें चतुर दूत लोहजंघने जाकर उसे एकान्तमें समझाया ॥६१॥ लोहजंघके वचनोंसे जरासन्ध बहुत प्रसन्न हुआ और उसने छह माह तकके लिए सन्धि स्वीकृत कर ली ॥६२॥ तदनन्तर राजा जरासन्धसे सम्मान प्राप्त कर लोहजंघ द्वारिका वापस लौट आया ओर समुद्रविजय आदिके लिए सब समाचार सुनाकर कृतकृत्य हो सुखसे रहने लगा ॥६३॥

तदनन्तर युद्धकी तैयारीका ध्यान रख यादवोंने एक वर्ष शान्तिसे व्यतीत किया। इस प्रकार एक वर्ष पूर्ण हो जानेपर महाप्रतिज्ञाको पूर्ण करनेवाला जरासन्ध बड़े-बड़े सामन्तोंके समूहसे युक्त तथा सेनारूपी सागरसे दिशाओंको व्याप्त करता हुआ बड़े-बड़े राजाओंके युद्धके योग्य कुरुक्षेत्रके मैदानमें आ पहुँचा ॥६४–६५॥ अपनी सेनारूपी नदियोंके समूहसे भरे हुए कृष्णरूपी दूसरे सागर भी पहले ही आकर वहां आ जमे थे ॥६६॥ उस समय कृष्णके सम्बन्धी कितने ही दक्षिण-उत्तर और पश्चिमके राजा अपनी-अपनी समस्त सेनाओंके

१. पूर्णमहासन्धौ म. । २. महासामन्तसन्नतिः म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दशार्हाः सान्त्वना भोजाः पाण्डवाश्चापि बान्धवाः । अन्ये च नृपशार्दूलाः प्रसिद्धा हरये हिताः॥६८॥
अक्षौहिणीपतिस्तत्र समुद्रविजयो नृपः । उग्रसेनोऽग्रणीः पुंसां तथैवाक्षौहिणीप्रभुः ॥६९॥
मेरुरक्षौहिणीस्वामी श्रीमानिक्ष्वाकुवंशजः । अक्षौहिण्यर्धनाथस्तु राष्ट्रवर्धनभूपतिः ॥७०॥
तथार्धाक्षौहिणीनाथः सिंहलानामधीश्वरः । राजा पद्मरथश्चापि तत्समानबलो बली ॥७१॥
दायादः शकुनेर्वीरश्चारुदत्तः पराक्रमी । अक्षौहिणीचतुर्थांशपतिः कृष्णहितेरितः ॥७२॥
बर्बरा यमनाभीराः काम्बोजा द्रविडा नृपाः । अन्ये च बहवः शूराः शौरिपक्षमुपाश्रिताः ॥७३॥
अक्षौहिण्यो [1]बहुगुणा जरासन्धमुपागताः । चक्ररत्नप्रभावेण वक्षीभावितभारतम् ॥७४॥
अक्षौहिणीप्रमाणं तु सप्रमाणमुदीरितम् । वाजिवारणपत्तीनां रथानां गणनायुतम् ॥७५॥
[2]नवहस्तिसहस्राणि नवलक्षा रथा मताः । नव कोट्यस्तुरङ्गास्तु शतकोट्यो नरा नव ॥७६॥
यदुष्वतिरथो नेमिस्तथैव बलकेशवौ । अतिक्रम्य स्थितान् सर्वान् भारतेऽतिरथांस्तु ते ॥७७॥
समुद्रविजयो राजा वसुदेवो युधिष्ठिरः । भीमकर्णार्जुना रुक्मी रौक्मणेयश्च सत्यकः ॥७८॥
धृष्टद्युम्नोऽप्यनावृष्टिः शल्यो भूरिश्रवा नृपः । राजा हिरण्यनाभश्च सहदेवश्च सारणः ॥७९॥
शस्त्रशास्त्रार्थनिपुणाः पराङ्मुखदयापराः । महावीर्या महाधैर्या राजानोऽमी महारथाः ॥८०॥
अक्षोभ्यपूर्वकाश्चाष्टौ शम्बो भोजो विदूरथः । द्रुपदः सिंहराजोऽपि शल्यो वज्रः सुयोधनः ॥८१॥

साथ आकर कृष्णसे आ मिले ॥६७॥ दशाह, सान्त्वना देनेवाले भोज और पाण्डव आदि बन्धुजन तथा अन्य अनेक उत्तमोत्तम प्रसिद्ध राजा श्रीकृष्णके हितकी इच्छा करते हुए आ मिले ॥६८॥ वहाँ राजा समुद्रविजय एक अक्षौहिणीके स्वामी थे, पुरुषोंमें अग्रेसर राजा उग्रसेन भी एक अक्षौहिणीका स्वामी था और इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न राजा मेरु भी एक अक्षौहिणीका अधिपति था। राष्ट्रवर्धन देशका राजा आधी अक्षौहिणीका स्वामी था ॥६९-७०॥ सिंहल देशका राजा आधी अक्षौहिणीका प्रभु था और बलवान् राजा पद्मरथ भी उसीके समान—अर्ध अक्षौहिणी प्रमाण सेनासे युक्त था ॥७१॥ शकुनिका भाई वीर पराक्रमी चारुदत्त जो कि कृष्णके हितमें सदा तत्पर रहता था, एक चौथाई अक्षौहिणीका स्वामी था ॥७२॥ वर्वर, यमन, आभीर, काम्बोज और द्रविड़ आदिके अन्य शूर-वीर राजा कृष्णके पक्षमें आ मिले ॥७३॥

उस ओर चक्ररत्नके प्रभावसे भरतक्षेत्रको वश करनेवाले राजा जरासन्धको भी अनेक अक्षौहिणी सेनाएँ प्राप्त थीं ॥७४॥ घोड़े, हाथी, पैदल सैनिक तथा रथोंकी गणनासे युक्त अक्षौहिणी सेनाका प्रमाण इस प्रकार कहा गया है ॥७५॥ जिसमें नौ हजार हाथी, नौ लाख रथ, नौ करोड़ घोड़े और नौ-सौ करोड़ पैदल सैनिक हों उसे एक अक्षौहिणी कहते हैं ॥७६॥ यादवोंमें कुमार नेमि, बलदेव और कृष्ण ये तीनों अतिरथ थे। ये तीनों भारतवर्षमें जितने अतिरथ थे उन सबको अतिक्रान्त कर उन सबमें श्रेष्ठ थे ॥७७॥ राजा समुद्रविजय, वसुदेव, युधिष्ठिर, भीम, कर्ण, अर्जुन, रुक्मी, प्रद्युम्न, सत्यक, धृष्टद्युम्न, अनावृष्टि, शल्य, भूरिश्रवस्, राजा हिरण्यनाभ, सहदेव और सारण, ये सब राजा महारथ थे। ये सभी शस्त्र और शास्त्रार्थमें निपुण, पराङ्मुख, जीवोंपर दया करनेमें तत्पर, महाशक्तिमान् और महाधैर्यशाली थे ॥७८–८०॥ समुद्रविजयसे छोटे और

१. वरगुणा म.। २. अक्षौहिण्यामित्यधिकैः सप्तत्या ह्यष्टभिः शतैः। संयुक्तानि सहस्राणि गजानामेकविंशतिः ॥ एवमेव रथानां तु संख्यानं कीर्तितं बुधैः। पञ्चषष्टिसहस्राणि षट्शतानि दशैव तु। संख्यातास्तुरगास्तज्ज्ञैर्विना रथतुरङ्गमैः ॥ नृणां शतसहस्राणि सहस्राणि तथा नव। शतानि त्रीणि चान्यानि पञ्चाशच्च पदातयः ॥ इत्यमरकोशटीकायाम्। भारते अक्षौहिणीप्रमाणम्—अक्षौहिण्याः प्रमाणं तु खाङ्गाष्टैकद्विकैर्गजैः। रथैरेतैर्हयैस्त्रिघ्नैः पञ्चघ्नैश्च पदातिभिः ॥ गजाः २१८७०, रथाः २१८७०, अश्वाः ६५६१०, नराः १०९३५० इति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पौण्ड्रः पद्मरथश्चापि कपिलो भगदत्तकः । क्षेमधूर्त इमे सर्वे समाः समरथा रणे ॥८२॥
महानेमिधराक्रूरनिषधोल्मुकदुर्मुखाः । [1]कृतवर्मा वराटाख्यश्चारुकृष्णश्च यादवाः ॥८३॥
शकुनिर्यवनो भानुर्दुश्शासनशिखण्डिनौ । वाह्लीकसोमदत्तश्च देवशर्मा वकस्तथा ॥८४॥
वेणुदारी च विक्रान्तो राजानोऽर्धरथा इमे । विचित्रयोधिनो धीराः संग्रामेष्वपराङ्मुखाः ॥८५॥
अतः परं नृपाः सर्वे कुलमानयशोधनाः । रथिनः प्रथिताश्चामी यथायोग्यं बलद्वये ॥८६॥
अर्णवोपमयोस्तत्र तदाभ्यर्णनिवेशयोः । सेनयोस्तूर्णमागत्य कर्णस्याभ्यर्णमाकुला ॥८७॥
कुन्ती निष्णातसंबन्धतनयानुमता मता । कानीनस्नेहसंभारपरायत्तशरीरिका ॥८८॥
कण्ठलग्ना रुदन्ती तं प्रतिबोधयति स्म सा । मातापुत्रस्वसंबन्धमादिमध्यावसानतः ॥८९॥
ततः कम्बलवृत्तान्तकुरुवंशावतारवित् । कुन्तीपाण्डुसुतत्वं तु निश्चिकायात्मनस्तदा ॥९०॥
सान्तःपुरेण कर्णेन निर्णीतनिजबन्धुना । पूजिताग्रात्मजं कुन्ती जगाद जनितादरा ॥९१॥
उत्तिष्ठ पुत्र गच्छामो यत्र ते भ्रातरोऽखिलाः । तिष्ठन्त्युत्कण्ठिताश्चान्ये वैकुण्ठप्रमुखा निजाः ॥९२॥
कुरूणामीश्वरः पुत्र त्वमेव भुवि सांप्रतम् । कृष्णस्य रामभद्रस्य सम्प्रति प्राणवत् प्रियः ॥९३॥
त्वं राजावरजाग्रस्ते छत्रधारी युधिष्ठिरः । भीमश्चामरधारी तु मन्त्रिमुख्यो धनंजयः ॥९४॥
नकुलः सहदेवेन प्रतीहारः सहस्फुटम् । अहं तु जननी नीत्या नित्यं तव हितोद्यता ॥९५॥

वसुदेवसे बड़े अक्षोभ्य आदि आठ भाई, शम्ब, भोज, विदूरथ, द्रुपद, सिंहराज, शल्य, वज्र, सुयोधन, पौण्ड्र, पद्मरथ, कपिल, भगदत्त और क्षेमधूर्त ये सब समरथ थे तथा युद्धमें समान शक्तिके धारक थे ॥८१-८२॥ महानेमि, धर, अक्रूर, निषध, उल्मुक, दुर्मुख, कृतवर्मा, वराट, चारुकृष्ण, शकुनि, यवन, भानु, दुश्शासन, शिखण्डी, वाह्लीक, सोमदत्त, देवशर्मा, वक, वेणुदारी और विक्रान्त ये राजा अर्धरथ थे। ये सभी राजा आश्चर्यकारक युद्ध करनेवाले एवं धीर-वीर थे तथा युद्धसे कभी पराङ्मुख नहीं होते थे ॥८३-८५॥ इनके सिवाय कुल, मान और यशरूपी धनको धारण करनेवाले समस्त राजा रथी नामसे प्रसिद्ध थे। ये राजा यथायोग्य दोनों ही सेनाओंमें थे ॥८६॥

समुद्रोंके समान दोनों पक्षकी सेनाएँ जब पास-पास आ गयीं तब कुन्ती बहुत घबड़ायी। वह शीघ्र ही कर्णके पास गयी। वहाँ जानेमें उसे युधिष्ठिर आदि पुत्रोंने अनुमति दे दी थी। उस समय कन्या अवस्थाके पुत्र कर्णके ऊपर जो उसका अपार स्नेह था उससे उसका शरीर विवश हो रहा था। उसने कर्णके कण्ठसे लगकर रोते-रोते आदि, मध्य और अन्तमें जैसा कुछ हुआ वह सब अपना माता और पुत्रका सम्बन्ध बतलाया। उसने यह भी बतलाया कि मैंने तुझे उत्पन्न होते ही लोकलाजके भयसे कम्बलमें लपेटकर छोड़ दिया था। कर्ण कम्बलके वृत्तान्तको जानता था और यह भी जानता था कि कुरुवंशमें मेरा जन्म हुआ है। अब कुन्तीके कहनेसे उसने निश्चय कर लिया कि मैं कुन्ती और पाण्डुका पुत्र हूँ ॥८७-९०॥ अपने बन्धुजनोंका निर्णय कर कर्णने अपनी समस्त स्त्रियोंके साथ कुन्तीकी पूजा की। तदनन्तर आदर दिखाती हुई कुन्तीने अपने प्रथम पुत्र कर्णसे कहा कि हे पुत्र! उठ, वहाँ चलें जहाँ तेरे सब भाई तथा श्रीकृष्ण आदि अपने अन्य आत्मीय जन तेरे लिए उत्कण्ठित हो रहे हैं ॥९१-९२॥ हे पुत्र! इस समय पृथिवीपर कुरुओंका स्वामी तू ही है और कृष्ण तथा बलदेवके लिए प्राणोंके समान प्रिय है ॥९३॥ तू राजा है, तेरा छोटा भाई युधिष्ठिर तेरे ऊपर छत्र लगावेगा, भीम चँवर ढोरेगा, धनंजय मन्त्री होगा, सहदेव और नकुल तेरे द्वारपाल होंगे और नीतिपूर्वक निरन्तर हित करनेमें उद्यत मैं तेरी माता हूँ ॥९४-९५॥

१. कृतवर्या म.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इति मातृवचः श्रुत्वा भ्रातृस्नेहवशोऽपि सः । जरासन्धोपकारैस्तैः स्वामिकार्यधरोऽवदत् ॥९६॥
पितरौ भ्रातरो लोके बान्धवाश्च सुदुर्लभाः । यद्यस्त्येवं तथाप्यत्र प्रस्तावे समुपस्थिते ॥९७॥
स्वामिकार्यं परित्यज्य बन्धुकार्यमसांप्रतम्[1] । अप्रशस्यं च हास्यं च संमुखे सांप्रतं रणे ॥९८॥
एतावदत्र कार्यं तु युद्धे भ्रातृवशादृते । योद्धव्यमन्ययोधैर्हि स्वामिकार्यकृता मया ॥९९॥
निवृत्ते युधि जीवामो यदि दैववशाद्वयम् । भविता[2] निश्चितोऽस्माकमम्ब भ्रातृसमागमः ॥१००॥
प्रयाहि भ्रातृबन्धूनामेतदेव निवेद्यताम् । इत्युक्त्वा पूजिता गत्वा कुन्ती सर्वं तथाकरोत् ॥१०१॥
जरासन्धबले तत्र समभूभागवर्तिनी । चक्रव्यूहो द्विषां[3] जित्यै रचितः कुशलैर्नृपैः ॥१०२॥
चक्रस्यारसहस्रे हि राजैकैकः समास्थितः । तस्य राजसहस्रस्य करिणां तु शतं शतम् ॥१०३॥
एकैकस्य नरेन्द्रस्य द्विसहस्ररथाः स्थिताः । वाजिपञ्चसहस्राणि भटानां तानि षोडश ॥१०४॥
अतश्चतुर्थभागेन संयुताः सपदि स्थिताः । नरेन्द्राः षट् सहस्राणि निविष्टास्तत्र नेमिषु ॥१०५॥
मध्यत्वं च समासाद्य सुस्थितो मागधः स्वयम् । राजपञ्चसहस्रैः स श्रीमान् कर्णपुरस्सरैः ॥१०६॥
तस्यैव मध्यभागे तु सैन्यं गान्धारसैन्धवम् । दुर्योधनसमेतं तु धार्तराष्ट्रशतं स्थितम् ॥१०७॥
मध्ये च मध्यदेशास्तु स्थितास्तत्र नरेश्वराः । पूर्वभागे स्थितास्तस्य शेषा नृपगणास्तथा ॥१०८॥
कुलमानधरा धीरा नरेशा बलशालिनः । पञ्चाशत्सकलव्यूहा[4] नेमिसंधिष्ववस्थिताः ॥१०९॥
अन्तरान्तरसंस्थास्तु[5] गुल्मैर्गुल्मैर्नरोत्तमैः । व्यूहस्य बाह्यतश्चापि नानाव्यूहैर्नृपाः स्थिताः ॥११०॥

इस प्रकार माताके वचन सुनकर यद्यपि कर्ण भाइयोंके स्नेहसे विवश हो गया परन्तु जरासन्धने उसके प्रति जो उपकार किये थे उनसे स्वामीके कार्यका विचार करता हुआ बोला कि लोकमें माता-पिता, और भाई-बान्धव अत्यन्त दुर्लभ हैं यह बात यद्यपि ऐसी ही है, परन्तु इस अवसरके उपस्थित होनेपर स्वामीका कार्य छोड़ भाइयोंका कार्य करना अनुचित है, अप्रशस्त है और इस समय जबकि युद्ध सामने है हास्यका कारण भी है ॥९६-९८॥ इस समय तो स्वामीका कार्य करता हुआ मैं इतना ही कर सकता हूँ कि युद्धमें भाइयोंको छोड़कर अन्य योद्धाओंके साथ युद्ध करूँ ॥९९॥ युद्ध समाप्त होनेपर यदि भाग्यवश हम लोग जीवित रहेंगे तो हे माँ! हमारा भाइयोंके साथ समागम अवश्य ही होगा। तू जा और भाई-बान्धवोंको इतनी खबर दे दे। इस प्रकार कहकर कर्णने माता कुन्तीकी पूजा की और कुन्तीने जाकर उसके कहे अनुसार सब कार्य किया ॥१००-१०१॥ उधर समान भूभागमें वर्तमान राजा जरासन्धकी सेनामें कुशल राजाओंने शत्रुओंको जीतनेके लिए चक्रव्यूहकी रचना की ॥१०२॥ उस चक्रव्यूहमें जो चक्राकार रचना की गयी थी उसके एक हजार आरे थे, एक-एक आरेमें एक-एक राजा स्थित था, एक-एक राजाके सौ-सौ हाथी थे, दो-दो हजार रथ थे, पाँच-पाँच हजार घोड़े थे और सोलह-सोलह हजार पैदल सैनिक थे ॥१०३-१०४॥ चक्रकी धाराके पास छह हजार राजा स्थित थे और उन राजाओंके हाथी, घोड़ा आदिका परिमाण पूर्वोक्त परिमाणसे चौथाई भाग प्रमाण था ॥१०५॥ कर्ण आदि पाँच हजार राजाओंसे सुशोभित राजा जरासन्ध स्वयं उस चक्रके मध्यभागमें जाकर स्थित था ॥१०६॥ गान्धार और सिन्ध देशकी सेना, दुर्योधनसे सहित सौ कौरव, और मध्यदेशके राजा भी उसी चक्रके मध्यभागमें स्थित थे ॥१०७-१०८॥ कुलके मानको धारण करनेवाले धीर, वीर, पराक्रमी पचास राजा अपनी-अपनी सेनाके साथ चक्रधाराकी सन्धियोंपर अवस्थित थे ॥१०९॥ आरोंके बीच-बीचके स्थान अपनी-अपनी विशिष्ट सेनाओंसे युक्त राजाओंसे सहित थे। इनके सिवाय व्यूहके

---

१. अयुक्तम् । २. निश्चयोऽस्माक—म. । ३. जयनं जितिः तस्यै । नित्यै म. । ४. नेमिसन्धिष्विव स्थिताः म., ग. । ५. एको रथो गजश्चैको नराः पञ्च पदातयः । त्रयश्च तुरगास्तज्ज्ञैः पत्तिरित्यभिधीयते ॥ तिसृभिः पत्तिभिः सेनामुखं, त्रिभिः सेनामुखैर्गुल्मः, गुल्मत्रयेण गणः । इत्यमरटीकायाम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्रव्यूहस्तदा दक्षै रचितोऽसौ व्यराजत । स्वसाधनमनस्तोषी परसाधनभीतिकृत् ॥१११॥
चक्रव्यूहं विदित्वा तं वसुदेवो विनिर्मितम् । चकार गरुडव्यूहं तद्भेदाय विशारदः ॥११२॥
अर्धकोटीकुमाराणां [1]मुखे तस्य महात्मनाम् । स्थापिता रणशूराणां नानाशस्त्रास्त्रधारिणाम् ॥११३॥
बली हलधरस्तत्र शार्ङ्गपाणिश्च मूर्धनि । स्थितावतिरथौ वीरौ स्थैर्यान्निर्जितभूधरौ ॥११४॥
अक्रूरः कुमुदो वीरः सारणो विजयो जयः । पद्मो जरत्कुमारोऽपि सुमुखोऽपि च दुर्मुखः ॥११५॥
सूनुर्मदनवेगाया दृढमुष्टिर्महारथः । विदूरथोऽप्यनावृष्टिर्वसुदेवस्य [2]येऽङ्गजाः ॥११६॥
रथरक्षान्वितौ रामकृष्णयोः पृष्ठरक्षिणः । रथकोट्या समेतस्तु [3]पृष्ठेभोजः प्रतिष्ठितः ॥११७॥
पृष्ठरक्षानृपास्तस्य भोजस्य नृपतेस्ततः । धारणः सागरश्चान्ये रणशौण्डा व्यवस्थिताः ॥११८॥
दक्षिणं पक्षमाश्रित्य सुतैः साकं महारथैः । समुद्रविजयोऽतिष्ठद्बलेन महता वृतः ॥११९॥
तत्पक्षरक्षणे दक्षाः कुमारा रिपुमारणाः । सत्यनेमिर्महानेमिर्दृढनेमिः सुनेमिना ॥१२०॥
नमिर्महारथश्चापि जयसेनमहीजयौ । तेजःसेनो [4]जयः सेनो नयो मेघो महाद्युतिः ॥१२१॥
दशार्हाश्चापि विख्याताः शतशोऽन्ये च भूभृतः । रथकोटीचतुर्भागसहिताः समवस्थिताः ॥१२२॥
वामपक्षमुपाश्रित्य रामस्य तनयाः स्थिताः । पाण्डवाश्च महात्मानः पण्डिता युद्धकर्मणि ॥१२३॥
उल्मुको निषधश्चापि प्रकृतिद्युतिरप्यतः । सत्यकः शत्रुदमनः श्रीध्वजो ध्रुव इत्यपि ॥१२४॥
राजा दशरथश्चापि देवानन्दोऽथ शन्तनुः । आनन्दश्च महानन्दश्चन्द्रानन्दो महाबलः ॥१२५॥
पृथुः [5]शतधनुश्चापि विपृथुश्च यशोधनः । दृढबन्धोऽनुवीर्यश्च सर्वशस्त्रभृतांवरः ॥१२६॥

बाहर भी अनेक राजा नाना प्रकारके व्यूह बनाकर स्थित थे ॥११०॥ इस प्रकार चतुर राजाओंके द्वारा रचित, अपनी सेनाके मनको सन्तुष्ट करनेवाला और शत्रुकी सेनाके मनमें भय उत्पन्न करनेवाला वह चक्रव्यूह उस समय अत्यधिक सुशोभित हो रहा था ॥१११॥

इधर रचना करनेमें निपुण वसुदेवको जब पता चला कि जरासन्धकी सेनामें चक्रव्यूहकी रचना की गयी है तब उसने भी चक्रव्यूहको भेदनके लिए गरुड़-व्यूहकी रचना कर डाली ॥११२॥ उदात्तचित्त, रणमें शूर-वीर तथा नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंको धारण करनेवाले पचास लाख यादव कुमार उस गरुड़के मुखपर खड़े किये गये ॥११३॥ धीर-वीर एवं स्थिरतासे पर्वतको जीतनेवाले अतिरथ, पराक्रमी बलदेव और श्रीकृष्ण उसके मस्तकपर स्थित हुए ॥११४॥ अक्रूर, कुमुद, वीर, सारण, विजय, जय, पद्म, जरत्कुमार, सुमुख, दुर्मुख, मदनवेगा पुत्र महारथ दृढमुष्टि, विदूरथ और अनावृष्टि ये जो वसुदेवके पुत्र थे वे बलदेव और कृष्णके रथकी रक्षा करनेके लिए उनके पृष्ठरक्षक बनाये गये। एक करोड़ रथोंसे सहित भोज, गरुड़के पृष्ठ भागपर स्थित हुआ ॥११५-११७॥ राजा भोजकी पृष्ठ-रक्षाके लिए धारण तथा सागर आदि अन्य अनेक रणवीर राजा नियुक्त हुए ॥११८॥ अपने महारथी पुत्रों तथा बहुत बड़ी सेनासे युक्त राजा समुद्रविजय उस गरुड़के दाहिने पंखपर स्थित हुए ॥११९॥ और उनकी आजू-बाजूकी रक्षा करनेके लिए चतुर, शत्रुओंको मारनेवाले सत्यनेमि, महानेमि, दृढ़नेमि, सुनेमि, महारथी नमि, जयसेन, महीजय, तेजसेन, जय, सेन, नय, मेघ, महाद्युति आदि दशार्ह (यादव) तथा सैकड़ों अन्य प्रसिद्ध राजा पचीस लाख रथोंके साथ स्थित हुए ॥१२०-१२२॥ बलदेवके पुत्र और युद्ध कार्यमें निपुण महामना पाण्डव गरुड़के बायें पक्षका आश्रय ले खड़े हुए ॥१२३॥ इन्हींके समीप उल्मुक, निषध, प्रकृतिद्युति, सत्यक, शत्रुदमन, श्रीध्वज, ध्रुव, राजा दशरथ, देवानन्द, शन्तनु, आनन्द, महानन्द, चन्द्रानन्द, महाबल, पृथु, शतधनु, विपृथु, यशोधन, दृढ़बन्ध और सब प्रकारके शस्त्रोंसे आकाशको

---

१. मुख्ये म. । २. तेऽङ्गजाः म. । ३. पृष्ठभोजः म. । जयसेनो । ५. शतधनश्चापि म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनेकरथलक्षास्ते शस्त्रास्त्रेषु कृतश्रमाः । [1]धार्तराष्ट्रवधं युद्धे समाधाय व्यवस्थिताः ॥१२७॥
पृष्ठे चन्द्रयशा भूपः सिंहलो वर्वरोऽपि च । कम्बोजाः केरलाश्चापि कुशला द्रमिलास्तथा ॥१२८॥
रथषष्टिसहस्रैस्तु शान्तनः समवस्थितः । पक्षिणो रक्षिणो ह्येते स्थिता विक्रमशालिनः ॥१२९॥
अशितश्चापि भानुश्च तोमरः समरप्रियः । संजयोऽकल्पितश्चापि भानुर्विष्णुर्बृहद्ध्वजः ॥१३०॥
शत्रुंजयो महासेनो गम्भीरो गौतमोऽपि च । वसुधर्मादयश्चापि कृतवर्मा प्रसेनजित् ॥१३१॥
[2]दृढवर्मा च विक्रान्तश्चन्द्रवर्मा च पार्थिवः । एते [3]गणसहायास्तु कुलं रक्षन्ति शार्ङ्गिणः ॥१३२॥
एषोऽसौ गरुडव्यूहो वसुदेवेन निर्मितः । महारथकृतोत्साहश्चक्रव्यूहं बिभित्सति ॥१३३॥

शालिनीच्छन्दः

चक्रव्यूहे दुर्विगाहे कृतेऽपि [4]व्यूहे व्यूहे पक्षिराजेऽपि दक्षैः ।
युद्धे जेता नायकः कश्चिदेको धर्मात्प्रायादर्जिताज्जैनमार्गे ॥१३४॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ चक्रगरुडव्यूहवर्णनो नाम पञ्चाशत्तमः सर्गः ॥५०॥

□

भर देनेवाले अनुवीर्य स्थिति थे। ये सभी कुमार अनेक लाख रथोंसे युक्त थे, शस्त्र और अस्त्रोंमें परिश्रम करनेवाले थे, तथा युद्धमें कौरवोंके वधका निश्चय किये हुए थे ॥१२४–१२७॥ इनके पीछे राजा चन्द्रयश, सिंहल, वर्वर, कम्बोज, केरल, कुशल (कोसल) और द्रमिल देशोंके राजा तथा शान्तन साठ-साठ हजार रथ लेकर स्थित थे। इस प्रकार ये बलशाली राजा उस गरुड़की रक्षा करते हुए स्थित थे ॥१२८-१२९॥ इनके सिवाय अशित, भानु, युद्धका प्रेमी तोमर, संजय, अकल्पित, भानु, विष्णु, बृहद्ध्वज, शत्रुंजय, महासेन, गम्भीर, गौतम, वसुधर्मादि, कृतवर्मा, प्रसेनजित्, दृढवर्मा, विक्रान्त और चन्द्रवर्मा आदि राजा अपनी-अपनी सेनाओंसे युक्त हो श्रीकृष्णके कुलकी रक्षा करते थे ॥१३०-१३२॥ जिसके भीतर स्थित महारथी राजा उत्साह प्रकट कर रहे थे, ऐसा यह वसुदेवके द्वारा निर्मित गरुड़व्यूह, जरासन्धके चक्रव्यूहको भेदने की इच्छा कर रहा था ॥१३३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि दोनों पक्षके चतुर मनुष्योंने उस ओर यद्यपि दुःखसे प्रवेश करनेके योग्य चक्रव्यूह और इधर गरुड़-व्यूहकी रचना की थी तथापि जिनेन्द्र प्रदर्शित मार्गमें चलकर संचित किये हुए धर्मके प्रभावसे युद्धमें कोई एक नायक ही विजयी होगा ऐसा मैं समझता हूँ ॥१३४॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें चक्रव्यूह और गरुड़व्यूहका वर्णन करनेवाला पचासवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥५०॥

□

१. धार्तराष्ट्रा वधं म., ग. । २. दृढवर्या म. । ३. दृढसहायस्तु म. । ४. तर्कयामि ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकपञ्चाशत्तमः सर्गः

अत्रान्तरे सह प्राप्ताः समुद्रविजयं नृपाः । विद्याधरसमस्तास्ते वसुदेवहितैषिणः ॥१॥
श्वसुरोऽशनिवेगोऽसौ हरिग्रीवो वराहकः । सिंहदंष्ट्रः खगेन्द्रश्च विद्युद्वेगो महोद्यमः ॥२॥
तथा मानसवेगश्च विद्युद्दंष्ट्रः खगाधिपः । राजा पिङ्गलगान्धारो नारसिंहो नरेश्वरः ॥३॥
[1]इत्याद्या ह्यार्यमातङ्गा वासुदेवार्थसिद्धये । वसुदेवं पुरस्कृत्य समुद्रविजयं श्रिताः ॥४॥
तान् संमान्य यथायोग्यं समुद्रविजयादयः । सिद्धार्था वयमद्येति प्रहृष्टमनसो जगुः ॥५॥
वसुदेवरिपूणां ते खगानां क्षोभमूचिरे । जरासन्धार्थसिद्ध्यर्थं तेषामागमनं तथा ॥६॥
तच्छ्रुत्वा यादवाः सर्वे संमन्त्र्यानकदुन्दुभिम्[2] । प्रद्युम्नशम्बसंयुक्तं सपुत्रं तैरमामुचन् ॥७॥
जिनकेशवरामादीन् परिष्वज्य स वेगवान् । पुत्रनप्तृखगैः साकं खचराचलमाययौ ॥८॥
सिंहविद्यारथं दिव्यं दिव्यास्त्रपरिपूरितम् । धनदेवसमानीतमारुरोह हलायुधः ॥९॥
गारुडं रथमारूढस्तथा गरुडकेतनः । नानाप्रहरणैर्दिव्यैः परिपूर्णं[3] जयावहम् ॥१०॥
मातल्यधिष्ठितं सास्त्रं सुत्रामप्रहितं रथम् । नेमीश्वरः समारूढो यदूनामर्थसिद्धये ॥११॥
सेनानां नायकं शूरमनावृष्टिं कपिध्वजम् । अभ्यषिञ्चन्नृपाः सर्वे समुद्रविजयादयः ॥१२॥
राजा हिरण्यनाभस्तु मागधेन महाबलः । सेनापतिपदे शीघ्रमभिषिक्तस्तदा मुदा ॥१३॥
युद्धे भेर्यस्तथा शङ्खा नेदुर्घोरं बलद्वये । [4]चतुरङ्गं बलं योद्धुमाससाद परस्परम् ॥१४॥

अथानन्तर इसी बीचमें वसुदेवका हित चाहनेवाले नीचे लिखे समस्त विद्याधर एक साथ मिलकर समुद्रविजयके पास आ पहुँचे ॥१॥ वसुदेवका श्वसुर अशनिवेग, हरिग्रीव, वराहक, सिंहदंष्ट्र, महापुरुषार्थी विद्युद्वेग, मानसवेग, विद्युद्दंष्ट्र, पिंगलगान्धार और नारसिंह इन्हें आदि लेकर आर्य और मातंगजातिके अनेक विद्याधर राजा श्रीकृष्णकी भलाईके लिए आ पहुँचे और वसुदेवको आगे कर राजा समुद्रविजयसे जा मिले ॥२-४॥ समुद्रविजय आदि उनका यथायोग्य सम्मान कर हर्षितचित्त होते हुए कहने लगे कि अब हम लोग कृतार्थ हो गये ॥५॥ उन आगत विद्याधरोंने कहा कि इस युद्धसे वसुदेवके विरोधी विद्याधरोंमें बड़ा क्षोभ हो रहा है और वे जरासन्धकी कार्यसिद्धिके लिए आनेवाले हैं ॥६॥ यह सुनकर सब यादवोंने परस्पर सलाह की और विद्याधरोंको शान्त करनेके लिए उन्होंने उन्हीं विद्याधरोंके साथ प्रद्युम्न, शम्ब एवं अनेक पुत्रों-सहित वसुदेवको विजयार्धके लिए छोड़ा ॥७॥ वसुदेव भी भगवान् नेमिनाथ, कृष्ण, बलदेव आदिका आलिंगन कर कुछ पुत्रों, पोतों और विद्याधरोंके साथ शीघ्र ही विजयार्धकी ओर चल पड़े ॥८॥ उसी समय कुबेरके द्वारा समर्पित, दिव्य अस्त्रोंसे परिपूर्ण सिंहविद्याके दिव्य रथपर बलदेव आरूढ़ हुए ॥९॥ गरुडांकित पताकासे सुशोभित कृष्ण, नाना प्रकारके दिव्य अस्त्र-शस्त्रोंसे पूर्ण विजय प्राप्त करानेवाले गरुड़ विद्याके रथपर सवार हुए ॥१०॥ और भगवान् नेमिनाथ, इन्द्रके द्वारा प्रेषित, मातलि नामक सारथिसे युक्त, तथा अस्त्र-शस्त्रसे पूर्ण रथपर यादवोंकी कार्यसिद्धिके लिए आरूढ़ हुए ॥११॥ समुद्रविजय आदि समस्त राजाओंने वानरकी ध्वजासे युक्त, वसुदेवके शूर-वीर पुत्र अनावृष्टिको सेनापति बनाकर उसका अभिषेक किया ॥१२॥

उधर राजा जरासन्धने भी हर्षपूर्वक महाबलवान् राजा हिरण्यनाभको शीघ्र ही सेनापतिके पदपर अभिषिक्त किया ॥१३॥ दोनों ओरकी सेनाओंमें युद्धके समय बजनेवाली भेरियाँ और शंख गम्भीर शब्द करने लगे तथा दोनों ओरकी चतुरंग सेना युद्ध करनेके लिए परस्पर एक-दूसरेके

---

१. -श्चार्य म., घ. । २. वसुदेवः 'वसुदेवोऽस्य जनकः स एवानकदुन्दुभिः' इत्यमरः । ३. जयावहः म. । ४. चतुरङ्गबलं म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्योन्याह्वानपूर्वं ते योद्धुं लग्ना यथायथम् । [1]राजानः क्रोधसंभारभ्रूभङ्गविषमाननाः ॥१५॥
गजा गजैः [2]समं लग्नास्तुरङ्गास्तुरगैः सह । रथा रथैः समं योद्धुं पत्तयः पत्तिभिः सह ॥१६॥
ज्वारवै रथनिर्घोषैर्गजानां गर्जितेन च । भटानां सिंहनादैश्च दलन्तीव दिशो दश ॥१७॥
ततः परबलं दृष्ट्वा प्रबलं स्वबलाशनम् । नेमिपार्थबलाधीशा वृषहस्तिकपिध्वजाः ॥१८॥
तार्क्ष्यकेतुमनोभिज्ञाः स्वयं योद्धुं समुद्यताः । ऊरीकृत्य सुसन्नाहाश्चक्रव्यूहस्य भेदनम् ॥१९॥
दध्मौ नेमीश्वरः शङ्खं शाक्रं शत्रुभयावहम् । देवदत्तं पृथापुत्रः सेनानीश्च बलाहकम्[3] ॥२०॥
शङ्खाना निनदं श्रुत्वा ततो व्याप्तदिगन्तरम् । स्वसैन्येऽभून्महोत्साहः परसैन्ये महाभयम् ॥२१॥
मध्यं बिभेद सेनानीर्नेमिर्दक्षिणतः क्षणात् । अपरोत्तरदिग्भागं चक्रव्यूहस्य पाण्डवः ॥२२॥
सेनानीः परसेनान्या नेमिनाथोऽपि रुक्मिणा । पार्थो दुर्योधनेनासौ सधैर्येण पुरस्कृतः ॥२३॥
महायुद्धमभूत्तस्य ततस्तेषां ययायथम् । [4]सगन्धबलयुक्तानां पञ्चायुधविवर्षिणाम् ॥२४॥
नारदोऽप्सरसां संघैर्दूरेण नभसि स्थितः । मुञ्चन् पुष्पाणि तुष्टात्मा ननर्त कलहप्रियः ॥२५॥
निपात्य शरवर्षेण रुक्मिणं चिरयोधनम् । रिपुराजसहस्राणि नेमिश्चिक्षेप संयुगे ॥२६॥
समुद्रविजयाद्याश्च भ्रातरस्तत्सुतास्तथा । यथायथं रणे प्राप्ता निन्युर्मृत्युमुखं रिपून् ॥२७॥
रामकृष्णसुतैः [5]संख्ये निःसंख्यशरवर्षिभिः । यथेष्टं क्रीडितं मेघैः पर्वतेष्विव वैरिषु ॥२८॥
पाण्डवानां सपुत्राणां धृतराष्ट्रसुतैः सह । कदनं यद् बभूवात्र तत्कः कथयितुं क्षमः ॥२९॥

सामने आ गयीं ॥१४॥ क्रोधकी अधिकतासे भौंहे टेढ़ी हो जानेके कारण जिनके मुख विषम हो रहे थे ऐसे दोनों पक्षके राजा परस्पर एक-दूसरेको ललकारकर यथायोग्य युद्ध करने लगे ॥१५॥ हाथी हाथियोंके साथ, घोड़े घोड़ोंके साथ, रथ रथोंके साथ और पैदल पैदलोंके साथ युद्ध करने लगे ॥१६॥ उस समय प्रत्यंचाओंके शब्द, रथोंकी चीत्कार, हाथियोंकी गर्जना और योद्धाओंके सिंहनादसे दशों दिशाएँ फटी-सी जा रही थीं ॥१७॥

तदनन्तर शत्रुसेनाको प्रबल और अपनी सेनाको नष्ट करती देख, बैल, हाथी और वानरकी ध्वजा धारण करनेवाले नेमिनाथ, अर्जुन और अनावृष्टि, कृष्णका अभिप्राय जान स्वयं युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए और चक्रव्यूहके भेदन करनेका निश्चय कर पूर्ण तैयारीके साथ आगे बढ़े ॥१८-१९॥ भगवान्‌ने शत्रुओंको भय उत्पन्न करनेवाला अपना शाक्र (इन्द्रप्रदत्त) नामक शंख फूँका, अर्जुनने देवदत्त और सेनापति अनावृष्टिने बलाहक नामका शंख बजाया ॥२०॥ तदनन्तर इन शंखोंके दिगन्तव्यापी शब्द सुनकर अपनी सेनामें महान् उत्साह उत्पन्न हुआ और शत्रुकी सेनामें महाभय छा गया ॥२१॥ सेनापति अनावृष्टिने चक्रव्यूहका मध्य भाग, भगवान् नेमिनाथने दक्षिण भाग और अर्जुनने पश्चिमोत्तर भाग क्षण-भरमें भेद डाला ॥२२॥ सेनापति अनावृष्टिका जरासन्धके सेनापति हिरण्यनाभने, भगवान् नेमिनाथका रुक्मीने और धैर्यशाली दुर्योधनने अर्जुनका सामना किया ॥२३॥ तत्पश्चात् अहंकारपूर्ण सेनासे युक्त एवं पाँचों प्रकारके शस्त्र बरसानेवाले उन वीरोंका यथायोग्य महायुद्ध हुआ ॥२४॥ अप्सराओंके समूहके साथ आकाशमें दूर खड़ा कलहप्रिय नारद पुष्पवर्षा करता हुआ हर्षसे नाच रहा था ॥२५॥ भगवान् नेमिनाथने चिरकाल तक युद्ध करनेवाले रुक्मीको बाण-वर्षासे नीचे गिराकर हजारों शत्रुराजाओंको युद्धमें तितर-बितर कर दिया ॥२६॥ इसी प्रकार समुद्रविजय आदि भाइयों तथा उनके पुत्रोंने युद्धमें पहुँचकर शत्रुओंको मृत्युके मुखमें पहुँचाया ॥२७॥ युद्धमें असंख्यात बाणोंकी वर्षा करनेवाले बलदेव और कृष्णके पुत्रोंने, पर्वतोंपर बहुत भारी जलवर्षा करनेवाले मेघोंके समान शत्रुओंके बीच इच्छानुसार क्रीड़ा की ॥२८॥ पुत्रोंसहित पाण्डवोंका धृतराष्ट्रके पुत्रोंके साथ जो युद्ध हुआ था उसे कहनेके लिए कौन

---

१. राजानं म. । २. समालग्ना म. । ३. बलाहकः । ४. संबन्ध म., क., ग. । ५. युद्धे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

युधिष्ठिरोऽत्र शल्येन भीमो दुश्शासनेन तु । सहदेवः शकुनिना ह्युलूको नकुलेन हि ॥३०॥
दुर्योधनार्जुनौ योद्धुं लग्नौ युद्धं ततस्तयोः । बभूव भूतवित्रासी शरसन्धानदक्षयोः ॥३१॥
निहताः पाण्डवैः केचिद् धृतराष्ट्रशरीरजाः । रणे दुर्योधनाद्यास्तु केचिज्जीवन्मृताः कृताः ॥३२॥
आकर्णाकृष्टचापौघैः कर्णोऽभिमुखमागतान् । योधान् बिभेद संग्रामे कृष्णपक्षाननेकशः ॥३३॥
द्वन्द्वयुद्धे तदा जाते बहुभूतक्षयावहे । सेनापत्योरमूद्दौर्द्वं[2] कदनं विविधायुधैः ॥३४॥
हिरण्यनाभवीरेण स सप्तभिः शरैः शतैः । नवत्या सप्तविंशत्याविद्धोऽनावृष्टिराहवे ॥३५॥
प्रजघान शतेनासौ सहस्रेण च पत्रिणाम् । अनावृष्टिर्हिरण्याभं कुशलः प्रतिकर्मणि ॥३६॥
यादवस्य ध्वजं तुङ्गं चिच्छेद रुधिरात्मजः । सोऽपि चास्य बिभेदाशु चापं छत्रं च सारथिम् ॥३७॥
धनुरन्यदुपादाय शरवर्षं ववर्ष सः । परिघं तु यदुः क्षिप्त्वा रथं शत्रोरपातयत् ॥३८॥
खड्गखेटकहस्तं तं आपतन्तमरिर्यदुः । खड्गखेटकहस्तोऽगाद्रथादुत्तीर्य संमुखः ॥३९॥
प्रहारवञ्चनादानलाघवातिशयात्मनोः । असियुद्धममूद्घोरं सेनापत्योस्ततस्तयोः ॥४०॥
वार्ष्णेयखड्गघातेन प्रदत्तेन भुजे रिपुः । छिन्नबाहुद्वयोरस्कः पपात वसुधातले ॥४१॥
हते सेनापतौ तत्र चतुरङ्गबलं द्रुतम् । विद्रुतं शरणं प्राप्तं जरासन्धं[3] महारणे ॥४२॥
तुष्टोऽनावृष्टिरप्याशु रथमारुह्य सैनिकैः । स्तूयमानो [4]गतोऽभ्याशं रामकेशवयोस्ततः ॥४३॥
बलकेशववीराभ्यां वृषहस्तिकपिध्वजाः । चक्रव्यूहस्य भेत्तारः परिष्वक्ता महौजसः ॥४४॥

समर्थ है ? ॥२९॥ युधिष्ठिर शल्यके साथ, भीम दुःशासनके साथ, सहदेव शकुनिके साथ और उलूक नकुलके साथ युद्ध कर रहे थे । ॥३०॥ तदनन्तर दुर्योधन और अर्जुन युद्ध करनेके लिए तत्पर हुए सो बाणोंके चढ़ानेमें चतुर उन दोनोंका भूतोंको भयभीत करनेवाला भयंकर युद्ध हुआ ॥३१॥ पाण्डवोंने युद्धमें धृतराष्ट्रके कितने ही पुत्रोंको मार डाला और दुर्योधन आदि कितने ही पुत्रोंको जीवित रहते हुए भी मृतकके समान कर दिया ॥३२॥ कर्णने, युद्धमें आये हुए कृष्णके पक्षके अनेक योद्धाओंको कान तक खींचे हुए बाणोंके समूहसे नष्ट कर डाला ॥३३॥ उस समय जब दोनों ओरसे अनेक प्राणियोंका क्षय करनेवाला द्वन्द्व युद्ध हो रहा था तब दोनों पक्षके सेनापतियोंका नाना प्रकारके शस्त्रोंसे भयंकर युद्ध हुआ ॥३४॥ वीर हिरण्यनाभने युद्धमें यादव सेनापति अनावृष्टिको सात-सौ नब्बे बाणों द्वारा सत्ताईस बार घायल किया ॥३५॥ और बदला लेनेमें कुशल हिरण्यनाभने भी एक हजार बाणों द्वारा उसे सौ बार घायल किया ॥३६॥ रुधिरके पुत्र हिरण्यनाभने अनावृष्टिकी ऊँची ध्वजा छेद डाली और अनावृष्टिने शीघ्र ही उसके धनुष, छत्र और सारथिको भेद डाला ॥३७॥ हिरण्यनाभने दूसरा धनुष लेकर बाणोंकी वर्षा शुरू की और अनावृष्टिने परिघ फेंककर शत्रुका रथ गिरा दिया ॥३८॥ अब हिरण्यनाभ तलवार और ढाल हाथमें ले सामने आया तो अनावृष्टि भी तलवार और ढाल हाथमें ले रथसे उतरकर उसके सामने गया ॥३९॥ तदनन्तर प्रहारके बचाने और प्रहारके देनेकी बहुत भारी कुशलतासे युक्त दोनों सेनापतियोंमें भयंकर खड्ग-युद्ध होता रहा ॥४०॥

अन्तमें अनावृष्टिने हिरण्यनाभकी भुजाओंपर तलवारका घातक प्रहार किया जिससे उसकी दोनों भुजाएँ कट गयीं, छाती फट गयी और वह प्राणरहित हो पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥४१॥ सेनापतिके मरनेपर उसकी चतुरंग सेना शीघ्र ही भागकर युद्धमें जरासन्धकी शरणके पहुँची ॥४२॥ तदनन्तर सैनिक लोग जिसकी स्तुति कर रहे थे ऐसा अनावृष्टि, सन्तुष्ट हो शीघ्र ही रथपर बैठकर बलदेव और कृष्णके समीप गया ॥४३॥ बलदेव और श्रीकृष्णने चक्रव्यूहको

१. निहिताः म. । २. भयावहं । ३. जरासंधमहारणे म. । ४. समीपं म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृथ्वीच्छन्दः

विषादविषदूषितं मगधराजसैन्यं ततो निवेशमगमन्निजं[1] लघु दिवाकरेऽस्तङ्गते ।
नितान्तपृथुहर्षपूर्णमतिघूर्णमानार्णव-प्रमाणमरिभङ्गतो यदुयबलं जिनश्रीयुतम् ॥४५॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ हिरण्यनाभवधवर्णनो नामैकपञ्चाशत्तमः सर्गः ॥५१॥

□

भेदनेवाले महापराक्रमी नेमिनाथ अर्जुन और अनावृष्टिका आलिंगन किया ॥४४॥ तदनन्तर उधर सूर्यास्त होनेपर विषादरूपी विषसे दूषित जरासन्धकी सेना शीघ्र ही अपने निवासस्थानपर चली गयी और इधर जिनराज श्री नेमिनाथ भगवान्‌की लक्ष्मीसे युक्त यादवोंकी सेना, शत्रुके नाशसे अत्यधिक हर्षित एवं लहराते हुए समुद्रके समान झूमती हुई अपने निवासस्थानपर आ गयी ॥४५॥

इस प्रकार अरिष्टनेमिपुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें हिरण्यनाभके वधका वर्णन करनेवाला इक्यावनवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥५१॥

□

१. -मगमं निजे म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वापञ्चाशः सर्गः

अन्येद्युर्द्युमणिद्योतद्योतिते भुवनोदरे । संनद्धौ निर्गतौ योद्धुं बलैर्मागधमाधवौ ॥१॥
विधाय पूर्ववद् व्यूहौ बलद्वयमधिष्ठितम् । नानाराजन्यविन्यासमन्योन्यं हन्तुमुद्यतम्[1] ॥२॥
रथस्थो मागधो युद्धे हंसकं निजमन्त्रिणम् । अन्तिकस्थमिति प्राह यादवानभिवीक्ष्य सः ॥३॥
प्रत्येकं नामचिह्नाद्यैर्यदूनां चक्ष्व हंसक । किमन्यैरत्र निहतैरित्युक्ते संजगाविति ॥४॥
फेनपुञ्जप्रतीकाशैर्हयैः काञ्चनदामभिः । रथोऽर्करथवद्दृश्यः कृष्णस्य गरुडध्वजः ॥५॥
शुकवर्णसमैरश्वैर्युक्तोऽयं स्वर्णशृङ्खलैः । अरिष्टनेमिवीरस्य वृषकेतुर्महारथः ॥६॥
कृष्णदक्षिणपार्श्वेऽश्वैरिष्टवर्णैस्तुरङ्गमैः । रथस्तालध्वजो राजन् बलदेवस्य राजते ॥७॥
कृष्णवर्णैर्हयैर्युक्तो भ्राजतेऽयं महारथः । अनीकाधिपतेरत्र कपिकेतूपलक्षितः ॥८॥
नीलकेसरबालाग्रैर्हयैर्हेमपरिष्कृतैः । रथो युधिष्ठिरस्यायं पाण्डवस्य विराजते ॥९॥
शशाङ्कविशदैरश्वैर्मातरिश्वजवैर्वृतः । गजध्वजयुतो भाति सव्यसाचिरथो महान् ॥१०॥
नीलोत्पलनिभैरेष युक्तो [2]यथुभिरीक्ष्यते । रथो वृकोदरस्यापि मणिकाञ्चनभूषणः ॥११॥
शोणवर्णैर्हयैर्भाति समुद्रविजयस्य हि । मध्ये यादवसैन्यानां महासिंहध्वजो रथः ॥१२॥
अक्रूरस्य कुमारस्य रथोऽसौ कदलीध्वजः । सबलैर्वाजिभिर्भाति रुक्मविद्रुमभास्वरः ॥१३॥

दूसरे दिन जब संसारका मध्य भाग सूर्यके प्रकाशसे प्रकाशित हो गया तब जरासन्ध और कृष्ण युद्ध करनेके लिए तैयार हो अपनी-अपनी सेनाओंके साथ बाहर निकले ॥१॥ तदनन्तर जो पहलेके समान व्यूहोंकी रचना कर स्थित थीं और जिनमें अनेक राजा लोग यथास्थान स्थित थे ऐसी दोनों सेनाएँ परस्पर एक दूसरेका घात करनेके लिए उद्यत हुईं ॥२॥ युद्धके मैदानमें आकर रथपर बैठा जरासन्ध, यादवोंको देखकर अपने समीपवर्ती हंसक मन्त्रीसे बोला कि हे हंसक ! यादवोंमें प्रत्येकके नाम-चिह्न आदि तो बता, जिससे मैं उन्हींको देखूँ अन्य लोगोंके मारनेसे क्या लाभ है ? इस प्रकार कहनेपर हंसक बोला–॥३-४॥

हे स्वामिन् ! जिसमें सुवर्णमयी साँकलोंसे युक्त फेनके समान सफेद घोड़े जुते हुए हैं और जिसपर गरुड़की ध्वजा फहरा रही है ऐसा यह सूर्यके रथके समान देदीप्यमान कृष्णका रथ दिखाई दे रहा है ॥५॥ जो सुवर्णमयी साँकलोंसे युक्त तोतेके समान हरे रंगके घोड़ोंसे युक्त है तथा जिसपर बैलकी पताका फहरा रही है ऐसा यह शूर-वीर अरिष्टनेमिका रथ है ॥६॥ हे राजन् ! जो कृष्णकी दाहिनी ओर रीठाके समान वर्णवाले घोड़ोंसे जुता हुआ है तथा जिसपर तालकी ध्वजा फहरा रही है ऐसा यह बलदेवका रथ सुशोभित हो रहा है ॥७॥ इधर यह कृष्णवर्णके घोड़ोंसे युक्त एवं वानरकी ध्वजासे सहित जो बड़ा भारी रथ दिखाई दे रहा है वह सेनापतिका रथ है ॥८॥ उधर सुवर्णमयी साँकलोंसे युक्त, गरदनके नीले-नीले बालोंवाले घोड़ोंसे जुता हुआ यह पाण्डु राजाके पुत्र युधिष्ठिरका रथ सुशोभित हो रहा है ॥९॥ जो चन्द्रमाके समान सफेद एवं वायुके समान वेगशाली घोड़ोंसे जुता हुआ है तथा जिसपर हाथीकी ध्वजा फहरा रही है ऐसा यह बड़ा भारी अर्जुनका रथ है ॥१०॥ जो नील कमलके समान नीले-नीले घोड़ोंसे युक्त है तथा जिसपर मणिमय और सुवर्णमय आभूषण सुशोभित हैं ऐसा यह भीमसेनका रथ है ॥११॥ वह यादवोंकी सेनाके बीचमें लाल रंगके घोड़ोंसे जुता हुआ तथा बड़े-बड़े सिंहोंकी ध्वजासे युक्त समुद्र-विजयका रथ सुशोभित हो रहा है ॥१२॥ वह कुमार अक्रूरका रथ सुशोभित है जो कदलीकी

१. -मुद्यतौ म. । २. अश्वैः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हयैस्तित्तिरकल्माषैः सत्यकस्य महारथः । महानेमिकुमारस्य कौमुदैर्वाजिभी रथः ॥१४॥
चामीकरबृहद्दण्डपताकाध्वजभूषितः । [1]शुकतुण्डनिभैरश्वैर्भोजस्यैष महारथः ॥१५॥
अश्वैः कनकपृष्ठ्यैर्यो युक्तैर्भाति महारथः । असौ जरत्कुमारस्य मृगकेतोर्विराजते ॥१६॥
शुक्लः सोमसुतस्यैष सिंहलस्य विराजते । काम्बोजैर्वाजिभिर्युक्तो रथोऽश्वरथभास्वरः ॥१७॥
अश्वैरारक्तसबलैर्मरु[2]राजस्य राजते । रथः काञ्चनचित्राङ्गैः शंशुमाराकृतिध्वजः ॥१८॥
रथः पद्मरथस्यैष पद्माभैस्तुरगैर्युतः । शोभते रणशूरस्य बलानामग्रतः स्थितः ॥१९॥
[3]पारावतनिभैः पत्रैः सारणस्य त्रिहायनैः । तपनीयच्छदैर्भाति रथोऽसौ पुष्करध्वजः ॥२०॥
शशलोहितसंकाशैर्वाजिभिः पञ्चहायनैः । रथो नग्नजितः सूनोर्मेरुदत्तस्य काशते ॥२१॥
वाजिभिः पञ्चवर्णैर्यो रथो भाति [4]रविप्रभः । विदूरथकुमारस्य जवनः कलशध्वजः ॥२२॥
सर्ववर्णनिभैरश्वैर्यादवानां तरस्विनाम् । न शक्यन्ते [5]रथाः प्रोक्तुं शतशोऽथ सहस्रशः ॥२३॥
अस्माकं नृपवीराणां रथान् वेत्सि यथायथम् । कुमाराणां च सर्वेषां नानाचिह्नान्महारथान् ॥२४॥
क्षत्रियैर्बहुभिर्युक्तो नानादेशसमागतैः । शोभते भवतो व्यूहो रिपुसेनाभयंकरः ॥२५॥
तदाकर्ण्य निजं प्राह सारथिं मगधेश्वरः । यादवान् प्रति शीघ्रं त्वं रथं नोदय सारथे ! ॥२६॥
नोदितेऽथ रथे तेन लग्नश्छादयितुं नृपेट् । यादवानभितः सर्वान् शरासारैर्निरन्तरैः ॥२७॥

ध्वजासे सहित है, बलवान् घोड़ोंसे युक्त है तथा सुवर्ण और मूँगाओंसे देदीप्यमान हो रहा है ॥१३॥ तीतरके समान मटमैले घोड़ोंसे युक्त रथ सत्यकका है और कुमुदके समान सफेद घोड़ोंसे जुता रथ महानेमिकुमारका है ॥१४॥ जो सुवर्णमय विशाल दण्डकी पताकासे शोभित है तथा तोतेकी चोंचके समान लाल-लाल घोड़ोंसे युक्त है ऐसा यह भोजका महारथ है ॥१५॥ जो सुवर्णमय पलानसे युक्त जुते हुए घोड़ोंसे सुशोभित है ऐसा वह हरिणकी ध्वजाके धारक जरत्कुमारका रथ सुशोभित हो रहा है ॥१६॥ वह जो काम्बोजके घोड़ोसे युक्त, सूर्यके रथके समान देदीप्यमान सफेद रंगका रथ सुशोभित हो रहा है वह राजा सोमके पुत्र सिंहलका रथ है ॥१७॥ जो सुवर्णमय आभूषणोंसे चित्र-विचित्र शरीरके धारक कुछ-कुछ लाल रंगके घोड़ोंसे जुता हुआ है तथा जिसपर मत्स्यकी ध्वजा फहरा रही है ऐसा यह मरुराजका रथ सुशोभित हो रहा है ॥१८॥ यह जो कमलके समान आभावाले घोड़ोंसे जुता, सेनाओंके आगे स्थित है वह रणवीर राजा पद्मरथका रथ सुशोभित है ॥१९॥ वह जो सुवर्णमयी झूलोंसे युक्त कबूतरके समान रंगवाले तीन वर्षके घोड़ोंसे जुता, एवं कमलकी ध्वजासे सहित रथ सुशोभित हो रहा है वह सारणका है ॥२०॥ जो सफेद और लाल रंगके पाँच वर्षके घोड़ोंसे जुता है ऐसा वह नग्नजित्के पुत्र मेरुदत्तका रथ प्रकाशमान है ॥२१॥ जो पाँच वर्णके घोड़ोंसे जुता है, सूर्यके समान देदीप्यमान है और जिसपर कलशकी ध्वजा फहरा रही है ऐसा यह कुमार विदूरथका वेगशाली रथ सुशोभित है ॥२२॥ इस प्रकार बलवान् यादवोंके रथ सब रंगके घोड़ोंसे सहित हैं तथा वे सैकड़ों या हजारोंकी संख्यामें हैं, उनका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥२३॥ अपने पक्षके शूर-वीर राजाओं तथा समस्त राजकुमारोंके नाना चिह्नोंसे युक्त रथोंको आप यथायोग्य जानते ही हैं ॥२४॥ नाना देशोंसे आये हुए अनेक क्षत्रियोंसे युक्त आपका यह व्यूह अत्यन्त शोभित हो रहा है तथा शत्रु सेनाके लिए भय उत्पन्न कर रहा है ॥२५॥

यह सुनकर जरासन्धने अपने सारथिसे कहा कि हे सारथि ! तू मेरा रथ शीघ्र ही यादवोंकी ओर ले चल ॥२६॥ तदनन्तर सारथिने रथ आगे बढ़ाया और जरासन्ध लगातार

---

१. शुकदण्ड- म. । २. मनुराजस्य क., मेरुराजस्य म. । ३. पारावतो म. । ४. बृहद्ध्वजः म., ख. । ५. रथान् म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जरासन्धसुतास्तत्र यादवैः सह कोपिनः । यथायथं रथादिस्था रणक्रीडां प्रचक्रिरे ॥२८॥
स कालयवनः काल इव स्वयमुपागतः । गजं मलयनामानमारूढो युयुधेऽधिकम् ॥२९॥
सहदेव इति ख्यातो द्रुमसेनो द्रुमस्तथा । जलचित्रादिकौ केतू धनुर्धरमहीजयौ[1] ॥३०॥
स भानुः काञ्चनरथो दुर्धरो गन्धमादनः । सिंहाङ्कश्चित्रमाली च महीपालबृहद्ध्वजौ ॥३१॥
सुवीरादित्यनागाख्यौ सत्यसत्त्वसुदर्शनौ । धनपालशतानीकौ महाशुक्रमहावसू ॥३२॥
वीराख्यो गङ्गदत्तश्च प्रवरः पार्थिवाभिधः । चित्राङ्गदो वसुगिरिः श्रीमान् सिंहकटिः स्फुटः ॥३३॥
मेघनादमहानादौ सिंहनादवसुध्वजौ । वज्रनाभमहाबाहू जितशत्रुपुरंदरौ ॥३४॥
अजिताजितशत्रू च देवानन्दशतद्रुतौ । मन्दरो हिमवान्नाम्ना तौ विद्युत्[2] केतुमालिनौ ॥३५॥
कर्कोटकहृषीकेशौ देवदत्तधनंजयौ । सगरस्वर्णबाहू च मद्यवानच्युतोऽपि च ॥३६॥
दुर्जयो दुर्मुखश्चापि तथा वासुकिकम्बलौ । त्रिशिरा धारणाभिख्यो माल्यवान् संभवाभिधः ॥३७॥
महापद्मो महानागो महासेनो महाजयः । वासवो वरुणाभिख्यः शतानीकोऽपि भास्करः ॥३८॥
गरुत्मान् वेणुदारी च वासुवेगशशिप्रभौ । वरुणादित्यधर्माणौ विष्णुस्वामी सहस्रदिक् ॥३९॥
केतुमाली महामाली चन्द्रदेवो बृहद्बलिः । सहस्ररश्मिरर्चिष्मान्[3] जघ्नुर्मागधसूनवः ॥४०॥
[4]पतन् मनुजमातङ्गतुरङ्गरथसंकटे । स कालयवनो युद्धे निरुद्धो वसुदेवजैः ॥४१॥
तेषां तस्य च संग्रामो यशःसंग्रहकारिणाम् । अन्योन्याक्षेपिवाक्यानां प्रवृत्तो वार्तसंकथम् ॥४२॥
छन्ना तेन कुमाराणां शिरोभी रुधिरारुणैः । चक्रनाराचनिर्भिन्नैः पङ्कजैरिव भूरभात् ॥४३॥
सारणेन कुमारेण स कालयवनो रुषा । नीतः खड्गप्रहारेण कालस्य सदनं चिरात् ॥४४॥

बाणोंकी वर्षासे समस्त यादवोंको आच्छादित करने लगा ॥२७॥ रथ आदि वाहनोंपर स्थित क्रोधसे भरे जरासन्धके पुत्र भी यादवोंके साथ यथायोग्य रणक्रीड़ा करने लगे ॥२८॥ राजा जरासन्धका सबसे बड़ा पुत्र कालयवन जो आये हुए साक्षात् यमराजके समान जान पड़ता था, मलय नामक हाथीपर सवार हो अधिक युद्ध करने लगा ॥२९॥ इसके सिवाय सहदेव, द्रुमसेन, द्रुम, जलकेतु, चित्रकेतु, धनुर्धर, महीजय, भानु, कांचनरथ, दुर्धर, गन्धमादन, सिंहांक, चित्रमाली, महीपाल, बृहद्ध्वज, सुवीर, आदित्यनाग, सत्यसत्त्व, सुदर्शन, धनपाल, शतानीक, महाशुक्र, महावसु, वीराख्य, गंगदत्त, प्रवर, पार्थिव, चित्रांगद, वसुगिरि, श्रीमान्, सिंहकटि, स्फुट, मेघनाद, महानाद, सिंहनाद, वसुध्वज, वज्रनाभ, महाबाहु, जितशत्रु, पुरन्दर, अजित, अजितशत्रु, देवानन्द, शतद्रुत, मन्दर, हिमवान्, विद्युत्केतु, माली, कर्कोटक, हृषीकेश, देवदत्त, धनंजय, सगर, स्वर्णबाहु, मद्यवान्, अच्युत, दुर्जय, दुर्मुख, वासुकि, कम्बल, त्रिशिरस्, धारण, माल्यवान्, सम्भव, महापद्म, महानाग, महासेन, महाजय, वासव, वरुण, शतानीक, भास्कर, गरुत्मान्, वेणुदारी, वासुवेग, शशिप्रभ, वरुण, आदित्यधर्मा, विष्णुस्वामी, सहस्रदिक्, केतुमाली, महामाली, चन्द्रदेव, बृहद्बलि, सहस्ररश्मि और अर्चिष्मान् आदि जरासन्धके पुत्र प्रहार करने लगे ॥३०-४०॥ गिरते हुए मनुष्य, हाथी, घोड़े और रथोंसे व्याप्त युद्धमें कालयवनको वसुदेवके पुत्रोंने घेर लिया ॥४१॥ तदनन्तर यशका संग्रह करनेवाले एवं एक-दूसरेके प्रति निन्दात्मक वाक्योंका प्रयोग करनेवाले उन कुमारों और कालयवनका भयंकर संग्राम हुआ। संग्रामके समय वे अहंकारवश व्यर्थकी डींगे भी हांक रहे थे ॥४२॥ कालयवनने चक्र, नाराच आदि शस्त्रोंसे कितने ही कुमारोंके शिर छेद डाले जिससे खूनके लथ-पथ उन कटे हुए शिरोंसे पृथ्वी ऐसी सुशोभित होने लगी मानो कमलोंसे ही सुशोभित हो रही हो ॥४३॥ यह देख कुमार सारणने क्रोधमें आकर एक ही तलवारके प्रहारसे कालयवनको

---

१. महीधरौ म. । २. विष्णु-म. । ३. जघ्नो म. । ४. तपन् म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृष्णेनाभिमुखीभूता मागधस्य सुताः परे । शूरा मृत्युमुखं नीतास्तेऽर्धचन्द्रैः शिरश्छिदा ॥४५॥
ततः स्वयं जरासन्धः कृष्णस्याभिमुखं रुषा । दधाव धनुरास्फाल्य रथस्थो रथवर्तिनः ॥४६॥
अन्योन्याक्षेपिणोर्युद्धं तयोरुद्धतवीर्ययोः । अस्त्रैः स्वाभाविकैर्दिव्यैरभूदत्यन्तभीषणम्[1] ॥४७॥
अस्त्रं नागसहस्राणां सृष्टप्रज्वलनप्रभम् । माधवस्य वधायासौ क्षिप्रं चिक्षेप मागधः ॥४८॥
अमूढमानसः शौरिर्नागनाशाय गारुडम् । अस्त्रं चिक्षेप तेनाशु ग्रस्तं नागास्त्रमग्रतः ॥४९॥
अस्त्रं संवर्तकं रौद्रं विससर्ज स मागधः । तन्महाश्वसनास्त्रेण माधवोऽपि निराकरोत् ॥५०॥
वायव्यं व्यमुचच्छस्त्रमस्त्रविन्मगधेश्वरः । अन्तरिक्षेण वास्त्रेण [2]व्याक्षिपत्तदधोक्षजः ॥५१॥
अग्निसात्करणे सक्तमस्त्रमाग्नेयमुज्ज्वलम् । मागधक्षिप्तमाक्षिप्तं वारुणास्त्रेण शौरिणा ॥५२॥
अस्त्रं वैरोचनं मुक्तं मागधेन्द्रेण रोषिणा । [3]उपेन्द्रेणापि तद्दूरान्माहेन्द्रास्त्रेण दारितम् ॥५३॥
राक्षसास्त्रं रिपुक्षिप्तं क्षिप्रं नारायणो रणे । क्षिप्त्वा नारायणास्त्रेण [4]सोऽरीणां धृतिमाहरत् ॥५४॥
तामसास्त्रं परिक्षिप्तं भास्करास्त्रेण सोऽभिनत् । अश्वग्रीवास्त्रमत्युग्रं [5]द्राग्ब्रह्मशिरसारुणत् ॥५५॥
दिव्यान्यन्यानि चास्त्राणि क्षिप्तानि प्रतिशत्रुणा । प्रतिक्षिप्य निरायामो वासुदेवोऽवतिष्ठते[6] ॥५६॥
तथा व्यर्थप्रयासोऽसौ क्षितिक्षिप्तशरासनः । रक्ष्यं यक्षसहस्रेण चक्ररत्नमचिन्तयत् ॥५७॥

चिरकालके लिए यमराजके घर भेज दिया ॥४४॥ जरासन्धके शेष शूर-वीर पुत्र युद्धके लिए सामने आये तो अर्धचन्द्र बाणोंके द्वारा शिर काटनेवाले कृष्णने उन्हें मृत्युके मुखमें पहुँचा दिया ॥४५॥

तदनन्तर स्वयं जरासन्ध, क्रोधवश धनुष तानकर रथपर सवार हो, रथपर बैठे हुए कृष्णके सामने दौड़ा ॥४६॥ दोनों ही एक-दूसरेके प्रति तिरस्कारके शब्द कह रहे थे तथा दोनों ही उत्कट वीर्यके धारक थे इसलिए दोनोंमें स्वाभाविक एवं दिव्य अस्त्र-शस्त्रोंसे भयंकर युद्ध होने लगा ॥४७॥ उधर जरासन्धने श्रीकृष्णको मारनेके लिए शीघ्र ही अग्निके समान देदीप्यमान प्रभाका धारक नागास्त्र छोड़ा ॥४८॥ इधर सावधान चित्तके धारक कृष्णने नागास्त्रको नष्ट करनेके लिए गारुड़ अस्त्र छोड़ा और उसने शीघ्र ही आगे बढ़कर उस नागास्त्रको ग्रस लिया ॥४९॥ जरासन्धने प्रलयकालके मेघके समान भयंकर वर्षा करनेवाला संवर्तक अस्त्र छोड़ा तो श्रीकृष्णने भी महाश्वसन नामक अस्त्रके द्वारा तीव्र आँधी चलाकर उसे दूर कर दिया ॥५०॥ अस्त्रोंके प्रयोगको जाननेवाले जरासन्धने वायव्य अस्त्र छोड़ा तो श्रीकृष्णने अन्तरीक्ष अस्त्रके द्वारा उसका तत्काल निराकरण कर दिया ॥५१॥

जरासन्धने जलानेमें समर्थ देदीप्यमान आग्नेय बाण छोड़ा तो कृष्णने वारुणास्त्रके द्वारा उसे दूर कर दिया ॥५२॥ क्रोधमें आकर जरासन्धने वैरोचन शस्त्र छोड़ा तो श्रीकृष्णने माहेन्द्र अस्त्रसे उसे दूरसे ही नष्ट कर दिया ॥५३॥ शत्रुने युद्धमें राक्षसबाण छोड़ा तो कृष्णने शीघ्र ही नारायण अस्त्र चलाकर शत्रुओंके छक्के छुड़ा दिये ॥५४॥ जरासन्धने तामसास्त्र चलाया तो कृष्णने भास्कर अस्त्रके द्वारा उसे नष्ट कर दिया। और जरासन्धने अश्वग्रीव नामक अत्यन्त तीक्ष्ण शस्त्र चलाया तो कृष्णने ब्रह्मशिरस नामक शस्त्रसे उसे तत्काल रोक दिया ॥५५॥ इनके सिवाय शत्रुने और भी दिव्य अस्त्र चलाये परन्तु कृष्ण उन सबका निराकरण कर ज्योंके-त्यों स्थिर खड़े रहे—उनका बाल भी बाँका नहीं हुआ ॥५६॥

इस प्रकार जब जरासन्धका समस्त प्रयास व्यर्थ हो गया तब उसने धनुष पृथ्वीपर फेंक दिया और हजार यक्षोंके द्वारा रक्षित चक्ररत्नका चिन्तवन किया ॥५७॥ चिन्तवन

१. भीषणः म. । २. व्याक्षिप्यत्तदधोक्षजः क. । ३. उपेन्द्रेण च दारितं ख. । ४. शौरिणां म. । ५. चिक्षेपारुणदारुणः म. । ६. ऽधितिष्ठते म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चिन्तानन्तरमेवात्र सहस्रकिरणप्रभम् । चक्रं दिक्चक्रविद्योति मागधस्य करे स्थितम् ॥५८॥
नानास्त्रव्यर्थताक्रुद्धश्चक्रं [1]प्रभ्रश्य मागधः । [2]माधवं प्रतिचिक्षेप क्षिप्रं भ्रूभङ्गभीषणः ॥५९॥
नभस्यागच्छतस्तस्य विच्छायीकृतभास्वतः । यथास्वं चिक्षिपुः सर्वे चक्राण्यन्येऽपि भूभृतः ॥६०॥
शार्ङ्गी शक्तिगदाद्यानि हलं समुसलं हली । गदां वृकोदरः पार्थो नानास्त्राण्यस्त्रपार्थिवः ॥६१॥
सेनानीः परिघं शक्तिं युधिष्ठिरनृपस्तथा । तस्य तु प्रतिघातार्थमुद्गीर्णाशीसमं ययौ ॥६२॥
समुद्रविजयाक्षोभ्यप्रभृतिभ्रातरो भृशम् । अप्रमत्ता महास्त्राणि प्रतिचक्रं प्रचिक्षिपुः ॥६३॥
नेमीशस्त्ववधिज्ञातभाविकार्यगतिस्थितिः । चक्रस्याभिमुखश्चक्रे विष्णुनैव सह स्थितिम् ॥६४॥
वार्यमाणं तु तच्चक्रमस्त्रचक्रेण भूभृताम् । विस्फुरद्विस्फुलिङ्गौघं शनैरागत्य मित्रवत् ॥६५॥
सह प्रदक्षिणीकृत्य भगवन्नेमिना हरिम् । तत्करे दक्षिणे तस्थौ शङ्खचक्राङ्कुशाङ्किते ॥६६॥
व्योम्नि दुन्दुभयो नेदुरपतन्पुष्पवृष्टयः । नवमो वासुदेवोऽयमिति देवा जजल्पुस्तदा ॥६७॥
सुगन्धिवायुभिः सार्धमनुकूलैरलं तदा । हृदयैर्यदुवीराणां समुच्छ्वसितमायुधम् ॥६८॥
[3]चक्रहस्तं हरिं दृष्ट्वा संयुगे मगधाधिपः । दध्यौ चक्रपरावृत्तिरन्यथेयमभूदिति ॥६९॥
चक्रविक्रमसंभारसमाक्रान्तदिगन्तरः । त्रिखण्डाधिपतिश्चण्डो जातः खण्डितपौरुषः ॥७०॥
चतुरङ्गबलं कालः पुत्रा मित्राणि पौरुषम् । कार्यकृत्तावदेवात्र यावद्दैवबलं परम् ॥७१॥
दैवे तु विकले कालपौरुषादिर्निरर्थकः । इति यत्कथ्यते विद्भिस्तत्तथ्यमिति नान्यथा ॥७२॥

करते ही सूर्यके समान देदीप्यमान तथा दिशाओंके समूहको प्रकाशित करनेवाला चक्ररत्न जरासन्धके हाथमें आकर स्थित हो गया ॥५८॥ नाना शस्त्रोंके व्यर्थ हो जानेसे जिसका क्रोध बढ़ रहा था तथा जो भृकुटिके भंगसे अत्यन्त भयंकर जान पड़ता था, ऐसे जरासन्धने घुमाकर शीघ्र ही वह चक्ररत्न कृष्णकी ओर फेंका ॥५९॥ जिसने अपनी कान्तिसे सूर्यको फीका कर दिया था ऐसे आकाशमें आते हुए उस चक्ररत्नको नष्ट करनेके लिए कृष्णपक्षके अन्य समस्त राजाओंने भी यथायोग्य चक्र छोड़े ॥६०॥ श्रीकृष्ण शक्ति तथा गदा आदि लेकर, बलदेव हल और मूसल लेकर, भीमसेन गदा लेकर, अस्त्रविद्याके राजा अर्जुन नाना अस्त्र लेकर, सेनापति-अनावृष्टि परिघ लेकर और युधिष्ठिर प्रकट हुए साँपके समान शक्तिको लेकर आगे आये ॥६१-६२॥ समुद्रविजय तथा अक्षोभ्य आदि भाई अत्यन्त सावधान होकर उस चक्ररत्नकी ओर महा अस्त्र छोड़ने लगे ॥६३॥ किन्तु भगवान् नेमिनाथ, अवधि-ज्ञानके द्वारा आगामी कार्यकी गतिविधिको अच्छी तरह जानते थे इसलिए वे कृष्णके साथ ही चक्ररत्नके सामने खड़े रहे ॥६४॥ राजाओंके अस्त्रसमूह जिसे रोक रहे थे तथा जिससे देदीप्यमान तिलगोंके समूह निकल रहे थे ऐसा वह चक्ररत्न मित्रके समान धीरे-धीरे पास आया और भगवान् नेमिनाथके साथ-साथ कृष्णकी प्रदक्षिणा देकर शंख, चक्र और अंकुशसे चिह्नित कृष्णके दाहिने हाथमें स्थित हो गया ॥६५-६६॥ उसी समय आकाशमें दुन्दुभि बजने लगे, पुष्पवृष्टि होने लगी, और 'यह नौवाँ नारायण प्रकट हुआ है' इस प्रकार देव कहने लगे ॥६७॥ अनुकूल एवं सुगन्धित वायु बहने लगी तथा वीर यादवोंके अस्त्र उनके हृदयोंके साथ-साथ उच्छ्वसित हो उठे ॥६८॥ संग्राममें कृष्णको चक्र हाथमें लिये देख, जरासन्ध इस प्रकार विचार करने लगा कि हाय यह चक्र चलाना भी व्यर्थ हो गया ॥६९॥ चक्ररत्न और पराक्रमके समूहसे जिसने समस्त दिशाओंको व्याप्त कर रखा था तथा जो तीन खण्डका शक्तिशाली अधिपति था ऐसा मैं आज पौरुषहीन हो गया—मेरा पुरुषार्थ खण्डित हो गया ॥७०॥ 'जबतक दैवका बल प्रबल है तभी तक चतुरंग सेना, काल, पुत्र, मित्र एवं पुरुषार्थ कार्यकारी होते हैं ॥७१॥ और दैवके निर्बल होनेपर काल तथा पुरुषार्थ आदि निरर्थक हो जाते हैं···' यह जो विद्वानों द्वारा कहा

१. प्रणम्य म. । २. मागधं म. । ३. चक्रहस्तहरिं म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गर्भेश्वरोऽहमन्येषामलङ्घ्यो महतामपि । प्रारब्धो जेतुमल्पेन गर्भादिक्लेशिना[1] कथम् ॥७३॥
मज्जेतापि यदीदृक्षो दृष्टोऽत्र विधिना ततः । किमर्थं क्लेशितो बाल्ये गोकुले धिग्विधीहितम् ॥७४॥
लोकान्धीकरणे दक्षां धीरधैर्यविलोपिनीम् । [2]बन्धकीमिव धिग्लक्ष्मीं परसंक्रमकाङ्क्षिणीम् ॥७५॥
ध्यायन्नित्यादि निश्चित्य मृत्युकालमुपस्थितम् । प्रकृत्यैव जरासन्धः कृष्णमित्याह निर्भयः ॥७६॥
क्षिप चक्रं किमर्थं त्वं गोप ! कालमुपेक्षसे । कालस्योत्क्षेपको मुग्ध ! दीर्घसूत्री विनश्यति ॥७७॥
इत्युक्तस्तं प्रति प्राह प्रकृत्या प्रश्रयी हरिः । चक्रवर्त्यहमुद्भूतः शासने मम तिष्ठ भोः ॥७८॥
अपकारे प्रवृत्तस्त्वमस्माकं यद्यपि स्फुटम् । तथापि मृष्यतेऽस्माभिर्नतिमात्रप्रसादिभिः ॥७९॥
तथोदितः स तं प्राह प्रसभं [3]गर्वनिर्भरः । चक्रं नालातचक्रं मे किमनेन स्मयं गतः ॥८०॥
अथवादृष्टकल्याणः स्वल्पेनाल्पः स्मयी भवेत् । न महान् दृष्टकल्याणः सस्मयो [4]महतापि हि ॥८१॥
सह दशार्हचक्रेण[5] चक्रेणानेन च त्वकम् । नृपचक्रेण त्वामाशु समुद्रे प्रक्षिपामि भोः ॥८२॥
इत्युक्ते कुपितश्चक्री चक्रं [6]प्रभ्राम्य सोऽमुचत् । [7]भूभृतस्तेन गत्वारं वक्षोभित्तिरभिद्यत ॥८३॥
आगतं च पुनः पाणिं चक्रपाणेः क्षणेन तत् । प्रयुक्तस्य कृतार्थस्य कालक्षेपो हि निष्फलः ॥८४॥
पाञ्चजन्यं हरिः शङ्खं दध्मौ यदुमनोहरम् । नेमिपार्थबलाग्रण्यो गण्या दध्मुर्निजाम्बुजम् ॥८५॥

जाता है वह सत्य ही कहा जाता है रंचमात्र भी अन्यथा नहीं है ॥७२॥ मैं गर्भसे ही ईश्वर था और बड़ेसे-बड़े लोगोंके लिए अलंघनीय था फिर भी गर्भके प्रारम्भसे ही क्लेश उठानेवाले एक छोटे-से व्यक्तिके द्वारा क्यों जीता जा रहा हूँ ? ॥७३॥ यदि ऐसा साधारण व्यक्ति भी, विधाताके द्वारा मेरा जीतनेवाला देखा गया था तो फिर इसे बाल्य अवस्थामें गोकुलमें नाना क्लेश क्यों उठाने पड़े ? इसलिए विधिकी इस चेष्टाको धिक्कार है ॥७४॥ जो लोगोंको अन्धा बनानेमें दक्ष है, धीर-वीर मनुष्योंके भी धैर्यको नष्ट करनेवाली है तथा जो वेश्याके समान अन्य पुरुषके पास जानेकी इच्छा रखती है ऐसी इस लक्ष्मीको धिक्कार है ॥७५॥ इत्यादि विचार करते-करते जरासन्धको यद्यपि यह निश्चय हो चुका था कि हमारा मरणकाल आ चुका है तथापि वह प्रकृतिसे निर्भय होनेके कारण कृष्णसे इस प्रकार बोला ॥७६॥ अरे गोप ! तू चक्र चला, व्यर्थ ही समयकी उपेक्षा क्यों कर रहा है ? अरे मूर्ख ! समयकी उपेक्षा करनेवाला दीर्घसूत्री मनुष्य अवश्य ही नष्ट होता है ॥७७॥ जरासन्धके इस प्रकार कहनेपर स्वभावसे विनयी कृष्णने उससे कहा कि मैं चक्रवर्ती उत्पन्न हो चुका हूँ इसलिए आजसे मेरे शासनमें रहिए ॥७८॥ यद्यपि यह स्पष्ट है कि तुम हमारा अपकार करनेमें प्रवृत्त हो तथापि हम नमस्कार मात्रसे प्रसन्न हो तुम्हारे अपकारको क्षमा किये देते हैं ॥७९॥ श्रीकृष्णके इस प्रकार कहनेपर अहंकारसे भरे हुए जरासन्धने जोर देकर कहा—अरे यह चक्र तो मेरे लिए अलात चक्रके समान है तू इससे अहंकारको क्यों प्राप्त हो गया है ? ॥८०॥ अथवा जिसने कभी कल्याण देखा ही नहीं ऐसा क्षुद्र मनुष्य थोड़ा-सा वैभव पाकर ही अहंकार करने लगता है और जिसने कल्याण देखा है ऐसा महान् पुरुष बहुत भारी वैभव पाकर भी अहंकार नहीं करता ॥८१॥ मैं तुझे यादवोंके साथ, इस चक्रके साथ तथा तेरी सहायता करनेवाले अन्य राजाओंके साथ शीघ्र ही समुद्रमें फेंकता हूँ ॥८२॥ जरासन्धके इस प्रकार कहनेपर चक्रवर्ती कृष्णने कुपित हो घुमाकर चक्ररत्न छोड़ा और उसने शीघ्र ही जाकर जरासन्धकी वक्षःस्थलरूपी भित्तिको भेद दिया ॥८३॥ वह चक्ररत्न जरासन्धको मारकर क्षण-भरमें पुनः कृष्णके हाथमें आ गया सो ठीक ही है क्योंकि भेजे हुए व्यक्तिके कृतकार्य हो चुकनेपर कालक्षेप करना निष्फल है ॥८४॥ कृष्णने यादवोंके मनको हरण करनेवाला अपना पांचजन्य शंख फूँका

१. क्लेदिना म. । २. वेश्यामिव । ३. गर्भनिर्भरः म. । ४. महतामपि म., ङ., ख. । ५. वक्रेण ङ । ६. प्रभृत्य ङ । ७. प्रभृतः म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वादित्रध्वनयो धीरा क्षुभिताब्धिस्वनोपमाः । प्रभूताः प्रादुरभवंस्तथैवाभयघोषणाः ॥८६॥
स्वसैन्यं परसैन्यं च संन्यस्तस्वभयं ततः । अनुक्तमप्यभूदेत्य वासुदेवस्य शासने ॥८७॥
नृपो दुर्योधनो द्रोणस्तथा दुश्शासनादयः । निर्विण्णा विदुरस्यान्ते जैनीं दीक्षां प्रपेदिरे ॥८८॥
कर्णः सुदर्शनोद्याने दीक्षां दमवरान्तिके । जग्राह रणदीक्षान्ते निर्वाणफलदायिनीम् ॥८९॥
तत्सुवर्णाक्षरं यत्र कर्णकुण्डलमत्यजत् । कर्णः कर्णसुवर्णाख्यं स्थानं तत्कीर्तितं जनैः ॥९०॥
गतो मातलिरापृच्छ्य सेवेयं स्वामिनोऽन्तिकम् । यादवाः शिविरस्थानं निजं जग्मुः सपार्थिवाः ॥९१॥

पृथ्वीच्छन्दः

निरीक्ष्य मधुसूदनेन युधि मारते मागधं हतं दिनकृदम्बुधावकृत मज्जनं सज्जनः ।
शुचा प्रकटरोदनादिव दधन्मुखं दिग्मुखैर्जपाकुसुमपाटलं स्विव जलाञ्जलेर्दित्सया ॥९२॥
व्रजन्ति खलु जन्तवः कृतशुभोदये संपदां प्रचण्डपुरुषान्तराक्रमणकारिणीं तत्क्षये ।
भजेद्विपदमप्यतो जिनमते जना निर्मलं कुरुध्वमपुनर्भवप्रभवहेतुभूतं तपः ॥९३॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ जरासन्धवधवर्णनो
नाम द्वापञ्चाशत्तमः सर्गः ॥५२॥

□

और भगवान् नेमिनाथ, अर्जुन तथा सेनापति अनावृष्टिने भी अपने-अपने शंख फूँके ॥८५॥ क्षोभको प्राप्त समुद्रके शब्दके समान बाजोंके गम्भीर शब्द होने लगे और चारों ओर अभय घोषणाएँ प्रकट की गयीं ॥८६॥ जिससे स्वसेना और परसेना अपना-अपना भय छोड़ बिना कुछ कहे ही—चुपचाप आकर श्रीकृष्णकी आज्ञाकारिणी हो गयीं ॥८७॥ राजा दुर्योधन, द्रोण तथा दुःशासन आदिने संसारसे विरक्त हो मुनिराज विदुरके समीप जिनदीक्षा धारण कर ली ॥८८॥ राजा कर्णने भी रणदीक्षाके बाद सुदर्शन नामक उद्यानमें दमवर मुनिराजके समीप मोक्षफलको देनेवाली दीक्षा ग्रहण कर ली ॥८९॥ राजा कर्णने जिस स्थानपर सुवर्णके अक्षरोंसे भूषित कर्णकुण्डल छोड़े थे उस स्थानको लोग कर्ण-सुवर्ण कहने लगे ॥९०॥ 'क्या मैं अपने स्वामीकी सेवा करूँ ?' यह पूछकर मातलि अपने स्वामी इन्द्रके पास चला गया और यादव भी अन्य राजाओंके साथ अपने-अपने शिविरमें चले गये ॥९१॥

उस समय सूर्य अस्त हो गया और सन्ध्याकी लालिमा दशों दिशाओंमें फैल गयी, उससे ऐसा जान पड़ने लगा मानो संग्राममें श्रीकृष्ण द्वारा मारे गये जरासन्धको देखकर सहृदय सूर्य पहले तो शोकके कारण खूब रोया इसलिए उसका मुख जपाकुसुमके समान लाल हो गया और पश्चात् जलांजलि देनेकी इच्छासे उसने समुद्रमें मज्जन किया है ॥९२॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि ये संसारके प्राणी, शुभ कर्मका उदय होनेपर बड़ेसे-बड़े पुरुषोंपर आक्रमण करनेवाली सम्पदाको प्राप्त होते हैं और शुभ कर्मका उदय नष्ट होनेपर विपत्तियाँ भी भोगते हैं इसलिए हे भक्तजनो ! जिनमतमें स्थिर हो मोक्ष-प्राप्तिमें कारणभूत निर्मल तप करो ॥९३॥

इस प्रकार अरिष्टनेमिपुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंश पुराणमें जरासन्धके वधका वर्णन करनेवाला बावनवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥५२॥

□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रिपञ्चाशत्तमः सर्गः

अथाभ्युदयमभ्येते हरिदश्वे हराविव । परालङ्घ्यमहातेजः[1] प्रसाधितहरिन्मुखे ॥१॥
कृतेषु व्रणभङ्गेषु[2] प्रवीराणामितोऽमुतः । संस्कारेषु तथान्त्येषु[3] जरासन्धादिभूभृताम् ॥२॥
आस्थाने ते यथास्थानं समुद्रविजयादयः । राजानो हरिणासीना वसुदेवागमोन्मुखाः ॥३॥
किमर्थं क्षेमवार्ता नो नाद्याप्यानकदुन्दुभेः । सपुत्रनप्तृकस्याद्रिं गतस्यैति हि खेचरम् ॥४॥
इत्यन्योन्याश्रितालापास्ते नृपा यावदासते । धेनुवत्ससमस्वान्ता बालवृद्धपुरःसराः ॥५॥
तावदुद्योतिताशास्ता विद्याधर्यः खविद्युतः । वेगवत्या सहागत्य नागवध्वा कृताशिषः ॥६॥
जगुरद्य[4] कृतार्था वो गुरुदत्ताशिषोऽखिलाः । सुतेन मागधो ध्वस्तो यच्च पित्रा नमश्चराः ॥७॥
सपुत्रनप्तृकः क्षेमी क्षेमिणां प्रणयी स वः । यथाज्येष्ठं नमत्यङ्घ्रीन् सुतानाश्लेषयत्यपि ॥८॥
इति श्रुत्वा प्रमोदेन ते प्रकृष्टतनूरुहाः । पप्रच्छुः खेचरास्तेन विजिताः कथमित्यमूः ॥९॥
ऊचे[5] वनवती देवी वसुदेवहितोद्यता[6] । श्रूयतां वसुदेवस्य रणे सामर्थ्यमित्यसौ ॥१०॥
गत्वा स विजयार्धाद्रिं श्वसुरस्यालपूर्वकैः । एकीभूय खगैः खेटानरुणद्रणदक्षिणः ॥११॥
समग्रबलयुक्तास्ते[7] ततस्तेन पुरस्कृताः । रणे मागधसाहाय्यं विरहय्य युधि स्थिताः ॥१२॥

अथानन्तर दूसरे दिन, शत्रुओंके द्वारा अलंघ्य महातेजके द्वारा दिशाओंके मुखको अलंकृत करनेवाले कृष्णके समान जब सूर्य उदयको प्राप्त हुआ तब इधर यादवोंकी सेनामें सुभटोंके घाव अच्छे किये गये और उधर जरासन्ध आदि राजाओंके अन्तिम संस्कार सम्पन्न किये गये ॥१–२॥ एक दिन समुद्रविजय आदि राजा, सभामण्डपमें कृष्णके साथ यथास्थान बैठे हुए वसुदेवके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे थे ॥३॥ वे परस्परमें चर्चा कर रहे थे कि पुत्र और नातियोंके साथ विजयार्ध पर्वतपर गये हुए वसुदेवको बहुत समय हो गया पर आज तक उनकी कुशलताका समाचार क्यों नहीं आया ? ॥४॥ इस प्रकार जो परस्पर वार्तालाप कर रहे थे, जिनके हृदय गाय और बछड़ेके समान स्नेहसे सराबोर थे एवं जो बालक और वृद्धजनोंसे युक्त थे ऐसे सब राजा यथास्थान बैठे ही थे कि उसी समय आकाशमें चमकती हुई बिजलीके समान, अपने उद्योत से दिशाओंको प्रकाशित करनेवाली अनेक विद्याधरियाँ वेगवती नागकुमारीके साथ वहाँ आ पहुँचीं और आशीर्वाद देती हुई कहने लगीं कि आप लोगोंको गुरुजनोंने जो आशीर्वाद दिये थे वे आज सब सफल हो गये। इधर पुत्रने जरासन्धको नष्ट किया है तो उधर पिताने विद्याधरोंको नष्ट कर दिया है ॥५–७॥ पुत्र और नातियोंसे सहित तथा आप लोगोंके स्नेहसे युक्त वसुदेव अच्छी तरह हैं और अपनेसे ज्येष्ठ जनोंके चरणोंमें प्रणाम और पुत्रोंके प्रति आलिंगनका सन्देश कह रहे हैं ॥८॥ विद्याधरियोंके मुखसे यह समाचार सुनकर हर्षकी अधिकतासे जिनके रोमांच निकल आये थे ऐसे सब राजाओंने उनसे पूछा कि वसुदेवने विद्याधरोंको किस प्रकार जीता था ? ॥९॥ यह सुन वसुदेवके हित करनेमें उद्यत रहनेवाली नागकुमारी देवीने कहा कि वसुदेवने रणमें जो सामर्थ्य दिखायी उसे ध्यानसे सुनिए ॥१०॥ युद्धमें निपुण वसुदेवने विजयार्ध पर्वतपर जाकर अपने श्वसुर और साले आदि विद्याधरोंसे मिलकर यहाँ आनेवाले विद्याधरोंको रोका ॥११॥ तदनन्तर समग्र सेनासे युक्त उन विद्याधरोंका जब वसुदेवने रणमें सामना किया तो वे जरासन्धकी सहायता छोड़कर स्वयं युद्धमें संलग्न हो गये ॥१२॥

---

१. महत्तेजः म. । २. व्रजभङ्गेषु म., ख. । ३. तथान्येषु म., क. । ४. जगमु- म. । ५. घनवती म. । ६. हितोद्यताः म. । ७. युक्तांस्ते म. ।.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बलद्वयस्य संपाते जाते तत्र ततोऽन्वभूत् । प्रजानां प्रलयाशङ्का भयव्याकुलचेतसाम्[1] ॥१३॥
द्वन्द्वयुद्धे प्रवृत्तेऽतो नृवाजिरथहस्तिनाम् । अन्योन्यं न्यायतोऽन्योन्यमवधीत्सैन्ययोर्द्वयम् ॥१४॥
आनकेन सपुत्रेण प्रद्युम्नेनाभिमानिना । तथा शम्बेन पक्षेण खेचराणां जनेन च ॥१५॥
हेतिज्वालावहैरेभिः शत्रुभूभृत्कदम्बकम् । भस्मीकुर्वद्भिरुद्भूतैर्लोलैर्दावानलायितम् ॥१६॥
अत्रान्तरे सुरैस्तुष्टैस्तस्मिन्नुद्घुष्टमम्बरे[2] । नवमो वासुदेवोऽभूद्वसुदेवस्य नन्दनः ॥१७॥
निहतश्च जरासन्धस्तच्चक्रेणैव संयुगे । प्रतिशत्रुर्गुणद्वेषी वासुदेवेन चक्रिणा ॥१८॥
इत्युक्त्वा वसुदेवस्य रथस्योपरि पातिता । नानारत्नमयी वृष्टिः कौमुदीव दिवः सुरैः ॥१९॥
गिरस्ता मरुतां श्रुत्वा ततस्ते रिपुखेचराः । त्रस्ताः शरणमायाता वसुदेवमितोऽमुतः ॥२०॥
वसुदेवस्य पुत्राणां शम्बप्रद्युम्नयोरथोः । वसुदेवमुपाश्रित्य कन्या विद्याधरा ददुः ॥२१॥
वयं तु वसुदेवोक्ता युष्मदन्तिकमागताः । क्षेमोदन्तं तथैवास्य निवेदयितुमागताः ॥२२॥
नानाविद्याधराधीशा नानाप्राभृतपणयः[3] । आनकेन सहायान्ति ते नारायणभक्तितः ॥२३॥
[4]यावद्वनवती तेषामितीष्टं कथयत्यसौ । तावद्विमानसंघातैः खेटानामावृतं नभः ॥२४॥
अवतीर्य विमानेभ्यो वसुदेवानुयायिनः । वासुदेवं बलोपेतं प्रणेमुः प्राभृतान्विताः ॥२५॥
अभ्युत्थाय ततो भक्तौ पितरं रामकेशवौ । प्रणेमतुरनेनापि तावाश्लिस्यामिनन्दितौ ॥२६॥
ज्येष्ठानपूजयत्सर्वान्प्रणम्यानकदुन्दुभिः । प्रद्युम्नाद्या यथायोग्यं प्रणेमुर्गुरुबान्धवान् ॥२७॥
यथाक्रमं नमोऽथानाः केशवेन बलेन च । प्रतिसम्मानिताः सर्वे सफलं जन्म मेनिरे ॥२८॥

तत्पश्चात् वहाँ जब दोनों सेनाओंमें घोर युद्ध होने लगा तब लोगोंको प्रलयकी आशंका होने लगी और उनके चित्त भयसे व्याकुल हो उठे ॥१३॥ हाथी, घोड़े, रथ और प्यादोंका द्वन्द्व युद्ध होनेपर दोनों सेनाएँ परस्पर न्यायपूर्वक एक-दूसरेका वध करने लगीं ॥१४॥ वसुदेव, उनके पुत्र, अभिमानी प्रद्युम्न, शम्ब तथा पक्षके अनेक विद्याधर ये सब शस्त्ररूपी ज्वालाओंको धारण कर शत्रुरूपी राजाओंके समूहको भस्म कर रहे थे एवं बड़ी चपलताके साथ सामने आये थे इसलिए दावानलके समान जान पड़ते थे ॥१५–१६॥ इसी अवसरपर सन्तुष्ट हुए देवोंने आकाशमें यह घोषणा की कि वसुदेवका पुत्र कृष्ण नौवाँ नारायण हुआ है और उसने चक्रधारी होकर अपने गुणोंमें द्वेष रखनेवाले प्रतिशत्रु जरासन्धको उसीके चक्रसे युद्धमें मार डाला है। यह कहकर देवोंने आकाशसे चाँदनीके समान नानारत्नमयी वृष्टि वसुदेवके रथपर करनी प्रारम्भ कर दी ॥१७–१९॥ तदनन्तर शत्रु विद्याधर देवोंकी उक्त वाणी सुनकर भयभीत हो गये और जहाँ-तहाँसे एकत्रित हो वसुदेवकी शरणमें आने लगे ॥२०॥ उन्होंने वसुदेवके पास आकर उनके पुत्रोंको एवं प्रद्युम्न कुमार और शम्ब कुमारको अपनी अनेक कन्याएँ प्रदान कीं ॥२१॥ हम लोग वसुदेवकी प्रेरणा पाकर यह कुशल समाचार सुनानेके लिए आपके पास आयी हैं ॥२२॥ नारायणकी भक्तिसे प्रेरित हुए अनेक विद्याधर राजा, नाना प्रकारके उपहार हाथमें लिये वसुदेवके साथ आ रहे हैं ॥२३॥ इस प्रकार वनवती (नागकुमारी) देवी जबतक उन्हें यह इष्ट समाचार सुनाती है तबतक विद्याधरोंके विमानोंके समूहसे आकाश व्याप्त हो गया ॥२४॥ वसुदेवके अनुयायी विद्याधरोंने विमानोंसे उतरकर बलदेव और कृष्णको नमस्कार किया तथा नाना प्रकारके उपहार समर्पित किये ॥२५॥ तदनन्तर भक्तिसे भरे बलदेव और नारायणने पिताको नमस्कार किया और पिताने भी दोनोंका आलिंगन कर उनकी बहुत प्रशंसा की ॥२६॥ वसुदेवने समुद्रविजय आदि समस्त गुरुजनोंको प्रणाम किया एवं प्रद्युम्न आदिने भी गुरुजनों एवं भाई-बान्धवोंको यथायोग्य नमस्कार किया ॥२७॥ नारायण और बलभद्रने यथायोग्य जिनका सत्कार किया था ऐसे समस्त विद्याधरोंने अपना-अपना जन्म सफल माना ॥२८॥

१. चेतसा म. । २. न्नुत्कृष्टसंगरे म. । ३. प्रभृतपाणयः म. । ४. यावद्धनवती म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समस्तबलसंयुक्तौ प्रतीचीं बलकेशवौ । प्रयातौ प्रमदापूर्णौ पूर्णसर्वमनोरथौ ॥२९॥
[1]आनन्दं ननृतुर्यत्र यादवा मागधे हते । आनन्दपुरमित्यासीत्तत्र जैनालयाकुलम् ॥३०॥
ततश्चक्रमहं कृत्वा सर्वरत्नान्वितो हरिः । दक्षिणं भारतं जिग्ये सदेवासुरमानुषम् ॥३१॥
वर्षैरष्टाभिरिष्टार्थैर्सेव्यमानोऽनुवासरम्[2] । जितजेयो ययौ कृष्णः स कोटिकशिलां प्रति ॥३२॥
यतस्तस्यामुदारायामनेका ऋषिकोटयः । सिद्धास्ततः प्रसिद्धात्र [3]कौ कोटिकशिला शिला ॥३३॥
शिलायां तत्र कृत्वादौ पवित्रायां बलिक्रियाम् । दोर्भ्यामुत्क्षिपतिस्मासौ तां विष्णुश्चतुरङ्गुलम् ॥३४॥
सा शिला योजनोच्छ्रायं[4]समायोजनविस्तृता । अर्धभारतवर्षस्थदेवतापरिरक्षिता ॥३५॥
तद्बाहुनोद्ध्वमुत्क्षिप्ता त्रिपृष्ठेन शिला पुरा । मूर्द्धदघ्नं द्विपृष्ठेन कण्ठदघ्नं स्वयंभुवा ॥३६॥
वक्षोद्वयमुत्क्षिप्ता च पुरुषोत्तमचक्रिणा । क्षिप्ता पुरुषसिंहेन हृदयावधि हारिणी ॥३७॥
पुण्डरीकः कटीमात्रमूरुद्रघ्नं हि दत्तकः । जानुमात्रं च सौमित्रिः कृष्णोऽधाच्चतुरङ्गुलम् ॥३८॥
प्रधानपुरुषादीनां सर्वेषां हि युगे युगे । भिद्यते कालभेदेन शक्तिः शक्तिमतामपि ॥३९॥
शिलाबलेन विज्ञातो महाकायबलो बलैः । [5]सोऽनुयातो ययौ चक्री द्वारिकां प्रतिबान्धवैः ॥४०॥
प्रविष्टश्च विशिष्टानामाशीर्भिरभिनन्दितः । द्वारिकां द्वारकान्तां स कृतशोभां दिवं यथा ॥४१॥
यथायोग्यं समोग्यास्ते भूनभोयानभूभृतः । प्रासादेषु स्थिताः सुस्था द्वारिकायां यथाविधि ॥४२॥

तदनन्तर जिनके सर्व मनोरथ पूर्ण हो गये थे तथा जो हर्षसे परिपूर्ण थे ऐसे बलदेव और नारायणने समस्त सेनाको साथ ले पश्चिम दिशाकी ओर प्रस्थान किया ॥२९॥ जरासन्धके मारे जानेपर यादवोंने जिस स्थानपर आनन्द-नृत्य किया था वह स्थान आनन्दपुरके नामसे प्रसिद्ध और जैन-मन्दिरोंसे व्याप्त हो गया ॥३०॥ तदनन्तर सब रत्नोंसे सहित नारायणने, चक्ररत्नकी पूजा कर देव, असुर और मनुष्योंसे सहित दक्षिण भरतक्षेत्रको जीता ॥३१॥ लगातार आठ वर्षों तक प्रतिदिन मनोवांछित पदार्थोंने जिनकी सेवा की थी और जीतने योग्य समस्त राजाओंको जिन्होंने जीत लिया था ऐसे श्रीकृष्ण अब कोटिक शिलाकी ओर गये ॥३२॥ चूँकि उस उत्कृष्ट शिलापर अनेक करोड़ मुनिराज सिद्ध अवस्थाको प्राप्त हुए हैं इसलिए वह पृथ्वीमें कोटिक शिलाके नामसे प्रसिद्ध है ॥३३॥ श्रीकृष्णने सर्व-प्रथम उस पवित्र शिलापर पूजा की और उसके बाद अपनी दोनों भुजाओंसे उसे चार अंगुल ऊपर उठाया ॥३४॥ वह शिला एक योजन ऊँची, एक योजन लम्बी और एक योजन चौड़ी है तथा अर्ध भरतक्षेत्रमें स्थित समस्त देवोंके द्वारा सुरक्षित है ॥३५॥ पहले त्रिपृष्ठ नारायणने इस शिलाको जहाँतक भुजाएँ ऊपर पहुँचती हैं वहाँतक उठाया था। दूसरे द्विपृष्ठने मस्तक तक, तीसरे स्वयम्भूने कण्ठ तक, चौथे पुरुषोत्तमने वक्षःस्थल तक, पाँचवें नृसिंहने हृदय तक, छठे पुण्डरीकने कमर तक, सातवें दत्तकने जाँघों तक, आठवें लक्ष्मणने घुटनों तक और नवें कृष्ण नारायणने उसे चार अंगुल तक ऊपर उठाया था ॥३६-३८॥ क्योंकि युग-युगमें कालभेद होनेसे प्रधान पुरुषको आदि लेकर सभी शक्तिशाली मनुष्योंकी शक्ति भिन्न-भिन्न रूप होती आयी है ॥३९॥ शिला उठानेके बलसे समस्त सेनाने जान लिया कि श्रीकृष्ण महान् शारीरिक बलसे सहित हैं। तदनन्तर चक्ररत्नको धारण करनेवाले श्रीकृष्ण बान्धवजनोंके साथ द्वारिकाकी ओर वापस आये ॥४०॥ वहाँ वृद्धजनोंने नाना प्रकारके आशीर्वादोंसे जिनका अभिनन्दन किया था ऐसे श्रीकृष्ण नारायणने मनोहर गोपुरोंसे सुन्दर एवं स्वर्गके समान सजी हुई द्वारिकापुरीमें प्रवेश किया ॥४१॥ जो भूमिगोचरी और विद्याधर राजा उनके

---

१. आनन्दे ननदु–म. । २. सेवमानो नु वासरम् म. । ३. लोके कोटिशिला शिला म. । ४. योजनोच्छ्राया समा- म. । ५. सानुयातो म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभिषिक्तौ ततः सर्वैर्भूपैर्भूचरखेचरैः । भरतार्धविभुत्वे तौ प्रसिद्धौ रामकेशवौ ॥४३॥
संस्थाप्य सहदेवं स चक्री राजगृहे नृपम् । मागधानां चतुर्भागं ददौ तस्मै गतस्मयः ॥४४॥
उग्रसेनसुतायादाद्द्वाराय[1] मथुरां पुरीम् । स महानेमये शौर्यनगरं प्रददौ नृपः ॥४५॥
श्रीहास्तिनपुरं प्रीत्या पाण्डवेभ्यः प्रियं हरिः । [2]कोशलं रुक्मनाभाय रुधिरात्मजसूनवे ॥४६॥
भूचरान् खेचरान्भूपानौचित्येन समागतान् । स्थानेषु स्थापनां चक्रे चक्रपाणिर्यथायथम् ॥४७॥
विसृष्टाश्च यथास्थानं यातास्ते पाण्डवादयः । आरेमुर्द्वारिकायां तु यादवास्त्रिदशा यथा ॥४८॥

वसन्ततिलका

चक्रं सुदर्शनमदृष्टमुखं[3] रिपूणां शार्ङ्गं धनुर्ध्वननधूतविपक्षपक्षम् ।
सौनन्दकोऽपि च गदापि च कौमुदी सा मोघेतरा रिपुषु शक्तिरमोघमूला ॥४९॥
शङ्खश्च [4]शङ्खखचितस्य स पाञ्चजन्यः श्रीकौस्तुभो मणिरसावनणुप्रतापः ।
रत्नानि सप्त महितानि हरेर्हितानि व्याभान्ति दिव्यमयमूर्तियुतानि तानि ॥५०॥
दिव्यायुधं हलमभादपराजिताख्यं दिव्या गदामुसलशक्त्यवतंसमालाः ।
रत्नानि पञ्च महितानि हलायुधस्य हेलाविधूतरिपुमण्डलविभ्रमस्य ॥५१॥
राज्ञां स षोडशसहस्रगुणैर्गुणज्ञैर्गण्यैर्गुणी प्रणतमूर्धभिरर्धचक्री ।

साथ लौटकर आये थे उन्हें यथायोग्य भोग्य सामग्री दी गयी और वे द्वारिकापुरीके महलोंमें विधिपूर्वक निश्चिन्ततासे ठहराये गये थे ॥४२॥

तदनन्तर समस्त भूमिगोचरी और विद्याधर राजाओंने अतिशय प्रसिद्ध बलदेव और श्रीकृष्णको अर्ध भरतक्षेत्रके स्वामित्वपर अभिषिक्त किया अर्थात् राज्याभिषेक कर उन्हें अर्ध भरतक्षेत्रका स्वामी घोषित किया ॥४३॥ तत्पश्चात् चक्ररत्नके धारक श्रीकृष्णने जरासन्धके द्वितीय पुत्र सहदेवको राजगृहका राजा बनाया और उसे निरहंकार होकर मगध देशका एक चौथाई भाग प्रदान किया ॥४४॥ उग्रसेनके पुत्र द्वारके लिए मथुरापुरी दी, महानेमिके लिए शौर्यपुर दिया ॥४५॥

पाण्डवोंके लिए प्रीतिपूर्वक उनका प्रिय हस्तिनापुर दिया और राजा रुधिरके नाती रुक्मनाभके लिए कोशल देश दिया ॥४६॥ इस प्रकार चक्रपाणि—श्रीकृष्णने आये हुए समस्त भूमिगोचरी और विद्याधर राजाओंकी यथायोग्य स्थानोंपर स्थापना की—यथायोग्य स्थानोंका उन्हें राजा बनाया ॥४७॥ तदनन्तर श्रीकृष्णसे विदा लेकर पाण्डव आदि यथास्थान चले गये और यादव देवोंके समान द्वारिकामें क्रीड़ा करने लगे ॥४८॥

शत्रुओंका मुख नहीं देखनेवाला सुदर्शन चक्र, अपने शब्दसे शत्रुपक्षको कम्पित करनेवाला शार्ङ्ग धनुष, सौनन्दक खड्ग, कौमुदी गदा, शत्रुओंपर कभी व्यर्थ नहीं जानेवाली अमोघमूला शक्ति, पांचजन्य शंख और विशाल प्रतापको प्रकट करनेवाला कौस्तुभ मणि; शंखके चिह्नसे चिह्नित श्रीकृष्णके ये सात रत्न थे। ये सातों रत्न देवोंके द्वारा पूजित, अतिशय हितकारी और दिव्य आकारसे युक्त होते हुए अत्यन्त सुशोभित थे ॥४९-५०॥ शत्रु-समूहके विभ्रमको अनायास ही नष्ट करनेवाले बलदेवके, अपराजित नामक दिव्य हल, दिव्य गदा, दिव्य मुसल, दिव्य शक्ति और दिव्य माला ये पाँच रत्न थे। बलभद्रके भी ये पाँचों रत्न देवोंके द्वारा पूजित थे ॥५१॥ गुणोंको जाननेवाले, गणनीय एवं नतमस्तक सोलह हजार प्रमुख राजा और आठ हजार

१. सुतायाद्वीराय क., सुतायादाद्वराय म.। २. कोशलां म.। ३. सुखं म.। ४. शङ्खाख्येन लक्षणेन खचितस्य (क. टि.)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भक्तैस्तदर्धगणनैर्गणबद्धदेवैराज्ञाकरैः सुखमसेवत सेव्यमानः ॥५२॥
शार्ङ्गी स षोडशसहस्रवराङ्गनानां देवाङ्गनाललितविभ्रमहारिणीनाम् ।
संघैः क्रमेण रतिपूपनिषेविताङ्गो रेमे तदर्धगणनैस्तु हली सुदारैः ॥५३॥

मालिनीच्छन्दः

हिमशिशिरवसन्तग्रीष्मवर्षाशरत्सु प्रिययुवतिसहाया यादवा द्वारिकायाम् ।
जिनमतकृतधर्मा योग्यदेशेषु [२]भोगैरविरतरतिरागा रेमिरे सार्वभौमाः ॥५४॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ कृष्णविजयवर्णनो नाम त्रिपञ्चाशत्तमः सर्गः ॥५३॥

□

आज्ञाकारी, भक्त, गणबद्ध देव जिनकी निरन्तर सेवा करते थे ऐसे श्रीकृष्ण सुखका उपभोग करते थे ॥५२॥ रतिकालमें देवांगनाओंके समान सुन्दर हाव-भावोंसे मनको हरनेवाली सोलह हजार स्त्रियाँ श्रीकृष्णके शरीरकी सेवा करती थीं और उनसे आधी अर्थात् आठ हजार उत्तम स्त्रियाँ बलदेवके शरीरकी सेवा करती थीं। श्रीकृष्ण और बलदेव अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ यथेच्छ क्रीड़ा करते थे ॥५३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो जिन-धर्मको धारण करनेवाले थे, जिनके रति और रागमें कभी व्यवधान नहीं पड़ता था, प्रिय युवतियाँ ही जिनकी सहायक थीं और जो समस्त भूमिके अधिपति थे ऐसे यादव लोग, द्वारिकापुरीमें हेमन्त, शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा और शरद् ऋतुके योग्य स्थानोंमें मनचाहे भोग भोगते हुए क्रीड़ा करते थे ॥५४॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें कृष्णविजयका वर्णन करनेवाला तिरपनवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥५३॥

□

१. गुणनैः क., ख., ग., घ. । २. योगैः म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुःपञ्चाशः सर्गः

श्रेणिकेन पुनः पृष्टश्चेष्टितं पाण्डवोद्भवम् । संदेहध्वान्तघातार्को गौतमः स जगौ गणी ॥१॥
स्थितेषु हास्तिनपुरे पाण्डवेषु यथाक्रमम् । निजस्वामिपरिप्राप्त्या तुतुषुः कुरवोऽधिकम् ॥२॥
सौराज्ये पाण्डुपुत्राणां वर्तमाने सुखावहे । सर्वे वर्णाश्रमा राष्ट्रे धार्तराष्ट्रान् विसस्मरुः ॥३॥
अखण्डितगतिः प्राप्तः कदाचित्पाण्डवास्पदम् । नारदश्चण्डचित्तोऽसौ प्रकृत्या कलहप्रियः ॥४॥
आदरेण स तैर्दृष्टः प्रविशन्निस्सरन्नपि । व्यग्रयालंकृतौ तन्व्या द्रौपद्या तु न लक्षितः ॥५॥
ततो जज्वाल कोपेन तैलासंगादिवानलः । सज्जनावसरज्ञो न प्राणी संमानदुःखितः ॥६॥
स तद्दुःखविधानाय कृतेच्छः कृतनिश्चयः । धातकीखण्डपूर्वार्धभारतं प्रति खे ययौ ॥७॥
अङ्गेष्वमरकङ्कायां पुरि शङ्काविवर्जितः । स्त्रीलोलं पद्मनाभाख्यं [1]साभिख्यं दृष्टवान्नृपम् ॥८॥
तेनान्तःपुरमात्मीयमात्मीयस्यास्य दर्शितम् । पृष्टश्च दृष्टमीदृक्षं स्त्रीरूपं क्वचिदित्यसौ ॥९॥
पर्यस्तं मन्यमानोऽयं पायसेऽभिमतं घृतम् । द्रौपदीरूपलावण्यं लोकातीतमवर्णयत् ॥१०॥
तं द्रौपदीमयं [2]ग्राहं ग्राहयित्वा स नारदः । द्वीपक्षेत्रपुरावासकथनः क्वापि यातवान् ॥११॥
आराधयदसौ तीव्रतपसा द्रौपदीप्सया । सुरं संगमकाभिख्यं पातालान्तर्वासिनम् ॥१२॥
आराधितेन देवेन पद्मनाभपुरीं निशि । सा सुप्तैव समानीता पार्थस्य वनिता प्रिया ॥१३॥

अथानन्तर राजा श्रेणिकने पुनः पाण्डवोंकी चेष्टा पूछी सो सन्देहरूपी अन्धकारको नष्ट करनेके लिए सूर्यके समान गौतम गणधर इस प्रकार कहने लगे ॥१॥

जब पाण्डव हस्तिनापुरमें यथायोग्य रीतिसे रहने लगे तब कुरु देशकी प्रजा अपने पूर्व-स्वामियोंको प्राप्त कर अत्यधिक सन्तुष्ट हुई ॥२॥ पाण्डवोंके सुखदायक सुराज्यके चालू होनेपर देशके सभी वर्ण और सभी आश्रम धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधन आदिको सर्वथा भूल गये ॥३॥ एक दिन सर्वत्र बे-रोक-टोक गमन करनेवाले, क्रुद्ध हृदय और स्वभावसे कलहप्रेमी नारद, पाण्डवोंके घर आये ॥४॥ पाण्डवोंने नारदको बहुत आदरसे देखा परन्तु जब वे द्रौपदीके घर गये तब वह आभूषण धारण करनेमें व्यग्र थी इसलिए कब नारदने प्रवेश किया और कब निकल गये यह वह नहीं जान सकी ॥५॥ नारदजी, द्रौपदीके इस व्यवहारसे तेलके संगसे अग्निके समान, क्रोधसे जलने लगे सो ठीक ही है क्योंकि जो प्राणी सम्मानसे दुखी होता है वह सज्जनोंके भी अवसरको नहीं जानता ॥६॥ उन्होंने द्रौपदीको दुःख देनेका दृढ़ निश्चय कर लिया और उसी निश्चयके अनुसार वे पूर्वधातकीखण्डके भरत क्षेत्रकी ओर आकाशमें चल पड़े ॥७॥ वे निःशंक होकर अंग देशकी अमरकंकापुरीमें पहुँचे और वहाँ उन्होंने स्त्रीलम्पट, पद्मनाभ नामक शोभासम्पन्न राजाको देखा ॥८॥ राजा पद्मनाभने नारदको आत्मीय जान, अपना अन्तःपुर दिखाया और पूछा कि ऐसा स्त्रियोंका रूप आपने कहीं अन्यत्र भी देखा है ? ॥९॥ राजा पद्मनाभके प्रश्नको खीरमें पड़े घीके समान अनुकूल मानते हुए नारदने द्रौपदीके लोकोत्तर सौन्दर्यका वर्णन इस रीतिसे किया कि उसने उसे द्रौपदीरूपी पिशाचके वशीभूत कर दिया अर्थात् उसके हृदयमें द्रौपदीके प्रति अत्यन्त उत्कण्ठा उत्पन्न कर दी। तदनन्तर द्रौपदीके द्वीपक्षेत्र, नगर तथा भवनका पता बताकर वे कहीं चले गये ॥१०–११॥ पद्मनाभने द्रौपदीके प्राप्त करनेकी इच्छासे तीव्र तपके द्वारा पाताललोकमें निवास करनेवाले संगमक नामक देवकी आराधना की ॥१२॥ तदनन्तर आराधना

---

१. सशोभम् 'अभिख्या नामशोभयोः' इत्यमरः । २. ग्राह्यं म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निवेदिता सुरेणासौ भवनोद्यानवर्तिनी । अद्राक्षीद् द्रौपदीं गत्वा साक्षादिव सुराङ्गनाम् ॥१४॥
प्रबुद्धा सर्वतोभद्रे शयने सा पुनः पुनः । स्वपित्येव विनिद्रापि स्वप्नोऽयमिति शङ्किनी ॥१५॥
विनिमीलितनेत्राया ज्ञात्वाकूतमसौ नृपः । शनैः समीपमाश्रित्य वदति स्म प्रियंवदः ॥१६॥
आयताक्षि निरीक्षस्व नैष स्वप्नो घटस्तनि । द्वीपोऽयं धातकीखण्डः पद्मनाभस्त्वहं नृपः ॥१७॥
नारदेन समाख्यातं तव रूपं मनोहरम् । मयाराधितदेवेन त्वं मदर्थमिहाहृता ॥१८॥
श्रुत्वा चकितचित्ता सा किमेतदिति वादिनी । अचिन्तयदहो दुःखं दुरन्तं मे समागतम् ॥१९॥
पार्थदर्शनपर्यन्तमाहारत्यागमात्मनि । कृत्वा पार्थविमोच्यं च वेणीबन्धं दधार सा ॥२०॥
द्रौपदीशीलनिर्भेदवज्रप्राकारमध्यगा । पद्मनाभमुवाचेत्थं [1]वाध्यमानं मनोभुवा ॥२१॥
भ्रातरौ रामकृष्णौ मे भर्ता पार्थो धनुर्धरः । भर्तुर्ज्येष्ठो महावीरावनुजौ च यमोपमौ ॥२२॥
जलस्थलपथैस्तेषामनिवारितगोचराः । विचरन्ति भुवं सर्वा मनोरथरया रथाः ॥२३॥
क्षेमं यदि [2]नृपैतेभ्यो वाञ्छसि त्वं सबान्धवः । तद्विसर्जय मां शीघ्रमाशीविषवधूपमाम् ॥२४॥
इत्युक्तोऽन्यनिवृत्तेच्छः स्वग्राहं नैष मुञ्चति । यदा तदा दृढा प्राह प्रत्युत्पन्नमतिः सती ॥२५॥
मासस्याभ्यन्तरे भूप यदीह स्वजना मम । नागच्छन्ति तदा त्वं मे कुरुष्व यदभीप्सितम् ॥२६॥
तथास्त्विति निगद्यैतां पद्मनाभोऽनुवर्तयन् । सान्तःपुरः प्रियशतैर्विलोमनपरः स्थितः ॥२७॥

किया हुआ वह देव रात्रिके समय सोती हुई द्रौपदीको पद्मनाभकी नगरीमें उठा लाया ॥१३॥ देवने लाकर उसे भवनके उद्यानमें छोड़ दिया और इसकी सूचना राजा पद्मनाभको कर दी। राजा पद्मनाभने जाकर साक्षात् देवांगना द्रौपदीको देखा ॥१४॥ यद्यपि द्रौपदी अपनी सर्वतोभद्र शय्यापर जाग उठी थी और निद्रारहित हो गयी थी तथापि 'यह स्वप्न है' इस प्रकार शंका करती हुई बार-बार सो रही थी ॥१५॥ नेत्रोंको बन्द करनेवाली द्रौपदीका अभिप्राय जानकर राजा पद्मनाभ धीरेसे उसके पास गया और प्रिय वचन बोलता हुआ इस प्रकार कहने लगा ॥१६॥ उसने कहा कि हे विशाललोचने ! देखो, यह स्वप्न नहीं है। हे घटस्तनि ! यह धातकीखण्डद्वीप है और मैं राजा पद्मनाभ हूँ ॥१७॥ नारदने मुझे तुम्हारा मनोहर रूप बतलाया था और मेरे द्वारा आराधित देव मेरे लिए तुम्हें यहाँ हरकर लाया है ॥१८॥ यह सुनकर उसका हृदय चकित हो गया तथा यह 'क्या है' इस प्रकार कहती हुई वह विचार करने लगी कि अहो ! यह मुझे दुरन्त दुःख आ पड़ा है ॥१९॥ 'जबतक अर्जुनका दर्शन नहीं होता तबतकके लिए मेरे आहारका त्याग है' ऐसा नियम लेकर उसने अर्जुनके द्वारा छोड़ने योग्य वेणी बाँध ली ॥२०॥ तदनन्तर शीलरूपी वज्रमय कोटके भीतर स्थित द्रौपदी कामके द्वारा पीड़ित होनेवाले राजा पद्मनाभसे इस प्रकार बोली ॥२१॥ कि बलदेव और कृष्णनारायण मेरे भाई हैं, धनुर्धारी अर्जुन मेरा पति है, पतिके बड़े भाई महावीर भीम और अर्जुन अतिशय वीर हैं और पतिके छोटे भाई सहदेव और नकुल यमराजके समान हैं ॥२२॥ जल और स्थलके मार्गोंसे जिन्हें कोई कहीं रोक नहीं सका ऐसे मनोरथके समान शीघ्रगामी उनके रथ समस्त पृथिवीमें विचरण करते हैं ॥२३॥ इसलिए हे राजन् ! यदि तू भाई-बान्धवों-सहित, इनसे अपना भला चाहता है तो सर्पिणीके समान मुझे शीघ्र ही वापस भेज दे ॥२४॥ जिसकी अन्य सब इच्छाएँ दूर हो चुकी थीं ऐसे पद्मनाभने द्रौपदीके इस तरह कहनेपर भी जब अपना हठ नहीं छोड़ा तब परिस्थितिके अनुसार तत्काल विचार करनेवाली द्रौपदीने दृढ़ताके साथ उत्तर दिया ॥२५॥ कि हे राजन् ! यदि मेरे आत्मीयजन एक मासके भीतर यहाँ नहीं आते हैं तो तुम्हारी जो इच्छा हो वह मेरा करना ॥२६॥ 'तथास्तु'—'ऐसा हो' इस प्रकार कहकर पद्मनाभ अपनी स्त्रियोंके साथ उसे अनुकूल करता

१. वाच्यमानं म. । २. नृपैस्तेभ्यो म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विस्रब्धा भयमुज्झित्वा स्थित्वा साश्रुविलोचना । [1]विविहारा निराहारा पत्युः पन्थानमीक्षते ॥२८॥
अदृश्यायामकस्मात्तु तस्यां पाण्डवपञ्चकम् । किंकर्तव्यतया मूढमभूदत्यन्तमाकुलम् ॥२९॥
निरुपायास्ततो गत्वा चक्रिणे ते न्यवेदयन् । दुःखी सयादवः सोऽत्र क्षेत्रेष्वश्रावयत्तदा ॥३०॥
क्षेत्रान्तरहृतां मत्वा केनचित्क्षुद्रवृत्तिना । तत्प्रवृत्तिपरिप्राप्तौ यादवास्ते सतत्पराः ॥३१॥
आस्थानस्थितमागत्य कदाचिन्नारदो हरिम् । पूजितो यदुलोकस्य जगादेति प्रियोदितः ॥३२॥
ईक्षिता धातकीखण्डे [2]कृष्णा कृष्णकृशाङ्गिका । पुर्यामममरकङ्कायां पद्मनाभस्य सद्मनि ॥३३॥
अनारतगलद्बाष्पधाराविलविलोचना । सा तस्यान्तःपुरस्त्रीभिः सादराभिरुपास्यते ॥३४॥
शीलमात्रमहाश्वासा दीर्घनिश्वासमोचिनी । सत्सु बन्धुषु युष्मासु कथमास्ते रिपोर्गृहे ॥३५॥
लब्ध्वेति द्रौपदीवार्तां हरिप्रभृतयस्तदा । शशंसुर्नारदं हृष्टाः सापकारोपकारिणम्[3] ॥३६॥
द्रौपदीहरणं कृत्वा क्व प्रयाति स दुष्टधीः । प्रेषयामि दुराचारं मृत्यवे मृत्युकाङ्क्षिणम्[4] ॥३७॥
इति द्विष्टो द्विषे कृष्णः कृष्णामानेतुमुद्यमी । दक्षिणो दक्षिणाम्भोधेस्तटं [5]सशकटो गतः ॥३८॥
लवणाब्धिपतिं देवं सुस्थितं नियमस्थितम् । आराध्य पाण्डवैः सार्धं धातकीखण्डमीप्सया[6] ॥३९॥
देवेन नीयमानः सन् रथैः षड्भिः सपाण्डवः । द्रागुल्लङ्घ्याब्धिमापसद्धातकीखण्डभारतम् ॥४०॥

और सैकड़ों प्रिय पदार्थोंसे लुभाता हुआ रहने लगा ॥२७॥ द्रौपदी भय छोड़कर विश्वस्त हो गयी और निरन्तर अश्रु छोड़ती तथा आहार-विहार बन्द कर पतिका मार्ग देखने लगी ॥२८॥

इधर जब द्रौपदी अकस्मात् अदृश्य हो गयी तब पाँचों पाण्डव किंकर्तव्यविमूढ़ हो अत्यन्त व्याकुल हो गये ॥२९॥ तदनन्तर जब वे निरुपाय हो गये तब उन्होंने श्रीकृष्णके पास जाकर सब समाचार कहा। उसे सुनकर यादवों सहित श्रीकृष्ण बहुत दुःखी हुए और उसी समय उन्होंने समस्त भरत क्षेत्रमें यह समाचार श्रवण कराया ॥३०॥ जब भरत क्षेत्रमें कहीं पता नहीं चला तब उन्होंने समझ लिया कि कोई क्षुद्र वृत्तिवाला मनुष्य इसे हरकर दूसरे क्षेत्रमें ले गया है। इस तरह समस्त यादव उसका समाचार प्राप्त करनेमें तत्पर हो गये ॥३१॥

किसी दिन श्रीकृष्ण सभामण्डपमें बैठे हुए थे कि उसी समय नारदजी वहाँ आ पहुँचे। समस्त यादवोंने उनका सम्मान किया। तदनन्तर प्रिय समाचार सुनाते हुए उन्होंने कहा कि मैंने द्रौपदीको धातकीखण्ड द्वीपकी अमरकंकापुरीमें राजा पद्मनाभके घर देखा है। उसका शरीर अत्यन्त काला तथा दुर्बल हो गया है, उसके नेत्र निरन्तर पड़ती हुई अश्रुधारासे व्याप्त रहते हैं और राजा पद्मनाभके अन्तःपुरकी स्त्रियाँ बड़े आदरके साथ उसकी सेवा करती रहती हैं ॥३२-३४॥ उसे इस समय अपने शीलव्रतका ही सबसे बड़ा भरोसा है तथा वह लम्बी-लम्बी श्वास छोड़ती रहती है। आप-जैसे भाइयोंके रहते हुए वह शत्रुके घरमें क्यों रह रही है? ॥३५॥ इस प्रकार द्रौपदीका समाचार पाकर उस समय कृष्ण आदि बहुत हर्षित हुए और अपकारके साथ-साथ उपकार करनेवाले नारदकी प्रशंसा करने लगे ॥३६॥ 'वह दुष्ट द्रौपदीका हरणकर कहाँ जावेगा? मृत्युके इच्छुक उस दुराचारीको अभी यमराजके घर भेजता हूँ' ॥३७॥ इस प्रकार शत्रुके प्रति द्वेष प्रकट करते हुए श्रीकृष्ण द्रौपदीको लानेके लिए उद्यत हुए और रथपर बैठकर दक्षिण समुद्रके तटपर जा पहुँचे ॥३८॥ वहाँ जाकर उन्होंने धातकीखण्ड द्वीपको प्राप्त करनेकी इच्छासे पाण्डवोंके साथ नियममें स्थित लवणसमुद्रके अधिष्ठाता देवकी अच्छी तरह आराधना की ॥३९॥ तदनन्तर लवणसमुद्रका अधिष्ठाता देव पाँच पाण्डवों सहित कृष्णको छह रथोंमें ले

---

१. विनिहारा म.। २. द्रौपदी। ३. -कारिणाम् म.। ४. -काङ्क्षिणाम् म.। ५. सशकटः सरथः इत्यर्थः। ६. वीप्सया क., खण्डेप्सया ख.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुर्यास्तेऽमरकङ्काया बहिरुद्यानवर्तिनः । कृष्णाद्याः पद्मनाभाय तन्नियुक्तैर्निवेदिताः ॥४१॥
चतुरङ्गबलं तस्य पुर्या निर्यातमुद्धतम् । भ्रातृभिः पञ्चभिर्युद्धे भग्नं नगरमाविशत् ॥४२॥
नृपः स नगरद्वारं पिधाय सनयः स्थितः । अलङ्घ्ये पाण्डुपुत्राणां ततश्चक्री स्वयं रुषा ॥४३॥
बिभेद पादनिर्घातैर्निर्घातैरिव [1]नागरीम् । बहिरन्तर्भुवं विश्वां भ्रश्यत्प्राकारगोपुराम् ॥४४॥
पतत्प्रासादशालौघैर्भ्राम्यन्मत्तेभवाजिनि । विप्रलापमहारावे पुरे जाते जनाकुले ॥४५॥
सपौरान्तःपुरो राजा निरुपायो भयाकुलः । प्रविष्टः शरणं द्रोही द्रौपदीं द्रुतमानतः ॥४६॥
क्षम्यतां क्षम्यतां सौम्ये ! देवि ! देवतया समे । दाप्यतामभयं मेऽद्य सवाच्यस्य पतिव्रते ! ॥४७॥
तं सा कृपावती प्राह द्रौपदी शरणागतम् । गच्छ भ्रकुंसवेषेण शरणं चक्रवर्तिनः ॥४८॥
कृतदोषेष्वपि प्रायः प्रणतेषु नरोत्तमाः । सकृपाः स्युर्विशेषेण भीरुवेषेषु भीरुषु ॥४९॥
सस्त्रीकः स्त्रीकृताकारः श्रुत्वा पार्थाङ्गनाग्रणीः । प्रविष्टः शरणं गत्वा विष्टरश्रवसं नृपः ॥५०॥
दत्त्वासावभयं तस्य शरणागतभीहरः । विससर्ज निजं स्थानं स्थाननामादिभेदिनम्[2] ॥५१॥
[3]कृष्णा कृष्णपदं नत्वा क्षेमदानपुरस्सरम् । प्रायुङ्क्त विनयं योग्यं पञ्चस्वपि यथाक्रमम् ॥५२॥
आश्लिष्य दयितां पार्थो विरहव्यथितां ततः । स्वयं प्रस्वेदिहस्ताभ्यां तद्वेणीमुदमोचयत् ॥५३॥

गया और इस तरह वे शीघ्र ही समुद्रका उल्लंघन कर धातकीखण्ड द्वीपके भरत क्षेत्रमें जा पहुँचे ॥४०॥ वहाँ जाकर ये अमरकंकापुरीके उद्यानमें ठहर गये और राजा पद्मनाभके द्वारा नियुक्त पुरुषोंने उसे खबर दी कि कृष्ण आदि आ पहुँचे हैं ॥४१॥ खबर पाते ही उसकी उद्धत चतुरंग सेना नगरीसे बाहर निकली परन्तु पाँचों पाण्डवोंने युद्धमें उसे इतना मारा कि वह भागकर नगरमें जा घुसी ॥४२॥ राजा पद्मनाभ बड़ा नीतिज्ञ था इसलिए वह नगरका द्वार बन्द कर भीतर रह गया। नगरका द्वार लाँघना जब पाण्डवोंके वशकी बात नहीं रही तब श्रीकृष्णने स्वयं पैरके आघातोंसे द्वारको तोड़ना शुरू किया। उनके पैरके आघात क्या थे मानो वज्रके प्रहार थे। उन्होंने नगरकी समस्त बाह्य तथा आभ्यन्तर भूमिको तहस-नहस कर डाला। प्राकार और गोपुर टूटकर गिर गये। बड़े-बड़े महल और शालाओंके समूह गिरने लगे जिससे मदोन्मत्त हाथी और घोड़े इधर-उधर दौड़ने लगे, नगरमें सर्वत्र हाहाकारका महान् शब्द गूँजने लगा और मनुष्य घबड़ाकर बाहर निकल आये ॥४३–४५॥ जब द्रोही राजा पद्मनाभ निरुपाय हो गया तब वह भयसे व्याकुल हो नगरवासियों और अन्तःपुरकी स्त्रियोंको साथ ले शीघ्र ही द्रौपदीकी शरणमें पहुँचा और नम्रीभूत होकर कहने लगा कि हे देवि! तू देवताके समान है, सौम्य है, पतिव्रता है, मुझ पापीको क्षमा करो, क्षमा करो और अभय दान दिलाओ ॥४६–४७॥ द्रौपदी परम दयालु थी इसलिए उसने शरणमें आये हुए पद्मनाभसे कहा कि तू स्त्रीका वेष धारण कर चक्रवर्ती कृष्णकी शरणमें जा। क्योंकि उत्तम मनुष्य नमस्कार करनेवाले अपराधी जनोंपर भी प्रायः दया-सहित होते हैं, फिर जो भीरु हैं अथवा भीरुजनोंका वेष धारण करते हैं उनपर तो वे और भी अधिक दया करते हैं ॥४८–४९॥ यह सुनकर राजा पद्मनाभने स्त्रीका वेष धारण कर लिया और स्त्रियोंको साथ ले तथा द्रौपदीको आगे कर वह श्रीकृष्णकी शरणमें जा पहुँचा ॥५०॥ श्रीकृष्ण शरणागतोंका भय हरनेवाले थे इसलिए उन्होंने उसे अभय दान देकर अपने स्थानपर वापस कर दिया, केवल उसके स्थान तथा नाम आदिमें परिवर्तन कर दिया ॥५१॥ द्रौपदीने कुशल-प्रश्नपूर्वक श्रीकृष्णके चरणोंमें नमस्कार किया और पाँचों पाण्डवोंके साथ यथायोग्य विनयका व्यवहार किया ॥५२॥ तदनन्तर अर्जुनने विरहसे पीड़ित वल्लभाका आलिंगन कर

१. नागरम् म. । २. -वेदिनम् क. । ३. द्रौपदी ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्नात्वा भुक्त्वा कृतातिथ्या मनसा पाण्डवैः सह । निवेद्य निजदुःखं सा मुमोचास्रैः[1] समं ततः ॥५४॥
रथमारोप्य तां वार्धौ दध्मौ[2] शङ्खं निजं हरिः । आपुपूरे दिशां चक्रं चक्रिशङ्खस्य निस्वनः ॥५५॥
कपिलो वासुदेवोऽपि तदा चम्पाबहिःस्थितम् । जिनं नन्तुं गतोऽपृच्छत् श्रुत्वा तं कम्पितक्षितिम् ॥५६॥
केनायं पूरितः शङ्खो नाथ ! मत्समशक्तिना । न चाद्य मादृशोऽस्तीह भारते मदधिष्ठिते ॥५७॥
जिनेन कथिते तत्त्वे प्रश्नितोत्तरवादिना । दिदृक्षुस्तं यियासुः स भाषितो धर्मचक्रिणा ॥५८॥
नान्योन्यदर्शनं जातु चक्रिणां धर्मचक्रिणाम् । हलिनां वासुदेवानां त्रैलोक्ये[3] प्रतिचक्रिणाम् ॥५९॥
गतस्य चिह्नमात्रेण तव तस्य च दर्शनम् । शङ्खास्फोटनिनादैश्च रथध्वजनिरीक्षणैः ॥६०॥
आयातस्य ततस्तस्य कपिलस्यानुयादवम् । साफल्यमभवद्दूराज्जिनोक्तिविधिनाम्बुधौ ॥६१॥
आगत्य कपिलश्चम्पामसांप्रतविधायिनम् । कोपादमरकङ्केशं केशवः सोऽत्यतर्जयत् ॥६२॥
पूर्वेणैव क्रमेणामी लघूत्तीर्णा महार्णवम् । वेलातटे विशश्राम केशवः पाण्डवा गताः ॥६३॥
नौभिर्गङ्गां समुत्तीर्य तस्थुस्ते दक्षिणे तटे । व्यपनीता च भीमेन क्रीडाशीलेन[4] नौस्तटी ॥६४॥
आगतोऽनुपदं विष्णुः कृष्णया सहितस्तदा । अप्राक्षीत्कथमुत्तीर्णा गङ्गां यूयमितीमिकाम् ॥६५॥
वृकोदरोऽवदद्दोर्मिरिति जिज्ञासुरीहितम् । स सत्यमिति मत्वा तदुत्तरीतुमिति त्वरी ॥६६॥

पसीनासे भीगे हुए दोनों हाथोंसे स्वयं उसकी वेणी खोली ॥५३॥ द्रौपदीने पाण्डवोंके साथ स्नान किया, भोजन किया, हृदयसे सबका अतिथि-सत्कार किया, उनके सामने अपना दुःख निवेदन किया और अश्रुधाराके साथ-साथ सब दुःख छोड़ दिया। **भावार्थ**—पाण्डवोंके सामने सब दुःख प्रकट कर वह सब दुःख भूल गयी ॥५४॥

तदनन्तर कृष्णने द्रौपदीको रथमें बैठाकर समुद्रके किनारे आ इस रीतिसे अपना शंख बजाया कि उसका शब्द समस्त दिशाओंमें व्याप्त हो गया ॥५५॥ उस समय वहाँ चम्पा नगरीके बाहर स्थित जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार करनेके लिए धातकीखण्डका नारायण कपिल आया था उसने पृथिवीको कम्पित करनेवाला शंखका उक्त शब्द सुनकर जिनेन्द्र भगवान्‌से पूछा कि हे नाथ ! मेरे समान शक्तिको धारण करनेवाले किस मनुष्यने यह शंख बजाया है। इस समय मेरे द्वारा शासित इस भरतक्षेत्रमें मेरे समान दूसरा मनुष्य नहीं है ॥५६–५७॥ प्रश्नका उत्तर देनेवाले जिनेन्द्र भगवान्‌ने जब यथार्थ बात कही तब कृष्णको देखनेकी इच्छा करता हुआ वह वहाँसे जाने लगा। यह देख जिनेन्द्र भगवान्‌ने कहा कि हे राजन् ! तीन लोकमें कभी चक्रवर्ती-चक्रवर्तियोंका, तीर्थंकर-तीर्थंकरोंका, बलभद्र-बलभद्रोंका, नारायण-नारायणोंका और प्रतिनारायण-प्रतिनारायणोंका परस्पर मिलाप नहीं होता। तुम जाओगे तो चिह्न मात्रसे ही उसका और तुम्हारा मिलाप हो सकेगा। एक दूसरेके शंखका शब्द सुनना तथा रथोंकी ध्वजाओंका देखना इन्हीं चिह्नोंसे तुम्हारा और उसका साक्षात्कार होगा ॥५८–६०॥ तदनन्तर कपिल नारायण, श्रीकृष्णको लक्ष्य कर आया और जिनेन्द्र भगवान्‌के कहे अनुसार उसका दूरसे ही समुद्रमें कृष्णके साथ साक्षात्कार हुआ ॥६१॥ कपिल नारायणने चम्पा नगरीमें वापस आकर अनुचित कार्य करनेवाले अमरकंकापुरीके स्वामी राजा पद्मनाभको क्रोधमें आकर बहुत डाँटा ॥६२॥ कृष्ण तथा पाण्डव पहलेकी ही भाँति महासागरको शीघ्र ही पार कर इस तटपर आ गये। वहाँ कृष्ण तो विश्राम करने लगे परन्तु पाण्डव चले आये ॥६३॥ पाण्डव नौकाके द्वारा गंगाको पार कर दक्षिण तटपर आ ठहरे। भीमका स्वभाव क्रीड़ा करनेका था इसलिए उसने इस पार आनेके बाद नौका तटपर छिपा दी ॥६४॥ पीछे जब द्रौपदीके साथ कृष्ण आये और

---

१. मुमोचास्रः म.। २. दध्यौ म.। ३. त्रैलोक्य–म.। ४. क्रीडाशैलेन म., क.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रथमुद्धृत्य हस्तेन साश्वसारथिमच्युतः । जानुदघ्नमिवोत्तीर्णस्तां जङ्घाभ्यां भुजेन च ॥६७॥
ततो विस्मिततुष्टास्ते त्वरयाभ्येत्य सन्नताः । [1]शक्त्यभिज्ञाः स्तुतिव्यग्राः समाश्लिष्यन्नधोक्षजम् ॥६८॥

वंशस्थवृत्तम्

स्वयं कृतं नर्म ततो वृकोदरः स्वयं च विश्वश्रुतया जगाद सः ।
तदैष कृष्णोऽतिविरक्ततामगाददेशकालं न हि नर्म शोभते ॥६९॥
अमानुषं कर्म जगत्यनेकशः कृतं मया दृष्टवतामपि स्वयम् ।
मदीयसामर्थ्यपरीक्षणक्षमं किमत्र गङ्गोत्तरणे कुपाण्डवाः ॥७०॥
निगद्य तानेवमसौ जनार्दनः सहैव तैरेत्य तु हास्तिनं पुरम् ।
सुभद्रया लब्धसुतार्यसूनवे वितीर्य राज्यं विससर्ज तान् क्रुधा ॥७१॥
समस्तसामन्तकृतानुयानकः कृताभियानो यदुभिः कृतार्थकः ।
प्रविश्य कृष्णो नगरीं गरीयसीं निजां निजस्त्रीनिवहानमानयत्[2] ॥७२॥
सुतास्तु पाण्डोर्हरिचन्द्रशासनादकाण्ड एवाशनिपातनिष्ठुरात् ।
प्रगत्य दाक्षिण्यभृता सुदक्षिणां जनेन काष्ठां मथुरां न्यवेशयन् ॥७३॥
समुद्रवेलासु मनोहरासु ते लवङ्गकृष्णागुरुगन्धवायुषु ।
सुचन्दनामोदितदिक्षु दक्षिणा विजह्रुरुच्चैर्मलयाद्रिसानुषु ॥७४॥

उन्होंने पूछा कि आप लोग इस गंगाको किस तरह पार हुए हैं ? तो कृष्णकी चेष्टाको जाननेके इच्छुक भीमने कहा कि हम लोग भुजाओंसे तैरकर आये हैं। श्रीकृष्ण भीमके कथनको सत्य मान गंगाको पार करनेकी शीघ्रता करने लगे ॥६५–६६॥ श्रीकृष्णने घोड़ों और सारथीके सहित रथको एक हाथपर उठा लिया और एक हाथ तथा दो जंघाओंसे गंगाको इस तरह पार कर लिया जिस तरह मानो वह घोंटू बराबर ही हो ॥६७॥ तदनन्तर आश्चर्यसे चकित और आनन्दसे विभोर पाण्डवोंने शीघ्र ही सामने जाकर नम्रीभूत हो श्री कृष्णका आलिंगन किया और उनकी अपूर्व शक्तिसे परिचित हो वे उनकी स्तुति करने लगे ॥६८॥ तत्पश्चात् भीमने सबको सुनाते हुए स्वयं कहा कि यह तो मैंने हँसी की थी। यह सुन, श्रीकृष्ण उसी समय पाण्डवोंसे विरक्तता को प्राप्त हो गये सो ठीक ही है क्योंकि बिना देश-कालकी हँसी शोभा नहीं देती ॥६९॥ कृष्णने पाण्डवोंको फटकारते हुए कहा कि अरे निन्द्य पाण्डवो ! मैंने संसारमें तुम लोगोंके देखते-देखते अनेकों बार अमानुषिक कार्य किये हैं फिर इस गंगाके पार करनेमें कौन-सी बात मेरी परीक्षा करनेमें समर्थ थी ? ॥७०॥ इस प्रकार पाण्डवोंसे कहकर वे उन्हींके साथ हस्तिनापुर गये और वहाँ सुभद्राके पुत्र आर्य-सूनुके लिए राज्य देकर उन्होंने पाण्डवोंको क्रोधवश वहाँसे विदा कर लिया ॥७१॥

तदनन्तर समस्त सामन्त जिनके पीछे-पीछे चल रहे थे और यादवोंने सम्मुख आकर जिनका अभिनन्दन किया था ऐसे कृतकार्य श्रीकृष्णने विशाल द्वारिका नगरीमें प्रवेश कर अपनी स्त्रियोंके समूहको प्रसन्न किया ॥७२॥ असमयमें वज्रपातके समान कठोर कृष्णचन्द्रकी आज्ञासे पाण्डव, अपने अनुकूल जनोंके साथ दक्षिण दिशाकी ओर गये और वहाँ उन्होंने मथुरा नगरी बसायी ॥७३॥ वहाँ वे दक्षिण दिशामें लौंग और कृष्णागुरुकी सुगन्धित वायुसे व्याप्त समुद्रके मनोहर तटोंपर तथा उत्तम चन्दनसे दिशाओंको सुगन्धित करनेवाली मलयगिरिकी ऊँची-ऊँची चोटियोंपर विहार करने लगे ॥७४॥

१. शक्तिभिक्ष्याः म. । २. निवहाद्यमानयत् म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्व वार्धिजम्बूद्रुममण्डिता क्षितिः क्व धातकीखण्डधरा दुरासदा।
गतागतादर्थगतिस्तथापि तु प्रसिद्ध्यति प्राक्तनजैनधर्मतः ॥७५॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ द्रौपदीहरणाहरणदक्षिणमथुरानिवेशवर्णनो नाम चतुःपञ्चाशः सर्गः ॥५४॥

□

गौतम स्वामी कहते हैं कि देखो, कहाँ तो लवणसमुद्र और जम्बू वृक्षसे सुशोभित जम्बूद्वीपकी भूमि और कहाँ अत्यन्त दुर्गम धातकीखण्डकी भूमि ? फिर भी पूर्वकृत जैनधर्मके प्रभावसे वहाँ यातायातके द्वारा कार्यकी सिद्धि हो जाती है ॥७५॥

इस प्रकार अरिष्टनेमिपुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें द्रौपदीका हरण, पुनः उसका ले आना तथा दक्षिण-मथुराके बसाये जानेका वर्णन करनेवाला चौवनवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥५४॥

□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पञ्चपञ्चाशः सर्गः

द्रुतविलम्बितवृत्तम्

अथ स नेमिकुमारयुवान्यदा धनदसंभृतवस्त्रविभूषणैः ।
स्रगनुलेपनकैरतिराजितो नृपसुतैः प्रथितैः परिवारितः ॥१॥
समविशत्समदेभगतिर्नृपैरभिगतः [1]प्रणतश्चलितासनैः ।
[2]कुसुमचित्रसभां बलकेशवप्रभृतियादवकोटिभिराचिताम् ॥२॥
हरिकृताभिगतिर्हरिविष्टरं स तदलङ्कुरुते हरिणा सह ।
श्रियमुवाह परां तदलं तदा धृतहरिद्वयहारि यथासमम् ॥३॥
सदसि सभ्यकथामृतपायिभिः प्रकटशौर्यशरीरविभूतिभिः ।
सह हरिर्नृवरैः समुपासित-क्षणमरंस्त रुचा स्थगिताखिलः ॥४॥
बलवतां गणनास्वथ केचन प्रतिशशंसुरतीव किरीटिनम् ।
युधि युधिष्ठिरमुग्रवृकोदरं युगलमुद्धतमप्यपरे परान् ॥५॥
हलधरं बलवन्तमलं तथा हरिमथोद्धृतदुर्धरभूधरम् ।
स्वबलदर्शनतत्परराजकं चलयितुं स्वपदात्तु [3]सशायिकम् ॥६॥
हरिसभागतराजकमारतीरिति निशम्य सलीलदृशा हली ।
जिनमुदीक्ष्य जगौ जिननेमिना भगवता न समोऽस्ति जगत्त्रये ॥७॥

अथानन्तर एक दिन कुबेरके द्वारा भेजे हुए वस्त्र, आभूषण, माला और विलेपनसे सुशोभित, प्रसिद्ध-प्रसिद्ध राजाओंसे घिरे एवं मदोन्मत्त हाथीके समान सुन्दर गतिसे युक्त युवा नेमिकुमार, बलदेव तथा नारायण आदि कोटि-कोटि यादवोंसे भरी हुई कुसुमचित्रा नामक सभामें गये। राजाओंने अपने-अपने आसन छोड़ सम्मुख जाकर उन्हें नमस्कार किया। श्रीकृष्णने भी आगे आकर उनकी अगवानी की। तदनन्तर श्रीकृष्णके साथ वे उनके आसनको अलंकृत करने लगे। श्रीकृष्ण और नेमिकुमारसे अधिष्ठित हुआ वह सिंहासन, दो इन्द्रों अथवा दो सिंहोंसे अधिष्ठितके समान अत्यधिक शोभाको धारण करने लगा ॥१–३॥ सभाके बीच, सभ्यजनोंकी कथारूप अमृतका पान करनेवाले एवं अत्यधिक शूर-वीरता और शारीरिक विभूतिसे युक्त अनेक राजा जिनकी उपासना कर रहे थे और अपनी कान्तिसे जिन्होंने सबको आच्छादित कर दिया था ऐसे नेमिकुमार श्रीकृष्णके साथ क्षण-भर क्रीड़ा करते रहे ॥४॥

तदनन्तर बलवानोंकी गणना छिड़नेपर कोई अर्जुनकी, कोई युद्धमें स्थिर रहनेवाले युधिष्ठिरकी, कोई पराक्रमी भीमकी, कोई उद्धत सहदेव और नकुलको एवं कोई अन्य लोगोंकी, अत्यन्त प्रशंसा करने लगे ॥५॥ किसीने कहा बलदेव सबसे अधिक बलवान् हैं तो किसीने दुर्धर गोवर्धन पर्वतको उठानेवाले एवं अपना बल देखनेमें तत्पर राजाओंके समूहको अपने स्थानसे विचलित करनेके लिए बाण धारण करनेवाले श्रीकृष्णको सबसे अधिक बलवान् कहा ॥६॥ इस प्रकार कृष्णकी सभामें आगत राजाओंकी तरह-तरहकी वाणी सुनकर लीलापूर्ण दृष्टिसे भगवान् नेमिनाथकी ओर देखकर कहा कि तीनों जगत्में इनके समान

---

१. प्रणतं क., ख.। २. कुसुमचित्रानाम्नीं सभाम्। ३. स्वपदं तु सशामकं क.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करतलेन महीतलमुद्धरेज्जलनिधीनपि दिक्षु लघु[1] क्षिपेत् ।
प्रचलयेद् गिरिराजमवज्ञया ननु जिनः कतमः परमोऽमुतः ॥८॥
इति निशम्य वचोऽथ निशाम्य तं स्मितमुखो हरिरीशमुवाच सः ।
किमिति युष्मदुदारवपुर्बलं भुजरणे भगवन् न परीक्ष्यते ॥९॥
सह [2]ममाभिनयोद्ध्वमुखो जिनः किमिहमल्लयुधेति तमब्रवीत् ।
भुजबलं भवतोऽग्रज बुध्यते चलय मे चरणं सहसासनात् ॥१०॥
परिकरं परिबध्य [3]तदोत्थितो भुजबलेन जिनस्य जिगीषया ।
चलयितुं न शशाक पदाङ्गुलिप्रमुखमस्य नखेन्दुधरं[4] हरिः ॥११॥
श्रमजवारिलवाञ्चितविग्रहः प्रबलनिश्वसितोच्छ्वसिताननः[5] ।
बलमहो तव देव जनातिगं स्फुटमिति स्मयमुक्तमुवाच सः ॥१२॥
[6]बलरिपुश्च तदा चलितासनः स्वयमुपेत्य सुरैः सहसा सह ।
कृतजिनार्चनकः कृतसंस्तवः कृतनतिः प्रययौ पदमात्मनः ॥१३॥
निजमगारमगाज्जिनचन्द्रमाः परिवृतः क्षितिपैः [7]क्षपितस्मयः ।
हरिरपि स्फुटमात्मनि शङ्कितः क्लिशितधीर्हि जिनेष्वपि शङ्कते ॥१४॥
उपचरन्ननुवासरमादरात् प्रियशतैर्जिनचन्द्रमसं हरिः ।
प्रणयदर्शनपूर्वकमर्चयन्[8] स्वयमनर्घगुणं जिनमुन्नतम् ॥१५॥

दूसरा बलवान् नहीं है ॥७॥ ये अपनी हथेलीसे पृथिवीतलको उठा सकते हैं, समुद्रोंको शीघ्र ही दिशाओंमें फेंक सकते हैं और गिरिराजको अनायास ही कम्पायमान कर सकते हैं। यथार्थमें ये जिनेन्द्र हैं, इनसे उत्कृष्ट दूसरा कौन हो सकता है ? ॥८॥ इस प्रकार बलदेवके वचन सुन कृष्णने पहले तो भगवान्‌की ओर देखा और तदनन्तर मुसकराते हुए कहा कि हे भगवन् । यदि आपके शरीरका ऐसा उत्कृष्ट बल है तो बाहु-युद्धमें उसकी परीक्षा क्यों न कर ली जाये ? ॥९॥ भगवान्‌ने कुछ खास ढंगसे मुख ऊपर उठाते हुए कृष्णसे कहा कि मुझे इस विषयमें मल्ल युद्धकी क्या आवश्यकता है ? हे अग्रज ! यदि आपको मेरी भुजाओंका बल जानना ही है तो सहसा इस आसनसे मेरे इस पैरको विचलित कर दीजिए ॥१०॥ श्रीकृष्ण उसी समय कमर कसकर भुजबलसे जिनेन्द्र भगवान्‌को जीतनेकी इच्छासे उठ खड़े हुए परन्तु पैरका चलाना तो दूर रहा नखरूपी चन्द्रमाको धारण करनेवाली पैरकी एक अंगुलिको भी चलानेमें समर्थ नहीं हो सके ॥११॥ उनका समस्त शरीर पसीनाके कणोंसे व्याप्त हो गया और मुखसे लम्बी-लम्बी साँसें निकलने लगीं। अन्तमें उन्होंने अहंकार छोड़कर स्पष्ट शब्दोंमें यह कहा कि हे देव ! आपका बल लोकोत्तर एवं आश्चर्यकारी है ॥१२॥ उसी समय इन्द्रका आसन कम्पायमान हो गया और वह तत्काल ही देवोंके साथ आकर भगवान्‌की पूजा-स्तुति तथा नमस्कार कर अपने स्थानपर चला गया ॥१३॥ उधर कृष्णके अहंकारको नष्ट करनेवाले जिनेन्द्ररूपी चन्द्रमा अनेक राजाओंसे परिवृत हो अपने महलमें चले गये और इधर कृष्ण भी अपने आपके विषयमें शंकित होते हुए अपने महलमें गये सो ठीक ही है क्योंकि संक्लिष्ट बुद्धिके धारक पुरुष जिनेन्द्र भगवान्‌के विषयमें भी शंका करते हैं। **भावार्थ**—कृष्णके मनमें यह शंका घर कर गयी कि भगवान् नेमिनाथके बलका कोई पार नहीं है अतः इनके रहते हुए हमारा राज्य-शासन स्थिर रहेगा या नहीं ? ॥१४॥ उस समयसे श्रीकृष्ण, उत्तम—अमूल्य

---

१. शीघ्रम् । २. समाभिनयो-म. । ३. तदोत्थितो म. । ४. नखेन्दुर्हरिं म. । ५. -मुच्छ्वसितासनः म., क. । ६. इन्द्रः । ७. ज्ञपितस्मयः म. । ८. -मर्थयन् म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ पुनर्विजयार्धनगोत्तरे पुरवरेऽभिधया श्रुतशोणिते ।
जगति बाण इति प्रथितः खगः स खलु तिष्ठति गर्वितमानसः ॥१६॥
स्वयमुषा दुहितास्य खगेशिनो गुणकलाभरणाविदितावनौ[1] ।
मदनसूनुमुदारगुणैः श्रुतं[2]तमनिरुद्धमधत्त चिरं हृदि ॥१७॥
सुमृदुनापि तदा मृदुनि स्वयं विनिहितेन कृतं तनुतापनम् ।
मनसि संवसता कुटिलभ्रुवः कुटिलवृत्तिरनेन निजीकृता ॥१८॥
अनुदितेन परस्य महाधिना कृशतरां परिपृच्छ्य हि तां हिताम् ।
निशि निनाय सखी खचरीवरं खचरलोकमनङ्गशरीरजम्[3] ॥१९॥
प्रतिविबुध्य युवा सहसा ह्युषामुषसि रत्नमयूखचिते गृहे ।
मृदुतले शयने शयितः स्वयं स खलु पश्यति तत्र तु कन्यकाम् ॥२०॥
गुरुनितम्बघनस्तनभारिणीं सुतनुमध्यबलित्रयहारिणीम् ।
सुपरिदृश्य सतां सुविहारिणीं चिरमचिन्तयदङ्गजधारिणीम् ॥२१॥
हरति केयमिह प्रवरा मनो[4]हरिवधूरुत नागवधूरियम् ।
न हि मनुष्यवधूमहमीदृशीं क्वचिदपीह कदाचन दृष्टवान् ॥२२॥
पदमपीदमपूर्वमिवेक्ष्यते नयनहारिसुरेन्द्रपदोपमम् ।
किमिह सत्यमसत्यमिदं तु किं भ्रमति हि स्वपतां भुवनं मनः ॥२३॥

गुणोंसे युक्त जिनेन्द्ररूपी उन्नत चन्द्रमाकी बड़े आदरसे प्रतिदिन सेवा-शुश्रूषा करते हुए प्रेम-प्रदर्शनपूर्वक उनकी पूजा करने लगे ॥१५॥

अथानन्तर विजयार्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें श्रुतशोणित नामका एक नगर है, उस समय उसमें बाण नामका एक महा अहंकारी विद्याधर रहता था ॥१६॥ राजा बाणके गुण और कला-रूपी आभूषणोंसे युक्त तथा पृथिवीमें सर्वत्र प्रसिद्ध उषा नामकी एक पुत्री थी जो अपने उदार गुणोंसे विख्यात प्रद्युम्नके पुत्र अनिरुद्धको चिरकालसे अपने हृदयमें धारण कर रही थी ॥१७॥ यद्यपि कुमार अनिरुद्ध अत्यन्त कोमल शरीरका धारक था तथापि कुटिल भौंहोंवाली उषाके हृदयमें वास करते हुए उसने कुटिलवृत्ति अंगीकृत की थी इसीलिए तो उसके शरीरमें उसने भारी सन्ताप उत्पन्न किया था ॥१८॥ यद्यपि कुमारी उषा अपने मनकी महाव्यथा दूसरेसे कहती नहीं थी तथापि भीतर ही भीतर वह अत्यन्त दुर्बल हो गयी थी। एक दिन उसकी सखीने अपना हित करनेवाली उस उषासे पूछकर सब कारण जान लिया और वह रात्रिके समय अनिरुद्धको विद्याधरियोंसे श्रेष्ठ विद्याधरलोकमें ले गयी ॥१९॥ प्रातःकालके समय जब सहसा युवा अनिरुद्धकी नींद खुली तब उसने अपने आपको रत्नोंकी किरणोंसे व्याप्त महलमें कोमल शय्यापर सोता हुआ पाया। जागते ही उसने एक कन्याको देखा ॥२०॥ वह कन्या स्थूल नितम्ब और निविड़ स्तनोंके भारसे युक्त थी, पतली कमर और त्रिबलिसे सुशोभित थी, सत्पुरुषोंके मनको हरण करनेवाली थी और काम अथवा रोमांचोंको धारण करनेवाली थी। उसे देख अनिरुद्ध विचार करने लगा कि यह यहाँ कौन उत्तम स्त्री मेरा मन हरण कर रही है? क्या यह इन्द्राणी है? अथवा नाग-वधू है? क्योंकि ऐसी मनुष्यकी स्त्री तो मैंने कभी भी कहीं भी नहीं देखी है ॥२१-२२॥ इन्द्रके स्थानके समान नेत्रोंको हरण करनेवाला यह स्थान भी तो अपूर्व ही दिखाई देता है। यहाँ दिखाई देनेवाला यह सत्य है? या असत्य है? यथार्थमें सोनेवालोंका मन संसारमें भ्रमण करता

१. वरणादि म. । २. तमनुरुद्ध म. । ३. प्रद्युम्नपुत्रम् । ४. इन्द्राणी ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इति वितर्कमतर्कितदर्शनं सुपरिबोध्य तया तमयोजयत् ।
रहसि कन्यकया कृतकङ्कणं विदितचित्रपदादिकलेखिका[1] ॥२४॥
अविरहं सुरतामृतपायिनोरमृतपायिवधूवरयोरिव ।
वरवधूवरयोः समये [2]तयोर्व्रजति वृत्तमिदं विदितं हरेः ॥२५॥
हरिरतो बलशम्बमनोभवप्रभृतिभिर्यदुभिः सह संगतः[3] ।
मदनजानयनं प्रति यातवान् [4]खगपवाणपुरं स विहायसा ॥२६॥
नरतुरङ्गरथद्विपसंकुले युधि विजित्य स तत्र खगाधिपम् ।
तमनिरुद्धमुषासहितं हि तं निजनिवासपुरं हरिरानयत् ॥२७॥
विरहदुःखमपोह्य ततोऽखिलः शमनिरुद्धसमागमसंभवम् ।
अनुदिनं स्वजनो जनतासखः सुखमरंस्त समस्तसुखाश्रयः ॥२८॥
निजवधूजनलालितनेमिना हरिरमा नृपपौरपयोधिना ।
कुसुमितोपवनं स मधौ ययौ विदितरैवतकं रमणेच्छया ॥२९॥
पृथुभिरश्वरथै[5]र्ययुरीश्वरा रुचिरभूषणनेमिबलाच्युताः ।
धृतसितातपवारणहारिणो वृषभतालबृहद्गरुडध्वजाः ॥३०॥
दशदशार्हकुमारगणावृतः करितुरङ्गरथैर्मदयन् जनम् ।
कुसुमबाणधनुर्मकरध्वजैः पथि रथेन ययौ मकरध्वजः ॥३१॥
पुरजनोऽथ यथार्हसुवाहनैर्विविधवस्त्रविभूषणभूषितः ।
हरिपुरस्सरराजवधूजनः पथि जगाम तथा शिविकादिभिः ॥३२॥

रहता है ॥२३॥ अतर्कित वस्तुओंको देखकर कुमार इस प्रकार विचार कर ही रहा था कि इतनेमें चित्रलेखा सखी आयी और सब समाचार बता एकान्तमें कंकण बन्धन कराकर उस कन्याके साथ मिला गयी ॥२४॥ तदनन्तर देव-देवांगनाओंके समान निरन्तर सुरतरूपी अमृतका पान करनेवाले उन दोनों स्त्री-पुरुषोंका समय सुखसे व्यतीत होने लगा। इधर श्रीकृष्णको जब अनिरुद्धके हरे जानेका वृत्तान्त विदित हुआ तब वे बलदेव, शम्ब और प्रद्युम्न आदि यादवोंके साथ मिलकर अनिरुद्धको लानेके लिए आकाशमार्गसे विद्याधरोंके राजा बाणकी नगरी पहुँचे ॥२५-२६॥ और मनुष्य, घोड़े, रथ और हाथियोंसे व्याप्त युद्धमें विद्याधरोंके अधिपति बाणको जीतकर उषासहित अनिरुद्धको अपने नगर वापस ले आये ॥२७॥ तदनन्तर अनिरुद्धके समागमसे समुत्पन्न सुखको पाकर सब लोगोंका विरहजन्य दुःख दूर हो गया और समस्त सुखोंके आधारभूत स्वजन और पुरजन सुखसे क्रीड़ा करने लगे ॥२८॥

अथानन्तर एक समय वसन्त ऋतुके आनेपर श्रीकृष्ण, अपनी स्त्रियोंसे लालित भगवान् नेमिनाथ, राजा महाराजा और नगरवासीरूपी सागरके साथ, जहाँ उपवन फूल रहे थे ऐसे गिरनार पर्वतपर क्रीड़ा करनेकी इच्छासे गये ॥२९॥ जो धारण किये हुए सफेद छत्रोंसे सुशोभित थे, तथा बैल, ताल और गरुड़की ध्वजाओंसे युक्त थे ऐसे सुन्दर भूषणोंसे विभूषित भगवान् नेमिनाथ, बलदेव और श्रीकृष्ण पृथक्-पृथक् बड़े-बड़े घोड़ोंके रथोंपर सवार हो एकके बाद एक जा रहे थे ॥३०॥ उनके पीछे समुद्रविजय आदि दश यादवोंके कुमारोंसे परिवृत प्रद्युम्न, मार्गमें फूलोंके बाण, धनुष तथा मकर चिह्नांकित ध्वजासे मनुष्योंको आनन्दित करता हुआ हाथी और घोड़ोंके रथोंपर सवार हो जा रहा था ॥३१॥ उसके पीछे नाना प्रकारके वस्त्राभूषणोंसे विभूषित नगरवासी लोग यथायोग्य उत्तमोत्तम वाहनोंपर सवार होकर चल रहे थे और इनके बाद कृष्ण

१. चित्रलेखा नाम सखी । २. -विदित–म. । ३. संगतैः म. । ४. खगक म. । ५. रश्वयुतै–म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपचितो जनताभिरसौ गिरिः श्रियमुवाह सहोपवनैस्ततः ।
सुरगिरेः सुरसंगवधूजनैरुपचितस्य चितस्य वनान्तरैः ॥३३॥
[1]समपनीतयथोचितवाहना वनविहारमतो जनताखिला ।
सपदि कर्तुमसावुपचक्रमे गिरिनितम्बवनेषु यथायथम् ॥३४॥
सुरभिपुष्परजःसुरभौ श्रमव्यपगमव्यसने श्वसने दिशः ।
वहति शीतलदक्षिणमारुते स्मररतिश्रम एव नृणामभूत् ॥३५॥
[2]रसितचूतलतारसकोकिलाः कलरवाः कलकण्ठतया गिरौ ।
जनमनांस्यपहर्तुमतिक्षमाः परिचुकूजुरिह स्मरदीपिताः ॥३६॥
मधुलिहां मधुपानजुषां कुलैः कुरवका वकुलाः सुभगाः कृताः ।
द्विपदषट्पदभेदवतां रवैः श्रयति वाश्रय [3]आश्रयिणो गुणान् ॥३७॥
करिकटेष्वयुगच्छदगन्धिषु स्थितिमपास्य [4]मदभ्रमराः श्रिताः ।
ससहकारसुरद्रुममञ्जरीरभिनवासु रतिर्महती भवेत् ॥३८॥
कुसुमभारभृतः प्रणता भृशं प्रणयभङ्गभियेव नता द्रुमाः ।
युवतिहस्तधुताः[5] कुसुमोच्चयेऽतनुसुखं [6]तरुणा इव भेजिरे ॥३९॥
अनतिनम्रतया निजशाखया कथमपि प्रमदाकरलब्धया ।
तरुगणः कुसुमग्रहणेऽभजद् दृढकचग्रहसौख्यमिव प्रभुः ॥४०॥

आदि राजाओंकी स्त्रियाँ पालकी आदिपर सवार हो मार्गमें प्रयाण कर रही थीं ॥३२॥ उस समय जन-समूहसे व्याप्त और उपवनोंसे सुशोभित गिरनार पर्वत, देव-देवियोंसे व्याप्त एवं नाना वनोंसे युक्त सुमेरु पर्वतकी शोभाको धारण कर रहा था ॥३३॥ समीप पहुँचनेपर सब लोग यथायोग्य अपने-अपने वाहन छोड़, पर्वतके नितम्बपर स्थित वनोंमें शीघ्र ही इच्छानुसार विहार करने लगे ॥३४॥ उस समय वासन्ती फूलोंकी परागसे सुगन्धित, श्रमको दूर करनेवाली, ठण्डी दक्षिणकी वायु सब दिशाओंमें बह रही थी इसलिए मनुष्योंके कामभोग-सम्बन्धी श्रम ही शेष रह गया था शेष सब श्रम दूर हो गया था ॥३५॥ आम्रलताओंके रसका आस्वादन करनेवाली, सुन्दर कण्ठसे मनुष्योंका मन हरण करनेमें अत्यन्त दक्ष और कामको उत्तेजित करनेमें निपुण मधुरभाषी कोकिलाएँ उस समय पर्वतपर चारों ओर कुहू-कुहू कर रही थीं ॥३६॥ मधुपान करनेमें लीन भ्रमरोंके समूहसे कुरवक और मौलिश्रीके वृक्ष तथा द्विपद अर्थात् स्त्री-पुरुष अथवा कोकिल आदि पक्षी और षट्पद अर्थात् भ्रमरोंके शब्दसे वनके प्रदेश, अत्यन्त मनोहर हो गये थे सो ठीक ही है क्योंकि आश्रय, आश्रयी—अपने ऊपर स्थित पदार्थके गुण ग्रहण करता ही है ॥३७॥ मदपायी भ्रमर, सप्तपर्ण पुष्पके समान गन्धवाले हाथियोंके गण्डस्थलोंपर स्थितिको छोड़कर आम्र और देवदारुकी मंजरियोंपर जा बैठी सो ठीक ही है क्योंकि नवीन वस्तुओंसे अल्पाधिक प्रीति होती ही है ॥३८॥ फूलोंके भारको धारण करनेवाले वृक्ष अत्यन्त नम्रीभूत हो रहे थे और उससे ऐसे जान पड़ते थे मानो स्नेह-भंगके भयसे ही नम्रीभूत हो रहे थे। वे ही वृक्ष पुष्पावचयनके समय जब युवतियोंके हाथोंसे कम्पित होते थे तब तरुण पुरुषोंके समान अतनु—बहुत भारी अथवा काम-सम्बन्धी सुखको प्राप्त होते थे ॥३९॥ फूल चुनते समय वृक्षोंकी ऊँची शाखाओंको स्त्रियाँ किसी तरह अपने हाथसे पकड़कर नीचेकी ओर खींच रही थीं उससे वे नायकके समान स्त्री द्वारा केश

१. समय म. । २. रसितः स्वादितः चूतलतारसो यैस्ते, ते च ते कोकिलाश्च इति—। ३. -माश्रयिणो म. । ४. मदं भ्रमराश्रिताः म. । ५. युवतिहस्तयुता म. । ६. अतनुसुखं महासुखं कामसुखं वा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]वनपरिभ्रमसौख्यमितस्ततः समनुभूय चिरं वनितासखः ।
युवजनः कुसुमोत्करकल्पितेऽभजत तल्पतले सुरतामृतम् ॥४१॥
प्रतिवनं प्रतिगुल्मलतागृहं प्रतितरु प्रतिवापि विहारतः ।
विषयसौख्यमसेवत सौख्यवानखिलयादवपौरजनो मधौ ॥४२॥
द्विगुणिताष्टसहस्रवधूगणैर्बहुगुणीकृतभोगनभोगतः ।
सुमधुमाधवमासममानयत् सुभगताधरमाधवचन्द्रमाः ॥४३॥
पतिनिदेशजुषो हरियोषितो मुषितमानवमानसवृत्तयः ।
सह विजह्रुरधीश्वरनेमिना तरुलतारमणीयवनेषु ताः ॥४४॥
[2]वनलताकुसुमस्तबकोच्चये मधुमदालसमानसलोचना[3] ।
मुखसुगन्धितया मुखरालिभिर्वलयिताधृत काचन देवरम् ॥४५॥
उरसि चुम्बति तं कठिनस्तनी स्पृशति काचन जिघ्रति तं परा ।
मृदुकरेण करे परिगृह्य तं शशिमुखं कुरुतेऽभिमुखं परा ॥४६॥
विटपकैरपि सालतमालजैर्व्यजनकैरिव काश्चिदवीजयन् ।
विदधुरस्य परास्त्ववतंसकश्रियमशोकतरोर्नवपल्लवैः ॥४७॥
विरचितां कुसुमैर्विविधैः स्रजं निजपरिष्वजनस्पृहया परा ।
शिरसि मालयति स्म गले परा कुरवकान्यपरा शिरसेऽकिरत् ॥४८॥
इति वसन्तमनन्तमसौ युवा हरिवधूमिरमा प्रतिमानयन् ।
स ऋतुना तदनन्तरभाविना विभुरसेव्यत सेवकवृत्तिना ॥४९॥

खींचनेके सुखका अनुभव कर रहे थे ॥४०॥ तरुण पुरुष, स्त्रियोंके साथ चिरकाल तक जहाँ-तहाँ वन-भ्रमणके सुखका उपभोग कर फूलोंके समूहसे निर्मित शय्याओंपर सम्भोगरूपी अमृतका सेवन करने लगे ॥४१॥ उस वसन्त ऋतुमें सुखसे युक्त समस्त यादव, प्रत्येक वन, प्रत्येक झाड़ी, प्रत्येक लतागृह, प्रत्येक वृक्ष और प्रत्येक वापीमें विहार करते हुए विषय-सुखका सेवन कर रहे थे ॥४२॥ सोलह हजार स्त्रियोंके द्वारा अनेकरूपताको प्राप्त भोगरूपी आकाशमें विद्यमान एवं सौन्दर्यको धारण करनेवाले श्रीकृष्णरूपी चन्द्रमाने भी वसन्तऋतुके उस चैत्र-वैशाख मासको बहुत अच्छा माना था ॥४३॥ मनुष्यकी मनोवृत्तिको हरण करनेवाली श्रीकृष्णकी स्त्रियाँ, पतिकी आज्ञा पाकर वृक्षों और लताओंसे रमणीय वनोंमें भगवान् नेमिनाथके साथ क्रीड़ा करने लगीं ॥४४॥ मधुके मदसे जिसका हृदय और नेत्र अलसा रहे थे ऐसी किसी स्त्रीको वन-लताओंके फूलोंके गुच्छे तोड़ते समय मुखकी सुगन्धिसे प्रेरित गुनगुनाते हुए भ्रमरोंने घेर लिया इसलिए उसने भयभीत हो देवर–नेमिनाथको पकड़ लिया ॥४५॥ कोई कठिनस्तनी वक्षःस्थलपर उनका चुम्बन करने लगी, कोई उनका स्पर्श करने लगी, कोई उन्हें सूँघने लगी, कोई अपने कोमल हाथसे उनका हाथ पकड़ चन्द्रमाके समान मुखके धारक भगवान् नेमिनाथको अपने सम्मुख करने लगी ॥४६॥ कितनी ही स्त्रियाँ साल और तमाल वृक्षकी छोटी-छोटी टहनियोंसे पंखोंके समान उन्हें हवा करने लगीं। कितनी ही अशोक वृक्षके नये-नये पल्लवोंसे कर्णाभरण अथवा सेहरा बनाकर उन्हें पहनाने लगीं ॥४७॥ कोई अपने आलिंगनकी इच्छासे नाना प्रकारके फूलोंसे निर्मित माला उनके शिरपर पहनाने लगी, कोई गलेमें डालने लगी और कोई उनके शिरको लक्ष्य कर कुरवकके पुष्प फेंकने लगी ॥४८॥ इस प्रकार युवा नेमिनाथ कृष्णकी स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा करते हुए उस वसन्तको ऐसा समझ रहे थे जैसे उसका कभी अन्त ही आनेवाला न हो। तदनन्तर वसन्तके बाद आनेवाली

१. नवपरिभ्रम–म. । २. वनलताः म. । ३. लोचनाः म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिदिनं वसति स्म हरिस्तदा खरनिदाघमृतुं प्रतिमानयन् ।
स्वधृतिकारिणि रैवतके गिरौ शिशिरशीकरनिर्झरहारिणि ॥५०॥
हरिवधूनिवहैरुपरोधतः[1] प्रकृतिरागपरागपराङ्मुखः ।
शिशिरवारिणि तत्र जलास्पदे जलविहारमसेवत तीर्थकृत् ॥५१॥
तरणदूरनिमज्जनकक्रियाः सलिलयन्त्रकराश्च परस्परम् ।
यदुनृपस्य मुदा वरयोषितः[2] प्रतिविचिक्षिपुरम्बुमुखाम्बुजे ॥५२॥
विभुमपि प्रति ता व्यकिरन्नपः करतलाञ्जलिभिर्जलयन्त्रकैः ।
प्रलघु तेन तु ताः[3] किरतापगाः जलधिनेव मुहुर्विमुखीकृताः ॥५३॥
अजनि मज्जनकं जनरञ्जनं न खलु केवलमेवमनीदृशम् ।
अपि तु चित्रसमालभनैर्भ्रमत्परिमलैरपि तज्जलरञ्जनम् ॥५४॥
उदतरत् प्रभुणा तरुणीघटा[4] गतनिदाघजघर्मघनश्रमा ।
मृदितपुष्करिणी करिणी चिरादिव महाकरिणा करिणीघटा ॥५५॥
च्युतवतंसविशेषकमाकुलं तरलदृष्टि विधूसरिताधरम् ।
शिथिलमेखलमिष्टकचग्रहं रत इवाप पुरन्ध्रिकुलं श्रियम् ॥५६॥
परिजनाहृतवस्त्रविभूषणैस्तदनुभूषिततोषितयोषितः ।
विभुवपुर्वसनैः सममार्जयन् सुपरिधाय परं परिधानकम् ॥५७॥

ग्रीष्म ऋतु सेवककी तरह भगवान्‌की सेवा करने लगी ॥४९॥

उस समय तीक्ष्ण गरमीसे युक्त ग्रीष्म ऋतुको अच्छा मानते हुए श्रीकृष्ण उसी गिरनार पर्वतपर प्रतिदिन निवास करने लगे क्योंकि वह उन्हें बहुत ही आनन्दका कारण था और ठण्डे-ठण्डे जलकणोंसे युक्त निर्झरोंसे मनोहर था ॥५०॥ यद्यपि भगवान् नेमिनाथ स्वभावसे ही रागरूपी परागसे पराङ्मुख थे तथापि श्रीकृष्णके स्त्रियोंके उपरोधसे वे शीतल जलसे भरे हुए जलाशयमें जलक्रीड़ा करने लगे ॥५१॥ यदु नरेन्द्रकी उत्तम स्त्रियाँ कभी तैरने लगती थीं, कभी लम्बी-लम्बी डुबकियाँ लगाती थीं, कभी हाथमें पिचकारियाँ ले हर्षपूर्वक परस्पर एक-दूसरेके मुखकमलपर पानी उछालती थीं ॥५२॥ वे अपनी हथेलीकी अंजलियों और पिचकारियोंसे जब भगवान्‌के ऊपर जल उछालने लगीं तो उन्होंने भी जल्दी-जल्दी पानी उछालकर उन सबको उस तरह विमुख कर दिया जिस तरह कि समुद्र अपने जलकी तीव्र ठेलसे जब कभी नदियोंको विमुख कर देता है—उलटा लौटा देता है ॥५३॥ उनका वह ऐसा अनुपम स्नान न केवल जनरंजन-मनुष्योंको राग—प्रीति उत्पन्न करनेवाला हुआ था किन्तु फैलती हुई सुगन्धिसे युक्त नाना प्रकारके विलेपनोंसे जल रंजन—जलको रँगनेवाला भी हुआ था ॥५४॥ जिस प्रकार कमलोंके समूहको मर्दन करनेवाली एक चंचल सूँड़से युक्त हस्तिनियोंका समूह जलाशयमें किसी महाहस्तीके साथ चिरकाल तक तैरता रहता है उसी प्रकार वह तरुण स्त्रियोंका समूह अपने हाथ चलाता और कमलोंके समूहको मर्दित करता हुआ चिर काल तक तैरता रहा। इस जल-क्रीड़ासे उनका ग्रीष्मकालीन घामसे उत्पन्न समस्त भय दूर हो गया था ॥५५॥ उस समय स्त्रियोंके कर्णाभरण गिर गये थे, तिलक मिट गये थे, आकुलता बढ़ गयी थी, दृष्टि चंचल हो गयी थी, ओठ धूसरित हो गये थे, मेखला ढीली हो गयी थी और केश खुल गये थे इसलिए वे सम्भोगकाल-जैसी शोभाको प्राप्त हो रही थीं ॥५६॥ तदनन्तर परिजनोंके द्वारा लाये हुए वस्त्राभूषणोंसे विभूषित स्त्रियोंने, सन्तुष्ट होकर वस्त्रोंसे भगवान्‌का शरीर पोंछा और उन्हें दूसरे वस्त्र पहनाये ॥५७॥

१. -रुपरोधितः म., ङ. । २. स्वमुखवारिसुसेकवधूजनाः म., ङ. । ३. सता म. । ४. गतिनिदाघज म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सपदिमुक्तजलाम्बरपीलने स्फुटकटाक्षगुणेन विलासिना ।
मधुरिपुस्थिरगौरवभूमिकामतुलजाम्बवतीं समनोदयत् ॥५८॥
कृतककोपविकारकटाक्षिणी सललितभ्रु विलोक्य तु चक्षुषा ।
विभुमुवाच वचः पथपण्डिता त्वरितजाम्बवती स्फुटिताधरा ॥५९॥
भुजगकोटिमणिद्युतिमण्डलद्विगुणिताङ्गतिरीटमणिप्रभः ।
समधिरुह्य स कौस्तुभभासुरः स्वहरिवाहमहाशयनं हरिः ॥६०॥
घननिनादतताम्बरमम्बुजं[1] जगति पूरयते निजमम्बुभाः[2] ।
कठिनशार्ङ्गधनुः सगुणं करोत्यखिलभूपविभुः सुभगाङ्गनः ॥६१॥
पतिरसौ मम सोऽपि[3] कदाचन प्रति न शास्ति हि वेदृशशासनम् ।
तदिह कश्चिदयं किल शास्ति मामपि भवान् सजलाम्बरपीलने ॥६२॥
इति निशम्य तु काश्चन तद्वचः प्रतिजगुर्जगतीपतियोषितः ।
किमिति नाथमधिक्षिपसि त्रिभूप्रभुमनन्तगुणं विगतत्रपे ॥६३॥
कियदिदं जगतीपतिपौरुषं जगति दुष्करमित्यभिधाय सः ।
सरभसं पुरमेत्य नृपालयं द्रुतगतिः प्रविवेश हसन्मुखः ॥६४॥
चलभुजङ्गमभोगविभूषणं तदधिरुह्य महाशयनं हरेः ।
तदकरोद्विगुणं सगुणं धनुस्तमपि शङ्खमपूरयदीश्वरः[4] ॥६५॥

भगवान्‌ने जो तत्काल गीला वस्त्र छोड़ा था उसे निचोड़नेके लिए उन्होंने कुछ विलासपूर्ण मुद्रामें कटाक्ष चलाते हुए कृष्णकी प्रेमपात्र एवं अनुपम सुन्दरी जाम्बवतीको प्रेरित किया ॥५८॥ भगवान्‌का अभिप्राय समझ शीघ्रतासे युक्त तथा नाना प्रकारके वचन बनानेमें पण्डित जाम्बवती बनावटी क्रोधसे विकारयुक्त कटाक्ष चलाने लगी, उसका ओष्ठ कम्पित होने लगा एवं हाव-भाव-पूर्वक भौंहें चलाकर नेत्रसे भगवान्‌की ओर देखकर कहने लगी कि ॥५९॥ जिनके शरीर और मुकुटके मणियोंकी प्रभा करोड़ों सर्पोंके मणियोंके कान्तिमण्डलसे दूनी हो जाती है, जो कौस्तुभ मणिसे देदीप्यमान हैं, जो महानागशय्यापर आरूढ़ हो जगत्‌में प्रचण्ड आवाजसे आकाशको व्याप्त करनेवाला अपना शंख बजाते हैं, जो जलके समान नीली आभाको धारण करनेवाले हैं, जो अत्यन्त कठिन शार्ङ्गनामक धनुषको प्रत्यंचासे युक्त करते हैं, जो समस्त राजाओंके स्वामी हैं और जिनकी अनेक शुभ-सुन्दर स्त्रियाँ हैं वे मेरे स्वामी हैं किन्तु वे भी कभी मुझे ऐसी आज्ञा नहीं देते फिर आप कोई विचित्र ही पुरुष जान पड़ते हैं जो मेरे लिए भी गीला वस्त्र निचोड़नेका आदेश दे रहे हैं ॥६०-६२॥ जाम्बवतीके उक्त शब्द सुनकर कृष्णकी कितनी ही स्त्रियोंने उसे उत्तर दिया कि अरी निर्लज्ज ! इस तरह तीन लोकके स्वामी और अनन्तगुणोंके धारक भगवान् जिनेन्द्रकी तू क्यों निन्दा कर रही है ? ॥६३॥ जाम्बवतीके वचन सुन भगवान् नेमिनाथने हँसते हुए कहा कि तूने राजा कृष्णके जिस पौरुषका वर्णन किया है संसारमें वह कितना कठिन है ? इस प्रकार कहकर वे वेगसे नगरकी ओर गये और शीघ्रतासे राजमहलमें घुस गये ॥६४॥ वे लहलहाते सर्पोंकी फणाओंसे सुशोभित श्रीकृष्णकी विशाल नागशय्यापर चढ़ गये । उन्होंने उनके शार्ङ्ग धनुषको दूना कर प्रत्यंचासे युक्त

---

१. शङ्खं । २. पूरयते च निजाम्बुभाः म., पूरयते च जिनाधिपैः घ., पूरयते निजमाम्बुजाः ग., पूरयते निजमाम्बुभाः ङ., ख. । ३. कोऽपि म. । ४. -दीश्वरम् म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुखरशङ्खरवेण दिशां मुखान्यखिलमम्बरमम्बुनिधिश्च भूः ।
निखिलमेतदतीव विपूरितस्फुटदिवस्फुटमाविरभूत्तदा ॥६६॥
पटुमदाः करिणः क्षुभिता निजानभिबभञ्जुरितस्तत आश्रयान् ।
त्रुटितबन्धतुरङ्गगमकोटयः पुरि सहेषितकास्त्वरितोऽभ्रमन् ॥६७॥
भवनकूटतटान्यपतन् हरिः स्वकमकर्षदसिं क्षुभिता सभा ।
पुरजनः प्रलयागमशङ्कया भयमगात् परमाकुलितस्तदा ॥६८॥
हरिरवेत्य निजाम्बुजनिस्वनं त्वरितमेत्य कुमारमवज्ञया ।
स्फुरदहीशमहाशयने स्थितं परिनिरीक्ष्य नृपैः सुविसिस्मिये ॥६९॥
परुषजाम्बवतीवचसो रुषा स्फुटमवेत्य कुमारकृतं हरिः ।
परितुतोष सबन्धुरधीशितुर्विकृतिरप्यतितोषकरी तदा ॥७०॥
कृतपरिष्वजनः स्वजनैः स तं समभिपूज्य युवानमगाद्गृहम् ।
स्वयुवतिं प्रति दीपितमन्मथं समवबुध्य हरिर्मुमुदेऽधिकम् ॥७१॥
सविधियाचितभोजसुताकरग्रहणहेतुविबोधितबान्धवः ।
नरपतीन् सकलान् सकलत्रकानकृत सन्निहितान् कृतगौरवः ॥७२॥
विहिततत्समयोचितमज्जनौ परमरूपधरौ धृतमण्डनौ ।
पुरि यथास्वमगारमधिष्ठितौ जनमनोऽहरतां सुवधूवरौ ॥७३॥

कर दिया और उनके पांचजन्य शंखको जोरसे फूँक दिया ॥६५॥ शंखके उस भयंकर शब्दसे दिशाओंके मुख, समस्त आकाश, समुद्र, पृथिवी आदि सभी चीजें व्याप्त हो गयीं और उससे ऐसी जान पड़ने लगीं मानो शंखके शब्दसे व्याप्त होनेके कारण फट ही गयी हों ॥६६॥ अत्यधिक मदको धारण करनेवाले हाथियोंने क्षुभित होकर जहाँ-तहाँ अपने बन्धनके खम्भे तोड़ दिये। घोड़े भी बन्धन तुड़ाकर हिनहिनाते हुए नगरमें इधर-उधर दौड़ने लगे ॥६७॥ महलोंके शिखर और किनारे टूट-टूटकर गिरने लगे। श्रीकृष्णने अपनी तलवार खींच ली। समस्त सभा क्षुभित हो उठी, और नगरवासी जन प्रलयकालके आनेकी शंकासे अत्यन्त आकुलित होते हुए भयको प्राप्त हो गये ॥६८॥ जब कृष्णको विदित हुआ कि यह तो हमारे ही शंखका शब्द है तब वे शीघ्र ही आयुधशालामें गये और नेमिकुमारको देदीप्यमान नागशय्यापर अनादरपूर्वक खड़ा देख अन्य राजाओंके साथ आश्चर्य करने लगे ॥६९॥ ज्यों ही कृष्णको यह स्पष्ट मालूम हुआ कि कुमारने यह कार्य जाम्बवतीके कठोर वचनोंसे कुपित होकर किया है त्यों ही बन्धुजनोंके साथ उन्होंने अत्यधिक सन्तोषका अनुभव किया। उस समय कुमारकी वह क्रोधरूप विकृति भी कृष्णके लिए अत्यन्त सन्तोषका कारण हुई थी ॥७०॥

अपने स्वजनोंके साथ कृष्णने युवा नेमिकुमारका आलिंगन कर उनका अत्यधिक सत्कार किया और उसके बाद वे अपने घर गये। घर जानेपर जब उन्हें विदित हुआ कि अपनी स्त्रीके निमित्तसे उन्हें कामोद्दीपन हुआ है तब वे अधिक हर्षित हुए ॥७१॥ श्रीकृष्णने नेमिनाथके लिए विधिपूर्वक भोजवंशियोंकी कुमारी राजीमतीकी याचना की, उसके पाणिग्रहण संस्कारके लिए बन्धुजनोंके पास खबर भेजी और स्त्रियोंसहित समस्त राजाओंको बड़े सम्मानके साथ बुलाकर अपने निकट किया ॥७२॥ उस समयके योग्य जिनका स्नपन किया गया था, जो परम रूपको धारण कर रहे थे, जिन्होंने उत्तमोत्तम आभूषण धारण किये थे और जो अपने-अपने नगरमें अपने-अपने घर स्थित थे ऐसे उत्तम वधू और वर मनुष्योंका मन हरण कर रहे थे ॥७३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऋतुरियाय स घर्ममयस्ततो भुवि घनागमकालभयादिव ।
नभसि दीनमदर्शि घनावली मरुपथे पथिकैस्तृषितैरपि ॥७४॥
प्रथमगर्जितशीतपयःकणा जलमुचां [1]शिखिचातकसौख्यदाः ।
भुवि बभूवुरशेषवियोगिनां द्विगुणतापजुषामतिदुःसहाः ॥७५॥
दवदिवाकरदग्धवनावलीप्रथमनिर्गतवाष्पसुसौरभे[2] ।
अभवतामिव सौहृददर्शने [3]नभसि वर्षति मेघकदम्बके ॥७६॥
चलतडित्सबलाकबलाहके [4]सुरपचापधरे शरवर्षिणी ।
क्षितिरभात्सुरगोपशतैश्चिता पतितपान्थमनोभिरिवामितः ॥७७॥
कुटजनीपकदम्बकदम्बकैः कुसुमितैः ककुभैः[5] ककुभोऽखिलाः ।
नवशिलीन्ध्रदलैश्च मनोहराः सवनरन्ध्रगिरिक्षितयो बभुः ॥७८॥
घनघनाघनगर्जिततर्जिता मुखरबाहुलतावलयारवैः ।
युवतयः प्रियकण्ठदृढग्रहैर्विदधुरुग्रभयग्रहनिग्रहम् ॥७९॥
गिरिशिलातपयोगविमोचितास्त्रिविधयोगधरा मुनयो वने ।
शिशिरमारुतवर्षसहक्षमास्तरुलताभिमुखास्त्ववतस्थिरे। ।८०॥
पृथुरथं चतुरश्वयुतं तदा ध्वजपताकिनमर्करथप्रभम् ।
समधिरुह्य सनेमियुवान्वितो नृपसुतैश्चलितो वनभूमिकाम् ॥८१॥

तदनन्तर अब पृथिवीपर वर्षाकाल आनेवाला है इस भयसे ही मानो ग्रीष्म ऋतु कहीं चली गयी। आकाशमें मेघमाला छा गयी और उसे मरुस्थलके पथिक प्यासे होनेपर भी बड़ी दीनतासे देखने लगे ॥७४॥ मेघोंकी प्रथम गर्जनाके जो शब्द और शीतल जलके छींटे क्रमसे मयूरों तथा चातकोंको सुखदायी थे वे ही पृथिवीपर दूने सन्तापको प्राप्त समस्त विरही मनुष्योंके लिए अत्यन्त दुःसह हो रहे थे ॥७५॥ सावनके महीनेमें जब मेघोंके समूह बरसने लगे तब दावानल और सूर्यके कारण दग्ध वनपंक्तिसे जो सर्वप्रथम वाष्प (भाप) और सोंदी-सोंदी सुगन्धि निकली वह ऐसी जान पड़ने लगी मानो मेघरूपी मित्रके दिखनेसे ही वनावलीके वाष्प—हर्षाश्रु और सुखोच्छ्वासकी सुगन्धि निकलने लगी हो ॥७६॥ चंचल बिजली और बलाकाओंसे सहित, मेघ जब इन्द्रधनुषरूपी धनुषको धारण कर शर अर्थात् बाण (पक्षमें जल) की वर्षा करने लगे तब सैकड़ों इन्द्रगोपोंसे व्याप्त पृथिवी ऐसी जान पड़ने लगी मानो जहाँ-तहाँ पथिक जनोंके गिरे हुए अनुरागी हृदयोंसे ही व्याप्त हो रही हो ॥७७॥ समस्त दिशाएँ फूले हुए कुटज, कदम्ब और कोहाके वृक्षोंसे मनोहर दिखने लगीं तथा वन, गर्त और पर्वतोंसे सहित समस्त भूमि शिलीन्ध्र-के नये-नये दलोंसे सुशोभित हो उठी ॥७८॥ मेघोंकी घनघोर गर्जनासे डरी हुई युवतियाँ, भुजाओंकी खनकती हुई चूड़ियोंके शब्दसे युक्त पतियोंके कण्ठके दृढालिंगनसे अपने तीव्र भयरूपी पिशाचका निग्रह करने लगीं। **भावार्थ**—मेघगर्जनासे भयभीत स्त्रियाँ पतियोंके कण्ठका दृढालिंगन करने लगीं ॥७९॥ आतापन, वर्षा और शिशिरके भेदसे तीन प्रकारके योगको धारण करनेवाले मुनियोंका उस समय पर्वतकी शिलाओंपर होनेवाला आतापन योग छूट गया था इसलिए वे वनमें शीत, वायु और वर्षाकी बाधा सहन करते हुए वृक्ष और लताओंके नीचे स्थित हो गये। **भावार्थ**—मुनिगण वृक्षोंके नीचे बैठकर वर्षायोग धारण करने लगे ॥८०॥ ऐसी ही वर्षाऋतुमें एक दिन युवा नेमिकुमार, ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित सूर्यके रथके समान

---

१. दिवि चातक क., भुवि चातक ङ। २. कर्तृपदम्। ३. श्रावणमासे। ४. सुरचापवरे क., ङ., म.। ५. 'इन्द्रः ककुभोऽर्जुनः' इत्यमरः। 'कोहा' इति हिन्दी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुदितभोजसुतानगराङ्गनातृषितनेत्रनिपीतवपुर्जलः ।
विपुलराजपथेन स तैरगात् सकृपयेव मनोहरदर्शनः ॥८२॥
जलनिधिर्मुखरः स्वतरङ्गकैर्ललितनर्तनदोर्मिरिवाकुलैः ।
अतितरां विबभौ विभुसन्निधौ विधृतनर्तननर्तकवत्तदा[1] ॥८३॥
उपवनं समुपेत्य वनश्रियं सपदि यूनि विलोकयतीश्वरे ।
विततशाखवनद्रुमजातयो विचकरुः कुसुमाञ्जलिमानताः ॥८४॥
स खलु पश्यति तत्र तदा वने विविधजातिभृतस्तृणभक्षिणः ।
भयविकम्पितमानसगात्रकान् पुरुषरुद्धमृगानतिविह्वलान् ॥८५॥
लघु निरुध्य रथं [2]स हि सारथिं निजनिनादजिताम्बुदनिस्वनः ।
अपि विदन्नवदन्मृगजातयः किमिह रोधमिमाः प्रतिलम्भिताः ॥८६॥
अकथयत् प्रणतः स कृताञ्जलिः क्षितिभुजामिह मांसभुजां विभो ।
तव विवाहविधौ मृगरोधनं विविधमांसनिमित्तमनुष्ठितम् ॥८७॥
इति निशम्य निशाम्य मृगव्रजान् प्रकृतिभूतदयास्थितमानसः ।
नृपसुतानभिवीक्ष्य विभुर्जगावभिनिबोधविबुद्धमणसावधिः ॥८८॥
गृहमरण्यमरण्यतृणोदकान्यशनपानमतीव निरागसः ।
मृगकुलस्य तथापि वधो नृभिर्जगति पश्यत निर्घृणतां नृणाम् ॥८९॥

देदीप्यमान एवं चार घोड़ोंसे जुते रथपर सवार हो अनेक राजकुमारोंके साथ वनभूमिकी ओर चल दिये ॥८१॥ प्रसन्नतासे युक्त राजीमती तथा नगरकी स्त्रियोंने अपने प्यासे नेत्रोंसे जिनके शरीररूपी जलका पान किया था एवं जिसका दर्शन मनको हरण कर रहा था ऐसे नेमिनाथ भगवान्, उन राजकुमारोंके साथ विशाल राज-मार्गसे दर्शकोंपर दया करते हुएके समान धीरे-धीरे गमन कर रहे थे ॥८२॥ उस समय समुद्र, सुन्दर नृत्यमें व्यस्त भुजाओंके समान अपनी चंचल तरंगोंसे शब्दायमान हो रहा था और भगवान्के समीप आनेपर नाना प्रकारके नृत्योंको धारण करनेवाले नर्तकके समान अत्यधिक सुशोभित हो रहा था ॥८३॥ उपवनमें पहुँचकर युवा नेमिकुमार शीघ्र ही वनकी लक्ष्मीको देखने लगे और वनके नाना वृक्षोंकी पंक्तियाँ अपनी शाखारूप भुजाएँ फैलाकर नम्रीभूत हो उनपर फूलोंकी अंजलियाँ बिखेरने लगीं ॥८४॥ उसी समय उन्होंने वनमें एक जगह, भयसे जिनके मन और शरीर काँप रहे थे, जो अत्यन्त विह्वल थे, पुरुष जिन्हें रोके हुए थे और जो नाना जातियोंसे युक्त थे ऐसे तृणभक्षी पशुओंको देखा ॥८५॥ यद्यपि भगवान्, अवधिज्ञानसे उन पशुओंको एकत्रित करनेका कारण जानते थे तथापि उन्होंने शीघ्र ही रथ रोककर अपने शब्दसे मेघध्वनिको जीतते हुए, सारथिसे पूछा कि ये नाना जातिके पशु यहाँ किसलिए रोके गये हैं ? ॥८६॥ सारथिने नम्रीभूत हो हाथ जोड़कर कहा कि हे विभो ! आपके विवाहोत्सवमें जो मांसभोजी राजा आये हैं उनके लिए नाना प्रकारका मांस तैयार करनेके लिए यहाँ पशुओंका निरोध किया गया है ॥८७॥ इस प्रकार सारथिके वचन सुनकर ज्यों ही भगवान्ने मृगोंके समूहकी ओर देखा त्यों ही उनका हृदय प्राणिदयासे सराबोर हो गया। वे अवधिज्ञानी थे ही इसलिए राजकुमारोंकी ओर देखकर इस प्रकार कहने लगे कि वन ही जिनका घर है, वनके तृण और पानी ही जिनका भोजन-पान है और जो अत्यन्त निरपराध हैं ऐसे दीन मृगोंका संसारमें फिर भी मनुष्य वध करते हैं। अहो ! मनुष्योंकी निर्दयता तो

---

१. विधृतनर्तकनर्तन म., ङ. । २. सहसारथि म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रणमुखेषु रणार्जितकीर्तयः करितुरङ्गरथेष्वपि निर्भयान् ।
अभिमुखानभिहन्तुमधिष्ठितानभिमुखाः प्रहरन्ति न हीतरान् ॥९०॥
शरभसिंहवनद्विपयूथपान् प्रकुपितान् परिहृत्य विदूरतः ।
मृगशशान् पृथुकान् प्रहरत्यमून् कथमिवात्र पुमान्न विलज्जते ॥९१॥
चरणकण्टकवेधभयाद्भटा विदधते परिधानमुपानहाम् ।
मृदुमृगान् मृगयासु पुनः स्वयं निशितशस्त्रशतैः प्रहरन्ति हि ॥९२॥
विषयसौख्यफलप्रसवोदयः प्रथम एष मृगौघवधोऽधमः ।
अनुभवे पुनरस्य रसप्रदे षडसुकायनिपीडनमध्यधि ॥९३॥
विपुलराज्यपदस्थितिमिच्छता सकलसत्त्ववधोऽभिमुखीकृतः ।
दुरितबन्धफलस्तु वधो ध्रुवं कटुफला स्थितिरस्य परा[1] यतः ॥९४॥
प्रकृतिदेशरसानुभवस्थिति[2]प्रचितबन्धचतुष्कवशीकृतः ।
भजति दुर्गतिषु क्रमतो भ्रमन् विविधदुःखमयं भवभृद्गणः ॥९५॥
प्रतिभवं भयदुःखखनीयुतैर्विषयजैः[3] कुसुखैरतिभावितः ।
नरभवेऽप्यसुमानतिमोहितो न यतते भवदुःखनिवृत्तये ॥९६॥
भवसुखानि बहिर्विषयोद्भवान्यतिमहान्त्यपि [4]सन्ततिमन्त्यपि ।
भवभृतो न भवन्ति हि तुष्टये जलनिधेरिव सिन्धुशतान्यपि ॥९७॥

देखो ॥८८–८९॥ रणके अग्रभागमें जिन्होंने कीर्तिका संचय किया है ऐसे शूरवीर मनुष्य हाथी, घोड़े और रथ आदिपर सवार हो निर्भयताके साथ मारनेके लिए सामने खड़े हुए लोगोंपर ही उनके सामने जाकर प्रहार करते हैं अन्य लोगोंपर नहीं ॥९०॥ जो पुरुष अत्यधिक क्रोधसे युक्त शरभ, सिंह तथा जंगली हाथियों आदिको दूरसे छोड़ देते हैं और मृग तथा खरगोश आदि क्षुद्र प्राणियों-पर प्रहार करते हैं उन्हें लज्जा क्यों नहीं आती ? ॥९१॥ अहा ! जो शूरवीर पैरमें काँटा न चुभ जाये इस भयसे स्वयं तो जूता पहनते हैं और शिकारके समय कोमल मृगोंको सैकड़ों प्रकारके तीक्ष्ण शस्त्रोंसे मारते हैं यह बड़े आश्चर्यकी बात है ॥९२॥ यह निन्द्य मृग-समूहका वध प्रथम तो विषयसुखरूपी फलको देता है परन्तु जब इसका अनुभाग अपना रस देने लगता है तब उत्तरोत्तर छह कायका विघात सहन करना पड़ता है। भावार्थ—हिंसक प्राणी छहकाय-के जीवोंमें उत्पन्न होता है और वहाँ नाना जीवोंके द्वारा मारा जाता है ॥९३॥ यह मनुष्य चाहता तो यह है कि मुझे विशाल राज्यकी प्राप्ति हो पर करता है समस्त प्राणियोंका वध सो यह विरुद्ध बात है क्योंकि प्राणिवधका फल तो निश्चय ही पापबन्ध है और उसके फलस्वरूप कटुक फलकी ही प्राप्ति होती है राज्यादिक मधुर फलकी नहीं ॥९४॥ प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग रूप चार प्रकारके बन्धके वशीभूत हुआ यह प्राणियोंका समूह क्रम-क्रमसे दुर्गतियोंमें परिभ्रमण करता हुआ नाना प्रकारके दुःख भोगता रहता है ॥९५॥ यह प्राणी प्रत्येक भवमें भय और दुःखकी खानसे युक्त विषय-सम्बन्धी खोटे सुखोंसे प्रभावित रहा है और आज मनुष्य-भवमें भी इतना अधिक मोहित हो रहा है कि संसार-सम्बन्धी दुःखको दूर करनेके लिए यत्न ही नहीं करता ॥९६॥

जिस प्रकार सैकड़ों नदियाँ समुद्रके सन्तोषके लिए नहीं हैं उसी प्रकार बाह्य विषयोंसे उत्पन्न, सन्ततिबद्ध, बहुत भारी संसारसुख भी प्राणीके सन्तोषके लिए नहीं हैं ॥९७॥

१. वरा म. । २. स्थितिः प्रचित म. । ३. विषमजैः म. । ४. सन्ततितान्यपि म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खचरदेवनृपामरजन्मजं नृपजयन्तविमानभवोद्भवम् ।
न हि सुखं[1] बहु सागरजीविनः समनुभूतमभून्मम तृप्तये ॥९८॥
कतिपयाहभवं वत किं पुनः सुलभमप्यतिमानुषमप्यलम् ।
भवति तृप्तिकरं मम साम्प्रतं सुखमसारमसारतयायुषः ॥९९॥
अत इदं क्षयि तापकरं सुखं विषयजं प्रविहाय महोद्यमः ।
क्षयविमुक्तमतापजमात्मजं शिवमुखं महता तपसार्जये ॥१००॥
इति तदा मनसा वचसा समं सुपरिचिन्तयति ध्रुवमीश्वरे ।
शशिनिभाः खलु [2]पञ्चमकल्पजास्तुषितवह्न्यरुणार्कपुरस्सराः ॥१०१॥
लघु समेत्य नता नतमौलयः कृतकराञ्जलयस्त्रिदशा जगुः ।
समय एष विभो भरतेऽधुना त्वमिह वर्तय तीर्थमिति प्रभुम् ॥१०२॥
प्रतिविबुद्धपथः स्वयमेव स प्रतिविबोधकदेवगिरोऽस्य ताः ।
अनुवदन्त्यपि ताः पुनरुक्ततां फलति चावसरे पुनरुक्तता ॥१०३॥
लघु विमुच्य मृगान् मृगबान्धवो नृपसुतैः प्रविवेश पुरं प्रभुः ।
सपदि तत्र नृपासनभूषणं [3]ननुवुरेत्य पुरेव सुरेश्वराः ॥१०४॥
तमुपवेश्य ततः स्नपनासने समुपनीतपयःपयसा सुरैः ।
सममिषिच्य विभूष्य सुरोचितस्रगनुलेपनवस्त्रविभूषणैः ॥१०५॥
सुहरिविष्टरवर्तितमीश्वरं [4]हरिबलान्वितमूपसुरासुराः ।
बभुरतीव तदा परितः स्थिता प्रथममेरुमिवोरुकुलाचलाः ॥१०६॥

औरकी बात जाने दो मैंने स्वयं सागरों पर्यन्त विद्याधरेन्द्र, देवेन्द्र और नरेन्द्रके जन्ममें राजाओं तथा जयन्त विमानमें समुत्पन्न सुखका उपभोग किया है पर वह मेरी तृप्तिके लिए नहीं हुआ ॥९८॥ यद्यपि मुझे लोकोत्तर सुख सुलभ है तथापि वह कुछ ही दिन ठहरनेवाला है, निःसार है और मेरी आयु भी असार है अतः वह मेरे लिए तृप्ति करनेवाला कैसे हो सकता है ? ॥९९॥ इसलिए मैं इस विनाशीक एवं सन्तापकारी विषयजन्य सुखको छोड़कर महान् उद्यम करता हुआ अत्यधिक तपसे अविनाशी, असन्तापसे उत्पन्न आत्मोत्थ मोक्ष सुखका उपार्जन करता हूँ ॥१००॥ भगवान् उस समय मन-वचनसे इस प्रकारका विचार कर ही रहे थे कि उसी समय पंचम स्वर्गमें उत्पन्न, चन्द्रमाके समान श्वेतवर्ण तुषित, वह्नि, अरुण, आदित्य आदि लौकान्तिक देव शीघ्र ही आ पहुँचे और मस्तक झुकाकर तथा हाथ जोड़कर निवेदन करने लगे कि हे प्रभो ! इस समय भरतक्षेत्रमें तीर्थ प्रवर्तानेका समय है इसलिए तीर्थप्रवृत्त कीजिए ॥१०१-१०२॥ भगवान् स्वयं ही मार्गको जानते थे इसलिए लौकान्तिक देवोंके उक्त वचन यद्यपि पुनरुक्त बातका ही कथन करते थे तथापि अवसरपर पुनरुक्तता भी फलीभूत होती है ॥१०३॥ मृगोंके हितैषी भगवान्ने शीघ्र ही मृगोंको छोड़ दिया और राजकुमारोंके साथ स्वयं नगरीमें प्रवेश किया। नगरीमें जाकर वे राज्यसिंहासनको अलंकृत करने लगे और इन्द्रोंने पहलेके समान आकर उनकी स्तुति की ॥१०४॥ तदनन्तर इन्द्रोंने उन्हें स्नानपीठपर विराजमान कर देवोंके द्वारा लाये हुए क्षीरोदकसे उनका अभिषेक किया और देवोंके योग्य माला, विलेपन, वस्त्र एवं आभूषणोंसे विभूषित किया ॥१०५॥ उत्तम सिंहासनके ऊपर विराजमान भगवान्को घेरकर

---

१. सुसंभवसागरजीवितः म. । २. पञ्चमस्वर्गोत्पन्ना लौकान्तिकदेवाः । ३. ननृतुरेत्य म., रुरुचुरेत्य क. । ४. हरियुगा—म., ङ. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिगमिषुं तपसे जिनमादृता हरिपुरःसरभोजयदूत्तमाः ।
अनुनयैर्न निरोद्धुमलं तदा प्रबलसिंहमिवोद्धृतपञ्जरम् ॥१०७॥
पितृपुरःसरबन्धुजनं जिनः सुपरिबोध्य जगत्स्थितिकोविदः ।
धनदशिल्पिकृतां शिविकां पदैरगमदुत्तरकुर्वभिधानिकाम्[1] ॥१०८॥
ध्वजसितातपवारणमण्डितां सुमणिभित्तिमुपाहितभक्तिकाम् ।
विविधरूपधरामधिरूढवान् विधुरिवोदयभूधरभित्तिकाम् ॥१०९॥
क्षितिभृतः क्षितितः शिविकां शिवामुदहरन् प्रथमाः प्रथमं ततः ।
सुरपथे सुरनाथपुरोगमाः सुरवराः सुखमूहुरमूं मुदा ॥११०॥
अभवदूर्ध्वमुदारमुदा[2] रवः[3] सुरगणैर्विहितो[4] [5]विहितोऽश्रियाम्[6] ।
श्रुतिमधोमुखरो मुखरोदितो [7]व्यथितभोजगतो [8]जगतोऽरुणत् ॥१११॥
ननृतुरप्सरसः[9] [10]सहसा रसैः [11]सशिखि [12]साप्सरसः[13] सह सारसैः[14] ।
[15]यमभिसाम[16] रसंघनताङ्गतं तमिव शान्तरसं घनतां [17]गतम् ॥११२॥

खड़े हुए कृष्ण, बलभद्र आदि अनेक राजा और सुर-असुर ऐसे जान पड़ते थे जैसे प्रथम सुमेरुको घेरकर स्थित कुलाचल ही हों ॥ १०६ ॥ जिस प्रकार पिंजरेको तोड़कर निकलनेवाले बलवान् सिंहको कोई अनुनय-विनयके द्वारा रोकनेमें समर्थ नहीं होता है उसी प्रकार तपके लिए जानेके इच्छुक भगवान्को श्रीकृष्ण भोजवंशी तथा यदुवंशी आदि कोई भी रोकनेमें समर्थ नहीं हो सके ॥१०७॥

तदनन्तर संसारकी स्थितिके जानकार जिनेन्द्र भगवान् पिता आदि परिवारके लोगोंको अच्छी तरह समझाकर कुबेररूप शिल्पीके द्वारा निर्मित उत्तरकुरु नामकी पालकीकी ओर पैदल ही चल पड़े ॥१०८॥ वह पालकी ध्वजाओं और सफेद छत्रसे मण्डित थी, उत्तम मणिमय दीवालोंसे युक्त थी। उत्तमोत्तम बेल-बूटोंसे सहित थी, और विविध रूपको धारण कर रही थी। जिस प्रकार उदयाचलकी भित्तिपर चन्द्रमा आरूढ़ होता है उसी प्रकार भगवान् भी उस पालकीपर आरूढ़ हो गये ॥१०९॥ तदनन्तर सबसे पहले कुछ दूर तक पृथिवीपर तो श्रेष्ठ राजा लोगोंने उस कल्याणकारिणी पालकीको उठाया और उसके बाद इन्द्र आदि उत्तमोत्तम देव उसे बड़े हर्षसे आकाशमें ले गये ॥११०॥ उस समय आकाशमें तो अत्यधिक आनन्दसे देवोंके द्वारा किया हुआ वह शब्द व्याप्त हो रहा था जो श्रीहीन मनुष्योंके लिए हितकारी नहीं था और नीचे पृथिवीपर दुःखसे पीड़ित भोजवंशके लोगोंका जोरदार करुणक्रन्दन मुखसे रुदन करनेवाले जगत्के जीवोंके कर्ण-विवरको प्राप्त कर रहा था ॥१११॥ जिनके शरीरको देवोंका समूह नमस्कार कर रहा था तथा जो निविडताको प्राप्त हुए शान्त रसके समान जान पड़ते थे ऐसे उन भगवान् नेमिनाथके सम्मुख, जिस प्रकार जलके सरोवरके निकट मयूर और सारस नृत्य करते हैं उसी प्रकार अप्सराओंका समूह नाना रसोंको प्रकट करता हुआ बड़ी शीघ्रतासे नृत्य कर रहा था

१. कुर्वभिधातकं म. । २. उत्कटहर्षेण । ३. शब्दः । ४. कृतः । ५. विगतं हितं यस्मात् सः । ६. अश्रियां श्रीरहितानां भाग्यहीनानामित्यर्थः । ७. व्यधिसुवो म., ख., ग., घ.; व्यधिस्रुवो क., व्यधिसुवो जगतो म. । ८. जगतः म. । ९. सुराङ्गनाः । १०. झटिति । ११. सशिखमाप्सरसः म., शिखिभिः सदृशं यथा स्यात्तथा सशिखि मयूरसदृशम् । १२. अद्भिरुपलक्षितं सरः साप्सरः तस्य । १३. सार्धम् । १४. सारसैः जलपक्षिभिः । १५. यमभि यत्संमुखम् । १६. अमरसङ्घेन नतं अङ्गं यस्य तस्य भावः अमरसङ्घनतांगता, तया सहितः तम् । १७. घनतां निविडतां गतं प्राप्तं शान्तरसमिव ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]गिरिमितः सहितामरसेनया जिनवरः स हि तामरसेन या ।
समरुचिर्गिरिराड्रुचमूर्जयन्त इति योऽस्ति हि पापचमूर्जयन् ॥११३॥
रविनिशाकरयोरुभया[2]न्तयोर्विचरतोस्तिमिरोरुभयान्तयोः ।
दिवि न यत्र महात्मनिदर्शनं किमिह तुङ्गतयास्य निदर्शनम् ॥११४॥
मुखरनि[3]र्झरपातपतत्त्रिभिर्मुखरसप्रदचूतलताफलैः ।
कुसुमनिर्भरपादपजातिभिः कुसुमनोरहितोऽतिविराजते ॥११५॥
[5]मणिसुवर्णसुवर्णधराधरे विविधधातुरसौघधराधरे ।
शिखररञ्जितकिन्नरदेवके वनभुवा हृतधीनरदेवके ॥११६॥
उपवने [6]वृजिने शिविकामतः सुमतमाप्य जिनेशिविकामतः[7] ।
द्रवति यद्रहितो [8]हरिणा हरिः[9] स निदधे सहितो हरिणा[10] हरिः[11] ॥११७॥

॥११२॥ इस प्रकार जो पापोंकी सेनाको जीत रहे थे वे जिनेन्द्र भगवान् कमलके समान कान्तिकी धारक हितकारी देवसेनाके साथ सुमेरु पर्वतके समान कान्तिवाले गिरनार पर्वतपर पहुँचे ॥११३॥

जिस पर्वतपर रात्रि और दिनके अन्तमें अर्थात् प्रातःकाल और सायंकालके समय आकाशमें विचरनेवाले एवं अन्धकारसे होनेवाले विशाल भयका अन्त करनेवाले सूर्य और चन्द्रमाके महान् स्वरूपका दर्शन नहीं हो पाता उस गिरनार पर्वतका यहाँ ऊँचाईमें उदाहरण ही क्या हो सकता है ? अर्थात् कुछ भी नहीं। भावार्थ—यह पर्वत इतना ऊँचा है कि उसपर प्रातःकाल और सायंकालके समय सूर्य और चन्द्रमाका दर्शन ही नहीं हो पाता। वह गिरनार पर्वत कुत्सित फूलोंसे रहित था, और शब्दायमान किरणोंके गिरनेके स्थानमें उड़नेवाले पक्षियों, मुखमें मधुर रसको देनेवाले आम्रलताके फलों एवं फूलोंसे लदे नाना प्रकारके वृक्षोंसे अत्यन्त सुशोभित हो रहा था ॥११४-११५॥

तदनन्तर जो मणियों और सुवर्णके कारण सुमेरु गिरिके समान जान पड़ता था, जो नाना प्रकारकी धातुओंके रंगके समूहसे उपलक्षित भूमिको धारण कर रहा था, जो अपने शिखरोंसे किन्नर देवोंको अनुरक्त कर रहा था, और जो वनकी वसुधासे मनुष्य तथा देवोंकी बुद्धिको हरण कर रहा था ऐसे गिरनार पर्वतके उस निष्कलंक उपवनमें जिसमें कि वानरसे रहित एकाकी सिंह विचरण करता था विष्णु-कृष्णसहित इन्द्रने वीतराग जिनेन्द्रकी

१. हि यः पापचमूः पापसेनाः जयन् स हि जिनवरः, या तामरसेन कमलेन समरुचिः सदृशकान्तिः तया, सहितामरसेनया हितेन सहिता सहिता सा चासौ अमरसेना च तया सार्धं गिरिराड्रुचं गिरिराड् मेरुस्तस्य रुगिव रुग्यस्य तं, ऊर्जयन्त इति प्रसिद्धगिरिम् इतः प्राप्तः। २. उभयान्तयोः—उभयोर्निशादिवसयोरन्तयोः। दिवि विचरतोः, तिमिरात् अन्धकारात् यद् उरु विपुलं भयं तस्य अन्तो विनाशो याभ्यां तयोः रविनिशाकरयोः यत्र गिरौ महात्मदर्शनं न विद्यते अस्य गिरेः तुङ्गतमा किं निदर्शनं किमुदाहरणम्। ३. निर्झर—म.। ४ कुत्सितपुष्परहितो यो गिरिः मुखरेषु निर्झरपातेषु विद्यमाना पतत्त्रिणः तैः मुखे प्रारम्भे रसप्रदानि यानि चूतलताफलानि तैः, कुसुमानि च, निर्झराश्च, पादपजातयश्च तैः, अतिविराजते नितरां शोभते। ५. मणिभिः सुवर्णैश्च सुवर्णधराधरः यः सुमेरुपर्वतस्तस्मिन्, विविधधातुरसौघेन नानाधातुरससमूहेनोपलक्षिता या धरा तस्या धरः तस्मिन्, शिखरैः रञ्जिताः किन्नरदेवा यस्मिन् तस्मिन्, वनभुवा, कान्तारभूम्या हृतधिया वशीभूता नरदेवा यस्मिन् तस्मिन्। ६. निष्पापे। ७. जिनेशी चासौ विकामश्च तस्मात्। ८. मर्कटेन रहितः। ९. सिंहः। १०. विष्णुना। ११. इन्द्रः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इह जहौ [1]वसुधाशिविकासनं [2]पुरुतपोऽधि [3]सुधाशिविकासनम् ।
नमिसमः स [4]शिलातलमाययावपगमार्थमिलातलमाययाँ [5] ॥११८॥
[6]स्रजमितोऽथ [7] सवस्त्रमलंकृतीरपगमय्य सवस्त्रमलंकृती ।
प्रविलसत्कमलासनधीरतः प्रियवधूकमलासनधीरतः ॥११९॥
[8]मृदुकराङ्गुलिभीरुचिरासितान् [9] घनकचानतिभीरुचिरासितान् [10] ।
व्युदहरद्दृढपञ्चपरिग्रहैः स रहितः सकृपं च परिग्रहैः ॥१२०॥
[11]नृपसहस्रममा नमिना तपः श्रितमिवैनममानमिनातपः ।
तपति नातपवारणवारितः [12]प्रपतदातपवारणवारितः ॥१२१॥
निकचितां कचसम्पदमात्मना प्रकुटिलां गतकोपदमात्मना [13] ।
व्यपनयन्निव शल्यपरम्परां नृपगणः श्रियमैत् स्वपरम्पराम् ॥१२२॥

सम्मति पाकर वह पालकी रख दी ॥११६-११७॥ उस उपवनमें पहुँचकर भगवान्ने विशाल तप धारण करनेके उद्देश्यसे देवोंको हर्षित करनेवाले पृथ्वीपर विद्यमान पालकी रूपी आसनको छोड़ दिया और स्वयं पृथ्वीतलकी मायाका परित्याग करनेके लिए नमिनाथ भगवान्के समान शिलातलपर जा पहुँचे ॥११८॥ तदनन्तर जो अतिशय बुद्धिमान् थे, जिनकी पद्मासन और धीरता अत्यन्त शोभायमान थी तथा जो प्रियस्त्री, एवं राज्यलक्ष्मीके त्यागकी बुद्धिमें रत-लीन थे ऐसे भगवान् नेमिनाथने परदाके अन्दर माला, वस्त्र और सब अलंकार उतारकर परिग्रहसे रहित तथा दयासे युक्त होकर कोमल अंगुलियोंसे युक्त सुदृढ़ पंचमुट्ठियोंसे उन सघन केशोंको तत्काल उखाड़कर फेंक दिया जो अत्यन्त सुन्दर और काले थे एवं अतिशय भीरु मनुष्य ही अपने शरीरमें जिनका चिरकाल तक स्थान बनाये रखते हैं ॥११९-१२०॥ भगवान् नमिनाथने जिस तपको धारण किया था उसी तपको एक हजार राजाओंने भी भगवान् नेमिनाथके साथ धारण किया था उस समय मानरहित भगवान्को सूर्यका आताप सन्तप्त नहीं कर सका था क्योंकि इन्द्रके द्वारा लगाये हुए छत्रसे वह रुक गया था अथवा छत्ररूपी जल वहाँ पड़ रहा था उसके प्रभावसे सूर्यजन्य आताप उन्हें दुखी करनेमें समर्थ नहीं हो सका था ॥१२१॥ उस समय क्रोधरहित इन्द्रिय-दमनसे युक्त अपने आपके द्वारा शिरपर बद्ध कुटिल केशोंको उखाड़ता हुआ राजाओंका समूह ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो चिरकालसे साथ लगी हुई कुटिल शल्योंकी परम्पराको

१. वसुधायां विद्यमानं यत् शिविकारूपं आसनं तत् । २. विशालतपःसम्मुखम् । ३. देवहर्षकम् । ४. शिलातलम् आययौ इति पदच्छेदः । ५. इलातले या माया तया सह । ६. स्रजमितोऽथ म. । ७. अथ अलम् । अत्यर्थं कृती पण्डितः स इनः स्वामी, सवस्त्रं यथा स्यात्तथा वस्त्रस्य नेपथ्यमध्ये इत्यर्थः । स्रजं वस्त्रं अलंकृतीः अलंकारांश्च अपगमय्य त्यक्त्वा कथंभूतः इनः ? कमलासनं च धीरता च इति कमलासनधीरते प्रविलसन्त्यौ कमलासनधीरते यस्य सः, प्रियवधूश्च कमला च लक्ष्मीश्च तयोः, असनस्य त्यागस्य धियां रतः तत्परः । ८. मृदवः कराङ्गुल्यो येषु तैः, दृढपञ्चपरिग्रहैः दृढपञ्चमुष्टिभिः । ९. रुचिरा मनोहराः असिताः कृष्णाश्च ये तान् । १०. अति भीरुषु चिरं आसितं स्थानं येषां तान्, घनकचान् सान्द्रकेशान् । ११. नमिनाथेन इव अनेन नेमिनाथेन अमा सह नृपसहस्रं तपः श्रितम् । अमानं मानरहितं एनम् जिनम् इनातपः सूर्यधर्मः न तपति स्म । आतपवारणेन छत्रेण वारितः सन् । १२. आतप-वारणं च तद् वारि च इत्यातपवारणवारि प्रपतच्च तत् आतपवारणवारि च तस्मात् । १३. गतः कोपो यस्मिन् एवंभूतो यो दमः इन्द्रियवशीकारः स आत्मा स्वरूपं यस्य तेन, एवंभूतेन आत्मना शल्यपरम्परामिव, निकचितां निबद्धां कुटिलां वक्रां कचसम्पदं व्यपनयन् दूरीकुर्वन्, नृपगणः स्वपरम्परां श्रियं ऐत् प्रापत् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मणिगणांशुलसत्पटलीकृतान्[1] जिनकचान्कुलिशी[2] पटलीकृतान्[3] ।
अकृत दुग्धमये स[4] महोदधौ[5] वपुरलं समये[6] समहो दधौ ॥१२३॥
[7]समवतारमिनोङ्गिकृपावनं स्वकृत वस्त्रमयस्य सुपावनम् ।
सपदि यत्र तदत्र यथाश्रुतं जगति तीर्थमभूच्च यथाश्रुतम् ॥१२४॥
यतिषु[8] बोधचतुष्कविराजितस्त्रिदशकोटिमहाकविराजितः ।
विधुरिवोपगतग्रहतारकः प्रभुरभादपरिग्रहतारकः[9] ॥१२५॥
[10]नभसि शुक्लतुरीयतया तिथौ क्रमभृतीशिनि षष्ठतयातिथौ ।
विहितनिष्क्रमणे नृसुराऽसुराः सुविदधुर्महमेषु सुरासुराः ॥१२६॥
मदनभङ्गकृतप्रभवे भवे भवभृतां शरणाय हितेहिते ।
हतरुषे वितृषे मुनये नये स्थितवते नम इत्यसुराः सुराः ॥१२७॥
स्तवनपूर्वममी च समन्ततः प्रणतिमेत्य नृपाश्च समं ततः ।
[11]स्वहृदयस्थतपःस्थितनेमयः स्वपदमीयुररिस्थितनेमयः[12] ॥१२८॥

ही उखाड़कर फेंक रहा हो ॥१२२॥ इन्द्रने भगवान्‌के केशोंको इकट्ठा कर मणिसमूहकी किरणोंसे सुशोभित पिटारेमें रखकर उन्हें क्षीरसागरमें क्षेप दिया। उस समय भगवान् अतिशय तेजसे युक्त शरीर धारण कर रहे थे ॥१२३॥ भगवान् नेमिनाथने जिस स्थानपर जीवदयाकी रक्षा करनेवाला, एवं अत्यन्त पवित्र, वस्त्ररूप परिग्रहका त्याग किया था वह शीघ्र ही संसारमें शास्त्र-सम्मत प्रसिद्ध तीर्थस्थान बन गया ॥१२४॥ उस समय चार ज्ञानसे सुशोभित, करोड़ों देवरूपी महाकवियोंसे विभूषित और परिग्रहरहित मनुष्योंको संसारसे तारनेवाले भगवान् अनेक मुनियोंके बीच, ग्रहों और ताराओंके मध्यमें स्थित चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहे थे ॥१२५॥ अतिथि भगवान्‌ने सावन सुदी चौथके दिन बेलाका नियम लेकर दीक्षा धारण की थी इसलिए उस दिन अनेक उत्तम वस्तुओंका त्याग करनेवाले मनुष्य, देव तथा असुरोंने दीक्षा कल्याणकका उत्सव किया था ॥१२६॥

तदनन्तर सुर और असुर भगवान्‌की इस प्रकार स्तुति करने लगे—हे भगवन्! आप कामदेवका पराजय करनेमें समर्थ हैं, हितकारी चेष्टाओंसे युक्त संसारी प्राणियोंके शरणभूत हैं—रक्षक हैं, क्रोधसे रहित हैं, तृष्णासे रहित हैं, उत्तम नयमें स्थित हैं—नयका पालन करनेवाले हैं और मुनि हैं—मनन-शील हैं अतः आपको नमस्कार हो। इस प्रकार साथ-साथ स्तुति कर तथा सब ओरसे नमस्कार कर अपने हृदयोंमें तपस्वी नेमिनाथ भगवान्‌को धारण करनेवाले एवं चक्रमें स्थित नेमि–चक्रधाराके समान प्रवर्तक राजा तथा सुर-असुर अपने-अपने स्थानपर चले गये ॥१२७–१२८॥

---

१. जिनकचा म.। २. इन्द्रः। ३. पुञ्जीकृतान्। ४. इन्द्रः। ५. दुग्धमये महोदधौ क्षीरसागरे। ६. तस्मिन् समये जिनः, अलमत्यन्तं समहः तेजोयुक्तं वपुः दधौ। ७ स इनः भगवान् अङ्गिकृपावनं अङ्गिषु या कृपा तस्या अवनं रक्षकं सुपावनं अतिशयपावित्र्यकारणम्, वस्त्रमयस्य वस्त्रादिपरिग्रहस्य, समवतारं त्यागं सपदि, यत्र स्वकृत सुष्ठु अकृत कृतवान्, यथाश्रुतं शास्त्रानुसारं तीर्थमभूत्। ८. मतिषु म.। ९. अपरिग्रहाणां तारकः अपरिग्रहतारकः। १०. श्रावणे मासे प्रतिपदादिक्रमणशुक्लपक्षस्य चतुर्थ्यां तिथौ, अतिथौ ईशिनि नेमिनाथे षष्ठतया दिनद्वयोपवासेन, विहितनिष्क्रमणे कृतदीक्षाग्रहणे सति नृसुरासुराः महम् उत्सवं सुविदधुः, सुरासु शोभनद्रव्येषु, राः रान्तीति राः दातारः। ११. स्वहृदयस्थः तपःस्थितो नेमिः नेमिजिनेन्द्रः येषां ते। १२. अरि चक्रं तस्मिन् विषये स्थितनेमयः स्थितचक्रधाराः इत्यर्थतः एवंभूताः नृपाः स्वपदम् ईयुः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुरि वितीर्य नु तत्र जिनाय ताः सुपरमान्नमथावृजिनाय[1] ताः ।
प्रवरदत्त इतो महिमा हिताः सुरगणैः सुमहामहिमाहिताः ॥१२९॥
पथि तपस्यति तत्र कृते हिते नृपसुता मनसि त्रपितेहिते ।
न्यभृत तापमपारवियोगिनी कुमुदिनीव दिवारवियोगिनी ॥१३०॥
प्रबलशोकवशा प्रविलापिनी शिथिलभूषणकेशकलापिनी ।
परिजनेन वृता प्ररुरोद सा करुणशब्दतता[2] व्युरुरोद सा ॥१३१॥
विधिमुपालभते वरहारिणं[3] वरवधूर्वरमप्यतिहारिणम्[4] ।
जघनपीनपयोधरहारिणी[5] नयनवारिकणाविलहारिणी[6] ॥१३२॥
शमितशोकभरा वचनैर्हितैर्गुरुजनस्य तपोवचनैर्हि तैः[7] ।
मतिमधत्त तपस्यनपायिनि[9] प्रशमसौख्यतपस्यनपायिनि[10] ॥१३३॥

शालिनी-छन्दः

[11]राजीमत्याश्चारुराजीवलक्ष्मी-राजीमत्याः पाणिपादस्य कान्त्या ।
तापस्यान्तं ज्ञातयोऽवेत्य[12] वृत्तं तापस्यान्तं मानसस्यापुरन्ते ॥१३४॥

तदनन्तर जब पापरहित भगवान् आहार लेनेके लिए द्वारिकापुरीमें आये तब उत्तम तेजके धारक प्रवरदत्तने उन्हें उत्तम खीरका आहार देकर देवसमूहके द्वारा महिमासे युक्त, हितकारी अद्भुत महिमा—प्रतिष्ठा प्राप्त की ॥१२९॥ जब भगवान् नेमिनाथ किये हुए उस हितकारी मार्गमें तपस्या करने लगे तब अपार वियोगसे युक्त राजपुत्री राजीमती अपने लज्जापूर्ण चेष्टासे युक्त मनमें दिनके समय सूर्यके संयोगसे सहित कुमुदिनीके समान सन्तापको धारण करने लगी ॥१३०॥ राजीमती, प्रबल शोकके वशीभूत थी, निरन्तर विलाप करती रहती थी, उसके आभूषण और केशोंका समूह शिथिल हो गया था तथा वह करुण शब्दोंसे आकाश और पृथ्वीके विशाल अन्तरालको व्याप्त करनेवाले परिजनोंसे घिरकर अत्यधिक रोती रहती थी ॥१३१॥ नितम्ब और स्थूल स्तनों से सुन्दर तथा अश्रुकणोंसे व्याप्त हारको धारण करनेवाली वह राजीमती कभी तो वरको हरनेवाले अपने दुर्दैवको उलाहना देती थी और कभी अत्यन्त मनोहर वरको दोष देती थी ॥१३२॥ तदनन्तर तप धारण करनेकी प्रेरणा देनेवाले गुरुजनोंके उन हितकारी वचनोंसे जब उसके शोकका भार शान्त हो गया तब उसने अपाय-बाधासे रहित, शान्तिरूप सुखके दायक, एवं दुर्भाग्यको दूर करनेवाले तपमें बुद्धि लगायी—तप धारण करनेका विचार किया ॥१३३॥ हाथों और पाँवोंकी कान्तिसे सुन्दर कमल सम्बन्धी शोभाके समूहको धारण करनेवाली राजमतीने जो वृत्त—चारित्र धारण किया है वह उसके ताप—दुःखको अन्त करनेवाला है ऐसा जानकर अन्तमें उसके कुटुम्बीजन मानसिक सन्तापके अन्त-

---

१. अवृजिनाय पापरहिताय ता इति महिमाशब्दस्य विशेषणम् अत्र आकारान्तमहिमाशब्दः प्रयुक्तः । २. करुणशब्देन ततं अतिशयेन व्याप्तं अतीव उरू रोदसी द्यावाभूमी येन स तेन, परिजनेन । ३. वरं हरतीति वरहारी तं विधिम् इत्यस्य विशेषणम् । ४. अतिमनोहरम् । ५. नितम्बस्थूलकुचमनोहरा । ६. नयनवारिकणैः आविलो मलिनो हारो विद्यते यस्याः सा । ७. तपसि विषये वचनं भणनं येषां तैः, तपःप्रेरणादायिभिः । ८. हि निश्चयेन तैः प्रसिद्धैः । ९. स्थायिनि । १०. अपकृष्टः अयो भाग्यं अपायः, न विद्यतेऽपायो यस्मिन् तस्मिन् । ११. चारु राजीवस्य सुन्दरसरोरुहस्य लक्ष्मीराजी शोभापङ्क्तिः विद्यते यस्याः तस्याः । १२. ज्ञात्वा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्त्रीणामाद्यं पारतन्त्र्यं [1]विदुःखं दौर्लभ्येऽमूर्भर्तुरङ्गं[2] विदुः खम् ।
सापत्न्यं वा पुष्पवत्त्वं च वान्ध्यं[3] वैधव्ये वा सूतिरोगेऽपि [4]वान्ध्यम् ॥१३५॥
दौर्भाग्ये वा भाग्यहीने [5]स्वनाथे स्त्रीगर्भत्वे [6]मर्त्रपत्ये [7]स्वनाथे ।
गर्भस्रावे गर्भभारे वियोगे [8]जीवद्भर्त्रा मर्मरोगाभियोगे ॥१३६॥
स्यान्मिथ्यात्वं स्त्रीत्वहेतुः स्वतन्त्रं [9]वस्त्रस्येवातानतिर्यक् स्वतन्त्रम् ।
स्त्रीदुःखानामन्तकृद्भव्यसत्त्वैर्जैनी दृष्टिः सेव्यतां सेव्यसत्त्वैः ॥१३७॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ भगवन्निष्क्रमणकल्याणवर्णनो नाम पञ्चपञ्चाशः सर्गः ॥५५॥

□

को प्राप्त हुए ॥१३४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि ये स्त्रियां नाना दुःख उठाती हैं। सबसे पहले तो इन्हें परतन्त्रताका विशिष्ट दुःख है, फिर पतिके दुर्लभ होनेपर शरीरको शून्य—व्यर्थ समझती हैं। फिर सपत्नीके होनेका, ऋतुमती होनेका, वन्ध्या होनेका, विधवा होनेका, प्रसूति-कालमें रोग हो जानेका, अन्धा होनेका, दौर्भाग्य होनेका, भाग्यहीन पतिके मिलनेका, लड़की-लड़की ही, गर्भमें आनेका, बार-बार मृत सन्तानके होनेका, बिलकुल अनाथ हो जानेका, गर्भ धारण करनेका, पतिके जीवित रहते हुए भी उसके साथ वियोग होनेका, अथवा किसी मर्मान्तक रोगके हो जानेका दुःख सहन करती है ॥१३५-१३६॥ जिस प्रकार आतान-वितानभूत तन्तु वस्त्रके स्वतन्त्र कारण हैं, उसी प्रकार मिथ्यादर्शन स्त्रीपर्यायका स्वतन्त्र कारण है, इसलिए सेवनीय शक्तिके धारक भव्य-जीवोंको स्त्री-सम्बन्धी दुःखोंका अन्त करनेवाले सम्यग्दर्शनकी सेवा करनी चाहिए ॥१३७॥

इस प्रकार अरिष्टनेमिपुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंश पुराणमें भगवान्‌के दीक्षा-कल्याणका वर्णन करनेवाला पचपनवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥५५॥

□

१. विविधं दुःखं विदुःखम् । २. भर्तुरङ्गे क., अमूः स्त्रियः भर्तुः दौर्लभ्ये सति अङ्गं स्वकीयं शरीरं खं शून्यं व्यर्थमिति यावत् विदुः जानन्ति । ३. वन्ध्यायाः भावो वान्ध्यम् । ४. वा अथवा अन्धाया भावः आन्ध्यम् । ५. स्वभर्तरि । ६. मर्तृ मरणशीलम् अपत्यं तस्मिन् । ७. सुष्ठु अनाथः तस्मिन् स्वनाथे सति । ८. जीवंश्चासौ भर्ता च जीवद्भर्ता तेन । ९. वस्त्रस्य यथा आतानभूताः तिर्यग्भूताश्च ये तन्तवः ते स्वतन्त्रं कारणं भवन्ति तथा मिथ्यात्वं स्त्रीत्वस्य स्वतन्त्रं कारणमस्तीत्यर्थः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

षट्पञ्चाशः सर्गः

अथ नेमिमुनीन्द्रोऽपि रत्नत्रयतपःश्रिया । व्रतगुप्तिसमित्युच्चै रेजे सोढपरीषहः ॥१॥
अप्रशस्तमपोह्यासावर्तं रौद्रं[1] च शुक्लधीः । ध्यानं धर्म्यं च शुक्लं च प्रशस्तं ध्यातुमुद्यतः ॥२॥
[2]ध्यानमेकाग्रचिन्ताया धनसंहननस्य हि । निरोधोऽन्तर्मुहूर्तं स्याच्चिन्ता स्यादस्थिरं मनः ॥३॥
तत्रार्तिरर्दनं बाधा ह्यार्तं तत्रभवं पुनः । सुकृष्णनीलकापोतलेश्याबलसमुद्भवम् ॥४॥
लक्षणं द्विविधं तस्य बाह्यमाक्रन्दनादिकम् । परश्रीविस्मयप्रापं[3] विषयासंजनादिकम् ॥५॥
तदात्मनः स्वयं वेद्यं परेषामानुमानिकम् । अभ्यन्तरं चतुर्भेदं स्वलक्षणसमन्वितम् ॥६॥
विषयस्यामनोज्ञस्य यदनुत्पत्तिचिन्तनम् । उत्पन्नस्य वियोगाय संकल्पाध्यवसायकम् ॥७॥
मनोज्ञविप्रयोगस्य [4]यच्चानुत्पत्तिचिन्तनम् । उत्पन्नस्यान्तचिन्ता च चातुर्विध्यमितीरितम् ॥८॥
तत्रामनोज्ञदुःखस्य[5] साधनं चेतनादिकम् । मर्त्यादि विषशस्त्रादि बाह्यमेतदुदीरितम् ॥९॥
आध्यात्मिकं तु वातादिप्रकोपजमनेकधा । कुक्ष्यक्षिदन्तशूलादिशारीरमतिदुस्सहम् ॥१०॥
शोकारतिभयोद्वेगविषादविषदूषितम् । जुगुप्सादौर्मनस्यादि मानसं दुःखसाधनम् ॥११॥
सर्वस्यास्यामनोज्ञस्य माभूदुत्पत्तिरित्यलम् । चिन्ताप्रबन्ध आद्यं स्यादार्तध्यानं मलाविलम्[4] ॥१२॥

अथानन्तर—व्रत गुप्ति और समितियोंसे उत्कृष्टताको प्राप्त एवं परीषहोंको सहन करनेवाले मुनिराज नेमिनाथ रत्नत्रय और तपरूपी लक्ष्मीसे सुशोभित होने लगे ॥१॥ उज्ज्वल बुद्धिके धारक भगवान्, आर्त और रौद्र नामक अप्रशस्त ध्यानको छोड़कर धर्म्यध्यान और शुक्लध्यान नामक प्रशस्त ध्यानोंका ध्यान करनेके लिए उद्यत हुए ॥ २ ॥ उत्तमसंहननके धारक पुरुषकी चिन्ताका किसी एक पदार्थमें अन्तर्मुहूर्तके लिए रुक जाना सो ध्यान है और चिन्ताका अर्थ चंचल मन है ॥ ३ ॥ पीड़ाको आर्ति कहते हैं। आर्तिके समय जो ध्यान होता है उसे आर्तध्यान कहते हैं। यह आर्तध्यान अत्यन्त कृष्ण, नील और कापोत लेश्याके बलसे उत्पन्न होता है ॥ ४ ॥ बाह्य और आभ्यन्तरके भेदसे आर्तध्यान दो प्रकारका है। उनमें रोना आदि तथा दूसरेकी लक्ष्मी देखकर आश्चर्य करना और विषयोंमें आसक्त होना आदि बाह्य आर्तध्यान है ॥ ५ ॥ अपने-आपका आर्तध्यान स्वसंवेदनसे जाना जाता है और दूसरोंका अनुमानसे। आभ्यन्तर आर्तध्यानके चार भेद हैं जो नीचे लिखे अनुसार अपने-अपने लक्षणोंसे सहित हैं ॥ ६ ॥ अभीष्ट वस्तुकी उत्पत्ति न हो ऐसा चिन्तवन करना सो पहला आर्तध्यान है। यदि अनिष्ट वस्तु उत्पन्न हो चुकी है तो उसके वियोगका बार-बार चिन्तवन करना दूसरा आर्तध्यान है। इष्ट विषयका कभी वियोग न हो ऐसा चिन्तवन करना सो तीसरा आर्तध्यान है और इष्ट विषयका यदि वियोग हो गया है तो उसके अन्तका विचार करना यह चौथा आर्तध्यान है ॥७–८॥ अमनोज्ञ दुःखके बाह्य साधन चेतन और अचेतनके भेदसे दो प्रकारके हैं। उनमें मनुष्य आदि तो चेतन साधन हैं और विष-शस्त्र आदि अचेतन साधन हैं ॥ ९ ॥ अन्तरंग साधन भी शारीरिक और मानसिकके भेदसे दो प्रकारका है। वात आदिके प्रकोपसे उत्पन्न उदर-शूल, नेत्र-शूल, दन्त-शूल आदि नाना प्रकारकी दुःसह बीमारियाँ शारीरिक साधन हैं ॥१०॥ और शोक, अरति, भय, उद्वेग, विषाद आदि विषसे दूषित जो जुगुप्सा तथा दौर्मनस्य—बेचैनी आदि विकार हैं वे मानसिक दुःखके साधन हैं ॥११॥ 'सभी प्रकारके अमनोज्ञ—अनिष्ट विषयोंकी उत्पत्ति नहीं हो' इस प्रकार बार-बार चिन्ता करना सो

---

१. रौद्रयं म. । २. 'उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधे ध्यानमान्तर्मुहूर्तात्'—त. सू. । ३. विस्मयं प्राप्तं म., विस्मयप्रायः क. । ४. यत्रानुत्पत्ति म. । ५. तत्रामनोज्ञस्य दुःखस्य म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्पन्नस्यास्य चाभावः कथं मे स्यादितीदृशम् । संकल्पाध्यवसानं तु द्वितीयं तत्प्रकीर्तितम् ॥१३॥
पशुपुत्रकलत्रादि मनोज्ञं सुखसाधनम् । बाह्यं स्याद्धनधान्यादि सचेतनमचेतनम् ॥१४॥
आध्यात्मिकं च पित्तादि साम्यादारोग्यमाङ्गिकम् । मानसं सौमनस्यादि रत्यशोकाभयादिकम् ॥१५॥
विप्रयोगश्च मे माभूदैहिकामुत्रकस्य तु । मनोज्ञस्येति संकल्पस्तृतीयं चार्तमुच्यते ॥१६॥
मनोज्ञविप्रयोगस्य पूर्वोत्पन्नस्य यत्पुनः । अभावेऽध्यवसानं तु तुर्यमार्तमनोज्ञजम् ॥१७॥
अधिष्ठानं प्रमादोऽस्य तिर्यग्गतिफलस्य हि । [1]परोक्षं मिश्रको भावः षड्गुणस्थानभूमिकम् ॥१८॥
रुद्रः क्रूराशयः प्राणी रौद्रं तत्रभवं ततः । हिंसासंरक्षणस्तेयमृषानन्दैश्चतुर्विधम् ॥१९॥
आनन्दोऽभिरुचिर्येषां हिंसादिषु यथायथम् । हिंसानन्दादयस्तेऽतो निरुच्यन्ते समासतः ॥२०॥
लक्षणं द्विविधं तत्र पारुष्याक्रोशनादिकम् । स्वसंवेद्यं परैर्मेयं बाह्यमाध्यात्मिकं पुनः ॥२१॥
स्यात्संरम्भसमारम्भारम्भलक्षणमात्मना । हिंसायां रंजनं तीव्रं हिंसानन्दं तु नन्दितम् ॥२२॥
श्रद्धेयं परलोकस्य [2]स्वविकल्पितयुक्तिभिः । विप्रलम्भनसंकल्पो मृषानन्दं सुनन्दितम् ॥२३॥
प्रतीक्षया प्रमादस्य परस्वहरणं प्रति । प्रसह्य हरणं ध्यानं स्तेयानन्दमुदीरितम् ॥२४॥
स्वपरिग्रहभेदे तु चेतनाचेतनात्मनि । संरक्षणाभिधानं तु स्वस्वामित्वाभिचिन्तनम् ॥२५॥

पहला मलिन आर्तध्यान है ॥१२॥ यदि किसी प्रकारके अमनोज्ञ—अनिष्ट विषयकी उत्पत्ति हो गयी है तो उसका अभाव किस प्रकार होगा ? इसी बातका निरन्तर संकल्प करना दूसरा आर्तध्यान कहा गया है ॥१३॥ मनोज्ञ सुखके बाह्य साधन चेतन-अचेतनके भेदसे दो प्रकारके हैं। उनमें पशु, स्त्री, पुत्र आदि सचेतन साधन हैं और धन-धान्यादि अचेतन साधन हैं ॥१४॥ आभ्यन्तर साधन भी शारीरिक और मानसिकके भेदसे दो प्रकारके हैं। इनमें पित्त आदिकी समतासे जो आरोग्य अवस्था है वह शारीरिक साधन है और रति, अशोक, अभय आदिसे उत्पन्न जो सौमनस्य आदि है वह मानसिक साधन है ॥१५॥ मुझे इस लोक-सम्बन्धी और परलोक-सम्बन्धी इष्ट विषयका वियोग न हो ऐसा संकल्प करना तीसरा आर्तध्यान कहलाता है ॥१६॥ और पहले उत्पन्न इष्ट विषयके वियोगके अभावका संकल्प करना—बार-बार चिन्तवन करना चौथा आर्तध्यान है ॥१७॥ इस आर्तध्यानका आधार प्रमाद है, फल तिर्यंच गति है। यह परोक्ष क्षायोपशमिक भाव है और पहलेसे लेकर छठे गुणस्थान तक पाया जाता है ॥१८॥

क्रूर अभिप्रायवाले जीवको रुद्र कहते हैं। उसके जो ध्यान होता है वह रौद्रध्यान कहलाता है। यह हिंसानन्द, चौर्यानन्द, मृषानन्द और परिग्रहानन्दके भेदसे चार प्रकारका है ॥१९॥ जिनको हिंसा आदिमें आनन्द अर्थात् अभिरुचि होती है वे संक्षेपसे हिंसानन्द आदि कहे जाते हैं ॥२०॥ बाह्य और आभ्यन्तरके भेदसे रौद्रध्यानके दो भेद हैं। उनमें क्रूर व्यवहार करना तथा गाली आदि अशिष्ट वचन बकना, बाह्य रौद्रध्यान है। अपने-आपमें पाया जानेवाला रौद्रध्यान स्वसंवेदनसे जाना जाता है—स्वयं ही अनुभवमें आ जाता है और दूसरेमें पाया जानेवाला रौद्रध्यान अनुमानसे जाना जाता है। हिंसा आदि कार्योंमें जो संरम्भ, समारम्भ और आरम्भरूपी प्रवृत्ति है वह आभ्यन्तर आर्तध्यान है। इसके हिंसानन्द आदि चार भेद हैं जिनके लक्षण इस प्रकार हैं। हिंसामें तीव्र आनन्द मानना सो हिंसानन्द नामक पहला रौद्रध्यान है ॥२१-२२॥ श्रद्धान करने योग्य पदार्थोंके विषयमें अपनी कल्पित युक्तियोंसे दूसरोंको ठगनेका संकल्प करना मृषानन्द नामका दूसरा रौद्र ध्यान है ॥२३॥ प्रमादपूर्वक दूसरेके धनको जबरदस्ती हरनेका अभिप्राय रखना सो स्तेयानन्द नामका तीसरा रौद्रध्यान कहा गया है ॥२४॥ और चेतन, अचेतन दोनों प्रकारके परिग्रहकी रक्षाका निरन्तर अभिप्राय रखना तथा मैं इसका

---

१. परोक्षमिश्रको भावः क. । २. सविकल्पित म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुकृष्णनीलकापोतबलाधानं प्रमादगम् । अधःपञ्चगुणस्थानं रौद्रध्यानचतुष्टयम् ॥२६॥
अन्तर्मुहूर्तकालं तु दुर्धरत्वादतः परम् । क्षयोपशमभावस्तु परोक्षज्ञानभावतः ॥२७॥
भावलेश्याकषायत्वातन्त्र्यादौदयिकोऽपि वा । उत्तरं फलमेतस्य नारकी गतिरुच्यते ॥२८॥
परिहृत्यार्तरौद्रे द्वे पापध्याने मुमुक्षवः । धर्म्यशुक्लधियः सन्तु शुद्धभिक्षादिभिक्षवः ॥२९॥
एकान्तं प्रासुकं क्षेत्रं क्षुद्रोपद्रववर्जितम् । दिव्यं संहननं द्रव्यं कालोऽत्युष्णादिवर्जितः ॥३०॥
भावशुद्धिरपि श्रेष्ठा यदा भवति योगिनः । आरभेत तदा ध्यानं सर्वद्वन्द्वसहः स हि ॥३१॥
गम्भीरः स्तम्भमूर्तिः सन् पर्यङ्कासनबन्धनः । नात्युन्मीलनिमीलश्च दत्तदन्ताग्रदन्तकः ॥३२॥
निवृत्तकरणग्रामव्यापारः श्रुतपारगः । मन्दं मन्दं प्रवृत्तान्तः प्राणापानादिसंचरः ॥३३॥
नाभेरुद्ध्वं मनोवृत्तिं मूर्ध्नि वा हृदि [1]वालिके । मुमुक्षुः प्रणिधायाक्षं ध्यायेद् ध्यानद्वयं हितम् ॥३४॥
बाह्यात्मिकभावानां याथात्म्यं धर्म उच्यते । तद्धर्मादनपेतं यद्धर्म्यं तद्ध्यानमुच्यते ॥३५॥
लक्षणं द्विविधं तस्य बाह्याध्यात्मिकभेदतः । सूत्रार्थमार्गणं शीलं गुणमालानुरागिता ॥३६॥
[2]जम्भाजृम्भाक्षुतोद्गारप्राणापानादिमन्दता । निभृताङ्गव्रतात्मत्वं तत्र बाह्यं प्रकीर्तितम् ॥३७॥

तथा मैं इसका स्वामी हूँ और यह मेरा स्व है इस प्रकार बार-बार चिन्तवन करना सो परिग्रह संरक्षणानन्द नामका चौथा रौद्रमें चारों प्रकारका ध्यान है ॥२५॥ यह रौद्रध्यान तीव्र कृष्ण, नील तथा कापोत लेश्याके बलसे होता है, प्रमादसे सम्बन्ध रखता है और नीचेके पाँच गुण स्थानोंमें होता है ॥२६॥ इसका काल अन्तर्मुहूर्त है क्योंकि इससे अधिक एक पदार्थमें उपयोगका स्थिर होना दुर्धर है। यह परोक्ष ज्ञानसे होता है अतः क्षयोपशमभाव रूप है ॥२७॥ भावलेश्या और कषायके आधीन होता है इसलिए औदार्यकभाव रूप भी है। इस ध्यानका उत्तर फल नरकगति है ॥२८॥ जो पुरुष मोक्षाभिलाषी हैं वे आर्तरौद्र नामक दोनों अशुभ ध्यानोंको छोड़ शुद्ध भिक्षाको ग्रहण करनेवाले भिक्षु-मुनि होकर धर्मध्यान और शुक्लध्यानमें अपनी बुद्धि लगावें ॥२९॥ जिस समय एकान्त, प्रासुक तथा क्षुद्र जीवोंके उपद्रवसे रहित क्षेत्र, दिव्य संहनन—आदिके तीन संहनन रूप द्रव्य, उष्णता आदिकी बाधासे रहित काल और निर्मल अभिप्राय रूप श्रेष्ठभाव, इस प्रकार क्षेत्रादि चतुष्टय रूप सामग्री मुनिको उपलब्ध होती है तब समस्त बाधाओंको सहन करनेवाला मुनि प्रशस्त ध्यानका आरम्भ करता है ॥३०-३१॥ ध्यान करनेवाला पुरुष, गम्भीर, निश्चल शरीर और सुखद पर्यंकासनसे युक्त होता है। उसके नेत्र न तो अत्यन्त खुले होते हैं और न बन्द ही रहते हैं ॥३२॥ नीचेके दाँतोंके अग्रभागपर उसके ऊपरके दाँत स्थित वह इन्द्रियोंके समस्त व्यापारसे निवृत्त हो चुकता है, श्रुतका पारगामी होता है, धीरे-धीरे श्वासोच्छ्वासका संचार करता है ॥३३॥ मोक्षका अभिलाषी मनुष्य अपनी मनोवृत्तिको नाभिके ऊपर मस्तकपर, हृदयमें अथवा ललाटमें स्थिर कर आत्माको एकाग्र करता हुआ धर्म्यध्यान और शुक्लध्यान इन दो हितकारी ध्यानोंका चिन्तवन करता है ॥३४॥ बाह्य और आध्यात्मिक भावोंका जो यथार्थभाव है वह धर्म कहलाता है, उस धर्मसे जो सहित है उसे धर्म्यध्यान कहते हैं ॥३५॥ बाह्य और आभ्यन्तरके भेदसे धर्म्यध्यानका लक्षण दो प्रकारका है। शास्त्रके अर्थकी खोज करना, शीलव्रतका पालन करना, गुणोंके समूहमें अनुराग रखना, अँगड़ाई, जमुहाई, छींक, डकार और श्वासोच्छ्वासमें मन्दता होना, शरीरको निश्चल रखना तथा आत्माको व्रतोंसे युक्त करना, यह धर्म्यध्यानका बाह्य लक्षण है। और आभ्यन्तर लक्षण अपाय विचय आदिके भेदसे *दश प्रकार-

१. ललाटे वा। वालके म., घ.। २. भंजाजृम्भा म., क्षितोद्गार म., ख.।

*१. अपाय विचय, २. उपाय विचय, ३. जीव विचय, ४. अजीव विचय, ५. विपाक विचय, ६. वैराग्य विचय, ७. भव विचय, ८. संस्थान विचय, ९. आज्ञा विचय और १०. हेतु विचय।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दशधाध्यात्मिकं धर्म्यमपायविचयादिकम् । अपायो रहो विचयो मीमांसास्तीति तत्तथा ॥३८॥
संसारहेतवः प्रायस्त्रियोगानां प्रवृत्तयः । अपायो वर्जनं तासां स मे स्यात्कथमित्यलम् ॥३९॥
चिन्ताप्रबन्धसंबन्धः शुभलेश्यानुरञ्जितः । अपायविचयाख्यं तत्प्रथमं धर्म्यमीप्सितम् ॥४०॥
उपायविचयं तासां पुण्यानामात्मसात्क्रिया । उपायः स कथं मे स्वादिति संकल्पसंततिः ॥४१॥
अनादिनिधना जीवा द्रव्यार्थादन्यथान्यथा । असंख्येयप्रदेशास्ते स्वोपयोगत्वलक्षणाः ॥४२॥
अचेतनोपकरणाः स्वकृतोचितभोगिनः । इत्यादिचेतनाध्यानं यज्जीवविचयं हि तत् ॥४३॥
द्रव्याणामप्य[1]जीवानां धर्माधर्मादिसंज्ञिनाम् । स्वभावचिन्तनं धर्म्यमजीवविचयं मतम् ॥४४॥
यच्चतुर्विधबन्धस्य कर्मणोऽष्टविधस्य तु । विपाकचिन्तनं धर्म्यं विपाकविचयं विदुः ॥४५॥
शरीरमशुचिर्भोगा किंपाकफलपाकिनः । विरागबुद्धिरित्यादि विरागविचयं स्मृतम् ॥४६॥
प्रेत्यभावो भवोऽमीषां चतुर्गतिषु देहिनाम् । दुःखात्मेत्यादिचिन्ता तु [2]भवादिविचयं पुनः ॥४७॥
[3]सुप्रतिष्ठितमाकाशमाकाशे वलयत्रयम् । संस्थानध्यानमित्यादि संस्थानविचयं स्थितम् ॥४८॥
अतीन्द्रियेषु भावेषु बन्धमोक्षादिषु स्फुटम् । जिनाज्ञानिश्चयध्यानमाज्ञाविचयमीरितम् ॥४९॥
तर्कानुसारिणः पुंसः स्याद्वादप्रक्रियाश्रयात् । सन्मार्गाश्रयणध्यानं यद्धेतुविचयं तु तत् ॥५०॥
अप्रमत्तगुणस्थानभूमिकं ह्यप्रमादजम् । पीतपद्म[4]सल्लेश्याबलाधानमिहाखिलम् ॥५१॥

का है। इनमें अपायका अर्थ त्याग है और मीमांसाका अर्थ विचार है ॥३६-३८॥ मन, वचन और काय इन तीन योगोंकी प्रवृत्ति ही प्रायः संसारका कारण है सो इन प्रवृत्तियोंका मेरे अपाय—त्याग किस प्रकार हो सकता है? इस प्रकार शुभ लेश्यासे अनुरंजित जो चिन्ताका प्रबन्ध है वह अपाय विचय नामका प्रथम धर्म्यध्यान माना गया है ॥३९-४०॥ पुण्यरूप योग प्रवृत्तियोंको अपने आधीन करना उपाय कहलाता है। यह उपाय मेरे किस प्रकार हो सकता है इस प्रकारके संकल्पोंकी जो सन्तति है वह उपाय विचय नामका दूसरा धर्म्यध्यान है ॥४१॥ द्रव्यार्थिक नयसे जीव अनादि निधन हैं—आदि-अन्तसे रहित हैं और पर्यायार्थिक नयसे सादि-सनिधन हैं। असंख्यात प्रदेशी हैं, अपने उपयोगरूप लक्षणसे सहित हैं, शरीररूप अचेतन उपकरणसे युक्त हैं और अपने द्वारा किये हुए कर्मके फलको भोगते हैं····इत्यादि रूपसे जीवका जो ध्यान करना है वह जीव विचय नामका तीसरा धर्म्यध्यान है ॥४२-४३॥ धर्म-अधर्म आदि अजीव द्रव्योंके स्वभावका चिन्तन करना यह अजीव विचय नामका चौथा धर्म्यध्यान है ॥४४॥ ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंके प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग रूप चार प्रकारके बन्धोंके विपाक-फलका विचार करना सो विपाक विचय नामका पाँचवाँ धर्म्यध्यान है ॥४५॥ शरीर अपवित्र है और भोग किंपाक फलके समान तदात्व मनोहर हैं इसलिए इनसे विरक्त बुद्धिका होना ही श्रेयस्कर है ··इत्यादि चिन्तन करना सो विराग विचय नामका छठा धर्म्यध्यान है ॥४६॥ चारों गतियोंमें भ्रमण करनेवाले इन जीवोंकी मरनेके बाद जो पर्याय होती है उसे भव कहते हैं। यह भव दुःखरूप है। इस प्रकार चिन्तवन करना सो भव विचय नामका सातवाँ धर्म्य-ध्यान है ॥४७॥ यह लोकाकाश अलोकाकाशमें स्थित है तथा चारों ओरसे तीन वातवलयोंसे वेष्टित है इत्यादि लोकके संस्थान-आकारका विचार करना सो संस्थान विचय नामका आठवाँ धर्म्यध्यान है ॥४८॥ जो इन्द्रियोंसे दिखाई नहीं देते ऐसे बन्ध, मोक्ष आदि पदार्थोंमें जिनेन्द्र भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार निश्चयका ध्यान करना सो आज्ञा विचय नामका नौवाँ धर्म्यध्यान है ॥४९॥ और तर्कका अनुसरण करनेवाले पुरुष स्याद्वादकी प्रक्रियाका आश्रय लेते हुए समीचीन मार्गका आश्रय करते हैं—उसे ग्रहण करते हैं, इस प्रकार चिन्तवन करना सो हेतु विचय नामका दसवाँ धर्म्यध्यान है ॥५०॥

१. मपि जीवानां म. । २. भावादिविचयं म. । ३. स्वप्रतिष्ठित –क. । ४. पितपद्मस्य सल्लेश्या क. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालभावविकल्पस्थं धर्म्यध्यानं दशान्तरम् । स्वर्गापवर्गफलदं ध्यातव्यं ध्यानतत्परैः ॥५२॥
शुक्लं शुचित्वसंबन्धाच्छौचं दोषाद्यपोढता । शुक्लं परमशुक्लं च प्रत्येकं ते द्विधा मते ॥५३॥
सवीचारविवीचारपृथक्त्वैक्यवितर्कके । सूक्ष्मोच्छिन्नक्रियापूर्वप्रतिपातिनिवर्तके ॥५४॥
लक्षणं द्विविधं बाह्यं [1]जम्भाजृम्भाद्यपोहनम् । प्राणापानप्रचारस्या[2]व्यक्त्युच्छिन्नाप्रवृष्यतः ॥५५॥
परेषामनुमेयं स्यात्स्वसंवेद्यं यदात्मनः । आध्यात्मिकं तयोरेव लक्षणं [3]प्रतिपाद्यते ॥५६॥
पृथग्भावः पृथक्त्वं हि नानात्वमभिधीयते । वितर्को[4] द्वादशाङ्गं तु श्रुतज्ञानमनाविलम् ॥५७॥
अर्थव्यञ्जनयोगानां वीचारः[5] संक्रमः क्रमात् । ध्येयोऽर्थो व्यञ्जनं शब्दो योगो वागादिलक्षणः ॥५८॥
पृथक्त्वेन वितर्कस्य विचारोऽर्थादिषु क्रमात् । यस्मिन्नास्ति तथोक्तं तत्प्रथमं शुक्लमिष्यते ॥५९॥
[6]तद्यथा पूर्वविद्ध्यायन्नविक्षिप्तमना मुनिः । द्रव्याणुं चापि भावाणुमेकमालम्ब्य संवृतः ॥६०॥
अतीक्ष्णेनापि शस्त्रेण शनैश्छिन्दन्निव द्रुमम् । मोहस्योपशमं कुर्वन् क्षयं वा बहुनिर्जरः ॥६१॥

यह दश प्रकारका धर्म्यध्यान अप्रमत्त गुणस्थानमें होता है, प्रमादके अभावसे उत्पन्न होता है, पीत और पद्मनायक शुभ लेश्याओंके बलसे होता है, काल और भावके विकल्पमें स्थित है तथा स्वर्ग और मोक्षरूप फलको देनेवाला है। ध्यानमें तत्पर मनुष्योंको यह ध्यान अवश्य ही करना चाहिए। भावार्थ—यहाँ उत्कृष्टताकी अपेक्षा धर्म्यध्यानको सातवें अप्रमत्त-गुणस्थानमें बताया है परन्तु सामान्य रूपसे यह चतुर्थ गुणस्थानसे लेकर सातवें गुणस्थान तक होता है और स्वर्गका साक्षात् तथा मोक्षका परम्परासे कारण है ॥५१-५२॥

जो शुचित्व अर्थात् शौचके सम्बन्धसे होता है वह शुक्लध्यान कहलाता है। दोष आदिकका अभाव हो जाना शौच है। यह शुक्ल और परम शुक्लके भेदसे दो प्रकार है तथा शुक्ल और परम शुक्ल दोनोंके दो-दो भेद माने गये हैं ॥५३॥ पृथक्त्व वितर्क वीचार और एकत्व वितर्क ये दो भेद शुक्लध्यानके हैं और सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाति तथा व्युपरत क्रिया निवर्ति ये दो परम शुक्लध्यानके भेद हैं ॥५४॥ बाह्य और आध्यात्मिकके भेदसे शुक्लध्यानका लक्षण दो प्रकारका कहा गया है। इनमें श्वासोच्छ्वासके प्रचारकी अव्यक्त अथवा उच्छिन्नदशासे युक्त मनुष्यके जो अँगड़ाई और जमुहाई आदिका छूट जाना है वह बाह्य लक्षण है एवं अपने-आपको जिसका स्वसंवेदन होता है तथा दूसरेको जिसका अनुमान होता है वह आध्यात्मिक लक्षण है। आगे उन शुक्ल और परम शुक्ल ध्यानोंका आध्यात्मिक लक्षण कहा जाता है ॥५५-५६॥ पृथग्भाव अथवा नानात्वको पृथक्त्व कहते हैं। निर्दोष द्वादशांग-श्रुतज्ञान वितर्क कहलाता है। अर्थ, व्यंजन (शब्द) और योगोंका जो क्रमसे संक्रमण होता है उसे वीचार कहते हैं। जिस पदार्थका ध्यान किया जाता है वह अर्थ कहलाता है, उसके प्रतिपादक शब्दको व्यंजन कहते हैं और वचन आदि योग हैं ॥५७-५८॥ जिसमें वितर्क (द्वादशांग) के अर्थादिमें क्रमसे नानारूप परिवर्तन हो वह पृथक्त्ववितर्क वीचार नामका पहला शुक्लध्यान माना जाता है ॥५९॥ इसका स्पष्टीकरण यह है कि निश्चल चित्रका धारक कोई पूर्वविद् मुनि द्रव्याणु अथवा भावाणुका अवलम्बन कर ध्यान कर रहा है सो जिस प्रकार कोई अतीक्ष्ण—भोथले शस्त्रसे किसी वृक्षको धीरे-धीरे काटता है उसी प्रकार वह विशुद्धताका वेग कम होनेसे मोहनीय कर्मके उपशम अथवा

१. जम्भास्तम्भा—म. । २. स्या व्युत्पन्नाप्रहृष्यतः म. । ३. प्रतिपद्यते म. । ४. 'वितर्कः श्रुतम्' त., सू. अ. ९ । ५. 'वीचारोऽर्थव्यञ्जनयोगसंक्रान्तिः' त. सू. अ. ९ । ६. तत्र द्रव्यं परमाणुं वा ध्यायन्नाहितवितर्कसामर्थ्यादर्थव्यञ्जने कायवचसी च पृथक्त्वेन संक्रामता मनसापर्याप्तबालोत्साहवदव्यवस्थितेनापि शस्त्रेण चिरात्तरुं छिन्दन्निव मोहप्रकृतीरुपशमयन् क्षपयंश्च पृथक्त्ववितर्कवीचारध्यानभाग् भवति ।—स. सि. अ. ९ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्याद्द्रव्यान्तरं याति पर्यायं चान्यपर्ययात् । व्यञ्जनाद् व्यञ्जनं योगाद्योगान्तरमुपैति यत् ॥६२॥
शुक्लं तत्प्रथमं शुक्लतरलेश्याबलाश्रयम् । श्रेणीद्वयगुणस्थानं क्षयोपशमभावकम् ॥६३॥
सर्वपूर्वधरस्येदमन्तर्मौहूर्त्तिकस्थिति । श्रेणीद्वयवशाद्वेद्यं स्वर्गमोक्षफलप्रदम् ॥६४॥
एकत्वेन वितर्कोऽस्ति यस्मिन्वीचारवर्जिते । तदेकत्ववितर्कावीचारं शुक्लं तदुत्तरम् ॥६५॥
एकमेवाणुपर्यायं [1]विषयीकृत्य वर्तते । [2]मोहादिघातिघातीदं पूर्विणः स कृती ततः ॥६६॥
ज्ञानदर्शनसम्यक्त्ववीर्यचारित्रपूर्वकैः । भासते क्षायिकैर्भावैस्तीर्थकृद्वान्यकेवली ॥६७॥
सोऽर्चनीयोऽभिगम्यश्च त्रिभुवां परमेश्वरः । देशोनां विरहत्येकां पूर्वकोटीं प्रकर्षतः ॥६८॥
अन्तर्मुहूर्त्तशेषायुः स यदा भवतीश्वरः । तत्तुल्यस्थितिवेद्यादित्रितयश्च तदा पुनः ॥६९॥
समस्तं वाङ्मनोयोगं काययोगं च बादरम् । प्रहाप्यालम्ब्य सूक्ष्मं तु काययोगं स्वभावतः ॥७०॥
तृतीयं शुक्लसामान्यात्प्रथमं तु विशेषतः । सूक्ष्मक्रियाप्रतीपाति ध्यानमास्कन्तुमर्हति ॥७१॥
सोऽन्तर्मुहूर्तशेषायुरधिकान्यत्रिकस्थितिः[3] । यदा भवति योगीशस्तदा स्वाभाव्यतः स्वयम् ॥७२॥
स्वोपयोगविशेषस्य विशिष्टकरणस्य हि । सामायिकसहायस्य [4]महासंवरसंगतेः ॥७३॥

शमको धीरे-धीरे करता है। कर्मोंकी अत्यधिक निर्जराको करता हुआ वह मुनि द्रव्यसे द्रव्यान्तरको, पर्यायसे पर्यायान्तरको, व्यंजनसे व्यंजनान्तरको और योगसे योगान्तरको प्राप्त होता है ॥६०-६२॥ वह प्रथम शुक्लध्यान शुक्लतर लेश्याके बलसे होता है। उपशमश्रेणी और क्षपकश्रेणी– दोनों गुणस्थानोंमें होता है। क्षायोपशमिक भावसे सहित है। समस्त पूर्वोंके ज्ञाता मुनिके यह ध्यान अन्तर्मुहूर्त तक रहता है तथा दोनों श्रेणियोंके वशसे यह स्वर्ग और मोक्ष रूप फलको देनेवाला है। भावार्थ—उपशम श्रेणीमें होनेवाला शुक्लध्यान स्वर्गका कारण है और क्षपकश्रेणीमें होनेवाला मोक्षका कारण है ॥६३–६४॥

जिसमें वीचार—अर्थादिके संक्रमणसे रहित होनेके कारण एक रूपमें ही वितर्कका उपयोग होता है अर्थात् वितर्कके अर्थ एवं व्यंजन आदिपर अन्तर्मुहूर्त तक चित्तको गति स्थिर रहती है वह एकत्व वितर्क वीचार नामका दूसरा शुक्लध्यान है ॥६५॥ यह ध्यान एक ही अणु अथवा पर्यायको विषय कर प्रवृत्त होता है। मोह आदि घातिया कर्मोंका घात करनेवाला है, पूर्व धारीके होता है और इस ध्यानके प्रभावसे ध्यान करनेवाला कुशल मुनि ज्ञान, दर्शन, सम्यक्त्व, वीर्य और चारित्र आदि क्षायिक भावोंसे सुशोभित होने लगता है। अब वह तीर्थंकर अथवा सामान्य केवली हो जाता है। वह सबके द्वारा पूज्य एवं सेवनीय हो जाता है और तीन लोकोंका परमेश्वर हो उत्कृष्ट रूपसे देशोन कोटिवर्ष पूर्व तक विहार करता रहता है ॥६६–६८॥

जब उन केवली भगवान्‌की आयु अन्तर्मुहूर्तकी शेष रह जाती है तथा आयुके बराबर ही वेदनीय आदि तीन अघातिया कर्मोंकी स्थिति अवशिष्ट रहती है तब वे समस्त वचन योग, मनोयोग और स्थूल काय योगको छोड़कर स्वभावसे ही सामान्य शुक्लकी अपेक्षा तीसरे और विशेष—परमशुक्लकी अपेक्षा प्रथम सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाति नामक ध्यानको प्राप्त करने योग्य होते हैं ॥६९-७१॥ जब उन केवली भगवान्‌की स्थिति अन्तर्मुहूर्तकी हो और शेष तीन अघातिया कर्मोंकी स्थिति अधिक हो तब वे स्वभाववश अपने-आप चार समयों द्वारा आत्मप्रदेशोंको फैलाकर दण्ड, कपाट, प्रतर और लोक पूरण कर तथा उतने ही समयोंमें उन्हें संकुचित कर सब कर्मोंकी स्थिति एक बराबर कर लेते हैं। इस क्रियाके

१. विषमीकृत्य म. । २. –घातघातीदं म. । ३. स्थितः म. । ४. महासंवरसंगते म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शक्तस्य शातने शेषकर्मणां परिपाचने । दण्डं चापि कपाटं च प्रतरं लोकपूरणम् ॥७४॥
चतुर्भिः समयैः कृत्वा स्वप्रदेशविसर्पणात् । तावद्भिरेव संहृत्य कृतकर्मसमस्थितिः ॥७५॥
पूर्वकायप्रमाणः सन् भूत्वा निष्ठापयन्निदम् । प्रथमं शुक्लमध्यास्ते द्वितीयं परमं पुनः ॥७६॥
स्वप्रदेशपरिस्पन्दयोगप्राणादिकर्मणाम् । समुच्छिन्नतयोक्तं तत्समुच्छिन्नक्रियाख्यया ॥७७॥
सर्वबन्धास्रवाणां हि निरोधस्तत्र यत्नतः । अयोगस्य यथाख्यातचारित्रं मोक्षसाधनम् ॥७८॥
अयोगकेवली[1] ह्यात्मा प्रध्वस्ताखिलकर्मकः । जात्यहेमवदुद्भूतचेतनाशक्तिभास्वरः ॥७९॥
सिद्धयन्निहैव संसिद्धस्वोर्ध्वव्रज्यास्वभावतः । पूर्वप्रयोगासंगत्वबन्धच्छेदस्वहेतुतः[2] ॥८०॥
[3]अग्नेः शिखावदाविद्धचक्रालाम्बुवदुत्पतन् । एरण्डबीजवच्चोर्ध्वं लोकं समयतो व्रजेत् ॥८१॥
धर्मास्तिकायाभावान्न लोकान्तमतिगच्छति । धाम्नि संतिष्ठतेऽतोऽग्रे सोऽनन्तसुखसंततिः ॥८२॥
चतुर्वर्गे हि देहिभ्यो मोक्षोऽतिशयतो हितः । स चोक्तादेव [4]सद्ध्यानात्स्वकर्मक्षयलक्षणः ॥८३॥
कर्मप्रकृत्यभावो हि मोक्षोऽनन्तसुखावहः । स यत्नायत्नसाध्यत्वाद्द्विधा भवति देहिनः ॥८४॥
चरमोत्तमदेहस्य प्रागसत्त्वाद्यत्नतः । गत्यन्तरायुषामेषाममावो भवतीतरः ॥८५॥
उच्यते तु गुणस्थानात्सम्यग्दृष्टेरसंयतात्[5] । समारभ्याप्रमत्तान्ते[6] क्वचिदेवात्र[7] मानुषः ॥८६॥

समय उनका उपयोग विशेष अपने-आपमें होता है, वे विशिष्ट करण अर्थात् भावका अवलम्बन करते हैं, सामायिक भावसे युक्त होते हैं, महासंवरसे सहित होते हैं—नवीन कर्मोंका आस्रव प्रायः बन्द कर देते हैं और सत्तामें स्थित कर्मोंके नष्ट करने तथा उदयावलीमें लानेमें समर्थ रहते हैं। यह सब करनेके बाद जब वे पुनः पूर्व शरीर प्रमाण हो जाते हैं तब प्रथम परम शुक्लध्यानको पूर्ण कर द्वितीय परमशुक्लध्यानको प्राप्त होते हैं ॥७२-७६॥ आत्मप्रदेशोंके परिस्पन्दरूप योग तथा कायबल आदि प्राणोंके समुच्छिन्न—नष्ट हो जानेसे यह ध्यान समुच्छिन्नक्रिय नामसे कहा गया है ॥७७॥ इस ध्यानके समय यत्नपूर्वक समस्त कर्मोंके बन्ध और आस्रवोंका निरोध हो चुकता है। ध्याता अयोग—योगरहित हो जाता है और उसके मोक्षका साक्षात् कारण परम यथाख्यातचारित्र प्रकट हो जाता है ॥७८॥ वह अयोगकेवली आत्मा, समस्त कर्मोंको नष्ट कर सोलहवानीके स्वर्णके समान प्रकट हुई चेतनाशक्तिसे देदीप्यमान हो उठता है ॥७९॥ इसी समय वह सिद्ध होता हुआ अनादि सिद्ध ऊर्ध्वगमन स्वभाव, पूर्व प्रयोग, असंगत्व और बन्धच्छेद रूप हेतुओंसे अग्निशिखा, आविद्धकुलालचक्र, व्यपगतलेपालाबु और एरण्डबीजके समान ऊपरको जाता हुआ एक समय मात्रमें ऊर्ध्वलोकके अन्तमें पहुँच जाता है ॥८०-८१॥ धर्मास्तिकायका अभाव होनेसे सिद्धात्मा लोकान्तको उल्लंघन कर आगे नहीं जाता। वह उसी स्थानपर अनन्त सुखका उपभोग करता हुआ विराजमान हो जाता है ॥८२॥ चारों वर्गोंमें प्राणियोंके लिए मोक्ष ही अतिशय हितकारी है, अपने समस्त कर्मोंका क्षय हो जाना मोक्षका लक्षण है और ऐसा मोक्ष ऊपर कहे हुए समीचीन ध्यानसे ही प्राप्त होता है ॥८३॥ कर्मप्रकृतियोंका अभाव हो जाना ही अनन्त सुखका देनेवाला मोक्ष है। वह कर्म प्रकृतियोंका अभाव यत्नसाध्य तथा अयत्नसाध्यकी अपेक्षा दो प्रकारका है। चरमशरीरी जीवके भुज्यमान आयुको छोड़कर अन्य आयुओंका जो अभाव है वह अयत्नसाध्य अभाव है क्योंकि इनकी सत्ता पहलेसे आती नहीं है और चरमशरीरीके नवीन बन्ध होता नहीं है। अब यत्नसाध्य प्रकृतियोंका अभाव किस तरह होता है यह कहते हैं ॥८४-८५॥ असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्त संयत नामक सातवें गुणस्थान तक किसी गुणस्थानमें कर्म-

१. सोऽयोग म. । २. गतिभ्रमैः म. । ३. 'पूर्वप्रयोगादसंगत्वाद्बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च' । त. सू. । 'आविद्धकुलालचक्रवद्व्यपगतलेपालाबुवदेरण्डबीजवदग्निशिखावच्च' ॥ त. सू. । ४. सद्ध्यातात् म. । ५. -रसंयतान् म. । ६. समारम्य प्रवर्तन्ते क. । ७. क्वचिदेकत्र म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोहस्य प्रकृतीः सप्त क्षपयित्वा विशुद्धधीः । सम्यग्दर्शनमर्काभं क्षायिकं प्रतिपद्यते ॥८७॥
आरोढा क्षपकश्रेणीमप्रमत्तः प्रकृत्य सः । अथाप्रवृत्तकरणमपूर्वकरणत्वकृत् ॥८८॥
अपूर्वकरणो भूत्वा स पापप्रकृतिस्थितिम् । तनूकृत्यानुभागं चानिवृत्तिकरणाश्रितः ॥८९॥
अनिवृत्तिगुणस्थाने क्षपकव्यपदेशभाक् । शुक्लध्यानानलाक्रान्तकर्मप्रकृतिकक्षकः ॥९०॥
सन्निद्रानिद्राप्रचला-प्रचलास्त्यानगृद्धिभिः । दुर्गती सानुपूर्वीके पूर्वां जातिचतुष्टयीम् ॥९१॥
सत्थावरातपोद्योतसूक्ष्मसाधारणाभिधाः । सहैव क्षपयत्येताः षोडश प्रकृतीः कृती ॥९२॥
[1]अत्रैवातः परं स्थानं कषायाष्टकमस्यति । ततो नपुंसकं वेदं स्त्रीवेदं च ततः परम् ॥९३॥
[2]पुंवेदे नोकषायाणां षट्कं प्रक्षिप्य वै सह । निरस्याक्षिप्य पुंवेदं क्रोधसंज्वलनानने ॥९४॥
मानसंज्वलने तं च मायासंज्वलने त्वमुम् । लोभसंज्वलने त्वेनं निक्षिप्य दहति क्रमात् ॥९५॥
लोभसंज्वलनं सूक्ष्मं कृत्वा सूक्ष्मकषायगः । लोभसंज्वलनस्यान्तमन्ते कृत्वा विमोहकम् ॥९६॥
भूत्वा क्षीणकषायस्योपान्तिमे समयेऽस्यति । निद्रां च प्रचलामन्त्ये ज्ञानावृत्यन्तराययोः ॥९७॥
प्रत्येकं प्रकृतीः पञ्च चतस्रो दर्शनावृतेः । दग्ध्वैकत्ववितर्काग्नेः[3] सयोगः केवली भवेत् ॥९८॥
सद्वेद्यं चाप्यसद्वेद्यं नामदेवगतिश्रुतिः । औदारिकशरीरादिनाम्ना पञ्चतयं तथा ॥९९॥
संघातपञ्चकं चापि पुनर्बन्धकपञ्चकम् । वैक्रियौदारिकाहारकायाङ्गोपाङ्गकत्रिकम् ॥१००॥
संस्थाननामषट्कं च षट्संहनननाम च । वर्णपञ्चकनामापि रसपञ्चकनाम च ॥१०१॥

भूमिका मनुष्य मोहनीय कर्मकी सात प्रकृतियोंका क्षय कर विशुद्ध बुद्धिका धारक होता हुआ सूर्यके समान क्षायिक सम्यग्दर्शनको प्राप्त होता है ॥८६-८७॥ तदनन्तर सातिशय अप्रमत्तगुणस्थानवर्ती मनुष्य क्षपक श्रेणीमें चढ़कर अथाप्रवृत्तकरण (अधःप्रवृत्तकरण) को करके उसके बाद अपूर्वकरणको करता है ॥८८॥ फिर अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती होकर पापप्रकृतियोंकी स्थिति तथा अनुभागको क्षीण करता हुआ अनिवृत्तिकरणको प्राप्त होता है ॥८९॥ तदनन्तर अनिवृत्तिकरण नामक नवम गुणस्थानमें क्षपक संज्ञाको प्राप्त होता हुआ कर्मप्रकृतिरूप वनको शुक्लध्यानरूपी अग्निसे आक्रान्त करता है ॥९०॥ फिर सत्तामें स्थित निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रियादि चार जातियाँ, स्थावर, आतप, उद्योत, सूक्ष्म और साधारण इन सोलह प्रकृतियोंका एक साथ क्षय करता है ॥९१-९२॥ इसी गुणस्थानमें सोलह प्रकृतियोंके क्षयके बाद अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण नामक आठ कषायोंको नष्ट करता है। फिर नपुंसकवेद और स्त्रीवेदको नष्ट कर हास्यादि छह नोकषायोंको पुंवेदमें डालकर एक साथ नष्ट करता है। फिर पुंवेदको संज्वलन क्रोधरूपी अग्निमें, संज्वलन क्रोधको संज्वलन मानमें, संज्वलन मानको संज्वलन मायामें और संज्वलन मायाको संज्वलन लोभमें डालकर क्रमसे दग्ध करता है ॥९३-९५॥ फिर संज्वलन लोभको और भी सूक्ष्म कर सूक्ष्मसाम्पराय नामक दशम गुणस्थानमें पहुँचता है। इसके अन्तमें संज्वलन लोभका अन्त कर मोहकर्मका बिलकुल अभाव कर चुकता है ॥९६॥ फिर क्षीणकषायगुणस्थानवर्ती होकर एकत्ववितर्क नामक शुक्लध्यानरूपी अग्निसे इसके उपान्त्य समयमें निद्रा और प्रचलाको तथा अन्त समयमें ज्ञानावरण और अन्तरायकी पाँच-पाँच और दर्शनावरणकी चार प्रकृतियोंको जलाकर सयोगकेवली होता है ॥९७-९८॥ तदनन्तर सयोगकेवली गुणस्थानको उल्लंघ कर जब आगामी गुणस्थानको प्राप्त होता है तब अयोगकेवली होकर अर्हन्त अवस्थाके उपान्त्य समयमें सातावेदनीय और असातावेदनीयमेंसे कोई एक, देवगति, औदारिक शरीरको आदि लेकर पाँच शरीर, पाँच संघात, पाँच बन्धन,

---

१. अत्रैवान्तः परं म. । २. पुंवेद क. । ३. वितर्काग्निः म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अष्टधा स्पर्शनामापि गन्धनाम पुनर्द्विधा । तत्प्रायोग्यानुपूर्वी च नामदेवगतेः पुनः ॥१०२॥
नामागुरुलघूच्छ्वासपरघातोपघातकम् । प्रशस्ताशस्तभेदस्थं विहायोगति नाम च ॥१०३॥
प्रत्येककायापर्याप्तस्थिरास्थिरशुभाशुभम् । तथा दुर्भगनामापि पुनः सुस्वरदुस्वरम् ॥१०४॥
अनादेयायशःकीर्तिनाम निर्माणनाम च । प्रकृतीर्द्वासप्ततिं नीचैर्गोत्रेण सुपिण्डिताः ॥१०५॥
सयोगकेवलिस्थानमतीत्य पदमास्थितः । अयोगकेवली हन्ति स्वोपान्त्यसमयेऽर्हतः ॥१०६॥
वेद्यमेकं मनुष्यायुर्मनुष्यगतिरेव च । तत्प्रायोग्यानुपूर्वी च जातिः पञ्चेन्द्रियाभिधा ॥१०७॥
त्रसबादरपर्याप्तसुभगादेयसंज्ञिका । उच्चैर्गोत्रं यशःकीर्तिस्तत्तीर्थङ्करनाम च ॥१०८॥
एतास्त्रयोदश ख्याताः प्रकृतीः प्रकृतिस्थिरः । अयोगकेवली हन्ति चरमे समये ततः[1] ॥१०९॥
सहस्वोच्चारणावृत्तीः पञ्च स्थित्वा स्वकालतः । सिद्धिः सादिरनन्ता स्यादनन्तगुणसन्निधिः ॥११०॥
धर्म्यध्यानप्रकारं स ध्यायन्नेमिर्यथोचितम् । षट्पञ्चाशदहोरात्रकालं सुतपसानयत् ॥१११॥

औदारिक, वैक्रियिक और आहारक ये तीन अंगोपांग, छह संस्थान, छह संहनन, पाँच वर्ण, पाँच रस, आठ स्पर्श, दो गन्ध, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उच्छ्वास, परघात, उपघात, प्रशस्त और अप्रशस्तके भेदसे दो प्रकारकी विहायोगति, प्रत्येक शरीर, अपर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण और नीच गोत्र इन बहत्तर प्रकृतियोंको नष्ट करता है ॥९९-१०६॥ फिर अन्त समयमें सातावेदनीय, असातावेदनीयमें-से एक, मनुष्य आयु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, पंचेन्द्रिय जाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, उच्चगोत्र, यशस्कीर्ति और तीर्थंकर इन तेरह प्रकृतियोंको नष्ट करता है। अयोगकेवली गुणस्थानमें यह जीव प्रदेशपरिस्पन्दका अभाव हो जानेके कारण स्वभावसे स्थिर रहता है ॥१०७–१०९॥ अ इ उ ऋ लृ इन पाँच लघु अक्षरोंके उच्चारणमें जितना काल लगता है उतने काल तक चौदहवें गुणस्थानमें रहकर यह जीव सिद्ध हो जाता है। जीवकी यह सिद्धि सादि तथा अनन्त है और अनन्त गुणोंके सन्निधानसे युक्त है ॥११०॥

भगवान् नेमिनाथने धर्म्यध्यानके पूर्वोक्त दस भेदोंका यथायोग्य ध्यान करते हुए, छद्मस्थ

---

१. कर्माभावो द्विविधः—यत्नसाध्योऽयत्नसाध्यश्चेति। तत्र चरमदेहस्य नारकतिर्यग्देवायुषामभावो न यत्नसाध्यः असत्त्वात्। यत्नसाध्य इत ऊर्ध्वमुच्यते—असंयतसम्यग्दृष्ट्यादिषु चतुर्षु गुणस्थानेषु कस्मिंश्चित्सप्तप्रकृतिप्रक्षयः क्रियते। निद्रानिद्राप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धिनरकगतितिर्यग्गत्येकद्वित्रिचतुरिन्द्रियजातिनरकगतितिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्यातपोद्योतस्थावरसूक्ष्मसाधारणसंज्ञिकानां षोडशानां कर्मप्रकृतीनामनिवृत्तिबादरसाम्परायस्थाने युगपत्क्षयः क्रियते। नपुंसकवेदः स्त्रीवेदश्च तत्रैव क्षयमुपयाति। नोकषायषट्कं च सहैकेनैव प्रहारेण विनिपातयति। ततः पुंवेदसंज्वलनक्रोधमानमायाः क्रमेण तत्रैवात्यन्तिकं ध्वंसमास्कन्दन्ति। लोभसंज्वलनः सूक्ष्मसाम्परायान्ते यात्यन्तम्। निद्राप्रचले क्षीणकषायवीतरागच्छद्मस्थस्योपान्त्यसमये प्रलयमुपव्रजतः। पञ्चानां ज्ञानावरणानां चतुर्णां दर्शनावरणानां पञ्चानामन्तरायाणां च तस्यैवान्त्यसमये प्रक्षयो भवति। अन्यतरवेदनीयदेवगत्यौदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणशरीरसंस्थानषट्कौदारिकवैक्रियिकाहारकशरीराङ्गोपाङ्गषट्संहननपञ्चप्रशस्तवर्णपञ्चाप्रशस्तवर्णगन्धद्वयपञ्चप्रशस्तरसपञ्चाप्रशस्तरसस्पर्शाष्टकदेवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यागुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासप्रशस्ताप्रशस्तविहायोगत्यपर्याप्तकप्रत्येकशरीरस्थिरास्थिरशुभाशुभदुर्भगसुस्वरदुःस्वरानादेयायशःकीर्तिनिर्माणनाम नीचैर्गोत्राख्या द्वासप्ततिप्रकृतयोऽयोगकेवलिनमुपान्त्यसमये विनाशमुपयान्ति। अन्यतरवेदनीयमनुष्यायुर्मनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजातिमनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यत्रसबादरपर्याप्तकसुभगादेययशःकीर्तितीर्थङ्करनामोच्चैर्गोत्रसंज्ञिकानां त्रयोदशानां प्रकृतीनामयोगकेवलिनश्चरमसमये विच्छेदो भवति।

—सर्वार्थसिद्धि अ. १०, सूत्र. २

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्वाह्णेऽश्वयुजस्यातः शुक्लप्रतिपदि प्रभुः । शुक्लध्यानाग्निना दग्ध्वा चतुर्घातिमहावनम् ॥११२॥
अनन्तकेवलज्ञानदर्शनादिचतुष्टयम् । त्रैलोक्येन्द्रासनाकम्पि संप्रापत्परदुर्लभम् ॥११३॥

स्रग्धरावृत्तम्

घण्टारावोरुसिंहस्फुटपटहरवोदारशङ्खस्वनैस्तां
जैनीं कैवल्यलब्धिं सकलसुरगणा द्राग्विदित्वा यथास्वम् ।
इन्द्राः सिंहासनोच्चैर्मुकुटविचलनैः स्वान् प्रयुञ्ज्यावधीन् स्वैः
प्राप्तानीकैः सहायुः क्षुभितसलिलधिव्रातविद्भिस्त्रिलोक्याः ॥११४॥
आपूर्यावार्यवेगैर्गननजलनिधिं वाहनानां समूहैः
सप्तानीकैर्नेकैस्त्रिदशपतिगणस्तं परीत्य प्रपेदे ।
प्रोच्चैर्मूर्धावलेपं गिरिपतिमधिपस्नानकल्याणमात्रं
भूयः कल्याणकण्ठे गुणभरणगुणादूर्जयन्तं जयन्तम् ॥११५॥
मन्दारादि द्रुमाणां सुरभितककुभां पुष्पवृष्ट्या सुराणां
दिव्यस्त्रीगीतमूर्छन्मुखरितभुवनैर्दुन्दुभीनां निनादैः ।
भेत्रा लोकस्य शोकं फलकुसुमभृताशोकशाखाभृता च
श्वेतच्छत्रत्रयेण त्रिभुवनविभुताचिह्नभूतोरुभूम्ना ॥११६॥
हंसालीपातलीलैर्धवलितखचलैश्चामराणां सहस्रैः
भाभिर्भामण्डलेन प्रतिहतविकसद्भानुभामण्डलेन ।

अवस्थाके छप्पन दिन समीचीन तपश्चरणके द्वारा व्यतीत किये ॥१११॥ तदनन्तर आश्विन शुक्ल प्रतिपदाके दिन प्रातःकालके समय भगवान्‌ने शुक्लध्यानरूपी अग्निके द्वारा चार घातियारूपी महावनको जलाकर तीन लोकके इन्द्रोंके आसन कँपा देनेवाले एवं अन्य जनदुर्लभ, केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि अनन्तचतुष्टय प्राप्त किये ॥११२-११३॥ घण्टाओंके शब्द, विशाल सिंहनाद, दुन्दुभियोंके स्पष्ट शब्द और शंखोंकी भारी आवाजसे समस्त देवोंने शीघ्र ही निश्चय कर लिया कि जिनेन्द्र भगवान्‌को केवलज्ञान प्राप्त हो गया है तथा इन्द्रोंने भी सिंहासन और उन्नत मुकुटोंके कम्पित होनेसे अपने-अपने अवधिज्ञानका प्रयोग कर उक्त बातका ज्ञान कर लिया। तदनन्तर तीनों लोकोंके इन्द्र, समुद्रोंके समूहको क्षुभित करनेवाली अपनी-अपनी सेनाओंके साथ गिरनार पर्वतकी ओर चल पड़े ॥११४॥

उस समय इन्द्रोंने अवार्य वेगसे युक्त वाहनोंके समूह और सात प्रकारकी अनेक सेनाओंसे आकाशरूपी समुद्रको व्याप्त कर दिया और आकर गिरनार पर्वतकी तीन प्रदक्षिणाएँ दीं। उस समय वह पर्वत, ऊँचे शिखरका अभिमान धारण करनेवाले गिरिराज—सुमेरु पर्वतको भी जीत रहा था क्योंकि सुमेरु पर्वतपर तो भगवान्‌का मात्र जन्मकल्याणक सम्बन्धी अभिषेक हुआ था और गिरनार पर्वतपर दीक्षाकल्याणकके बाद पुनः ज्ञानकल्याणक होनेसे अनेक गुण प्रकट हुए थे ॥११५॥ देवलोग, दिशाओंको सुगन्धित करनेवाले मन्दार आदि वृक्षोंके फूलोंकी वर्षा करने लगे। देवांगनाओंके सुन्दर संगीतसे मिश्रित दुन्दुभियोंके शब्द संसारको मुखरित करने लगे। लोगोंके शोकको नष्ट करनेवाला फल और फूलोंसे युक्त अशोक वृक्ष प्रकट हो गया। तीन लोककी विभुताके चिह्नस्वरूप श्वेत छत्रत्रय सिरपर फिरने लगे। हंसावलीके पातके समान सुशोभित एवं पर्वतकी भूमिको सफेद करनेवाले हजारों चमर ढुलने लगे। अपनी कान्तिसे देदीप्यमान सूर्यकी प्रभाके समूहको पराजित करनेवाला भामण्डल प्रकट हो गया। नाना रत्नसमूहकी किरणोंसे

१. –वद्भिः म. । २. –रनीकैः म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नानारत्नौघरोचिर्जनितसुरधनुर्हेमसिंहासनेन
भाषाभेदस्फुरन्त्या स्फुरणविरहितस्वाधरोद्भाषया च ॥११७॥
अष्टाभिः प्रातिहार्यैरतिशमितपरैः स्वैर्विशेषैरशेषैः
कर्मापायस्वभावत्रिदिवपतिभवैस्तैश्चतुस्त्रिंशता च ।
त्रैलोक्योद्धारणाय प्रकृतिधृतधृतिर्नेमिनाथो जगत्यां
द्वाविंशो [2]हारिवंशो गुणगणदिनकृत्तीर्थकृत्प्रादुरासीत् ॥११८॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यस्य कृतौ भगवन्नेमिनाथ-
केवलज्ञानवर्णनो नाम षट्पञ्चाशः सर्गः ॥५६॥

□

इन्द्रधनुषको उत्पन्न करनेवाला स्वर्ण-सिंहासन आविर्भूत हो गया और नाना भाषाओंके भेदसे युक्त एवं ओठोंके स्फुरणसे रहित दिव्यध्वनि खिरने लगी। इस प्रकार पूर्वोक्त आठ प्रातिहार्यों, दूसरोंको अत्यन्त शान्त करनेवाली अपनी समस्त विशेषताओं और केवलज्ञान-सम्बन्धी, जन्म-सम्बन्धी तथा देवकृत चौंतीस अतिशयोंसे विभूषित, तीन लोकके उद्धारके लिए स्वाभाविक धैर्यके धारक और अनेक गुणोंके समूहको प्रकट करनेके लिए सूर्यके समान, हरिवंशके शिरोमणि बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ भगवान् पृथिवीपर प्रकट हुए ॥११६-११८॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें भगवान् नेमिनाथके केवलज्ञानकी उत्पत्तिका वर्णन करनेवाला छप्पनवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥५६॥

□

१. प्रकृत—म. । २. हरिवंशे भवो हारिवंशः । ३. गुणगुणबृहतात् म., घ. । जिनगुणगुणभृत्त –क.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सप्तपञ्चाशः सर्गः

समवादि समापादि शरणं शरणं क्षणात् । त्रिजगत्प्राणिनां देवैः पाकशासनशासनात् ॥१॥
सर्वो द्वारवतीलोको यदुभोजकुलाम्बुधिः । आरुरोह गिरिं भूत्या रामकेशवपूर्वकः ॥२॥
अवलोक्य जिनेन्द्रस्य शरणं समवादिकम् । बहिरन्तःपरं प्रापद्विस्मयं जनसागरः ॥३॥
यादृशी समवस्थानभूमिस्तीर्थकृतामिह । तादृशी श्रोतृलोकस्य समासेन निगद्यते ॥४॥
भूमेः स्वभावभूताया दिव्यारत्निप्रमोच्छ्रितिः । भूमिस्तावत्समुच्छ्राया कल्पभूमिरुपर्यतः ॥५॥
स्वर्गश्रियं श्रिया जेत्री चतुरस्रा सुखप्रदा । सैकान्तद्वादशाद्यात्मयोजनां कालदेशतः ॥६॥
उच्चैर्गन्धकुटीदेशकर्णिका पद्ममूर्तिवत्[1] । भाति भूमिरसौ बाह्य[2]भूश्रीपत्रपरम्परा ॥७॥
इन्द्रनीलमयी भूमिर्बाह्यादर्शतलोपमा । भूयसामपि भूयस्त्वं विशतां विदधाति या ॥८॥
दूरादिन्द्रादयो यस्यां मानयन्ति नमस्यया । मानार्हास्त्रिजगन्नाथं साभूर्मानाङ्गणाभिधा ॥९॥
महादिक्षु चतस्रोऽस्या गव्यूतिद्वयविस्तृताः । वीथ्यस्तन्मध्यगानीयुर्मानपीठान्पुरः[3] प्रमान् ॥१०॥
स्वोत्सेधत्रिगुणात्मीयविस्तराण्युक्तिविस्तरैः । सौवर्णरत्नमूर्त्तीनि मान्यन्ते नृसुरासुरैः ॥११॥
नृसुरामानवस्तम्भानास्थायार्चन्ति यत्र भूः । सा त्वास्थानाङ्गणाभिख्या ज्वलल्लौहितरत्नभा ॥१२॥
मध्ये[4] वीथि चतस्रोऽत्र त्रिभङ्गा हैमपीठिकाः । भान्त्युरोद्वयसोच्छ्रायाः वृत्ताः क्रोशार्धविस्तृताः ॥१३॥

अथानन्तर देवोंने इन्द्रकी आज्ञासे क्षण-भरमें तीन जगत्के जीवोंके लिए शरणभूत समवशरणकी रचना कर दी ॥१॥ बलदेव और कृष्णको आदि ले यादव और भोजवंशके सागर-स्वरूप समस्त द्वारिका निवासी बड़े वैभवके साथ गिरिनार पर्वतपर चढ़े और भीतर-बाहर जिनेन्द्र भगवान्का समवशरण देखकर वह जनताका अपार सागर परम आश्चर्यको प्राप्त हुआ ॥२-३॥ तीर्थंकरोंकी समवसरण भूमि जैसी होती है उसका यहाँ संक्षेपसे श्रोताओंके लिए वर्णन किया जाता है ॥४॥

समवसरणकी दिव्य भूमि स्वाभाविक भूमिसे एक हाथ ऊँची रहती है और उससे एक हाथ ऊपर कल्पभूमि होती है ॥५॥ यह भूमि अपनी शोभासे स्वर्गलक्ष्मीको जीतनेवाली, चौकोर, सुखदायी और देशकालके अनुसार बारह योजनसे लेकर एक योजन तक विस्तारवाली होती है। **भावार्थ**—समवसरण भूमिका उत्कृष्ट विस्तार बारह योजन और कमसे-कम विस्तार एक योजन प्रमाण होता है ॥६॥ यह भूमि कमलके आकारकी होती है इसमें गन्धकुटी तो कर्णिकाके समान ऊँची उठी होती है और बाह्य भूमि कमलदलके समान विस्तृत है ॥७॥ यह इन्द्रनीलमणिसे निर्मित होती है, इसका बाह्य भाग दर्पणतलके समान निर्मल होता है और प्रवेश करनेवाले बहुतसे जीवोंको एक साथ स्थान देनेवाली रहती है ॥८॥ जिसमें मानके योग्य इन्द्र आदि देव त्रिलोकीनाथ—भगवान्की दूरसे ही पूजा करते हैं वह मानांगण नामकी भूमि है ॥९॥ इस भूमिकी चारों महादिशाओंमें दो-दो कोश विस्तृत चार महावीथियाँ हैं। ये वीथियाँ अपने मध्यमें स्थित चार मानस्तम्भोंके पीठ धारण करती हैं ॥१०॥ ये पीठ अपनी ऊँचाईसे तिगुने चौड़े एवं सुवर्ण और रत्नमयी मूर्तियोंके धारक होते हैं तथा मनुष्य, सुर, असुर सभी आकर इन्हें नमस्कार करते हैं ॥११॥ जहाँ स्थित होकर मनुष्य और देव, मानस्तम्भोंकी पूजा करते हैं वह आस्थानांगणा नामकी भूमि देदीप्यमान लाल मणियोंकी कान्तिको धारण करती है ॥१२॥ वीथियोंके मध्यमें तीन कटनीदार चार सुवर्णमयी पीठिकाएँ हैं जो छाती बराबर ऊँची हैं और आधा कोश चौड़ी

१. पद्मरूपवत् क. । २. वाद्यभू म., बाह्याभू क. । ३. पुरः प्रमाः क., ख., ग., म. । ४. मध्ये वापि म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चापोनपीठिकाव्यासा योजनाम्यधिकोच्छ्रयाः[1] । शुम्भिता मानवस्तम्भाश्चत्वारः पीठिकास्वधि ॥१४॥
द्विषड्योजनदृश्यास्ते पालिकास्याम्बुजस्थिताः । वज्रस्फटिकवैडूर्यमूलमध्याग्रविग्रहाः ॥१५॥
द्विसहस्राश्रयो नानारत्नरश्मिविमिश्रिताः । चतुर्दिक्षूर्ध्वसिद्धार्चाः रत्नभूतोरुपालिकाः[2] ॥१६॥
पालिकामुखपद्मस्थतपनीयस्फुरद्घटाः । घटास्याबद्धफलकाः श्रीभामाभिषवश्रियः ॥१७॥
श्रीचूलारत्नभाचक्रमास्यर्विंशतियोजनाः । साभिमानमनोदेवमानवस्तंभना बभुः ॥१८॥
ततः सरांसि चत्वारि[3] शुम्भदम्भोजभांज्यलम्[4] । हंससारसचक्राह्वारावरम्यककुप्स्वलम्[5] ॥१९॥
अतो वज्रमयो वप्रो वक्षोदघ्नो घनद्युतिः । द्विगुणीभूतविस्तारः परीयाय समन्ततः ॥२०॥
परीत्य परिखातोऽस्थाज्जलप्रभमणिक्षितः । जानुदघ्नाम्बुगम्भीरा कृष्णसाटीव भूस्त्रियाः ॥२१॥
हेमाम्भोजररजःपुञ्जपिञ्जरी भावितामसि । स्वच्छायां[6] दिङ्मुखान्यस्यां साङ्गरागाणि चात्यभान् ॥२२॥
वल्लीवनमतोऽप्यन्तः परीत्य स्थितमित्यभात् । कुसुमामोदिता[7] शान्तं शकुन्तालिकुलाकुलम् ॥२३॥
प्राकारोऽन्तः परीयाय कनत्कनकभास्वरः । विजयादिबृहद्रौप्यचतुर्गोपुरमण्डितः ॥२४॥
तत्र दौवारिका भौमाः कटकादिविभूषणाः । प्रभावोत्सारितायोग्या मुद्गरोद्धृतपाणयः ॥२५॥

हैं ॥१३॥ उन पीठिकाओंपर चार मानस्तम्भ सुशोभित हैं जो पीठिकाओंकी चौड़ाईसे एक धनुष कम चौड़े हैं और एक योजनसे कुछ अधिक ऊँचे हैं ॥१४॥ वे मानस्तम्भ बारह योजनकी दूरीसे दिखाई देते हैं। पालिकाके अग्रभागपर जो कमल हैं उन्हींपर स्थित हैं, उनका मूलभाग हीराका, मध्यभाग स्फटिकका और अग्रभाग वैडूर्यमणिका बना हुआ है ॥१५॥ हर एक मानस्तम्भ दो-दो हजार कोणोंसे सहित हैं—दो-दो हजार पहलके हैं, नाना रत्नोंकी किरणोंसे मिले हुए हैं, उनकी चारों दिशाओंमें ऊपर सिद्धोंकी प्रतिमाएँ विराजमान हैं तथा उनकी रत्नमयी बड़ी-बड़ी पालिकाएँ हैं ॥१६॥ पालिकाओंके अग्रभागपर जो कमल हैं उनपर सुवर्णके देदीप्यमान घट हैं, उन घटोंके अग्रभागसे लगी हुई सीढ़ियाँ हैं, तथा उन सीढ़ियोंपर लक्ष्मीदेवीके अभिषेककी शोभा दिखलायी गयी है ॥१७॥ वे मानस्तम्भ लक्ष्मीदेवीके चूड़ारत्नके समान अपनी कान्तिके समूहसे बीस योजन तकका क्षेत्र प्रकाशमान करते रहते हैं तथा जिनका मन अहंकारसे युक्त है ऐसे देव और मनुष्यों-को वहीं रोक देनेवाले हैं ॥१८॥ उन मानस्तम्भोंकी चारों दिशाएँ हंस, सारस और चकवोंके शब्दोंसे अत्यन्त सुन्दर हैं तथा उनमें खिले हुए कमलोंसे युक्त चार सरोवर हैं ॥१९॥

सरोवरोंके आगे एक वज्रमय कोट है जो छाती बराबर ऊँचा है, अत्यन्त कान्तिसे युक्त है, ऊँचाईसे दूना चौड़ा है और चारों ओरसे घेरे हुए हैं ॥२०॥ इस कोटको चारों ओरसे घेरकर एक परिखा स्थित है जिसकी भूमि जलके समान कान्तिवाले मणियोंसे निर्मित है, उसमें घुटनों प्रमाण गहरा पानी भरा है तथा वह पृथिवीरूपी स्त्रीकी नीली साड़ीके समान जान पड़ती है ॥२१॥ वह परिखा अत्यन्त स्वच्छ है तथा उसका जल स्वर्णमय कमलोंकी परागके समूहसे पीला-पीला हो रहा है अतएव उसमें प्रतिबिम्बित दिशारूप स्त्रियोंके मुख अंगरागसे सहितके समान जान पड़ते हैं ॥२२॥ उसके आगे चारों ओरसे घेरकर स्थित लताओंका वन सुशोभित है जो फूलोंके द्वारा दिशाओंके अन्त भागको सुगन्धित कर रहा है तथा पक्षियों और भ्रमरोंके समूहसे व्याप्त है ॥२३॥ उसके आगे देदीप्यमान सुवर्णके समान चमकीला, एवं विजय आदि चाँदीके बड़े-बड़े चार गोपुरोंसे सुशोभित कोट, चारों ओरसे घेरे हुए हैं ॥२४॥ उन गोपुरोंपर व्यन्तर जातिके देव द्वारपाल हैं जो कटक आदि आभूषणोंसे सुशोभित हैं, अपने प्रभावसे अयोग्य

१. योजनान्यधिको—म. । २. रत्नभूजोढपालिकाः ङ. । –ऽरत्नभूतोनुपालिकाः क. । ३. चत्वारः म. । ४. -ज्यलि । ५. ककुरचलं क., ख. । ६. सुखायां क. । सुखयां घ. । ७. कुसुमामादिता सान्तं म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मणितोरणपार्श्वेषु गोपुराणां स्फुरत्त्विषाम् । छत्रचामरभृङ्गारपूर्वाष्टशतकान्यमान् ॥२६॥
तद्गोपुरपुरो भान्ति प्रेक्षाशालास्त्रिभूमिकाः । द्विर्द्विर्वीथ्यंतयोर्नृत्यद्द्वात्रिंशत्सुरकन्यकाः ॥२७॥
भात्यशोकवनं प्राच्यां सप्तवर्णवनं त्वपाक् । प्रतीच्यां चम्पकवनमुदीच्यामाम्रसद्वनम् ॥२८॥
ससिद्धप्रतिमोऽशोकः सप्तपर्णश्च चम्पकम् । तथैवाम्रतरुस्तेषां वनानामधिपाः क्रमात् ॥२९॥
त्रिकोणाः मण्डलाकाराश्चतुरस्राश्च वापिकाः । वनेषु रत्नतट्यन्ताशुद्धस्फटिकभूमयः ॥३०॥
विश्वाः सतोरणाः लक्ष्यास्तीर्थास्तूच्चैर्वराण्डकैः । मण्डितागाहमानेष्वगाधा द्विक्रोशविस्तृताः ॥३१॥
नन्दा नन्दोत्तरानन्दानन्दवत्यभिनन्दिनी । नन्दघोषेत्यमूर्वाप्यः षडशोकवनस्थिताः ॥३२॥
विजयाभिजया जैत्री वैजयन्त्यपराजिताः । जयोत्तरेति षड्वाप्यः सप्तपर्णवनाश्रिताः ॥३३॥
कुमुदा नलिनी पद्मा पुष्करा विश्वोत्पला । कमलेत्यपि षड्वाप्यश्चम्पकाख्यवने मताः ॥३४॥
प्रभासा भास्वती भासा सुप्रभा भानुमालिनी । स्वयंप्रभेति षड्वाप्यः सहकारवनोदिताः ॥३५॥
उदयो विजयः प्रीतिः ख्यातिश्चेति क्रमोदितैः । फलैः पूर्वादयो वाप्यः पूज्यन्ते तत्फलार्थिभिः ॥३६॥
तद्वापीपुष्पसंदोहं यथोक्तं प्राप्य भक्तिकाः । आस्तूपं क्रमशोभ्यर्च्य विशन्ति क्रमकोविदाः ॥३७॥
अन्तरेणोदयं प्रीतिं चाभितस्त्रिभुवोऽध्वसु । भान्ति नाटकशालास्ता हाटकोज्ज्वलमूर्तयः ॥३८॥
अध्यर्धक्रोशविस्तारा द्वात्रिंशज्ज्योतिषां स्त्रियः । तद्भुवो रत्ननिर्माणाः स्वच्छस्फटिकभित्तयः ॥३९॥

व्यक्तियोंको दूर हटाते रहते हैं तथा जिनके हाथ मुद्गरोंसे उद्धत होते हैं ॥२५॥ देदीप्यमान कान्तिसे युक्त उन गोपुरोंके मणिमय तोरणोंकी दोनों ओर छत्र, चमर तथा भृंगार आदि अष्टमंगल द्रव्य एक सौ आठ-एक सौ आठ संख्यामें सदा सुशोभित रहते हैं ॥२६॥ उन गोपुरोंके आगे वीथियोंकी दोनों ओर तीन-तीन खण्डकी दो-दो नाट्यशालाएँ हैं जिनमें बत्तीस-बत्तीस देव-कन्याएँ नृत्य करती हैं ॥२७॥ तदनन्तर पूर्वदिशामें अशोक वन, दक्षिणमें सप्तपर्ण वन, पश्चिममें चम्पक वन और उत्तरमें आम्रवन सुशोभित है ॥२८॥ इन चारों वनोंमें अशोक वनका अशोक वृक्ष, सप्तपर्ण वनका सप्तपर्ण वृक्ष, चम्पक वनका चम्पक वृक्ष और आम्रवनका आम्रवृक्ष स्वामी हैं। ये स्वामी वृक्ष सिद्धकी प्रतिमाओंसे सहित हैं अर्थात् इनके नीचे सिद्धोंकी प्रतिमाएँ विराजमान रहती हैं ॥२९॥ उन वनोंमें तिकोनी, चौकोनी और गोलाकार अनेक वापिकाएँ हैं। उन वापिकाओंके तट रत्ननिर्मित हैं तथा उनकी भूमि शुद्ध स्फटिकसे निर्मित है। ये सभी वापिकाएँ तोरणोंसे युक्त हैं, दर्शनीय हैं, सीढ़ियोंसे युक्त हैं, ऊँचे-ऊँचे बरण्डोंसे सुशोभित हैं, प्रवेश करनेमें गहरी हैं और दो कोश चौड़ी हैं ॥३०-३१॥ नन्दा, नन्दोत्तरा, आनन्दा, नन्दवती, अभिनन्दिनी, और नन्दघोषा ये छह वापिकाएँ अशोक वनमें स्थित हैं ॥३२॥ विजया, अभिजया, जैत्री, वैजयन्ती, अपराजिता और जयोत्तरा ये छह वापिकाएँ सप्तपर्ण वनमें स्थित हैं ॥३३॥ कुमुदा, नलिनी, पद्मा, पुष्करा, विश्वोत्पला और कमला ये छह वापियाँ चम्पक वनमें मानी गयी हैं ॥३४॥ और प्रभासा, भास्वती, भासा, सुप्रभा, भानुमालिनी और स्वयंप्रभा ये छह वापियाँ आम्रवनमें कही गयी हैं ॥३५॥ पूर्व आदि दिशाओंकी वापिकाएँ क्रमसे उदय, विजय, प्रीति और ख्याति नामक फल देती हैं तथा इन फलोंके इच्छुक मनुष्य इन वापिकाओंकी पूजा करते हैं ॥३६॥ क्रमके जाननेवाले भक्तजन उन वापिकाओंसे यथोक्त फूलोंका समूह प्राप्त कर स्तूपों तक क्रम-क्रमसे जिनेन्द्र प्रतिमाओंकी पूजा करते हुए आगे प्रवेश करते हैं ॥३७॥ उदय और प्रीतिरूप फलको देनेवाली वापिकाओंके बीचके मार्गके दोनों ओर तीन खण्डकी सुवर्णमय देदीप्यमान बत्तीस नाट्यशालाएँ है ॥३८॥ ये नाट्यशालाएँ डेढ़ कोश चौड़ी हैं,

---

१. ससिद्धप्रतिमाशोकः म. । २. रत्नतट्योना म. । ३. वाराण्डकैः ङ. । अण्डकैः हंसादिपक्षिभिः ङ. ठि. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तासु भक्त्या प्रनृत्यन्ति द्वात्रिंशज्ज्योतिषां स्त्रियः । हावभावविलासाढ्या[1] रसपुष्टिसपुष्टयः ॥४०॥
सचतुर्गोपुरातोऽपि पर्येति वनवेदिका[2] । दिव्या वज्रमयी वीथीपार्श्वयोर्ध्वजपङ्क्तयः ॥४१॥
त्रिदण्डविस्तृताश्चित्राः पीठिकाः प्रतिभक्तिगाः । योजनार्धोच्छ्रितास्तासु वंशा रत्नात्मपूर्वकाः ॥४२॥
तदग्रपालिकानद्धफलकाधिष्ठिता ध्वजाः । महान्तो दश चित्राः सत्किङ्किणीचित्रपट्टकाः ॥४३॥
शिखिहंसगरुत्मत्स्रक्सिंहेभमकराम्बुजैः । वृषरूपेण चक्रेण समधिष्ठितमूर्त्तयः ॥४४॥
तेषामष्टशतं जातिर्द्वात्रिंशच्च चतुःशती । ध्वजसंख्या भवेदेषां सामान्येन समासतः ॥४५॥
सद्वात्रिंशत्सहस्राः स्युर्लक्षाः पञ्चाशदष्ट च । साधिका ध्वजसंख्येयं सैकदिक्का द्विसंगुणा ॥४६॥
षट्पञ्चाशत्सहस्राणि लक्षा षट्षष्टिरष्टसु । ध्वजकोट्यश्चतस्रः स्युश्चतुर्दिक्ष्वपि साधिकाः ॥४७॥
प्रीतिकल्याणमध्ये स्युरमितः पञ्चभूमिकाः । [3]नृत्तशालाः प्रनृत्यन्ति यत्र भावनयोषितः ॥४८॥
प्राकारोऽन्तः परीयाय द्वितीयो हेमनिर्मितः । पञ्चभूमिकरत्नश्रीचतुर्गोपुरभूषितः ॥४९॥
हटद्धाटकपीठस्थाः कम्बुकण्ठगुणोज्ज्वलाः । शातकुम्भमयाः कुम्भाः साम्भोजास्याः सहाम्भसः ॥५०॥
शोभन्ते तद्द्विपार्श्वेषु द्वौ द्वौ मङ्गलदर्शनाः । वेत्रदण्डधरा द्वास्थास्तद्द्वाःसु भवनाधिपाः ॥५१॥
पुरस्ताद्गोपुराणां च द्वे द्वे नाटकवेश्मनी । पुरस्तात्तु ततो हैमौ द्वौ द्वौ धूपघटौ स्फुटौ ॥५२॥
चतुर्दिक्सिद्धरूपाढ्यं द्विर्द्विः सिद्धार्थपादपम् । कल्पवृक्षवनं तत्र वीथ्यन्तेषु यथायथम् ॥५३॥

नाना प्रकारके बेलबूटोंसे सुशोभित हैं और उनकी भूमियाँ रत्नोंकी बनी हैं तथा उनकी दीवालें स्वच्छ स्फटिकसे निर्मित हैं ॥३९॥ उनमें ज्योतिषी देवोंकी बत्तीस-बत्तीस देवांगनाएँ नृत्य करती हैं जो हाव, भाव और विलाससे युक्त तथा शृंगार आदि रसोंकी पुष्टिसे सुपुष्ट होती हैं ॥४०॥ उसके आगे चार गोपुरोंसे युक्त अत्यन्त सुन्दर वज्रमयी वनवेदी है जो पूर्वोक्त वनोंको चारों ओरसे घेरे हुए है। चार गोपुरोंके आगे चार वीथियाँ हैं और उनके दोनों पसवाड़ोंमें ध्वजाओंकी पंक्तियाँ फहराती रहती हैं ॥४१॥ प्रत्येक विभागमें उन ध्वजाओंकी पृथक्-पृथक् पीठिकाएँ हैं जो तीन धनुष चौड़ी हैं, चित्र-विचित्र हैं तथा उनपर आधा योजन ऊँचे रत्नमयी बाँस लगे हुए हैं ॥४२॥ उन बाँसोंके अग्रभागपर जो पटिया लगे हैं उनमें दश प्रकारकी रंग-बिरंगी, छोटी-छोटी घण्टियों और चित्रपट्टकोंसे युक्त बड़ी ध्वजाएँ फहराती रहती हैं ॥४३॥ वे दस प्रकारकी ध्वजाएँ क्रमसे मयूर, हंस, गरुड़, माला, सिंह, हाथी, मकर, कमल, बैल और चक्रके चिह्नसे चिह्नित होती हैं ॥४४॥ एक दिशामें एक जातिकी ध्वजाएँ एक सौ आठ होती हैं और चारों दिशाओंकी मिलकर एक जातिकी चार सौ बत्तीस होती हैं। यह इनकी सामान्य रूपसे संक्षेपमें संख्या बतलायी है ॥४५॥ विशेष रीतिसे एक दिशामें एक करोड़ सोलह लाख चौंसठ हजार हैं और चारों दिशाओंमें चार करोड़ अड़सठ लाख छत्तीस हजार कुछ अधिक हैं ॥४६-४७॥

प्रीति और कल्याणरूप फल देनेवाली वापिकाओंके बीचके मार्गमें दोनों ओर पाँच खण्डकी नृत्यशालाएँ हैं जिनमें भवनवासी देवोंकी देवांगनाएँ नृत्य करती हैं ॥४८॥ नृत्यशालाओंके आगे पाँच-पाँच खण्डके रत्नमयी चार गोपुरोंसे विभूषित स्वर्णनिर्मित दूसरा कोट है ॥४९॥ गोपुरोंके दोनों पसवाड़ोंमें देदीप्यमान सुवर्णके पीठोंपर स्थित, शंखके समान सुन्दर कण्ठोंमें पड़ी मालाओंसे सुशोभित मुखोंपर कमल धारण करनेवाले एवं जलसे भरे स्वर्णनिर्मित मंगलकलश दो-दोकी संख्यामें सुशोभित हैं। इस दूसरे कोटके द्वारोंपर भवनवासी देवोंके इन्द्र द्वारपाल हैं जो बेंतकी छड़ी धारण किये हुए पहरा देते हैं ॥५०-५१॥ गोपुरोंके आगे दो-दो नाट्यशालाएँ हैं और उनके आगे स्वर्णनिर्मित दो-दो धूपघट रखे हुए हैं ॥५२॥ उससे आगे चारों दिशाओंमें सिद्धों-

१. विलासाद्या म. । २. वनदेविका म. । ३. वृत्तशालाः म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सचतुर्गोपुरातोऽन्तर्वेदिका वनपाततः[1] । तोरणान्तरिताः सार्वाः स्तूपा नव नवाध्वसु ॥५४॥
पद्मरागमहास्तूपपर्यन्तेषु सभागृहाः । हेमरत्नमयाश्चित्रा[2] मुनिदेवगणोचिताः ॥५५॥
नभःस्फटिकनिर्माणस्ततः सालस्तृतीयकः । चतुश्चित्र[3]महारत्नसप्तभूमिकगोपुरः ॥५६॥
विजयो विश्रुतं कीर्तिर्विमलोदयविश्वधुक् । वासवीर्यं वरं चेति पूर्वाख्या ख्यापिताष्टधा ॥५७॥
[4]वैजयन्तं शिवं ज्येष्ठं वरिष्ठानवधारणम् । याम्यमप्रतिघं चेति दक्षिणाख्याष्टधा मताः ॥५८॥
जयन्तामितसारं च सुधामाक्षोभ्यसुप्रभम् । वरुणं वरदं चेति पश्चिमाख्याष्टधा स्मृताः ॥५९॥
अपराजितमर्थाख्यमतुलार्थममोघकम् । उदयं चाक्षयं दोदक्कौबेरं पूर्णकामकम् ॥६०॥
सुरत्नासनमध्यस्था दृष्टृणां भवदर्शिनः । तद्द्वारोभयपार्श्वेषु भान्ति मङ्गलदर्पणाः ॥६१॥
यैः प्रध्वस्तमहाध्वान्तप्रभावलय[5]भास्वरैः । भास्वतो भासमुद्धूय भासन्ते गोपुराण्यलम् ॥६२॥
विजयादिपुरद्वाःसु द्वाःस्थास्तिष्ठन्ति कल्पजाः । यथायथं ज्वलद्भूषा जयकल्याणकारिणः ॥६३॥
शालास्त्रयोऽप्यमी त्वेकद्वित्रिक्रोशोच्छ्रयोन्मिताः । मूलमध्योपरिष्या[6]सैस्तदर्धार्धसुसंमिताः ॥६४॥
स्वरत्नित्रयहीनोक्तप्रमाणजगतीतलाः । [7]हस्तोद्विद्धाक्ष[8]विस्तीर्णव्यामार्धकपिशीर्षकाः ॥६५॥
ततोऽप्यन्तर्वणं नानातरुवल्लीगृहाकुलम् । मञ्चप्रेङ्खागिरिप्रेक्षागृहकोटिविराजितम् ॥६६॥
वेदिकाबद्धवीथीषु कल्याणादिजयाजिरम् । कदल्यः कदलीकल्पाः प्रकाशन्तेऽन्तरस्थिताः ॥६७॥

की प्रतिमाओंसे युक्त, दो-दो सिद्धार्थ वृक्षोंसे सहित कल्पवृक्षोंका वन वीथियोंके अन्तमें यथारीति स्थित हैं ॥५३॥ तदनन्तर चार गोपुरोंसे सहित, वनकी रक्षा करनेवाली अन्तर्वेदिका है और मार्गोंमें तोरणोंसे युक्त, सबका भला करनेवाले नौ-नौ स्तूप हैं ॥५४॥ वे स्तूप पद्मराग मणियोंसे निर्मित होते हैं तथा उनके समीप स्वर्ण और रत्नोंके बने, मुनियों और देवोंके योग्य नाना प्रकारके सभागृह रहते हैं ॥५५॥ सभागृहोंके आगे आकाशस्फटिक मणिसे बना, नाना प्रकारके महारत्नोंसे निर्मित सात खण्डवाले चार गोपुरोंसे सुशोभित तीसरा कोट है ॥५६॥ इस कोटके पूर्व द्वारके विजय, विश्रुत, कीर्ति, विमल, उदय, विश्वधुक्, वासवीर्य और वर ये आठ नाम प्रसिद्ध हैं ॥५७॥ दक्षिण द्वारके वैजयन्त, शिव, ज्येष्ठ, वरिष्ठ, अनघ, धारण, याम्य और अप्रतिघ ये आठ नाम कहे गये हैं ॥५८॥ पश्चिम द्वारके जयन्त, अमितसार, सुधाम, अक्षोभ्य, सुप्रभ, वरुण और वरद ये आठ नाम स्मरण किये गये हैं ॥५९॥ और उत्तर द्वारके अपराजित, अर्थ, अतुलार्थ, उदक, अमोघक, उदय, अक्षय और पूर्णकामक ये आठ नाम हैं ॥६०॥ उन द्वारोंके पसवाड़ोंमें उत्तम रत्नमय आसनोंके मध्यमें स्थित मंगलरूप दर्पण सुशोभित हैं जो देखनेवालोंके पूर्व भव दिखलाते हैं ॥६१॥ ये दर्पण गाढ़ अन्धकारको नष्ट करनेवाले कान्तिके समूहसे सदा देदीप्यमान रहते हैं और उनसे गोपुर सूर्यकी प्रभाको तिरस्कृत कर अतिशय शोभायमान होते हैं ॥६२॥ विजयादिक गोपुरोंमें यथायोग्य 'जय हो' 'कल्याण हो' इन शब्दोंका उच्चारण करनेवाले एवं देदीप्यमान आभूषणोंसे युक्त कल्पवासी देव द्वारपाल रहते हैं ॥६३॥ ये तीनों कोट एक कोश, दो कोश और तीन कोश ऊँचे होते हैं तथा मूल, मध्य और ऊपरी भागमें इनकी चौड़ाई ऊँचाईसे आधी होती है ॥६४॥ इन कोटोंके जगतीतलोंका प्रमाण अपनी ऊँचाईसे तीन हाथ कम कहा गया है और उनके ऊपर बने हुए बन्दरके शिरके आकारके कंगूरे एक हाथ तथा एक वितस्ति चौड़े और आधा वेमा ऊँचे कहे गये हैं ॥६५॥ उसके आगे नाना वृक्षों और लतागृहोंसे व्याप्त, मंच, प्रेंखागिरि और प्रेक्षागृहोंसे सुशोभित अन्तर्वण है ॥६६॥ वेदिकाओंसे बद्ध वीथियोंके बीचमें कल्याणजय नामका आंगन है और उसमें शाल्मली वृक्षके समान ऊँचे एवं अन्तरसे स्थित केला-

१. वनपाठतः म. (?) । २. चित्रमुनि–म. । ३. चतुश्चित्रा म. । ४. वैजयन्त्यम् । ५. परिन्यासै–म., क., ङ. । ६. हस्तोद्विद्धाक्ष म. । ७. विस्तीर्णाक्षान्तराः म., ख. । ८. व्यासार्ध ख. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्तर्नाटकशाला स्यात्ततः कल्याणसप्रभाः । लोकपालविलासिन्यो यत्र नृत्यन्ति सन्ततम् ॥६८॥
तदन्तरे भवत्यन्यत्पीठं पीठगुणास्पदम् । प्रोदंशुरत्नजालास्ततिमिरावलिमण्डलम् ॥६९॥
सिद्धार्थपादपाः सन्ति सिद्धरूपविराजितैः । विटपैर्व्याप्य दिक्प्रान्तमिच्छयेव स्थितास्ततः ॥७०॥
स्तूपा द्वादशभूभूषा[1] भूषयन्त्यथ मन्दिरम् । हिरण्मया महामेरुं चत्वारो मेरवो यथा ॥७१॥
चतुर्दिग्गोपुरद्वारवेदिकालंकृताः शुभाः । चतस्रो दिक्ष्वथ ज्ञेयाश्चतसृष्वपि वापिकाः ॥७२॥
नन्दाभद्राजयापूर्णेत्यभिख्याभिः क्रमोदिताः । यज्जलाभ्युक्षिताः पूर्वां जातिं जानन्ति जन्तवः ॥७३॥
ताः पवित्रजलापूर्णसर्वपापरुजाहराः । परापरभवाः सप्त दृश्यन्ते यासु पश्यताम् ॥७४॥
अथ गव्यूतमुद्विद्धं योजनाधिकविस्तृतम् । कटीमात्रवरण्डस्थकदलीध्वजसंकुलम् ॥७५॥
निरन्तरविशन्निर्यज्जनद्वारोच्चतोरणम् । त्रिलोकविजयाधानमहो भाति जयाजिरम् ॥७६॥
मुक्ताबालुकविस्तीर्णप्रवालसिकतान्तरम् । सुरत्नकुसुमैश्चित्रं हेमाम्भोजैस्तदर्चितैः ॥७७॥
तपनीयरसालिप्तैस्तपनैरिव भूगतैः । तत्र तत्र यथादेश्यं मण्ड्यन्ते पृथुमण्डलैः ॥७८॥
प्रासादैर्मण्डपैश्चान्यैः सुखावासैः सुशोभते । देवासुरनरापूर्णैस्तत्र तत्र विचित्रितम् ॥७९॥
क्वचिदालेख्य हृद्यानि वेश्मानि क्वचिदन्तरे । पुराणाद्भुतभूतीनि चित्राख्यानान्वितानि च ॥८०॥
क्वचित्पुण्यफलप्राप्त्या पापपाकेन च क्वचित् । धर्माधर्मगतिं साक्षाद्दर्शयन्तीव पश्यतः ॥८१॥

के वृक्ष प्रकाशमान हो रहे हैं ॥६७॥ तदनन्तर उन्हींके भीतर नाटकशाला है जिसमें सुवर्णके समान कान्तिकी धारक लोकपाल देवोंकी देवांगनाएँ निरन्तर नृत्य करती रहती हैं ॥६८॥ उनके मध्यमें श्रेष्ठ गुणोंका स्थान तथा ऊँची उठनेवाली किरणोंसे सुशोभित रत्नावलीसे अन्धकारके समूहको नष्ट करनेवाला दूसरा पीठ है ॥६९॥ उसके आगे सिद्धार्थवृक्ष हैं जो सिद्धोंकी प्रतिमाओंसे सुशोभित शाखाओंसे इच्छापूर्वक ही मानो दिशाओंको व्याप्त कर स्थित हैं ॥७०॥ उसके आगे एक मन्दिर है जिसे पृथ्वीके आभरणस्वरूप बारह स्तूप उस तरह सुशोभित करते रहते हैं जिस तरह कि सुवर्णमय चार मेरु पर्वत जम्बूद्वीपके महामेरुको सुशोभित करते रहते हैं ॥७१॥ इनके आगे चारों दिशाओंमें शुभ वापिकाएँ हैं जो चारों दिशाओंमें बने हुए गोपुर-द्वारों और वेदिकासे अलंकृत हैं ॥७२॥ नन्दा, भद्रा, जया और पूर्णा ये चार उनके नाम हैं। उन वापिकाओंके जलमें स्नान करनेवाले जीव अपना पूर्व-भव जान जाते हैं ॥७३॥ वे वापिकाएँ पवित्र जलसे भरी एवं समस्त पापरूपी रोगोंको हरनेवाली हैं। इनमें देखनेवाले जीवोंको अपने आगे-पीछेके सात भव दिखने लगते हैं ॥७४॥ वापिकाओंके आगे एक जयांगण सुशोभित है जो एक कोश ऊँचा है, एक योजनसे कुछ अधिक चौड़ा है, कटि बराबर ऊँचे बरण्डोंपर स्थित कदली-ध्वजाओंसे व्याप्त है, जिनमें मनुष्य निरन्तर प्रवेश करते और निकलते रहते हैं ऐसे द्वारों और उच्च तोरणोंसे युक्त है, तीन लोककी विजयका आधार है, उसमें बीच-बीचमें मूँगाओंकी लाल-लाल बालूका अन्तर देकर मोतियोंकी सफेद बालू बिछी हुई है, उत्तम रत्नमय पुष्पों और रखे हुए सुवर्णकमलोंसे चित्र-विचित्र है। उस जयांगणके भूभाग, जहाँ-तहाँ सुवर्ण रससे लिप्त अतएव पृथिवीपर आये हुए सूर्योंके समान दिखनेवाले विशाल वर्तुलाकार मण्डलोंसे सुशोभित हैं। जहाँ-तहाँ नाना प्रकारके चित्रोंसे चित्रित वह जयांगण, देव, असुर और मनुष्योंसे परिपूर्ण भवनों, मण्डपों तथा अन्य सुखकर निवासस्थानोंसे सुशोभित है ॥७५-७९॥ कहीं चित्रोंसे सुन्दर और कहीं पुराणोंमें प्रतिपादित आश्चर्यकारी विभूतिसे युक्त तथा नाना प्रकारके कथानकोंसे सहित भवन बने हैं ॥८०॥ वे भवन कहीं पुण्यके फलकी प्राप्तिसे देखनेवाले लोगोंको धर्मका साक्षात् फल

१. भूभागा क. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दानशीलतपःपूजाप्रारम्भास्तत्फलानि च । तद्वियोगविपत्तीश्च तानि श्रद्धापयन्त्यमून् ॥८२॥
स्फुरत्पुलकसंसक्तमुक्तादामोन्मिषन्मणिः । पताका घण्टिकारावरमणीयानिलेरिता[1][2] ॥८३॥
उदंशुरत्नमालेव स्फुरन्ती वीचिरर्णवे । वीक्ष्यते व्योमनीन्द्राद्यः कौतुकाद्येन चामितः[3] ॥८४॥
राजतीन्द्रध्वजः सोऽयं तन्मध्ये हेमपीठिकाम्[4] । अलंकुर्वन् यथामूर्तो देहो देवजयश्रियः ॥८५॥
ततः स्तम्भसहस्रस्थो मण्डपोऽस्ति महोदयः । नाम्ना मूर्तिमती यत्र वर्तते श्रुतदेवता ॥८६॥
तां कृत्वा दक्षिणे भागे धीरैर्बहुश्रुतैर्वृतः । श्रुतं व्याकुरुते यत्र श्रायसं श्रुतकेवली ॥८७॥
तदर्धमानाश्चत्वारस्तत्परीवारमण्डपाः । आक्षेपण्यादयो येषु कथ्यन्ते कथकैः कथाः ॥८८॥
तत्प्रकीर्णकवासेषु चित्रेष्वाचक्षते स्फुटम् । ऋषयः स्वेष्टमर्थिभ्यः केवलादिमहर्द्धयः ॥८९॥
तपनीयमयं पीठं ततश्चित्रलताचितम् । यत्तद्वल्युपहारेण यथाकालं समर्च्यते ॥९०॥
[5]पीठार्हश्रीपदद्वारं सरत्नकुसुमोत्करम् । मण्डलैः पूर्यते मध्ये[6]मार्गं चन्द्रार्कसप्रभैः ॥९१॥
अभितः स्वाख्यया द्वौ तं मण्डपौ स्तः प्रभासकौ । अभ्यर्ध्वं[7] राजतो यत्र निधीशौ कामदायिनौ ॥९२॥
प्रेक्षाशाले विशाले स्तः प्रमदाख्ये ततोऽन्तरे[8] । यत्र कल्पनिवासिन्यो नृत्यन्त्यप्सरसः सदा ॥९३॥
विजयाजिरकोणेषु विलसत्केतुमालिनः । चत्वारो योजनोद्विद्धा लोकस्तूपा भवन्त्यमी ॥९४॥

दिखलाते हैं तो कहीं पापका परिपाक दिखाकर अधर्मका साक्षात् फल दिखलाते हैं ॥८१॥ वे भवन, उन दर्शकजनोंको दान, शील, तप और पूजाके प्रारम्भ तथा उनके फलोंकी एवं उनके अभावमें होनेवाली विपत्तियोंकी श्रद्धा कराते हैं ॥८२॥ उस जयांगणके मध्यमें सुवर्णमय पीठको अलंकृत करता हुआ इन्द्रध्वज सुशोभित होता है जो ऐसा जान पड़ता है मानो भगवान्‌की विजय-लक्ष्मीका मूर्तिधारी शरीर ही हो। उस इन्द्रध्वजमें देदीप्यमान गोले, लटकती हुई मोतियोंकी माला और जगमगाते हुए मणियोंसे युक्त एक पताका लगी रहती है। वह पताका वायुसे कम्पित होनेके कारण घण्टियोंके शब्दसे अत्यन्त रमणीय जान पड़ती है। ऊपर उठती हुई किरणोंसे युक्त रत्नोंकी मालासे सुशोभित वह पताका जब आकाशमें फहराती है तब ऐसी जान पड़ती है मानो समुद्रसे लहर ही उठ रही हो। इन्द्रादिक देव उसे बड़े कौतुकसे देखते हैं ॥८३-८५॥

उसके आगे एक हजार खम्भोंपर खड़ा हुआ महोदय नामका मण्डप है जिसमें मूर्तिमती श्रुतदेवता विद्यमान रहती है ॥८६॥ उस श्रुतदेवताको दाहिने भागमें करके, बहुश्रुतके धारक अनेक धीर-वीर मुनियोंसे घिरे श्रुतकेवली कल्याणकारी श्रुतका व्याख्यान करते हैं ॥८७॥ महोदय मण्डपसे आधे विस्तारवाले चार परिवार मण्डप और हैं जिनमें कथा कहनेवाले पुरुष आक्षेपिणी आदि कथाएँ कहते रहते हैं ॥८८॥ इन मण्डपोंके समीपमें नाना प्रकारके फुटकर स्थान भी बने रहते हैं जिनमें बैठकर केवलज्ञान आदि महाऋद्धियोंके धारक ऋषि इच्छुकजनोंके लिए उनकी इष्ट वस्तुओंका निरूपण करते हैं ॥८९॥

उसके आगे नाना प्रकारकी लताओंसे व्याप्त एक सुवर्णमय पीठ रहता है जिसकी भव्यजीव नाना प्रकारकी समयानुसार पूजा करते हैं ॥९०॥ उस पीठका श्रीपद नामका द्वार है जो रत्नों और फूलोंके समूहसे युक्त है तथा जो मार्गके बीचमें बने हुए सूर्य और चन्द्रमाके समान देदीप्यमान मण्डलोंसे परिपूर्ण है ॥९१॥ उस द्वारके दोनों ओर प्रभासक नामके दो मण्डप हैं जिनमें मार्गके सम्मुख, इच्छानुसार फल देनेवाले निधियोंके स्वामी दो देव सुशोभित रहते हैं ॥९२॥ उनके आगे प्रमदा नामकी दो विशाल नाट्यशालाएँ हैं जिनमें कल्पवासिनी अप्सराएँ सदा नृत्य करती रहती हैं ॥९३॥ विजयांगणके कोनोंमें चार लोकस्तूप होते हैं जिनपर पताकाओंकी पंक्तियाँ

१. –रावो म., क., ङ. । २. –लेरिताः म., क., ङ. । ३. वीभिता ख., वीक्षिता म. । ४. हेमपीठिका म. । ५. पीठार्हा म., ङ. । ६. मध्ये मार्गश्चन्द्रार्क—म., क., ङ. । ७. अत्यर्ध्वं म. । ८. तमोऽम्बरे म, ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अधोवेत्रासनाकारा झल्लरीसममध्यगाः । ऊर्ध्वं मृदङ्गसंस्थानाः स्वान्ततालामनालिकाः ॥९५॥
स्वच्छस्फटिकरूपास्ते सुव्यक्तान्तर्निवेशकाः । दृश्यते लोकविन्यासो यत्रादर्शतले यथा ॥९६॥
मध्यलोकस्वरूपान्तर्व्यक्तनिर्माणमूर्तयः । मध्यलोका इति ख्याताः सन्ति स्तूपास्ततः परे ॥९७॥
मन्दरस्तूपनामानो मन्दराकारभास्वराः । चतुःकाण्डचतुर्दिक्षु चैत्या भान्ति ततोऽपरे ॥९८॥
ततोऽन्तःकल्पवासाख्याः कल्पवासिनिवेशिनः । स्तूपास्ते कल्पवासर्द्धिं साक्षात्कुर्वन्ति पश्यताम् ॥९९॥
ग्रैवेयकपरास्तेऽन्ये नाम्ना स्तूपास्तथाविधाः । ततो ग्रैवेयकाभिख्यां दर्शयन्तीव मानवान् ॥१००॥
नवानुदिशनामानस्ततः स्तूपा विराजते । नवानुदिशमध्यक्षं[1] पश्यन्ते[2] यत्र प्राणिनः ॥१०१॥
विजयादिचतुर्दिक्कां[3] विमानोद्भासिनस्ततः । सर्वार्थदायिनः सन्ति स्तूपाः सर्वार्थसिद्धयः[4] ॥१०२॥
सिद्धस्तूपाः प्रकाशन्ते ततोऽन्ये स्फटिकामलाः । यत्रैव दर्पणच्छाया दृश्यते सिद्धरूपभाक् ॥१०३॥
भव्यकूटाख्यया स्तूपा भास्वत्कूटास्ततोऽपरे । यानभव्या न पश्यन्ति प्रभावान्धीकृतेक्षणाः ॥१०४॥
प्रमोहा नाम सन्त्यन्ये स्तूपा यत्र प्रमोहिताः । विस्मरन्ति यथाग्राहं[5] चिराभ्यस्तं च देहिनः ॥१०५॥
प्रबोधाख्या भवन्त्यन्ये स्तूपा यत्र प्रबोधिताः । तत्त्वमासाद्य संसारान्मुच्यन्ते[6] साधवो ध्रुवम् ॥१०६॥
एवमन्योऽन्यसंसक्तवेदिकातोरणोज्ज्वलाः । दश स्तूपाः समुत्तुङ्गाः राजन्त्यापरिधेः[7] क्रमात् ॥१०७॥
ततोऽस्ति क्रोशविस्तारः[8] परिधिर्धनुरुच्छ्रितिः । यत्र मण्डलभूवार्यं परियन्ति नरामराः ॥१०८॥

फहराती रहती हैं, तथा जो एक योजन ऊँचे रहते हैं ॥९४॥ ये लोकस्तूप, नीचे वेत्रासनके समान, मध्यमें झालरके समान, ऊपर मृदंगके समान और अन्तमें तालवृक्षके समान लम्बी नालिकासे सहित हैं ॥९५॥ इनका स्वच्छ स्फटिकके समान रूप होता है, अतः इनके भीतरकी रचना अत्यन्त स्पष्ट रहती है। इन स्तूपोंमें लोककी रचना दर्पणतलके समान स्पष्ट दिखाई देती है ॥९६॥ इन स्तूपोंके आगे मध्यलोक नामसे प्रसिद्ध स्तूप हैं जिनके भीतर मध्यलोककी रचना स्पष्ट दिखती है ॥९७॥ आगे मन्दराचलके समान देदीप्यमान मन्दर नामके स्तूप हैं जिनपर चारों दिशाओंमें भगवान्‌की प्रतिमाएँ सुशोभित हैं ॥९८॥ उनके आगे कल्पवासियोंकी रचनासे युक्त कल्पवास नामक स्तूप हैं जो देखनेवालोंको कल्पवासी देवोंकी विभूति साक्षात् दिखाते हैं ॥९९॥ उनके आगे ग्रैवेयकोंके समान आकारवाले ग्रैवेयक स्तूप हैं जो मनुष्योंको मानो ग्रैवेयकोंकी शोभा ही दिखाते रहते हैं ॥१००॥ उनके आगे अनुदिश नामके नौ स्तूप सुशोभित हैं जिनमें प्राणी नौ अनुदिशोंको प्रत्यक्ष देखते हैं ॥१०१॥ आगे चलकर जो चारों दिशाओंमें विजय आदि विमानोंसे सुशोभित हैं ऐसे समस्त प्रयोजनोंको सिद्ध करनेवाले सर्वार्थसिद्धि नामके स्तूप हैं ॥१०२॥ वनके आगे स्फटिकके समान निर्मल सिद्धस्तूप प्रकाशमान हैं जिनमें सिद्धोंके स्वरूपको प्रकट करनेवाली दर्पणोंकी छाया दिखाई देती है ॥१०३॥ उनके आगे देदीप्यमान शिखरोंसे युक्त भव्यकूट नामके स्तूप रहते हैं जिन्हें अभव्य जीव नहीं देख पाते क्योंकि उनके प्रभावसे उनके नेत्र अन्धे हो जाते हैं ॥१०४॥ उनके आगे प्रमोह नामके स्तूप हैं जिन्हें देखकर लोग अत्यधिक विभ्रममें पड़ जाते हैं और चिरकालसे अभ्यस्त गृहीत वस्तुको भी भूल जाते हैं ॥१०५॥ आगे चलकर प्रबोध नामके अन्य स्तूप हैं जिन्हें देखकर लोग प्रबोधको प्राप्त हो जाते हैं और तत्त्वको प्राप्त कर साधु हो निश्चित हो संसारसे छूट जाते हैं ॥१०६॥ इस प्रकार जिनकी वेदिकाएँ एक दूसरेसे सटी हुई हैं तथा जो तोरणोंसे समुद्भासित हैं ऐसे अत्यन्त ऊँचे दशस्तूप क्रम-क्रमसे परिधि तक सुशोभित हैं ॥१०७॥ इसके आगे एक कोट रहता है जो एक कोश चौड़ा तथा एक धनुष ऊँचा होता है

१. नवानुदिश अध्यक्षं ध., म. । नवानुदिशनामानि ङ. । नवानामनुदिशानां समाहारो नवानुदिश ग. । २. यत्र पश्यन्ति प्राणिनः इति पाठः सुष्ठु प्रतिभाति । ३. चतुर्दिक्षु ग., ख. । ४. सिद्धिदाः म. । ५. यथाग्राह्यं ङ. । ६. मुच्यते म. । ७. राजन्त्याः परिधेः म. । ८. विस्तारं म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाह्याः सप्तदश न्यस्ता गव्यूतैर्वृतमेकतः । कर्णिकाथ तदन्तस्था ज्ञेया सार्धत्रियोजना ॥१०९॥
परिवेष इवार्कं यः परिधिः[1] परिवेष्टते[2] । चित्ररत्नमयोऽन्तस्थं भासुरं परिमण्डलम् ॥११०॥
निर्मितस्यानन्तरं भर्तुर्व्रजस्योत्पद्यते पुरम् । दिव्यं तत्र प्रभावो हि मनसा ज्ञायिनां महान्[3] ॥१११॥
त्रिलोकसारं श्रीकान्तं श्रीप्रभं शिवमन्दिरम् । त्रिलोकीलोककान्तिश्री श्रीपुरं त्रिदशप्रियम् ॥११२॥
लोकालोकप्रकाशा द्यौरुदयोऽभ्युदयावहम् । क्षेमं क्षेमपुरं पुण्यं पुण्याहं पुष्पकास्पदम् ॥११३॥
भुवः स्वर्भूस्तपः सत्यं लोकालोकोत्तमं रुचिः । रुचावहमुदारर्धिं दानधर्मपुरं परम् ॥११४॥
श्रेयः श्रेयस्करस्तीर्थं तीर्थावहमुदग्रहम् । विशालचित्रकूटं धीश्रीधरं च त्रिविष्टपम् ॥११५॥
मङ्गलोत्तमकल्याणशरणादिपुराणि पूः । जयापराजितादित्यजयन्त्यचलसंपुरम् ॥११६॥
विजयं तं जयन्ताभं विमलं विमलप्रभम् । कामभूर्गगनाभोगं कल्याणं कलिनाशनम् ॥११७॥
पवित्रं पञ्चकल्याणं पद्मावर्तः प्रभोदयः । परार्ध्यमण्डिता वासौ महेन्द्रं महिमालयम् ॥११८॥
स्वायम्भुवं सुधाधात्री शुद्धावासः सुखावती । विरजा वीतशोकार्थविमला विनयावनिः ॥११९॥
भूतधात्री पुराकल्पः पुराणं पुण्यसंचयः । [4]ऋषीवती यमवती रत्नवत्याजरामरा ॥१२०॥
प्रतिष्ठा ब्रह्मनिष्ठोर्वी केतुमालिन्यरिन्दमम्[5] । मनोरमं तमःपारमरत्नीरत्नसंचयम् ॥१२१॥
अयोध्यामृतधानीति समं ब्रह्मपुराख्यया[6] । जाताह्वयमुदात्तार्थं तत्कल्पज्ञैरुदीर्यते ॥१२२॥
अथ त्रैलोक्यसारैकसंदोहमयमद्भुतम् । भाति भर्तृप्रभावोत्थं तत्पदं बहुविस्मयम् ॥१२३॥
कृतावधानस्तत्सिद्धिं भूयः स्रष्टापि चिन्तयन् । ध्रुवं मोमुह्यतेऽन्यस्य तथा चेत्तत्र का कथा ॥१२४॥

और उसके मण्डलकी भूमिको बचाकर मनुष्य तथा देव प्रदक्षिणा देते रहते हैं ॥१०८॥ इस परिधिमें बाहरकी ओर सत्रह कर्णिकाएँ हैं जो एक-एक कोश विस्तृत हैं और भीतरकी ओर एक कर्णिका है जो साढ़े तीन योजन विस्तारवाली है (?) ॥१०९॥ जिस प्रकार परिवेश सूर्यको घेरता है उसी प्रकार चित्र-विचित्र रत्नोंसे निर्मित यह परिधि भीतरके देदीप्यमान मण्डलको घेरे रहती है ॥११०॥ वहाँ गणधर देवकी इच्छा करते ही एक दिव्य पुर बन जाता है सो ठीक ही है क्योंकि मनःपर्यय ज्ञानके धारक जीवोंका प्रभाव महान् होता है ॥१११॥ वह पुर कल्पके ज्ञाता मनुष्यके द्वारा त्रिलोकसार, श्रीकान्त, श्रीप्रभु, शिवमन्दिर, त्रिलोकीश्री, लोककान्तिश्री, श्रीपुर, त्रिदशप्रिय, लोकालोकप्रकाशाद्यौ, उदय, अभ्युदयावह, क्षेम, क्षेमपुर, पुण्य, पुण्याह, पुष्पकास्पद, भुवःस्वर्भूः, तपःसत्य, लोकालोकोत्तम, रुचि, रुचावह, उदारर्द्धि, दानधर्मपुर, श्रेय, श्रेयस्कर, तीर्थं, तीर्थावह, उदग्रह, विशाल, चित्रकूट, धीश्रीधर, त्रिविष्टप, मंगलपुर, उत्तमपुर, कल्याणपुर, शरणपुर, जयपुरी, अपराजितापुरी, आदित्यपुरी, जयन्तीपुरी, अचलसंपुर, विजयन्त, विमल, विमलप्रभ, कामभू, गगनाभोग, कल्याण, कलिनाशन, पवित्र, पंचकल्याण, पद्मावर्त, प्रभोदय, परार्ध्य, मण्डितावास, महेन्द्र, महिमालय, स्वायम्भुव, सुधाधात्री, शुद्धावास, सुखावती, विरजा, वीतशोका, अर्थविमला, विनयावनि, भूतधात्री, पुराकल्प, पुराण, पुण्यसंचय, ऋषीवती, यमवती, रत्नवती, अजरामरा, प्रतिष्ठा, ब्रह्मनिष्ठोर्वी, केतुमालिनी, अरिन्दम, मनोरम, तमःपार, अरत्नी, रत्नसंचय, अयोध्या, अमृतधानी, ब्रह्मपुर, जाताह्वय और उदात्तार्थ नामसे कहा जाता है ॥११२–१२२॥ भगवान्के प्रभावसे उत्पन्न वह नगर, तीन लोकके समस्त श्रेष्ठ पदार्थोंके समूहसे युक्त, आश्चर्यस्वरूप एवं बहुत भारी आश्चर्य उत्पन्न करता हुआ सुशोभित होता है ॥१२३॥ उसका बनानेवाला कुबेर भी एकाग्रचित्त हो उसके बनानेका पुनः

---

१. परिधेः म., ङ. । २. परिवेष्ठयते म., परिविष्यते ङ. । ३. महत् म. । ४. रिषीवती क., ङ. । ५. केतुमालिन्यनिन्दितम् म. । ६. ब्रह्मपराख्यया क., ङ. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दशषोडशभिस्तस्य सुवर्णमणिजातिभिः । यथास्थानं स्वयं चित्रं निर्माणमभिराजते ॥१२५॥
तलं तिस्रो जगत्यश्च तत्र क्रोशार्धविस्तृताः । उपर्युपरि तत्र स्यात्परिहाणिश्च तावती ॥१२६॥
तासां वज्रमयी सिद्धिश्चित्ररत्नोज्ज्वला भुवाम् । यत्प्रभा शक्रचापानि तनोति परितः परा ॥१२७॥
उरोदघ्ना वरण्डास्ते भूषयन्ति ज्वलत्प्रभाः । जगतीर्यत्र राजन्ते कदल्यो धनुरन्तराः ॥१२८॥
त्रिंशदक्षमितैः[1] कूटैर्द्विगुणायतकोष्ठकैः । द्विगुणैर्भूयते तासु दशदण्डान्तरास्थितैः ॥१२९॥
द्वौ द्वौ दौवारिकावासावभितः स्तस्तदन्तिके । यत्र वैश्रवणस्यार्थः प्रतिद्वारं प्रकाशते ॥१३०॥
कूटानां सप्तशत्यासु द्वासप्तत्यधिका क्रमात् । चत्वारिंशदष्टयुक्ता कोष्ठकानां च सा गणिः ॥१३१॥
द्वाविंशतिशतान्याहुर्विंशानि जगतीत्रये । कूटसंख्या समासेन कोष्ठकानां च तावती ॥१३२॥
एकाष्टलोकभीमङ्गा[2]नवैकद्विचतुर्भियः[3] । षडस्तिखैकमङ्गाः[4] स्युर्जगतीकेतवः क्रमात् ॥१३३॥
वियद्भूयोनिभीमङ्गश्रेणैयः[5] पूर्वकूटगाः । भूषण्मण्डगलव्योमखोत्क्रमा[6] मध्यकूटगाः ॥१३४॥
खाष्टाष्टचतुरस्त्यक्षीण्यन्तकूटगता ध्वजाः । कोष्ठगास्तत्र तत्रामी माव्यन्ते ते द्विसंगुणाः ॥१३५॥
लक्षा षड्विंशतिर्ज्ञेयाः सहस्राणां च विंशतिः । षट्पञ्चाशद्विशत्यामा[7] तत्सर्वकदलीगणः ॥१३६॥
तत्र [8]सस्वेददेशेषु मण्डपा रत्नमण्डिताः । द्व्येकगव्यूतविस्तारसमुत्सेधाश्चकासति ॥१३७॥
तदर्धव्यासनिर्माणशिखरान्तरवासिनः । सन्ति सन्मङ्गलोद्भासि मूर्तयोर्चा जिनेश्वराः ॥१३८॥

विचार करे तो वह भी नियमसे भूल कर जायेगा फिर अन्य मनुष्यकी बात ही क्या है ? ॥१२४॥ उस नगरका निर्माण यथास्थान छब्बीस प्रकारके सुवर्ण और मणियोंसे चित्र-विचित्र है अतः अत्यधिक सुशोभित होता है ॥१२५॥ उसके तलभागमें तीन जगती रहती हैं जो आधा-आधा कोश चौड़ी होती हैं और ऊपर-ऊपर उन जगतियोंमें उतनी ही हानि होती जाती है ॥१२६॥ उन जगतियोंकी रचना वज्रमयी एवं चित्र-विचित्र रत्नोंसे उज्ज्वल है और उनकी श्रेष्ठ कान्ति चारों ओर इन्द्रधनुषोंको विस्तृत करती रहती है ॥१२७॥ छाती प्रमाण ऊँचे तथा देदीप्यमान प्रभाके धारक बरण्डे उन जगतियोंको सुशोभित करते रहते हैं तथा उनपर एक धनुषके अन्तरसे स्थित सुशोभित पताकाएँ हैं ॥१२८॥ उन जगतियोंमें तीस-तीस वितस्तियोंके कूट और उनसे द्विगुण आयामवाले दश-दश धनुषोंके अन्तरसे स्थित कोष्ठक रहते हैं ॥१२९॥ उन जगतियोंके समीप दोनों ओर द्वारपालोंके दो-दो आवासस्थान हैं जिनमें प्रत्येक द्वारपर कुबेरकी अपूर्व धन-राशि प्रकाशमान है ॥१३०॥ प्रत्येक जगतीके कूटोंकी संख्या सात सौ बहत्तर है तथा कोष्ठकोंकी संख्या अड़तालीस है ॥१३१॥ संक्षेपसे तीनों जगतियोंकी कूटसंख्या बाईस सौ बीस है और कोष्ठों-की संख्या उसी प्रमाणसे है ॥१३२॥ प्रथम जगतीमें बत्तीस हजार तीन सौ इक्यासी, दूसरीमें चौबीस हजार दो सौ उन्नीस और तीसरीमें इकतीस हजार छप्पन ध्वजाएँ रहती हैं ॥१३३॥ पूर्व कूटोंमें दो लाख बत्तीस हजार चार सौ सत्तर, मध्यम कूटोंमें सात लाख इकसठ हजार एक सौ, और अन्तिम कूटोंमें दो लाख चौवन हजार आठ सौ अस्सी और कोष्ठकोंमें दूनी-दूनी हैं ॥१३४–१३५॥ इस प्रकार समस्त ध्वजाओंकी संख्या छब्बीस लाख बीस हजार दो सौ छप्पन है ॥१३६॥ वहाँ सस्वेद—जलसिक्त प्रदेशोंमें रत्नोंसे मण्डित अनेक मण्डप हैं जो दो कोस चौड़े और एक कोस ऊँचे हैं ॥१३७॥ जिनकी रचना मण्डपोंसे आधी चौड़ी है, ऐसे शिखरोंके मध्य भागमें

१. वितस्ति (ङ. टि.) । २. ३२३८१ । ३. २४२१९ । ४. ३१०५६ । ५. २३२४७० । ६. ७६११०० । ७. २५४८८० । भूपदेन सप्त, षट्पदेन षट्, मण्डः पिच्छवाची तेन एकः, गलः कण्ठवाची तेन एकः, व्योमख-पदाभ्यां शून्यद्वयम्, यद्यपि सर्वत्र अङ्कानां वामतो गतिरिति नियमः तथापि अत्र उत्क्रमशब्देन उपरि उल्लेखः तेन पूर्वोक्ता संख्या निःसरति । ८. अमा—सह । ९. संस्वेददेशेषु म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्रस्था[1] अपि तद्देशाद्विनिष्क्रम्य नमस्यमी । यथोपदिष्टा दृश्यन्ते संमुखीभूय पश्यताम् ॥१३९॥
पीठानि त्रीणि भास्वन्ति चतुर्दिक्षु भवन्ति तु । चत्वारि च सहस्राणि धर्मचक्राणि पूर्वके ॥१४०॥
द्वितीये तु महापीठे शिखिहंसध्वजेतरे । अष्टौ तिष्ठन्ति दिग्भागान्भासयन्तो[2] महाध्वजाः ॥१४१॥
अग्रे श्रीमण्डपोद्भासी[3] प्रासादो बहुमङ्गलः । गन्धकुट्यभिधानः स्यात्तत्र सिंहासनं विभोः ॥१४२॥
तत्रासीनं जिनाधीशं नृसुरासुरकोटयः । तुष्टुवुस्तुष्टचित्तास्ता मकुटन्यस्तपाणयः ॥१४३॥
विजयस्व महादेव ! विजयस्व महेश्वर । विजयस्व महाबाहो ! विजयस्व महेक्षण ॥१४४॥
इत्यादि[4]स्तुतिकोटीनामन्ते प्रव्रज्य तत्क्षणात् । गणिनामग्रणीर्जातो वरदत्तो गणाधिपः ॥१४५॥
षट्सहस्रनृपस्त्रीभिः सह राजीमती तदा । प्रव्रज्याग्रेसरी जाता सार्यिकाणां गणस्य तु ॥१४६॥
यतिवर्गादयः सर्वे गणा द्वादश ते ततः । प्रणिपत्य यथास्थानं तं प्रभुं समुपासते ॥१४७॥
परिपर्यध्वनस्तस्मिन्पदेषु द्वादशस्वमी । पूर्वदक्षिणभागादिष्वासतेऽग्रप्रदक्षिणम् ॥१४८॥
तत्र प्रत्यक्षधर्माणो धर्मेशांशा इवामलाः । [5]भासन्ते वरदस्याग्रे वरदत्तादियोगिनः ॥१४९॥
मर्तुर्या मूतयो बाह्यास्तदन्तर्भूतितः प्रति । राजन्ते कल्पवासिन्यो युक्ता[6]स्तन्मूर्तयो यथा ॥१५०॥
ह्रीदयाक्षान्तिशान्त्यादिगुणालंकृतसंपदः । समेत्योपविशन्त्यार्या [7]सद्धर्मतनया यथा ॥१५१॥

विराजमान जिनेन्द्र भगवान्‌की प्रतिमाएँ हैं जो उत्तम मंगल द्रव्योंसे सुशोभित हैं ॥१३८॥ यद्यपि ये प्रतिमाएँ अपने-अपने स्थानपर स्थित हैं तथापि सामने खड़े होकर देखनेवालोंको ऐसी दिखाई देती हैं मानो उन स्थानोंसे निकलकर आकाशमें ही विद्यमान हों ॥१३९॥

वहाँ चारों दिशाओंमें देदीप्यमान तीन पीठ होते हैं उनमें पहले पीठपर चार हजार धर्मचक्र सुशोभित हैं ॥१४०॥ दूसरी पीठपर मयूर और हंसोंकी ध्वजाओंसे भिन्न आठ प्रकारकी महाध्वजाएँ दिशाओंको सुशोभित करती हुई विद्यमान हैं ॥१४१॥ तीसरी पीठपर श्रीमण्डपको सुशोभित करनेवाला अनेक मंगलद्रव्योंसे सहित गन्धकुटी नामका प्रासाद है उसमें भगवान्‌का सिंहासन रहता है ॥१४२॥ उस सिंहासनपर विराजमान जिनेन्द्रदेवकी सन्तुष्ट चित्तके धारक मनुष्य, सुर और असुरोंके झुण्डके झुण्ड मुकुटोंपर हाथ लगाकर स्तुति करते थे ॥१४३॥ वे कह रहे थे कि हे महादेव ! आपकी जय हो। हे महेश्वर ! आप जयवन्त हों, हे महाबाहो ! आप विजयी हों, हे विशालनेत्र ! जयवन्त हों ॥१४४॥ इत्यादि करोड़ों स्तवनोंके बाद वरदत्तने तत्काल दीक्षा ले ली और गणोंके स्वामी प्रथम गणधर हो गये ॥१४५॥ उसी समय छह हजार रानियोंके साथ दीक्षा लेकर राजीमती आर्यिकाओंके समूहकी प्रधान बन गयी ॥१४६॥ मुनिसमूहको आदि लेकर बारह गण भगवान् नेमिनाथको प्रणाम कर यथास्थान उनकी उपासना करते थे ॥१४७॥

मार्गके चारों ओर घेरकर बारह सभाएँ उनकी पूर्व, दक्षिण आदि दिशाओंमें मुनिसमूहको आदि लेकर बारह गण विराजमान थे ॥१४८॥ वहाँ उत्कृष्ट वरको प्रदान करनेवाले भगवान् नेमिनाथके आगे वरदत्तको आदि लेकर अनेक मुनि सुशोभित थे जो धर्मके स्वरूपको प्रत्यक्ष करनेवाले एवं अत्यन्त निर्मल धर्मेश्वरके अंशके समान जान पड़ते थे ॥१४९॥ उनके आगे कल्पवासिनी देवियाँ सुशोभित थीं जो ऐसी जान पड़ती थीं मानो भगवान्‌की बाह्याभ्यन्तर विभूतियाँ ही उनका रूप रखकर स्थित हों ॥१५०॥ उनके बाद तीसरी सभामें लज्जा, दया, क्षमा, शान्ति आदि गुणरूपी सम्पत्तिसे सुशोभित आर्यिकाएँ विराजमान थीं जो समीचीन धर्मकी पुत्रियोंके समान

---

१. तत्रस्थापि । २. दिग्भागा म. । ३. मण्डपोद्भासी म., ङ. । ४. श्रुति म. । ५. भासते म. । ६. व्यक्तं तन्मूर्तयो यथा म., ङ. । ७. तद्धर्म ख. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]द्योतिर्मण्डलवासिन्यो भर्तृज्योतिष्टमप्रभाः । अभिनन्द्यतदुद्भूतविभाभासश्चकासति ॥१५२॥
वनश्रियो यथा मूर्ता वानव्यन्तरयोषितः । वन्यपुष्पलतानम्रा नमन्ति वरदक्रमम् ॥१५३॥
भवनालयवासिन्यो भगवत्यतिभक्तयः[2] । स्वर्भूर्भुवो यथा लक्ष्म्यः समया तं[3] समासते ॥१५४॥
भावनाः पापबन्धस्य छेत्तारं निकषा सते । बिभ्यतः स्वभवाद्भास्वत्फणारत्नविभारुणाः ॥१५५॥
व्यन्तराः सुन्दराकारा मन्दरस्येव[4] कल्पकाः । भवन्ति भर्तुराकल्पाः सुमनोमालभारिणः ॥१५६॥
परमेश्वरभामग्नस्वप्रभा भास्करादयः । ज्योतिर्गणाः प्रभावृद्धिं प्रार्थयन्ते तमानताः ॥१५७॥
सौन्दर्येशाः[5] सुखात्मानो भागा भर्तुरिवोद्यताः । [6]स्वर्भुवः प्रतिभासन्ते सहस्राक्षपुरस्सराः ॥१५८॥
दानपूजादिधर्मांशा देहवन्तो यथामलाः । वरदं वरिवस्यन्ति नृपाश्चक्रधरादयः ॥१५९॥
अविद्यावैरमायादिदोषापायाप्ततद्गुणाः । हरीभाद्या विभान्त्यन्ये तिर्यंचस्तादृशो यथा ॥१६०॥
एवं द्वादशवर्गीयैर्द्वादशाङ्गगुणोपमैः । परीत्योक्तक्रमादीशो गणैरेभिरुपासितः ॥१६१॥
पारमेष्ठ्यमनन्यस्थं ख्यापयन्नासनश्रिया । चामरैरमरोद्भूतैः क्रमस्थैः सुमहेशिताम् ॥१६२॥

जान पड़ती थीं ॥१५१॥ चौथी सभामें प्रशंसनीय एवं अपने-आपसे निकलनेवाली प्रभासे सुशोभित ज्योतिषी देवोंकी स्त्रियाँ बैठी थीं जो भगवान्‌की कान्तिके समान जान पड़ती थीं ॥१५२॥ पाँचवीं सभामें मूर्तिधारिणी वनकी लक्ष्मीके समान सुन्दर वनवासी व्यन्तर देवोंकी स्त्रियाँ स्थित थीं तथा वे वनकी पुष्पलताओंके समान नम्रीभूत हो भगवान्‌के चरणोंको नमस्कार कर रही थीं ॥१५३॥ छठी सभामें भगवान्‌की अत्यधिक भक्तिसे युक्त भवनवासी देवोंकी अंगनाएँ स्थित थीं जो ऐसी जान पड़ती थीं मानो स्वर्ग, भूमि और अधोलोककी लक्ष्मियाँ ही भगवान्‌के समीप आकर बैठी हैं ॥१५४॥ सातवीं सभामें फणाके समान देदीप्यमान रत्नोंकी कान्तिसे लाल-लाल दिखनेवाले भवनवासी देव, अपने संसारसे भयभीत होते हुए, पापबन्धका छेदन करनेवाले भगवान्‌के समीप विद्यमान थे ॥१५५॥ आठवीं सभामें सुन्दर आकारके धारक व्यन्तर देव बैठे थे। वे भगवान्‌के आभूषणस्वरूप थे, तथा फूलोंकी मालाओंको धारण करनेवाले मन्दरगिरिके समान जान पड़ते थे ॥१५६॥ नवमी सभामें, जिनकी अपनी प्रभा भगवान्‌की प्रभामें निमग्न हो गयी थी ऐसे सूर्य आदि ज्योतिषी देवोंके समूह नम्रीभूत हो भगवान्‌से अपनी प्रभावृद्धिकी प्रार्थना कर रहे थे ॥१५७॥ दसवीं सभामें सौन्दर्यके स्वामी, सुखी एवं ऊपर उठे हुए भगवान्‌के अंशोंके समान इन्द्र आदि कल्पवासी देव सुशोभित हो रहे थे ॥१५८॥ ग्यारहवीं सभामें चक्रवर्ती आदि राजा भगवान्‌की उपासना करते थे और वे ऐसे जान पड़ते थे मानो शरीरधारी दान-पूजा आदि धर्मोंके निर्मल अंश ही हो ॥१५९॥ तथा बारहवीं सभामें, जिन्हें अविद्या, वैर, माया आदि दोषोंके नष्ट हो जानेसे विद्या, क्षमा आदि तत्तद्गुण प्राप्त हुए थे ऐसे सिंह, हाथी आदि तिर्यंच विद्यमान थे और वे ऐसे जान पड़ते थे मानो उन्हींके समान दूसरे तिर्यंच हों। **भावार्थ**—तिर्यंच अपनी स्वाभाविक कुटिलताको छोड़कर तदाकार होनेपर भी ऐसे लगते थे जैसे ये वे न हों दूसरे ही हों ॥१६०॥ इस प्रकार द्वादशांगके गुणोंके समान बारह सभाओं-सम्बन्धी बारह गण, प्रदक्षिणा रूपसे भगवान्‌की उपासना करते थे ॥१६१॥

भगवान् नेमिनाथ, अपने सिंहासनकी शोभासे दूसरोंमें न पाये जानेवाले परमेष्ठीपनाको ख्यापित कर रहे थे। क्रमपूर्वक ढोरे जानेपर देवोपनीत चमरोंसे महेशिताको, तीन चन्द्रमाके

१. ज्योतिर्मण्डल–क. । २. भगवत्पतिभक्तयः म., भगवत्यविभक्तयः ङ. । ३. समयान्तं म., तं भगवतः समया समीपे 'अभितःपरितःसमयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि' इति द्वितीया । ४. मन्दरेस्येव म. । ५. सौन्दर्येण म. । ६. स्वर्गोत्पन्नाः कल्पवासिदेवाः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रिलोकाधीशितां छत्रत्रयेणेन्दुत्रयत्विषा । भामण्डलेन भाधिक्यं भवान्तरतमश्छिदा ॥१६३॥
सर्वर्तुकुसुमेनान्यसर्वशोकापहारिताम् । अशोकेनाभिपूज्यत्वं[1] सुमनोवृष्टिपूजया ॥१६४॥
सार्वत्वममयाधानघोषणेन जयश्रियाम् । नन्दिमङ्गलघोषेण साधुचित्ताभिनन्दिनम् ॥१६५॥
आत्माधीनाः प्रतीहाराः प्रातिहार्यगुणोद्भवैः । भूषितोऽष्टमहोदग्रप्रातिहार्यैर्महेश्वरः ॥१६६॥
लोकानां भूतये भूतिमात्मीयां सकलां दधत् । सर्वलोकातिवर्तिन्या भासास्थामधिष्ठितः[2] ॥१६७॥
अयमास्ते समग्रात्मा स्वार्थकामाः[3] ससंभ्रमाः । एतैत नमतैशानमित्याह्वानं सघोषणम् ॥१६८॥
वर्तयन्ति सुरास्तस्मिन्मण्डले तदनु द्रुतम् । समन्तात्तत्समायान्ति भूतिभिर्नृसुरासुराः ॥१६९॥
तद्दृष्टिगोचरे मङ्क्षु वाहनेभ्योऽवतीर्यते । मानाङ्गणमथास्थाय पूर्वं साञ्जलिमौलिभिः ॥१७०॥
तत्र बाह्ये परित्यज्य वाहनादिपरिच्छदम् । विशिष्टकैर्ककुदैर्युक्ता[4] मानपीठं परीत्य ते ॥१७१॥
प्रादक्षिण्येन वन्दित्वा मानस्तम्भनमादितः[5] । उत्तमाः प्रविशत्यन्तरुत्तमाहितभक्तयः ॥१७२॥
पापशीला विकर्माणाः शूद्राः पाखण्डपण्डकाः[6] । विकलाङ्गेन्द्रियोद्भ्रान्ताः परियन्ति बहिस्ततः[7] ॥१७३॥
छत्रचामरभृङ्गाराद्यवहाय जयाजिरे । आप्तैरनुगताः कृत्वा विशन्त्यञ्जलिमीश्वराः ॥१७४॥

समान कान्तिको धारण करनेवाले छत्रत्रयसे तीन लोकके स्वामित्वको, संसारके आन्तरिक अन्धकारको नष्ट करनेवाले भामण्डलसे कान्तिकी अधिकताको, सब ऋतुओंके फूलोंसे युक्त अशोक वृक्षके द्वारा अन्य समस्त जीवोंके शोक दूर करनेकी सामर्थ्यको, पुष्पवृष्टिरूप पूजाके द्वारा पूज्यताको, अभयोत्पत्तिकी घोषणा करनेवाली दिव्यध्वनिसे जयलक्ष्मीको सर्वहितकारिताको और आनन्ददायी मंगलमय वादित्रोंके नादसे साधुजनोंके चित्तको आनन्दित करनेकी सामर्थ्यको प्रकट कर रहे थे ॥१६२-१६५॥ जो आत्माके आधीन हो उन्हें प्रतीहार कहते हैं। इस प्रकार आत्माधीन गुणोंसे उत्पन्न अष्ट महाप्रातिहार्योंसे भगवान् नेमिनाथ सुशोभित हो रहे थे ॥१६६॥ आत्मोत्थ समस्त विभूतिको धारण करनेवाले भगवान् सर्वलोकातिवर्ती दीप्तिसे लोगोंका कल्याण करनेके लिए समवसरणमें विराजमान हुए ॥१६७॥ उस समय देव लोग घोषणाके साथ यह कहकर जीवोंका आह्वान कर रहे थे कि हे आत्महितके इच्छुक भव्यजनो ! सम्पूर्ण विकसित आत्माको धारण करनेवाले केवली भगवान् यह विराजमान हैं, शीघ्रतासे यहाँ आओ-आओ और इन्हें नमस्कार करो ॥१६८॥ इस प्रकार जब देवोंने आह्वान किया तब शीघ्र ही मनुष्य, देव और असुर वैभवके साथ सब ओरसे समवसरणमें आने लगे ॥१६९॥

समवसरणके दृष्टिगोचर होते ही वे मानांगणमें खड़े हो सबसे पहले हाथ जोड़ मस्तकसे लगाकर वाहनोंसे नीचे उतरते हैं ॥१७०॥ तदनन्तर वाहन आदि परिग्रहको बाहर छोड़कर विशिष्ट राज्यचिह्नोंसे युक्त हो मानपीठकी प्रदक्षिणा देते हैं ॥१७१॥ प्रदक्षिणाके बाद सबसे पहले मानस्तम्भको नमस्कार करते हैं तदनन्तर हृदयमें उत्तम भक्तिको धारण करते हुए उत्तम पुरुष भीतर प्रवेश करते हैं ॥१७२॥ और पापी, विरुद्ध कार्य करनेवाले, शूद्र, पाखण्डी, नपुंसक, विकलांग, विकलेन्द्रिय तथा भ्रान्त चित्तके धारक मनुष्य बाहर ही प्रदक्षिणा देते रहते हैं ॥१७३॥ सुरेन्द्र, असुरेन्द्र तथा नरेन्द्र आदि उत्तम पुरुष छत्र, चमर और भृंगार आदिको जयांगणमें छोड़-

१. पूज्यन्ते म. । २. अधिष्ठितं म. । ३. सार्थकामाः म. । ४. विशिष्टकाकुदै—म. 'स्त्री ककुत् ककुदोऽप्यस्त्री वृषाङ्गे राज्यलक्ष्मणि' इति विश्वलोचनः । ५. मानस्तम्भमनादितः म. । ६. नपुंसकाः (ङ. टि.) पाण्डवाः म., ग. । ७ मिच्छाइट्ठि अभव्वा तेसुमसण्णी ण होंति कहआइं । तह य अणज्झवसाया संदिद्धा विविहविवरीदा ॥९३२॥ त्रैलोक्यप्रज्ञप्तौ चतुर्थ अधिकारः । मिथ्यादृष्टिरभव्योऽसंज्ञी जीवोऽत्र विद्यते नैव । यश्चानध्यवसायो यः सन्दिग्धो विपर्यस्तः ॥५८॥—समवसरणस्तोत्रे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रविश्य विधिवद्भक्त्या प्रणम्य मणिमौलयः । चक्रपीठं समारुह्य परियन्ति त्रिरीश्वरम् ॥१७५॥
पूजयन्तो यथाकामं स्वशक्तिविभवार्चनैः । सुरासुरनरेन्द्राद्याः नामादेशं नमन्ति च ॥१७६॥
ततोऽवतीर्य सोपानैः स्वैः स्वैः स्वाञ्जलिमौलयः । रोमाञ्चव्यक्तहर्षास्ते यथास्थानं समासते ॥१७७॥
अभ्यर्कं विकसद्भाति कमलाकरमण्डलम् । यथा तथा जिनाभ्यर्कं [1]तद्गणाम्बुजमण्डलम् ॥१७८॥
सा सेना सर्वतः सर्वा प्रविशन्ती तदास्पदम् । नालं पूरयितुं पूर्णा नदीव वरुणास्पदम् ॥१७९॥
निर्यदायद्विशत्पश्यत्परीयत्प्रीणदानमत् । स्तुवदीशं सतां वृन्दं सततं तत्र वर्तते ॥१८०॥
न मोहो न मयद्वेषौ नोत्कण्ठारतिमत्सराः । अस्यां भद्रप्रभावेण जम्भाजृम्भा न संसदि ॥१८१॥
निद्रातन्द्रापरिक्लेशक्षुत्पिपासासुखानि न । [2]नास्त्यन्यच्चाशिवं सर्वमहरेव च सर्वदा[3] ॥१८२॥

मालिनीच्छन्दः

समवसरणभूमौ बाह्यभूत्येकभूमौ स्थितवति मुनिनाथेऽत्रान्तरङ्गाङ्गिपूतौ[4] ।
पिबति तृषितनेत्रैर्द्वादशानां गणानां समितिरमृतरूपं जैनरूपाम्बुराशिम् ॥१८३॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ समवसरणवर्णनो नाम सप्तपञ्चाशः सर्गः ॥५७॥

□

आप्तजनोंके साथ हाथ जोड़कर भीतर प्रवेश करते हैं ॥१७४॥ मणिमय मुकुटोंको धारण करनेवाले वे सब, भीतर प्रवेश कर विधिपूर्वक प्रणाम करते हैं और चक्रपीठपर आरूढ़ होकर भगवान् जिनेन्द्रकी तीन बार प्रदक्षिणा देते हैं ॥१७५॥ इच्छानुसार अपनी शक्ति और विभवके अनुकूल सामग्रीसे पूजा करते हुए अपने नामका उल्लेख कर नमस्कार करते हैं ॥१७६॥ तदनन्तर जिन्होंने अपनी अंजलियाँ मस्तकसे लगा रखी हैं और रोमांचोंसे जिनका हर्ष प्रकट हो रहा है ऐसे वे सब अपनी-अपनी सीढ़ियोंसे नीचे उतरकर सभाओंमें यथास्थान बैठते हैं ॥१७७॥ जिस प्रकार सूर्यके सम्मुख खिला हुआ कमलोंका समूह सुशोभित होता है उसी प्रकार जिनेन्द्र भगवान्‌रूपी सूर्यके सम्मुख वह गणरूपी—द्वादश सभारूपी कमलोंका समूह सुशोभित हो रहा था ॥१७८॥ जिस प्रकार नदी समुद्रको भरनेमें समर्थ नहीं है उसी प्रकार सब ओरसे समवसरणमें प्रवेश करती हुई वह सेना उसे भरनेमें समर्थ नहीं थी ॥१७९॥ वहाँ बाहर निकलता, आता, प्रवेश करता, दर्शन करता, प्रदक्षिणा देता, सन्तुष्ट होता, भगवान्‌को प्रणाम करता और उनकी स्तुति करता हुआ सज्जनोंका समूह सदा विद्यमान रहता है ॥१८०॥ समवसरणके भीतर भगवान्‌के प्रभावसे न मोह रहता है, न राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं, न उत्कण्ठा, रति एवं मात्सर्यभाव रहते हैं, न अँगड़ाई और जमुहाई आती है, न नींद आती है, न तन्द्रा सताती है, न क्लेश होता है, न भूख लगती है, न प्यासका दुःख होता है और न सदा समस्त दिन कभी अन्य समस्त प्रकारका अमंगल ही होता है ॥१८१-१८२॥ बाह्य विभूतिके अद्वितीय स्थान समवसरण भूमिमें जब अन्तरंग आत्माकी पवित्रतासे युक्त भगवान् विराजमान होते हैं तब बारह सभाओंका समूह अपने तृषित नेत्रोंसे उनके अमृतरूप सौन्दर्य सागरका पान करता है ॥१८३॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंश पुराणमें समवशरणका वर्णन करनेवाला सत्तावनवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥५७॥

□

१. तद्गुणाम्बुज–म. । २. नास्त्यम्यर्चाशिवं म., नास्त्यन्यथा क. । ३. आतंकरोगमरणप्पुत्तीओ वेरकामबाधाओ । तण्हाक्षुहपीडाओ जिणमाहप्पेण ण हवंति ॥९३३॥ त्रै. प्र. । ४. गादिपूतौ म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अष्टपञ्चाशः सर्गः

एवं नित्योत्सवानन्तकल्याणैकास्पदे पदे । लोके धर्मं प्रशुश्रूषौ[1] कृताञ्जलिपुटे स्थिते ॥१॥
वदतां वरमानम्य[2] वरदत्तो गणाग्रणीः । हितं पप्रच्छ भव्यानां समस्तानां जिनेश्वरम् ॥२॥
तत्प्रश्नानन्तरं धातुश्चतुर्मुखविनिर्गता[3] । चतुर्मुखफला सार्था चतुर्वर्णाश्रमाश्रया ॥३॥
चतुरस्रानुयोगानां चतुर्णामेकमातृका । चतुर्विधकथावृत्तिश्चतुर्गतिनिवारिणी ॥४॥
एकद्वित्रिचतुःपञ्चषट्सप्ताष्टनवास्पदा । अपर्यायापि सत्तेवानन्तपर्यायभाविनी ॥५॥
[4]अहितं शातयन्ती सा रोचयन्ती हितं[5] सदा । स्थापयन्ती च तत्पात्रे धारयन्ती यथायथम् ॥६॥
वारयन्त्यशुभादाशु पूरयन्ती शुभं परम् । श्लथयन्त्यर्जितं कर्म ग्लपयन्ती प्रभावतः ॥७॥
समन्ततः शिवस्थानाद्योजनाधिकमण्डले । अत्रैवात्रैव वृत्तेति तत्र तत्रास्ति तादृशी[6] ॥८॥

इस प्रकार नित्य उत्सव और अनन्त कल्याणोंके एक स्थानस्वरूप समवशरणमें जब धर्म सुननेके इच्छुक जीव हाथ जोड़कर बैठ गये तब वरदत्त गणधरने वक्ताओंमें श्रेष्ठ श्री नेमि जिनेन्द्रको नमस्कार कर समस्त भव्यजीवोंका हित पूछा। **भावार्थ**—हे भगवन्! समस्त जीवोंके लिए हितरूप क्या है, ऐसा प्रश्न किया ॥१-२॥ गणधरके उक्त प्रश्नके अनन्तर भगवान्की दिव्यध्वनि खिरने लगी। भगवान्की वह दिव्यध्वनि चारों दिशाओंमें दिखनेवाले चार मुखोंसे निकलती थी; चार पुरुषार्थरूप चार फलको देनेवाली थी, सार्थक थी, चार वर्ण और आश्रमोंको आश्रय देनेवाली थी, चारों ओर सुनाई पड़ती थी, चार अनुयोगोंकी एक माता थी, आक्षेपिणी, विक्षेपिणी, संवेजिनी और निर्वेदिनी इन चार कथाओंका वर्णन करनेवाली थी, चार गतियोंका निवारण करनेवाली थी। एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठ और नौका स्थान थी, अर्थात् सामान्य रूपसे एक जीवका वर्णन करनेवाली होनेसे एकका स्थान थी, श्रावक मुनिके भेदसे दो प्रकारके धर्मका अथवा चेतन-अचेतन और मूर्तिक-अमूर्तिकके भेदसे दो द्रव्योंका निरूपक होनेसे दोका स्थान थी, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्-चारित्ररूपी रत्नत्रय अथवा चेतन, अचेतन और चेतनाचेतन द्रव्योंका वर्णन करनेवाली होनेसे तीनका स्थान थी, चार गति, चार कषाय अथवा मिथ्यात्वादि चार प्रत्ययोंका निरूपण करनेवाली होनेसे चारका स्थान थी, पाँच अस्तिकाय अथवा प्रमाद-सहित मिथ्यात्वादि पाँच प्रत्ययोंका वर्णन करनेवाली होनेसे पाँचका स्थान थी, छह द्रव्योंका वर्णन करनेवाली होनेसे छहका स्थान थी, सात तत्त्वोंकी निरूपक होनेसे सातका स्थान थी, आठ कर्मोंका निरूपण करनेवाली होनेसे आठका स्थान थी और सात तत्त्व तथा पुण्य-पाप इन नौ पदार्थोंका वर्णन करनेवाली होनेसे नौका स्थान थी। पर्याय-रहित होनेपर भी सत्ताके समान अनन्त पर्यायोंको उत्पन्न करनेवाली थी, अहितको नष्ट करनेवाली थी, सदा हितकी रुचि उत्पन्न करनेवाली थी, हितका स्थापन करनेवाली थी, पात्रमें यथायोग्य हितको अपने प्रभावसे धारण करनेवाली थी, अशुभसे शीघ्र हटानेवाली थी, उत्कृष्ट शुभको पूर्ण करनेवाली थी, अर्जित कर्मको शिथिल करनेवाली अथवा बिलकुल ही नष्ट करनेवाली थी। जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँसे चारों ओर एक योजनके घेरामें इतनी स्पष्ट सुनाई पड़ती थी जैसे यहीं उत्पन्न हो रही हो। वह दिव्य ध्वनि जैसी उत्पत्तिस्थानमें सुनाई पड़ती थी वैसी ही एक योजनके घेरामें सर्वत्र सुनाई पड़ती थी—उसमें हीनाधिकता नहीं मालूम होती थी, मधुर

१. प्रकर्षेण श्रोतुमिच्छौ। २. -मानत्य म., क., ग.। ३. विनिर्गते म.। ४. संसारः संसारकारणमहितम् (क. टि.)। ५. मोक्षो मोक्षकारणं हितम् ज.। ६. तादृशं क., ग., म.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मधुरस्निग्धगम्भीरदिव्योदात्तस्फुटाक्षरम् । वर्ततेऽनन्यवृत्तैका तत्र साध्वी सरस्वती ॥९॥
भावाभावद्वयाद्वैतभावबद्धा[1] जगत्स्थितिः । अहेतुर्दृश्यते तस्यामनाद्या पारिणामिकी ॥१०॥
अस्त्यात्मा परलोकोऽस्ति धर्माधर्मौ स्त एव च । तयोः कर्तास्ति भोक्तास्ति चास्ति नास्तीति यत्पदम् ॥११॥
स्वयं कर्म करोत्यात्मा स्वयं तत्फलमश्नुते । स्वयं भ्राम्यति संसारे स्वयं तस्माद्विमुच्यते ॥१२॥
अविद्यारागसंक्लिष्टो बम्भ्रमीति[2] भवार्णवे । विद्यावैराग्यशुद्धः सन् सिद्ध्यत्यविकलस्थितिः ॥१३॥
इत्याध्यात्मविशेषस्य दीपिका दीपिकेव सा । रूपादेः शमयत्याशु तमिस्रं तत्र सन्ततम् ॥१४॥
अनानात्मापि तद्वृत्तं नाना पात्रगुणाश्रयम् । सभायां दृश्यते नाना दिव्यमम्बु यथावनौ ॥१५॥
सावधानसभान्तस्थं ध्वान्तं सावरणं ध्वनिः । जैनोत्यर्कभिनद्दिव्यो विश्वात्मेत्यादिभासनः[3] ॥१६॥
भवपद्धतिपान्थस्य भव्यताशुद्धियोगिनः । देहिनः पुरुषार्थोऽत्र प्रेक्षितो मोक्षलक्षणः ॥१७॥
उपायस्तस्य मोक्षस्य ध्यानाध्यानैकहेतुतः[4] । प्राक्सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रितयात्मकः ॥१८॥
सम्यग्दर्शनमत्रेष्टं तत्त्वश्रद्धानमुज्ज्वलम् । व्यपोढसंशयाद्यन्तैर्निःशेषमलसङ्करम्[5] ॥१९॥
तच्च दर्शनमोहान्धक्षयोपशममिश्रजम् । क्षायिकाद्यं[6] त्रिधा द्वेधा निसर्गाधिगमत्वतः ॥२०॥

स्निग्ध, गम्भीर, दिव्य, उदात्त और स्पष्ट अक्षरोंसे युक्त थी, अनन्यरूप थी, एक थी और साध्वी–अतिशय निर्मल थी ॥३–९॥

भगवान्‌की उस दिव्यध्वनिमें जगत्‌की वह स्थिति दिख रही थी जो भाव और अभावके अद्वैत-भावसे बँधी हुई है अर्थात् द्रव्यार्थिक नयसे भावरूप और पर्यायार्थिक नयसे अभावरूप है, अहेतुक है—किसी कारणसे उत्पन्न नहीं है, अनादि है और पारिणामिकी है – स्वतः सिद्ध है ॥१०॥ आत्मा है, परलोक है, धर्म और अधर्म है, यह जीव उनका कर्ता है, भोक्ता है तथा संसारके सब पदार्थ अस्तिरूप और नास्तिरूप हैं, यह कथन भी उसी दिव्यध्वनिमें दिखाई देता था ॥११॥ यह जीव स्वयं कर्म करता है, स्वयं उसका फल भोगता है, स्वयं संसारमें घूमता है और स्वयं उससे मुक्त होता है ॥१२॥ अविद्या तथा रागसे संक्लिष्ट होता हुआ संसार-सागर-में बार-बार भ्रमण करता है और विद्या तथा वैराग्यसे शुद्ध होता हुआ पूर्णस्वभावमें स्थित हो सिद्ध हो जाता है ॥१३॥ इस अध्यात्म-विशेषको प्रकट करनेके लिए वह दीपिकाके समान थी तथा रूप आदि गुणोंके विषयमें जो अज्ञानान्धकार विस्तृत था उसे शीघ्र ही दूर कर रही थी ॥१४॥ जिस प्रकार आकाशसे बरसा पानी एकरूप होता है परन्तु पृथिवीपर पड़ते ही वह नाना रूप दिखाई देने लगता है, उसी प्रकार भगवान्‌की वह वाणी यद्यपि एकरूप थी तथापि सभामें पात्रके गुणोंके अनुसार वह नानारूप दिखाई दे रही थी ॥१५॥ संसारके जीवादि समस्त पदार्थोंको प्रकाशित करनेवाली भगवान्‌की वह दिव्यध्वनि सूर्यको पराजित करनेवाली थी तथा सावधान होकर बैठी हुई सभाके अन्तःकरणमें स्थित आवरण-सहित अज्ञानान्धकारको खण्ड-खण्ड कर रही थी ॥१६॥ भगवान् कह रहे थे कि संसारके मार्गका जो पथिक भव्यतारूपी शुद्धिसे युक्त होता है उसीके मोक्ष पुरुषार्थ देखा गया है। **भावार्थ**—मोक्षकी प्राप्ति भव्य जीवको ही होती है ॥१७॥ उस मोक्षका उपाय ध्यान और अध्ययन रूप एक हेतुसे प्राप्त होता है तथा सबसे पूर्व वह, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनके समुदायरूप है ॥१८॥ उनमें जीवादि सात तत्त्वोंका, निर्मल तथा शंका आदि समस्त अन्तरंग मलोंके सम्बन्धसे रहित श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन माना गया है ॥१९॥ वह सम्यग्दर्शन, दर्शनमोहरूपी अन्धकारके क्षय, उपशम तथा क्षयोपशमसे उत्पन्न होता है, क्षायिक आदिके भेदसे तीन प्रकारका है और निसर्गज तथा अधिगमजके भेद-

१. द्वैते भावबद्धा म. । २. अतिशयेन भूयो भूयो वा भ्रमतीति (क. टि.) । ३. भास्वनः म. । ४. हेतुनः म. । ५. संशयाद्यन्तनिःशेष–म. । ६. क्षायिकत्वं म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवाजीवास्रवा बन्धसंवरौ निर्जरा तथा । मोक्षश्च सप्त तत्त्वानि श्रद्धेयानि स्वलक्षणैः ॥२१॥
जीवस्य लक्षणं लक्ष्यमुपयोगोऽष्टधा स च । मतिश्रुतावधिज्ञानतद्विपर्ययपूर्वकः ॥२२॥
इच्छा द्वेषः प्रयत्नश्च सुखं दुःखं चिदात्मकम् । आत्मनो लिङ्गमेतेन लिङ्ग्यते चेतनो यतः ॥२३॥
न पृथिव्यादिभूतानां जीवः संस्थानमात्रकः । तदवस्थास्य कायस्य चैतन्यव्यभिचारिणः ॥२४॥
पिष्टकिण्वोदकाद्येषु मद्याङ्गेषु पृथग्भवेत् । शक्तेः लेशो मदं कर्तुं कायाङ्गेषु तु नास्ति सः ॥२५॥
चैतन्योत्पत्यभिव्यक्तो चतुर्भूतेभ्य इच्छताम् । तैलस्य सिकतादिभ्यो व्यक्त्युत्पत्ती न किं मते ॥२६॥
अनादिनिधनो जन्तुरेति गत्यन्तरादिह । याति गत्यन्तरं चातो निजकर्मवशो भवे[1] ॥२७॥
एतावानेव पुरुषो यावान्प्रत्यक्षगोचरः । इत्यादिरपसंवादः स्वपराहितवादिनाम् ॥२८॥
न संविन्मात्रमात्मा स्यात्संवित्तौ क्षणिकात्मनि । अनुसन्धानधीलोपे व्यवहारविलोपतः ॥२९॥
द्रव्यभूतः[3] स्वयं जीवो ज्ञाता द्रष्टास्ति कारकः । भोक्ताभोक्ता व्ययोत्पादध्रौव्यवान् गुणवान् सदा ॥३०॥
असंख्यातप्रदेशात्मा ससंहारविसर्पणः । स्वशरीरप्रमाणस्तु मुक्तवर्णादिविंशतिः ॥३१॥

से दो प्रकारका है ॥२०॥ जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व हैं; इनका अपने-अपने लक्षणोंसे श्रद्धान करना चाहिए ॥२१॥ जीवका लक्षण उपयोग है और वह उपयोग आठ प्रकारका है। उपयोगके आठ भेदोंमें मति, श्रुत और अवधि ये तीन, सम्यग्ज्ञान तथा मिथ्याज्ञान—दोनों रूप होते हैं ॥२२॥ इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख और दुःख ये सब चिदात्मक हैं ये ही जीवके लक्षण हैं; क्योंकि इनसे ही चैतन्यरूप जीवकी पहचान होती है ॥२३॥ पृथिवी आदि भूतोंकी आकृति मात्रको जीव नहीं कहते; क्योंकि वह तो इसके शरीरकी अवस्था है। शरीरका चैतन्यके साथ अनेकान्त है अर्थात् शरीर यहीं रहा आता है और चैतन्य दूर हो जाता है ॥२४॥ आटा, किण्व (मदिराका बीज) तथा पानी आदि मदिराके अंगोंमें मद उत्पन्न करने वाली शक्तिका अंश पृथक् होता है, परन्तु शरीरके अवयवोंमें चैतन्य शक्ति पृथक् नहीं होती। **भावार्थ**—आटा आदि मदिराके कारणोंको पृथक्-पृथक् कर देनेपर भी उनमें जिस प्रकार मादक शक्तिका कुछ अंश बना रहता है उस प्रकार शरीरके अंगोंको पृथक्-पृथक् करनेपर उनमें चैतन्य शक्तिका कुछ अंश नहीं रहता इससे सिद्ध होता है कि चैतन्य शरीरके अंगोंका धर्म नहीं है, किन्तु उनसे पृथक् द्रव्य है ॥२५॥ जो पृथिवी आदि चार भूतोंसे चैतन्यकी उत्पत्ति अथवा अभिव्यक्ति मानते हैं उनके मतमें बालू आदिसे तेलकी उत्पत्ति अथवा अभिव्यक्ति क्यों नहीं मान ली जाती है? **भावार्थ**—जिस प्रकार बालू आदिसे तेलकी उत्पत्ति और अभिव्यक्ति नहीं हो सकती उसी प्रकार पृथिवी आदि चार भूतोंसे चैतन्यकी उत्पत्ति और अभिव्यक्ति नहीं हो सकती ॥२६॥ यह जीव इस संसारमें अनादि निधन है, निजकर्मसे परवश हुआ यह यहाँ दूसरी गतिसे आता है और कर्मके परवश हुआ दूसरी गतिको जाता है ॥२७॥ जितना यह प्रत्यक्ष गोचर दिखाई देता है इतना ही जीव है—अतीत अनागत कालमें इसकी सन्तति नहीं चलती इत्यादि कथन निज-परका अहित करनेवाले जीवोंका ही विरुद्ध कथन है ॥२८॥ क्षण-क्षणमें जो संविद् (ज्ञान) उत्पन्न होता है उतना ही आत्मा है ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि संवित्तिको क्षणिक मान लेनेपर आगे-पीछेकी कड़ी जोड़नेवाली बुद्धिका लोप हो जायेगा और उसके लोप होनेपर लेने-देने तथा कर्ता-कर्म आदि व्यवहारका हो लोप हो जायेगा ॥२९॥ इससे सिद्ध होता है कि यह जीव स्वयं द्रव्यरूप है, ज्ञाता है, द्रष्टा है, कर्ता है, भोक्ता है, कर्मोंका नाश करनेवाला है, उत्पाद-व्ययरूप है, सदा गुणोंसे सहित है, असंख्यात प्रदेशी है, संकोच विस्तार

१. भ्रान्तो म.। २. भवेत् ङ., म.। ३. सत्यभूतः म.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्यामाककणमात्रो न न चाकाशाणुमात्रकः । नाङ्गुष्ठपर्वमात्रो वा न पञ्चशतयोजनः ॥३२॥
देहे देहे [1]सवृत्तित्वे प्रदेशैः सकलैः[2] सह । न स्वार्थं प्रतिपद्येत स्पर्शनं चक्षुरादिवत् ॥३३॥
परिमाणमहत्त्वेऽपि योजनेषु बहुष्वपि । [3]स्पर्शनं न समन्तः स्याच्चक्षुषेवार्थदर्शनम् ॥३४॥
तथा सति विरोधः स्याद्दृष्टेष्टाभ्यां पुमानयम् । देहमात्रोऽधिगन्तव्यः सर्वस्यानुभवात्तथा ॥३५॥
स गतीन्द्रियषट्काययोगवेदकषायतः । ज्ञानसंयमसम्यक्त्वलेश्यादर्शनसंज्ञिभिः ॥३६॥
भव्यत्वाहारपर्यन्तमार्गणाभिः स मृग्यते । चतुर्दशभिराख्यातो[4] गुणस्थानैश्च चेतनः ॥३७॥
प्रमाणनयनिक्षेपसत्संख्यादिकिमादिभिः । संसारी प्रतिपत्तव्यो मुक्तोऽपि निजसद्गुणैः ॥३८॥
[5]नयोऽनेकात्मनि द्रव्ये नियतैकात्मसंग्रहः । द्रव्यार्थिको यथार्थोऽन्यः पर्यायार्थिक एव च ॥३९॥
[6]ज्ञेयौ मूलनयावेतावन्योन्यापेक्षिणौ मतौ । सम्यग्दृष्टास्तयोर्भेदाः संगता नैगमादयः ॥४०॥
[7]नैगमः संग्रहश्चात्र व्यवहारर्जुसूत्रकौ । शब्दः समभिरूढाख्य एवंभूतश्च ते नयाः ॥४१॥

रूप है, अपने शरीर प्रमाण है और वर्णादि बीस गुणोंसे रहित है ॥३०–३१॥ न यह आत्मा सावाँके कणके बराबर है, न आकाशके बराबर है, न परमाणुके बराबर है, न अँगूठाके पोराके बराबर है और न पाँच सौ योजन प्रमाण है ॥३२॥ यदि आत्माको सावाँके कण, अंगुष्ठ-पर्व अथवा परमाणुके समान छोटा माना जायेगा तो आत्मा प्रत्येक शरीरमें उसके खण्ड-खण्ड रूप प्रदेशोंके साथ ही रह सकेगा, समस्त प्रदेशोंके साथ नहीं और इस दशामें जहाँ आत्मा न रहेगा वहाँकी स्पर्शन इन्द्रिय अपना कार्य नहीं कर सकेगी। जिस प्रकार चक्षुरादि इन्द्रियाँ शरीरके किसी निश्चित स्थानमें ही कार्य कर सकती हैं उसी प्रकार स्पर्शन इन्द्रिय भी जहाँ आत्मा होगा वहीं कार्य कर सकेगी सर्वत्र नहीं। इसी प्रकार आत्माका परिमाण यदि शरीरसे अधिक माना जायेगा तो अनेकों योजनों तक जहाँ कि शरीर नहीं है मात्र आत्माके प्रदेश हैं, वहाँ सब ओर क्या पदार्थका स्पर्शन होने लगेगा? और इस दशामें जिस प्रकार चक्षुके द्वारा योजनोंकी दूरी तक पदार्थोंका अवलोकन होता है उसी प्रकार योजनोंकी दूरी तक पदार्थका स्पर्शन भी होने लगेगा और ऐसा माननेपर प्रत्यक्ष तथा अनुमान दोनोंसे विरोध आता है इसलिए शरीरके प्रमाण ही आत्माको मानना चाहिए। सबका अनुभव भी इसी प्रकारका है ॥३३–३५॥ वह जीव गति, इन्द्रिय, छह काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, सम्यक्त्व, लेश्या, दर्शन, संज्ञित्व, भव्यत्व और आहार इन चौदह मार्गणाओंसे खोजा जाता है तथा मिथ्यादृष्टि आदि चौदह गुणस्थानोंसे उसका कथन किया गया है ॥३६–३७॥ प्रमाण, नय, निक्षेप, सत्, संख्या और निर्देश आदिसे संसारी जीवका तथा अनन्त ज्ञान आदि आत्मगुणोंसे मुक्त जीवका निश्चय करना चाहिए ॥३८॥ वस्तुके अनेक स्वरूप हैं उनमें-से किसी एक निश्चित स्वरूपको ग्रहण करनेवाला ज्ञान नय कहलाता है। इसके द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिकके भेदसे दो भेद हैं। इनमें द्रव्यार्थिक नय यथार्थ है और पर्यायार्थिक नय अयथार्थ है ॥३९॥ द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक ये ही दो मूल नय हैं तथा दोनों ही परस्पर सापेक्ष माने गये हैं। अच्छी तरह देखे गये नैगम, संग्रह आदि नय इन्हीं दोनों नयोंके भेद हैं ॥४०॥ नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द समभिरूढ और

१. देहे देहसवृत्तित्वे क. । २. शकलैः ङ., ख. । ३. स्पर्शनं न तस्य स्याच्चक्षु ङ., समं तस्य चक्षुषेवार्थ— ख., ग. । ४. राख्यातगुण–म., ङ., ग. । ५. सामान्यलक्षणं तावद्वस्तुन्यनेकान्तात्मन्यविरोधेन हेत्वर्पणात् साध्यविशेषस्य याथात्म्यप्रापण-प्रवण-प्रयोगो नयः । स द्वेधा द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिकश्चेति (स. स.) । ६. दो चेव मूलिमणया भणिया दव्वत्थपज्जयत्थगया । अण्णं असंखसंखा ते तब्भेया मुणेयव्वा ॥११॥—लघुनयचक्रसंग्रह । ७. नैगमसंग्रहव्यवहार्जुसूत्रशब्दसमभिरूढैवंभूता नयाः—त. सू. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]त्रयो द्रव्यार्थिकस्याद्या भेदाः सामान्यगोचराः । स्युः पर्यायार्थिकस्यान्ये विशेषविषया नयाः ॥४२॥
[2]अर्थसंकल्पमात्रस्य ग्राहको नैगमो नयः । उदाहरणमस्येष्टं प्रस्थौदनपुरस्सरम् ॥४३॥
[3]आक्रान्तभेदपर्यायमेकध्यमुपनीय यत् । समस्तग्रहणं तत्स्यात्सद्द्रव्यमिति संग्रहः ॥४४॥
[4]संग्रहाक्षिप्तसत्तादेरवहारो विशेषतः । व्यवहारो यतः सत्तां नयत्यन्तविशेषताम् ॥४५॥
[5]वक्रं भूतं भविष्यन्तं त्यक्त्वर्जुसूत्रपातवत् । वर्तमानार्थपर्यायं सूत्रयन्नृजुसूत्रकः ॥४६॥
[6]लिङ्गसाधनसंख्यानकालोपग्रहसङ्करम् । यथार्थशब्दनाच्छब्दो न [7]वष्टि ध्वनितन्त्रकः[8] ॥४७॥

एवंभूत ये सात नय हैं ॥४१॥ इनमें प्रारम्भके तीन नय द्रव्यार्थिक नयके भेद हैं और वे सामान्यको विषय करते हैं तथा अवशिष्ट चार नय पर्यायार्थिक नयके भेद हैं और वे विशेषको विषय करते हैं ॥४२॥ पदार्थके संकल्पमात्रको ग्रहण करनेवाला नय नैगम नय कहलाता है। प्रस्थ तथा ओदन आदि इसके स्पष्ट उदाहरण हैं। भावार्थ—जो नय अनिष्पन्न पदार्थके संकल्पमात्रको विषय करता है वह नैगम नय कहलाता है, जैसे कोई प्रस्थकी लकड़ी लेनेके लिए जा रहा है उससे कोई पूछता है कि कहाँ जा रहे हो, तो वह उत्तर देता है कि प्रस्थ लेने जा रहा हूँ। यद्यपि जंगलमें प्रस्थ नहीं मिलता है वहांसे लकड़ी लाकर प्रस्थ बनाया जाता है तथापि नैगम नय संकल्प मात्रका ग्राहक होनेसे ऐसा कह देता है कि प्रस्थ लेनेके लिए जा रहा हूँ। इसी प्रकार कोई ओदन—भात बनानेके लिए लकड़ी, पानी आदि सामग्री इकट्ठी कर रहा है उस समय कोई पूछता है कि क्या कर रहे हो? तो वह उत्तर देता है कि ओदन बना रहा हूँ। यद्यपि उस समय वह ओदन नहीं बना रहा है तथापि उसका संकल्प है इसलिए नैगम नय ऐसा कह देता है कि ओदन बना रहा हूँ ॥४३॥ अनेक भेद और पर्यायोंसे युक्त पदार्थको एकरूपता प्राप्त कराकर समस्त पदार्थका ग्रहण करना संग्रह नय है; जैसे सत् अथवा द्रव्य। भावार्थ—संसारके पदार्थ अनेक रूप हैं उन्हें एकरूपता प्राप्त कराकर सत् शब्दसे कहना। इसी प्रकार जीव, अजीव आदि अनेक भेदोंसे युक्त पदार्थोंको 'द्रव्य' इस सामान्य शब्दसे कहना यह संग्रह नय है ॥४४॥

संग्रह नयके विषयभूत सत्ता आदि पदार्थोंके विशेष रूपसे भेद करना व्यवहार नय है, क्योंकि व्यवहार नय सत्ताके भेद करता-करता उसे अन्तिम भेद तक ले जाता है। भावार्थ—जैसे संग्रह नयने जिस सत्को ग्रहण किया था व्यवहार नय कहता है कि वह सत्, द्रव्य और गुणके भेदसे दो प्रकारका है। अथवा संग्रह नयने जिस द्रव्यको विषय किया था व्यवहार नय कहता है कि उस द्रव्यके जीव और अजीवके भेदसे दो भेद हैं। इस प्रकार यह नय पदार्थमें वहाँ तक भेद करता जाता है जहाँ तक भेद करना सम्भव है ॥४५॥

पदार्थकी भूत-भविष्यत् पर्यायको वक्र और वर्तमान पर्यायको ऋजु कहते हैं। जो नय पदार्थकी भूत-भविष्यत्रूप वक्र पर्यायको छोड़कर सरल सूत्रपातके समान मात्र वर्तमान पर्यायको ग्रहण करता है वह ऋजुसूत्र नय कहलाता है। भावार्थ—इसके सूक्ष्म और स्थूलके भेदसे दो भेद हैं। जीवकी समय-समयमें होनेवाली पर्यायको ग्रहण करना सूक्ष्म ऋजुसूत्र नयका विषय है और देव, मनुष्य आदि बहुसमयव्यापी पर्यायको ग्रहण करना स्थूल ऋजुसूत्र नयका विषय है ॥४६॥ यौगिक अर्थका धारक होनेसे शब्द नय, लिंग, साधन—कारक, संख्या—वचन, काल और उपग्रह-

१. पढमतया दव्वत्थी पज्जयगाही य इयरजे भणिया। ते चदु अत्थपधाणा सद्दपधाणा हु तिण्णियरा ॥ न. च.। २. अनभिनिवृत्तार्थसंकल्पमात्रग्राही नैगमः। ३. स्वजात्यविरोधेनैकध्यमुपनीय पर्यायानाक्रान्तभेदानविशेषेण समस्तग्रहणसंग्रहः। ४. संग्रहनयाक्षिप्तानामर्थानां विधिपूर्वकमवहरणं व्यवहारः। ५. ऋजु प्रगुणं सूत्रयति तन्त्रयते इति ऋजुः। ६. लिङ्गसंख्या साधनादि—व्यभिचारनिवृत्तिपरः शब्दकम्। ७. आकाङ्क्षति 'वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः' प्रयोगः। वृष्टि—क., ङ., ग.। ८. शब्दशास्त्राधीनः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]शब्दभेदेऽर्थभेदार्थी व्यक्तपर्यायशब्दकः । नयः समभिरूढोऽर्थो नानासमभिरोहणात् ॥४८॥

पदके व्यभिचारको नहीं चाहता अर्थात् लिंग संख्या आदिके भेदसे होनेवाले दोषको वह सदा दूर करता है। वह व्याकरणशास्त्रके आधीन रहता है। भावार्थ—जैसे लिंगव्यभिचार—'पुष्यस्तारका नक्षत्रम्' यहाँ पुंलिंग पुष्यका, स्त्रीलिंग तारका अथवा नपुंसक लिंग नक्षत्रके साथ सम्बन्ध हो जाता है, लिंगभेद होनेपर भी विशेषण-विशेष्यभावमें अन्तर नहीं आता। साधनव्यभिचार—साधन कारकको कहते हैं, इसका उदाहरण 'सेना पर्वतमधिवसति' है। यहाँ पर्वत शब्द अधिकरणकारक है अतः उसमें सामान्य नियमके अनुसार सप्तमी विभक्ति आना चाहिए तथापि अधि उपसर्गपूर्वक वस् धातुका प्रयोग होनेसे कर्मकारकमें आनेवाली द्वितीया विभक्ति हो गयी फिर भी अर्थ अधिकरणकारकके अनुसार ही – 'सेना पर्वतपर रहती है' होता है। संख्याव्यभिचार—संख्या वचनको कहते हैं, इसके उदाहरण हैं 'जलमापो, वर्षाः ऋतुः, आम्राः वनम्, वरणाः नगरम्' यहाँपर 'जलम्' एकवचन है फिर भी उसका पर्याय 'आपः' यह नित्य बहुवचनान्त शब्द दिया जा सकता है। 'वर्षाः' बहुवचन है और 'ऋतुः' एकवचन है फिर भी इनका विशेष्य-विशेषण भाव हो सकता है। इसी प्रकार शेष उदाहरण भी समझ लेना चाहिए। कालव्यभिचार—भूत, भविष्यत् और वर्तमानके भेदसे कालके तीन भेद हैं इनमें परस्पर विरुद्ध कालोंका भी प्रयोग होता है, जैसे 'विश्वदृश्वास्य पुत्रो जनिता' यह उदाहरण है। यहाँ विश्वदृश्वाका अर्थ होता है 'विश्वं दृष्टवान्' इति विश्वदृश्वा—जिसने विश्वको देख लिया। परन्तु यहाँपर विश्वदृश्वा इस भूतकालिक कर्मका जनिता इस भविष्यत्कालिक क्रियाके साथ सम्बन्ध जोड़ा गया है। उपग्रहव्यभिचार—आत्मनेपद, परस्मैपद आदि पदोंको उपग्रह कहते हैं। शब्दनय परस्मैपदके स्थानपर आत्मनेपद और आत्मनेपदके स्थानपर परस्मैपदके प्रयोगको जो कि व्याकरणके अनुसार होता है स्वीकृत कर लेता है। जैसे तिष्ठति, संतिष्ठते, प्रतिष्ठते, रमते, विरमति, उपरमति आदि। यहाँ 'तिष्ठति'में परस्मैपदका प्रयोग होता है परन्तु सम् और प्र उपसर्ग लग जानेसे संतिष्ठते तथा प्रतिष्ठतेमें आत्मनेपद हो गया। 'रमते' यह आत्मनेपदका प्रयोग है परन्तु 'विरमति'में वि उपसर्ग और 'उपरमति'में उप उपसर्ग लग जानेसे परस्मैपद प्रयोग हो जाता है। लिंगादिके व्यभिचारके समान शब्दनय पुरुष व्यभिचारको भी नहीं मानता जैसे 'एहि मन्ये रथेन यास्यति, नहि यास्यति, यातस्ते पिता'—यहाँपर 'मन्यसे' इस मध्यमपुरुषके बदले हास्यमें 'मन्ये' इस उत्तमपुरुषका प्रयोग किया गया है। तात्पर्य यह है कि शब्दनय व्याकरणके नियमोंके आधीन है, अतः वह सामान्य नियमोंके विरुद्ध प्रयोग होनेसे आनेवाले दोषको स्वीकृत नहीं करेगा ॥४७॥

जो शब्दभेद होनेपर अर्थभेद स्वीकृत करता है अर्थात् एक पदार्थके लिए अनेक पर्यायात्मक शब्द प्रयुक्त होनेपर उनके पृथक्-पृथक् अर्थको स्वीकृत करता है वह समभिरूढ़नय है, जैसे लोकमें देवेन्द्रके लिए इन्द्र, शक्र और पुरन्दर शब्दका प्रयोग आता है परन्तु समभिरूढ़नय इन सबके पृथक्-पृथक् अर्थको ग्रहण करता है। वह कहता है कि जो परम ऐश्वर्यका अनुभव करता है वह इन्द्र है, जो शक्तिसम्पन्न है वह शक्र है और जो पुरोंका विभाग करनेवाला है वह पुरन्दर है, इसलिए इन भिन्न-भिन्न पर्याय शब्दोंसे सामान्य देवेन्द्रका ग्रहण न कर उसकी भिन्न-भिन्न विशेषताओंका ग्रहण करता है। अथवा जो नाना अर्थोंका उल्लंघन कर एक अर्थको

१. 'नानार्थसमभिरोहणात् समभिरूढः' अथवा 'अर्थगत्यर्थः शब्दप्रयोगः' अथवा 'यो यत्राभिरूढः स तत्र समेत्याभिमुख्येनारोहणात् समभिरूढः'।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]यदेन्दति तदैवेन्द्रो नान्यदेति क्रियाक्षणे । वाचकं मन्यते त्वेवैवम्भूतो यथार्थवाक् ॥४९॥
द्रव्यस्यानन्तशक्तित्वात्प्रतिशक्तिभिदां[2] श्रिताः । उत्तरोत्तरसूक्ष्मार्थगोचराः सप्त सप्तयाः ॥५०॥
अर्थशब्दप्रधानत्वाच्छब्दान्ताः पञ्चधा नयाः । [3]संग्रहादिनयाः[4] षोढा प्रत्येकं स्युः शतानि ते ॥५१॥
यावन्तोऽपि वचोमार्गास्तावन्तो यन्नयास्ततः । इयन्त इति संख्यानं नयानां नास्ति तत्त्वतः ॥५२॥
धर्माधर्मौ तथाकाशं पुद्गलः काल एव च । पञ्चाप्यजीवतत्त्वानि सम्यग्दर्शनगोचराः ॥५३॥
गतिस्थित्योर्निमित्तं तौ धर्माधर्मौ यथाक्रमम् । नभोऽवगाहहेतुस्तु जीवाजीवद्वयोस्सदा ॥५४॥
पूरणं गलनं कुर्वन् पुद्गलोऽनेकधर्मकः । सोऽणुसंघाततः स्कन्धः स्कन्धभेदादणुः पुनः ॥५५॥
वर्तनालक्षणो लक्ष्यः समयादिरनेकधा । कालः कलनधर्मेण [5]सपरत्वापरत्वकः ॥५६॥

मुख्यतासे ग्रहण करता है वह समभिरूढ़नय है, जैसे गो शब्द कोशमें वचन आदि अनेक अर्थोंमें प्रसिद्ध है किन्तु लोकमें वह अधिकतासे पशु अर्थमें ही प्रयुक्त होता है। अथवा जो शब्दके निरुक्त—प्रकृति-प्रत्ययके संयोगसे सिद्ध होनेवाले अर्थको न मानकर उसके चालू वाच्यार्थको ही माना है वह समभिरूढ़नय है, जैसे गौ शब्दका निरुक्त अर्थ गच्छतीति गौः जो चले वह है, परन्तु लोकमें इस अर्थकी उपेक्षा कर पशु विशेषको गौ कहते हैं, वह चलती हो तब भी गौ है और बैठी या खड़ी हो तब भी गौ है ॥४८॥

जो पदार्थ जिस क्षणमें जैसी क्रिया करता है उसी क्षणमें उसको उस रूप कहना, अन्य क्षणमें नहीं, यह एवंभूतनय है। यह नय पदार्थके यथार्थ स्वरूपको कहता है जैसे 'इन्दतीति इन्द्रः' जिस समय इन्द्र ऐश्वर्यका अनुभव करता है उसी समय इन्द्र कहलाता है अन्य समयमें नहीं ॥ ४९ ॥

द्रव्यकी अनन्त शक्तियाँ हैं। ये सातों नय प्रत्येक शक्तिके भेदोंको स्वीकृत करते हुए उत्तरोत्तर सूक्ष्म पदार्थको ग्रहण करते हैं ॥५०॥ इन *नयोंमें कितने ही नय अर्थप्रधान हैं और कितने ही शब्दप्रधान हैं, इसलिए प्रारम्भसे लेकर शब्दनय तक पाँच प्रकारके नय और संग्रहको आदि लेकर अन्त तक छह प्रकारके नय अर्थात् नैगमादि सातों नयोंमें प्रत्येक सैकड़ों प्रकारके हैं ॥५१॥ क्योंकि जितने वचनके मार्ग-भेद हैं उतने नय हैं इसलिए नय इतने हैं। इस प्रकार यथार्थमें नयोंकी संख्या निश्चित नहीं है ॥५२॥

धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल और काल ये पाँचों अजीव तत्त्व हैं तथा सम्यग्दर्शनके विषयभूत हैं ॥५३॥ इनमें-से धर्म और अधर्म द्रव्य क्रमसे गति और स्थितिके निमित्त हैं अर्थात् धर्म द्रव्य जीव और पुद्गलके गमनमें निमित्त है तथा अधर्ममें द्रव्य उन्हींकी स्थितिमें निमित्त है। आकाश, जीव और अजीव दोनों द्रव्योंके अवगाहमें निमित्त है ॥५४॥ पुद्गल द्रव्य पूरण गलन क्रिया करता हुआ वर्णादि अनेक गुणोंसे युक्त है। उसके दो भेद हैं, स्कन्ध और परमाणु। बहुत-से परमाणुओंके संयोगसे स्कन्ध बनता है और स्कन्धमें भेद होते-होते परमाणुकी उत्पत्ति होती है ॥५५॥ जो वर्तना लक्षणसे सहित है वह काल द्रव्य है। इसके समय आदि अनेक भेद हैं। परिवर्तनरूप धर्मसे सहित होनेके कारण काल द्रव्य परत्व और अपरत्व व्यवहारसे युक्त है ॥५६॥

१. येनात्मना भूतस्तेनैवात्मनाध्यवसाययतीति एवंभूतः—स. सि.। २. भिदा म.। ३. संग्रहादितया म., ङ., क.। ४. जावदिया वयनविहा तावदिया चेव होंति णयवादा। ५. परत्वापरत्वे क्षेत्रकृते कालकृते च स्तः। ते अत्र कालोपकरणात्कालकृते गृह्येते। एते ते वर्तनादयः उपकाराः कालस्यास्तित्वं गमयन्ति। ननु वर्तनाग्रहणमेवास्तु तद्भेदाः परिणामादयः—(क. टि.)।

* नैगम, संग्रह, व्यवहार और ऋजु ये चार अर्थनय हैं तथा शेष तीन शब्दनय हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कायवाङ्मनसां कर्म योगः स [2]पुनरास्रवः । शुभः पुण्यस्य गण्यस्य पापस्याशुभलक्षणः ॥५७॥
[4]सकषायाकषायौ द्वौ स्वामिनावास्रवस्य सः । मिथ्यादृष्ट्यादिकाद्यस्य साम्परायिककर्मणः ॥५८॥
उपशान्तकषायादेरकषायस्य योगिनः । आस्रवः स्वामिनोऽन्त्यस्य स्यादीर्यापथकर्मणः ॥५९॥
[5]इन्द्रियाणि कषायाश्च हिंसादीन्यव्रतान्यपि । साम्परायिककर्मद्वाः स्यात्क्रियापञ्चविंशतिः ॥६०॥
चैत्यप्रवचनार्हत्सद्गुरुपूजादिलक्षणा । सा सम्यक्त्वक्रिया ख्याता सम्यक्त्वपरिवर्धिनी ॥६१॥
प्रवृत्तिरकृतादन्यदेवतास्तवनादिका । सा मिथ्यात्वक्रिया ज्ञेया मिथ्यात्वपरिवर्धिनी ॥६२॥
कायाज्ञादिसरन्येषां गमनादिप्रवर्तनम् । सा प्रयोगक्रिया वेद्या प्रायोऽसंयमवर्धिनी ॥६३॥
आभिमुख्यं प्रति प्रायः संयतस्याप्यसंयमे । समादानक्रिया प्रोक्ता प्रमादपरिवर्धिनी ॥६४॥
ईर्यापथनिमित्ता या सा प्रोक्तेर्यापथक्रिया । एताः पञ्चक्रिया हेतुरास्रवे साम्परायिके ॥६५॥
क्रोधावेशवशात्प्रादुर्भूता प्रादोषिकी क्रिया । योऽभ्युद्यमः प्रदुष्टस्य सतस्सा कायिकी क्रिया ॥६६॥
क्रियाधिकारिणीत्युक्ता हिंसोपकरणग्रहात् । दुःखोत्पत्तिः स्वतन्त्रत्वात्क्रियान्या पारितापिकी ॥६७॥
इन्द्रियायुर्बलप्राणवियोगकरणात्क्रिया । प्राणातिपातिकी नाम्ना पञ्चैवाध्यात्मिकाः क्रियाः ॥६८॥
रागार्द्रीकृतचित्तत्वात्प्रशस्तस्य[6] प्रमादिनः । रम्यरूपावलोकान्याभिप्रायो दर्शनक्रिया ॥६९॥

काय, वचन और मनकी क्रियाको योग कहते हैं। वह योग ही आस्रव कहलाता है। उसके शुभ और अशुभके भेदसे दो भेद हैं। उनमें शुभयोग शुभास्रवका और अशुभयोग अशुभास्रवका कारण है ॥५७॥ आस्रवके स्वामी दो हैं—सकषाय (कषायसहित) और अकषाय (कषाय-रहित)। इसी प्रकार आस्रवके दो भेद हैं—साम्परायिक आस्रव और ईर्यापथ आस्रव। मिथ्यादृष्टि-को आदि लेकर सूक्ष्मकषाय गुणस्थान तकके जीव सकषाय हैं और वे प्रथम साम्परायिक आस्रवके स्वामी हैं तथा उपशान्तकषायको आदि लेकर सयोगकेवली तकके जीव अकषाय हैं और ये अन्तिम ईर्यापथ आस्रवके स्वामी हैं। [चौदहवें गुणस्थानवर्ती अयोगकेवली भी अकषाय हैं परन्तु उनके योगका अभाव हो जानेसे आस्रव नहीं होता] ॥५८-५९॥ पाँच इन्द्रियाँ, चार कषाय, हिंसा आदि पाँच अव्रत और पचीस क्रियाएँ ये साम्परायिक आस्रवके द्वार हैं ॥६०॥ इनमें पाँच इन्द्रियाँ, चार कषाय और पाँच अव्रत प्रसिद्ध हैं, अतः इन्हें छोड़कर पचीस क्रियाओंका स्वरूप कहते हैं। प्रतिमा, शास्त्र, अर्हन्त देव तथा सच्चे गुरु आदिकी पूजा, भक्ति आदि करना सम्यक्त्व-को बढ़ानेवाली सम्यक्त्वक्रिया है ॥६१॥ पापके उदयसे अन्य देवताओंकी स्तुति आदिमें प्रवृत्ति करना मिथ्यात्वको बढ़ानेवाली मिथ्यात्व क्रिया है ॥६२॥ गमनागमनादिमें प्रवृत्ति करना सो प्रायः असंयमको बढ़ानेवाली प्रयोग क्रिया है ॥६३॥ संयमी पुरुषका प्रायः असंयमकी ओर सम्मुख होना प्रमादको बढ़ानेवाली समादान क्रिया है ॥६४॥ जो क्रिया ईर्यापथमें निमित्त है वह ईर्यापथ क्रिया है। ये पाँच क्रियाएँ साम्परायिक आस्रवकी हेतु हैं ॥६५॥ क्रोधके आवेशसे जो क्रिया होती है वह प्रादोषिकी क्रिया है। दोषसे भरा मनुष्य जो उद्यम करता है वह कायिकी क्रिया है ॥६६॥ हिंसाके उपकरण-शस्त्र आदिके ग्रहणसे जो क्रिया होती है वह क्रियाधिकरिणी क्रिया है। स्व-परको दुःख उत्पन्न करनेवाली पारितापिकी क्रिया है ॥६७॥ इन्द्रिय, आयु और बल प्राणका वियोग करने-वाली क्रिया प्राणातिपातिकी है। ये पाँच आध्यात्मिक क्रियाएँ हैं ॥६८॥ चित्तके रागसे आर्द्र हो जानेके कारण जब उत्तम पुरुष प्रमादी बन, किसी सुन्दर रूपके देखनेकी अभिलाषा करता है

१. 'कायवाङ्मनःकर्म योगः' ॥१॥ २. 'स आस्रवः' ॥२॥ ३. 'शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य' ॥३॥ ४. 'सक-षायाकषाययोः साम्परायिकेर्यापथयोः' ॥४॥ त. सू. अ. ६। ५ इन्द्रियकषायाव्रतक्रियाः पञ्चचतुःपञ्चपञ्च-विंशतिसंख्याः पूर्वस्य भेदाः ॥५॥ त सू. अ. ६। ६. प्रशक्तस्य म., ङ.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सचेतनानुबन्धो यः [1]स्प्रष्टव्येऽतिप्रमादिनः । सा [2]स्पर्शनक्रिया ज्ञेया कर्मोपादानकारणम् ॥७०॥
उत्पादनादपूर्वस्य पापाधिकरणस्य तु । पापास्रवकरी प्रायः प्रोक्ता प्रत्यायिकी क्रिया ॥७१॥
स्त्रीपुंसपशुसंपातिदेशेऽन्तर्मलमोक्षणम् । क्रिया साधुजनायोग्या सा समन्तानुपातिनी ॥७२॥
अप्रमृष्टाप्रदृष्टायां निक्षेपोऽङ्गादिनः क्षितौ । अनाभोगक्रिया सा तु पञ्चैता अपि दुष्क्रियाः ॥७३॥
[3]परेणैव तु निर्वर्त्या या स्वयं क्रियते क्रिया । सा स्वहस्तक्रिया बोध्या पूर्वोक्तास्रववर्धिनी ॥७४॥
पापादानादिवृत्तीनामभ्यनुज्ञानमात्मना । सा निसर्गक्रिया नाम्ना निसर्गेणास्रवावहा ॥७५॥
पराचरितसावद्यक्रियादेस्तु प्रकाशनम् । विदारणक्रिया [4]सान्यधीविदारणकारिणी ॥७६॥
यथोक्ताज्ञानसक्तस्य कर्तुमावश्यकादिषु । प्ररूपणान्यथा मोहादाज्ञाव्यापादिकी क्रिया ॥७७॥
[5]शाठ्यालस्याद्धि शास्त्रोक्तविधिकर्तव्यतां प्रति । अनादरस्त्वनाकाङ्क्षा-क्रिया पञ्चक्रिया इमाः ॥७८॥
आरम्भे क्रियमाणेऽन्यैः स्वयं हर्षः [7]प्रमादिनः । सा प्रारम्भक्रियात्यन्तं तात्पर्यं वा [8]छिदादिषु ॥७९॥
सा पारिग्राहिकी[9] ज्ञेया परिग्रहपरा क्रिया । मायाक्रियापि च ज्ञानदर्शनादिषु वञ्चना ॥८०॥
या मिथ्यादर्शनारम्भदृढीकरणतत्परा । प्रोत्साहनादिनान्यस्य सा मिथ्यादर्शनक्रिया ॥८१॥
कर्मोदयवशात्पापादनिवृत्तिरपि क्रिया । अप्रत्याख्यानसंज्ञा सा पञ्चामूरास्रवक्रियाः ॥८२॥

तब उसके दर्शन क्रिया होती है ॥६९॥ वही मनुष्य जब अत्यधिक प्रमादी बन स्पर्श करने योग्य पदार्थका बार-बार चिन्तन करता है तब कर्मबन्धमें कारणभूत स्पर्शन क्रिया होती है ॥७०॥ पापके नये-नये कारण उत्पन्न करनेसे पापका आस्रव करनेवाली जो क्रिया होती है वह प्रत्यायिकी क्रिया कही गयी है ॥७१॥ स्त्री-पुरुष और पशुओंके मिलने-जुलने आदिके योग्य स्थानपर शरीर-सम्बन्धी मल-मूत्रादिको छोड़ना समन्तानुपातिनी क्रिया है। यह क्रिया साधुजनोंके अयोग्य है ॥७२॥ बिना शोधी, बिना देखी भूमिपर शरीरादिका रखना अनाभोगक्रिया है। ये पाँचों ही क्रियाएँ दुष्क्रियाएँ कहलाती हैं ॥७३॥ दूसरेके द्वारा करने योग्य क्रियाको स्वयं अपने हाथसे करना यह पूर्वोक्त आस्रवको बढ़ानेवाली स्वहस्तक्रिया है ॥७४॥ पापोत्पादक वृत्तियोंको स्वयं अच्छा समझना निसर्गक्रिया है, यह स्वभावसे ही आस्रवको बढ़ानेवाली है ॥७५॥ दूसरेके द्वारा आचरित पापपूर्ण क्रियाओंका प्रकट करना यह दूसरेकी बुद्धिको विदारण करनेवाली विदारण क्रिया है ॥७६॥ आगमकी आज्ञाके अनुसार आवश्यक आदि क्रियाओंके करनेमें असमर्थ मनुष्यका मोहके उदयसे उनका अन्यथा निरूपण करना आज्ञाव्यापादिकी क्रिया है ॥७७॥ अज्ञान अथवा आलस्यके सहित होनेके कारण शास्त्रोक्त विधियोंके करनेमें अनादर करना अनाकांक्षाक्रिया है, इस प्रकार ये पाँच क्रियाएँ हैं ॥७८॥

दूसरोंके द्वारा किये जानेवाले आरम्भमें प्रमादी होकर स्वयं हर्ष मानना अथवा छेदन-भेदन आदि क्रियाओंमें अत्यधिक तत्पर रहना प्रारम्भ क्रिया है ॥७९॥ परिग्रहमें तत्पर जो क्रिया है वह पारिग्रहिकी क्रिया है। ज्ञान, दर्शन आदिके विषयमें जो छलपूर्ण प्रवृत्ति है वह माया-क्रिया है ॥८०॥ प्रोत्साहन आदिके द्वारा दूसरेको मिथ्यादर्शनके प्रारम्भ करने तथा उसके दृढ़ करनेमें तत्पर जो क्रिया है वह मिथ्यादर्शन क्रिया है ॥८१॥ कर्मोदयके वशीभूत होनेसे पापसे निवृत्ति नहीं होना अप्रत्याख्यान क्रिया है। इस प्रकार आस्रवको बढ़ानेवाली ये पाँच क्रियाएँ हैं। इस प्रकार पाँच-पाँचके पचीस क्रियाओंका वर्णन किया ॥८२॥

१. स्प्रष्टव्योऽतिप्रमादिनः म. । २. दर्शनक्रिया म. । ३. वरेणैव म. । ४. सान्या धीविदारण- म., ङ. । ५. यथोक्तादान- । ३. सा व्यालस्याद्धि म., साद्यालस्याद्धि. क., ङ. । ७. हर्षप्रमादिनः । ८. वाञ्छिता-दिषु म., क., ङ., ख. । ९. पारिग्राहिणी म., क., ङ. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]मन्दमध्यातितीव्रत्वात्परिणामस्य देहिनाम् । मन्दो मध्योऽतितीव्रः स्यादास्रवो हेतुभेदतः ॥८३॥
[2]जीवाधिकरणश्चाप्यजीवाधिकरणोऽपि सः । आस्रवो भिद्यते द्वेधा जीवाधिकरणास्रवाः ॥८४॥
[3]तैः संरम्भसमारम्भैः सारम्भैस्त्रिकृतादिभिः । त्रियोगैश्च कषायैश्च षट्त्रिंशत्पृथगास्रवाः ॥८५॥
[4]निर्वर्तना च निक्षेपोऽजीवाधिकरणास्रवाः । संयोगश्च निसर्गश्च द्विचतुर्द्वित्रिभेदिनः ॥८६॥
निर्वर्तनाधिकरणं मूलोत्तरगुणा द्विधा । शरीरवाङ्मनःप्राणापानादीनां च तौ गुणौ ॥८७॥
सहसादुःप्रमृष्टानाभोगसाप्रत्यवेक्षितैः[5] । भेदैश्चतुर्विधैस्तन्निक्षेपाधिकरणं पुनः ॥८८॥

जीवोंके परिणाम मन्द, मध्य और तीव्र होते हैं इसलिए हेतुमें भेद होनेसे आस्रव भी मन्द, मध्यम और तीव्र होता है ॥८३॥ जीवाधिकरण और अजीवाधिकरणके भेदसे आस्रवके दो भेद हैं। जीवाधिकरण आस्रवके मूलमें तीन भेद हैं—१ संरम्भ, २ समारम्भ और ३ आरम्भ। इनमें-से प्रत्येकके कृत, कारित, अनुमोदना—तीन, मनोयोग, वचनयोग, काययोग तीन और क्रोध, मान, माया, लोभरूप कषाय—चार इनसे परस्पर गुणित होनेपर छत्तीस-छत्तीस भेद होते हैं। तीनोंके मिलाकर एक सौ आठ भेद हो जाते हैं॥ भावार्थ—किसी कार्यके करनेका मनमें विचार करना संरम्भ है। उसके साधन जुटाना समारम्भ है और कार्यरूपमें परिणत करना आरम्भ है। स्वयं कार्य करना कृत है, दूसरेसे कराना कारित है और कोई करे उसमें हर्ष मानना अनुमति है। मनसे किसी कार्यका विचार करना मनोयोग है, वचनसे प्रकट करना वचनयोग है और कायसे कार्य करना काययोग है। क्रोध कषायसे प्रेरित हो किसी कार्यको करना क्रोध कषाय है, मानसे प्रेरित हो करना मान कषाय है, मायासे प्रेरित हो करना माया कषाय है और लोभसे प्रेरित होकर करना लोभ कषाय है। मूलमें संरम्भ आदिके भेदसे आस्रव तीन प्रकारका होता है, इनमें-से प्रत्येकका भेद कृत, कारित अनुमोदनाकी अपेक्षा तीन प्रकारका होता है, फिर यही तीन भेद तीन योगके निमित्तसे होते हैं, इसलिए तीनका तीनमें गुणा करनेपर नौ भेद होते हैं। तदनन्तर यही नौ भेद क्रोधादि कषायकी अपेक्षा चार-चार प्रकारके होते हैं इसलिए नौमें चारका गुणा करनेपर छत्तीस भेद होते हैं। छत्तीस भेद संरम्भके, छत्तीस समारम्भके और छत्तीस आरम्भके, तीनोंको मिलाकर एक सौ आठ भेद होते हैं। अथवा दूसरी तरहसे संरम्भादि तीनमें कृत, कारितादिका गुणा करनेपर नौ भेद हुए, उनमें तीन योगका गुणा करनेपर सत्ताईस हुए और उसमें क्रोधादि चार कषायका गुणा करनेपर एक सौ आठ भेद होते हैं। ये सब परिणाम जीवकृत हैं अतः इन्हें जीवाधिकरण आस्रव कहते हैं ॥८४-८५॥ दो प्रकारकी निर्वर्तना, चार प्रकारका निक्षेप, दो प्रकारका संयोग और तीन प्रकारका निसर्ग ये अजीवाधिकरण आस्रवके भेद हैं ॥८६॥ मूलगुण निर्वर्तना और उत्तरगुण निर्वर्तनाके भेदसे निर्वर्तनाके दो भेद हैं। शरीर, वचन, मन तथा श्वासोच्छ्वास आदिकी रचना होना मूलगुण निर्वर्तना है और काष्ठ, पाषाण, मिट्टी आदिसे चित्राम आदिका बनाना उत्तरगुण निर्वर्तना है ॥८७॥ सहसा निक्षेपाधिकरण, दुष्प्रमृष्ट निक्षेपाधिकरण, अनाभोग निक्षेपाधिकरण और अप्रत्यवेक्षित निक्षेपाधिकरण इन चार भेदोंसे निक्षेपाधिकरण चार प्रकारका होता है। शीघ्रतासे किसी वस्तुको रख देना सहसा निक्षेप है। दुष्टतापूर्वक साफ की हुई भूमिमें किसी वस्तुको रखना दुष्प्रमृष्ट निक्षेप है।

१. तीव्रमन्दज्ञाताज्ञातभावाधिकरणवीर्यविशेषेभ्यस्तद्विशेषः॥ ६॥ त. सू. अ. ६। २. अधिकरणं जीवाजीवाः ॥७॥ त. सू. अ. ६। ३. आद्यं संरम्भसमारम्भारम्भयोगकृतकारितानुमतकषायविशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः ॥८॥ त. सू. अ. ६। ४. निर्वर्तनानिक्षेपसंयोगनिसर्गा द्विचतुर्द्वित्रिभेदाः ॥९॥ त. सू. अ. ६। ५. परम् सांप्रत्यवेदितौ म.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भक्तपानोपकरणसंयोगद्वितयात्मना । तद्द्वैविध्यं हि संयोगकारणस्य च कीर्तितम् ॥८९॥
यन्निसर्गाधिकरणं तत्त्रैविध्यं प्रपद्यते । वाङ्मनःकायपूर्वैस्तु निसर्गैस्तत्प्रवर्तनैः ॥९०॥
कर्मास्रवाणां भेदोऽयं सामान्येन निरूपितः । भेदः कर्मविशेषाणामास्रवस्य विशिष्यते ॥९१॥
[1]प्रदोषनिह्नवार्दानविघ्नासादनदूषणाः । ज्ञानस्य दर्शनज्ञानावृत्योरास्रवहेतुतः ॥९२॥
[3]दुःखशोकवधाक्रन्दतापाः सपरिदेवनाः । असद्वेद्यास्रवद्वाराः स्वपरोभयवर्तिनः ॥९३॥
[4]दया सकलभूतेषु व्रतिष्वत्यनुरागता । सरागसंयमो दानं क्षान्तिः शौचं यथोदितम् ॥९४॥
अर्हत्पूजादितात्पर्यं बालवृद्धतपस्विषु । वैय्यावृत्त्यादयो वेद्याः सद्वेद्यास्रवहेतवः ॥९५॥

अव्यवस्थाके साथ चाहे जहाँ किसी वस्तुको रख देना अनाभोग निक्षेप है और बिना देखी-शोधी भूमिमें किसी वस्तुको रख देना अप्रत्यवेक्षित निक्षेप है ॥८८॥ भक्तपान संयोग और उपकरण संयोगके भेदसे संयोगाधिकरण आस्रव दो प्रकारका कहा गया है। भोजन और पानको अन्य भोजन तथा पानमें मिलाना भक्तपान संयोग है तथा बिना विवेकके उपकरणोंका परस्पर मिलना उपकरण संयोग है जैसे शीतस्पर्शयुक्त पीछीसे घाममें सन्तप्त कमण्डलुका सहसा पोंछना आदि ॥८९॥ वाङ्निसर्ग, मनोनिसर्ग और कायनिसर्गके भेदसे निसर्गाधिकरण आस्रव तीन रूपताको प्राप्त होता है। वचनकी स्वच्छन्द प्रवृत्तिको वाङ्निसर्ग कहते हैं, मनकी स्वच्छन्द प्रवृत्तिको मनोनिसर्ग कहते हैं और कायकी स्वच्छन्द प्रवृत्तिको काय निसर्ग कहते हैं ॥९०॥ इस प्रकार यह सामान्य रूपसे कर्मास्रवोंका भेद कहा। अब ज्ञानावरणादिके भेदसे युक्त विशिष्ट कर्मोंके आस्रवका भेद कहा जाता है ॥९१॥ ज्ञानके विषयमें किये हुए प्रदोष, निह्नव, आदान, विघ्न, आसादन और दूषण ज्ञानावरणके आस्रव हैं और दर्शनके विषयमें किये हुए प्रदोष आदि दर्शनावरणके आस्रव हैं। मोक्षके साधनभूत तत्त्वज्ञानका निरूपण होनेपर कोई मनुष्य चुपचाप बैठा है परन्तु भीतर ही भीतर उसका परिणाम कलुषित हो रहा है इसे प्रदोष कहते हैं। किसी कारणसे 'मेरे पास नहीं है' अथवा 'मैं नहीं जानता हूँ' इत्यादि रूपसे ज्ञानको छिपाना निह्नव है। मात्सर्यके कारण देने योग्य ज्ञान भी दूसरेको नहीं देना सो अदान है। ज्ञानमें अन्तराय डाल देना विघ्न है। दूसरेके द्वारा प्रकाशमें आने योग्य ज्ञानको काय और वचनसे रोक देना आसादन है और प्रशस्त ज्ञानमें दोष लगाना दूषण है ॥९२॥

वेदनीय कर्मके दो भेद हैं—१ असातावेदनीय और २ सातावेदनीय। इनमें-से निज, पर और दोनोंके विषयमें होनेवाले दुःख, शोक, वध, आक्रन्दन, ताप और परिदेवन ये असातावेदनीयके आस्रव हैं। पीड़ारूप परिणामको दुःख कहते हैं। अपने उपकारक पदार्थोंका सम्बन्ध नष्ट हो जानेपर परिणामोंमें विकलता उत्पन्न होना शोक है। आयु, इन्द्रिय तथा बल आदि प्राणोंका वियोग करना वध है। सन्ताप आदिके कारण अश्रुपात करते हुए रोना आक्रन्दन है। लोकमें अपनी निन्दा आदिके फैल जानेसे हृदयमें तीव्र पश्चात्ताप होना ताप है। और उपकारीका वियोग होनेपर उसके गुणोंका स्मरण तथा कीर्तन करते हुए इस तरह विलाप करना जिससे सुननेवाले दयार्द्र हो जावें उसे परिदेवन कहते हैं ॥९३॥ समस्त प्राणियोंपर दया करना, व्रती जनोंपर अनुराग रखना, सरागसंयम, दान, क्षमा, शौच, अर्हन्त भगवान्‌की पूजामें तत्पर रहना और बालक तथा वृद्ध तपस्वियोंकी वैयावृत्ति आदि करना सातावेदनीय-

१. तत्प्रदोषनिह्नवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयोः ॥१०॥ त. सू. अ. ६। २. निह्नवादाने म., ङ.। ३. दुःखशोकतापाक्रन्दनवधपरिदेवनान्यात्मपरोभयस्थान्यसद्वेद्यस्य ॥११॥ त. सू. अ. ६। ४. भूतव्रत्यनुकम्पादानसरागसंयमादियोगः क्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य ॥१२॥ त. सू. अ. ६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]केवलिश्रुतसंघेषु धर्मदेवेष्ववर्णवाक् । हेतुर्दर्शनमोहस्याप्यास्रवस्य निरूपितः ॥९६॥
[2]उदयात्तु कषायाणां परिणामोऽपि तीव्रकः । हेतुश्चारित्रमोहस्य नानाभेदास्रवस्य तु ॥९७॥
तत्र स्वान्यकषायाणामुत्पादेन समुद्धता । कषायवेदनीयस्य हेतुः सद्वृत्तदूषणम्[3] ॥९८॥
प्रहासशीलतादिः स्याद्धर्मोपहसनादिभिः । सहास्यवेदनीयस्य महास्रवनिबन्धनम् ॥९९॥
विचित्रक्रीडनासक्तिर्व्रतशीलाद्यरोचनम् । रत्याख्यवेदनीयस्य हेतुः स्यादास्रवो महान् ॥१००॥
पराराविविधानं च रतेरपि विनाशनम् । अरतेर्वेदनीयस्य हेतुर्दुश्शीलसेवनम् ॥१०१॥
स्वशोकोत्पादनं चान्यशोकवृद्ध्यभिनन्दनम्[4] । कुशोकवेदनीयस्य नित्यमास्रवकारणम् ॥१०२॥
भयोत्पादनमन्येषां स्वभयस्य च भावनम् । भयाख्यवेदनीयस्य सन्ततो हेतुरास्रवे ॥१०३॥
कुशलाचरणाचारजुगुप्सापरिवादिता । जुगुप्सावेदनीयस्य हेतुरास्रवगोचरः ॥१०४॥
अतिसंधानपरता परस्यालीकवादिता । प्रवृद्धरागतादि स्त्रीवेदनीयस्य कारणम् ॥१०५॥
सानुत्सेकतनुक्रोधस्वदारपरितोषिताः । हेतुः पुंवेदनीयस्य कर्मणः संसृतौ मतः ॥१०६॥
प्राचुर्यं च कषायाणां गुह्याङ्गव्यपरोहणम् । परस्त्रीसक्तिरन्त्यस्य वेदनीयस्य हेतवः ॥१०७॥

के आस्रव हैं ॥९४-९५॥ केवली, श्रुत, संघ, धर्म तथा देवका अवर्णवाद करना—झूठे दोष लगाना दर्शन मोहनीय कर्मके आस्रवके हेतु कहे गये हैं। केवली कवलाहारसे जीवित रहते हैं इत्यादि असद्भूत दोषोंका निरूपण करना केवलीका अवर्णवाद है। शास्त्रमें मांस भक्षण आदि निषिद्ध कार्योंका उल्लेख है इत्यादि कहना श्रुतका अवर्णवाद है। ऋषि, मुनि, यति और अनगार इन चार प्रकारके मुनियोंका समूह संघ कहलाता है—इनके दोष कहना अर्थात् ये शरीरसे अपवित्र हैं, शूद्र-तुल्य हैं, नास्तिक हैं, आदि कहना संघका अवर्णवाद है। जिनेन्द्र भगवान्के द्वारा कहा हुआ धर्म निर्गुण है और उसके पालन करनेवाले असुर होते हैं इत्यादि कहना धर्मका अवर्णवाद है और देव मांस-मदिराका सेवन करते हैं, इत्यादि कहना देवका अवर्णवाद है ॥९६॥ कषायके उदयसे जो तीव्र परिणाम होता है वह चारित्र मोहके नानाप्रकारके आस्रवोंका कारण है ॥९७॥ चारित्र मोहनीयके कषायवेदनीय और अकषायवेदनीयकी अपेक्षा दो भेद हैं। इनमें-से निज तथा परको कषाय उत्पन्न कर उद्धत वृत्तिका धारण करना तथा तपस्विजनोंके सम्यक् चारित्रमें दूषण लगाना कषायवेदनीयके आस्रव हैं। धर्मका उपहास आदि करनेसे हास्यरूप स्वभावका होना अर्थात् धर्मकी हँसी उड़ाकर प्रसन्नताका अनुभव करना हास्य अकषायवेदनीयका आस्रव है ॥९८-१००॥ दूसरोंको अरति उत्पन्न करना, रतिको नष्ट करना और दुष्ट स्वभावके धारक जनोंकी सेवा करना रति नामक अकषायवेदनीयके आस्रव हैं ॥१०१॥ अपने-आपको शोक उत्पन्न करना तथा दूसरोंके शोककी वृद्धि देख प्रसन्नताका अनुभव करना शोक अकषायवेदनीयके आस्रव हैं ॥१०२॥ दूसरोंको भय उत्पन्न करना तथा अपने भयकी चिन्ता करना भय अकषाय-वेदनीयके आस्रव हैं ॥१०३॥ उत्तम आचरण करनेवाले मनुष्योंके आचारमें ग्लानि करना तथा उनकी निन्दा करना जुगुप्सा अकषायवेदनीयका आस्रव है ॥१०४॥ दूसरेको धोखा देनेमें अत्य-धिक तत्पर रहना, असत्य बोलना तथा रागकी अधिकता होना स्त्री अकषायवेदनीयके आस्रव हैं ॥१०५॥ नम्रतासे सहित होना, क्रोधकी न्यूनता होना और अपनी स्त्रीमें सन्तोष रखना ये संसारमें पुंवेद अकषायवेदनीयके आस्रव माने गये हैं ॥१०६॥ कषायोंकी प्रचुरता होना, गुह्य अंगोंका छेदन करना तथा परस्त्रीमें आसक्ति रखना ये नपुंसक अकषायवेदनीयके आस्रव हैं ॥१०७॥

१ केवलिश्रुतसंघधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य ॥१३॥ त. सू. अ. ६। २. कषायोदयात्तीव्रपरिणामश्चारित्र-मोहस्य ॥१४॥ त. सू. अ. ६। ३. सद्वृत्तभूषणम्। ४. निन्दनम् म.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]नारकस्यायुषो योगो बह्वारम्भपरिग्रहैः । तैर्यग्योनस्य[2] माया तु हेतुरास्रवणस्य सः ॥१०८॥
[3]मानुषस्यायुषो हेतुरल्पारम्भपरिग्रहैः । [4]संतुष्टत्वाव्रतत्वादि मार्दवं च स्वभावतः[5] ॥१०९॥
[6]सम्यक्त्वं च व्रतित्वं च[7] बालतापस्ययोगिता । अकामनिर्जरा चास्य दैवस्यास्रवहेतवः ॥११०॥
[8]स्वयोगवक्रता चान्यविसंवादनयोगिता । हेतुर्नाम्नोऽशुभस्यैव [9]शुभस्यातिसुयोगता ॥१११॥
[10]तथा नामविशेषस्य तीर्थकृत्त्वस्य हेतवः । सद्दर्शनविशुद्धयाद्याः षोडशातिविनिर्मलाः ॥११२॥
[11]सद्गुणाच्छादनं निन्दा परेषां स्वस्य शंसनम् । असद्गुणसमाख्यानं नीचैर्गोत्रास्रवावहाः ॥११३॥
[12]सनीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ हेतुरुक्तविपर्ययः । उच्चैर्गोत्रेऽन्तरायस्य[13] दानविघ्नादिकर्तृता ॥११४॥
शुभः पुण्यस्य सामान्यादास्रवः प्रतिपादितः । तद्विशेषप्रतीत्यर्थमिदं तु प्रतिपद्यते ॥११५॥
[14]हिंसानृतवचश्चौर्याब्रह्मचर्यपरिग्रहात् । विरतिर्देशतोऽणु स्यात्सर्वतस्तु महद्व्रतम् ॥११६॥
[15]महाणुव्रतयुक्तानां स्थिरीकरणहेतवः । व्रतानामिह पञ्चानां प्रत्येकं पञ्च भावनाः ॥११७॥

बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह रखना नरकायुका आस्रव है। मायाचार तिर्यंच आयुका आस्रव है ॥१०८॥ थोड़ा आरम्भ और थोड़ा परिग्रह रखनेसे मनुष्य आयुका आस्रव होता है। सन्तोष धारण करते हुए अव्रत अवस्था होना तथा स्वभावसे कोमल परिणामी होना भी मनुष्यायुके आस्रव हैं ॥१०९॥ सम्यग्दर्शन, व्रतीपना, बालतप तथा अकामनिर्जरा ये देवायुके आस्रव हैं ॥११०॥

अपने योगोंकी कुटिलता और दूसरोंके साथ विसंवाद ये अशुभ नामकर्मके आस्रव हैं और अपने योगोंकी सरलता तथा विसंवादका अभाव होना शुभ नामका आस्रव है ॥१११॥ नामकर्मका विशेष भेद जो तीर्थंकर प्रकृति है उसके आस्रव, अत्यन्त निर्मलताको प्राप्त दर्शनविशुद्धि आदि सोलह भावनाएँ हैं ॥११२॥ दूसरोंके विद्यमान गुणोंको छिपाना, अपनी प्रशंसा करना तथा अपने अविद्यमान गुणोंका कथन करना ये नीचगोत्रकर्मके आस्रव हैं ॥११३॥ विनयपूर्ण प्रवृत्ति करना तथा अहंकार नहीं करना उच्चगोत्रके आस्रव हैं और दान आदिमें विघ्न करना अन्तरायकर्मके आस्रव हैं ॥११४॥

पुण्यकर्मका जो शुभास्रव होता है उसका सामान्यरूपसे वर्णन ऊपर किया जा चुका है। अब उसकी विशेष प्रतीतिके लिए यह प्रतिपादन किया जा रहा है ॥११५॥ हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और अपरिग्रह इन पाँच पापोंसे विरक्त होना सो व्रत है। वह व्रत अणुव्रत और महाव्रतके भेदसे दो प्रकारका है। उक्त पापोंसे एकदेश विरत होना अणुव्रत है और सर्वदेश विरत होना महाव्रत है ॥११६॥ महाव्रत और अणुव्रतसे युक्त मनुष्योंको अपने व्रतमें स्थिर रखनेके लिए उक्त पाँचों व्रतोंमें प्रत्येककी पाँच-पाँच भावनाएँ कही जाती हैं ॥११७॥

१, बह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः ॥१५॥ २. माया तैर्यग्योनस्य ॥१६॥ ३. अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्य ॥१७॥ ४. निश्शीलव्रतित्वं च सर्वेषाम् ॥१९॥ ५. स्वभावमार्दवं च ॥१८॥ ६ सम्यक्त्वं च ॥२१॥ ७. सरागसयमसंयमासंयमकामनिर्जराबालतपांसि दैवस्य ॥२०॥ ८. योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः ॥२२॥ ९. तद्विपरीतं शुभस्य ॥२३॥ १०. दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नता शीलव्रतेष्वनतीचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी साधुसमाधिर्वैयावृत्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रभावना प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य ॥२४॥ त. सू. अ. ६। ११. परात्मनिन्दाप्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य ॥२५॥ १२. तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य ॥२६॥ १३. विघ्नकरणमन्तरायस्य ॥२७॥ त. सू. अ. ६। १४. हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ॥१॥ देशसर्वतोऽणुमहती ॥२॥ त. सू. अ. ७। १५. तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पञ्च पञ्च ॥३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]सुवाग्गुप्तिमनोगुप्ती स्वकाले वीक्ष्य भोजनम् । द्वे चेर्यादाननिक्षेपसमिती प्राग्व्रतस्य ताः [2] ॥११८॥
[3]स्वक्रोधलोभभीरुत्वहास्यहानोद्भाषणाः । द्वितीयस्य व्रतस्यैता भाषिताः पञ्च भावनाः ॥११९॥
[4]शून्यान्यमोचितागारवासान्यानुपरोधिताः । भैक्ष्यशुद्ध्यविसंवादौ तृतीयस्य व्रतस्य ताः ॥१२०॥
[5]स्त्रीरागकथाश्रुत्या रम्याङ्गेक्षाङ्गसंस्कृतः । रसपूर्वरतस्मृत्योस्त्यागस्तुर्यव्रतस्य ताः ॥१२१॥
[6]इष्टानिष्टेन्द्रियार्थेषु रागद्वेषविमुक्तयः । यथास्वं पञ्च विज्ञेयाः पञ्चमव्रतभावनाः ॥१२२॥
[7]हिंसादिष्विह चामुष्मिन्नपायावद्यदर्शनम् । व्रतस्थैर्यार्थमेवात्र भावनीयं मनीषिभिः ॥१२३॥
[8]दुःखमेवेति चाभेदादसद्वेद्यादिहेतवः । नित्यं हिंसादयो दोषा भावनीयाः मनीषिभिः ॥१२४॥
[9]मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यं च यथाक्रमम् । सत्त्वे गुणाधिके क्लिष्टे ह्यविनेये च भाव्यते ॥१२५॥
[10]स्वसंवेगविरागार्थं नित्यं संसारभीरुभिः । जगत्कायस्वभावौ च भावनीयौ मनस्विभिः ॥१२६॥
[11]इन्द्रियाद्या दश प्राणाः प्राणिभ्योऽत्र प्रमादिना । यथासंभवमेषां हि हिंसा तु व्यपरोपणम् ॥१२७॥

सम्यक् वचनगुप्ति, सम्यग्मनोगुप्ति, भोजनके समय देखकर भोजन करना (आलोकितपान भोजन), ईर्या-समिति और आदाननिक्षेपण समिति ये पाँच अहिंसा व्रतकी भावनाएँ हैं ॥११८॥ अपने क्रोध, लोभ, भय और हास्यका त्याग करना तथा प्रशस्त वचन बोलना (अनुवीचिभाषण) ये पाँच सत्यव्रतकी भावनाएँ हैं ॥११९॥ शून्यागारावास, विमोचितावास, परोपरोधाकरण, भैक्ष्यशुद्धि और सधर्माविसंवाद ये पाँच अचौर्य व्रतकी भावनाएँ हैं ॥१२०॥ स्त्री-रागकथा श्रवण त्याग, अर्थात् स्त्रियोंमें राग बढ़ानेवाली कथाओंके सुननेका त्याग करना, उनके मनोहर अंगोंके देखनेका त्याग करना, शरीरकी सजावटका त्याग करना, गरिष्ठ रसका त्याग करना एवं पूर्व कालमें भोगे हुए रतिके स्मरणका त्याग करना ये पाँच ब्रह्मचर्य व्रतकी भावनाएँ हैं ॥१२१॥ पंच इन्द्रियोंके इष्ट-अनिष्ट विषयोंमें यथायोग्य राग-द्वेषका त्याग करना ये पाँच अपरिग्रह व्रतकी भावनाएँ हैं ॥१२२॥ बुद्धिमान् मनुष्योंको व्रतोंकी स्थिरताके लिए यह चिन्तवन भी करना चाहिए कि हिंसादि पाप करनेसे इस लोक तथा परलोकमें नाना प्रकारके कष्ट और पापबन्ध होता है ॥१२३॥ अथवा नीतिके जानकार पुरुषोंको निरन्तर ऐसी भावना करनी चाहिए कि ये हिंसा आदि दोष दुःख रूप ही हैं। यद्यपि ये दुःखके कारण हैं दुःखरूप नहीं परन्तु कारण और कार्यमें अभेद विवक्षासे ऐसा चिन्तवन करना चाहिए ॥१२४॥ मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ्य ये चार भावनाएँ क्रमसे प्राणी-मात्र, गुणाधिक, दुःखी और अविनेय जीवोंमें करना चाहिए। भावार्थ—किसी जीवको दुःख न हो ऐसा विचार करना मैत्री भावना है। अपनेसे अधिक गुणी मनुष्योंको देखकर हर्ष प्रकट करना प्रमोद भावना है। दुःखी मनुष्योंको देखकर हृदयमें दयाभाव उत्पन्न होना करुणा भावना है और अविनेयमिथ्यादृष्टि जीवोंमें मध्यस्थ भाव रखना माध्यस्थ्य भावना है ॥१२५॥ अपनी आत्मामें संवेग और वैराग्य उत्पन्न करनेके लिए संसारसे भयभीत रहनेवाले विचारक मनुष्योंको सदा संसार और शरीरके स्वभावका चिन्तवन करना चाहिए ॥१२६॥

इस संसारमें प्राणियोंके लिए यथासम्भव इन्द्रियादि दश प्राण प्राप्त हैं। प्रमादी बनकर

१. स्ववाग् म. । २. वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पञ्च ॥४॥ ३. क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचीभाषणं च पञ्च ॥५॥ ४. शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्षशुद्धिसधर्माविसंवादाः पञ्च ॥६॥ ५. स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहराङ्गनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीरसंस्कारत्यागाः पञ्च ॥७॥ ६. मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पञ्च ॥८॥ ७. हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनम् ॥९॥ ८. दुःखमेव वा ॥१०॥ ९. मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यानि च सत्त्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनेयेषु ॥११॥ १०. स्वसंवेगादिरागार्थं म., जगत्कायस्वभावौ वा संवेगवैराग्यार्थम् ॥१२॥ ११. प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा ॥१३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राणिनो दुःखहेतुत्वादधर्माय वियोजनम् । प्राणानां तु प्रमत्तस्य समितस्य न बन्धकृत्[1] ॥१२८॥
स्वयमेवात्मनात्मानं हिनस्त्यात्मा प्रमादवान् । पूर्वं प्राण्यन्तराणां[2] तु पश्चात्स्याद्वा न वा वधः[3] ॥१२९॥
सदर्थमसदर्थं च प्राणिपीडाकरं वचः । असत्यमनृतं प्रोक्तमृतं प्राणिहितं वचः ॥१३०॥
[4]अदत्तस्य स्वयं ग्राहो वस्तुनश्चौर्यमीर्यते । संक्लेशपरिणामेन प्रवृत्तिर्यत्र तत्र तत् ॥१३१॥
अहिंसादिगुणा यस्मिन् बृंहन्ति ब्रह्मतत्त्वतः । [5]अब्रह्मान्यत्तु[6] रत्यर्थं स्त्रीपुंसमिथुनेहितम् ॥१३२॥
गवाश्वमणिमुक्तादौ चेतनाचेतने धने । बाह्येऽबाह्ये च रागादौ हेयो[7] मूर्च्छा परिग्रहः[8] ॥१३३॥
तेभ्यो विरतिरूपाण्यहिंसादीनि व्रतानि हि । महत्त्वाणुत्वयुक्तानि यस्य सन्ति व्रती तु सः ॥१३४॥
सत्यपि व्रतसंबन्धे निश्शल्यस्तु[9] व्रती मतः[10] । मायानिदानमिथ्यात्वं शाल्यं शल्यमिव त्रिधा ॥१३५॥
[11]सागारश्चानगारश्च द्वाविह व्रतिनौ मतौ । [12]सागारोऽणुव्रतोऽत्र स्यादनगारो महाव्रतः ॥१३६॥
सागारो रागभावस्थो वनस्थोऽपि कथंचन । निवृत्तरागभावो यः सोऽनगारो गृहोषितः ॥१३७॥
त्रसस्थावरकायेषु त्रसकायापरोपणात् । विरतिः प्रथमं प्रोक्तमहिंसाख्यमणुव्रतम् ॥१३८॥

उनका विच्छेद करना सो हिंसा पाप है ॥१२७॥ प्राणियोंके दुःखका कारण होनेसे प्रमादी मनुष्य जो किसीके प्राणोंका वियोग करता है वह अधर्मका कारण है—पापबन्धका निमित्त है परन्तु समितिपूर्वक प्रवृत्ति करनेवाले प्रमादरहित जीवके कदाचित् यदि किसी जीवके प्राणोंका वियोग हो जाता है तो वह उसके लिए बन्धका कारण नहीं होता है ॥१२८॥ प्रमादी आत्मा अपनी आत्माका अपने-आपके द्वारा पहले घात कर लेता है पीछे दूसरे प्राणियोंका वध होता भी है और नहीं भी होता है ॥१२९॥ विद्यमान अथवा अविद्यमान वस्तुको निरूपण करनेवाला प्राणि-पीड़ाकारक वचन असत्य अथवा अनृत वचन कहलाता है। इसके विपरीत जो वचन प्राणियोंका हित करनेवाला है वह ऋत अथवा सत्यवचन कहलाता है ॥१३०॥ बिना दी हुई वस्तुका स्वयं ले लेना चोरी कही जाती है। परन्तु जहाँ संक्लेश परिणामपूर्वक प्रवृत्ति होती है वहीं चोरी होती है ॥१३१॥ जिसमें अहिंसादि गुणोंकी वृद्धि हो वह वास्तविक ब्रह्मचर्य है। इससे विपरीत सम्भोगके लिए स्त्री-पुरुषोंकी जो चेष्टा है वह अब्रह्म है ॥१३२॥ गाय, घोड़ा, मणि, मुक्ता आदि चेतन, अचेतनरूप बाह्य धनमें तथा रागादिरूप अन्तरंग विकारमें ममताभाव रखना परिग्रह है। यह परिग्रह छोड़ने योग्य है ॥१३३॥ इन हिंसादि पाँच पापोंसे विरत होना सो अहिंसा आदि पाँच व्रत हैं। ये व्रत महाव्रत और अणुव्रतके भेदसे दो प्रकारके हैं तथा जिसके ये होते हैं वह व्रती कहलाता है ॥१३४॥ व्रतका सम्बन्ध रहनेपर भी जो निःशल्य होता है वही व्रती माना गया है। माया, निदान और मिथ्यात्वके भेदसे शल्य तीन प्रकारकी है। यह शल्य, शल्य अर्थात् काँटोंके समान दुःख देनेवाली है ॥१३५॥

सागार और अनगारके भेदसे व्रती दो प्रकारके माने गये हैं। इनमें अणुव्रतोंके धारी सागार कहलाते हैं और महाव्रतोंके धारक महाव्रती कहे जाते हैं ॥१३६॥ जो मनुष्य राग-भावमें स्थित है वह किसी तरह वनमें रहनेपर भी सागार—गृहस्थ है और जिसका रागभाव दूर हो गया है वह घरमें रहनेपर भी अनगार है ॥१३७॥ त्रस और स्थावरके भेदसे जीव दो

१. उच्चालिदम्हि पादे इरियासमिदस्स णिग्गमणट्ठाणे । आवादे[धे]ज्जकुलिगो मरेज्जातज्जोगमासेज्ज ॥१॥ ण हि तस्स तण्णिमित्तो बंधो सुहुसोवि देसिदो समए । मुच्छापरिग्गहो त्ति य अज्झप्पज्जाणदो भणिदो ॥२॥ सर्वार्थसिद्धौ उद्धृतम् । २. प्राण्यङ्गहरणात् म. । ३. यस्मात्सकषायः सन् हन्त्यात्मा प्रथममात्मनात्मानम् । पश्चाज्जायेत न वा हिंसा प्राण्यन्तराणां तु । पुरुषार्थसिद्ध्युपाय । ४. अदत्तादानं स्तेयम् । ५. मैथुनमब्रह्म । ६. अब्रह्मण्यं तु क., अब्रह्मान्यस्तु म., ङ. । ७. हेये म., ङ. । ८. मूर्च्छापरिग्रहः । ९. निःशल्यो व्रती । १०. यतः म. । ११. अगार्यनगारश्च । १२. अणुव्रतोऽगारी ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यद्रागद्वेषमोहादेः परपीडाकरादिह । अनृताद्विरतिर्यत्र तद्द्वितीयमणुव्रतम् ॥१३९॥
परद्रव्यस्य नष्टादेर्महतोऽल्पस्य चापि यत् । अदत्तत्वेऽस्य मादाने तत्तृतीयमणुव्रतम् ॥१४०॥
दारेषु परकीयेषु परित्यक्तरतिस्तु यः । स्वदारेष्वेव संतोषस्तच्चतुर्थमणुव्रतम् ॥१४१॥
स्वर्णदासगृहक्षेत्रप्रभृतेः परिमाणतः । [1]बुद्ध्येच्छापरिमाणाख्यं पञ्चमं तदणुव्रतम् ॥१४२॥
गुणव्रतान्यपि त्रीणि पञ्चाणुव्रतधारिणः । शिष्या (क्षा) व्रतानि चत्वारि भवन्ति गृहिणः सतः ॥१४३॥
यः प्रसिद्धैरभिज्ञानैः कृतावध्यनतिक्रमः । दिग्विदिक्षु गुणेष्वाद्यं वेद्यं दिग्विरतिर्व्रतम् ॥१४४॥
ग्रामादीनां प्रदेशस्य परिमाणकृतावधि । बहिर्गतिनिवृत्तिर्या तद्देशविरतिर्व्रतम् ॥१४५॥
पापोपदेशोऽपध्यानं [2]प्रमादाचरितं तथा । हिंसाप्रदानमशुभश्रुतिश्चापीति पञ्चधा ॥१४६॥
पापोपदेशहेतुर्योऽनर्थदण्डोऽपकारकः । अनर्थदण्डविरतिर्व्रतं तद्विरतिः स्मृतम् ॥१४७॥
पापोपदेश आदिष्टो वचनं पापसंयुतम् । यद्वणिग्वधकारम्भपूर्वं सावद्यकर्मसु ॥१४८॥
अपध्यानं जयः स्वस्य यः परस्य पराजयः । वधबन्धार्थहरणं कथं स्यादिति चिन्तनम् ॥१४९॥
वृक्षादिच्छेदनं भूमिकुट्टनं जलसेचनम् । इत्याद्यनर्थकं कर्म प्रमादाचरितं तथा ॥१५०॥
विषकण्टकशस्त्राग्निरज्जुदण्डकशादिनः । दानं हिंसाप्रदानं हि हिंसोपकरणस्य वै ॥१५१॥
हिंसारागादिसंवर्धिदुःकथाश्रुतिशिक्षयोः[3] । पापबन्धनिबन्धो यः स स्यात्पापाशुभश्रुतिः ॥१५२॥
माध्यस्थ्यैकत्वगमनं देवतास्मरणस्थितेः[4] । सुखदुःखारिमित्रादौ बोध्यं सामायिकं व्रतम् ॥१५३॥

प्रकारके हैं। इनमें-से त्रसकायिक जीवोंके विघातसे विरत होना पहला अहिंसाणुव्रत कहा गया है ॥१३८॥ जिसमें राग, द्वेष, मोहसे प्रेरित हो पर-पीड़ाकारक असत्य वचनसे विरति होती है वह दूसरा सत्याणुव्रत है ॥१३९॥ दूसरेका गिरा-पड़ा या भुला हुआ द्रव्य चाहे अधिक हो चाहे थोड़ा, बिना दी हुई दशामें उसको नहीं लेना तीसरा अचौर्याणुव्रत है ॥१४०॥ परस्त्रियोंमें राग छोड़कर अपनी स्त्रियोंमें ही जो सन्तोष होता है वह चौथा ब्रह्मचर्याणुव्रत है ॥१४१॥ सुवर्ण, दास, गृह तथा खेत आदि पदार्थोंका बुद्धिपूर्वक परिमाण कर लेना इच्छापरिमाण नामका पाँचवाँ अणुव्रत है ॥१४२॥

पाँच अणुव्रतोंके धारक सद्गृहस्थके तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत भी होते हैं ॥१४३॥ दिशाओं और विदिशाओंमें प्रसिद्ध चिह्नों द्वारा की हुई अवधिका उल्लंघन नहीं करना सो दिग्व्रत नामका पहला गुणव्रत है ॥१४४॥ दिग्व्रतके भीतर यावज्जीवनके लिए किये हुए बृहत् परिमाणके अन्तर्गत कुछ समयके लिए जो ग्राम-नगर आदिकी अवधि की जाती है उससे बाहर नहीं जाना सो देशव्रत नामका दूसरा गुणव्रत है ॥१४५॥ पापोपदेश, अपध्यान, प्रमादाचरित, हिंसादान और दुःश्रुति ये पाँच प्रकारके अनर्थदण्ड हैं। जो पापके उपदेशका कारण है वह अपकार करनेवाला अनर्थदण्ड है उससे विरत होना सो अनर्थदण्ड-त्याग नामका तीसरा गुणव्रत है ॥१४६-१४७॥ वणिक् तथा वधक आदिके सावद्य कार्योंमें आरम्भ करानेवाले जो पापपूर्ण वचन हैं वह पापोपदेश अनर्थ दण्ड है ॥१४८॥ अपनी जय, दूसरेकी पराजय तथा वध, बन्धन एवं धनका हरण आदि किस प्रकार हो ऐसा चिन्तन करना सो अपध्यान है ॥१४९॥ वृक्षादिकका छेदना, पृथिवीका कूटना, पानीका सींचना आदि अनर्थक कार्य करना प्रमादाचरित नामका अनर्थदण्ड है ॥१५०॥ विष, कण्टक, शस्त्र, अग्नि, रस्सी, दण्ड तथा कोड़ा आदि हिंसाके उपकरणोंका देना सो हिंसादान नामका अनर्थदण्ड है ॥१५१॥ हिंसा तथा रागादिको बढ़ानेवाली दुष्ट कथाओंके सुनने तथा दूसरोंको शिक्षा देनेमें जो पापबन्धके कारण एकत्रित होते हैं वह पापसे युक्त दुःश्रुति नामका अनर्थदण्ड है ॥१५२॥

देवताके स्मरणमें स्थित पुरुषके सुख-दुःख तथा शत्रु-मित्र आदिमें जो माध्यस्थ्य भावकी

१. बुद्धेच्छा म., क., ङ.। २. पापोपदेशो हेतुर्यो ङ.। ३. शिक्षया म.। ४. स्थितिः म.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुराहारहानं यन्निरारम्भस्य पर्वसु । स प्रोषधोपवासोऽक्षाण्युपेत्यास्मिन्वसन्ति यत् ॥१५४॥
गन्धमाल्यान्नपानादिरुपभोग उपेत्य यः । भोगोऽन्यः परिभोगो यः परित्यज्यासनादिकः ॥१५५॥
परिमाणं तयोर्यत्र यथाशक्ति यथायथम् । उपभोगपरीभोगपरिमाणव्रतं हि तत् ॥१५६॥
मांसमद्यमधुद्यूतवेश्यास्त्रीनक्तभुक्तितः । विरतिर्नियमो ज्ञेयोऽनन्तकायादिवर्जनम्[2] ॥१५७॥
स संयमस्य वृद्ध्यर्थमततीत्यतिथिः स्मृतः । प्रदानं संविभागोऽस्मै यथाशुद्धि यथोदितम् ॥१५८॥
भिक्षौषधोपकरणप्रतिश्रयविभेदतः । संविभागोऽतिथिभ्यस्तु चतुर्विध उदाहृतः ॥१५९॥
सम्यक्कायकषायाणां बहिरन्तर्हि लेखना । सल्लेखनापि कर्तव्या कारणे मारणान्तिकी[3] ॥१६०॥
रागादीनामनुत्पत्तावागमोदितवर्त्मना[4] । अशक्यपरिहारे हि सान्ते सल्लेखना मता ॥१६१॥
अष्टौ निश्शङ्कतादीनामष्टानां प्रतियोगिनः । सम्यग्दृष्टेरतीचारास्त्याज्याः शङ्कादयः सताम्[5] ॥१६२॥
पञ्च पञ्च त्वतीचारा व्रतशीलेषु भाषिताः । यथाक्रममसी वेद्याः परिहार्याश्च तद्व्रतैः ॥१६३॥
गतिरोधकरो बन्धो वधो दण्डातिताडना । कर्णाद्यवयवच्छेदोऽप्यतिभ रातिरोपणम्[7] ॥१६४॥

प्राप्ति है उसे सामायिक नामका पहला शिक्षाव्रत जानना चाहिए ॥१५३॥ दो अष्टमी और दो चतुर्दशी इन चार पर्वके दिनोंमें निरारम्भ रहकर चार प्रकारके आहारका त्याग करना सो प्रोषधोपवास नामका दूसरा शिक्षाव्रत है। जिसमें इन्द्रियाँ बाह्य-संसारसे हटकर आत्माके समीप वास करती हैं वह उपवास कहलाता है ॥१५४॥ गन्ध, माला, अन्न, पान आदि उपभोग हैं और आसन आदिक परिभोग हैं। पास जाकर जो भोगा जाता है वह उपभोग कहलाता है और जो एक बार भोगकर छोड़ दिया जाता है तथा पुनः भोगनेमें आता है वह परिभोग कहलाता है। जिसमें उपभोग तथा परिभोगका यथाशक्ति परिमाण किया जाता है वह उपभोग-परिभोग-परिमाणव्रत है ॥१५५-१५६॥ मांस, मदिरा, मधु, जुआ, वेश्या तथा रात्रिभोजनसे विरत होना एवं काम आदि जीवोंका त्याग करना सो नियम कहलाता है ॥१५७॥ जो संयमकी वृद्धिके लिए निरन्तर भ्रमण करता रहता है वह अतिथि कहलाता है उसे शुद्धिपूर्वक आगमोक्त विधिसे आहार आदि देना अतिथिसंविभाग व्रत है ॥१५८॥ भिक्षा, औषध, उपकरण और आवासके भेदसे अतिथि संविभाग चार प्रकारका कहा गया है ॥१५९॥ मृत्युके कारण उपस्थित होनेपर बहिरंगमें शरीर और अन्तरंगमें कषायोंका अच्छी तरह कृश करनी सल्लेखना कहलाती है। व्रती मनुष्यको मरणान्तकालमें यह सल्लेखना अवश्य ही करनी चाहिए ॥१६०॥ जब अन्त अर्थात् मरणका किसी तरह परिहार न किया जा सके तब रागादिकी अनुत्पत्तिके लिए आगमोक्त मार्गसे सल्लेखना करना उचित माना गया है ॥१६१॥

निःशंकित आदि आठ अंगोंके विरोधी शंका, कांक्षा आदि आठ दोष सम्यग्दर्शनके अतिचार हैं। सत्पुरुषोंको इनका त्याग अवश्य ही करना चाहिए ॥१६२॥ पाँच अणुव्रत तथा सात शील व्रतोंमें प्रत्येकके पाँच-पाँच अतिचार होते हैं। यहाँ यथाक्रमसे उनका वर्णन किया जाता है। तद्-तद् व्रतोंके धारक मनुष्योंको उन अतिचारोंका अवश्य ही परिहार करना चाहिए ॥१६३॥ जीवोंकी गतिमें रुकावट डालनेवाला बन्ध, दण्ड आदिसे अत्यधिक पीटना-वध, कान आदि अवयवोंका छेदना, अधिक भार लादना और भूख आदिकी बाधा करनेवाला

---

१. इन्द्रियाणि। २. अल्पफलबहुविघातान्मूलकार्द्रकनवनीतकादीनि संधानकादीनि, बहुजन्तुयोनिस्थानानि, अतोऽन्यदनिष्ठान्निवर्तनम् (क. टि.)। ३. मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता–त. सू.। ४. रागादीनां समुत्पत्ता-म.। ५. तत्त्वार्थसूत्रे तु पञ्चैव अतिचाराः प्रतिपादिताः। तथाहि—'शंका-कांक्षा-विचिकित्सान्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतिचाराः'–त. सू.। ६. कर्णाद्यपनयच्छेदो। ७. वधबन्धच्छेदिताभारारोपणान्नपाननिरोधाः ॥२५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्नपाननिरोधस्तु क्षुद्बाधादिकरोऽङ्गिनाम् । अहिंसाणुव्रतस्योक्ता अतिचारास्तु पञ्च ते ॥१६५॥
अतिसन्धापनं मिथ्योपदेश इह चान्यथा । यदभ्युदयमोक्षार्थक्रियास्वन्यप्रवर्तनम् ॥१६६॥
रहोभ्याख्यानमेकान्तस्त्रीपुंसेहाप्रकाशनम् । कूटलेखक्रियान्येन स्वनुक्तस्य स्वलेखनम् ॥१६७॥
विस्मृतन्यस्तसंख्यस्य स्वल्पं स्वं संप्रगृह्णतः । न्यासापहार एतावदित्यनुज्ञापकं वचः ॥१६८॥
साकारमन्त्रभेदोऽसौ भ्रूविक्षेपादिकेङ्गितैः । पराकूतस्य बुद्ध्वाविर्भावनं यदसूयया ॥१६९॥
यत्सत्याणुव्रतस्यामी पञ्चातीचारकाश्चिरम् । परिहार्याः समर्यादैर्विचार्याचार्यवेदिभिः[1] ॥१७०॥
[3]त्रैधस्तेनप्रयोगस्तैराहृतादानमात्मनः । अन्यो विरुद्धराज्यातिक्रमश्चाक्रमकक्रये ॥१७१॥
हीनेन दानमन्येषामधिकेनात्मनो ग्रहः । प्रस्थादिमानभेदेन तुलाद्युन्मानवस्तुनः ॥१७२॥
रूपकैः कृत्रिमैः स्वर्णैर्वचनः प्रतिरूपकः । व्यवहारस्त्वतीचारास्तृतीयाणुव्रतस्य ते[5] ॥१७३॥
[6]परविवाहकरणमनङ्गक्रीडया गती । गृहीतागृहीतेत्वर्योः कामतीव्राभिवेशनम् ॥१७४॥
एते स्वदारसन्तोषव्रतस्याणुव्रतात्मनः । अतीचाराः स्मृताः पञ्च परिहार्याः प्रयत्नतः ॥१७५॥

अन्नपानका निरोध ये पाँच अहिंसाणुव्रतके अतिचार कहे गये हैं ॥१६४–१६५॥ मिथ्योपदेश, रहोभ्याख्यान, कूटलेखक्रिया, न्यासापहार और साकारमन्त्रभेद ये पाँच सत्याणुव्रतके अतिचार हैं। किसीको धोखा देना तथा स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त करानेवाली क्रियाओंमें दूसरोंकी अन्यथा प्रवृत्ति कराना मिथ्योपदेश है। स्त्री-पुरुषोंकी एकान्त चेष्टाको प्रकट करना रहोभ्याख्यान है। जो बात दूसरेने नहीं कही है उसे उसके नामपर स्वयं लिख देना कूटलेखक्रिया है। कोई मनुष्य धरोहरमें रखे हुए धनकी संख्या भूलकर उससे स्वल्प ही धनका ग्रहण करता है तो उस समय ऐसे वचन बोलना कि 'हाँ इतना ही था ले जाओ' यह न्यासापहार है। भौंहका चलना आदि चेष्टाओंसे दूसरेके रहस्यको जानकर ईर्ष्यावश उसे प्रकट कर देना साकार मन्त्रभेद है। मर्यादाके पालक तथा आचार शास्त्रके ज्ञाता मनुष्योंको विचार कर इन अतिचारोंका अवश्य ही परिहार करना चाहिए ॥१६६–१७०॥ स्तेनप्रयोग, तदाहृतादान, विरुद्धराज्यातिक्रम, हीनाधिकमानोन्मान और प्रतिरूपकव्यवहार ये पाँच अचौर्याणुव्रतके अतिचार हैं। कृत कारित अनुमोदनासे चोरको चोरीमें प्रेरित करना स्तेनप्रयोग है। चोरोंके द्वारा चुराकर लायी हुई वस्तुका स्वयं खरीदना तदाहृतादान है। आक्रमणकर्ताकी खरीद होनेपर स्वकीय राज्यकी आज्ञाका उल्लंघन कर विरुद्ध राज्यमें आना-जाना, अपने देशकी वस्तुएँ वहाँ लेजाकर बेचना विरुद्ध-राज्यातिक्रम नामका अतिचार है। प्रस्थ आदि मानमें भेद और तुला आदि उन्मानमें भेद रखकर हीन मानोन्मानसे दूसरोंको देना और अधिक मानोन्मानसे स्वयं लेना हीनाधिक मानोन्मान नामका अतिचार है। कृत्रिममिलावटदार सोना, चाँदी आदिके द्वारा दूसरोंको ठगना प्रतिरूपक नामका अतिचार है ॥१७१–१७३॥ परविवाहकरण, अनंगक्रीड़ा, गृहीतेत्वरिकागमन, अगृहीतेत्वरिकागमन और कामतीव्राभिनिवेश ये पाँच स्वदारसन्तोषव्रतके अतिचार हैं। प्रयत्नपूर्वक इनका परिहार करना चाहिए। अपनी या अपने संरक्षणमें रहनेवाली सन्तानके सिवाय दूसरेकी सन्तानका विवाह कराना परविवाहकरण है। काम-सेवनके लिए निश्चित अंगोंके अतिरिक्त अंगोंके द्वारा काम सेवन करना

१. विचार्याचार्यवेदिभिः म.। २. मिथ्योपदेशरहोभ्याख्यानकूटलेखक्रियान्यासापहारसाकारमन्त्रभेदाः ॥२६॥ –त. सू अ. ७। ३. मुह्यन्तं स्वयमेव प्रयुङ्क्ते अन्येन वा प्रयोजयति, प्रयुक्तमनुमन्यते वा यतः स स्तेनप्रयोगः (क. टि.)। ४. मित्येषा–म., क., ङ.। ५. स्तेनप्रयोगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रमहीनाधिकमानोन्मानप्रतिरूपकव्यवहाराः ॥ २७ । ६. परविवाहकरणेत्वरिकापरिगृहीताऽपरिगृहीतागमनानङ्गक्रीडाकामतीव्राभिनिवेशाः ॥ २८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]हिरण्यस्वर्णयोर्वास्तुक्षेत्रयोर्धनधान्ययोः । दासीदासाद्ययोः पञ्च कुप्यस्यैते व्यतिक्रमाः ॥१७६॥
[2]दिग्विरत्यतिचारोऽधस्तिर्यगूर्ध्वव्यतिक्रमाः । लोभात्स्मृत्यन्तराधानं [3] क्षेत्रवृद्धिश्च पञ्चधा ॥१७७॥
[4]प्रेष्यप्रयोगानयनपुद्गलक्षेपलक्षणाः । शब्दरूपानुपातौ द्वौ तद्देशविरतिर्व्रते ॥१७८॥
पञ्च कन्दर्पकौत्कुच्यमौखर्याणि तृतीयके । असमीक्ष्याधिकरणोपभोगादिनिरर्थने ॥१७९॥

अनंगक्रीड़ा है। दूसरेके द्वारा गृहीत व्यभिचारिणी स्त्रीके यहाँ जाना गृहीतेत्वरिकागमन है। दूसरेके द्वारा अगृहीत व्यभिचारिणी स्त्रीके यहाँ जाना अगृहीतेत्वरिकागमन है। और स्वस्त्रीके साथ भी काम सेवनमें अधिक लालसा रखना कामतीव्राभिनिवेश है ॥१७४–१७५॥ हिरण्य-सुवर्ण, वास्तु-क्षेत्र, धन-धान्य, दासी-दास और कुप्य—बर्तन, चाँदी आदिको हिरण्य तथा सोना व सोनेके आभूषण आदिको सुवर्ण कहते हैं। रहनेके मकानको वास्तु और गेहूँ, चना आदिके उत्पत्ति-स्थानोंको क्षेत्र कहते हैं। गाय, भैंस आदिको धन तथा गेहूँ, चना आदि अनाजको धान्य कहते हैं। दासी-दास शब्दका अर्थ स्पष्ट है। बर्तन तथा वस्त्रको कुप्य कहते हैं। इनके प्रमाणका उल्लंघन करना सो हिरण्यसुवर्णातिक्रम आदि अतिचार होते हैं ॥१७६॥

अधोव्यतिक्रम, तिर्यग्व्यतिक्रम, ऊर्ध्वव्यतिक्रम, स्मृत्यन्तराधान और क्षेत्रवृद्धि ये पाँच दिग्व्रतके अतिचार हैं। लोभके वशीभूत होकर नीचेकी सीमाका उल्लंघन करना अधोव्यतिक्रम है, समान धरातलकी सीमाका उल्लंघन करना तिर्यग्व्यतिक्रम है। ऊपरकी सीमाका उल्लंघन करना ऊर्ध्वव्यतिक्रम है। की हुई सीमाको भूलकर अन्य सीमाका स्मरण रखना स्मृत्यन्तरा-धान है तथा मर्यादित क्षेत्रकी सीमा बढ़ा लेना क्षेत्रवृद्धि है ॥१७७॥ प्रेष्य प्रयोग, आनयन, पुद्गल क्षेप, शब्दानुपात और रूपानुपात ये पाँच देशव्रतके अतिचार हैं। मर्यादाके बाहर सेवकको भेजना प्रेष्यप्रयोग है। मर्यादासे बाहर किसी वस्तुको बुलाना आनयन है। मर्यादाके बाहर कंकड़-पत्थर आदिका फेंकना पुद्गलक्षेप है, मर्यादाके बाहर अपना शब्द भेजना शब्दानुपात है और मर्यादाके बाहर काम करनेवाले लोगोंको अपना रूप दिखाकर सचेत करना रूपानुपात है ॥१७८॥

कन्दर्प, कौत्कुच्य, मौखर्य, असमीक्ष्याधिकरण और उपभोगपरिभोगानर्थक्य ये पाँच अनर्थदण्ड व्रतके अतिचार हैं। रागकी उत्कष्टतासे हास्यमिश्रित भण्ड वचन बोलना कन्दर्प है। शरीरसे कुचेष्टा करना कौत्कुच्य है। आवश्यकतासे अधिक बोलना मौखर्य है। प्रयोजनका विचार न रख आवश्यकतासे अधिक किसी कार्यमें प्रवृत्ति करना-कराना असमीक्ष्याधिकरण है और उपभोग-परिभोगकी वस्तुओंका निरर्थक संग्रह करना उपभोगपरिभोगानर्थक्य है ॥१७९॥ मनो-योग दुष्प्रणिधान, वचनयोग दुष्प्रणिधान, काययोग दुष्प्रणिधान, अनादर और स्मृत्यनुपस्थान ये पाँच सामायिक शिक्षाव्रतके अतिचार हैं। मनको अन्यथा चलायमान करना मनोयोगदुष्प्रणि-धान है, वचनकी अन्यथा प्रवृत्ति करना—पाठका अशुद्ध उच्चारण करना वचनयोग दुष्प्रणि-धान है। कायको चलायमान करना काययोग दुष्प्रणिधान है। सामायिकके प्रति आदर वा उत्साह नहीं होना—बेगार समझकर करना अनादर है और चित्तकी एकाग्रता न होनेसे सामा-यिककी विधि या पाठका भूल जाना अथवा कार्यान्तरमें उलझकर सामायिकके समयका स्मरण

१. क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्यप्रमाणातिक्रमाः ॥ २९ ॥ २. ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धि-स्मृत्यन्तराधानानि ॥ ३० ॥ ३. आनयनप्रेष्यप्रयोगशब्दरूपानुपातपुद्गलक्षेपाः ॥ ३१ ॥ स्मृत्यन्तराध्यानं क. । ४. कन्दर्पकौत्कुच्यमौखर्यासमीक्ष्याधिकरणोपभोगपरिभोगानर्थक्यानि ॥ ३२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]योगनिःप्रणिधानानि त्रीण्यनादरता च ते । पञ्च स्मृत्यनुपस्थानं स्युः सामायिकगोचराः ॥१८०॥
[2]अनवेक्ष्य मलोत्सर्गादानसंस्तरसंक्रमाः । स्युः प्रोषधोपवासस्य ते नैकाग्र्यमनादरः[3] ॥१८१॥
[4]सचित्ताहारसंबन्धसन्मिश्राभिषवास्तु ते । उपभोगपरीभोगे दुष्पक्वाहार एव च ॥१८२॥
[5]ते सचित्तेन निक्षेपः सचित्तावरणं परम् । व्यपदेशश्च[6] मात्सर्यं कालातिक्रमतातिथौ ॥१८३॥
[7]आशंसे जीविते मृत्यौ निदानं दीनचेतसः । सुखानुबन्धमित्रानुरागौ सल्लेखनामलाः ॥१८४॥
सम्यग्ज्ञानादिवृद्ध्यादिस्वपरानुग्रहेच्छया । दानं त्यागोऽतिसर्गाख्यः[8] प्रासुकं स्वस्य[9] पात्रगम् ॥१८५॥
विधिदेयविशेषाभ्यां दातृपात्रविशेषतः । भेदः फलस्य भूम्यादेर्भेदात्सस्यर्द्धिभेदवत्[10] ॥१८६॥
प्रतिग्रहादिषु प्रायः सादरानादरत्वतः । दानकाले विधौ भेदः फलभेदस्य कारकः ॥१८७॥
तपःस्वाध्यायवृद्ध्यादेर्देयभेदोऽपि हेतुतः[11] । एकं हि साम्यकृद्देयं ततो वैषम्यकृत्परम् ॥१८८॥

नहीं रखना स्मृत्यनुपस्थान है ॥१८०॥ बिना देखी हुई जमीनमें मलोत्सर्ग करना, बिना देखे किसी वस्तुको उठाना, बिना देखी हुई भूमिमें बिस्तर आदि बिछाना, चित्तकी एकाग्रता नहीं रखना और व्रतके प्रति आदर नहीं रखना ये पाँच प्रोषधोपवास व्रतके अतिचार हैं ॥१८१॥ सचित्ताहार, सचित्त सम्बन्धाहार, सचित्त सन्मिश्राहार, अभिषवाहार और दुष्पक्वाहार ये पाँच उपभोग-परिभोगपरिमाण व्रतके अतिचार हैं। सचित्त—हरी वनस्पति आदिका आहार करना सचित्ताहार है। सचित्तसे सम्बन्ध रखनेवाले आहार-पानको ग्रहण करना सचित्त सम्बन्धाहार है। सचित्तसे मिली हुई अचित्त वस्तुका सेवन करना सचित्तसन्मिश्राहार है। गरिष्ठ पदार्थोंका सेवन करना अभिषवाहार है और अधपके अथवा अधिक पके आहारका ग्रहण करना दुष्पक्वाहार है ॥१८२॥ सचित्त-निक्षेप, सचित्तावरण, पर-व्यपदेश, मात्सर्य और कालातिक्रमता ये पाँच अतिथिसंविभाग व्रतके अतिचार हैं। हरे पत्ते आदिपर रखकर आहार देना सचित्तनिक्षेप है। हरे पत्ते आदिसे ढका हुआ आहार देना सचित्तावरण है। अन्य दाताके द्वारा देय वस्तुका देना परव्यपदेश है। अन्य दाताओंके गुणको नहीं सहन करना मात्सर्य है और समय उल्लंघन कर देना कालातिक्रम है ॥१८३॥ जीविताशंसा, मरणाशंसा, निदान, सुखानुबन्ध और मित्रानुराग ये पाँच सल्लेखनाके अतिचार हैं। क्षपकका दीनचित्त होकर अधिक समय तक जीवित रहनेकी आकांक्षा रखना जीविताशंसा है। पीड़ासे घबड़ाकर जल्दी मरनेकी इच्छा करना मरणाशंसा है। आगामी भोगोंकी आकांक्षा करना निदान है। पहले भोगे हुए सुखका स्मरण रखना सुखानुबन्ध है और मित्रोंसे प्रेम रखना मित्रानुराग है ॥१८४॥ सम्यग्ज्ञानादि गुणोंकी वृद्धि आदि स्व-परके उपकारकी इच्छासे योग्य पात्रके लिए प्रासुक द्रव्यका देना त्याग कहलाता है, इसका दूसरा नाम अतिसर्ग भी है ॥१८५॥ जिस प्रकार भूमि आदिके भेदसे धान्यकी उत्पत्ति आदिमें भेद होता है उसी प्रकार विधि द्रव्य दाता और पात्रकी विशेषतासे दानके फलमें भेद होता है ॥१८६॥ दानके समय पडगाहने आदिकी क्रियाओंमें आदर या अनादरके होनेसे दानकी विधिमें भेद हो जाता है और वह फलके भेदका करनेवाला हो जाता हैं ॥१८७॥ तप तथा स्वाध्यायकी वृद्धि आदिका कारण होनेसे देयमें भेद होता है। यथार्थमें एक पदार्थ तो ऐसा है जो लेनेवालेके लिए समताभाव-का करनेवाला होता है और दूसरा पदार्थ ऐसा है जो विषमताका करनेवाला होता है। इसलिए

१. योगदुष्प्रणिधानानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥३३॥ २. अप्रवेक्ष्य ख.। ३. अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्गादानसंस्तरोपक्रमणानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥३४॥ ४. सचित्तसम्बन्धसम्मिश्राभिषवदुष्पक्वाहराः ॥३५॥ ५. सचित्तनिक्षेपापिधानपरव्यपदेशमात्सर्यकालातिक्रमाः ॥३६॥ ६. अन्यदातृदेयार्पणं परव्यपदेशः (का. टि.) ७. जीवितमरणाशंसामित्रानुरागसुखानुबन्धनिदानानि ॥३७॥ ८. निसर्गाख्यः म.। ९. अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम् ॥३८॥ १०. विधिद्रव्यदातृपात्रविशेषात्तद्विशेषः ॥३९॥ ११. हेतुता म., ङ.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]अनसूयाविषादादिरसूयादिपरस्त्वयम् । दायकस्य विशेषोऽपि विचित्रा हि मनोगतिः ॥१८९॥
मोक्षकारणभूतानां दानानां धारणे सताम् । तारतम्यं मनःशुद्धेर्विशेषः पात्रगोचरः ॥१९०॥
पुण्यास्रवः सुखानां हि हेतुरभ्युदयावहः । हेतुः संसारदुःखानामपुण्यास्रव इष्यते ॥१९१॥
[2]मिथ्यादर्शनमात्मस्थं हिंसाद्यविरतिस्तथा । प्रमादश्च कषायश्च योगो बन्धस्य हेतवः ॥१९२॥
तन्मिथ्यादर्शनं द्वेधा निसर्गान्योपदेशतः । मिथ्याकर्मोदयादाद्यं तत्त्वाश्रद्धानलक्षणम् ॥१९३॥
परोपदेशपूर्वं तु चतुर्धा मतभेदतः । क्रियावाद्यक्रियावादिविनयाज्ञानिकत्वतः ॥१९४॥
एकान्तविपरीतत्वविनयाज्ञानसंशयैः । निमित्तैः पञ्चधा चापि मिथ्यादर्शनमिष्यते ॥१९५॥
द्विषोढाऽविरतिर्ज्ञेया प्रमादोऽनेकधा स्थितः । नवभिर्नोकषायैस्तु कषायाः पञ्चविंशतिः ॥१९६॥
[3]चत्वारः स्युर्मनोयोगा वाग्योगाश्च तथैव ते । काययोगास्तु पञ्चापि मता योगास्त्रयोदश ॥१९७॥

देय द्रव्यमें भेद होनेसे दानके फलमें भी भेद होता है ॥१८८॥ कोई दाता तो ईर्ष्या, विषाद आदि दुर्गुणोंसे रहित होता है और कोई दाता ईर्ष्या आदि दुर्गुणोंसे युक्त होता है। यही दाताकी विशेषता है। यथार्थमें मनकी गति विचित्र होती है ॥१८९॥ मोक्षके कारणभूत दानोंके ग्रहण करनेमें सत्पुरुषोंके मनकी शुद्धिका जो तारतम्य—हीनाधिकता है वह पात्रकी विशेषता है ॥१९०॥ पुण्यास्रव अनेक कल्याणोंकी प्राप्ति करानेवाला होनेसे सुखोंका कारण कहा जाता है और पापास्रव संसारके दुःखोंका कारण माना जाता है ॥१९१॥ इस प्रकार आस्रव तत्त्वका वर्णन होनेके बाद भगवान्‌की दिव्य ध्वनिमें बन्ध तत्त्वका वर्णन प्रारम्भ हुआ।

आत्मपरिणामोंमें स्थित मिथ्यादर्शन, हिंसा आदि अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये बन्धके कारण हैं ॥१९२॥ इनमें मिथ्यादर्शन, निसर्गज (अगृहीत) और अन्योपदेशज (गृहीत) के भेदसे दो प्रकारका है। मिथ्यात्वकर्मके उदयसे जो तत्त्वका अश्रद्धान होता है वह निसर्गज मिथ्यादर्शन है ॥१९३॥ और परोपदेशपूर्वक होनेवाले अतत्त्व श्रद्धानको अन्योपदेशज मिथ्यादर्शन कहते हैं। इसके क्रियावादी, अक्रियावादी, वैनयिक और अज्ञानीके भेदसे चार भेद हैं ॥१९४॥ इनके सिवाय एकान्त, विपरीत, विनय, अज्ञान और संशय इन निमित्तोंकी अपेक्षा मिथ्यादर्शन पाँच प्रकारका भी माना जाता है। वस्तु अनेक धर्मात्मक है परन्तु उसे एक धर्मरूप ही श्रद्धान करना एकान्त मिथ्यादर्शन है, जैसे वस्तु नित्य ही है अथवा अनित्य ही है। वस्तुका जैसा स्वरूप है उससे विपरीत श्रद्धान करना सो विपरीत मिथ्यादर्शन है जैसे हिंसामें धर्म मानना, सग्रन्थवेषसे मोक्ष मानना आदि। देव-अदेव, और तत्त्व अतत्त्वका विवेक न रखकर सबको एक-सा मानना तथा सबकी भक्ति करना वैनयिक मिथ्यादर्शन है। हिताहितकी परीक्षा-रहित अज्ञान-मूलक रूढिवश श्रद्धान करना सो अज्ञान मिथ्यादर्शन है और सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्-चारित्र मोक्षका मार्ग है या नहीं ? अहिंसामें धर्म है या हिंसामें। इस प्रकार सन्देह रूप श्रद्धान करना संशय मिथ्यादर्शन है ॥१९५॥ पाँच स्थावर और त्रस इन छह कायके जीवोंकी हिंसाका त्याग नहीं करना, तथा पाँच इन्द्रिय और मनको वश नहीं करना यह बारह प्रकारकी अविरति है। प्रमाद अनेक प्रकारका है और नौ नोकषायोंको साथ मिलाकर अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ आदिके भेदसे कषायके पच्चीस भेद हैं ॥१९६॥ सत्यमनोयोग, असत्यमनोयोग, उभयमनोयोग और अनुभयमनोयोगके भेदसे मनोयोग चार प्रकारके हैं। सत्यवचनयोग, असत्यवचनयोग, उभयवचनयोग

---

१. अनुसूया म.। २. मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतवः ॥१॥ त सू अ. ८। ३. चत्वारो मनोयोगाः चत्वारो वाग्योगाः पञ्चकाययोगा इति त्रयोदश विकल्पो योगः। आहारककाययोगाः आहारकमिश्र-काययोगयोः प्रमत्तसंयते सम्भवात् पञ्चदशापि भवन्ति—स. सि. अ. ८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समस्तव्यस्तरूपास्तु पञ्चैते बन्धहेतवः । मिथ्यादृष्टेर्हि पञ्चोर्ध्वं चत्वारस्त्रिषु पश्चिमाः ॥१९८॥
विरत्यविरतिर्मिश्राः प्रमादाद्यास्त्रयः परे । संयतासंयतस्योक्ताः कर्मबन्धस्य हेतवः ॥१९९॥
प्रमत्तसंयतस्यापि योगान्तास्त्रय एव ते । तत ऊर्ध्वं चतुर्णां तु कषायायोगसंगताः ॥२००॥
शान्तक्षीणकषायौ तौ सयोगकेवली तथा । बन्धका योगतन्मात्रादयोगो नैव बन्धकः ॥२०१॥
[1]कषायकलुषो ह्यात्मा कर्मणो योग्यपुद्गलान् । प्रतिक्षणमुपादत्ते स बन्धो नैकधा मतः ॥२०२॥
[2]प्रकृतिश्च स्थितिश्चापि स बन्धोऽनुभवस्ततः । प्रदेशबन्धभेदेन चातुर्विध्यं प्रपद्यते ॥२०३॥
प्रकृतिः स्यात्स्वभावोऽत्र निम्बादेस्तिक्ततादिवत् । कर्मणामिह सर्वेषां यथास्वं नियता स्थिता ॥२०४॥
अज्ञानं प्रकृतिर्ज्ञेया ज्ञानावरणकर्मणः । दृश्यार्थादर्शनं दृश्या दर्शनावरणस्य सा ॥२०५॥
सदसल्लक्षणस्यापि वेदनीयस्य कर्मणः । संवेदनं विदां वेद्यं प्रकृतिः सुख-दुःखयोः ॥२०६॥
दृष्टादर्शनमोहस्य तत्त्वाश्रद्धानमेव सा । तथा चारित्रमोहस्य महतोऽसंयमः सदा ॥२०७॥
प्रकृतिः प्रतिपन्ना तु भवधारणमायुषः । देवनारकनामादिकरणं नामकर्मणः ॥२०८॥

और अनुभव वचनयोगके भेदसे वचनयोगके चार भेद हैं। तथा औदारिक काययोग, औदारिक मिश्रकाययोग, वैक्रियिक काययोग, वैक्रियिक मिश्रकाययोग और कार्मण काययोगके भेदसे काययोगके पाँच भेद हैं। इस प्रकार सब मिलाकर योगके तेरह भेद हैं। भावार्थ—प्रमत्त संयत गुणस्थानमें आहारक काययोग और आहारक मिश्रकाययोगकी भी सम्भावना रहती है इसलिए उन्हें मिलानेपर योगके पन्द्रह भेद हो जाते हैं ॥१९७॥ ये मिथ्यादर्शनादि पाँच समस्त और व्यस्त रूपसे बन्धके कारण हैं। अर्थात् कहीं सब बन्धके कारण हैं और कहीं कम। मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें पाँचों ही बन्धके कारण हैं। उसके तीन गुणस्थानोंमें मिथ्यादर्शनको छोड़कर अन्तिम चार बन्धके कारण हैं ॥१९८॥ संयतासंयत नामक पंचम गुणस्थानमें विरति, अविरति, मिश्रित तथा प्रमाद आदि तीन कर्मबन्धके हेतु कहे गये हैं ॥१९९॥ प्रमत्तसंयत नामक छठे गुणस्थानवर्ती जीवके प्रमाद, कषाय और योग ये तीन बन्धके कारण हैं। इसके आगे चार गुणस्थानोंमें अर्थात् सातवेंसे लेकर दसवें गुणस्थान तक कषाय और योग ये दो बन्धके कारण हैं ॥२००॥ उपशान्तमोह, क्षीणमोह और सयोगकेवली इन तीन गुणस्थानोंके जीवमात्र योगके निमित्तसे कर्मबन्ध करते हैं। अयोगकेवली भगवान् योगका भी अभाव हो जानेसे कर्मोंका बन्ध नहीं करते हैं ॥२०१॥

कषायसे कलुषित जीव प्रत्येक क्षण कर्मके योग्य पुद्गलोंको ग्रहण करता है। वही बन्ध कहलाता है। यह बन्ध अनेक प्रकारका माना गया है ॥२०२॥ सामान्यरूपसे बन्ध प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशके भेदसे चार भेदोंको प्राप्त होता है ॥२०३॥ प्रकृतिका अर्थ स्वभाव होता है। जिस प्रकार नीम आदिकी प्रकृति तिक्तता आदि है उसी प्रकार समस्त कर्मोंकी अपनी-अपनी प्रकृति नियतरूपसे स्थित है ॥२०४॥ जैसे ज्ञानावरण कर्मकी प्रकृति अज्ञान अर्थात् पदार्थका ज्ञान नहीं होने देना। दर्शनावरण कर्मकी प्रकृति पदार्थोंका अदर्शन अर्थात् दर्शन नहीं होने देना है ॥२०५॥ साता, असातावेदनीय कर्मकी प्रकृति ज्ञानी मनुष्योंको क्रमसे सुख और दुःखका वेदन कराना है ॥२०६॥ दर्शनमोहकी प्रकृति तत्त्वका अश्रद्धान कराना है तथा अतिशय महान् चारित्रमोह कर्मकी प्रकृति सदा असंयम उत्पन्न करना है ॥२०७॥ आयुकर्मकी प्रकृति भवधारण करना है। नामकर्मकी प्रकृति जीवमें देव, नारकी आदि संज्ञाएँ उत्पन्न करना है ॥२०८॥

१. सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते स बन्धः ॥२॥ त. सू. अ. ८। २. प्रकृतिस्थित्यनुभवप्रदेशास्तद्विधयः ॥३॥ त. सू. अ. ८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोत्रस्योच्चैश्च नीचैश्च स्थानसंशब्दनं तथा । अन्तरायस्य दानादिविघ्नानां करणं घनम् ॥२०९॥
तदेवं लक्षणं कार्यं यत्तत्प्रक्रियते ततः । प्रकृतिस्तत्स्वभावस्य तथैवाप्रच्युतिः स्थितिः ॥२१०॥
यथाजागोमहिष्यादिक्षीराणां स्वस्वभावतः । माधुर्यादच्युतिस्तद्वत्कर्मणां प्रकृतिस्थितिः ॥२११॥
तीव्रमन्दादिभावेन क्षीरे रसविशेषवत् । कर्मपुद्गलसामर्थ्यविशेषोऽनुभवो मतः ॥२१२॥
कर्मत्वपरिणत्यात्मपुद्गलस्कन्धसंहतेः । प्रदेशः परमाण्वात्मपरिच्छेदावधारणा ॥२१३॥
[1]प्रकृतेः सप्रदेशाया नित्यं योगनिमित्तता । स्थितेः सानुभवायास्तु स्यात्कषायनिमित्तता ॥२१४॥
अनेनाव्रियते ज्ञानमावृणोतीति वा स्वयम् । ज्ञानावरणमाख्यातं दर्शनावरणं तथा ॥२१५॥
वेद्यते वेदयत्येवं वेदनीयमनेन वा । मोह्यते मोहयत्येवं मोहनीयमपीरितम् ॥२१६॥
नारकादिभवानेति स्वनेनेत्यायुरित्यपि । नम्यतेऽनेन वात्मानं नमयत्यपि नाम तत् ॥२१७॥
गूयते शब्द्यते गोत्रमुच्चैर्नीचैश्च यत्नतः । अन्तरायोऽन्तरं मध्यं देयादेरेति यत्नतः ॥२१८॥
एकात्मपरिणामेन गृह्यमाणा हि पुद्गलाः । नानाकर्मत्वमायान्ति प्रभुक्तान्नरसादिवत् ॥२१९॥
मूलप्रकृतिभेदोऽयमष्टभेदः प्रभावितः । उत्तरप्रकृतीनां तु भेदोऽतः परमुच्यते ॥२२०॥

गोत्र कर्मकी प्रकृति उच्च और नीच व्यवहार कराना है तथा अन्तराय कर्मकी प्रकृति दान आदिमें तीव्र विघ्न करना है ॥२०९॥ इसलिए ऐसा लक्षण करना चाहिए कि कर्मोंके द्वारा जो किया जाता है वही प्रकृतिबन्ध है और उनका अपने स्वभावसे च्युत नहीं होना सो स्थिति-बन्ध है ॥२१०॥

जिस प्रकार बकरी, गाय तथा भैंस आदिके दूध अपने-अपने स्वभावसे ही माधुर्य गुणसे च्युत नहीं होते हैं उसी प्रकार कर्म भी अपनी-अपनी प्रकृतिसे च्युत नहीं होते हैं ॥२११॥

जिस प्रकार दूधमें रसविशेष, तीव्र अथवा मन्द आदि भावसे रहता है उसी प्रकार कर्मरूप पुद्गलमें भी सामर्थ्य-विशेष तीव्र अथवा मन्द आदि भावसे रहता है। यही अनुभवबन्ध माना गया है ॥२१२॥ आत्माके कर्मरूप परिणत पुद्गल स्कन्धोंके समूहमें परमाणुके प्रमाणसे कल्पित परिच्छेदों—खण्डोंकी जो संख्या है वह प्रदेशबन्ध कहलाता है ॥२१३॥ प्रकृति और प्रदेशबन्ध योगके निमित्तसे होते हैं तथा स्थिति और अनुभवबन्ध कषायके निमित्तसे माने गये हैं ॥२१४॥

जिसके द्वारा ज्ञान ढँका जाये अथवा जो स्वयं ज्ञानको ढाँके वह ज्ञानावरण कर्म है। इसी प्रकार दर्शनावरण कर्मकी निरुक्तिका जानना चाहिए अर्थात् जिसके द्वारा दर्शन ढँका जाये अथवा जो स्वयं दर्शनको ढाँके उसे दर्शनावरण कर्म कहते हैं ॥२१५॥ जिसके द्वारा सुख-दुःखका वेदन—अनुभव कराया जाये अथवा जो स्वयं सुख-दुःखका अनुभव करे वह वेदनीय कर्म है। जिसके द्वारा जीव मोहित किया जाये अथवा जो स्वयं मोहित करे वह मोहनीय कर्म है ॥२१६॥ जीव जिसके द्वारा नरकादि भवको प्राप्त कराया जाये अथवा जो स्वयं नारकादि भवको प्राप्त हो वह आयु कर्म है। आत्मा जिसके द्वारा नाना नामोंको प्राप्त कराया जाये अथवा जो स्वयं आत्माको नाना नामोंसे युक्त करे वह नामकर्म है ॥२१७॥ आत्मा जिसके द्वारा प्रयत्नपूर्वक उच्च अथवा नीच कहा जाता है वह गोत्र कहलाता है और जो यत्नपूर्वक देय आदिके बीचमें आ जाता है वह अन्तराय कर्म है ॥२१८॥ जिस प्रकार एक बार खाया हुआ अन्न रस, रक्त आदि नानारूपताको प्राप्त होता है, उसी प्रकार एक आत्मपरिणामके द्वारा ग्रहण किये हुए पुद्गल नाना कर्मरूपताको प्राप्त हो जाते हैं ॥२१९॥ यह आठ

१. जोगा पयडि-पदेशा ठिदिअणुभागा कसायदो होंति । अपरिणदुच्छिण्णेसु य बंधट्ठिदिकारणं णत्थि ॥ गो. कर्म.॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पञ्चधा ज्ञानावरणं नवधा दर्शनावृतिः । द्विधा तु वेदनीयं स्यान्मोहोऽष्टाविंशतिस्थितिः ॥२२१॥
आयुश्चतुर्विधं नाम द्विचत्वारिंशदीरितम् । द्विविधं गोत्रमुद्गीतमन्तरायस्तु पञ्चधा ॥२२२॥
मतिश्रुतावधिज्ञानमनःपर्ययकेवलैः । आवृत्यैरावृतीः पञ्च ह्युत्तरप्रकृतीर्विदुः ॥२२३॥
द्रव्यार्थादेशतः [1]शक्तेर्मनःपर्ययकेवली । [2]अभव्योऽप्यस्ति यत्तत्स्थं ज्ञानावरणपञ्चकम् ॥२२४॥
व्यक्तियोग्यत्वसद्भावापेक्षा भव्यस्य भव्यता । कैवल्यव्यक्त्ययोग्यत्वादभव्यस्य ह्यभव्यता ॥२२५॥
चक्षुषोऽचक्षुषो दृष्टेरवधेः केवलस्य च । चत्वार्यावरणान्येवं निद्राद्यैः पञ्चभिर्नव ॥२२६॥
मदखेदविनोदार्थः स्वापो निद्राधिकत्वतः । उपर्युपरि तद्वृत्तिर्निद्रानिद्राभिधीयते ॥२२७॥

प्रकारका मूल प्रकृतिबन्ध कहा गया है, अब इसके आगे उत्तर प्रकृतियोंके भेद कहे जाते हैं ॥२२०॥

ज्ञानावरण पाँच प्रकारका है, दर्शनावरण नौ प्रकारका है, वेदनीय दो प्रकारका है, मोहनीय अट्ठाईस प्रकारका है, आयु चार प्रकारका है, नाम बयालीस प्रकारका है, गोत्र दो प्रकारका कहा गया है और अन्तराय पाँच प्रकारका है ॥२२१-२२२॥ मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये पाँच आवरण करने योग्य गुण हैं। इन्हें आवरण करनेवाले मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण ये पाँच ज्ञानावरण कर्मकी उत्तर प्रकृतियाँ हैं ॥२२३॥ द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा शक्तिरूपसे अभव्य जीव भी मनःपर्यय और केवलज्ञानसे युक्त है, अतः उसके भी ज्ञानावरणके पाँचों भेद स्थित हैं ॥२२४॥

भव्य जीवकी भव्यता उक्त गुणोंके प्रकट होनेकी योग्यताके सद्भावकी अपेक्षा रखती है और अभव्य जीवकी अभव्यता केवलज्ञान तथा मनःपर्ययज्ञानके प्रकट होनेकी योग्यता न होनेकी अपेक्षासे है। भावार्थ—किसीने प्रश्न किया था कि जब भव्य और अभव्य दोनोंके ही मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञानकी शक्ति विद्यमान है तब इनमें भव्यता और अभव्यताका भेद कैसे हुआ? इसका उत्तर ग्रन्थकर्ताने दिया है कि भव्य जीवके उन शक्तियोंकी प्रकटता हो जाती है और अभव्य जीवके उनकी प्रकटता नहीं होती ॥२२५॥

चक्षुर्दर्शनावरण, अचक्षुर्दर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण और केवलदर्शनावरण ये चार आवरण तथा निद्रा आदिक पाँच अर्थात् निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धि ये पाँच निद्राएँ सब मिलाकर दर्शनावरण कर्मकी नौ उत्तर प्रकृतियाँ हैं। जो जीवके चक्षुर्दर्शन—चक्षुइन्द्रियसे होनेवाले सामान्य अवलोकनको प्रकट न होने दे वह चक्षुर्दर्शनावरण है। जो अचक्षुर्दर्शन—चक्षुको छोड़कर अन्य इन्द्रियों तथा मनसे होनेवाले सामान्य अवलोकनको प्रकट न होने दे वह अचक्षुर्दर्शनावरण है। जो अवधिदर्शन—अवधिज्ञानके पहले प्रकट होनेवाले सामान्य अवलोकनको न होने दे यह अवधिदर्शनावरण है और जो केवलदर्शन—केवलज्ञानके साथ होनेवाले सामान्यावलोकनको न होने दे वह केवलदर्शनावरण है ॥२२६॥ मद तथा खेदको दूर करनेके लिए सोना निद्रा कहलाती है। ऊपर-ऊपर अधिक रूपसे निद्राका आना निद्रानिद्रा कही जाती

१. शक्तिर्मनः म., ख., ङ.। २. अभव्याप्यस्ति क., ङ.। अत्र चोद्यते—अभव्यस्य मनःपर्ययज्ञानशक्तिः केवलज्ञानशक्तिश्च स्याद्वा न वा? यदि स्यात् तस्याभव्यत्वाभावः। अथ नास्ति तत्रावरणद्वयकल्पना व्यर्थेति? उच्यते—आदेशवचनान्न दोषः। द्रव्यार्थादेशान्मनःपर्ययकेवलज्ञानशक्तिसंभवः। पर्यायार्थादेशात्तच्छक्त्यभावः। यद्येवं भव्याभव्यविकल्पो नोपपद्यते; उभयत्र तच्छक्तिसद्भावात्। न शक्तिभावाभावापेक्षया भव्याभव्यविकल्प इत्युच्यते। कुतस्तर्हि? व्यक्तिसद्भावासद्भावापेक्षया। स. सि. अ. ८ सूत्र ६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रमादिप्रभवात्मानं प्रचला प्रचलयत्यलम् । सा पुनः पुनरावृत्ता प्रचलाप्रचलाभिधा ॥२२८॥
स्त्यानगृद्धिर्यथास्त्याने स्वप्ने गृध्यति दीप्यते । आत्मा यदुदयाद्रौद्रं बहुकर्म करोति सा ॥२२९॥
शारीरं मानसं सौख्यं दुःखं चोदयते ययोः । स्यातां ते वेदनीये स्तः सातासाते यथाक्रमम् ॥२३०॥
सम्यक्त्वं चापि मिथ्यात्वं सम्यग्मिथ्यात्वमित्यदः । दृश्यं दर्शनमोहस्य ह्युत्तरं प्रकृतित्रिकम् ॥२३१॥
शुभात्मपरिणामेन निरुद्धस्वरसे स्थिते । मिथ्यात्वे श्रद्दधानस्य सम्यक्त्वप्रकृतिर्भवेत् ॥२३२॥
मिथ्यात्वे त्वर्धसंशुद्धे कोद्रवे मदशक्तिवत् । शुद्धाशुद्धात्मको भावः सम्यग्मिथ्यात्वमुच्यते ॥२३३॥
द्वेधा चारित्रमोहस्तु नोकषायकषायतः । नवधा नोकषायोऽत्र कषायाः षोडशोदितः ॥२३४॥
उदयाद्यस्य हासाविर्भावो हास्यं तदुत्सुकः । यस्योदयाद्रतिः सा स्यादरतिस्तद्विपर्ययः ॥२३५॥
शोचनं यद्विपाकात्स शोक उद्वेगकृद्भयम् । स्वदोषगोपनं यस्य जुगुप्सा सा जुगुप्सिता ॥२३६॥
भावांस्त्रैणान्यतो याति स स्त्रीवेदोऽतिगर्हितः । पुन्नपुंसकवेदौ स्तः पौंस्नान्नापुंसकात् यतः ॥२३७॥

है ॥२२७॥ थकावट आदिसे उत्पन्न होनेवाली जो निद्रा जीवको बैठे-बैठे ही अत्यधिक चपल कर देवे वह प्रचला है। प्रचला जब बार-बार अधिक रूपमें आती है तब प्रचलाप्रचला कहलाने लगती है ॥२२८॥ जिसके द्वारा आत्मा स्त्यान अर्थात् सोते समय गृद्धता करने लगे—किसी कर्ममें सचेष्ट हो जावे और जिसके उदयसे यह जीव अत्यधिक कठिन काम कर ले वह स्त्यानगृद्धि है। यह पाँच प्रकारकी निद्रा, दर्शनावरण कर्मके उदयसे आती है और इन निद्राओंके माध्यमसे दर्शनावरण कर्म आत्माके दर्शनगुणको घातता है ॥२२९॥ वेदनीय कर्मके दो भेद हैं—सातावेदनीय और असातावेदनीय। जिनके उदयसे शारीरिक और मानसिक सुख-दुःख उत्पन्न होते हैं वे यथाक्रमसे सातावेदनीय और असातवेदनीय कहलाते हैं ॥२३०॥

मोहनीय कर्मके मूलमें दो भेद हैं—१. दर्शनमोहनीय, २. चारित्रमोहनीय। इनमें-से दर्शनमोहनीयकी सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यङ्मिथ्यात्व ये तीन उत्तर प्रकृतियाँ हैं ॥२३१॥ आत्माके शुभ परिणामोंसे जब मिथ्यात्वप्रकृतिका स्वरस—फल देनेकी शक्ति रुक जाती है तब श्रद्धान करनेवाले जीवके सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होता है। इस प्रकृतिके उदयसे आत्माका श्रद्धानगुण तिरोहित नहीं होता किन्तु चल, मल, अगाढ़ दोषोंसे दूषित हो जाता है ॥२३२॥ मिथ्यात्व प्रकृतिके उदयसे श्रद्धान गुण विकृत हो जाता है और अतत्त्व श्रद्धानरूपी परिणति हो जाती है। अर्ध शुद्ध कोदोंकी मदशक्तिके समान मिथ्यात्व प्रकृतिके अर्द्ध शुद्ध होनेपर जीवका जो शुद्ध और अशुद्ध भाव एक साथ प्रकट होता है वह सम्यङ्मिथ्यात्व कहलाता है। सम्यङ्मिथ्यात्व प्रकृतिके उदयसे जीवके परिणाम दही और गुड़के मिश्रित स्वादके समान श्रद्धान और अश्रद्धान रूप होते हैं ॥२३३॥

नोकषाय और कषायके भेदसे चारित्रमोहके दो भेद हैं। इनमें नोकषायके नौ और कषायके सोलह भेद कहे गये हैं ॥२३४॥ हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसक वेद ये नौ नोकषायके भेद हैं। इनके लक्षण इस प्रकार हैं—जिसके उदयसे उत्सुक होता हुआ हास्य प्रकट हो वह हास्यकर्म है। जिसके उदयसे रति—प्रीति उत्पन्न हो वह रति कर्म है। जिसके उदयसे अरति—अप्रीति उत्पन्न हो वह अरति है। जिसके उदयसे शोक हो वह शोक है। जो उद्वेग—भय उत्पन्न करनेवाला है वह भय है। जिसके उदयसे अपने दोष छिपानेमें प्रवृत्ति हो वह जुगुप्सा है। जिसके उदयसे यह जीव स्त्रीके भावको अर्थात् पुरुषसे रमनेकी इच्छाको प्राप्त होता है वह स्त्रीवेद है। जिसके उदयसे पुरुषके भावको अर्थात् स्त्रीसे रमनेकी इच्छाको प्राप्त होता है वह पुरुषवेद है। और जिसके उदयसे नपुंसकके भावको—अर्थात् स्त्री-पुरुष दोनोंसे रमनेकी इच्छाको प्राप्त होता है वह नपुंसक वेद है ॥२३५-२३७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कषायाः क्रोधमानौ च मायालोभौ च घातकाः । सम्यक्त्वस्य सवृत्तस्य तत्रानन्तानुबन्धिनः[1] ॥२३८॥
यदीयोदयतो ह्यात्मा प्रत्याख्यातुं न शक्नुयात् । हिंसादीन्युदयांस्ते[2] स्युरप्रत्याख्यानसंज्ञकाः[2] ॥२३९॥
यदीयोदयतो जीवः संयमं न प्रपद्यते । ते क्रोधमानमायाद्याः[3] प्रत्याख्यानविनिःश्रुताः ॥२४०॥
यदीयोदयतो वृत्तं यथाख्यातं न जायते । ज्वलन्तः संयमेनामा ख्याताः[4] संज्वलनास्तु ते ॥२४१॥
नारकं नरकोद्भूतं तैर्यग्योनं च मानुषम् । दैवं चायुर्भवेत्तेषु चतुर्विधमितीरितम् ॥२४२॥
यदीयोदयतो जन्तुर्भवान्तरमियर्ति सा । गतिश्चतुर्विधा देवनरकादिविभेदतः ॥२४३॥
आत्मनो नरकादित्वं यन्निमित्तं प्रजायते । तत्स्यान्नरकगत्यादि गतिनाम चतुर्विधम् ॥२४४॥
गतिष्वेकीकृतार्था[5] सा साम्येनाभ्यभिचारिणा । जातिस्तस्या निमित्तं तु जातिनामात्र पञ्चधा ॥२४५॥
एकेन्द्रियादिकां जातिमुदयाद्यस्य जन्तवः । प्रयान्त्येन्द्रियाद्येतज्जातिनामाभिधीयते ॥२४६॥
शरीरपञ्चकस्यास्य निवृत्तिर्यस्य चोदयात् । औदारिकशरीरादि नाम पञ्चविधं तु तत् ॥२४७॥
अङ्गोपाङ्गविवेकः स्याच्छरीराणां यतस्तु तत् । त्रिधाङ्गोपाङ्गनामाख्यमौदारिकपुरस्सरम् ॥२४८॥
चक्षुरादीन्द्रियस्थानप्रमाणे जात्यपेक्षया[6] । ये निर्मापयतस्ते स्तो नाम्ना निर्माणनामनी ॥२४९॥

कषायके मूलमें अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलनके भेदसे चार भेद हैं। फिर प्रत्येकके क्रोध, मान, माया और लोभकी अपेक्षा चार-चार भेद हैं। इस प्रकार कषायके कुल सोलह भेद हैं। इनमें-से अनन्तानुबन्धी सम्बन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, सम्यग्दर्शन तथा स्वरूपाचरण चारित्रके घातक हैं ॥२३८॥ जिसके उदयसे आत्मा हिंसादि रूप परिणतियोंका त्याग करनेमें समर्थ न हो सके वे अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ हैं ॥२३९॥ जिनके उदयसे जीव संयमको प्राप्त न हो सके वे प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ हैं ॥२४०॥ और जिनके उदयसे यथाख्यात चारित्र प्रकट नहीं होता तथा जो संयमके साथ विद्यमान रहते हैं वे संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ हैं ॥२४१॥

नारक, तैर्यग्योन, मानुष और दैवके भेदसे आयु कर्म चार प्रकारका कहा गया है। आयु कर्मके उदयसे यह जीव नारकादि पर्यायोंमें उत्पन्न होता है ॥२४२॥

जिसके उदयसे जीव भवान्तरको प्राप्त होता है वह गति नाम कर्म है। देव तथा नारकादिके भेदसे गति नाम कर्म चार प्रकारका है ॥२४३॥ जिसके निमित्तसे आत्मामें नरकादि पर्याय प्रकट होती है वह चार प्रकारका नरकादि नाम कर्म है ॥२४४॥ उन नरकादि गतियोंमें जो अविरोधी समान धर्मसे आत्माको एक रूप करनेवाली अवस्था है उसे जाति कहते हैं। उस जातिका जो निमित्त है वह जाति नाम कर्म कहा जाता है इसके एकेन्द्रिय जाति आदि पाँच भेद हैं ॥२४५॥ जिसके उदयसे जीव एकेन्द्रियादि जातिको प्राप्त होते हैं वह एकेन्द्रियादि जाति नाम कर्म कहलाता है ॥२४६॥

जिसके उदयसे औदारिक आदि पाँच शरीरोंकी रचना होती है वह औदारिक शरीरादि पाँच प्रकारका शरीर नाम कर्म है ॥२४७॥ जिसके उदयसे शरीरोंमें अंगोपांगका-विवेक होता है वह औदारिक शरीरांगोपांगको आदि लेकर तीन प्रकारका अंगोपांग नाम कर्म है ॥२४८॥ जो जातिकी अपेक्षा चक्षु आदि इन्द्रियोंके स्थान और प्रमाणका निर्माण करते हैं वे

---

१. यस्यान्तो नास्ति सोऽनन्तः संसारस्तस्य कारणत्वात् मिथ्यात्वमपि अनन्तं तदनुबध्नन्तीत्यनन्तानुबन्धिनः । २. ईषत्प्रत्याख्यानमप्रत्याख्यानं तस्यावरणं यैस्तेऽप्रत्याख्यानावरणाः । ३. प्रत्याख्यानं चारित्रं तस्यावरणं यैस्ते प्रत्याख्यानावरणाः । ४. नामैकदेशेन सर्वदेशग्रहणात् सम् पदेन संयमस्य ग्रहणं तेन सह ज्वलतीति संज्वलनम् । ५. एकीगतार्था म. । ६. यदपेक्षया म., ङ. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्मोदयवशोपात्तपुद्गलान्योन्यबन्धनम् । शरीरेषूदयाद्यस्य भवेद्बन्धननाम तत् ॥२५०॥
यस्योदयाच्छरीराणां नीरन्ध्रान्योन्यसंहतिः । संघातनाम तन्नाम्ना संघातानामनत्ययात्[1] ॥२५१॥
शरीराकृतिनिर्वृत्तिर्यतो भवति देहिनाम् । संस्थाननाम तत् षोढा संस्थानकरणार्थतः ॥२५२॥
समादिचतुरस्रोतो न्यग्रोधपरिमण्डलम् । स्वातिसंस्थाननामापि कुब्जवामनहुण्डकम् ॥२५३॥
यतो भवति सुश्लिष्टमस्थिसंधानबन्धनम् । [2]तत्संहननानामापि नाम्ना षोढा विभज्यते ॥२५४॥
तद्वज्रर्षभनाराचवज्रनाराचकीलकाः । सनाराचार्धनाराचाः सासंप्राप्तसृपाटिकाः ॥२५५॥
स्पर्शनस्योदयाद्यस्य प्रादुर्भावेन भूयते । स्पर्शनाम भवत्येतत्प्रविभक्तमिवाष्टधा ॥२५६॥
ख्यातं कर्कशनामैकं मृदुनाम तथापरम् । गुरुनाम लघुस्निग्धरूक्षशीतोष्णनाम च ॥२५७॥

स्थाननिर्माण और प्रमाणनिर्माणके भेदसे दो प्रकारके निर्माण नाम कर्म हैं ॥२४९॥* जिसके उदयसे, कर्मोदयके वशसे प्राप्त पुद्गलोंका परस्पर संश्लेष होता है वह बन्धन नाम कर्म है। इसके औदारिक शरीर बन्धन आदि पाँच भेद हैं ॥२५०॥ जिसके उदयसे शरीरके प्रदेशोंका परस्पर छिद्ररहित संश्लेष होता है वह संघात नाम कर्म है। संघातोंका कभी अत्यय—विघटन नहीं होता इसलिए संघात नाम सार्थक है। इसके औदारिक शरीर संघात आदि पाँच भेद हैं ॥२५१॥ जिसके उदयसे जीवोंके शरीरकी आकृतिकी रचना होती है वह संस्थान नाम कर्म है। संस्थान अर्थात् आकृतिको करे सो संस्थान है यह संस्थान शब्दकी निरुक्ति है। वह संस्थान, समचतुरस्र संस्थान, न्यग्रोध परिमण्डल संस्थान, स्वाति संस्थान, कुब्जक संस्थान, वामन संस्थान और हुण्डक संस्थानके भेदसे छह प्रकारका होता है। जिसके उदयसे सुडौल—सुन्दर शरीरकी रचना हो वह समचतुरस्र संस्थान नाम कर्म है। जिसके उदयसे शरीरके अवयव न्यग्रोध—वट वृक्षके समान नाभिसे नीचे छोटे और नाभिसे ऊपर बड़े हों वह न्यग्रोध परिमण्डल नाम कर्म है। जिसके उदयसे शरीरकी रचना स्वाति—साँपकी वामीके समान नाभिके नीचे विस्तृत और नाभिसे ऊपर संकुचित हो वह स्वाति नाम कर्म है। जिसके उदयसे शरीरमें कूबड़ निकल आवे वह कुब्जक संस्थान है। जिसके उदयसे शरीर वामन—बौना हो वह वामन नाम कर्म है और जिसके उदयसे शरीरकी आकृति बेडौल हो वह हुण्डक संस्थान नाम कर्म है ॥२५२-२५३॥

जिसके उदयसे हड्डियोंका परस्पर मिलन और बन्धन अच्छी तरह होता है वह संहनन नाम कर्म है। इसके वज्रर्षभनाराच संहनन, वज्रनाराचसंहनन, नाराचसंहनन, अर्धनाराच-संहनन, कीलकसंहनन और असंप्राप्तसृपाटिका संहनन ये छह भेद हैं। जिसके उदयसे वज्रके वेष्टन, वज्रकी कीलियाँ और वज्रके हाड़ हों उसे वज्रर्षभनाराच संहनन कहते हैं। जिसके उदयसे कीलियाँ और हाड़ तो वज्रके हों परन्तु वेष्टन वज्रके न हों वह वज्रनाराचसंहनन है। जिसके उदयसे हाड़ तथा सन्धियोंकी कीलें तो हों परन्तु वज्रमय न हों इसी तरह वेष्टन भी वज्रमय न हो उसे नाराचसंहनन कहते हैं। जिसके उदयसे हड्डियाँ आधी कीलोंसे सहित हों उसे अर्धनाराचसंहनन कहते हैं। जिसके उदयसे हाड़ परस्पर कीलित हों उसे कीलक संहनन कहते हैं और जिसके उदयसे हाड़ोंकी सन्धियाँ कीलोंसे रहित हों तथा मात्र नसों और मांससे बँधी हों उसे असंप्राप्तसृपाटिका संहनन कहते हैं ॥२५४–२५५॥ जिसके उदयसे शरीरमें स्पर्शकी उत्पत्ति होती है वह स्पर्श नाम कर्म है। यह कड़ा, कोमल, गुरु,

१. संघाता नाम सत्तया म. । संघाता नाम सत्वयात् घ., ङ., ग. । संघाता नाम सत्वया स. । २. तत्संहार-नामापि म. ।

* निर्माण नाम कर्मके दो भेद अवश्य हैं परन्तु बयालीस भेदोंकी गणनामें उसका एक भेद ही परिगणित है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यद्धेतुरसभेदः स्याद्रसनाम तदीरितम् । [1]कटुतिक्तकषायाम्लमधुरध्वनिनाम तत् ॥२५८॥
यस्योदयाद्भवेद्गन्धो गन्धनाम तदुच्यते । द्विविधं तत्तु बोद्धव्यं सुरभ्यसुरभीति च ॥२५९॥
यद्धेतुवर्णभेदस्तद्वर्णनामाख्यपञ्चधा । कृष्णनीलत्वरक्तत्वपीतशुक्लत्वयोगतः ॥२६०॥
उदयाद्यस्य पूर्वात्मशरीराकृत्यसंक्षयः[2] । चतुर्गत्यानुपूर्व्यं तत्तथागुरुलघूदितम् ॥२६१॥
यस्योदयादयोवत्तु गुरुत्वान्न पतत्यधः । न गच्छति पुमानूर्ध्वं लघुत्वादर्कतूलवत् ॥२६२॥
स्वकृतो बन्धनाद्यैः स्यादुपघातो यतस्तु तत् । उपघातं समुद्दिष्टं पटवातं [3]पराद्वधः ॥२६३॥
यदीयोदयनिर्वृत्तं [4]भवत्यातपनं महत् । आदित्यवद्वर्तमानं [5]मतमातपनाम तत् ॥२६४॥
यद्धेतुद्योतनं देहे वेद्यमुद्योतनाम तत् । चन्द्रखद्योतकाद्येषु वर्तमानं यदीक्ष्यते[6] ॥२६५॥
उच्छ्वासकारणं यत्तु मतमुच्छ्वासनाम तत् । विहायोगतिराकाशे शस्ताशस्तगतिप्रभुः ॥२६६॥
तत्प्रत्येकशरीराख्यं नाम त्वत्र शरीरकम् । [7]सदैकात्मोपभोगस्य हेतुर्निर्वर्तते यतः ॥२६७॥
साधारणमनेकेषामेकं यस्माच्छरीरकम् । साधारणशरीराख्यं नाम तद्भोगकारणम् ॥२६८॥
उदयाद्यस्य जीवानां द्वीन्द्रियादिषु जन्म यत् । त्रसनाम विपर्यस्त्वं स्थावराख्यं तु नाम तत् ॥२६९॥
सर्वप्रीतिकरो यस्मात्प्राणी सुभगनाम तत् । यतोऽप्रीतिकरोऽन्येषां नाम्ना दुर्भगनाम तत् ॥२७०॥

लघु, स्निग्ध, रूक्ष, शीत और उष्णके भेदसे आठ प्रकारका है ॥२५६-२५७॥ जिसके निमित्तसे रसमें भेद होता है वह रस नाम कर्म कहा गया है। इसके कटुक, तिक्त, कषाय, आम्ल और मधुरके भेदसे पाँच भेद हैं ॥२५८॥ जिसके उदयसे गन्ध होता है वह गन्ध नाम कर्म है। इसके सुगन्ध और दुर्गन्धकी अपेक्षा दो भेद जानना चाहिए ॥२५९॥ जिसके निमित्तसे वर्णमें भेद होता है वह वर्ण नाम कर्म है। यह कृष्ण, नील, रक्त, पीत और शुक्लके भेदसे पाँच प्रकारका है ॥२६०॥ जिसके उदयसे विग्रह गतिमें पूर्व शरीरकी आकृतिका विनाश न हो वह नरकगत्यानुपूर्व्य आदिके भेदसे चार प्रकारका आनुपूर्व्य नाम कर्म है। जिसके उदयसे यह जीव भारीपनके कारण लोहेके समान नीचे नहीं गिरता है और लघुपनके कारण आककी रुईके समान ऊपर नहीं उड़ता है वह अगुरु लघु नाम कर्म कहा गया है ॥२६१-२६२॥ जिसके उदयसे अपने ही बन्धन आदिसे अपना ही घात होता है वह उपघात नाम कर्म कहा गया है और जिसके उदयसे दूसरोंका घात होता है वह परघात नाम कर्म है ॥२६३॥ जिसके उदयसे शरीरमें सूर्यके समान बहुत भारी आतापकी उत्पत्ति होती है वह आताप नाम कर्म माना गया है इसका उदय सूर्यके विमानमें स्थित बादरपृथिवीकायिक जीवोंके ही होता है। इसकी विशेषता यह है कि यह मूलमें ठण्डा होता है और इसकी प्रभा उष्ण होती है ॥२६४॥ जिसके उदयसे शरीरमें विशिष्ट प्रकारका प्रकाश होता है वह उद्योत नाम कर्म है। यह उद्योत चन्द्रमाके विमानमें स्थित बादरपृथिवीकायिक जीव तथा जुगनू आदिमें देखा जाता है ॥२६५॥ जो उच्छ्वासका कारण है वह उच्छ्वास नाम कर्म माना गया है तथा जो आकाशमें प्रशस्त एवं अप्रशस्त गति करानेमें समर्थ है वह विहायोगति नाम कर्म है ॥२६६॥ जिसके उदयसे ऐसे शरीरकी रचना हो जो सदा एक ही आत्माके उपभोगका कारण हो वह प्रत्येकशरीर नाम कर्म है ॥२६७॥ जिसके उदयसे एक ही शरीर अनेक जीवोंके उपभोगका कारण होता है वह साधारण नाम कर्म है ॥२६८॥ जिसके उदयसे जीवोंका द्वीन्द्रियादिक जीवोंमें जन्म होता है वह त्रसनाम कर्म है। जिसके उदयसे इसके विपरीत सिर्फ एकेन्द्रिय जीवोंमें जन्म हो वह स्थावर नाम कर्म है ॥२६९॥ जिसके निमित्तसे यह जीव समस्त प्राणियोंके लिए प्रीति करनेवाला होता है वह सुभग नाम कर्म है। जिसके निमित्तसे दूसरोंको

१. कट्वातिक्त म.। २. शरीराकृतिसंक्षयः म., क., ङ.। ३. परैर्वधः क.। ४. भवत्यापतनं म.। ५. मतं सातप-म., ङ.। ६. यदीक्षते म.। ७. सदैवात्मोपभोगस्य म. ङ.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनोज्ञस्वरनिर्वृत्तिर्यतः सुस्वरनाम तत् । अनिष्टस्वरहेतुर्यत्प्रोक्तं दुःस्वरनाम तत् ॥२७१॥
यतस्तु रमणीयत्वं शुभनाम तदीरितम् । अतिवैरूप्यहेतुश्च नामाशुभमशोभनम् ॥२७२॥
[1]यत्तु सूक्ष्मशरीरस्य कारणं सूक्ष्म नाम तत् । परबाधाकृतो हेतुः शरीरस्य तु बादरः ॥२७३
यदाहारादिपर्याप्तिभेदनिर्वृत्तिकारणम् । पर्याप्तिनाम तन्नाम्ना षड्विधमुदितं बुधैः ॥२७४॥
आहारस्य शरीरस्य प्राणापानेन्द्रियस्य च । [2]पर्याप्त्यभावहेतुस्तु [3]भाषाया मनसोऽपरम् ॥२७५॥
कारणं स्थिरभावस्य स्थिरमस्थिरमन्यथा । नामादेयमनादेयं सप्रभाप्रभदेहकृत् ॥२७६॥
हेतुः पुण्यगुणाख्यातेः यशःकीर्तिरितीर्यते । अयशःकीर्तिनामापि तद्विपर्यासकारणत् ॥२७७॥

अप्रीति उत्पन्न करनेवाला हो वह दुर्भग नाम कर्म है ॥२७०॥ जिससे मनोज्ञ स्वरकी रचना होती है वह सुस्वर नाम कर्म है। जो अनिष्ट स्वरका कारण है वह दुःस्वर नाम कर्म है ॥२७१॥ जिससे शरीरमें रमणीयता प्रकट होती है वह शुभ नाम कर्म है। जो अत्यन्त विरूपताका कारण है वह दुःखदायी अशुभ नाम कर्म है ॥२७२॥ जो सूक्ष्म शरीरका कारण है वह सूक्ष्म नाम कर्म है। जो दूसरोंको बाधा करनेवाले शरीरका हेतु है वह बादर नाम कर्म है ॥२७३॥ जो आहार आदि पर्याप्तियोंकी रचनाका कारण है वह पर्याप्ति नाम कर्म है। विद्वानोंने इसके आहारपर्याप्ति, शरीर-पर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति, श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति, भाषापर्याप्ति और मनःपर्याप्ति ये छह भेद कहे हैं ॥२७४॥

जो आहार, शरीर, श्वासोच्छ्वास, इन्द्रिय, भाषा और मन इन छह पर्याप्तियोंके अभावका कारण है वह अपर्याप्ति नाम कर्म है ॥ भावार्थ—विग्रह गतिके बाद उत्पत्ति स्थानमें पहुँचनेपर ग्रहण किये हुए आहार-वर्गणाके परमाणुओंमें खल रसभाग रूप परिणमन करनेकी जीवकी शक्तिकी पूर्णताको आहारपर्याप्ति कहते हैं। जिन परमाणुओंको खल रूप परिणमाया था उन्हें हड्डी आदि कठोर अवयव रूप तथा जिन्हें रसरूप परिणमाया था उन्हें रुधिर आदि तरल अवयव रूप परिणमावनेकी शक्तिकी पूर्णताको शरीरपर्याप्ति कहते हैं। शरीर रूप परिणत परमाणुओंमें स्पर्शनादि इन्द्रियोंके आकार परिणमावनेकी शक्तिकी पूर्णताको इन्द्रियपर्याप्ति कहते हैं। भीतरकी वायुको बाहर छोड़ना और बाहरकी वायुको भीतर खींचनेकी शक्तिकी पूर्णताको श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति कहते हैं। भाषावर्गणाके परमाणुओंको शब्द रूप परिणमावनेकी शक्तिकी पूर्णताको भाषापर्याप्ति कहते हैं। और मनोवर्गणाके परमाणुओंको हृदय-क्षेत्रमें स्थित आठ पाँखुड़ीके कमलाकार द्रव्यमनरूप परिणमावनेकी शक्तिकी पूर्णताको मनःपर्याप्ति कहते हैं। इनमें-से एकेन्द्रिय जीवके भाषा और मनको छोड़कर चार पर्याप्तियाँ होती हैं। द्वीन्द्रियसे लेकर असैनीपंचेन्द्रिय तक मनको छोड़कर शेष पाँच पर्याप्तियाँ होती हैं और सैनी पंचेन्द्रिय जीवके सभी पर्याप्तियाँ होती हैं। जिसके उदयसे ये पर्याप्तियाँ पूर्ण होती हैं वह पर्याप्तक नाम कर्म है और जिसके उदयसे एक भी पर्याप्ति पूर्ण नहीं होती वह अपर्याप्तक नाम कर्म है। यहाँ अपर्याप्तक शब्दसे लब्ध्यपर्याप्तक जीवकी विवक्षा है, निर्वृत्यपर्याप्तककी नहीं। क्योंकि वह कर्मोदयकी अपेक्षा तो पर्याप्तक ही है सिर्फ निर्वृत्ति-रचनाकी अपेक्षा लघु अन्तर्मुहूर्तके लिए अपर्याप्तक होता है ॥२७५॥ जो धातु-उपधातुओंकी स्थिरताका कारण है वह स्थिर नाम कर्म है और जो इससे विपरीत अस्थिरताका कारण है वह अस्थिर नाम कर्म है, जो प्रभापूर्ण शरीरका कारण है वह आदेय नाम कर्म है और जो प्रभा-रहित शरीरका कारण है वह अनादेय नाम कर्म है ॥२७६॥ जो पुण्यरूप गुणोंकी प्रसिद्धिका कारण है वह

१. यत्र म., ङ. । २. पर्याप्तिभावहेतुस्तु क. । ३. भाषायां म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हेतुस्तीर्थकरत्वस्य सत्तीर्थकरनाम तत् । नाम्नः प्रकृतिभेदास्त्रिनवतिस्तूत्तरोत्तराः ॥२७८॥
गोत्रमुच्चैश्च नीचैश्च तत्र यस्योदयात्कुले । पूजिते जन्म [1]तत्तूच्चैर्नीचैर्नीचकुलेषु तत् ॥२७९॥
दीयते दातुकामैर्न लब्धुकामैर्न लभ्यते । यदुदयात्प्रणीतौ तौ दानलाभान्तरायकौ ॥२८०॥
भोक्तुकामोऽपि नो भुङ्क्ते नोपभुङ्क्ते तथेच्छुकः । यदेतावन्तरायौ तौ ज्ञेयौ भोगोपभोगयोः ॥२८१॥
तथोत्सहितुकामो यो यतो नोत्सहते स हि । वीर्यान्तराय एषोऽसौ बन्धः प्रकृतिलक्षणः ॥२८२॥
स्थितिबन्धविकल्पस्तु जघन्योत्कृष्टभेदवान् । अष्टानां कर्मणामेषां द्विविधोऽपि निरूप्यते ॥२८३॥
[2]ज्ञानदर्शनसंवृत्योर्वेदनीयान्तराययोः । सागरोपमकोटीनां कोट्यस्त्रिंशत्परा स्थितिः ॥२८४॥
सप्ततिर्मोहनीयस्य विंशतिर्नामगोत्रयोः । संज्ञिपञ्चेन्द्रियस्येयं ज्ञेया पर्याप्तकस्य तु ॥२८५॥
आयुषस्तु त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमिका परा । स्थितिः सा वेदनीयस्य मुहूर्त्ता द्वादशावरा ॥२८६॥
साष्टावेव मुहूर्त्ता स्याज्जघन्या नामगोत्रयोः । पञ्चानामपि शेषाणां स्थितिरन्तर्मुहूर्तिका ॥२८७॥

यशःकीर्ति नामकर्म कहलाता है और जो इससे विपरीत अपयशका कारण है वह अपयशस्कीर्ति नामकर्म है ॥२७७॥ और जो तीर्थंकर पर्यायका कारण है वह तीर्थंकर नामकर्म है यह सातिशय पुण्य प्रकृति है। इस प्रकार नामकर्मकी तिरानबे उत्तर प्रकृतियाँ हैं ॥२७८॥

गोत्रकर्मके दो भेद हैं—१. उच्च गोत्र और २. नीच गोत्र। जिसके उदयसे लोकपूज्य कुलमें जन्म होता है उसे उच्च गोत्र कहते हैं और जिसके उदयसे नीच कुलोंमें जन्म होता है वह नीच गोत्र है ॥२७९॥

अन्तराय कर्मके पाँच भेद हैं—१. दानान्तराय, २. लाभान्तराय, ३. भोगान्तराय, ४. उपभोगान्तराय और ५. वीर्यान्तराय। जिसके उदयसे जीव दान करनेकी इच्छा करते हुए भी दान न कर सके वह दानान्तराय है। जिसके उदयसे लाभकी इच्छा रखते हुए भी लाभ प्राप्त न कर सके वह लाभान्तराय है ॥२८०॥ जिसके उदयसे जीव, भोगकी इच्छा रखता हुआ भी भोग नहीं सकता वह भोगान्तराय है। जिसके उदयसे उपभोगकी इच्छा रखता हुआ भी उपभोग नहीं कर सकता वह उपभोगान्तराय है ॥२८१॥ और जिसके उदयसे कार्योंमें उत्साहित होता हुआ भी उत्साह प्रकट नहीं कर सकता वह अन्तराय नामका कर्म है। इस प्रकार यह प्रकृतिबन्धका निरूपण किया ॥२८२॥ अब स्थितिबन्धका निरूपण करते हैं। आठों कर्मोंका स्थितिबन्ध, जघन्य और उत्कृष्टकी अपेक्षासे दो प्रकारका कहा जाता है ॥२८३॥

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय इन चार कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागर है ॥२८४॥ मोहनीय कर्मकी सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर है और नाम तथा गोत्र कर्मकी बीस कोड़ाकोड़ी सागर है। यह उत्कृष्ट स्थिति संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवके ही बँधती है ॥२८५॥

आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागर है। वेदनीय कर्मकी जघन्य स्थिति बारह मुहूर्त है। नाम और गोत्रकी आठ मुहूर्त है तथा शेष पाँच कर्मोंकी अन्तर्मुहूर्त है ॥२८६-२८७॥

१. तदुच्चैः म. । २. आदितस्तिसृणामन्तरायस्य च त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा कोटीकोट्यः परा स्थितिः ॥१४॥ सप्ततिर्मोहनीयस्य ॥१५॥ विंशतिर्नामगोत्रयोः ॥१६॥ त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः ॥१७॥ अपरा द्वादशमुहूर्ता वेदनीयस्य ॥१८॥ नामगोत्रयोरष्टौ ॥१९॥ शेषाणामन्तर्मुहूर्ता ॥२०॥—त. सू. अ. ८। तीसं कोडाकोडी तिघादितदियेसु वीसणामदुगे। सत्तरि मोहे सुद्धं उवही आउस्स तेतीसं ॥१२७॥ वारस य वेयणीये णामे गोदे य अट्ठ य मुहुत्ता। गो. क. ॥ भिण्णमुहुत्तं तु ठिदी जहण्णयं सेसपंचण्हं ॥१३९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कषायतीव्रमन्दादिभावास्रवविशेषतः । विशिष्टपाक इष्टस्तु [1]विपाकोऽनुभवोऽथवा ॥२८८॥
स द्रव्यक्षेत्रकालोक्तभवभावविभेदतः । विविधो हि विपाको यः सोऽनुभावः समुच्यते ॥२८९॥
प्रकृष्टोऽनुभवः पुण्यप्रकृतीनां शुभो यथा[2] । अशुभप्रकृतीनां तु निकृष्टोऽनुभवस्तथा ॥२९०॥
अशुभप्रकृतीनां तु परिणामविशेषतः । प्रकृष्टोऽनुभवोऽन्यासां निकृष्टोऽनुभवस्तथा ॥२९१॥
स्वमुखेनानुभूयन्ते मूलप्रकृतयोऽखिलाः । उत्तरास्तुल्यजातीया द्वयान्मोहायुषी विना[3] ॥२९२॥

कषायोंकी तीव्रता, मन्दता आदि भावास्रवकी विशेषतासे जो उनका विशिष्ट परिपाक होता है उसे अनुभव कहते हैं अथवा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावकी विभिन्नतासे कर्मोंका जो विविध—नाना प्रकारका परिपाक होता है वह अनुभवबन्ध कहलाता है ॥२८८-२८९॥ शुभ परिणामोंसे जिस प्रकार पुण्य प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभव बन्ध होता है उसी प्रकार पाप प्रकृतियोंका जघन्य अनुभव बन्ध होता है और अशुभ परिणामोंकी विशेषतासे जिस प्रकार अशुभ प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभव बन्ध होता है उसी प्रकार शुभ प्रकृतियोंका जघन्य अनुभव बन्ध होता है। भावार्थ—प्रत्येक समय पुण्य और पाप प्रकृतियोंका अनुभव बन्ध जारी रहता है। जिस समय शुभ परिणामोंकी प्रकर्षता होती है उस समय पुण्य प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभव बन्ध होता है और पाप प्रकृतियोंका जघन्य अनुभव होता है। इसी प्रकार जिस समय अशुभ परिणामोंकी विशेषतासे पापप्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभव होता है उस समय पुण्यप्रकृतियोंका जघन्य अनुभव बन्ध होता है ॥२९०-२९१॥

कर्मोंकी समस्त मूल प्रकृतियाँ स्वमुखसे ही अनुभवमें आती हैं—अपना फल देती हैं और मोहनीय तथा आयुकर्मको छोड़कर शेष कर्मोंकी तुल्य जातीय प्रकृतियाँ स्वमुख तथा परमुख—दोनों रूपसे अनुभवमें आती हैं—फल देती हैं। भावार्थ—जिस प्रकृतिका जिस रूप बन्ध हुआ है उसका उसी रूप उदय आना स्वमुखसे उदय आना कहलाता है और अन्य प्रकृति रूप उदय आना परमुखसे उदय आना कहलाता है। कर्मोंकी ज्ञानावरणादि मूल प्रकृतियाँ सदा स्वमुखसे ही उदयमें आती हैं अर्थात् ज्ञानावरणका उदय दर्शनावरणादि रूप कभी नहीं होता है परन्तु उत्तर प्रकृतियोंमें एक कर्मकी प्रकृतियाँ स्वमुख तथा परमुख दोनों रूपसे फल देती हैं। जैसे वेदनीय कर्मकी साता वेदनीय और असाता वेदनीय ये दो उत्तर प्रकृतियाँ हैं। इनमें सातावेदनीयका उदय साता रूप भी आ सकता है और असाता रूप भी आ सकता है। इसी प्रकार असाता वेदनीयका उदय असाता रूप भी आ सकता है और साता रूप भी। जिस समय अपने रूप उदय आता है उस समय स्वमुखसे उदय आना कहलाता है और जिस समय अन्य रूप उदय आता है उस समय परमुखसे उदय आना कहलाता है। विशेषता यह है कि मोहनीय कर्मके जो दर्शन-मोह और चारित्र-मोह भेद हैं उनकी प्रकृतियाँ परस्पर एक दूसरे रूपमें उदय नहीं आतीं—सदा

१. विपाकोऽनुभवः ॥२१॥ त. सू. अ. ८ ॥ विशिष्टो नानाविधो वा पाको विपाकः । पूर्वोक्तकषायतीव्रमन्दादिभावास्रवविशेषाद् विशिष्टः पाको विपाकः । अथवा द्रव्यक्षेत्रकालभवभावलक्षनिमित्तभेदजनितवैश्वरूप्यो नानाविधः पाको विपाकः । २. 'शुभाद्यथा' इति सम्यक्प्रतिभाति । ३. शुभपरिणामानां प्रकर्षभावाच्छुभप्रकृतीनां प्रकृष्टोऽनुभवः । अशुभप्रकृतीनां निकृष्टः । अशुभपरिणामानां प्रकर्षभावादशुभप्रकृतीनां प्रकृष्टोऽनुभवः । शुभप्रकृतीनां निकृष्टः । स एवं प्रत्ययवशादुपात्तोऽनुभवो द्विधा प्रवर्तते स्वमुखेन परमुखेन च । सर्वासां मूलप्रकृतीनां स्वमुखेनैवानुभवः । उत्तरप्रकृतीनां तुल्यजातीयानां परमुखेनापि भवति आयुर्दर्शनचारित्रमोहवर्जानाम् । न हि नरकायुर्मुखेन तिर्यगायुर्मनुष्यायुर्वा विपच्यते । नापि दर्शनमोहश्चारित्रमुखेन, चारित्रमोहो वा दर्शनमोहमुखेन । स. सि. सूत्र ॥२१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]कर्मणोऽनुभवात्तस्मात्तपसश्चापि[2] निर्जरा । विपाकजा तु तत्रैका परा चाप्यविपाकजा ॥२९३॥
संसारे भ्रमतो जन्तोः प्रारब्धफलकर्मणः । क्रमेणैव निवृत्तिर्या निर्जराऽसौ विपाकजा[3] ॥२९४॥
यत्तूपायविपाच्यं तदाम्रादिफलपाकवत् । अनुदीर्णमुदीर्याशु निर्जरा त्वविपाकजा[4] ॥२९५॥
सर्वेष्वात्मप्रदेशेष्वनन्तानन्तप्रदेशकाः । घनाङ्गुलस्यासंख्येयभागे[5]क्षेत्रावगाहिनः ॥२९६॥
एकद्वित्र्यादिसंख्येयसमयस्थितयः सदा । प्रदेशबन्धसंतानेऽप्यासते कर्मपुद्गलाः[6] ॥२९७॥
[7]शुभायुर्नामगोत्राणि सद्वेद्यं च चतुर्विधः । पुण्यबन्धोऽन्यकर्माणि पापबन्धः प्रपञ्चितः ॥२९८॥
[8]आस्रवस्य निरोधस्तु संवरः परिभाष्यते । स भावद्रव्यभेदाभ्यां द्वैविध्येन निरुच्यते ॥२९९॥
[9]क्रियाणां भवहेतूनां निवृत्तिर्भावसंवरः । तत्कर्मपुद्गलादानविच्छेदो द्रव्यसंवरः ॥३००॥

स्वमुख ही उदय आती हैं परन्तु इन भेदोंकी जो अवान्तर उत्तर प्रकृतियाँ हैं उनका दोनोंसे उदय आता है। इसी प्रकार आयु कर्मकी उत्तर प्रकृतियोंका सदा स्वमुखसे ही उदय आता है परमुखसे नहीं। जैसे नरकायुका सदा नरकायु रूप ही उदय आता है अन्य रूप नहीं ॥२९२॥

विपाकसे और तपसे कर्मोंकी निर्जरा होती है। इस निर्जरामें एक निर्जरा तो विपाकजा है और दूसरी अविपाकजा है। भावार्थ—निर्जराके विपाकजा और अविपाकजाके भेदसे दो भेद हैं ॥२९३॥ संसारमें भ्रमण करनेवाले जीवका कर्म जब फल देने लगता है तब क्रमसे ही उसकी निवृत्ति होती है, यही विपाकजा निर्जरा कहलाती है ॥२९४॥ और जिस प्रकार आम आदि फलोंको उपाय द्वारा असमयमें ही पका लिया जाता है उसी प्रकार उदयावलीमें अप्राप्त कर्मकी तपश्चरण आदि उपायसे निश्चित समयसे पूर्व ही उदीरणा द्वारा जो शीघ्र ही निर्जरा की जाती है वह अविपाकजा निर्जरा है ॥२९५॥

आत्माके समस्त प्रदेशोंके साथ कर्मपरमाणुओंका जो बन्ध है वह प्रदेशबन्ध कहलाता है। इस प्रदेशबन्धकी सन्ततिमें अनन्तानन्त प्रदेशोंसे युक्त घनांगुलके असंख्येय-भाग प्रमाणक्षेत्रमें अवगाढ एक, दो, तीन आदि संख्यात समयोंकी स्थितिवाले कर्मरूप पुद्गल आत्माके समस्त प्रदेशोंमें सदा विद्यमान रहते हैं ॥२९६-२९७॥ उपर्युक्त कर्मबन्ध, पुण्यबन्ध और पापबन्धके भेदसे दो प्रकारका है, उनमें शुभ आयु, शुभ नाम, शुभ गोत्र और सद्वेद्य ये चार पुण्यबन्धके भेद हैं और शेष कर्म पापबन्ध रूप हैं ॥२९८॥

आस्रवका रुक जाना संवर कहलाता है। यह भावसंवर और द्रव्यसंवरके भेदसे दो प्रकारका कहा जाता है ॥२९९॥ संसारकी कारणभूत क्रियाओंका रुक जाना भावसंवर है और कर्मरूप

---

१. ततश्च निर्जरा । २. तपसा निर्जरा च । त. सू. । ३. तत्र चतुर्गतावनेकजातिविशेषावघूर्णिते संसारमहार्णवे चिरं परिभ्रमतः शुभाशुभस्य कर्मणः क्रमेण परिपाककालप्राप्तस्यानुभवोदयावलिस्रोतोऽनुप्रविष्टस्यारब्धफलस्य या निवृत्तिः सा विपाकजा निर्जरा । ४. यत्कर्माप्राप्तविपाककालमौपक्रमिकक्रियाविशेषसामर्थ्यादनुदीर्णं बलादुदीर्योदयावलिं प्रविश्य वेद्यते आम्रपनसादिपाकवत् सा अविपाकजा निर्जरा ॥ स. सि. अ. ८ सू. २३ ॥ ५. भागे क्षेत्रा—क. ङ. म. । ६. नामप्रत्ययाः सर्वतो योगविशेषात्सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिताः सर्वात्मप्रदेशेष्वनन्तानन्तप्रदेशाः ॥२४॥—त. सू. अ. ८ । 'ते खलु पुद्गलस्कन्धा अभव्यानन्तगुणाः सिद्धानन्तभागप्रमितप्रदेशा घनाङ्गुलस्यासंख्येयभागक्षेत्रावगाहिनः एकद्वित्रिचतुःसंख्येयासंख्येयसमयस्थितिकाः पञ्चवर्णपञ्चरसद्विगन्धचतुःस्पर्शस्वभावा अष्टविधकर्मप्रकृतियोग्या योगवशादात्मनात्मसात् क्रियन्ते ॥ स. सि. ॥ ७. 'शुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यम्' ॥२५॥ अतोऽन्यत्पापम् ॥२६॥ त. सू. । ८. आस्रवनिरोधः संवरः ॥१॥ त. सू. अ. ९ । ९. तत्र संसारनिमित्तक्रियानिवृत्तिर्भावसंवरः । तन्निरोधे तत्पूर्वकर्मपुद्गलादानविच्छेदो द्रव्यसंवरः ॥ स. सि. ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]त्रिसंख्या गुप्तयः पञ्चसंख्याः समितयस्तथा । दशद्वादशधर्मानुप्रेक्षाश्चारित्रपञ्चकम् ॥३०१॥
द्वाविंशतिभिदा भिन्नपरीषहजयोऽपि च । हेतवः संवरस्यैते सप्रपञ्चाः समन्विताः ॥३०२॥
[2]बन्धहेतोरभावाद्धि निर्जरातश्च कर्मणाम् । कार्त्स्न्येन विप्रमोक्षस्तु मोक्षो निर्ग्रन्थरूपिणः ॥३०३॥
[3]जीवादिसप्ततत्त्वानामेतेषां ज्ञानसंगतम् । श्रद्धानं तच्चरित्रं च साक्षान्मोक्षस्य साधनम् ॥३०४॥
भवेनैकेन मार्गस्थाः केचित्सप्ताष्टभिः परे । भुक्तस्वर्गसुखा भव्याः सिद्ध्यन्ति ध्यानिनः सदा ॥३०५॥
इति श्रुत्वा जिनेन्द्रोक्तं मोक्षमार्गमनाविलम् । प्रणेमुर्द्वादशगणाः [4]प्रकृताञ्जलयो विभुम् ॥३०६॥
ते सम्यग्दर्शनं केचित्संयमासंयमं परे । संयमं केचिदायाताः संसारावासभीरवः ॥३०७॥
द्वे सहस्रे नरेन्द्रास्ते कन्याश्च नृपयोषितः । सहस्राणि बहून्यापुः संयमं जिनदेशितम् ॥३०८॥
[5]शिवा च रोहिणी देवी देवकी रुक्मिणी तथा । देव्योऽन्याश्च सुचारित्रं गृहिणां प्रतिपेदिरे ॥३०९॥
यदुभोजकुलप्रष्ठा राजानः सुकुमारिकाः । जिनमार्गविदो जाता द्वादशाणुव्रतस्थिताः ॥३१०॥
कृतपूजाः सुरैरिन्द्राः प्रणम्य जिनभास्करम् । प्रयाताः स्वास्पदं रामकेशवाद्याश्च यादवाः ॥३११॥

शार्दूलविक्रीडितम्

विश्वाशा विशदाः शरद्विदधती धौतं पयोदैस्तथा
विस्पष्टग्रहतारकाकुसुमितं रम्यं नभोमण्डलम् ।

पुद्गल द्रव्यके ग्रहणका विच्छेद हो जाना द्रव्यसंवर है ॥३००॥ तीन गुप्तियाँ, पाँच समितियाँ, दश धर्म, बारह अनुप्रेक्षाएँ, पाँच चारित्र और बाईस परिषहजय ये अपने अवान्तर विस्तारसे सहित संवरके कारण हैं ॥३०१–३०२॥ निर्ग्रन्थ मुद्राके धारक मुनिके बन्धके कारणोंका अभाव तथा निर्जराके द्वारा जो समस्त कर्मोंका अत्यन्त क्षय होता है वह मोक्ष कहलाता है ॥३०३॥ इन जीवादि सात तत्त्वोंका सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ही मोक्षका साक्षात् साधन है ॥३०४॥ मोक्षमार्गमें स्थित कितने ही अन्य जीव एक ही भवमें सिद्ध हो जाते हैं और कितने ही भव्य स्वर्गके सुख भोगकर सदा आत्माका ध्यान करते हुए सात-आठ भवमें मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं ॥३०५॥

इस प्रकार नेमि जिनेन्द्रके द्वारा कहा हुआ निर्मल मोक्षमार्ग सुनकर बारह सभाओंके लोगोंने हाथ जोड़कर भगवान्को नमस्कार किया ॥३०६॥ श्रोताओंमें-से कितने ही लोगोंने सम्यग्दर्शन धारण किया, कितने ही लोगोंने संयमासंयम प्राप्त किया और संसारवाससे डरनेवाले कितने ही लोगोंने पूर्ण संयम—मुनिव्रत स्वीकृत किया ॥३०७॥ उस समय दो हजार राजाओंने, दो हजार कन्याओंने एवं हजारों रानियोंने जिनेन्द्र भगवान्के द्वारा कहे हुए पूर्ण संयमको प्राप्त किया ॥३०८॥ शिवा देवी, रोहिणी, देवकी, रुक्मिणी तथा अन्य देवियोंने श्रावकोंका चारित्र स्वीकृत किया ॥३०९॥ यदुकुल और भोजकुलके श्रेष्ठ राजा तथा अनेक सुकुमारियाँ जिनमार्गकी ज्ञाता बन बारह अणुव्रतोंकी धारक हो गयीं ॥३१०॥ जो देवोंके साथ पूजा कर चुके थे, ऐसे इन्द्र तथा बलभद्र और कृष्ण आदि यादव, जिनेन्द्ररूपी सूर्यको नमस्कार कर अपने-अपने स्थानपर चले गये ॥३११॥

तदनन्तर जो समस्त दिशाओंको उज्ज्वल कर रही है, मेघोंके द्वारा धुले हुए सुन्दर

१. स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरिषहजयचारित्रैः ॥२॥ त. सू. अ. ९ । २. बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः ॥ त. सू. अ. १० । ३. सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥ त. सू. अ. १ । ४. प्रकृत्याञ्जलयो म. । ५. ३०९, ३१०, ३११ तमाः श्लोकाः ङ. ख. पुस्तकयोर्न सन्ति क पुस्तकेऽपि पश्चात् योजिताः सन्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]बन्धूकाब्जसुसप्तपर्णसुरभिप्रत्यग्रपुष्पाञ्जलिं
मुञ्चन्ती जिनपादयोरुपगता भक्तेव लोकत्रयी ॥३१२॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ श्रीनेमिनाथधर्मोपदेशवर्णनो नाम अष्टपञ्चाशः सर्गः ॥५८॥

□

आकाशमण्डलको जो निर्मल ग्रहों और ताराओंसे पुष्पित बना रही थी एवं जो बन्धूक, कमल और सप्तपर्णके सुगन्धित नूतन फूलोंकी अंजलि छोड़ रही थी ऐसी शरद्ऋतु, भक्तिसे भरी लोकत्रयीके समान जिनेन्द्रदेवके चरणोंके समीप आयी ॥३१२॥

इस प्रकार अरिष्टनेमिपुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें श्रीनेमिनाथ भगवान्के धर्मोपदेशका वर्णन करनेवाला अंठानवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥५८॥

□

१. बन्धूकाब्जसुसप्तपर्ण म., ख. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकोनषष्टितमः सर्गः

विहाराभिमुखेऽगाग्राज्जिनेन्द्रेऽवतरिष्यति[1] । स्वर्गाग्रादिव भूलोकं समुद्धर्तुं[2] भवोदधेः ॥१॥
गृह्यतां गृह्यतां काम्यं यथाकाममिहार्थिभिः । इति नित्यं धनेशेन घुष्यते कामघोषणा ॥२॥
कामदा कामवद्भूमिः कल्प्यते मणिकुट्टिमा । माङ्गल्यविजयोद्योगे विभोः किं वा न कल्प्यते ॥३॥
महाभूतानि सर्वाणि भर्तुर्भूतहितोद्यमे[3] । सर्वभूतहितानि स्युस्तादृशी खलु सार्वता ॥४॥
प्रावृषेण्याम्बुधारेव वसुधारा वसुन्धराम् । दिवोऽन्वर्थाभिधानत्वं नयतीन्यपतत्पथि[4] ॥५॥
[5]प्रादुःष्यन्ति सुराः सद्यः प्रणामचलमौलयः । भासा व्याप्य दिशो भर्तुः प्रभाकारानुरागिणः ॥६॥
ये द्वे [यद् द्वे] पूर्वोत्तरे पङ्क्ती हेमाम्बुजसहस्रयोः । सहस्रपत्रं तत्पूतं भुवः कण्ठे गुणाकृती ॥७॥
पद्मरागमयं भास्वच्चित्ररत्नविचित्रितम् । प्रवृत्तप्रतिपत्रस्थपद्माभागमनोहरम् ॥८॥
सहस्राक्षसहस्राक्षिभृङ्गावलिनिषेवितम् । देवासुरनरालोकमधुपापानमण्डलम् ॥९॥
[6]पद्मोद्भासि परं पुण्यं पद्मयानं प्रकाशते । सद्यो योजनविष्कम्भं तच्चतुर्भागकर्णिकम् ॥१०॥
महिमाग्रे सुरेशाष्टमूर्तिस्पष्टगुणश्रियः । वसवोऽष्टौ पुरोधाय वासवं वरिवस्यया ॥११॥

अथानन्तर जिस प्रकार पहले संसार-समुद्रसे प्राणियोंको पार करनेके लिए भगवान् स्वर्गके अग्रभागसे पृथिवी लोकपर अवतीर्ण हुए थे, उसी प्रकार जब विहारके लिए सम्मुख हो गिरनार पर्वतके शिखरसे नीचे उतरनेके लिए उद्यत हुए तब कुबेरने निरन्तर यह मनचाही घोषणा शुरू कर दी कि जिस याचकको जिस वस्तुकी इच्छा हो वह यहाँ आकर उसे इच्छानुसार ले ॥१-२॥ उस समय कामधेनुके समान इच्छित पदार्थ प्रदान करनेवाली मणिमयी भूमि बनायी गयी। सो ठीक ही है क्योंकि भगवान्के मंगलमय विजयोद्योगके समय क्या नहीं किया जाता ? अर्थात् सब कुछ किया जाता है ॥३॥ जब कि भगवान्का समस्त भूतों—प्राणियोंके हितके लिए उद्यम हो रहा था तब पृथिवी, जल, अग्नि और वायुरूप चार महाभूत भी समस्त भूतों—प्राणियोंके हितकर हो गये सो ठीक ही है क्योंकि भगवान्की सर्वहितकारिता वैसी ही अनुपम थी ॥४॥ धनकी बड़ी मोटी धारा वर्षा ऋतुके मेघकी जलधाराके समान पृथिवीके वसुन्धरा नामको सार्थकता प्राप्त कराती हुई आकाशसे मार्गमें पड़ने लगी ॥५॥ प्रणाम करनेसे जिनके मस्तक चंचल हो रहे थे तथा जो भगवान्की प्रभा और आकारमें अनुराग रखते थे ऐसे देव अपनी कान्तिसे दिशाओंको व्याप्त करते हुए शीघ्र ही प्रकट होने लगे ॥६॥ सर्व-प्रथम देवोंने एक ऐसे सहस्रदल पवित्र कमलकी रचना की जो पूर्व और उत्तरकी ओर स्वर्णमय हजार-हजार कमलोंकी दो पंक्तियाँ धारण करता था तथा वे पंक्तियाँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो पृथिवीरूपी स्त्रीके कण्ठमें पड़ी दो मालाएँ ही हों ॥७॥ वह कमल पद्मराग मणियोंसे निर्मित था, देदीप्यमान नाना प्रकारके रत्नोंसे चित्र-विचित्र था, प्रत्येक पत्रपर स्थित लक्ष्मीके भागसे मनोहर था, इन्द्रके हजार नेत्ररूपी भ्रमरावलीसे सेवित था, देव, धरणेन्द्र और मनुष्योंके नेत्ररूपी भ्रमरोंके लिए मानो मधुगोष्ठीका स्थान था, लक्ष्मीसे सुशोभित था, परम पुण्यरूप था, एक योजन विस्तृत था और उसके चौथाई भाग प्रमाण उसकी कर्णिका—डण्ठल थी ॥८-१०॥ यह कमल पद्मयानके नामसे प्रसिद्ध था। सेवा द्वारा इन्द्रको आगे कर आठ वसु उस पद्मयानके आगे-आगे चल रहे थे जो ऐसे जान पड़ते थे मानो इन्द्रके अणिमा, महिमा आदि आठ गुण ही मूर्तिधारी हो चल रहे हों। वे वसु यह कहते हुए

---

१. पर्वताग्रात्—गिरनारशिखरतः । २. कर्तुं —म. घ. । ३. द्यते क. । ४. नयतीति पतत्यपि क. । ५. प्राङ्मुख्यन्ति । ६. जयोद्भासि इत्यपि पाठः इति क. पुस्तकपार्श्वे लिखितम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जय प्रसीद भर्तुस्ते वेला लोकहितोद्यमे । जाताद्येत्यानमन्तीशं स हि विश्वसृजो विधिः ॥१२॥
ततः प्रक्रमते [1]शम्भुरारोढुं पद्मयानकम् । तत्क्षणं भूयते भूम्या [2]हृष्टसंभ्रान्तयापि च ॥१३॥
[3]विजयी [4]विहरत्येष विश्वेशो विश्वभूतये । धर्मचक्रपुरस्सारी त्रिलोकी तेन संपदा ॥१४॥
वर्धतां वर्धतां नित्यं निरीतिर्मरुतामिति । श्रूयतेऽत्यम्बुदध्वानः प्रयाणपटहध्वनिः ॥१५॥
वीणावेणुमृदङ्गोरुझल्लरीशङ्खकाहलैः । तूर्यमङ्गलघोषोऽपि पयोधिमधिगर्जति ॥१६॥
संकथाकोशगीताट्टहासैः कलकलोत्तरैः । [5]द्यावापृथिव्यौ प्राप्नोति [6]प्रास्थानिकमहारवः ॥१७॥
[7]वल्गु गायन्ति किन्नर्यो नृत्यन्त्यप्सरसो दिवि । स्पृशन्त्यातोद्यमानर्ता[8] गन्धर्वादय इत्यपि ॥१८॥
स्तुवन्ति मङ्गलस्तोत्रैर्जयमङ्गलपूर्वकैः । तत्र तत्र सतां वन्द्यं [9]वन्दिनो नृसुरासुराः ॥१९॥
चित्रैश्चित्तहरैर्दिव्यैर्मानुषैश्च समन्ततः । नृत्यसङ्गीतवादित्रैर्भूतलेऽपि प्रभूयते[10] ॥२०॥
पालयन्ति [11]सदिग्भागैर्लोकपालाः सभूतयः । भर्तृसेवा हि भृत्यानां स्वाधिकारेषु सुस्थितिः ॥२१॥
धावन्ति परितो देवाके चिह्नासुरदर्शनाः । हिंसया[12] ज्यायसः सर्वानुत्सार्योत्सार्य दूरतः ॥२२॥
उदस्तैरत्नवलयैर्वीचिहस्तैः कृताञ्जलिः । भर्त्रे प्रीतस्तदोदन्वान्वेलामूर्ध्ना नमस्यति ॥२३॥

भगवान्‌को प्रणाम करते जा रहे थे कि हे भगवन् ! आप जयवन्त हों, प्रसन्न होइए, लोकहितके लिए उद्यम करनेका आज समय आया है। यथार्थमें वह सब भगवान्‌का माहात्म्य था ॥११–१२॥ तदनन्तर उस पद्मयानपर भगवान् जिनेन्द्र आरूढ़ हुए थे और उस समय पृथिवी हर्षसे झूमती हुई-सी जान पड़ती थी ॥१३॥ उस समय मेघोंके शब्दको पराजित करनेवाला देव-दुन्दुभियोंका यह प्रयाणकालिक शब्द सुनाई पड़ रहा था कि धर्मचक्रको आगे-आगे चलानेवाले ये जगत्‌के स्वामी विजयी भगवान् सब जीवोंके वैभवके लिए विहार कर रहे हैं। इनके इस विहारसे तीन लोकके जीव सम्पत्तिसे वृद्धिको प्राप्त हों अर्थात् सबकी सम्पदा वृद्धिंगत हो, और सब अतिवृष्टि आदि ईतियोंसे रहित हों ॥१४–१५॥ उस समय वीणा, बाँसुरी, मृदंग, विशाल झालर, शंख और काहलके शब्दसे युक्त तुरहीका मंगलमय शब्द भी समुद्रकी गर्जनाको तिरस्कृत कर रहा था ॥१६॥ प्रस्थान कालमें होनेवाला बहुत भारी शब्द, उत्तम कथा, चिल्लाहट, गीत, अट्टहास तथा अन्य कल-कल शब्दोंसे आकाश और पृथिवीके अन्तरालको व्याप्त कर रहा था ॥१७॥ आकाशमें किन्नरियाँ मनोहर गान गाती थीं, अप्सराएँ नृत्य करती थीं, झूमते हुए गन्धर्व आदि देव तबला बजा रहे थे और नमस्कार करते हुए मनुष्य, सुर तथा असुर, सज्जनोंके द्वारा वन्दनीय भगवान्‌को नमस्कार करते हुए जय-जयकी मंगलध्वनिपूर्वक मंगलमय स्तोत्रोंसे जहाँ-तहाँ उनकी स्तुति कर रहे थे ॥१८–१९॥ पृथिवीतलपर भी सब ओर मनुष्य चित्तको हरनेवाले नाना प्रकारके दिव्य नृत्य, संगीत और वादित्रोंसे युक्त हो रहे थे ॥२०॥ विभूतियोंसे सहित लोकपाल समस्त दिग्भागोंके साथ सबकी रक्षा कर रहे थे। सो ठीक ही है क्योंकि अपने-अपने नियोगोंपर अच्छी तरह स्थित रहना ही भृत्योंकी स्वामि-सेवा है ॥२१॥ देदीप्यमान दृष्टिके धारक कितने ही देव समस्त हिंसक जीवोंको दूर खदेड़कर चारों ओर दौड़ रहे थे ॥२२॥ उस समय प्रसन्नतासे भरा समुद्र, रत्नरूप वलयोंसे सुशोभित ऊपर उठे हुए तरंगरूपी हाथोंसे अंजलि बाँधकर वेलारूपी मस्तकसे

१. क., ख., ग., घ., ङ., सर्वपुस्तकेषु 'सिन्धुरारोढुं' इति पाठो विद्यते, परं तस्यार्थसंगतिर्न प्रतिभाति । अतः मैसूरस्थित–प्राच्यविद्यासंशोधनमन्दिरस्थितपुस्तके समुपलब्धः 'शम्भुरारोढुं' इति पाठः स्वीकृतः । अत्र शम्भुपदं जिनेन्द्रवाचकम् । २. द्विष्ट ग., ङ., इष्ट म., क. । 'हृष्टसंभ्रान्तयापि च' इति पाठोऽपि मैसूरस्थितपुस्तके समुपलब्धः । ३. विजये क., ङ., म. । ४. विचरत्येष क. । ५. दिवःपृथिव्यौ म., क., ङ. । ६. प्रस्थानीकमहारवः म. । ७. फल्गु म. । ८. मानार्ता म., क., ङ. । ९. वन्दिता म. । १०. प्रभूतये म. । ११. सदिग्नागै –म. । १२. हिंसापापीयसः । हिसयान्वयि सर्वा क. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]विलम्बितसहस्रार्कयुगपत्पतनोदयैः[2] । नमतान्नन्दितालोकनामोन्नामैः[3] पदे पदे ॥२४॥
सुराणां[4] भूतलस्पर्शिमकुटैर्बहुकोटिभिः । भूः पुरःसोपहारेव शोभतेऽम्बुजकोटिभिः ॥२५॥
लौकान्तिकाः पुरो यान्ति लोकान्तव्यापितेजसः[5] । लोकेशस्य यथालोकाः पुरोगा मूर्तिसंभवाः ॥२६॥
पद्मा सरस्वतीयुक्ता परिवारात्तमङ्गला । पद्महस्ता पुरो याति परीत्य परमेश्वरम् ॥२७॥
[6]प्रसीदेत इतो देवेत्थानम्य प्रकृताञ्जलिः । तद्भूमिपतिभिः सार्धं पुरो याति पुरन्दरः ॥२८॥
एवमीशस्त्रिलोकेशपरिवारपरिष्कृतः । लोकानां भूतये भूतिमुद्वहन् सार्वलौकिकीम् ॥२९॥
पद्मकेतुः पवित्रात्मा परमं पद्मयानकम् । भव्यपद्मैकसद्बन्धुर्यदारोहति तत्क्षणात् ॥३०॥
जय नाथ जय ज्येष्ठ जय लोकपितामह । जयात्मभूर्जयात्मेश जय देव जयाच्युत ॥३१॥
जय सर्वजगद्बन्धो जय सद्धर्मनायक । जय सर्वशरण्यश्रीर्जय पुण्यजयोत्तम ॥३२॥
[7]इत्युदीर्णसुकृद्घोषो रुन्धानो रोदसी स्फुटः । [8]जयत्युच्चोऽतिगम्भीरो घनाघनघनध्वनिः ॥३३॥

मानो भगवान्‌के लिए नमस्कार ही कर रहा था ॥२३॥

उस समय डग-डगपर भगवान्‌को नमस्कार करनेवाले देवोंके करोड़ों देदीप्यमान मुकुटोंका बहुत भारी प्रकाश बार-बार नीचेको झुकता और बार-बार ऊपरको उठता था। उससे ऐसा जान पड़ता था मानो हजारों सूर्योंका एक साथ पतन तथा उदय हो रहा हो। उन्हीं देवोंके जब करोड़ों मुकुट पृथिवीतलका स्पर्श करते थे तब भगवान्‌के आगेकी भूमि ऐसी सुशोभित होने लगती थी मानो उसपर करोड़ों कमलोंकी भेंट ही चढ़ायी गयी हो ॥२४–२५॥ जिनका तेज लोकके अन्त तक व्याप्त था, ऐसे लौकान्तिक देव भगवान्‌के आगे-आगे चल रहे थे और वे ऐसे जान पड़ते थे मानो लोकके स्वामी भगवान् जिनेन्द्रका प्रकाश ही मूर्तिधारी हो आगे-आगे गमन कर रहा था ॥२६॥ जिनके परिवारकी देवियोंने मंगल द्रव्य धारण कर रखे थे, तथा जिनके हाथोंमें स्वयं कमल विद्यमान थे, ऐसी पद्मा और सरस्वती देवी, भगवान्‌की प्रदक्षिणा देकर उनके आगे-आगे चल रही थीं ॥२७॥ 'हे देव ! इधर प्रसन्न होइए, इधर प्रसन्न होइए।' इस प्रकार नमस्कार कर जिसने अंजलि बांध रखी थी ऐसा इन्द्र, तद्-तद् भूमिपतियोंके साथ भगवान्‌के आगे-आगे चल रहा था ॥२८॥

इस प्रकार जो तीनों लोकोंके इन्द्र तथा उनके परिवारसे घिरे हुए थे, लोगोंकी विभूतिके लिए जो समस्त लोककी विभूतिको धारण कर रहे थे, जो कमलकी पताकासे सहित थे, जिनकी आत्मा अत्यन्त पवित्र थी, और जो भव्य जीवरूपी कमलोंको विकसित करनेके लिए उत्तम सूर्यके समान थे, ऐसे भगवान् नेमि जिनेन्द्र जिस समय उस पद्मयानपर आरूढ़ हुए उसी समय देवोंने मेघ-गर्जनाके समान यह शब्द करना शुरू कर दिया कि हे नाथ ! आपकी जय हो, हे ज्येष्ठ ! आपकी जय हो, हे लोकपितामह ! आपकी जय हो, हे आत्मभू ! आपकी जय हो, हे आत्मेश ! आपकी जय हो, हे देव ! आपकी जय हो, हे अच्युत ! आपकी जय हो। हे समस्त जगत्‌के बन्धु ! आपकी जय हो, हे समीचीन धर्मके स्वामी ! आपकी जय हो, हे सबके शरणभूत लक्ष्मीके धारक ! आपकी जय हो, हे पुण्यरूप ! आपकी जय हो, हे उत्तम ! आपकी जय हो। इस प्रकार उठा हुआ पुण्यात्मा जनोंका जोरदार, अत्यन्त गम्भीर एवं मेघ-गर्जनाकी तुलना करनेवाला वह शब्द आकाश और पृथिवीके अन्तरालको व्याप्त करता हुआ अत्यधिक सुशोभित हो रहा था ॥२९–३३॥

१. डलयोरभेदात् विलम्बितपदेन विडम्बितस्य ग्रहणम् । २ पतनोदयोः म. । ३. नन्दितस्य समृद्धस्य आलोकस्य नामोन्नामैः । ४. शूराणाम् म. । ५. लोकान्तस्थापितै–म. । ६. प्रसीदेति द्रुतो देवे क. । ७. इत्युदीर्णासकृद्घोषः म. । ८. जयत्युच्चेति–म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स देवः सर्वदेवेन्द्रव्याहृतालोकमङ्गलः[1] । तन्मौलिभ्रमरालीढभ्रमत्पादपयोरुहः ॥३४॥
तत्पयोरुहवासिन्या पद्मयानन्दयज्जगत् । [2]व्यहरत् परमोद्भूतिर्भूतानामनुकम्पया ॥३५॥
देवमार्गोत्थिते दिव्ये विन्यस्याब्जे पदाम्बुजम् । स्वच्छाम्भोवाङ्मुखाम्भोजप्रतिबिम्बभृति[3] प्रभुः ॥३६॥
उद्यतस्तस्य लोकार्थं [4]राजराजः पुरस्सरः[5] । राजते राजयन्मार्गं पुरोभानोर्यथारुणः ॥३७॥
पदवी जातरूपाङ्गी स्फुरन्मणिविभूषणा । श्लाघते सा सती भर्त्रे स्वभर्त्रे भामिनी यथा ॥३८॥
परितः परिमार्जन्ति मरुतो मधुरेरणैः[6] । अवदातक्रियायोगैः स्वां वृत्तिं साधवो यथा ॥३९॥
अभ्युक्षन्ति सुरास्तत्र गन्धाम्भोऽम्बुदवाहनाः[7] । स्फुरत्सौदामिनीदीप्तिभासिताखिलदिङ्मुखाः ॥४०॥
मन्दारकुसुमैर्मत्तभ्रमद्भ्रमरचुम्बितैः । नन्द्यते सुरसंघातैर्मार्गो मार्गविदुद्यमे ॥४१॥
ज्योतिर्मण्डलसंकाशैः सौवर्णरसमण्डलैः । सलग्नैः शोभते मार्गो रत्नचूर्णतलाचितैः[8] ॥४२॥
गुह्यकाश्चित्रपत्राणि चिन्वते कौङ्कुमै रसैः[9] । [10]चित्रकर्मज्ञतां चित्रां स्वामाचिख्यासवो[11] यथा ॥४३॥
कदलीनालिकेरेक्षुक्रमुकाद्यैः क्रमस्थितैः । [12]सपत्रैर्मार्गसीमापि रम्यारामायते द्वयी ॥४४॥

तदनन्तर समस्त इन्द्र जिनके जय-जयकार और मंगल शब्दोंका उच्चारण कर रहे थे, जिनके चलते हुए चरणकमल उन इन्द्रोंके मुकुटरूपी भ्रमरोंसे व्याप्त थे, जो उन कमलोंमें निवास करनेवाली लक्ष्मीसे समस्त जगत्को आनन्दित कर रहे थे, और जो अत्यन्त उत्कृष्ट विभूतिके धारक थे, ऐसे भगवान् नेमि जिनेन्द्र जीवोंपर दया कर विहार करने लगे ॥३४-३५॥ वे प्रभु, आकाशमें, स्वच्छ जलके भीतर पड़ते हुए मुख-कमलके प्रतिबिम्बकी शोभाको धारण करनेवाले दिव्य कमलपर अपने चरणकमल रखकर विहार कर रहे थे ॥३६॥ उस समय भगवान्के दर्शन करनेके लिए उद्यत एवं उनके आगे-आगे चलनेवाला कुबेर मार्गको सुशोभित करता हुआ ऐसा जान पड़ता था जैसा सूर्यके आगे चलता हुआ उसका सारथि अरुण हो ॥३७॥ भगवान्के विहार-का वह मार्ग सुवर्णमय था एवं देदीप्यमान मणियोंके आभूषणसे सहित था। इसलिए अपने पतिके लिए स्थित, सुवर्णमय शरीरकी धारक एवं देदीप्यमान मणियोंके आभूषणोंसे सुशोभित पतिव्रता स्त्रीके समान प्रशंसनीय था ॥३८॥ जिस प्रकार मुनिगण निर्मल क्रियाओंसे अपनी वृत्तिको सदा साफ करते रहते हैं—निर्दोष बनाये रखते हैं उसी प्रकार पवनकुमार देव वायुके मन्द-मन्द झोकोंमें उस मार्गको साफ बनाये रखते थे ॥३९॥ कौंधती हुई बिजलीकी चमकसे समस्त दिशाओंके अग्रभागको प्रकाशित करनेवाले मेघवाहन देव उस मार्गमें सुगन्धित जल सींचते जाते थे ॥४०॥

मोक्षमार्गके ज्ञाता भगवान्के विहारकालमें, देवोंके समूह, जिनपर मदोन्मत्त भौंरे मँडरा रहे थे ऐसे मन्दार वृक्षके पुष्पोंसे मार्गको सुशोभित कर रहे थे ॥४१॥ वह मार्ग, गले हुए सोनेके रसके उन मण्डलोंसे जिनके कि तलभाग रत्नोंके चूर्णसे व्याप्त थे एवं नक्षत्रोंके समूहके समान जान पड़ते थे, अतिशय सुशोभित हो रहा था ॥४२॥ गुह्यक जातिके देव केशरके रससे नाना प्रकारके बेल-बूटे बनाते जाते थे मानो वे अपनी चित्रकर्मकी नाना प्रकारकी कुशलताको ही प्रकट करना चाहते थे ॥४३॥ मार्गके दोनों ओरकी सीमाएँ क्रमपूर्वक खड़े किये हुए पत्रोंसे युक्त केला, नारियल, ईख तथा सुपारी आदिके वृक्षोंसे सुन्दर बगीचोंके समान जान पड़ती

---

१. व्याहृतालोक म., ङ.। २. विहरत् क., ङ.। ३. स्वच्छाम्भोवत्—ख.। ४. श्रिति क., घृणिप्रभुः ख.। ५. राजराजपुरस्सरः म.। ६. मनोहरप्रेरणैः। ७. वाहनः म.। ८. तलोचितैः म., तलाञ्चितैः क.। ९. कुंकुमैः म.। १०. चित्रकर्मकृताम् म., ख., ङ.। ११. चिक्षासवो यथा म., घ., ग.। १२. सम्पन्नै— म., ख., ङ.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्राक्रीडपदानि स्युः सुन्दराणि निरन्तरम् । यत्र [1]हृष्टाः स्वकान्ताभिराक्रीड्यन्ते नरामराः ॥४५॥
भोग्यान्यपि यथाकामं भगोगिनां भोगभूमिवत् । सर्वाण्यन्यूनभूतीनि [2]संभवन्त्यन्तरेऽन्तरे ॥४६॥
योजनत्रयविस्तारो मार्गो मार्गान्तयोर्द्वयोः । सीमानौ द्वे अपि [3]ज्ञेये गव्यूतिद्वयविस्तृते ॥४७॥
तोरणैः शोभते मार्गः [4]करणैरिव कल्पितैः । दृष्टिगोचरसंपन्नैः सौवर्णैरष्टमङ्गलैः ॥४८॥
कामशाला विशालाः स्युः कामदास्तत्र तत्र च । भागवत्यो यथा मूर्ताः कामदा दानशक्तयः ॥४९॥
तोरणान्तरभूतुङ्गसमस्तकदलीध्वजैः । संछन्नोऽध्वा घनच्छायो रुणद्धि सवितुश्छविम् ॥५०॥
वनवासिसुरैर्वन्यमञ्जरीपुञ्जपिञ्जरः । स्वपुण्यप्रचयाकारः कल्प्यते पुष्पमण्डपः ॥५१॥
युक्तो रत्नलताचित्रभित्तिभिः सद्विजोजनः । चन्द्रादित्यप्रभारोचिर्मण्डलोपान्तमण्डितः ॥५२॥
[5]घण्टिकाकलनिर्ह्रादैर्घण्टानादैर्निनादयन् । दिशो [6]मुक्तागुणामुक्तप्रान्तमध्यान्तरान्तरः ॥५३॥
सद्गन्धाकृष्टसंभ्रान्तभृङ्गमालोलसद्युतिः । वियतीशयशोमूर्तवितानच्छविरीक्ष्यते ॥५४॥
[7]सोत्तम्भस्तम्भसंकाशैः स्थूलमुक्तागुणोद्भवैः । चतुर्भिर्दामभिर्भाति विद्रुमान्तान्तराचितैः[8] ॥५५॥
तस्यान्तस्थो दयामूर्तिः प्रयाति दमिताहितः[9] । हिताय सर्वलोकस्य स्वयमीशः स्वयंप्रभः ॥५६॥

थीं ॥४४॥ मार्गमें निरन्तर सुन्दर क्रीड़ाके स्थान बने हुए थे जिनमें हर्षसे भरे मनुष्य और देव अपनी स्त्रियोंके साथ नाना प्रकारकी क्रीड़ा करते थे ॥४५॥ जिस प्रकार भोग-भूमिमें भोगी जीवोंको इच्छानुसार भोग्य वस्तुएँ प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार उस मार्गमें भी, बीच-बीचमें भोगी जीवोंको उत्कृष्ट विभूतिसे युक्त सब प्रकारकी भोग्य वस्तुएँ प्राप्त होती रहती थीं ॥४६॥ भगवान्‌के विहारका वह मार्ग तीन योजन चौड़ा बनाया गया था तथा मार्गके दोनों ओरकी सीमाएँ दो-दो कोस चौड़ी थीं ॥४७॥ वह मार्ग, जगह-जगह निर्मित तोरणों तथा दृष्टिमें आनेवाले सुवर्णमय अष्टमंगलद्रव्यों-से ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो इन्द्रियोंसे ही सुशोभित हो रहा हो ॥४८॥ मार्गमें जगह-जगह भोगियोंको इच्छानुसार पदार्थ देनेवाली बड़ी-बड़ी कामशालाएँ बनी हुई थीं जो ऐसी जान पड़ती थीं मानो इच्छानुसार पदार्थ देनेवाली भगवान्‌की मूर्तिमती दानशक्तियाँ ही हों ॥४९॥ तोरणोंकी मध्यभूमिमें जो ऊँचे-ऊँचे केलेके वृक्ष तथा ध्वजाएँ लगी हुई थीं उनसे आच्छादित हुआ मार्ग इतनी सघन छायासे युक्त हो गया था कि वह सूर्यकी छविको भी रोकने लगा था ॥५०॥ वनके निवासी देवोंने वनकी मंजरियोंके समूहसे पीला-पीला दिखनेवाला पुष्पमण्डप तैयार किया था जो उनके अपने पुण्यके समूहके समान जान पड़ता है ॥५१॥ वह पुष्पमण्डप रत्नमयी लताओंके चित्रोंसे सुशोभित दीवालोंसे युक्त था, दो योजन विस्तारवाला था, चन्द्रमा और सूर्यकी प्रभाके कान्तिमण्डलसे समीपमें सुशोभित था, छोटी-छोटी घण्टियोंकी रुनझुन और घण्टाओंके नादसे दिशाओंको शब्दायमान कर रहा था, उसके दोनों छोर तथा मध्यका अन्तर मोतियोंकी मालाओंसे युक्त था, उत्तम गन्धसे आकर्षित हो सब ओर मँडराते हुए भ्रमरोंके समूहसे उसकी कान्ति उल्लसित हो रही थी, आकाशमें उसका चँदेवा भगवान्‌के मूर्तिक यशके समान दिखाई देता था, उस मण्डपके चारों कोनोंमें ऊँचे खड़े किये हुए खम्भोंके समान सुशोभित, बड़े-बड़े मोतियोंसे निर्मित तथा बीच-बीचमें मूँगाओंसे खचित चार मालाएँ लटक रही थीं, उनसे वह अधिक सुशोभित हो रहा था। दयाकी मूर्ति, अहितका दमन करनेवाले, स्वयं ईश एवं स्वयं देदीप्यमान भगवान् नेमि जिनेन्द्र उस मण्डपके मध्यमें स्थित हो समस्त जीवोंके हितके लिए विहार कर रहे थे ॥५२-५६॥

१. दृष्टा म. । २. सर्वाण्यनूनभूतीनि ख. । ३. सीमानौ द्वावपि ज्ञेयौ क., ख., ङ. । ४. कारणै म. । गव्यूति-द्वयविस्तृतौ म., क., ङ., ख. । ५. घटिकाकलनिर्ह्रादी म. । ६. मुक्तागुणामुक्तं प्रान्तमध्वान्ततान्तरः म. । ७. स्वोत्तम्भस्तम्भ-म. । ८. -तराचितैः क. । ९. दयिताहितः म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पश्यन्त्यात्ममवान् सर्वे सप्त सप्त परापरान् । यत्र तद्भासतेऽत्यर्कं पश्चाद्भामण्डलं प्रभोः ॥५७॥
[1]त्रिलोकीवान्तसाराभात्युपर्युपरि निर्मला । त्रिच्छत्री[2] सा[3] जिनेन्द्रश्रीस्त्रैलोक्येशित्वशंसिनी ॥५८॥
चामराण्यभितो भान्ति सहस्राणि दमेश्वरम् । स्वयंवीज्यानि शैलेन्द्रं हंसा इव नभस्तले ॥५९॥
ऋषयोऽनुव्रजन्तीशं स्वर्गिणः परिवृण्वते । प्रतीहारः पुरो याति वासवो वसुभिः सह ॥६०॥
ततः केवललक्ष्मीतः प्रतिपद्या[4] प्रकाशते । साकं[5] शच्या त्रिलोकोरुभूतिर्लक्ष्मीः समङ्गला ॥६१॥
श्रीसनाथैस्ततः सर्वैर्भूयते पूर्णमङ्गलैः । मङ्गलस्य हि माङ्गल्या यात्रा मङ्गलपूर्विका ॥६२॥
शङ्खपद्मौ ज्वलन्मौलिसार्थीयौ सत्त्वकामदौ । निधिभूतौ प्रवर्तेते हेमरत्नप्रवर्षिणौ ॥६३॥
भास्वत्फणामणिज्योतिर्दीपिका भान्ति पन्नगाः । हतान्धतमसज्ञानदीपदीप्त्यनुकारिणः ॥६४॥
विश्वे वैश्वानरा यान्ति [6]धृतधूपघटोद्धताः । यद्गन्धो याति लोकान्तं जिनगन्धस्य सूचकः ॥६५॥
सौम्याग्नेयगुणा देवभक्ताः सोमदिवाकराः । स्वप्रभामण्डलादर्शमङ्गलानि[7] वहन्त्यहो ॥६६॥
तपनीयमयैश्छत्रैर्नभस्तपनरोधिभिः । [8]तपनैरेव सर्वत्र संरुद्धमिव दृश्यते ॥६७॥

उसी पुष्पमण्डपमें भगवान्‌के पीछे सूर्यको पराजित करनेवाला भामण्डल सुशोभित होता था जिसमें सब जीव अपने आगे-पीछेके सात-सात भव देखते हैं ॥५७॥ भगवान्‌के शिरपर ऊपर-ऊपर अत्यन्त निर्मल तीन छत्र सुशोभित हो रहे थे जिनमें तीनों लोकोंके द्वारा सार तत्त्व प्रकट किया गया था और उनसे ऐसा जान पड़ता था मानो वह जिनेन्द्र भगवान्‌की लक्ष्मी तीन लोकके स्वामित्वको सूचित ही कर रही थी ॥५८॥ भगवान्‌के चारों ओर अपने-आप ढुलनेवाले हजारों चमर ऐसे सुशोभित हो रहे थे जैसे आकाशतलमें मेरु पर्वतके चारों ओर हंस सुशोभित होते हैं ॥५९॥

ऋषिगण भगवान्‌के पीछे-पीछे चल रहे थे, देव उन्हें घेरे हुए थे और इन्द्र प्रतिहार बनकर आठ वसुओंके साथ भगवान्‌के आगे-आगे चलता था ॥६०॥ इन्द्रके आगे तीन लोककी उत्कृष्ट विभूतिसे युक्त लक्ष्मी नामक देवी, मंगलद्रव्य लिये शची देवीके साथ-साथ जा रही थी और वह केवलज्ञानरूपी लक्ष्मीके प्रतिबिम्बके समान जान पड़ती थी ॥६१॥ तदनन्तर श्रीदेवीसे सहित समस्त एवं परिपूर्णमंगलद्रव्य विद्यमान थे सो ठीक ही है क्योंकि मंगलमय भगवान्‌की मंगलमय यात्रा मंगलद्रव्योंसे युक्त होती ही है ॥६२॥ उनके आगे, जिनपर देदीप्यमान मुकुटके धारक प्रमुख देव बैठे थे ऐसी शंख और पद्म नामक दो निधियां चलती थीं। ये निधियाँ समस्त जीवोंको इच्छित वस्तुएँ प्रदान करनेवाली थीं तथा सुवर्ण और रत्नोंकी वर्षा करती जाती थीं ॥६३॥ उनके आगे फणाओंपर चमकते हुए मणियोंकी किरणरूप दीपकोंसे युक्त नागकुमार जातिके देव चलते थे और वे अज्ञानान्धकारको नष्ट करनेवाले केवलज्ञानरूपी दीपककी दीप्तिका अनुकरण करते हुए-से जान पड़ते थे ॥६४॥

उनके आगे धूपघटोंको धारण करनेवाले समस्त अग्निकुमार देव चल रहे थे। उन धूपघटोंकी गन्ध लोकके अन्त तक फैल रही थी और वह जिनेन्द्र भगवान्‌की गन्धको सूचित कर रही थी ॥६५॥ तदनन्तर शान्त और तेजरूप गुणको धारण करनेवाले, भगवान्‌के भक्त, चन्द्र और सूर्य जातिके देव अपनी प्रभाके समूहरूप मंगलमय दर्पणको धारण करते हुए चल रहे थे ॥६६॥ उस समय सन्तापके रोकनेके लिए सुवर्णमय छत्र लगाये गये थे, उनसे सर्वत्र ऐसा जान पड़ता

१. त्रिलोकीवात्तसारा–क. । २. त्रयाणां छत्राणाम् समाहारः त्रिछत्री । ३. त्रिछत्रीशो ख. । ४. प्रतिपद्या ख. । प्रतिप्राज्या क । ५. साकं सच्या त्रिलोकोरुभूतिलक्ष्मीः क. । ६. धूतधूमघटोद्धताः म. । ७ मङ्गलादर्शमङ्गलानि क., ङ. । ८. तपनीयैरेव म., ख., ङ. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पताकाहस्तविक्षेपैः [1]संतर्ज्य परवादिनः । दयामूर्ता इवेशांसा[2] नृत्यन्ति जयकेतवः ॥६८॥
[3]वैभवी विजयाख्यातिर्वैजयन्ती पुरेडिता । राजते त्रिजगन्नेत्रकुमुदामलचन्द्रिका ॥६९॥
भुवःस्वर्भूनिवासिन्यो भुवि यद्व्यन्तरा स्थिताः । नरीनृत्यन्ति देव्योऽग्रे प्रेमानन्दरसाष्टकम् ॥७०॥
आमन्द्रमधुरध्वानाव्याप्तदिग्विदिगन्तरा । धीरं नानद्यते नान्दी [4]जित्वा प्रावृड्घनावलीम् ॥७१॥
जितार्को धर्मचक्रार्कः सहस्रारांशुदीधितिः । याति देवपरीवारो [6]वियतातितमोपहः ॥७२॥
लोकानामेकनाथोऽयमेतैत नमतेति च । घुष्यते स्तनितैरग्रैर्घोषणाभयघोषणा ॥७३॥
भर्तृप्रभावसदृशा सत्पूर्वं व्याप्य दिक्पथे । प्रकुर्वन्ति जयाह्वानं धावन्तः प्रथमोत्तमाः ॥७४॥
देवयात्रामिमां दिव्यामन्वेत्य परमाद्भुताम् । अद्भुतान्यर्थदृष्ट्यादिसर्वाण्यसुभृतां भुवि ॥७५॥
[7]आधयो नैव जायन्ते व्याधयो व्यापयन्ति न[8] । ईतयश्चाज्ञया भर्तुर्नेति तद्देशमण्डले ॥७६॥
अन्धाः पश्यन्ति रूपाणि शृण्वन्ति बधिराः श्रुतिम् । मूकाः स्पष्टं प्रभाषन्ते विक्रमन्ते[9] च पङ्गवः ॥७७॥
नात्युष्णा नातिशीताः स्युरहोरात्रादिवृत्तयः । अन्यच्चाशुभमत्येति शुभं सर्वं प्रवर्धते ॥७८॥

था मानो आकाश सूर्योंसे ही व्याप्त हो रहा हो ॥६७॥ जगह-जगह विजय-स्तम्भ दिखाई दे रहे थे, उनसे ऐसा जान पड़ता था मानो पताकारूपी हाथोंके विक्षेपसे पर-वादियोंको परास्त कर दयारूपी मूर्तिको धारण करनेवाले भगवान्‌के मानो कन्धे ही नृत्य कर रहे हों ॥६८॥ आगे-आगे भगवान्‌की विजय-पताका फहराती हुई सुशोभित थी जो ऐसी जान पड़ती थी मानो तीन जगत्‌के नेत्ररूपी कुमुदोंको विकसित करनेके लिए निर्मल चाँदनी ही हो ॥६९॥ जो देवियाँ अधोलोक और ऊर्ध्वलोकमें निवास करती हैं तथा पृथिवीपर नाना स्थानोंमें निवास करनेवाली हैं वे भगवान्‌के आगे प्रेम और आनन्दसे आठ रस प्रकट करती हुई नृत्य कर रही थीं ॥७०॥ जिसने अपनी गम्भीर और मधुर ध्वनिसे समस्त दिशाओं और विदिशाओंके अन्तरको व्याप्त कर रखा था ऐसी नान्दी-ध्वनि (भगवत्स्तुतिकी ध्वनि) वर्षा ऋतुकी मेघावलीको जीतकर बड़ी गम्भीरतासे बार-बार हो रही थी ॥७१॥ जिसने अपनी प्रभासे सूर्यको जीत लिया था, जो हजार अररूप किरणोंसे सहित था, देवोंके समूहसे घिरा हुआ था और अत्यधिक अन्धकारको नष्ट कर रहा था ऐसा धर्मचक्र आकाश-मार्गसे चल रहा था ॥७२॥ आगे-आगे चलनेवाले स्तनितकुमार देव अभय घोषणाके साथ-साथ यह घोषणा करते जाते थे कि 'ये भगवान् तीन लोकके स्वामी हैं, आओ, आओ और इन्हें नमस्कार करो' ॥७३॥ उस समय बहुत-से उत्तम भवनवासी देव, भगवान् नेमिनाथके प्रभावके अनुरूप दिशाओं और मार्गको अच्छी तरह व्याप्त कर दौड़ते हुए जय-जयकार करते जाते थे ॥७४॥ जो जीव अनेक आश्चर्योंसे भरी हुई भगवान्‌की इस दिव्ययात्रामें साथ-साथ जाते थे, पृथिवीपर उन्हें अर्थ-दृष्टिको आदि लेकर समस्त आश्चर्योंकी प्राप्ति होती थी। भावार्थ—उन्हें चाहे जहाँ धन दिखाई देना आदि अनेक आश्चर्य स्वयं प्राप्त हो जाते थे ॥७५॥ जिस देशमें भगवान्‌का विहार होता था उस देशमें भगवान्‌की आज्ञा न होनेसे ही मानो किसीको न तो आधि-व्याधि—मानसिक और शारीरिक पीड़ाएँ होती थीं और न अतिवृष्टि आदि ईतियाँ ही व्याप्त होती थीं ॥७६॥ वहाँ अन्धे रूप देखने लगते थे, बहरे शब्द सुनने लगते थे, गूँगे स्पष्ट बोलने लगते थे और लँगड़े चलने लगते थे ॥७७॥ वहाँ न अत्यधिक गरमी होती थी, न अत्यधिक ठण्ड पड़ती थी, न दिन-रातका विभाग होता था, और न अन्य अशुभ कार्य अपनी अधिकता दिखला सकते

१. परिवादिनः म. । २. इवेशांशा म. । ३. विभोरियं वैभवी । ४. 'आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते । देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥' ५. यति म., क. । ६. वियतीति म. । ७. आवयोर्नैव म. । ८. नः म. । ९. विक्रयन्ते च म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूवधूः सर्वसम्पन्नसस्यरोमाञ्चकञ्चुका । करोत्यम्बुजहस्तेन भर्तुः पादग्रहं मुदा ॥७९॥
जिनार्कपादसंपर्कप्रोत्फुल्लकमलावलीम्[1] । [2]प्रथयत्युद्वहन्ती द्यौरस्थायिसरसीश्रियम् ॥८०॥
[3]सर्वेऽत्युक्ताः समात्मानः समदृष्टेश्वरेक्षिताः । ऋतवः समभेजन्ते [4]निर्विकल्पा हि सेशिता ॥८१॥
निधानानि निधीरन्नान्याकराण्यमृतानि च ।[5] सूयते तेन विख्याता रत्नसूरिति मेदिनी ॥८२॥
[6]अन्तकोऽन्तकजिद्वीर्यपराजितपराक्रमः । चर्मचक्रोर्जितं लोके नाकाले करमिच्छति ॥८३॥
कालः कालहरस्याज्ञामनुकूलभयादिव । प्रविहाय स्ववैषम्यं पूज्येच्छामनुवर्तते ॥८४॥
[7]त्रसस्थावरकाः सर्वे सुखं विन्दन्ति देहिनः । सैषा विश्वजनीना हि विभुता भुवि वर्तते ॥८५॥
जन्मानुबन्धवैरो यः सर्वोऽहिनकुलादिकः । तस्यापि जायतेऽजयं संगतं सुगताज्ञया ॥८६॥
गन्धवाहो वहद्गन्धं भर्तुस्तं कथमाप्नुयात्[8] । अचण्डः सेवते[9] सेवां शिक्षयन्नानुजीविनः ॥८७॥
रजस्तिमिरिकापायवैमल्याभरणत्विषः । दिक्कन्याः पुष्पजापैस्तं पूजयन्ति दिशां पतिम् ॥८८॥

थे। सब ओर शुभ ही शुभ कार्योंकी वृद्धि होती थी ॥७८॥ उस समय सर्व प्रकारकी फली-फूली धान्यरूपी रोमांचको धारण करनेवाली पृथिवीरूपी स्त्री कमलरूपी हाथोंके द्वारा बड़े हर्षसे भगवान्‌रूपी भर्तारके पादमर्दन कर रही थी ॥७९॥ जिनेन्द्ररूपी सूर्यके पादरूपी किरणोंके सम्पर्कसे फूली हुई कमलावलीको धारण करनेवाला आकाश उस समय चलते-फिरते तालाबकी शोभाको विस्तृत कर रहा था ॥८०॥ उस समय बिना कहे ही समस्त ऋतुएँ एक साथ वृद्धिको प्राप्त हो रही थीं, सो ऐसी जान पड़ती थीं मानो समदृष्टि भगवान्‌के द्वारा अवलोकित होनेपर वे समरूपी ही हो गयी थीं। यथार्थमें स्वामीपना तो वही है जिसमें किसीके प्रति विकल्प—भेदभाव न हो ॥८१॥ उस समय पृथिवी जगह-जगह अनेक खजाने, निधियाँ, अन्न, खानें और अमृत उत्पन्न करती थीं इसलिए 'रत्नसू' इस नामसे प्रसिद्ध हो गयी थी ॥८२॥ अन्तकजित्—यमराजको जीतनेवाले भगवान्‌के वीर्यसे जिसका पराक्रम पराजित हो गया था ऐसा यमराज, धर्मचक्रसे सबल संसारमें असमयमें करग्रहण करनेकी इच्छा नहीं करता था। भावार्थ—जहाँ भगवान्‌का धर्मचक्र चलता था वहाँ किसीका असमयमें मरण नहीं होता था ॥८३॥ काल (यम) को हरनेवाले हैं (पक्षमें समयको हरनेवाले) भगवान्‌की आज्ञाके विरुद्ध आचरण न हो जाये, इस भयसे काल (समय) अपनी विषमताको छोड़कर सदा भगवान्‌की इच्छानुसार ही प्रवृत्ति करता था। भावार्थ—काल, सर्दी-गरमी, दिन-रात आदिकी विषमता छोड़ सदा एक समान प्रवृत्ति कर रहा था ॥८४॥ भगवान्‌के विहार-क्षेत्रमें स्थित समस्त त्रस, स्थावर जीव सुखको प्राप्त हो रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि संसारमें विभुता वही है जो सबका हित करनेवाली हो ॥८५॥ जो साँप, नेवला आदि समस्त जीव जन्मसे ही वैर रखते थे उन सभीमें भगवान्‌की आज्ञासे अखण्ड मित्रता हो गयी थी ॥८६॥ भगवान्‌की बहती हुई गन्धको, पवन किस प्रकार प्राप्त कर सकता है इस प्रकार अनुजीवी जनोंको सेवाकी शिक्षा देता हुआ वह शान्त होकर भगवान्‌की सेवा कर रहा था। भावार्थ—उस समय शीतल, मन्द सुगन्धित पवन भगवान्‌की सेवा कर रहा था सो ऐसा जान पड़ता था मानो वह सेवकजनोंको सेवा करनेकी शिक्षा ही दे रहा था ॥८७॥ धूलिरूपी अन्धकारके नष्ट हो जानेसे प्रकट हुई निर्मलतारूपी आभरणोंकी कान्तिसे युक्त दिशारूपी कन्याएँ

---

१. कमलावली म.। २. प्रथयन्त्युद्वहन्ती म., क., ङ.। ३. स्वर्वेत्युक्ताः म.। सर्वे अत्युक्ताः इति पदच्छेदः, उक्तं अतिक्रान्ता इति अत्युक्ताः अकथिता एवेत्यर्थः। ४. निर्विकम्पा म., क., ख., ङ.। ५. सूयन्ते म., क., ख., ङ.,। ६. अन्ते कौन्तकजिद् म.। ७. तत्र स्थावरकाः म.। ८. तत्कथाप्नुयात् म.। तत्कथयाप्नुयात् क.। ९. सेव्यते क.। सेहते ख.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमः स्वच्छतरं स्पष्टतारातरलभासुरम् । सरः शरत्प्रसन्नाम्भः कुमुद्वदिव दृश्यते ॥८९॥
दूराच्चाल्पधियः सर्वे नमन्ति[1] किमुतेतरे । चतुरास्यश्चतुर्दिक्षु छायादिरहितो विभुः ॥९०॥
भुक्त्यभावो जिनेन्द्रस्योपसर्गस्य तथैव च । अहो लोकैकनाथस्य माहात्म्यं महदद्भुतम् ॥९१॥
शुभंयवो नमन्त्येत्याहंयवोऽपि प्रवादिनः । अवसानाद्भुतं चैतन्निर्द्वन्द्वं प्राभवं हि तत् ॥९२॥
यस्यां यस्यां दिशीशः स्यात्त्रिदशेशपुरस्सरः । तस्यां तस्यां दिशीशाः स्युः प्रत्युद्याताः सपूजनाः ॥९३॥
यतो यतश्च[2] यातीशस्तदीशाश्च समङ्गलाः । अनुयान्त्याश्च[3] सोमानः सार्वभौमो हि तादृशः ॥९४॥
त्रिमार्गगा [4]प्रयात्येवं देवसेना त्वमार्गगा । पवित्रयति भूलोकं पवित्रेण प्रभाविता ॥९५॥
तस्यामेकः समुत्तुङ्गो मादण्डो दण्डसंनिभः । अधरोपरिलोकान्तः प्राप्तः प्रत्यागतांशुभिः ॥९६॥
त्रिगुणीकृततेजस्कः स्थूलदृश्यः स्वतेजसा । भासते [5]भास्करादन्याज्ज्योतिष्टोमतिरस्करः ॥९७॥
आलोको यस्य लोकान्तव्यापी निःप्रतिबन्धनः । ध्वस्तान्धतमसो भास्वत्प्रकाशमतिवर्तते ॥९८॥
तस्यान्तस्तेजसो मर्ता तेजोमय इवापरः । रश्मिमालिसहस्रैकरूपाकृतिरनाकृतिः[6] ॥९९॥

फूलोंके जापसे भगवान्‌की पूजा कर रही थीं ॥८८॥ अत्यन्त स्वच्छ और जगमगाते हुए ताराओंसे देदीप्यमान आकाश, उस सरोवरके समान दिखायी देता था जिसका जल शरद् ऋतुके कारण स्वच्छ हो गया था तथा जिसमें कुमुदोंका समूह विद्यमान था ॥८९॥ उस समय अन्यकी तो बात ही क्या थी अल्पबुद्धिके धारक तिर्यंच आदि समस्त प्राणी भगवान्‌को दूरसे ही नमस्कार करते थे। भगवान् चतुर्मुख थे इसलिए चारों दिशाओंमें दिखाई देते और छाया आदिसे रहित थे ॥९०॥ भगवान् नेमि जिनेन्द्रके भोजन तथा सब प्रकारके उपसर्गोंका अभाव था सो ठीक ही है क्योंकि लोकके अद्वितीय स्वामीका ऐसा आश्चर्यकारी अद्भुत माहात्म्य होता ही है ॥९१॥ जिनका कल्याण होनेवाला था ऐसे प्रवादी लोग, अहंकारसे युक्त होनेपर भी आ-आकर भगवान्‌को नमस्कार करते थे सो ठीक ही है क्योंकि उन जैसा प्रभाव अन्तमें आश्चर्य करनेवाला एवं प्रतिपक्षीसे रहित होता ही है ॥९२॥ जिनके आगे-आगे इन्द्र चल रहा था ऐसे भगवान् जिस-जिस दिशामें पहुँचते थे उसी-उसी दिशाके दिक्पाल पूजनकी सामग्री लेकर भगवान्‌की अगवानीके लिए आ पहुँचते थे ॥९३॥ भगवान् जिस-जिस दिशासे वापस जाते थे उस-उस दिशाके दिक्पाल मंगल द्रव्य लिये हुए अपनी-अपनी सीमा तक पहुँचाने आते थे सो ठीक ही है क्योंकि भगवान् उसी प्रकारके सार्वभौम थे—समस्त पृथिवीके अधिपति थे ॥९४॥ त्रिमार्गगा अर्थात् गंगानदी अपने निश्चित तीन मार्गोंसे चलती है परन्तु वह देवोंकी सेना बिना मार्गके ही चल रही थी—उसके चलनेके मार्ग अनेक थे। इस तरह वह सेना अतिशय पवित्र भगवान्‌से प्रभावित हो पृथिवीलोकको पवित्र कर रही थी ॥९५॥ उस देवसेनाके बीच दण्डके समान एक बहुत ऊँचा कान्तिदण्ड विद्यमान था जो नीचेसे लेकर ऊपर लोकके अन्त तक फैला था और वापस आयी हुई किरणोंसे युक्त था ॥९६॥ अन्य तेजधारियोंकी अपेक्षा उस कान्तिदण्डका तेज तिगुना था। अपने तेजके द्वारा वह बड़ा स्थूल दिखाई देता था और सूर्यके सिवाय अन्य ज्योतिषियोंके समूहको तिरस्कृत करनेवाला था ॥९७॥ उस कान्तिदण्डका प्रकाश लोकके अन्त तक व्याप्त था, रुकावटसे रहित था, गाढ़ अन्धकारको नष्ट करनेवाला था, और सूर्यके प्रकाशको अतिक्रान्त करनेवाला था ॥९८॥ उस कान्तिदण्डके बीचमें पुरुषाकार एक ऐसा दूसरा कान्तिसमूह दिखाई देता था जो तेजका धारक था, अन्य तेजोमयके समान जान पड़ता था, एक

१. नयन्ति म. । २. अनुयान्त्या स्वसोमानः ख. । अनुपान्त्या स्वसीमानः म. । ३. यातश्च क. । जातस्य ङ. । ४. प्रयान्त्येव क. । ५. भास्करादन्याज्ज्योतिष्टोमविरस्करः म. ख. । ६. नराकृतिः ङ. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परितो [1]भामिसत्सर्पद्घनो भर्तुर्महोदयः । [2]भासिगव्यूतिविस्तारो युक्तोच्छ्रायस्तनूद्भवः [3] ॥१००॥
दृश्यते दृष्टिहारीव सुखदृश्यः सुखावहः । पुण्यमूर्तिस्तदन्तस्थः पूज्यते पुरुषाकृतिः ॥१०१॥
काधियोऽपुण्यजन्मानः स्वापुण्यजरुषान्विताः । न पश्यन्ते च तद्भासं भानुभासमुलूकवत् ॥१०२॥
तिरयन्ती रवेस्तेजः पूरयन्ती दिशोऽखिलाः । तत्प्रभा भानवीयेव पूर्वं व्याप्नोति भूतलम् ॥१०३॥
तस्याश्चानुपदं याति लोकेशो लोकशान्तये । लोकानुद्भासयन् सर्वानतिदीधितिमत्प्रभः ॥१०४॥
आसंवत्सरमात्माङ्कैः प्रथयन्प्राभवीं गतिम् । भासते [4]रत्नवृष्ट्याध्वाभरोत्यैरावतो यथा ॥१०५॥
अनुबन्धावनिप्रख्यं दिवि मार्गादि दृश्यते । त्रिलोकातिशयोद्भूतं तद्धि प्राभवमद्भुतम् ॥१०६॥
पटूभवन्ति मन्दाश्च सर्वे [6]हिंस्रास्त्वपर्धयः । [7]खेदस्वेदार्तिचिन्तादि न [8]तेषामस्ति तत्क्षणे ॥१०७॥
विहारानुगृहीतायां भूमौ न डमरादयः । [9]दशाभ्यस्तयुगं(?)भर्तुरहोऽत्र महिमा महान् ॥१०८॥
विभूत्योद्धतया भूत्यै जगतां जगतां विभुः । विजहार भुवं भव्यान् बोधयन् बोधदः क्रमात् ॥१०९॥

हजार सूर्यके समान कान्तिका धारक था, जिससे बढ़कर और दूसरी आकृति नहीं थी, जो चारों ओर फैलनेवाली कान्तिसे घनरूप था, भगवान्के महान् अभ्युदयके समान था, जिसकी कान्तिका विस्तार एक कोस तक फैल रहा था, जो भगवान्की ऊँचाईके बराबर ऊँचा था, दृष्टिको हरण करनेवाला था, सुखपूर्वक देखा जा सकता था, सुखको उत्पन्न करनेवाला था, पुण्यकी मूर्तिस्वरूप था और सबके द्वारा पूजा जाता था ॥९९-१०१॥ जिस प्रकार उल्लू सूर्यकी प्रभाको नहीं देख पाते हैं उसी प्रकार दुर्बुद्धि, पापी एवं अपने पापसे उत्पन्न क्रोधसे युक्त पुरुष उस कान्ति-समूहको नहीं देख पाते हैं ॥१०२॥ उस कान्ति-समूहमें-से एक विशेष प्रकारकी प्रभा निकलती थी जो सूर्यके तेजको आच्छादित कर रही थी, समस्त दिशाओंको पूर्ण कर रही थी और सूर्यकी प्रभाके समान पृथिवीतलको पहलेसे व्याप्त कर रही थी ॥१०३॥ उस प्रभाके पीछे, जो समस्त लोकोंको प्रकाशित कर रहे थे तथा जिनकी प्रभा अत्यधिक किरणोंसे युक्त थी ऐसे भगवान् नेमि जिनेन्द्र, लोकशान्तिके लिए—संसारमें शान्तिका प्रसार करनेके लिए विहार कर रहे थे ॥१०४॥ जिस मार्गमें भगवान्का विहार होता था वह मार्ग, अपने चिह्नोंसे एक वर्ष तक यह प्रकट करता रहता था कि यहाँ भगवान्का विहार हुआ है तथा रत्नवृष्टिसे वह मार्ग ऐसा सुशोभित होता था जैसा नक्षत्रोंके समूहसे ऐरावत हाथी सुशोभित होता है ॥१०५॥ जिस प्रकार विहारसे सम्बन्ध रखनेवाली पृथिवीमें मार्ग आदि दिखलाई देते हैं उसी प्रकार आकाशमें मार्ग आदि दिखाई देते हैं सो ठीक ही है क्योंकि तीन लोकके अतिशयसे उत्पन्न भगवान्का वह अतिशय ही आश्चर्यकारी था ॥१०६॥ उस समय मन्द बुद्धि मनुष्य तीक्ष्ण बुद्धिके धारक हो गये थे। समस्त हिंसक जीव प्रभावहीन हो गये थे और भगवान्के समीप रहनेवाले लोगोंको खेद, पसीना, पीड़ा तथा चिन्ता आदि कुछ भी उपद्रव नहीं होता था ॥१०७॥ भगवान्के विहारसे अनुगृहीत भूमिमें दो सौ योजन तक विप्लव आदि नहीं होते थे। अथवा दशसे गुणित युग अर्थात् पचास वर्ष तक उस भूमिमें कोई उपद्रव आदि नहीं होते थे। भावार्थ—जिस भूमिमें भगवान्का विहार होता था वहाँ ५० वर्ष तक कोई उपद्रव दुर्भिक्ष आदि नहीं होता था। यह भगवान्की बहुत भारी महिमा ही समझनी चाहिए ॥१०८॥ इस प्रकार उत्कृष्ट विभूतिसे युक्त, बोधको देनेवाले जगत्के स्वामी भगवान् नेमिनाथने भव्य जीवोंको सम्बोधित करते हुए, जगत्के वैभवके लिए क्रमसे पृथिवीपर विहार किया ॥१०९॥

१. भाति तूत्सर्पद्घनो ख., म., ङ. । २. राशिगव्यूत-क., ख., म. । ३. युक्तोच्छ्रायतनूद्भवः म. । ४. रत्नवृष्ट्या वा परीत्यैरावतो म., ख. । रत्नवृष्ट्या वा भरतैरावतो यथा क. । ५ प्रभोरिदं प्राभवम् प्रभुसंबन्धीत्यर्थः । ६. हिंस्रास्त्रपर्धयः म., ख., ङ., क. । ७. खेदः स्वेदार्ति- म. । ८. न चैषामस्ति म. । ९. देशाभ्यस्तयुगं ङ. । द्विशतयोजनं (म. टि.) अत्र 'शताभ्यस्तयुगं' इति पाठः सम्यक् प्रतिभाति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुराष्ट्रमत्स्यलाटोरुसूरसेनपटच्चरान् । कुरुजाङ्गलपाञ्चालकुशाग्रमगधाञ्जनान् ॥११०॥
अङ्गवङ्गकलिङ्गादीन्नानाजनपदान् जिनः । विहरन् जिनधर्मस्थांश्चक्रे क्षत्रियपूर्वकान् ॥१११॥
ततो मलयनामानं देशमागत्य स क्रमात् । सहस्राम्रवने तस्थौ पुरे भद्रिलपूर्वके ॥११२॥
पूर्ववद्रचिते तत्र चतुर्भेदैः सुरासुरैः । समवस्थानभूभागे जिनोऽभाद् गणवेष्टितः ॥११३॥
तत्पुराधिपतिः पौण्ड्रः पौरलोकसमन्वितः । सस्तुतिर्जिनमानम्य समासीनः कृताञ्जलिः ॥११४॥
देवक्यास्तनया ये षट् सुदृष्ट्यलकयोः स्थिताः । पुत्रप्रीतिं प्रकुर्वाणास्तेऽपि तत्रैव संगताः ॥११५॥
प्रत्येकं योषितस्तेषां द्वात्रिंशद्गणना गुणैः । रूपादिभिरपीन्द्रस्य जयन्त्यः शुचयः शचीम् ॥११६॥
अवतीर्य रथेभ्यस्ते षड्भ्यः षड्पि सोदराः । नत्वा नुत्वा जिनं राज्ञा सहासीना महौजसः ॥११७॥
जिनः श्रावकधर्मं च सम्यग्दर्शनभूषितम् । यतिधर्मं च कर्मघ्नं जगाद सदसे तदा ॥११८॥
ततो विदिततत्त्वार्थाः श्रुत्वा धर्मामृतं जिनात् । जातसंसारनिर्वेदा बन्धुभ्यो विनिवेद्य ते ॥११९॥
जिनपादान्तिके दीक्षां मोक्षलक्ष्मीविधायिनीम् । भ्रातरः सहनिस्संगाः षडपि प्रतिपेदिरे ॥१२०॥
द्वादशाङ्गं श्रुतज्ञानं लब्धबीजादिबुद्धयः । अधिगम्य तपो घोरं चक्रुस्ते राजसूनवः ॥१२१॥
षष्ठादयः सहामीषां धारणापरणा सह । योगास्त्रैकालिकाः साकं साकं शय्यासनक्रियाः ॥१२२॥
तेषां चरमदेहानां तपतां परमं तपः । देहानां परमा कान्तिः पूर्वतोऽपि विवर्धते ॥१२३॥
उपमानोपमेयत्वमन्योन्यस्य तपस्यमी । सबाह्याभ्यन्तरे प्रापुस्तीर्थकृत्पदसेवकाः ॥१२४॥

सुराष्ट्र, मत्स्य, लाट, विशाल शूरसेन, पटच्चर, कुरुजांगल, पांचाल, कुशाग्र, मगध, अंजन, अंग, वंग तथा कलिंग आदि नाना देशोंमें विहार करते हुए भगवान्‌ने क्षत्रिय आदि वर्णोंको जैनधर्ममें स्थित किया ॥११०–१११॥

तदनन्तर विहार करते-करते भगवान् मलय नामक देशमें आये और उसके भद्रिलपुर नगरके सहस्राम्रवनमें विराजमान हो गये ॥११२॥ पहलेकी तरह चारों प्रकारके देवोंने वहांपर भी समवसरणकी रचना कर दी और उसमें गणधरोंसे वेष्टित भगवान् सुशोभित होने लगे ॥११३॥ उस नगरका राजा पौण्ड्र, नगरवासियोंके साथ समवसरणमें आया और हाथ जोड़ स्तुति करता हुआ जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर मनुष्योंके कोठेमें बैठ गया ॥११४॥ देवकीके जो छह पुत्र सुदृष्टि सेठ और अलका सेठानीकी पुत्रप्रीतिको बढ़ाते हुए उनके यहाँ रहते थे वे भी समवसरणमें आये ॥११५॥ उनमें-से प्रत्येककी बत्तीस-बत्तीस स्त्रियाँ थीं जो अत्यन्त उज्ज्वल थीं और अपने रूप आदि गुणोंसे इन्द्रकी इन्द्राणीको भी जीतती थीं ॥११६॥ बहुत भारी तेजको धारण करनेवाले वे छह भाई अपने-अपने पृथक्-पृथक् छहों रथोंसे नीचे उतरकर समवसरणमें गये और जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर तथा उनकी स्तुति कर राजाके साथ मनुष्योंके कोठेमें बैठ गये ॥११७॥ उस समय भगवान्‌ने सभामें स्थित लोगोंके लिए सम्यग्दर्शनसे सुशोभित श्रावकधर्म और कर्मोंका नाश करनेवाले मुनिधर्मका उपदेश दिया ॥११८॥ तदनन्तर जिनेन्द्र भगवान्‌से धर्मरूप अमृतका श्रवण कर जिन्होंने तत्त्वके वास्तविक स्वरूपको जान लिया था ऐसे छहों भाई संसारसे विरक्त हो उठे और बन्धुजनोंको इसकी सूचना दे जिनेन्द्र भगवान्‌के चरणोंके समीप निर्ग्रन्थ हो एक साथ मोक्ष लक्ष्मीको प्रदान करनेवाली दीक्षाको प्राप्त हो गये ॥११९–१२०॥ जिन्हें बीज-बुद्धि आदि ऋद्धियाँ प्राप्त हुई थीं ऐसे उन राजकुमारोंने द्वादशांग श्रुतज्ञानका अभ्यास कर घोर तप किया ॥१२१॥ इन छहों मुनियोंके बेला आदि उपवास, उनकी धारणाएँ, पारणाएँ, त्रैकालिक योग तथा शयन, आसन आदि क्रियाएँ साथ-साथ ही होती थीं ॥१२२॥ उत्कृष्ट तप तपनेवाले उन चरमशरीरी मुनियोंके शरीरकी उत्कृष्ट कान्ति पहलेसे भी अधिक बढ़ गयी थी ॥१२३॥ तीर्थंकर भगवान्‌के चरणोंकी सेवा करनेवाले ये छहों मुनि, बाह्याभ्यन्तर तपमें परस्पर एक-दूसरेके उपमानोपमेयको

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथाविधमहाभूत्या विहृत्य स महीं जिनः । आगत्य समवस्थानेनोर्जयन्तमभूषयन् ॥१२५॥
इन्द्राद्यैस्त्रिदशैस्तस्मिन्नुपेन्द्राद्यैश्च यादवैः । द्वारिकापौरलोकेन सेव्यमानो जिनो बभौ ॥१२६॥
एकादश गणाधीशा वरदत्तादयस्तदा । श्रुतज्ञानसमुद्रान्तर्दर्शिनोऽत्र विरेजिरे ॥१२७॥
चतुःशतानि तत्रान्ये मान्याः पूर्वधराः सताम् । एकादशसहस्राष्टशतसंख्यास्तु शिक्षकाः ॥१२८॥
शतान्यवधिनेत्रास्तु केवलज्ञानिनोऽपि च । ते पञ्चदशसंख्यानाः प्रत्येकमुपवर्णिताः ॥१२९॥
मत्या विपुलया युक्ता शतानि नव संख्यया । वादिनोऽष्टौ शतानि स्युरेकादश तु वैक्रियाः ॥१३०॥
चत्वारिंशत्सहस्राणि राजीमत्या सहार्यिकाः । लक्षैकैकोनसप्तत्या सहस्रैः श्रावकाः स्मृताः ॥१३१॥
षट्त्रिंशच्च सहस्राणि लक्षाणां त्रितयं तथा । सम्यग्दर्शनसंशुद्धाः श्राविकाः श्रावकव्रताः ॥१३२॥
पूर्ववत्तीर्थकृन्मेघस्तृषितान् भव्यचातकान् । वर्षन् धर्मामृतं दिव्यं दिव्यध्वनिरतर्पयत् ॥१३३॥

इति दुरापमहोदयपर्वते जिनरवौ स्थितवत्यमितोदये ।
विकसति प्रकृताञ्जलिकुड्मलं सकललोकसरोजबुधाम्बुजम् ॥१३४॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ भगवद्विहारवर्णनो नामैकोनषष्टितमः सर्गः ॥५९॥

□

प्राप्त हो रहे थे ॥१२४॥

तदनन्तर उस प्रकारकी महाविभूतिके साथ पृथिवीपर विहार कर भगवान् ऊर्जयन्त गिरि—गिरनार पर्वतपर आये और समवसरणके द्वारा उसे सुशोभित करने लगे ॥१२५॥ इन्द्रादिक देवों, कृष्ण आदि यादवों और द्वारिकावासी नागरिक जनोंसे जिनकी सेवा हो रही थी ऐसे भगवान् नेमि जिनेन्द्र उस ऊर्जयन्त गिरिपर अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥१२६॥ उस समय समवसरणमें श्रुतज्ञानरूपी समुद्रके भीतरी भागको देखनेवाले वरदत्त आदि ग्यारह गणधर सुशोभित थे ॥१२७॥ भगवान्के समवसरणमें सज्जनोंके माननीय चार सौ पूर्वधारी, एक हजार आठ सौ शिक्षक, पन्द्रह सौ अवधिज्ञानी, पन्द्रह सौ केवलज्ञानी, नौ सौ विपुलमति मनःपर्ययज्ञानी, आठ सौ वादी और ग्यारह सौ विक्रिया ऋद्धिके धारक मुनिराज थे ॥१२८–१३०॥ राजीमतीको साथ लेकर चालीस हजार आर्यिकाएँ, एक लाख उनहत्तर हजार श्रावक और सम्यग्दर्शनसे शुद्ध तथा श्रावकके व्रत धारण करनेवाली तीन लाख छत्तीस हजार श्राविकाएँ वहाँ विद्यमान थीं ॥१३१–१३२॥ दिव्यध्वनिके धारक भगवान् तीर्थंकररूपी मेघ, धर्मरूपी दिव्य अमृतकी वर्षा करते हुए, प्यासे भव्यजीवरूपी चातकोंको पहलेकी तरह तृप्त करने लगे ॥१३३॥

इस प्रकार अपरिमित अभ्युदयके धारक नेमिजिनेन्द्ररूपी सूर्यके दुर्लभ महोदयसे युक्त ऊर्जयन्त पर्वतरूपी उदयाचलपर स्थित होते ही अंजलिरूपी कमलको धारण करनेवाले समस्त लोकरूपी सरोवरमें उत्पन्न हुए विद्वज्जनरूपी कमल प्रफुल्लित हो गये ॥१३४॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें भगवान्के विहारका वर्णन करनेवाला उनसठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥५९॥

□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

षष्टितमः सर्गः

अथ धर्मकथाछेदे प्रणिपत्य जिनेश्वरम् । कृताञ्जलिरपृच्छत् सा देवकी विनयं श्रिता ॥१॥
भगवन् भवने मेऽद्य जातरूपमनोहरम् । मुनियुग्मं प्रविश्य [1]त्रिरुपर्युपरि भुक्तवान् ॥२॥
भगवन् भुक्तिवेलायामेकस्यामेकभुक्तये । बहुकृत्वो [2]गृहं त्वेकं यतयः प्रविशन्ति किम् ॥३॥
अथातिशयरूपत्वाद्यतियुग्मत्रयं मया । भ्रान्त्या नालक्षि मे स्नेहो देहजेष्विव तेष्वभूत् ॥४॥
इत्युक्तेऽकथयन्नाथस्तनयास्ते षडप्यमी । युग्मत्रयतया सूता भवत्या कृष्णपूर्वजाः ॥५॥
देवेन रक्षिताः कंसात् सुदृष्ट्यलकयोः पुनः । सुतत्वेन च वृद्धास्ते पुरे भद्रिलनामनि ॥६॥
धर्मं श्रुत्वा समं सर्वे मम शिष्यत्वमागताः । कृत्वा कर्मक्षयं सिद्धिं यास्यन्त्यत्रैव जन्मनि ॥७॥
स्नेहोऽपत्यकृतोऽमीषु भवत्याः समभूदतः । धर्मचारिषु सर्वेषु स्नेहः किमुत सूनुषु ॥८॥
प्रणनाम ततस्तुष्टा देवकी देहजान्मुनीन् । यादवाश्च समस्तास्ते कृष्णाद्यास्तुष्टुवुर्नताः ॥९॥
प्रणम्यात्मभवान् पृष्टो जिनेन्द्रः सत्यभामया । यदुलोकामराध्यक्षं दिव्यचक्षुर्जगाविति ॥१०॥
प्राग्भद्रिलपुरेऽत्राभून्मरीचिकपिलासुतः । काव्यकृत्पण्डितंमन्यो विप्रो मुण्डशलायनः ॥११॥

अथानन्तर धर्मकथा पूर्ण होनेपर विनयको धारण करनेवाली देवकीने हाथ जोड़कर भगवान्‌को नमस्कार किया और उसके बाद यह पूछा कि भगवन् ! आज सुवर्णके समान सुन्दर दो मुनियोंका युगल मेरे भवनमें तीन बार आया और फिर-फिरसे उसने, तीन बार आहार लिया। हे प्रभो ! जब मुनियोंके भोजनकी बेला एक है और एक ही बार वे भोजन करते हैं तब मुनि एक ही घरमें अनेक बार क्यों प्रवेश करते हैं ? ॥१–३॥ अथवा यह भी हो सकता है कि वह तीन मुनियोंका युगल हो और अत्यन्त सदृश रूप होनेके कारण मैं भ्रान्तिवश उन्हें देख नहीं सकी हूँ। परन्तु इतना अवश्य है कि मेरा उन सबमें पुत्रोंके समान स्नेह उत्पन्न हुआ था ॥४॥

देवकीके इस प्रकार कहनेपर भगवान्‌ने कहा कि ये छहों मुनि तेरे पुत्र हैं और कृष्णके पहले तीन युगलके रूपमें तूने इन्हें उत्पन्न किया था ॥५॥ देवने कंससे इनकी रक्षा की और भद्रिलपुरमें सुदृष्टि सेठ तथा अलका सेठानीके यहाँ पुत्ररूपसे इनका लालन-पालन हुआ ॥६॥ धर्म श्रवण कर ये सबके सब एक साथ मेरी शिष्यताको प्राप्त हो गये—मुनि हो गये और कर्मोंका क्षय कर इसी जन्ममें सिद्धिको प्राप्त होंगे ॥७॥ तेरा इन सबमें जो स्नेह हुआ था वह अपत्यकृत था—पुत्र होनेसे किया गया था सो ठीक ही है क्योंकि समस्त धर्मात्मा जनोंमें प्रेम होता है फिर जो पुत्र होकर धर्मात्मा हैं उनका तो कहना ही क्या है ? ॥८॥ तदनन्तर देवकीने सन्तुष्ट होकर उन पुत्ररूप मुनियोंको नमस्कार किया तथा कृष्ण आदि समस्त यादवोंने नम्रीभूत होकर उनकी स्तुति की ॥९॥

तत्पश्चात् कृष्णकी पट्टरानी सत्यभामाने भगवान्‌को प्रणाम कर अपने पूर्वभव पूछे। उत्तरमें दिव्य नेत्र—केवलज्ञानके धारक भगवान् यादवों और देवोंके समक्ष इस प्रकार उसके पूर्वभव कहने लगे ॥१०॥

पहले भद्रिलपुर नगरमें मुण्डशलायन नामका एक ब्राह्मण रहता था जो मरीचि ब्राह्मण और कपिला ब्राह्मणीका पुत्र था, काव्यकी रचनामें निपुण था और अपने-आपको पण्डित मानता

---

१. वारत्रयम् । २. गृहेत्वेकम् म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुष्पदन्तजिनेन्द्रस्य तीर्थे व्युच्छेदभावतः । अभावे जिनमार्गज्ञभव्यानां भरतक्षितौ ॥१२॥
गोभूकन्याहिरण्यादिदानानि विषयातुरः । पापबन्धनिमित्तानि विप्रः प्रज्ञाप्य सोऽवनौ ॥१३॥
मोहयित्वा जडं लोकं राजलोकपुरोऽगमत्[1] । प्रवृत्तः पापवृत्तेषु सप्तमीं पृथिवीमितः ॥१४॥
उद्वर्त्यापि परिभ्रम्य तिर्यग्नारकयोनिषु । काकतालीययोगेन मानुषत्वमुपागतः ॥१५॥
गन्धावतीसरित्तीरे गन्धमादनपर्वते । व्याधः पर्वतको नाम्ना वल्लरीवल्लभोऽभवत् ॥१६॥
श्रीधरं धर्मसंज्ञं च [2]चारणश्रमणौ गिरौ । दृष्ट्वोपशमकृत्वाभ्यां प्रेषितं धर्मकालमाक् ॥१७॥
ज्योतिर्मालाख्यखेचर्यामलकायां महाबलात् । जातः शतबलिभ्राता स पुत्रो हरिवाहनः ॥१८॥
राजा राज्ये नियोज्यैतौ प्रव्रज्य श्रीधरान्तिके । प्रव्रज्यायाः फलं मुख्यं मोक्षसौख्यमवाप सः ॥१९॥
निर्वासितो विरोधस्थो ज्येष्ठेन हरिवाहनः । भगलीदेशशैलेऽस्थादम्बुदावर्तनामनि ॥२०॥
श्रीधर्मानन्तवीर्याख्यौ चारणौ वीक्ष्य तत्र सः । प्रव्रज्याराध्य स प्रापत् कल्पमैशानमेव च ॥२१॥
भुक्त्वा देवसुखं देवश्च्युत्वा संक्लेशभावतः । जाता स्वयंप्रभागर्भे भामा त्वं हि सुकेतुतः ॥२२॥
अत्र जन्मनि कृत्वान्ते तपो भूत्वाऽमरोत्तमः । च्युत्वा जैनं तपः कृत्वा निर्वाणसुखमाप्स्यति ॥२३॥
आकर्ण्यात्मभवानेवं ज्ञात्वात्मासन्ननिर्वृतिम् । आननाम जिनाधीशं सत्यभामा प्रमोदिनी ॥२४॥

था ॥११॥ श्री पुष्पदन्त जिनेन्द्रके तीर्थमें धर्मका व्युच्छेद हो जानेसे जब भरतक्षेत्रकी भूमिमें जिनमार्गके ज्ञाता भव्य जीवोंका अभाव हो गया तब उस विषयोंसे पीड़ित ब्राह्मणने पृथिवीपर पापबन्धमें कारणभूत गाय, कन्या तथा सुवर्ण आदिसे दानकी प्रवृत्ति चलायी ॥१२-१३॥ मूर्ख जनोंको मोहित कर वह राजपुरुषोंके आगे तक पहुँच गया अर्थात् क्रम-क्रमसे उसने राजा-प्रजा सभीको अपने चक्रमें फँसा लिया और पापाचारमें प्रवृत्त हो अन्तमें वह सातवें नरक गया ॥१४॥ वहाँसे निकलकर भी तिर्यंच और नारकियोंकी योनिमें परिभ्रमण करता रहा। तदनन्तर कदाचित् काकतालीयन्यायसे मनुष्य पर्यायको प्राप्त हुआ ॥१५॥ गन्धावती नदीके किनारे गन्धमादन पर्वतपर वह वल्लरी नामक स्त्रीका स्वामी पर्वतक नामका भील हुआ ॥१६॥ कदाचित् उस पर्वतपर श्रीधर और धर्म नामके दो चारणऋद्धिधारी मुनि आये। उनके दर्शन कर इसके परिणामोंमें कुछ शान्ति आयी जिससे मुनियोंने उससे उपवास कराया। अन्तमें वह धर्मपूर्वक मरणको प्राप्त हो विजयार्ध पर्वतकी अलका नगरीमें महाबल नामक विद्याधरसे ज्योतिर्माला नामकी विद्याधरीमें शतबलीका भाई हरिवाहन नामका पुत्र हुआ ॥१७-१८॥ कदाचित् राजा महाबल, शतबली और हरिवाहन नामक दोनों पुत्रोंको राज्य-कार्यमें नियुक्त कर श्रीधर गुरुके पास दीक्षित हो गया और दीक्षाका मुख्य फल मोक्षसम्बन्धी सुख उसे प्राप्त हो गया ॥१९॥ किसी कारण शतबली और हरिवाहनमें विरोध पड़ गया जिससे बड़े भाई शतबलीने उसे निकाल दिया। निर्वासित हरिवाहन भगलीदेशके अम्बुदावर्त नामक पर्वतपर स्थित था ॥२०॥ उसी समय वहाँ श्रीधर्म और अनन्तवीर्य नामक दो चारणऋद्धिधारी मुनि आये। उनके दर्शन कर हरिवाहनने दीक्षा ले ली और अन्तमें सल्लेखना धारण कर वह ऐशान स्वर्गको प्राप्त हुआ ॥२१॥ हरिवाहनके जीव देवने वहाँ देवोंके सुखोंका उपभोग किया परन्तु संक्लेशमय परिणाम होनेके कारण वहाँसे च्युत होकर राजा सुकेतुकी रानी स्वयंप्रभाके गर्भमें तू सत्यभामा नामकी कन्या हुई ॥२२॥ इस जन्ममें तपकर तू अन्तमें उत्तम देव होगी और वहाँसे च्युत हो जिनेन्द्र प्रणीत तप कर मोक्ष सुखको प्राप्त होगी ॥२३॥

इस प्रकार अपने भव सुनकर तथा निकट कालमें हमें मोक्ष प्राप्त होनेवाला है यह जानकर सत्यभामाने हर्षित हो भगवान्को नमस्कार किया ॥२४॥

१. पुरोगमम् म.। २. चारणश्रवणौ म., ङ.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रुक्मिण्यापि ततः पृष्टः पूर्वजन्मानि सर्ववित् । अवोचदिति [1]लोकेऽसौ प्रणिधानपरे स्थिते ॥२५॥
अत्रैव भरतक्षेत्रे विषये मगधाभिधे । ब्राह्मणी सोमदेवस्य लक्ष्मीग्रामेऽग्रजन्मनः ॥२६॥
आसील्लक्ष्मीमती नाम्ना लक्ष्मीरिव सुलक्षणा । रूपाभिमानतो मूढा पूज्यान्न प्रतिमन्यते ॥२७॥
धृतप्रसाधना वक्त्रं कदाचिच्चित्तहारिणी । नेत्रहारिणि चन्द्राभे पश्यन्ती मणिदर्पणे ॥२८॥
समाधिगुप्तनामानं तपसातिकृशीकृतम् । साधुं भिक्षागतं दृष्ट्वा निनिन्द विचिकित्सिता ॥२९॥
मुनेर्निन्दातिपापेन सप्ताहाभ्यन्तरे च सा । क्लिन्नोदुम्बरकुष्ठेन प्रविश्याग्निमगान्मृतिम् ॥३०॥
[2]सहार्ता सा खरी भूत्वा मृत्वा लवणभारतः । शूकरी मानदोषेण जाता राजगृहे पुरे ॥३१॥
वराकी मारिता मृत्वा गोष्ठेऽ[3]जायत कुक्कुरी । गोष्ठागतेन सा दग्धा परुषेण दवाग्निना ॥३२॥
त्रिपदाख्यस्य मण्डूक्यां मण्डूकग्रामवासिनः । मत्स्यबन्धस्य जाता सा दुहिता पूतिगन्धिका ॥३३॥
मात्रा त्यक्ता स्वपापेन पितामह्या प्रवर्धिता । निष्कुटे वटवृक्षस्य जालेनाच्छादयन्मुनिम् ॥३४॥
बोधितावधिनेत्रेण प्रभाते करुणावता । धर्मं समाधिगुप्तेन प्रोक्तपूर्वभवाग्रहीत् ॥३५॥
पुरं [4]सोपारकं याता तत्रार्याः [5]समुपास्य सा । ययौ राजगृहं तामिः कुर्वाणाचाम्लवर्धनम् ॥३६॥

तदनन्तर रानी रुक्मिणीने भी अपने पूर्वभव पूछे सो समस्त पदार्थोंके ज्ञाता भगवान् नेमिनाथ, इस प्रकार कथन करने लगे। उस समय समस्त लोग सुननेके लिए एकाग्रचित्त होकर बैठे थे ॥२५॥

इसी भरत क्षेत्रके मगध देशमें एक लक्ष्मी नामका ग्राम है। उसमें एक सोमदेव नामका ब्राह्मण रहता था। उसकी लक्ष्मीमती नामकी ब्राह्मणी थी जो कि लक्ष्मीके समान उत्तम लक्षणोंकी धारक थी और अपने रूपके अभिमानसे मूढ़ होकर पूज्य जनोंको भी कुछ नहीं समझती थी ॥२६-२७॥ चित्तको हरण करनेवाली वह लक्ष्मीमती, एक दिन आभूषण धारण कर नेत्रोंको प्रिय तथा चन्द्रमाके समान आभावाले मणिमय दर्पणमें अपना मुख देख रही थी उसी समय तपसे अतिशय कृश समाधिगुप्त नामके मुनि भिक्षाके लिए आये। उन्हें देख ग्लानियुक्त हो उसने उनकी निन्दा की ॥२८-२९॥ मुनिनिन्दाके बहुत भारी पापसे वह सात दिनके भीतर ही उदुम्बर कुष्ठसे पीड़ित हो गयी और इतनी अधिक पीड़ित हुई कि वह अग्निमें प्रवेश कर मर गयी ॥ ३० ॥ आर्तध्यानके साथ मरकर वह गधी हुई। उसपर नमक लादा जाता था। सो उसके भारसे मरकर वह मान कषायके दोषसे राजगृह नगरमें शूकरी हुई ॥३१॥ उस बेचारीको भी लोगोंने मार दिया जिससे मरकर वह गोष्ठ—गायोंके रहनेके स्थानमें कुत्ती हुई। एक दिन उस गोष्ठमें भयंकर दावाग्नि लग गयी जिससे वह कुत्ती उसी दावाग्निमें जल गयी ॥३२॥ और मरकर मण्डूकग्राममें रहनेवाले त्रिपद नामक धीवरकी मण्डूकी नामक स्त्रीसे पूतिगन्धिका नामक पुत्री हुई ॥३३॥ अपने पापके उदयसे माताने उसे छोड़ दिया अर्थात् उसकी माता मर गयी जिससे दादीने उसका पालन-पोषण किया। एक दिन इसके घरके उपवनमें वही समाधिगुप्त मुनिराज विहार करते हुए आये और वटवृक्षके नीचे विराजमान हो गये। रात्रिके समय शीतकी अधिकता देख पूतिगन्धाने उन मुनिराजको जालसे ढक दिया ॥ ३४ ॥ मुनिराज अवधिज्ञानरूपी नेत्रके धारक थे इसलिए उन्हें उसकी दशा देख दया आ गयी। उन्होंने उसे समझाया और उसके पूर्व भव सुनाये जिससे उसने धर्म धारण कर लिया ॥ ३५ ॥ एक बार वह पूतिगन्धा सोपारक नगर गयी। वहाँ आर्यिकाओंकी उपासना कर वह उन्हींके साथ आचाम्ल नामका तप करती हुई

१. लोकेशो म.। २. सा ह्यार्तेन ख., ङ., म.। ३. जाताथ म., घ.। ४. सोपानकम् क.। ५. समुपास्यया म., क., ङ., ख.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र [1]शिद्धशिलां वन्द्यां वन्दित्वा च स्थिता सती । कृत्वा नीलगुहायां सा सती सल्लेखनां मृता ॥३७॥
अच्युतेन्द्रमहादेवी नाम्ना गगनवल्लभा । वल्लभामवदुत्कृ[2]ष्टस्त्रीस्थितिस्तत्र देव्यसौ ॥३८॥
ततोऽवतीर्य भीष्मस्य श्रीमत्यां त्वं सुताभवः । नगरे कुण्डिनाभिख्ये रुक्मिणी रुक्मिणः स्वसा ॥३९॥
कृत्वा चात्र भवे भव्ये प्रव्रज्यां विबुधोत्तमः । च्युत्वा तपश्च कृत्वात्र नैर्ग्रन्थ्यं मोक्ष्यसे ध्रुवम् ॥४०॥
भीष्मजा भीष्मसंसारभीरुराकर्ण्य सा भवान् । ज्ञात्वासन्नस्वमोक्षासि[3] प्रणनाम प्रभुं मुदा ॥४१॥
जाम्बवत्या जिनः पृष्टस्तस्याः प्राह पुराभवम् । संसारभयभीतानां सन्निधौ निखिलाङ्गिनाम् ॥४२॥
सुतासीत् पुष्कलावत्यां जम्बूद्वीपस्य देविलात् । नगर्यां वीतशोकायां देवमत्यां यशस्विनी ॥४३॥
गृहपत्यात्मजायासौ [4]गृहपस्य शरीरजा । दत्ता सुमित्रसंज्ञाय मृते तत्र सुदुःखिता ॥४४॥
जैनेन जिनदेवेन जिनधर्मोपदेशिना । शाम्यमाना न सम्यक्त्वं लेभे मोहोदयादसौ ॥४५॥
दानोपवासविधिना लौकिकेन मृता सती । नन्दने व्यन्तरस्यासीत् सा भार्या मेरुनन्दना ॥४६॥
त्रिंशद्वर्षसहस्राणि लब्धाशीतियुतानि तत् । भोगं भुक्त्वा चिरं कालं संसारं संससार सा ॥४७॥
द्वीपेऽत्रैरावतक्षेत्रे पुरे विजयपूर्वके । बन्धुषेणस्य भूपस्य बन्धुमत्याः सुताभवत् ॥४८॥
नाम्ना बन्धुयशाः कन्या श्रीमत्या प्रोषधव्रतम् । कन्यया जिनदेवस्य प्रतिपद्य मृताभवत् ॥४९॥
धनदस्य प्रिया पत्नी नामतः सा स्वयंप्रभा । च्युत्वातः पुण्डरीकिण्यां जम्बूद्वीपे पृथौ पुरि ॥५०॥

राजगृह नगर चली गयी ॥३६॥ वहाँ वन्दना करने योग्य जो सिद्धशिला थी उसकी वन्दना कर वहीं नीलगुहामें रहने लगी और सल्लेखना धारण कर मृत्युको प्राप्त हुई ॥३७॥ मरकर वह सोलहवें स्वर्गमें अच्युतेन्द्रकी गगनवल्लभा नामकी अतिशय प्रिय महादेवी हुई। सोलहवें स्वर्गमें स्त्रियोंकी उत्कृष्ट स्थिति पचपन पल्यकी है सो वह उसी उत्कृष्ट स्थितिकी धारक हुई थी ॥३८॥ वहाँसे चय कर तू कुण्डिनपुरमें राजा भीष्मकी श्रीमती रानीसे रुक्मीकी बहन रुक्मिणी नामकी पुत्री हुई है ॥३९॥ इस उत्तम पर्यायमें तू दीक्षा धारण कर उत्तम देव होगी और वहाँसे च्युत हो निर्ग्रन्थ तपश्चरण कर निश्चित ही मोक्ष प्राप्त करेगी ॥४०॥ अपने पूर्व भव सुनकर रुक्मिणी भयंकर संसारसे भयभीत हो गयी और अपने लिए निकट कालमें मोक्ष प्राप्त होगा यह जानकर बड़े हर्षसे उसने भगवान्‌को नमस्कार किया ॥४१॥

तदनन्तर कृष्णकी तीसरी पट्टरानी जाम्बवतीने श्री नेमिजिनेन्द्रसे अपने पूर्वभव पूछे सो संसारसे भयभीत समस्त प्राणियोंके समक्ष वे उसके पूर्वभव इस प्रकार कहने लगे ॥४२॥ जम्बूद्वीपकी पुष्कलावती देशमें एक वीतशोका नामकी नगरी थी। उसमें देविल नामका एक गृहस्थ रहता था। उसकी देवमती नामकी स्त्रीसे तू यशस्विनी नामकी पुत्री हुई थी ॥४३॥ यशस्विनी, गृहपति (गहोई) की लड़की थी और गृहपति (गहोई) के पुत्र सुमित्रके लिए दी गयी थी। परन्तु पतिके मर जानेपर वह बहुत दुःखी हुई ॥४४॥ जिनधर्मका उपदेश देनेवाले किसी जिनदेव नामक जैनने उसे उपदेश देकर शान्त किया परन्तु मोहके उदयसे वह सम्यग्दर्शनको प्राप्त नहीं कर सकी ॥४५॥ वह पतिव्रता लौकिक दान तथा उपवास करती रही और उनके प्रभावसे मरकर नन्दन वनमें व्यन्तर देवकी मेरुनन्दना नामकी स्त्री हुई ॥४६॥ तीस हजार अस्सी वर्ष तक वहाँके भोग भोगकर वह चिर काल तक संसारमें परिभ्रमण करती रही ॥४७॥ तदनन्तर इसी जम्बूद्वीपके ऐरावत क्षेत्रमें विजयपुर नगरके राजा बन्धुषेणकी बन्धुमती नामक स्त्रीसे बन्धुयशा नामकी कन्या हुई। बन्धुयशाने कन्या अवस्थामें ही श्रीमती नामक आर्यिकासे जिनदेव प्ररूपित प्रोषधव्रत धारण किया था इसलिए वह मरकर कुबेरकी स्वयंप्रभा नामकी स्त्री हुई। आयुके अन्तमें वहाँसे च्युत हो

१. सिद्धशिला वन्द्या म. । २.-दुत्कृष्टा म., क., ङ. । ३. मोक्षासिः म. । ४. गृहपतेः ङ. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वज्रमुष्टेः सुभद्रायां सुमतिस्तनयाभवत् । सुन्दर्यार्यिकया पार्श्वे कृत्वा रत्नावलीतपः ॥५१॥
सा त्रयोदशपल्यायुर्ब्रह्मेन्द्राग्राङ्गनाभवत् । च्युतातो दक्षिणश्रेण्यां विजयार्धस्य भारते ॥५२॥
नगरे जाम्बवाभिख्ये जाम्बवस्य खगेशिनः । जाम्बवत्यां प्रियायां त्वं जाता जाम्बवती सुता ॥५३॥
तपस्तपस्विनी कृत्वा भूत्वा कल्पामरोत्तमः । च्युत्वा नृपात्मजो भूत्वा तपसा सिद्धिमेष्यति ॥५४॥
सेत्युक्ते त्यक्तसंशीतिः शीलालंकृतिशालिनी । प्रणम्य जिनमासीना मन्वाना भवनिर्गमम् ॥५५॥
जननानि जिनो पृष्टो विनयेन सुसीमया । सभाजनमनोह्लादजननध्वनिनाब्रवीत् ॥५६॥
धातकीखण्डपूर्वार्धमेरुपूर्वविदेहजे । [2]विषये मङ्गलावत्यां नगरे रत्नसंचये ॥५७॥
भूपतिर्विश्वसेनोऽभूद्भार्यास्यानुन्धरीरिता । अमात्यः श्रावकोऽस्यैव विश्रुतः सुमतिश्रुतिः ॥५८॥
पद्मसेनेन निहतोऽयोध्याधिपतिना युधि । विश्वसेनोऽस्य जायायै सोऽमात्यो धर्ममब्रवीत् ॥५९॥
मोहादप्राप्तसम्यक्त्वा विजयद्वारवासिनः । मृत्वा ज्वलितवेगाभूद् व्यंतरी विजयस्य सा ॥६०॥
दशवर्षसहस्राणि भुक्त्वा तत्र सुखं ततः । च्युता चिरं परिभ्रम्य भीमं संसारसागरम् ॥६१॥
जम्बूद्वीपविदेहेऽतः[3] सीताया दक्षिणे तटे । रम्ये रम्याभिधे क्षेत्रे शालिग्रामे महाधने ॥६२॥

जम्बूद्वीपकी पुण्डरीकिणी नामक विशालपुरीमें वज्रमुष्टिकी सुभद्रा स्त्रीसे सुमति नामकी पुत्री हुई। वहाँ उसने सुन्दरी नामक आर्यिकासे प्रेरित हो उनके समीप रत्नावली नामका तप किया जिसके प्रभावसे मरकर वह तेरह पल्यकी आयुकी धारक ब्रह्मेन्द्रकी प्रधान इन्द्राणी हुई। तदनन्तर वहाँसे भी च्युत होकर भरतक्षेत्र सम्बन्धी विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें जाम्बव नामक नगरके विद्याधर राजा जाम्बवकी जाम्बवती नामक रानीसे तू जाम्बवती नामकी पुत्री हुई ॥४८-५३॥ इस भवमें तू तपस्विनी होकर तप करेगी और स्वर्गका उत्तम देव होकर वहाँसे च्युत हो राजपुत्र होगी। तदनन्तर तपके द्वारा मोक्षको प्राप्त होगी ॥५४॥ इस प्रकार भगवान्के द्वारा अपने पूर्वभव कहे जानेपर जिसका सब संशय दूर हो गया था तथा जो शीलरूपी अलंकारसे सुशोभित थी ऐसी जाम्बवती रानी जिनेन्द्र देवको प्रणाम कर 'मैं संसारसे पार हो गयी' ऐसा मानती हुई सुखसे आसीन हुई ॥५५॥

तदनन्तर सुशीला नामक चौथी पट्टरानीने विनयपूर्वक जिनेन्द्र भगवान्से अपने भवान्तर पूछे सो भगवान् सभासदोंके मनको आनन्द उत्पन्न करनेवाली दिव्यध्वनिसे उसके भवान्तर इस प्रकार वर्णन करने लगे—

धातकीखण्ड द्वीपके पूर्वार्धमें जो मेरु पर्वत है उससे पूर्वकी ओरके विदेह क्षेत्रमें एक मंगलावती नामका देश है। उसके रत्नसंचय नामक नगरमें किसी समय विश्वसेन राजा रहता था उसकी स्त्रीका नाम अनुन्धरी था। इसी राजाका एक सुमति नामका प्रसिद्ध मन्त्री था जो श्रावक धर्मका प्रतिपालक था ॥५६–५८॥ कदाचित् अयोध्याके राजा पद्मसेनने राजा विश्वसेनको युद्धमें प्राणरहित कर दिया जिससे उसकी स्त्री अनुन्धरी बहुत दुःखी हुई। सुमति मन्त्रीने उसे धर्मका उपदेश दिया परन्तु मोहके कारण वह सम्यग्दर्शनको प्राप्त नहीं हो सकी और आयुके अन्तमें मरकर विजयद्वारपर निवास करनेवाले विजय नामक व्यन्तर देवकी ज्वलनवेगा नामकी व्यन्तरी हुई ॥५९-६०॥ दश हजार वर्ष तक वहाँके सुख भोगकर वह वहाँसे च्युत हुई और चिरकाल तक भयंकर संसार-सागरमें परिभ्रमण करती रही ॥६१॥ तदनन्तर जम्बूद्वीपके विदेह क्षेत्रमें सीता नदीके दक्षिण तटपर एक रम्य नामका सुन्दर क्षेत्र है। उसके महाधनसम्पन्न शालिग्राम नामक नगरमें एक यक्षिल नामका गृहपति रहता था। उसकी स्त्रीका नाम देवसेना था।

---

१. सुन्दर्यार्यिकायाः ख. । २. विजयो म. (?) । ३. विदेहेन्तः म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुताभूद्देवसेनायां यक्षिलस्य गृहेशिनः । यक्षाराधनतो लब्धा यक्षदेवी स्वनामतः ॥६३॥
सा यक्षगृहपूजार्थमन्यदा प्रगतात्र च । धर्मसेनगुरोरन्ते धर्मं शुश्राव गौरवात् ॥६४॥
आहारदानमस्मै सा पात्रायातिथयेऽन्यदा । दत्वा भक्तिमती कन्या पुण्यबन्धं बबन्ध च ॥६५॥
सखीभिः क्रीडितुं याता कदाचिद्विमलाचलम् । तत्र चाकालवर्षेण पीडिता प्राविशद् गुहाम् ॥६६॥
तत्र सिंहेन संत्रस्ता ग्रस्ता त्यक्तात्मविग्रहा । बभूव हरिवर्षेऽसौ द्विपल्योपमजीविता ॥६७॥
ज्योतिर्लोकमतो गत्वा पल्योपमसमस्थितिः । तच्च्युत्वा पुष्कलावत्यां जम्बूद्वीपस्य भारते ॥६८॥
वीतशोकाभिधानायामशोकस्य महीपतेः । श्रीमत्यामभवत् कन्या श्रीकान्ता नामतः सुता ॥६९॥
जिनदत्तार्यिकोपान्ते विनिष्क्रम्य कुमारिका । रत्नावलिं तपः कृत्वा माहेन्द्राधिपतेः प्रिया ॥७०॥
भूत्वैकादशपल्यायुर्भुक्त्वा स्वर्गसुखं च्युता । सुज्येष्ठायां सुराष्ट्रेषु राष्ट्रवर्धनभूभृतः ॥७१॥
सुसीमा तनयाभूस्त्वं नगरे गिरिपूर्वके । देवो भूत्वा तपः शक्त्या मोक्ष्यसे नृभवे ततः ॥७२॥
निशम्यात्मभवानित्थं सुसीमा सौम्यमानसा । प्रकृष्टासन्ननिष्ठेति निष्ठितार्थं ननाम सा ॥७३॥
पृष्टो लक्ष्मणया गत्वा जिनः प्रोवाच तद्भवान् । जिनाः सर्वहिताः सर्वे यत्प्रश्नोत्तरवादिनः ॥७४॥
द्वीपेऽस्मिन् कच्छकावत्यां सीतायाः उत्तरे तटे । राजारिष्टपुरे ह्यासीद्वासवो वासवोपमः ॥७५॥
सुमित्राख्या प्रियास्यासौ वन्दितुं साङ्गनो ययौ । गुरुं सागरसेनाख्यं सहस्राम्रवनस्थितम् ॥७६॥

ज्वलनवेगाका जीव इन्हीं दोनोंके एक पुत्री हुआ। वह पुत्री चूँकि यक्षकी आराधनासे प्राप्त हुई थी इसलिए उसका यक्षदेवी यही नाम प्रसिद्ध हो गया ॥ ६२-६३॥ किसी समय वह यक्षदेवी, यक्षगृहकी पूजाके लिए गयी थी। वहाँ उसने धर्मसेन गुरुके समीप बड़े गौरवसे धर्मका उपदेश सुना ॥६४॥ किसी दिन उस भक्तिमती कन्याने उक्त मुनिके लिए आहार दान दिया और उसके फलस्वरूप पुण्यबन्ध बाँधा ॥६५॥ किसी समय वह यक्षदेवी सखियोंके साथ क्रीड़ा करनेके लिए विमल नामक पर्वतपर गयी थी वहाँ अकाल वर्षासे पीड़ित होकर वह एक गुफामें घुस गयी ॥६६॥ उस गुफामें पहलेसे सिंह बैठा था सो उस सिंहने देखते ही यक्षदेवीको खा लिया। यक्षदेवी अपना शरीर छोड़ हरिवर्ष क्षेत्रमें दो पल्यकी धारक आर्या हुई ॥६७॥ वहाँसे चयकर वह ज्योतिष लोकमें एक पल्यकी आयुवाली देवी हुई। तदनन्तर वहाँसे च्युत हो जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरतक्षेत्रके पुष्कलावती देशमें वीतशोका नामक नगरीके राजा अशोककी श्रीमती नामक रानीसे श्रीकान्ता नामकी पुत्री हुई ॥६८-६९॥ श्रीकान्ताने कुमारी अवस्थामें ही जिनदत्ता आर्यिकाके पास दीक्षा लेकर रत्नावली नामका तप किया और उसके फलस्वरूप वह माहेन्द्रस्वर्गके इन्द्रकी ग्यारह पल्यकी आयुवाली प्रिय देवी हुई। स्वर्गके सुख भोगकर वहाँसे च्युत हुई और सुराष्ट्र देशके गिरिनगरमें राष्ट्रवर्धन राजाकी सुज्येष्ठा नामक रानीसे तू सुसीमा नामकी पुत्री हुई है। अब तू तपकी शक्तिसे देव होगी और तदनन्तर मनुष्य पर्याय प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करेगी ॥७०-७२॥ इस प्रकार अपने भव श्रवण कर तथा अपना संसार अत्यन्त निकट जानकर सुसीमा बहुत प्रसन्न हुई और उसने कृतकृत्य भगवान् नेमिजिनेन्द्रको नमस्कार किया ॥७३॥

तदनन्तर लक्ष्मणा नामक पाँचवीं पट्टरानीने नमस्कार कर भगवान्से अपने पूर्वभव पूछे सो भगवान् उसके पूर्वभव कहने लगे। चूँकि समस्त तीर्थंकर भगवान् प्रश्नोंका उत्तर, निरूपण करते हैं इसलिए वे सर्वहितकारी कहलाते हैं ॥७४॥ उन्होंने कहा कि इसी जम्बूद्वीपकी सीता नदीके उत्तर तटपर एक कच्छकावती नामका देश है। उसके अरिष्टपुर नगरमें किसी समय इन्द्रकी उपमाको धारण करनेवाला एक वासव नामका राजा रहता था। उसकी सुमित्रा नामकी वल्लभा थी। एक दिन वह अपनी वल्लभाके साथ, सहस्राम्र वनमें स्थित सागरसेन नामक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्मं श्रुत्वा गुरो राजा राज्ये विन्यस्य देहजम् । वसुसेनमदीक्षिष्ट न पत्नी पुत्रमोहतः ॥७७॥
पतिपुत्रवियोगोग्रशोकदुःखहता मृता । [1]पुलिन्दीत्वं गता दृष्ट्वा नन्दिभद्रं खचारणम्[2] ॥७८॥
अवधिज्ञानिनं श्रुत्वा तस्मात्पूर्वभवं हि सा । स्मृतपूर्वभवा [3]मृत्वा त्रिदिनानशनव्रता ॥७९॥
नारदस्यामवद्देवी नामतो मेघमालिनी । च्युत्वा च भरतक्षेत्रे रौप्याद्रेर्दक्षिणे तटे ॥८०॥
सानुन्धर्यां महेन्द्रस्य पुरे चन्दनपूर्वके । सुता कनकमालाभूद्विद्याधरमनोहरा ॥८१॥
हरिवाहनविद्येशं महेन्द्रनगरेश्वरम्[4] । वृत्वा स्वयंवरे कन्या मान्या जातास्य वल्लभा ॥८२॥
अन्यदा चैत्यपूजार्थं सिद्धकूटमियं गता । श्रुत्वा च चारणाज्जातिमार्या मुक्तावलीं तपः ॥८३॥
कृत्वा सनत्कुमारेन्द्रवल्लभाभूत् सुराङ्गना । नवपल्योपमायुष्का सौख्यं भुक्त्वात तश्च्युता ॥८४॥
जातात्र श्लक्ष्णरोम्णस्त्वं कुरुमत्यां सुता भवे । तृतीये मुक्तिरित्युक्ते लक्ष्मणा प्रणता प्रभुम् ॥८५॥
स गान्धार्या कृते प्रश्ने तद्भवान्भगवान् जगौ । नगर्यां कोशलेष्वासीदयोध्यायां महीपतेः ॥८६॥
महिषी रुद्रदत्तस्य विनयश्री श्रुताख्यया । श्रीधराय ददौ दानं पत्या सिद्धार्थके वने ॥८७॥
मृत्वोत्तरकुरुष्वासीद्दानात्पल्यत्रयस्थितिः । पल्याष्टभागतुल्यायुः सातश्चन्द्रमसः प्रिया ॥८८॥

मुनिराजकी वन्दना करनेके लिए गया ॥७५-७६॥ राजा वासव, मुनिराजसे धर्मश्रवण कर विरक्त हो गया और वसुसेन नामक पुत्रको राज्यभार सौंपकर दीक्षित हो गया परन्तु पुत्रके मोहसे रानी सुमित्रा दीक्षा नहीं ले सकी ॥७७॥

कदाचित् पुत्रका भी वियोग हो गया अतः पति और पुत्रके वियोगजन्य तीव्र शोकसे उत्पन्न दुःखसे पीड़ित होकर वह मर गयी और मरकर भीलिनी पर्यायको प्राप्त हुई। एक दिन उस भीलिनीने अवधिज्ञानके धारक नन्दिभद्र नामक चारण ऋद्धिधारी मुनिराजके दर्शन कर उनसे अपने पूर्वभव सुने। पूर्वभवोंको स्मरण कर उसने तीन दिनका अनशन किया और मरकर नारद नामक देवकी मेघमालिनी नामकी स्त्री हुई। वहाँसे च्युत होकर भरत क्षेत्रके दक्षिण तटपर चन्दनपुर नामक नगरमें राजा महेन्द्रकी अनुन्धरी रानीसे विद्याधरोंके मनको हरण करनेवाली कनकमाला नामकी पुत्री हुई ॥७८-८१॥ कनकमाला स्वयंवरमें महेन्द्र नगरके राजा हरिवाहन विद्याधरको वरकर उसकी माननीय वल्लभा हो गयी ॥८२॥ किसी समय कनकमाला जिन-प्रतिमाओंकी पूजा करनेके लिए सिद्धकूट गयी थी। वहाँ चारण ऋद्धिके धारक मुनिराजसे अपने पूर्वभव श्रवण कर वह आर्यिका हो गयी और मुक्तावली नामका तपकर सनत्कुमार स्वर्गके इन्द्रकी प्रियदेवी हुई। वहाँ उसकी नौ पल्यकी आयु थी। सुख भोगकर वह वहाँसे च्युत हो यहाँ राजा श्लक्ष्णरोमकी कुरुमती रानीसे लक्ष्मणा नामकी पुत्री हुई है। तीसरे भवमें तेरी मुक्ति होगी। इस प्रकार भवान्तर कहे जानेपर लक्ष्मणा रानीने भगवान् नेमिजिनेन्द्रको नमस्कार किया ॥८३-८५॥

तदनन्तर कृष्णकी छठी पट्टरानी गान्धारीके द्वारा प्रश्न किये जानेपर भगवान् उसके पूर्वभव कहने लगे। उन्होंने कहा कि कोशल देशकी अयोध्या नगरीमें किसी समय रुद्रदत्त नामका राजा रहता था। उसकी विनयश्री नामकी रानी थी। उसने एक समय सिद्धार्थक नामक वनमें अपने पतिके साथ, श्रीधर नामक मुनिराजके लिए आहार दान दिया ॥८६-८७॥ दानके प्रभावसे मरनेके बाद वह उत्तरकुरुमें तीन पल्यकी आयुकी धारक आर्या हुई। उसके बाद पल्यके आठवें भाग बराबर आयुकी धारक चन्द्रमाकी प्रिया हुई ॥८८॥ तदनन्तर इसी विजयार्धकी उत्तर श्रेणीमें

१. शवरीपर्यायं । २. चारणमुनिं । ३. मृत्वा निन्दितानशनव्रता म. । ४. कृत्वा म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ततश्चात्रोत्तरश्रेण्यां पुरे गगनवल्लभे । विद्युद्वेगस्य कन्याभूद्विद्युन्मत्यां महाद्युतिः ॥८९॥
विनयश्रीर्गुणैः ख्याता नित्यालोकपुरेशिनः । महेन्द्रविक्रमस्यैषा योषिद्गुणसमन्विता ॥९०॥
चारणश्रमणाभ्यां तु धर्मं श्रुत्वा स मन्दरे । राज्ये नियोज्य निष्क्रान्तो नन्दनं हरिवाहनम् ॥९१॥
विनयश्रीस्तु कृत्वासौ सर्वभद्रमुपोषितम् । पञ्चपल्यस्थितिर्जाता सौधर्मेन्द्रस्य वल्लभा ॥९२॥
पुर्यां त्वं पुष्कलावत्यां गान्धारेषु दिवश्च्युता । गान्धारीन्द्रगिरे राज्ञो मेरुमत्यामभूत्सुता ॥९३॥
तृतीयभवसिद्धिस्त्वमित्युक्ते सानमज्जिनम् । गौर्या विज्ञापितो नत्वा तद्भवानाह विश्ववित्[1] ॥९४॥
इभ्यस्येभ्यपुरेऽत्राभूद्धनदेवस्य कामिनी । यशस्विनी स्थिता हर्म्ये चारणौ वीक्ष्य साम्बरे ॥९५॥
सस्मार स्वभवान् सर्वान् धातकीखण्डमण्डले । पूर्वस्य मन्दरस्यासं विदेहेष्वपरेष्वहम् ॥९६॥
आनन्दश्रेष्ठिनः पत्नी नन्दशोकपुरेऽर्हते । मितसागरनाम्नेऽत्र दानं दत्वा समर्तृका ॥९७॥
पञ्चाश्चर्याण्यहं प्रापं कृतानि त्रिदशैर्मुदा । पीत्वाकाशोदकं भर्त्रा सविषं मृतवत्यमा ॥९८॥
मृत्वा देवकुरुष्वासमैशानेन्द्रप्रिया ततः । जातात्राहमिति ज्ञात्वा सा संवेगपरा यतिम् ॥९९॥
नत्वा सुभद्रनामानं प्रोषधव्रतमग्रहीत् । मृत्वा शक्रस्य देव्यासीत्पञ्चपल्यसमस्थितिः ॥१००॥

गगनवल्लभ नगरके स्वामी राजा विद्युद्वेगकी विद्युन्मती नामक रानीसे महाकान्तिकी धारक विनयश्री नामकी कन्या हुई। यह कन्या गुणोंसे अत्यन्त प्रसिद्ध थी और नित्यालोक नगरके स्वामी राजा महेन्द्रविक्रमकी गुणवती स्त्री हुई। कदाचित् सुमेरु पर्वतपर चारण ऋद्धिके धारक युगल मुनियोंसे धर्म श्रवण कर राजा महेन्द्रविक्रम संसारसे विरक्त हो गया और उसने हरिवाहन नामक पुत्रको राज्य-कार्यमें नियुक्त कर दीक्षा धारण कर ली ॥८९–९१॥ विनयश्रीने भी संसारसे विरक्त हो सर्वभद्र नामक उपवास किया और उसके प्रभावसे वह पाँच पल्यकी स्थितिकी धारक सौधर्मेन्द्रकी देवी हुई ॥९२॥ अब तू स्वर्गसे च्युत होकर गान्धार देशकी पुष्कलावती नगरीमें राजा इन्द्रगिरिकी मेरुमती नामक रानीसे गान्धारी नामकी पुत्री हुई ॥९३॥ तू तीसरे भवमें मोक्ष प्राप्त करेगी। इस प्रकार अपने भवान्तरके कहे जानेपर गान्धारीने जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार किया। तदनन्तर कृष्णकी सातवीं पट्टरानी गौरीने नमस्कार कर अपने पूर्वभव पूछे सो समस्त पदार्थोंको जाननेवाले भगवान् इस प्रकार उसके पूर्वभव कहने लगे ॥९४॥

इस भरत क्षेत्रके इभ्यपुर नगरमें किसी समय धनदेव नामका एक सेठ रहता था। उसकी यशस्विनी नामकी स्त्री थी। एक दिन यशस्विनी अपने महलकी छतपर खड़ी थी वहाँ उसने आकाशमें जाते हुए दो चारण ऋद्धिधारी मुनि देखे ॥९५॥ उन्हें देखते उसे अपने समस्त पूर्वभवोंका स्मरण हो गया। उसे मालूम हो गया कि मैं धातकीखण्ड द्वीपके पूर्व मेरुकी पश्चिम दिशामें विद्यमान विदेह क्षेत्रके अन्तर्गत नन्दशोक नामक नगरमें आनन्द नामक सेठकी पत्नी थी। वहाँ मैंने अपने पतिके साथ, मितसागर नामक मुनिराजके लिए आहार दान दिया। जिसके फलस्वरूप मैंने हर्षपूर्वक देवोंके द्वारा किये हुए पंचाश्चर्य प्राप्त किये थे। कदाचित् हम दोनोंने आकाशसे पड़ता हुआ वर्षाका पानी पिया। वह पानी विष-सहित था इसलिए पतिके साथ मेरा मरण हो गया ॥९६–९८॥

मरकर मैं देवकुरुमें आर्या हुई। उसके बाद ऐशानेन्द्रकी प्रिया हुई और उसके बाद यहाँ यशस्विनी हुई हूँ। इस प्रकार जानकर संसारसे भयभीत होती हुई यशस्विनीने सुभद्र नामक मुनिराजको नमस्कार कर उनसे प्रोषधव्रत ग्रहण किया। तदनन्तर मरकर पाँच पल्यकी आयुकी धारक प्रथम स्वर्गके इन्द्रकी इन्द्राणी हुई ॥९९–१००॥

---

१. सर्वज्ञः, नेमिजिनेन्द्रः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

च्युत्वाभूदिह कौशाम्ब्यां सुमित्रायां सुभद्रतः । इभ्याद्धर्ममतिर्नाम्ना कन्या धर्ममतिः सदा ॥१०१॥
जिनमत्यार्यिकापार्श्वे तपो जिनगुणाभिधम् । गृहीत्वोपोष्य जातासि महाशुक्रेन्द्रवल्लभा ॥१०२॥
एकविंशतिपल्यायुश्च्युत्वा चन्द्रमतिस्त्रियाम् । गौरी त्वं वीतशोकायां मेरुचन्द्रादभूत्सुता ॥१०३॥
भवैः सिद्धिस्त्रिभिस्ते स्यादित्युक्ते सा नता विभुम् । प्रणिपत्य ततः पृष्टः पद्मावत्या भवान् जगौ ॥१०४॥
उज्जयिन्यामिहैवासीदपराजितभूभृतः । तनया विनयश्रीः सा विजयावनिताङ्गजा ॥१०५॥
हस्तिशीर्षपुराधीशं हरिषेणमसौ पतिम् । प्राप्ता पतियुता दानं वरदत्ताय संददौ ॥१०६॥
कालागुरुकधूपेन भर्त्रा गर्भगृहे मृता । भूत्वा हैमवते भुक्त्वा सुखं पल्यसमस्थितिः ॥१०७॥
जाता चन्द्रप्रभादेवी ततश्चन्द्रस्य वल्लभा । पल्योपमाष्टभागायुरतश्च्युत्वा तु[1] भारते ॥१०८॥
ग्रामेऽभूच्छाल्मलीखण्डे मगधेषु गृहेशिनोः । दुहिता पद्मदेवीति देविलाजयदेवयोः ॥१०९॥
[2]आचार्याद्वरधर्माख्यादेकदा व्रतमग्रहीत् । यावज्जीवं न भक्ष्यं मे फलमज्ञातमप्यसौ ॥११०॥
[3]प्रचण्डः शाल्मलीखण्डे ग्रामेऽवस्कन्ददानतः[4] । अकाण्डे चण्डबाणाख्यो व्याधमुख्योऽहरज्जनम् ॥१११॥
वन्दिगेहे गृहीत्वा तां पद्मदेवीं स्वदारताम् । निनीषुः शीलवत्यासौ प्रत्याख्यातोऽनया नयात् ॥११२॥
स राजगृहनाथेन राज्ञा सिंहरथेन तु । हठेन निहतोऽरण्येऽशरण्ये[5] जनताभ्रमत् ॥११३॥

वहांसे च्युत हो कौशाम्बी नगरीमें सुभद्र सेठकी सुमित्रा नामकी स्त्रीसे सदा धर्ममें बुद्धि लगानेवाली धर्ममति नामकी कन्या हुई ॥१०१॥ धर्ममतिने जिनमति आर्यिकाके पास जिनगुण नामका तप लेकर उपवास किये और उनके फलस्वरूप वह महाशुक्र स्वर्गके इन्द्रकी वल्लभा हुई ॥१०२॥ वहाँ उसकी इक्कीस पल्यकी आयु थी। वहांसे च्युत होकर अब तू वीतशोका नगरीमें राजा मेरुचन्द्रकी चन्द्रमति स्त्रीसे गौरी नामकी पुत्री हुई है ॥१०३॥ तीन भवमें तुझे मुक्तिकी प्राप्ति होगी। इस प्रकार कहे जानेपर गौरीने नम्रीभूत होकर भगवान्‌को प्रणाम किया। तदनन्तर कृष्णकी आठवीं पट्टरानी पद्मावतीने भी अपने पूर्वभव पूछे जिसके उत्तरमें भगवान् उसके पूर्वभव इस प्रकार कहने लगे ॥१०४॥

इसी भरत क्षेत्रकी उज्जयिनी नगरीमें किसी समय अपराजित नामका राजा रहता था। उसकी स्त्री विजया थी और उन दोनोंके विनयश्री नामकी पुत्री थी ॥१०५॥ विनयश्री हस्तिनापुरके राजा हरिषेण पतिको प्राप्त हुई थी अर्थात् उसका विवाह हस्तिनापुरके राजा हरिषेणके साथ हुआ था। एक दिन उसने पतिके साथ, वरदत्त मुनिराजके लिए आहार दान दिया ॥१०६॥ कदाचित् वह अपने पतिके साथ गर्भगृहमें शयन कर रही थी कि कालागुरुकी धूपसे उसका प्राणान्त हो गया। मरकर वह हैमवत क्षेत्रमें एक पल्यकी आयुवाली आर्या हुई। वहाँके सुख भोगकर वह चन्द्रदेवकी चन्द्रप्रभा नामकी देवी हुई। वहाँ पल्यके आठवें भाग उसकी आयु थी। वहाँसे च्युत हो भरतक्षेत्रके मगध देश सम्बन्धी शाल्मली खण्ड नामक ग्राममें देविला और जयदेव नामक दम्पतीके पद्मदेवी नामकी पुत्री हुई ॥१०७–१०९॥ एक समय उसने वरधर्म नामक आचार्यसे यह व्रत लिया कि मैं जीवन पर्यन्त अज्ञात फलका भक्षण नहीं करूँगी ॥११०॥ किसी एक दिन असमयमें चण्डबाण नामक शक्तिशाली भील शाल्मलीखण्ड ग्रामपर आक्रमण कर वहाँकी समस्त प्रजाको हर ले गया ॥१११॥ साथ ही पद्मदेवीको भी पकड़कर अपने कारागारमें ले गया। वह उसे अपनी स्त्री बनाना चाहता था परन्तु शीलवती पद्मदेवीने किसी नीतिसे उसका निराकरण कर दिया ॥११२॥ उसी समय राजगृहके राजा

---

१. नु म.। २. आचार्यद्भूतमर्धाख्यात् क., ख., ग., ङ., आचार्यादूरधर्माख्यात् म.। ३. प्रचण्डशाल्मली म., क., ख., ङ.। ४. ऽवस्कन्दनामतः म., क., ङ.। ५. स्तरण्ये क.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षुत्पीडिता जनास्तत्र दिग्मूढा मूढबुद्धयः । मृगा इव मृता दुःखात् किंपाकफलभक्षिणः ॥११४॥
अनास्वाद्य फलान्येषा [1]पद्मदेवी दृढव्रता । प्रत्याख्यायैकपल्यायुरन्ते हैमवतेऽभवत् ॥११५॥
देवी स्वयंप्रभस्यातो व्यन्तरस्य स्वयंप्रभा । स्वयंभूरमणद्वीपे स्वयंप्रभगिरावभूत् ॥११६॥
ततश्चागत्य भरते जयन्तनगरेशिनः । श्रीमत्यां विमलश्रीः सा श्रीधरस्य सुताभवत् ॥११७॥
प्रादायि मेघनादाय सा भद्रिलपुरेशिने । लेभे च तनयं ख्यातं मेघघोषाख्ययावनौ ॥११८॥
भर्तरि स्वर्गते सापि पद्मावत्यार्यिकान्तिके । आचाम्लवर्धमानाख्यं तपः कृत्वा दिवं ययौ ॥११९॥
सा सहस्रारकल्पस्य पत्युर्भूत्वा[2]कामिनी । नवपञ्चकपल्यैस्तु तुल्यं कालमजीगमत् ॥१२०॥
जातास्यत्र ततश्च्युत्वा त्वमरिष्टपुरेशिनः । श्रीमत्यां स्वर्णनाभस्य सुता पद्मावती श्रुता ॥१२१॥
तपसा नाकमारुह्य देवश्च्युत्वा तपोबलात् । सेत्स्यति त्वमिति प्रोक्ते श्रुत्वा सा जिनमानमत् ॥१२२॥
रोहिणीदेवकीपूर्वा देव्योऽन्येऽपि च यादवाः । पृष्ट्वा श्रुत्वा स्वजन्मानि जाता संसारभीरवः ॥१२३॥
[2]नुत्वा नत्वा जिनेन्द्रं तं सुरासुराश्च यादवाः । यान्ति स्वस्थानमायान्ति पूजनार्थं पुनः पुनः ॥१२४॥
विजहार पुनर्देशान् जिनो भव्यहिताय सः । सूर्यस्येव हि चर्यासीज्जगत्कार्याय वैभवी ॥१२५॥
इतश्च वसुदेवाभं वासुदेवमनःप्रियम् । सुतं गजकुमाराख्यं देवकी सुषुवे शुभम् ॥१२६॥

सिंहरथने हठपूर्वक उस भीलको मार डाला जिससे उसके बन्धनमें स्थित शाल्मलीखण्ड ग्रामकी समस्त जनता छूटकर शरणरहित वनमें इधर-उधर भ्रमण करने लगी ॥११३॥ मूढ़बुद्धि लोग दिशाभ्रान्ति होनेसे उस वनमें मृगोंकी भाँति भटक गये और भूखसे पीड़ित हो किंपाक फल खाकर दुःखसे मर गये ॥११४॥ पद्मदेवी अपने व्रतमें दृढ़ थी इसलिए उसने अज्ञात फल होनेसे उन फलोंको नहीं खाया और संन्यास मरण कर वह अन्तमें हैमवत क्षेत्रमें एक पल्यकी आयुवाली आर्या हुई ॥११५॥ तदनन्तर स्वयंभूरमण द्वीपके स्वयम्प्रभ नामक पर्वतपर स्वयम्प्रभ नामक व्यन्तर देवकी स्वयम्प्रभा नामकी देवी हुई ॥११६॥ वहांसे आकर भरत क्षेत्रसम्बन्धी जयन्त नगरके स्वामी राजा श्रीधरकी श्रीमती नामक रानीसे विमलश्री नामकी पुत्री हुई ॥११७॥ विमलश्री, भद्रिलपुरके राजा मेघनादके लिए दी गयी। उसके संयोगसे उसने पृथिवीपर मेघघोष नामसे प्रसिद्ध पुत्र प्राप्त किया ॥११८॥ कदाचित् पतिका स्वर्गवास हो जानेपर उसने पद्मावती आर्यिकाके समीप दीक्षा लेकर आचाम्लवर्धन नामका तप तपा और उसके प्रभावसे वह स्वर्ग गयी ॥११९॥ स्वर्गमें वह सहस्रार स्वर्गके इन्द्रकी प्रधान देवी हुई और पैंतालीस पल्य प्रमाण वहाँका काल व्यतीत करती रही ॥१२०॥ अब वहाँसे च्युत होकर तू अरिष्टपुरके राजा स्वर्णनाभकी श्रीमती रानीसे पद्मावती नामकी पुत्री हुई है ॥१२१॥ तपकर तू स्वर्गमें देव होगी और वहांसे च्युत हो तपके सामर्थ्यसे मोक्ष प्राप्त करेगी। इस प्रकार कहे जानेपर अपने भवान्तर सुन पद्मावतीने नेमि जिनेन्द्रको नमस्कार किया ॥१२२॥

रोहिणी, देवकी आदि देवियों और अन्य यादवोंने भी अपने-अपने भव पूछे तथा श्रवण कर वे संसारसे भयभीत हुए ॥१२३॥ इस प्रकार सुर, असुर तथा यादव लोग जिनेन्द्र भगवान्की स्तुति कर तथा उन्हें नमस्कार कर अपने-अपने स्थानपर चले जाते थे और पूजाके लिए बार-बार आ जाते थे ॥ १२४ ॥ तदनन्तर नेमि जिनेन्द्रने भव्य जीवोंके हितके लिए पुनः अनेक देशोंमें विहार किया सो ठीक ही है क्योंकि उनकी चर्या सूर्यके समान जगत्के हितके लिए ही थी ॥१२५॥

इधर देवकीने कृष्णके पश्चात् गजकुमार नामका एक दूसरा पुत्र उत्पन्न किया जो वसुदेवके समान कान्तिका धारक था, श्रीकृष्णको अत्यन्त प्रिय था एवं अन्यन्त शुभ था ॥१२६॥

१. पद्मादेवी म. । २. बुद्ध्वा म. । ३. विभोरियं वैभवी ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यौवनं स परिप्राप्तः कन्याजनमनोहरम् । ततोऽस्मै वरयांचक्रे चक्री राजकुमारिकाः ॥१२७॥
अभिरूपतरां कन्यां सोमशर्माग्रजन्मनः । प्रजातां क्षत्रियायां च सोमाख्यां वृतवान् हरिः ॥१२८॥
विवाहारम्भसमये मुदिताखिलयादवे । जाते जिनपतिः प्राप्तो विहरन् द्वारिकां तदा ॥१२९॥
समागत्योपविष्टं तमद्रौ रैवतिके विभुम् । वन्दितुं [1]निर्ययुः सर्वे यादवा बहुमङ्गलाः ॥१३०॥
दृष्ट्वा गजकुमारस्तमाटोपं द्वारिकोद्भवम् । [2]पृष्ट्वा कञ्चुकिनं जैनं विवेद हितमादितः ॥१३१॥
ततो गजकुमारोऽपि प्रयातो वन्दितुं जिनम् । रथेनादित्यवर्णेन हर्षाद्रोमाञ्चमुद्वहन् ॥१३२॥
आर्हन्त्यविभवोपेतं गणैर्द्वादशभिर्वृतम् । जिनं नत्वोपविष्टोऽसौ कुमारश्चक्रपाणिना ॥१३३॥
जगाद भगवांस्तत्र नृसुरासुरसंसदि । संसारतरणोपायं धर्मं रत्नत्रयोज्ज्वलम् ॥१३४॥
प्रस्तावे हरिरप्राक्षीज्जिनेन्द्रं प्रणिपत्य सः । अत्यन्तादरपूर्णेच्छः श्रोतृलोकहितेच्छया ॥१३५॥
[3]अर्हतां चक्रिणां[4]मर्धचक्रिणां सीरधारिणाम्[5] । [6]उत्पत्तिं [7]प्रतिशत्रूणां जिनानामन्तराणि [8]च ॥१३६॥
यथाप्रश्नमितस्तस्मै संभूतिं विष्णवे ततः । त्रिषष्टियुगमुख्यानां प्रोवाच पुरुषेशिनाम् ॥१३७॥
आद्यो वृषभनाथोऽभूदजितः संभवः प्रभुः । अभिनन्दननाथश्च सुमतिः पद्मसंप्रभः ॥१३८॥
सुपार्श्वनामधेयोऽन्यश्चन्द्रप्रभ इतीश्वरः । सुविधिः शीतलः श्रेयान् वासुपूज्यश्च पूजितः ॥१३९॥

जब गजकुमार कन्याओंके मनको हरण करनेवाले यौवनको प्राप्त हुआ तब कृष्णने उत्तमोत्तम राजकुमारियोंके साथ उसका विवाह कराया ॥१२७॥ सोमशर्मा ब्राह्मणकी एक सोमा नामकी अत्यन्त सुन्दर कन्या थी जो उसकी क्षत्रिया स्त्रीसे उत्पन्न हुई थी। श्रीकृष्णने गजकुमारके लिए उसका भी वरण किया ॥१२८॥

जब उसके विवाहके प्रारम्भका समय आया तब समस्त यादव अत्यन्त प्रसन्न हुए और उसी समय विहार करते हुए भगवान् नेमिनाथ द्वारिकापुरी आये ॥१२९॥ जब भगवान् आकर गिरनार पर्वतपर विराजमान हो गये तब समस्त यादव अनेक मंगल द्रव्य लिये हुए उनकी वन्दना करनेके लिए नगरसे बाहर निकले ॥१३०॥ द्वारिकामें होनेवाले इस आटोप (हलचल) को देखकर गजकुमारने किसी कंचुकीसे पूछा और प्रारम्भसे ही जिनेन्द्र भगवान्की समस्त हितकारी चेष्टाको जान लिया ॥१३१॥ तदनन्तर गजकुमार भी हर्षसे रोमांच धारण करता हुआ सूर्यके समान वर्णवाले रथपर सवार हो जिनेन्द्र भगवान्की वन्दना करनेके लिए गया ॥१३२॥ वहाँ आर्हन्त्य लक्ष्मीसे युक्त तथा बारह सभाओंसे घिरे हुए जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार कर गजकुमार श्रीकृष्णके साथ मनुष्योंकी सभामें बैठ गया ॥१३३॥ भगवान् नेमि जिनेन्द्रने, मनुष्य, सुर तथा असुरोंकी उस सभामें उस धर्मका निरूपण किया जो संसार-सागरसे पार होनेका एकमात्र उपाय था एवं जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूपी रत्नत्रयसे उज्ज्वल था ॥१३४॥ अवसर आनेपर अत्यन्त आदरसे पूर्ण इच्छाके धारक श्रीकृष्णने जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार कर श्रोताओंके हितकी इच्छासे तीर्थंकरों, चक्रवर्तियों, अर्ध चक्रवर्तियों, बलभद्रों और प्रतिनारायणोंकी उत्पत्ति तथा तीर्थंकरोंके अन्तरालको पूछा ॥१३५-१३६॥

तदनन्तर भगवान् प्रश्नके अनुसार श्रीकृष्णके लिए त्रेशठ शलाकापुरुषोंमें प्रमुख चौबीस तीर्थंकरोंकी उत्पत्ति इस प्रकार कहने लगे ॥ १३७ ॥ उन्होंने कहा कि इस युगमें सबसे पहले तीर्थंकर वृषभनाथ हुए। उनके पश्चात् क्रमसे अजितनाथ, सम्भवनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ, सुविधिनाथ, शीतलनाथ, श्रेयोनाथ,

१. निर्ययौ म. । २. दृष्ट्वा म. । ३. तीर्थकृताम् । ४. नारायणानाम् । ५. बलभद्राणाम् । ६. उत्पत्तिः म. । ७. प्रतिनारायणानाम् । ८. च विशेषतः म., घ. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विमलोऽनन्तजिद्धर्मः शान्तिः कुन्थुररो जिनः । मल्लिः शल्यकुशोद्धारो मुनीन्द्रो मुनिसुव्रतः ॥१४०॥
नमिश्च निर्वृतो नेमिर्वर्तमानोऽहमत्र तु । पार्श्वश्चापि महावीरो भवितारौ जिनेश्वरौ ॥१४१॥
जम्बूद्वीपविदेहेऽष्टौ भरते पञ्च ते जिनाः । सप्तैव धातकीखण्डे चत्वारः पुष्करार्धजाः ॥१४२॥
प्राग्भवे पुण्डरीकिण्यां वृषभः शान्तिरीश्वरः । अजितस्तु सुसीमायां क्षेमपुर्यामरो जिनः ॥१४३॥
रत्नसंचयजः कुन्थुः संभवश्चाभिनन्दनः । मल्लिश्च वीतशोकायां जम्बूद्वीपविदेहजाः ॥१४४॥
चम्पायामिह कौशाम्ब्यां गजाह्वनगरेऽपि ते-ऽयोध्यायां भरतक्षेत्रे छत्राकारपुरे क्रमात् ॥१४५॥
मुनिसुव्रतनाथश्च नमिर्नेमिजिनस्तथा । पार्श्वाख्यश्च महावीरः पञ्चामी पूर्वजन्मनि ॥१४६॥
पुण्डरीकिण्यखण्डश्रीः सुसीमाक्षेमपुर्यपि । धातकीखण्डपूर्वार्धे सक्रमं रत्नसंचयम् ॥१४७॥
सुमत्यादिचतुर्णां च पुरः पूर्वत्र जन्मनि । सुविध्यादिचतुर्णां च पूर्वपुष्करजास्त्वमू ॥१४८॥
तथैव धातकीखण्डे पश्चादैरावतक्षितौ । अनन्तजिदमूत्पूर्वमरिष्टपुरसंभवः ॥१४९॥
पूर्वार्धभारते तस्य विमलस्तु महापुरे । भद्रिलादौ पुरे धर्मस्तत्र नामान्यमूनि तु ॥१५०॥
वज्रनाभिरमूदाद्यो विमलस्तदनन्तरः । विपुलो वाहनान्तोऽन्यो महाबल इतीरितः ॥१५१॥
परोऽतिबल इत्यासीदपराजित इत्यतः । नन्दिषेणस्तथा पद्मो महापद्मः स्मृतः परः ॥१५२॥
पद्मगुल्मोऽपि नलिनगुल्मः पद्मोत्तरः परः । पद्मासनः पुनः पद्मस्तथा दशरथो नृपः ॥१५३॥
राजा मेघरथः सिंहरथो धनपतिः परः । नाम्ना वैश्रवणो राजा श्रीधर्माख्यस्ततः [1] परः ॥१५४॥

वासुपूज्य, विमलनाथ, अनन्तजित्, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, शल्यरूपी कुशको निकालनेवाले मल्लिनाथ, मुनियोंके स्वामी मुनि सुव्रतनाथ और नमिनाथ तीर्थंकर हुए हैं। ये सभी निर्वाणको प्राप्त हो चुके हैं। बाईसवाँ तीर्थंकर मैं नेमिनाथ अभी वर्तमान हूँ और पार्श्वनाथ तथा महावीर ये दो तीर्थंकर आगे होंगे ॥१३८-१४१॥ इन तीर्थंकरोंमें-से आठ तीर्थंकर पूर्वभवमें जम्बूद्वीपके विदेहक्षेत्रमें, पाँच भरतक्षेत्रमें, सात धातकी-खण्डमें और चार पुष्करार्धमें उत्पन्न हुए थे ॥१४२॥ जम्बूद्वीपके विदेह क्षेत्रमें उत्पन्न हुए आठ तीर्थंकरोंका विवरण इस प्रकार है—वृषभनाथ और शान्तिनाथ पूर्वभवमें जम्बूद्वीपसम्बन्धी विदेहक्षेत्रकी पुण्डरीकिणी नगरीमें, अजितनाथ सुसीमा नगरीमें, अरनाथ क्षेमपुरीमें, कुन्थुनाथ, सम्भवनाथ और अभिनन्दननाथ रत्नसंचय नगरमें और मल्लिनाथ वीतशोका नगरीमें उत्पन्न हुए थे ॥१४३-१४४॥ भरतक्षेत्रमें उत्पन्न हुए पाँच तीर्थंकर इस प्रकार हैं—मुनि सुव्रतनाथ चम्पापुरीमें, नमिनाथ कौशाम्बी नगरीमें, नेमिनाथ हस्तिनापुरमें, पार्श्वनाथ अयोध्यामें और महावीर छत्राकारपुरमें पूर्वभवमें उत्पन्न हुए थे ॥१४५-१४६॥

धातकीखण्ड द्वीपके पूर्वार्धमें जन्म लेनेवाले सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ और चन्द्रप्रभ इन चार तीर्थंकरोंकी पूर्वभवकी नगरियाँ क्रमसे अखण्ड लक्ष्मीकी धारक पुण्डरीकिणीपुरी, सुसीमापुरी, क्षेमपुरी और रत्नसंचयपुरी थीं। सुविधिनाथ, शीतलनाथ, श्रेयोनाथ और वासुपूज्य इन चार तीर्थंकरोंकी पूर्व जन्मकी नगरियाँ क्रमसे पूर्व पुष्करार्धसम्बन्धी पुण्डरीकिणी, सुसीमा, क्षेमपुरी और रत्नसंचयपुरी थीं ॥१४७-१४८॥ अनन्तजित् (अनन्तनाथ) भगवान् पूर्वभवमें धातकीखण्ड द्वीपके पश्चिम ऐरावत क्षेत्र-सम्बन्धी अरिष्टपुर नगरमें उत्पन्न हुए थे ॥१४९॥ विमलनाथ पूर्वार्धसम्बन्धी भरत-क्षेत्रके महापुर नगरमें और धर्मनाथ भद्रिलपुर नगरमें उत्पन्न हुए थे। इन तीर्थंकरोंके पूर्वभवके नाम इस प्रकार हैं—१. वज्रनाभि, २. विमल, ३. विपुलवाहन, ४. महाबल, ५. अतिबल, ६. अपराजित, ७. नन्दिषेण, ८. पद्म, ९. महापद्म, १०. पद्मगुल्म,

१. पदः म.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धार्थः सुप्रतिष्ठोऽहमानन्दो नन्दनो नृपः । पूर्वजन्मनि नामानि जिनानामानुपूर्वतः ॥१५५॥
चक्री पूर्वधरः पूर्वो महामाण्डलिकाः परे । एकादशाङ्गिनः स्वाङ्गैः[1] सर्वेऽपि कनकप्रभाः ॥१५६॥
सिंहनिष्क्रीडितं कृत्वा प्रायोपगमनं गताः । मासक्षपणतः सर्वे यथास्वं स्वर्गलोकगाः ॥१५७॥
वज्रसेन इति ख्यातस्तथारिन्दमसंज्ञकः । स्वयंप्रभाभिधश्चाऽन्यः परो विमलवाहनः ॥१५८॥
सूरिः सीमन्धराभिख्यो गुरुश्च पिहितास्रवः । अरिंदममुनिर्मान्यो वन्दनीयो युगंधरः ॥१५९॥
सार्वः सर्वजनानन्दोऽप्युभयानन्दनामकः । वज्रदत्तोऽपरो वेद्यो वज्रनाभिरभिष्टुतः ॥१६०॥
सर्वगुप्तस्त्रिगुप्ताख्यश्चित्तरक्षाभिधः परः । विमलाचारसंपन्नो मान्यो विमलवाहनः ॥१६१॥
गुरुर्घनरथाभिख्यः संवरः संवरान्वितः । वरधर्मस्त्रिलोकीड्यः सुनन्दो नन्दसंज्ञकः ॥१६२॥
व्यतीतशोकनामान्यो दामरः प्रौष्ठिलः परः । जिनानां गुरवोऽमी न क्रमेणातीतजन्मनि ॥१६३॥
वृषो धर्मश्च शान्तिश्च कुन्थुः सर्वार्थसिद्धितः । चत्वारः प्रच्युता ज्ञेया त्रिजयादभिनन्दनः ॥१६४॥
चन्द्रप्रभसुमत्याख्यौ वैजयन्ताज्जयन्ततः । नेम्यरौ नमिमल्लीशावपराजिततश्च्युतौ ॥१६५॥
आरणात्पुष्पदन्तेशः शीतलेशोऽच्युताच्च्युतः । पुष्पोत्तरविमानेशः श्रेयोऽनन्तौ च सन्मतिः ॥१६६॥
सहस्रारात्तु विमलश्रीपार्श्वमुनिसुव्रताः । क्रमात्संभवसुपार्श्वपद्मप्रभजिनाः पुनः ॥१६७॥
अधो मध्योपरिप्रैवेयकपरिच्युताः । वासुपूज्यो महाशुक्रादितितीर्थकृतां दिवः ॥१६८॥
वृषभश्चैत्रकृष्णस्य नवम्यामुदपद्यत । माघशुक्लनवम्यां तु तथैवाजिततीर्थकृत् ॥१६९॥

११. नलिनगुल्म, १२. पद्मोत्तर, १३. पद्मासन, १४. पद्म, १५. दशरथ, १६. मेघरथ, १७. सिंहरथ, १८. धनपति, १९. वैश्रवण, २०. श्रीधर्म, २१. सिद्धार्थ, २२. सुप्रतिष्ठ, २३. आनन्द और २४. नन्दन ॥१५०–१५५॥ इनमें भगवान् वृषभनाथ पूर्वभवमें चक्रवर्ती तथा चौदह पूर्वोंके धारक थे और शेष तीर्थंकर महामण्डलेश्वर और ग्यारह अंगके वेत्ता थे। उक्त सभी तीर्थंकर पूर्वभवमें अपने शरीरोंकी अपेक्षा सुवर्णके समान कान्तिवाले थे ॥१५६॥ सभी तीर्थंकरोंने पूर्वभवमें सिंहनिष्क्रीडित तपकर एक महीनेके उपवासके साथ प्रायोपगमन संन्यास धारण किया था और सभी यथायोग्य स्वर्गगामी थे—अपनी-अपनी साधनाके अनुसार स्वर्गोंमें उत्पन्न हुए थे ॥१५७॥ तीर्थंकरोंके पूर्व जन्मके गुरु क्रमसे १. वज्रसेन, २. अरिन्दम, ३. स्वयम्प्रभ, ४. विमलवाहन, ५. सीमन्धर, ६. पिहितास्रव, ७. अरिन्दम, ८. युगन्धर, ९. सबका हित करनेवाले सर्वजनानन्द, १०. उभयानन्द, ११. वज्रदत्त, १२. वज्रनाभि, १३. सर्वगुप्त, १४. त्रिगुप्त, १५. चित्तरक्ष, १६. निर्मल आचारसे सहित माननीय विमलवाहन, १७. घनरथ, १८. संवरसे सहित संवर, १९. तीन लोकके द्वारा स्तुति करनेके योग्य वरधर्म, २०. सुनन्द, २१. नन्द, २२. व्यतीतशोक, २३. दामर और २४. प्रोष्ठिल थे ॥१५८–१६३॥ वृषभनाथ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ और कुन्थुनाथ ये चार तीर्थंकर सर्वार्थसिद्धिसे, अभिनन्दन विजय विमानसे, चन्द्रप्रभ और सुमतिनाथ वैजयन्त विमानसे, नेमि और अरनाथ जयन्त विमानसे, नमि और मल्लिनाथ अपराजित विमानसे, पुष्पदन्त आरण स्वर्गसे, शीतलनाथ अच्युत स्वर्गसे, श्रेयोनाथ, अनन्तनाथ और महावीर पुष्पोत्तर विमानसे, विमलनाथ, पार्श्वनाथ और मुनिसुव्रतनाथ सहस्रार स्वर्गसे, सम्भवनाथ, सुपार्श्वनाथ और पद्मप्रभ क्रमशः अधोग्रैवेयक, मध्यग्रैवेयक और उपरिम ग्रैवेयकसे तथा वासुपूज्य महाशुक्र स्वर्गसे चयकर भरतक्षेत्रमें उत्पन्न हुए थे। इस प्रकार ऋषभादि तीर्थंकरोंके पूर्वभवके स्वर्ग कहे जाते हैं ॥१६४–१६८॥

भगवान् वृषभनाथ चैत्र कृष्ण नवमीके दिन उत्पन्न हुए थे। अजितनाथ माघ शुक्ल

१. साङ्गैः म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्पन्नो मार्गशीर्षस्य पौर्णमास्यां हि संभवः । द्वादश्यां माघशुक्लस्य जिनेन्द्रस्त्वभिनन्दनः ॥१७०॥
सुमतिः श्रावणस्यासीदेकादश्यां सितात्मनि । ऊर्जकृष्णत्रयोदश्यां पद्मप्रभजिनेश्वरः ॥१७१॥
द्वादश्यां ज्येष्ठमासस्य शुक्लायां सप्तमो जिनः । पौषस्य कृष्णपक्षेऽभूदेकादश्यां जिनोऽष्टमः ॥१७२॥
सुविधिर्मार्गशीर्षस्य शुक्लप्रतिपदि प्रभुः । शीतलो माघकृष्णस्य द्वादश्याममवज्जिनः ॥१७३॥
फाल्गुनासितपक्षेऽभूदेकादश्यां जिनोऽपरः । पक्षेऽत्रैव चतुर्दश्यां वासुपूज्यजिनेश्वरः ॥१७४॥
माघशुक्लचतुर्दश्यां विमलो विमलात्मकः । द्वादश्यां ज्येष्ठकृष्णस्य संजातोऽनन्तजिज्जिनः ॥१७५॥
माघशुक्लत्रयोदश्यां जज्ञे धर्मो जिनाधिपः । ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां शान्तिनाथश्च शान्तिकृत् ॥१७६॥
कुन्थुर्वैशाखमासस्य शुक्लायां प्रतिपद्यभूत् । मार्गशीर्षस्य शुक्लायां चतुर्दश्यामरो जिनः ॥१७७॥
एकादश्यां तु तस्यैव शुक्लायां मल्लिरीश्वरः । शुक्लायामाश्वयुज्यां च द्वादश्यां मुनिसुव्रतः ॥१७८॥
जातश्च कृष्णदशम्यामाषाढस्य नमिर्जिनः । नेमिर्वैशाखशुक्लस्य त्रयोदश्यां जिनेश्वरः ॥१७९॥
स कृष्णैकादशीं पार्श्वः पौषमासस्य भूषयन् । शुक्लत्रयोदशीं वीरश्चैत्रस्य निजजन्मना ॥१८०॥
पितरौ जन्मनक्षत्रं जन्मभूमिं जिनेशिनाम् । चैत्यवृक्षं च निर्वाणभूमिं वच्मि निबुध्यताम् ॥१८१॥
विनीता मरुदेवी च नाभिर्न्यग्रोधपादपः । कैलासश्चोत्तराषाढावृषभो[2] वृषभो नृणाम् ॥१८२॥
अयोध्या विजया राजा जितशत्रुर्जिनोऽजितः । संमेदः संमदायास्तु रोहिणी विषमच्छदः ॥१८३॥
श्रावस्ती संभवः सेना जितारिः शालपादपः । ज्येष्ठा नक्षत्रमेनांसि संमेदश्च पुनन्तु वः ॥१८४॥
सरलः संवरोऽयोध्या सिद्धार्था च पुनर्वसुः । जिनोऽभिनन्दनः शैलः स एवास्तु मुदे सताम् ॥१८५॥

नवमीके दिन, सम्भवनाथ मार्गशीर्ष शुक्ला पूर्णिमाके दिन, अभिनन्दननाथ माघ शुक्ल द्वादशीके दिन, सुमतिनाथ श्रावण शुक्ल एकादशीके दिन, पद्मप्रभ कार्तिक कृष्ण त्रयोदशीके दिन, सुपार्श्वनाथ ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशीके दिन, चन्द्रप्रभ पौष कृष्ण एकादशीके दिन, सुविधिनाथ मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदाके दिन, शीतलनाथ माघ कृष्ण द्वादशीके दिन, श्रेयोनाथ फाल्गुन कृष्ण एकादशीके दिन, वासुपूज्य फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशीके दिन, निर्मल आत्माके धारक विमलनाथ माघ शुक्ल चतुर्दशीके दिन, अनन्तनाथ ज्येष्ठ कृष्ण द्वादशीके दिन, धर्मनाथ माघ शुक्ल त्रयोदशीके दिन, शान्तिके करनेवाले शान्तिनाथ ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशीके दिन, कुन्थुनाथ वैशाख शुक्ल प्रतिपदाके दिन, अरनाथ मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्दशीके दिन, मल्लिनाथ मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशीके दिन, सुव्रतनाथ आसौज शुक्ल द्वादशीके दिन, नमिनाथ आषाढ़ कृष्ण दशमीके दिन और नेमिनाथ वैशाख शुक्ल त्रयोदशीके दिन उत्पन्न हुए थे। इसी प्रकार पार्श्वनाथ पौष कृष्ण एकादशीको और महावीर चैत्र शुक्ल त्रयोदशीको अपने जन्मसे अलंकृत करते हुए उत्पन्न होंगे ॥१६९-१८०॥ अब चौबीस तीर्थंकरोंके माता-पिता, जन्मनक्षत्र, जन्मभूमि, चैत्यवृक्ष और निर्वाणभूमिको कहते हैं सो ज्ञात करो ॥१८१॥

जिनकी जन्मनगरी विनीता—अयोध्या, माता मरुदेवी, पिता नाभि, चैत्यवृक्ष वट, निर्वाणभूमि कैलास और जन्मनक्षत्र उत्तराषाढ़ था। वे वृषभनाथ भगवान् मनुष्योंमें अत्यन्त श्रेष्ठ थे ॥१८२॥ जिनकी जन्मनगरी अयोध्या, माता विजया, पिता राजा जितशत्रु, निर्वाणक्षेत्र सम्मेदाचल, जन्म नक्षत्र रोहिणी और चैत्यवृक्ष सप्तपर्ण था, वे अजितनाथ भगवान् सबके हर्षके लिए हों ॥१८३॥ श्रावस्ती नगरी, सेना माता, जितारि पिता, शाल चैत्यवृक्ष, ज्येष्ठा जन्मनक्षत्र, सम्मेदाचल निर्वाणक्षेत्र और सम्भवनाथ जिनेन्द्र ये सब तुम्हारे पापोंको पवित्र करें ॥ १८४ ॥ चैत्यवृक्ष सरल, पिता संवर, माता सिद्धार्था, अयोध्या नगरी, पुनर्वसु नक्षत्र, अभिनन्दन जिनेन्द्र

१. कार्तिकशुक्लद्वादश्याम् । २. चोत्तराषाढवृषभः म., ख. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेघप्रभो मघायोध्या प्रियङ्गुश्च सुमङ्गला । सुमतिः [1]सुमतिं नित्यं संमेदश्च दिशन्तु वः ॥१८६॥
कौशाम्बी धरणश्चित्रा सुसीमा जिनपुङ्गवः । पद्मप्रभः प्रियङ्गुश्च मङ्गलं वः स पर्वतः ॥१८७॥
पृथिवी सुप्रतिष्ठोऽस्य काशी वा नगरी गिरिः । स विशाखा शिरीषश्च सुपार्श्वश्च जिनेश्वरः ॥१८८॥
वन्द्या चन्द्रपुरी चन्द्रप्रभो नागतरुर्गिरिः । सोऽनुराधा महासेनो लक्ष्मणा जननी सताम् ॥१८९॥
काकन्दी पुष्पदन्तश्च रामा सुग्रीवभूपतिः । मूलर्क्षं शालिवृक्षश्च सगिरिर्भूतयेऽस्तु वः ॥१९०॥
भद्रिला प्रथमाषाढा प्लक्षो दृढरथो नृपः । सुनन्दा शीतलः शैलः स एव हितचेतसः ॥१९१॥
विष्णुश्रीर्विष्णुराजश्च सिंहनादपुरं जिनः । श्रावणः श्रेयान् शं दद्युस्तिन्दुकः स च भूधरः ॥१९२॥
चम्पा जन्मनि मुक्तोऽभूद्वासुपूज्यो जयाङ्घ्रिपः । पाटला वसुपूज्यश्च पूज्याः शतभिषापि च ॥१९३॥
[2]शर्मा च कृतवर्मा च जम्बूः प्रोष्ठपदोत्तरा । काम्पिल्यं स गिरिः शल्यं विमलश्चोद्धरन्तु वः ॥१९४॥
साकेता सिंहसेनश्च रेवत्यश्वत्थपादपः । पान्तु सर्वयशाः सोऽद्रिरनन्तश्चापि वः सदा ॥१९५॥
धर्मश्च दधिपर्णश्च भानुराजश्च सुव्रता । पुष्यो रत्नपुरं सोऽद्रिर्धर्मे बुद्धिं ददातु वः ॥१९६॥
ऐरा च विश्वसेनश्च भरणीभपुरं[3] तरुः । नन्दीश्च शान्तिनाथश्च सोऽगः शान्तिं दिशन्तु वः ॥१९७॥
[4]सोऽगो नागपुरं सूर्यः श्रीमती कृत्तिका तथा । तिलकश्च तरुः कुन्थुर्मथ्नन्तु दुरितानि वः ॥१९८॥

और सम्मेदगिरि निर्वाणक्षेत्र ये सज्जनोंके आनन्दके लिए हों ॥१८५॥ मेघप्रभ पिता, मघा नक्षत्र, अयोध्या नगरी, प्रियंगु वृक्ष, सुमंगला माता, सम्मेदशिखर निर्वाणक्षेत्र और सुमति जिनेन्द्र ये सब तुम्हें सुमति—सद्बुद्धि प्रदान करें ॥१८६॥ कौशाम्बी नगरी, धरण पिता, चित्रा नक्षत्र, सुसीमा माता, पद्मप्रभ जिनेन्द्र, प्रियंगु वृक्ष और सम्मेद शिखर निर्वाणक्षेत्र ये सब तुम्हारे लिए मंगलरूप हों ॥१८७॥ पृथिवी माता, सुप्रतिष्ठ पिता, काशी नगरी, सम्मेद शिखर निर्वाणक्षेत्र, विशाखा नक्षत्र, शिरीष वृक्ष और सुपार्श्व जिनेन्द्र ये सब तुम्हारे लिए मंगलस्वरूप हों ॥१८८॥ चन्द्रपुरी नगरी, चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र, नागवृक्ष, सम्मेदशिखर निर्वाणक्षेत्र, अनुराधा नक्षत्र, महासेन पिता और लक्ष्मणा माता ये सब सज्जनोंके लिए वन्दना करने योग्य हैं ॥१८९॥ काकन्दी नगरी, पुष्पदन्त भगवान्, रामा माता, सुग्रीव पिता, मूल नक्षत्र, शालि वृक्ष और सम्मेदशिखर पर्वत ये सब तुम्हारे वैभवके लिए हों ॥१९०॥ भद्रिला पुरी, पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र, प्लक्ष वृक्ष, दृढरथ राजा पिता, सुनन्दा माता, शीतलनाथ जिनेन्द्र और सम्मेदगिरि निर्वाणक्षेत्र ये सब तुम्हारा हित चाहनेवाले हों ॥१९१॥ विष्णुश्री माता, विष्णुराज पिता, सिंहनाद पुर, श्रवण नक्षत्र, श्रेयांस जिनेन्द्र, तेंदूका वृक्ष और सम्मेदशिखर पर्वत ये सब तुम्हें सुख प्रदान करें ॥१९२॥ जन्मभूमि तथा निर्वाणभूमि चम्पानगरी, वासुपूज्य जिनेन्द्र, जया माता, चैत्यवृक्ष पाटला, वसुपूज्य पिता और शतभिषा नक्षत्र ये सब पूजनीय हैं ॥१९३॥ शर्मा माता, कृतवर्मा पिता, जामुन चैत्यवृक्ष, उत्तराभाद्रपद नक्षत्र, काम्पिल्य नगरी, सम्मेदशिखर निर्वाणक्षेत्र और श्री विमलनाथ भगवान् ये सब तुम्हारे शल्यको दूर करें ॥ १९४ ॥ अयोध्या नगरी, सिंहसेन पिता, रेवती नक्षत्र, पीपल चैत्यवृक्ष, सर्वयशा माता, सम्मेदशिखर निर्वाणक्षेत्र और अनन्तनाथ जिनेन्द्र ये सदा तुम्हें सद्बुद्धि प्रदान करें ॥ १९५ ॥ धर्मनाथ जिनेन्द्र, दधिपर्ण चैत्य वृक्ष, भानुराज पिता, सुव्रता माता, पुष्य नक्षत्र, रत्नपुर नगर और सम्मेदशिखर सिद्धिक्षेत्र ये सब तुम्हें धर्मबुद्धि देवें ॥ १९६ ॥ ऐरा माता, विश्वसेन पिता, भरणी नक्षत्र, हस्तिनापुर नगर, नन्दी चैत्यवृक्ष, शान्तिनाथ जिनेन्द्र और सम्मेदशिखर निर्वाणक्षेत्र ये सब तुम्हें शान्ति प्रदान करें ॥ १९७ ॥ सम्मेदशिखर निर्वाणक्षेत्र, हस्तिनापुर नगर, सूर्य पिता, श्रीमती माता, कृत्तिका नक्षत्र, तिलक वृक्ष

---

१. सुमतिर्नित्यं म. । २. सर्मा च ङ, म. । ३. इभपुरं–हस्तिनापुरम् । ४. स एव वृक्षः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]चूतो गजपुरं मित्रा पार्थिवश्च सुदर्शनः । संमेदो रोहिणी चारो दुरितं दारयन्तु वः ॥१९९॥
मिथिला रक्षिता कुम्भो जिनेन्द्रो मल्लिरश्विनी । अशोकश्च तरुः सोऽद्रिरशोकाय भवन्तु वः ॥२००॥
पद्मावती सुमित्रोऽस्तु कुशाग्रनगरं मुदे । चम्पकः श्रवणर्क्षं च सोऽद्रिर्वो मुनिसुव्रतः ॥२०१॥
मिथिला विजयो वप्रा वकुलो नमिरश्विनी । नमयन्तु महामानं संमेदश्च महीधरः ॥२०२॥
नेमिः सूर्यपुरं चित्रा समुद्रविजयः शिवा । ऊर्जयन्तो जयं तेऽमी मेषशृङ्गो दिशन्तुः वः ॥२०३॥
वाराणसी च वर्मा च विशाखा च धवांह्रिपः । अश्वसेननृपः पार्श्वः सम्मेदश्च मुदेऽस्तु वः ॥२०४॥
शालः कुण्डपुरं वीरः सिद्धार्थः प्रियकारिणी । उत्तराफाल्गुनी पावा पापानि घ्नन्तु वः सदा ॥२०५॥
चैत्यवृक्षस्तु वीरस्य द्वात्रिंशद्धनुरुच्छ्रितः । देहोत्सेधाच्च शेषाणां स द्वादशगुणो मतः ॥२०६॥
सुपार्श्वेशोऽनुराधायां ज्येष्ठासु च शशिप्रभः । श्रेयानपि [2]धनिष्ठासु वासुपूज्योऽश्विनीषु सः ॥२०७॥
भरणीषु जिनो मल्लिर्वीरः स्वातिषु सिद्धिभाक् । जन्मनक्षत्रवर्गेषु शेषाणां परिनिर्वृतिः ॥२०८॥
शान्तिकुन्थ्वरनामानस्तीर्थकृच्चक्रवर्तिनः । शेषास्तीर्थकराः सर्वे पृथिवीपतयो नृपाः ॥२०९॥
चन्द्राभ एव चन्द्राभः सुविधिः शङ्खसत्प्रभः । प्रियङ्गुमञ्जरीपुञ्जवर्णः सुपार्श्वतीर्थकृत् ॥२१०॥
मेघश्यामवपुः श्रीमान् पार्श्वस्तु धरणस्तुतः । पद्मगर्भनिभाभश्च पद्मप्रभजिनाधिपः ॥२११॥

और कुन्थुनाथ भगवान् ये तुम्हारे पापोंको नष्ट करें ॥१९८॥ आम्र वृक्ष, हस्तिनापुर नगर, मित्रा माता, सुदर्शन राजा पिता, सम्मेद शिखर निर्वाणक्षेत्र, रोहिणी नक्षत्र और अरनाथ जिनेन्द्र ये सब तुम्हारे पापको खण्डित करें ॥१९९॥ मिथिला नगरी, रक्षिता माता, कुम्भ पिता, मल्लिनाथ जिनेन्द्र, अश्विनी नक्षत्र, अशोक वृक्ष और सम्मेद शिखर निर्वाण क्षेत्र ये सब तुम्हारे अशोक—शोक दूर करनेके लिए हों ॥२००॥ पद्मावती माता, सुमित्र पिता, कुशाग्र नगर, चम्पक वृक्ष, श्रवण नक्षत्र और सम्मेद शिखर पर्वत ये सब तुम्हारे हर्षके लिए हों ॥२०१॥ मिथिला नगरी, विजय पिता, वप्रा माता, वकुल वृक्ष, नमिनाथ जिनेन्द्र, अश्विनी नक्षत्र और सम्मेद शिखर पर्वत महामानी मनुष्यको आपके समक्ष नम्रीभूत करें ॥२०२॥ नेमिनाथ भगवान्, सूर्यपुर नगर, चित्रा नक्षत्र, समुद्रविजय पिता, शिवा माता, ऊर्जयन्त पर्वत और मेषशृंग (मेढ़ासिंगी) वृक्ष ये सब तुम्हारे लिए जय प्रदान करें ॥२०३॥ वाराणसी नगरी, वर्मा माता, विशाखा नक्षत्र, धव चैत्यवृक्ष, अश्वसेन राजा पिता, पार्श्वनाथ जिनेन्द्र और सम्मेद शिखर निर्वाणक्षेत्र ये सब तुम्हारे आनन्दके लिए हों ॥२०४॥ शाल वृक्ष, कुण्डपुर नगर, वीर जिनेन्द्र, सिद्धार्थ पिता, प्रियकारिणी माता, उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र, और पावापुरी निर्वाणक्षेत्र ये सब सदा तुम्हारे पापोंको नष्ट करें ॥२०५॥

भगवान् महावीरका चैत्यवृक्ष बत्तीस धनुष ऊँचा होगा और शेष तीर्थंकरोंके चैत्यवृक्षोंकी ऊँचाई उनके शरीरकी ऊँचाईसे बारहगुनी मानी गयी है ॥२०६॥ सुपार्श्वनाथ भगवान् अनुराधा नक्षत्रमें, चन्द्रप्रभ ज्येष्ठा नक्षत्रमें, श्रेयोनाथ धनिष्ठा नक्षत्रमें, वासुपूज्य अश्विनी नक्षत्रमें, मल्लि जिनेन्द्र भरणी नक्षत्रमें, महावीर स्वाति नक्षत्रमें निर्वाणको प्राप्त हुए हैं और शेष तीर्थंकरोंका निर्वाण अपने-अपने जन्म नक्षत्रोंमें ही हुआ है ॥२०७-२०८॥ शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरनाथ ये तीन तीर्थंकर तथा चक्रवर्ती हुए तथा शेष सब तीर्थंकर सामान्य राजा हुए ॥२०९॥ चन्द्रप्रभ भगवान् चन्द्रमाके समान आभावाले, सुविधिनाथ शंखके समान कान्तिके धारक, सुपार्श्वनाथ प्रियंगुवृक्षकी मंजरीके समूहके समान हरितवर्ण, धरणेन्द्रके द्वारा स्तुत श्रीमान् पार्श्वजिनेन्द्र मेघके समान श्यामल शरीर, पद्मप्रभ जिनराज पद्मगर्भके समान लालवर्ण, वासुपूज्य जिनेन्द्र रक्त पलाश

१. भूतो क., ङ. । २. प्रतिष्ठासु म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रक्तकिंशुकपुष्पाभो वासुपूज्यो जिनेश्वरः । नीलाञ्जनाचलच्छायो मुनीन्द्रो मुनिसुव्रतः ॥२१२॥
नीलकण्ठस्फुरत्कण्ठरुचिर्नेमिः समीक्षितः । सुतप्तकनकच्छायाः शेषास्तु जिनपुङ्गवाः[1] ॥२१३॥
[2]निष्क्रान्तिर्वासुपूज्यस्य मल्लेर्नेमिजिनान्त्ययोः । पञ्चानां तु कुमाराणां राज्ञां शेषजिनेशिनाम् ॥२१४॥
वृषभस्य विनीतायां परिनिष्क्रमणं तथा । नेमेस्तु द्वारवत्यां तु शेषाणां जन्मभूमिषु ॥२१५॥
निष्क्रान्तिः सुमतेर्भुक्त्वा मल्लेः साष्टमभक्तका । तथा पार्श्वजिनस्यापि [3]जयाजस्य चतुर्थका ॥२१६॥
षष्ठभक्तभृतां दीक्षा शेषाणां [4]तीर्थदर्शिनाम् । श्रेयः सुमतिमल्लीशां पूर्वाह्णे नेमिपार्श्वयोः ॥२१७॥
अन्येषामपराह्णे तां वीरो ज्ञातृवनेऽश्रयत् । क्रीडोद्याने जयासूनुः स सिद्धार्थवने वृषः ॥२१८॥
धर्मस्तु वप्रकास्थाने विंशो नीलगुहाश्रये । पार्श्वो मनोरमोद्याने तपोभागाश्रमाश्रये ॥२१९॥
सहस्राम्रवनाद्येषु पुरोद्यानेषु भूमिषु । शेषतीर्थकृतां वेद्यं परिनिष्क्रमणं बुधैः ॥२२०॥
सुदर्शना तु शिविका सुप्रभा तदनन्तरा । सिद्धार्थाचार्थसिद्धा च तत्राभयङ्करी प्रभा ॥२२१॥
सा निवृत्तिकरी षष्ठी सप्तमी सुमनोरमा । परा मनोहरा सूर्यप्रभाशुक्रप्रभा परा ॥२२२॥
ततः परेण विज्ञेया शिविका विमलप्रभा । पुष्पाभा देवदत्ताख्या परा सागरपत्रिका ॥२२३॥
नागदत्तामिधा चान्या चार्वी सिद्धार्थसिद्धिका । विजया वैजयन्ती च जयन्ताख्यापराजिता ॥२२४॥
नाम्नोत्तरकुरुश्चान्या दिव्या देवकुरुश्रुतिः । विमलाभा च चन्द्राभा जिनानां शिविकाः क्रमात् ॥२२५॥

पुष्पके समान लालवर्ण, मुनियोंके स्वामी मुनिसुव्रतनाथ नीलगिरि अथवा अंजनगिरिके समान नीलवर्ण, नेमिनाथ नीलकण्ठ मयूरके सुन्दर कण्ठके समान नीलवर्ण और शेष जिनेन्द्र तपाये हुए सुवर्णके समान कान्तिवाले कहे गये हैं ॥२१०–२१३॥ वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और वर्धमान इन पाँच तीर्थंकरोंने कुमारकालमें ही दीक्षा धारण की थी और शेष तीर्थंकरोंने राजा होनेके बाद दीक्षा धारण की थी ॥२१४॥

भगवान् वृषभदेवका दीक्षाकल्याणक विनीतामें, नेमिनाथका द्वारवतीमें और शेष तीर्थंकरोंका अपनी-अपनी जन्मभूमिमें हुआ था ॥२१५॥ सुमतिनाथ और मल्लिनाथने भोजन करनेके बाद दीक्षा धारण की थी तथा दीक्षाके बाद तीन दिनका उपवास लिया था। पार्श्वनाथ तथा वासुपूज्य भगवान्ने दीक्षाके बाद एक दिनका उपवास धारण किया था और शेष तीर्थंकरोंने दो दिनका उपवास लिया था*। श्रेयोनाथ, सुमतिनाथ, मल्लिनाथ, नेमिनाथ और पार्श्वनाथ तीर्थंकरोंने दिनके पूर्वाह्णकालमें और अन्य तीर्थंकरोंने अपराह्ण कालमें दीक्षा धारण की थी। भगवान् महावीरने ज्ञातृवनमें, वासुपूज्यने क्रीड़ोद्यानमें, वृषभदेवने सिद्धार्थ वनमें, धर्मनाथने वप्रका स्थानमें, मुनि सुव्रतनाथने नीलगुहाके समीप, पार्श्वनाथने तापसोंके तपोवनके समीप मनोरम नामक उद्यानमें और शेष तीर्थंकरोंने सहस्राम्रवनको आदि लेकर नगरके उद्यानोंमें दीक्षा धारण की थी ऐसा विद्वानोंको जानना चाहिए ॥२१६–२२०॥ १ सुदर्शना, २ सुप्रभा, ३ सिद्धार्थ, ४ अर्थसिद्धा, ५ अभयंकरी, ६ निवृत्तिकरी, ७ सुमनोरमा, ८ मनोहरा, ९ सूर्यप्रभा, १० शुक्रप्रभा, ११ विमलप्रभा, १२ पुष्पाभा, १३ देवदत्ता, १४ सागरपत्रिका, १५ नागदत्ता, १६ सिद्धार्थसिद्धिका, १७ विजया, १८ वैजयन्ती, १९ जयन्ता, २० अपराजिता, २१ उत्तर-

१. द्वौ कुन्देन्दुतुषारहारधवलौ द्वाविन्द्रनीलप्रभौ, द्वौ बन्धूकसमप्रभौ जिनवृषौ द्वौ च प्रियङ्गुप्रभौ । शेषाः षोडशजन्ममृत्युरहिताः संतप्तहेमप्रभास्ते संज्ञानदिवाकराः सुरनुताः सिद्धिं प्रयच्छन्तु नः ॥६॥ चैत्यभक्तिः ।
२. णेमीमल्ली वीरो कुमारकालम्मि वासुपुज्जो य । पासो वि य गहिदतवा सेसजिणा रज्जचरिमम्मि ॥६७१॥ त्रै., अ. ४ । ३. जयासूनोः वासुपूज्यस्य । ४. तीर्थदर्शिनाः म. ।
* भगवान् ऋषभदेवकी दीक्षा लेनेके बाद छह माहकी अनशनकी कथा सर्वत्र प्रसिद्ध है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दीक्षा कृष्णनवम्यां तु चैत्रस्य वृषभेशिनः । मुनिसुव्रतदीक्षास्यां वैशाखस्य बभूव सा ॥२२६॥
वैशाखस्येव शुद्धस्य प्रतिपद्यभिनन्द्यते । कुन्थोर्निष्क्रमणं लोके नवम्यां सुमतेः पुनः ॥२२७॥
द्वादश्यां ज्येष्ठकृष्णस्य त्रयोदश्यां च संक्रमम् । अनन्तस्य च शान्तेश्च परिनिष्क्रमणं स्मृतम् ॥२२८॥
द्वादश्यां ज्येष्ठकृष्णस्य सुपार्श्वस्य जिनेशिनः । नमेराषाढकृष्णस्य दशम्यां कथितं हि तत् ॥२२९॥
नेमेः सितचतुर्थ्यां तु श्रावणस्योपवर्णितम् । पद्माभस्य त्रयोदश्यां कृष्णायां कार्तिकस्य तु ॥२३०॥
कृष्णस्य मार्गशीर्षस्य दशम्यां सुमतेस्तु तत् । शुक्लप्रतिपदि प्रोक्तं पुष्पदन्तजिनेशिनः ॥२३१॥
तस्यैवारो दशम्यां तु पौर्णमास्यां च संभवः । एकादश्यां तु मल्लीशः परिनिष्क्रमणं श्रितः ॥२३२॥
पौषस्य कृष्णपक्षस्य ह्येकादश्यां सुकालजम् । ज्ञेयं निष्क्रमणं चन्द्रप्रभपार्श्वजिनेन्द्रयोः ॥२३३॥
माघस्य कृष्णपक्षस्य द्वादश्यां शीतलस्य च । विमलस्य सितायां हि चतुर्थ्यां परिकीर्तितम् ॥२३४॥
अजितस्य नवम्यां तु द्वादश्यामभिनन्दनः । धर्मस्य तु त्रयोदश्यां परिनिष्क्रमणं मतम् ॥२३५॥
फाल्गुनासितपक्षस्य त्रयोदश्यां जिनेशिनः । श्रेयसो वासुपूज्यस्य चतुर्दश्यां तदीरितम् ॥२३६॥
वर्षेण पारणाद्यस्य जिनेन्द्रस्य प्रकीर्तिता । तृतीयदिवसेऽन्येषां [1]पारणाः प्रथमा मताः ॥२३७॥
[2]आद्येनेक्षुरसो दिव्यः पारणायां पवित्रितः । अन्यैर्गोक्षीरनिष्पन्नपरमान्नमलालसैः ॥२३८॥
श्रीहास्तिनपुरं रम्यमयोध्यानगरी शुभा । श्रावस्ती च विनीता च पुरं विजयपूर्वकम् ॥२३९॥

कुरु, २२ देवकुरु, २३ विमला और २४ चन्द्राभा ये क्रमसे ऋषभादि तीर्थंकरोंकी शिविका—पालकियोंके नाम हैं ॥२२१-२२५॥

चैत्र कृष्ण नवमीको भगवान् वृषभदेवकी, वैशाख कृष्ण नवमीको मुनिसुव्रतनाथकी, वैशाख सुदी प्रतिपदाके दिन कुन्थुनाथकी, वैशाख सुदी नवमीके दिन सुमतिनाथकी, ज्येष्ठ-कृष्ण द्वादशीके दिन अनन्तनाथ जिनेन्द्रकी, ज्येष्ठ कृष्ण त्रयोदशीके दिन शान्तिनाथकी, ज्येष्ठ कृष्ण द्वादशीके दिन सुपार्श्व जिनेन्द्रकी, आषाढ़ कृष्ण दशमीके दिन नमिनाथकी, सावन सुदी चतुर्थीको नेमिनाथकी, कार्तिक कृष्ण त्रयोदशीको पद्मप्रभकी, मार्गशीर्ष कृष्ण दशमीको सुमति-नाथकी, मार्गशीर्ष सुदी प्रतिपदाके दिन पुष्पदन्त जिनेन्द्रकी, मार्गशीर्ष सुदी दशमीको अरनाथ-की, मार्गशीर्ष सुदी पूर्णिमाको सम्भवनाथकी, मार्गशीर्ष सुदी एकादशीको मल्लिनाथकी, पौष-कृष्ण एकादशीको चन्दप्रभ और पार्श्वनाथकी, माघ कृष्ण द्वादशीको शीतलनाथकी, माघ शुक्ल चतुर्थीको विमलनाथकी, माघ शुक्ल नवमीको अजितनाथकी, माघ शुक्ल द्वादशीको अभिनन्दननाथकी, माघ शुक्ल त्रयोदशीको धर्मनाथकी, फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशीके दिन श्रेयांस-नाथकी और फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशीके दिन वासुपूज्य भगवान्की दीक्षा हुई थी ॥२२६-२३६॥ श्री आदि जिनेन्द्रकी प्रथम पारणा एक वर्षमें [मल्लिनाथ और पार्श्वनाथकी चौथे दिन] तथा शेष तीर्थंकरोंकी तीसरे दिन हुई थी। भावार्थ—आदि जिनेन्द्रने छह माहका योग लिया था और छह माह विधि न मिलनेसे भ्रमण करते रहे इसलिए एक वर्ष बाद उन्हें आहार मिला। मल्लिनाथ और पार्श्वनाथने दीक्षाके समय तीन दिनके उपवासका नियम लिया था इसलिए उन्हें चौथे दिन आहार मिला और शेष तीर्थंकरोंने दो दिनका उपवास किया था ॥ २३७ ॥ श्री आदिनाथ भगवान्ने पारणाके दिन उत्तम इक्षुरसको पवित्र किया था और शेष तीर्थंकरोंने लालसासे रहित हो गो-दुग्धके द्वारा निर्मित खीरके द्वारा आहार किया था ॥ २३८ ॥ १ श्री-सुन्दर हस्तिनापुर, २ शुभ अयोध्या, ३ श्रावस्ती, ४ विनीता, ५ विजयपुर, ६ मंगलपुर, ७ पाटली-

१. पारणा प्रथमा मता म. । २. एक्कवरिसेण उसहो उच्छुरसं कुणइ पारणं अवरे । गोक्खीरे णिप्पण्णं अण्णं बिदियम्मि दिवसम्मि ॥ ४ अ., ६७१ गाथा., त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुरं मङ्गलकं नाम्ना पाटलीखण्डसंज्ञकम् । पद्मखण्डपुरं कान्तं तथा श्वेतपुरं परम् ॥२४०॥
अरिष्टपुरमिष्टं तु सिद्धार्थपुरमप्यतः । महापुरमतो नाम्ना स्फुटं धान्यवटं पुरम् ॥२४१॥
वर्धमानपुरं ख्यातं पुरं सौमनसाह्वयम् । मन्दरं हास्तिनपुरं तथा चक्रपुरं महत् ॥२४२॥
मिथिला राजगृहकं पुरं वीरपुरं तथा । पुरी द्वारवती [1]काम्यकृतं कुण्डपुरं पुरम् ॥२४३॥
चतुर्विंशतिसंख्यानां संख्यातानि यथाक्रमम् । जिनानां वृषभादीनां पारणानगराणि तु ॥२४४॥
स श्रेयान् ब्रह्मदत्तश्च सुरेन्द्र इव संपदा । राजा सुरेन्द्रदत्तोऽन्य इन्द्रदत्तश्च पद्मकः ॥२४५॥
सोमदत्तो महादत्तः सोमदेवश्च पुष्पकः । पुनर्वसुः सुनन्दश्च जयश्चापि विशाखकः ॥२४६॥
धर्मसिंहः सुमित्रश्च धर्ममित्रोऽपराजितः । नन्दिषेणश्च वृषभदत्तो दत्तश्च सन्नयः ॥२४७॥
वरदत्तश्च नृपतिर्धन्यश्च बकुलस्तथा । पारणासु जिनेन्द्रेभ्यो दायकाश्च त्वमी स्मृताः ॥२४८॥
[2]सर्वेषामादिभिक्षासु दातारोऽपि जिनेशिनाम् । सर्वासु वर्धमानस्य वसुधारानियोगतः ॥२४९॥
अर्धत्रयोदशोत्कर्षाद्वसुधारासु कोटयः । तावन्त्येव सहस्राणि दशघ्नानि जघन्यतः ॥२५०॥
आद्यौ द्वौ दायकौ श्यामौ ज्ञेयावन्त्यौ च वर्णतः । शेषास्तु दायकाः सर्वे संतप्तकनकप्रभाः ॥२५१॥
तपस्थिताश्च ते केचित्सिद्धास्तेनैव जन्मना । जिनान्ते सिद्धिरन्येषां तृतीये जन्मनि स्मृताः ॥२५२॥
वृषभमल्लीशपार्श्वानामष्टमेन चतुर्थतः । जयाजस्य ययुः शेषाश्छद्मस्था हानिषष्ठतः ॥२५३॥
ज्ञानाप्तिः पूर्वतालेन्त्या वृषस्य सकटामुखे । ऊर्जयन्ते गिरौ नेमेः पार्श्वस्याप्याश्रमान्तिके ॥२५४॥
वीरस्य केवलोत्पाद ऋजुकूलासरित्तटे । अन्येषां तु जिनेन्द्राणां स्वोद्यानेषु यथायथम् ॥२५५॥

खण्ड, ८ पद्मखण्डपुर, ९ श्वेतपुर, १० अरिष्टपुर, ११ सिद्धार्थपुर, १२ महापुर, १३ धान्यवटपुर, १४ वर्धमानपुर, १५ सोमनसपुर, १६ मन्दरपुर, १७ हस्तिनापुर, १८ चक्रपुर, १९ मिथिला, २० राजगृह, २१ वीरपुर, २२ द्वारवती, २३ काम्यकृति और २४ कुण्डपुर ये यथाक्रमसे वृषभ आदि चौबीस तीर्थंकरोंके प्रथम पारणाके दिन प्रसिद्ध हैं ॥२३९-२४४॥ १ राजा श्रेयांस, २ ब्रह्मदत्त, ३ सम्पत्तिके द्वारा सुरेन्द्रकी समानता करनेवाला राजा सुरेन्द्रदत्त, ४ इन्द्रदत्त, ५ पद्मक, ६ सोमदत्त, ७ महादत्त, ८ सोमदेव, ९ पुष्पक, १० पुनर्वसु, ११ सुनन्द, १२ जय, १३ विशाख, १४ धर्मसिंह, १५ सुमित्र, १६ धर्ममित्र, १७ अपराजित, १८ नन्दिषेण, १९ वृषभदत्त, २० उत्तम नीतिका धारक दत्त, २१ वरदत्त, २२ नृपति, २३ धन्य और २४ बकुल ये वृषभादि तीर्थंकरोंको प्रथम पारणाओंके समय दान देनेवाले स्मरण किये गये हैं ॥२४५-२४८॥ समस्त तीर्थंकरोंकी आदि पारणाओं और वर्धमान स्वामीकी सभी पारणाओंमें नियमसे रत्नवृष्टि हुआ करती थी। वह रत्नवृष्टि उत्कृष्टतासे साढ़े बारह करोड़ और जघन्य रूपसे साढ़े बारह लाख प्रमाण होती थी ॥२४९-२५०॥ इन दाताओंमें आदिके दो दाता और अन्तके दो दाता श्यामवर्णके थे और शेष सभी दाता तपाये हुए सुवर्णके समान वर्णवाले थे ॥२५१॥ इनमें कितने ही दाता तो तपश्चरण कर उसी जन्मसे मोक्ष चले गये और कितने ही जिनेन्द्र भगवान्के मोक्ष जानेके बाद तीसरे भवमें मोक्ष गये ॥२५२॥

वृषभनाथ, मल्लिनाथ, और पार्श्वनाथको तेलाके बाद, वासुपूज्यको एक उपवासके बाद और शेष तीर्थंकरोंको वेलाके बाद केवलज्ञानकी प्राप्ति हुई थी ॥ २५३ ॥ वृषभनाथ भगवान्को पूर्वताल नगरके शकटामुख वनमें, नेमिनाथको गिरिनार पर्वतपर, पार्श्वनाथ भगवान्को आश्रमके समीप, महावीर भगवान्को ऋजुकूला नदीके तटपर और शेष तीर्थंकरोंको

---

१. काम्या कृतं म. । २. सव्वणपारणदिणे णिवडइ वररयणवरिसमंवरदो । पणघणहददहलक्खं जेट्ठं अवरं सहस्सभागं च ॥६०२॥ अ. ४ त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वृषभस्य श्रेयसो मल्लेः पूर्वाह्णे नेमिपार्श्वयोः । केवलोत्पत्तिरन्येषामपराह्णे जिनेशिनाम् ॥२५६॥
फाल्गुने कृष्णपक्षस्य त्वेकादश्यां वृषो भृतः । द्वादश्यां केवलं मल्लिः षष्ठ्यां तु मुनिसुव्रतः ॥२५७॥
सप्तम्यामेव संप्राप्तः पक्षे तत्रैव केवलम् । सुपार्श्वजिनचन्द्रश्च चन्द्रप्रभजिनस्तदा ॥२५८॥
चतुर्थ्यां चैत्रकृष्णस्य पार्श्वदेवस्य केवलम् । अमावास्यामनन्तस्य जिनेन्द्रस्य तदिष्यते ॥२५९॥
पक्षे सिते तृतीयस्यां नमेः कुन्थोश्च केवलम् । दशम्यां सुमतेर्जातं पद्मप्रभजिनस्य च ॥२६०॥
ज्ञेयं वैशाखशुक्लस्य दशम्यां वीरकेवलम् । सितेऽश्वयुजि पक्षेऽमूर्नेमेस्तत्प्रतिपद्दिने ॥२६१॥
कार्तिकासितपञ्चम्यां शम्भवस्य सितात्मनि । सुविधेस्तु तृतीयस्यां तद्द्वादश्यामरस्य तु ॥२६२॥
पुष्यकृष्णचतुर्दश्यां शीतलः केवलं श्रितः । दशम्यां विमलः[1] शुक्ले शान्तिरेकादशे दिने ॥२६३॥
अजितोऽत्र चतुर्दश्यां केवलं प्रत्यपद्यत । अभिनन्दनधर्माख्यौ पौर्णमास्यामवाप तु ॥२६४॥
ज्ञानोत्पत्त्या त्वमावास्या माघस्य श्रेयसा कृता । श्रेयसी वासुपूज्येन द्वितीया शुक्लपक्षजा ॥२६५॥
माघकृष्णचतुर्दश्यां वृषस्य परिनिर्वृतिः । फाल्गुनस्यासिते पक्षे चतुर्थ्यां पद्मभासिनः ॥२६६॥
षष्ठ्यां सुपार्श्वनाथस्य द्वादश्यां मौनिसुव्रती[2] । सितफाल्गुनपञ्चम्यां मल्लिश्रीवासुपूज्ययोः ॥२६७॥
अमावस्या तु चैत्रस्य निर्वृताभ्यां[3] पवित्रिता । अनन्तारजिनेन्द्राभ्यां शुक्लपक्षस्य तु क्रमात् ॥२६८॥
पञ्चम्यामजितः षष्ठ्यां संभवः परिनिर्वृतः । दशम्यां सुमतिर्नाथः सुरनाथगणस्तुतः ॥२६९॥
वैशाखस्यापुनात्सिद्ध्या नमिः कृष्णचतुर्दशीम् । सितां प्रतिपदं कुन्थुः सप्तमीमभिनन्दनः ॥२७०॥

अपने-अपने नगरके उद्यानमे ही केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था ॥२५४–२५५॥ वृषभनाथ, श्रेयांसनाथ, मल्लिनाथ, नेमिनाथ और पार्श्वनाथ भगवान्‌को पूर्वाह्ण कालमें तथा शेष तीर्थंकरोंको अपराह्ण कालमें केवलज्ञानकी उत्पत्ति हुई थी ॥२५६॥

फाल्गुन कृष्ण एकादशीके दिन वृषभनाथ, फाल्गुन कृष्ण द्वादशीके दिन मल्लिनाथ, फाल्गुन कृष्ण षष्ठीके दिन मुनिसुव्रतनाथ, फाल्गुन कृष्ण सप्तमीके दिन सुपार्श्वनाथ और चन्द्रप्रभ, चैत्र कृष्ण चतुर्थीके दिन पार्श्वनाथ, चैत्र कृष्ण अमावास्याके दिन अनन्त जिनेन्द्र, चैत्र शुक्ल तृतीयाके दिन नमिनाथ और कुन्थुनाथ, चैत्रशुक्ल दशमीके दिन सुमतिनाथ और पद्मप्रभ भगवान्, वैशाख शुक्ल दशमीके दिन महावीर, आश्विन शुक्ल प्रतिपदाको नेमिनाथ, कार्तिक कृष्ण पंचमीको सम्भवनाथ, कार्तिक शुक्ल तृतीयाको सुविधिनाथ, कार्तिक शुक्ल द्वादशीको अरनाथ, पौष कृष्ण चतुर्दशीको शीतलनाथ, पौष कृष्ण दशमीको विमलनाथ, पौष शुक्ल एकादशीको शान्तिनाथ, पौष शुक्ल चतुर्दशीको अजितनाथ, पौष शुक्ल पूर्णिमाको अभिनन्दन और धर्मनाथ, माघ-कृष्ण अमावसको श्रेयांसनाथ और माघ शुक्ल द्वितीयाको वासुपूज्य भगवान् केवलज्ञानको प्राप्त हुए थे ॥२५७–२६५॥

माघ कृष्ण चतुर्दशीके दिन वृषभनाथका, फाल्गुन कृष्ण चतुर्थीके दिन पद्मप्रभका, फाल्गुन कृष्ण षष्ठीके दिन सुपार्श्वनाथका, फाल्गुन कृष्ण द्वादशीके दिन मुनिसुव्रतनाथका, फाल्गुन शुक्ल पंचमीके दिन मल्लिनाथ और श्री वासुपूज्यका निर्वाण हुआ है। चैत्रकी अमावास्या निर्वाणको प्राप्त हुए अनन्तनाथ और अरनाथ जिनेन्द्रके द्वारा पवित्र की गयी है। चैत्र शुक्ल पंचमीके दिन अजितनाथ, चैत्र शुक्ल षष्ठीके दिन सम्भवनाथ और चैत्र शुक्ल दशमीके दिन इन्द्रोंके समूहसे स्तुत सुमतिनाथ निर्वाणको प्राप्त हुए हैं ॥२६६–२६९॥ वैशाख कृष्ण चतुर्दशीको नमिनाथ भगवान्, वैशाख शुक्ल प्रतिपदाको कुन्थुनाथने और वैशाख शुक्ल सप्तमीको अभिनन्दननाथने अपने निर्वाणसे

१. विमलं म. । २. मौनिसुव्रतः म., ख., ङ., मुनिसुव्रतस्येयं मौनिसुव्रती परिनिर्वृतिरित्यनेन संबन्धः । ३. निर्मिताभ्यां म., ख. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शान्तेः सिद्धितिथिः सिद्धा ज्येष्ठकृष्णचतुर्दशी । तस्य शुक्लचतुर्थी तु धर्मस्य प्रतिपादिता ॥२७१॥
आषाढकृष्णपक्षस्य विमलस्याष्टमी मता । नेमेः शुक्लाष्टमी मान्या निर्वाणतिथिरिष्यते ॥२७२॥
श्रावणे शुक्लसप्तम्यां पार्श्वस्य परिनिर्वृतिः । श्रेयसः पौर्णमास्यां तु धनिष्ठासु प्रतिष्ठिता ॥२७३॥
चन्द्राभः शुक्लसप्तम्यां सिद्धो भाद्रपदस्य तु । अष्टम्यां पुष्पदन्तोऽस्य शीतलोऽश्वयुजस्य तु ॥२७४॥
निर्वृतः सितपञ्चम्यां कृष्णायां परिनिर्वृतिः । श्रीवीरस्य चतुर्दश्यां कार्तिकस्य विनिश्चिता ॥२७५॥
वृषोऽजितोऽपि च श्रेयान् शीतलश्चाभिनन्दनः । सुमतिश्च सुपार्श्वश्च पूर्वाह्णे चन्द्रमस्तथा ॥२७६॥
संभवः पद्मभासश्च पुष्पदन्तो भवान्तकः । अपराह्णे जिनाः सिद्धा वासुपूज्यजिनस्तथा ॥२७७॥
विमलानन्तशान्तीनां कुन्थोर्मल्लीशविंशयोः । प्रदोषसमये ज्ञेया निर्वृतिर्नेमिपार्श्वयोः ॥२७८॥
धर्मस्यारजिनेन्द्रस्य नमिवीरजिनेन्द्रयोः । प्रत्यूषे सिद्धिरुद्दिष्टा नष्टाष्टविधकर्मणाम् ॥२७९॥
[1]वृषस्य वासुपूज्यस्य नेमेः पर्यङ्कबन्धतः । कायोत्सर्गस्थितानां तु सिद्धिः शेषजिनेशिनाम् ॥२८०॥
चतु[2]र्दशदिनान्याद्यः संहृत्य विहृतिं जिनः । वीरोऽर्द्धितयं शेषा मासं संहृत्य मुक्तिगाः ॥२८१॥
वीरस्यैकस्य निर्वाणं [3]षड्विंशतिसहितस्य तु । पार्श्वस्य सह नेमेः षट्त्रिंशता पञ्चभिः शतैः ॥२८२॥

पवित्र किया है ॥२७०॥ ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशी शान्तिनाथ भगवान्की, ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्थी धर्मनाथकी, आषाढ़ कृष्ण अष्टमी विमलनाथकी और आषाढ़ शुक्ल अष्टमी नेमिनाथ भगवान्की निर्वाणतिथि मानी जाती है ॥२७१–२७२॥ श्रावण शुक्ल सप्तमीको पार्श्वनाथका और श्रावण शुक्ल पूर्णिमाको धनिष्ठा नक्षत्रमें श्रेयांसनाथका निर्वाण हुआ है ॥२७३॥

भाद्रपद शुक्ल सप्तमीको चन्द्रप्रभ, भाद्रपद शुक्ल अष्टमीको पुष्पदन्त और आश्विन शुक्ल पंचमीको शीतलनाथ निर्वाणको प्राप्त हुए हैं एवं कार्तिक कृष्ण चतुर्दशीको श्री भगवान् महावीरका निर्वाण निश्चित है ॥२७४-२७५॥

वृषभनाथ, अजितनाथ, श्रेयांसनाथ, शीतलनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ, सुपार्श्वनाथ और चन्द्रप्रभ ये पूर्वाह्णकालमें, सम्भवनाथ, पद्मप्रभ, संसार-भ्रमणका अन्त करनेवाले पुष्पदन्त और वासूपूज्य ये अपराह्णकालमें सिद्ध हुए हैं ॥२७६–२७७॥ विमलनाथ, अनन्तनाथ, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, नेमिनाथ और पार्श्वनाथकी सायंकालमें मुक्ति जानना चाहिए ॥२७८॥

और अष्ट प्रकारके कर्मोंको नष्ट करनेवाले धर्मनाथ, अरनाथ, नमिनाथ और महावीर जिनेन्द्रकी प्रातःकालमें सिद्धि कही गयी है ॥२७९॥

भगवान् वृषभनाथ, वासुपूज्य और नेमिनाथ पर्यंक आसनसे तथा शेष तीर्थंकर कायोत्सर्ग आसनसे स्थित हो मोक्ष गये हैं ॥२०८॥

आदि जिनेन्द्र भगवान् वृषभदेव, मुक्तिके पूर्व चौदह दिन तक विहारको संकोचकर मोक्ष हो गये हैं। भगवान् महावीर दो दिन और शेष तीर्थंकर एक मास पूर्व विहार बन्द कर मोक्षगामी हुए हैं ॥२८१॥

महावीर भगवान्का एकाकी—अकेलेका, पार्श्वनाथका छब्बीस मुनियोंके साथ, नेमिनाथका पाँच सौ छत्तीस मुनियोंके साथ निर्वाण हुआ है ॥२८२॥

---

१. उसहो य वासुपुज्जो णेमी पल्लंकबद्धया सिद्धा । काउस्सग्गेण जिणा सेसा मुत्ति समावण्णा । त्रै. प्र. चतुर्थ अधिकार ॥१२१०॥ २. उसहो चोद्दसदिवसे दुदिणं वीरेसरस्स सेसाणं । मासेण य विणिवत्ते जोगादो मुत्तिसम्पण्णो ॥१२०९ त्रै. प्र. च. अधिकार । ३. निर्वाणः म., ख., ङ. । 'मुक्तिः केवल्यनिर्वाणं श्रेयो निःश्रेयसामृतम्' इत्यमरः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मल्लिः पञ्चशतैः सिद्धः शान्तिर्नवशतैः सह । सैकैरष्टशतैर्धर्मो द्वादशः सैकषट्शतैः ॥२८३॥
सहस्रैर्विमलः षड्भिरनन्तस्तैस्तु सप्तभिः । सप्तमः पञ्चशत्यामा पद्माभोऽष्टशतैस्त्रिभिः ॥२८४॥
वृषो दशसहस्रैस्तु मुनिभिर्मुक्तिमाश्रितः । प्रत्येकं तु जिनाः शेषाः सहस्रेण समन्विताः ॥२८५॥
भरतश्चक्रवर्त्याद्यः सगरो मघवांस्ततः । सनत्कुमारनामान्यः शान्तिः कुन्थुररस्तथा ॥२८६॥
सुभूमश्च महापद्मो हरिषेणो जयोऽपरः । ब्रह्मदत्तश्च षट्खण्डनाथा द्वादशचक्रिणः ॥२८७॥
त्रिपृष्ठश्च द्विपृष्ठश्च स्वयंभूः पुरुषोत्तमः । पुरुषोपपदौ सिंहपुण्डरीकौ प्रचण्डकौ ॥२८८॥
दत्तो नारायणो कृष्णो वासुदेवा नवोदिताः । त्रिखण्डभरताधीशाः पराखण्डितपौरुषाः ॥२८९॥
विजयोऽचलः सुधर्माख्यः सुप्रभश्च सुदर्शनः । नान्दी च नन्दिमित्रश्च रामः पद्मो बला नव ॥२९०॥
अश्वग्रीवो भुवि ख्यातस्तारको मेरुकस्तथा । निशुम्भः शुम्भदम्भोजवदनो मधुकैटभः ॥२९१॥
बलिः प्रहरणाभिख्यो रावणः खेचरान्वयः[1] । भूचरस्तु जरासन्धो नवैते प्रतिशत्रवः ॥२९२॥
[2]ऊर्ध्वगा बलदेवास्ते निर्निदाना भवान्तरे । अधोगाः सनिदानास्तु केशवाः प्रतिशत्रवः ॥२९३॥
वृषभे भरतश्चक्री सगरोऽप्यजिते जिने । मघवांस्तुर्यश्चक्री च धर्मशान्त्यन्तरे मतौ ॥२९४॥
निजं जिनान्तरं ज्ञेयं शान्तिकुन्थ्वरचक्रिणाम् । चक्रवर्ती सुभूमोऽभूदरमल्लिजिनान्तरे ॥२९५॥
मुनिसुव्रतमल्ल्यन्तर्महापद्मः प्रकीर्तितः । मुनिसुव्रतनम्यन्तर्हरिषेणस्तु चक्रभृत् ॥२९६॥
नमिनेम्यन्तरे चक्री जयसेनोऽभवत्ततः । ब्रह्मदत्तोऽपि निर्दिष्टो नेमिपार्श्वजिनान्तरे ॥२९७॥

मल्लिनाथ पाँच सौ, शान्तिनाथ नौ सौ, धर्मनाथ आठ सौ एक, वासुपूज्य छह सौ एक, विमलनाथ छह हजार, अनन्तनाथ सात हजार, सुपार्श्वनाथ पाँच सौ, पद्मप्रभ तीन हजार आठ सौ, वृषभनाथ दश हजार और शेष तीर्थंकर एक-एक हजार मुनियोंके साथ मोक्षको प्राप्त हुए हैं ॥२८३–२८५॥

भरत, सगर, मघवा, सनत्कुमार, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, सुभूम, महापद्म, हरिषेण, जय और ब्रह्मदत्त ये बारह चक्रवर्ती छह खण्डोंके स्वामी हुए ॥२८६–२८७॥ त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ, स्वयम्भू, पुरुषोत्तम, पुरुषसिंह, पुरुष पुण्डरीक, (पुण्डरीक) दत्त, नारायण (लक्ष्मण) और कृष्ण ये नौ वासुदेव कहे गये हैं। ये तीन खण्ड भरतके स्वामी होते हैं तथा इनका पराक्रम दूसरोंके द्वारा खण्डित नहीं होता ॥२८८–२८९॥

विजय, अचल, सुधर्म, सुप्रभ, सुदर्शन, नान्दी, नन्दिमित्र, राम और पद्म ये नौ बलभद्र हैं ॥२९०॥ अश्वग्रीव, पृथिवीमें प्रसिद्ध तारक, मेरुक, निशुम्भ, सुशोभित कमलके समान मुखवाला मधुकैटभ, बलि, प्रहरण, विद्याधर वंशज रावण और भूमिगोचरी जरासन्ध ये नौ प्रतिनारायण हैं ॥२९१–२९२॥ बलभद्र ऊर्ध्वगामी—स्वर्ग अथवा मोक्षगामी होते हैं तथा भवान्तरमें कोई निदान नहीं बाँधते और नारायण अधोगामी होते हैं एवं भवान्तरमें निदान बाँधते हैं ॥२९३॥

चक्रवर्ती भरत वृषभनाथके समयमें हुआ, सगर चक्रवर्ती अजितनाथके कालमें हुआ, मघवा और सनत्कुमार धर्मनाथ तथा शान्तिनाथके अन्तरालमें हुए। शान्ति, कुन्थु और अरनाथ चक्रवर्तीका काल अपना-अपना अन्तराल काल है। सुभूम चक्रवर्ती अरनाथ और मल्लिनाथके अन्तरालमें हुआ। महापद्म मल्लिनाथ और मुनिसुव्रतनाथके अन्तरालमें हुआ। हरिषेण, मुनिसुव्रत

---

१. खेचरान्वयाः म. । २. अणिदाणगदा सव्वे बलदेवा केसवा णिदाणगदा । उडढंगामी सव्वे बलदेवा केसवा अधोगामी ॥१४३६ त्रै. प्र. ४ अधिकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अष्टानां सिद्धिरुद्दिष्टा ब्रह्मदत्तसुभूमयोः । [1]सप्तमी मघवांस्तुर्यो तृतीयं कल्पमाश्रितौ ॥२९८॥
श्रेयः प्रभृतिधर्मान्तान् पञ्चापश्यन् बलोर्जितान् । त्रिपृष्ठाद्या नृसिंहान्ताः पञ्चसंख्यास्तु केशवाः ॥२९९॥
पुण्डरीकोऽरमल्ल्यन्तर्वासुदेवः प्रकीर्तितः । मुनिसुव्रतमल्ल्यन्तर्दत्तनामा तु केशवः ॥३००॥
मुनिसुव्रतनम्योस्तु मध्ये नारायणः स्मृतः । प्रत्यक्षं वन्दको नेमेः कृष्णः पद्मसमन्वितः ॥३०१॥
[2]एकस्य सप्तमी पृथ्वी पञ्चानां षष्ठ्युदीरिता । पञ्चम्येकस्य चान्यस्य पर्यन्तस्य तृतीयभूः ॥३०२॥
[3]अष्टानां मुक्तिरुद्दिष्टा बलानां तु तपोबलात् । अन्तस्य ब्रह्मकल्पस्तु तीर्थे कृष्णस्य सेत्स्यतः ॥३०३॥
[4]धनुःशतानि पञ्चाद्ये हानिः पञ्चाशतोऽष्टसु । दशानां पञ्चसु प्रोक्ता पञ्चानामष्टसु क्षयः ॥३०४॥
उत्सेधः पार्श्वनाथस्य नवारत्निमितस्ततः । वीरस्यारत्नयः सप्त जिनोत्सेधः क्रमादयम् ॥३०५॥

और नमिनाथके अन्तरालमें हुआ। जयसेन चक्रवर्ती नमिनाथ पार्श्वनाथके अन्तरमें हुआ और ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती, नेमिनाथ तथा पार्श्वनाथ जिनेन्द्रके अन्तरालमें हुआ है ॥२९४–२९६॥ इन बारह चक्रवर्तियोंमें आठको मुक्ति प्राप्त हुई है, ब्रह्मदत्त और सुभूम सातवीं पृथिवी गये हैं तथा मघवा और सनत्कुमार तीसरे स्वर्गको प्राप्त हुए हैं ॥२९७॥

त्रिपृष्ठसे लेकर पुरुषसिंह तकके पाँच नारायणोंने श्रेयांसनाथसे लेकर धर्मनाथ तकके पाँच तीर्थंकरोंके अन्तराल कालको बलभद्रोंके साथ देखा है अर्थात् त्रिपृष्ठादि पाँच नारायण और विजय आदि पाँच बलभद्र श्रेयांसनाथसे लेकर धर्मनाथ तकके अन्तरालमें हुए हैं। पुण्डरीक, अरनाथ और मल्लिनाथके अन्तरालमें, दत्त, मल्लिनाथ और मुनिसुव्रतनाथके अन्तरालमें, नारायण (लक्ष्मण), मुनि सुव्रतनाथ और नमिनाथके अन्तरालमे हुआ है और कृष्ण पद्मके साथ नेमिनाथको वन्दना करनेवाला प्रत्यक्ष विद्यमान है ही ॥२९८–३०१॥ इन नारायणोंमें प्रथम नारायण त्रिपृष्ठ सातवीं पृथिवी गया। दूसरेसे लेकर छठे तक पाँच नारायण छठी पृथिवी गये। सातवाँ पाँचवीं पृथिवी गया और आठवाँ तीसरी पृथिवी गया और नौवाँ भी तीसरी पृथिवी जायेगा ॥३०२॥

प्रारम्भके आठ बलभद्रोंने तपके माहात्म्यसे मुक्ति प्राप्त की है और अन्तिम बलभद्र पाँचवें ब्रह्म स्वर्ग जायेगा। यह वहाँसे आकर जब कृष्ण तीर्थंकर होगा तब उसके तीर्थमें सिद्ध होगा—मोक्ष प्राप्त करेगा ॥३०३॥

वृषभ जिनेन्द्रके शरीरकी ऊँचाई पाँच सौ धनुष थी, फिर आठ तीर्थंकरोंकी ऊँचाई पचास-पचास धनुष कम होती गयी। उसके बाद तीर्थंकरोंकी दस-दस धनुष कम हुई। तदनन्तर आठ तीर्थंकरोंकी पाँच-पाँच धनुष कम हुई ॥३०४॥

पार्श्वनाथकी नौ हाथ और महावीरकी सात हाथ ऊँचाई होगी। इस प्रकार क्रमसे तीर्थंकरोंकी ऊँचाई जानना चाहिए ॥३०५॥

---

१. सप्तमी म.। २. पढमहरीसत्तम्मिए पंचच्छट्ठाम्मि पंचमी एक्को। एक्को तुरिये चरिमो तदिए णिरए तहेव पडिसत्तू ॥१४३८॥ त्रै. प्र., अ. ४, त्रैलोक्यप्रज्ञप्तौ त्रिलोकसारे च लक्ष्मणस्य चतुर्थपृथिवीगमनं प्रख्यातम्। हरिवंशे पद्मचरिते च तृतीयपृथिवीगमनं प्रख्यातम्। ३. णिस्सेयस मट्ठ गया हलिणो चरिमो बम्ह कत्थगदो। तत्तो कालेण मदो सिज्झदि, केहस्स तित्थम्मि ॥१४३७॥ त्रै. प्र., च, अ। ४. पंचसयधणुपमाणो उसहजिणिंदस्स होदि उच्छेहो। तत्तोपण्णासूणा णियमेण य पुष्पदंतपेरंते ॥५८५॥ एत्तो जाव अणंतं दस दस कोदंडमेत्तपरिहीणो। तत्तो णेमि जिणंतं पणपणचावेहिं परिहीणो ॥५८६॥ णव हत्था पासजिणे सग हत्था वड्ढमाण णामम्मि। एत्तो त्तित्थयराणं सरीरवण्णं परूवेमो ॥५८७॥ त्रै. प्र., अ. ४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

षञ्च चापशतान्याद्ये चक्रिण्युत्सेध इष्यते । चतुःशतानि सार्धानि धनूंषि सगरस्य तु ॥३०६॥
द्वाचत्वारिंशदिष्टानि सार्धानि तु धनूंष्यतः । सार्धेनैकेन युक्तानि चत्वारिंशद्धनूंषि तु ॥३०७॥
चत्वारिंशदथोक्तानि पञ्चमस्य तु चक्रिणः । पञ्चत्रिंशत्ततस्त्रिंशदष्टाविंशतिरष्टमे ॥३०८॥
द्वाविंशतिर्महापद्मे विंशतिश्च चतुर्दश । ततः सप्त धनूंषि स्यादुत्सेधश्चक्रवर्तिनाम् ॥३०९॥
अशीतिः सप्ततिः षष्टिः पञ्चाशत्पञ्चभिः सह । चत्वारिंशद्धनूंषि स्युः षड्विंशतिस्ततः परः ॥३१०॥
द्वाविंशतिस्तथोक्तानि षोडशापि दशैव तु । उत्सेधो वासुदेवानां बलदेवप्रतिद्विषाम् ॥३११॥
आयुश्चतुरशीतिश्च पूर्वलक्षा जिनेशिनाम् । द्वासप्ततिश्च षष्टिश्च पञ्चाशच्च यथाक्रमम् ॥३१२॥
चत्वारिंशत्तथा त्रिंशद्विंशतिश्च दशैव ताः । लक्षे लक्षं च पूर्वाणां दशानामायुरीरितम् ॥३१३॥
वर्षलक्षास्ततो लक्ष्या अशीतिश्चतुरुत्तरा । द्वासप्ततिस्ततः षष्टिस्त्रिंशद्दश तथैककम् ॥३१४॥
ततो वर्षसहस्राणि सपञ्चनवतिश्चतुः । अशीतिः पञ्चपञ्चाशत्त्रिंशद्दश तथैककम् ॥३१५॥
ततो वर्षशतं पूर्णं द्वासप्ततिरिति क्रमात् । जिनानामायुराख्यातमायुर्वृद्धिं करोतु वः ॥३१६॥
लक्षाश्चतुरशीतिस्तु द्वासप्ततिरिति क्रमात् । पूर्वाणां वर्षलक्षास्तु पञ्चत्र्येकाः प्रपञ्चिताः ॥३१७॥
ततो वर्षसहस्राणि नवतिः पञ्चभिर्युता । तथा चतुरशीतिः स्यादष्टाषष्टिस्ततः पुनः ॥३१८॥
त्रिंशत् षड्विंशतिस्त्रीणि वर्षसप्तशतानि च । आयुःप्रमाणमेतत्तु कथितं चक्रवर्तिनाम् ॥३१९॥
वर्षाणां चतुरशीतिर्लक्षा द्वासप्ततिस्ततः । षष्टिस्त्रिंशद्दशातोऽपि पञ्चषष्टिसहस्रकम् ॥३२०॥
द्वात्रिंशद्द्वादशैकं च प्रोक्तं वर्षसहस्रकम् । केशवानां यथासंख्यमायुःसंख्या विदां मता ॥३२१॥

प्रथम चक्रवर्तीकी ऊँचाई, पाँच सौ धनुष, दूसरे सगर चक्रवर्तीकी साढ़े चार सौ धनुष, तीसरेकी साढ़े बयालीस धनुष, चौथेकी साढ़े इकतालीस धनुष, पाँचवेंकी चालीस धनुष, छठेकी पैंतीस धनुष, सातवेंकी तीस धनुष, आठवेंकी अट्ठाईस धनुष, नौवें महापद्मकी बाईस धनुष, दशवें-की बीस धनुष, ग्यारहवेंकी चौदह धनुष, और बारहवेंकी सात धनुष थी। इस प्रकार चक्रवर्तियों-की ऊँचाईका वर्णन किया ॥३०६–३०९॥

अस्सी, सत्तर, साठ, पचपन, चालीस, छब्बीस, बाईस, सोलह और दश धनुष यह क्रमसे नारायण, बलभद्र और प्रतिनारायणोंकी ऊँचाई है ॥३१०–३११॥

प्रारम्भसे लेकर दशवें तीर्थंकर तककी आयु क्रमसे चौरासी लाख पूर्व, बहत्तर लाख पूर्व, साठ लाख पूर्व, चालीस लाख पूर्व, तीस लाख पूर्व, बीस लाख पूर्व, दश लाख पूर्व, दो लाख पूर्व और एक लाख पूर्व आयु कही गयी है ॥३१२–३१३॥

तदनन्तर श्रेयांसनाथसे लेकर महावीर पर्यन्तकी आयु क्रमसे चौरासी लाख वर्ष, बहत्तर लाख वर्ष, साठ लाख वर्ष, तीस लाख वर्ष, दश लाख वर्ष, एक लाख वर्ष, पंचानबे हजार वर्ष, चौरासी हजार वर्ष, पचपन हजार वर्ष, तीस हजार वर्ष, दश हजार वर्ष, एक हजार वर्ष, सौ वर्ष और बहत्तर वर्षकी है। इस प्रकार क्रमसे तीर्थंकरोंकी आयु कही। यह तुम्हारी आयु वृद्धि करे ॥३१४–३१६॥

चौरासी लाख पूर्व, बहत्तर लाख पूर्व, पाँच लाख, तीन लाख, एक लाख, पंचानबे हजार, चौरासी हजार, अड़सठ हजार, तीस हजार, छब्बीस हजार, तीन हजार और सात सौ वर्ष यह क्रमसे चक्रवर्तियोंकी आयुका प्रमाण कहा गया है ॥३१७–३१९॥

चौरासी लाख, बहत्तर लाख, साठ लाख, तीस लाख, दश लाख, पैंसठ हजार, बत्तीस हजार, बारह हजार और एक हजार वर्ष यह क्रमसे नौ नारायणोंकी आयुका प्रमाण विद्वानोंके द्वारा माना गया है ॥३२०–३२१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आयुर्लक्षा बलानां स्युः सप्ताशीतिश्च सप्ततिः । सप्तोत्तरा तथा षष्टिः पञ्चत्रिंशद्दश क्रमात् ॥३२२॥
षष्टिर्वर्षसहस्राणि त्रिंशद्दश च सप्तभिः । द्विशत्याब्दसहस्रं तु तच्चरमस्य बलस्य तु ॥३२३॥
वृषाद्याः धर्मपर्यन्ता जिनाः पञ्चदश क्रमात् । निरन्तरास्ततः शून्ये त्रिजिनाश्शून्ययोर्द्वयम् ॥३२४॥
[1]जिनः शून्यद्वयं तस्माज्जिनः शून्यद्वयं पुनः । [2]जिनः शून्यं जिनः शून्यं द्वौ जिनेन्द्रौ निरन्तरौ ॥३२५॥
चक्रिणौ भरताद्यौ द्वौ तौ शून्यानि त्रयोदश । षट्चक्रिणस्त्रिशून्यानि चक्री शून्यं च चक्रभृत् ॥३२६॥
ततः शून्यद्वयं चक्री शून्यं चक्रधरस्ततः । शून्ययोर्द्वितयं तस्मादिति चक्रधरक्रमः[3] ॥३२७॥
शून्यानि दश पञ्चातस्त्रिपृष्ठाद्यास्तु केशवाः । शून्यषट्कं ततश्चैकः केशवो व्योमकेशवः ॥३२८॥
त्रिशून्यं केशवश्चैकः शून्यद्वितयमप्यतः । केशवस्त्रीणि शून्यानि केशवानामयं क्रमः ॥३२९॥

सतासी लाख, सत्तर लाख, सड़सठ लाख, पैंतीस लाख, दश लाख, साठ हजार, तीस हजार, सत्रह हजार और बारह सौ वर्ष यह क्रमसे बलभद्रोंकी आयु है ॥३२२–३२३॥ तीर्थंकरोंके कालमें चक्रवर्ती तथा नारायणोंका क्रम जाननेके लिए चौंतीस कोठाका एक यन्त्र बनाना चाहिए। उसके नीचे चौंतीस-चौंतीस कोठाके दो यन्त्र और बनाना चाहिए। ऊपरके यन्त्रमें तीर्थंकरोंका, बीचके यन्त्रमें चक्रवर्तियोंका और नीचेके यन्त्रमें नारायणोंका विन्यास करे। यन्त्रमें तीर्थंकरोंके लिए एकका अंक, चक्रवर्तियोंके लिए दोका अंक और नारायणोंके लिए तीनका अंक प्रयुक्त किया जाता है। ऊपरके यन्त्रमें ऋषभनाथसे लेकर धर्मनाथ तक पन्द्रह तीर्थंकरोंका क्रमसे विन्यास करना चाहिए अर्थात् प्रारम्भसे लेकर पन्द्रह खानोंमें एक-एक लिखना चाहिए। उसके बाद दो शून्य, फिर एक तीर्थंकर, फिर दो शून्य, फिर एक तीर्थंकर, फिर दो शून्य, फिर एक तीर्थंकर, फिर दो शून्य, फिर एक तीर्थंकर, फिर एक शून्य और फिर लगातार दो तीर्थंकर इस प्रकार तीर्थंकरोंका विन्यास करना चाहिए। तदनन्तर नीचेके यन्त्रमें भरत आदि दो चक्रवर्ती, फिर तेरह शून्य, फिर छह चक्रवर्ती, फिर तीन शून्य, फिर एक चक्रवर्ती, फिर एक शून्य, फिर एक चक्रवर्ती, फिर दो शून्य, फिर एक चक्रवर्ती, फिर तीन शून्य, फिर एक चक्रवर्ती और फिर दो शून्य इस प्रकार चक्रवर्तियोंका क्रमसे विन्यास करे। तदनन्तर नीचेके यन्त्रमें प्रारम्भमें दश शून्य, फिर त्रिपृष्ठ आदि पाँच नारायण, फिर छह शून्य, फिर एक नारायण, फिर एक शून्य, फिर एक नारायण, फिर तीन शून्य, फिर एक नारायण, फिर दो शून्य, फिर एक नारायण और फिर तीन शून्य इस प्रकार क्रमसे नारायणोंका विन्यास करे। इसकी संदृष्टि इस प्रकार है*—

भावार्थ—भरत चक्रवर्ती वृषभनाथके समक्ष, सगर चक्रवर्ती अजितेश्वरके समक्ष तथा मघवा और सनत्कुमार ये दो चक्रवर्ती, धर्मनाथ और शान्तिनाथके अन्तरालमें हुए हैं। शान्ति,

| | | |

[1]पादः कुमारकालः स्यादायुषो वृषभस्य सः । न्यूनः संयमकालस्य राज्यकालस्ततोऽपरः ॥३३०॥

कुन्थु और अर ये तीन स्वयं तीर्थंकर तथा चक्रवर्ती हुए हैं। सुभौम चक्रवर्ती अरनाथ और मल्लिनाथके अन्तरालमें, पद्म चक्रवर्ती, मल्लि और मुनिसुव्रतके अन्तरालमें, हरिषेण चक्रवर्ती सुव्रत और नमिनाथके अन्तरालमें, जयसेन चक्रवर्ती नमिनाथ और नेमिनाथके अन्तरालमें तथा ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती नेमिनाथ और पार्श्वनाथके अन्तरालमें हुए हैं। यहाँ जो चक्रवर्ती तीर्थंकरोंके समक्ष न होकर अन्तरालमें हुए हैं उनके ऊपर तीर्थंकरोंके कोष्ठकमें शून्य रखे गये हैं और जो तीर्थंकरोंके समक्ष हुए हैं उनके ऊपर तीर्थंकरोंके कोष्ठकमें एक लिखा गया है। जिन तीर्थंकरोंके समक्ष चक्रवर्ती हुए हैं उनके नीचे चक्रवर्तीके कोष्ठकमें दोका अंक लिखा गया है और जिनके समक्ष अभाव रहा है उनके नीचे शून्य रखा गया है। इसी प्रकार नारायणोंके विषयमें जानना चाहिए अर्थात् पहलेसे लेकर दशम तीर्थंकर तक तो कोई भी नारायण नहीं हुआ पश्चात् ग्यारहवेंसे पन्द्रहवें तक पाँच नारायण हुए। तदनन्तर अर और मल्लिनाथके अन्तरालमें, मल्लि और मुनिसुव्रतके अन्तरालमें, सुव्रत और नमिके अन्तरालमें और नेमिनाथके समयमें नारायण हुए। जहाँ नारायणोंका अभाव है वहाँ कोष्ठकोंमें शून्य और जहाँ सद्भाव है, वहाँ तीनका अंक लिखा गया है ॥३१९–३२९॥

भगवान् वृषभदेवकी आयु चौरासी लाख पूर्वकी थी। उसका एक चतुर्थ भाग अर्थात् बीस लाख पूर्वका कुमारकाल था। शेष संयमके कालको घटाकर जो बचता है वह राज्यकाल था। भावार्थ—भगवान् वृषभदेवने बीस लाख पूर्व कुमारकाल बिताया, त्रेसठ लाख पूर्व राज्य किया, एक हजार वर्ष तप किया और एक हजार वर्ष कम एक लाख पूर्व केवलीकाल व्यतीत किया ॥३३०॥

अह पउमचक्कवट्टी मल्ली मुणि सुव्वयाण विच्चाले । सुव्वयणमाण मज्झे हरिसेणो णाम चक्कहरो ॥१२८५॥ जयसेणचक्कवट्टी णमि-णेमिजिणाणमंतरालम्मि । तह बह्मदत्तणामो चक्कवई णेमिपासविच्चाले ॥१२८६॥ चउसहिय तीस कोट्ठा कादव्वा तिरिय रूव पंत्तीए । उड्ढेणं वे कोट्ठा कादूणं पढमकोट्ठेसुं ॥१२८७॥ पण्णरसेसु जिणिंदा णिरंतरं दोसु सुण्णया तत्तो । तीसु जिणा दो सुण्णा इगि जिण दो सुण्ण एक्क जिणे ॥१२८८॥ दो सुण्णा एक्क जिणो इगि सुण्णो इगि जिणो य इगि सुण्णो । दोण्णि जिणा इदि कोट्ठा णिद्दिट्ठा तित्थकत्ताणं ॥१२८९॥ दो कोट्ठेसु चक्की सुण्णं तेरससु चक्किणो छक्के । सुण्ण तिय चक्कि सुण्णं दो सुण्णं चक्कि सुण्णो य ॥१२९०॥ चक्की दो सुण्णाइं छक्खंडवईण चक्कवट्टीणं । एदे कोट्ठा कमसो संदिट्ठो एक्क दो अंका ॥१२९१॥ बलदेववासुदेवप्पडिसत्तूणं जाणावणट्ठं संदिट्ठी—

पंच जिणिंदे वंदंति केसवा पंच अणुपुव्वीए । सेयंस साभिपहुदिं तिविट्ठपमुहा य पत्तेक्कं ॥१४१४॥ अरमल्लि अंतराले णादव्वो पुंडरीअणामो सो । मल्लिमुणिसुव्वयाणं विचाले दत्तणामो सो ॥१४१५॥ सुव्वयणमि सामीणं मज्झे णारायणो समुप्पण्णो । णेमि समयम्मि किण्णो एदे णव वासुदेवा य ॥१४१६॥ दस सुण्णा पंच केसव छस्सुण्णा केसि सुण्ण केसीओ । तिय सुण्ण मेक्क केसी दो सुण्णं एक्क केसि तिय सुण्णं ॥१४१७॥ तिलोयपण्णत्ति ४ अधिकार ।

१. पढमे कुमारकालो जिणरिसहे बीस पुव्वलक्खाणि । अजिआदिअर जिणंते सगसग आडस्स पादेगो ॥५८३॥ तत्तो कुमारकालो एगसयं सगसहस्स पंचसया । पणुवीतसयं तिसया तीसं तीसं च छक्कस्स ॥ ५८४ ॥ त्रै. प्र., च. अ. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पादोऽष्टादशसंख्यानां पूर्णः शेषजिनेशिनाम् । [1]कुमारकालशेषस्य राज्यसंयमकालता ॥३३१॥
कुमाराणां जिनानां तु संयमानेहसोज्झितः । आयुःकालः स कुमारः पञ्चानामपि वर्ण्यते ॥३३२॥
जिनसंयमकालस्तु पूर्वलक्षाथ सोज्झिता । पूर्वाङ्गेन चतुर्भिश्च ह्यष्टाभिद्वार्दशाङ्ककैः ॥३३३॥
ततः षोडशभिर्हीनो विंशत्या तु ततः परम् । चतुर्विंशतिपूर्वाङ्गैरष्टाविंशतिसंख्यकैः ॥३३४॥
दशानामायुषः पादः पादोनो द्वादशस्य सः । मल्लेर्वर्षशतेनोनो नेमेर्वर्षशतैस्त्रिभिः ॥३३५॥
त्रिंशद्वर्षविहीनस्तु प्रत्येकं पार्श्ववीरयोः । द्वेधा संयमकालोऽयं छाद्मस्थः केवली स्थितः ॥३३६॥
वृषछद्मस्थकालोऽत्र स्यात्सहस्रवर्षाण्यतः । द्वादशाब्दानि पूर्णानि स्युर्वर्षाणि चतुर्दश ॥३३७॥
ततोऽष्टादशवर्षाणि विंशतिस्तु ततः परे । षण्मासा नव वर्षाणि त्रिचतुस्त्रिद्विमासकाः ॥३३८॥

अजितनाथसे लेकर अठारहवें अरनाथ तक तीर्थंकरोंकी जो पूर्ण आयु थी उसका एक चतुर्थ भाग कुमारकाल था, और पूर्ण आयुमें-से कुमारकाल छोड़ देनेपर जो शेष रहता है वह उनके राज्य तथा संयमका काल था। [अन्तिम छह तीर्थंकरोंका कुमारकाल क्रमसे सौ वर्ष, साढ़े सात हजार वर्ष, अढ़ाई हजार वर्ष, तीन सौ वर्ष, तीस वर्ष और तीस वर्ष था]❀ ॥३३१॥ वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर ये पाँच तीर्थंकर बाल-ब्रह्मचारी तीर्थंकर थे, इसलिए इनकी आयुका जो काल था उसमें संयमका काल कम देनेपर उनका कुमारकाल कहा जाता है ॥३३२॥

श्री वृषभनाथ भगवान्‌का संयमकाल एक लाख पूर्व था। अजितनाथका एक पूर्वांग कम एक लाख पूर्व, सुमतिनाथका बारह पूर्वांग कम एक लाख पूर्व, अभिनन्दननाथका आठ पूर्वांग कम एक लाख पूर्व, सुमतिनाथका बारह पूर्वांग कम एक लाख पूर्व, पद्मप्रभका सोलह पूर्वांग कम एक लाख पूर्व, सुपार्श्वनाथका बीस पूर्वांग कम एक लाख पूर्व, चन्द्रप्रभका चौबीस पूर्वांग कम, पुष्पदन्तका अट्ठाईस पूर्वांग कम, वासुपूज्यका पूर्ण आयुका तीन चौथाई भाग, (चौवन लाख वर्ष) मल्लिनाथका सौ वर्ष कम पूर्ण आयु (सौ वर्ष कम पचपन हजार वर्ष), नेमिनाथका तीन सौ वर्ष कम पूर्ण आयु (सात सौ वर्ष), पार्श्वनाथका तीस वर्ष कम पूर्ण आयु (सत्तर वर्ष), महावीरका तीस वर्ष कम बहत्तर वर्ष (बयालीस वर्ष) और शेष दस तीर्थंकरोंका अपनी आयुका एक चौथाई भाग संयमकाल था। समस्त तीर्थंकरोंका यह संयमकाल छद्मस्थ काल और केवलिकालकी अपेक्षा दो प्रकारका है ॥३३३-३३६॥ वृषभनाथका छद्मस्थ काल एक हजार वर्ष, अजितनाथका बारह वर्ष, सम्भवनाथका चौदह वर्ष, अभिनन्दननाथका अठारह वर्ष, सुमतिनाथका बीस वर्ष, पद्मप्रभका छह मास, सुपार्श्वनाथका नौ वर्ष, चन्द्रप्रभका तीन मास, †पुष्पदन्तका चार मास, शीतलनाथका तीन मास, श्रेयांसनाथका दो मास, वासुपूज्यका एक मास,

१. कुमारकालः शेषस्य म.।

❀ तिलोयपण्णत्तिके च. अ. गाथा नं. ५८४ का अनुवाद है।

†. नौवें पुष्पदन्तसे लेकर धर्मनाथ तकका छद्मस्थ काल यहाँ ४, ३ आदि मास बतलाया है परन्तु तिलोयपण्णत्तिमें ४, ३ आदि वर्ष बतलाया है। तिलोयपण्णत्तिकी गाथाएँ इस प्रकार हैं—

उसहादीसु वासा सहस्स बारस चउद्दसट्ठरसा। बीस छदुमत्थकालो छच्चिय पउमप्पहे मासा ॥६७५॥ वासाणि णव सुपासे मासा चंदप्पहम्मि तिण्णि तदो। चदु तिदु एक्का तिदु इगि सोलस चउवग्ग चउकदी वासा ॥६७६॥ मल्लिजिणे छद्दिवसा एक्कारस सुव्वदे जिणे मासा। णमिणाहे णव मासा दिणाणि छप्पण्ण णेमिजिणे ॥६७७॥ पासजिणे चउमासा वारसवासाणि वड्ढमाणजिणे। एत्तियमेत्ते समये केवलणाणं न ताण उप्पण्णं ॥६७८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकत्रिद्व्येकमासाश्च वर्षाणि त्रिश्च षोडश । षडेकादशसंख्याहर्मासा वर्षाण्यतो नव ॥३३९॥
षट्पञ्चाशद्दिनानि स्युर्मासाश्चत्वार एव च । वर्षाणि द्वादशैवातः परं केवलिनो जिनाः ॥३४०॥
आद्यस्य गणिनो भर्तुरशीतिश्चतुरुत्तरा[1] । नवतिः पञ्चसंयुक्तं शतन्त्र्युत्तरमप्यतः ॥३४१॥
शतमेव पुनर्ज्ञेयं षोडशैकादशाधिकम् । पञ्चोत्तरा च नवतिस्त्र्युत्तरा नवतिस्तथा ॥३४२॥
[1]ततोऽष्टैकाधिकाशीतिः[2] सप्ततिः सप्तभिर्युता । षट् षष्टिः पञ्च पञ्चाशत्पञ्चाशच्च ततः परम् ॥३४३॥
त्रिचत्वारिंशदेवातः षट् त्रिंशत्त्रिंशदन्विता । पञ्चभिस्त्रिंशदप्यस्मादष्टाविंशतिरेव तु ॥३४४॥
अष्टादश गणाधीशास्तथा सप्तदश क्रमात् । एकादश दशैव स्युरेकादश च ते पुनः ॥३४५॥
आद्यस्याद्यो गणी नाम्ना सेनान्तो वृषभः प्रभोः । सिंहसेनस्ततोऽप्यन्यश्चारुदत्त इतीरितः ॥३४६॥
वज्रश्च चमरो वज्रचमरो [3]बलिदत्तकौ । वैदर्भश्चानगारश्च कुन्थुश्चापि सुधर्मकः ॥३४७॥

विमलनाथका तीन मास, अनन्तनाथका दो मास, धर्मनाथका एक मास, शान्ति, कुन्थु और अरनाथका सोलह-सोलह वर्ष, मल्लिनाथका छह दिन, मुनिसुव्रतनाथका ग्यारह मास, नमिनाथका नौ वर्ष, नेमिनाथका छप्पन दिन, पार्श्वनाथका चार मास और महावीरका बारह वर्ष है। इस छद्मस्थ कालके बाद सभी तीर्थंकर केवली हुए हैं ॥३३७–३४०॥

भगवान् ऋषभदेवके चौरासी गणधर थे, अजितनाथके नब्बे, सम्भवनाथके एक सौ पाँच, अभिनन्दननाथके एक सौ तीन, सुमतिनाथके एक सौ सोलह, पद्मप्रभके एक सौ ग्यारह, सुपार्श्वनाथके पंचानबे, चन्द्रप्रभके तेरानबे, पुष्पदन्तके अठासी, शीतलनाथके इक्यासी, श्रेयांसनाथके सतहत्तर, वासुपूज्यके छयासठ, विमलनाथके पचपन, अनन्तनाथके पचास, धर्मनाथके तैंतालीस, शान्तिनाथके छत्तीस, कुन्थुनाथके पैंतीस, अरनाथके तीस, मल्लिनाथके अट्ठाईस, मुनिसुव्रतनाथके अठारह, नमिनाथके सत्तरह, नेमिनाथके ग्यारह, पार्श्वनाथके दस और महावीरके ग्यारह गणधर थे* ॥३४१–३४५॥

†आदि तीर्थंकर ऋषभदेवके प्रथम गणधर वृषभसेन, अजितनाथके सिंहसेन, सम्भवनाथके चारुदत्त, अभिनन्दनके वज्र, सुमतिनाथके चमर, पद्मप्रभके वज्रचमर, सुपार्श्वनाथके बलि, चन्द्र-

१. ततोऽष्टैकादशाशीतिः म. । २. तिलोयपण्णत्तौ तु शीतलनाथस्य सप्ताशीतिगणधराः प्रोक्ताः । ३. बलदत्तकौ ग., ख. ।

* तिलोयपण्णत्तिमें शीतलनाथके ८१ के स्थानपर ८७ गणधर बतलाये हैं । गाथा इस प्रकार है—

चुलसीदि णउदि पण तिग सोलस एक्कारसूत्तरसयाइं । पणणउदी तेणउदी गणहरदेवा हु अट्ठ परियंतं ॥९६१॥ अडसीदी सगसीदी सत्तत्तरि छक्क समाधिया छट्ठी । पणवण्णा पण्णासा ततो य अणंत परियंतं ॥९६२॥ तेदालं छत्तीसा पणतीसा तीस अट्ठबीसा य । अट्ठारह सत्तरसेक्कारस दश एक्कारस य वीरंतं ॥९६३॥ च. अ. ।

† तिणोयपण्णत्तिमें अन्तर है—गाथा इस प्रकार हैं—

पढमो हु उसहसेणो केसरिसेणो य चारुदत्तो य । वज्जचमरो य वज्जो चमरो बलदत्त वेदब्भा ॥९६४॥ णागो कुन्थू धम्मो मन्दिरणामा जओ अरिट्ठो य । सेणो चक्कायुधयो सयंभु कुंभो विसाखो य ॥९६५॥ मल्लीणामो सुप्पहवरदत्ता सयंभु इंदभूदीओ । उसहादीणं आदिम गणधर णामाणि एदाणि ॥९६६॥ एदे गणधरदेवा सव्वे वि हु अट्ठरिद्धिसंपण्णा । ताणं रिद्धिसरूवं लव मेत्तं तं णिरूवेमो ॥९६७॥ च. अ. [1]ऋषभसेन, [2]केसरीसेन, [3]चारुदत्त, [4]वज्रचामर, [5]वज्र, [6]चमर, [7]बलदत्त, [8]वैदर्भ, [9]नाग, [10]कुन्थु, [11]धर्म, [12]मन्दिर, [13]जय, [14]अरिष्ट, [15]सेन, [16]चक्रायुध, [17]स्वयम्भू, [18]कुम्भ, [19]विशाख, [20]मल्लि, [21]सुप्रभ, [22]वरदत्त, [23]स्वयम्भू और [24]इन्द्रभूति ये ऋषभादि तीर्थंकरोंके प्रथम गणधरोंके नाम हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन्दरार्यो जयोऽरिष्टसेनश्चक्रायुधस्ततः । स्वयंभूः कुन्थुनामा च विशाखो मल्लिसोमकौ ॥३४८॥
वरदत्तः स्वयंभूः स्यादिन्द्रभूतिर्गणप्रभुः । ऋद्धिभिः सप्तभिर्युक्ताः सर्वे ते श्रुतपारगाः ॥३४९॥
वीरस्यैकस्य निष्क्रान्तिस्त्रिशतैर्मल्लिपार्श्वयोः । षडुत्तरैः शतैः षड्भिर्वासुपूज्यजिनस्य तु ॥३५०॥
चतुःसहस्रसंख्यानैर्निष्क्रान्तो वृषभो नृपैः । सहस्रपरिवारास्तु प्रत्येकमितरे जिनाः ॥३५१॥
चतुर्भिरधिकाशीतिः सहस्राणि वृषस्य तु । लक्षं लक्षे त्रिलक्षाश्च द्विस्त्रिलक्षाः सहस्रकैः ॥३५२॥
विंशत्या त्रिंशता युक्तास्तास्तु लक्षात्रयं ततः । सार्धलक्षे पुनर्लक्षे लक्षाशीतिश्चतुर्युता ॥३५३॥
सहस्रगुणिता सा तु द्वासप्ततिरपीदृशी । अष्टाषष्टिश्च षट्षष्टिश्चतुःषष्टिसहस्रकम् ॥३५४॥
द्वाषष्टिश्च सहस्राणि षष्टिः पञ्चादशैव च । चत्वारिंशत्सहस्राणि त्रिंशद्विंशतिरेव तु ॥३५५॥
अष्टादशसहस्राणि षोडशापि चतुर्दश । सहस्राणि यथासंख्यं गणसंख्या जिनेशिनाम् ॥३५६॥
[1]संघः सप्तविधः पूर्वधरशिक्षकभेदतः । सावधिः केवली वादी विक्रिया विपुलायुतः ॥३५७॥

प्रभके दत्तक, पुष्पदन्तके वैदर्भ, शीतलनाथके अनगार, श्रेयांसनाथके कुन्थु, वासुपूज्यके सुधर्म, विमलनाथके मन्दरार्य, अनन्तनाथके जय, धर्मनाथके अरिष्टसेन, शान्तिनाथके चक्रायुध, कुन्थुनाथके स्वयम्भू, अरनाथके कुन्थु, मल्लिनाथके विशाख, मुनिसुव्रतके मल्लि, नमिनाथके सोमक, नेमिनाथके वरदत्त, पार्श्वनाथके स्वयम्भू और महावीरके इन्द्रभूति थे। ये सभी गणधर सात ऋद्धियोंसे युक्त तथा समस्त शास्त्रोंके पारगामी थे ॥३४६–३४९॥

भगवान् महावीरने अकेले ही दीक्षा ली थी अर्थात् उनके साथ किसीने दीक्षा नहीं ली थी। मल्लिनाथ और पार्श्वनाथने तीन-तीन सौ राजाओंके साथ, *वासुपूज्यने छह सौ छह राजाओंके साथ, वृषभनाथने चार हजार राजाओंके साथ और शेष तीर्थंकरोंने एक-एक हजार राजाओंके साथ दीक्षा ली थी ॥३५०–३५१॥

भगवान् ऋषभदेवके समस्त गणों—मुनियोंकी संख्या चौरासी हजार थी। अजितनाथकी एक लाख, सम्भवनाथकी दो लाख, अभिनन्दननाथकी तीन लाख, सुमतिनाथकी तीन लाख बीस हजार, पद्मप्रभकी तीन लाख तीस हजार, सुपार्श्वनाथकी तीन लाख, चन्द्रप्रभकी अढ़ाई लाख, पुष्पदन्तकी दो लाख, शीतलनाथकी एक लाख, श्रेयांसनाथकी चौरासी हजार, वासुपूज्यकी बहत्तर हजार, विमलनाथकी अड़सठ हजार, अनन्तनाथकी छयासठ हजार, धर्मनाथकी चौंसठ हजार, कुन्थुनाथकी साठ हजार, अरनाथकी पचास हजार, मल्लिनाथकी चालीस हजार, मुनिसुव्रतनाथकी तीस हजार, नमिनाथकी बीस हजार, नेमिनाथकी अठारह हजार, पार्श्वनाथकी सोलह हजार और महावीरकी चौदह हजार संख्या थी ॥३५२–३५६॥

तीर्थंकर भगवान्का यह संघ १ पूर्वधर, २ शिक्षक, ३ अवधिज्ञानी, ४ केवलज्ञानी, ५ वादी, ६ विक्रियाऋद्धिके धारक और ७ विपुलमतिमनःपर्यय ज्ञानके धारकके भेदसे सात प्रकारका होता

---

१. पुव्वधरसिक्खकोट्ठीकेवलिवेकुव्विविउलमदिवादी । पत्तेक्कं सत्तगणा सव्वाणं तित्थकत्ताणं ॥ १०९८ ॥ ति. प., अ. ४ ।

*. तिलोयपण्णत्तिमें वासुपूज्य भगवान्के सहदीक्षितोंकी संख्या छह सौ छिहत्तर बतलायी है। प्रकरणानुसार गाथा इस प्रकार है—

पव्वजिदो मल्लिजिणो रायकुमारेहिं तिसयमेत्तेहिं । पासजिणोवि तह च्चिय एक्क च्चिय वड्ढमाणजिणो ॥६६८॥ छावत्तरिजुद छस्सयसंखेहिं वासुपूज्जसामी य । उसहो तालसएहिं सेसा पुह-पुह सहस्स मेत्तेहिं ॥६६९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्युश्चत्वारि सहस्राणि तथा सप्तशतानि च । पञ्चाशच्च वृषस्यामी सर्वे पूर्वधरा विभोः ॥३५८॥
चतुःसहस्रगणनाः शतं पञ्चाशदुत्तरम् । शिक्षकाः सावधिज्ञानाः सहस्राणि नव स्मृताः ॥३५९॥
विंशतिस्तु सहस्राणि पूज्याः केवलिनः सताम् । सहस्राण्येव तावन्ति षट्शतानि च वैक्रियाः ॥३६०॥
स्युर्द्वादशसहस्राणि मत्या विपुलया युताः । शतानि सप्तपञ्चाशत्तत्संख्यावादिनोऽपि च ॥३६१॥
अजितस्य सहस्राणि त्रीणि सप्तशतानि च । पञ्चाशच्च सतां सेव्याः सभ्यानां पूर्वधारिणः ॥३६२॥
शिक्षकाः षट्शतैः सार्धं सहस्राण्येकविंशतिः । चतुःशत्या सहस्राणि नव सावधयो मताः ॥३६३॥
स्युर्विंशतिसहस्राणि केवलाप्तास्तु वैक्रियाः । ज्ञेयास्तावत्सहस्राणि पञ्चाशच्च चतुःशती ॥३६४॥
द्वादशैव सहस्राणि प्रत्येकं च चतुःशती । मत्या विपुलया युक्ता वादिनो हितवादिनः ॥३६५॥
[1]संभवस्य सहस्रे द्वे शतं पञ्चाशता समम् । पूज्याः पूर्वभृतो ज्ञेयाः पूर्वसद्भाववादिनः[2] ॥३६६॥
एकोनत्रिंशता लक्षा सहस्रैस्त्रिशतानि च । संख्या शिक्षकसाधूनां संख्याताः प्रश्रयाश्रिताः ॥३६७॥
षट् शतानि सहस्राणि नव सावधयः स्मृताः । तथा दशसहस्राणि पञ्चभिः केवलाश्रिताः ॥३६८॥
तथैवैकोनविंशत्या सहस्रैरष्टभिः शतैः । पञ्चाशद्वैक्रियाः प्रोक्ता विक्रियाशक्तिधारिणः ॥३६९॥
द्वाभ्यां दशसहस्राणि विपुलां मतिमाश्रिताः । शताधिकानि तावन्ति सहस्राणि च वादिनः ॥३७०॥
शतानि पञ्च तुर्यस्य द्वे सहस्रेऽथ पूर्विणः । द्विलक्षे शिक्षकास्त्रिंशत्सहस्राण्यर्द्धितं शतम् ॥३७१॥
शतान्यष्टौ सहस्राणि नवैवानधिवीक्षणाः । षोडशैव सहस्राणि मुनयः केवलेक्षणाः ॥३७२॥
एकान्नविंशतिर्ज्ञेया सहस्राणि तु वैक्रियाः । एकादशसहस्राणि पञ्चाशत्षट्शतानि च ॥३७३॥
विपुलोपगता ये ते बोद्धव्या भव्यदेहिनाम् । वादिनोऽपि च तावन्ति सहस्राणीष्टवादिनः ॥३७४॥

है ॥३५७॥ भगवान् ऋषभदेवके समवसरणमें चार हजार सात सौ पचास पूर्वधारी, चार हजार एक सौ पचास शिक्षक, नौ हजार अवधिज्ञानी, बीस हजार सत्पुरुषोंके द्वारा पूजनीय केवली, बीस हजार छह सौ विक्रिया ऋद्धिके धारक, बारह हजार सात सौ पचास विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानी और इतने ही वादी थे ॥३५८–३६१॥

अजितनाथके समवसरणमें समीचीन सभ्य पुरुषोंके द्वारा सेवनीय तीन हजार सात सौ पचास पूर्वधारी, इक्कीस हजार छह सौ शिक्षक, नौ हजार चार सौ अवधिज्ञानी, बीस हजार केवली, बीस हजार चार सौ पचास विक्रिया ऋद्धिके धारक, बारह हजार चार सौ विपुलमति ज्ञानके धारक और इतने ही वादी थे ॥३६२–३६५॥

सम्भवनाथके समवसरणमें दो हजार एक सौ पचास पूर्वोंके सद्भावका निरूपण करनेवाले पूजनीय पूर्वधारी जानने योग्य हैं ॥३३६॥ एक लाख उनतीस हजार तीन सौ शिक्षक साधुओंकी संख्या स्मरण की गयी है ॥ ३६७ ॥ नौ हजार छह सौ अवधिज्ञानी माने गये हैं, पन्द्रह हजार केवलज्ञानी स्मृत किये गये हैं ॥३६८॥ उन्नीस हजार आठ सौ पचास विक्रिया शक्तिको धारण करनेवाले वैक्रिय साधु थे। बारह हजार विपुलमति ज्ञानके धारक थे और बारह हजार एक सौ वादी मुनि थे ॥३६९॥

अभिनन्दननाथके समवसरणमें दो हजार पाँच सौ पूर्वके धारक, दो लाख तीस हजार पचास शिक्षक, नौ हजार आठ सौ अवधिज्ञानी, सोलह हजार केवलज्ञानी, उन्नीस हजार विक्रिया ऋद्धिके धारक, ग्यारह हजार छह सौ पचास विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानी और भव्य जीवोंको हितका उपदेश देनेवाले उतने ही वादी थे ॥३७०—३७४॥

१. संयमस्य म. (?) । २. पूर्वसद्भावविदिनः म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुमतेर्द्वे सहस्रे तु चतुःशत्यपि पूर्विणः । द्वे लक्षे शिक्षका दृश्याश्चतुःपञ्चाशदेव च ॥३७५॥
सहस्राण्यभियुक्तानि पञ्चाशच्च शतत्रयम् । एकादशसहस्राणि विमलावधयस्तथा ॥३७६॥
त्रयोदशसहस्राणि केवलज्ञानदृष्टयः । अष्टादशसहस्राणि ततुःशत्यपि वैक्रियाः ॥३७७॥
दृश्या दशसहस्राणि विपुलाप्ताश्चतुःशती । तावन्तो वादिनस्तेभ्यः सर्वे पञ्चाशताधिकाः ॥३७८॥
पद्मभस्य सहस्रे द्वे शतानि त्रीणि पूर्विणः । लक्षे द्वे शिक्षकाः षष्टिसहस्राणि नवापि च ॥३७९॥
ज्ञेया दशसहस्राणि मुनयोऽवधिलोचनाः । द्वादशाष्टशतैर्युक्ताः सहस्राण्याप्तकेवलाः ॥३८०॥
षोडशैव सहस्राणि त्रिशती वैक्रिया नव । वादिनो विपुलाप्ताः षट् शत्यामा दश तानि वै ॥३८१॥
द्वे सहस्रे सुपार्श्वस्य त्रिंशता पूर्विणश्चतुः । चत्वारिंशत्सहस्राणि लक्षे नवशतैः सह ॥३८२॥
शिक्षका विंशतिं प्राप्ताः सहस्राणि [1]नवावधिम् । एकादश सहस्राणि त्रिशती केवलान्विताः ॥३८३॥
शतं पञ्चाशता पञ्च सहस्राणि दशापि च । वैक्रियाविपुलाद्याः षट्शती नवसहस्रकैः ॥३८४॥
वादिनोऽष्टसहस्राणि ततश्चन्द्रप्रभस्य तु । पूर्विणो द्वे सहस्रे तु शैक्षा लक्षे चतुःशती ॥३८५॥
[2]संघावष्टसहस्राणि पृथक् सविपुलावधी । दशकेवलिनस्तानि वैक्रियास्तु चतुःशती ॥३८६॥
ज्ञेयाः सप्तः सहस्राणि षट् शतानि च वादिनः । सुविधेः पूर्विणः पञ्च दशशत्युपवर्णिता ॥३८७॥
लक्षैका पञ्चपञ्चाशत्सहस्राणि शतानि च । पञ्च शिक्षकसाधूनामवधिज्ञानिनोऽष्ट तु ॥३८८॥
सहस्राणि चतुःशत्या पञ्चशत्या तु सप्त वै । सहस्राण्याप्तकैवल्याः स्युस्त्रयोदश वैक्रियाः ॥३८९॥
षट् सहस्राणि विपुलां पञ्चशत्या गतिं श्रिताः । वादिनः षट्शतैः सप्त सहस्राणि विनिश्चिताः ॥३९०॥

सुमतिनाथके समवसरणमें दो हजार चार सौ पूर्वधारी, दो लाख चौवन हजार तीन सौ पचास शिक्षक, ग्यारह हजार निर्मल अवधिज्ञानी, तेरह हजार केवलज्ञानी, अठारह हजार चार सौ विक्रिया ऋद्धिके धारक, उतने ही विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानके धारक और उनसे पचास अधिक अर्थात् दश हजार चार सौ पचास वादी थे ॥३७५–३७८॥

पद्मप्रभके समवसरणमें दो हजार तीन सौ पूर्वधारी, दो लाख उनहत्तर हजार शिक्षक, दस हजार अवधिज्ञानी, बारह हजार आठ सौ केवलज्ञानी, सोलह हजार तीन सौ विक्रिया ऋद्धिके धारक, नौ हजार वादी और दस हजार छह सौ विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानी थे ॥३७९–३८१॥

सुपार्श्वनाथके समवसरणमें दो हजार तीस पूर्वधारी, दो लाख चवालिस हजार नौ सौ बीस शिक्षक, नौ हजार अवधिज्ञानी, ग्यारह हजार तीन सौ केवली, पन्द्रह हजार एक सौ पचास विक्रिया ऋद्धिके धारक, नौ हजार छह सौ विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानी और आठ हजार वादी थे।

चन्द्रप्रभके समवसरणमें दो हजार पूर्वधारी, दो लाख चार सौ शिक्षक, आठ हजार विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानी, आठ हजार अवधिज्ञानी, दस हजार केवलज्ञानी, दस हजार चार सौ विक्रिया-ऋद्धिके धारक और सात हजार छह सौ वादी थे।

सुविधिनाथके समवसरणमें पाँच हजार पूर्वधारी, एक लाख पचपन हजार पाँच सौ शिक्षक, आठ हजार चार सौ अवधिज्ञानी, सात हजार पाँच सौ केवलज्ञानी, तेरह हजार विक्रिया ऋद्धिके धारक, छह हजार पाँच सौ विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानी और सात हजार छह सौ वादी थे ॥३८२–३९०॥

---

१. नवावधेः क. । २. संख्या चाष्ट क. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शीतलस्य चतुःशत्या सहस्रं पूर्ववेदिनः । द्विशत्यैकान्नषष्टिस्तु सहस्राणि सुशिक्षकाः ॥३९१॥
द्विशत्या सावधिः संघः सहस्राणि हि सप्त सः । सप्तकेवलिनस्तानि द्वादशैतानि वैक्रियाः ॥३९२॥
पञ्चशत्या सहस्राणि सप्तैते विपुलेश्वराः । सप्तशत्या सहस्राणि पञ्च सद्वादवादिनः ॥३९३॥
त्रयोदश शतानि स्युः पूर्विणः श्रेयसोऽष्टभिः । चत्वारिंशत्सहस्राणि द्विशती शैक्ष्यसाधवः ॥३९४॥
सावधिः षट् सहस्राणि गणः केवलिनामपि । पञ्चशत्या सहस्राणि तथैकादश वैक्रियाः ॥३९५॥
ततोऽन्ये षट् सहस्राणि पञ्च तानि ततः परे । शतानि द्वादशैव स्युर्वासुपूज्यस्य पूर्विणः ॥३९६॥
द्विशत्या शिक्षकाखिंशत्सहस्राणि नवापि च । चतुःशत्या सहस्राणि पञ्च सावधयो मताः ॥३९७॥
सर्वज्ञाः षट् सहस्राणि वैक्रियाः दश षट् परे । वादिनस्तु सहस्राणि चत्वारि द्विशती तथा ॥३९८॥
शतान्येकादश ज्ञेया विमलस्य तु पूर्विणः । अष्टात्रिंशत्सहस्राणि पञ्चशत्या तु शैक्षकाः ॥३९९॥
अष्टशत्या सहस्राणि चत्वार्यवधिलोचनाः । पञ्चशत्या सहस्राणि पञ्च केवलिनो नव ॥४००॥
वैक्रियाश्च सहस्राणि ततोऽन्ये केवलिप्रमाः । वादिनस्त्रिसहस्री च षट्शती च विनिश्चिताः ॥४०१॥
पूर्विणोऽनन्तनाथस्य सहस्रगणनाः स्मृताः । पञ्चशत्या सहस्राणि त्रिंशन्नव च शिक्षकाः ॥४०२॥
स्याच्चत्वारि सहस्राणि त्रिशत्या सावधिर्गणः । अन्ये पञ्चाष्टपञ्चत्रिसहस्रान्यन्तके[1] शते ॥४०३॥
शतानि नव धर्मस्य पूर्विणः शिक्षकाः पुनः । चत्वारिंशत्सहस्राणि तथा सप्तशतानि च ॥४०४॥
षट् शतानि सहस्राणि त्रीणि सावधयः स्मृताः । पञ्चशत्या सहस्राणि चत्वारि सकलेक्षणाः ॥४०५॥
सन्तः सप्तसहस्राणि वैक्रिया विपुलान्विताः । पञ्चशत्या तु चत्वारि द्विसहस्रचष्टशत्यतः ॥४०६॥

शीतलनाथके समवसरणमें एक हजार चार सौ पूर्ववेदी, उनसठ हजार दो सौ शिक्षक, सात हजार दो सौ अवधिज्ञानी, सात हजार केवलज्ञानी, बारह हजार विक्रिया ऋद्धिके धारक, सात हजार पाँच सौ विपुलमतिज्ञानके स्वामी और पाँच हजार सात सौ उत्तम वादी थे ॥३९१-३९३॥

श्रेयांसनाथके समवसरणमें तेरह सौ पूर्वधारी, अड़तालीस हजार दो सौ शिक्षक, छह हजार अवधिज्ञानी, छह हजार पाँच सौ केवलज्ञानी, ग्यारह हजार विक्रिया ऋद्धिके धारक, छह हजार विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानी और पाँच हजार वादी थे।

वासुपूज्यके समवसरणमें बारह सौ पूर्वधारी, उनतालीस हजार दो सौ शिक्षक, पाँच हजार चार सौ अवधिज्ञानी, छह हजार केवलज्ञानी, दस हजार विक्रिया ऋद्धिके धारक, छह हजार विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानी और चार हजार दो सौ वादी थे ॥३९४-३९८॥

विमलनाथके ग्यारह सौ पूर्वधारी, अड़तीस हजार पाँच सौ शिक्षक, चार हजार आठ सौ अवधिज्ञानी, पाँच हजार पाँच सौ केवली, नौ हजार विक्रिया ऋद्धिके धारक, नौ हजार विपुलमति-मनःपर्ययज्ञानी और तीन हजार छह सौ वादी निश्चित थे ॥३९९-४०१॥

अनन्तनाथके समवसरणमें एक हजार पूर्वधारी, उनतालीस हजार पाँच सौ शिक्षक, चार हजार तीन सौ अवधिज्ञानी, पाँच हजार केवलज्ञानी, आठ हजार विक्रिया ऋद्धिके धारक और तीन हजार दो सौ वादी थे ॥४०२-४०३॥

धर्मनाथके समवसरणमें नौ सौ पूर्वधारी, चालीस हजार सात सौ शिक्षक, तीन हजार छह सौ अवधिज्ञानी, चार हजार पाँच सौ केवलज्ञानी, सात हजार विक्रिया ऋद्धिके धारक, चार हजार पाँच सौ विपुलमति मनःपर्ययज्ञानी और दो हजार आठ सौ वादी थे ॥४०४-४०६॥

---

१. न्यन्तगे म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्विणोऽष्टशती शान्तेरष्टशत्यत्र शिक्षकाः । चत्वारिंशत्सहस्रयेकं त्रिसहस्रीगणः परः ॥४०७॥
चत्वारि षट् (च)चत्वारि द्वे सहस्रे चतुःशती । कुन्थोस्तु सप्तशत्येव पूर्विणः शिक्षकाः पुनः ॥४०८॥
चत्वारिंशत्सहस्राणि त्रीणि पञ्चाशता शतम् । सावधिः पञ्चशत्या तु द्वे सहस्रे गणो मतः ॥४०९॥
त्रिसहस्री द्विशत्या तु गणः केवलिनां स्मृतः । शतैकं वैक्रियाः पञ्च सहस्राणि च संमताः ॥४१०॥
त्रिशत्या त्रिसहस्री तु पञ्चाशद्विपुलेश्वराः । वादिनां जितवादानां सहस्रद्वितयी मता ॥४११॥
[1]पूज्याः पूर्वभृतोऽरस्य षट्शती तु दशोत्तरा । शैक्षास्तु पञ्चाग्रत्रिंशत्सहस्रैरष्टभिः शतैः ॥४१२॥
पञ्चत्रिंशन्मताः सर्वे सावधिः परिषत्पुनः । सकेवलावधिर्ज्ञेया द्विसहस्र्यष्टशत्यपि ॥४१३॥
वैक्रियास्तु सहस्राणि चत्वारि त्रिशती तथा । सहस्रे पञ्चपञ्चाशन्मत्या विपुलयान्विताः ॥४१४॥
शतानि षोडशैव स्युर्वादिनः पटुवादिनः । मल्लेस्तु पूर्विणः सर्वे पञ्चाशत् सप्तशत्यपि ॥४१५॥
एकान्नत्रिंशदुद्दिष्टाः सहस्राणि तु शिक्षकाः । द्वाविंशतिः शतानि स्युर्मुनयोऽवधिचक्षुषः ॥४१६॥
सहस्रे षट् च शत्यामा पञ्चाशच्च सकेवलाः । चतुःशत्या सहस्रं तु वैक्रियाः यतयो मताः ॥४१७॥
द्वे सहस्रे शते द्वे च मता विपुलबुद्धयः । तावन्त एव जेतारो वादिनः प्रतिवादिनाम् ॥४१८॥
मुनिसुव्रतनाथस्य पूर्विणः पञ्चशत्यभूत् । शिक्षकाः शिक्षया युक्ताः सहस्राण्येकविंशतिः ॥४१९॥
अष्टादश शतान्येव मताः सावधिकेवलाः[2] । द्वाविंशतिः पञ्चदश द्वादशैतान्यतः परे ॥४२०॥
पञ्चाशता शतानि स्युश्चत्वारि नमिपूर्विणः[3] । षड्भिः शतैः सहस्राणि द्वादशैव तु शिक्षकाः ॥४२१॥
शतानि षोडश ख्याताः केवलावधिलोचनाः । वैक्रियास्तु शतानि स्युस्तथा पञ्चदशैव तु ॥४२२॥

शान्तिनाथके समवसरणमें आठ सौ पूर्वधारी, इकतालीस हजार आठ सौ शिक्षक, तीन हजार अवधिज्ञानी, चार हजार केवलज्ञानी, छह हजार विक्रिया ऋद्धिके धारक, चार हजार विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानी और दो हजार चार सौ वादी थे।

कुन्थुनाथके समवसरणमें सात सौ पूर्वधारी, तैंतालीस हजार एक सौ पचास शिक्षक, दो हजार पाँच सौ अवधिज्ञानी, तीन हजार दो सौ केवली, पाँच हजार एक सौ विक्रिया ऋद्धिके धारक, तीन हजार तीन सौ पचास विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानी और दो हजार वादोंको जीतनेवाले वादी थे ॥४०७–४११॥

अरनाथके समवसरणमें छह सौ दस पूर्वधारी, पैंतीस हजार आठ सौ पैंतीस शिक्षक, दो हजार आठ सौ अवधिज्ञानी, इतने ही केवलज्ञानी, चार हजार तीन सौ विक्रिया ऋद्धिके धारक, दो हजार पचपन विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानी और सोलह सौ उत्तम वाद करनेवाले वादी थे।

मल्लिनाथके समवसरणमें सात सौ पचास पूर्वधारी, उनतीस हजार शिक्षक, बाईस सौ अवधिज्ञानी, दो हजार छह सौ पचास केवलज्ञानी, एक हजार चार सौ विक्रिया ऋद्धिके धारक, दो हजार दो सौ विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानी और उतने ही प्रतिवादियोंको जीतनेवाले वादी थे ॥४१२–४१८॥

मुनि सुव्रतनाथके समवसरणमें पाँच सौ पूर्वधारी, इक्कीस हजार शिक्षासे युक्त शिक्षक, अठारह सौ अवधिज्ञानी, अठारह सौ केवलज्ञानी, बाईस सौ विक्रिया ऋद्धिके धारक, पन्द्रह सौ विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानी और बारह सौ वादी थे ॥४१९–४२०॥

नमिनाथके समवसरणमें चार सौ पचास पूर्वधारी, बारह हजार छह सौ शिक्षक, सोलह सौ अवधिज्ञानी, सोलह सौ केवलज्ञानी, पन्द्रह सौ विक्रिया ऋद्धिके धारक, बारह सौ पचास

---

१. पूज्यः म. । २. लोचनाः म. । ३. नमिपूर्विताः म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शतानि द्वादश प्रोक्ताः पञ्चाशद्विपुलेक्षणाः । सहस्रपरिमाणास्तु वादिनोऽप्रतिवादिनः[1] ॥४२३॥
चतुःशतानि नेमेस्तु पूर्विणः शिक्षकाः स्मृताः । एकादश सहस्राणि शतैरष्टभिरेव तु ॥४२४॥
सकेवलावधी संघौ सहस्रं पञ्चशत्यपि । सहस्रं वैक्रियाश्चापि शतं च शुभवैक्रियाः ॥४२५॥
शतानि नव विज्ञेयाः शान्ता विपुलबुद्धयः[2] । वादिनोऽष्टौ शतानीह निःप्रतिप्रतिभान्विताः ॥४२६॥
पञ्चाशत्त्रिशती चापि स्युः पार्श्वस्य तु पूर्विणः । शैक्षा दश सहस्राणि शतानि नव च स्मृताः ॥४२७॥
चतुःशत्या सहस्रं तु निर्मलावधिबोधनाः । सहस्रं केवलालोका वैक्रियाश्च तथा मताः ॥४२८॥
शतानि सप्त पञ्चाशद्विपुलामल[3]बुद्धयः । वादिनः षट् शतानि स्युर्वादन्यायविधौ बुधाः ॥४२९॥
वर्धमानजिनेन्द्रस्य त्रिशती पूर्वधारिणः । शैक्षा नव सहस्राणि शतानि च नवोदिताः ॥४३०॥
त्रयोदश शतानि स्युरवधिज्ञानिनः परे । ये सप्त नव पञ्च स्युश्चत्वारि च शतानि वै ॥४३१॥
आर्यास्तिस्रोऽभवँल्लक्षा जिनपञ्चकसंसदि । पञ्चाशद्विंशतिस्त्रिंशत्त्रिंशत्त्रिंशत्सहस्रकैः ॥४३२॥
चतस्रो विदिता लक्षाः पद्मभस्य समान्तरे । विंशतिश्च सहस्राणि सहस्राणीव रोचिषाम् ॥४३३॥
तिस्रस्त्रिंशत्सहस्राणि सप्तमस्य समाम्बुधौ । ततः परं त्रयाणां तास्तिस्रोऽशीतिसहस्रकैः ॥४३४॥
स्याद्विंशतिसहस्रैस्तु लक्षैकान्यस्य संसदि । एका लक्षा त्रयाणां च षड्त्रिकाष्टसहस्रकैः ॥४३५॥॥
स्युर्द्वाषष्टिसहस्राणि धर्मस्यापि चतुःशती । शान्तेः षष्टिसहस्राणि शतानां त्रितयं तथा ॥४३६॥

विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानी और एक हजार प्रतिवादियोंसे रहित वादी थे ॥४२१-४२३॥

नेमिनाथके समवसरणमें चार सौ पूर्वधारी, ग्यारह हजार आठ सौ शिक्षक, एक हजार पाँच सौ अवधिज्ञानी, एक हजार पाँच सौ केवली, एक हजार एक सौ शुभविक्रिया करनेवाले विक्रियाऋद्धिके धारक, नौ सौ विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानके धारक और आठ सौ अनुपम प्रतिभासे युक्त वादी थे ॥४२४-४२६॥

पार्श्वनाथके समवसरणमें तीन सौ पचास पूर्वधारी, दस हजार नौ सौ शिक्षक, एक हजार चार सौ निर्मल अवधिज्ञानके धारक, *एक हजार केवलज्ञानी, एक हजार विक्रिया ऋद्धिके धारक, सात सौ पचास विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानी, और छह सौ वाद-विवादमें निपुण वादी थे ॥४२७-४२९॥

और वर्धमान जिनेन्द्रके समवसरणमें तीन सौ पूर्वधारी, नौ हजार नौ सौ शिक्षक, तेरह सौ अवधिज्ञानी, सात सौ केवलज्ञानी, नौ सौ विक्रिया ऋद्धिके धारक, पाँच सौ विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानी और चार सौ वादी कहे गये हैं ॥४३०-४३१॥

भगवान् वृषभदेवके समवसरणमें आर्यिकाएँ तीन लाख पचास हजार, अजितनाथके समवसरणमें तीन लाख बीस हजार, सम्भवनाथके समवसरणमें तीन लाख तीस हजार, अभिनन्दननाथके समवसरणमें तीन लाख तीस हजार, सुमतिनाथके समवसरणमें तीन लाख तीस हजार, पद्मप्रभके समवसरणमें हजारों किरणोंके समान चार लाख बीस हजार, सुपार्श्वनाथके समवसरणमें तीन लाख तीस हजार, चन्द्रप्रभके समवसरणमें तीन लाख अस्सी हजार, पुष्पदन्तके समवसरणमें तीन लाख अस्सी हजार, शीतलनाथके समवसरणमें तीन लाख अस्सी हजार, श्रेयांसनाथके समवसरणमें एक लाख बीस *हजार, वासुपूज्यके समवसरणमें एक लाख छह हजार, विमलनाथ-

---

१. वादिनोऽप्रतिवादिनाम् म. । २. विमलबुद्धयः म. । ३. -विमलामल म., क. ।

* तिलोयपण्णत्तिमें श्रेयांसनाथकी आर्यिकाओंकी संख्या एक लाख तीस हजार बतलायी है 'तीससहस्स ब्भहियं लक्खं सेयंस देवम्मि' ॥११७०॥ च. अ. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुन्थोः षष्टिसहस्राणि पञ्चाशच्च शतत्रयम् । पुनः षष्टिसहस्राणि जिनस्यारस्य संसदि ॥४३७॥
मल्लेस्तु पञ्चपञ्चाशत्सहस्राणि समान्तरे । सहस्राण्येव पञ्चाशन्मुनिसुव्रतसंसदि ॥४३८॥
चत्वारिंशत्सहस्राणि नमेः पञ्चोत्तराणि ताः । चत्वारिंशत्सहस्राणि नेमेः सदसि ताः स्मृताः ॥४३९॥
अष्टात्रिंसत्सहस्राणि त्रयोविंशस्य संसदि । पञ्चत्रिंशत्सहस्राणि चतुर्विंशस्य संमताः ॥४४०॥
तिस्रोऽष्टानां पृथग्लक्षा जिनानां श्रावकाः स्मृताः । द्वे लक्षे च ततोऽष्टानां लक्षाष्टानां मता ततः ॥४४१॥
पञ्चलक्षास्तथाष्टानां संसदि श्राविकाः स्मृताः । चतस्रस्तास्ततोऽष्टानां तिस्रोऽष्टानां जिनेशिनाम् ॥४४२॥
सिद्धाः षष्टिसहस्राणि नवशत्या वृषस्य ते । सप्तसप्ततिरन्यस्य सहस्राणि शतान्विताः ॥४४३॥
[1]शिष्या लक्षा तृतीयस्य सहस्राणि च सप्ततिः । शतं चातः शतं लक्षे सहाशीतिसहस्रकैः ॥४४४॥
तिस्रो लक्षाः सहस्रं च षट्शतानि ततस्ततः । त्रयोदशसहस्राणि तिस्रो लक्षाश्च षट्शती ॥४४५॥
पञ्चाशीतिसहस्राणि द्वे लक्षे षट्शती ततः । चतुस्त्रिंशत्सहस्राणि द्वे लक्षे च ततः परम् ॥४४६॥
लक्षैकेन विनाशीतिः सहस्राण्यपि षट्शती । ततोऽशीतिसहस्राणि षट्शतानि च निर्वृताः ॥४४७॥
पञ्चषष्टिसहस्राणि श्रेयसः षट्शती यथा । चतुःपञ्चाशदेव स्यात्सहस्राण्यपि षट्शती ॥४४८॥
सहस्राण्येकपञ्चाशत् त्रिशती विमलस्य तु । अनन्तस्यापि तावन्ति सहस्राण्येव केवलम् ॥४४९॥
धर्मस्यैकान्नपञ्चाशत् सहस्री सप्तशत्यपि । चत्वारिंशत्ततोऽष्टौ च सहस्राणि चतुःशती ॥४५०॥
चत्वारिंशत्सहस्राणि षट् चाष्टौ च शतान्यतः । सप्तत्रिंशत्सहस्राणि द्विशत्यरजिनस्य तु ॥४५१॥

के समवसरणमें एक लाख तीन हजार, अनन्तनाथके समवसरणमें एक लाख आठ हजार, धर्मनाथके समवसरणमें बासठ हजार चार सौ, शान्तिनाथके समवसरणमें साठ हजार तीन सौ, कुन्थुनाथके समवसरणमें साठ हजार तीन सौ पचास, अरनाथके समवरणमें साठ हजार, मल्लिनाथके समवसरणमें पचपन हजार, मुनिसुव्रतनाथके समवसरणमें पचास हजार, नमिनाथके समवसरणमें पैंतालीस हजार, नेमिनाथके समवसरणमें चालीस हजार, पार्श्वनाथके समवसरणमें अड़तीस हजार और चौबीसवें महावीर भगवान्के समवसरणमें पैंतीस हजार आर्यिकाएँ मानी गयी हैं ॥४३२–४४०॥

प्रारम्भसे लेकर आठ तीर्थंकरोंके समवसरणमें प्रत्येकके तीन-तीन लाख, फिर आठ तीर्थंकरोंके प्रत्येकके दो-दो लाख और तदनन्तर शेष आठ तीर्थंकरोंके प्रत्येकके एक-एक लाख श्रावक थे ॥ ४४१ ॥

इसी प्रकार प्रारम्भके आठ तीर्थंकरोंके समवसरणमें प्रत्येककी पाँच-पाँच लाख, फिर आठ तीर्थंकरोंकी प्रत्येककी चार-चार लाख और तदनन्तर शेष आठ तीर्थंकरोंकी प्रत्येककी तीन-तीन लाख श्राविकाएँ थीं ॥४४२॥

भगवान् वृषभनाथके मोक्ष जानेवाले शिष्योंकी संख्या साठ हजार नौ सौ, अजितनाथके सत्तर हजार एक सौ, सम्भवनाथके एक लाख सत्तर हजार एक सौ, अभिनन्दननाथके दो लाख अस्सी हजार एक सौ, सुमतिनाथके तीन लाख एक हजार छह सौ, पद्मप्रभके तीन लाख तेरह हजार*छह सौ, चन्द्रप्रभके दो लाख चौंतीस हजार, सुविधिनाथके एक लाख उन्यासी हजार छह सौ, शीतलनाथके अस्सी हजार छह सौ, श्रेयांसनाथके पैंसठ हजार छह सौ, वासुपूज्यके चौवन हजार छह सौ, विमलनाथके इक्यावन हजार तीन सौ, अनन्तनाथके इक्यावन हजार, धर्मनाथके उनचास हजार सात सौ, शान्तिनाथके अड़तालीस हजार चार सौ, कुन्थुनाथके छया-

१. शिक्षा म. ।

* तिलोयपण्णत्तिमें पद्मप्रभ जिनेन्द्रके मुक्त होनेवाले शिष्योंकी संख्या तीन लाख चौदह हजार बतलायी है । 'चोद्दस सहस्स सहिदा पउमप्पह जिणवरस्स तियलक्खा' ॥१२२०॥ अ. च. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अष्टशत्या सहस्राणि ततोऽष्टाविंशतिस्तथा । एकान्नविंशतिस्तस्मात्सहस्राणि शतद्वयम् ॥४५२॥
नमेर्नेव सहस्राणि षट् शतानि च निर्वृताः । नेमेरष्टौ सहस्राणि षट् सप्त द्वे शते द्वयोः ॥४५३॥
यदैव केवलोत्पत्तिः षोडशानां जिनेशिनाम् । तदैव तेषां शिष्याणां सिद्धिः केषांचिदिष्यते ॥४५४॥
एकद्वित्रिकषण्मासैरन्येषां शिष्यनिर्वृतिः । एक-द्वि-त्रिचतुर्वर्षैरपरेषां विनिश्चिता ॥४५५॥
त्रिविंशतिसहस्राणि पञ्चानां द्वादशैव तु । तान्येकादशपञ्चानां पञ्चानां दश तान्यतः ॥४५६॥
अष्टाशीति शतान्येव शिष्याः पञ्चजिनेशिनाम् । षट् सहस्राणि वीरस्य शिष्यास्तेऽनुत्तरोद्भवाः ॥४५७॥
ऊर्ध्वग्रैवेयकान्तासु सौधर्मादिषु भूमिषु । शतं त्रीणि सहस्राणि बभूवुर्वृषशिष्यकाः ॥४५८॥
[1]एकान्नत्रिसहस्राणि द्वितीयस्य दिवं गताः । नवान्यस्य सहस्राणि शिष्या नवशतीयुताः ॥४५९॥
नवशत्या सहस्राणि तुरीयस्य तु सप्त वै । ततश्चतुःशतीयुक्ता षट्सहस्री दिवंगता ॥४६०॥

लीस हजार आठ सौ, अरनाथके सैंतीस हजार दो सौ, मल्लिनाथके अट्ठाईस हजार आठ सौ, मुनिसुव्रतनाथके उन्नीस हजार दो सौ, नमिनाथके नौ हजार छह सौ, नेमिनाथके आठ हजार, पार्श्वनाथके छह हजार दो सौ और भगवान् महावीरके सात हजार †दो सौ हैं ॥४४३-४५३॥

किन्हीं आचार्योंका मत है कि—प्रारम्भसे लेकर सोलह तीर्थंकरोंके शिष्य, जिस समय उन्हें केवलज्ञान हुआ था उसी समय सिद्धिको प्राप्त हो गये थे। तदनन्तर चार तीर्थंकरोंके शिष्य क्रमसे एक, दो, तीन और छह मासमें सिद्धिको प्राप्त हुए और उनके बाद चार तीर्थंकरोंके शिष्य एक, दो, तीन और चार वर्षमें सिद्धिको प्राप्त हुए* ॥४५४-४५५॥

प्रारम्भसे लेकर तीन तीर्थंकरोंके बीस-बीस हजार, फिर पाँच तीर्थंकरोंके बारह-बारह हजार, फिर पाँच तीर्थंकरोंके ग्यारह-ग्यारह हजार, फिर पाँच तीर्थंकरोंके दश-दश हजार, फिर पाँच तीर्थंकरोंके अठासी-अठासी सौ और महावीरके छह हजार शिष्य अनुत्तर विमानोंमें उत्पन्न होनेवाले हैं ॥४५६॥

सौधर्म स्वर्गसे लेकर ऊर्ध्व ग्रैवेयक तकके विमानोंमें भगवान् वृषभदेवके तीन हजार एक सौ, अजितनाथके उनतीस सौ, सम्भवनाथके नौ हजार नौ सौ, अभिनन्दननाथके सात हजार नौ सौ, सुमतिनाथके छह हजार चार सौ, पद्मप्रभके चार हजार चार सौ, सुपार्श्वनाथके दो हजार चार सौ, चन्द्रप्रभके चार हजार, पुष्पदन्तके नौ हजार चार सौ, शीतलनाथके आठ हजार चार

---

१. 'णवसयअब्भहिय दोसहस्साणि' ति. प., अ., च. ॥१२३३॥

†. भगवान् महावीरके मुक्त होनेवाले शिष्योंकी संख्या तिलोयपण्णत्तिमें चवालीस सौ बतलायी है—'चउदालसया वीरेसरस्स'—अ. ॥१२२९॥ अ. च.।

*. इस विषयका तिलोयपण्णत्तिमें इस प्रकार स्पष्टीकरण किया गया है—

उसहादि सोलसाणं केवलणाणप्पसूदि दिवसम्मि ।
पढमं चिय सिस्सगणा णिस्सेयस संपयं पत्ता ॥१२३०॥
कुंथु चउक्के कमसो इगि दुति छम्मास समय पेरंते ।
णमि पहुदि जिणिंदेसुं इगि दुति छव्वाससंखाए ॥१२३१॥—अ. चार

अर्थात् ऋषभादिक सोलह तीर्थंकरोंके शिष्यगण केवलज्ञान उत्पन्न होनेके दिन पहले ही निःश्रेयस सम्पदाको प्राप्त हुए। कुन्थुनाथ आदि चार तीर्थंकरोंके शिष्यगण क्रमसे एक, दो, तीन और छह मास तक तथा नमि आदि चार जिनेन्द्रोंके शिष्यगण एक, दो, तीन और छह वर्ष तक निःश्रेयस पदको प्राप्त हुए ॥१२३०-१२३१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ततश्चतुःसहस्राणि चतुःशत्यान्वितानि तु । द्विसहस्रो चतुःशत्यातः सहस्रचतुष्टयी ॥४६१॥
ततो नव सहस्राणि सहितानि चतुःशतैः । ततोऽष्टौ सप्त षड्वापि सहस्राणि चतुःशतैः ॥४६२॥
ततः पञ्चसहस्राणि सप्तशत्या ततोऽपि च । पञ्चैव तु सहस्राणि चत्वारि त्रिशतैस्ततः ॥४६३॥
ततस्त्रीणि सहस्राणि शतैः षड्भिस्ततः पुनः । त्रीण्येव तु सहस्राणि द्विशते च दिवंगताः ॥४६४॥
सहस्रद्वितयं चातो द्वयोरष्ट चतुःशतैः । द्वे सहस्रे ततोऽन्यस्य सहस्रं षट् शतान्यतः ॥४६५॥
द्विशत्यातः सहस्रं हि सहस्रं केवलं ततः । अष्टौ शतानि वीरस्य शिष्यास्ते स्वर्गगामिनः ॥४६६॥
कोटीलक्षास्तु पञ्चाशत्त्रिंशद्दश नबाब्धयः । नवतिश्च सहस्राणि नवतिश्च शतान्यपि ॥४६७॥
तथा नवशतान्येव नवतिर्नवकोटयः । जिनानां वृषभादीनामन्तराणि नव क्रमात् ॥४६८॥
षट्षष्टिवर्षलक्षाभिः षड्विंशतिसहस्रकैः । विहीनाब्दशतेनाब्धिः कोटी दशममन्तरम् ॥४६९॥
चतुःपञ्चाशदेवातस्त्रिंशन्नव च सागराः । चत्वारस्ते त्रयस्तूनास्त्रिचतुर्भागपल्यकैः ॥४७०॥
पल्यार्धं च चतुर्भागो हीनकोटीसहस्रकः । कोटीसहस्रमब्दानां चतुर्लक्षाः शतार्धगाः ॥४७१॥
षट् लक्षाः पञ्चलक्षाश्च त्रयोऽशीतिसहस्रकैः । सार्धसप्तशतान्यर्धतृतीये च शते मते ॥४७२॥
[1]वर्धमानजिनेन्द्रस्य सहस्राण्येकविंशतिः । तीर्थकालस्तु तावन्ति सहस्राण्यतिदुःषमः ॥४७३॥
[2]आदावष्टौ तथान्तेऽष्टावव्युच्छिन्नानि षोडश । मध्ये तु सप्ततीर्थानि व्युच्छिन्नानीह भारते ॥४७४॥

सौ, श्रेयांसनाथके सात हजार चार सौ, वासुपूज्यके छह हजार चार सौ, विमलनाथके पाँच हजार सात सौ, अनन्तनाथके पाँच हजार, धर्मनाथके चार हजार तीन सौ, शान्तिनाथके तीन हजार छह सौ, कुन्थुनाथके तीन हजार दो सौ, अरनाथके दो हजार आठ सौ, मल्लिनाथके दो हजार चार सौ, मुनि सुव्रतनाथके दो हजार, नमिनाथके एक हजार छह सौ, नेमिनाथके एक हजार दो सौ, पार्श्वनाथके एक हजार, और महावीरके आठ सौ शिष्य उत्पन्न हुए हैं ॥४५७–४६६॥

पचास लाख करोड़, तीस लाख करोड, दश लाख करोड़, नौ लाख करोड़, नब्बे हजार करोड़, नौ हजार करोड़, नौ सौ करोड़, नब्बे करोड़ और नौ करोड़ सागर यह क्रमसे वृषभादि नौ तीर्थंकरोंके मुक्त होनेका अन्तरकाल है ॥४६७–४६८॥ छयासठ लाख छब्बीस हजार एक सौ कम एक करोड़ सागर प्रमाण दशवां अन्तर है अर्थात् शीतलनाथ भगवान्के मुक्ति जानेके बाद इतना समय बीत जानेपर श्रेयांसनाथ भगवान् मुक्ति गये ॥४६९॥ तदनन्तर चौवन, तीस, नौ, चार और पौन पल्य कम तीन हजार सागर यह वासुपूज्यसे लेकर शान्ति जिनेन्द्र तकका अन्तरकाल है। तत्पश्चात् अर्धपल्य, एक हजार करोड़ वर्ष कम पाव पल्य, एक हजार करोड़, चौवन लाख, छह लाख, पाँच लाख, तेरासी हजार सात सौ पचास और अढ़ाई सौ वर्ष प्रमाण क्रमसे कुन्थुनाथसे लेकर महावीर पर्यन्तका अन्तर है ॥४७०–४७२॥

महावीर भगवान्का तीर्थकाल इक्कीस हजार वर्ष प्रमाण पाँचवाँ काल और इतना ही छठा काल इस प्रकार बयालीस हजार वर्ष प्रमाण है ॥४७३॥ आदिके आठ और अन्तके आठ इस प्रकार सोलह तीर्थ तो इस भरतक्षेत्रमें अविच्छिन्न रूपसे प्रवृत्त हुए परन्तु बीचके सात तीर्थ

१. तिलोयपण्णत्तेः चतुर्थमहाधिकारे १२५०—१२७४ गाथासु वृषभादीनां सर्वेषां जिनेन्द्राणां पृथक् पृथक् तीर्थकालो निरूपितः। इह तु वर्धमानजिनेन्द्रस्यैव निरूपितः 'इगिवीससहस्साणि दुलाल वीरस्स सो कालो' ॥ति. प.॥ २. उच्छण्णो सोधम्मो सुविहिप्पमुहेसु सत्ततित्थेसुं। सेसेसु सोलसेसुं णिरंतरं धम्मसंताणं ॥१२७८॥ पल्लस्स पादमद्धं तिचरणपल्लं खु तिचरणं अद्धं। पल्लस्स पादमेत्तं वोच्छेदो धम्मतित्थस्स ॥१२७९॥ हुंडावसप्पिणिस्स य दोषेणं सत्त होंति विच्छेदा। दिक्खाहि मुहाभावे अत्थमिओ धम्मरविदेओ ॥ १२८० ॥ ति. प., ४ अ.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पादः पल्यस्य पल्यार्धं त्रिपादी पल्यमेव तु । त्रिपाद्यर्धं च पादश्च व्युच्छेदानेहसः क्रमात् ॥४७५॥
आदितः सप्ततीर्थेषु केवलश्रीर्निरन्तरा । चन्द्राभस्य मुनेरन्ते सुविधेर्नवतिर्मता ॥४७६॥
तीर्थे चतुरशीतिस्तु शीतलस्य निरन्तरा । केवलज्ञानिनोऽन्यस्य द्वासप्ततिरुदाहृता ॥४७७॥
चत्वारिंशच्चतुर्युक्ता वासुपूज्यस्य पूजिता । चतुर्हानिस्तु दशसु द्वयोः केवलिनस्त्रयः ॥४७८॥
वीरकेवलिनां कालो द्वाषष्ट्यब्दानि संस्तुतः । ततो वर्षशतं पूर्णं स्याच्चतुर्दशपूर्विणाम् ॥४७९॥
त्रयोऽशीत्या शताब्दानि भवन्ति दशपूर्विणाम् । विंशत्यङ्गभृतां युक्ताः कालो वर्षशतद्वयम् ॥४८०॥

व्युच्छिन्न होकर पुनः-पुनः प्रवृत्त हुए ॥४७४॥ पाव पल्य, अर्ध पल्य, पौन पल्य, एक पल्य, पौन पल्य, अर्धपल्य और पाव पल्य, यह क्रमसे व्युच्छिन्न तीर्थोंके विच्छेदकालका प्रमाण है। भावार्थ—वृषभदेवसे लेकर पुष्पदन्त तक तो तीर्थ अविच्छिन्न रूपसे चलते रहे उसके बाद पुष्पदन्तके तीर्थमें जब पाव पल्य प्रमाण काल बाकी रह गया तब तीर्थ—धर्मका विच्छेद हो गया। तदनन्तर शीतलनाथके केवली होनेपर पुनः तीर्थ प्रारम्भ हुआ, इसी प्रकार धर्मनाथ पर्यन्त ऊपर लिखे अनुसार तीर्थ विच्छेद समझना चाहिए। शान्तिनाथसे लेकर महावीर पर्यन्त बीचमें तीर्थका विच्छेद नहीं है। महावीरका तीर्थ बयालीस हजार वर्ष तक चलेगा, उसके बाद विच्छिन्न हो जायेगा। तदनन्तर आगामी उत्सर्पिणी युगमें जब प्रथम तीर्थंकरको केवलज्ञान होगा तब पुनः तीर्थका प्रारम्भ होगा ॥४७५॥

प्रारम्भसे लेकर सात तीर्थंकरोंके तीर्थमें केवलज्ञानरूपी लक्ष्मी निरन्तर विद्यमान रही। उसके पश्चात् चन्द्रप्रभ और पुष्पदन्तके तीर्थमें नब्बे-नब्बे, शीतलनाथके तीर्थमें चौरासी, श्रेयांसनाथके तीर्थमें बहत्तर, वासुपूज्यके तीर्थमें चौवालीस, फिर विमलनाथसे लेकर नेमिनाथ तक दश तीर्थंकरोंके तीर्थमें चार-चार कम और अन्तिम दो तीर्थंकरोंके तीर्थमें तीन-तीन केवली अनुबद्ध हुए हैं अर्थात् एकके मोक्ष जानेके बाद दूसरेको केवलज्ञान हो गया है* ॥४७६-४७८॥

महावीर स्वामीके केवलियोंका काल बासठ वर्ष कहा गया है उसके बाद सौ वर्ष चौदह पूर्वधारियोंका काल है, तदनन्तर एक सौ तेरासी वर्ष दश पूर्वधारियोंका समय है, फिर दो सौ बीस वर्ष ग्यारह अंगके पाठियोंका काल है, और इसके बाद एक सौ अठारह वर्ष आचारांगके

---

* तिलोयपण्णत्तिमें अनुबद्ध केवलियोंका वर्णन करते हुए दो मत दिये हैं। प्रथम मतके अनुसार आदिनाथसे लेकर दसवें तीर्थंकर तक प्रत्येकके ८४, श्रेयांस और वासुपूज्यके क्रमसे ७२ और ४४, विमलनाथके ४०, अनन्तनाथके ३६, धर्मनाथके ३२, शान्तिनाथके २८, कुन्थुनाथके २४, अरनाथके २०, मल्लिनाथके १६, मुनिसुव्रतनाथके १२, नमिनाथके ८, नेमिनाथके ४, पार्श्वनाथके ३ और महावीरके ३ अनुबद्ध केवली हैं तथा दूसरे मतके अनुसार—आदिनाथसे लेकर सातवें तीर्थंकर तक प्रत्येकके १००, चन्द्रप्रभके ९०, पुष्पदन्तके ९०, शीतलनाथके ९०, श्रेयांसनाथके ९०, वासुपूज्यके ८४, विमलनाथके ४०, अनन्तनाथके ३६, धर्मनाथके ३२, शान्तिनाथके २८, अरनाथके २०, मल्लिनाथके १६, मुनिसुव्रतनाथके १२, नमिनाथके ८, नेमिनाथके ४, पार्श्वनाथके ३ और महावीरके ३ अनुबद्ध केवली हैं। गाथाएँ इस प्रकार हैं—

दसमंते चउसीदी कमसो अणुबद्ध केवली होंति। बाहत्तरि चउदालं सेयंसे वासुपुज्जे य ॥ १२१२ ॥ विमल जिणे चालीसं णवसु तदो चउ विविज्जिदा कमसो। तिण्णि च्चिय पासजिणे तिण्णि च्चिय वड्ढमाणम्मि ॥१२१३॥ आ सत्तमेक्क सयं उवरितिए पाउदि णउदि च उसीदी। सेसेसु पुव्वसंखा हवंति अणुबद्धकेवली अहवा ॥१२१४॥ ति. प. अ.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचाराङ्गभृताङ्गीतः शतमष्टादशोत्तरम् । त्रिपञ्चैकादश ज्ञेयाः पञ्च चत्वार एव ते ॥४८१॥
वीरस्य गणिनां वर्षाण्यायुर्द्वानवतिश्चतुः । विंशतिः सप्ततिश्च स्यादशीतिः फतमेव च ॥४८२॥

धारियोंका काल कहा गया है। महावीर स्वामीके केवलियोंकी संख्या तीन[1], चौदह पूर्वके धारियोंकी संख्या पाँच[2], दश पूर्वधारियोंकी संख्या ग्यारह[3], ग्यारह अंगके धारियोंकी संख्या पाँच[4] और आचारांगके पाठियोंकी संख्या[5] चार[6] है ॥ ४७९-४८१ ॥ महावीर भगवान्‌के गणधरोंकी आयु

१. गौतमस्वामी[1], सुधर्माचार्य[2], जम्बूस्वामी[3] ये तीन केवली हुए। २. नन्दी[1], नन्दिमित्र[2], अपराजित[3], गोवर्द्धन[4] और भद्रबाहु[5] ये पाँच चौदह पूर्वके धारी हुए। ३. विशाख, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जय, नाग, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजय, बुद्धिल, वंगदेव और सुधर्म ये ग्यारह दश पूर्वधारी हुए। ४. नक्षत्र, जयपाल, पाण्डु, ध्रुवसेन और कंस ये पाँच ग्यारह अंगके धारी हुए। ५. सुभद्र, यशोभद्र, यशोबाहु और लोहार्य ये चार आचारांगके धारी हुए। ६. यहाँ तिलोयपण्णत्ति अधिकार ४, गाथा १४७६ से १४९२ तकका प्रकरण विशेष ज्ञानके लिए द्रष्टव्य है—

जादो सिद्धो वीरो तद्दिवसे गोदमो परमणाणी ।
जादो तस्सि सिद्धे सुधम्मसामी तदो जादो ॥ १४७६ ॥
तम्मि कदकम्मणासे जंबू सामित्ति केवली जादो ।
तत्थ वि सिद्धिपवण्णे केवलिणो णत्थि अणुबद्धा ॥ १४७७ ॥
वासट्ठीवासाणि गोदम पहुदीण णाणवंताणं ।
धम्मपयट्टण काले परिमाणं पिंडरूवेणं ॥ १४७८ ॥
कुंडल गिरिम्मि चरिमो केवलणाणीसु सिरिधरो सिद्धो ।
चारण रिसीसु चरिमो सुपासचंदाभिधाणो य ॥ १४७९ ॥
पण्ण समणेसु चरिमो वइरजसो णाम ओहिणाणिसुं ।
चरिमो सिरिणामो सुद विणय सुसीलादिसंपण्णो ॥ १४८० ॥
मउड धरेसुं चरिमो जिणदिक्खं धरदि चंदगुत्तो य ।
तत्तो मउडधरा दु प्पव्वज्जं णेव गेण्हंत्ति ॥ १४८१ ॥
णंदो य णंदिमित्तो विदिओ अवराजिदो तइज्जो य ।
गोवद्धणो चउत्थो पंचमओ भद्दबाहुत्ति ॥ १४८२ ॥
पंच इमे पुरिसवरा चउदसपुव्वी जगम्मि विक्खादा ।
ते वारस अंगधरा तित्थे सिरि वड्ढमाणस्स ॥ १४८३ ॥
पंचाण मेलिदाणं कालपमाणं हवेदि वाससदं ।
वीदम्मि य पंचमए भरहे सुदकेवली णत्थि ॥ १४८४ ॥
पढमो विसाहणामो पुट्ठिल्लो खत्तियो जओ णागो ।
सिद्धत्थो धिदिसेणो विजओ बुद्धिल्लगंगदेवा य ॥ १४८५ ॥
एक्करसो य सुधम्मो दशपुव्वधरा इमे सुविक्खाण ।
पारंपरिओवगदो तेसीदि सदं च ताण वासाणि ॥ १४८६ ॥
सव्वेसु वि कालवसा तेसु अदीदेसु भरह खेत्तम्मि ।
वियसंत भव्वकमला ण संति दसपुव्विदिवसयरा ॥ १४८७ ॥
णक्खत्तो जयपालो पंडुयधुवसेण कंस आइरिया ।
एक्कारसंगधारी पंच इमे वीर तित्थम्मि ॥ १४८८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रयोऽशीतिश्च नवतिः पञ्चभिः [1]साष्टसप्ततिः । द्वाभ्यां च [2]सप्ततिः षष्टिश्चत्वारिंशच्च संयुताः ॥४८३॥
षट्सु कालेषु पल्याष्टभागे शेषे तृतीयके । भूतिः कुलकराणां च ततोऽपि वृषभस्य तु ॥४८४॥
जन्म क्रमेण शेषाणां जिनानां चक्रवर्तिनाम् । हलिनां वासुदेवानां तुर्ये काले विनिश्चितम् ॥४८५॥
[3]त्र्यब्दाष्टमासमासार्धशेषयोरिह कालयोः । तृतीयतुर्ययोः सिद्धिः प्रसिद्धा वृषवीरयोः ॥४८६॥
वीरनिर्वाणकाले च पालकोऽत्राभिषिच्यते । लोकेऽवन्तिसुतो राजा प्रजानां प्रतिपालकः ॥४८७॥
षष्टिर्वर्षाणि तद्राज्यं ततो विषयभूभूजाम् । शतं च पञ्चपञ्चाशद्वर्षाणि तदुदीरितम् ॥४८८॥
चत्वारिंशत्पूरूढानां भूमण्डलमखण्डितम् । त्रिंशत्तु पुष्पमित्राणां षष्टिर्वस्वग्निमित्रयोः ॥४८९॥
शतं रासभराजानां नरवाहनमप्यतः । चत्वारिंशत्ततो द्वाभ्यां चत्वारिंशच्छतद्वयम् ॥४९०॥
भद्रबाणस्य तद्राज्यं गुप्तानां च शतद्वयम् । एकविंशश्च वर्षाणि कालविद्भिरुदाहृतम् ॥४९१॥
द्विचत्वारिंशदेवातः कल्किराजस्य राजता । ततोऽजितंजयो राजा स्यादिन्द्रपुरसंस्थितः ॥४९२॥
कौमार्ये मण्डलेशत्वे विजये राज्यसंयमे । चक्रयादीनां यथायोग्यमितः कालो निरूप्यते ॥४९३॥

क्रमसे बानबे वर्ष, चौबीस वर्ष, सत्तर वर्ष, अस्सी वर्ष, सौ वर्ष, तेरासी वर्ष, पंचानबे वर्ष, अठहत्तर वर्ष, बहत्तर वर्ष, साठ वर्ष और चालीस वर्ष है ॥४८२–४८३॥ छह कालोंमें-से जब तृतीय कालमें पल्यका आठवाँ भाग बाकी रहा था तब क्रमसे चौदह कुलकरों और उनके बाद वृषभदेवका जन्म हुआ था। शेष तीर्थंकरों, चक्रवर्तियों, बलभद्रों और नारायणोंका जन्म चौथे कालमें निश्चित है ॥४८४–४८५॥ जब तीसरे कालमें तीन वर्ष साढ़े आठ माह बाकी रहे थे तब भगवान् ऋषभदेवका मोक्ष हुआ था और जब चौथे कालमें तीन वर्ष साढ़े आठ माह शेष रहे थे तब महावीरका मोक्ष होगा ॥४८६॥

जिस समय भगवान् महावीरका निर्वाण होगा उस समय यहाँ अवन्तिपुत्र पालक नामके राजाका राज्याभिषेक होगा। वह राजा प्रजाका अच्छी तरह पालन करेगा और उसका राज्य साठ वर्ष तक रहेगा। उसके बाद तद्-तद् देशोंके राजाओंका एक सौ पचपन वर्ष तक राज्य होगा ॥४८७–४८८॥ फिर चालीस वर्ष तक पुरूढ राजाओंका अखण्ड भूमण्डल होगा। तदनन्तर तीस वर्ष तक पुष्पमित्रका, साठ वर्ष तक वसु और अग्निमित्रका, सौ वर्ष तक रासभ राजाओंका, फिर चालीस वर्ष तक नरवाहनका, फिर दो सौ बयालीस वर्ष तक कल्कि राजाका राज्य होगा। उसके बाद अजितंजय नामका राजा होगा जिसकी राजधानी इन्द्रपुर नगर होगी ॥४८९–४९२॥ अब इनके आगे चक्रवर्ती आदिकी, कुमार अवस्था, मण्डलेश्वर दशा, दिग्विजय, राज्य और संयममें जो काल व्यतीत हुआ है उसका यथायोग्य निरूपण किया जाता है ॥४९३॥

दोण्णि सया वीसजुदा वासाणं ताण पिंड परिमाणं ।
तेसु अतीदे णत्थि हु भरहे एक्कारसंगधरा ॥ १४८९ ॥
पढमो सुभद्दणामो जसभद्दो तह य होदि जसबाहू ।
तुरिमो य लोहणामो एदे आयारअंगधरा ॥ १४९० ॥
सेसेक्करसंगाणं चोद्दसपुव्वाणमेक्कदेसधरा ।
एक्कसयं अट्ठारसवासजुदं वासजुदं ताण परिमाणं ॥ १४९१ ॥
—ति. प. अधिकार ४.

१. साष्टसप्तभिः म. । २. सप्तभिः म. । ३. अष्टाष्टमास—म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्वलक्षाः कुमारेऽगुर्भरते सप्तसप्ततिः । वर्षाणां च सहस्रं तु मण्डलाधिपतौ मतम् ॥४९४॥
षष्टिर्वर्षसहस्राणि विजयो राज्यमूर्जितम् । एकपूर्वविहीनास्तु[1] पूर्वलक्षाः षडेव तु ॥४९५॥
अङ्गलक्षास्त्रयोऽशीतिर्नवतिर्नवभिः सह । सहस्राणि नवान्यानि शतानि नवतिर्नव ॥४९६॥
वर्षलक्षास्त्रयोऽशीतिस्त्रिंशन्नवसहस्रकैः । चक्रिसंयमकालस्तु पूर्वलक्षैव केवलाः[2] ॥४९७॥
पञ्चाशत्तु सहस्राणि पूर्वाणां पूर्वकालयोः । त्रिंशदब्दसहस्राणि विजयः सगरस्य तु ॥४९८॥
एकान्नसप्ततिर्लक्षा पूर्वाणां नवतिर्नव । सहस्राणि नवापीह शतानि नवतिर्नव ॥४९९॥
पूर्वाङ्गप्रमितिः पूर्वाः सप्ततिश्च[3] सहस्रकैः । राज्यं लक्षास्त्रयोऽशीतिः पूर्वलक्षैव संयमः ॥५००॥
पञ्चविंशतिसंख्याब्दसहस्राणि कुमारकः । मण्डलेशश्च मघवान् जये दशसहस्रवान् ॥५०१॥
तिस्रोऽस्य[4] वर्षलक्षास्तु नवत्यब्दसहस्रकैः । राज्यं तपस्तु पञ्चाशत्सहस्राणि तपस्विनः ॥५०२॥
सनत्कुमारकौमार्यं मण्डलेशत्वमेव च । सहस्राणि तु पञ्चाशद्विजयो दश[5] तानि वै ॥५०३॥
नवत्यब्दसहस्राणि राज्यं प्राज्यमुदीरितम् । वर्षलक्षास्ततस्तस्य संयमः संयमात्मनः ॥५०४॥
शान्तेर्माण्डलिकत्वे तु[6] पञ्चविंशतिरेव तु । सहस्राण्यष्टशत्येव विजये गदितं परम् ॥५०५॥

पहले भरत चक्रवर्तीका आयुकाल चौरासी लाख पूर्वका था, उसमें सतहत्तर लाख पूर्व तो कुमार कालमें बीते, एक हजार वर्ष मण्डलेश्वर अवस्थामें व्यतीत हुए, साठ हजार वर्ष तक दिग्विजय किया, एक पूर्व कम छह लाख पूर्व चक्रवर्ती होकर राज्य किया तथा एक लाख पूर्व तेरासी लाख निन्यानबे हजार नौ सौ निन्यानबे पूर्वांग और तेरासी लाख नौ हजार तीस वर्ष पर्यन्त संयमी तथा केवली रहे* ॥४९४–४९७॥

दूसरे सगर चक्रवर्तीकी आयु बहत्तर लाख पूर्व थी उसमें पचास हजार लाख पूर्व तो कुमारकालमें बीते, इतने ही मण्डलेश्वर अवस्थामें व्यतीत हुए, तीस हजार वर्ष दिग्विजयमें गये, उनहत्तर† लाख सत्तर हजार पूर्व, निन्यानबे हजार नौ सौ निन्यानबे पूर्वांग और तेरासी लाख वर्ष चक्रवर्ती होकर राज्य किया और एक लाख पूर्व तक संयमी रहे ॥४९८–५००॥

तीसरे मघवा चक्रवर्तीकी कुल आयु पाँच लाख वर्षकी थी। उसमें पचीस हजार वर्ष कुमारकालमें, पचीस हजार वर्ष माण्डलीक अवस्थामें, दस हजार वर्ष दिग्विजयमें, तीन लाख नब्बे हजार वर्ष चक्रवर्ती होकर राज्यकार्यमें और पचास हजार वर्ष संयमी अवस्थामें व्यतीत हुए ॥५०१—५०२॥

चौथे सनत्कुमार चक्रवर्तीकी कुल आयु तीन लाख वर्षकी थी। उसमें पचास हजार वर्ष कुमारकालमें, पचास हजार वर्ष माण्डलीक अवस्थामें, दस हजार वर्ष दिग्विजयमें, नब्बे हजार वर्ष चक्रवर्ती होकर राज्यके उपभोगमें और एक लाख वर्ष संयमी अवस्थामें व्यतीत हुए ॥५०३—५०४॥

पाँचवें शान्तिनाथ चक्रवर्तीकी कुल आयु एक लाख वर्षकी थी, उसमें पचीस हजार वर्ष कुमार अवस्थामें, पच्चीस हजार वर्ष माण्डलीक अवस्थामें, आठ सौ वर्ष दिग्विजयमें बीते

१. एकपूर्वाङ्गहीनास्तु म. । २. केवलं क. । ३. सप्तसप्तसहस्रकैः क., सप्तत्यब्दसहस्रकैः ख. । ४. तिस्रस्तु क. ङ. । ५. सहस्राणि । ६. तु शब्दात् कौमार्ये (क. टि.) ।

* तिलोयपण्णत्तिमें चौरासी लाख पूर्व कुल आयु, सतहत्तर लाख पूर्व कुमारकाल, एक हजार वर्ष मण्डलेश्वर राजा, साठ हजार वर्ष दिग्विजय, इकसठ हजार वर्ष कम छह लाख पूर्व चक्रवर्ती होकर राज्यकाल और एक लाख पूर्व संयमकाल बतलाया है। †. तिलोयपण्णत्तिमें चक्रवर्ती होकर राज्य करनेका काल तीस हजार वर्ष कम सत्तर लाख पूर्व बतलाया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुन्थोर्मण्डलिकत्वे हि त्रिसहस्रैस्तु विंशतिः । पञ्चाशत्सप्तशत्यामा षट्शती विजयः पुनः ॥५०६॥
अरमाण्डलिकत्वेऽपि सहस्राण्येकविंशतिः । चतुःशतानि विजयः शेषः प्रागेव भाषितम् ॥५०७॥
सुभौमस्य सहस्राणि पञ्च कौमार्यमिष्यते । विजयः पञ्चशत्येव प्रचण्डस्य कुमण्डले ॥५०८॥
द्वापष्ट्यब्दसहस्राणि तथा पञ्चशतानि च । बालत्वे गूढवृत्तस्य तस्य राज्यमिहोर्जितम् ॥५०९॥
शतानि पञ्च कौमार्यं तथा मण्डलनाथता । महापद्मस्य विजयो वर्षाणां तु शतत्रयम् ॥५१०॥
अष्टादश सहस्राणि राज्यं सप्त शतान्यपि । दशवर्षसहस्राणि संयमः संयमार्थिनः ॥५११॥
हरिषेणस्य कौमार्यं त्रिशती पञ्चविंशतिः । पञ्चाशता तु विजयस्तस्य वर्षशतं मतम् ॥५१२॥
पञ्चविंशतिसंख्यानि सहस्राणि तथा शतम् । राज्यं च पञ्चसप्तत्या पञ्चाशत्त्रिशती तपः ॥५१३॥

और शेष* विवरण तीर्थंकरोंके वर्णनके समयमें कहा जा चुका है ॥५०५॥

छठे कुन्थुनाथ चक्रवर्तीकी कुल आयु पंचानबे हजार वर्षकी थी, उसमें तेईस हजार सात सौ पचास वर्ष कुमारकालमें, इतने ही माण्डलिक अवस्थामें और छह सौ वर्ष दिग्विजय कालमें व्यतीत हुए तथा शेष वर्णन पहले कर चुके† हैं ॥५०६॥

सातवें अरनाथ चक्रवर्तीकी कुल आयु पचासी हजार वर्षकी थी। उसमें इक्कीस हजार वर्ष कुमार अवस्थामें, इतने ही माण्डलिक अवस्थामें और चार सौ वर्ष दिग्विजयमें व्यतीत हुए। शेष वर्णन पहले किया जा चुका‡ है ॥५०७॥

आठवें सुभौम चक्रवर्तीकी कुल आयु पचासी हजार वर्षकी थी, उसमें पाँच हजार वर्ष कुमार अवस्थामें, पाँच सौ वर्ष दिग्विजयमें और साढ़े बासठ हजार वर्ष चक्रवर्ती होकर राज्य अवस्थामें बीते। ये परशुरामके भयसे आश्रममें पले थे इसीलिए मण्डलीक पद प्राप्त नहीं कर सके। ये पृथिवी मण्डलपर अतिशय तीक्ष्ण प्रकृतिके थे तथा अज्ञानी दशामें रहनेके कारण संयम धारण नहीं कर सके और मरकर सातवें नरक §गये ॥५०८-५०९॥

नौवें महापद्म चक्रवर्तीकी आयु तीस हजार वर्षकी थी। उसमें पाँच सौ वर्ष कुमार अवस्थामें, पाँच सौ वर्ष मण्डलीक अवस्थामें, तीन सौ वर्ष दिग्विजयमें, अठारह हजार सात सौ वर्ष चक्रवर्ती होकर राज्य अवस्थामें और दस हजार वर्ष संयमी अवस्थामें व्यतीत हुए हैं ॥५१०-५११॥

दसवें हरिषेण चक्रवर्तीकी आयु छब्बीस हजार वर्षकी थी। उसमें तीन सौ पचीस वर्ष कुमार अवस्थामें, एक सौ पचास वर्ष दिग्विजयमें, पचीस हजार एक सौ पचहत्तर वर्ष चक्रवर्ती होकर राज्य अवस्थामें और तीन सौ पचास वर्ष संयमी अवस्थामें व्यतीत

* शान्तिनाथने चौबीस हजार दो सौ वर्ष तक चक्रवर्ती होकर राज्य भोगा, सोलह वर्ष तक संयमी रहे और सोलह वर्ष कम पचीस हजार वर्ष तक केवली रहे।

† कुन्थुनाथने तेईस हजार एक सौ पचास वर्ष तक चक्रवर्ती होकर राज्य किया, सोलह वर्ष संयमी रहे और तेईस हजार सात सौ चौंतीस वर्ष तक केवली रहे।

‡ अरनाथने इक्कीस हजार छह सौ वर्ष चक्रवर्ती होकर राज्य भोगा, सोलह वर्ष संयमी रहे और सोलह वर्ष कम इक्कीस हजार वर्ष केवली रहे।

§ तिल्लोयपण्णत्तिमें सुभौम चक्रवर्तीकी आयु साठ हजार वर्षकी बतायी है। जिसमें पाँच हजार वर्ष कुमारकालमें, पाँच हजार वर्ष मण्डलीक अवस्थामें, पाँच सौ वर्ष दिग्विजयमें और साढ़े उनचास हजार वर्ष राज्य अवस्थामें बीते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जयसेनस्य कौमार्यं त्रिशती मण्डलेशिता । विजयस्तु शतं राज्यं सहस्रं नवशत्यपि ॥५१४॥
चतुःशती तपस्तस्य ब्रह्मदत्तकुमारता । अष्टाविंशतिवर्षाणि षट्पञ्चाशत्समण्डली ॥५१५॥
विजयः षोडशाब्दानि षट् शतानि तु राजता । ब्रह्मदत्तस्य विज्ञेया केशवानां तु कथ्यते ॥५१६॥
त्रिपृष्ठस्य सहस्राणि कौमार्ये पञ्चविंशतिः । विज्ञेयोऽब्दसहस्रे तु विजयः स्नेहवाहिनः ॥५१७॥
वर्षलक्षास्त्रयोऽशीतिसहस्राणि तु सप्ततिः । चतुर्भिरधिका तस्य राज्यं राजकराजितम् ॥५१८॥
द्विपृष्ठस्यापि कौमार्यं मण्डलैश्यमपि स्फुटम् । सहस्राणि समाख्यातं प्रत्येकं पञ्चविंशतिः ॥५१९॥
विजयोऽब्दशतं लक्षा राज्यं तस्यैकसप्ततिः । चत्वारिंशत्सहस्राणि नवतिर्नवशत्यपि ॥५२०॥
द्वादशैव सहस्राणि पञ्चशत्या स्वयंभुवः । कौमार्यं मण्डलेशत्वं विजयो नवतिः पुनः ॥५२१॥
एकान्नषष्टिलक्षाश्च चतुःसप्ततिरेव च । सहस्राणि शतै राज्यं नवभिर्दश पञ्चकैः[1] (?) ॥५२२॥
पुरुषोत्तमकौमार्यं मतं सप्त शतानि तु । अशीतिर्विजयस्त्रीणि शतान्यब्दसहस्रकम् ॥५२३॥
मण्डलेशत्वमेतद्धि त्रिंशल्लक्षा विनैककम् । नवतिश्च सहस्राणि सप्तभिर्नवशत्यपि ॥५२४॥

हुए* ॥५१२-५१३॥

ग्यारहवें जयसेन चक्रवर्तीकी कुल आयु तीन हजार वर्षकी थी। उसमें तीन सौ वर्ष कुमार अवस्थामें, तीन सौ वर्ष मण्डलीक अवस्थामें, सौ वर्ष दिग्विजयमें, एक हजार नौ सौ वर्ष चक्रवर्ती होकर राज्य अवस्थामें और चार सौ वर्ष संयम अवस्थामें व्यतीत हुए।

और बारहवें ब्रह्मदत्त चक्रवर्तीकी आयु सात सौ वर्षकी थी। उसमें अट्ठाईस वर्ष कुमार अवस्थामें, छप्पन वर्ष मण्डलीक अवस्थामें, सोलह वर्ष दिग्विजयमें और छह सौ वर्ष राज्य अवस्थामें व्यतीत हुए। ये संयम धारण नहीं कर सके और मरकर सातवें नरक गये। इस प्रकार चक्रवर्तियोंकी आयुका विवरण कहा और नारायणोंकी आयुका विवरण कहा जाता है ॥५१४-५१६॥

स्नेहको धारण करनेवाले त्रिपृष्ठ नारायणकी कुल आयु चौरासी लाख वर्षकी थी। उसमें पचीस हजार वर्ष कुमार अवस्थामें, एक हजार वर्ष दिग्विजयमें और तेरासी लाख चौहत्तर हजार वर्ष राज्य अवस्थामें व्यतीत हुए† ॥५१७-५१८॥

द्विपृष्ठ नारायणकी कुल आयु बहत्तर लाख वर्षकी थी। उसमें पचीस-पचीस हजार वर्ष कुमार अवस्था तथा मण्डलीक अवस्थामें, सौ वर्ष दिग्विजयमें और इकहत्तर लाख उनचास हजार नौ सौ वर्ष पर्यन्त राज्य किया ॥५१९-५२०॥

स्वयम्भू नारायणकी कुल आयु साठ लाख वर्षकी थी। उसमें बारह हजार पाँच सौ वर्ष कुमार अवस्थामें, इतने ही मण्डलीक अवस्थामें, नब्बे वर्ष दिग्विजयमें और उनसठ लाख चौहत्तर हजार नौ सौ दस वर्ष राज्य अवस्थामें व्यतीत हुए ॥५२१-५२२॥

पुरुषोत्तम नारायणकी कुल आयु तीस लाख वर्षकी थी। उसमें सात सौ वर्ष कुमार अवस्थामें, एक हजार तीन सौ वर्ष मण्डलीक अवस्थामें, अस्सी वर्ष दिग्विजयमें और उनतीस

---

१. नवभिर्दशवर्षकैः (ङ. पुस्तके टिप्पण्यां पाठान्तरम्)।

*. तिलोयपण्णत्तिमें हरिषेण चक्रवर्तीकी आयु दस हजार वर्षकी बतायी है। उसमें तीन सौ पचीस कुमार अवस्थामें, इतने ही मण्डलीक अवस्थामें, एक सौ पचास दिग्विजयमें, आठ हजार आठ सौ पचास वर्ष राज्य अवस्थामें और तीन सौ पचास वर्ष संयमी अवस्थामें बीते हैं।

†. तिलोयपण्णत्तिमें पचीस हजार वर्ष कुमार अवस्थामें, पचीस हजार वर्ष मण्डलीक अवस्थामें, एक हजार वर्ष दिग्विजयमें और शेष तेरासी लाख उनचास हजार वर्ष राज्य अवस्थामें व्यतीत हुए ऐसा लिखा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विंशतिश्चैव वर्षाणि राज्यमत्यन्तमूर्जितम् । पुरुषोत्तमतां भूमौ भूम्ना तस्येह बिभ्रतः ॥५२५॥
कौमार्यं त्रिशती पञ्चविंशत्या शतमीरितम् । मण्डलैश्यं हि विजयः सप्ततिः प्रतिपादितः ॥५२६॥
नवलक्षा सहस्राणि नवतिर्नव च स्मृता । राज्यं पुरुषसिंहस्य पञ्चभिः पञ्चशत्यपि ॥५२७॥
पञ्चाशता शते द्वे तु कौमार्यं मण्डलेशता । विजयः षष्टिवर्षाणि विजयोर्जिततेजसः ॥५२८॥
चत्वारिंशच्च वर्षाणि स्याच्चत्वारि शतान्यपि । चतुःषष्टिसहस्राणि पुण्डरीकस्य राजता ॥५२९॥
शते दत्तस्य कौमार्यं पञ्चाशत्कालयोर्द्वयम् । एकत्रिंशत्सहस्राणि सप्तशत्यापि राजता ॥५३०॥
शतं लक्ष्मणकौमार्यं चत्वारिंशद्विजेतृता । एकादशसहस्राष्टशतषष्ट्यब्दराजता ॥५३१॥
कुमारकालः कृष्णस्य षोडशाब्दानि षट्युता । पञ्चाशन्मण्डलेशत्वं विजयोऽष्टाब्दकं स्फुटम् ॥५३२॥
शतानि नव विंशत्या कृष्णराजस्य संमितिः । तथैकादशरुद्राणां कालसंख्या निरूप्यते ॥५३३॥
तीर्थे भीमावलिर्जातो वृषभस्याजितस्य तु । जितशत्रुरिति ख्यातो रुद्राख्यः सुविधेः पुनः ॥५३४॥
विश्वानलस्तु दशमे श्रेयसः सुप्रतिष्ठकः । अचलो वासुपूज्यस्य पुण्डरीकस्तु वैमले ॥५३५॥

लाख सन्तानबे हजार नौ सौ बीस वर्ष पृथिवीतलपर नारायणपद धारण करते हुए राज्य अवस्थामें व्यतीत हुए ॥५२३–५२५॥

पुरुषसिंह नारायणकी कुल आयु दस लाख वर्षकी थी। उसमें तीन सौ वर्ष कुमार अवस्थामें, एक सौ पचीस वर्ष मण्डलीक अवस्थामें, सत्तर वर्ष दिग्विजयमें और नौ लाख निन्यानबे हजार पाँच सौ पाँच वर्ष राज्य अवस्थामें व्यतीत हुए* ॥५२६–२२७॥

पुण्डरीक नारायणकी कुल आयु पैंसठ हजार वर्षकी थी। उनमें दो सौ पचास वर्ष कुमार अवस्थामें, इतने ही मण्डलीक अवस्थामें, साथ वर्ष दिग्विजयमें, और चौंसठ हजार चार सौ चालीस वर्ष राज्य अवस्थामें व्यतीत हुए ॥५२८–५२९॥

दत्त नारायणकी कुल आयु बत्तीस हजार वर्षकी थी। उसमें सौ वर्ष कुमार अवस्थामें पचास वर्ष मण्डलीक अवस्थामें, पचास वर्ष दिग्विजयमें और इकतीस हजार सात सौ वर्ष राज्य अवस्थामें व्यतीत हुए ॥५३०॥

लक्ष्मण नारायणकी कुल आयु बारह हजार वर्षकी थी। उसमें सौ वर्ष कुमार अवस्थामें, चालीस वर्ष दिग्विजयमें और ग्यारह हजार आठ सौ साठ वर्ष राज्य अवस्थामें व्यतीत† हुए ॥५३१॥

कृष्ण नारायणकी कुल आयु एक हजार वर्षकी है। उसमें सोलह वर्ष कुमार अवस्थामें, छप्पन वर्ष मण्डलीक अवस्थामें, आठ वर्ष दिग्विजयमें और नौ सौ बीस वर्ष राज्य अवस्थामें व्यतीत होंगे। इस प्रकार नारायणोंके कालका वर्णन किया। अब ग्यारह रुद्रोंके काल और संख्याका वर्णन करते हैं ॥५३२–५३३॥

रुद्र ग्यारह होते हैं। उसमें भगवान् वृषभदेवके तीर्थमें भीमावलि, अजितनाथके तीर्थमें जितशत्रु, पुष्पदन्तके तीर्थमें रुद्र, शीतलनाथके तीर्थमें §विश्वानल, श्रेयांसनाथके तीर्थमें सुप्रतिष्ठक, वासुपूज्यके तीर्थमें अचल, विमलनाथके तीर्थमें पुण्डरीक, अनन्तनाथके तीर्थमें

---

*. ति. प. में पुरुषसिंह नारायणका मण्डलीककाल १२५० वर्ष तक और राज्यकाल नौ लाख अंठानबे हजार तीन सौ अस्सी वर्ष बतलाया है।

†. ति. प. में लक्ष्मणका मण्डलीककाल तीन सौ वर्ष और राज्यकाल ग्यारह हजार पाँच सौ साठ वर्ष बतलाया है।

§. ति. प. में 'वैश्वानर' नाम आया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अजितन्धरोऽनन्तस्य धर्मस्याजितनाभिकः । पीठाख्यः शान्तितीर्थेऽभूत् सुतो वीरस्य सत्यकेः ॥५३६॥
भीमावलेस्तनूत्सेधः पञ्चचापशतान्यतः । तान्यर्धपञ्चमान्येकं दशहानिस्तु पञ्चसु ॥५३७॥
अष्टाविंशतिरन्यस्य चतुर्विंशतिरप्यतः । सप्तैवारत्नयोऽन्त्यस्य वपुरुत्सेध इष्यते ॥५३८॥
पूर्वाण्यायुस्त्रयोऽशीतिलक्षास्त्वेकसप्ततिः । द्वे लक्षे चैकलक्षा च [1]लक्ष्यालक्ष्यविचक्षणैः ॥५३९॥
लक्षाश्चतुरशीतिश्च षष्टिः पञ्चाशदेव च । चत्वारिंशच्च वर्षाणां विंशतिर्लक्षया[2] क्रमात् ॥५४०॥
आयुरेकादशस्यापि वर्षाण्येकान्नसप्ततिः । अभिन्नदशपूर्वाणां रुद्राणां रौद्रकर्मणाम् ॥५४१॥
त्रयः कालास्तु सर्वेषां रुद्राणां क्रमशः स्थिताः । कौमारः संयमोपेतो गृहीतोज्झितसंयमः ॥५४२॥
कालस्त्रिभागशेषेण चतुर्णां संयमाधिकः । समा द्वयोस्त्रयोऽप्यन्ये कौमाराधिक इष्यते ॥५४३॥
संयमाधिक एकस्य कौमारोऽन्यस्य साधिकः । दशमस्यापि रुद्रस्य संयमाधिक एव सः ॥५४४॥
वर्षाणि सप्त कौमार्ये विंशतिः संयमेऽष्टभिः । एकादशस्य रुद्रस्य चतुस्त्रिंशदसंयमे ॥५४५॥
द्वयोस्तु सप्तमी पृथ्वी पञ्चानां षष्ठ्यधिष्ठितिः । एकस्य पञ्चमी भूमिश्चतुर्थी तु द्वयोस्ततः ॥५४६॥
तृतीयान्त्यस्य निर्दिष्टा यथोद्दिष्टा इमाः पुनः । [3]भूर्यसंयमभाराणां रुद्राणां जन्मभूमयः ॥५४७॥

अजितन्धर, धर्मनाथके तीर्थमें अजितनाभि, शान्तिनाथके तीर्थमें पीठ नामका रुद्र हुआ है तथा महावीरके तीर्थमें सत्यकिपुत्र रुद्र होगा ॥५३४–५३६॥

भीमावलीके शरीरकी ऊँचाई पाँच सौ धनुष, जितशत्रुकी साढ़े चार सौ धनुष, रुद्रकी सौ धनुष, विश्वानलकी नब्बे धनुष, सुप्रतिष्ठककी अस्सी धनुष, अचलकी सत्तर धनुष, पुण्डरीककी साठ धनुष, अजितन्धरकी पचास धनुष, अजितनाभिकी अट्ठाईस धनुष, पीठकी चौबीस धनुष, और सत्यकिपुत्रकी सात धनुष मानी जाती है ॥५३७–५३८॥

इन रुद्रोंकी आयु क्रमसे तेरासी लाख पूर्व, इकत्तर लाख पूर्व, दो लाख पूर्व, एक लाख पूर्व, चौरासी लाख वर्ष, साठ लाख वर्ष, पचास लाख वर्ष, चालीस लाख वर्ष, बीस लाख वर्ष, दस लाख वर्ष और उनहत्तर वर्ष है। ये सभी रुद्र दश पूर्वके पाठी होते हैं और रौद्र कार्यके करनेवाले हैं ॥५३९–५४१॥

इन सभी रुद्रोंके क्रमसे तीन काल होते हैं—१ कुमारकाल, २ संयमकाल और ३ गृहीत संयमको छोड़कर असंयमी होनेका काल ॥५४२॥ इनमें चारका संयमकाल त्रिभाग शेषसे कुछ अधिक था अर्थात् कुमारकाल और असंयमकालसे कुछ अधिक था, दोके तीनों काल बराबर थे, सातवेंका कुमारकाल, आठवेंका असंयमकाल, नौवेंका कुमारकाल, और दसवेंका संयमकाल अधिक था। ग्यारहवें रुद्रका कुमारकाल सात वर्षका, संयमकाल अट्ठाईस वर्षका और असंयमकाल चौंतीस वर्षका होगा† ॥५४३–५४५॥

इनमें प्रारम्भके दो रुद्र सातवीं पृथिवी, पाँच रुद्र छठी पृथिवी, एक पाँचवीं पृथिवी और दो चौथी पृथिवी गये हैं तथा अन्तिम रुद्र तीसरी भूमिमें जावेगा। उन रुद्रोंके जीवनमें असंयमका भार अधिक होता है। इसलिए उन्हें नरकगामी होना पड़ता है ॥५४६–५४७॥

१. ज्ञातव्या (ङ. टि.)। २. 'दशलक्षाप्रमितम्' इति सर्वहस्तलिखितप्रतिषु 'लक्षया' इत्यस्योपरि अंकैर्लिखितम्। तेसीदी द्वणिसत्तरि दोण्णि एक्कं च पुव्वलक्खाणि। चुलसीदी सट्ठिपण्णा चालिस वस्साणि लक्खाणि ॥१४४६॥ बीस दस चेव लक्खा वासा एक्कूणसत्तरी कमसो। एक्कारसरुद्दाणं पमाणमउस्स रिट्ठिं ॥१४४७॥ ३. तूर्यसंयम—ख, तूर्य–ङ चतुर्थव्रतधारिणां नारदानाम् (ङ. टि.)।

† यह विषय ति. प. में तीनों कालोंके अलग-अलग अंक देकर स्पष्ट किया गया है (चतुर्थ अधिकार गाथा १४४८ से १४६७ गाथा तक)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भीमश्चाथ महाभीमो रुद्रनामा तृतीयकः । महारुद्रोऽथ कालश्च महाकालश्चतुर्मुखः ॥५४८॥
नरवक्त्रोन्मुखाख्यौ द्वौ नवैते नारदाः स्मृताः । वासुदेवसमानायुःस्थितिस्तेषां प्रजायते ॥५४९॥
कलहे प्रीतिसंयुक्ताः कदाचिद्धर्मवत्सलाः । सिंहानन्दवशास्त्वेते महाभव्या जिनानुगाः ॥५५०॥
वर्षाणां षट्शतीं त्यक्त्वा पञ्चाग्रं मासपञ्चकम् । मुक्तिं गते महावीरे शकराजस्ततोऽभवत् ॥५५१॥
मुक्तिंगते महावीरे प्रतिवर्षसहस्रकम् । एकैको जायते कल्की जिनधर्मविरोधकः ॥५५२॥
इहास्यामवसर्पिण्यां यथा तीर्थकरादयः । उत्सर्पिण्यां भविष्यन्त्यां भविष्यन्ति तथा परे ॥५५३॥
भविष्यद्दुःषमाशेषे सहस्रपरिमाणके । चतुर्दश भविष्यन्ति प्रागिमे कुलकारिणः ॥५५४॥
कनत्कनकसंकाशः कनकः कनकप्रभः । त्रयः कनकपूर्वाः स्युस्ते राजध्वजपुङ्गवाः ॥५५५॥
नलिनीदलसंकाशो नलिनो नलिनप्रभः । नलिनोपपदास्त्वन्ये ते राजध्वजपुङ्गवाः ॥५५६॥
ततः पद्मप्रभो ज्ञेयः पद्मराजस्ततः परः । पद्मध्वजश्च बोद्धव्यः पद्मपुङ्गव एव च ॥५५७॥
तीर्थकृच्च महापद्मः सुरदेवो जिनाधिपः । सुपार्श्वनामधेयोऽन्यो यथार्थश्च स्वयंप्रभः ॥५५८॥
सर्वात्मभूत इत्यन्यो देवदेवः प्रभोदयः । उदङ्कः प्रश्नकीर्तिश्च जयकीर्तिश्च सुव्रतः ॥५५९॥
अरश्च पुण्यमूर्तिश्च निष्कषायो जिनेश्वरः । विपुलो निर्मलाभिख्यश्चित्रगुप्तो परः स्मृतः ॥५६०॥

भीम, महाभीम, रुद्र, महारुद्र, काल, महाकाल, चतुर्मुख, नरवक्त्र और उन्मुख, ये नौ नारद माने गये हैं। उनकी आयु नारायणोंकी आयुके बराबर होती है तथा वे नारायणोंके समय ही होते हैं। वे कलहमें प्रीतिसे युक्त होते हैं, कदाचित् धर्मसे भी स्नेह रखते हैं, हिंसामें आनन्द मानते हैं तथा महाभव्य और जिनेन्द्र भगवान्के अनुगामी होते हैं ॥५४८–५५०॥

भगवान् महावीरके मोक्ष जानेके पश्चात् छह सौ पांच वर्ष पाँच मास बीत जानेपर राजा शक* होगा और हजार-हजार वर्ष बाद एक-एक कल्की राजा होता रहेगा जो जैनधर्मका विरोधी होगा ॥५५१–५५२॥ जिस प्रकार इस अवसर्पिणीमें तीर्थंकर आदि हुए हैं उसी प्रकार आगे आनेवाली उत्सर्पिणीमें भी दूसरे-दूसरे तीर्थंकर आदि होंगे ॥५५३॥ जब आनेवाले दुःषमा नामक कालमें एक हजार शेष रह जावेंगे तब पहले क्रमसे ये चौदह कुलकर होंगे—१ देदीप्यमान स्वर्णके समान कान्तिवाला कनक, २ कनकप्रभ, ३ कनकराज, ४ कनकध्वज, ५ कनकपुंगव, ६ कमलिनीके पत्तेके समान वर्णवाला नलिन, ७ नलिनप्रभ, ८ नलिनराज, ९ नलिनध्वज, १० नलिनपुंगव, ११ पद्मप्रभ, १२ पद्मराज, १३ पद्मध्वज और १४ पद्मपुंगव ॥५५४–५५७॥

कुलकरोंके बाद क्रमसे निम्नलिखित चौबीस तीर्थंकर होंगे—१ महापद्म, २ सुरदेव, ३ सुपार्श्व, ४ स्वयम्प्रभ, ५ सर्वात्मभूत, ६ देवदेव, ७ प्रभोदय, ८ उदंक, ९ प्रश्नकीर्ति, १० जयकीर्ति, ११ सुव्रत, १२ अर, १३ पुण्यमूर्ति, १४ निष्कषाय, १५ विपुल, १६ निर्मल, १७ चित्रगुप्त,

---

* शकराजाकी उत्पत्तिके विषयमें ति. प. में इस मतके सिवाय निम्नलिखित ३ मतोंका उल्लेख और किया गया है—(१) वीर जिनेन्द्रकी मुक्ति होनेके बाद चार सौ इकसठ वर्ष प्रमाणकाल बीत जानेपर शक राजा उत्पन्न हुआ। (२) नौ हजार सात सौ पचासी वर्ष और पाँच मास बीत जानेपर (३) चौदह हजार सात सौ तिरानबे वर्ष बीत जानेपर। गाथा निम्न प्रकार हैं—वीरजिणे सिद्धिगदे चऊसद इगि सट्ठिवास परिमाणे। कालम्मि अदिक्कंते उप्पण्णो एत्थ शकराओ ॥१४९६॥ अहवा तीरे सिद्धे सहस्सणवकम्मि सगसयब्भहिये। पणसीदिम्मि यतीदे षणमासे सकणिओ जादो ॥१४९७॥ चोद्दस सहस्स सगसय तेणउदी वासकाल विच्छेदे। वीरेसरसिद्धीदो उप्पणो सगणिओ अहवा ॥१४९८॥ णिव्वाणे वीरजिणे छव्वास सदेसु पंचवरिसेसुं। षणमासेसु गरेसुं संजादो सगणिओ अहवा ॥१४९९॥ ति. प. च. अ.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाधिगुप्तनामान्यः स्वयंभूरनिवर्तकः । जयो विमलसंज्ञश्च [1]दिव्यपाद इतीरितः ॥५६१॥
चरमोऽनन्तवीर्योऽमी वीर्यधैर्यादिसद्गुणाः । चतुर्विंशतिसंख्याना भविष्यत्तीर्थकारिणः ॥५६२॥
भरतो दीर्घदन्तश्च जन्मदन्तश्च चक्रिणः । गूढदत्तोऽपरो नाम्ना श्रीषेण इति विश्रुतः ॥५६३॥
श्रीभूतिरितिभूतोऽन्यः श्रीकान्तः पद्मनामकः । महापद्मस्तथैवान्यश्चित्रवाहनसंज्ञकः ॥५६४॥
विमुक्तमलसंपर्को नाम्नः विमलवाहनः । अरिष्टसेन इत्येते चक्रिणो द्वादशोदिताः ॥५६५॥
नन्दी च नन्दिमित्रश्च नन्दिनो नन्दिभूतिकः । महातिबलनामानौ बलभद्रश्च सप्तमः ॥५६६॥
द्विपृष्ठश्च त्रिपृष्ठश्च वासुदेवा नवैव ते । भविष्यन्त्यञ्जनच्छायाश्छायाछन्नदिगन्तराः ॥५६७॥
चन्द्रश्चापि महाचन्द्रस्तथा चन्द्रधरश्रुतिः । सिंहचन्द्रो हरिश्चन्द्रः श्रीचन्द्रः पूर्णचन्द्रकः ॥५६८॥
सुचन्द्रो बालचन्द्रश्च नवैते चन्द्रसप्रभाः । बलाः प्रतिद्विषश्चान्ये नव श्रीहरिकण्ठकौ ॥५६९॥
नीलकण्ठाश्वकण्ठौ च सुकण्ठशिखिकण्ठकौ । अश्वग्रीवहयग्रीवौ मयूरग्रीव इत्यपि ॥५७०॥
प्रमदः संमदो हर्षः प्रकामः कामदो भवः । हरो मनोभवो मारः कामो रुद्रस्तथाङ्गजः ॥५७१॥
भव्याः कतिपयैरेव तेऽपि सेत्स्यन्ति जन्मभिः । रत्नत्रयपवित्राङ्गाः सन्तः सन्तो नरोत्तमाः ॥५७२॥

वसन्ततिलकावृत्तम्

अन्तर्मुहूर्तमपि लब्धविमुक्तमेकं सम्यक्त्वरत्नमचिरेण विमुक्तिहेतुः ।
रत्नत्रयस्य तु [2]पवित्रतमस्य लोके साक्षाद्भवप्रमथनस्य किमत्र वाच्यम् ॥५७३॥

---

१८ समाधिगुप्त, १९ स्वयम्भू, २० अनिवर्तक, २१ जय, २२ विमल, २३ दिव्यपाद और २४ अनन्तवीर्य । ये सभी वीर्य धैर्य आदि सद्गुणोंसे सहित होते हैं ॥५५८–५६२॥

१ भरत, २ दीर्घदन्त, ३ जन्मदत्त, ४ गूढ़दत्त, ५ श्रीषेण, ६ श्रीभूति, ७ श्रीकान्त, ८ पद्मनामक, ९ महापद्म, १० चित्रवाहन, ११ मलके सम्पर्कसे रहित विमलवाहन और १२ अरिष्टसेन ये होनेवाले बारह चक्रवर्ती कहे गये हैं ॥५६३–५६५॥

१ नन्दी, २ नन्दिमित्र, ३ नन्दिन, ४ नन्दिभूतिक, ५ महाबल, ६ अतिबल, ७ बलभद्र, ८ द्विपृष्ठ और ९ त्रिपृष्ठ ये नौ भविष्यत्कालमें होनेवाले नारायण हैं । ये अंजनके समान कान्तिके धारक होते हैं तथा अपनी कान्तिसे दिशाओंके अन्तरालको व्याप्त करते हैं ॥५६६–५६७॥

१ चन्द्र, २ महाचन्द्र, ३ चन्द्रधर, ४ सिंहचन्द्र, ५ हरिश्चन्द्र, ६ श्रीचन्द्र, ७ पूर्णचन्द्र, ८ सुचन्द्र और ९ बालचन्द्र ये नौ आगामीकालमें होनेवाले बलभद्र हैं । ये सभी चन्द्रमाके समान कान्तिके धारक होते हैं ।

१ श्रीकण्ठ, २ हरिकण्ठ, ३ नीलकण्ठ, ४ अश्वकण्ठ, ५ सुकण्ठ, ६ शिखिकण्ठ, ७ अश्वग्रीव, ८ हयग्रीव और ९ मयूरग्रीव ये नौ प्रतिनारायण होंगे ॥५६८–५७०॥

१ प्रमद, २ सम्मद, ३ हर्ष, ४ प्रकाम, ५ कामद, ६ भव, ७ हर, ८ मनोभव, ९ मार, १० काम और ११ अंगज ये ग्यारह रुद्र होंगे । ये सब भव्य होंगे तथा कुछ ही भवोंमें मोक्ष प्राप्त करेंगे । इनके शरीर भी रत्नत्रयसे पवित्र होंगे तथा उत्तम महापुरुष होंगे ॥५७१–५७२॥

एक सम्यग्दर्शनरूपी रत्न अन्तर्मुहूर्तके लिए भी प्राप्त होकर छूट जाता है तो वह भी शीघ्र ही मोक्षप्राप्तिका कारण होता है, फिर संसारमें अतिशय पवित्र एवं साक्षात् भवभ्रमणको नष्ट करनेवाले रत्नत्रयकी तो बात ही क्या है ? ॥५७३॥

---

१. दिव्यवाद म. । २. पवित्रितमस्य म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाक्यं त्रिकालविषयार्थनिरूपणार्थमाकर्ण्य कर्णसुखमित्थमिनस्य भूपाः ।
कृष्णादयो हरिरविप्रमुखाश्च देवा नत्वा जिनं स्वपदमीयुरुपात्ततत्त्वाः ॥५७४॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ त्रिषष्टिपुरुषजिनान्तरवर्णनो नाम षष्टितमः सर्गः ॥६०॥

□

इस प्रकार भगवान् नेमिनाथकी कर्णोंको सुख उपजानेवाली एवं त्रिकालविषयक पदार्थोंका वर्णन करनेवाली दिव्यध्वनि सुनकर कृष्ण आदि राजा तथा इन्द्र और सूर्य आदि देव, धर्मके यथार्थ तत्त्वको ग्रहण कर एवं नेमि जिनेन्द्रको नमस्कार कर अपने-अपने स्थानपर चले गये ॥ ५७४ ॥

इस प्रकार अरिष्टनेमिपुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें त्रेशठ शलाकापुरुषोंका चरित्र तथा तीर्थंकरोंके अन्तरालका वर्णन करनेवाला साठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥६०॥

□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकषष्टितमः सर्गः

आकूतं श्रेणिकस्याथ ज्ञात्वा गणभृदग्रणीः । वृत्तं गजकुमारस्य जगादेति जगन्नुतम् ॥१॥
श्रुत्वा गजकुमारोऽसौ जिनादिचरितं तथा । विमोच्य सकलान् बन्धून् पितृपुत्रपुरस्सरान् ॥२॥
संसारभीरुरासाद्य जिनेन्द्रं [1]प्रश्रयान्वितम् । गृहीत्वानुमतो दीक्षां तपः कर्तुं समुद्यतः ॥३॥
निरूपितास्तु याः कन्याः कुमाराय गजाय ताः । प्रभावत्यादयः सर्वा निर्वेदिन्यः प्रवव्रजुः ॥४॥
कुमारश्रमणस्याथ गजस्यैकान्तवर्तिनः । निशीथे प्रतिमास्थस्य सर्वद्वन्द्वसहस्य सः ॥५॥
सोमशर्मा सुतात्यागक्रोधाग्निकणदीपितः[2] । अदीदिपदुदाराग्निं शिरसि स्थिरचेतसः ॥६॥
दह्यमानशरीरोऽसौ शुक्लध्यानेन कर्मणाम् । अन्तं कृत्वा ययौ मोक्षमन्तकृत्केवली मुनिः ॥७॥
तस्य [3]देहमहं चक्रुः समुपेत्य सुरासुराः । यक्षकिन्नरगन्धर्वमहोरगपुरोगमाः ॥८॥
ज्ञात्वा तन्मरणं [4]दुःखाद् यादवा बहवस्तथा । दशार्हाश्च विहायान्त्यं दीक्षिता मोक्षकाङ्क्षिणः ॥९॥
देव्यः शिवादयो बह्व्यो देवकीं रोहिणीं विना । वसुदेवस्त्रियो विष्णोः कन्याश्चापि प्रवव्रजुः ॥१०॥
ततः [5]सुरनराभ्यर्च्यो नानाजनपदान् जिनः । विजहार महाभूत्या भव्यराजीं प्रबोधयन् ॥११॥
उदीच्यान्नृपशार्दूलान् मध्यदेशनिवासिनः । प्राच्यानपि प्रजायुक्तान् स धर्मे स्थापयन् बहून् ॥१२॥

अथानन्तर श्रेणिकका अभिप्राय जानकर गणधरोंके अधिपति श्री गौतम स्वामीने जगत्के द्वारा स्तुत गजकुमारका वृत्तान्त इस प्रकार कहना शुरू किया ॥ १ ॥ वे कहने लगे कि इस प्रकार गजकुमार, तीर्थंकर आदिका चरित्र सुनकर संसारसे भयभीत हो गया और पिता, पुत्र, आदि समस्त बन्धुजनोंको छोड़कर बड़ी विनयसे जिनेन्द्र भगवान्के समीप पहुँचा और उनसे अनुमति ले दीक्षा ग्रहण कर तप करनेके लिए उद्यत हो गया ॥ २–३ ॥ गजकुमारके लिए जो प्रभावती आदि कन्याएँ निश्चित की गयी थीं उन सभीने संसारसे विरक्त हो दीक्षा धारण कर ली ॥ ४ ॥

तदनन्तर किसी दिन गजकुमार मुनि रात्रिके समय एकान्तमें प्रतिमायोगसे विराजमान हो सब प्रकारकी बाधाएँ सहन कर रहे थे कि सोमशर्मा अपनी पुत्रीके त्यागसे उत्पन्न क्रोधरूपी अग्निके कणोंसे प्रदीप्त हो उनके पास आया और स्थिर चित्तके धारक उन मुनिराजके शिरपर तीव्र अग्नि प्रज्वलित करने लगा ॥ ५–६ ॥ उस अग्निसे उनका शरीर जलने लगा। उसी अवस्थामें वे शुक्लध्यानके द्वारा कर्मोंका क्षय कर अन्तकृत्केवली हो मोक्ष चले गये ॥ ७ ॥ यक्ष, किन्नर, गन्धर्व और महोरग आदि सुर और असुरोंने आकर उनके शरीरकी पूजा की ॥ ८ ॥ गजकुमार मुनिका मरण जानकर दुःखी होते हुए बहुत-से यादव तथा वसुदेवको छोड़कर शेष समुद्रविजय आदि दशार्ह मोक्षकी इच्छासे दीक्षित हो गये ॥ ९ ॥ शिवा आदि देवियों, देवकी और रोहिणीको छोड़कर वसुदेवकी अन्य स्त्रियों तथा कृष्णकी पुत्रियोंने भी दीक्षा धारण कर ली ॥१०॥

तदनन्तर देव और मनुष्योंसे पूजित भगवान् नेमिजिनेन्द्रने, भव्य जीवोंके समूहको प्रबोधित करते हुए, नाना देशोंमें बड़े वैभवके साथ विहार किया ॥ ११ ॥ उन्होंने उत्तर दिशाके, मध्यदेशके तथा पूर्व दिशाके प्रजासे युक्त अनेक बड़े-बड़े राजाओंको धर्ममें स्थिर करते हुए विहार

---

१. प्रश्रयान्वितं यथा स्यात्तथा । २. दीप्तितः म. । ३. शरीरपूजाम् । ४. दुःखा म. । ५. सुरवराभ्यर्च्यो म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विहृत्य चिरमीशानः पुनरागत्य पूर्ववत् । गिरौ रैवतके तस्थौ समवस्थानमण्डनः ॥१३॥
तत्र स्थितं जिनेन्द्रं तं देवेन्द्राः सान्द्रतेजसः । प्राप्य नत्वा नतिं कृत्वा निजस्थानेषु सुस्थिताः ॥१४॥
वसुदेवो बलः कृष्णः सान्तःपुरसुहृज्जनः । द्वारिकाप्रजया युक्तः[1] प्रद्युम्नादिसुतान्वितः ॥१५॥
विभूत्या परयागत्य शैवेयं[2]मभिवन्द्यते । आसीनाः समवस्थाने[3] धर्मं [4]शुश्रूषुरीश्वरात् ॥१६॥
तत्र धर्मकथान्तेऽसौ जिनं नत्वा हलायुधः । पप्रच्छ वस्तुचित्तस्थं करकुड्मलितालिकः ॥१७॥
नाथ वैश्रवणेनेयं निर्मिता द्वारिकापुरी । कियतानेहसान्तोऽस्याः कृतका हि विनश्वराः ॥१८॥
निमज्जेत् स्वत एवेयं किमु कालान्तरेऽम्बुधौ । निमित्तान्तरसान्निध्ये केनचिद्वा[5] विनाश्यते ॥१९॥
स्वान्तकाले निमित्तत्वं को वा कृष्णस्य यास्यति । जातानां हि समस्तानां जीवानां नियता मृतिः ॥२०॥
संयमप्रतिपत्तिर्वा[6] कालेन कियता प्रभो । कृष्णस्नेहमहापाशबद्धचित्तस्य मे भवेत्[7] ॥२१॥
इति पृष्टो जिनोऽगादीद्दृष्टाशेषपरापरः । याथातथ्यं यथाप्रश्नं यत्प्रश्नोत्तरवाद्यसौ ॥२२॥
पुरीयं द्वादशे वर्षे राम मद्येन हेतुना । द्वैपायन[8]कुमारेण मुनिना भक्ष्यते रुषा ॥२३॥
[9]कौशाम्बवनसुप्तस्य कृष्णस्य परमायुषः । प्रान्ते जरत्कुमारोऽपि संहारे हेतुतां व्रजेत् ॥२४॥
[10]अभ्यन्तरस्य सान्निध्ये हेतोः परिणतेर्वशात् । बाह्यो हेतुर्निमित्तं हि जगतोऽभ्युदये क्षये ॥२५॥

किया था ॥ १२ ॥ चिरकाल तक विहार कर भगवान् पुनः आये और रैवतक (गिरनार) पर्वत-पर समवसरणको सुशोभित करते हुए विराजमान हो गये ॥ १३ ॥ प्रबल तेजको धारण करने-वाले इन्द्र वहाँ विराजमान जिनेन्द्र भगवान्के पास आये और नमस्कार तथा स्तुति कर अपने-अपने स्थानोंपर बैठ गये ॥१४॥

अन्तःपुरकी रानियों, मित्रजन, द्वारिकाकी प्रजा तथा प्रद्युम्न आदि पुत्रोंसे सहित वसुदेव, बलदेव तथा कृष्ण भी बड़ी विभूतिके साथ आये और भगवान् नेमिनाथको नमस्कार कर सम-वसरणमें यथास्थान बैठ भगवान्से धर्म श्रवण करने लगे ॥१५–१६॥ तदनन्तर धर्मकथाके बाद जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार कर बलदेवने हाथ जोड़ ललाटसे लगा, अपने हृदयमें स्थित बात पूछी ॥ १७ ॥ उन्होंने पूछा कि हे भगवन् ! यह द्वारिकापुरी कुबेरके द्वारा रची गयी है सो इसका अन्त कितने समयमें होगा। क्योंकि कृत्रिम वस्तुएँ अवश्य ही नश्वर होती हैं ॥१८॥ यह द्वारिकापुरी कालान्तरमें क्या अपने-आप ही समुद्रमें डूब जावेगी ? अथवा निमित्तान्तरके सन्नि-धानमें किसी अन्य निमित्तसे विनाशको प्राप्त होगी ? कृष्णके अपने अन्तकालमें निमित्तपनेको कौन प्राप्त होगा ? क्योंकि उत्पन्न हुए समस्त जीवोंका मरण निश्चित है। हे प्रभो ! मेरा चित्त कृष्णके स्नेहरूपी महापाशसे बँधा हुआ है अतः मुझे संयमकी प्राप्ति कितने समय बाद होगी ? ॥१९–२१॥ इस प्रकार बलदेवके पूछनेपर समस्त परापर पदार्थोंको देखनेवाले नेमि जिनेन्द्र, प्रश्नके अनुसार यथार्थ बात कहने लगे, सो ठीक ही है क्योंकि भगवान् प्रश्नोंका उत्तर निरूपण करनेवाले ही थे ॥२२॥

उन्होंने कहा कि हे राम ! यह पुरी बारहवें वर्षमें मदिराके निमित्तसे द्वैपायन मुनिके द्वारा क्रोधवश भस्म होगी ॥२३॥ अन्तिम समयमें श्रीकृष्ण कौशाम्बीके वनमें शयन करेंगे और जर-त्कुमार उनके विनाशमें कारणपनेको प्राप्त होगा ॥२४॥ अन्तरंग कारणके रहते हुए परिणतिवश

---

१. युक्ताः म. । २. शिवाया अपत्यं पुमान् शैवेयस्तं नेमिनाथम् । ३. धर्मस्थाने म. । ४. 'शुश्रुवुरीश्वरात्' इति पाठेन भवितव्यम् । ५. –द्वाविनास्यते म. । ६. का केन म. । ७. मेऽभवत् म. । ८. द्वीपायन म. । ९. कौशाम्बीवन—ख. । १०. अनन्तरस्य म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जानन्तो वस्तुसद्भावमतोऽभ्युदयनाशयोः । हर्षं भुवि विषादं च न गच्छन्ति मनस्विनः ॥२६॥
भवतोऽपि तपःप्राप्तिस्तन्निमित्तात्तदा भवेत् । भवपद्धतिभीतस्य ब्रह्मलोकोपपादिनः ॥२७॥
द्वैपायनकुमारोऽसौ रोहिण्याः सोदरो यतिः । तदाकर्ण्य वचो जैनं निर्वेदी तपसि स्थितः ॥२८॥
अवधेः पूरणायातः पूर्वदेशमुपेत्य सः । तपश्चरितुमारब्धः कषायतनुशोषणम् ॥२९॥
दुःखी जरत्कुमारश्च दुःखितान् भ्रातृबान्धवान् । परित्यज्य गतः क्वापि स हरिर्यत्र नेक्ष्यते ॥३०॥
जरत्कुमारे प्रगते वनमेकाकिनि स्थिते । हरिः स्नेहाकुलो मेने शून्यमात्मानमात्मनि ॥३१॥
चचार मृगसामान्यं विजनो विजनं वनम् । [2]हरिर्प्राणप्रियः प्राणान् प्रियान् हातुमनाः क्वचित् ॥३२॥
इतोऽपि जिनमानम्य यादवा विविशुः पुरीम् । आगामिदुःखसंभारचिन्तासंतप्तमानसाः ॥३३॥
घोषणां कारयांचक्रे चक्री पुरि बलान्वितः । मद्याङ्गानि च मद्यानि विसृज्यन्तामिति द्रुतम् ॥३४॥
पिष्टकिण्वादिमद्याङ्गैस्ततो मद्यानि मद्यपैः । क्षिप्तानि सशिलाकुण्डे[3] कादम्बगिरिगह्वरे ॥३५॥
कदम्बवनकुण्डेषु [4]मुक्ता कादम्बरी तु या । साश्मपाकविशेषस्य हेतुत्वेनावतिष्ठते ॥३६॥
तथान्या घोषणादायि कृष्णेन हितबुद्धिना । द्वारिकायां महापुर्यां स्त्रीणां पुंसां च शृण्वताम् ॥३७॥
पिता मे यदि वा माता सुता चान्तःपुराङ्गना । तपस्यन्तु मते जैने वारयामि न तानहम् ॥३८॥

बाह्य हेतु जगत्के अभ्युदय तथा क्षयमें कारण होते हैं इसलिए वस्तुके स्वभावको जाननेवाले उत्तम मनुष्य अभ्युदय तथा क्षयके समय पृथिवीपर कभी हर्ष और विषादको प्राप्त नहीं होते ॥२५–२६॥

संसारके मार्गसे भयभीत रहनेवाले आपको भी उसी समय कृष्णकी मृत्युका निमित्त पाकर तपकी प्राप्ति होगी तथा तपकर आप ब्रह्मस्वर्गमें उत्पन्न होंगे ॥२७॥ द्वैपायनकुमार रोहिणीका भाई—बलदेवका मामा था सो उस समय भगवान्के वचन सुनकर वह संसारसे विरक्त हो मुनि होकर तप करने लगा ॥२८॥ वह बारह वर्षकी अवधिको पूर्ण करनेके लिए यहांसे पूर्व देशकी ओर चला गया और वहाँ कषाय तथा शरीरको सुखानेवाला तप करने लगा ॥२९॥ 'मेरे निमित्तसे कृष्णकी मृत्यु होगी' यह जानकर जरत्कुमार भी बहुत दुःखी हुआ और दुःखसे युक्त भाई-बन्धुओंको छोड़कर वह कहीं ऐसी जगह चला गया जहाँ कृष्ण दिखाई भी न दें ॥३०॥ जब जरत्कुमार वनमें जाकर अकेला रहने लगा तब स्नेहसे आकुल श्रीकृष्णने अपने-आपमें अपने-आपको सूना अनुभव किया ॥३१॥ जो कृष्णको प्राणोंके समान प्यारा था ऐसा जरत्कुमार कहीं प्रिय प्राणोंको छोड़नेकी इच्छासे अकेला ही मृगोंके समान निर्जन वनमें भ्रमण करने लगा ॥३२॥ इधर आगामी दुःखके भारकी चिन्तासे जिनके मन सन्तप्त हो रहे थे ऐसे यादव लोग भगवान्को नमस्कार कर नगरीमें प्रविष्ट हुए ॥३३॥ बलदेवके साथ कृष्णने नगरमें यह घोषणा करा दी कि मद्य बनानेके साधन और मद्य शीघ्र ही अलग कर दिये जायें ॥३४॥ घोषणा सुनते ही मद्यपायी लोगोंने पिष्ट, किण्व आदि मदिरा बनानेके साधनोंके साथ-साथ समस्त मदिराको शिलाओंके बीच बने हुए कुण्डसे युक्त कादम्ब गिरिकी गुहामें फेंक दिया ॥ ३५ ॥ कदम्ब वनके कुण्डोंमें जो मदिरा छोड़ी गयी थी वह अश्मपाक विशेषके कारण उन कुण्डोंमें भरी रही । भावार्थ—पत्थरकी कुण्डियोंमें जिस प्रकार कोई तरल पदार्थ स्थिर रहा आता है उसी प्रकार कदम्ब वनके शिलाकुण्डोंमें वह मदिरा स्थिर रही आयी ॥ ३६ ॥ हितकी इच्छा रखनेवाले कृष्णने समस्त स्त्री-पुरुषोंके सुनते समय द्वारिकापुरीमें दूसरी घोषणा यह दी कि यदि मेरे पिता, माता, पुत्री अथवा अन्तःपुरकी स्त्री आदि कोई भी जिनेन्द्र भगवान्के मतमें दीक्षित हो तप करना चाहें तो मैं उन्हें मना नहीं करता हूँ—उन्हें तप करनेकी मेरी ओरसे

---

१. द्वीपायन–म., ख. । २. हरिः प्राणप्रियः म. । ३. सशिलाकुण्डकादम्ब–क. । ४. युक्ता म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ततः प्रद्युम्नभान्वाद्याः कुमाराश्चरमाङ्गकाः । अन्ये च बहवो यातास्तपोवनमसङ्गिनः ॥३९॥
रुक्मिणीसत्यभामाद्या महादेव्योऽष्ट सस्नुषाः । लब्धानुज्ञा हरेः स्त्रीभिः सपत्नीभिः प्रवव्रजुः ॥४०॥
सिद्धार्थसारथिर्भ्राता बलदेवेन याचितः[1] । बोधनं व्यसने स्वस्य [2]प्रतिपद्य तपोऽगृहीत् ॥४१॥
ततः संघेन महता जिनः पल्लवदेशभाक् । बभूव भव्यबोधार्थं भव्याम्भोरुहभास्करः ॥४२॥
राजस्त्रीनरसंघातो यावान् प्रव्रजितस्तदा । जिनेनैव समं [3]सोऽयादुत्तरापथमुद्यमी ॥४३॥
[4]वर्षद्वादश चोद्वस्य पुर्याः लोकः क्वचिद्वने । कृत्वा वासं पुनस्तत्र स्वागतश्च विधेर्वशात् ॥४४॥
इतो [5]द्वारवतीलोकः परलोकभयान्वितः । व्रतोपवासपूजासु सुतरां निरतोऽभवत् ॥४५॥
[6]द्वैपायनोऽपि महता तपसा रुहितस्ततः । व्यतीतं द्वादशं वर्षं मन्वानो भ्रान्तिहेतुना ॥४६॥
व्यतिक्रान्तो जिनादेश इति ध्यात्वा विमूढधीः । संप्राप्तो द्वादशे वर्षे सम्यग्दर्शनदुर्बलः ॥४७॥
धृतातापनयोगश्च तस्थौ प्रतिमया पथि । द्वारिकाबहिरभ्याशे कदाचिन्निकटे गिरेः ॥४८॥
वनक्रीडापरिश्रान्ताः पिपासाकुलिता जलम् । इति कादम्बकुण्डेषु [7]शम्बाद्यास्तां सुरां पपुः ॥४९॥
कदम्बवनसंन्यस्तां कदम्बकतया स्थिताम् । पीत्वा कादम्बरीं मृष्टां कुमारा विकृतिं गताः ॥५०॥

पूर्ण छूट है ॥३७-३८॥ घोषणा सुनते ही प्रद्युम्नकुमार तथा भानुकुमारको आदि लेकर चरम-शरीरी कुमार और अन्य बहुत-से लोग परिग्रहका त्याग कर तपोवनको चले गये ॥३९॥ रुक्मिणी और सत्यभामा आदि आठ पट्टरानियोंने भी आज्ञा प्राप्त कर पुत्रवधुओं तथा अन्य सौतोंके साथ दीक्षा धारण कर ली ॥४०॥ सिद्धार्थ नामका सारथि जो बलदेवका भाई था जब दीक्षा लेनेके लिए उत्सुक हुआ तब बलदेवने उससे याचना की कि कदाचित् मैं मोहजन्य व्यसनको प्राप्त होऊँ तो मुझे सम्बोधित करना। बलदेवकी इस प्रार्थनाको स्वीकृत कर उसने तप ग्रहण कर लिया ॥४१॥

तदनन्तर जो भव्यरूपी कमलोंको विकसित करनेके लिए सूर्यके समान थे ऐसे भगवान् नेमिजिनेन्द्र, भव्य जीवोंको सम्बोधनेके लिए बड़े भारी संघके साथ पल्लव देशको प्राप्त हुए ॥४२॥ उस समय जो राजा-रानियों और मनुष्योंका समूह दीक्षित हुआ था वह जिनेन्द्र भगवान्के साथ ही साथ उत्तरापथकी ओर चलनेके लिए उद्यमी हुआ ॥४३॥ द्वारिकाके लोग द्वारिकासे बाहर जाकर बारह वर्ष तक कहीं वनमें रहते आये परन्तु भाग्यकी प्रबलतासे वे वहाँ निवास कर फिर वहीं वापस आ गये ॥४४॥ इधर द्वारिकामें जो लोग रहते थे वे परलोकके भयसे युक्त हो व्रत, उपवास तथा पूजा आदि सत्कार्योंमें निरन्तर संलग्न रहते थे ॥४५॥

तदनन्तर बहुत भारी तपसे युक्त जो द्वैपायन मुनि थे वे भी भ्रान्तिवश बारहवें वर्षको व्यतीत हुआ मानते हुए बारहवें वर्षमें वहाँ आ पहुँचे। 'जिनेन्द्र भगवान्का आदेश पूरा हो चुका है' यह विचारकर जिनकी बुद्धि विमूढ़ हो रही थी तथा जो सम्यग्दर्शनसे दुर्बल थे ऐसे द्वैपायन मुनि बारहवें वर्षमें वहीं आ पहुँचे ॥४६-४७॥ वे किसी समय द्वारिकाके बाहर पर्वतके निकट, मार्गमें आतापन योग धारण कर प्रतिमायोगसे विराजमान थे ॥४८॥ उसी समय वनक्रीड़ासे थके एवं प्याससे पीड़ित शम्ब आदि कुमारोंने कादम्ब वनके कुण्डोंमें स्थित उस शराबको पी लिया ॥४९॥ कदम्ब वनमें छोड़ी एवं कदम्ब रूपसे डबरोंके रूपमें स्थित उस मधुर मदिराको पीकर वे सब कुमार विकार भावको प्राप्त

१ बलदेवनयान्वितः म. । २. प्रतिपाद्य क., ख., घ., म. । ३. पाया-म., याया ख., घ. । ४. वर्षान् द्वादश क., वर्षे द्वादश म. । ५. द्वारवतीम् म. । ६. द्वीपायनोऽपि म. । ७. सुस्वाद्यां तां क. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वारुणी सा पुराणापि परिपाकवशाद्वशान् । तरुणानकरोद्गाढं तरुणीवारुणेक्षणान् ॥५१॥
असंबद्धानि गायन्तो नृत्यन्तः स्खलितक्रमाः । मुक्तकेशाः कृतोत्तंसाः कण्ठालम्बिवनस्रजः ॥५२॥
आगच्छन्तः पुरः सर्वे दृष्ट्वार्काभिमुखं मुनिम् । प्रत्यभिज्ञाय चावोचन् घूर्णमाननिरीक्षणाः ॥५३॥
सोऽयं द्वैपायनो योगी द्वारवत्याः किलान्तकृत् । भवितास्माकमद्याग्रे क्व प्रयाति वराककः ॥५४॥
इत्युक्त्वा तं कुमारास्ते लोष्टुभिः सर्वतोऽश्मभिः । प्रजघ्नुर्निर्घृणास्तावद्यावत्पतति भूतले ॥५५॥
क्रोधाधिक्यात्ततो दध्रे दष्टोष्ठो भृकुटीकुटीम् । प्रलयाय यदूनां सः प्रायः स्वतपसोऽपि च ॥५६॥
प्रविष्टास्तु पुरीं व्याला व्याला इव चलाचलाः । कुमाराः कैश्चिदुक्तं तु दुर्वृत्तं लघु विष्णवे ॥५७॥
बलनारायणौ श्रुत्वा द्वैपायनमुपश्रुतम् । द्वारिकायाः क्षयं प्राप्तं मेनाते जिनभाषितम् ॥५८॥
संभ्रमेण परिप्राप्तौ परित्यक्तपरिच्छदौ । मुनिं क्षमयितुं क्रोधाज्ज्वलन्तमिव पावकम् ॥५९॥
दृष्टः संक्लिष्टधीस्ताभ्यां भ्रूभङ्गविषमाननः । दुर्निरीक्ष्येक्षणः क्षीणः कण्ठप्राणो विभीषणः ॥६०॥
कृताञ्जलिपुटाभ्यां स प्रणिपत्य महादरात् । याच्यते याचना बन्ध्यं जानद्भ्यामपि मोहतः ॥६१॥
रक्ष्यतां रक्ष्यतां साधो चिरं सुपरिरक्षितः । क्षमामूलस्तपोभारो धक्ष्यते क्रोधवह्निना ॥६२॥
मोक्षसाधनमप्येष तपो दूषयति क्षणात् । चतुर्वर्गरिपुः क्रोधः क्रोधः स्वपरनाशकः ॥६३॥

हो गये ॥५०॥ यद्यपि वह मदिरा पुरानी थी तथापि परिपाकके वशसे उसने तरुण स्त्रीके समान, लाल-लाल नेत्रोंको धारण करनेवाले उन तरुण कुमारोंको अत्यधिक वशीभूत कर लिया ॥५१॥ फलस्वरूप वे सब कुमार असम्बद्ध गाने लगे, लड़खड़ाते पैरोंसे नाचने लगे, उनके केश बिखर गये, आभूषण अस्त-व्यस्त हो गये और उन्होंने अपने कण्ठोंमें जंगली फूलोंकी मालाएँ पहन लीं ॥५२॥ जब वे सब नगरकी ओर आ रहें थे तब उन्होंने सूर्यके सम्मुख खड़े हुए द्वैपायन मुनिको पहचान लिया। पहचानते ही उनके नेत्र घूमने लगे। उन्होंने आपसमें कहा कि यह वही द्वैपायन योगी है जो द्वारिकाका नाश करनेवाला होगा। आज यह बेचारा हम लोगोंके आगे कहाँ जायेगा ? ॥५३–५४॥ इतना कहकर उन निर्दय कुमारोंने लुड्डों और पत्थरोंसे उन्हें तबतक मारा जबतक कि वे घायल होकर पृथिवीपर नहीं गिर पड़े ॥५५॥ तदनन्तर क्रोधकी अधिकतासे मुनि अपना ओठ डँसने लगे तथा यादवों और अपने तपको नष्ट करनेके लिए उन्होंने भ्रुकुटी चढ़ा ली ॥५६॥ मदमाते हाथियोंके समान अत्यन्त चञ्चल कुमार जब द्वारिकापुरीमें प्रविष्ट हुए तब उनमें-से किन्हींने यह दुर्घटना शीघ्र ही कृष्णके लिए जा सुनायी ॥५७॥ बलदेव तथा नारायणने द्वैपायनसे सम्बन्ध रखनेवाली इस घटनाको सुनकर समझ लिया कि जिनेन्द्र भगवान्‌ने जो द्वारिकाका क्षय बतलाया था वह आ पहुँचा है—अब शीघ्र ही द्वारिकाका क्षय होनेवाला है ॥५८॥ बलदेव और नारायण घबड़ाहटवश सब प्रकारका परिकर छोड़, क्रोधसे अग्निके समान जलते हुए मुनिको शान्त करनेके लिए, उनसे क्षमा मांगनेके लिए उनके पास दौड़े गये ॥५९॥ जिनकी बुद्धि अत्यन्त संक्लेशमय थी, भ्रुकुटीके भंगसे जिनका मुख विषम हो रहा था, जिनके नेत्र दुःखसे देखने योग्य थे, जिनके प्राण कण्ठगत हो रहे थे और जो अत्यन्त भयंकर थे ऐसे द्वैपायन मुनिको बलदेव और कृष्णने देखा। उन्होंने हाथ जोड़कर बड़े आदरसे मुनिको प्रणाम किया और 'हमारी याचना व्यर्थ होगी' यह जानते हुए भी मोहवश याचना की ॥६०–६१॥ उन्होंने कहा कि, 'हे साधो ! आपने चिरकालसे जिसकी अत्यधिक रक्षा की है तथा क्षमा ही जिसकी जड़ है ऐसा यह तपका भार क्रोधरूपी अग्निसे जल रहा है सो इसकी रक्षा की जाये, रक्षा की जाये ॥६२॥ यह क्रोध मोक्षके साधनभूत तपको क्षण-भरमें दूषित कर देता है, यह धर्म, अर्थ काम और मोक्ष इन चारों वर्गोंका शत्रु है तथा निज और परको नष्ट करनेवाला है ॥६३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षम्यतां क्षम्यतां मूढः प्रमादबहुलैः कृतम् । दुर्विचेष्टितमस्मभ्यं प्रसादः क्रियतां यते ॥६४॥
इत्यादिप्रियवादिभ्यां प्रार्थ्यमानोऽनिवर्तकः । सप्राणिद्वारिकादाहे पापधीः कृतनिश्चयः ॥६५॥
संज्ञयाऽदर्शयत्ताभ्यामङ्गुलीद्वयदर्शनम् । युवयोरेव मोक्षोऽत्र नान्यस्येति परिस्फुटम् ॥६६॥
[1]अनिवर्तकरोषं तं विदित्वा विदितक्षयौ । विषण्णौ तौ पुरीं यातौ किंकर्तव्यत्वविह्वलौ ॥६७॥
शम्बाद्यास्तु तदानेके यादवाश्चरमाङ्गकाः । पुर्या निष्क्रम्य निष्क्रान्तास्तस्थुर्गिरिगुहादिषु ॥६८॥
मृत्वा क्रोधाग्निनिर्दग्धतपःसारधनश्च[2] सः । बभूवाग्निकुमाराख्यो मिथ्यादृग्भवनामरः ॥६९॥
अन्तर्मुहूर्तकालेन पर्याप्तः प्रतिबुद्धवान् । विभङ्गेन विकारं स्वं कृतं यदुकुमारकैः ॥७०॥
रौद्रध्यानं स दध्यौ मे तपस्थस्य निरागसः । हिंसकानां पुरीं सर्वां दहामि सह जन्तुभिः ॥७१॥
इति ध्यात्वा [3]स दुर्वारो यावदायाति दारुणः । द्वारावत्यां महोत्पातास्तावज्जाताः क्षयावहाः ॥७२॥
बभूवुः प्रत्यगारं च रोमहर्षविकारिणः । प्रजानां निशि सुप्तानां स्वप्नाश्च भयशंसिनः ॥७३॥
प्राप्य पापमतिश्चासौ पुरीमारभ्य बाह्यतः । कोपी दग्धुं समारेभे तिर्यग्मानुषपूरिताम् ॥७४॥
धूमज्वालाकुलान्[4] वृद्धस्त्रीबालपशुपक्षिणः । नश्यतोऽग्नौ[5] क्षिपत्येष कारुण्यं पापिनः कुतः ॥७५॥
प्राणिजातस्य सर्वस्य जातवेदसि मज्जतः । आक्रन्दनस्वना जाता येऽत्र जाता न जातुचित् ॥७६॥

हे मुनिराज ! प्रमादसे भरे हुए मूर्ख कुमारोंने जो दुष्ट चेष्टा की है उसे क्षमा कीजिए, क्षमा कीजिए, हम लोगोंके लिए प्रसन्न होइए' ॥६४॥ इत्यादि प्रियवचन बोलनेवाले बलदेव और कृष्णने द्वैपायनसे बहुत प्रार्थना की पर वे अपने निश्चयसे पीछे नहीं हटे। उनकी बुद्धि अत्यन्त पापपूर्ण हो गयी थी और वे प्राणियों-सहित द्वारिकापुरीके जलानेका निश्चय कर चुके थे ॥६५॥ उन्होंने बलदेव और कृष्णके लिए दो अंगुलियाँ दिखायीं तथा इशारेसे स्पष्ट सूचित किया कि तुम दोनोंका ही छुटकारा हो सकता है, अन्यका नहीं ॥६६॥

जब बलदेव और कृष्णको यह विदित हो गया कि इनका क्रोध पीछे हटनेवाला नहीं है तब वे द्वारिकाका क्षय जान बहुत दुःखी हुए और किंकर्तव्य-विमूढ़ हो नगरीकी ओर लौट आये ॥६७॥ उस समय शम्बकुमार आदि अनेक चरमशरीरी यादव, नगरीसे निकलकर दीक्षित हो गये तथा पर्वतकी गुफा आदिमें विराजमान हो गये ॥६८॥ क्रोधरूपी अग्निके द्वारा जिनका तपरूपी श्रेष्ठ धन भस्म हो चुका था ऐसे द्वैपायन मुनि मरकर अग्निकुमार नामक मिथ्यादृष्टि भवनवासी देव हुए ॥६९॥ वहाँ अन्तर्मुहूर्तमें ही पर्याप्तक होकर उन्होंने यादव कुमारोंके द्वारा किये हुए अपने अपकारको विभंगावधिज्ञानके द्वारा जान लिया ॥७०॥ उन्होंने इस रौद्रध्यानका चिन्तवन किया कि, 'देखो, मैं निरपराधी तपमें लीन था फिर भी इन लोगोंने मेरी हिंसा की अतः मैं इन हिंसकोंकी समस्त नगरीको सब जीवोंके साथ अभी हाल भस्म करता हूँ।' इस प्रकार ध्यान कर क्रूर परिणामोंका धारक वह दुर्वार देव ज्यों ही आता है त्यों ही द्वारिकामें क्षयको उत्पन्न करनेवाले बड़े-बड़े उत्पात होने लगे ॥७१-७२॥ घर-घरमें जब प्रजाके लोग रात्रिके समय निश्चिन्ततासे सो रहे थे तब उन्हें रोमांच खड़े कर देनेवाले भयसूचक स्वप्न आने लगे ॥७३॥ अन्तमें उस पापबुद्धि क्रोधी देवने जाकर बाहरसे लेकर तिर्यंच और मनुष्योंसे भरी हुई नगरीको जलाना शुरू कर दिया ॥७४॥ वह धूम और अग्निकी ज्वालाओंसे आकुल हो नष्ट होते हुए वृद्ध, स्त्री, बालक, पशु तथा पक्षियोंको पकड़-पकड़कर अग्निमें फेंकने लगा सो ठीक ही है क्योंकि पापी मनुष्यको दया कहाँ होती है ? ॥७५॥ उस समय अग्निमें जलते हुए समस्त प्राणियोंकी चिल्लाहटसे जो शब्द हुए थे वैसे शब्द इस पृथिवीपर कभी नहीं हुए थे ॥७६॥ दिव्य

१. अतिवर्तक–म. । २. धनश्च यः म. । ३. सुदुर्वारो म. । ४. ज्वालाकरान् म. । ५. अग्नौ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिव्येन दह्यमानायां दहनेन तदा पुरि । नूनं क्वापि गता देवा दुर्वारा भवितव्यता ॥७७॥
अन्यथा देवराजस्य राजराजेन शासनात् । निर्मिता [1]रक्षिता चासौ दह्यते कथमग्निना ॥७८॥
रक्षतां बलकृष्णौ नः[2] चिरेणाग्निभयार्दितान्[3] । इति स्त्रीबालवृद्धानामालापा ययुराकुलाः ॥७९॥
आकुलो बालकृष्णौ च भित्त्वा प्राकारमम्बुधेः । विध्यापयितुमालग्नौ प्रवाहैस्तं हुताशनम् ॥८०॥
सागराम्बुहलाकृष्टं हलिना बलशालिना । जज्वाल ज्वलनस्तेन तैलभावमुपेयुषा ॥८१॥
असाध्यतां विदित्वाग्नेर्जनन्यौ जनकं जनम् । सुबहुं रथमारोप्य संयोज्य गजवाजिनः ॥८२॥
रथं नोदयतोः क्षोण्यां रथचक्राणि पङ्कवत् । निमज्जन्ति विपत्काले क्व गजा वाजिनः क्व च ॥८३॥
स्वयमेव रथं दोर्भ्यामाकृष्य प्रयतोस्तयोः । निरुद्धः कीलयित्वासाविन्द्रकीलेन[4] पापिना ॥८४॥
अवष्टभ्नाति पादेन यावत्कीलं हलायुधः । पिहितं गोपुरद्वारं तावद्दैत्येन कोपिना ॥८५॥
कपाटं पादघातेन ताभ्यां पातितमाशु तत् । द्विषोक्तं निर्गमोऽन्यस्य युवाभ्यां नानुविद्यते ॥८६॥
ततः पित्रा च मातृभ्यां पुत्रौ यातमितीरितौ । विनिश्चित्योपसंहारमात्मीयमिति दुःखिभिः ॥८७॥
भवतोः जीवतोः पुत्रौ कदाचिद्वंशसन्ततिः । न क्राम्येदप्यतो [5]घातमिति तद्वाक्यमस्तकौ ॥८८॥
तान्प्रशाम्य गतौ दीनौ दुःखितौ दुःखपीडितान् । प्रपत्य पादयोर्यातौ गुरुवाक्यकरौ पुरः ॥८९॥

अग्निके द्वारा जब नगरी जल रही थी तब जान पड़ता था कि देव लोग कहीं चले गये थे सो ठीक ही है क्योंकि भवितव्यता दुर्निवार है ॥७७॥ अन्यथा इन्द्रकी आज्ञासे कुबेरने जिस नगरीकी रचना की थी तथा कुबेर ही जिसकी रक्षा करता था वह नगरी अग्निके द्वारा कैसे जल जाती ? ॥७८॥ 'हे बलदेव और कृष्ण ! हम लोग चिरकालसे अग्निके भयसे पीड़ित हो रहे हैं, हमारी रक्षा करो' इस प्रकार स्त्री, बालक और वृद्धजनोंके घबराहटसे भरे शब्द सर्वत्र व्याप्त हो रहे थे ॥७९॥ घबड़ाये हुए बलदेव और कृष्ण कोट फोड़कर समुद्रके प्रवाहोंसे उस अग्निको बुझाने लगे ॥८०॥ बलशाली बलदेवने अपने हलसे समुद्रका जल खींचा परन्तु वह तेलरूपमें परिणत हो गया और उससे अग्नि अत्यधिक प्रज्वलित हो उठी ॥८१॥ जब बलदेव और कृष्णको इस बातका निश्चय हो गया कि अग्नि असाध्य है—बुझायी नहीं जा सकती तब उन्होंने दोनों माताओंको, पिताको तथा अन्य बहुत-से लोगोंको रथपर बैठाकर तथा रथमें हाथी और घोड़े जोतकर रथको पृथिवीपर चलाया परन्तु रथके पहिये जिस प्रकार कीचड़में फँस जाते हैं उस प्रकार पृथिवीमें फँस गये सो ठीक ही है क्योंकि विपत्तिके समय कहाँ हाथी और कहाँ घोड़े काम आते हैं ? ॥८२-८३॥ हाथी और घोड़ोंको बेकार देख जब दोनों भाई स्वयं ही भुजाओंसे रथ खींचकर चलने लगे तब उस पापी देवने वज्रमय कीलसे कीलकर रथको रोक दिया ॥८४॥ जबतक बलदेव पैरके आघातसे कीलको उखाड़ते हैं तबतक उस क्रोधी दैत्यने नगरका द्वार बन्द कर दिया ॥८५॥ जब दोनों भाइयोंने पैरके आघातसे द्वारके कपाटको शीघ्र ही गिरा दिया तबतक शत्रुने कहा कि तुम दोनोंके सिवाय किसी अन्यका निकलना नहीं हो सकता ॥८६॥

तदनन्तर अब हम लोगोंका विनाश निश्चित है यह जानकर दोनों माताओं और पिताने दुःखी होकर कहा कि 'हे पुत्रो ! तुम जाओ। कदाचित् तुम दोनोंके जीवित रहते वंश घातको प्राप्त नहीं होगा।' इस प्रकार गुरुजनोंके वचन मस्तकपर धारण कर दोनों भाई अत्यन्त दुःखी हुए तथा दुःखसे पीड़ित दीन माता-पिताको शान्त कर और उनके चरणोंमें गिरकर उनके वचनोंको मानते हुए नगरसे बाहर निकल आये ॥८७-८९॥

१. रक्षता म. । २. च. ख. । ३. भयार्दिताः म., ख. । ४. वज्रवत्कीलकेन (ङ. टि.) । ५. पात क., ख., ङ. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्गत्य निर्गती पुर्या ज्वालालीलीढवेश्मनः । रुदित्वा कण्ठलग्नौ तौ दक्षिणां दिशमाश्रितौ ॥९०॥
इतोऽपि वसुदेवाद्या यादवाश्च तदङ्गनाः । प्रायोपगमनं प्राप्ताः संप्राप्ता बहवो दिवम्[1] ॥९१॥
केचिच्चरमदेहास्तु बलदेवसुतादयः । गृहीतसंयमा नीता जृम्भकैर्जिनसन्निधिम् ॥९२॥
यदूनां यादवीनां च धर्म्यध्यानवशात्मनाम् । सम्यग्दर्शनशुद्धानां प्रायोपगममाश्रिताम्[2] ॥९३॥
बहूनां दह्यमानानामपि देहविनाशनः । [3]जातो हुताशनो रौद्रो न तु ध्यानविनाशनः ॥९४॥
आर्तध्यानकरः प्रायो मिथ्यादृष्टिषु जायते । उपसर्गश्चतुर्भेदो न सद्दृष्टेस्तु जातुचित् ॥९५॥
आगाढे वाप्यनागाढे मरणे समुपस्थिते । न मुह्यन्ति जना जातु जिनशासनभाविताः ॥९६॥
मिथ्यादृष्टेः सतो जन्तोर्मरणं शोचनाय हि । न तु दर्शनशुद्धस्य समाधिमरणं शुचे ॥९७॥
मृतिर्जातस्य[4] नियता संसृतौ नियतेर्वशात् । सा समाधियुजो भूयादुपसर्गेऽपि देहिनः ॥९८॥
धन्याः शिखिशिखाजालकवलीकृतविग्रहाः । अपि साधुसमाधाना ये त्यजन्ति कलेवरम् ॥९९॥
तपो वा मरणं वापि शस्तं स्वपरसौख्यकृत् । [5]न च द्वैपायनस्येव स्वपरासुखकारणम् ॥१००॥
परस्यापकृतिं कुर्वन् कुर्यादेकत्र जन्मनि । पापी परवधं स्वस्य जन्तुर्जन्मनि जन्मनि ॥१०१॥
कषायवशगः प्राणी हन्ता स्वस्य भवे भवे । संसारवर्धनोऽन्येषां भवेद्वा वधको न वा ॥१०२॥

ज्वालाओंके समूहसे जिसके महल जल रहे थे ऐसी नगरीसे निकलकर दोनों भाई पहले तो गतिहीन हो गये—इस बातका निश्चय नहीं कर सके कि कहाँ जाया जाये ? वे बहुत देर तक एक-दूसरेके कण्ठसे लगकर रोते रहे। तदनन्तर दक्षिण दिशाकी ओर चले ॥९०॥ इधर वसुदेव आदि यादव तथा उनकी स्त्रियाँ—अनेक लोग संन्यास धारण कर स्वर्गमें उत्पन्न हुए ॥९१॥ बलदेवके पुत्रोंको आदि लेकर जो कुछ चरमशरीरी थे उन्होंने वहीं संयम धारण कर लिया और उन्हें जृम्भकदेव जिनेन्द्र भगवान्के पास ले गये ॥९२॥ जिनकी आत्मा धर्मध्यानके वशीभूत थी—जो सम्यक्दर्शनसे शुद्ध थे, तथा जिन्होंने प्रायोपगमन नामक संन्यास धारण कर रखा था ऐसे बहुत-से यादव और उनकी स्त्रियाँ यद्यपि अग्निमें जल रही थीं तथापि भयंकर अग्नि केवल उनके शरीरको नष्ट करनेवाली हुई, ध्यानको नष्ट करनेवाली नहीं ॥९३-९४॥ मनुष्य, तिर्यंच, देव और जड़के भेदसे चार प्रकारका उपसर्ग प्रायः मिथ्यादृष्टि जीवोंको ही आर्तध्यानका करनेवाला होता है, सम्यग्दृष्टि जीवको कभी नहीं ॥९५॥ जो मनुष्य जिनशासनकी भावनासे युक्त हैं वे सम्भावित और असम्भावित किसी भी प्रकारका मरण उपस्थित होनेपर कभी मोहको प्राप्त नहीं होते ॥९६॥

मिथ्यादृष्टि जीवका मरण शोकके लिए होता है परन्तु सम्यग्दृष्टि जीवका समाधिमरण शोकके लिए नहीं होता ॥९७॥ संसारका नियम ही ऐसा है कि जो उत्पन्न होता है उसका मरण अवश्य होता है, अतः सदा यह भावना रखनी चाहिए कि उपसर्ग आनेपर भी समाधिपूर्वक ही मरण हो ॥९८॥ वे मनुष्य धन्य हैं जो अग्निकी शिखाओंके समूहसे ग्रस्तशरीर होनेपर भी उत्तम समाधिसे शरीर छोड़ते हैं ॥९९॥ जो तप और मरण निज तथा परको सुख करनेवाला है वही उत्तम है—प्रशंसनीय है, जो तप द्वैपायनके समान निज और परको दुःखका कारण है वह उत्तम नहीं ॥१००॥

दूसरेका अपकार करनेवाला पापी मनुष्य, दूसरेका वध तो एक जन्ममें कर पाता है पर उसके फलस्वरूप अपना वध जन्म-जन्ममें करता है ॥१०१॥ यह प्राणी दूसरोंका वध कर सके अथवा न कर सके परन्तु कषायके वशीभूत हो अपना वध तो भव-भवमें करता है तथा अपने

१, दिवः म. । २. गमनाश्रिताम् क. । ३. यातो म. । ४. –र्यातस्य म. । ५. तच्च म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परं हन्मीति संध्यातं लोहपिण्डमुपाददत् । दहत्यात्मानमेवादौ कषायवशगस्तथा ॥१०३॥
संसारान्तकरं पुंसामेकेषां परमं तपः । द्वैपायनस्य तज्जातं दीर्घसंसारकारणम् ॥१०४॥
जन्तोः को वापराधोऽत्र स्वकर्मवशवर्तिनः । यत्नवानपि यज्जन्तुर्मोह्यते मोहवैरिणा ॥१०५॥
[1]अपाक्रियेतापि परः कथंचिदतितिक्षुणा[2] । उपक्रियेत यद्यात्मा तथेहपरलोकयोः ॥१०६॥
परदुःखविधानेन यत्स्वदुःखपरम्परा । अवश्यम्भाविनी तस्मात्तितिक्षैवातिमान्यताम्[3] ॥१०७॥

शार्दूलविक्रीडितम्

क्रोधान्धेन विधेर्वशेन नगरी द्वैपायनेनाखिला
बालस्त्रीपशुवृद्धलोककलिता द्वाराकुला द्वारिका ।
मासैः षड्भिरशेषिता विलसिता संत्यज्य जैनं वचो
धिक् क्रोधं स्वपरापकारकरणं संसारसंवर्धनम् ॥१०८॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ द्वारावतीविनाशवर्णनो नामैकषष्टितमः सर्गः ॥६१॥

□

संसारको बढ़ाता है ॥१०२॥ जिस प्रकार तपाये हुए लोहेके पिण्डको उठानेवाला मनुष्य पहले अपने-आपको जलाता है पश्चात् दूसरेको जला सके अथवा नहीं । उसी प्रकार कषायके वशीभूत हुआ प्राणी 'दूसरेका घात करूँ' इस विचारके उत्पन्न होते ही पहले अपने-आपका घात करता है पश्चात् दूसरेका घात कर सके या नहीं कर सके ॥१०३॥ किन्हीं मनुष्योंके लिए यह परम तप संसारका अन्त करनेवाला होता है पर द्वैपायन मुनिके लिए दीर्घ संसारका कारण हुआ ॥१०४॥ अथवा इस संसारमें अपने कर्मके अनुसार प्रवृत्ति करनेवाले प्राणीका क्या अपराध है ? क्योंकि यत्न करनेवाला प्राणी भी मोहरूपी वैरीके द्वारा मोहको प्राप्त हो जाता है ॥१०५॥ असहनशील पुरुष दूसरेका अपकार किसी तरह कर भी सकता है परन्तु उसे अपने-आपका तो इस लोक और परलोकमें उपकार ही करना चाहिए ॥१०६॥ क्योंकि दूसरोंको दुःख पहुँचानेसे अपने-आपको भी दुःखकी परम्परा प्राप्त होती है, इसलिए क्षमा अवश्यम्भावी है—अवश्य ही धारण करने योग्य है ऐसा निश्चय करना चाहिए ॥१०७॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि देखो, विधिके वशीभूत हुए क्रोधसे अन्धे द्वैपायनने जिनेन्द्र भगवान्के वचन छोड़कर बालक, स्त्री, पशु और वृद्धजनोंसे व्याप्त एवं अनेक द्वारोंसे युक्त शोभायमान द्वारिका नगरीको छह मासमें भस्म कर नष्ट कर दिया सो निज और परके अपकारका कारण तथा संसारको बढ़ानेवाले इस क्रोधको धिक्कार है ॥१०८॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें द्वारिकाके नाशका वर्णन करनेवाला इकसठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥६१॥

□

१. अपि क्रियेतापि म. । २. अविचक्षणः ग., अतितिक्षणः म., ख., ङ. । ३. भाष्यताम् म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्विषष्टितमः सर्गः

पुण्योदयात्पुरा प्राप्तावुन्नतिं[1] यौ जनातिगाम् । चक्रादिरत्नसंपन्नौ बलिनौ बलकेशवौ ॥१॥
पुण्यक्षयात्तु तावेव रत्नबन्धुविवर्जितौ । प्राणमात्रपरीवारौ शोकमारवशीकृतौ ॥२॥
प्रस्थितौ दक्षिणामाशां जीविताशावलम्बिनौ । क्षुत्पिपासापरिश्रान्तौ यातौ [2]सत्काङ्क्षिणौ पथि ॥३॥
उद्दिश्य पाण्डवान्[3] यान्तौ मथुरां दक्षिणामुभौ । हस्तवप्रं पुरं प्राप्तौ तत्रोद्याने हरिः स्थितः ॥४॥
गतोऽन्नपानमानेतुं कृतसंकेतकोऽग्रजः । वस्त्रसंवृतसर्वाङ्गः प्रविष्टश्च [4]ततः पुरम् ॥५॥
अच्छदन्तो नृपस्तत्र धार्तराष्ट्रोऽवतिष्ठते । पृथिव्यां प्रथितो धन्वी यदुरन्ध्रदुरन्तधीः ॥६॥
जनैर्जनितसंघट्टैः रूपपाशवशीकृतैः । प्रविश्य तत्पुरीं वीरो दृश्यमानः सविस्मयैः ॥७॥
[5]कण्टकं कुण्डलं चापि दत्वा कस्यचिदापणे । अन्नपानमुपादाय निर्गच्छन् वीक्ष्य रक्षकैः ॥८॥
विज्ञाय बलदेवोऽयमिति राज्ञे निवेदितः । ततस्तेन वधायास्य प्रेषितं सकलं बलम् ॥९॥
संघट्टोऽभूत्पुरद्वारे सैन्यस्य बलरोधिनः । बलेन संज्ञयाहूतः कृष्णश्च द्रुतमागतः ॥१०॥
[6]अन्नपानं सुसंस्थाप्य गजस्तम्भं बलोऽग्रहीत् । कृष्णस्तु परिघं घोरं किंचित्कुपितमानसः ॥११॥

जो बलदेव और कृष्ण पहले पुण्योदयसे लोकोत्तर उन्नतिको प्राप्त थे, चक्र आदि रत्नोंसे सहित थे, बलवान् थे, बलभद्र एवं नारायण-पदके धारक थे वे ही अब पुण्य क्षीण हो जानेसे रत्न तथा बन्धुजनोंसे रहित हो गये, प्राणमात्र ही उनके साथी रह गये और शोकके वशीभूत हो गये ॥१–२॥

केवल जीवित रहनेकी आशा रखनेवाले दोनों भाई दक्षिण दिशाकी ओर चले। वहाँ वे भूख-प्याससे व्याकुल हो मार्गमें किसी उत्तम आश्रयकी इच्छा करने लगे ॥३॥ पाण्डवोंको लक्ष्य कर वे दक्षिण मथुराकी ओर जा रहे थे कि मार्गमें हस्तवप्र नामक नगरमें पहुँचे। वहाँ कृष्ण तो उद्यानमें ठहर गये और बलदेव संकेत कर तथा वस्त्रसे अपना समस्त शरीर ढँककर अन्न-पानी लेनेके लिए नगरमें प्रविष्ट हुए ॥४–५॥ उस नगरमें अच्छदन्त नामका राजा रहता था, धृतराष्ट्रके वंशका था, जो पृथिवीमें प्रसिद्ध धनुर्धारी और यादवोंके छिद्र ढूँढ़नेवाला था ॥६॥ वीर बलदेवने ज्यों ही उस नगरमें प्रवेश किया त्यों ही उनके रूप-पाशसे वशीभूत हुए लोगोंके झुण्डके-झुण्ड आश्चर्यसे चकित हो उन्हें देखने लगे ॥ ७ ॥ बलदेवने बाजारमें किसीके लिए अपना कड़ा और कुण्डल देकर उससे अन्नपान—खाने-पीनेकी सामग्री खरीदी और उसे लेकर जब वे नगरके बाहर निकल रहे थे तब राजाके पहरेदारोंने देखकर तथा 'यह बलदेव है' इस प्रकार पहचान कर राजाके लिए खबर कर दी। फिर क्या था, राजाने उनके वधके लिए अपनी समस्त सेना भेज दी ॥८–९॥

नगरके द्वारपर बलदेवको रोकनेवाली सेनाकी बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गयी। बलदेवने संकेतसे कृष्णको बुलाया और वे शीघ्र ही वहाँ आ गये ॥१०॥ बलदेवने अन्न-पानको किसी जगह अच्छी तरह रखकर हाथी बाँधनेका एक खम्भा लिया तथा कृष्णने कुछ क्रुद्धचित्त हो भयंकर अर्गल उठाया ॥११॥

---

१. प्राप्तामुन्नतिं म.। २. यत्काङ्क्षिणौ म., ख., ङ.। ३. यातौ ख., ङ., म.। ४. 'स तत्पुरं' ख.। ५. कण्ठकं म.। ६. अन्नं पानं च सुस्थाप्य म.। अन्नं पानं च संस्थाप्य ख.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुरङ्गं ततः सैन्यं सनायकमितस्ततः । हन्यमानं ननाशाभ्यां विह्वलीभूतमानसम् ॥१२॥
समादायान्नपानं तौ निर्गत्य नगरात्ततः । वनं विजयमागत्य सरो रम्यमपश्यताम् ॥१३॥
स्नात्वा सरसि तौ तत्र जिनं नत्वा मनःस्थितम् । चित्रमभ्यवहृत्यान्नं पयः पीत्वातिशीतलम् ॥१४॥
विश्रम्य च क्षणं वीरौ प्रयान्तौ[1] दक्षिणां दिशम् । कौशाम्ब्याख्यं वनं भीमं प्रविष्टौ परदुर्गमम् ॥१५॥
खगरावखरारावमुखरीकृतदिग्मुखम् । तृष्णार्तमृगयूथानां गम्यं प्रोन्मृगतृष्णकम् ॥१६॥
ग्रीष्मोग्रतापपरुषवहन्मारुतदुस्सहम् । दावदग्धलताजालगुल्मपादपखण्डकम् ॥१७॥
असंभाव्याम्भसि भ्राम्यत्श्वापदश्वासशब्दके । वने वनेचरोद्भिन्नकुम्भिकुम्भास्तमौक्तिके ॥१८॥
आरोहति वियन्मध्यं सुतीव्रे तीव्ररोचिषि[2] । जगौ जनार्दनो ज्येष्ठं गुणज्येष्ठमिति श्रमी ॥१९॥
पिपासाकुलितोऽत्यर्थमार्य शुष्कौष्ठतालुकः । शक्नोमि पदमप्येकं न च यातुमतः परम् ॥२०॥
तत्पाययं पयः शीतमार्य तृष्णापहारि माम् । सद्दर्शनमिवानादौ संसारे सारवर्जिते ॥२१॥
इत्युक्ते स्नेहसंचारसमार्द्रीकृतमानसः[3] । स जगाद बलः [4]कृष्णमुष्णनिश्वासमोचिनम् ॥२२॥
[5]तात शीतलमानीय पानीयं पाययाम्यहम् । त्वं जिनस्मरणाम्भोभिस्तावत्तृष्णां विमर्दय ॥२३॥
निरस्यति पयस्तृष्णां स्तोकां वेलामिदं पुनः । जिनस्मरणपानीयं पीतं तां मूलतोऽस्यति ॥२४॥

तदनन्तर इन दोनोंके द्वारा मार पड़नेपर वह चतुरंग सेना अपने सेनापतिके साथ विह्वल-चित्त हो इधर-उधर भाग गयी ॥१२॥

तदनन्तर अन्न-पान लेकर दोनों भाई नगरसे निकल विजय नामक वनमें आये। वहाँ उन्होंने एक सुन्दर सरोवर देखा ॥१३॥ सरोवरमें स्नान कर हृदयमें स्थित जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर नाना प्रकारका भोजन किया, अत्यन्त शीतल पानी पिया और क्षण-भर विश्राम किया। विश्रामके बाद दोनों वीर फिर दक्षिण दिशाकी ओर चले और चलते-चलते दूसरोंके लिए अत्यन्त दुर्गम कौशाम्बी नामके भयंकर वनमें प्रविष्ट हुए ॥१४-१५॥ उस वनकी समस्त दिशाएँ पक्षियों तथा शृगालोंके शब्दोंसे शब्दायमान थीं, प्याससे पीड़ित मृगोंके झुण्ड वहाँ इधर-उधर फिर रहे थे, बड़ी ऊँची मृगतृष्णा वहाँ उठ रही थी, ग्रीष्मके उग्र सन्तापसे कठोर बहती हुई वायुसे वह वन अत्यन्त असह्य था, तथा दावानलसे वहाँकी लताओंके समूह, झाड़ियाँ और वृक्षोंके समूह जल गये थे ॥१६-१७॥

जहाँ पानीके मिलनेकी कोई सम्भावना नहीं थी, जहाँ दौड़ते हुए जंगली जानवरोंकी श्वासका शब्द हो रहा था, तथा जहाँ वनेचरोंके द्वारा विदीर्ण किये हुए हाथियोंके गण्ड-स्थलोंसे बिखरकर मोती इधर-उधर पड़े थे, ऐसे वनमें पहुँचकर जब अत्यन्त तीक्ष्ण सूर्य आकाशके मध्यमें आरूढ़ हो रहा था तब थके हुए कृष्णने गुणोंसे श्रेष्ठ बड़े भाई—बलदेवसे कहा कि 'हे आर्य! मैं प्याससे बहुत व्याकुल हूँ, मेरे ओठ और तालु सूख गये हैं, अब इसके आगे मैं एक डग भी चलनेके लिए समर्थ नहीं हूँ ॥१८-२०॥ इसलिए हे आर्य! अनादि एवं सारहीन संसारमें सम्यग्दर्शनके समान तृष्णाको दूर करनेवाला शीतल जल मुझे पिलाइए'॥२१॥

इस प्रकार कहनेपर स्नेहके संचारसे जिनका मन आर्द्र हो रहा था ऐसे बलदेवने गरम-गरम श्वास छोड़नेवाले कृष्णसे कहा कि 'हे भाई! मैं शीतल पानी लाकर अभी तुम्हें पिलाता हूँ तुम तबतक जिनेन्द्र भगवान्‌के स्मरणरूपी जलसे प्यासको दूर करो ॥ २२-२३ ॥ यह पानी तो थोड़े समय तकके लिए ही प्यासको दूर करता है पर जिनेन्द्र भगवान्‌का स्मरणरूपी

---

१. प्रयातौ म. । २. सूर्ये । ३. मानसं म. । ४. कृष्णं दीर्घनिःश्वास ग. । ५. ततः म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छायायामस्य वृक्षस्य शीतलायामिहास्यताम् । आनयामि जलं तेऽहं शीतलं शीतलाशयात् ॥२५॥
अग्रजः प्रतिपाद्यैवमनुजं मनसा वहन् । जगाम जलमानेतुं निजं श्रममचिन्तयन् ॥२६॥
कृष्णोऽपि च यथोद्दिष्टां तरुच्छायां घनां श्रितः । क्षितौ मृदुमृदि श्लक्ष्णवाससा संवृताङ्गकः[1] ॥२७॥
वामे जानुनि विन्यस्य दक्षिणं चरणं क्षणम् । [2]श्रमव्यपोहनायासावशेत गहने हरिः ॥२८॥
तं प्रदेशं [3]तदैवासौ जरासूनुर्यदृच्छया । एकाकी पर्यटन्प्राप्तो मृगयाव्यसनप्रियः ॥२९॥
यो हरिस्नेहसंभारो हरिप्राणरिरक्षया । द्वारिकाया विनिर्गत्य प्राविशन्मृगवद्वनम् ॥३०॥
स तत्र विधिनानीय तदानीं विनियोजितः । अद्राक्षीद्दूरतोऽस्पष्टं किंचिदग्रे धनुर्धरः ॥३१॥
मरुच्चलितवस्त्रान्तजनितभ्रान्तिरन्तिके । प्रसुप्तमृगकर्णोऽयं चलतीति विचिन्त्य सः ॥३२॥
गुल्मगूढवपुर्गाढमाकर्णाकृष्टकार्मुकः । विव्याध व्याधधीस्तीक्ष्णशरेण चरणं हरेः ॥३३॥
[4]विद्धपादतलः शौरिरुत्थाय सहसाखिलाः । दिशो निरीक्ष्य सोऽदृष्ट्वा परमुच्चैर्जगाविति ॥३४॥
विद्धपादतलोऽहं भो केनाकारणवैरिणा । कथ्यतां कुलमात्मीयं नाम च स्फुटमत्र मे ॥३५॥
अज्ञातकुलनामानं नरं नावधिषं रणे । कदाचिदपि योऽहं ही किं ममेदमुपागतम् ॥३६॥
तद् ब्रवीतु भवान् को मो [5]योऽज्ञातकुलनामकः । अज्ञातवैरसंबन्धो वने जातो ममान्तकः ॥३७॥

पानी पीते ही के साथ उस तृष्णाको जड़-मूलसे नष्ट कर देता है ॥२४॥ तुम यहाँ इस वृक्षकी शीतल छायामें बैठो, मैं तुम्हारे लिए सरोवरसे शीतल पानी लाता हूँ ॥२५॥

इस प्रकार छोटे भाई कृष्णसे कहकर उसे अपने हृदयमें धारण करते हुए बलदेव अपने श्रमका विचार न कर पानी लेनेके लिए गये ॥२६॥ इधर कृष्ण भी बतायी हुई वृक्षकी सघन छायामें जा पहुँचे और कोमल वस्त्रसे शरीरको ढँककर मृदु मृत्तिकासे युक्त पृथिवीपर पड़ रहे। उसी सघन वनमें वे थकावट दूर करनेके लिए बाँयें घुटनेपर दाहिना पाँव रखकर क्षण-भरके लिए सो गये ॥२७–२८॥

शिकार-व्यसनका प्रेमी जरत्कुमार अकेला उस वनमें घूम रहा था, सो अपनी इच्छासे उसी समय उस स्थानपर आ पहुँचा ॥२९॥ भाग्यकी बात देखो कि कृष्णके स्नेहभरा जो जरत्कुमार उनके प्राणोंकी रक्षाकी इच्छासे द्वारिकासे निकलकर मृगकी तरह वनमें प्रविष्ट हो गया था वही उस समय विधाताके द्वारा लाकर उस स्थानपर उपस्थित कर दिया गया। धनुर्धारी जरत्कुमारने दूरसे आगे देखा तो उसे कुछ अस्पष्ट-सा दिखायी दिया ॥३०–३१॥ उस समय कृष्णके वस्त्रका छोर वायुसे हिल रहा था इसलिए जरत्कुमारको यह भ्रान्ति हो गयी कि यह पास ही में सोये हुए मृगका कान हिल रहा है। फिर क्या था झाड़ोंसे जिसका शरीर छिपा हुआ था और शिकारीके समान जिसकी क्रूर बुद्धि हो गयी थी ऐसे जरत्कुमारने बड़ी मजबूतीसे कान तक धनुष खींचकर तीक्ष्ण बाणसे कृष्णका पैर वेध दिया ॥३२–३३॥ पदतलके विद्ध होते ही श्रीकृष्ण सहसा उठ बैठे और सब दिशाओंमें देखनेके बाद भी जब कोई दूसरा मनुष्य नहीं दिखा तब उन्होंने जोरसे इस प्रकार कहा कि किस अकारण वैरीने मेरा पदतल वेधा है। वह यहाँ मेरे लिए अपना कुल तथा नाम साफ-साफ बतलाये ॥३४–३५॥ जिस मुझने युद्धमें कभी भी अज्ञात-कुल और अज्ञात नामवाले मनुष्यका वध नहीं किया आज उस मेरे लिए यह क्या विपत्ति आ पड़ी ? ॥३६॥ इसलिए कहो कि अज्ञातकुल नामवाले आप कौन हैं ? तथा जिसके वैरका पता नहीं ऐसा कौन इस वनमें मेरा घातक हुआ है ? ॥३७॥

---

१. संभृताङ्गकः ख., क. । २. श्रमव्यपोहनाय + असौ + अशेत । ३. तदेवासौ म. । ४. विद्धतालपदः म. । ५. यज्ज्ञात म., क., ङ. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इत्युक्ते सोऽब्रवीदस्ति हरिवंशोद्भवो नृपः । वसुदेव इति ख्यातः पिता यो हलिचक्रिणोः ॥३८॥
सूनुर्जरत्कुमारोऽस्मि तस्याहमतिवल्लभः । एकवीरो भ्रमाम्यत्र वने भीरुदुरासदे ॥३९॥
सोऽहं नेमिजिनादेशभीरुर्वनचरैर्वने । द्वादशाब्दप्रमाणं च वसाम्यत्र प्रियानुजः ॥४०॥
इयन्तं वसता कालमरण्ये वचनं मया । आर्यलोकस्य कस्यापि न श्रुतं को भवानिह ॥४१॥
इति श्रुत्वा हरिर्ज्ञात्वा भ्रातरं स्नेहकातरः । एह्येहि भ्रातरत्रेति संभ्रमेण तमाह्वयत् ॥४२॥
सोऽपि ज्ञात्वानुजं प्राप्तो हाकारमुखराननः । क्षितिक्षिप्तधनुर्बाणो निपत्यास्थाच्च पादयोः ॥४३॥
उत्थाप्य तं हरिः प्राह कण्ठलग्नं महाशुचम् । मातिशोकं कृथा ज्येष्ठ दुर्लङ्घ्या भवितव्यता ॥४४॥
प्रमादस्य निरासाय निरस्तसुखसंपदा । चिरं पुरुषशार्दूल सेविता वनवासिता ॥४५॥
करोति सज्जनो यत्नं दुर्यशःपापभीरुकः । दैवे तु कुटिले तस्य स यत्नः किं करिष्यति ॥४६॥
ततस्तेन हरिः पृष्टो वनागमनकारणम् । आदितोऽकथयद्वृत्तं द्वारिकादाहदारुणम् ॥४७॥
श्रुत्वा [1]गोत्रक्षयं सोऽपि प्रलापमुखरोऽवदत् । हा भ्रातः कृतमातिथ्यं मया ते चिरदर्शनात् ॥४८॥
किं करोमि क्व गच्छामि क्व लभे चित्तनिर्वृतिम् । दुःखं च दुर्यशो लोके हन्त्रा ते हा मयार्जितम् ॥४९॥
इत्यादि प्रलपन्नुक्तः कृष्णेनासौ सुचेतसा । प्रलापं त्यज राजेन्द्र कृत्स्नं स्वकृतभुग् जगत् ॥५०॥

श्रीकृष्णके इस प्रकार कहनेपर जरत्कुमारने कहा कि हरिवंशमें उत्पन्न हुए एक वसुदेव नामके राजा हैं जो बलदेव और कृष्णके पिता हैं। मैं जरत्कुमार नामका उन्हींका अतिशय प्यारा पुत्र हूँ। जहाँ कायर मनुष्य प्रवेश नहीं कर सकते ऐसे इस वनमें मैं अकेला ही वीर घूमता रहता हूँ। नेमिजिनेन्द्रने आज्ञा की थी कि जरत्कुमारके द्वारा कृष्णका मरण होगा सो मैं उनकी इस आज्ञासे डरकर बारह वर्षसे इस वनमें रह रहा हूँ। मुझे अपना छोटा भाई कृष्ण बहुत ही प्यारा था, इसलिए इतने समयसे यहाँ रह रहा हूँ, इस बीचमें मैंने किसी आर्यका नाम भी नहीं सुना। फिर आप यहाँ कौन हैं? ॥३८-४१॥

जरत्कुमारके यह वचन सुन कृष्णने जान लिया कि यह हमारा भाई है तब स्नेहसे कातर हो उन्होंने 'हे भाई! यहाँ आओ, यहाँ आओ' इस प्रकार संभ्रमपूर्वक उसे बुलाया ॥४२॥ जरत्कुमारने भी जान लिया कि यह हमारा छोटा भाई है तब 'हाय हाय' शब्दसे मुखको शब्दायमान करता हुआ वह वहाँ आया और धनुष-बाणको पृथिवीपर फेंक श्रीकृष्णके चरणोंमें आ गिरा ॥४३।

कृष्णने उसे उठाया तो वह कण्ठमें लगकर महाशोक करने लगा। कृष्णने कहा कि हे बड़े भाई! अत्यधिक शोक मत करो, होनहार अलंघनीय होती है ॥४४॥ हे श्रेष्ठ पुरुष! आपने प्रमादका निराकरण करनेके लिए समस्त सुखसम्पदाओंको छोड़ चिरकाल तक वनमें निवास करना स्वीकृत किया। अपयश और पापसे डरनेवाला सज्जन पुरुष बुद्धिपूर्वक प्रयत्न करता है परन्तु दैवके कुटिल होनेपर उसका वह यत्न क्या कर सकता है? ॥४५-४६॥

तदनन्तर जरत्कुमारने कृष्णसे वनमें आनेका कारण पूछा तो उन्होंने प्रारम्भसे लेकर द्वारिकादाह तकका सब दारुण समाचार कह सुनाया ॥४७॥ गोत्रका क्षय सुनकर जरत्कुमार प्रलापसे मुखर होता हुआ बोला कि हा भाई! चिरकालके बाद आप दिखे और मैंने आपका यह अतिथि-सत्कार किया! ॥४८॥ मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? चित्तकी शान्ति कहाँ प्राप्त करूँ? हा कृष्ण! तुझे मारकर मैंने लोकमें दुःख तथा अपयश दोनों प्राप्त किये ॥४९॥ इत्यादि रूपसे विलाप करते हुए जरत्कुमारसे उत्तम हृदयके धारक कृष्णने कहा कि हे राजेन्द्र! प्रलापको

---

१. गोत्रक्षयः म.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुखं वा यदि वा दुःखं दत्ते कः कस्य संसृतौ । मित्रं वा यदि वामित्रः स्वकृतं कर्म तत्त्वतः ॥५१॥
तोयार्थं मे गतो रामो यावन्नायाति सत्वरम् । प्रयाहि तावदक्षान्तिः कदाचित्स्यात्त्वयि प्रभौ[1] ॥५२॥
गच्छ त्वमादितो वार्तां पाण्डवेभ्यो निवेदय । हितास्तेऽस्मत्कुलस्याप्ताः करिष्यन्ति तव स्थितिम् ॥५३॥
उक्त्वेति कौस्तुभं तस्मै दत्त्वाभिज्ञानमादरात् । परावृत्यान्तरं स्तोकं व्रजेति प्रतिपादितः ॥५४॥
उक्त्वासौ क्षम्यतां देव ममेति करकौस्तुभः । शनैरुद्धृत्य तं बाणं परावृत्तपदोऽगमत् ॥५५॥
तस्मिन्गते हरिस्तीव्रव्रणवेदनयार्दितः[2] । उत्तराभिमुखो भूत्वा कृतपञ्चनमस्कृतिः ॥५६॥
कृत्वा नेमिजिनेन्द्राय वर्तमानाय साञ्जलिः । पुनः पुनर्नमस्कारं गुणस्मरणपूर्वकम् ॥५७॥
जिनेन्द्रविहृतिध्वस्त[3]समस्तोपद्रवा यतः । ततः कृतशिराः शौरिः क्षितिशय्यामधिश्रितः ॥५८॥
वस्त्रसंवृतसर्वाङ्गः सर्वसङ्गनिवृत्तधीः । सर्वत्र मित्रभावस्थः शुभचिन्तामुपागतः ॥५९॥
पुत्रपौत्रकलत्राणि ते भ्रातृगुरुबान्धवाः । अनागतविधातारो धन्या ये तपसि स्थिताः ॥६०॥
अन्तःपुरसहस्राणि सहस्राणि सुहृद्गणाः । [4]अविधाय तपः कष्टं कष्टं वह्निमुखे मृताः ॥६१॥
कर्मगौरवदोषेण मयापि न कृतं तपः । सम्यक्त्वं मेऽस्तु संसारपातहस्तावलम्बनम् ॥६२॥

छोड़ो, समस्त जगत् अपने किये हुए कर्मको अवश्य भोगता है ।।५०।। संसारमें कौन किसके लिए सुख देता है ? अथवा कौन किसके लिए दुःख देता है ? और कौन किसका मित्र है अथवा कौन किसका शत्रु है ? यथार्थमें अपना किया हुआ कार्य ही सुख अथवा दुःख देता हैं* ।।५१।। बड़े भाई राम मेरे लिए पानी लानेके लिए गये हैं सो जबतक वे नहीं आते हैं तबतक तुम शीघ्र ही यहाँसे चले जाओ। सम्भव है कि वे तुम्हारे ऊपर अशान्त हो जायें ।।५२।। तुम जाओ और पहलेसे ही पाण्डवोंके लिए सब समाचार कह सुनाओ। वे अपने कुलके हितकारी आप्तजन हैं अतः तुम्हारी अवश्य रक्षा करेंगे ।।५३।। इतना कहकर उन्होंने पहचानके लिए उसे आदरपूर्वक अपना कौस्तुभमणि दे दिया और कुछ थोड़ा मुड़कर कहा कि जाओ। हाथमें कौस्तुभमणि लेते हुए जरत्कुमारने कहा कि हे देव ! मुझे क्षमा कीजिए। इस प्रकार कहकर और धीरेसे वह बाण निकालकर वह उलटे पैरों वहाँसे चला गया ।।५४–५५।।

जरत्कुमारके चले जानेपर कृष्ण व्रणकी तीव्र वेदनासे व्याकुल हो गये। उन्होंने उत्तराभिमुख होकर पंच-परमेष्ठियोंको नमस्कार किया ।।५६।। वर्तमान तीर्थंकर श्री नेमिजिनेन्द्रको हाथ जोड़कर गुणोंका स्मरण करते हुए बार-बार नमस्कार किया ।।५७।। क्योंकि जिनेन्द्र भगवान्के विहारसे पृथिवीके समस्त उपद्रव नष्ट हो चुके हैं इसलिए शिर रखकर वे पृथ्वीरूपी शय्यापर लेट गये ।।५८।।

तदनन्तर जिन्होंने वस्त्रसे अपना समस्त शरीर ढँक लिया था, सब परिग्रहसे जिनकी बुद्धि निवृत्त हो गयी थी और जो सबके साथ मित्रभावको प्राप्त थे ऐसे श्रीकृष्ण इस प्रकारके शुभ विचारको प्राप्त हुए ।।५९।।

वे पुत्र, पोते, स्त्रियाँ, भाई, गुरु और बान्धव धन्य हैं जो भविष्यत्का विचार कर अग्निके उपद्रवसे पहले ही तपश्चरण करने लगे ।।६०।। बड़े कष्टकी बात है कि हजारों स्त्रियाँ और हजारों मित्रगण तपका कष्ट न कर अग्निके मुखमें मृत्युको प्राप्त हो गये ।।६१।। कर्मके प्रबल भारसे मैंने भी तप नहीं किया इसलिए मेरा सम्यग्दर्शन ही मुझे संसारपातसे बचानेके लिए

---

१. प्रभो क. । २. वेदनमार्दितः म. । ३. विनतिर्ध्वस्त-म. । ४. अभिधाय म., क., ख., ग., घ. ।

* को सुख को दुख देत है कर्म देत झकझोर ।
उरझै सुरझै आप ही ध्वजा पवनके जोर ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इत्यादि शुभचिन्तात्मा भविष्यत्तीर्थकृद्धरिः । बद्धायुष्कतया मृत्वा तृतीयां पृथिवीमितः ॥६३॥

शार्दूलविक्रीडितम्

दक्षो दक्षिणभारतार्धविभुतामुद्भाव्य [1]भव्यप्रजा-
बन्धुर्बन्धुजनाम्बुधेरहरहर्वृद्धिं विधाय प्रभुः ।
पूर्णं वर्षसहस्रमेकमगमत्संजीव्य कृष्णो गतिं
भोगी स्वाचरणोचितो जिनतया[2] यो योक्ष्यते दर्शनात् ॥६४॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ हरिगत्यन्तरवर्णनो नाम द्वाषष्टितमः सर्गः ॥६२॥

□

हस्तावलम्बनरूप हो ॥६२॥ इत्यादि शुभ विचार जिनकी आत्मामें उत्पन्न हो रहे थे, और जो भविष्यत् कालमें तीर्थंकर होनेवाले थे ऐसे श्रीकृष्ण पहलेसे ही बद्धायुष्क होनेके कारण मरकर तीसरी पृथिवीमें गये ॥६३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो आगे चलकर सम्यग्दर्शनके कारण तीर्थंकर पदसे युक्त होंगे वे नीतिनिपुण, भव्य प्रजाके परम बन्धु, भोगी कृष्ण, दक्षिण भरतार्धकी विभुताको प्रकट कर, प्रतिदिन बन्धुजनरूपी सागरकी वृद्धिको बढ़ाकर एवं एक हजार वर्ष तक जीवित रहकर अपने आचरणके अनुरूप तीसरी पृथिवीमें गये ॥६४॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें कृष्णके परलोकगमनका वर्णन करनेवाला बासठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६२॥

□

१. सेव्यप्रजां बन्धु क. । २. जनतया म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रिषष्टितमः सर्गः

रथोद्धतावृत्तम्

स्नेहवानथ जलार्थमाकुलो विष्णुमात्मनि वहन् हलायुधः ।
वारितोऽप्यशकुनैः[1] पदे पदे दूरमन्तरमितो वनान्तरे ॥१॥
धावतोऽस्य मृगयूथवर्त्मना लोभितस्य मृगतृष्णिकाम्भसा ।
प्रत्यभासत दिशां कदम्बकं प्रोत्तरङ्गसरसीमयं तदा ॥२॥
अभ्यलोकि कलिता कलस्वनैश्चक्रवाककलहंससारसैः ।
सीरिणाथ सरसी तरङ्गिणी भृङ्गनादितसरोजसंकुला ॥३॥
चेतसास्य सहसा तदीक्षणाद्दीर्घमुच्छ्वसितमङ्गसङ्गिना ।
मारुतेन शिशिरेण सौहृदं संमुखेन गदितं सुगन्धिना ॥४॥
संपतद्भिरमितः पिपासुभिः श्वापदैः समयमीक्षितस्ततः ।
आससाद सरसीं स सादरो वन्यहस्तिमदवारिवासिताम् ॥५॥
वारि तीर्थमवगाह्य शीतलं संप्रपाय निरपास्य तृड्व्यथाम् ।
पद्मपत्रपुटिकां स वारिणा संप्रपूर्य परिवृत्य वाससा ॥६॥
आदधाव पदधूतधूलिभिर्धूसरीकृतशरीरमूर्धजः ।
कम्पमानहृदयः स शङ्कया प्रत्यपायबहुले वने हरौ ॥७॥

अथानन्तर स्नेहसे भरे बलदेव जल प्राप्त करनेके लिए बहुत व्याकुल हुए। वे हृदयमें कृष्णको धारण किये हुए आगे बढ़े जाते थे। यद्यपि अपशकुन उन्हें पद-पदपर रोकते थे तथापि वे दूसरे वनमें बहुत दूर जा पहुँचे ॥ १ ॥ जिस मार्गसे मृगोंके झुण्ड जाते थे बलदेव उसी मार्गसे दौड़ते जाते थे और वे जगह-जगह मृगतृष्णाको जल समझकर लुभा जाते थे। उस समय उन्हें समस्त दिशाएँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो लहराते हुए तालाबोंसे युक्त ही हों ॥ २ ॥ तदनन्तर बलदेवको एक तालाब दिखा जो मधुर शब्द करनेवाले चक्रवाक, कलहंस और सारस पक्षियोंसे युक्त था, तरंगोंसे व्याप्त था एवं भ्रमर-गुंजित कमलोंसे सहित था ॥ ३ ॥ तालाबके देखते ही बलदेवके हृदयने एक लम्बी साँस ली और उसकी शीतल सुगन्धित वायु सम्मुख आकर इनके शरीरसे लग गयी जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो उसने अपनी मित्रता ही प्रकट की हो ॥ ४ ॥

तदनन्तर चारों ओरसे आनेवाले प्यासे जंगली जानवर जिन्हें भयपूर्ण दृष्टिसे देख रहे थे ऐसे बलदेव जंगली हाथियोंके मदजलसे सुवासित उस सरोवरपर बड़े आदरसे जा पहुँचे ॥५॥ उन्होंने घाटमें अवगाहन कर शीतल पानी पिया, अपनी प्यासकी व्यथा दूर कर और कमलके पत्तीका एक पात्र बनाकर उसे पानीसे भरा तथा कपड़ेसे उसे ढँक लिया ॥ ६ ॥ पानी लेकर वे बड़े वेगसे दौड़े। उस समय पैरोंके आघातसे उड़ी धूलिसे उनके शिरके बाल धूसरित हो गये थे और 'मैं अनेक विघ्नोंसे भरे वनमें कृष्णको अकेला छोड़ आया हूँ' इस आशंकासे उनका हृदय बार-बार कम्पित हो रहा था ॥ ७ ॥

---

१. वारितोऽपि शकुनैः म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूरतस्तमथ तत्र दृष्टवान् संवृताङ्गमभितोऽम्बरेण सः ।
आस्त एव भुवि यत्र शायितः सूरशौरिरिति[1] दीर्घनिद्रया ॥८॥
सुप्त एव सुखनिद्रया हरिः सुप्रबोधमुपगच्छतु स्वयम् ।
[2]इत्युपेक्ष्य हरिबोधनं तदा तत्प्रबोधनमसौ प्रतीक्षते[3] ॥९॥
वीर ! किं स्वपिषि दीर्घमित्यलं स्वापमुज्झ पिब तोयमिच्छया ।
इत्युदीर्णमधुरस्वरः पुनः सन्निरुद्ध[4]वचनोऽवतिष्ठते ॥१०॥
सीरिणा क्षतजगन्धतस्ततः कृष्णसंवरणवाससोऽन्तरे ।
संप्रवेशनिजनिर्गमाकुला[5] प्रैक्षि तीक्ष्णमुखकृष्णमक्षिका[6] ॥११॥
[7]संकटोद्घटिततन्मुखो हरिं वीक्ष्य वान्तजनकान्तजीवितम् ।
हा हतोऽस्मि मृत एव तृष्णया विष्णुरित्युपरि तस्य सोऽपतत् ॥१२॥
मोहमूढमनसोऽस्य मूर्छया प्राप्तयोपकृतमप्यनिष्टया ।
स्नेहपाशदृढबन्धनो हली प्राणहानमकरिष्यदन्यया ॥१३॥
बोधमाप्य परितः परामृशन् केशवस्य वपुरात्मपाणिना ।
पश्यति स्म चरणव्रणव्रजं तीव्रगन्धरुधिरारुणक्षमम् ॥१४॥
सुप्त एव विषमेषुणा हरिः विद्ध [8]एष चरणेन केनचित् ।
दुष्प्रबोधहरिमारकोऽत्र कोऽपूर्वमद्य मृगयाफलं श्रितः ॥१५॥

तदनन्तर वस्त्रके द्वारा सब ओरसे जिनका शरीर ढँका था ऐसे कृष्णको बलदेवने दूरसे देखा। देखकर वे सोचने लगे कि मैं शूरवीर कृष्णको जिस भूमिमें सुला गया था यह वहाँ गहरी नींदमें सो रहा है ॥ ८ ॥ पास आनेपर उन्होंने विचार किया कि अभी यह सुखनिद्रासे सो रहा है इसलिए स्वयं ही जगने दिया जाये। इस प्रकार कृष्णको जगानेकी उपेक्षा कर वे स्वयं ही उनके जागनेकी प्रतीक्षा करने लगे ॥ ९ ॥ जब कृष्ण बहुत देर तक नहीं जगे तब बलदेवने कहा, 'वीर ! इतना अधिक क्यों सो रहे हो ? बहुत हो गया, निद्रा छोड़ो और इच्छानुसार जल पिओ'। इस प्रकार मधुर स्वरमें एक-दो बार कहकर वे पुनः वचन रोककर चुप बैठ रहे ॥१०॥

तदनन्तर बलभद्रने देखा कि तीक्ष्ण मुखवाली काली एक मक्खी रुधिरकी गन्धसे कृष्णके ओढ़े हुए वस्त्रके भीतर घुस तो गयी पर निकलनेका मार्ग न मिलनेसे व्याकुल हो रही है ॥ ११ ॥ यह देख उन्होंने शीघ्र ही कृष्णका मुख उघाड़ा और उन्हें निष्प्राण देख 'हाय मैं मारा गया' यह कहकर वे एकदम चीख पड़े। 'हाय-हाय ! यह कृष्ण प्याससे मर ही गया है' यह सोच वे उनके शरीरपर गिर पड़े ॥ १२ ॥ कृष्णके मोहसे जिनका मन अत्यन्त मोहित हो रहा था ऐसे बलदेवको तत्काल मूर्च्छा आ गयी। यद्यपि मूर्च्छाका आना अनिष्ट था तथापि उस समय उसने इनका बड़ा उपकार किया। अन्यथा स्नेहरूपी पाशसे दृढ़ बँधे हुए बलदेव अवश्य ही प्राण त्याग कर देते ॥ १३ ॥ सचेत होनेपर वे अपने हाथसे चारों ओर कृष्णके शरीरका स्पर्श करने लगे। उसी समय उन्होंने तीव्र गन्धसे युक्त रुधिरसे लाल-लाल पैरका घाव देखा ॥ १४ ॥ और देखते ही निश्चय कर लिया कि सोते समय ही किसीने तीक्ष्ण बाणसे इसे पैरमें प्रहार किया है। जिनका जागना कठिन है ऐसे कृष्णको मारनेवाला

---

१. सूरिसौरि म.। २. इत्यपेक्ष्य म.। ३. प्रतीक्ष्यते म.। ४. सन्निरुध्य वचनो म., क., ङ.। ५. माकुलाः म.। ६. मक्षिकाः म., ङ.। ७, संघटोद्घटित–म., घ.। ८. एव म.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इत्युदीर्य कुपितो हली बली सिंहनादमकरोद्भयंकरम् ।
व्यापिनं विपिनदुर्गसंचरद्व्याघ्रसिंहकरिदर्पशातनम् ॥१६॥
संजगौ च शयितो ममानुजः छद्मना विधिविधानयोगतः ।
येन केनचिदहेतुवैरिणा संददातु लघु सोऽद्य दर्शनम् ॥१७॥
[1]सुप्तमात्रमपशस्त्रमानतं मुक्तमानमसकृत्पलायिनम् ।
प्रत्यवाययुतमङ्गनां शिशुं घ्नन्ति शत्रुमपि नो यशोधनाः ॥१८॥
उच्चकैरिति गदन् समन्ततः संप्रधाय कियदप्यवान्तरम् ।
सोऽन्यदीयपदवीमनाप्नुवन्नेत्य कृष्णमुपगृह्य रोदिति ॥१९॥
हा जगत्सुभग ! हा जगत्पते ! हा जनाश्रयण ! हा जनार्दन !
हापहाय गतवानसि क्व मां हानुजैहि लघु हेति चारुदत् ॥२०॥
हारि वारि परितापहारि तं पाययत्यपि विचेतनं मुहुः ।
क्राम्यतीषदपि तन्न तद्गले दूरमव्यमनसीव दर्शनम् ॥२१॥
मार्ष्टि मार्दवगुणेन पाणिना संमुखं मुखमुदीक्षते मुदा ।
लेढि जिघ्रति विमूढधीर्वचः श्रोतुमिच्छति धिगात्ममूढताम् ॥२२॥
द्यौरिवोरुविभवाग्निभस्मिता द्वारिकेति किमिवासि तप्तवान् ।
अक्षयैर्बहुविधाकरैश्चिता प्रागिवास्ति ननु भारतावनिः ॥२३॥

कौन पुरुष आज यहाँ शिकारके फलको प्राप्त हुआ है ? ॥१५॥ इस प्रकार कहकर बलवान् बलदेवने कुपित हो ऐसा भयंकर सिंहनाद किया जो समस्त वनमें व्याप्त हो गया तथा जिसने वनके दुर्गम स्थानोंमें चलनेवाले व्याघ्र, सिंह और हाथियोंका गर्व नष्ट कर दिया ॥१६॥ उन्होंने कहा कि भाग्यके फेरसे सोते हुए मेरे छोटे भाईको जिस किसी अकारण वैरीने छलसे मारा है वह आज शीघ्र ही मुझे दर्शन दे—मेरे सामने आवे ॥१७॥ यशरूपी धनको धारण करनेवाले शूरवीर ऐसे शत्रुको भी नहीं मारते जो सो रहा हो, शस्त्ररहित हो, नम्रीभूत हो, मानरहित हो, बार-बार पीठ दिखाकर भाग रहा हो, अनेक विघ्नोंसे युक्त हो, स्त्री हो अथवा बालक हो ॥१८॥ इस प्रकार जोर-जोरसे कहते हुए वे इधर-उधर कुछ दूर तक आकर दौड़े भी परन्तु जब उन्हें किसी दूसरेका मार्ग नहीं मिला तब वे कृष्णके पास वापस आकर तथा उन्हें गोदमें लेकर रोने लगे ॥१९॥

हाय जगत्के प्रिय ! हा जगत्के स्वामी ! हा समस्त जनोंको आश्रय देनेवाले ! हा जनार्दन ! तू मुझे छोड़ कहाँ चला गया ? हा भाई ! तू जल्दी आ, जल्दी आ—इस प्रकार कहते हुए वे चिरकाल तक रोते रहे ॥२०॥ वे चेतनाशून्य—निर्जीव कृष्णको सुन्दर एवं सन्तापको दूर करनेवाला पानी बार-बार पिलाते थे परन्तु जिस प्रकार दूरानुदूर भव्यके हृदयमें सम्यग्दर्शन नहीं प्रवेश करता है उसी प्रकार उनके गलेमें वह जल थोड़ा भी प्रवेश नहीं करता था ॥२१॥ मूढ़बुद्धि बलदेव सामने बैठकर कोमल हाथोंसे उनका मुख धोते थे, हर्षपूर्वक उसे देखते थे, चूमते थे, सूँघते थे, और वचन सुननेकी इच्छा करते थे। आचार्य कहते हैं कि ऐसी आत्म-मूढ़ताको धिक्कार है ॥२२॥ 'स्वर्गके समान विशाल वैभवसे युक्त द्वारिकापुरी अग्निसे भस्म हो गयी है इसलिए अब जीनेकी क्या आवश्यकता है' ? यह सोचकर क्या तू तप्त हो रहा है ? अरे नहीं भाई ! नाना प्रकारकी अविनाशी खानोंसे युक्त भरत क्षेत्रकी भूमि पहलेके समान अब भी मौजूद

---

१. सुप्तमत्त क. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भोजराजकुलयादवक्षये भ्रष्टबन्धुरिति किं विमुह्यसि ।
सत्यसन्ध मयि ते मम त्वयि प्राणितीह सकलास्ति बन्धुता ॥२४॥
पूर्वजन्मसु बहुष्वनारतं पश्यतो हि तव मामिहापि च ।
एकताननयनस्य नोदभूत्तृप्तिरद्य किमिवासि तृप्तवान् ॥२५॥
त्वां पयोर्थमपहाय मोहतो हा गतेन[1] नररत्नभूषणम् ।
लोकसारमपहारितं मया सन्निधौ तु मम कोऽस्य हारकः ॥२६॥
कंसकोपमदपर्वताशनेर्भूनभोगविषदृग्गरुत्मनः ।
पीतमागधयशोऽम्बुधेरभूद्गोष्पदे वत निमज्जनं तव ॥२७॥
शार्वरं तिमिरमुग्रतेजसा शात्रवं त्वमिव निर्विधूय यः ।
विष्टपं तपति विष्टरश्रवः पश्य सोऽस्तमुपयात्यहर्पतिः ॥२८॥
दीर्घनिद्रमिव वीक्ष्य संहृतैरस्तमस्तकनिवेशितैः करैः ।
त्वां विशोचति रविर्भुवां त्रये स्वाप एष तव कस्य नो शुचे ॥२९॥
वारुणीमतिनिषेव्य [2]वारुणश्चक्रवाकनिवहैरुदश्रुभिः ।
शोचितः पतति भानुमानधः को न वा पतति वारुणीप्रियः ॥३०॥
शोकभारमपनीय सांप्रतं सन्निमज्जति पयोनिधौ रविः ।
दातुमेष तव वा जलाञ्जलिं कालविद्धि कुरुते यथोचितम् ॥३१॥

है ! ॥२३॥ 'भोजराजका कुल तथा समस्त यादवोंका क्षय हो जानेसे मैं बन्धुरहित हो गया हूँ' यह सोचकर क्या तू मोहको प्राप्त हो रहा है ? पर ऐसा करना उचित नहीं। हे दृढ़प्रतिज्ञ ! यदि तू और मैं जीवित हूँ तो समझ कि हमारे समस्त बन्धुओंका समूह जीवित है ॥२४॥ अनेकों पूर्व जन्ममें तथा इस जन्ममें भी निरन्तर मेरी ओर तू स्थिर नयन होकर देखता रहा फिर भी तुझे तृप्ति नहीं हुई फिर आज तू तृप्त कैसे हो गया ? ॥२५॥ हाय ! मोहवश तुझे अकेला छोड़ पानीके लिए गये हुए मैंने लोकके सारभूत नररूपी रत्नोंका आभूषण अपहृत करा लिया। अन्यथा मेरे पास रहते इसे हरनेवाला कौन था ? ॥२६॥ अरे भाई ! तू तो कंसके क्रोध और मदरूपी पर्वतको नष्ट करनेके लिए वज्रस्वरूप था। भूमिगोचरी और विद्याधररूपी सर्पोंको नष्ट करनेके लिए गरुड़स्वरूप था और जरासन्धके यशरूपी सागरको पीनेवाला था पर खेद है कि तू इस गोष्पदमें डूब गया ॥२७॥

हे नारायण ! देख, जो सूर्य तेरे समान अपने उग्र तेजसे शत्रुतुल्य रात्रिके अन्धकारको नष्ट कर संसारको सन्तप्त करता है वही अब अस्ताचलकी ओर जा रहा है ॥२८॥ इस सूर्यने तुझे दीर्घ निद्रामें निमग्न देखकर ही मानो अपने किरणरूपी हाथ अन्य स्थानोंसे संकोच कर अस्ताचलरूपी मस्तकपर रख छोड़े हैं और उनसे ऐसा जान पड़ता है मानो तेरे प्रति शोक ही कर रहा है। सो ठीक ही है क्योंकि तेरा यह सोना तीनों लोकोंमें किसके शोकके लिए नहीं है ? ॥२९॥ जो वारुणी—पश्चिम दिशारूपी मदिराका अधिक सेवन कर लाल-लाल हो रहा है तथा आँसुओंसे युक्त चक्रवाक पक्षियोंका समूह जिसकी दशापर शोक प्रकट कर रहा है ऐसा यह सूर्य नीचे गिरा जा रहा है सो ठीक ही है क्योंकि वारुणी (मदिरा) का प्रेमी कौन व्यक्ति नीचे नहीं गिरता है ? ॥३०॥ अथवा यह सूर्य, इस समय शोकका भार दूर कर समुद्रमें अवगाहन कर रहा है सो ऐसा जान पड़ता है मानो स्नान कर तुझे जलांजलि ही देना चाहता है। ठीक

१. मतेन म. । २. वा + अरुणः इतिच्छेदः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सान्ध्यरागपटलेन सर्वतः पश्य संस्थगितमङ्ग विष्टपम् ।
त्वय्यतिस्वपति रोदनोद्गतैरक्षिरागनिवहैरिहाङ्गिनाम् ॥३२॥
देवभक्त भज सांध्यवन्दनां वन्ध्यया किमयि देव ![1] निद्रया ।
संध्ययापि गलितं गलद्रुचा वेगवद्रविरथानुबन्धया[2] ॥३३॥
एकवर्णमखिलं जगत्खला कुर्वती समवसर्पति द्रुतम् ।
ध्वान्तसंततिरपेतदर्शना कालवृत्तिरतिदुःषमा यथा ॥३४॥
श्वापदानि पदशब्दगन्धतो [3]घ्राणकर्णबलवन्ति विन्दते ।
एहि दुर्गमिह संश्रयावहे क्षेमतो व्रजति तत्र नौ निशा ॥३५॥
चित्रिते कुसुमचित्रमण्डपे दत्तबन्धुनृपलोकदर्शनः ।
[4]श्रीपुषि स्वपिषि यो वधूजनैः सोपधानशयने महामृदौ ॥३६॥
त्वं महीध्रवनरन्ध्रवृत्तिभिर्गृद्धकाककुलजम्बुकादिभिः ।
सोऽद्य भक्षकगणैरुपासितः श्रीपते [5]स्वपिषि शार्करक्षितौ[6] ॥३७॥
कालिनीः प्रणयकेलिकोपिनीस्त्वं प्रसाद्य कुपितः प्रसादितः ।
यः पुरा नयति यामिनीं रतैः सोऽद्य किं विगतचेतनात्मना ॥३८॥
चारुवारवनितासुगीतकैर्वन्दिवृन्दपटुपाठनिस्वनैः ।
यः प्रबोधमुषसि प्रपद्यसे सोऽद्य वीर ! विरसैः शिवारुतैः ॥३९॥

ही है क्योंकि कालको जाननेवाला पुरुष यथायोग्य कार्य करता ही है ॥३१॥ हे भाई ! देख, यह समस्त संसार सन्ध्याकी लालीसे सब ओरसे आच्छादित हो रहा है सो ऐसा जान पड़ता है मानो तुम्हारे दीर्घ निद्रामें निमग्न होनेपर संसारके सब मनुष्योंके रोदनजन्य नेत्रोंकी लालिमासे ही मानो लाल-लाल हो रहा है ॥३२॥ हे देवभक्त ! यह सन्ध्या भी फीकी पड़ बड़े वेगसे जाते हुए सूर्यके रथके पीछे-पीछे चली जा रही है। उठ सन्ध्या-वन्दन कर। हे देव ! व्यर्थकी निद्रासे क्या कार्य सिद्ध होता है ? ॥३३॥ जो अतिदुःषमा नामक छठे कालके समान समस्त जगत्को एक वर्ण (ब्राह्मणादि वर्णके भेदसे रहित) एक वर्णरूप, पक्षमें एक श्यामवर्ण रूप कर रही है, अतिशय दुष्ट है, एवं अपेतदर्शना—सम्यग्दर्शनसे रहित (पक्षमें देखनेकी शक्तिसे रहित) है ऐसी यह अन्धकारकी सन्तति बड़े वेगसे सब ओर फैल रही है ॥३४॥ देखो, ये घ्राणेन्द्रिय और कर्णेन्द्रियके बलसे युक्त जंगली जानवर अपने पैरोंकी गन्ध और शब्दको ग्रहण कर इस ओर आ रहे हैं इसलिए आओ इस दुर्गमें चलें वहाँ अपनी रात्रि कुशलपूर्वक बीत जायेगी ॥३५॥ हे भाई ! जो तू फूलोंसे चित्र-विचित्र, आश्चर्यकारी मण्डपमें बन्धुजनों तथा राजाओंको दर्शन देता था और लक्ष्मीको पुष्ट करनेवाले, अत्यन्त कोमल एवं तकियोंसे सुशोभित शय्यापर स्त्रीजनोंके साथ शयन करता था हे लक्ष्मीपते ! वही तू आज पर्वत और वनकी गुफाओंमें रहनेवाले गीध, कौवे तथा शृगाल आदि भक्षक जन्तुओंके समूहसे सेवित होता हुआ कंकरीली-पथरीली भूमिपर सो रहा है ॥३६-३७॥ जो तू पहले प्रणय-क्रीड़ासे कुपित स्त्रियोंको प्रसन्न करता था और तेरे कुपित हो जानेपर वे तुझे प्रसन्न करती थीं और इस तरह रति-क्रीड़ासे रात्रि व्यतीत करता था वही तू आज चेतनासे रहित हो रात्रि व्यतीत कर रहा है ॥३८॥ हे वीर ! जो तू पहले प्रातःकालमें सुन्दर वारवनिताओंके सुसंगीतों एवं वन्दीजनोंके उच्च पाठोंके शब्दोंसे प्रबोधको प्राप्त होता

१. किमपि म. । २. रथानुबन्ध्यया म. । ३. प्राणकणबर्लवन्ति म. । ४. श्रीयुषि म., ख. । ५. स्वपिति म. । ६. भसितक्षितौ ङ. । तक्षितक्षितौ म., ख. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्वत्प्रवृत्तिमिव वेदितुं [1]पुरः पूर्वमित्रपतिसुप्रयुक्तया[2] ।
संध्ययाप्युषसि सानुरागया रज्यते शयनतो विरज्यताम् ॥४०॥
अभ्युदेति करभिन्नपङ्कजश्रीसमग्रमुदयाचलादयम् ।
द्राक् प्रधानपुरुषायतेऽधुना दातुमर्घमिव घर्मदीधितिः ॥४१॥
चाटुकारशतमत्र सीरिणा प्राणवल्लभतया कृतं हरौ ।
निष्फलं [3]सकलमप्यभूत्पुरा गाढसुप्त इव मुग्धबालके ॥४२॥
तं प्रधृत्य भुजपञ्जरोदरे स्पर्शनेन्द्रियसुखं भजन् शिशोः ।
जन्मनीव वनमध्यमाट सच्छत्रधारगुरुकंसशङ्कया[4] ॥४३॥
इत्यनेकदिनरात्रियापनैः सोऽत्यतन्द्रितमनोवचोवपुः ।
प्रत्यहं हरिवपुर्वहन् भ्रमन् प्रत्यपद्यत रतिं न कानने ॥४४॥
तीव्रधर्मसमयात्यये ततः प्रावृषा शमितघर्मसंपदा ।
गर्जदम्बुदघटाम्बुवर्षणैः प्रापितं जगदितस्ततः शिवम् ॥४५॥
वासुदेववचनाज्जरासुतः शावरं विषमवेषमुद्वहन् ।
दाक्षिणां [5]मधुरलोकसंकुलां [6]प्राप पाण्डवपुरीमखण्डितः ॥४६॥

था—जागता था, वही तू आज शृगालियोंके विरस शब्दोंसे प्रबोधको प्राप्त हो रहा है ॥३९॥ हे भाई ! अब प्रातःकाल हुआ चाहता है। पूर्व सूर्यरूप पतिके द्वारा प्रेषित अनुरागवती सन्ध्या भी लाल हो रही है सो ऐसी जान पड़ती है मानो तुम्हारा समाचार जाननेके लिए ही सूर्यने उसे पहलेसे भेजा है अतः शय्यासे विरक्त होओ—उठ कर बैठो ॥४०॥ देखो, यह उदयाचलसे सूर्य उदित हो रहा है सो ऐसा जान पड़ता है मानो इस समय तुझ प्रधान पुरुषके लिए अपनी किरणोंसे विकसित कमलोंकी लक्ष्मीसे युक्त अर्घ देनेके लिए ही शीघ्रतासे बढ़ा आ रहा है ॥४१॥

बलभद्रको कृष्ण प्राणोंसे अधिक प्यारे थे इसलिए उन्होंने उन्हें जगानेके लिए सैकड़ों प्रिय वचन कहे परन्तु जिस प्रकार पहलेसे प्रगाढ़ नींदमें सोये भोले-भाले बालकके विषयमें कहे प्रिय वचन निष्फल जाते हैं उसी प्रकार उनके वे प्रिय वचन निष्फल गये ॥४२॥ जिस प्रकार जन्मकालमें कंसके भयसे बलभद्रने कृष्णको अपने भुजरूप पंजरके मध्यमें ले लिया था तथा वसुदेवने उनपर छत्र लगा लिया था उसी प्रकार अब भी उन्होंने स्पर्शनेन्द्रियसम्बन्धी सुखका अनुभव करते हुए उन्हीं भुजरूप पंजरके मध्यमें ले लिया और लेकर वे वनके मध्यमें इधर-उधर घूमने लगे ॥४३॥

इस प्रकार अनेक दिन-रात व्यतीत होनेपर भी उनके मन, वचन और शरीरमें जरा भी आलस्य नहीं आया—वे प्रतिदिन कृष्णके शवको धारण किये हुए वनमें घूमते रहें तथा रंच मात्र भी प्रीतिको प्राप्त नहीं हुए ॥४४॥

जब ग्रीष्म ऋतु चली गयी और आतपके वैभवको नष्ट करनेवाली वर्षा ऋतुने गरजते बादलोंकी घटा तथा जलवर्षासे जगत्में जहाँ-तहाँ हर्ष प्राप्त करा दिया तब कृष्णके कहे अनुसार भीलके विषम वेषको धारण करता हुआ जरत्कुमार अखण्डित रूपसे सुन्दर लोगोंसे व्याप्त पाण्डवोंकी पुरी दक्षिण मथुरामें पहुँचा ॥ ४५–४६ ॥

१. परः म. । २. पूर्वमित्रसुपतिप्रयुक्तया क. । ३. सफल. म. । ४. पुरु ङ., पुर म., सच्छत्रधारो गुरुर्वसुदेवो यस्मिन्नटने (क. टि.) । ५. मथुर म. । ६. प्राप्य म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोऽवगाह्य हरिदूतकार्यकृत् प्रश्रयेण विहितोचितस्थितिः[1] ।
सन्निषण्णमुदपृच्छयतेशितुः क्षेममित्यथ युधिष्ठिरादिभिः ॥४७॥
मन्युरुद्धगलगद्गदस्वरः सन्निवेद्य स जरात्मजो[2] जगौ ।
द्वारिकास्वजनदाहपूर्वकं स्वप्रमादवशतो मृतिं हरेः ॥४८॥
प्रत्ययाय हरिदत्तकौस्तुभं प्रस्फुरत्किरणजालकं पुरः ।
संप्रदर्श्य पुरुदुःखपूरितः पूत्कृतिं व्यतनुतातनुस्वनः ॥४९॥
तत्क्षणेलमुदतिष्ठदाकुलः कुन्त्यधिष्ठितकलत्रकण्ठजः ।
पाण्डुपुत्रभवनेऽखिले रुदत्याकुलस्य जलधेरिव ध्वनिः ॥५०॥
हा प्रधानपुरुषैकधीर हा हा जगद्व्यसननोदनोद्यत ।
हा त्वयीह विधिना किमीहितं हा वतेति रुदितं चिरं त्वभूत् ॥५१॥
संहतातिबहुरोदनैस्ततः पाण्डवादिबहुबान्धवैर्जगद् ।
वृत्तवेदिभिरदायि विष्णवे संस्थितस्वजनतृप्तये जलम् ॥५२॥
जारसेयमपनीय पूर्वदुर्वेषमीषदवधीरिताधिकम्[3] ।
अग्रतस्तमभिकृत्य पाण्डवा जग्मुरार्तहलभृद्दिदृक्षया ॥५३॥

कृष्णके दूतका कार्य करनेवाले जरत्कुमारने पाण्डवोंकी सभामें प्रवेश कर विनयपूर्वक दूतकी सब मर्यादाओंका पालन किया। तदनन्तर जब वह सभामें बैठ गया तब युधिष्ठिर आदिने उससे स्वामीकी कुशल-वार्ता पूछी ॥४७॥ शोकसे जिसका कण्ठ रुँध गया था तथा स्वर गद्गद हो गया था ऐसे जरत्कुमारने द्वारिका तथा कुटुम्बीजनोंके जल जाने और अपने प्रमादसे कृष्णके मारे जानेका सब समाचार कह दिया और विश्वास दिलानेके लिए देदीप्यमान किरणोंसे युक्त, कृष्णका दिया कौस्तुभमणि उनके सामने दिखा दिया। तदनन्तर बहुत भारी दुःखसे भरा जरत्कुमार गला फाड़-फाड़कर जोरसे रोने लगा ॥४८–४९॥ उसी समय माता कुन्ती तथा पाण्डवोंकी स्त्रियोंके कण्ठसे उत्पन्न रोनेका विशाल शब्द उठ खड़ा हुआ। यही नहीं, उस समय जो वहाँ विद्यमान थे वे सभी रोने लगे जिससे पाण्डवोंके भवनमें समुद्र-जैसी ध्वनि गूँज उठी ॥५०॥ वे सब रोते-रोते कह रहे थे कि 'हा प्रधानपुरुष! हा अद्वितीय धीर! हा जगत्का कष्ट दूर करनेमें सदा उद्यत रहनेवाले! विधिने तुम्हारे ऊपर यह क्या चेष्टा की। हाय-हाय, बड़े दुःखकी बात है' इस प्रकार चिरकाल तक रुदन चलता रहा ॥५१॥

तदनन्तर जब रोना-चीखना बन्द हुआ तब जगत्का वृत्तान्त जाननेवाले पाण्डव आदि बान्धवोंने सब ओर घेरकर बैठे आत्मीयजनोंके सन्तोषके अर्थ कृष्णके लिए जल दिया* ॥५२॥ पहलेका निन्द्यवेष दूर कर जिसने मानसिक व्यथाको कुछ-कुछ कम कर दिया था ऐसे

१. स्थितः क. । २. जरात्मको म. । ३. ईषत् किंचित् अवधीरितः आधिर्मनोव्यथा येन स तम् कप्समासान्तः ।

* मृतकके लिए जल देनेकी पद्धति जैन संस्कृतिमें नहीं है। फिर ग्रन्थकर्ताने इसका वर्णन क्यों किया? यहाँ उनका यह भाव जान पड़ता है कि पाण्डव आदि स्वयं तो जल देनेके पक्षमें नहीं थे किन्तु उस समय उनके दुःखमें समवेदना प्रदर्शित करनेके लिए जो अन्य जनसमूह आकर एकत्रित हो गया था उनकी तृप्तिके लिए पाण्डवोंने कृष्णको जल दिया था। उस समय वैदिक संस्कृतिके अनुसार लोकमें मृतकके लिए जल देनेकी पद्धति थी और पाण्डव लोककी सब विधियोंको जाननेवाले थे इसलिए लोकाचारसे उन्होंने यह कार्य किया था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ते कियद्भिरपि वासरैर्दुतं द्रौपदीप्रभृतिभामिनीजनैः ।
मातृपुत्रसहिताः ससाधनाः प्राप्य तं ददृशुरादृता वने ॥५४॥
व्यर्थिकाः शवशरीरगोचरोद्वर्तनस्नपनमण्डनक्रियाः ।
वर्तयन्तमुपगृह्य तं चिरं बान्धवा रुरुदुरुच्चकैःस्वनाः ॥५५॥
कुन्त्यधीनतनया विनम्य तं बोधयन्ति हरिसंस्क्रियां प्रति ।
कोपनः स न ददाति याचितस्तं तदा विषफलं शिशुर्यथा ॥५६॥
सज्ज्यतां सुलघुमज्जनक्रिया पाण्डवास्तदनुपानभोजनम् ।
भोक्तुमिच्छति पिपासितः प्रभुः क्षिप्रमित्यभिहिते तथाकृते ॥५७॥
मज्जयत्यभिनिवेश्य विष्टरे भोजयत्यपि स पाययत्यपः ।
व्यर्थतामपि तदास्य पाण्डवा मेनिरेऽनुचरणाः कृतार्थताम् ॥५८॥
निन्युरित्थमनुवृत्तितस्तु ते तत्र मेघसमयं बलानुगाः ।
मोहमेघपटलं बलस्य वा भेत्तुमाविरभवत्तदा शरत् ॥५९॥
सप्तपर्णसुरभेः सदा तदा वैष्णवस्य वपुषो वपुष्मतः ।
दूरदेशमगमद्विगन्धता गन्धयोर्हि न तयोः सहस्थितिः ॥६०॥
आययावथ कृतव्यवस्थितिर्भ्रातृपूर्वनिजसारथिः सुरः ।
सोऽयमाभिमुखकाललब्धितः बोधनाय बलदेवसन्निधिम् ॥६१॥

जरत्कुमारको आगे कर पाण्डव लोग दुःखसे पीड़ित बलदेवको देखनेकी इच्छासे चले ॥५३॥ द्रौपदी आदि रानियों, माता-पुत्रों एवं सेनाके साथ बड़ी शीघ्रतासे चलकर कुछ दिनों बाद उन्होंने वन-में बलदेवको प्राप्त कर देखा। उस समय बलदेव कृष्णके मृत शरीरको उबटन लगाना, स्नान कराना तथा आभूषण पहनाना आदि व्यर्थ क्रियाएँ कर रहे थे। उन्हें देख सब बन्धुजन आदरके साथ उनसे लिपट गये और उच्च शब्द कर चिरकाल तक रोते रहे ॥५४-५५॥ कुन्ती और उनके पुत्रोंने नमस्कार कर बलदेवसे कृष्णके दाह-संस्कारकी प्रार्थना की परन्तु जिस प्रकार बालक विषफलको नहीं देता है उलटा कुपित होता है उसी प्रकार बलदेवने भी माँगनेपर कृष्णका मृतक शरीर नहीं दिया, उलटा क्रोध प्रकट किया ॥५६॥ बलदेवने कहा कि हे पाण्डवो ! स्नानकी शीघ्र तैयारी करो और फिर उत्तम भोजन-पानकी व्यवस्था करो, हमारा प्रभु (कृष्ण) प्यासा है तथा शीघ्र ही भोजन करना चाहता है। बलदेवके इस प्रकार कहनेपर पाण्डवोंने स्नान तथा भोजन-पानकी तैयारी की ॥५७॥

बलदेवने कृष्णको आसनपर बैठाकर नहलाया, भोजन कराया और पानी पिलाया परन्तु उनका वह सब प्रयत्न व्यर्थ गया। यद्यपि पाण्डव भी बलदेवके इस कार्यको व्यर्थ मानते थे तथापि वे उनके कहे अनुसार आचरण कर अपने आपको कृतकृत्य मानते थे ॥५८॥ इस प्रकार बलदेवके पीछे-पीछे चलनेवाले पाण्डवोंने उनके कहे अनुसार कार्य कर उस वनमें वर्षाकाल पूर्ण किया। तदनन्तर उनके मोहरूपी मेघपटलको भेदनेके लिए शरद्काल प्रकट हुआ ॥५९॥ पहले कृष्णके शरीरसे सदा सप्तपर्णके समान सुगन्धि आती थी परन्तु उस समय दुर्गन्ध आने लगी और वह दुर्गन्ध दूर देश तक फैल गयी सो ठीक ही है क्योंकि दोनों गन्धोंकी एक साथ स्थिति नहीं होती ॥६०॥

अथानन्तर—कृष्णका भाई सिद्धार्थ, जो सारथि था, मरकर स्वर्गमें देव हुआ था और जिसने दीक्षा लेते समय सम्बोधनेकी व्यवस्था स्वीकृत की थी, काललब्धिकी निकटतासे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूभृतोऽतिविषमं तटं रथः संव्यतीत्य दलितः समे पथि ।
संधिमस्य दधता पुरः पुनर्दर्शितः सपदि तेन सीरिणे ॥६२॥
सीरिणा स गदितस्तटे गिरेः स्यन्दनस्तव न[1] भज्यते स्म यः ।
मार्गशीर्णपतितस्य तस्य भो जन्मनीह पुनरुद्गतिः कुतः ॥६३॥
प्रत्युवाच विबुधो हरेर्महाभारतामरणपारदर्शिनः[2] ।
जारसेयकरकाण्डकाण्डकापातमात्रपतितस्य सा कुतः ॥६४॥
इत्युदीर्य मृदुपद्मिनीं पुना रोपयत्यसलिले शिलातले ।
पर्यपृच्छत्कुतः शिलातले पद्मिनीप्रभव इत्यनेन सः ॥६५॥
[3]सोत्तरेण तु हली सुधाशिना सिञ्चता सुचिरशुष्कपादपम् ।
[4]गोकलेवरतृणाम्बुदायिना कृच्छ्रतः प्रतिविबोधितस्तदा ॥६६॥
सत्यमेव विगतोऽसुभिर्हरिर्यद् ब्रवीषि मम मानुषेदृशम्[5] ।
सत्यमेतदिह नान्यथेति [6]सन् भव्य ! सर्वमगदीर्यथास्थितम् ॥६७॥
सर्वमत्र जिनभाषितं पुरा जानतापि भवता भवस्थितिम् ।
मासषट्कमतिवाहितं वृथा केशवस्य वहता कलेवरम् ॥६८॥

सम्बोधनेके लिए बलदेवके निकट आया ॥६१॥ उसने एक मायामयी ऐसा रथ बलदेवके लिए दिखाया जो पर्वतके अत्यन्त विषम तटको पार कर तो टूटा नहीं और सम—चौरस मार्गपर आते ही टूट गया। वह देव उस रथकी सन्धिको फिरसे ठीक कर रहा था परन्तु वह ठीक होता नहीं था ॥६२॥ बलदेवने यह देख उससे कहा कि हे भाई ! बड़ा आश्चर्य है जो तेरा रथ पर्वत-के विषम तटपर तो टूटा नहीं और वह समान मार्गमें टूट गया। अब इसका इस जन्ममें फिरसे खड़ा होना कैसे सम्भव है ? इसे ठीक करनेका तेरा प्रयत्न व्यर्थ है ॥६३॥ इसके उत्तरमें उस देवने कहा कि जो कृष्ण महाभारत-जैसे रणका पारदर्शी है अर्थात् उतने विकट युद्धमें जिसका बाल बाँका नहीं हुआ, वह जरत्कुमारके हाथमें स्थित धनुषसे छूटे बाणके लगने मात्रसे नीचे गिर गया। अब इस जन्ममें उसका फिरसे उठना कैसे सम्भव हो सकता है ? ॥६४॥ इतना कह वह देव, जहाँ पानीका अंश भी नहीं था ऐसे शिलातलपर कोमल कमलिनी लगाने लगा। यह देख बलदेवने पूछा कि शिलातलपर कमलिनीकी उत्पत्ति कैसे हो सकती है ? ॥६५॥ इसका उत्तर देवने दिया कि निर्जीव शरीरमें कृष्णकी उत्पत्ति कैसे हो सकती है ? उत्तर देनेके बाद वह एक सूखे वृक्षको सींचने लगा। बलदेवने फिर पूछा—भाई ! सूखे वृक्षको सींचनेसे क्या लाभ है ? इसका देवने उत्तर दिया कि मृत कृष्णको स्नानादि करानेसे क्या लाभ है ? तदनन्तर वह देव एक मरे बैलके शरीरको घास-पानी देने लगा। यह देख बलदेवने फिर पूछा कि अरे मूर्ख ! इस मृतक शरीरको घास-पानी देनेसे क्या लाभ है ? इसके उत्तरमें देवने कहा कि मृतक कृष्णको आहार-पानी देनेसे क्या लाभ है ? इस प्रकार उस देवने बड़ी कठिनाईसे बलदेवको समझाया ॥६६॥ प्रतिबोधको प्राप्त हुए बलदेव कहने लगे कि कृष्ण सचमुच ही प्राणरहित हो गया है। हे भद्र मानुष ! तू जो कह रहा है वह ऐसा ही है, यही सत्य है, इसमें रंचमात्र भी अन्यथा बात नहीं है; हे सत्पुरुष ! हे भव्य ! तूने ठीक ही कहा है ॥६७॥ इसके उत्तरमें देवने कहा कि यहाँ जो कुछ हुआ है वह सब नेमिजिनेन्द्र पहले ही

१. नु म. । २. महाभारताम्भरण–म. । महाभारतान्तरण–ख. । ३. सोऽन्तरे रुत म., ख. । ४. गोकुलेवर-तृणाम्बु–म. । ५. हे मानुष ! ईदृशम् इति च्छेदः, मानुषेदृशी म., क., ङ. । ६. स क. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोऽत्र कस्य बहिरङ्गहिंसकः स्वान्तरङ्गशुभकर्म रक्षकम् ।
[1]आयुरेव निजत्राणकारणं तत्क्षये भवति सर्वथा क्षयः ॥६९॥
[2]संपदत्र करिकर्णचञ्चलाः संगमाः प्रियवियोगदुःखदाः ।
जीवितं मरणदुःखनीरसं मोक्षमक्षयमतोऽर्जयेद्बुधः ॥७०॥
[3]पूर्वरूपधरवंशदेवतो लब्धबोधिरिति वीतमोहकः ।
निर्बभौ हलधरस्तदाधिकं धूतमेघपटलः शशी यथा ॥७१॥
पाण्डवैः सह जरासुतान्वितैस्तुङ्गयभिख्यगिरिमस्तके ततः ।
संविधाय हरिदेहसंस्क्रियां जारसेयसुवितीर्णराज्यकः ॥७२॥
शृङ्गमेवमचलस्य तस्य तैः संगतैः [4]सवितितं ततः श्रितः ।
संगहानकृतनिश्चयो बलो भङ्गुरं समधिगम्य जीवितम् ॥७३॥
पल्लवस्थजिननाथशिष्यतां संसृतोऽस्म्यहमिह स्थितोऽपि सन् ।
इत्युदीर्य जगृहे मुनिस्थितिं पञ्चमुष्टिभिरपास्य मूर्धजान् ॥७४॥
पारणासु पुरसंप्रवेशने वैपरीत्यमवगम्य योषिताम् ।
सत्रियोगभृदतो रणव्रती संतुतोष वनभैक्ष्यवर्तनैः ॥७५॥
पाण्डवास्तु बहुराजकन्यकाः संप्रदाय हरिवंशभूभुजे[5] ।
पुत्रयोजितनिजश्रियोऽगमन् पल्लवाख्यविषयं जिनं प्रति ॥७६॥

कह चुके थे। संसारकी स्थितिको जानते हुए भी आपने कृष्णका मृतशरीर धारण कर छह माह व्यर्थ ही बिता दिये ॥६८॥ इस संसारमें कौन किसका बहिरंग हिंसक है? अपना अन्तरंग शुभ कर्म ही रक्षक है। यथार्थमें आयु ही अपनी रक्षाका कारण है, उसका क्षय होनेपर सब प्रकारसे क्षय हो जाता है ॥६९॥ सम्पत्ति हाथीके कानके समान चंचल है। संयोग, प्रियजनोंके वियोगसे दुःख देनेवाले हैं और जीवन मरणके दुःखसे नीरस है। एक मोक्ष ही अविनाशी है अतः विद्वज्जनोंको उसे ही प्राप्त करना चाहिए ॥७०॥ इस प्रकार पूर्वरूपको धारण करनेवाले अपने वंशके देवसे जिन्हें रत्नत्रयकी प्राप्ति हुई थी और जिनका मोह दूर हो गया था ऐसे बलदेव, मेघपटलसे रहित चन्द्रमाके समान उस समय अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥७१॥

तदनन्तर जरत्कुमार और पाण्डवोंके साथ उन्होंने तुंगीगिरिके शिखरपर कृष्णका दाह-संस्कार कर जरत्कुमारको राज्य दिया और जीवनको क्षणभंगुर समझ परिग्रहके त्यागका निश्चय कर साथियोंके साथ उसी पर्वतके शिखरका आश्रय लिया। उन्होंने, 'मैं यहाँ रहता हुआ भी पल्लव देशमें स्थित श्री नेमिजिनेन्द्रकी शिष्यताको प्राप्त हुआ हूँ' यह कहकर पंच-मुष्टियोंसे शिरके बाल उखाड़कर मुनि-दीक्षा धारण कर ली ॥७२–७४॥ बलदेव शरीरसे अत्यन्त सुन्दर थे। इसलिए पारणाओंके लिए नगरमें प्रवेश करते समय स्त्रियोंकी विपरीत चेष्टा होने लगी। यह जान त्रियोगको धारण करनेवाले रणव्रती बलदेव 'यदि वनमें भिक्षा मिले तो लेंगे अन्यथा नहीं' ऐसी प्रतिज्ञा कर सन्तोषको प्राप्त हुए ॥७५॥ पाण्डवोंने हरिवंशके राजा जरत्कुमारके लिए बहुत-सी राज-कन्याएँ दीं, अपने पुत्रोंके लिए राज्यलक्ष्मी सौंपी और उसके बाद जिनेन्द्र भगवान्‌को लक्ष्य कर सबके-सब पल्लव देशकी ओर चले गये ॥७६॥

१. आयुकर्म म.। २. संपदोऽत्र करिकर्णचञ्चलाः ख.। ३. पूर्वरूपधरवासुदेवतो क.। ४. सवितितस्ततः स्थितः क.। ५. इत ऊर्ध्वं म., क. पुस्तकयोरधोलिखितः पाठोऽधिको वर्तते। 'प्रेष्य सूर्यपुरसंज्ञिकं निजानात्मजांश्च सुनिधाय शासने। त्यक्तरागमपि पाण्डुनन्दनाः संविभज्य निजसंपदो मुदा॥'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्रौपदीप्रभृतयस्तदङ्गनाः संयमं प्रति निविष्टबुद्धयः ।
पाण्डवाननुगता जनन्यपि[1] संसृतौ विगतरूक्षधीं सती ॥७७॥
द्वादशात्मभिदयासतामनुप्रेक्षयानुमतया हलायुधः ।
[2]व्यापृतोऽभवदखण्डितस्थितिः सत्त्रिदण्डदृढखण्डनोन्मुखः ॥७८॥
तत्र नित्यमिति यत्र मूर्च्छना स्थानदेहधनसौख्यबन्धुषु ।
तत्र किंचिदपि नास्ति नित्यता आत्मनोऽन्यदिति चिन्तयत्यसौ ॥७९॥
मृत्युदुःखपरिपीडितस्य मे व्याघ्रवक्त्रमृगशावकस्य वा[3] ।
बान्धवा न शरणं धनादि वा धर्मतोऽन्यदिति चिन्तनामितः ॥८०॥
नैकयोनिकुलकोटिकूटसंसारचक्रमिह यान्ति जन्तवः ।
प्रेरिताः कटुककर्मयन्त्रकैः स्वामिभृत्यपितृपुत्रपूर्वताम् ॥८१॥
एक एव भवभृत्प्रजायते मृत्युमेति पुनरेक एव तु ।
धर्ममेकमपहाय नापरः सत्सहाय इति चैकता स्मृतिः ॥८२॥
नित्यता मम तनोरनित्यता चेतनोऽहमपचेतना तनुः ।
अन्यता मम शरीरतोऽपि यत्तत्किमङ्ग ! पुनरन्यवस्तुनः ॥८३॥
शुक्रशोणितकुबीजजन्मके सप्तधातुमयके त्रिदोषके ।
कः शुचं [4]तदनुवाशुचौ शुची रज्यते स्वपरयोः शरीरके ॥८४॥

संयमकी ओर जिनकी बुद्धि लग रही थी ऐसी द्रौपदी आदि स्त्रियाँ तथा संसारसे जिसकी बुद्धि विमुख हो गयी थी ऐसी माता कुन्ती भी पाण्डवोंके पीछे-पीछे जा रही थीं ॥७७॥

इधर अखण्ड चारित्रके धारक एवं मन, वचन, कायकी प्रवृत्तिरूप तीन दण्डोंका दृढ़ताके साथ खण्डन करनेमें तत्पर मुनिराज बलदेव, सज्जनोंको इष्ट अनित्यत्व आदि बारह अनुप्रेक्षाओंके चिन्तवनमें व्याप्त हो गये ॥७८॥ वे विचार करने लगे कि जिन महल, शरीर, धन, सांसारिक सुख और बन्धुजनोंमें 'ये नित्य हैं', यह समझकर ममताभाव उत्पन्न होता है, उनमें आत्माके सिवाय किसीमें भी नित्यता नहीं है, सभी क्षणभंगुर हैं ॥७९॥ जिस प्रकार व्याघ्रके मुखमें पड़े मृगके बच्चेको कोई शरण नहीं है, उसी प्रकार मृत्युके दुःखसे पीड़ित मेरे लिए धर्मके सिवाय न भाई-बन्धु शरण हैं और न धन ही शरण है। इस प्रकार वे अशरण अनुप्रेक्षाका चिन्तवन करते थे ॥८०॥ नाना योनियों और कुलकोटियोंके समूहसे युक्त इस संसाररूपी चक्रके ऊपर चढ़े प्राणी, महाविषम कर्मरूपी मन्त्रसे प्रेरित हो स्वामीसे भृत्य और पितासे पुत्र आदि अवस्थाओंको प्राप्त होते हैं ॥८१॥

यह जीव अकेला ही उत्पन्न होता है और अकेला ही मृत्युको प्राप्त होता है। एक धर्मको छोड़कर दूसरा इसका सहायक नहीं है। इस प्रकार वे एकत्व अनुप्रेक्षाका चिन्तवन करते थे ॥८२॥ मैं नित्य हूँ और शरीर अनित्य है। मैं चेतन हूँ और शरीर अचेतन है। जब शरीरसे भी मुझमें भिन्नता है तब दूसरी वस्तुओंसे भिन्नता क्यों नहीं होगी ? ॥८३॥ यह अपना अथवा पराया शरीर रज, वीर्यरूप निन्द्य निमित्तोंसे उत्पन्न है, सप्तधातुओंसे भरा है एवं वात, पित्त, कफ इन तीन दोषोंसे युक्त है इसलिए ऐसा कौन पवित्र आत्मा होगा जो इस अपवित्र शरीरमें

१. 'पाण्डवाननुगता जनन्यपि स्निग्धता विगतरूक्षधीस्तु या' ख. । 'पाण्डवाननुगता विमोहिता संसृतौ विगतरूक्षधीषु या ॥' ङ. । २. व्यावृतो म. । ३. 'वा स्याद् विकल्पोपमयोरिवार्थेऽपि समुच्चये' इत्यमरः । ४. तदनुगाशुचौ म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कायवाङ्मनसयोगभेदवानास्रवो भवति पुण्यपापयोः ।
कर्मबन्धदृढशृङ्खलश्चिरं संसरत्यसुभृदुग्रसंसृतौ ॥८५॥
स्याद् द्विधास्रवनिरोधलक्षणः संवरः समितिगुप्तिपूर्वकैः ।
संवरे सति सनिर्जरेऽसुभृत्सिद्ध्यति स्वकृतकर्मसंक्षयात् ॥८६॥
दुर्गतिष्वकुशलानुबन्धिनो संयमान्नु कुशलानुबन्धिनी ।
निर्जरा निरनुबन्धिनी च सा चिन्तिता परमयोगिनामुना[1] ॥८७॥
लोकसंस्थितिरनाद्यनन्तिकालोकगर्भवदुमध्यभागभाक् ।
अत्र ही षडसुकायसंहतिर्दुःखिनीति खलु लोकचिन्तना ॥८८॥
[2]स्थावरे त्रसकुलेऽखिलेन्द्रियैः पूर्णतादिषु सुधर्मलक्षणा ।
बोधिलब्धिरतिदुर्लभा भवेत्सत्समाधिमरणाप्तिसत्फला ॥८९॥
धर्म एष जिनभाषितः शिवप्राप्तिहेतुरवधादिलक्षणः ।
त्यागतोऽस्य भवदुःखितेत्यनुप्रेक्षिकान्त्यशुभचिन्तनात्मिकाः ॥९०॥
इत्यनुश्रुतमनूनधीरनुप्रेक्षिकार्थमनुभावयन् मुहुः ।
भ्रातृमोहमजयज्जयन्मुनिः सद्विविंशतिपरीषहद्विषः ॥९१॥

वियोगके समय शोकको प्राप्त होगा और संयोगके समय राग करेगा ? ॥८४॥ काययोग, वचनयोग और मनोयोग यह तीन प्रकारका योग ही आस्रव है। इसीके निमित्तसे आत्मामें पुण्य और पापकर्मका आगमन होता है। आस्रवके बाद यह जीव कर्मबन्धनरूप दृढ़ सांकलसे बद्ध होकर भयंकर संसारमें चिरकाल तक भ्रमण करता रहता है ॥८५॥ द्रव्यास्रव और भावास्रवरूप दोनों प्रकारके आस्रवका रुक जाना संवर है। यह संवर गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय और चारित्रसे होता है। निर्जराके साथ-साथ संवरके हो जानेपर यह जीव स्वकृत कर्मोंका क्षय-कर सिद्ध हो जाता है ॥८६॥ अनुबन्धिनी और निरनुबन्धिनीके भेदसे निर्जराके मूलमें दो भेद हैं। फिर अनुबन्धिनी निर्जराके अकुशला और कुशलाके भेदसे दो भेद हैं। नरकादि गतियोंमें जो प्रतिसमय कर्मोंकी निर्जरा होती है वह अकुशलानुबन्धिनी निर्जरा है और संयमके प्रभावसे देव आदि गतियोंमें जो निर्जरा होती है वह कुशलानुबन्धिनी निर्जरा है। जिस निर्जराके बाद पुनः कर्मोंका बन्ध होता रहता है वह अनुबन्धिनी निर्जरा है और जिस निर्जराके बाद पूर्वकृत कर्म खिरते तो हैं पर नवीन कर्मोंका बन्ध नहीं होता उसे निरनुबन्धिनी निर्जरा कहते हैं।

परम योगी बलदेव मुनिराजने इसी निरनुबन्धिनी अनुप्रेक्षाका चिन्तवन किया था ॥८७॥ लोककी स्थिति अनादि, अनन्त है, यह लोक अलोकाकाशके ठीक मध्यमें स्थित है। इस लोकके भीतर छह कायके जीव निरन्तर दुःख भोगते रहते हैं, ऐसा चिन्तवन करना लोकानुप्रेक्षा है ॥८८॥ प्रथम तो निगोदसे निकलकर अन्य स्थावरोंमें उत्पन्न होना ही दुर्लभ है फिर त्रसपर्याय पाना दुर्लभ है, त्रसोंमें भी इन्द्रियोंकी पूर्णता होना दुर्लभ है और इन्द्रियोंकी पूर्णता होनेपर भी समीचीन धर्म जिसका लक्षण है एवं उत्तम समाधिका प्राप्त होना जिसका फल है ऐसी बोधि अर्थात् रत्न-त्रयकी प्राप्ति होना अत्यन्त दुर्लभ है ॥८९॥ जिनेन्द्र भगवान्‌के द्वारा कहा हुआ यह अहिंसादि लक्षण धर्म ही मोक्षप्राप्तिका कारण है। इसका त्याग करनेसे संसारका दुःख प्राप्त होता है—इस प्रकार चिन्तवन करना सो अन्तिम धर्मानुप्रेक्षा है ॥९०॥ इस प्रकार परम्परासे प्रसिद्ध बारह अनुप्रेक्षाओंका बार-बार चिन्तवन करनेवाले उत्कृष्ट बुद्धिके धारक बलदेव मुनिराजने बाईस परीषहरूपी शत्रुओंको जीतकर भाईके मोहको जीत लिया ॥९१॥

१. परमयोगिनी शुभा स. । २. स्थावरेऽत्र कुशलेऽखिलेन्द्रियैः क., ङ. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बह्वभिग्रहपरिग्रहोज्ज्वलज्जाठराग्निजठरोपरोधतः ।
मोक्षसाधनतयार्धभुग्व्यधात्क्षुत्परीषहजयं महामुनिः ॥९२॥
[1]देहगिर्यवयवाटवीप्लुषा दावमूर्तिनिभया पिपासया ।
निष्प्रतिक्रियधृतिर्न [2]विव्यधे क्षान्तिनीरदघटाभिषिक्तया ॥९३॥
स्थण्डिले निशि दिवा च योगिना तीव्रवातहिमवृष्ट्यनेहसि ।
वातवर्षविषमे तरोरधोऽयोधि शीतपरुषः परीषहः ॥९४॥
पर्वताग्रशिखरस्थितोऽजयद् ग्रैष्ममुष्णमभितः परीषहम् ।
दावधूमवलयातपत्र[3]सच्छाययेव विनिवारितातपः ॥९५॥
गूढवृत्तिभिरनास्थि[4]जन्तुभिर्गाढपीतरुधिरोऽप्यकम्पितः ।
सोढवान् दृढमसौ परीषहं प्रौढदंशमशकोपलक्षितम् ॥९६॥
सोऽङ्गलग्नमनपायमप्यविश्वास्यमेकदिनदुःखपालनम् ।
सत्कलत्रमिव सत्रपं न्यधान्नाग्न्यमात्मवशगं परीषहम् ॥९७॥
ध्यानयोग्यगिरिमार्गदुर्गभुव्येक[5] एव हि विहृत्य निग्रहे ।
धर्मसाधनरतिर्यथा रिपोर्व्यापृतो[6] रतिपरीषहस्य सः ॥९८॥
भ्रूलताकुटिलचापयोजितस्त्रीकटाक्षशरवर्षिणं वृथा ।
कुर्वता मदनयोधमूर्जितस्त्रीपरीषहजयः कृतोऽमुना ॥९९॥

नाना प्रकारके नियम—आखड़ी आदिके लेनेसे उनकी जठराग्नि अत्यधिक प्रज्वलित रहती थी। उतनेपर भी वे मोक्षकी सिद्धिके लिए भूखसे आधा ही भोजन करते थे। इस प्रकार वे महामुनि क्षुधापरीषहको जीतते थे ॥९२॥ प्रतिकाररहित धैर्यके धारक बलदेव मुनिराज, शान्तिरूपी घनघटासे अभिषिक्त होनेके कारण शरीररूपी पर्वतके अवयवभूत अटवीको जलानेवाली दावानलके समान तीव्र प्याससे पीड़ित नहीं होते थे....इस प्रकार वे तृषापरीषहपर विजय प्राप्त करते थे ॥९३॥ तीव्र वायु और हिमवर्षाके समय रात-दिन खुले चबूतरेपर बैठकर तथा वायु और वर्षासे विषम वर्षा ऋतुमें वृक्षके नीचे बैठकर वे कठोर शीत परीषहके साथ युद्ध करते थे ॥९४॥ ग्रीष्म ऋतुमें पर्वतके ऊँचे शिखरपर स्थित होकर वे चारों ओरसे उष्ण परीषह सहन करते थे। उस समय उनके ऊपर दावानलका धुआँ छा जाता था, उससे ऐसा जान पड़ता था मानो वे छतरीकी छायासे गरमीकी बाधाको ही दूर कर रहे हों ॥९५॥ चुपके-चुपके आनेवाले हड्डीरहित जन्तुओं—डाँस, मच्छरोंसे उनका रुधिर खूब पिया गया फिर भी वे निश्चल रहते थे। इस प्रकार उन्होंने दंश, मशक नामक कठिन परीषहको बड़ी दृढ़तासे सहन किया था ॥९६॥ जो शरीरमें संलग्न था, अपायरहित होनेपर भी विश्वासके योग्य नहीं था, जिसका एक दिन भी पालन करना कठिन था एवं जो उत्तम स्त्रीके समान लज्जासे सहित था, ऐसे नाग्न्यपरीषहको वे अपनी इच्छानुसार सहन करते थे ॥९७॥ वे ध्यानके योग्य पहाड़ी मार्ग एवं वनकी दुर्गम भूमियोंमें अकेले ही विहार कर सदा धर्मसाधनमें प्रीति रखते थे और शत्रुकी तरह रतिपरीषहके निग्रह करनेमें संलग्न रहते थे ॥९८॥ भ्रुकुटि लतारूपी कुटिल धनुषपर चढ़ाये हुए स्त्रियोंके कटाक्षरूपी बाणोंकी वर्षा करनेवाले कामदेवरूपी योधाको व्यर्थ करनेवाले उन मुनिराजने अतिशय बलवान् स्त्री-परीषहको जीता था ॥९९॥

---

१. देहनिर्यदव–ङ. । २. वध्यते म. । ३. पत्रसंयायभेव म. । ४. –रनश्च जन्तुभिः म. । ५. दुर्गभूदेक एव म., ङ. । ६. व्यावृतो म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थभूमिविहृतिः ससंयमावश्यकेष्वपरिहाणितो व्रजन् ।
वाहनाद्यनभिसध्य चर्यया खिद्यते स्म न परीषहाख्यया ॥१००॥
प्रासुकास्वथ विविक्तभूमिषु ध्यानधौतधिषणो विभूतधीः ।
क्षेत्रकालनियतासनेत्वसौ बाध्यते स्म न निषद्ययानिशम् ॥१०१॥
ध्यानतोऽध्ययनतो मुनिः क्रमादल्पकालनियताल्पनिद्रया ।
एकपार्श्वकृतभूमिशय्यया [1]नावृतोऽपि निशि न प्रपीडितः ॥१०२॥
दुर्जनैर्निशितदुर्वचोऽस्त्रकैराहतोऽपि हृदयेऽतिदुस्सहैः ।
क्रोशबाधसहनः क्षमावृतः स्यामिति स्मृतिमदत्त धीरधीः ॥१०३॥
अस्त्रशस्त्रनिवहैर्वपुर्वधः प्राप्यते यदि नु मे तथाप्यलम् ।
सह्यते वधपरीषहो मयेत्येष बुद्धिमदधादनारतम्[2] ॥१०४॥
बाह्यमान्तरमसौ तपश्चरन्नस्थिशेषवपुषः स्थितिं प्रति ।
व्यापृतोऽपि समयव्यवस्थया याचनाख्यमजयत्परीषहम् ॥१०५॥
मौनिना निजशरीरदर्शिना संहितेन हितचन्द्र[3]चर्यया ।
लब्ध्यलब्धिसुधियामुना जितोऽलाभनामविदितः परीषहः ॥१०६॥
रूक्षशीतलविरुद्धभुक्तिजां वातपित्तकफकोपजां रुजम् ।
सोऽप्रतिक्रियतयावधीरयन् रोगसंज्ञमजयत्परीषहम् ॥१०७॥

वे संयमी मनुष्योंके आवश्यक कार्योंमें हानि न कर सवारी आदिका विचार किये बिना ही तीर्थक्षेत्रोंके लिए विहार करते थे और चर्या-परीषहसे कभी खेदखिन्न नहीं होते थे ॥१००॥ प्रासुक और एकान्त भूमियोंमें ध्यान करनेसे जिनकी बुद्धि अत्यन्त निर्मल हो गयी थी तथा जो उत्कृष्ट बुद्धिके धारक थे ऐसे बलदेव मुनिराज, क्षेत्र अथवा कालमें निश्चित आसनोंके बीच निषद्या-परीषहसे कभी दुःखी नहीं होते थे ॥१०१॥ वे मुनि ध्यान और अध्ययनमें सदा निमग्न रहते थे, इसलिए रात्रिके समय क्रम-क्रमसे बहुत थोड़ी निद्रा लेते थे वह भी पृथिवीरूपी शय्यापर एक करवटसे और बिना कुछ ओढ़े हुए····। इस प्रकार वे शय्या-परीषहसे कभी पीड़ित नहीं होते थे ॥१०२॥

धीर-वीर बुद्धिको धारण करनेवाले बलदेव मुनिराज दुर्जनोंके द्वारा तीक्ष्ण कुवचनरूपी शस्त्रोंसे हृदयमें घायल होनेपर भी कुवचनोंकी बाधा सहते हुए सदा इस बातका स्मरण रखते थे कि मुझे क्षमासे युक्त होना चाहिए ॥१०३॥ वे मुनि सदा ऐसी बुद्धि धारण करते थे कि यदि अस्त्र और शस्त्रके समूहसे मेरा शरीर वधको प्राप्त होता है तो भी मुझे अच्छी तरह वध-परीषह सहन करना चाहिए ॥१०४॥ बाह्य और आभ्यन्तर तपको करनेवाले वे मुनि, हड्डीमात्र अवशिष्ट शरीर-की स्थिरताके लिए यद्यपि चरणानुयोगकी पद्धतिसे उद्यम करते थे—चर्याके लिए जाते थे पर कभी किसीसे आहार आदिकी याचना नहीं करते थे, इस प्रकार वे याचना-परीषहको जीतते थे ॥१०५॥ वे मौनसे आहारके लिए विहार करते थे, अपना शरीरमात्र दिखाते थे, चान्द्री-चर्यासे युक्त रहते थे अर्थात् चन्द्रमाके समान अमीर-गरीब सभीके घर प्रवेश करते थे और लाभ-अलाभमें प्रसन्न रहते थे, इस प्रकार उन्होंने अलाभ-परीषहको जीत लिया था ॥१०६॥ वे रूखे, शीतल एवं प्रकृतिके विरुद्ध आहार तथा वात, पित्त और कफके प्रकोपसे उत्पन्न रोगका प्रतिकार नहीं करते थे। सदा उसकी उपेक्षा ही करते थे। इस प्रकार रोग-परीषहको उन्होंने अच्छी तरह जीत लिया था ॥१०७॥

---

१. व्यापृतोऽपि ख. । २. दनागतं म. । ३. चण्ड– म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लाक्षलेशतृणशर्करादिभिः कर्कशैः स शयनासनादिषु ।
पीडितोऽप्यविकृतान्तरस्तृणस्पर्शरूढिमरुणत्परीषहम् ॥१०८॥
अस्पृशन् करनखैस्तनुं मुनिः शोभते स्म धवलो मलावृतः ।
शैलतुङ्गशिखराश्रितो यथा कालमेघपटलावृतः शशी ॥१०९॥
नादरे परकृते कृतादरोऽनादरे च न मनोविकारवान् ।
शुद्धधीर्विषहते स्म तत्पुरस्काररूढमपरं परीषहम् ॥११०॥
वादिवाग्मिगमको महाकविः सांप्रतं सकलशास्त्रविद्भुवि ।
नास्मदन्य इति हि स्मयो मनाक् प्रज्ञया न परिषह्यदूषितः ॥१११॥
अज्ञ एष न पशुर्न मानुषो वीक्षते न हि न भाषते मृषा ।
मौनमित्यबुधवाच्यवज्ञयाज्ञानमेष सहते परीषहम् ॥११२॥
वार्तमुग्रतपसा महर्धयः पूर्वमित्यनुपलब्धितोऽधुना ।
इत्यनुक्तिरतिशुद्धदर्शनोऽदर्शनाख्यमसहत्परीषहम् ॥११६॥
इत्यशेषितपरीषहारिणा सीरिणा विषयदोषहारिणा ।
अभ्यतप्यत तपोऽतिहारिणा जैनसच्चरणभूविहारिणा[1] ॥११४॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यस्य कृतौ बलदेवतपोवर्णनो नाम त्रिषष्टितमः सर्गः ॥६३॥

शयन, आसन आदिके समय कठोर लाखके कण, तृण तथा कंकड़ आदिके द्वारा पीड़ित होनेपर भी उनके अन्तरंगमें किसी प्रकारका विकार उत्पन्न नहीं होता था और भी तृणस्पर्श-परीषहको अच्छी तरह सहन करते थे ॥१०८॥ जो हाथके नाखूनोंसे शरीरका कभी स्पर्श नहीं करते थे—नखोंसे शरीरका मल नहीं छुटाते थे ऐसे मैलसे आवृत शुभ्रकाय मुनिराज, पहाड़की ऊँची चोटी-पर स्थित काले-काले मेघोंके पटलसे ढँके चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहे थे ॥१०९॥ यदि दूसरे लोग उनका आदर करते थे, तो उन्हें प्रसन्नता नहीं होती थी और अनादर करते थे तो मनमें विकार भाव नहीं लाते थे। आदर और अनादर दोनोंमें ही अपनी बुद्धिको सदा विशुद्ध रखते थे, इस तरह वे सत्कार पुरस्कार-परीषहको अच्छी तरह सहन करते थे ॥११०॥ इस समय पृथिवीपर मुझसे बढ़कर न कोई वादी है, न वाग्मी है, न गमक है और न महाकवि है। इस प्रकारके अहंकारको उन्होंने प्रज्ञा-परीषहके द्वारा किंचित् भी दूषित नहीं होने दिया था ॥१११॥ यह अज्ञानी न पशु है, न मनुष्य है, न देखता है, न बोलता है, व्यर्थ ही इसने मौन ले रखा है। इस प्रकारके अज्ञानी जनोंके वचनोंकी परवाह न कर वे अज्ञान-परीषहको सहन करते थे ॥११२॥ उग्र तपके प्रभावसे पहले बड़ी-बड़ी ऋद्धियाँ प्राप्त हो जाती थीं यह कहना व्यर्थ है क्योंकि आज तक हमें एक भी ऋद्धिकी प्राप्ति नहीं हुई। इस प्रकार शुद्ध सम्यग्दर्शनको धारण करनेवाले बलदेव मुनिराज कभी नहीं कहते थे। इस तरह उन्होंने अदर्शन परीषहको अच्छी तरह सहन किया था ॥११३॥ इस प्रकार जिन्होंने परीषहरूपी शत्रुओंको समाप्त कर दिया था। जो पंचेन्द्रियोंके विषयरूपी दोषको हरनेवाले थे, शरीरसे अत्यन्त सुन्दर थे, और जिनेन्द्रप्रणीत सम्यक् चारित्रकी भूमिकामें विहार करनेवाले थे ऐसे मुनिराज बलदेवने चिरकाल तक तप किया ॥११४॥

इस प्रकार अरिष्टनेमिपुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें बलदेवके तपका वर्णन करनेवाला त्रेसठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥६३॥

□

---

१. क., ङ. पुस्तकयोः ११३–११४ श्लोकयोः क्रमभेदो वर्तते ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुःषष्टितमः सर्गः

अथ ते पाण्डवाश्चण्डसंसारभयभीरवः । प्राप्य पल्लवदेशेषु विहरन्तं जिनेश्वरम् ॥१॥
चतुर्विधामराकीर्णसमवस्थानमण्डनम् । तं ते ववन्दिरे देवं परीत्य परमेश्वरम् ॥२॥
पीत्वा धर्मामृतं लब्धजिनेन्द्रघनकालतः । पूर्वजन्मानि तेऽपृच्छन् जिनेन्द्रोऽप्यगदीदिति ॥३॥
अत्रैव भरतक्षेत्रे चम्पायां मेघवाहने । रक्षति क्षितिपे क्षोणीं कुरुवंशविभूषणे ॥४॥
विप्रस्य सोमदेवस्य सोमिलायां त्रयः सुताः । प्रथमः सोमदत्तोऽभूत्सोमिलः सोमभूतिना ॥५॥
अग्निभूत्यग्निलोद्भूतास्तेषां मातुलजाः क्रमात् । धनश्रीरपि सोमश्रीर्नागश्रीरिति योषितः ॥६॥
शरीरभोगसंसारनिर्वेदं सर्ववेदवित् । सोमदेवः परिप्राप्य प्राव्राजीज्जिनशासने ॥७॥
त्रयोऽत्र भ्रातरस्तेऽपि जिनशासनभाविताः । गृहधर्मरता जाता धर्मकामार्थसेविनः ॥८॥
भिक्षाकालेऽन्यदा तेषां गृहं धर्मरुचिर्यतिः । धर्मपिण्ड इवाखण्डः प्रविष्टश्चन्द्रचर्यया ॥९॥
प्रतिगृह्य तमुत्थाय सोमदत्तो यमीश्वरम् । कार्यव्यग्रतया दाने नागश्रियमयोजयत् ॥१०॥
सा स्वपापोदयात्साधौ कोपावेशवशाददात् । विषान्नमेष संन्यासकारीसर्वार्थसिद्धिमैत् ॥११॥
नागश्रीदुष्कृतं ज्ञात्वा ते त्रयोऽपि सहोदराः । दीक्षां वरुणगुर्वन्ते निर्विण्णाः प्रतिपेदिरे ॥१२॥
धनश्रीश्चापि मित्रश्रीर्गुणवत्यार्यिकान्तिके । अदीक्षिषातां निःशेषभववासविषादतः ॥१३॥

अथानन्तर संसारके तीव्र भयसे भयभीत पाण्डव, पल्लव देशमें विहार करते हुए श्री नेमिजिनेन्द्रके समीप पहुँचे। उस समय भगवान् चार प्रकारके देवोंसे व्याप्त समवसरणको सुशोभित कर रहे थे एवं अष्ट प्रातिहार्यरूप परम ऐश्वर्यसे युक्त थे। पाण्डवोंने प्रदक्षिणा देकर भगवान्को नमस्कार किया ॥ १–२ ॥ तदनन्तर प्राप्त हुए जिनेन्द्ररूपी वर्षा कालसे धर्मामृतका पान कर उन्होंने अपने पूर्वभव पूछे और श्रीजिनेन्द्र इस प्रकार उनके पूर्वभव कहने लगे ॥ ३ ॥ इसी भरतक्षेत्रकी चम्पानगरीमें जब कुरुवंशका आभूषणस्वरूप राजा मेघवाहन पृथिवीकी रक्षा करता था, तब वहाँ सोमदेव नामका एक ब्राह्मण रहता था। उसकी सोमिला नामकी स्त्री थी और उससे उसके सोमदत्त, सोमिल और सोमभूति नामके तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥४–५॥ इन पुत्रोंके मामाका नाम अग्निभूति था, उसकी स्त्री अग्निला थी और उन दोनोंके क्रमसे धनश्री, सोमश्री और नागश्री नामकी तीन कन्याएँ उत्पन्न हुई थीं जो कि उक्त तीन पुत्रोंकी क्रमसे स्त्रियाँ हुई थीं ॥ ६ ॥ समस्त वेदोंका जाननेवाला ब्राह्मण सोमदेव कदाचित् शरीरभोग और संसारसे विरक्त हो जिनधर्ममें दीक्षित हो गया ॥ ७ ॥ सोमदत्त आदि तीनों भाई भी जिनशासनकी भावनासे युक्त थे इसलिए धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थका सेवन करते हुए गृहस्थ धर्ममें रत हो गये ॥ ८ ॥

किसी समय धर्मरुचि नामक मुनिराज जो धर्मके अखण्ड पिण्डके समान जान पड़ते थे, भिक्षाके समय चान्द्री-चर्यासे उनके घर प्रविष्ट हुए ॥ ९ ॥ सोमदत्तने उठकर बड़ी विनयसे उन मुनिराजको पडिगाहा। पडिगाहनेके बाद किसी अन्य कार्यमें व्यग्र होनेसे वह तो चला गया और दान देनेके कार्यमें नागश्रीको नियुक्त कर गया ॥ १० ॥ अपने पूर्वकृत पापोदयसे मुनिराजके विषयमें कोपके वशीभूत हो नागश्रीने उन्हें विषमिश्रित अन्नका आहार दिया जिससे वे मुनिराज संन्यास मरण कर सर्वार्थसिद्धिको प्राप्त हुए ॥ ११ ॥ नागश्रीके इस दुष्कार्यको जानकर वे तीनों भाई बहुत दुःखी हुए और संसारसे विरक्त हो उन्होंने वरुण गुरुके समीप दीक्षा धारण कर ली ॥ १२ ॥ धनश्री और मित्रश्रीने भी समस्त संसारवाससे-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानपञ्चकसिद्ध्यै ते दर्शनत्रिकशुद्धये । चारित्रतपसां शुद्ध्यै प्रवृत्ताश्चरणोद्यताः[1] ॥१४॥
स्यात्सामायिकचारित्रं सर्वत्र समभावकम् । सर्वसावद्ययोगस्य प्रत्याख्यानमखण्डितम् ॥१५॥
स्वप्रमादकृतानर्थप्रबन्धप्रतिलोपने । सम्यक् प्रतिक्रिया या सा छेदोपस्थापना मता ॥१६॥
विशिष्टा परिहारेण शुद्धिर्यत्र प्रतिष्ठिता । परिहारविशुद्ध्याख्यं चारित्रं तत्प्रकथ्यते ॥१७॥
संपरायाः कषायास्तु यत्र ते सूक्ष्मवृत्तयः । तत्सूक्ष्मसांपरायाख्यं चारित्रं पापनोदनम् ॥१८॥
यथाख्यातमथाख्यातमिति वा परिभाषितम् । सुशान्तक्षीणमोहं[2] तच्चारित्रं मोक्षसाधनम् ॥१९॥
तपः षोढा भवेद्बाह्यमथानशनपूर्वकम् । अभ्यन्तरं तपः षोढा प्रायश्चित्तादिकं मतम् ॥२०॥
संयमादिकसद्ध्यानसिद्धिदृष्टफलाप्तये[3] । रागोच्छित्त्यै तपो नानाविधं ह्यनशनं स्मृतम् ॥२१॥
दोषोपशमसंतोषस्वाध्यायध्यानसिद्धये । संयमायावमोदर्यं प्रजागरणकारणम् ॥२२॥
भिक्षार्थिमुनिसंकल्पा ये वेश्माशामिगोचराः । आशानिवृत्तये वृत्तिपरिसंख्यानमिष्यते ॥२३॥
घृतक्षीरादिवृष्यात्मरसानां विरहः परम् । तपो रसपरित्यागो निद्रेन्द्रियजयाय सः ॥२४॥
पशुस्त्रीप्रविविक्तेषु स्थानेषु प्रासुकेषु यत् । वर्तनं व्रतशुद्ध्यै तद्विविक्तशयनासनम् ॥२५॥
त्रिकालयोगप्रतिमास्थानपूर्वः स्वयंकृतः । कायक्लेशः सुखत्यागो मोक्षमार्गप्रभावनः ॥२६॥

विरक्त हो गुणवती आर्यिकाके समीप दीक्षा धारण कर ली ॥१३॥ इस प्रकार वे सब, पाँच ज्ञान, तीन सम्यग्दर्शन, चारित्र एवं तपकी शुद्धिके लिए प्रवृत्त हो चारित्रपालन करनेके लिए उद्यत हो गये ॥१४॥ चारित्रके सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात ये पाँच भेद हैं। सब पदार्थोंमें समताभाव रखना तथा सर्वप्रकारके सावद्ययोगका पूर्ण त्याग करना सामायिक चारित्र है ॥१५॥ अपने प्रमादके द्वारा किये हुए अनर्थका सम्बन्ध दूर करने लिए जो समीचीन प्रतिक्रिया होती है वह छेदोपस्थापना चारित्र है ॥१६॥ जिसमें जीव हिंसाके परिहारसे विशिष्ट शुद्धि होती है वह परिहारविशुद्धि नामका चारित्र कहलाता है ॥१७॥ साम्पराय कषायको कहते हैं, ये कषाय जिसमें अत्यन्त सूक्ष्म रह जाती है वह पापको दूर करनेवाला सूक्ष्म साम्पराय नामका चारित्र है ॥१८॥ जहाँ समस्त मोहकर्मका उपशम अथवा क्षय हो चुकता है उसे यथाख्यात अथवा अथाख्यात चारित्र कहते हैं। यह चारित्र मोक्षका साक्षात् साधन है ॥१९॥ तपके बाह्य और आभ्यन्तरके भेदसे दो भेद हैं। इनमें बाह्य तप अनशन आदिके भेदसे छह प्रकारका है और आभ्यन्तर तप भी प्रायश्चित्त आदिके भेदसे छह प्रकारका माना गया है ॥२०॥

संयमको आदि लेकर समीचीन ध्यानकी सिद्धिरूप प्रत्यक्ष फलकी प्राप्तिके लिए तथा रागको दूर करनेके लिए आहारका त्याग करना अनशन तप है। यह वेला, तेला आदिके भेदसे नाना प्रकारका स्मरण किया गया है ॥२१॥ वात, पित्त आदि दोनोंका उपशम, सन्तोष, स्वाध्याय और ध्यानकी सिद्धिके लिए तथा संयमकी प्राप्तिके लिए भूखसे कम भोजन करना अवमौदर्य तप है। यह जागरणका कारण है—इस तपके प्रभावसे निद्राकी अधिकता दूर हो जाती है ॥२२॥ भोजनविषयक तृष्णाको दूर करनेके लिए भिक्षाके अभिलाषी मुनि जो घर तथा अन्न आदिसे सम्बन्ध रखनेवाले नाना प्रकारके नियम लेते हैं वह वृत्तिपरिसंख्यान नामका तप है ॥२३॥ निद्रा और इन्द्रियोंको जीतनेके लिए जो घी, दूध आदि गरिष्ट रसोंको त्याग किया जाता है वह रसपरित्याग नामका तप है ॥२४॥ व्रतकी शुद्धिके लिए पशु तथा स्त्री आदिसे रहित एकान्त प्रासुक स्थानमें उठना, बैठना विविक्तशयनासन तप है ॥२५॥ आतापन, वर्षा और शीत ये तीन योग धारण करना तथा प्रतिमायोगसे स्थित होना इन्हें आदि लेकर बुद्धिपूर्वक जो सुखका त्याग

१. चरणोदिताः ङ. । २. तीक्ष्ण म. ३. –दिष्ट ग. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाह्यद्रव्यव्यपेक्षत्वात्परप्रत्ययहेतुकः । षड्विधस्यास्य बाह्यत्वं तपसः प्रतिपादनम् ॥२७॥
मनोनियमनार्थत्वादाभ्यन्तरमभिष्टुतम् । प्रायश्चित्तं कृतावद्यशोधनं नवधाऽत्र तु ॥२८॥
चतुर्धा विनयः पूज्येष्वादरो दशधा पुनः । वैय्यावृत्यं [1]स्वकायेनान्यद्रव्यैरप्युपासनम् ॥२९॥
स्वाध्यायः पञ्चधा ज्ञानभावनालस्यवर्जनम् । स्वसंकल्पपरित्यागो व्युत्सर्गो द्विविधः पुनः ॥३०॥
चित्ताक्षेपपरित्यागो ध्यानं चापि चतुर्विधम् । आर्तं रौद्रं च दुर्ध्यानं धर्म्यशुक्ले तु शोभने ॥३१॥
तत्रालोचनकं [2]कृत्स्नं [3]दशदोषविवर्जितम् । प्रमादकृतदोषाणां गुरवे [4]विनिवेदनम् ॥३२॥
मिथ्या मे दुष्कृताद्यैर्यत्स्वाभिव्यक्तिप्रतिक्रियम् । दोषव्यपोहनं साधु तत्प्रतिक्रमणं मतम् ॥३३॥
आलोचनाद्यतः शुद्धिः प्रतिक्रमणतोऽपि च । तदुभयं तु तदुद्दिष्टं प्रायश्चित्तं विशुद्धिकृत् ॥३४॥
स्याद्विवेको विभजनं यः संसक्तान्नपानयोः[5] । कायोत्सर्गादिकरणं व्युत्सर्गः संप्रकीर्तितः ॥३५॥
तपस्त्वनशनाद्येव प्रायश्चित्तमुदीरितम् । प्रव्रज्याहापनं छेदो दिनमासादिभिर्यतेः ॥३६॥

किया जाता है वह मोक्षमार्गकी प्रभावना करनेवाला कायक्लेश नामका तप है ॥२६॥ यह अनशनादि छह प्रकारका तप बाह्यद्रव्यकी अपेक्षा रखता तथा पर-कारणोंसे होता है, इसलिए इसे बाह्यतप कहा जाता है ॥२७॥

मनका नियमन करनेके लिए आभ्यन्तर तप कहा गया है; इसमें किये हुए दोषोंकी शुद्धि करना प्रायश्चित्त तप है। यह प्रायश्चित्त आलोचना आदिके भेदसे नौ प्रकारका कहा गया है ॥२८॥

पूज्य पदार्थोंमें आदर प्रकट करना विनय है। विनयके चार भेद हैं। अपने शरीरसे तथा अन्य द्रव्योंकी सेवा करना वैयावृत्य है, इसके दश भेद हैं ॥२९॥ ज्ञानकी भावनामें आलस्य छोड़ना स्वाध्याय है, इसके पाँच भेद हैं। बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहोंमें 'ये मेरे हैं' इस प्रकारके संकल्पका त्याग करना व्युत्सर्ग है, इसके दो भेद हैं ॥३०॥ और चित्तकी चंचलताका त्याग करना ध्यान है, यह चार प्रकारका होता है। इनमें आर्त और रौद्र ये दो ध्यान खोटे ध्यान हैं और धर्म्य तथा शुक्ल ये दो उत्तम ध्यान हैं ॥३१॥ आलोचनाके नौ भेद इस प्रकार हैं—१ आलोचना, २ प्रतिक्रमण, ३ तदुभय, ४ विवेक, ५ व्युत्सर्ग, ६ तप, ७ छेद, ८ परिहार और ९ उपस्थापन। इनमें प्रमादसे किये हुए दोषोंका सम्पूर्ण रूपसे दश प्रकारके दोष छोड़कर गुरुके लिए निवेदन करना आलोचना नामका प्रायश्चित्त है ॥३२॥ 'मिथ्या मे दुष्कृतमस्तु' इत्यादि शब्दोंके द्वारा अपने-आप दोषोंको प्रकट कर उनका दूर करना प्रतिक्रमण नामक प्रायश्चित्त माना गया है ॥३३॥ आलोचना तथा प्रतिक्रमण दोनोंसे जो शुद्धि होती है वह विशुद्धिको करनेवाला तदुभय नामका प्रायश्चित्त कहा गया है ॥३४॥ संसक्त अन्न-पानका विभाग करना विवेक कहलाता है। भावार्थ—कुछ समयके लिए अपराधी मुनिको इस प्रकारका दण्ड देना कि अन्य निर्दोष मुनियोंके साथ चर्याके लिए न जाओ, अन्य मुनियोंके भोजनके बाद किसी अन्य चौकामें भोजन करो तथा अपने पीछी-कमण्डलु जुदे रखो दूसरोंके पीछी कमण्डलु अपने उपयोगमें न लाओ। इस प्रकारके दण्डको विवेक नामक प्रायश्चित्त कहते हैं। कायोत्सर्ग आदिका करना व्युत्सर्ग कहलाता है ॥३५॥ उपवास आदि तप करना तप नामका प्रायश्चित्त कहा गया है। दिन,

---

१. स्वकामेन म.। २. समस्तं (ङ. टि.), कृच्छ्रं म., क., ख.। ३. तत्र गुरुवे प्रमादनिवेदनं दशदोषविवर्जितमालोचनम् 'आकम्पिय अणुमाणिय जं दिट्ठं बादरं च सुहुमं च। छण्हं सद्दाउलियं बहुजण अव्वत्त तस्सेवी' ॥ इति दस दोसा—स. सि.। ४. विनिवेदितम् ग.। ५. संसक्तान्नपानोपकरणादिविभजनं विवेकः—स. सि.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पक्षमासादिभेदेन दूरतः परिवर्जनम् । परिहारः पुनर्दीक्षा स्यादुपस्थापना पुनः ॥३७॥
कालानतिक्रमादौ तु ज्ञानाचारेऽष्टधामते[1] । यथोक्तग्रहणादिर्यः स ज्ञानविनयो मतः ॥३८॥
[2]अष्टधा दर्शनाचारे निशङ्कादिषु संस्थिते । विनयो दर्शने दृश्यो गुणदोषविवेकिता ॥३९॥
त्रयोदशविधोदारचारित्राचारगोचरा । निरतीचारता चारुश्चरित्रविनयः परः ॥४०॥
याः प्रत्यक्षपरोक्षेषु प्रत्युत्थानादिकाः[3] क्रियाः । गुर्वादिषु यथायोग्यं विनयश्चौपचारिकः ॥४१॥

महीना आदिसे मुनिकी दीक्षा कम कर देना छेद नामका प्रायश्चित है। भावार्थ—मुनियोंमें नवीन दीक्षित मुनि पूर्वदीक्षित मुनिको नमस्कार करते हैं। यदि किसी पूर्वदीक्षित मुनिकी दीक्षा कम कर दी जाती है तो वह नवीन दीक्षित मुनिसे पीछेका दीक्षित हो जाता है; इस तरह उसे, जिससे वह पहले पूजता था उसे पूजना पड़ता है, नमस्कार करना पड़ता है, यह छेद नामका प्रायश्चित्त है ॥३६॥

पक्ष, महीना आदि निश्चित समय तक अपराधी मुनिको संघसे दूर कर देना परिहार नामका प्रायश्चित्त है और फिरसे नवीन दीक्षा देना उपस्थापना नामका प्रायश्चित्त है। जिसे उपस्थापना दण्ड दिया गया है उसे संघके सब मुनियोंको नमस्कार करना पड़ता है, क्योंकि वे अब इससे पूर्वदीक्षित हो जाते हैं और यह नवीन दीक्षित कहलाने लगता है ॥३७॥

ज्ञानविनय, दर्शनविनय, चारित्रविनय और उपचारविनयके भेदसे विनयतपके चार भेद हैं। इनमें कालानतिक्रमण आदि जो आठ प्रकारका ज्ञानाचार बताया है उसे आगमोक्त विधिसे ग्रहण करना वह ज्ञानविनय है। भावार्थ—१ शब्दाचार, २ अर्थाचार, ३ उभयाचार, ४ कालाचार, ५ विनयाचार, ६ उपधानाचार, ७ बहुमानाचार, ८ अनिह्नवाचार ये ज्ञानाचारके आठ भेद हैं। शब्दका शुद्ध उच्चारण करना शब्दाचार है। शुद्ध अर्थका निश्चय करना अर्थाचार है। शब्द और अर्थ दोनोंका शुद्ध होना उभयाचार है। अकालमें स्वाध्याय न कर विहित समयमें ही स्वाध्याय करना कालाचार है। विनयपूर्वक स्वाध्याय करना—स्वाध्यायके समय शरीर तथा वस्त्र शुद्ध रखना एवं आसन वगैरहका ठीक रखना विनयाचार है। चित्तकी स्थिरतापूर्वक स्वाध्याय करना उपधानाचार है। शास्त्र तथा गुरु आदिका पूर्ण आदर करना बहुमानाचार है और जिस गुरु अथवा जिस शास्त्रसे ज्ञान हुआ है उसका नाम नहीं छिपाना, उसके प्रति सदैव कृतज्ञ रहना अनिह्नवाचार है। इन आठ ज्ञानाचारोंका विधिपूर्वक पालन करना वह ज्ञान-विनय है ॥३८॥

निःशंकित आठ अंगोंके भेदसे दर्शनाचार आठ प्रकारका है, उसमें गुणदोषका विवेक रखना वह दर्शनविनय है ॥ ३९ ॥ पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्तिके भेदसे जो तेरह प्रकारका चारित्राचार है उसमें निरतिचार प्रवृत्ति करना चारित्रविनय है ॥ ४० ॥ प्रत्यक्ष या परोक्ष दोनों ही अवस्थाओंमें गुरु आदिके उठनेपर उठकर अगवानी करना, नमस्कार करना आदि जो यथायोग्य प्रवृत्ति की जाती है उसे औपचारिकविनय कहते हैं ॥४१॥

१. 'अर्थव्यञ्जनतद्द्वयाविकलताकालोपधप्रश्रयाः । स्वाचार्याद्यनपह्नवो बहुमतिश्चेत्यष्टधा व्याहृतम् ।' रत्नत्रय-पूजा 'ग्रन्थार्थोभयपूर्णकाले विनयेन सोपधानं च । बहुमानेन समन्वितमनिह्नवं ज्ञानमाराध्यम् ॥३६॥ पु. सि. । २. शङ्कादृष्टिविमोहकाङ्क्षणविधिव्यावृत्तिसन्नद्धतां, वात्सल्यं विचिकित्सितादुपरतिं धर्मोपबृंहक्रियाम् । शक्त्या शासनदीपनं हितपथाद् भ्रष्टस्य संस्थापनं, वन्दे दर्शनगोचरं सुचरितं मूर्ध्ना नमन्नादरात् ॥ र. पू. । ३. प्रत्यु-त्थानादिका क्रिया क. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्ये चाप्युपाध्याये तपःश्रेष्ठे तपस्विनि । शिक्षाशीले यतौ शैक्ष्ये ग्रस्ते ग्लाने रुजादिभिः ॥४२॥
गणे स्थविरसंतानलक्षणे च कुलेऽपि च । दीक्षकाचार्यशिष्यादिसंस्त्यायनिजलक्षणे ॥४३॥
गृहिश्रमणसंघाते संघे च गुणसंघके । चिरप्रव्रजिते साधौ मनोज्ञे लोकसंमते ॥४४॥
व्याधिमिथ्यात्वसंपातपरीषहरिपूदये । वैय्यावृत्त्यं यथायोग्यं विचिकित्साव्यपोहनम् ॥४५॥
ग्रन्थार्थयोः प्रदानं हि वाचना पृच्छनं पुनः । परानुयोगो निश्चित्यै निश्चितानुबलाय वा ॥४६॥
ज्ञानस्य मनसाभ्यासोऽनुप्रेक्षा परिवर्तनम् । [1]आम्नायो देशनान्येषामुपदेशोऽपि धर्मगः ॥४७॥
प्रशस्ताध्यवसायार्थं [2]प्रज्ञातिशयलब्धये । संवेगाय तपोवृद्ध्यै स्वाध्यायः पञ्चधा भवेत् ॥४८॥
क्रोधाद्यभ्यन्तरोपाधेः कायस्य सविचारता । बाह्योपाधेरकल्पस्य[3] त्यागोऽप्युत्सर्ग इष्यते ॥४९॥
निस्संगनिर्भयत्वाय जीविताशानिवृत्तये । स[4] बाह्याभ्यन्तरोपध्योर्व्युत्सर्गः संप्रजायते ॥५०॥
तपसा निर्जरा मुक्त्यै संवृतस्योपजायते । परिणामस्य भेदेन प्रतिस्थानं तु भिद्यते ॥५१॥

---

१ दीक्षा देनेवाले आचार्य, २ पठन-पाठनकी व्यवस्था रखनेवाले उपाध्याय, ३ महान् तप तपनेवाले तपस्वी, ४ शिक्षा ग्रहण करनेवाले शैक्ष्य, ५ रोग आदिसे ग्रस्त ग्लान, ६ वृद्ध मुनियों के समुदाय रूप गण, ७ दीक्षा देनेवाले आचार्यके शिष्यसमूहरूप कुल, ८ गृहस्थ, क्षुल्लक, ऐलक तथा मुनियोंके समुदायरूप संघ, ९ चिरकालके दीक्षित गुणी मुनिरूप साधु और १० लोकप्रिय मनोज्ञ—इन दश प्रकारके मुनियोंको कदाचित् बीमारी आदिकी अवस्था प्राप्त हो, मोहके तीव्र उदयसे मिथ्यात्वकी ओर इनकी प्रवृत्ति होने लगे (अथवा मिथ्यादृष्टि जीवोंके द्वारा कोई उपद्रव-उपसर्ग खड़ा कर दिया जाये) अथवा परीषहरूपी शत्रुओंका उदय हो तो ग्लानि दूर कर उनकी यथायोग सेवा करना वह दश प्रकारका वैयावृत्त्य तप है ॥४२-४५॥

वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय और उपदेशके भेदसे स्वाध्यायके पाँच भेद हैं। निर्दोष ग्रन्थ तथा उसका अर्थ दूसरेके लिए प्रदान करना—पढ़कर सुनाना सो वाचना नामका स्वाध्याय है। अनिश्चित तत्त्वका निश्चय करनेके लिए अथवा निश्चित तत्त्वको सुदृढ़ करनेके लिए दूसरेसे पूछना वह पृच्छना नामका स्वाध्याय है। ज्ञानका मनसे अभ्यास—चिन्तन करना वह अनुप्रेक्षा नामका स्वाध्याय है। पाठको बार-बार पढ़ना आम्नाय है और दूसरोंको धर्मका उपदेश देना उपदेश नामका स्वाध्याय है। यह पाँच प्रकारका स्वाध्याय प्रशस्त अभिप्रायके लिए, प्रज्ञा—भेदविज्ञानके अतिशयकी प्राप्तिके लिए संवेगके लिए और तपकी वृद्धिके लिए किया जाता है ॥४६-४८॥

आभ्यन्तरोपाधित्याग और बाह्योपाधित्यागकी अपेक्षा व्युत्सर्गके दो भेद हैं। क्रोधादि अन्तरंग उपाधिका त्याग करना तथा शरीरके विषयमें भी 'यह मेरा नहीं है' इस प्रकारका विचार रखना आभ्यन्तरोपाधित्याग है और आभूषणादि बाह्यउपाधिका त्याग करना बाह्योपाधित्याग है। यह दोनों प्रकारकी उपाधियोंका त्याग निष्परिग्रहता, निर्भयता और 'मैं अधिक दिन तक जीवित रहूँ' इस प्रकारकी आशाको दूर करनेके लिए धारण किया जाता है ॥४९-५०॥

संवरके धारक जीवके तपसे जो निर्जरा होती है वह मोक्षका कारण है। यह निर्जरा

---

१. आम्नाये म.। २. प्रशस्ताध्यवसायार्थप्रतिज्ञातिशय–क, ख., ङ., म.। स एषः पञ्चविधः स्वाध्यायः किमर्थः ? प्रज्ञातिशयः प्रशस्ताध्यवसायः परमसंवेगस्तपोवृद्धिरतिचारविशुद्धिरित्येवमाद्यर्थः—स. सि.। ३. आभरणस्य (ङ. टि.)। ४. स किमर्थः ? निःसङ्गत्वनिर्भयत्वजीविताशाव्युदासाद्यर्थः—स. सि.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भव्यः पञ्चेन्द्रियः संज्ञी पर्याप्तो लब्धिभिर्युतः । अन्तःशुद्धिप्रवृद्धो स्याद्बहुकर्मविनिर्जरः ॥५२॥
ततः प्रथमसम्यक्त्वलाभकारणसन्निधौ । सम्यग्दृष्टिर्भवेत्स स्यादसंख्यगुणनिर्जरः ॥५३॥
ततः श्रावकतापन्नोऽसंख्येयगुणनिर्जरः । ततोऽपि विरतस्तस्मादनन्तानां वियोजकः ॥५४॥
ततो दर्शनमोहस्य क्षपकः क्षायिकोद्धृकृत् । ततश्चारित्रमोहस्य सर्वोपशमको यतिः ॥५५॥
उपशान्तकषायोऽसंख्येयगुणनिर्जरः । ततश्चारित्रमोहस्य क्षपकः क्षपकाभिधः ॥५६॥
ततः क्षीणकषायाख्योऽसंख्येयगुणनिर्जरः । जिनेन्द्रः केवली तस्मादनन्तज्ञानदर्शनः ॥५७॥
[2]पुलाको वकुशश्चैव कुशीलो गुणशीलवान् । निर्ग्रन्थः स्नातकश्चेति निर्ग्रन्थाः पञ्चधा मताः ॥५८॥
पुलाका भावनाहीना ये गुणेषूत्तरेषु ते । न्यूनाः क्वचित्कदाचिच्च पुलाकामा व्रतेष्वपि ॥५९॥
अखण्डितव्रताः कायभूषोपकरणानुगाः । [3]अविविक्तपरीवाराः शवला[4] वकुलाः स्मृताः ॥६०॥
परिपूर्णोभया जातूत्तरगुणविरोधिनः । प्रतिसेवनाकुशीला ये अविविक्तपरिग्रहाः ॥६१॥

परिणामोंमें भेद होनेसे प्रत्येक स्थानोंमें भेदको प्राप्त होती है ॥५१॥ यहाँ निर्जराके कुछ स्थान बताये जाते हैं—सर्वप्रथम संज्ञीपंचेन्द्रियपर्याप्तकभव्य जीव जब करणादि लब्धियोंसे युक्त हो, अन्तरंगकी शुद्धिको वृद्धिगत करता है तब उसके बहुत कर्मोंकी निर्जरा होती है। उसके बाद जब यह जीव प्रथमोपशमसम्यक्त्वकी प्राप्तिके योग्य कारणोंके मिलनेपर सम्यग्दृष्टि होता है तब उसके पूर्वस्थानकी अपेक्षा असंख्यातगुणी निर्जरा होती है ॥५२–५३॥ उससे असंख्यातगुणी निर्जरा श्रावकके होती है, उससे असंख्यातगुणी विरतके, विरतसे असंख्यातगुणी अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करनेवालेके, उससे असंख्यातगुणी दर्शनमोहका क्षय कर क्षायिकसम्यक्त्व प्राप्त करनेवालेके, उससे असंख्यातगुणी चारित्रमोहका उपशम करनेवाले उपशमश्रेणीमें स्थित मुनिके, उससे असंख्यातगुणी उपशान्तकषाय नामक ग्यारहवें गुणस्थानवर्तीके, उससे असंख्यातगुणी चारित्रमोहका क्षय करनेवाले क्षपकश्रेणीमें स्थित मुनिके, उससे असंख्यातगुणी क्षीणकषाय नामक बारहवें गुणस्थानवर्तीके और उससे असंख्यातगुणी अनन्तज्ञानदर्शनके धारक केवली जिनेन्द्रके होती है ॥५४–५७॥

पुलाक, वकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातकके भेदसे निर्ग्रन्थ मुनियोंके पाँच भेद हैं ॥५८॥ जो उत्तर गुणोंकी भावनासे रहित हों तथा मूल व्रतमें भी जो कहीं भी पूर्णताको प्राप्त न हों वे धान्यके छिलकेके समान पुलाक मुनि कहलाते हैं ॥५९॥ जो मूल व्रतोंका तो अखण्ड रूपसे पालन करते हैं परन्तु शरीर और उपकरणोंको साफ-सुथरा रखनेमें लीन रहते हों, जिनका परिवार नियत न हो—जो अनेक मुनियोंके परिवारसे युक्त हों और मलिन— सातिचार चारित्रके धारक हों उन्हें वकुश कहते हैं ॥६०॥

प्रतिसेवनाकुशील और कषायकुशीलकी अपेक्षा कुशील मुनियोंके दो भेद हैं। जो मूलगुण और उत्तरगुण दोनोंकी पूर्णतासे युक्त हैं, परन्तु कदाचित् उत्तरगुणोंकी विराधना कर बैठते हैं एवं संघ आदि परिग्रहसे युक्त होते हैं वे प्रतिसेवनाकुशील हैं, जिनके अन्य कषाय शान्त हो गये हैं सिर्फ संज्वलनका उदय रह गया है वे कषायकुशील कहलाते

१. सम्यग्दृष्टिश्रावकविरतानन्तवियोजकदर्शनमोहक्षपकोपशमकोपशान्तमोहक्षपकक्षीणमोहजिनाः क्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जराः ॥४५॥ त. सू, न. अ.। सम्मत्तुपपत्तीये सावयविरदे अणन्तकम्मंसे। दंसणमोहक्खवगे कसाय उवसामगे य उवसंते ॥३६॥ खवगे य खीणमोहे जिणेसु दव्वा असंखगुणिदकमा। तव्विवरीया काला संखेज्जगुणक्कमा होंति ॥६७॥ गो.जी.। २. 'पुलाकवकुशकुशीलनिर्ग्रन्थस्नातका निर्ग्रन्थाः॥ त.सू., नवमाध्याय, ४६ सूत्र। ३. अनियतपरिवाराः (ड. टि)। ४. मलिनचारित्रयुक्ताः (ङ. टि.), सबलाः म. क., ख. ङ.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शमितान्यकषाया ये ससंज्वलनमात्रकाः । ते कषायकुशीलाः स्युः कुशीला द्विविधा यतः ॥६२॥
अव्यक्तोदयकर्माणो ये पयोदण्डराजिवत् । निर्ग्रन्थास्ते मुहूर्तोर्ध्वोद्भिद्यमानात्मकेवलाः ॥६३॥
प्रक्षीणघातिकर्माणः स्नातकाः केवलीश्वराः । एते पञ्चापि निर्ग्रन्था नैगमादिनयाश्रयात् ॥६४॥
[1]संयमादिभिरष्टाभिरनुयोगैर्यथाक्रमम् । ते पुलाकादयः साध्याः साध्यसाधनभेदिनः ॥६५॥
प्रतिसेवनाकुशीलाः पुलाका वकुशा द्वयोः । प्राक्कषायकुशीलाः स्युरन्तवर्ज्ये चतुष्टये ॥६६॥
संयमे च यथाख्याते निर्ग्रन्थस्नातकाः स्थिताः । श्रुतादयोऽपि पञ्चानां प्रकथ्यन्ते यथाक्रमम् ॥६७॥
प्रतिसेवनाकुशीलाः पुलाका वकुशाः स्थिताः । दशपूर्वाण्यभिन्नानि बिभ्रत्युत्कर्षतः श्रुतम् ॥६८॥
ये कषायकुशीला ये निर्ग्रन्थाख्याश्च संयताः । ते चतुर्दशपूर्वाणि सर्वे बिभ्रति सर्वथा ॥६९॥
जघन्येन पुलाकस्य श्रुतमाचारवस्तु तत् । निर्ग्रन्थान्तयतीनां त्वष्टौ प्रवचनमातरः ॥७०॥
व्रतानां रात्र्यभुक्तेश्च बलादन्यतमं प्रति । सेवमानः पुलाकः स्यात्परेषामभियोगतः ॥७१॥
वकुशः सोपकरणो बहूपकरणप्रियः । शरीरवकुशः कायसंस्कारं प्रतिसेवते ॥७२॥
प्रतिसेवनाकुशील उत्तरेषु विराधनाम्[2] । गुणेषु सेवते काञ्चिदविराधितमूलकः ॥७३॥
स्युः कषायकुशीलास्तु रहितप्रतिसेवनाः । निर्ग्रन्थाः स्नातकाश्चापि ते सर्वे सर्वतीर्थजाः ॥७४॥
[3]भावलिङ्गं प्रतीत्यामी निर्ग्रन्थाः पञ्च लिङ्गिनः । प्रतीत्य द्रव्यलिङ्गं तु भजनीया मनीषिभिः ॥७५॥

हैं ॥६१-६२॥ जिनके जलमें खींची गयी दण्डकी रेखाके समान कर्मोंका उदय अव्यक्त—अप्रकट रहता है तथा जिन्हें एक मुहूर्तके बाद केवलज्ञान उत्पन्न होनेवाला है वे निर्ग्रन्थ कहलाते हैं ॥६३॥ और जिनके घातियाकर्म नष्ट हो गये हैं, ऐसे केवली भगवान् स्नातक कहलाते हैं। ये पाँचों ही मुनि नैगमादि नयोंकी अपेक्षा निर्ग्रन्थ माने जाते हैं ॥६४॥ साध्यसाधनके भेदसे युक्त वे पुलाक आदि मुनि संयम आदि आठ अनुयोगोंके द्वारा साध्य हैं ॥६५॥ पुलाक, वकुश और प्रतिसेवना कुशील मुनि प्रारम्भके सामायिक और छेदोपस्थापना इन दो संयमोंमें, कषायकुशील यथाख्यातको छोड़कर शेष चार संयमोंमें और निर्ग्रन्थ तथा स्नातक यथाख्यात संयममें स्थित हैं। अब पाँचों मुनियोंके श्रुत आदिका भी यथाक्रमसे कथन किया जाता है ॥६६-६७॥ प्रतिसेवना कुशील, पुलाक और वकुश ये उत्कृष्ट रूपसे अभिन्न दशपूर्व श्रुतको धारण करते हैं ॥६८॥ जो कषाय-कुशील और निर्ग्रन्थ नामक मुनि हैं वे सब चौदह पूर्वको धारण करते हैं ॥६९॥ जघन्यकी अपेक्षा पुलाकमुनिके आचारवस्तुरूप श्रुत होता है और निर्ग्रन्थपर्यन्त समस्त मुनियोंके पांच समिति, तीन गुप्तिरूप अष्टप्रवचन मातृका प्रमाणश्रुत होता है ॥७०॥ प्रतिसेवनाकी अपेक्षा पुलाक मुनि पाँच महाव्रत तथा रात्रिभोजन त्याग इनमें-से किसी एकका कभी दूसरोंका बलपूर्वक जबर्दस्तीसे सेवन करनेवाला होता है ॥७१॥ वकुशके सोपकरणवकुश और शरीरवकुशकी अपेक्षा दो भेद होते हैं। इनमें सोपकरणवकुश अनेक उपकरणोंके प्रेमी होते हैं और शरीरवकुश शरीरसंस्कारकी अपेक्षा रखते हैं—शरीरकी शोभा बढ़ाना चाहते हैं ॥७२॥

प्रतिसेवनाकुशील मूल गुणोंमें विराधना नहीं करते किन्तु उत्तर गुणोंमें कभी कोई विराधना कर बैठते हैं ॥७३॥ कषायकुशील निर्ग्रन्थ और स्नातकप्रतिसेवनासे रहित होते हैं। तीर्थकी अपेक्षा पुलाक आदि पाँचों मुनि सभी तीर्थंकरोंके तीर्थमें होते हैं ॥७४॥ लिंगके भाव और द्रव्यकी अपेक्षा दो भेद होते हैं। भावलिंगकी अपेक्षा पुलाक आदि पाँचों मुनि

१. संयमश्रुतप्रतिसेवनातीर्थलिङ्गलेश्योपपादस्थानविकल्पतः साध्याः ॥ ४७ ॥ त., सू., नवमाध्याय। २. विराधनं म.। ३. भावलिङ्गं प्रतीत्य पञ्च निर्ग्रन्था लिङ्गिनो भवन्ति। द्रव्यलिङ्गं प्रतीत्य भाज्याः। स. सि.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुलाकस्योत्तरास्तिस्रो वकुलप्रतिसेवना । कुशीलयोश्च [1]षड्भेदाः कषाये चतुरुत्तराः ॥७६॥
स्यात्सूक्ष्मसांपराये च निर्ग्रन्थस्नातकेऽपि च । शुक्लैव केवला लेश्याऽयोगाः लेश्याविवर्जिताः ॥७७॥
पुलाकस्योपपादः स्यात्सहस्रारे परायुषः । प्रतिसेवनाकुशीलवकुशस्यारणेऽच्युते ॥७८॥
तथा सर्वार्थसिद्धौ तु निर्ग्रन्थान्त्यकुशीलयोः । द्विसागरोपमायुष्काः सौधर्मे ते जघन्यतः ॥७९॥
संयमस्थानभेदास्तु स्युः कषायनिमित्तकाः । असंख्येयतमानन्तगुणसंयमलब्धयः ॥८०॥
तत्र सर्वजघन्यानि लब्धिस्थानानि सर्वदा । स्युः कषायकुशीलस्य पुलाकस्य च योगिनः ॥८१॥
गच्छतस्तावसंख्येयस्थानानि युगपत्ततः । व्युच्छिद्यते पुलाकोऽन्यस्त्वसंख्येयानि गच्छति ॥८२॥
वकुशेन कुशीलौ द्वौ स्थानानि युगपत्ततः । असंख्यानि च तौ यातौ वकुशस्त्ववहीयते ॥८३॥
असंख्येयानि गत्वातः स्थानानि प्रतिसेवना । कुशीलो हीयते तस्माद्यः कषायकुशीलकः ॥८४॥
स्थानान्यतोऽकषायाणि निर्ग्रन्थः प्रतिपद्यते । सोऽसंख्येयानि गत्वातो व्युच्छेदमुपगच्छति ॥८५॥
स्थानमेकमतस्तूर्ध्वं गत्वानन्तगुणर्धिकः । स्नातकः [2]कृतकर्मान्तो निर्वाणं प्रतिपद्यते ॥८६॥

निर्ग्रन्थ लिंगके धारक हैं और द्रव्यलिंगकी अपेक्षा विद्वानोंके द्वारा भजनीय हैं ॥७५॥ लेश्याकी अपेक्षा पुलाकमुनिके आगेकी तीन अर्थात् पीत, पद्म और शुक्ल ये तीन, वकुश और प्रतिसेवना-कुशीलके छहों, कषायकुशीलके आगेकी चार अर्थात् कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल ये चार एवं सूक्ष्मसाम्पराय, निर्ग्रन्थ और स्नातकके एक शुक्ललेश्या ही होती है। अयोगकेवली स्नातक लेश्यासे रहित होते हैं ॥७६–७७॥

उपपादकी अपेक्षा पुलाकका उपपाद सहस्रार स्वर्गमें होता है और वह वहाँ उत्कृष्ट आयुका धारक होता है। प्रतिसेवनाकुशील और वकुशका उपपाद आरण और अच्युत स्वर्गमें होता है। निर्ग्रन्थ (ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती) और कषायकुशीलका उपपाद सर्वार्थ-सिद्धिमें होता है और जघन्यकी अपेक्षा पुलाक आदि पाँचों मुनियोंका उपपाद सौधर्मस्वर्गमें होता है और वहाँ वे दो सागरकी आयुके धारक होते हैं ॥७८–७९॥ प्रारम्भमें, संयममें जो स्थानभेद होते हैं वे कषायके निमित्तसे होते हैं तथा उनमें असंख्येय और अनन्तगुणी-संयमकी प्राप्ति होती है ॥८०॥ इनमें सर्वजघन्य लब्धिस्थान कषायकुशील और पुलाक मुनिके होते हैं। ये दोनों मुनि असंख्येय स्थानों तक साथ-साथ जाते हैं, उसके बाद पुलाकमुनि नीचे विच्छिन्न हो जाता है—नीचे रह जाता है और कषायकुशील असंख्येय स्थान तक आगे चला जाता है ॥८१–८२॥

तदनन्तर वकुश और दोनों प्रकारके कुशील साथ-साथ असंख्यात स्थानों तक जाते हैं, उसके बाद वकुश नीचे रह जाता है और दोनों कुशील आगे बढ़ जाते हैं। तदनन्तर असंख्येय स्थान तक साथ-साथ जाकर प्रतिसेवनाकुशील नीचे छूट जाता है और कषायकुशील असंख्येय स्थान आगे चला जाता है। इसके आगे कषायकुशील भी निवृत्त हो जाता है। तदनन्तर कषायरहित संयमके स्थान प्रकट होते हैं और उन्हें निर्ग्रन्थ मुनि प्राप्त करता है। वह असंख्येय स्थानों तक जाकर पीछे छूट जाता है ॥८३–८५॥ इसके आगे संयमका एक स्थान रहता है जिसे अनन्तगुण रूप ऋद्धियोंको धारण करनेवाला स्नातक प्राप्त करता है और वह वहाँ कर्मोंका अन्त कर निर्वाणको प्राप्त होता है ॥८६॥

---

१ कृष्णलेश्यादित्रितयं तयोः कथमिति चेदुच्यते—तयोरुपकरणासक्तिसंभवात् आर्तध्यानं कदाचित्संभवति, आर्तध्यानेन च कृष्णादि लेश्यात्रितयं संभवतीति । २. कृतकर्मातो म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]क्षेत्रकालादिभिः सिद्धाः साध्या द्वादशभिस्तु ते । अनुयोगैर्यथायोग्यं नयद्वयविवक्षया ॥८७॥
सिद्धिक्षेत्रे मता सिद्धिरात्माकाशप्रदेशयोः । प्रत्युत्पन्नप्रतिग्राहिनययोगादसंगिनाम् ॥८८॥
कर्मभूमिषु सर्वासु जन्म प्रति च संहृतिम् । संसिद्धिर्मानुषे क्षेत्रे भूतग्राहिनयेक्षया ॥८९॥
एकस्मिन् समये कालात्प्रत्युत्पन्ननयेक्षया । भूतग्राहिनयेक्षातो जन्मतोऽप्यविशेषतः ॥९०॥
उत्सर्पिण्यवसर्पिण्योर्जातः सिद्ध्यति जन्मवान् । विशेषेणावसर्पिण्यां तृतीयान्ततुरीययोः ॥९१॥
दुःषमायां तु संजातो दुःषमायां न सिद्ध्यति । उत्सर्पिण्यवसर्पिण्योः संहारात्सर्वदा पुनः ॥९२॥
सिद्धिः सिद्धिगतौ ज्ञेया सुमनुष्यगतौ यथा । अवेदत्वेन लिङ्गेन भावतस्तु त्रिवेदतः ॥९३॥
न द्रव्याद्द्रव्यतः सिद्धिः पुल्लिङ्गेनैव निश्चिता । निर्ग्रन्थेन च लिङ्गेन सग्रन्थेनाथवा न या ॥९४॥
तीर्थसिद्धिर्द्विधा तीर्थकारीतरविकल्पतः । सति तीर्थकरे सिद्धा असतीर्तातरे द्विधा ॥९५॥
सिद्धिरव्यपदेशेन नयादेकेन वा पुनः । चतुर्भिः पञ्चभिर्वापि चारित्रैरुपजायते ॥९६॥

क्षेत्र, काल आदि बारह अनुयोगोंके द्वारा सिद्धोंमें भूतपूर्व प्रज्ञापन और प्रत्युत्पन्नग्राही नयकी अपेक्षा भेद सिद्ध करने योग्य हैं ॥८७॥ क्षेत्रअनुयोगसे जब विचार करते हैं तब प्रत्युत्पन्नग्राही नयकी अपेक्षा मुक्त जीवोंकी सिद्धि, सिद्धिक्षेत्रमें अथवा आत्मप्रदेशमें अथवा आकाशके प्रदेशोंमें होती है ॥८८॥ और भूतग्राही नयकी अपेक्षा जन्मसे पन्द्रह कर्मभूमियोंमें तथा संहरणसे मनुष्यलोक अर्थात् अढ़ाई द्वीपमें होती है ॥८९॥ कालअनुयोगसे विचार करनेपर यह जीव प्रत्युत्पन्न नयकी अपेक्षा एक समयमें सिद्ध होता है और भूतग्राही नयकी अपेक्षा जन्मसे सामान्यतया उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीमें उत्पन्न हुआ जीव सिद्ध होता है और विशेष रूपसे अवसर्पिणीको तृतीय कालके अन्तमें तथा चतुर्थ कालमें सिद्ध होता है। चतुर्थ कालका उत्पन्न हुआ जीव दुःषमा नामक पंचम कालमें सिद्ध हो सकता है परन्तु दुःषमाका उत्पन्न हुआ दुःषमामें सिद्ध नहीं होता। संहरणकी अपेक्षा उत्सर्पिणी अवसर्पिणीके सभी कालोंमें सिद्ध होता है। भावार्थ—जिस समय भरत और ऐरावत क्षेत्रमें प्रथम आदिकाल विद्यमान रहते हैं उस समय यदि कोई व्यन्तरादि देव किसी विदेहक्षेत्रके मुनिको संहरण कर भरत अथवा ऐरावतक्षेत्रमें छोड़ दे तो उनकी वहाँसे सिद्धि हो सकती है ॥९०-९२॥ गतिअनुयोगसे विचार करनेपर सिद्धिगतिमें अथवा मनुष्यगतिमें सिद्धि होती है। लिंगअनुयोगसे विचार करनेपर प्रत्युत्पन्नग्राही नयकी अपेक्षा अवेदसे सिद्धि होती है और भूतार्थग्राही नयकी अपेक्षा भाववेदसे तीनों वेदोंमें सिद्धि होती है। द्रव्यवेदकी अपेक्षा तीनों वेदोंसे सिद्धि नहीं होती सिर्फ पुरुषवेदसे ही होती है। अथवा लिंगका अर्थ वेष भी हो सकता है इसलिए प्रत्युत्पन्न नयकी अपेक्षा निर्ग्रन्थ लिंगसे ही सिद्धि होती है और भूतार्थग्राही नयकी अपेक्षा सग्रन्थ लिंगसे होती भी है और नहीं भी होती है ॥९३-९४॥

तीर्थअनुयोगसे विचार करनेपर सिद्धि दो प्रकारकी होती है, कोई तीर्थंकर होकर सिद्ध होता है और कोई सामान्य केवली होकर सिद्ध होता है। अथवा कोई तीर्थंकरके विद्यमान रहते सिद्ध होता है और कोई तीर्थंकरके मोक्ष चले जानेपर उनके तीर्थमें सिद्ध होता है ॥९५॥ चारित्रअनुयोगकी अपेक्षा विचार करनेपर प्रत्युत्पन्नग्राही नयकी अपेक्षा एक यथाख्यात चारित्रसे ही सिद्धि होती है और भूतार्थग्राही नयकी अपेक्षा चार अथवा पाँच चारित्रोंसे होती है। भावार्थ—यथाख्यातके पहले सामायिक, छेदोपस्थापना और सूक्ष्म-

१. 'क्षेत्रकालगतिलिङ्गतीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धबोधितज्ञानावगाहनान्तरसंख्याल्पबहुत्वतः साध्याः' ॥ ९ ॥ त. सू., दशमाध्याय।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धिः प्रत्येकबुद्धानां स्वतो बोधिमुपेयुषाम् । तथा बोधितबुद्धानां परतो बोधिलाभिनाम् ॥९७॥
[1]सिद्धिर्ज्ञानविशेषैः स्यादेकद्वित्रिचतुष्ककैः । अवगाहेन चोत्कृष्टजघन्यान्तर्भिदावता ॥९८॥
अवगाहनमुत्कृष्टमूनं पञ्चधनुःशती । [2]पञ्चविंशां च देशोनारत्नयोऽर्धचतुर्थकाः ॥९९॥
मध्येऽनेकविकल्पास्तु यथासंभवमीरिताः । तत्र सिद्ध्यति चैतस्मिन्नेकस्मिन्नवगाहने ॥१००॥
अन्तरः शून्यकालः स्यादन्तरं सिद्ध्यतां पुनः । जघन्येनैकसमयो मासानां षट्कमन्यथा ॥१०१॥
जघन्येनैक एवैकसमये सिद्ध्यति ध्रुवम् । तथोत्कर्षेणाष्टशतसंख्यास्ते संख्यया स्मृताः ॥१०२॥
क्षेत्रादिभेदभिन्नानां संख्याभेदः परस्परम् । ख्यातमल्पबहुत्वं च सिद्धिक्षेत्रे न विद्यते ॥१०३॥
भूतपूर्वव्यपेक्षातश्चिन्त्यते तन्नु तद्यथा । जन्मनः संहृतेश्चेति क्षेत्रसिद्धा द्विधा मताः[3] ॥१०४॥
अल्पे संहारसिद्धास्ते जन्मसिद्धास्तु तत्त्वतः । स्युः संख्येयगुणाः सर्वे सार्वसर्वज्ञशासने ॥१०५॥
ऊर्ध्वलोकस्य सिद्धा ये स्तोकास्तेऽधो जगद्गताः । स्युः संख्येयगुणास्तिर्यग्लोकसिद्धास्तथा ततः ॥१०६॥

साम्परायचारित्र अनिवार्य रूपसे सभीके होते हैं और परिहारविशुद्धि किन्हीं-किन्हींके होता है इसलिए जिनके परिहारविशुद्धि नहीं होगा उनके चार चारित्रोंसे और जिनके परिहारविशुद्धि होगा उनके पाँच चारित्रोंसे सिद्धि होती है, यह भूतार्थग्राही नयकी अपेक्षा है। प्रत्युत्पन्नग्राही नयकी अपेक्षा चौदहवें गुणस्थानमें एक परमयथाख्यात चारित्र ही होता है इसलिए एक चारित्रसे ही सिद्धि प्राप्त होनेका कथन है ॥९६॥ प्रत्येक बुद्ध और बोधितबुद्ध—अनुयोगसे विचार करनेपर प्रत्येक बुद्ध जो कि अपने-आप रत्नत्रयको प्राप्त होते हैं और बोधित बुद्ध जो कि दूसरोंके उपदेशसे रत्नत्रय प्राप्त करते हैं—दोनोंको सिद्धि प्राप्त होती है—दोनों ही मोक्ष जाते हैं ॥९७॥ ज्ञान अनुयोगसे विचार करनेपर प्रत्युत्पन्नग्राही नयकी अपेक्षा एक केवलज्ञानसे ही सिद्धि होती है और भूतार्थग्राही नयकी अपेक्षा दो, तीन और चार ज्ञानोंसे सिद्धि होती है। भावार्थ—किन्हीं जीवोंकी केवलज्ञानके पूर्व मति और श्रुतमें दो ज्ञान होते हैं। किन्हींको मति, श्रुत, अवधि अथवा मति, श्रुत, मनःपर्यय ये तीन ज्ञान होते हैं। और किन्हींको मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय ये चार ज्ञान होते हैं। अवगाहना अनुयोगसे विचार करनेपर अवगाहनाके उत्कृष्ट, जघन्य और मध्यमके भेदसे तीन भेद होते हैं। इनमें युक्त जीवोंकी उत्कृष्ट अवगाहना कुछ कम पाँच-सौ पच्चीस धनुष है और जघन्य अवगाहना कुछ कम साढ़े तीन हाथ है। मध्यम अवगाहनाके यथासम्भव अनेक विकल्प कहे गये हैं। इन अवगाहनाओंमें-से जीव किसी एक अवगाहनासे सिद्ध होता है ॥९८-१००॥ अन्तर अनुयोगकी अपेक्षा विचार करनेपर अन्तरका अर्थ शून्यकाल—विरहकाल होता है सो सिद्ध होनेवाले जीवोंमें जघन्य अन्तर एक समयका और उत्कृष्ट अन्तर छह माहका होता है ॥१०१॥ संख्या अनुयोगकी अपेक्षा विचार करनेपर जघन्यरूपसे एक समयमें एक ही जीव सिद्ध होता है और उत्कृष्टतासे एक सौ आठ जीव तक सिद्ध होते हैं ॥१०२॥ अल्पबहुत्व अनुयोगकी अपेक्षा विचार करनेपर क्षेत्रादि भेदोंसे भिन्न जीवोंमें जो परस्पर संख्याका भेद है वह अल्पबहुत्व कहलाता है। यह अल्पबहुत्व प्रत्युत्पन्नग्राही नयकी अपेक्षा सिद्धिक्षेत्रमें नहीं है किन्तु भूतार्थग्राही नयकी अपेक्षा उसका कुछ विचार किया जाता है। क्षेत्रसिद्ध जीव जन्म और संहरणकी अपेक्षा दो प्रकारके माने गये हैं। इनमें संहरणसिद्ध थोड़े हैं और जन्मसिद्ध, पर्वहितकारी सर्वज्ञ जिनेन्द्रके शासनमें संहरण सिद्धोंकी अपेक्षा संख्यातगुणे बतलाये गये हैं ॥१०३-१०५॥ ऊर्ध्वलोकसे सिद्ध होनेवाले थोड़े हैं, उनसे संख्यातगुणे अधोलोकसे सिद्ध होनेवाले हैं और उनसे संख्यातगुणे तिर्यग्लोकसे सिद्ध होनेवाले हैं ॥१०६॥

१. सिद्धिर्ज्ञानविशेषैरेकद्वित्रिचतुर्थकैः म. । २. पञ्चविंशा म., पञ्चविंशाव ख. । ३. यतः म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्तोकाः समुद्रसिद्धास्तु स्युः संख्येयगुणाः पुनः । द्वीपसिद्धा इतीहेत्थमविशेषेण[1] भाषिताः ॥१०७॥
[2]लवणोदेऽत्र ये सिद्धाः सर्वतोकास्तु ते स्तुताः । कालोदसिद्धा बोद्धव्यास्तत्संख्येयगुणाः सदा ॥१०८॥
ये जम्बूद्वीपसिद्धास्ते स्युः संख्येयगुणास्तथा । धातकीखण्डसिद्धाश्च पुष्करद्वीपगास्तथा ॥१०९॥
यथा क्षेत्रविभागेन प्रोक्ताल्पबहुता तथा । सा कालादिविभागेन वेदितव्या यथागमम्[3] ॥११०॥
इति दृग्ज्ञानचारित्रतपसामत्युपासकाः । सोमदत्तादयोऽन्त्ये ते पञ्च भूत्वारणाच्युते ॥१११॥
देवाः सामानिका भोगं द्वाविंशत्यब्धिजीविनः । भुञ्जानास्तस्थुरत्यन्तशुद्धदर्शनदर्शनाः ॥११२॥
नागश्रीरपि मृत्वाप फलं धूमप्रभावनौ । अनुभूय महादुःखं सा सप्तदशसागरम् ॥११३॥
भूत्वा स्वयंप्रभद्वीपे दुष्टो दृष्टिविषोरगः । त्रिसागरोपमायुष्कां मृत्वागाद्बालुकाप्रभाम् ॥११४॥
तत्रानुभूय[4] दुःखौघांश्चिरादुद्वर्त्य पापतः । [5]त्रसस्थावरकायेषु सानयत्सागरद्वयम् ॥११५॥
ततो मातङ्गकन्याभूच्चम्पायां सान्यदा मुनेः । समाधिगुप्ततः कृत्वा मधुमांसादिवर्जनम् ॥११६॥
जीवितान्ते सुबन्धोः स्याच्चम्पायामेव वैश्यतः । धनवत्यां सुता जाता नाम्ना च सुकुमारिका ॥११७॥
पापानुबन्धदोषेण सुदुर्गन्धशरीरिका । रूपवत्यपि विद्वेष्या जाता युवजनस्य सा ॥११८॥
वैश्यस्य धनदेवस्याशोकदत्तासमुद्भवौ । तनयौ जिनदेवश्च जिनदत्तश्च विश्रुतौ ॥११९॥
कन्यां तामपि दुर्गन्धां वृतां बन्धुभिरग्रजः । परित्यज्य प्रवव्राज सुव्रतः सुव्रतान्तिके ॥१२०॥

समुद्रसे सिद्ध होनेवाले थोड़े हैं, इनसे संख्यातगुणे द्वीपसे सिद्ध होनेवाले हैं, यह सामान्यकी अपेक्षा कथन है, विशेषकी अपेक्षा लवणसमुद्रमें जो सिद्ध होते हैं, वे सबसे थोड़े हैं, उनसे संख्यातगुणे कालोदधिसे सिद्ध होनेवाले हैं ॥१०७-१०८॥ जो जम्बूद्वीपसे सिद्ध होते हैं वे संख्येयगुणे हैं, उनसे संख्यातगुणे धातकीखण्डसे होनेवाले सिद्ध हैं और उनसे संख्यातगुणे पुष्करद्वीपसे होनेवाले सिद्ध हैं ॥१०९॥ जिस प्रकार क्षेत्रविभागकी अपेक्षा अल्पबहुत्वका कथन किया है उसी प्रकार आगमके अनुसार काल आदि विभागकी अपेक्षा भी जानना चाहिए ॥११०॥

इस प्रकार सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी अत्यन्त उपासना करनेवाले सोमदत्त आदि पाँचों जीव अन्त समय मरकर आरण अच्युत स्वर्गमें सामानिक जातिके देव हुए। वहाँ बाईस सागरकी उनकी आयु थी। अत्यन्त शुद्ध सम्यग्दर्शनको धारण करनेवाले वे देव उत्तम भोग भोगते हुए वहाँ बाईस सागर तक स्थित रहे ॥१११-११२॥ विषमिश्रित भोजन देनेवाली नागश्री भी मरकर धूमप्रभानामक पाँचवें नरकके फलको प्राप्त हुई। वह सत्तरह सागर तक वहाँके महादुःख भोगकर निकली और स्वयंप्रभद्वीपमें दृष्टिविष नामका दुष्ट सर्प हुई। तदनन्तर मरकर तीन सागरकी आयुवाली बालुकाप्रभानामक तीसरी पृथ्वीमें पहुँची ॥११३-११४॥ वहाँ पापके फलस्वरूप चिरकाल तक दुःखोंका समूह भोगकर निकली और त्रसस्थावर पर्यायमें दो सागर तक भटकती रही ॥११५॥ तदनन्तर चम्पापुरीमें एक चण्डालकी कन्या हुई। वहाँ उसने एक दिन समाधिगुप्त नामक मुनिराजके पास मधु-मांसादिका त्याग किया ॥११६॥ जिससे अन्त समय उसी चम्पापुरीमें सुबन्धु वैश्यकी धनवती स्त्रीसे सुकुमारिका नामकी पुत्री हुई ॥११७॥ पापके पूर्व संस्कारसे उसके शरीरसे तीव्र दुर्गन्ध आती थी इसलिए रूपवती होनेपर भी वह युवाजनोंके द्वेषका पात्र हुई ॥११८॥ उसी नगरीमें धनदेव वैश्यकी अशोकदत्ता नामक स्त्रीसे उत्पन्न जिनदेव और जिनदत्त नामक दो पुत्र रहते थे ॥११९॥ जिनदेवके कुटुम्बी जनोंने उस दुर्गन्धा कन्याके साथ उसका विवाह

---

१. –मप्यशेषेण म.। २. लवणोदे त्रयः म.। ३. एष सर्व उल्लेखः 'क्षेत्रकालगति—इत्यादिसूत्रस्य सर्वार्थसिद्धिटीकयानुप्राणितो वर्तते। ४. दुःखौघं कः। ५. तत्र स्थावर–म.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कनीयान् जिनदत्तस्तां बन्धुवाक्योपरोधतः[1] । परिणीयापि तत्याज दुर्गन्धामतिदूरतः ॥१२१॥
आत्मानमपि निन्दन्ती सोपवासान्यदा च सा । क्षान्तार्यामार्यिकायुक्तां भोजयित्वातिभक्तितः ॥१२२॥
अभिवन्द्य तदापृच्छदार्यिके केन हेतुना । इमे परमरूपिण्यौ स्थिते तपसि दुष्करे ॥१२३॥
सेति पृष्टा जगौ हेतुमार्ययोस्तपसस्तयोः । प्रबोधनाय तस्याश्च करुणापरिनोदिता ॥१२४॥
श्रूयतां सुकुमारि द्वे सुकुमारकुमारिके । हेतुता येन तापस्ये तपस्विन्यौ व्यवस्थिते ॥१२५॥
सौधर्माधिपतेर्देव्याविमे पूर्वत्र जन्मनि । विमला सुप्रभा चेति सुप्रसिद्धे बभूवतुः ॥१२६॥
ते नन्दीश्वरयात्रायां जिनपूजार्थमागते । कथंचिज्जातसंवेगे चित्तान्तरमिति श्रिते ॥१२७॥
मनुष्यभवसंप्राप्तौ करिष्यावो महत्तपः । आवां स्त्रीत्वनिमित्तं तु येन दुःखं न दृश्यते ॥१२८॥
इति संगीर्य ते देव्यौ दिवः प्रच्युत्य भूपतेः । श्रीषेणस्येह साकेते श्रीकान्तायां सुयोषिति ॥१२९॥
हरिषेणा सुता ज्येष्ठा श्रीषेणा च कनीयसी । जाते जाते च कान्ते ते यौवनश्रीविभूषिते ॥१३०॥
स्वयंवरविधौ स्मृत्वा पूर्वं जन्म च संगरम् । बन्धुलोकं परित्यज्य कुमार्यौ तपसि स्थिते ॥१३१॥
इति श्रुत्वार्यिकावाक्यं निर्विण्णा सुकुमारिका । तदन्ते सा प्रवव्राज संसारभयवेदिनी ॥१३२॥
तपस्विनीभिरन्याभिस्तपस्यन्ती तपस्विनी । कालं नीतवती नीत्या तपसा शोषिताङ्गिका ॥१३३॥

करना चाहा पर उसे वह स्वीकृत नहीं था इसलिए वह उस कन्याको छोड़ सुव्रत मुनिके समीप दीक्षित हो गया ॥१२०॥ बन्धुजनोंके उपरोधसे छोटे भाई जिनदत्तने यद्यपि उसके साथ विवाह कर लिया परन्तु दुर्गन्धके कारण उसे दूरसे ही छोड़ दिया ॥१२१॥ इस घटनासे सुकुमारिकाने अपनी बहुत निन्दा की। एक दिन उसने उपवास किया तथा अनेक आर्यिकाओंसे युक्त क्षान्ता नामकी आर्यिकाको बड़ी भक्तिसे भोजन कराया ॥१२२॥ क्षान्ता आर्यिकाके साथ दो आर्यिकाएँ परम रूपवती तथा कठिन तपन तपनेवाली थीं उन्हें देख उसने क्षान्ता आर्याको नमस्कार कर उनसे पूछा कि हे आर्ये ! ये दो रूपवती आर्यिकाएँ कठिन तपमें किस कारण स्थित हैं ? ॥१२३॥ इस प्रकार पूछे जानेपर दयासे प्रेरित क्षान्ता आर्याने सुकुमारिकाको सम्बोधन करनेके लिए उन दो आर्यिकाओंके तपका कारण कहा ॥१२४॥ उन्होंने कहना प्रारम्भ किया—कि हे सुकुमारि ! सुन, ये सुकुमार कुमारिकाएँ जिस कारण तपस्विनी बनकर तप करनेमें लगी हुई हैं ॥१२५॥

ये दोनों पूर्व भवमें सौधर्म स्वर्गके इन्द्रकी विमला और सुप्रभा नामकी देवियाँ थीं ॥१२६॥ एक दिन ये नन्दीश्वर पर्वकी यात्रामें जिनपूजाके लिए आयी थीं कि किसी कारण संसारसे विरक्त हो चित्तमें इस प्रकारका विचार करने लगीं कि यदि हम मनुष्यभवको प्राप्त हों तो महातप करेंगी। ऐसा महातप कि जिससे फिर यह स्त्री-पर्यायसम्बन्धी दुख दिखाई नहीं देगा ॥१२७–१२८॥ इस प्रकार प्रतिज्ञा कर वे देवियाँ स्वर्गसे च्युत हुईं और यहाँ अयोध्या नगरीके राजा श्रीषेणकी श्रीकान्ता नामक स्त्रीसे हरिषेणा नामकी बड़ी और श्रीषेणा नामकी छोटी पुत्री हुईं। समय पाकर ये दोनों ही रूपवती और यौवनरूपी लक्ष्मीसे सुशोभित हो गयीं ॥१२९–१३०॥ इन दोनों कुमारियोंका स्वयंवर हो रहा था कि उसी समय इन्हें अपने पूर्व जन्म तथा की हुई प्रतिज्ञाका स्मरण हो आया जिससे ये बन्धुजनोंको छोड़ तत्काल तप करने लगीं ॥१३१॥

क्षान्ता आर्यिकाके उक्त वचन सुन सुकुमारिका भी विरक्त हो गयी और संसारसे भयभीत हो उन्हींके समीप दीक्षित हो गयी ॥१३२॥ अन्य तपस्विनियोंके साथ तप करती हुई वह समय व्यतीत करने लगी। नीतिपूर्वक—आगमानुकूल तप करनेसे उसका शरीर सूख गया ॥१३३॥

१. –रोधनः म.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वसन्तसेनां गणिकां कामुकैः परिवेष्टिताम् । दृष्ट्वा वनविहारेऽसावेकदा क्रीडनोद्यताम् ॥१३४॥
निदानमकरोत्क्लिष्टा दुर्यशःप्राप्तिकारणम् । सौभाग्यमीदृशं [1]मेऽन्यजन्मन्यस्त्विति सादरा ॥१३५॥
स्वभर्तुः सोमभूतेस्तु मृत्वाभूदारणाच्युते । देवी सा पञ्चपञ्चाशत्पल्यतुल्यनिजस्थितिः ॥१३६॥
च्युत्वा ते पाण्डुराजस्य सोमदत्तादयस्त्रयः । कुन्त्यां युधिष्ठिरो भीमः पार्थश्चेत्यभवन्[2] सुताः ॥१३७॥
धनश्रीपूर्वको देवो मित्रश्रीपूर्वकस्तथा । नकुलः सहदेवश्च मद्र्यां जातौ शरीरजौ ॥१३८॥
सा कुमारी दिवश्च्युत्वा द्रुपदस्य शरीरजा । जाता दृढरथाख्यायां स्त्रियां द्रौपद्यभिख्यया ॥१३९॥
द्रौपद्यर्जुनयोर्योगः पूर्वस्नेहेन साम्प्रतम् । सुव्यक्तं साम्प्रतं जातो राधोवेधपुरस्सरः ॥१४०॥
ज्येष्ठानां भविता सिद्धिस्त्रयाणामिह जन्मनि । सर्वार्थसिद्धिर्हि तयोरन्त्यपाण्डवयोरिह ॥१४१॥
सम्यग्दर्शनशुद्धाया द्रौपद्यास्तपसः [3]फलात् । आरणाच्युतदेवत्वपूर्विका सिद्धिरिष्यते ॥१४२॥
इत्थं ते पाण्डवाः श्रुत्वा धर्मं पूर्वभवांस्तथा । संवेगिनो जिनस्यान्ते संयमं प्रतिपेदिरे ॥१४३॥
कुन्ती च द्रौपदी देवी सुभद्राद्याश्च योषितः । राजीमत्याः समीपे ताः समस्तास्तपसि स्थिताः ॥१४४॥
ज्ञानदर्शनचारित्रैर्व्रतैः समितिगुप्तिभिः । आत्मानं भावयन्तस्ते पाण्डवाद्यास्तपोऽचरन् ॥१४५॥

शार्दूलविक्रीडितम्

[4]कुन्ताग्रेण वितीर्णभैक्ष्यनियमः [5]क्षुत्क्षामगात्रैः क्षमः
षण्मासैरथ भीमसेनमुनिपो[6] निष्ठाप्य स्वान्तक्लमम्[7] ।

एक दिन उसी गाँवकी गणिका वसन्तसेना कामीजनोंसे वेष्टित हो वन-विहारके लिए आयी। क्रीड़ा करनेमें उद्यत उस गणिकाको देखकर आर्यिका सुकुमारिकाने क्लिष्ट परिणामोंसे युक्त हो बड़े आदरसे अपयशकी प्राप्तिमें कारणभूत यह निदान किया कि अन्य जन्ममें मुझे भी ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो ॥१३४–१३५॥ आयुके अन्तमें मरकर वह आरणाच्युत युगलमें अपने पूर्व भवके पति सोमभूति देवकी पचपन पल्यकी आयुवाली देवी हुई ॥१३६॥ सोमदत्त आदि तीनों भाइयोंके जीव स्वर्गसे च्युत हो पाण्डु राजाकी कुन्ती नामक स्त्रीमें युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन नामक पुत्र हुए ॥१३७॥ और धनश्री तथा मित्रश्रीके जीव देव भी उन्हीं पाण्डु राजाकी माद्री नामक दूसरी स्त्रीसे नकुल और सहदेव नामक पुत्र हुए ॥१३८॥ सुकुमारिकाका जीव भी स्वर्गसे च्युत हो राजा द्रुपदकी दृढरथा नामक स्त्रीसे द्रौपदी नामकी पुत्री हुई ॥१३९॥ पूर्व भवके स्नेहके कारण इस भवमें भी राधोवेध पूर्वक द्रौपदी और अर्जुनका संयोग हुआ है ॥१४०॥ तीन ज्येष्ठ पाण्डव—युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन इसी जन्ममें मोक्षको प्राप्त होंगे और अन्तिम दो पाण्डव—नकुल और सहदेवको सर्वार्थसिद्धि प्राप्त होगी ॥१४१॥ सम्यग्दर्शनसे शुद्ध द्रौपदी तपके फलस्वरूप आरणाच्युत युगलमें देव होगी और उसके बाद मनुष्यपर्याय रख मोक्ष जायेगी ॥१४२॥

इस प्रकार वे पाण्डव धर्म तथा पूर्व भव श्रवण कर संसारसे विरक्त हो श्री नेमि जिनेन्द्रके समीप संयमको प्राप्त हो गये ॥१४३॥ कुन्ती, द्रौपदी तथा सुभद्रा आदि जो स्त्रियाँ थीं वे सब राजीमती आर्यिकाके समीप तपमें लीन हो गयीं ॥१४४॥ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, महाव्रत, समिति तथा गुप्तियोंसे अपनी आत्माके स्वरूपका चिन्तवन करते हुए वे पाण्डव आदि तप करने लगे ॥ १४५ ॥ उन सब मुनियोंमें भीमसेन मुनि बहुत ही शक्तिशाली

---

१. मेऽन्ये जन्मन्यस्त्विति म. । २. –त्यभवत्सुताः म. । ३. क्रमात् म. । ४. कुन्त्यग्रेण म., ख. । ५. क्षुत्क्षामगात्रक्षयः क. । ६. मुनिपो इति पाठः प्रतिभाति । मुनिभिर्निष्ठाप्य क., ख., ङ., म. । ७. स्वान्तक्रमं म., ङ., सान्तक्रमं क. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

षष्ठाद्यैरुपवासभेदविधिभिर्निष्ठाभिमुख्यैः स्थित-
ज्येष्ठाद्यैर्विजहार योगिभिरिलां जैनागमाम्भोधिभिः ॥१४६॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ युधिष्ठिरादिपञ्चपाण्डवप्रव्रज्यावर्णनो नाम चतुःषष्टितमः सर्गः ॥६४॥

□

थे। उन्होंने भालेके अग्रभागसे दिये हुए आहारको ग्रहण करनेका नियम लिया था, क्षुधासे उनका शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया था और छह महीनेमें उन्होंने इस वृत्ति परिसंख्यात तपको पूरा कर हृदयका श्रम दूर किया था। युधिष्ठिर आदि मुनियोंने भी बड़ी श्रद्धाके साथ वेला तेला आदि उपवास किये थे। इस प्रकार मुनिराज भीमसेनने जैनागमके सागर युधिष्ठिर आदि मुनियोंके साथ पृथिवीपर विहार किया ॥१४६॥

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें युधिष्ठिर आदि पाँच पाण्डवोंकी दीक्षाका वर्णन करनेवाला चौंसठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६४॥

□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पञ्चषष्टितमः सर्गः

अथ सर्वामराकीर्णस्तीर्थकृत्कृतदेशनः । उत्तरापथतो देशं सुराष्ट्रमभितो ययौ ॥१॥
उत्तरायणमुत्क्रम्य दक्षिणायनमागते । जिनार्के तेजसो वृत्तिः प्राग्वत्सर्वत्रगामवत् ॥२॥
आर्हन्त्यविभवोपेते महीं विहरतीश्वरे । दक्षिणां दक्षिणा देशा रेजिरे[1] स्वर्गविभ्रमाः ॥३॥
तत्रोर्जयन्तमन्तेऽसावन्तकल्याणभूतिभाक् । आरुरोह स्वभावेन नृसुरासुरसेवितः ॥४॥
पूर्ववत्समवस्थानभूमिस्तत्रामवत्प्रभोः । तिर्यग्मानवदेवौघैरनघैः समधिष्ठिता ॥५॥
धर्मं तत्र जिनोऽवोचद्रत्नत्रितयपावनम् । स्वर्गापवर्गसौख्यैकसाधनं साधुसंमतम् ॥६॥
निषद्यायां यथाद्यायां पूर्वं सर्वहितो जिनः । अन्त्यानां च तथा धर्मं स सविस्तरमब्रवीत् ॥७॥
ऊर्ध्वज्वलनमुष्णत्वं यथाग्नेः शीतताप्यपाम् । जवनं मरुतस्तिर्यग्भास्वरत्वं च तेजसः ॥८॥
अमूर्तत्वं यथा व्योम्नः स्वभावाद्धारणं[2] क्षितेः । कृतार्थस्य जिनेन्द्रस्य तथा धर्मस्य देशनम् ॥९॥
अघातिकर्मणामन्तं ततो योगनिरोधकृत् । कृत्वानेकशतैः सिद्धिं जिनेन्द्रो मुनिभिर्ययौ ॥१०॥
परिनिर्वाणकल्याणपूजामन्त्यशरीरगाम् । चतुर्विधसुरा जैनीं चक्रुः शक्रपुरोगमाः ॥११॥

अथानन्तर समस्त देवोंसे युक्त भगवान् नेमिनाथ उपदेश करते हुए उत्तरापथसे सुराष्ट्र देशकी ओर आये ॥ १ ॥ जिनेन्द्ररूपी सूर्य यद्यपि उत्तरायणको उल्लंघन कर दक्षिणायनको प्राप्त हुए थे तथापि उनके तेजकी वृत्ति पहले ही-के समान सर्वत्र व्याप्त थी ॥ भावार्थ—जब सूर्य उत्तरायणसे दक्षिणायनकी ओर आता है तब उसका तेज कुछ कम हो जाता है परन्तु नेमिजिनेन्द्ररूपी सूर्यका तेज उत्तरायण—उत्तर दिशासे दक्षिणायन—दक्षिण दिशामें आनेपर भी कम नहीं हुआ था, पहले ही के समान सर्वत्र व्याप्त था ॥ २ ॥ समवसरणकी विभूतिसे युक्त नेमिजिनेन्द्र जब दक्षिण दिशामें विहार करते थे तब वहाँके देश स्वर्गके समान सुशोभित हो रहे थे ॥ ३ ॥ तदनन्तर जब अन्तिम समय आया तब निर्वाणकल्याणककी विभूतिको प्राप्त होनेवाले नेमिजिनेन्द्र मनुष्य, सुर और असुरोंसे सेवित होते हुए अपने-आप गिरनार पर्वतपर आरूढ़ हो गये ॥ ४ ॥ वहाँ पहले ही के समान फिरसे कलुषतारहित तिर्यंच मनुष्य और देवोंके समूहसे युक्त समवसरणकी रचना हो गयी ॥ ५ ॥ समवसरणके बीच विराजमान होकर जिनेन्द्र भगवान्ने स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्तिका एक साधन, रत्नत्रयसे पवित्र एवं साधुसंमत धर्मका उपदेश दिया ॥ ६ ॥ जिस प्रकार सर्वहितकारी जिनेन्द्र भगवान्ने केवलज्ञान उत्पन्न होनेके बाद पहली बैठकमें विस्तारके साथ धर्मका उपदेश दिया था उसी प्रकार अन्तिम बैठकमें भी उन्होंने विस्तारके साथ धर्मका उपदेश दिया ॥ ७ ॥

जिस प्रकार अग्निमें ऊर्ध्वज्वलन और उष्णता, पानीमें शीतलता, वायुमें वेग, सूर्य चन्द्र आदि तेजस्वी पदार्थोंमें सब ओरसे प्रकाशमानता, आकाशमें अमूर्तिकपना और पृथिवीमें किसी पदार्थको धारण करनेकी क्षमता स्वभावसे ही होती है, उसी प्रकार कृतकृत्य जिनेन्द्र भगवान्का धर्मोपदेश भी स्वभावसे होता था किसीकी प्रेरणासे नहीं ॥८–९॥ तदनन्तर योगनिरोध करनेवाले भगवान् नेमिजिनेन्द्र अघातिया कर्मोंका अन्त कर अनेक सौ मुनियोंके साथ निर्वाण धामको प्राप्त हो गये ॥१०॥ जिनके आगे-आगे इन्द्र चल रहे थे ऐसे चारों निकायके देवोंने

---

१. भ्रेजिरे क., भेजिरे म. । २. स्वभावाद्धारणं म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गन्धपुष्पादिभिर्दिव्यैः पूजितास्तनवः क्षणात् । जैनाद्या द्योतयन्त्यो द्यां विलीना विद्युतो यथा ॥१२॥
स्वभावोऽयं जिनादीनां शरीरपरमाणवः । मुञ्चति स्कन्धतामन्ते क्षणात्क्षणरुचामिव ॥१३॥
ऊर्जयन्तगिरौ वज्री वज्रेणालिख्य [1]पाविनीम् । लोके सिद्धिशिलां चक्रे जिनलक्षणपङ्क्तिभिः[2] ॥१४॥
वरदत्तादिसंघं च वन्दित्वा वासवादयः । देवा नृपतयश्चापि ययुः सर्वे यथायथम् ॥१५॥
दशार्हादयो मुनयः षट्सहोदरसंयुताः । सिद्धिं प्राप्तास्तथान्येऽपि शम्बप्रद्युम्नपूर्वकाः ॥१६॥
ऊर्जयन्तादिनिर्वाणस्थानानि भुवने ततः । तीर्थयात्रागतानेकभव्यसेव्यानि रेजिरे ॥१७॥
ज्ञात्वा भगवतः सिद्धिं पञ्च पाण्डवसाधवः । शत्रुंजयगिरौ धीराः प्रतिमायोगिनः स्थिताः ॥१८॥
दुर्योधनान्वयस्तत्र स्थितो [3]क्षुयवरोधनः । श्रुत्वागत्याकरोद्वैरादुपसर्गं सुदुस्सहम् ॥१९॥
तप्तायोमयमूर्तीनि मुकुटानि ज्वलन्त्यलम् । कटकैः कटिसूत्रादि तन्मूर्धादिष्वयोजयत् ॥२०॥
रौद्रं दाहोपसर्गं ते मेनिरे हिमशीतलम् । वीराः कर्मविपाकज्ञाः कर्मक्षयकृतौ क्षमाः ॥२१॥
शुक्लध्यानसमाविष्टा भीमार्जुनयुधिष्ठिराः । कृत्वाष्टविधकर्मान्तं मोक्षं जग्मुस्त्रयोऽक्षयम् ॥२२॥
नकुलः सहदेवश्च ज्येष्ठदाहं निरीक्ष्य तौ । [4]अनाकुलितचेतस्कौ जातौ सर्वार्थसिद्धिजौ ॥२३॥

भगवान्‌के अन्तिम शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाली निर्वाणकल्याणकी पूजा की ॥११॥ दिव्य गन्ध तथा पुष्प आदिसे पूजित, तीर्थंकर आदि मोक्षगामी जीवोंके शरीर, क्षण-भरमें बिजलीकी नाईं आकाशको देदीप्यमान करते हुए विलीन हो गये ॥१२॥ क्योंकि यह स्वभाव है कि तीर्थंकर आदिके शरीरके परमाणु अन्तिम समय बिजलीके समान क्षण-भरमें स्कन्धपर्यायको छोड़ देते हैं ॥१३॥

गिरनार पर्वतपर इन्द्रने वज्रसे उकेरकर इस लोकमें पवित्र सिद्धशिलाका निर्माण किया तथा उसे जिनेन्द्र भगवान्‌के लक्षणोंके समूहसे युक्त किया ॥१४॥ तदनन्तर वरदत्त आदि मुनियोंके संघकी वन्दना कर इन्द्रादि देव और राजा लोग सब यथायोग्य अपने-अपने स्थानपर चले गये ॥१५॥

समुद्रविजय आदि नौ भाई, देवकीके युगलिया छह पुत्र तथा शंब और प्रद्युम्नकुमार आदि अन्य मुनि भी गिरनार पर्वतसे मोक्षको प्राप्त हुए। इसलिए उस समयसे गिरनार आदि निर्वाण स्थान संसारमें विख्यात हुए और तीर्थयात्राके लिए आनेवाले अनेक भव्य जीवोंके द्वारा सेवित होते हुए सुशोभित होने लगे ॥१६-१७॥

धीर-वीर पाँचों पाण्डव मुनि, भगवान्‌को मोक्ष हुआ जान शत्रुंजय पर्वतपर प्रतिमायोगसे विराजमान हो गये ॥१८॥ उस समय वहाँ दुर्योधनके वंशका क्षुयवरोधन नामका कोई पुरुष रहता था। ज्यों ही उसने वहाँ पाण्डवोंका आना सुना त्यों ही आकर उसने वैर वश उनपर घोर उपसर्ग करना शुरू कर दिया ॥१९॥ उसने तपाये हुए लोहेके मुकुट, कड़े तथा कटिसूत्र आदि बनवाये और उन्हें अग्निमें अत्यन्त प्रज्वलित कर उनके मस्तक आदि स्थानोंमें पहनाये ॥२०॥ पाण्डव मुनिराज अत्यन्त धीर-वीर थे, कर्मके उदयको जाननेवाले थे एवं कर्मोंका क्षय करनेमें समर्थ थे, इसलिए उन्होंने दाहके उस भयंकर उपसर्गको हिमके समान शीतल समझा था ॥२१॥ भीम, अर्जुन और युधिष्ठिर ये तीन मुनिराज तो शुक्लध्यानसे युक्त हो आठों कर्मोंका क्षय कर मोक्ष गये परन्तु नकुल और सहदेव बड़े भाईकी राहको देख कुछ-कुछ आकुलितचित्त हो गये इसलिए सर्वार्थसिद्धिमें उत्पन्न हुए ॥२२-२३॥

१. पावनीं ख., पावनं म. । २. युक्तिभिः म., ध. । ३. युधवरोधनः घ., म. । ४. ईषदाकुलितं चेतो ययोस्तौ ईषदर्थे नञ्प्रयोगः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नारदोऽपि नरश्रेष्ठः प्रव्रज्य तपसो बलात् । कृत्वा भवक्षयं मोक्षमक्षयं समुपेयिवान्[1] ॥२४॥
अन्येऽपि बहवो भव्याः सुरत्नत्रयधारिणः । मोक्षं प्राप्ताः परे स्वर्गमासन्नभवसंक्षयाः[2] ॥२५॥
तुङ्गिकाशिखरारूढो बलदेवोऽपि दुष्करम् । तपो नानाविधं चक्रे भवचक्रक्षयोद्यतः ॥२६॥
एकद्वित्र्यादिषण्मासपर्यन्तोपोषितैरसौ । कषायवपुषां चक्रे शोषणं पोषणं धृतेः ॥२७॥
कान्तारभिक्षया प्राणधारणां कर्तुमुद्यतः । भ्रमन् कान्तारमध्येऽन्यैर्व्यलोकि शशिविभ्रमः ॥२८॥
पुरग्रामादिषु ख्यातां श्रुत्वा वार्तां तथाविधाम् । पर्यन्तवासिनो भूपाः प्राप्ताः क्षुभितमानसाः ॥२९॥
शङ्काविषसमापन्नान्नानाप्रहरणाश्रितान् । सिद्धार्थस्तान् तथालोक्य सृष्टवान् सिंहसंततिम् ॥३०॥
मुनिपादसमीपे तान् सिंहानालोक्य भूभृतः । ते ज्ञातमुनिसामर्थ्याः प्रणम्योपशमं ययुः ॥३१॥
ततः प्रभृत्यसौ लोके नरसिंह इति श्रुतिम् । सिंहोरस्को हली प्राप्तः सिंहानुचरसंयतः ॥३२॥
एकं वर्षशतं कृत्वा तपो हलधरो मुनिः । समाराध्य परिप्राप्तो ब्रह्मलोके सुरेशताम् ॥३३॥
तत्र पद्मोत्तरे नाम्नि विमाने रत्नभास्वरे । देवदेवीगणाकीर्णे प्रासादोद्यानमण्डिते ॥३४॥

मनुष्योंमें श्रेष्ठ नारद भी दीक्षा ले तपके बलसे संसारका क्षयकर अविनाशी मोक्षको प्राप्त हुए ॥२४॥ समीचीन रत्नत्रयको धारण करनेवाले अन्य अनेक भव्य जीव भी मोक्षको प्राप्त हुए तथा निकट कालमें जिनके संसारका क्षय होनेवाला था ऐसे कितने ही जीव स्वर्ग गये ॥२५॥

तुंगीगिरिके शिखरपर स्थित बलदेवने भी संसार-चक्रका क्षय करनेमें उद्यत हो नाना प्रकारका तप किया ॥२६॥ वे एक दिन, दो दिन, तीन दिनको आदि लेकर छह माह तकके उपवासोंसे कषाय और शरीरका शोषण तथा धैर्यका पोषण करते थे ॥२७॥ वनमें मिलनेवाली भिक्षासे प्राण धारण करनेके लिए उद्यत बलदेव मुनिराज, वनमें विहार करने लगे और चन्द्रमाका भ्रम उत्पन्न करनेवाले उन मुनिराजको लोगोंने देखा ॥२८॥ 'बलदेव वनमें विहार कर रहे हैं' यह बात नगरों तथा गाँवोंमें फैल गयी उसे सुन समीपवर्ती राजा क्षुभितचित्त हो वहाँ आ पहुँचे ॥२९॥

शंकारूपी विषसे युक्त तथा नाना प्रकारके शस्त्रोंसे सुसज्जित उन राजाओंको जब देव सिद्धार्थने देखा तो उस वनमें उसने सिंहोंके समूह रच दिये ॥३०॥ जब उन आगत राजाओंने मुनिराजके चरणोंके समीप सिंहोंको देखा तब वे उनकी सामर्थ्य जान नमस्कार कर शान्त भावको प्राप्त हो गये ॥३१॥ उसी समयसे बलदेव मुनिराज लोकमें नरसिंह इस प्रसिद्धिको प्राप्त हो गये । वे सिंहके समान चौड़े वक्षःस्थलसे सुशोभित थे तथा सिंहरूपी सेवकोंसे युक्त थे ॥३२॥ इस प्रकार एक-सौ वर्षतक तप कर बलदेव मुनिराजने अन्तमें समाधि धारण की और उसके फलस्वरूप ब्रह्मलोकमें इन्द्रके पदको प्राप्त हुए ॥३३॥ वहाँ देव-देवियोंके समूहसे युक्त, महल और उद्यानोंसे सुशोभित तथा रत्नोंके समान देदीप्यमान पद्म नामक विमानमें कोमल उपपाद शय्यापर उस प्रकार देव उत्पन्न हुए जिस प्रकार

---

१. नारदस्य मोक्षप्राप्तिरन्यदिगम्बरग्रन्थाद्विरुद्धा वर्तते, तेषु तस्य नरकगामित्वदर्शनात् । 'कलहप्पिया कदाइं धम्मरहा वासुदेवसमकाला । भव्वा णिरयगदिं ते हिंसादोषेण गच्छंति' त्रिलोकसार गाथा ८३५ ॥ 'रुट्ठावइ अइरुद्दा पावणिहाणा हवामि सव्वे वे । कलहमहा जुज्झपिया अधोगया वासुदेवव्व' ॥१४७० त्रि. प्र. अथवा अत्र नारदपदेन वसुदेवस्य सोमश्रीस्त्रीसमुत्पन्नः पुत्रो ग्राह्यः-नारदो मरुदेवोऽपि सोमश्रीतनयौ वरौ । सर्ग ४८, श्लोक ५७ हरिवंशपुराणे । २. आसन्नभवसंख्यया म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मृदूपपादशय्यायामुदपादि बलोऽमरः । महामणिरिवोदाररत्नाकरमहाक्षितौ ॥३५॥
भाषामनःशरीराक्षप्राणाहारप्रसिद्धिभिः । षड्भिः पर्याप्तिभिः सद्यः पर्याप्तोऽभूत्सुरोत्तमः ॥३६॥
शयने सर्वतोभद्रे वस्त्राभरणभूषितः । विबुधः सुखनिद्रान्ते यथात्र नवयौवनः ॥३७॥
विलोकमानमालोक्य शब्दैरमरयोषिताम् । सुराणामनुरक्तानामप्यसावभिनन्दितः ॥३८॥
चन्द्रादित्याधिकोदारप्रभावलयदेहभृत् । इति दध्यौ धृतध्यानः प्रमदापूर्णमानसः ॥३९॥
कोऽयं रम्यतमो देशः कोऽयं प्रमुदितो जनः । कोऽहं क्वाद्य भवोऽयं मे धर्मः को वार्जितो मया ॥४०॥
बोधितः सुरमुख्यैः स सभवप्रत्ययावधिः । विवेद सहसा देवः पौर्वापर्यमशेषतः ॥४१॥
ज्ञातपूर्वभवाशेषबन्धुर्बन्धुहितोद्यतः । प्राप्ताभिषेककल्याणः स्वीकृतात्मपरिच्छदः ॥४२॥
अवधिज्ञातकृष्णश्च गत्वासौ बालुकाप्रभाम् । दृष्ट्वानुजं निजं देवो दुःखितं दुःखितोऽभवत् ॥४३॥
महाप्रभावसंपन्ने देवे तत्र तथास्थिते । शब्दगन्धरसस्पर्शाः शुभतामशुभा ययुः ॥४४॥
एह्येहि कृष्ण योऽहं ते भ्राता ज्येष्ठो हलायुधः । ब्रह्मलोकाधिपो भूत्वा त्वत्समीपमिहागतः ॥४५॥
इत्युक्त्वा तं समुद्धृत्य स्वर्लोकं नेतुमुद्यते । देवे तस्य व्यलीयन्त गात्राणि नवनीतवत् ॥४६॥
ततः कृष्णो जगौ देव भ्रातः किं व्यर्थचेष्टितैः । किन्न ज्ञातं यथा सर्वे जीवाः स्वकृतभोगिनः ॥४७॥
यद्येन यादृशं कर्म संसारे समुपार्जितम् । तत्तेन तादृशं भ्रातर्नियमादनुभूयते ॥४८॥

कि विशाल रत्नाकरकी महाभूमिमें महामणि उत्पन्न होता है ॥ ३५ ॥ वह उत्तम देव वहाँ शीघ्र ही आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन इन छह पर्याप्तियोंसे पूर्ण हो गया ॥३६॥ नवयौवनसे युक्त एवं वस्त्राभरणसे विभूषित वह देव, सर्वतोभद्र नामक शय्यापर ऐसा उठकर बैठ गया जैसा मानो सुखनिद्रा पूर्ण होनेपर ही उठा हो ॥ ३७ ॥ जब इस देवने चारों ओर देखा तब अनुरागसे युक्त देवांगनाओं और देवोंके शब्दोंने इसका अभिनन्दन किया ॥ ३८ ॥ चन्द्रमा और सूर्यसे भी अधिक उत्कृष्ट प्रभावलयसे युक्त शरीरको धारण करनेवाला वह देव, हर्षसे पूर्ण हृदय होता हुआ इस प्रकारका ध्यान करने लगा कि यह अत्यन्त सुन्दर देश कौन है ? ये हर्षसे भरे जन कौन हैं ? मैं कौन हूँ ? मेरा यहाँ कहाँ जन्म हुआ है ? और मैंने किस धर्मका संचय किया है ? ॥३९–४०॥

तदनन्तर मुख्य-मुख्य देवोंने उसे समझाया—सब वस्तुओंका परिचय दिया जिससे तथा भवप्रत्यय अवधिज्ञानसे युक्त हो उसने शीघ्र ही आगे-पीछेका सब वृत्तान्त जान लिया ॥ ४१ ॥ तदनन्तर जिसने पूर्वभवके सब बन्धुओंको जान लिया था, जो भाईका हित करनेमें उद्यत था, जिसे अभिषेकरूप कल्याण प्राप्त हुआ था, जिसने वस्त्राभूषणादि सब सामग्री प्राप्त की थी, और अवधिज्ञानसे जिसने कृष्णका समाचार जान लिया था ऐसा वह बालुकाप्रभा पृथिवीमें गया और अपने छोटे भाई कृष्णको दुःखी देख स्वयं बहुत दुःखी हुआ ॥४२–४३॥ महाप्रभावसे सम्पन्न वह देव जब वहाँ जाकर खड़ा हो गया तब वहाँके अशुभ शब्द गन्ध रस और शब्द शुभरूपताको प्राप्त हो गये ॥४४॥

वह कहने लगा कि हे कृष्ण ! आओ, आओ, जो मैं तुम्हारा बड़ा भाई बलदेव था वही ब्रह्मलोकका अधिपति होकर यहाँ तुम्हारे पास आया हूँ ॥४५॥ यह कहकर वह देव ज्योंही कृष्णके जीवको उठाकर स्वर्गलोकमें ले जानेके लिए उद्यत हुआ त्योंही उसका शरीर मक्खनके समान गलकर विलीन हो गया ॥४६॥

तदनन्तर कृष्णने कहा कि हे देव ! हे भाई ! व्यर्थकी चेष्टाओंसे क्या लाभ है ? क्या आप यह नहीं जानते कि सब जीव अपने कियेका फल भोगते हैं ॥४७॥ संसारमें जिसने जैसा कर्म उपा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शक्नुयुः सुखमाहर्तुं हर्तुं वा दुःखमङ्गिनाम् । देवा यदि ततो घ्नन्ति मृत्युदुःखं निजं न किम् ॥४९॥
भ्रातर्याहि ततः स्वर्गं भुङ्क्ष्व पुण्यफलं निजम् । आयुषोऽन्तेऽहमप्येमि मोक्षहेतुं मनुष्यताम् ॥५०॥
आवां तत्र तपः कृत्वा जिनशासनसेवया । मोक्षसौख्यमवाप्स्यावः कृत्वा कर्मपरिक्षयम् ॥५१॥
[1]आवां पुत्रादिसंयुक्तौ महाविभवसंगतौ । भारते दर्शयान्येषां विस्मयव्याप्तचेतसाम् ॥५२॥
शङ्खचक्रगदापाणिर्मदीयप्रतिमागृहैः । भारतं व्यापय क्षेत्रं मत्कीर्तिपरिवृद्धये ॥५३॥
इत्यादि वचनं तस्य प्रतिपद्य सुरेश्वरः । सम्यक्त्वे शुद्धिमाख्याप्य भारतं क्षेत्रमागतः ॥५४॥
भ्रातृस्नेहवशो देवो यथोद्दिष्टं स विष्णुना । चक्रे दिव्यविमानस्थं[2]चक्रिलाङ्गलदर्शनम् ॥५५॥
वासुदेवगृहैश्चक्रे नगरादिनिवेशितैः । विष्णुमोहमयं लोकं स्नेहात्किं वा न चेष्टयते ॥५६॥
ब्रह्मलोकं [3]समासाद्य कृतजैनमहामहः । विन्दन् सुरसुखं सोऽस्थात्सुरस्त्रीनिवहावृतः ॥५७॥

स्रग्धरा

उच्चैर्देशस्थितोऽपि प्रतिभयपतनं याति पातालमूलं
भुङ्क्ते नैवोपलब्धं विषयसुखरसं सारसंसारसारम् ।
स्नेहाधिक्यादधीतं स्मरति न तनुभृत्सेवते प्रत्यनीकं
धिक् धिक् स्वर्मोक्षसौख्यप्रतिघमतिघनस्नेहमोहं जनानाम् ॥५८॥

जंन किया है, हे भाई ! नियमसे उसे वैसा ही फल भोगना पड़ता है ॥४८॥ देव, यदि दूसरे प्राणियोंके लिए सुख देने और दुःख हरनेमें समर्थ हैं तो फिर अपना ही मृत्युरूपी दुःख क्यों नहीं नष्ट कर लेते हैं ॥४९॥

इसलिए भाई ! स्वर्गको जाओ और अपने पुण्यका फल भोगो। मैं भी आयुके अन्तमें मोक्षका कारण जो मनुष्यपर्याय है उसे प्राप्त करूँगा ॥५०॥ हम दोनों उस मनुष्य-पर्यायमें तप करेंगे और जिनशासनकी सेवासे कर्मोंका क्षय कर मोक्ष प्राप्त करेंगे ॥५१॥ हाँ, एक काम आप अवश्य करें कि 'भरत क्षेत्रमें हम दोनोंको लोग पुत्र आदिसे सहित तथा महावैभवसे युक्त देखें और हम लोगोंको देखकर दूसरोंके चित्त आश्चर्यसे व्याप्त हो जावें ॥५२॥ मेरी कीर्तिकी वृद्धिके लिए आप शंख, चक्र तथा गदा हाथमें लिये मेरी प्रतिमाओंके मन्दिरोंसे समस्त भरत क्षेत्रको व्याप्त कर दें'। बलदेवका जीव देवेन्द्र कृष्णके पूर्वोक्त वचन स्वीकार कर तथा उसे सम्यग्दर्शनमें शुद्धता रखनेका उपदेश दे भरत क्षेत्र आया ॥५३-५४॥ भाईके स्नेहके वशीभूत हुए उस देवने कृष्णका कहा सब काम किया। उसने दिव्य विमानमें स्थित कृष्ण और बलदेवका सबको दर्शन कराया ॥५५॥ तथा नगर-ग्राम आदिमें बनवाये हुए कृष्णके मन्दिरोंसे संसारको कृष्णविषयक मोहसे तन्मय कर दिया सो ठीक ही है क्योंकि स्नेहसे क्या-क्या चेष्टा नहीं होती है ? ॥५६॥

तदनन्तर देवने ब्रह्मस्वर्ग जाकर जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा की और वहाँ वह स्त्रियोंके समूहसे आवृत हो देवोंके सुखका उपभोग करता हुआ रहने लगा ॥५७॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि देखो स्नेहकी अधिकतासे यह जीव उच्च स्थानमें स्थित होता हुआ भी भयपूर्ण पातालके मूलमें जाता है, श्रेष्ठ संसारके सारभूत प्राप्त हुए विषयसुखका उपभोग नहीं करता है, पहले अध्ययन किये हुए शास्त्रका स्मरण नहीं रखता है और विपरीत काम करने लगता है इसलिए स्वर्ग और मोक्ष-

१. सम्यग्दृष्टिर्बद्धतीर्थकरनाम प्रकृतिः कृष्णस्य जीवः, एवं मिथ्यात्ववर्धनं कार्यं कारयतीति विचित्रोऽयमुल्लेखः प्रतिभाति । २. दिव्यविमानस्थं चक्रि म., क., ङ. । ३. समारुह्य क. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शार्दूलविक्रीडितम्

तीर्थे नेमिजिनस्य तत्र वहति व्यामोहविच्छेदने
संजाते वरदत्तनामनि मुनौ कैवल्यचक्षुष्मति ।
राजासौ हरिवंशसंततिधरो धीरो धरायाः सुतो
दध्रे राज्यधुरां धुरंधरधराधीशश्रियं धारयन् ॥५९॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ भगवन्निर्वाणवर्णनो नाम
पञ्चषष्टितमः सर्गः ॥६५॥

□

सुखके बाधक प्राणियोंके अत्यधिक स्नेहसम्बन्धी मोहको धिक्कार हो ॥ ५८ ॥ तदनन्तर मोहको नष्ट करनेवाले नेमिजिनेन्द्रके उस प्रचलित तीर्थमें वरदत्त नामक मुनिको केवलज्ञान हुआ और हरिवंशकी सन्ततिको धारण करनेवाला धीर-वीर जरत्कुमार धुरन्धर राजलक्ष्मीकी रक्षा करता हुआ राज्यका भार सँभालने लगा ॥५९॥

इस प्रकार अरिष्टनेमिपुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंशपुराणमें भगवान् नेमिनाथके निर्वाणका वर्णन करनेवाला पैंसठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥६५॥

□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

षट्षष्टितमः सर्गः

वंशस्थवृत्तम्

प्रतापवश्याखिलराजके नृपे प्रशासति क्ष्मातलमुग्रशासने ।
जरत्कुमारे जनितादराः प्रजाः प्रकाममापुः प्रमदं धरातले ॥१॥
कलिङ्गराजस्य नृपस्य देहजा जरत्कुमारस्य वधूर्वधूत्तमा ।
सुखेन लेभे जगतः सुखावहं वसुध्वजं राजकुलध्वजं सुतम् ॥२॥
स तत्र यूनि व्यवसायिनि क्षितिं जरत्कुमारो हरिवंशशेखरे ।
निधाय यातस्तपसे वनं सतां कुलव्रतं तीव्रतपोनिषेवणम् ॥३॥
सुतोऽभवच्चन्द्र इव प्रजाप्रियो [1]वसुध्वजाख्यात्सुवसुर्वसूपमः ।
स भीमवर्मास्य कलिङ्गपालकस्तदन्वयेऽतीयुरनेकशो नृपाः ॥४॥
कपिष्टनामान्वयभूषणस्त्वभूदजातशत्रुस्तनयस्ततोऽभवत् ।
स शत्रुसेनोऽस्य जितारिरङ्गजस्तदङ्गजोऽयं जित[2]शत्रुरीश्वरः ॥५॥
भवान्न किं श्रेणिक वेत्ति भूपतिं नृपेन्द्रसिद्धार्थकनीयसीपतिम् ।
इमं प्रसिद्धं जितशत्रुमाख्यया प्रतापवन्तं जितशत्रुमण्डलम् ॥६॥
जिनेन्द्रवीरस्य समुद्भवोत्सवे तदागतः कुण्डपुरं सुहृत्परः ।
सुपूजितः कुण्डपुरस्य भूभृता नृपोऽयमाखण्डलतुल्यविक्रमः ॥७॥
यशोदयायां सुतया यशोदया पवित्रया वीरविवाहमङ्गलम् ।
अनेककन्यापरिवारयारुहत्समीक्षितुं तुङ्गमनोरथं तदा ॥८॥

तदनन्तर प्रतापके द्वारा समस्त राजाओंको वश करनेवाला, उग्रशासनका धारक राजा जरत्कुमार जब पृथिवीका शासन करने लगा तब उसके प्रति प्रजाने बहुत आदर किया और पृथिवीतलपर अधिक हर्ष प्राप्त किया ॥ १ ॥ कलिंग राजाकी पुत्री जरत्कुमारकी उत्तम पट्टरानी थी, उससे उसने जगत्को सुख देनेवाला एवं राजकुलकी ध्वजास्वरूप वसुध्वज नामका पुत्र प्राप्त किया ॥ २ ॥ व्यवसायी तथा हरिवंशके शिरोमणि उस युवापर पृथिवीका भार रख जरत्कुमार तपके लिए वनको चला गया सो ठीक ही है क्योंकि तीव्र तपका सेवन करना सत्पुरुषोंका कुलव्रत है ॥ ३ ॥ वसुध्वजके चन्द्रमाके समान प्रजाको आनन्द देनेवाला कुबेरतुल्य सुवसु नामका पुत्र हुआ। सुवसुके कलिंग देशकी रक्षा करनेवाला भीमवर्मा नामका पुत्र हुआ और उसके वंशमें अनेक राजा हुए ॥४॥ तदनन्तर उसी वंशका आभूषण कपिष्ट नामका राजा हुआ, उसके अजातशत्रु, अजातशत्रुके शत्रुसेन, शत्रुसेनके जितारि और जितारिके यह जितशत्रु नामका पुत्र हुआ है ॥ ५ ॥ हे राजन् श्रेणिक ! क्या तुम इस जितशत्रुको नहीं जानते ? जिसके साथ भगवान् महावीरके पिता राजा सिद्धार्थकी छोटी बहनका विवाह हुआ है, जो अत्यन्त प्रतापी और शत्रुओंके समूहको जीतनेवाला है ॥ ६ ॥ जब भगवान् महावीरका जन्मोत्सव हो रहा था तब यह कुण्डपुर आया था और कुण्डपुरके राजा सिद्धार्थने इन्द्रके तुल्य पराक्रमको धारण करनेवाले इस परम मित्रका अच्छा सत्कार किया था ॥ ७ ॥ इसकी यशोदया रानीसे उत्पन्न यशोदा नामकी पवित्र पुत्री थी। अनेक कन्याओंसे सहित उस

---

१. वसुध्वजाच्चासुवसु –म. । २. यन्त्रितशत्रु –म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]स्थितेऽथ नाथे तपसि स्वयंभुवि प्रजातकैवल्यविशाललोचने ।
जगद्विभूत्यै विहरत्यपि क्षितिं क्षितिं विहाय स्थितवांस्तपस्ययम् ॥९॥
अमुष्य [2]जाताद्य तपोबलान्मुनेरवाप्तकैवल्यफला मनुष्यता ।
मनुष्यभावो हि महाफलं भवे भवेदयं प्राप्तफलस्तपःफलात् ॥१०॥
इतीरितेयं हरिवंशसत्कथा समासतः श्रेणिक लोकविश्रुता ।
त्रिषष्टिसंख्यानपुराणपद्धतिप्रदेशसंबन्धवती श्रियेऽस्तु ते ॥११॥
[3]सुगौतमात्पुण्यपुराणपद्धतिं सपार्थिवैः श्रेणिकपार्थिवस्तदा ।
सुदृष्टिराकर्ण्य सकर्णतां गतो गतः पुरं [4]प्रीतमतिः कृतानतिः ॥१२॥
चतुर्णिकायामरखेचरादयो जिनं परीत्य प्रणिपत्य भक्तितः ।
यथायथं जग्मुरजन्मकाङ्क्षिणः प्रसिद्धसद्धर्मकथानुरागिणः ॥१३॥
विहृत्य पूज्योऽपि महीं [5]महीयसां महामुनिर्मोचितकर्मबन्धनः ।
इयाय मोक्षं जितशत्रुकेवली निरन्तसौख्यप्रतिबद्धमक्षयम् ॥१४॥
जिनेन्द्रवीरोऽपि विबोध्य संततं समन्ततो भव्यसमूहसंततिम् ।
प्रपद्य पावानगरीं गरीयसीं मनोहरोद्यानवने तदीयके ॥१५॥
चतुर्थकालेऽर्धचतुर्थमासकैर्विहीनताविश्चतुरब्दशेषके ।
स कार्तिके स्वातिषु कृष्णभूतसुप्रभातसन्ध्यासमये स्वभावतः ॥१६॥

यशोदाका भगवान् महावीरके साथ विवाह-मंगल देखनेकी यह उत्कट अभिलाषा रखता था। परन्तु स्वयम्भू भगवान् महावीर तपके लिए चले गये और केवलज्ञानरूपी विशाल नेत्र प्राप्त कर जगत्का कल्याण करनेके लिए पृथिवीपर विहार करने लगे, तब यह स्वयं भी पृथिवीको छोड़ तपमें लीन हो गया ॥८-९॥ आज मुनि जितशत्रुको तपके फलस्वरूप केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है और उससे उनका मनुष्यपर्याय सार्थक हुआ है सो ठीक ही है, क्योंकि संसारमें मनुष्य-पर्याय महाफलस्वरूप तभी होता है जब वह तपके फलस्वरूप इस केवलज्ञानरूपी फलको प्राप्त कर लेता है ॥१०॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! मैंने यह लोकप्रसिद्ध तथा त्रेसठशलाका पुरुषोंके पुराणपद्धतिसे सम्बन्ध रखनेवाली हरिवंशकी कथा संक्षेपसे कही है सो तुझे लक्ष्मीकी प्राप्तिके लिए हो ॥११॥ सम्यग्दर्शनसे सुशोभित राजा श्रेणिक अनेक राजाओंके साथ गौतम-गणधरसे इस पवित्र पुराणका वर्णन सुन अपने कानोंको सफल मानने लगा तथा नमस्कारकर प्रसन्न होता हुआ अपने नगरको चला गया ॥१२॥ मोक्षकी इच्छा रखनेवाले एवं प्रसिद्ध समीचीन धर्मकथाके अनुरागी चारों निकायके देव और विद्याधर जिनेन्द्र भगवान्को प्रदक्षिणा देकर तथा प्रणाम कर अपने-अपने स्थानोंपर चले गये ॥१३॥ बड़े-बड़े पुरुषोंके द्वारा पूज्य महामुनि जितशत्रु केवली भी पृथिवीपर विहार कर अन्तमें कर्मबन्धसे रहित हो अनन्त सुखसे युक्त अविनाशी मोक्षपदको प्राप्त हुए ॥१४॥ भगवान् महावीर भी निरन्तर सब ओरके भव्यसमूहको संबोधकर पावानगरी पहुँचे और वहाँके 'मनोहरोद्यान' नामक वनमें विराजमान हो गये ॥१५॥ जब चतुर्थ-कालमें तीन वर्ष साढ़े आठ मास बाकी रहे तब स्वाति नक्षत्रमें कार्तिक अमावास्याके दिन प्रातः कालके समय स्वभावसे ही योग निरोधकर घातियाकर्मरूप ईंधनके समान अघातियाकर्मोंको भी

१. स्मितेऽथ म. । २. याताद्य क., ख., ङ., म. । ३. सुगौतमायुष्यपुराण-म. । ४. स्फीतमतिः म. महा प्रीतमतिः ख. । ५. महीयसीं क. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अघातिकर्माणि निरुद्धयोगको विधूय घातीन्धनवद्विबन्धनः ।
विबन्धनस्थानमवाप शंकरो निरन्तरायोरुसुखानुबन्धनम् ॥१७॥
स पञ्चकल्याणमहामहेश्वरः प्रसिद्धनिर्वाणमहे चतुर्विधैः ।
शरीरपूजाविधिना विधानतः सुरैः समभ्यर्च्यत सिद्धशासनः ॥१८॥
ज्वलत्प्रदीपालिकया प्रवृद्धया सुरासुरैः दीपितया प्रदीप्तया ।
तदा स्म पावानगरी समन्ततः प्रदीपिताकाशतला प्रकाशते ॥१९॥
तथैव च श्रेणिकपूर्वभूभुजः[1] प्रकृत्य कल्याणमहं सहप्रजाः ।
प्रजग्मुरिन्द्राश्च सुरैर्यथायथं प्रयाचमाना जिनबोधिसर्थिनः ॥२०॥
ततस्तु लोकः प्रतिवर्षमादरात्प्रसिद्धदीपालिकयात्र भारते ।
समुद्यतः पूजयितुं जिनेश्वरं जिनेन्द्रनिर्वाणविभूतिभक्तिमाक् ॥२१॥
त्रयः क्रमात्केवलिनो जिनात्परे द्विषष्टिवर्षान्तरभाविनोऽभवन् ।
ततः परे पञ्च समस्तपूर्विणस्तपोधना वर्षशतान्तरे गताः ॥२२॥
त्र्यशीतिके वर्षशते तु [2]रूपयुक् दशैव गीता दशपूर्विणः शते ।
द्वये च विंशेऽङ्गभृतोऽपि पञ्च ते शते च साष्टादशके चतुर्मुनिः ॥२३॥
गुरुः सुभद्रो जयभद्रनामकः[3] परो यशोबाहुरनन्तरस्ततः ।
महार्हलोहार्यगुरुश्च ये दधुः प्रसिद्धमाचारमहाङ्गमत्र ते ॥२४॥

नष्ट कर बन्धनरहित हो संसारके प्राणियोंको सुख उपजाते हुए निरन्तराय तथा विशाल सुखसे सहित निर्बन्ध—मोक्ष स्थानको प्राप्त हुए ॥१६–१७॥ गर्भादि पाँचों कल्याणकोंके महान् अधिपति, सिद्धशासन भगवान् महावीरके निर्वाण महोत्सवके समय चारों निकायके देवोंने विधिपूर्वक उनके शरीरकी पूजा की ॥१८॥ उस समय सुर और असुरोंके द्वारा जलायी हुई बहुत भारी देदीप्यमान दीपकोंकी पंक्तिसे पावानगरीका आकाश सब ओरसे जगमगा उठा ॥१९॥ श्रेणिक आदि राजाओंने भी प्रजाके साथ मिलकर भगवान्‌के निर्वाण कल्याणककी पूजा की। तदनन्तर बड़ी उत्सुकताके साथ जिनेन्द्र भगवान्‌के रत्नत्रयकी याचना करते हुए इन्द्र देवोंके साथ-साथ यथास्थान चले गये ॥२०॥ उस समयसे लेकर भगवान्‌के निर्वाणकल्याणकी भक्तिसे युक्त संसारके प्राणी इस भरत-क्षेत्रमें प्रतिवर्ष आदरपूर्वक प्रसिद्ध दीपमालिकाके द्वारा भगवान् महावीरकी पूजा करनेके लिए उद्यत रहने लगे। भावार्थ—उन्हींकी स्मृतिमें दीपावलीका उत्सव मनाने लगे ॥२१॥

भगवान् महावीरके निर्वाणके बाद बासठ वर्षमें क्रमसे गौतम, सुधर्म और जम्बूस्वामी ये तीन केवली हुए। उनके बाद सौ वर्षमें समस्त पूर्वोंको जाननेवाले पाँच* श्रुतकेवली हुए ॥२२॥ तदनन्तर एक सौ तेरासी वर्षमें† ग्यारह मुनि दश पूर्वके धारक हुए। उनके बाद दो सौ बीस वर्षमें पाँच§ मुनि ग्यारह अंगके धारी हुए। तदनन्तर एक सौ अठारह वर्षमें सुभद्रगुरु, जयभद्र, यशोबाहु और महापूज्य लोहार्यगुरु ये चार मुनि प्रसिद्ध आचारांगके धारी हुए ॥२३–२४॥

१. पूर्वभूभृतः म. । २. एकाधिका दश एकादशेत्यर्थः । ३. जयभद्रनामा-म., ख., ङ., म. ।

* १. नन्दी, २. नन्दिमित्र, ३. अपराजित, ४. गोवर्द्धन और ५. भद्रबाहु ।

† १. विशाख, २. प्रोष्ठिल, ३. क्षत्रिय, ४. जय, ५. नाग, ६. सिद्धार्थ, ७. धृतिषेण, ८. विजय, ९. बुद्धिल, १०. गङ्गदेव और ११. सुधर्म ।

§ १. नक्षत्र, २. जयपाल, ३. पाण्डु, ४. ध्रुवसेन और ५. कंसार्य ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महातपोभृद्विनयंधरः[1] श्रुताम्बुधिश्रुतिं गुप्तपदादिकां दधत् ।
मुनीश्वरोऽन्यः शिवगुप्तसंज्ञको गुणैः स्वमर्हद्बलिरप्यधात्पदम् ॥२५॥

स मन्दरार्योऽपि च मित्रवीरविर्[2] गुरू तथान्यौ बलदेवमित्रकौ ।
विवर्धमानाय त्रिरत्नसंयुतः श्रियान्वितः सिंहबलश्च वीरवित् ॥२६॥

स पद्मसेनो गुणपद्मखण्डभृद् गुणाग्रणीर्व्याघ्रपदादिहस्तकः ।
स नागहस्ती जितदण्डनामभृत्सनन्दिषेणः प्रभुदीपसेनकः ॥२७॥

तपोधनः श्रीधरसेननामकः सुधर्मसेनोऽपि च सिंहसेनकः ।
सुनन्दिषेणेश्वरसेनकौ प्रभू सुनन्दिषेणाभयसेननामकौ ॥२८॥

स सिद्धसेनोऽभयभीमसेनकौ गुरू परौ तौ जिनशान्तिषेणकौ ।
अखण्डषट्खण्डमखण्डितस्थितिः[3] समस्तसिद्धान्तमधत्त योऽर्थतः ॥२९॥

दधार कर्मप्रकृतिं श्रुतिं च यो जिताक्षवृत्तिर्जयसेनसद्गुरुः ।
प्रसिद्धवैय्याकरणप्रभाववानशेषराद्धान्तसमुद्रपारगः ॥३०॥

तदीयशिष्योऽमितसेनसद्गुरुः पवित्रपुन्नाटगणाग्रणीगणी ।
जिनेन्द्रसच्छासनवत्सलात्मना तपोभृता वर्षशताधिजीविना ॥३१॥

सुशास्त्रदानेन वदान्यतामुना वदान्यमुख्येन भुवि प्रकाशिता ।
[4]यदग्रजो धर्मसहोदरः शमी समग्रधीर्धर्म इवात्तविग्रहः ॥३२॥

तपोमयीं कीर्तिमशेषदिक्षु यः क्षिपन् बभौ कीर्तितकीर्तिषेणकः ।

उनके बाद महातपस्वी विनयंधर, गुप्तश्रुति, गुप्तऋषि, मुनीश्वर शिवगुप्त, अर्हद्बलि, मन्दरार्य, मित्रवीरवि, बलदेव, मित्रक, बढ़ते हुए पुण्यसे सहित रत्नत्रयके धारक एवं ज्ञान-लक्ष्मीसे युक्त सिंहबल, वीरवित्, गुणरूपी कमलोंके समूहको धारण करनेवाले पद्मसेन, गुणोंसे श्रेष्ठ व्याघ्रहस्त, नागहस्ती, जितदण्ड, नन्दिषेण, स्वामी दीपसेन, तपोधन श्रीधरसेन, सुधर्मसेन, सिंहसेन, सुनन्दिषेण, ईश्वरसेन, सुनन्दिषेण, अभयसेन, भीमसेन, जिनसेन और शान्तिसेन आचार्य हुए। तदनन्तर जो अखण्ड मर्यादाके धारक होकर परिपूर्ण षट्खण्डों (१ जीवस्थान, २ क्षुद्रबन्ध, ३ बन्धस्वामी, ४ वेदनाखण्ड, ५ वर्गणाखण्ड और ६ महाबन्ध) से युक्त समस्त सिद्धान्तको अर्थरूपसे धारण करते थे अर्थात् षट्खण्डागमके ज्ञाता थे, कर्मप्रकृतिरूप श्रुतिके धारक थे और इन्द्रियोंकी वृत्तिको जीतनेवाले थे ऐसे जयसेन नामक गुरु हुए। उनके शिष्य अमितसेन गुरु हुए जो प्रसिद्ध वैयाकरण, प्रभावशाली और समस्त सिद्धान्तरूपी सागरके पारगामी थे। ये पवित्र पुन्नाट गणके अग्रणी—अग्रेसर आचार्य थे। जिनेन्द्र शासनके स्नेही, परमतपस्वी, सौ वर्षकी आयुके धारक एवं दाताओंमें मुख्य इन अमितसेन आचार्यने शास्त्रदानके द्वारा पृथिवीमें अपनी वदान्यता—दानशीलता प्रकट की थी। इन्हीं अमितसेनके अग्रज धर्मबन्धु कीर्तिषेण नामक मुनि थे जो बहुत ही शान्त थे, पूर्ण बुद्धिमान् थे, शरीरधारी धर्मके समान जान पड़ते थे, और जो अपनी तपोमयी कीर्तिको समस्त दिशाओंमें प्रसरित कर रहे थे। उनका प्रथम शिष्य मैं जिनसेन हुआ। मोक्षके उत्कृष्ट सुखका उपभोग करनेवाले अरिष्टनेमि जिनेन्द्रकी भक्तिसे युक्त मुझ जिनसेन सूरिने अपने सामर्थ्यके अनुसार अल्पबुद्धिसे इस हरिवंशपुराणकी रचना की

---

१. विनयंधरश्रुतां म., विनयंधरश्रुतीं ख.। २. मित्रवीरविं क., ख., ग., ङ.। ३. षट्खण्डसुमण्डितस्थितिः म.। ४. तदग्रतो म.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तदग्रशिष्येण शिवाग्रसौख्यभागरिष्टनेमीश्वरभक्तिभाविना ।
स्वशक्तिभाजा जिनसेनसूरिणा धियाल्पयोक्ता हरिवंशपद्धतिः[1] ॥३३॥
यदत्र किंचिद्रचितं प्रमादतः परस्परव्याहतिदोषदूषितम् ।
तदप्रमादास्तु पुराणकोविदाः सृजन्तु जन्तुस्थितिशक्तिवेदिनः ॥३४॥
प्रशस्तवंशो हरिवंशपर्वतः क्व मे मतिः काल्पतराल्पशक्तिका ।
अनेन पुण्यप्रभवस्तु केवलं जिनेन्द्रवंशस्तवनेन वाञ्छितः ॥३५॥
न काव्यबन्धव्यसनानुबन्धतो न कीर्तिसंतानमहामनीषया ।
न काव्यवर्गेण न [3]चान्यवीक्षया जिनस्य भक्त्यैव कृता कृतिर्यथा ॥३६॥
जिनाश्चतुर्विंशतिरत्र कीर्तिताः सुकीर्तयो द्वादश चक्रवर्तिनः ।
नवत्रिधा सीरिहरिप्रतिद्विषस्त्रिषष्टिरित्थं पुरुषाः पुराणगाः ॥३७॥
अवान्तरेऽनेकशतानि पार्थिवा महीचरा व्योमचराश्च भूरिशः ।
क्षितौ चतुर्वर्गफलोपभोगिनः पुराणमुख्येऽत्र यशस्विनः स्तुताः ॥३८॥
अगण्यपुण्यं हरिवंश[4]कीर्तनाद्यदत्र गण्यं गुणसञ्जितं मया ।
फलादमुष्मान्नु मनुष्यलोकजा भवन्तु भव्या जिनशासनस्थिताः ॥३९॥
जिनस्य नेमेश्चरितं चराचरप्रसिद्धजीवादिपदार्थभासनम् ।
प्रवाच्यतां वाचकमुख्यसज्जनैः सभागतैः श्रोत्रपुटैः प्रपीयताम् ॥४०॥
जिनेन्द्रनामग्रहणं भवत्यलं ग्रहादिपीडापगमस्य कारणम् ।
प्रवाच्यमानं दुरितस्य दारणं सतां समस्तं चरितं किमुच्यते ॥४१॥

है ॥२५–३३॥ इस ग्रन्थमें मेरे द्वारा यदि कहीं प्रमादवश पूर्वापर विरोधसे युक्त रचना की गयी हो तो जीवोंकी स्थिति और सामर्थ्यके जाननेवाले पुराणोंके ज्ञाता विद्वान् प्रमादरहित हो उसे ठीक कर लें ॥३४॥ कहाँ तो यह उत्तम वंशों–कुलों (पक्षमें बाँसों) से युक्त यह हरिवंशरूपी पर्वत और कहाँ मेरी अत्यन्त अल्पशक्तिकी धारक क्षुद्रबुद्धि ? मैंने तो सिर्फ जिनेन्द्र भगवान्‌के वंशकी इस स्तुतिसे पुण्योत्पत्तिकी इच्छा की है ॥३५॥ मैंने इस ग्रन्थकी रचना न तो काव्यरचनाके व्यसनजन्य संस्कारसे की है, न कीर्तिसमूहकी बलवती इच्छासे की है, न काव्यके अभिमानसे की है, और न दूसरेकी देखा-देखीसे की है। किन्तु यह रचना मैंने मात्र जिनेन्द्र भगवान्‌की भक्तिसे की है ॥३६॥ इस ग्रन्थमें चौबीस तीर्थंकर, उत्तम कीर्तिके धारक बारह चक्रवर्ती, नौ बलभद्र, नौ नारायण और नौ प्रतिनारायण इन पुराणगामी त्रेशठ शलाका पुरुषोंका वर्णन किया गया है ॥३७॥ इनके सिवाय इस श्रेष्ठ पुराणमें बीच-बीचमें पृथिवीपर चतुर्वर्गके फलको भोगनेवाले सैकड़ों भूमिगोचरी और अनेकों यशस्वी विद्याधरराजाओंका वर्णन किया गया है ॥३८॥

हरिवंशका कथन करनेसे जो असंख्य पुण्यका संचय हुआ है उसके फलस्वरूप मैं यही चाहता हूँ कि मनुष्यलोकमें उत्पन्न हुए भव्यजीव जिनशासनमें स्थित हों ॥ ३९ ॥ तथा त्रसस्थावरके भेदसे प्रसिद्ध जीव आदि पदार्थोंको प्रकाशित करनेवाले नेमिजिनेन्द्रके इस चरितको बाँचनेवाले मुख्य सज्जन बाँचे और सभामें आये हुए श्रोताजन अपने कर्णरूप पात्रोंसे इसका पान करें ॥४०॥ क्योंकि जिनेन्द्र भगवान्‌का मात्र नाम ग्रहण ही ग्रह-पिशाच आदिकी पीड़ाको दूर करनेका कारण है फिर सत्पुरुषोंके पापको दूर करनेवाला पूरा चरित

१. षट्पदवृत्तम् । २. व्याहृति क. म., ख. । ३. नवान्यदीर्ष्यया ख. । ४. हरिवंशकीर्तिता म., ख., ङ. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुर्वन्तु व्याख्यानमनन्यचेतसः परोपकाराय स्वमुक्तिहेतवे ।
सुमङ्गलं मङ्गलकारिणामिदं निमित्तमप्युत्तममर्थिनां सताम् ॥४२॥
महोपसर्गे शरणं सुशान्तिकृत् सुशाकुनं शास्त्रमिदं जिनाश्रयम् ।
प्रशासनाः शासनदेवताश्च या [1]जिनाँश्चतुर्विंशतिमाश्रिताः सदा ॥४३॥
हिताः सतामप्रतिचक्रयान्विताः प्रयाचिताः सन्निहिता भवन्तु ताः ।
गृहीतचक्राप्रतिचक्रदेवता तथोर्जयन्तालयसिंहवाहिनी ।
शिवाय यस्मिन्निह सन्निधीयते क्व तत्र विघ्नाः प्रभवन्ति शासने[2] ॥४४॥
ग्रहोरगा भूतपिशाचराक्षसा हितप्रवृत्तौ [3]जनविघ्नकारिणः ।
जिनेशिनां शासनदेवतागणैः[4]प्रभावशक्त्याथ[5] शमं श्रयन्ति ते ॥४५॥
प्रकाममाकाङ्क्षितकामसिद्धयः प्रसिद्धधर्मार्थविमोक्षलब्धयः ।
भवन्ति तेषां स्फुटमल्पयत्नतः पठन्ति भक्त्या हरिवंशमत्र ये ॥४६॥
निवार्य मात्सर्यमवार्यवीर्यया धिया सुधैर्योर्जितया जिनादराः ।
अनार्यवर्याः सहिताः सपर्यया पुराणमार्याः [6]प्रथयन्तु विष्टपे ॥४७॥
किं मेऽथवा प्रार्थनया यतस्ततः स्वभावतो विश्वभरक्षमाविदः ।
पयोधरोन्मुक्तमिवाम्बु भूधरा विधाय मूर्ध्नि [7]प्रथयन्तु भूतले ॥४८॥

यदि बाँचा जायेगा तो उसके फलका तो कहना ही क्या है ? ॥४१॥ विद्वज्जन एकाग्रचित्त होकर दूसरोंके उपकारके लिए और अपने-आपकी मुक्तिके लिए इस ग्रन्थका व्याख्यान करें। यह ग्रन्थ मंगल करनेवालोंके लिए उत्तम मंगलरूप है तथा मंगलकी इच्छा रखनेवाले सत्पुरुषोंके लिए मंगलका उत्तम निमित्त भी है ॥४२॥ जिनेन्द्र भगवान्‌का वर्णन करनेवाला यह शास्त्र महान् उपसर्गके आनेपर रक्षा करनेवाला है, उत्तम शान्तिका दाता है और उत्तम शकुन रूप है, अप्रतिचक्रदेवतासे सहित, सज्जनोंके हितैषी जो शासनदेव और शासनदेवियाँ सदा चौबीस तीर्थंकरोंकी सेवा करती हैं उनसे भी मैं याचना करता हूँ कि वे सदा जिनशासनके निकट रहें। चक्ररत्नको धारण करनेवाली अप्रतिचक्रदेवता तथा गिरिनार पर्वतपर निवास करनेवाली सिंहवाहिनी—अम्बिकादेवी, जिस जिनशासनमें सदा कल्याणके लिए सन्निहित—निकट रहती हैं उस जिनशासनपर विघ्न अपना प्रभाव कहाँ जमा सकते हैं ? ॥४३-४४॥ हितके कार्यमें मनुष्योंको विघ्न उत्पन्न करनेवाले जो ग्रह, नाग, भूत, पिशाच और राक्षस आदि हैं वे जिनशासनके भक्त देवोंकी प्रभाव शक्तिसे शान्तिको प्राप्त हो जाते हैं। भावार्थ—जिनशासनके भक्त देव स्वयं कल्याण करते हैं तथा अन्य उपद्रवी देवोंको भी शान्त बना देते हैं ॥४५॥ जो भव्य जीव यहाँ भक्तिपूर्वक हरिवंशपुराणको पढ़ते हैं उन्हें थोड़े ही प्रयत्नसे मनोवांछित सिद्धियाँ तथा प्रसिद्ध धर्म, अर्थ और मोक्षकी लब्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं ॥४६॥ जिनसे बढ़कर और कोई श्रेष्ठ आर्य नहीं तथा जो मान-प्रतिष्ठासे रहित हैं ऐसे जिनेन्द्र भगवान्‌के भक्त आर्यपुरुष, मात्सर्यको दूर कर अवार्य वीर्यसे युक्त एवं उत्तम धैर्यसे बलिष्ठ बुद्धिके द्वारा इस पुराणको संसारमें प्रसिद्ध करें—इसके अर्थका विस्तार करें ॥४७॥

अथवा मुझे प्रार्थना करनेसे क्या प्रयोजन है ? क्योंकि संसारका भार धारण करनेमें समर्थ पर्वत, जिस प्रकार स्वभावसे ही मेघोंके द्वारा छोड़े हुए जलको अपने मस्तकपर

१. जिनाश्चतुर्विंशति म. । २. षट्पदवृत्तम् । ३. जनविघ्न–ख. । ४. गणाः म. । ५. समं म. । ६. प्रथमं तु म. । ७. प्रथमं तु म. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुपृष्टमुत्सृष्टमुदात्तशब्दकैर्नवं पुराणं च पुराणवारि सत् ।
महाभ्रकूलैर्जनतासरित्कुलैश्चतुःसमुद्रान्तमिदं प्रतन्यते ॥४९॥
जयन्ति देवाः सुरसंघसेविताः प्रजातिशान्तिप्रदशान्तशासनाः ।
विशुद्धकैवल्यविनिद्रदृष्टयो सुदृष्टतत्त्वा भुवने जिनेश्वराः ॥५०॥
जयत्वजय्या जिनधर्मसंततिः प्रजास्विह क्षेमसुभिक्षमस्त्विह ।
सुखाय भूयात्प्रतिवर्षवर्षणैः सुजातसस्या वसुधासुधारिणाम् ॥५१॥

शार्दूलविक्रीडितम्

शाकेष्वब्दशतेषु सप्तसु दिशं पञ्चोत्तरेषूत्तरां
पातीन्द्रायुधनाम्नि कृष्णनृपजे श्रीवल्लभे दक्षिणाम् ।
पूर्वां श्रीमदवन्तिभूभृति नृपे वत्सादिराजेऽपरां
सूर्याणामधिमण्डलं जययुते वीरे वराहेऽवति ॥५२॥
कल्याणैः परिवर्धमानविपुलश्रीवर्धमाने पुरे
श्रीपार्श्वालयनन्नराजवसतौ पर्याप्तशेषः पुरा ।
पश्चाद्दोस्तटिकाप्रजाप्रजनितप्राज्यार्चनावर्चने
शान्तेः शान्तगृहे जिनस्य रचितो वंशो हरीणामयम् ॥५३॥

धारण कर पृथिवीपर फैला देते हैं उसी प्रकार संसारका भार धारण करनेमें समर्थ विज्ञपुरुष स्वभावसे ही इस पुराणको पृथिवीतलपर फैला देंगे ॥४८॥ जो उत्तम शब्दोंसे युक्त (पक्षमें उत्तम गर्जना करनेवाले) महाविद्वान्‌रूपी मेघोंसे रचित है, जिसके विषयमें खूब प्रश्नोत्तर हुए हैं तथा जो नूतन होकर भी पुराणरूप है ऐसा यह पुराणरूपी जल जनसमूहरूपी नदियोंके समूहसे चारों समुद्रों पर्यन्त विस्तृत किया जाता है। भावार्थ—जिस प्रकार मेघोंसे बरसाये हुए पानीको नदियाँ समुद्र तक फैला देती हैं उसी प्रकार विद्वानों द्वारा रचित पुराणको जनता परस्परकी चर्चा-वार्तासे दूर-दूर तक फैला देती है ॥४९॥

जो देवोंके समूहसे सेवित हैं, जिनका शान्त शासन प्रजाके लिए अत्यन्त शान्ति प्रदान करनेवाला है, जिनकी केवलज्ञानरूपी दृष्टि सदा विकसित रहती है और जिन्होंने समस्त तत्त्वोंको अच्छी तरह देख लिया है ऐसे जिनेन्द्र भगवान् सदा जयवन्त रहें ॥५०॥ वादियोंसे सर्वथा अजेय जिनधर्मकी परम्परा सदा जयवन्त रहे, प्रजाओंमें क्षेम और सुभिक्षकी वृद्धि हो तथा प्रतिवर्ष अनुकूल वर्षाके कारण उत्तम धान्यसे सुशोभित यह पृथिवी प्राणियोंके सुखके लिए हो ॥ ५१ ॥

सात-सौ पाँच शक संवत्‌में, जब कि उत्तर दिशाका इन्द्रायुध, दक्षिणका कृष्णराजका पुत्र श्रीवल्लभ, पूर्व दिशाका श्रीमान् अवन्तिराज और पश्चिमका सौर्योंके अधिमण्डल-सौराष्ट्रका वीर जयवराह पालन करता था तब कल्याणोंसे निरन्तर बढ़नेवाली लक्ष्मीसे युक्त श्री 'वर्धमानपुर' में नन्नराजा द्वारा निर्मापित श्रीपार्श्वनाथके मन्दिरमें पहले इस हरिवंशपुराणकी रचना प्रारम्भ की गयी थी परन्तु वहाँ इसकी रचना पूर्ण नहीं हो सकी। पर्याप्त भाग शेष बच रहा तब पीछे 'दोस्तटिका' नगरीकी प्रजाके द्वारा रचित उत्कृष्ट अर्चना और पूजा-स्तुतिसे युक्त वहाँ-

१. जनिता सरित्कुलै म., ख., ङ.। २. 'ख' पुस्तके ५१–५२ श्लोकयोः क्रमभेदो वर्तते। ३. असुधारिणां प्राणिनाम् इत्यर्थः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्युत्सृष्टापरसंघसंततिबृहत्पुन्नाटसंघान्वये
व्याप्तः श्रीजिनसेनसूरिकविना लाभाय[1] बोधेः पुनः ।
दृष्टोऽयं हरिवंशपुण्यचरितश्रीपर्वतः[2] सर्वतो
व्याप्ताशामुखमण्डलः स्थिरतरः स्थेयात् पृथिव्यां चिरम् ॥५४॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ गुरुपादकमलवर्णनो नाम षट्षष्टितमः सर्गः ॥६६॥

इति श्रीहरिवंशपुराणं संपूर्णम् ।

□

के शान्तिनाथ भगवान्के शान्तिपूर्ण मन्दिरमें इसकी रचना पूर्ण हुई ॥५२-५३॥ अन्य संघोंकी सन्ततिको पीछे छोड़ देनेवाले अत्यन्त विशाल पुन्नाट संघके वंशमें उत्पन्न हुए श्रीजिनसेन कविने रत्नत्रयके लोभके लिए जिस हरिवंशपुराणरूपी श्रीपर्वतको प्राप्त कर उसका अच्छी तरह अवलोकन किया था, सब ओरसे दिशाओंके मुखमण्डलको व्याप्त करनेवाला वह सुदृढ़ श्रीपर्वत पृथिवीमें चिरकाल तक स्थिर रहे ॥५४॥

इस प्रकार अरिष्टनेमिपुराणके संग्रहसे युक्त, जिनसेनाचार्यरचित हरिवंशपुराणमें गुरुओंके चरण-कमलोंका वर्णन करनेवाला छयासठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६६॥

गल्लीलालतनूजेन जानक्युदरसंभुवा । दयाचन्द्रस्य शिष्येण पन्नालालेन सूरिणा ॥१॥
फाल्गुनाभिधमासस्य शिशिरर्तुविशोभिनः । शुक्लपक्षतृतीयायां तारापतिसुवासरे ॥२॥
निशायाः प्रथमे यामे नक्षत्रनिचयाचिते । रसकर्मयुगद्व्याख्ये, (२४८६) वीरनिर्वाणवत्सरे ॥३॥
हरिवंशपुराणस्य जिनसेनकृतेरियम् । टीका समापिता, भूयाद् विद्वज्जनमनोमुदे ॥४॥
नानाशास्त्ररहस्यज्ञान् विबुधान् प्रार्थयाम्यहम् । क्षमध्वं स्खलनं यूयं यदत्र विहितं मया ॥५॥

□

१. बोधे म., क. । २. श्रीपार्वतः ङ. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्टानि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१

हरिवंशस्थ-सूक्तयः

	स. श्लो.
'निर्गुणापि गुणान् सद्भिः कर्णपूरीकृताकृतिः । बिभर्त्येव वधूवक्त्रैश्चूतस्येवाग्रमञ्जरी ॥'	१।४२
'साधुरस्यति काव्यस्य दोषवत्ता मयाचितः । पावकः शोधयत्येव कलधौतस्य कालिकाम् ॥'	१।४३
'दुर्वचो विषदुष्टान्तर्मुखस्फुरितजिह्वकान् । निगृह्णन्ति खलव्यालान् सन्नरेन्द्राः स्वशक्तिभिः ॥'	१।४६
'रजो बहुलमारूक्षं खलं कालं विदाहिनम् । सन्तः काले कलध्वानाः शमयन्ति यथा घनाः ॥'	१।४७
'आलोके जिनभानुना विरचिते ध्वान्तस्य वा क्व स्थितिः ? ॥'	४।३८४
'मौनं सर्वार्थसाधनम् ॥'	९।१२९
'किं न स्याद् गुरुसेवया ॥'	९।१३१
'विद्या लाभो गुरोर्वशात् ॥'	९।१३०
'सर्वतोऽपि सुदुःप्रेक्ष्यां नरेन्द्राणामपि स्वयम् । दृष्टिं दृष्टिविषस्येव धिक्-धिक् लक्ष्मीं भयावहाम् ॥'	११।९४
'सति बन्धुविरोधे हि न सुखं न धनं नृणाम् ॥'	११।९६
'अपवादो हि सह्येत रक्तेन न मनोव्यथा ॥'	१४।३९
'तमःपतनकाले हि प्रभवत्यपि भास्वतः ॥'	१४।४०
'पापोपशमनोपायाः सन्त्येव सति जीविते ॥'	१४।६५
'अत्यभ्यर्णविपत्तीनां मन्त्रिणो हि निवर्तकाः ॥'	१४।६६
'षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रो रक्षणीयः स यत्नतः ॥'	१४।८३
'तमं तमेन योज्यते ॥'	१४।९१
'रहसि दुर्लभमाप्य मनीषितं, न हि विमुञ्चति लब्धरसो जनः ॥'	१५।४
'न सुलभं सुमुखे किमु भर्तरि ॥'	१५।५
'परिचितः प्रणयः खलु दुस्त्यजः ॥'	१५।४३
'कामग्रहगृहीतस्य का मर्यादा क्रमोऽपि कः ॥'	१७।१५
'तावद्भार्यादयो यावन्मर्यादा संस्थितः प्रभुः ॥'	१७।१६
'पातकात्पतनं ध्रुवम् ॥'	१७।१५१
'का वा कठिनचित्तस्य जिनशासनभक्तता ॥'	१८।१४९
'पुनर्बोधिपरिप्राप्तिर्दुर्लभा भवसंकटे ॥'	१८।१५०
'यन्नोपयुज्यते यस्य धनं वा वपुरेव वा । स्वशासनजने तेन तस्य किं बन्धुहेतुना ॥'	१८।१४६
'का स्त्री का वा स्वसा भ्राता को वै कार्याभिलाषिणः । वैरिणो ननु हन्तारो हन्तव्यं नात्र दुर्यशः ॥'	१९।१०६
'निर्वाप्यते ज्वलन्नग्निर्जलेन सुमहानपि । उत्तिष्ठेद् यद्यशो तस्मात्तस्य शान्तिः कुतोऽन्यतः ॥'	२०।३४
'साधोः शीतलशीलस्य तापनं न हि शान्तये । गाढतप्तो दहत्येव तोयात्मा विकृतिं गतः ॥'	२०।३७
'तदेवोपकृतं पुंसां यत् सद्भावदर्शनम् ॥'	२१।३२
'दृष्टश्रुतानुभूतं हि नवं धृतिकरं नृणाम् ॥'	२१।३७
'शास्त्रव्यसनमन्येषां व्यसनानां हि बाधकम्'	२१।३९
'अक्षरस्यापि चैकस्य पदार्थस्य पदस्य वा । दातारं विस्मरन् पापी किं पुनर्धर्मदेशिनम् ॥'	२१।१५६
'पापकूपे निमग्नेभ्यो धर्महस्तावलम्बनम् । ददता कः समो लोके संसारोत्तारिणा नृणाम् ॥'	२१।१५५
'स्त्रीणां प्रणयकोपस्य प्रणामो हि निवर्तकः ॥'	२२।४६
'कुतो लुब्धस्य सत्यता ॥'	२७।३५
'न मुह्यति प्राप्तकृतौ कृती हि ॥'	३५।६२
'न राज्यलाभोऽभिमतोऽनपत्यः ॥'	३५।५८
'स्फुटवदनविकाराल्लक्षितं चित्तदुःखम् ॥'	३६।२०
'क्व पात्रभेदोऽस्ति धनप्रवर्षिणाम् ॥'	३७।३
'बहुरत्ना वसुन्धरा ॥'	४२।३१
'अहो प्रमदहेतवोऽपि सुखयन्ति नो दुःखितान् ॥'	४२।१०२
'दैवमेव परं लोके धिक् पौरुषमकारणम् ॥'	४३।६८
'सद्भूतस्यापि दोषस्य परकीयस्य भाषणम् ।	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पापहेतुरमोघः स्यादसद्भूतस्य किं पुनः ॥' ४५।१५३
'वक्ता श्रोता च पापस्य यन्नात्र फलमश्नुते ।
तदमोघममुत्रास्य वृद्धचर्थमिति बुद्धयताम् ॥' ४५।१५६
'त्यजत वाचमसत्यमलोद्धतां
भजत सत्यवचो निरवद्यताम् ।
निजयशो विशदां सगुणोद्यतां
विजयिनीं त्विह विश्वविदोदिताम् ॥' ४५।१५८
'पुण्यस्य किमु दुष्करम् ॥' ४६।१६
'अदेशकालं न हि नर्म शोभते ॥' ५४।६
'क्लिशितधीर्हि जिनेष्वपि शङ्कते ॥' ५५।१४
'भ्रमति हि स्वपतां भुवनं मनः' ५५।२३
'जनानां हि समस्तानां जीवानां नियता मृतिः॥' ६१।२०
क्षमा मूलस्तपो भारो वक्ष्यते क्रोधवह्निना ॥' ६१।६२
मोक्षसाधनमप्येष तपो दूषयति क्षणात् ।
चतुर्वर्गरिपुः क्रोधः क्रोधः स्वपरनाशकः ॥' ६६।६३
'दुर्वारा हि भवितव्यता ॥' ६१।७७
'अगाढे वाप्यनागाढे मरणे समुपस्थिते ।
न मुह्यन्ति जना जातु जिनशासनभाविताः ॥' ६१।९६
'परस्यापकृतिं कुर्वन् कुर्यादेकत्र जन्मनि ।
पापी परवधं स्वस्य जन्तुर्जन्मनि जन्मनि ॥' ६१।१०१
'कषायवशगः प्राणी हन्ता स्वस्य भवे भवे ।
संसारवर्धनोऽन्येषां भवेद्वा वधको न वा ॥' ६१।१०२
'परं हन्मीति संध्यातं लोहपिण्डमुपाददत् ।
दहत्यात्मानमेवादौ कषायवशगस्तथा ॥' ६१।१०३
'धिक् क्रोधं स्वपरापकारकरणं संसार-
संवर्धनम् ॥' ६१।१०८
'निरस्यति पयस्तृष्णां स्तोकां वेलामिदं पुनः ।
जिनस्मरणपानीयं पीतं तां मूलतोऽस्यति ॥' ६२।२४
'दुर्लङ्घ्या भवितव्यता ॥' ६२।४४
'करोति सज्जनो यत्नं दुर्यशः पापभीरुकः ।
दैवे तु कुटिले तस्य स यत्नं किं करिष्यति ॥' ६२।६४
'सुखं वा यदि वा दुःखं दत्ते कः कस्य संस्तृतौ ।
मित्रं वा यदि वामित्रं स्वकृतं कर्म तत्त्वतः ॥' ६२।५१
'सुप्तमात्रमपशस्त्रमानतं
मुक्तमानमसकृत् पलायितम् ।
प्रत्यवाययुतमङ्गनां शिशुं
घ्नन्ति शत्रुमपि नो यशोधनाः ॥' ६२।१८
'को न वा पतति वारुणी प्रियः' ६३।२०
'कोऽत्र कस्य बहिरङ्गहिंसकः
स्वान्तरङ्गशुभकर्म रक्षकम् ।
आयुकर्म (रेव) निजत्राणकारणं
तत्क्षये भवति सर्वथा क्षयः ॥' ६३।३९
'संपदत्र करिकर्णचञ्चला
संगताः प्रियवियोग-दुःखदाः ।
जीवितं मरणदुःखनीरसं
मोसमक्षयमतोऽर्जयेद् बुधः ॥' ६३।७०

□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२
हरिवंशपुराणस्थ श्लोकानामकाराद्यनुक्रमः

स. श्लो.

[अ]

अंशवच्च ग्रहा ज्ञेया १९।२१५
अंशास्तु षड्जकैशिक्या १९।२२६
अकठिनकम्बुकण्ठ- ४९।९
अकम्पनो महासेनो ४८।७०
अकथयत्प्रणतः स कृता- ५५।८७
अकस्माच्च तयोर्जाते ४६।११
अकस्माद्गच्छता क्वापि ४७।९०
अकालयात्रया लोकः २०।७
अक्रमस्य तदा हेतुं २१।१२८
अक्रूरः कुमुदो वीरः ५०।११५
अक्रूरो वारिषेणो यो २।१३९
अक्रूरस्य कुमारस्य ५२।१३
अक्लेशेनैकरात्रेण ४८।२४
अक्षरस्यापि चैकस्य २१।१५६
अक्षरालेख्यगन्धर्व- ९।२४
अक्षरालेख्यः गन्धर्व- ८।४३
अक्षान्तिस्तत्र नो युक्ता ३१।५४
अक्षुण्णः क्षुद्रसामन्तै- ४३।१६२
अक्षोभ्यपूर्वकाश्चाष्टौ ५०।८१
अक्षोभ्यस्योद्भवः सूनु- ४८।४५
अक्षौहिणीप्रमाणं तु ५०।७५
अक्षोहिणीप्रमाणं च १।१०५
अक्षौहिणीपतिस्तत्र ५०।६९
अक्षौहिण्यो बहुगुणा ५०।७४
अक्ष्णोर्निमीलनं यावन् ४।३६७
अखण्डमधुगण्डूष- १४।१५
अखण्डमण्डलश्चन्द्रो ८।२८
अखण्डितगतिः प्राप्तः ५४।४
अखण्डितव्रताः काय- ६४।६०

स. श्लो.

अगण्यपुण्यं हरिवंश- ६६।३९
अगाढे वाप्यनागाढे ६१।९६
अगुरुत्वलघुत्वात्म- ७।९
अग्निज्वालं महाज्वालं २२।९०
अग्निपातं महावातं १८।३१
अग्निभूत्याग्निलोद्भूतास् ६४।६
अग्निला ब्राह्मणी तस्य ४३।१००
अग्निशोध्येन दिव्येन ४८।१६
अग्निसात्करणे सक्त- ५२।५२
अग्नेरिवेन्धनमहा- १६।४६
अग्नेः शिखावदाविद्ध- ५६।८१
अग्रजः प्रतिपाद्यैव ६२।२६
अग्रजस्त्वं ततो जातो ४७।८९
अग्रजाय मया देया ४७।८८
अग्रायणीयपूर्वस्य १०।७७
अग्रे श्रीमण्डपोद्वासी- ५७।१४२
अघातिकर्मणामन्तं ६५।१०
अघातिकर्माणि निरुद्ध ६६।१७
अङ्कं च स्फुटिकं चेति ६।६४
अङ्कराशिविधिश्चाष्ट १०।१२२
अङ्के मोघः प्रवालेऽस्यां ५।६०६
अङ्गं विपाकसूत्रं यद् १०।४४
अङ्गप्रविष्टतत्त्वार्थं २।१०१
अङ्गवङ्गकलिङ्गादीन् ५९।१११
अङ्गरक्षापरा देव्यः ८।५२
अङ्गलक्षास्त्रयोऽशीतिस् ६०।४९६
अङ्गस्पर्शाद्विना तस्य १४।८९
अङ्गस्फटिकसंज्ञे च ४।५४
अङ्गारकेण वृत्तान्तो १९।९३
अङ्गारकेण हरणं १।८१

स. श्लो.

अङ्गाभ्यङ्गविधौ काश्चिद् ८।४७
अंगुलीयकनद्धं च ४२।८९
अंगुष्ठजैर्यवैराढ्याः २३।९३
अङ्गेष्वमरकङ्काया ५४।८
अङ्गो जनपदश्चम्पा १९।११७
अङ्गोपाङ्गविवेकः ५८।२४८
अचिन्तयदसौ येन २३।१३०
अचिरेणैव तेनापि २१।१०
अचेतनोपकरणाः ५६।४३
अच्छदन्तो नृपस्तत्र ६२।६
अच्छिद्यन्त शिरांस्युग्र- २५।५८
अच्युतान्तार्धरज्ज्वन्ते ४।२८
अच्युतान्तचतुष्के च ६।१११
अच्युतार्यवती चापि २२।६५
अच्युतेन्द्रमहादेवी ६०।३८
अजघन्या निदाघे या ४।२७५
अजनि मज्जनकं ५५।५४
अजनि साथ तयोर्दुहिता १५।२७
अजनितजीवघातगुणतो ४९।१७
अजयं सह कर्णेन ४५।४२
अजितस्य नवम्यां तु ६०।२३५
अजितस्य सहस्राणि ६०।३६२
अजितोऽत्र चतुर्दश्यां ६०।२६४
अजितन्धरोऽनन्तस्य ६०।५३६
अजिताजितशत्रू च ५२।३५
अजैर्यज्ञविधिः कार्यः १७।९९
अजैर्यष्टव्यमित्यत्र १७।६४
अजैरित्यादिके वाक्ये १७।११५
अज्ञ एष न पशुर् ६३।११३
अज्ञातकुलनामानं ६२।३६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अज्ञाननिवृत्तिफले ३४।१३५
अज्ञानं प्रकृतिर्ज्ञेया ५८।२०५
अज्ञातावस्थितीनां च ५०।४५
अञ्जनं वनमालं च ६।४८
अटित्वा मथुरां सर्वा- ३३।८१
अणिमादिगुणोत्कृष्टे २३।१४४
अणुव्रतानि सा लेभे २९।३५
अत इदं क्षयितापकरं ५५।१००
अत इह जन्तुभिः पर- ४९।२०
अतः क्षुधामहाग्रस्ता ६।३२
अतः परं प्रवक्ष्यामि ४।७०
अतः परं परं शौरेः २८।१
अतः परं पुनः प्राप्ता ४६।२३
अतः परं नृपाः सर्वे ५०।८६
अतः पूर्वविदेहेषु ४३।७९
अतः प्राह यतिः प्राप्तौ ४३।११२
अतः शरीरबाधायां १७।१४२
अतश्चतुर्थभागेन ५०।१०५
अतः सर्वात्मना भाव्यं १८।१५३
अतस्तस्यानवद्यस्य ९।१४०
अतिक्रम्य तथा कन्या ३४।२९
अतिक्रान्तेषु भूपेषु ४५।२१
अति [जाति] तद्धित- १९।१४९
अतिनिचिताग्निवायुजल ४९।४७
अतिबालेन मुग्धेन ७।१२३
अतिरूपतमो धीरः १९।३०
अतिलङ्घ्य समां प्राह २१।१०४
अतिवर्तकरोपं तं ६१।६७
अतिवितप्य तपस्तनु- १५।४१
अतिविश्रम्भतः प्रेम- २९।३८
अतिविस्रम्भतस्तस्या २१।५८
अतिविषमं तपो घटयतो ४९।१६
अतिवीर्यः सुवीर्योऽतस् १३।१०
अति [श्रुति] वृत्ति- १९।१४७
अतिसंधापनं मिथ्यो- ५८।१६६
अतिसंधानपरता- ५८।१०५
अतिसंमान्य सस्त्रीकं ४३।१७४
अतीक्ष्णेनापि शस्त्रेण ५६।६१
अतीन्द्रियेषु भावेषु ५६।४९
अतोऽनुष्ठानमास्येय- १७।१०६
अतो मया वितीर्णेयं २९।६२
अतो वज्रमयो वप्रो ५७।२०
अतो विश्वजनीनार्थं ५०।५४
अतो विस्फुरितेनाय- ८।१२७
अत्यन्तमुखरागाढ्या- ८।८१
अत्यन्तशुद्धवृत्तेषु ४५।१५२
अत्यन्तसुकुमारस्य ८।१७२
अत्यासक्तामिति ज्ञात्वा २१।७२
अत्र जन्मनि कृत्वान्ते ६०।२३
अत्र सिद्धशिला वन्द्या ६०।३७
अत्र रत्नप्रभाद्येयं ४।४३
अत्रान्तरे सुरैस्तुष्टै- ५३।१७
अत्रान्तरे सह प्राप्ताः ५१।१
अत्रास्ति भरतक्षेत्रे २७।२०
अत्रैव कामदेवस्य २९।२
अत्रैवान्तःपरं स्थानं ५६।९३
अत्रैव भरतक्षेत्रे ६०।२६
अत्रैव भरतक्षेत्रे ६४।४
अथ कालद्वयेऽतीते ७।१२२
अथ कार्तिकराकायां ३०।१
अथ कृत्वात्मजोत्पत्तौ ११।१
अथ कोऽप्येकदा भर्तुर् २४।६१
अथ गान्धारपञ्चम्याः १९।२४८
अथ गगनसमुद्रे ३६।५३
अथ गव्यूतमुद्विद्धं ५७।७५
अथ गिरिगुरुभित्ति- ३६।४०
अथ गान्धर्वसेनां तां २१।१
अथ ज्ञात्वा गणाधीश- ७।१०६
अथ तया स खगेन्द्र- १५।३३
अथ तयोः परिपाक १५।१७
अथ तयोस्तनयो हरि- १५।५७
अथ तीर्थकृतामाद्ये ८।३७
अथ ते पाण्डवाश्चण्ड- ६४।१
अथ त्रैलोक्यसारैक- ५७।१२३
अथ दिव्यध्वनेरन्ते ३।१८१
अथ दुर्गबलाद्यूयं ५०।४४
अथवाऽदृष्टकल्याणः ५२।८१
अथ देशोऽस्ति विस्तारी २।१
अथ नाभेरभूद्देवी ८।६
अथ नेमिमुनीन्द्रोऽपि ५६।१
अथ पुनर्विजयार्धनगोत्तरे ५५।१६
अथ पौरुषदर्पेण ३१।५७
अथ प्रसूतौ सुतयुग्ममस्याः ३५।१४
अथ प्राप्तो वसन्तर्तुः १४।११
अथ प्राप्ता महासत्त्वास् ४५।१
अथ बाहुबली चक्रे ११।७७
अथ मथितमहा- ३९।४९०
अथ मधुसूदनावरजया ४९।१
अथ मानितबन्धूनां ४६।१
अथ योऽसौ वसोः सूनुर् १८।१
अथ रौद्रं बलं प्राप्त- ४२।८४
अथवा मांसपिण्डेन ४३।४६
अथवा दुःखभीरुत्वान् २३।११८
अथ विज्ञापितो नाथः ९।८५
अथ विद्याधरी वृद्धा २२।४७
अथ विबुद्धसरोजवनस्पृशा १५।१
अथ विरुवदलिज्या- ३६।१
अथ वैश्रवणो दिव्यां ९।७७
अथ व्याख्यामसौ कुर्वन् १७।६३
अथ शम्बस्य सम्भूतिं ४८।१
अथ श्रुत्वा जरासन्धो ४०।१
अथ सकलुषभावा- ३६।६५
अथ स नेमिकुमार इवान्यदा ५५।१
अथ स प्रार्थितः प्राज्यै- ३३।१
अथ स वीरक ईश्वर- १५।३८
अथ सप्तर्द्धिसम्पन्नः २।१११
अथ सभ्यसमाकीर्णा ४२।१
अथ सर्वामराकीर्णस् ६५।१
अथ साधुनृपैस्तत्र ३१।९२
अथ सा रोहिणी भर्त्रा ३२।१
अथ सेनामुखं खिन्नं ३१।७८
अथ हर्म्यतले सुप्तः ३१।१
अथातिशयरूपत्वात् ६०।४
अथात्र यद्वृत्तमतीव ३७।१
अथात्रावसरेऽपृच्छन् १८।९६
अथाध्ययनमन्यत् स्यात् १७।११८
अथानयद्भानुरूपेन्द्रमर्थी- ३५।७५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथान्यदा प्रजाः प्राप्ता ९।२५
अथापृच्छत् पृथुश्रीकः २०।१
अथाभ्युदयमभ्येते ५३।१
अथासावेकदा शौरि- २४।१
अथासौ कीचकः साधु ४६।४२
अथासौ प्रतिमास्थोऽपि ९।१३५
अथासौ सौम्यताराभि- ८।५६
अथाह गणनाथाद्यः १९।१
अथेन्द्रेण कराङ्गुष्ठे ९।१
अथेन्दोरिव शुक्राद्या २।७६
अथैकदा चन्द्रसिते ३५।११
अथोदपादि श्रवणे तु पक्षे ३५।१९
अदत्तस्य स्वयं ग्राहो ५८।१३१
अदत्तेति न चाशङ्क्य २९।६१
अदयमथसमूलोन् १६।३५
अदाद् द्वादशवर्षाणि ११।१०४
अदृष्टपूर्वतीर्थेशाः १२।३
अदृष्टश्रुतपूर्वत्वात् ९।१५४
अदृश्यायामकस्मात्तु ५४।२९
अधःप्रवृत्तकरण- ३।१४२
अधःषष्टिसहस्राणि ४।१६५
अधःसंक्षेपणी द्रोणी ५।४४१
अधरस्तननाभ्यतः १४।४४
अधर्मपथपाताल- १।१७
अधश्चोर्ध्वं च ४।३४४
अधस्तक्षशिलायास्ते ४३।४८
अधिवसत्यथ तद्मनो हरी १५।२६
अधिष्ठानं प्रमादोऽस्य ५६।१८
अधोऽधोऽन्याः षडेतस्याः ५।१७६
अधो वेत्रासनाकारा- ५७।९५
अधो मध्योपरिप्रख्य- ६०।१६८
अधोमुखमयूखौघ- ८।६४
अधोलोकविभागस्ते ४।३८३
अधोलोकस्य सप्ताधः ४।९
अधोलोकोरुजङ्घादि ४।२९
अध्यर्धक्रोशविस्तारा ५७।३९
अध्यतिष्ठन्नमिःश्रेष्ठं ९।१३३
अध्यर्द्धे हि सहस्रार्द्धे ५।१९४
अध्यापितास्त्रयस्तेन १७।३९
अध्रुवं संप्रणष्यन्तं १०।७९
अनन्तकेवलज्ञान- ५६।११३
अनन्तमतिसंज्ञस्य २७।११७
अनन्तवीर्यपर्याप्तं ३।११
अनन्तरस्य सान्निध्ये ६१।२५
अनन्तरं स्वप्नगणस्य ३७।२२
अनन्तरा विनिर्दिष्टा ४।२६१
अनन्तानन्तभागैस्तु १०।१५
अनन्तानन्तसंख्यान- ७।३७
अनन्तासंख्यसंख्येय- १०।२०
अतः शरीरामपरां ३५।४४
अनगारास्तथाऽन्ये ते ३।६२
अनर्घ्यात्ममहारत्न- ४१।७
अनतिनम्रतया निज- ५५।४०
अनयावस्थयासीने ५०।३०
अनवेक्ष्य मलोत्सर्गा- ५८।१८१
अनशनाध्ययनादितपःश्रिया १५।८
अनसूया विषादादि ५८।१८९
अनादिनिधना जीवा ५६।४२
अनादिनिधनो जन्तु- ५८।२७
अनादिरपि चानन्त- ३।१०६
अनादिरन्तवान् भव्य- ३।१०५
अनादेययशःकीर्ति- ९६।१०५
अनादौ भवकान्तारे ४३।१३३
अनाद्यनिधनस्तस्य ४।४
अनानात्मापि तद्वृत्तं ५८।१५
अनारतगलद्बाष्प- ५४।३४
अनार्यजनसंवृत्त- २०।३३
अनार्षाणां तु वेदाना- २३।४५
अनावृत्तप्रभुर्यज्ञो ५।६३७
अनावृष्टिनलोपेतस् ४४।९
अनावृष्टिस्ततस्तस्य ४४।१४
अनास्वाद्य फलान्येषा ६०।११५
अनिगूहितवीर्यस्य ३४।१३८
अनिच्छन् शूरसेनोऽपि ३३।१२५
अनिच्छन् स्वच्छधीर्धीरः ४७।७
अनिच्छाख्यो महानिच्छो ४।१५३
अनिवृत्तिगुणस्थाने ५६।९०
अनीकमथ यौवजं ३८।२२
अनीदृशस्तु संसारी १७।१४१
अनीलयशसस्तस्या २२।११४
अनुकर्णं मुनेस्तस्य २०।५५
अनुकूलमिषुं राजा ३१।१२६
अनुत्तरदशस्यार्थं २।९४
अनुत्तरमुखोज्ज्वलः ३८।१३
अनुदितेन परस्य महा- ५५।१९
अनुपाल्य चिरं धर्मम् ४३।१४६
अनुप्रेक्षाभिरुद्धाभि- ४३।२११
अनुप्रेक्षाश्च धर्मश्च २।१३०
अनुप्रेक्षाभिरात्मानं ४६।३६
अनुबभूव सुखं चिरमेतया १५।३४
अनुबन्धावनिप्रख्यं ५९।१०६
अनुभवन्तममुं जिनधर्मजं २४।८६
अनुभूय चिरं लक्ष्मीं १३।१
अनुमन्यस्व मे भूमिम् २०।४८
अनुमन्याब्रवीदित्थं २०।४४
अनुमेने वचो मन्त्री १४।६६
अनुयातार्जुनं प्रेम्णा ४६।६
अनुयोगयुतं द्वारैः १०।१३
अनुरागवती बभ्रे १९।२६६
अनुवर्त्म जरासन्धं ४०।२७
अनुष्ठाय चिरं श्रेष्ठं ४३।१५८
अनूनुदन्नृपाध्यक्षं २०।१०
अनुभूतं श्रुतं दृष्टं ४८।२७
अनेकपोऽनेकपलोकना ३७।२७
अनेकमुखदत्तसत् ३८।२१
अनेकरथलक्षास्ते ५०।१२७
अनेकरथचक्रचूर्णि- ४२।९८
अनेकरदसंवृत्त- २।३६
अनेकाहवनिर्व्यूढ ५०।७
अनेकोपाययोगैस्ता ४६।३१
अनेन घनरागिणा ४२।९९
अनेनाव्रियते ज्ञान- ५८।२१५
अन्तःकलुषिणी सास्याः ३३।१०६
अन्तर्दधे धवलगोकुल- १६।३३
अन्तर्धानमिता सोऽपि २९।६६
अन्तर्नाटकशाला स्यात् ५७।६८
अन्तःपञ्चशतायामं ५।१४६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्तःपुरसुतादीना ४१।२८
अन्तःपुरसहस्राणि ६२।६१
अन्तर्बहिर्भेदपरिग्रहास्ते ३४।१०५
अन्तर्मुहूर्तकालस्या- ३।१२४
अन्तर्मुहूर्तकालं तु ५६।२७
अन्तर्मुहूर्तकालेन ६१।७०
अन्तर्मुहूर्तकालेन १२।५
अन्तर्मुहूर्तमपि लब्ध- ६०।५७३
अन्तर्मुहूर्तशेषायुः ५६।६९
अन्तर्वत्नी तदा पत्नी २५।११
अन्तर्वत्नी प्रसूता सा १८।१२०
अन्तश्छिन्नतटो भाति ५।५९५
अन्तरः शून्यकालः ६४।१०१
अन्तरस्वरसंयोगो १९।१७२
अन्तरान्तरसंस्थास्तु ५०।११०
अन्तरिक्षे मुमुक्षुस्त- २६।२७
अन्तर्हितवपुर्यातः ३३।१२१
अन्तरेऽत्र हरिः सत्यां ४३।१५
अन्तरेणोदयं प्रीतिं ५७।३८
अन्तःस्थानप्यपां पत्युः ५०।२७
अन्ते कौन्तकजिद्वीर्य ५९।८३
अन्ते वैश्रवणाख्यं तु ५।२८
अन्ते माहेन्द्रकल्पान्ते ३४।३३
अन्ते संमेदमारुह्य ४३।२१४
अन्ते स संमदविधायि १६।७५
अन्त्यदेहः प्रकृत्यैव ४२।२२
अन्धाः पश्यन्ति रूपाणि ५९।७७
अन्नपाननिरोधस्तु ५८।१६५
अन्नं पानं च सुस्थाप्य ६२।११
अन्यथा कथमुत्खात- ४३।६९
अन्यथा चिन्तयत्येष ४५।८४
अन्यथा तु वितीर्णायाश् ४२।६२
अन्यथा देवराजस्य ६१।७८
अन्यदागत्य संघेन ४३।१०४
अन्यदा चैत्यपूजार्थं ६०।८३
अन्यदा तु विबुद्धोऽसौ २४।६७
अन्यदा तु विनीतोऽसौ ४७।३१
अन्यदा नारदोऽवादि ४४।३
अन्यदान्यभवोपात्त- २८।२६
अन्यदा पुरवृद्धास्ते १९।१४
अन्यदा मातृपुत्रास्ते २१।१६६
अन्यदा मुनिपूजार्थं ४३।१५१
अन्यदा विहरन् प्राप्तः ९।२०५
अन्यदा श्रुतपारस्थः २०।५
अन्यदाष्टापदं यातो १९।८७
अन्यस्यापि च दुर्बोध- ४३।११४
अन्याय्यमुभयं चैत- २९।१८
अन्यां नागगुहां यातश् ४७।४२
अन्यानपि च कन्यायै ३१।३२
अन्येद्युर्द्युमणिद्योत- ५२।१
अन्येऽपि बहवो भव्या ६५।२५
अन्येषामपि यद्येषा १८।१६९
अन्येषामपि पूर्वाणां १०।८७
अन्येषामपराह्णे तां ६०।२१८
अन्योन्यगन्धमासोढु- ३।१७
अन्योऽन्यदृष्टिसंपात- ३१।४२
अन्योऽन्यस्य तदा शक्तं ७।९८
अन्योऽन्यप्रेमबद्धस्य २९।६९
अन्योन्याक्षेपिणोर्युद्धं ५२।४७
अन्योऽन्यानुप्रवेशेन ७।७
अन्योऽन्याङ्गसमासङ्गात् ३०।१९
अन्योऽन्याभिमुखादेशा ५।५५७
अन्योऽन्याह्वानपूर्वं ते ५१।१५
अन्वये तनुजातेयं २३।१४९
अन्ववायेऽस्मदीयेऽन्या २६।५२
अपकारे प्रवृत्तस्त्व- ५२।७९
अपराजित इत्याद्या १८।२५
अपराजितमर्चाख्य- ५७।६०
अपराजित इत्याख्यां ३४।५
अपराद्यास्त्वमी वेद्याः ५।२४६
अपराद्यास्त्विमे प्रोक्ता ५।२५२
अपथनिपातपातनघना ४९।४४
अपध्यानं जयः स्वस्य ५८।१४९
अपन्यासः कदाचित्स १९।२५९
अपनीय तनोः सर्वं २।५२
अपरस्यामिलादेवी ५।७१२
अपरार्णवमासृत्य ४०।४५
अपरेभ्यो विदेहेभ्यः २७।३
अपरोत्तरदिग्भागे ५।२१०
अपर्याप्ताः पुनः सत्त्वा १८।७९
अपश्यत् स विदूरेण ४७।१०१
अपश्यन्ती पतिं शिष्यान् १७।४४
अपि क्रियेतापि परः ६१।१०६
अपि न्यायविदुत्तस्थौ ३१।१००
अपातयद् ध्वजं छत्रं ३१।८५
अपूर्वकरणो भूत्वा ५६।८९
अपूर्वसुस्वप्नविलोक- ३५।१४
अपूर्वः सर्वतो रक्षां ८।२०९
अपूर्वेयमहो भिक्षा ४५।११२
अपृच्छच्च विबुद्धोऽसौ ३०।३०
अपृच्छत्सुमतिर्मन्त्री १४।५३
अपृथग्लक्षणैर्युक्ता १९।१८०
अप्रमत्तगुणस्थान- ५६।५१
अप्रमृष्टाप्रदृष्टायां ५८।७३
अप्रशस्तमपोह्यासा ५६।२
अप्राक्षीत् पूर्वजन्मानि १८।१११
अबाधितः पुनर्न्याये १७।१०३
अब्भक्षा वायुभक्षाश्च ३।१३३
अब्रवीद् बलिराश्रित्य २०।२१
अभग्नोत्साहमालोक्य १८।१६६
अभणीद्गणमुख्यश्च २०।२
अभवद्दूर्ध्वमुदारमुदारवः ५५।१११
अभवदस्य महागिरि- १५।५९
अभवदस्य पुरस्य तु १५।२३
अभयं नः प्रदाय त्वं १९।१५
अभविष्यदिभक्रीडा १९।६६
अभाषकान्तयोश्चापि ५।४७४
अभिचन्द्र इहाख्यातो १८।१४
अभितः स्वाख्यया द्वौ तं ५७।९२
अभिन्ननिजमर्यादा ४७।२
अभिपतदुरगेन्द्रं ३६।३१
अभिपतदरिहस्तात् ३६।४५
अभिभूयाबभौ धाम्ना ३।३४
अभिरामः स रामाख्यां ३२।१०
अभिरूपोऽतिमुग्धोऽय- १९।१३१
अभिरूपतमाः सर्वे ३३।१३४
अभिरूपतरां कन्यां ६०।१२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभिवन्द्य तदापृच्छद् ६४।१२३
अभिषिक्तस्ततो देवैः ९।७५
अभिषिक्तौ ततः सर्वे- ५३।४३
अभिषिच्य नृपस्त्वस्तो २९।३३
अभिषिच्य मधुं राज्ये ४३।१६०
अभिषेकसभा तत्रा- ५।४१९
अभिसंधिकृतो बन्धः १७।११२
अभूवन् गणिनो भर्त्तु- १२।५४
अभूद्भवनवासिनां ३८।१४
अभूत चार्थवतीमभिधामयं १५।२४
अभ्यर्थ्य गुरुमानीय ३३।२९
अभ्यर्चिते तपोवृद्धयै ९।१९
अभ्यन्तरगृहद्वारे ८।५३
अभ्यर्कं विकसद्भाति ५७।१७८
अभ्यस्ताः सेतरैस्तै- १०।१५०
अभ्यलोकि कलिता ६३।३
अभ्रं सिंहनिरभ्रेऽपि ८।७३
अभ्युक्षन्ति सुरास्तत्र ५९।४०
अभ्युत्थाय ततो भक्त्या ५३।२६
अभ्युत्थितां विभुं वीक्ष्य ३०।२४
अभ्युद्गतेन तेनासौ ४३।१६४
अभ्युदेति करभिन्न- ६३।४१
अभ्युन्नतौ पदाङ्गुष्ठौ ८।७
अमङ्गलदृशः पापाः २३।१०४
अमात्यदुहितुर्जाताः ४८।५६
अमात्यराजपुत्रौ तौ २७।९९
अमानुषं कर्म जगत्य- ५४।७०
अमानुषं कृष्णविचेष्टितं ३५।४९
अमावास्या तु चैत्रस्य ६०।२६८
अमितप्रभया तस्य २७।१३६
अमी चतुर्विधा देवाः १२।३६
अमी पुण्यवतस्तस्य ११।१११
अमी विद्याधरा ह्यार्याः २६।१४
अमुतोऽधित्यकास्त्व- २६।४५
अमुष्य यातायं तपो ६६।१०
अम्बुनिम्बद्रुमे रौद्रं ७।११८
अमूढमानसः शौरि ५२।४९
अमूर्तत्वं यथा व्योम्नः ६५।९
अमृतस्येव धारां तां ३।१६
अमोघे स्वस्थितापाच्यां ५।७०८
अयं पुत्र सहस्रेण १२।४०
अनयद्वयमब्दं स्यात् ७।२२
अयमास्ते समग्रात्मा ५७।१५८
अयमेव क्रमो ज्ञेयः ४।७२
अयोधनसुतो मूलः १७।३२
अयोध्यामृतधानीति ५७।१२२
अयोध्या विजया राजा ६०।१८३
अयोध्येति विनीतेति ९।४२
अयोध्योद्घाटितेनासौ ११।५५
अरजा विरजा वासा ५।२६२
अरमाण्डलिकत्वेऽपि ६०।५०७
अररन्ध्राकृतीन्यङ्क ५।४९८
अरश्च पुण्यमूर्तिश्च ६०।५६०
अरिष्टदेवसम्मीतं ६।४९
अरिष्टनेमिनाथाय २२।३८
अरिष्टनेमिनाथस्य १।५१
अरिष्टनेमेश्चरितं निशम्य ३५।१
अरिष्टनेमिनामार्हन् ४३।३८
अरिष्टपुरनाथस्य ४४।३७
अरिष्टपुरमिष्टं तु ६०।२४१
अरिष्टमणिमूर्तीनि ६।१७
अरोमशमभग्नं च २३।८४
अरोमशं कृशं मध्यं ८।१६
अरुणं नवमं द्वीपं ५।६१७
अर्चिर्माली कुमारोऽहं १९।७१
अर्चिर्माली प्रभुस्तत्र १९।८१
अर्चिराद्यं परं ख्यात- ६।६३
अर्जुनेन च भीमेन ४५।१४१
अर्णवोपमयोस्तत्र ५०।८७
अर्थतः पूर्व एवाय- १।६७
अर्थव्यानाविलश्चासौ २७।४२
अर्थसंकल्पमात्रस्य ५८।४३
अर्थव्यञ्जनयोगानां ५६।५८
अर्थशब्दप्रधानत्वाच् ५८।५१
अर्धकोटीकुमाराणां ५०।११३
अर्धगव्यूतिविस्तारः ६।१२
अर्धत्रयोदशोत्कर्षात् ६०।२५०
अर्धत्रयोदश प्रोक्ता १८।६१
अर्धमन्दरविष्कम्भान् ५।६३५
अर्धयोजनविस्तीर्णौ ५।११५
अर्धयोजनमुद्विद्धं ५।११२
अर्धयोजनबाहुल्यो ४।४१
अर्धयोजनमानस्तु ५।११६
अर्धरज्ज्ववसानेऽतः ४।२६
अर्धराज्यविभागेन ४५।१४८
अर्धासनसुखासीनां ४२।८३
अर्धोदितो बभौ भानुः २२।१३९
अर्हतां चक्रिणामर्ध- ६०।१३६
अर्हत्सु योऽनुरागो ३४।१४१
अर्हत्पूजादि तात्पर्यम् ५८।९५
अर्हद्दत्त इति ख्यातो १८।११५
अर्हदायतने पूजां २१।९
अर्हद्दासस्य तौ देवौ २७।११२
अर्हद्भ्यः सर्वदा सर्व- २२।४३
आरोप्याकृष्य पार्थेन ४५।१३१
अलंकरिष्यत्यकलङ्कधीः ३७।२८
अलकापतये दत्ता २७।७९
अलक्षितः कंसभटैः ३५।२३
अलज्जलसमानानि ५।४४५
अलब्धपारमुद्युक्तैः ४१।५
अलाभे च ततस्तस्या २५।५
अल्पं दक्षिणतो वक्रं २३।६५
अल्पप्रमाणपरमाणु- १६।३३
अल्पस्य महतो वापि २।११९
अल्पमन्तरमालोक्य ४०।२८
अल्पातिततनुरोमानु- २३।६३
अल्पावमांसलौ भुग्नौ २३।८५
अल्पे संहारसिद्धास्ते ६३।१०५
अल्पैः पञ्चशतैर्द्वारैर् ५।२६५
अवगाहः पुनस्तासां ५।६५७
अवगाहनमुत्कृष्ट- ६४।९९
अवगाह्य महाबाहु- ११।५
अवततार कदाचिद् १५।६
अवतीर्य ततो भूमिं १८।१३४
अवतीर्य रथेभ्यस्ते ५९।११८
अवतीर्य विमानेभ्यो ५३।२५
अवतीर्य मधुर्जातो ४३।२१७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवतीर्याऽच्युतेन्द्रस्तु ४३।३२
अवतीर्णः स सिद्धार्थो /९।९३
अवतीर्णस्ततो भानु- ४७।१०५
अवतीर्णौ तमुद्गन्धि २३।१८
अवदच्च पतिं नाथ ४३।८
अवदच्च वचो दक्षो ४३।६८
अवददिति बलस्तं ३६।१९
अवधिज्ञानिनं श्रुत्वा ६०।७९
अवधिज्ञानकृष्णश्च ६५।४३
अवधेः पूरणायातः ६१।२९
अवन्त्याः सुमुखश्चैव ४८।६४
अवरा तु स्थितिः ४।२९१
अवराऽसौ च विभ्रान्ते ४।२५५
अवरैषा परापीष्टा ४।२६९
अवलोक्य जिनेन्द्रस्य ५७।२
अवष्टघ्नति पादेन ६१।८५
अवसर्पति वस्तूनां ७।५७
अवाग्विसर्गमन्येषां ११।१३८
अवान्तरेऽनेकशतानि ६६।३८
अविज्ञातभवद्वार्तो ४७।९१
अविज्ञातसुखच्छेदाः ४६।२२
अवितथमित्यमी वितथ- ४९।३७
अविद्याकुशलं त्वासौ १९।९४
अविद्यारागसंक्लिष्टो ५८।१३
अविद्यावैरमायादि ५७।१६०
अविरामवियोगायाः ३०।१४
अविरहं सुरतामृतपायिनो ५५।२५
अवीवृधदसौ लब्ध्वा ३३।९०
अवेहि तापसात्मीयं ३३।६७
अव्यवस्था निवृत्त्यर्थ- ७।१४१
अव्यक्ताः पाण्डवास्तत्र ४६।२४
अव्यक्तोदयकर्माणो ६४।६३
अव्रतोऽहमपि भ्रान्त्वा ४६।५३
अशक्यवर्णनां दिव्यां ४१।३२
अशनिपातसहोज्झित- १५।१८
अशरीराः सुखात्मानः ६।१३६
अशितश्चापि भानुश्च ५०।१३०
अशितानि पुरा भद्र ! २४।१७
अशीतिश्चतुरूर्ध्वा स्याद् ४।१२२
अशीतिश्चापि चत्वारि ५।२७२
अशीतिश्च सहस्राणि ५।५१३
अशीति धनुरुद्विद्धं ५।१४७
अशीतिः सप्ततिः षष्टि- ६०।३१०
अशुभप्रकृतीनां तु ५८।२९१
अशून्यहृदयस्पर्शा ८।३४
अशेषयादवाकीर्णा ५०।३९
अशोकवनमादौ च ५।४२२
अशोकनगमाभासी- ३।३१
अशोकः सप्तपर्णश्च ५।४२४
अशोकानोकहस्याधः १९।६९
अश्मगर्भमहास्कन्धो ५।१७८
अश्रद्धाय मतं जैनं ४३।१४७
अश्रौषीद् घोषणां राज्ञः ३३।३
अश्वग्रीवो तथा षष्ठी १९।१६२
अश्वग्रीवो भुवि ख्यातः ६०।२९१
अश्वग्रीवो हतो युद्धे २८।४४
अश्वमेधोऽजगोमेधो २३।१४१
अश्वरूपधरेणासा- ३०।४२
अश्वसेनामुपादाय ३२।३०
अश्वसेनोऽश्वसेनायाः ४८।५९
अश्विन्यामभवत्तस्मात् ४५।४८
अश्वैः कनकपृष्ठैर्यो ५२।१६
अश्वैरारक्तसबलै- ५२।१८
अष्टापञ्चाशदुत्सेध- ४।३३१
अष्टमस्येन्द्रजुष्टस्य १।१०
अष्टधा स्पर्शनामापि ५६।१०२
अष्टधा दर्शनाचारे- ६४।३९
अष्टमोऽकम्पनाख्याति- ३।४३
अष्टयोजनविष्कम्भः ५।१४३
अष्टशत्या सहस्राणि ६०।४५२
अष्टविंशतिसम्मिश्र ५।५
अष्टादशशती प्रोक्ता ५।४३
अष्टादशसहस्राणां १०।२७
अष्टादश सहस्राणि ११।५३
अष्टादश सहस्राणि ६०।५११
अष्टादशकुलास्तेषु ५।४८२
अष्टात्रिंशत्सहस्राणि ६०।४४०
अष्टात्रिंशत् स विभ्रान्ते ४।१७८
अष्टादश सहस्राणि ५।४३२
अष्टादश सहस्राणि ५।४१५
अष्टादश सहस्राणि देवश्च ५।४१६
अष्टादश सहस्राणि ५।५०३
अष्टादशेति संख्याताः ४०।२३
अष्टादश सहस्राणि ६०।३५६
अष्टादश शतान्येव ६०।४२०
अष्टादश गणाधीशास् ६०।३४
अष्टानां सिद्धिरुद्दिष्टा ६०।२९८
अष्टानां सिद्धिरुद्दिष्टा ६०।३०३
अष्टानवतिरस्येति ९।२३
अष्टान्तादिषु विज्ञेयः ३४।९४
अष्टापञ्चाशदिष्टानि ५।९३
अष्टाभिः प्रातिहार्यै- ५६।११८
अष्टार्जुनमयस्यास्य ५।७०
अष्टायामो द्विविस्तारः ५।३६०
अष्टावक्षरकोट्यस्तु १०।१२६
अष्टाविंशतिरिष्टास्ते ३४।५८
अष्टाविंशतिरिष्टसाधन- ३४।९७
अष्टाविंशतिरुद्दिष्टा ४।१४०
अष्टाविंशतिलक्षास्तु ४।१८९
अष्टाविंशतिरेष स्यात् ।५।२९४
अष्टाविंशतिसंख्यानि ५।४६८
अष्टाविंशतिरन्यस्य ६०।५३८
अष्टाविंशं शतं दिक्षु ४।१०९
अष्टावेव महादिक्षु ४।१४७
अष्टाशीतं शतं दिक्षु ४।९१
अष्टाशीति शतान्येव ३०।४५७
अष्टाशीतिः सहैव स्या- ६।८४
अष्टाशीतिश्च वर्णा- १०।२५
अष्टाशीतिर्महादिक्षु ४।१२१
अष्टाशीत्या सहैशाने ६।६८
अष्टाशत्या सहस्राणि ६०।४०
अष्टापष्टिर्महादिक्षु ४।१२६
अष्टाष्टमासमासार्ध- ६०।४८६
अष्टाहं प्रविधायासौ ३४।४१
अष्टोच्छ्रायश्चतुर्व्यासम् ५।३६८
अष्टोच्छ्रायश्चतुर्व्यासं ५।३९१
अष्टोच्छ्रायाः शतायामाः ५।३४९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अष्टोच्छ्राय चतुर्व्यास- ५।५९८
अष्टोत्सेधचतुर्व्यास- ४।११४
अष्टोत्तरशतं तेऽपि ५।३६५
अष्टोत्तरसहस्रोच्चै- ८।२०४
अष्टौ च विंशतिरिनस्य १६।७०
अष्टौ चैव सहस्राणि ५।५२६
अष्टौ तीर्थकरोत्पत्ता- ५।७११
अष्टौ तुष्टाः प्रकृष्टाङ्ग- ८।१११
अष्टौ निःशङ्कतादीनाम् ५८।१६२
अष्टौ षोडशसंख्यातो १८।८९
असपत्नसपत्नीक- २३।१६
असत्क्षेत्रे यथा क्षिप्त ७।११६
असन्तोषभुजाश्लेषै- १४।१०१
असाधारणरूपेण ४२।६
असाध्यतां विदित्वाग्नेर् ६१।८२
असाध्यो लोकवित्रासी- २४।२३
असाराः कदलीस्तम्भाः ८।१३
असावेव समादिष्टा ४।२६६
असिचक्रगदाघात- ३१।७६
असिचक्रधनुःपाणि- ४२।८२
असिना घातयाम्येनं ३३।११९
असिर्मषी कृषिर्विद्या ९।३५
असिशक्ति-गदाकुन्त- २३।९६
असुरा आतृतीयान्तं ४।३६२
असुरा नागनामानः ४।६३
असुराणां च तत्रायुः ४।६६
असुराणां धनूंषि स्याद् ४।६८
असूत सुतमुद्गीर्ण- २९।४६
असौ बाहुबली कान्ते १२।३८
असंख्यातप्रदेशात्मा ५८।३१
असंख्येयानि गत्वातः ६४।८४
असंख्येयाब्दकोटीनां ७।५०
असंख्येयप्रमाणानां ४।३५४
असंख्यवर्षकोटीनां ७।५३
असंयतचतुःस्थानात् ३।७८
असंबद्धप्रलापस्य ४७।९७
असंबद्धानि गायन्तो ६१।५२
असंभाव्याम्भसि भ्राम्यत् ६२।१८
अस्ति तत्पूर्वसम्बन्धः ३४।१४
अस्ति दुर्योधनो राजा ४७।८७
अस्तिनास्तिप्रवादं च १०।८९
अस्ति राजगृहे राजा ४०।३५
अस्ति वत्साभिधो देशो १४।१
अस्तीह किन्नरोद्गीतं १९।८०
अस्त्यात्मा परलोकोऽस्ति ५८।११
अस्त्रकौशलवैफल्ये ४७।१३१
अस्त्रं नागसहस्राणां ५२।४८
अस्त्रं ब्रह्मशिरः शीघ्र- ३१।१२३
अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम्ना २५।४७
अस्त्रेण वारुणेनारिर् २५।६७
अस्त्रं वैरोचनं मुक्तं ५२।५३
अस्त्रशस्त्रनिवहैर् ६३।१०५
अस्त्रं संवर्तकं रौद्रं ५२।५०
अस्पृशन्करनखैस्तनुं ६३।११०
अस्पृशन्तो भुवं सर्वां ८।२००
अस्मदीयं विभो स्तम्भं २६।६
अस्मात्परः परः कोऽपि ४३।१०७
अस्माकं नृपवीराणां ५२।२४
अस्मिन्नल्पर्द्धयो देवा ५।६८५
अस्या ज्यायाः सहस्राणि ५।३९४
अस्यामाद्योऽवसर्पिण्यां ८।१३०
अस्याश्चतुरशीतिश्च ५।७६
अस्योपरि किमर्थं मे २८।२१
अस्वस्थामपरेद्युस्तां ४७।५६
अहमसौ तपसासुरतामितः १५।५१
अहमिन्द्रविमानेषु ६।११२
अहमिन्द्रसुखं भुक्त्वा १८।११०
अहमिन्द्रास्ततोऽनन्तं ६।१२५
अहं च मुनिमानम्य २१।१६४
अहं तु दुःखसंभार- ४०।४१
अहंयव इवाजस्रं ३।१८
अहंयवो दधावुस्ते ३४।२८
अहितं शातयन्ती सा ५८।६
अहितापकुलान्ताय ४५।५४
अहिंसादिगुणा यस्मिन् ५८।१३२
अहो कषायपानस्य २३।१२७
अहो कान्तेः परं स्थान- ९।१४८
अहो क्रीडनशीलायास् ३३।३५
अहो चेष्टितमार्यस्य २१।१८२
अहो परमवैचित्र्यं ९।५१
अहो दानमहो दान- १।१९१
अहो दुःसहमस्माक- ७।१२९
अहो नैपुण्यमेतस्याः ३१।४७
अहोरात्रं भवेत्पक्षस् ७।२१
अहोरात्रादिको भेदो ७।१३६
अहो लब्धिरहो धैर्य- १८।१६८
अहो सर्वज्ञकल्पस्त्वं ४३।१३१
अहो संसारवैचित्र्यं २७।७२

[आ]

आकन्तीक्षुरसं प्रीत्या ८।२१०
आकर्णय वचो बाले ४२।५०
आकर्णयस्व देवानांप्रिय- ३३।४६
आकर्णाकृष्टकोदण्ड- २५।५७
आकर्णाकृष्टचापौघै- ५१।३३
आकर्णायतनेत्राभ्यां ४५।७४
आकर्ण्य नारदीयं तत् ४३।२३८
आकर्ण्य मेघनादस्तं २५।२३
आकर्ण्यतां यथा नाथ ५०।२०
आकर्ण्यतां समाधाय ५०।४१
आकर्ण्यात्मभवानेवं ६०।२४
आकम्पितासनतिरीट- १६।१४
आकस्मिकभयोद्विग्नाः ७।१२७
आकारेणाक्षपुस्तादौ १०।१००
आकारेणोष्ट्रिकाकुम्भी ४।३४७
आकीर्णमेव तैर्नित्यं २।१४४
आकुलौ बलकृष्णौ च ६१।८०
आकूतं श्रेणिकस्याथ ६१।१
आकूपारं यशो लोके १।३८
आकेवलोदयान्मौनी ९।१४३
आक्रन्दनस्वनप्राप्त- ४३।६७
आक्रान्तभेदपर्याय- ५८।४४
आक्रीडनगुहेष्वेषां ५।२०४
आक्षेपण्यादयो यत्र १०।४३
आगच्छ भर्तरादेशं ९।१७७
आगच्छन्ति तदाकर्तुम् २२।४
आगच्छन्तः पुरः सर्वे ६१।५३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगतं च पुनः पाणि ५२।८४
आगतश्च महाकालः २३।१३२
आगताश्च समाहूताः २३।४९
आगतास्मि ततो नेतुं २२।१२१
आगतो वन्दनाभक्त्या २८।४७
आगतोऽनुपदं विष्णुः ५४।६५
आगमिष्याम्यहं तावत् २२।१२३
आगत्य कपिलश्चम्पा ५४।६२
आगत्य च तदाऽयोध्यां४३।२००
आगत्य चक्रवर्ती च ११।४७
आगत्य देवकीगर्भे ३३।१७३
आगत्याकम्पनाचार्यस् २०।१९
आगत्याभ्यर्च्य साध्वंह्री ३३।१२०
आगन्तुकदोषाणां ३४।१४६
आगामितीर्थकर्तॄणाम् ४।३६९
आग्नेयादिषु मध्येऽस्या ४१।२६
आघर्मायास्तु देवाना- ६।११३
आचाराङ्गभृतां गीतः ६०।४८१
आचाराङ्गस्य तत्त्वार्थ २।९२
आचाम्लवर्धमाने ३४।९५
आचार्यग्लानशैक्ष्यादि १८।१३७
आचार्याकम्पनादीनां २०।२६
आचार्यादुरुधर्माख्याद् ६०।११०
आचार्ये चाप्युपाध्याये ६४।४२
अचिन्तयदसौ तस्य ४५।६४
आचेलुश्चलमौलीनां ८।११८
आजगाम च तेनैव २५।२६
आज्योतिर्लोकमुत्पादस् ६।१०३
आत्मनो नरकादित्वं ५८।२४४
आत्माधीनाः प्रतीहाराः५७।१६६
आत्माधीनं यदत्यन्त- ९५६
आत्मापराधबाहुल्यात् ४०।३७
आत्मान्तःस्थापितानन्त- ४१।८
आत्मानमपि निन्दन्ती ६४।१२२
आत्मेति व्यवहारोऽत्र २८।३५
आतपत्रमिदं यस्य ३१।२०
आर्त्तध्यानकरः प्रायो ६१।९५
आत्रेयः प्रथमस्तत्र ४५।४५
आदधाव पदधूत- ६३।७
आदरेण स तैर्दृष्टः ५४।५
आदर्शगजवक्त्राख्या ५।४७६
आदावष्टौ तथान्तेऽष्टा ६०।४७४
आदावुत्तरमन्द्रा स्यात् १९।१६१
आदित्यनगरं रम्यं २२।८५
आदित्ययशसः पुत्रः १३।७
आदित्ययशसा सार्द्धं ११।१३०
आदित्यवंशसंभूताः १३।१२
आदित्याभस्तमागत्य २७।१८
आदितः कुरुवंश्यानां ४५।५
आदितः सप्ततीर्थेषु ६०।४७६
आदिमध्यान्तनिर्मुक्तं ७।३२
आदिष्टः पितृपृष्टेन २९।८
आदेशो दीयतां स्वामिन् २१।१६१
आद्यसंस्थानसङ्घात- ७।१७३
आद्यस्य गणिनो भर्तुर् ६९।३४१
आद्यस्याद्यो गणीनाम्ना ६०।३४६
आद्या गुणप्रभा तासु ४५।९८
आद्यामसंज्ञिनो यान्ति ४।३७३
आद्येनेक्षुरसो दिव्यः ६०।२३८
आद्ये विंशं शतं व्यासः ६।९४
आद्येषु त्रिषु कालेषु ७।६४
आद्यो गोमूत्रवर्णोऽत्र ४।३४
आद्यो यो बुद्धिहीनोऽसौ ५।५५६
आद्यो वृषभनाथोऽभूद् ६०।१३८
आद्यो वृषभसेनोऽन्यः १२।५५
आद्यौ द्वौ दायकौ श्यामौ६०।२५१
आधिव्याधिरिवालोऽपि १९।२५
आध्यात्मिकं च पित्तादि ५६।१५
आध्यात्मिकं तु वातादि ५६।१०
आनकेन मुनेः प्रश्न- १।९०
आनकेन सुपुत्रेण ५३।१५
आनतप्राणतस्था च ६।६१
आनतप्राणतादौ च ६।९९
आनतं प्राणताख्यं च ६।५१
आनतप्राणतोद्भूता ३।१६६
आनतादिचतुष्केऽसा- ६।११५
आननं सम्भृतं सौम्यं २३।९९
आननानि यदूनां स ७३।७५
आनयामि तवाभीष्टां ४३।१०
आनन्दं ननृतुर्यत्र ५३।३०
आनन्दश्रेष्ठिनः पत्नी ६०।९७
आनन्दास्रपरीताक्षः ४३।१३०
आनन्दोऽभिरुचिर्येषां ५६।२०
आनाय्यानाय्यवृत्तोऽसौ ४५।१४९
आनीताः शुद्धशीलास्ताः २०।१३
आनीनयन्नृपं मंक्षु ३३।१५
आनीय नीतिविद्वीरो ४४।१५
आनीय नीतिकुशलाः १६।१८
आनीयादात्सुसंस्कृत्य २४।१६
आनीलचूचुकविपाण्ड- १६।११
आनुपूर्व्यसुवृत्ते च ८।११
आन्तरस्वरसंयुक्ता १९।१७०
आन्ध्री च नन्दयन्ती च१९।१८९
आपतन्तं स तं हन्तुं १९।६३
आपिशङ्गजटाभार- ४२।२
आपूर्यावार्यवेगै- ५६।११५
आपृच्छ्य ज्ञातिवर्गं च ९।९७
आपृष्टेन स तुष्टेन ४७।८२
आप्राक्षीत् पुण्डरीकाक्षि ! ३०।३
आबद्धमुकुटापीड २६।१३
आभिमुख्यं प्रति प्रायः ५८।६४
आमन्दमधुरध्वाना ५९।७१
आयताक्षि निरीक्षस्व ५४।१७
आययावथ कृत- ६३।६१
आयातस्य ततस्तस्य ५४।६१
आयात्यासन्नकालोऽसौ ५०।४७
आयामस्तु त्रिलोकानां ४।११
आयामो भागयोस्तस्य ५।२३७
आयुर्मासावशेषं ते ३४।३९
आयुरेकादशस्यापि ६०।५४१
आयुर्लक्षा बलानां स्युः ६०।३२२
आयुर्वर्णगृहाहारैः ५।५७३
आयुर्वर्षसहस्राणि १८।५
आयुः शुक्रमहाशुक्र- ३।१५४
आयुश्चतुर्विधं नाम ५८।२२२
आयुश्चतुरशीतिश्च ६०।३१२
आयुस्त्रिद्व्येकपल्यैस्तु ७।६६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आयुषस्तु त्रयस्त्रिंशत् ५८।२८६
आरणाच्युतकल्पे ता ४३।२१५
आरणाच्युतसुस्कन्धो ४।३०
आरणाच्युतकल्पान्त- ४।१६
आरणात्पुष्पदन्तेशः ६०।१६६
आरण्यकमसौ वेद १७।४०
आरात्सहस्रपदपूर्व- १६।१०
आराधयदसौ तीव्र- ५४।१२
आराधितेन देवेन ५४।१३
आराध्याराधनां सम्यक् १८।१०८
आरम्भे क्रियमाणेऽन्यैः ५८।७९
आरस्तारश्च मारश्च ४।८२
आरूढवारणेन्द्राणां ८।१४५
आरूढः क्षपकश्रेणिं ९।२०८
आरुह्य दण्डरत्नेन ११।२४
आरुरोह गिरिं तत्र २।६२
आरुरोह रथं शौरिस् ३१।६९
आरे या प्रथमा प्रोक्ता ४।२८
आरोढा क्षपकश्रेणी ५६।८८
आरोप्य जिनमात्माङ्क- ८।१५४
आरोप्य शिविकां क्वापि २४।२
आरोहति वियन्मध्यं ६२।१९
आरोहणीयौ तौ कार्यौ १९।२२३
आर्द्रवस्थमपि न्यस्त- १४।८७
आर्यपुत्र ! शृणु श्रीमन् ३०।५
आर्यस्तातसमो राजा १९।४७
आर्यामाह नरो नारी ७।१०२
आर्यिकास्तास्तथा ३३।१२९
आर्यास्तिस्रोऽभवं- ६०।४३२
आर्षभ्यास्तु तथा त्वंशौ १९।२२०
आर्षस्त्वमिह किं वेदान् २३।३४
आर्हन्त्यविभवोपेते ६५।३
आर्हन्त्यविभवोपेतं ६०।१३३
आर्हन्त्यैश्वर्यमालोक्य ९।२१८
आलानस्तम्भमाभज्य २४।४३
आलिलिङ्गतुरन्योऽन्यं ३०।२५
आलोको यस्य लोकान्त- ५९।९८
आलोचनाद्यतः शुद्धिः ६४।३४
आलोलकुण्डलालोक- ८।१०७
आवयोर्नैव जायन्ते ५९।७६
आवयोः प्रथमं यस्यास् ४३।२५
आवलिस्थविमानानां ६।६९
आवश्यकक्रियाणां ३४।१४२
आश्वापश्चापि निःक्रामो १९।१५०
आवां तत्र तपःकृत्वा ६५।५१
आवां पुत्रादिसंयुक्तौ ६५।५२
आविदेहं च विष्कम्भात् ५।५८४
आशङ्क्यानार्थतत्त्व ७।३४
आशङ्का च न कर्तव्या १७।१०७
आशङ्कितः स नैमित्तं २५।१८
आशयाः स्वच्छतां जग्मुः ३।२
आशंसे जीविते मृत्यौ ५८।१८४
आश्लिष्य दयितां पार्थो ५४।५३
आश्लिष्य रुदतोर्भ्रात्रोः ३१।१३०
आश्वास्य जिनभक्तेन २२।५५
आश्वास्य शोकसंतप्तां १७।५२
आश्चर्यपञ्चकमिद- १६।६३
आषाढकृष्णपक्षस्य ६०।२७२
आषाढशुक्लषष्ठ्यां तु २।२३
आषाढं मानवं सूर्यं २२।९५
आषोडशादतीत्यान्या ५।६२२
आसक्तश्च चिरं तत्र २१।५७
आसनस्य प्रकम्पेन ८।१२२
आसनं शयनं तेषां ४५।६८
आसनादवतीर्याशु ८।१२८
आसने शयने वस्त्रे ४७।३०
आसने शयने स्नाने २१।७३
आसन्नभव्यता हेतो- ३।१०२
आसन्नष्टौ सहस्राणि ५।४१३
आसंवत्सरमात्माङ्गैः ५९।१०५
आसाद्य सा ततस्तस्य ३१।४३
आससाद विमानं तच् ३२।३७
आसीत्कलिङ्गसेनात्र २१।४१
आसीच्चित्ररथो राजा ३३।१५०
आसीदयममोघाज्ञः २४।१२
आसीदत्रैव वैश्येशश् २१।६
आसीदन्धकवृष्णेश्च १८।१२
आसीदमोघविक्रान्तिः २९।२४
आसीन्नृपः कलिङ्गेषु २४।११
आसीत्प्रवरको नाम्ना ४३।११६
आसील्लक्ष्मीमती नाम्ना ६०।२७
आसीत्सौर्यपुरस्यान्ते ४२।१४
आसीनयासनवरे १६।८
आसीनानेवमप्यस्मान् ४०।१८
आसौ मेघावनेरुक्तश् ६।११४
आस्ते कंसोपरोधेन ३३।३०
आस्थानस्थितमागत्य ५४।३२
आस्थानी समये तस्थौ १७।८२
आस्थाने ते यथास्थानं ५३।३
आस्महे वयमप्यत्र ५०।२९
आस्रवस्य निरोधस्तु ५८।२९९
आस्वहे तत्र नौ द्वीपे २१।१०५
आह चात्यनुकूलस्त- १४।६७
आह चैनमथो साधो २०।४२
आहारदानमस्मै सा ६०।६५
आहारमिष्टमिह १६।४०
आहारस्य शरीरस्य ५८।२७५
आहाराभयदानं ३४।१३७
आसां तु रक्तगान्धार्याः १९।१९३
आसाद्य फलकं कृच्छ्राद् २१।८०
आसां मध्ये च शक्रस्य ५।३३६
आहूय रहसि क्रुद्धः ४७।६९
आहूतश्च तया धीरः २९।२२
आहूतस्तैरसौ भोक्तु- ३३।१४७

[इ]

इक्ष्वाकवो द्विधादित्य- १३।१९
इक्ष्वाकुकुलजो राजा ३९।४२
इक्ष्वाकुक्षत्रियज्येष्ठ- ९।४३
इक्ष्वाकुः प्रथमः प्रधान- १३।३३
इक्ष्वाकु वंशजा जाया १७।५७
इच्छा द्वेषः प्रयत्नश्च ५८।२३
दूतदर्शनमात्रेण ५०।३५
इतरस्यामभूत्पुत्रो २१।१२१
इतरे गङ्गदेवस्य ३३।१४२
इतः कदाचिद् वरुणेन ३५।३७
इतः केनचिद्वणिजा ५०।१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इतः पश्य वरारोहे ! ३१।४०
इतः पूजां नृपात्प्राप्य ५०।६३
इतः प्रभृति च स्त्रीणां २७।१३१
इतः सुलसदम्भोज- २३।११०
इतश्च रुक्मिणीसूनुं ४३।६२
इतश्च वसुदेवाभं ६०।१२६
इतश्चावसरज्ञेन ४२।६७
इति गान्धर्वसेनायाः २१।१८१
इति तं नारदस्तन्वी ४३।८९
इति तदा मनसा ५५।१०१
इति तु वनेचरैः कृतमनो-४९।२९
इति ते क्षुत्पिपासाद्यै- ९।१११
इति तेषां वचः श्रुत्वा १७।४६
इति दुरापमहोदयपर्वते५९।१३५
इति दूतवचः श्रुत्वा ४३।२२
इति दृग्ज्ञानचारित्र- ६४।१११
इति देवकृतैर्भूमौ ३।३०
इति द्वादशभेदेषु २।८८
इति द्विष्टो द्विषे कृष्णः ५४।३८
इति ध्यायन्खमुत्पत्य ४२।३३
इति ध्यायन्मनश्चक्रे १४।३९
इति ध्यायन्तमायातं ४२।४१
इति ध्यायन्तमेवैनं १९।६७
इति ध्यात्वा स्वयं सक्तस्९।१४१
इति ध्यात्वा सुदुर्वारो ६१।७२
इति नक्तंदिवं दृष्ट्वा ८।५४
इति नारदवाक्येन ४४।८
इति निगद्य तदा विबुधः १५।५२
इति निशम्य तु काञ्चन ५५।६३
इति निशम्य वचोऽथ ५५।९
इति निशम्य निशाम्य ५५।८८
इति निश्चित्य तेऽन्योन्यं९।१२४
इति पत्या समादिष्टं ३२।६
इति पर्वतमाभाष्य २३।१३७
इति प्रणोद्य तैः साक- २७।१६
इति प्रबलदुःखेयं ४७।५५
इति प्रबोध्यमानोऽयं ४३।१८७
इति प्रवाच्यमानेऽसौ २३।१०८
इति प्रवृत्तसंकल्प- ४७।५४
इति प्रवृत्तश्रवणात्प्र- ३५।७४
इति पृष्टः प्रभुः प्राह ७।१३०
इति पृष्टा जगुस्ते तं २८।४
इति पृष्टा समाचष्टे ४०।३३
इति पृष्टेन तेनोक्तं २१।११८
इति पृष्टो जिनोऽगादीत् ६१।२२
इति पृष्टो मुनिः प्राह ३३।४५
इति पृष्टोऽवदत्सोऽस्मै २१।५
इति पृष्टोऽवदत्सोऽस्मै ४२।४८
इति प्रसाद्यमानोऽसौ २०।५९
इति प्रियंवदोऽवादि २१।३१
इति भार्योपदेशेन २६।२४
इति मन्त्रिभिरामन्त्र्य ५०।५६
इति मातृवचः श्रुत्वा ५०।९६
इति मार्गस्तुतिं कृत्वा ४७।१२
इति राजानुजं भक्त- १९।३८
इति वचनं गुरोरभि- ४९।२१
इति वन्दिजनैर्वन्द्या ८।८८
इति वसन्तमनन्तमसौ युवा५५।४९
इति विचिन्त्य रुषा १५।४७
इति विज्ञापितो नत्वा १४।६९
इति विज्ञाय निस्सारं ४३।१२८
इति वितर्कमतर्कित- ५५।२४
इति विहितमहाज्ञो ३६।११
इति व्यावर्णितं द्वीपं ५।३७७
इति व्याहृत्य रुद्ध्वाग्रे १९।१०४
इति श्रमणधर्मोऽयं २।१३१
इति श्रुतयथातत्त्वा ९।२०२
इति श्रुत्वा जिनेन्द्रोक्तं५८।३०६
इति श्रुत्वा तदाधीत्य २३।१५१
इति श्रुत्वा प्रतीहार्या २३।११
इति श्रुत्वा प्रमोदेन ५३।९
इति श्रुत्वा भवान् पूर्वान् १८।१७६
इति श्रुत्वा मनो ज्ञात्वा ४२।५९
इति श्रुत्वा महाक्रोधः २३।१२६
इति श्रुत्वार्यिकावाक्यं ६४।१३२
इति श्रुत्वाऽवदन्मन्त्री १४।६१
इति श्रुत्वा स जिज्ञासुः २५।२१
इति श्रुत्वा हरिर्ज्ञात्वा ६२।४२
इति संगीर्य ते देव्यौ ६४।१२९
इति संचिन्त्य संत्यज्य ११।९८
इति संचिन्त्य रागान्धः४३।१७०
इति संचिन्त्य पुण्येन ४३।४७
इति संमन्त्र्य ते मन्त्रं ४०।१९
इति समये प्रयाति तु ४९।१३
इति सह चिरवासे ३६।१८
इति साक्षात्कृते तेन ४३।१२९
इति सानुनयं प्रष्टा ४५।७८
इति सिद्धार्थवागर्थं ९।१७६
इति सुविहितमन्युं ३६।२२
इति सुस्वप्नफलं श्रुत्वा ८।९६
इति स्तुतिशतैः स्तुत्वा ८।२२८
इति स्तुत्वा मुनिं नत्वा१८।१७०
इति स्वेष्टार्थसंवादे १४।९४
इतिहासमनुस्मृत्य ९।१९८
इतीमां घोषणां श्रुत्वा ४५।१२८
इतीरितं ताः प्रतिपद्य ३५।४१
इतीरितेयं हरिवंश- ६६।११
इतोऽपि जिनमानम्य ६१।३३
इतोऽपि तापसाकारं ४५।९३
इतो द्वारवतीं लोकः ६१।४५
इतोऽपि देवक्यपि भर्तृ ३५।१०
इतोऽन्यदुत्तरं नास्ति १०।१५९
इतोऽपि वसुदेवाद्या ६१।९१
इत्यनुश्रुतमद्भुत- ६३।९२
इत्यनेकदिनरात्रि- ६३।४४
इत्यनेकविकल्पेऽस्मिन् १८।९४
इत्यनेकाद्भुताकीर्णः ५।६११
इत्यन्योन्यकृतालापा ९।१५१
इत्यन्योऽप्यस्वरूपज्ञा २१।१८५
इत्यन्योन्याश्रितालापा ५३।५
इत्यशेषितपरीषह- ६३।११५
इत्यस्यामवसर्पिण्याम् १।२६
इत्याकर्ण्य कृपायुक्तो ३०।४७
इत्याकर्ण्य तदा तेन २१।१६९
इत्याकर्ण्य नृपः प्राह १९।२४
इत्याकर्ण्य नृपोऽपृच्छत् २७।३५
इत्याकर्ण्य स तस्याश्च २४।४१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इत्याकर्ण्य तदा तस्याः २१।१४४
इत्यादयस्तु ते स्तुत्या २२।१०६
इत्यादयो विबोधाय ८।७८
इत्यादिचरितं दिव्यं ४८।३२
इत्यादि चिन्तयन् वीरो २६।३९
इत्यादि तस्य वचनं ४६।६०
इत्यादित्याभदेवेन २७।१२७
इत्यादि प्रलपन्नुक्तः ६२।५४
इत्यादिप्रियवादिभ्याम् ६१।६५
इत्यादिबहुवादी स ४३।७०
इत्यादिमन्त्रिभिः पथ्य ५०।३१
इत्यादिवचनं तस्य ६५।५४
इत्यादिशुभचिन्तात्मा ६२।६३
इत्यादिश्रुतिकोटीना- ५७।१४५
इत्यादिश्य तदा यातः ४२।५३
इत्यादिषु व्यतीतेषु ४५।१३
इत्यादि स यथायोग्यं १९।२६२
इत्याद्यस्य जिनेन्द्रस्य १०।१६०
इत्याद्या ह्यार्यमातङ्गा ५१।४
इत्याद्याः सुत विन्यस्त- १३।२५
इत्याध्यात्मविशेषस्य ५८।१४
इत्याभाष्य मनोवेगं ४३।१९९
इत्यावेदितवृत्तान्तः २६।४६
इत्यावेदितसंबन्धः २४।५९
इत्यावेद्य तदादेशाद् २४।७५
इत्यावेद्य वधस्थानं ३०।५१
इत्यावेद्य वयोवृद्धाः २४।२४
इत्याश्वास्य रहस्येना- ३९।४३
इत्यासाद्य मुनेराज्ञा ४३।१४४
इत्युत्तारमसौ दत्वा १९।१२०
इत्युदीर्य कुपितो ६३।१६
इत्युदीर्य मृदुपद्मिनी ६३।६५
इत्युदीर्णा सकृद्धोषो ५९।३३
इत्युर्वीन्द्रः स विज्ञप्तः १७।९८
इत्येकान्तकुतर्केण २८।४०
इत्युक्तं प्रतिपद्यासौ ४६।५
इत्युक्तमखिलं श्रुत्वा २३।५५
इत्युक्तमनुमन्यैते २७।१३२
इत्युक्तविधिकर्त्तासौ ३४।१३१
इत्युक्तः सोऽभ्यधात् सद्यो१४।५९
इत्युक्तस्स तमाहैव १८।१६०
इत्युक्तस्तं प्रति प्राह ५२।७८
इत्युक्ता इत्यवोचंस्ते ३०।५
इत्युक्ता प्रतिपद्यासु ७।१४६
इत्युक्ता सा जगौ राजन् २७।३४
इत्युक्ता सोष्णनिश्वास- १४।८२
इत्युक्तास्तेन ते प्रोचु- १९।२६
इत्युक्ते कथयन्नाथ ६०।५
इत्युक्ते कुपितश्चक्री ५२।८३
इत्युक्ते दर्शितायां च ३३।२२
इत्युक्ते तापसः काष्ठं ३३।६८
इत्युक्ते तेषु चेतोऽस्या ३१।२६
इत्युक्ते प्रणिपत्यासौ ४७।१२०
इत्युक्ते मुक्तमाध्यस्थ्यो ३१।११५
इत्युक्ते यतिनाद्यन्तां २१।१२४
इत्युक्ते रुधिरोऽतोषि ३१।६६
इत्येवं वदतो दृष्टि १०।६१
इत्युक्ते सान्त्वयित्वा तां ४३।५७
इत्युक्ते सोऽब्रवीदस्ति ६२।३७
इत्युक्ते सोऽवदद्वंशे २७।२
इत्युक्ते सोऽवदत्स्वामिन् ३१।१०८
इत्युक्ते स्नेहसंचार- ६२।२२
इत्युक्ते प्रणतेनोक्तः ४८।२८
इत्युक्तेन मया प्रोक्तं २१।१६२
इत्युक्तो नोदयद्वेगात् २२।२०
इत्युक्तो नोपसंहृत्य २७।५२
इत्युक्तोऽन्यनिवृत्तेच्छः ५४।२५
इत्युक्तोऽपि स दुर्मोच- १७।७०
इत्युक्तो विदितश्यामा २२।१४६
इत्युक्त्वा तं कुमारास्ते ६१।५५
इत्युक्त्वा तं समुद्धृत्य ६५।४६
इत्युक्त्वा महतीमृद्धिं २१।१५९
इत्युक्त्वा मुनिरन्यस्मै १७।४२
इत्युक्त्वा वसुदेवस्य ५३।१९
इत्युक्त्वा विरते तस्मिन्२१।१५२
इत्युक्त्वा शङ्खमापूर्य ४७।१२८
इत्युक्त्वा स विसृष्टस्तै- ५०।४८
इत्युक्त्वा सुलसा साश्रु २३।५४
इत्युक्त्वा सुपरावृत्य ३०।३२
इत्युक्त्वासौ क्षुरप्रेण- ४२।८८
इत्युक्त्वोच्चैः प्रधाव्यासौ १९।४८
इत्थं कुलकरोत्पत्तिः ७।१७७
इत्थं कृतरणक्रीडः ३१।१२५
इत्थं कृत्वा स्तवं भक्त्या २२।४१
इत्थं कृत्वा समर्थं १२।८०
इत्थं तत्र महानन्दे ८।१६१
इत्थं ते पाण्डवाः श्रुत्वा ६४।१४३
इत्थं मतिश्रुतयुतावधि १६।४९
इत्थमाकर्ण्य साधर्मं ३।१७८
इत्थं राजा मधौ मासे १४।२७
इत्थं साधुसहायोऽह- १।४९
इदं विष्णुकुमारस्य २०।६४
इदमेवेति तत्त्वार्थ- १८।४९
इदानीं छिन्नभिन्नाश्च ९।२८
इन्द्रः पुरन्दरः शक्रः ८।१२५
इन्द्रकाणां द्वितीयायां ४।२२९
इन्द्रके त्विषमेव स्यात् ४।२६४
इन्द्रकेषु त्रयः क्रोशाश् ४।२२२
इन्द्रकेषु तु बाहुल्यं ४।२१८
इन्द्रकैः सह सप्त स्युः ४।१३६
इन्द्रकैः सह सर्वाणि ४।१४३
इन्द्रचन्द्रार्कजैनेन्द्र- १।३१
इन्द्रनीलचयेनेव २।५४
इन्द्रनीलमहानील- ८।१४८
इन्द्रनीलनिभान् केशान् ९।२१९
इन्द्रनीलमहानील- ११।११९
इन्द्रनीलमयी भूमि ५७।८
इन्द्रनीलादिभिर्नीलै- ७।७२
इन्द्रभूतिरिति प्रोक्तः ३।४१
इन्द्रसामानिकानेक- ८।१७१
इन्द्राः सामानिका देवास् ६।१२४
इन्द्राग्निवायुभूत्याख्या २।६८
इन्द्राद्याः कल्पजा देवा ३।१५१
इन्द्राद्यैस्त्रिदशैस्तस्मिन् ५९।१२७
इन्द्रियाणि कषायाश्च ५८।६०
इन्द्रियाद्या दश प्राणाः ५८।१२७
इन्द्रियानिन्द्रियैःषड्भिः१०।१४७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन्द्रियानिन्द्रियोत्थं १०।१४५
इन्द्रियायुर्बलप्राण- ५८।६८
इभवाहननामाद्याः ४५।१५
इभ्यस्येभपुरेऽत्राभूद् ६०।९५
इभ्योऽपि प्रियमित्रा ४५।१००
इभ्यो राजसमस्तस्य १८।११३
इयन्तं कालमज्ञाता ५०।१७
इयन्तं वसता काल- ६२।४०
इयमेव जघन्या स्यात् ४।२५१
इयमेव जघन्या स्याद् ४।२५३
इयमेव तु विक्रान्ते ४।२५८
इयमेव भ्रमे ह्रस्वा ४।२८७
इयमेवाप्रतिष्ठाने ४।२९४
इयमेवावरा वर्ण्या ४।२७१
इयमेवोपगीता सा ४।२७३
इयमेवावरान्ध्रे सा ४।२८९
इला चैलेयमावृत्य १७।१७
इला देवी ततो रुष्टा १७।१६
इला नवमिकासुरा ३८।३४
इला सुरा पृथिव्याख्या ८।११०
इष्टानिष्टेन्द्रियार्थेषु ५८।१२२
इष्वाकाराद्रिणाप्येष ५।५७८
इष्टार्थस्य प्रदानेन १४।५५
इष्ट्वा च सगरं यागे २३।१४६
इह जन्मनि मे मातश् २१।५१
इह जहौ वसुधा शिवि ५५।११८
इह भारतजातानां ३।१९४
इह भारतवर्षेऽभूद् ४३।९९
इह वनदेवतास्थितवतीय ४९।२८
इहापरविदेहेऽस्ति २७।५
इहान्तरे सा सुतदर्शनेन ३५।६०
इहास्ति दक्षिणश्रेण्यां ३०।६
इहास्यामवसर्पिण्यां ६०।५५३

[ई]

ईक्षिता धातकीखण्डे ५४।३३
ईदृशमीश विभुत्वममानं ३९।११
ईदृशी दृक्स्वनेपथ्या १४।६०
ईदृग्लक्षणयुक्तोऽपि २३।११६
ईर्यापथनिमित्ता या ५८।६५
ईश्वरताधर धीर नमस्ते ३९।१४
ईषदूनसमाकारा ३।७५
ईषदूनपरिक्षेपः ५।२९९
ईषत्प्राग्भारसंज्ञासा- ६।१२७

[उ]

उपकारमतिस्तात २१।३५
उपचरन्नुवासरमादरात् ५५।१५
उपचितो जनताभिरसौ ५५।३३
उपन्यासस्तथा चैव १९।२२९
उपपादश्च सर्वासां ३।१६१
उपपादोऽस्त्यभव्याना- ६।१०६
उपभुक्तान्नपानोऽसौ १८।१६५
उपमानोपमेयत्व- ५९।१२५
उपयम्य समानीय ४४।२४
उपर्युपरि सौधर्मात् ३।१६९
उपलभ्य मतं जैनं २७।१२५
उपवनं समुपेत्य वनश्रियं ५५।८४
उपवने वृजिने शिवि ५५।११७
उपवासविधिर्यो यः १८।१३६
उपविष्टः शिलापट्टे ९।२०७
उपशान्तकषायात् प्राग् ३।८२
उपशान्तकषायोऽतो ६४।५६
उपशान्तकषायादे- ५८।५९
उपसर्गं विनाश्याशु २०।६०
उपसर्गजयं पञ्च १।१२३
उपसर्गसहास्तेऽपि २०।२४
उपसंहर हे दुष्ट २७।५१
उपसंहृतयोगं तं ४६।४६
उपसंहृतनृत्या च २१।५०
उपाध्यायः प्रसिद्धोऽत्र १९।१२९
उपायविचयं तासां ५६।४१
उपायस्तस्य मोक्षस्य ५८।१८
उपेक्षिताः कुतो हेतो- ५०।१०
उपोसिताष्टमायास्मै ११।५४
उभयकोटितटीघटितो- १५।१९
उभये मन्त्रिणो मन्त्रं ११।८०
उर्वरा सर्वसस्यौघैः १९।१८
उरसि चुम्बति तं कठिन-५५।४६
उरोदघ्ना बरण्डास्ते ५७।१२८
उरसि नितान्तनील- ४९।७
उवाह धृतिमक्षोभ्यस् १९।३
उक्तद्वीपसमुद्रेषु ५।७३३
उक्तप्रत्युक्तयुक्तार्थान् १४।९९
उक्तश्च वीर ! विद्धि त्वं ३०।५२
उक्त्वेति कौस्तुभं तस्मै ६२।५४
उक्त्वेति प्रगतो लब्ध्वा ३३।११३
उक्त्वासौ क्षम्यतां देव ६२।५५
उग्रवंशप्रसूतायां १७।३७
उग्रसेनसुतायादाद् ५३।४५
उग्रसेनपितृव्यस्य ४८।४०
उग्रसेनस्य तनया ४८।३९
उग्रसेनस्य राज्यं च १।९३
उग्रसेनादिभूपानां ४१।३१
उग्रसेनोऽन्यदा दातुं ३३।७९
उच्चैःकुलाद्रिसंभूता २।१६
उच्चकैरिति मदन् ६३।१९
उच्चैर्गन्धकुटीदेश- ५७।७
उच्चैर्देशस्थितोऽपि ६५।५८
उच्चैर्यशोध्वजो लोके ९।१६२
उच्यते तु गुणस्थानात् ५६।८६
उच्छ्रायः पुनरुद्दिष्टो ५।३३७
उच्छ्रायः पुनरस्य स्यात् ५।८१
उच्छ्रायमूलविस्तारैः ५।२०१
उच्छ्रायस्तस्य पादोनः ५।३१
उच्छ्रायश्चैत्यगेहस्य ५।५०८
उच्छ्रायः षट् शतान्याद्ये ६।९५
उच्छ्रायोऽपि सर्वेषां ५।२२४
उच्छ्रायो मूलविस्तारो ५।६९७
उच्छ्रायो मूलविस्तारस् ५।३३१
उच्छ्रायो योजनशतं ५।९०
उच्छ्रायो वस्तुतस्तेषां ४।३५१
उच्छ्वासकारणं यत्तु ५८।२६६
उज्जयिन्यामभूद्राजा २०।३
उज्जयिन्यामिहैवासीद् ६०।१०५
उज्जयिन्या वणिग्भिन्न- २१।८६
उट्टिण्टिकारिसंबन्धं १२।१८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्कर्षाद् द्वीन्द्रियेषु स्यात् १८।७६
उत्कृष्टोज्वलिने येयं ४।२७७
उत्तमा जातिरेकैव ७।१०३
उत्तरस्यां सहस्राणि ५।४१२
उत्तरायणमुत्क्रम्य ६५।२
उत्तराशाच्युतान्तानां ६।१२०
उत्तराफाल्गुनीप्राप्ते २।५९
उत्तराफाल्गुनीष्वेव २।५१
उत्तरीयाम्बरं स्वच्छं ८।१८८
उत्तरे च सुरः प्रोक्तो ५।७०३
उत्तरोत्तरतन्त्रस्य १।५७
उत्तीर्णः स्यन्दनादाशु ३१।१२९
उत्तीर्य संक्रमाक्रान्त्या ११।२९
उत्तुङ्गगिरिशृङ्गेषु ४३।२०८
उत्पत्ति वासुदेवस्य १।९१
उत्तिष्ठ पुत्र गच्छामो ५०।९२
उत्थाप्य तं हरिः प्राह ६२।४४
उत्पन्नदिन एवास्यो २८।२०
उत्पन्नश्चाचिरेणाहं २१।११
उत्पन्नस्यास्य चाभावः ५६।१३
उत्पन्नो मार्गशीर्षस्य ६०।१७०
उत्पन्नोत्थानवादीभ- १७।९२
उत्पलोज्ज्वलसंज्ञा स्यात् ५।३३५
उत्पत्स्यते सुतः क्षिप्रं ३२।५
उत्पातिन्यश्च सर्वासु २२।६८
उत्पादपूर्वपूर्वस्य २।९७
उत्पादनादपूर्वस्य ५८।७१
उत्सवः परमो जातः ४७।१३
उत्सर्पिण्यवसर्पिण्योः ६४।९१
उत्सर्पिण्यवसर्पिण्योः १०।३३
उत्सुको निषधश्चापि ५०।१२४
उत्सेधाङ्गुलमेतत्स्याद् ७।४१
उत्सेधः पार्श्वनाथस्य ६०।३०५
उत्सेधश्चाप्रतिष्ठाने ४।३३९
उदकश्चोदवासश्च ५।४६१
उदकोऽप्युदवासोऽपि ५।४६३
उदग्रो मण्डपोऽप्यग्रे ५।३७१
उदतरत्प्रभुणा तरुणीघटा ५५।५५
उदयात्तु कषायाणां ५८।९७
उदयाद्यस्य हासाविर् ५८।२३५
उदयाद्यस्य पूर्वात्म- ५८।२६१
उदयाद्यस्य जीवानाम् ५८।२६९
उदयो विजयः प्रीतिः ५७।३६
उदंशुरत्नमालेव ५७।८४
उदस्तै रत्नवलयैर् ५९।२३
उदाररूपलावण्यां ४५।७३
उदात्तस्यानुदात्तस्य १७।८७
उदियाय यदुस्तत्र १८।६
उदियाय स तत्रैव १८।१०९
उदीच्यां गजकर्णाश्च ५।५६८
उदीच्याञ्जनशैलस्य ५।६६४
उदीच्यान्नृपशार्दूलान् ६१।१२
उद्धः सङ्घोऽस्य मौनः १२।८२
उद्घाटिते गुहाद्वारे ११।२५
उद्दिश्य पाण्डवान् यातौ ६२।४
उद्यतस्तस्य लोकार्थम् ५९।३७
उद्यानवनखण्डेषु १४।२१
उद्वर्त्यापि ततो भ्रान्त्वा २७।१०४
उद्वर्त्यापि परिभ्रम्य ६०।१५
उन्नताग्रसमस्निग्ध- ८।८
उन्नतैः कुक्षिभिर्भूपाः २३।७१
उन्निद्रपद्मनयना १६।५
उन्मीलितं मनोनेत्र- ४३।१३२
उन्मुण्डो निषधश्चासौ ४८।६६

[ऊ]

ऊचे कनकमालां तां ४७।७७
ऊचे गत्वेति सुग्रीव १९।१३०
ऊचे वनवती देवी ५३।१०
ऊढा च यौवनस्थेन २१।३८
ऊढायाः सिंहदंष्ट्रेण २३।६
ऊरू सन्धिर्नितम्बश्च ८।१४
ऊर्जयन्तगिरौ मृत्वा ३३।१५५
ऊर्जयन्ताद्रिनिर्वाण- ६५।१७
ऊर्जयन्तगिरौ वज्रो ६५।१४
ऊर्जयन्तनगारोहं १।११५
ऊर्ध्वं सार्धरज्ज्वन्ते ४।२१
ऊर्ध्वं नवरसा जाता ९।९१
ऊर्ध्वं नवनवत्यास्तु ६।९३
ऊर्ध्वं क्षीणकषायोऽस्मात् ३।८३
ऊर्ध्वं च पुनरुद्यातो ५।६४
ऊर्ध्वगा बलदेवास्ते ६०।२९३
ऊर्द्धग्रैवेयकान्तासु ६०।४५८
ऊर्ध्वज्वलनमुष्णत्वं ६५।८
ऊर्ध्वं तस्याः पुरा प्रोक्तं ६।१३१
ऊर्ध्वपादानधोवक्त्रान् ४७।७४
ऊर्ध्वं प्रदेशवृद्धयातः ४।१०
ऊर्ध्वभागे जलं तेषां ५।४४७
ऊर्ध्वलोकस्य सिद्धा ये ६४।१०६
ऊर्ध्वाधस्त्रिसहस्राणि ४।२४७
ऊर्मिभ्रुवश्चटुलनेत्र- १६।२५
ऊषरक्षेत्रनिक्षिप्त- ७।११७
ऊहाङ्गमूहमप्यस्याल् ७।२९

[ऋ]

ऋतुमानीन्द्रकं प्राहुस् ६।४३
ऋतुरियाय स धर्ममयस्ततो ५५।४७
ऋषिपूर्वो गिरिस्तत्र ३।५३
ऋषभः पञ्चमश्चैव १९।२५०
ऋषभोऽभात्स्वयंबुद्धो ९।७३
ऋषभाय नमस्तुभ्य- २२।३१
ऋषयः प्राक्ततस्तस्थुर् ३।६१
ऋषयोऽनुव्रजन्तीशं ५९।६०

[ए]

एक एव भवभृत् ६३।८३
एक एव तयोरासी- ४३।२०६
एकच्छत्रमिदं राज्यं १४।५४
एकजन्मापकारेण २७।१२३
एकत्रिद्व्येकमासाश्च ६०।३३९
एकत्रिंशत्सहस्राणि ५।२९२
एकत्रिंशत्सगव्यूति ५।४०१
एकत्रिंशत्तु कोदण्डा- ४।३२५
एकत्रिंशत्तु गव्यूत्या ४।३५७
एकत्वेन वितर्कोऽस्ति ५६।६५
एकदा नारदश्छात्रैः १७।६१
एकदा प्राग् विबुद्धासौ ३०।२९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकदा मुखताम्बूलं ४३।४
एकदा रामदत्तार्या २७।६०
एकदा तु शिवादेव्यै- १९।४१
एकदैव रसं वर्णं ७।३३
एकद्वित्रिकगव्यूति ४।३५०
एकद्वित्रिचतुःपञ्च ३४।९३
एकद्वित्रिचतुर्द्विकानि २४।७६
एकद्वित्रिचतुःपञ्च १०।२३
एकद्वित्रिचतुःपञ्च ५८।५
एकद्वित्रिकषण्मासै ६०।४५५
एकद्वित्र्यादिषण्मास- ६५।२७
एकद्वित्र्यादिसंख्येय- ५८।२९७
एकपर्वा द्विपर्वा च २२।६७
एकपादस्थितश्चासा- ३३।४८
एकमष्टौ च चत्वारि १०।१३९
एकमेव महादिक्षु ४।१५०
एकमेवाणु पर्यायं ५६।६६
एकमेवासृजत्पुत्रं ७।१६६
एकयैव कृतातिथ्यस् २९।३७
एकयोजनविष्कम्भ- ६।१८
एकलक्षा सहस्राणि ५।४५४
एकवर्णमखिलं जगत् ६३।३४
एकं वर्षशतं कृत्वा ६५।३३
एकवाक्यतया तेन २१।१०२
एकविंशतिपल्यायुश् ६०।१०३
एकविंशतिलक्षाश्च ५।५४५
एकविंशतिलक्षा वै ४।१९६
एकविंशतिरूर्ध्वे तु ६।७६
एकविंशतिवारांश्च २५।३२
एकं संख्येयविस्तारं ४।१६८
एकषष्टिकृता भागा- ६।१०
एकस्मिन्समये कालात् ६४।९०
एकस्य सप्तमी पृथिवी ६०।३०२
एकस्या एकवीरोऽयं १८।२६
एकस्यापि महानरस्य १।१२७
एकस्यामेव चामुष्यां २८।२२
एकस्यामेव रात्रौ तु ४८।२०
एकस्त्रयस्ततः सप्त ३।११७
एवमादिष्वतीतेषु २५।३७
एका कोटिः पुनर्लक्षा ५।५८५
एकातपत्रमैश्वर्यम् ३।३६
एकान्तं प्रासुकं क्षेत्रं ५६।३०
एकान्तविपरीतत्व- ५८।१९५
एकान्ते पृष्टया कृच्छ्रात् २४।५५
एकान्ते सुस्थितं हर्म्ये २२।४८
एकान्नत्रिसहस्राणि ६०।४५९
एकान्नत्रिंशदुत्सेधः ४।३२४
एकान्नत्रिंशदुद्दिष्टाः ६०।४१६
एकान्नविंशतिर्ज्ञेया ६०।३७३
एकान्नसप्ततिर्लक्षाः ६०।४९९
एकान्नषष्टिलक्षाश्च ६०।५२२
एकात्मपरिणामेन ५८।२१९
एकादश गणाधीशा ५९।१२८
एकादश त्रिके पूर्वे- ६।६२
एकादयः प्रणीता ३४।८८
एकादश सहस्राणि ५।३१२
एकादशैव लक्षा हि ५।५४१
एकादश्यां तु तस्यैव ६०।१७८
एकादश्यां प्रातिहार्य- ३४।१२८
एकादिषूपवासेषु ३४।५२
एकाद्या यत्र पञ्चान्ता ३४।६९
एकाशीतिशतानि स्यात् ५।६८
एकाष्टलोकभीभङ्ग- ५७।१३३
एकेनैवाह्वयं नीतास् ४६।४१
एकेन्द्रियादिकां जाति- ५८।२४६
एकैकं कूपके रोम- २३।६४
एकैकाक्षरवृद्ध्या तु १०।२६
एकैकं स त्रिधा छित्वा ३१।१२०
एकैकस्यैव चन्द्रस्य ६।२९
एकैकस्य तु बाहुल्यं ४।५५
एकैकस्य नरेन्द्रस्य ५०।१०४
एकैकस्य ह्रदस्यात्र ५।२००
एकैकस्मिंस्ततो रोम्णि ७।४९
एकैको हीयते चाधः ४।८८
एकोत्तरा तु वृद्धिः स्यात् ३।१५६
एकोनत्रिंशदेव स्युः ५।५१७
एकोनत्रिंशता लक्षो ६०।३६७
एको द्वौ च नव त्रिका- ३४।७४
एकोनपदकोटीकं १०।९०
एकोनविंशतिर्दण्डास् ४।३१८
एकोनविंशतिर्लक्षा ४।१९८
एकोनविंशतिः षष्ट्यां ४।१६६
एकोपाध्यायशिष्याणां १७।६८
एको लाभान्तरा यस्य ३३।७१
एकोऽवतिष्ठते यत्र ६।१३५
एणीस्वरूपिणी स्तन्य- २९।४९
एत एव ह्युपन्यासा १९।२५८
एतावदत्र कार्यं तु ५०।९९
एतावतैव पर्याप्तं २।१२
एतावानेव पुरुषो ५८।२८
एता विद्युत्कुमारीणां ५।७२७
एतास्तु दिक्कुमारीणां ५।७२४
एतास्तीर्थकरोत्पत्तौ ५।७०७
एतास्त्रयोदश ख्याताः ५६।१०९
एते जनपदाः सर्वे ११।७३
एतेषु तु विशुद्धेषु ६।७७
एतेषु विधयः कार्या ३४।१३०
एते स्वदारसन्तोष- ५८।१७५
एतैतेक्षणसाफल्य- ९।१५०
एतैरप्यष्टबालाग्रे ७।३९
एतैः सर्वैरयं द्वीपो ५।१२
एवमाद्यास्तथान्येऽपि १८।४
एवमाद्यानि चान्यानि २५।५०
एवमाद्येष्वतीतेषु ४५।२०
एवमस्त्विति नीत्वाऽसौ २२।१४८
एवमस्त्विति संत्रस्तां ४२।९१
एवमीशस्त्रिलोकेश ५९।२९
एवमुक्त्वा प्रजा यत्र ९।९६
एवमुक्त्वा निशान्ते सा १७।७८
एवमुक्त्वाऽवदत्कन्या ३१।३५
एवमन्योऽन्यसंसक्त- ५७।१०७
एवमेकातपत्रायां २५।१६
एवमेता बुधैर्ज्ञेया १९।१९९
एवं तु द्वादशैवेह १९।१९५
एवं दक्षः प्रजावाक्य १७।१४
एवं द्वादशवर्गीयैर् ५७।१६१
एवं नित्योत्सवानन्त- ५८।१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं वसन्ततिलकप्रचुर- १६।७९
एवंविधवचः श्रुत्वा २९।९
एवं सति सुखे दुःखं १९।२३
एवं समितयः पञ्च २।१२७
एष सोमप्रभो देवि १२।३९
एष यादवसंबन्धः २१।१७८
एषा चैवापरा भ्रान्ते ४।२५२
एषैवोक्ता विपश्चिद्भिर् ४।२५७
एषैव च तमिस्रेऽपि ४।२९०
एषैव हि झषे हीना ४।२८८
एषैवान्तरा वेद्या ४।२६७
एषैवावादि विद्वद्भिर् ४।२६२
एषोऽसौ गरुडव्यूहो ५०।१३३
एह्येहि कृष्ण योऽहं ते ६५।४५
एहि स्वागतमित्याह २२।१२९

[ऐ]

ऐन्द्रं दक्षिणमेतेषां ५।३५२
ऐन्द्राः कुम्भमहाम्भोदाः ८।१६६
ऐरा च विश्वसेनश्च ६०।१९७
ऐरावतं समारोप्य २।४०
ऐलेयः स्थापितो राजा १७।१९
ऐलेयाख्यमिलायां स १७।३
ऐशानधारितस्फीत- २।३८
ऐशानलोकपालस्य ५।६६५
ऐश्वर्यं रूढिशब्दस्य १७।१२६

[ओ]

ओषधीश्चापि विद्याश्च २२।७६

[क]

क एष भगवान् वंशो ३।१९२
ककुभोऽभासयद्यस्य १।८
कच्छश्चापि महाकच्छः १२।६८
कच्छाख्यविजयायाम ५।५४८
कच्छा सुकच्छा महाकच्छा ५।२४५
कच्छादिषु यथासंख्य- ५।५८
कटकैः कटिसूत्राद्यैः ११।१२२
कटिस्थकरयुग्मस्य ४।८
कठिनस्तनचक्राभ्यां ८।१७
कण्टकं कुण्डलं चापि ६२।८
कण्ठलग्ना रुदन्ती तं ५०।८९
कण्ठाश्लेषोचिताः पूर्वं ९।३१
कतिपयाहभवं वत किंपुनः ५५।९९
कतिचित्पूर्वजन्मानि ४६।४८
कथंचिद्यदि मोक्षः ४३।१४०
कथमपि कार्यसिद्धिमुप- ४९।४०
कथं नाथ जिनो भावी ३४।२
कथं वा मम पुत्रोऽस्य ३३।४४
कथं वा तापसि ! प्राप्तो २९।५४
कथितं मुनिना दिव्य- १९।८९
कथं द्वैविध्यमेतेषा- २३।३५
कथा पुनर्नवीभूता ४८।३७
कथेयं कुरुवीरस्य ४७।२०
कदम्बवनकुण्डेषु ६१।३६
कदम्बवनसंन्यस्तां ६१।५०
कदनं पाण्डुपुत्राणां १।१०८
कदलीनालिकेरेक्षु ५९।४४
कदाचित् षाडवीभूताः १९।१८६
कदाचित्सह सुप्तोऽसौ २४।७८
कदाचित्तु हृते मांसे २४।१५
कनकः कनकाभश्च ५।६४३
कनत्कनकदण्डानि ८।११३
कनत्कनकमालया ४७।१३७
कनत्कनकचित्रया ३८।३६
कनत्कनकसंकाशः ६०।५५५
कनिष्ठोऽत्राजयज्ज्येष्ठं ११।८२
कनीयान् जिनदत्तस्तां ६४।१२१
कनीयांसं महाकाले ३३।१०२
कन्दर्पस्य विजेतापि ४२।२१
कन्याया भ्रातरौ नाना २१।१७१
कन्यानन्यसमा तस्य १९।५५
कन्यार्थी च यशोऽर्थी च १९।१२६
कन्यादानकृतारम्भ- ४२।६५
कन्यां मदनवेगां च २४।८४
कन्याया मानसं प्रश्ने २२।११९
कन्याकूतविदूचे स ३४।२०
कन्याः पञ्चशतान्यत्र २४।९
कन्यासौ नृत्यगीतादि २१।४२
कन्यां तामपि दुर्गन्धां ६४।१२०
कन्यया हृतचित्तश्च १७।८
कपाटं पादघातेन ६१।८६
कपिलो वासुदेवोऽपि ५४।५६
कपिलं तत्र पुत्रं स्वं ३२।३१
कपिष्ठनामान्वयभूषणस् ६६।५
कमलकिसलयोद्यन् ३६।३६
कमलायास्तदा भर्त्ता ३३।१०३
करपदमुद्रिकाकटकनूपुर- ४९।११
करतलेन महीतलमुद्धरेज् ५५।८
करालब्रह्मदत्तेन २३।१५०
कराङ्गुलिस्पर्शसुखं स रासे ३५।६६
करिकटेषु युगच्छदगन्धिषु ५५।३८
करिणं निर्मदीकृत्य २४।४६
करीन्द्रमकरस्फुरत् ३८।७
करुणावानसौ योगी ४३।१४२
करेण कः स्पृशेदज्ञः ४०।१२
करोति सज्जनो यत्नं ६२।४६
कर्कोटकहृषीकेशौ ५२।३६
कर्णः सुदर्शनोद्याने ५२।८९
कर्णामृतमिवाकर्ण्य ४३।२८
कर्णान्तिरततासक्त- २।३४
कर्णचामरशङ्खाङ्कं ८।१४४
कर्णावक्षतकायस्य ८।१७६
कर्णे कथितमेतस्य ४७।७२
कर्तव्यं मम नास्तीति ३३।७७
कर्मस्थितिकमित्युक्तं १०।८६
कर्मभूमिगता मर्त्या ७।१०७
कर्मभूमि भवेनापि १२।२९
कर्मभूमिषु सर्वासु ६४।८९
कर्मारवी च संपूर्णा १९।१८२
कर्मणोऽष्टविधस्येवं ३।९९
कर्मक्षयसमुद्भूत १०।६
कर्मप्रकृतभावो हि ५६।८४
कर्मणोऽनुभवात्तस्मात् ५८।२९३
कर्मोदयवशोपात्त- ५८।२५०
कर्मगौरवदोषेण ६२।६२
कर्मोदयवशात्पापाद् ५८।८२
कर्मभूमिषु सर्वासु ३।१३२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्मत्वपरिणत्यात्म- ५८।२१३
कर्मास्रवाणां भेदोऽयं ५८।९१
कलहे प्रीतिसंयुक्ताः ६०।५५०
कलागुणविदग्धाभिस् १९।२७०
कलापारमिता रूप ३१।११
कलापारमितस्याम्ब २१।७१
कलागुणविदग्धानां १९।६
कलागुणान् प्रत्यहमेत्य ३५।६४
कलिङ्गराजस्य नृपस्य ६६।२
कल्याणपूजनमिनस्य १६।६९
कल्याणहेतवः प्राणा ४५।८५
कल्याणातिविशेषैः ३४।१२२
कल्याणैः परिवर्धमान- ६६।५३
कल्पितश्चतुरस्रोऽयं ३४।५३
कल्पस्ते द्वे तथार्यानां ७।६३
कल्पनच्युतपर्यन्तान् ६।१०५
कल्पौ लान्तवकापिष्टौ ६।३७
कवचैः खेटकैः खड्गैः ११।११७
कश्चिद्भवाब्धिदुःखोर्मि- १८।१२६
कश्चिन्महाकुलीनोऽपि ३१।५५
कषायकलुषो ह्यात्मा ५८।२०२
कषायतीव्रमन्दादि- ५८।२८८
कषायाः क्रोधमानौ च ५८।२३८
कषायप्रशमोद्भूतं ३।८७
कषायवशगः प्राणी ६१।१०२
कषायान्तमसौ कृत्वा ११।१०२
कष्टं ख्यातिमवाप्य १७।१६३
कस्तस्य तान् गुणानुद्धान् २।१५
कस्तां योजयितुं शक्तस् २।१८
कस्येदमटवीमध्ये ४७।८५
कस्येयं भगवत्कन्या ४२।४७
कंसः कलिन्दसेनायाः ३३।२६
कंसवाक्यमिति श्रुत्वा ३३।१४
कंसमञ्जूषिका ह्येषा ३३।२१
कंसं जामातरं हत्वा ५०।१४
कंसकोपमदपर्वता ६३।२७
क्व वार्धिजम्बूद्रुममण्डिता ५४।७५
क्व परदयापरः परमधर्म- ४९।३८
क्वचित्पुण्यफलप्राप्त्या ५७।८१
क्वचिच्चित्तंस्निग्धसुकृष्ण ३५।५१
क्वचिदालेख्यहृद्यानि ५७।८०
क्व चेदं सौकुमार्यं ते ८।२०३
क्वचित्सैंहं क्वचिच्चैभं ७।१००
क्रमयुतमवनत्या ३६।४९
क्रमात् शतसहस्रेषु १८।२१
क्रमणो मानुषाख्यस्तु ५।६०५
क्रमेण स द्वन्द्वयुगं प्रयातं ३५।७
क्रमेणाद्यन्तमध्येषु ३४।६२
क्रमेण क्षीयमाणेषु ७।१२३
काकन्दी पुष्पदन्तश्च ६०।१९०
काङ्क्षाख्यस्यमहाकाङ्क्षः ४।१५१
काक्षिनासारिकागर्ताः ११।७२
काकिण्यालाक्षणं कृत्वा ११।१०६
काञ्चनाख्यगुहायां तं २७।८४
का धियोऽपुण्यजन्मानः ५९।१०२
कान्ताविरहसंतापा ४३।२२०
कान्तया कुसुमावल्या ४६।९
कान्ता व्यन्तरदेवानां २।८०
कान्ता चारुमतिश्चारु २९।२५
कान्तारभिक्षया प्राण- ६५।२८
कान्तौ गरुडसेनौ द्वौ ३३।१३३
कान्दिशीकान् करोम्यद्य ३१।६५
कापिष्टाग्रेऽर्धरज्ज्वन्ते ४।२४
कामकरीन्द्र मृगेन्द्र नमस्ते ३९।१३
कामगेन विमानेन ३२।२१
कामदा कामवद्भूमिः ५९।३
कामदृष्टिर्गृहपती ११।२८
कामवृष्टि वशास्तेऽमी ११।१२३
कामदः कामदेवेन २९।१२
कामशाला विशालाः स्युः ५९।४९
कामदत्तो जिनागार- २९।१
कामदेवरतिप्रेक्षा २९।३
कामिनीप्रणयकेलि ६३।३८
कार्मुकाणि तु चत्वारि ४।२९९
कायवाङ्मनसयोग- ६३।८६
कायवाङ्मनसां कर्म ५८।५७
कायाज्ञादिसरन्येषां ५८।६३
कायेन्द्रियगुणस्थान- २।११६
कायोत्सर्गस्थितं साधु २७।८६
कायोत्सर्गेण षण्मासान् ९।१०१
कायोत्सर्गस्थितं रात्रौ ४३।१३७
कायोत्सर्गविधानेन २२।२५
कारयित्वा ततः पौरैः- ३२।३९
कारणं स्थिरभावस्य ५८।२७६
कार्यः स्वरान्तमार्गश्च १९।२४०
कार्तिक्यामन्यदा रात्रा- ३४।४६
कार्तिकासितपञ्चम्यां ६०।२६२
कालसंवरमानन्द्य ४३।२२६
कालमष्टादशाम्भोधि- ८।२१८
कालसंवरसंग्रामं १।१०२
कालभावविकल्पस्थं ५६।५२
कालश्चापि महाकालः ११।११०
कालस्त्रिभागशेषेण ६०।५४३
कालः पञ्चास्तिकायाश्च ४।५
कालकेशपुरं रम्यं २२।९८
कालं कृत्वा युवां जातौ ४३।१२०
कालस्वभावभेदेन ७।१४०
कालः कालहरस्याज्ञा ५९।८४
कालः पल्योपमाख्योऽसौ ७।५४
कालसंवरमुन्मुच्य ४७।८०
कालानतिक्रमादौ तु ६४।३८
कालागुरुकधूपेन ६०।१०७
कालातिपातिभिर्व्यर्थैः २२।१४७
कालिङ्गीं पूरणश्चार्वी १९।५
कालिन्दीस्निग्धनीलाम्बु १४।२
कालिन्दी तिलका कान्ता ३३।९९
काले तत्र मुनी व्योम्नस् ३४।१२
काले संप्रति साधूनां १८।१४०
काले विद्याधरास्तत्र २३।१४
काले पितृष्वसा तस्मिन् ४२।४९
काले स तत्र मुनि- १६।२८
काले तत्र हरिं प्राप्तो ४३।७४
काले तस्याभवच्चक्री १३।२७
कालेन तावता तेषां ७।९४
कालेन यावतैव स्याद् ७।१८
कालोदस्थाः प्रवेशेन ५।५७४
कालोदं पुष्करद्वीपः ५।५७६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालोदे दिशि निश्चेया ५।५६७
काव्यस्यान्तर्गतं लेपं १।४४
काशिकौशलकौशल्य- ३।३
काश्चिद्भूषास्त्रगाधाने ८।४९
कांचित्कालकलां तस्य १४।५१
का स्त्री का वा स्वसा १९।१०६
किंचिद्दूरे निवेश्यैकं १९।४६
किंचिदारक्तवस्त्रा २६।९
किं करोमि क्व गच्छामि ६२।४९
किं केनात्र महादानं २३।२८
किं भौगैरीदृशैः कृत्यं ४३।१८५
किं मेऽथवा प्रार्थनया ६६।४८
किं तत्र वर्ण्यते यत्र २।४
किमहो देवदण्डोऽस्य ४३।१८१
किमत्र ते स्वप्नफलं ३७।२६
किमत्र बहुनोक्तेन १७।७१
किमर्थं क्षेमवार्ता नो ५३।४
किमेतदित्यसौ ध्यात्वा ४३।५१
किमर्थमागतो भर्त्तः ४३।९५
कियदिदं जगतीपतिपौरुषं ५५।६४
कियन्तः समतिक्रान्ताः ३।१९३
किरन्नमृतदीधिति- ४२।१०१
किरातवेषभृत्पत्न्या ४६।१०
क्रियाविशालपूर्वस्य २।१००
क्रियासु स्थानपूर्वासु २।११७
क्रियाविशालपूर्वं तु १०।१२०
क्रियाणां भवहेतूनां ५८।३००
क्रियाधिकारिणीत्युक्ता ५८।६७
क्रियातश्चाक्रियातोऽन्या- १०।४७
किरीटं वरहारं च ४१।३३
किरीटसत्कुण्डलपूर्व- ३७।४३
क्लिष्टाः स्थावरकायेष्व- १२।४
कीचकः प्रथमस्तेषां ४६।२७
कीचकं शतसंख्यास्ते ४६।३९
कीचकानुजवृत्तान्ते ४७।१
कीर्त्तनं क्षत्रियादीनां १।७७
कीर्त्या लौकान्तिकैर्वाचः ९।७१
कीदृशं चरितं तस्य ४३।९८
क्रीडार्थमागतस्यास्य १२।२२
क्रीत्वा तत्र च कार्प्पासं २१।७६
क्रीडया स पुनर्जिग्ये ४८।१५
क्रीडापूर्वं गतो गेह- ४८।२२
कुकंसशङ्कां वहताग्रजेन ३५।७९
कुक्षेर्गोमक्षिकायाश्च २१।४७
कुचकलशकलत्रो ३६।६२
कुचानिव निजानिमा- ३८।३२
कुटजनीपकदम्बकदम्बकैः ५५।७८
कुटुम्बिनोर्जडप्रायो ३३।१५८
कुणिमः क्षणिकं मत्वा १७।२४
कुणिमश्च विदर्भेषु १७।२३
कुण्डलोज्ज्वलगण्डस्य ८।२६
कुतस्त्योऽयं नृमांसादः २४।१०
कुतीर्थध्वान्तमुद्धूय १।१४
कुतुपेषु यथास्थानं २२।१४
कुतो हेतोरयं लोको २३।२
कुतोऽपवर्तते नाथ २०।२८
कुदेवपाषाणमयातिवर्षै- ३५।४८
कुन्थुर्वैशाखमासस्य ६०।१७७
कुन्थोर्माण्डलिकत्वे तु ६०।५०६
कुन्थोः षष्टिसहस्राणि ६०।४३७
कुन्तक्रकचशूलाद्यैर् ४।३६३
कुन्ती च द्रौपदी देवी ६४।१४४
कुन्ती मद्री च कन्ये द्वे १८।१५
कुन्ती पप्रच्छ तां प्रीत्या ४५।७७
कुन्ती गतिवशेनैते ४५।६१
कुन्ती निष्णातसंबन्ध- ५०।८८
कुन्त्यधीनतनया ६३।५६
कुन्त्यग्रेण वितीर्णभैक्ष- ६४।१४६
कुपूतना पूतनभूतमूर्तिः ३५।४२
कुपात्रदानतो भूत्वा ७।११५
कुम्भकण्टकनामायं २१।१२३
कुमुदा नलिनी पद्मा ५७।३४
कुमारकालः कृष्णस्य ६०।५३२
कुमारस्य गजाख्यस्य १।११६
कुमारदेवसंज्ञोऽहं ४६।५१
कुमारः स्वरभेदेन ३१।११३
कुमारः क्रीडितं चक्रे ९।४
कुमाराणां जिनानां तु ६०।३३२
कुमारश्रमणस्याथ ६१।५
कुमारी त्वद्गतप्राणा ३२।१४
कुमारोऽपि शिवादेव्याः १९।४०
कुमारौ चारुदत्तोऽयं २१।१२६
कुमारयोस्तयोस्तत्र ३१।८४
कुमार्यावेव वैराग्यात् २१।१३३
कुम्भैर्निरन्तरारावैर् ८।१६५
कुयोन्यशोतिलक्षासु १८।५६
कुरवः कुरुदेशेशा ९।४४
कुरु धर्मोपदेशं यो २८।१२
कुरु कन्ये गुणं कण्ठे ३१।३३
कुरुजाङ्गलदेशस्य ४५।६
कुरुते भूपतिं नाभिः २३।७४
कुरुणामीश्वरः पुत्र ५०।९३
कुरुजाङ्गलपञ्चाल- ११।६४
कुर्वाणश्चन्द्रसंकाशाश् ९।६४
कुर्वन्निर्नामिकस्तीव्रं ३३।१६६
कुर्वन्तु व्याख्यानमनन्य- ६६।४२
कुर्यादत्र हि संचारं १९।२४७
कुलमुवाह विवाहविधो- ।१५।२८
कुलमानधरा धीरा ५०।१०९
कुलक्रमागता तेषां ४०।३९
कुलशैलनितम्बेषु १२।२८
कुलालेनेव चान्येन ३।९८
कुलिशकठिनमुष्टिं ३६।४२
कुलीनानां समाजेऽस्मिन् ३१।५०
कुशलं नाथ युष्माकं २१।११६
कुशलाचरणाचार- ५८।१०४
कुशली चारुदत्तात्र २१।११५
कुसुमभारभृता प्रणताभृशं ५५।३९
कूर्चप्रारोहिणस्तत्र १७।९०
कूटं वैश्रवणाख्यं तु ५।५५
कूटं च लोहिताक्षं च २।२१८
कूटान्येकादशैवाग्रे ५।१०५
कूटानां सप्तशत्यासु ५७।१३१
कूष्माण्डगणमाता च २२।६४
कृतरणं परिभूय पुरः ४४।५२
कृतज्ञः कृतदोषेषु ४०।७
कृतमण्डनमारूढो १४।२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृतदोषेष्वपि प्रायः ५४।४९
कृतवतोऽपकृतिं विषमां १५।४६
कृतसाहाय्यकः संख्ये ३१।१३६
कृतप्रणतिरध्यास्य ५०।४०
कृतरूपपरावर्तिः २४।६५
कृतपूजाः सुरैरिन्द्राः ५८।३११
कृतः सामन्तसंघातैर् २।१४९
कृतस्मरणया देवि ! २९।६५
कृतकृष्णवचा भामां ४३।१७
कृततीर्थोदकस्नानः ११।४२
कृतसंकेतया पूर्वं २१।५४
कृतककोपविकार- १५।५९
कृततापसधर्मस्य ३३।६९
कृतपरिष्वजनः स्वजनैः ५५।७१
कृतपद्मोदयोद्योता १।३४
कृतार्थं पूज्य ते जन्म ४७।९
कृतिश्च वेदनास्पर्शः १०।८२
कृतावधानस्तत्सिद्धिं ५७।१२४
कृताभ्यां कर्णयोरीशः ८।१७७
कृताष्टापदकैलासा १३।२९
कृते दायादवर्गेण ४७।६
कृताञ्जलिपुटाभ्यां स ६१।६१
कृताञ्जलिपुटस्तोत्र- ४३।९१
कृताणुव्रतदीक्षश्च २१।१२
कृतेषु व्रणभङ्गेषु ५३।२
कृतोचितकथस्तत्र ४२।७०
कृतोऽभिवादने तेन १७।६२
कृत्वा सनत्कुमारेन्द्र ६०।८४
कृत्वा नेमिजिनेन्द्राय ६२।५७
कृत्वा शासनवात्सल्य- २०।६२
कृत्वा जिनमहं खेटाः २६।३
कृत्वामराश्च जिननिष्क्रमणं १६।५८
कृत्वा चात्र भवे भव्ये ६०।४०
कृत्रिमाकृत्रिमेभ्यश्च २२।४०
कृपया स मयात्रायं २८।२४
कृपास्नेहवशात्प्राप्ता २९।४८
कृम्यादिद्वीन्द्रियेष्वेके ३।१२२
कृशैस्तु चिबुकैर्दीर्घैर् २३।९७
कृष्णवर्णैर्हयैर्युक्तो ५२।८
कृष्णदक्षिणपार्श्वे त्व- ५२।७
कृष्णं भीष्मसुताचित्त- ४२।४४
कृष्णकोटिशिलोत्क्षेपं १।११०
कृष्णस्य पुण्यसामर्थ्यं ४०।१०
कृष्णस्य मार्गशीर्षस्य ६०।२३१
कृष्णा नीलाश्च रक्ताश्च ६।९७
कृष्णा कृष्णपदं नत्वा ५४।५२
कृष्णा नीला च कापोता ६।१०८
कृष्णोऽपि च यथोद्दिष्टां ६२।२७
कृष्णाजिनधरास्त्वेते २६।१८
कृष्णेनाभिमुखीभूता ५२।४५
केचित् संख्येयविस्तारा ४।१७०
केचिद् द्वित्रिभवाश्चान्ये ३।१७३
केचित् पूर्वभवाभ्यस्त- ३।१७४
केच्चिच्चरमदेहास्तु ६१।९२
केचिदूचुर्जनास्तत्र १७।११
केचित् निरन्वयध्वस्त- ९।११०
केचिद् वस्त्राणि चित्राणि ९।१५२
केतुमाली महामाली ५२।४०
केदाराकृतयः केचित् ४।३९४
केनापि हेतुना कोऽपि २८।७
केनायं पूरितः शङ्खो ५४।५७
केवलं कायसन्तापं ३३।६५
केवलैव तु लक्षैका ४।२१७
केवलस्य प्रभावेण २।६०
केवलिश्रुतसंघेषु ५८।९६
केशकुण्डलसंघातं २।५३
केशवेन वितीर्णं मे ४७।९४
केशकुन्तलभारोऽभान् ९।११
केशरीह्रदतः सीता ५।१३४
कैटभश्च तदा च्युत्वा ४८।४
कैटभोऽपि दिवश्च्युत्वा ४३।२१८
कैकेयात्रेयकाम्बोज- ३।५
कैशिकी चेति विज्ञेया १५।१८५
कोऽयं रम्यतमो देशः ६५।४०
कोकिलाकलकण्ठीनां १४।२५
कोऽत्र कस्य बहि- ६३।६९
कोटीकोट्यो दशामीषां ७।५१
कोटीकोटी च लक्षाश्च १८।६३
कोटीलक्षास्तु पञ्चाशत् ६०।४६७
कोटी तु परिधिर्लक्षा ६।१३०
कोटीकोट्यो दशामीषां ७।५५
कोटीकोट्यो दशैतासां ७।५६
कोटीकोट्यश्चतस्रश्च ७।६०
कोटी तु परिधिर्लक्षा ५।५९४
कोटीनामेकलक्षा स्यात् ५।५६०
कोटीभागसहस्रं स ७।१६८
कोटीभागं सहस्रं तु ७।१६४
कोटीभागं स पल्यस्य ७।१५७, १५९, १६१, १६३
कोटीशतं त्रिषष्ट्यग्र- ५।६४७
कोटीशतानि सप्त स्युः ५।६
कोटी च दशलक्षाश्च १०।११३
कोट्यः षड्विंशतिर्यस्मिन् १०।११५
कोट्यो यत्र कुमाराणां ५०।२६
कोट्यश्चैव चतुस्त्रिंशत् १०।२४
कोट्यः षड्विंशतिर्यत्र १०।१०८
कोट्यस्तिस्रोऽर्द्धकोटी च ८।२३५
कोऽभिप्रायः प्रभोरस्य ९।११७
कोऽवधीत् कामधेन्वर्थं २५।९
क्रोधमानमहामाया ३।११९
क्रोधानुबन्धमित्येकं २८।४८
क्रोधाद्धम्मिल्लपूर्वेण २७।६९
क्रोधाधिक्यात्ततो दध्रे ६१।५६
क्रोधावेशवशात्प्रादुर् ५८।६६
क्रोधाद्यभ्यन्तरोपाधेः ६४।४९
क्रोधान्धेन विधेर्वशेन ६१।१०८
क्रोशार्द्धं मृत्तिकागन्धः ४।३४२
क्रोशः सार्धस्तु वंशायाम् ४।२१९
क्रोशद्वादशभागाश्च ४।२२६
क्रोशस्य सप्तमो भागस् ६।१४
कौतुकात्करपद्माभ्यां ४३।९३
कौन्तेयानां कृतातिथ्या- ४५।७६
कौमारं पतिमुज्झित्वा २१।६८
कौमार्यं त्रिशती पञ्च ६०।५२६
कौमार्ये मण्डलेशत्वे ६०।४९३
कौरवाय पुरैवाहं ४५।८०
कौरवान्वयसंभूतो २५।८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कौशाम्बवनसुप्तस्य ६१।२४
कौशाम्बीधरणश्चित्रा ६०।१८७
कौशिकीनां च विद्यानां २२।७८
कौशिकायात्र तैस्तस्यां २९।३१
कौस्तुभः कौस्तुभासश्च ५।४६०
क्षत्रियाः क्षतितस्त्राणात् ९।३९
क्षत्रियैर्बहुभिर्युक्तो ५२।२५
क्षत्रियेषु तथान्येषु २५।१०
क्षम्यतां यक्ष! दोषोऽय-४३।१४३
क्षम्यतां क्षम्यतां सौम्ये ५४।४७
क्षम्यतां क्षम्यतां मूढैः ६१।६४
क्षयोपशमभावे च १०।१४४
क्षयोपशमसापेक्षं १०।१४६
क्षारोष्णतीव्रसद्भाव- ४।३६६
क्षितिभृतः क्षितितः ५५।११०
क्षितेः क्षितीश्वरोत्क्षिप्तां ९।८८
क्षितेरसुरनागविद्यु- ३८।१७
क्षिप्तमस्मात्प्रदेशात्त्वं २२।१९
क्षिप चक्रं किमर्थं त्वं ५२।७७
क्षिप्रमुत्क्षिप्य बाहुभ्यां ४७।१२६
क्षिप्रं चिक्षेप चाग्नेय- २५।६६
क्षिप्रं क्षिप्रं निरस्या सा २५।६९
क्षुत्पिपासार्तिहरणं २१।१००
क्षुत्पीडिता जनास्तत्र ६०।११४
क्षुभिताः पूर्वमेवासन् ३१।५९
क्षुभिताम्भोधिगम्भीरां ८।१५७
क्षुभितमभिपतन्तं ३६।४६
क्षुल्लकः पुष्पदन्तस्तं २०।२७
क्षुल्लकं हिमवत्कूटं ११।४३
क्षेत्रपर्वतनद्याद्या ५।१६५
क्षेत्रकालादिभिः सिद्धाः६ ४।८७
क्षेत्रस्याद्यस्य विस्तारः ५।१७
क्षेत्राद् द्विगुणविस्तारः ५।१९
क्षेत्राणि सन्ति सप्तात्र ५।८
क्षेत्राणि भरतादीनि ५।४९६
क्षेत्रान्तरहृतां मत्वा ५४।३१
क्षेत्राणां च भवेच्छेदो ५।५०१
क्षेत्रादिभेदभिन्नानां ६४।१०३
क्षेमं यदि नृपैस्तेभ्यो ५४।२४
क्षेमा क्षेमपुरी ख्याता ५।२५७
क्षेमन्धरः स मत्वार्थ- ७।१५३
क्षीरेक्षुरसधारौघैर् २२।२१
क्षीणार्थोऽपि पयोधि- २१।१८६
क्षीरस्रावित्वमक्षीण ३४।६५
क्षीरापूर्णाः सुरैः क्षिप्ताः ८।१६४
क्षीरोदान्या च सीतोदा ५।२४१

[ख]

खगरावखराराव- ६२।१६
खचरदेवनृपामरजन्मजं ५५।५८
खड्गदीप्रकरः सोऽयं ३३।१११
खड्गखेटकहस्तं तं ५१।३९
खड्गाङ्गारकपौण्ड्राश्च ११।६८
खण्डस्वप्नानिमान् दृष्ट्वा ८।७५
खरभागं नवानां तु ४।५१
खरनखरकठोरौ ३६।४१
खावतीर्णाभिनन्द्यैका ३२।१२
खाष्टाष्टचतुरस्त्यक्षी- ५७।१३५
खे मातङ्गनिकायस्य २५।५४
खेचराणां निकायस्य २५।५३
खेचराः स्थापयाञ्चक्रुस्२७।१३३
खेटो दधिमुखः शौरि ३१।६७
खेटेऽस्यैवात्र लाभोऽस्ति१९।११२
ख्यातं कर्कशनामैकं ५८।२५७

[ग]

गर्भाधानात्पूर्वमर्वाक् प्रसूते३५।८०
गङ्गश्च गङ्गदत्तश्च ३३।१४३
गङ्गा पूर्वेण पद्मस्य ५।१३२
गङ्गा सिन्धुश्च रोह्या च५।१२३
गङ्गादेवी विदित्वा तं ११।५१
गङ्गानुकूलमागत्य ११।३
गङ्गा चैव नदी रोह्या ५।१६०
गङ्गाद्वारगतामङ्ग- ४४।७
गङ्गासिन्धू प्रतिक्षेत्रं ५।२६७
गङ्गाकूटं श्रियः कूटं ५।५४
गङ्गासिन्धुमहानद्योर् ७।१२४
गङ्गाद्या देवकीगर्भे ३३।१६८
गच्छत्वमादितो वार्तां ६२।५३
गच्छन्मार्गवशात्क्वापि १९।६०
गजकाननरम्यस्य ४०।२६
गजकर्णाश्वकर्णानां ५।५६९
गजाः गजैः समं लग्नास् ५१।१६
गजाश्वरथसंघट्ट- ८।१३३
गच्छतस्तावसंख्येय- ६४।८२
गजाश्वरथपादातं २५।६१
गणश्च शुचिशोचिषां ३८।१९
गणी भद्रबलो नन्दी १२।६९
गणी महेन्द्रदत्तश्च १२।६६
गण्युवाच वचो गण्यः ४२।१३
गण्डस्थलमदामोद- २।३३
गणिकां बुद्धिसेनाख्यां २७।१०१
गणे स्थविरसन्तान- ६४।४३
गण्याह कुरु राजाना- ४५।४
गतस्य चिह्नमात्रेण ५४।६०
गतनिगलकलङ्क- ३६।५१
गतो राजसमीपेऽसौ ३३।५२
गताः केवलिनं नत्वा २८।५०
गताः क्रमेण ते धीराः ४६।१४
गता मानसवेगस्य ३०।८
गता सा शोकिनी बुद्ध्वा १७।४७
गतिस्थित्योर्निमित्तं तौ ५८।५४
गतिस्थित्यवगाहानां ७।२
गतियुद्धे जितास्तेऽपि ३४।३२
गतिरोधकरो बन्धो ५८।१६४
गतिष्वेकीगतार्था सा ५८।२४५
गत्वा मातङ्गवेषेण ४८।१२
गत्वा योजनलक्षाः स्युर् ५।६५५
गत्वासौ स समारुह्य ३३।९
गत्वा वध्यः स्वयं प्राप्तः २५।५२
गत्वा हिमगिरिं हत्वा ४४।४८
गत्वा निपुणमत्या च २७।३७
गत्वा पञ्चशतीमूर्ध्वं ५।२९०
गत्वा स विजयार्धाद्रिं ५३।११
गत्वागत्याशु दूतस्तं ४४।२१
गत्वा पञ्चशतीं दिक्षु ५।४७७
गते शौरौ यथास्थानं २४।४९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गतोऽन्नपानमानेतुं ६२।५
गतो मातलिरापृच्छच ५२।९१
गतो रहसि निःशङ्को २९।३९
गत्वैकानुचरो मन्त्र- १९।४५
गन्तव्यं यत्र ते नाम ४६।४
गदति स्म ततस्तस्मै ३।१८५
गदां कुमुद्वतीं शक्तिं ४१।३४
गदासिचक्राङ्कुशशङ्खपद्म-३५।३५
गन्धमाल्यान्नपानादि ५८।१५५
गन्धर्वादिकलापारं १९।५६
गन्धर्व इव देवोऽसौ १९।२६७
गन्धपुष्पादिभिर्दिव्यैः ६५।१२
गन्धयुक्तिविशेषेण ४६।२९
गन्धवाहो वहद्गन्धं ५९।८७
गन्धावतीसरित्तीरे ६०।१६
गन्धाम्बुवर्षमृदु- १६।१५
गभीरगिरिराजनाभि- ३८।१२
गम्भीरः स्तम्भमूर्तिः ५६।३२
गरुत्मान् वेणुदारी च ५२।३९
गर्भप्रभृतिरौद्रं तं ३३।८९
गर्भस्थोऽपि सुतोऽत्युग्रः ३३।२३
गर्भस्थेऽपि पिता तस्मिन् १८।१२८
गर्भाधानात् ३३।८०
गर्भेश्वरोऽहमन्येषा- ५२।७३
गवाश्वमणिमुक्तादौ ५८।१३३
गवेषयामि तल्लोके ४३।७२
गवाश्वमहिषादीनां ७।१०१
गवाक्षगेहजालानि ५।३६६
गव्यूतिद्वितयं सार्धं ४।३५६
गोष्ठे गोपवधूधूत- २३।२५
गाढाश्चार्द्धतृतीयं ते ५।६७४
गाढाकल्पकशल्याय २१।२६
गाढमोहोदयात्तस्याः ४७।५१
गान्धारसप्तमोपेतं १९।२३२
गान्धारस्य विशेषेण १९।२५७
गान्धारश्च तथा न्यासः १९।२५१
गान्धारषड्जयोश्चात्र १९।२३८
गान्धारश्च भवेन्न्यासो १९।२२७
गान्धारः सिन्धुसौवीर- ११।६७
गान्धारपञ्चमी चैव १९।१८८
गान्धारी रक्तगान्धारी १९।१९१
गान्धारसप्तमापेतं १९।२४२
गान्धारी मध्यमा चैव १९।१७६
गान्धार्याः पञ्चधैवांशा १९।२३४
गान्धारो रक्तगान्धार्या १९।२१३
गान्धारोदीच्यवायाश्च १९।२०८
गान्धारोदीच्यवायास्तु १९।२३९
गान्धारोऽत्र भवेन्न्यासो १९।२३५
गारुडं रथमारूढस् ५१।१०
गिरस्ता मरुतां श्रुत्वा ५३।२०
गिरिमितः सहिताम- ५५।११३
गिरिव्याससमायामे ५।२६८
गिरिशिलातपयोग- ५५।८०
गीयमानं नरैः श्रुत्वा २६।२९
गुणवतान्यपि त्रीणि ५८।१४३
गुणशिक्षाव्रतस्थाना- २३।४३
गुणितं पञ्च सप्तत्या ५।६३६
गुरुः सुभद्रो जय- ६६।२४
गुरुपूर्वक्रमादर्थात् १७।११७
गुरुर्धनरथाभिख्यः ६०।१६२
गुरुराहावधिज्ञान- ४३।१५३
गुणवत्साधुजनानां ३४।१४०
गुणवत्यार्यिका पार्श्वे २७।८२
गुप्तिश्च त्रिविधा प्रोक्ता १८।४४
गुप्तेन्द्रियकलापस्य ४६।४५
गुरुवाक्यामृतं मन्त्रं २१।६३
गुरुनितम्बघनस्तनभारिणीं ५५।२१
गुरोर्महेन्द्रसेनाच्च ४३।१५०
गुर्वादेशाच्च संघोऽपि २०।९
गुल्मगूढवपुर्गाढ- ६२।३३
गुह्यकाश्चित्रपत्राणि ५९।४३
गूढश्रीः कृतसल्लापस् ३३।११६
गूढवृत्तिभिरनश् ६३।९७
गूढगर्भा महादेवी ४३।५९
गूयते शब्द्यते गो- ५८।२१८
गोगजाश्वादिभस्त्राभा- ४।३४८
गोतमो नामतो द्वीपो ५।४७०
गोतमोऽत्रान्तरे पृष्टः २७।१
गोतमाख्यः सुरो वार्द्धिं ४१।१७
गोत्रस्योच्चैश्च नीचैश्च ५८।२०९
गोत्रमुच्चैश्च नीचैश्च ५८।२७९
गोत्राख्यया तु ताः ख्याता ४।४६
गोधैका रसपानाय २१।९२
गोपुराणां तु मध्ये स्याद्-५।४०३
गोपुरेण समो मानैः ५।४०५
गोभूकन्याहिरण्यादि ६०।१३
गौतमश्रेणिकप्रश्ने १।७६
गौतमं च समासाद्य २।१४०
गौतमेनेन्द्रवचनात् १।९९
गौरीनामाभवत्तस्यां ४४।३४
गौरवातिशयाधानी ८।१००
गौरीगृहसमीपे च ४४।४४
गौरीणां गौरिका वेद्या २२।७७
ग्रैवेयकपरास्तेऽन्ये ५७।१००
ग्रैवेयकास्त्रिधैव स्यु- ६।३९
गृहद्वीपसमुद्राणां ५।११९
गृहपत्यात्मजा यासौ ६०।४४
गृहमरण्यमरण्यतृणोदकं ५५।८९
गृहार्थमन्नमत्यल्पं १९।२१
गृहं सीधुगृहोऽत्यर्थं ३३।१९
गृहीतरत्नत्रयभूषणा पुरा १०।१६१
गृहाश्रमी श्रावकमुख्य- १०।१६३
गृहाण गृहिणीत्यक्त- २९।५३
गृहाण कलशं लघु ३८।५०
गृहिश्रमणसंघाते ६४।४४
गृहीतबहुविग्रहः ३८।४८
गृहीतचामरच्छत्रैः ९।८६
गृहीत्वा करपद्माभ्यां २।३१
गृहीत्वान्याः स्वभार्याः स ३२।३६
गृहीत्वा करुणोपेतः ४३।५३
गृह्यतां गृह्यतां काम्यं ५९।२
ग्रन्थार्थयोः प्रदानं हि ६४।४६
ग्रन्थितेन सुरस्त्रीभिर् ८।१९१
ग्रामस्यास्यैव सीमान्ते ४३।११५
ग्रामारण्यखलैकान्तै ३४।१०२
ग्रामादीनां प्रदेशस्य ५८।१४५
ग्रामेऽभूत्शाल्मलीखण्डे ६०।१०९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रहस्तु सर्वजातीनां १९।२०४
ग्रहाद्यंशाश्च चत्वारस् १९।२११
ग्रहोरगा भूतपिशाच- ६६।४५
ग्रहोपन्यासविन्यास- १९।२०१
ग्रीष्मोग्रतापपरुष- ६२।१७

[घ]

घटिकाकलनिर्ह्रादी ५९।५३
घटीयन्त्रघटीजाले ४३।१२७
घटोघ्न्यो घटपूर हि १९।२०
घण्टारावोरुसिंह- ५६।११४
घण्टारत्नमहाघोषः ८।१२१
घनघनाघनगर्जिततर्जिता ५५।७९
घननिनादतताम्बरमम्बुजं ५५।६१
घननिवहविघाताद् ३६।२
घनोदधिरिमं लोकं ४।३३
घाटस्य विंशतिर्लक्षा ४।१८८
घाटे त्वेकादश प्राज्ञैर् ४।३१०
घातयित्वा बहून् जीवान् २३।१४५
घूर्णमानमुदीर्णोग्र- ४१।४
घूर्मिता मृदुवातेन ८।८६
घृतक्षीरादिवृष्यात्य- ६४।२४
घोषणां कारयाञ्चक्रे ६१।३४
घोरमुद्गरघातेव २५।६०
घ्राणेन्द्रियप्रियसुगन्धि- १६।४१
घ्नतोऽस्य घनवैरेण २७।१२४

[च]

चक्रव्यूहं विदित्वा तं ५०।११२
चक्रव्यूहस्तदा दक्षै- ५०।१११
चक्रस्यारसहस्रे हि ५०।१०३
चक्रवाकवलाकौ- ८।१३९
चक्रहस्तं हरिं दृष्ट्वा ५२।६९
चक्रविक्रमसंभार- ५२।७०
चक्रवर्तिनमुत्पन्नं ११।९
चक्ररत्नानुमार्गं स ११।१८
चक्रच्छत्रासिदण्डास्ते ११।१०८
चक्रवर्ति श्रियो भर्ता १८।२९
चक्रवर्ती चमूं मूले ११।४१
चक्रवर्ती च तद्धेतोः २०।१४
चक्रवर्त्यपि संप्राप्तः ११।७९
चक्रतुस्तौ तपो घोरं ४३।२०५
चक्रव्यूहव्यपोहार्थं १।१०६
चक्रं सुदर्शनमदृष्टमुख ५३।४९
चक्रायुधः श्रियं न्यस्य २७।९३
चक्रायुधाभिधानस्य २७।९०
चक्रिणौ भरताद्यौ द्वौ ६०।३२६
चक्रिणा रुध्यमानोऽपि १२।४९
चक्री पूर्वधरः पूर्वो ६०।१५६
चक्रे सुदर्शनेऽयोध्या ११।५७
चक्रे कुरवको यूनां १४।१६
चक्रे व्याधिविनाशाय २३।१३८
चक्रोत्पत्ति तदा विष्णो १।१०९
चक्षुर्मसूरमन्वेति १८।८७
चक्षुषोऽचक्षुषो दृष्टे ५८।२२६
चक्षुरादीन्द्रियस्थान- ५८।२४९
चक्षुर्गोचरजीवौघान् २।१२२
चक्षुष्मांश्च यशस्वी च ७।१७४
चचार गुरुसन्देशा- १८।१३४
चचार मृगसामान्यं ६१।३२
चचार खचरीसखः २३।१५४
चण्डगाण्डीवकोदण्ड- ४५।१२७
चण्डवेगस्ततस्तस्मै २५।४६
चतस्रः प्रतिमास्तेषु ५।४२५
चतस्रस्तत्सुताः कन्या ४४।४१
चतस्रः षट्स्वरा ह्येता १९।१८३
चतस्रः षट्स्वराश्चान्याः १९।१८१
चतस्रस्तुर्यरज्ज्वन्ते ४।१९
चतस्रो विदिता लक्षाः ६०।४३३
चतसृष्वात्मरक्षाणां ५।३४२
चतुःशतानि नेमेस्तु ६०।४२४
चतुःषष्टिर्महादिक्षु ४।१२९
चतुर्विंशं शतं दिक्षु ४।११०
चतुरङ्गबलं तस्य ५४।४२
चतुर्विंशतिरन्ध्रस्थ- ४।१४१
चतुर्विंशतिलक्षाश्च ४।११७
चतुर्भिश्च शतं दिक्षु ४।११५
चतुर्णवतिरेव स्युस् ६।७०
चतुर्विंशति संख्यानि ६।५८
चतुःपञ्चाशदेवातः ६०।४७०
चतुःशत्या सहस्रं तु ६०।४२८
चतुःषष्टिः स्मृता लक्षा ४।६०
चतुःषष्ट्या शतं दिक्षु ४।९७
चतुःषष्टिशतान्येव ४।२२७
चतुःषष्टिश्च षट्त्रिंशत् ४।२३८
चतुर्दशविधं यस्याः ८।३५
चतुर्दशस्वहिंसार्थं ३४।१००
चतुर्दशविधं पूर्वं १०।७२
चतुर्दशप्रकारं स्याद् १०।१२५
चतुर्दश सहस्रैस्तु ५।१४९
चतुर्दश गुहाद्वार- ५।५९६
चतुर्दशसहस्राणि ५।२७५
चतुर्दशसहस्राणि ५।४१
चतुर्दशदिनान्यद्य ६०।२८१
चतुर्दश विनिर्गत्य ५।१२२
चतुर्दशमहारत्नैर् ११।१०३
चतुर्दशमहारत्न- ११।१०९
चतुर्दशसहस्राणि ४।६२
चतुर्विंशतिलक्षास्तु ४।१९३
चतुर्विंशतिरन्तःस्थास् ५।५७५
चतुर्विंशतिसंख्यात- ६०।२४४
चतुर्विंशतिरस्याद्रेः ५।४७
चतुर्विंशति चापानि ४।३२१
चतुर्विंशति तीर्थेश- १२।२
चतुस्त्रिंशत्ततो लक्षः ४।१८३
चतुस्त्रिंशदतो लक्षा ४।१८२
चतुःषष्टिगुणोत्कृष्टा- ८।३०
चतुःषष्टिसहस्रैर्यत् १०।३०
चतुःशती तपस्तस्य ६०।५१५
चतुःशतानि तत्रान्ये ५९।१२९
चतुःशतानि जेतारो ३।४९
चतुर्दिक् सिद्धरूपाढ्यं ५७।५३
चतुर्दिक्षु नगस्योर्द्ध्वं ५।७२८
चतुर्दिक्षु चतुःषष्टि ३।३३
चतुर्णिकायदेवेषु २७।९
चतुर्णिकायदेवैः स २८।२९
चतुर्णिकायामरखेचरा ६६।१३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुःसहस्रगणनाः ६०।३५९
चतुःसहस्रसंख्यानैर् ६०।३५१
चतुःसहस्रसंख्याताः ३४।४८
चतुःश्रुतिश्च विज्ञेयो १९।१५८
चतुरङ्गबलं तच्च ४०।३०
चतुरङ्गबलेशानां ५०।३४
चतुरङ्गमहासेनो ११।२
चतुरङ्गं ततः सैन्यं ६२।१२
चतुरङ्गबलं कालः ५२।७१
चतुरङ्गेण तेनाशु ३१।७२
चतुर्विधस्य निःशेष- ३।७०
चतुर्वर्गे हि देहिभ्यो ५६।८३
चतुर्णां लोकपालानां १२।९
चतुर्णामपि तेषां स्यात् ५।४५२
चतुर्विधसुरासुरा- ३८।३८
चतुर्विधामराकीर्ण- ६४।२
चतुर्विधं शुभं बाह्यं ७।८४
चतुर्थकालेऽर्धचतुर्थ- ६६।१६
चतुर्थी च चतुर्वारान् ४।३७६
चतुर्थकानि यत्र स्युश् ३४।६७
चतुर्थ्यां चैत्रकृष्णस्य ६०।२५९
चतुर्थेभ्योऽर्द्धहीनाश्च ५।४०९
चतुर्धा विनयः पूज्येष्वा- ६४।२९
चतुर्भिः समयैः कृत्वा ५६।७५
चतुर्भिरधिकाशीतिः ६०।३५२
चतुर्विधेषु देवेषु ७।१३३
चतुर्धातिक्षयाच्चास्य ९।२१०
चतुष्कषाया नव नोक- ३४।१०४
चतुराहारहानं यत् ५८।१५४
चतुराशामुखद्वार- २।६५
चतुर्नवतिसंख्यानि ५।८२
चतुर्देवनिकायाश्च ९।२११
चतुःपञ्चाशता सार्ध- १८।९०
चतुरस्रानुयोगानां ५८।४
चतुर्गुणस्तु विस्तारो ५।४८५
चतुर्योजनहीनं तु ५।३९६
चतुःशिरस्त्रिद्विनतं १०।१३३
चतुर्भूतसमूहेऽस्मिन् २८।३४
चतुर्गतिमहादुर्गे ९।६६
चतुश्चतुर्थान्वितषष्टकेन ३४।८६
चतुर्भिः पञ्चमश्चैव १९।१५७
चतुःसप्ततिसंख्यानि ५।१५६
चतुर्दिग्गोपुरद्वार- ५७।७२
चत्वारः स्युर्मनोयोगा ५८।१९७
चत्वारः खलु को- ४।३००
चत्वारोऽपि च ते दिक्षु ५।३१८
चत्वारोऽनन्तरं तस्य ५।१८४
चत्वारो मन्त्रिणस्तस्य २०।४
चत्वारि च सहस्राणि ५।२९६
चत्वारि च गिरिर्द्वे च ५।१४४
चत्वारि च ततो गत्वा ६।५
चत्वारि स्युः सहस्राणि ६।६७
चत्वारि षट् चत्वारि ६०।४०८
चत्वारिंशत्सहस्रैश्च १०।२९
चत्वारिंशसमुद्विद्धा ५।३०२
चत्वारिंशच्च चत्वारः ५।५५९
चत्वारिंशत्सहस्राणि ५९।१३२
चत्वारिंशच्चतुर्लक्षास् १०।१४२
चत्वारिंशत्सहस्राणि ५।५८०
चत्वारिंशत्पुरूढानां ६०।४८९
चत्वारिंशच्चतुर्भिश्च ४।३२८
चत्वारिंशत्सहस्राणि ६०।४३९
चत्वारिंशत्तथा त्रिंशद् ६०।३१३
चत्वारिंशदथोक्तानि ६०।३०८
चत्वारिंशत्तथा तारे ४।३२७
चत्वारिंशत्तथैकं च ६।७१
चत्वारिंशच्चतुर्युक्ता ६०।४७८
चत्वारिंशच्च वर्षाणि ६०।५२९
चत्वारिंशच्च लक्षा- ४।१७५
चत्वारिंशत्ससंभ्रान्ते ४।१७६
चत्वारिंशत्सहाष्टाभिर् ४।२३५
चत्वारिंशत्सहाष्टाभिर् ४।३७
चत्वारिंशं शतं दिक्षु ४।१०१
चत्वारिंशत्तु पञ्चाग्रा- ६।७४
चत्वारिंशत्सहस्राणि ६०।४५१
चत्वारिंशत्तु विस्तारो ६।१२९
चत्वारिंशश्चतुर्भिश्च ४।१३४
चत्वारिंशत्सहस्राणि ६०।४०९
चत्वारिंशन्महादिक्षु ४।१३५
त्वचारिंशच्चतस्रश्च ।४।१७३
चत्वारिंशत्सहाष्टाभि- ४।१३३
चत्वारिंशं शतं दिक्षु ४।१०६
चत्वारिंशं शतं दिक्षु ४।१०५
चन्द्रमिन्द्रध्वजं मेरुं ९।१५९
चन्द्रप्रभसुमत्याख्यौ ६०।१६५
चन्द्रश्चापि महाचन्द्रः ६०।५६८
चन्द्रं चन्द्रमुखीपूर्णं ३२।३
चन्द्रश्चन्द्रिकया रात्रौ ९।१३
चन्द्रसूर्यौ च मालान्तौ ५।२३२
चन्द्रकान्तकरस्पर्शाच् २।७
चन्द्रकान्तशिलास्योर्वी ७।७४
चन्द्रकान्तांशवः शीताः ७।७५
चन्द्राभश्चन्द्रगौराभस् ७।१७५
चन्द्राभः शुक्लसप्तम्यां ६०।२७४
चन्द्राभा चन्द्रिकेवास्य ४३।१६५
चन्द्राभायास्तु यद् ४३।१७५
चन्द्राभालापवार्त्तार्त्तः ४३।१७८
चन्द्राभासंगसंजात- ४३।१६९
चन्द्राभयोपगूढस्य ४३।१६८
चन्द्राभ एव चन्द्राभः ६०।२१०
चन्द्रादित्याधिकोदार- ६५।३९
चन्द्राभं चन्द्रवत्कान्तं ३२।२८
चम्पाजन्मनि मुक्तोऽभूद् ६०।१९३
चम्पायां रममाणस्य २२।१
चम्पायामिहकौशाम्ब्यां ६०।१४५
चम्पावासी जनः सर्वो २२।५
चरणकण्टकवेधभयाद्भ्रटा ५५।९२
चरणौ मणिसंकीर्ण- ८।१८५
चरमोऽनन्तवीर्योऽमी ६०।५६२
चरमोत्तमदेहस्य ११।९०
चरमोत्तमदेहास्तु ३३।९४
चरमोत्तमदेहस्य ५६।८५
चरितमिदमकाल- ३६।१२
चरितं तस्य विप्रस्य ४३।१३५
चरितं नेमिनाथस्य १।७२
चरितं चारुदत्तस्य १।८२
चलभुजङ्गमभोगविभूषणं ५५।६५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चलजलधिसमाने ३६।७१
चलतडित्सवलाकवलाहके ५५।७७
चलच्चामरसंघात- ९।७९
चलद्दुकूलकौपीन- ४२।४
चाटुकारशतमत्र ६३।४२
चापपञ्चकमुत्सेधः ४।३०१
चापरत्नसमारोपं १।९२
चापं पञ्चशतोच्छ्रायं ५।३५१
चापं च कौसुमं प्राय- ४७।४१
चापोनपीठिका व्यासा ५७।१४
चामराण्यभितो भान्ति ५९।५९
चामरेन्द्रभुजोत्क्षिप्त- २।३९
चामीकरबृहद्दण्ड ५२।१५
चारणश्रमणाभ्यां तु ६०।९१
चारित्रमोहपरमोपशमात् १६।५३
चारुदत्त शृणु श्रीमान् २१।१६७
चारुहंसविमानेन २१।१७३
चारुदत्तस्ततस्तुष्टो १९।२६८
चारुदत्तेन मे जैनो २१।१५०
चारुवारवनिता ६३।३९
चारुगोष्ठीसुखास्वादस् २१।२
चित्तप्रसादनेनाशु २५।६८
चित्तद्रवीकरणदक्ष- १६।४२
चित्ताक्षेपपरित्यागो ६४।३१
चित्तेन्द्रियनिरोधश्च १।१२८
चित्ररत्नघटाटोप- ८।६२
चित्रचूलमनोहर्योद्- ३३।१३२
चित्रकारसहस्राणि ११।१२६
चित्रकारपुरेऽत्राभूत् २७।९७
चित्रबुद्धिस्तथा मन्त्री २७।९८
चित्रं तदा हि परमान्न १६।६१
चित्रं चिक्रीड तत्राद्रौ ४६।२१
चित्राम्बराम्बुरमनाग् १६।६
चित्रा कनकचित्रा च ८।११४
चित्राधोदेशतस्तूर्ध्वं ४।१४
चित्राख्यं पटलं पूर्वं ४।५२
चित्राधोभागतो रज्जुर् ४।१२
चित्रिते कुसुमचित्र- ६३।३६
चित्रैश्चित्तहरैर्दिव्यै- ५९।२०
चिन्ता प्रबन्धसंबन्धः ५६।४०
चिन्तानन्तरमेवात्र ५२।५८
चिरवियुतकनीयो ३६।१४
चिरयसि किमिति त्वं ३६।१७
चिरं पर्यट्य संसारं ४६।५६
चिरं प्रेक्षकयोरग्रे ८।२३४
चिरायति तयोश्चित्त- २१।८
चिरेण रतिसंभोग- २३।२१
चिरेण दानवाकारो २४।७
चिरं संसृत्य जातोऽहं २८।४५
चूडामणिः शतानीकः २२।१०५
चूतो गजपुरं मित्रा ६०।१९९
चूलायां स्निग्धनीलायां ८।१७८
चूलिका चैकसप्तत्या ५।६१
चूलिका विजयार्द्धस्य ५।३८
चूलिका नगरी राजा ४६।२६
चेतयन्तोऽपि तत्रान्ये ९।१०९
चेतनाचेतनद्रव्य- १०।१०३
चेतसास्य सहसा ६३।४
चेतश्चेटकराजस्य २।१७
चैत्यचैत्यालया ये ते ५।५१०
चैत्यवृक्षस्तु वीरस्य ६०।२०६
चैत्यप्रवचनार्हत्सद् ५८।६१
चैत्यालया जिनेन्द्राणां ४६।१९
चैतन्योत्पत्त्यभिव्यक्ती ५८।२६
चौरास्ततः समागत्य ३३।१२४
च्युतवतंसविशेषकमाकुलं ५५।५६
च्युत्वा गजपुरे जज्ञे ३४।४३
च्युत्वाभूदिहकौशाम्ब्यां ६०।१०१
च्युत्वा कल्पान्महाशुक्रात् ३२।७
च्युत्वा पुनरयोध्यायां ४३।१५९
च्युत्वा ते पाण्डुरजस्य ६४।१३७

[छ]

छत्रचामरभृङ्गार- ५७।१७४
छत्रचामरभृङ्गारैः २।७२
छत्रच्छायापटच्छन्नं ८।१५५
छत्राणि शशिशुभ्राणि ३१।८२
छन्ना तेन कुमाराणां ५२।४३
छद्मस्थकालमतिबाह्य १६।६४
छद्मस्थकालनिर्मुक्तां १२।७९
छद्मस्थे द्रव्ययाथात्म्य- १०।१०६
छद्मिताहमिति ज्ञात्वा ४७।६७
छादयामि द्विषच्छैलं ४५।५१
छाद्यमाने तथा पौण्ड्रे ३१।९०
छायायामस्य वृक्षस्य ६२।२५

[ज]

जगत्प्रभावसंभारौ १७।२६
जगत्प्रसिद्धबोधस्य १।३०
जगत्याः पञ्चनवति ५।४४२
जगद् षड्भिर्द्रव्यैर- ७।१७८
जगाद गौतमः स्थाने ३।१९६
जगाद गोपी भवती ३५।५९
जगाद च स तां देवीम् ४३।१८८
जगाद जगतां नाथ २।९६
जगाद भगवांस्तत्र ६०।१३४
जगावसौ कोऽपि ममास्ति ३५।४०
जगुः किन्नरगन्धर्वा ८।१५८
जगुरद्य कृतार्था वो ५३।७
जगौ च देवी विपिनेऽपि ३५।५८
जगौ वसन्तसेनां ता- २१।६२
जघनमुरः कुचावुदर- ४९।२३
जघनस्तनभारार्ता- २३।३१
जघान मुष्टिघातेन ३१।२
जघन्येन पुलाकस्य ६४।७०
जघन्येनैक एवैक ६४।१०२
जज्वलुर्ज्वलनज्वाला १४।१३
जज्ञे वसुरथस्तस्मात् ४५।२७
जननानि जिनो पृष्टो ६०।५६
जनयन्ति नृणां भोगाः ११।९७
जनस्तदालोक्य तदाति- ३५।७८
जनिताङ्गसुखस्पर्शो ३।२०
जनिष्यमाणेन जिनेन्द्र ३७।४५
जनैर्जनितसंघट्टैः ६२।७
जन्तोः को वापराधोऽत्र ६१।१०५
जन्मक्रमेण शेषाणां ६०।४८५
जन्मजरामरणामय- ३४।१३६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जन्मनिष्क्रमणज्ञान- २२।३
जन्मान्तरेऽपि काङ्क्षन्ती ४५।७२
जन्मान्तरमहाप्रीत्या ४३।२१९
जन्मानुबन्धवैरो यः ५९।६
जम्बूद्वीपस्य यावन्तो ५।४८१
जम्बूद्वीपतदम्बुधिप्रभृति ५।७३५
जम्बूद्वीपजगत्या च ५।४८४
जम्बूवृक्षस्य तस्याधस् ५।१८२
जम्बूद्वीपविदेहेऽष्टौ ६०।१४२
जम्बूद्वीपविदेहे यो २७।११५
जम्बूद्वीपविदेहेऽन्त. ६०।६२
जम्बूद्वीपस्य विष्कम्भे ५।१८
जम्बूद्वीपं यथा क्षारः ५।६१३
जम्बूद्वीपा प्रतिष्ठान- ६।९०
जम्बूस्थलसमे तत्र ५।१८८
जयत्वजय्या जिनधर्म- ६६।५१
जय नाथ जय ज्येष्ठ ५९।३१
जयान्तामितसारं च ५७।५९
जयन्ति देवाः सुरसंघ- ६६।५०
जयन्ती सर्वरत्ने तु ५।७२६
जय प्रसीद भर्तुस्ते ५९।१२
जयः पुलस्त्यो विजयो २२।१०८
जय सर्वजगद्बन्धो ५९।३२
जयसेनस्य कौमार्य ६०।५१४
जये जातिस्मरे जाते १२।१२
जरत्कुमारमुत्पाद्य ३१।७
जरत्कुमारे प्रगते ६१।३१
जरन्नारोप्यमाणस्तु ४७।१०६
जरासन्धादयस्तुष्टा ३१।१३२
जरासन्धबले तत्र ५०।१०२
जरासन्धस्ततः प्राप्य ४५।९२
जरासन्धसुतास्तत्र ५२।२८
जरासन्धोऽत्र संप्राप्तः ५०।६५
जरासन्धस्य हन्तार- २६।३१
जलक्रीडारतस्तत्र ३१।५
जलगर्भजपर्याप्ताः १८।८१
जलजशयनचापैस् ३६।५७
जलप्रभविमानेशो ५।३२६
जलं मुरजनिर्घोषं १९।६२
जलनिधिर्मुखरःस्वतर ५५।८३
जलस्थलपथैस्तेषा- ५४।२३
जलस्थलगताकाश- १०।१२३
जलार्थं तत्र लोकाना- ३३।४९
जलावगाहनायास्य २७।९५
जलावगाहनान्यस्य ९।१२६
जलाद् द्विकोशमुद्विद्धं ५।१९८
जवनाश्वरथारूढं २५।६४
जवेन लघु लङ्घयद् ३८।२३
जातकर्म जिनस्यैतास्- ८।११७
जातकर्मणि कर्तव्ये ८।१०५
जातकारुण्ययाऽवाचि ४३।१७९
जातबान्धवसंबन्धे ४५।१४५
जातमात्रमपत्राणं २१।१४२
जाता चन्द्रप्रभा देवी ६०।१०८
जातिवर्णस्वरग्राम- १९।१४८
जातविद्याधरा शङ्काः २१।१५
जातः स लान्तवेन्द्रोऽह्न- २७।११४
जातश्च कृष्णदशम्यां ६०।१७९
जातः सर्वयशो देव्यां २३।५२
जातः सुखरथस्तस्माद् १८।१९
जातात्र श्लक्ष्णरोम्णस्त्वं ६०।८५
जातानुपालिनी नित्यं २९।५६
जातास्यत्र ततश्च्युत्वा ६०।१२१
जातीनां लक्षणं तारो १९।१९८
जातु कंसादिभिः शिष्यैर् ३३।२
जातुचिन्मुनिवेलाया- ३३।३२
जातेन तेन शुभलक्षण- १६।१३
जातोदरमहाशूलौ ४३।११९
जाते निःक्रमणे जैने ९।९९
जाते योजनविस्तीर्णे २।६६
जातो बृहद्रथो राजा १८।२२
जातोऽहं जिनधर्मेण २१।१५१
जात्यमुक्ता फलाभानि ६।२०
जानतापि त्वया पुत्र १७।८०
जानन्तो वस्तुसद्भाव- ६१।२६
जानास्येव जघन्यां नो २१।६४
जानुनी मृदुनी यस्या ८।१२
जामातृ भ्रातृघातोत्थ- ४०।८
जाम्बवत्या जिनः पृष्टस् ६०।४२
जाम्बवत्या विवाहेन ४४।१६
जाम्बूनदमये तत्र ५।१७५
जायते भिन्नजातीयो ७।१४
जायतेऽत्र नटस्येव ४३।१२६
जायन्तेऽभ्युदयश्रीशा ८।२२०
जायन्ते चातिशीतोष्ण- ३।११३
जायास्य जिनदत्तासौ ३४।४
जारसेयमपनीय ६३।५३
जाह्नवीमवतीर्णां तु ४४।६
जिगमिषुं तपसे जिन- ५५।१०७
जिगीषता परान् देशान् १७।२१
जिगीषयेव विकसन् १४।१८
जितशत्रुः क्षितौ ख्यातो ३।१८७
जितार्को धर्मचक्रार्कः ५९।७२
जितात्मपरलोकस्य १।३९
जितकृष्ण बलालोक- ४२।१०
जिन केशव रामादीन् ५१।८
जिनजन्माभिषेकादि ४२।२३
जिनदत्तार्यिकोपान्ते ६०।७०
जिननिष्क्रमणं दृष्ट्वा २।५५
जिनपादान्तिके दीक्षां ५९।१२०
जिनभाषाधरस्पन्द- २।११३
जिनमत्यार्यिका पार्श्वे ६०।१०२
जिनरूपशरो दूराज् ४१।५३
जिनशासनवात्सल्य- ११।१०५
जिनशासनतत्त्वज्ञा ४३।८८
जिनः श्रावकधर्मं च ५९।११९
जिनस्तवविधानाख्यः १०।१३०
जिनसंयमकालस्तु ६०।३३३
जिनस्य नेमेश्चरितं ६६।४०
जिनस्य नेमेस्त्रिदिवा ३७।२
जिनस्य ह्येकविंशस्य २२।१११
जिनार्कपादसंपर्क- ५९।८०
जिनार्चा चैत्यगेहार्चा ३४।११
जिनाश्चतुर्विंशतिरत्र ६६।३७
जिनेन कथिते तत्त्वे ५४।५८
जिनेन्द्रकेवलज्ञान- ३।२६
जिनेन्द्रनामग्रहणं ६६।४१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनेन्द्रपितृनिर्वाणं ३४।१०
जिनेन्द्रपितरौ ततो ३८।१
जिनेन्द्रमुखचन्द्रकं ३८।४१
जिनेन्द्रवन्दनापूर्वं १२।२७
जिनेन्द्र विनतिर्ध्वस्त- ६२।५८
जिनेन्द्रवीरोऽपि विबोध्य ६६।१५
जिनेन्द्रवीरस्य समुद्भवो- ६६।७
जिनेन्द्रोऽथ जगौ धर्मः १०।४
जिनेशजनकौ जगद् ३८।८
जिने शून्यद्वयं तस्माज् ६०।३२५
जिनोद्भवे स्वप्नफलानु- ३७।४७
जिनोच्छ्वासमुहुः क्षिप्त- ८।१६७
जिह्वाख्ये द्वादशैवोक्ता ४।३१२
जीयेत येन कन्येयं ३४।२५
जीवग्राहं गृहीत्वासौ ३३।५
जीवसिद्धिविधायीह १।२९
जीवस्य भावभावोऽयं ३।१०४
जीवस्य लक्षणं लक्ष्य ५८।२२
जीवद्यशसमाशान्त- ३३।७
जीवद्यशोविलाप च १।९४
जीवामि जिनवाक्येन ४३।२४२
जीवादिसप्ततत्त्वाना- ५८।३०४
जीवादीनां पुद्गलानां च ७।४
जीवाधिकरणश्चाप्य- ५८।८४
जीवाजीवास्रवा बन्ध ५८।२१
जीवितान्ते सुबन्धोः स्यात् ६४।११७
जीवोपयोगशक्तेश्च १०।१८
जेता वेदविचारेऽस्याः २३।३०
जैन एव हि सन्मार्गे ३३।६६
जैनेन जिनदेवेन ६०।४५
जैनेर्वाष्णैर्वैणवै- ४१।५७
ज्या च तेषां त्रिपञ्चाशत् ५।१६९
ज्यायानज्ञातसंबन्धः ३१।१२२
ज्याया ज्यायां विशुद्धायां ५।९८
ज्याया दशसहस्राणि ५।३६
ज्यारवै रथनिर्घोषै- ५१।१७
ज्यासौ नवसहस्राणि ५।३२
ज्या स्याच्छतसहस्राणि ५।९२
ज्येष्ठपुत्रे विनिक्षिप्त- १८।११
ज्येष्ठभ्रातरमालोक्य ११।९१
ज्येष्ठानपूजयत्सर्वान् ५३।२७
ज्येष्ठानां भविता सिद्धिस् ६४।१४१
ज्येष्ठो मुमोच यान्बाणान् ३१।११९
ज्येष्ठो लक्ष्मीमतीं लेभे ४७।१८
ज्येष्ठो हिरण्यनाभाख्यस् ३१।१०
ज्योतिर्गणस्य संचारं १०।११६
ज्योतिर्गृहप्रदीपाङ्गैस् ७।८०
ज्योतिर्देवस्त्रियोऽतश्च २।७९
ज्योतिर्निमित्तशास्त्राणि ११।११४
ज्योतिःपटलमेतद्धि ६।३
ज्योतिर्मण्डलसंकाशैः ५९।४२
ज्योतिर्मालाख्यखेचर्याम् ६०।१८
ज्योतिरङ्गमहावृक्ष- ७।१३४
ज्योतिरङ्गद्रुमा ज्योतिश् ७।८१
ज्योतिर्लोकप्रकटपटल- ६।१३९
ज्योतिर्लोकविभागस्य ६।३४
ज्योतिर्लोकविमानानां ६।२२
ज्योतिर्लोकमतो गत्वा ६०।६८
ज्योतिषां साधिकं पल्यं ३।१४०
ज्योतिषो भावना भौमा ३।१६२
ज्वलत्प्रदीपालिकया ६६।१९
ज्वलद्बृहज्ज्वालहुताश- ३५।१३
ज्वलद्विषाणो वृषभः ३५।२७
ज्वालारुद्धपथस्तत्र ४०।३१
ज्योतिश्चक्राधिपावेतौ ७।१३२
ज्ञातपूर्वभवाशेष- ६५।४२
ज्ञातपूर्वभवे तस्मिन् ९।६३
ज्ञातमायादुरीहोऽसौ ४७।७८
ज्ञातमेव हि ते नूनं २४।५१
ज्ञानोत्पत्त्या त्वमावस्या- ६०।२६५
ज्ञेयो मूलनयावेता- ५८।४०
ज्ञेया दशसहस्राणि ६०।३८०
ज्ञेयाः स्वदारसंतुष्टा २३।७६
ज्ञेयाः सप्तसहस्राणि ६०।३८७
ज्ञेया ह्येकोनपञ्चाशद् ४।८५
ज्ञाननेत्रैस्त्रिभिः पश्यन् ८।१०२
ज्ञानाप्तिः पूर्वताले ६०।२५४
ज्ञानावरणशत्रुं च ९।२०९
ज्ञानस्य मनसाभ्यासो ६४।४७
ज्ञानादिषु तद्वत्सु च ३४।१३३
ज्ञानाङ्कुशनिरुद्धोऽपि ४३।१९२
ज्ञानवृत्तिविशेषस्य २८।३८
ज्ञानदर्शनसम्यक्त्व- ५६।६७
ज्ञानलब्धिपरिप्राप्तिर् २०।३१
ज्ञातसंसारनिःसारा ४३।१५७
ज्ञातिवर्गः समस्तोऽयं ५०।५१
ज्ञात्वा च जैनधर्मस्य ३३।७०
ज्ञात्वा तन्मरणं दुःखा- ६१।९
ज्ञानपञ्चकसिद्ध्यै ते ६४।१४
ज्ञात्वा पुण्यस्य माहात्म्ये ४७।४५
ज्ञात्वा भगवतः सिद्धिं ६५।१८
ज्ञात्वा भामा हरीष्टां तां ४३।३
ज्ञात्वाभिप्रायमस्याः स ४५।६५
ज्ञात्वा महानरं तं च ४५।११०
ज्ञानत्रयं सहजनेत्र- १६।१९
ज्ञानदर्शनचारित्र- ३४।४९
ज्ञानदर्शनसंवृत्योर् ५८।२८४
ज्ञानदर्शनचारित्रैर् ६४।१४५
ज्ञेयं वर्षसहस्रं तु ७।२४

[ट]

टङ्कणं देशमासाद्य २१।१०३

[त]

त एव चाष्टपर्यन्ता ३४।७९
त एव सुखिनो धीरास् २६।३७
तं कल्पव्यवहारं च २।१०४
तं चतुर्दशरत्नानि २५।३०
तं छलव्यवहारस्य २०।५१
तं दृष्ट्वा केनचित्प्रोक्तं ३३।८२
तं द्रौपदीमयं ग्राह्यं ५४।११
तं निशम्य मुनिश्रेष्ठं ३।१८३
तं निश्चित्य पिता पुत्रं २५।४०
तं पङ्कबहुलं भागं ४।५०
तं पाण्डुकवने रम्ये २।४१
तं प्रणम्य विदग्धोऽसौ २०।१८
तं प्रदेशं तदैवासौ ६२।२९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तं प्रधृत्य भुज- ६३।४३
तं शकुन्युपदेशेन ४६।३
तं सा कृपावती प्राह ५४।४८
तं स्वयंवरमालोक्य ३१।४६
तत्कथं कथमित्युक्ते २१।१३०
तत्कल्पव्यवहाराख्यं १०।१३५
तत्काले सत्यभामापि ४३।३३
तत्कालेऽपत्यमुत्क्षिप्य ७।१६२
तत्कृतौ शक्तिवैकल्ये २१।१५८
तत्क्षणेऽलमुदतिष्ठ- ६३।५०
तच्च दर्शनमोहान्ध- ५८।२०
तच्चरणपूजनं कृत्वा ९।१८५
तच्चत्वारि सहस्राणि ४।२४३
तच्छरीरस्य पूजार्थं २७।१७
तच्छ्रुत्वाशु जरासन्धः ३१।५८
तच्छ्रुत्वा यादवाः सर्वे ५१।७
तटरुहविटपाग्र- ३६।८
तटाद् गत्वा सहस्राणि ५।४५९
तटान्तात्पञ्चनवतिं ५।४३५
तटीपाटितगात्रोऽहं २१।९५
तटे तु दक्षिणे तस्याः ५।२०७
तडिच्चलाङ्गं सरसी- ३७।१३
ततं च विततं चैव ८।१५९
ततं चाप्यवनद्धं च १९।१४२
ततं तन्त्रीगतं तेषां १९।१४३
ततः कच्छमहाकच्छ ९।१०४
ततः कन्या सभामध्य- १९।१३४
ततः कम्बलवृत्तान्त- ५०।९०
ततः कल्पनिवासिन्यो २।७७
ततः कापिष्टकल्पाग्रे ४।१५
ततः किन्नरगन्धर्व- २।८३
ततः कुन्त्याः समीपं सा ४५।१३९
ततः कुबेरदत्तस्य २४।५०
ततः कुपितचित्तोऽसौ ४६।३३
ततः क्रुद्धो युधि म्लेच्छै- ११।३१
ततः कृतसुसंगमे ३८।९
ततः कृततदाश्वासः २१।७५
ततः कृष्णो जगौ देव ६५।४७
ततः केवललक्ष्मीतः ५९।६१
ततः क्षीणकषायाख्यो ६४।५७
ततः खण्डितविद्यास्ते २७।१२८
ततः पञ्चसहस्राणि ६०।४६३
ततः पतन्नसौ वेगाद् २६।३३
ततः पद्मप्रभो ज्ञेयः ६०।५५७
ततः परं द्वयोर्ज्ञेयाः ३।४६
ततः परं प्रसिद्धान्या ५।३३३
ततः परमधत्ताङ्ग- २९।६०
ततः परबलं दृष्ट्वा ५१।१८
ततः परेण विज्ञेया ६०।२२३
ततः पर्वतमारुह्य २१।११३
ततः परिकरं बद्ध्वा ३४।२७
ततः पश्यामि भामाया ४२।३२
ततः पित्रा च मातृभ्यां ६१।८७
ततः पुण्यदिने पुण्य- २२।१५२
ततः पुत्रशतेनापि ९।३७
ततः पुरोहितेनाशु- २३।५६
ततः पूरितसर्वाशाः ४७।४
ततः पूर्णेषु मासेषु ३२।८
ततः प्रक्रमते शम्भु- ५९।१३
ततः प्रथमसम्यक्त्व- ६४।५३
ततः प्रद्युम्नभान्वाद्याः ६१।३९
ततः प्रणतमाश्लिष्य ४७।१३३
ततः प्रणम्य देवेन्द्रा २।१४१
ततः प्रबुद्धवृत्तान्तै- २।६३
ततः प्रभृत्यसौ लोके ६५।३२
ततः प्रमितयामिनो ४२।१०५
ततः प्रसाद इच्छामि ४७।६४
ततः प्रसादवर्येषु ४७।१७
ततः प्राह जिनस्तत्त्वं ४३।९४
ततः प्राह प्रजास्तत्र ९।९४
ततः शङ्ख इति ख्यातस् १७।३५
ततः शङ्खाः सभेरीकाः ९।८९
ततः शत्रुंजयो लग्नः ३१।९४
ततः शाबरसेनाभिर्- ४७।९८
ततः शीकरिणं मत्त- ४१।२
ततः शीतलमानीय ६२।२३
ततः शून्यद्वयं चक्री ६०।३२७
ततः शौरिः समस्तैस्तैः २५।७१
ततश्च धृतपूजनो ३८।४५
ततश्चपललोकस्य ४५।१३७
ततश्चन्द्रावदाताङ्ग- २।३२
ततश्चक्रमहं कृत्वा ५३।३१
ततश्चकितचित्तोऽहं २१।८५
ततश्च तत्कालभवां ३५।३०
ततश्चण्डरुषा पौण्ड्रो ३१।८६
ततश्चाश्चर्यकृत् कार्यं २८।१९
ततश्चागत्य भरते ६०।११७
ततश्चतुर्विधे सङ्घे ९।२२१
ततश्चतुःसहस्राणि ६०।४६१
ततश्चात्रोत्तरश्रेण्यां ६०।८९
ततश्चोद्वर्त्य पर्यट्य ३३।१५७
ततश्च्युत्वाऽग्रजोऽत्रैव ३३।१४१
ततः श्रावकतापन्नो ६४।५४
ततः श्रुतवयोवृद्धा ४०।५
ततः षोडशभिर्हीनो ६०।३३४
ततः सङ्घेन महता ६१।४२
ततः स तत्क्षणं जातस् ४७।१२१
ततः स दुहितुस्तस्याः १७।१५
ततः सनत्कुमारोऽभूच् ४५।१६
ततः सप्तभिराधिक्ये ३।१६०
ततः समं पुरं देवैस् ८।१५१
ततः समङ्गलं तेन १९।७४
ततः संभवनाथोऽभूद् १३।३१
ततः सरभसोद्यात ८।२२९
ततः सर्वस्य लोकस्य २१।४९
ततः सरांसि चत्वारि ५७।१९
ततः सा प्राञ्जलिः प्राह ४२।९०
ततः सुचारुश्चारुश्च ४५।२३
ततः सुपर्णकुमाराणां ४।६७
ततः सुरपतिस्त्रियो ३८।५४
ततः सुरवराभ्यर्च्यो ६१।११
ततः स्वर्गसुखं पुंसां १७।१३३
ततः स्वं वञ्चनं ज्ञात्वा १९।४४
ततः स्वयं जरासन्धः ५२।४६
ततः स्वयंवरारम्भे १२।८
ततः स्वयंवरान्तर्भू- ३१।१५
ततः स्तनन्धयो जातो ४७।१२२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ततस्तस्मै पराभूतिं १७।१५८
ततस्तमृषभं नाम्ना ८।१९६
ततस्तिथौ प्रशस्तायां ३१।१३४
ततस्तिथौ प्रशस्तायां ४१।१५
ततस्तु लोकः प्रतिवर्ष- ६६।२१
ततस्त्रिभुवने तत्र ३।६५
ततस्त्रीणि सहस्राणि ६०।४६४
ततस्ते ललिताकाराः ४५।६७
ततस्ते तन्निमित्तेन ११।६१
ततस्ते मन्त्रिणो भीताः २०।२०
ततस्ते त्रपितास्त्रस्ता ९।११५
ततस्ते ब्राह्मणाः प्रोक्ताः ११।१०७
ततस्ते धैर्यसंपन्नाः ४१।७
ततस्तेन प्रिया पृष्टा २६।४१
ततस्तेन हरिः पृष्टो ६२।४७
ततः सोमश्रिया युक्तश् ३२।३३
ततो गजकुमारोऽपि ६०।१३२
ततो गणभृदाचख्या ५०।८
ततो गन्धर्वसेनाभू- २२।१७
ततो गन्धोदकैः कुम्भै- ८।१७४
ततो घातकशोकं च १।१२१
ततो घृतवरद्वीपं ५।६१५
ततोऽञ्जनमहारजो ४२।१००
ततो जगौ जरासन्धो ३१।९३
ततो जग्राह तुष्टा सा ४३।५८
ततो जज्वाल कोपेन ५४।६
ततो जिगिमिषू राजा २०।८
ततो जिनगृहैस्तुङ्गैः २।१४८
ततो जिनोक्ततत्त्वार्थ- २।११४
ततो दर्शनमोहस्य ३।१४३
ततो दर्शनमोहस्य ६४।५५
ततो द्यूतच्छलेनैव २७।३६
ततोऽध्यक्षनरैराशु २५।२८
ततोऽर्धरज्जुपर्यन्ते ४।२३
ततोऽर्धरज्जुमानान्ते ४।२५
ततो नवसहस्राणि ६०।४६२
ततो नागकुमारादि २।८१
ततो निधिपतिः क्रुद्धो ११।३७
ततो निरस्तमन्युश्च ४।४७
ततो निर्गत्य जातोऽस्मि २१।१४८
ततोऽनन्तसुखं मोक्ष- ३।१४६
ततोऽन्तःपुरलोकस्य १२।१६
ततोऽन्तः कल्पवासाख्याः ५७।९९
ततोऽन्त्यजिनमाहात्म्यात् २।२६
ततोऽन्ये षट्सहस्राणि ६०।३९६
ततोऽन्योऽन्यभुजक्षिप्त- ११।८३
ततोऽपरागो लोकस्य ४५।५८
ततोऽपि धृतराजोऽभूत् ४५।३३
ततोऽपि नगराद्याता ४५।१०५
ततोऽपि नीलकण्ठेन ३१।४
ततोऽपि वैदिशं याता ४५।१०७
ततोऽप्यग्निकुमाराद्या २।८२
ततोऽप्यन्तर्वणं नाना ५७।६६
ततोऽप्युत्तरदिग्भागे ५।४१८
ततोऽभिनन्दी हृदि ३५।५४
ततो भीतमतिर्मुक्त्वा ३३।३७
ततो भीमकमुद्वृत्तं ४३।१७१
ततोऽभूत् सुबलः सूनु- १३।१७
ततोऽभ्यर्च्य जिनेन्द्रार्चाः २९।१०
ततो भ्रमरघोषाख्यो ४५।१४
ततो मलयनामानं ५९।११३
ततो मातङ्गकन्याभूच् ६४।११६
ततो मानसवेगेन ३०।३३
ततो मृत्युभयात् त्रस्तः १७।१६२
ततो मेघमुखादेवा ११।३३
ततो मेघमुखैर्म्लेच्छाः ११।३८
ततो यादवसङ्घास्ता- ४१।४१
ततोऽलंकृतनारीभि- २।७८
ततो लब्धजया पित्रा ३४।३१
ततो लोकस्तकौ दृष्ट्वा ४३।१११
ततोऽवतीर्य सोपानैः ५७।१७७
ततोऽवतीर्य भीष्मस्य ६०।३९
ततो वनवती देवी ३२।३८
ततो वलिरुवाचामी २०।४६
ततो वर्षशतं पूर्णं ६०।३१६
ततो वर्षसहस्राणि ६०।३१८
ततो वर्षसहस्राणि ६०।३१५
ततो विचित्रवीर्योऽभूत् ४५।२८
ततो विदिततत्त्वार्थाः ५९।१२०
ततो विदितवृत्तान्तो ४३।६६
ततो विनिश्चिता- २२।१२०
ततो विद्याप्रभावेण १२।२६
ततो विस्मिततुष्टास्ते ५४।६८
ततो वीक्ष्य क्षुधाक्षीणाः ९।३३
ततो व्रजस्थः कृतजात- ३५।३४
ततोऽष्टमाख्यानशनं ३५।३८
ततोष्टादशवर्षाणि ६०।३३८
ततोऽष्टैकादशाशीतिः ६०।३४३
ततोऽस्ति क्रोशविस्तारं ५७।१०८
ततो हठान्नामिताभिः ३३।५१
ततो हरिप्रेक्षणलब्ध- ३५।६३
ततोऽहिनकुलेभेन्द्र- २।८७
ततो हिरण्यनाभोऽपि ३१।८७
ततो हृदयसुन्दर्या- ४५।११८
तत्र कर्तृत्वभोक्तृत्व- १०।१०९
तत्र कर्मवशज्ञानां ४३।८७
तत्र कुण्डपुरे लेभे ३१।३
तत्र केवलिनां सौख्यं ३।८६
तत्र चक्रमहं कृत्वा ११।२१
तत्र चिक्षिषवः पापाः ४६।४०
तत्र चित्रमणिस्तम्भ- ३१।१३
तत्र चोत्तरशाखायां ५।१८१
तत्र तस्थौ जिनः शैले ३।५९
तत्र तीर्थकरः कुर्वन् २।१४६
तत्र दक्षिणशाखायां ५।१८९
तत्र दौवारिका भौमा- ५७।२५
तत्र धर्मकथान्तेऽसौ ६१।१७
तत्र नेमिकुमारोऽपि ४१।४८
तत्र पद्मरथश्चक्री ४३।९२
तत्र पद्मावतीं लेभे २४।३०
तत्र पद्मोत्तरे नाम्नि ६५।३४
तत्र पूर्वधरास्त्रीणि ३।४७
तत्र प्रत्यक्षधर्माणो ५७।१४९
तत्र भीमो महानागं ४५।१०६
तत्र बाह्ये परित्यज्य ५७।१७१
तत्र विष्णोर्महादेवीं ४२।२५
तत्र सर्वजघन्यानि ६४।८१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्र संख्येयविस्तारा ४।१६९
तत्र संस्वेददेशेषु ५७।१३७
तत्र सामायिकं नाम १०।१२९
तत्र सिंहेन संत्रस्ता ६०।६७
तत्र सोमप्रभस्याभूत् ४५।८
तत्र स्वर्ग इवातिष्ठन् २१।१६५
तत्र स्थावरकाः सर्वे ५९।८५
तत्र स्वान्यकषायाणा- ५८।९८
तत्रस्था अपि तद्देशात् ५७।१३९
तत्र स्थितं जिनेन्द्रं तं ६१।१४
तत्र स्थितस्य कृष्णस्य ४१।४६
तत्र स्थितश्चिरं राज्यं १७।२२
तत्र स्त्रीजनमध्यस्था १४।३२
तत्राक्रीडपदानि स्युः ५९।४५
तत्राखण्डलनेत्राली- २।५
तत्रातापनयोगस्थः २।५८
तत्रातापनयोगस्थ- २१।११२
तत्रानुभूय दुःखौघांश् ६४।११५
तत्रापत्यविहीनाया ४३।२६
तत्रापणे निविष्टोऽसौ २४।३५
तत्रापाच्या नृपाः केचि- ५०।६७
तत्राभ्यन्तरकोणस्था ५।६७५
तत्रामनोज्ञस्य दुःखस्य ५६।९
तत्रार्त्तिरर्दनं वाधा ५६।४
तत्रासीनं जिनाधीशं ५७।१४३
तत्रालोचनकं कृच्छ्रं ६४।३२
तत्रैका दशभिर्मेरु- ६।२५
तत्रैव नगरे या सा ३०।१०
तत्रैवारिजयो राजा ३४।१८
तत्रैवास्मिन्नसंख्येय- ५।२
तत्रोत्तानशयं भद्रा २१।१३९
तत्रोद्यानं महोद्योगः ९।२०६
तत्रौत्पथव्युदासेन १०।३५
तत्रोन्मग्नजला नाम्ना ११।२६
तत्रोर्जयन्तमन्तेऽसा- ६५।४
तत्रौपपादिके देशे १०।४१
तत्त्वया न निवार्योऽह- १४।६५
तत्त्ववादिनमक्षुद्रं १७।१५६
तत्त्रिकालनियोगेन ७।७०
तत्पक्षरक्षणे दक्षः ५०।१२०
तत्पयोरुहवासिन्या ५९।३५
तत्पायय पयः शीत- ६२।२१
तत्पुत्रो वाहनीकृत्य ७।१५६
तत्पुराधिपतिः पौण्ड्रः ५९।११५
तत्पुराधिपतिं युद्धे २४।२६
तत्प्रदक्षिणवृत्तानि ५।५९९
तत्प्रत्येकशरीराख्यं ५८।२६७
तत्प्रभावमसौ बुद्ध्वा २४।३६
तत्प्रकीर्णकवासेषु ५७।८९
तत्प्रश्नानन्तरं धातुश् ५८।३
तत्प्रसाद्यापि चुक्षोभ ४७।५
तत्प्रासादपुरः शक्र ४१।३०
तस्सामानि जगुः केचिज् १७।८५
तत्सुवर्णाक्षरं यत्र ५२।९०
तत्तद्गुणं च पूर्वाङ्गं ७।२५
तत्तु क्षायिकसम्यक्त्वात् २।१३७
तथाकृते समस्तेभ्यो ४८।३०
तथा च स्थितनेपथ्यं ४७।४९
तथा चारित्रमोहस्य ३।१४५
तथा चोत्तरपूर्वस्यां ५।३४५
तथा जयपताकायां १९।२६५
तथा जीवद्यशोलाभं १।८८
तथा तस्य तदाश्रद्धां ४६।३६
तथा त्रीणि सहस्राणि ५।११
तथा दशगुणाश्चाष्टौ १३।१४
तथा दश सहस्राणि ५।८५
तथा धर्मकथाछेदे ६०।१
तथा नवशतान्येव ६०।४६८
तथा नामविशेषस्य ५८।११२
तथा निषद्यकां प्रायः २।१०५
तथा नौडवितं कुर्याद् १९।२६०
तथान्या घोषणादायि ६१।३७
तथान्यो गणभृन्नाम्ना १२।६५
तथापराजितस्यापि १।९५
तथाप्यनूद्यते वस्तु २२।५०
तथा मानसवेगश्च ५१।३
तथा यथागमं नाथः ९।१५६
तथा रक्तवती कूटं ५।१०७
तथारिष्टविमानेशो ५।३३५
तथास्त्विति निगद्यैतां ५४।२७
तथार्कमणिमूर्तीनि ६।१६
तथार्धाक्षौहिणीनाथः ५०।७१
तथाविधमहाभूत्या ५९।१२६
तथाविधविभूतिभिः ३८।४४
तथा व्यर्थप्रयासोऽसौ ५२।५७
तथा सर्वार्थसिद्धौ तु ६४।७९
तथा सति विरोधः स्यात्५८।३५
तथास्त्वित्यभिधायासा- ३४।२२
तथा हि विजया स्मृता ३८।३१
तथा हि मूलतन्त्रस्य १।५६
तथा ह्यनेन भो दृष्टा ९।११८
तथैव कामदेवश्च १२।७०
तथैवाचलनामान्यो १२।५९
तथैव च श्रेणिक- ६६।२०
तथैवोज्ज्वलितो ज्ञेयस् ४।८१
तथैवाञ्जनका ज्ञेया ५।६७६
तथैवात्राञ्जशब्दस्य १७।१०५
तथैव धातकीखण्डे ६०।१४९
तथैव मूलवीर्यास्तु २२।७९
तथैवाब्बहुले भागे ४।४९
तथैवाल्परसास्वाद- ७।११३
तथैव सयशोधरा ३८।३३
तथैरावतमध्यस्थ- ५।१०९
तथैवाश्वपुरो ज्ञेया ५।२६१
तथैवैकोनविंशत्या ६०।३६९
तथोदितः स तं प्राह ५२।८०
तथोत्सहितुकामो यो ५८।२८२
तथोपगूहनं मार्ग- १८।५०
तदत्र चोदनावाक्ये १७।१२५
तदत्र भवतोऽध्यक्ष- १७।९६
तदत्र यदि सौभाग्य- ३१।५६
तदत्र यावदापत्य- ४०।१५
तदनन्तरमाकीर्णं २४।८२
तदनन्तरमेवात्र ४३।४९
तदनन्तरमेवोच्चैस् ३।२३
तदपत्यं यशस्वीति ७।१६०
तदवलोक्य सुरो मिथुनं १५।४९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तदस्य पीतसारस्य २१।६६
तदस्या रूपसौभाग्य ४२।३०
तदर्थमत्र लोकोऽयं १९।१२४
तदन्तरे भवत्यन्यत् ५७।६९
तदर्धव्यासनिर्माण- ५७।१३८
तदर्धभानाश्चत्वारस् ५७।८८
तदाकर्ण्य रुषा तेन ३३।८३
तदाकर्ण्य करीन्द्रोऽसौ २७।१०६
तदाकर्ण्य निजं प्राह ५२।२६
तदाकर्ण्य वचस्तूर्णं ११।६०
तदाकर्ण्य वचस्तेन ३२।१५
तदा च सर्वभूपालैर् ३१।१६
तदा च सप्ताहमहातिवर्षे ३५।२२
तदा तौ दम्पती शैलं २३।१५
तदा तप्तौ प्रवीणे द्वौ १४।९१
तदात्वेऽभ्येतिशब्दश्चेद्- २३।१११
तदात्यन्तपरोक्षोऽपि ८।१६९
तदात्मनः स्वयं वेद्यं ५६।६
तदा देवकुमाराभो- १९।६
तदा नागपुरे चक्री २०।१२
तदानीमेव संप्राप्तो- ४७।७९
तदा प्रव्रजतां तेषां ९।२२०
तदार्द्रहृदये नद्धां २६।४८
तदा वद विधेयं मे २९।४१
तदा विष्णोः प्रभावेण २०।५४
तदा विद्याधरौ द्वौ तं २१।१२५
तदा शौरिरिवार्कोऽपि २२।१३८
तदा स्त्रीपुंसयुग्मानां ७।९२
तदा हि पुरुषो लोके २०।५०
तदित्थमुपशान्तेषु २०।४५
तदीयशिष्योऽमितसेन- ६६।३१
तदुच्यतां प्रभोऽद्यैव १४।५८
तदेकस्यापि हि ज्ञाते ५०।५३
तदेव जायतेऽन्येषां ३।१३१
तदेत्युक्तवते धर्मं २१।९३
तदेवान्ववदत्पाण्डोः ४५।८६
तदेवं लक्षणं कार्यं ५८।२१०
तद्देशविस्तरायामास् ५।२५५
तदेष योज्यतामद्य २१।२९
तदेव हि धनं तस्य १८।१४७
तदग्रपालिकानद्ध- ५७।४३
तद्गोपुरपुरो भान्ति ५७।२७
तद्वचसा स म्लानो हि ४३।१८३
तद्वचोऽनन्तरं कन्या ३१।३९
तद्व ग्रर्षभनाराच- ५८।२५५
तद्दृष्टिगोचरे मंक्षु ५७।१७०
तद् ब्रवीतु भवान् को भो ६२।३६
तद्बाहुनोर्ध्वमुत्क्षिप्ता ५३।३६
तद्यथा पूर्वविद्ध्यायन् ५६।६०
तद्यत्तव स्थितं चित्ते १७।१३
तद्रूपश्रवणाद् येषां ३१।१७
तद् रूपास्त्रविमोक्षेण १७।७
तद्वन्दनार्थमद्वन्द्वं ४३।१०५
तद्वन्दनार्थमिन्द्रौघाः १८।३२
तद्वद्भासुररूपापि ८।३२
तद् द्वादशसहस्राणि ५।३९८
तद्वशीकरणार्थं तौ ४३।१६३
तद्वापीपुष्पसंदोहं ५७।३७
तनयस्तस्य सोदासः २४।१३
तनया कनकावर्त्ता ४६।१५
तनयाः पञ्च विख्याता ४८।४६
तनया वसुदेवस्य ४८।५३
तनयोऽङ्गारको राज्ञो १९।८३
तनुमृदुरोमराजि- ४९।६
तनुवातान्तपर्यन्तस् ५।१
तनुवातस्य तस्यान्ते ६।१३३
तनुविशददुकूलश् ३६।५४
तनुरेखभ्रुवो यस्या ८।२४
तनुलग्नमलङ्कारं २१।६५
तन्मदीयमभिप्राय ४२।५८
तन्मध्ये सर्वतोभद्रः ४१।२७
तन्मात्रा याचितः शौरिः ३०।३८
तन्मिथ्यादर्शनं द्वेधा ५८।१९३
तन्मूलमुखविस्तारः ५।४४४
तन्निमित्तमिति यत्र ६३।८०
तन्निवर्त्तय दुर्वृत्ताद् २०।३६
तन्निशम्य वचो राजा १९।३३
तनूजौ बालचन्द्राया ४८।६५
तपनीयमयं पीठं ५७।९०
तपनीयरसालिप्तै- ५७।७८
तपनीयमयस्यास्य ५।८७
तपनीयमयैश्छत्रैर् ५९।६७
तपनेऽप्यवरैर्षैव ४।२७२
तपने विंशतिर्दण्डास् ४।३१९
तपः कर्मैकनिष्ठैस्तैः २०।४३
तपः षोढा भवेद्बाह्य ६४।२०
तपःस्तम्भसहस्रस्थो ५७।८६
तपःस्वाध्यायवृद्धचादेर् ५८।१८८
तपःस्थिताश्च ते केचिद् ६०।२५२
तपस्त्वनशनाद्येवं ६४।३६
तपस्तपस्विनी कृत्वा ६०।५४
तपस्विनीभिरन्याभिस् ६४।१३३
तपसा निर्जरा मुक्त्यै ६४।५१
तपसा नाकमारुह्य ६०।१२२
तपो घोरमसौ कृत्वा २०।६३
तपो दुष्करमन्येषाम् ३।१८९
तपोधनः श्रीधरसेन- ६६।२८
तपोमयी कीर्तिमशेषदिक्षु ६६।३३
तपो वरप्रसादो मे ३४।२१
तपो वा मरणं वापि ६१।१००
तपोविधिविशेषैः स ३४।५०
तपो वर्षसहस्राणि १८।१३९
तपो विष्णुकुमारोऽसौ २०।१५
तप्तदीप्तादितपसः ३।४४
तप्तश्च तपितश्चान्यः ४।८०
तप्तस्यापि शतं दिक्षु ४।११८
तप्तायोमयमूर्तीनि ६५।२०
तप्ते सप्तदशोत्सेधो ४।३१७
तमन्योऽन्यातिशायिन्यो ३४।७
तमन्वेष्टुं प्रभाते तौ १७।४८
तमागत्याब्रवीद् देव ३३।११७
तमादाय गता सापि ३२।१६
तमित्युक्त्वान्तिकं प्राप्तां २२।१३२
तमिस्रेऽपि च तान्येव ४।३३५
तमुत्तानशयं यावत् ४२।१६
तमुपवेश्य ततः ५५।१०५
तमोनामनि चोत्सेधः ४।३३३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तमो भ्रमो झषोऽर्तश्च ४।८३
तया पतन्त्या वसुधारया ३७।३
तया प्रथमबुद्धया ४२।१०६
तया सह सुखं तस्य २४।७७
तयैत्य पतिता गङ्गा ५।१४१
तयो कुशलसंप्रश्ने ४७।११८
तयोः प्रेमतरुः सिक्तस् २२।१३४
तयोर्दुहितरौ भद्रा २१।१३२
तयोरर इति ख्यातः ४५।२२
तयोः संभोगसंभारः २३।२०
तयोक्तं ते पिता पुत्र ! २१।१४१
तयोक्तं न मुनिस्त्वेष ३३।५५
तर्कानुसारिणः पुंसः ५६।५०
तरङ्गिणीसरित्तीरे ४६।४९
तरणदूरनिमज्जनक्रियाः ५५।५२
तीर्थकृत्पुनरन्यूनैर् ४१।३९
तलं तिस्रो जगत्यश्च ५७।१२६
तलात्सहस्रमुद्गत्य ५।२८७
तव दर्शनमेतस्याः २२।११६
तव दुहितः सुराष्ट्रविषये ४९।१५
तव पदशरणास्ते ३६।६९
तव शोकापनोदाय ४३।२३५
तवानुरूपकन्येयं ४५।१११
तवैव गृहमुद्योत्यं ८।८०
तस्थुर्दक्षिणतो जिनस्य ९।२२३
तस्मात्कुरुरभूत्तस्मात् ४५।९
तस्मादप्यङ्गजो जातस् १८।१८
तस्माद्रावण इत्यासीत् ४५।४७
तस्माद्विष्णुः क्रमात्तस्मात् १।६१
तस्मात्सांसारिकं सौख्यं ९।६१
तस्मिन् काले गुरुर्विष्णोर् २०।२५
तस्मिन् गते हरिस्तीव्र- ६२।५६
तस्मिन् गर्भस्थिते देवी ३३।८५
तस्मिन्नद्रौ जिनेन्द्रः १२।८१
तस्मिन्नरागिणीं बुद्ध्वा ३१।२३
तस्मिन्नवसरे चण्डैस् ४३।१८०
तस्मिन्नस्तमिते दीप्ते २५।७०
तस्मिन् सोमप्रभः श्रेयान् ९।१५८
तस्मै नमः कुसिद्धान्तः १।१६
तस्मै सोऽकथयद् राज्ञो ३०।४५
तस्मै तु रश्मिवेगाय २७।८१
तस्मै स क्षुल्लको गत्वा २०।२९
तस्य काले प्रजा दृष्ट्वा ७।१२६
तस्य चित्तपरीक्षार्थं ४६।४३
तस्य जन्मोत्सवं दृष्ट्वा ३२।९
तस्य देहमहं चक्रुः ६१।८
तस्य न्यायपरस्याग्रे ३०।३४
तस्य पञ्चशती व्यासो ५।१७४
तस्य पुत्राः शतं जाताः १७।३१
तस्य प्रभावती भार्या ४५।६२
तस्य मानधनस्यान्ते ३३।६
तस्य मेघनिनादस्य २७।९६
तस्य रक्ततलः पादो २०।५६
तस्याः कृते कृताः सर्वे ४५।१२३
तस्याः कौमारभर्ता तु ४३।१७७
तस्यागमनवेलायां ४३।२३३
तस्या निर्बन्धचित्ताया ३३।३४
तस्यान्तस्थो दयामूर्तिः ५९।५६
तस्यान्तस्तैजसो भर्ता ५९।९९
तस्याः प्रसादने तेन २४।७३
तस्यापि हि मनोवृत्ति १४।९७
तस्या भ्राता महासेनः ४४।२५
तस्यामजनयत्पुत्रं २४।२७
तस्या दत्ते बुधैस्तस्मिन् २१।४६
तस्यामशनिघोषोऽपि ५।६०४
तस्यामितगतिर्नाम्ना २१।२३
तस्यामेकः समुत्तुङ्गो ५९।९६
तस्यामेतदवस्थायां २२।११८
तस्यामेव च वेलायां ४३।३९
तस्याः शोकसमुद्रं स ४३।८३
तस्याश्चानुपदं याति ५९।१०४
तस्याः श्वसुरबुद्धिस्तु ४५।१५१
तस्याश्चरणमूले वः २७।१३०
तस्यासीत्त्वमरस्तेन १७।३३
तस्यां नमुचिनाम्नाभूत् ४४।२७
तस्यां दर्शनमात्रेण ४६।३०
तस्यैकनवतिर्लक्षाः ५।५६३
तस्यैव साऽभवत्पत्नी २६।५३
तस्यैव मध्यभागे तु ५०।१०७
तस्यैवोत्तरपूर्वस्यां ५।३३९
तस्यैवोपरि शैलस्य ५।६९८
तस्यैवोपरि पूर्वस्यां ५।७०४
तस्यैवारो दशम्यां तु ६०।२३२
त्यक्तरागमपि ६३।७७
त्यक्तभुक्तिजरातीत- ३।१३
त्यजत वाचमसत्य- ४५।१५८
त्यज रुक्मिणि शोकं त्वं ४३।८४
त्यक्त्वा कार्कश्यपारुष्यं २।१२३
त्रयः कालास्तु सर्वेषां ६०।५४२
त्रयः केवलिनः पञ्च ९।५८
त्रयः क्रमात्केवलिनो ६६।२२
त्रयस्त्रिंशदुदन्वन्तः ३।१५८
त्रयस्त्रिंशत् समुद्राः क्व २।१३८
त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि ५।९१
त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि ५।४४६
त्रयोऽत्र भ्रातरस्तेऽपि ६४।८
त्रयोदश यथासंख्य- ४।७५
त्रयोदशशतानि स्युः ६०।३९४
त्रयोदशशतानि स्युर् ६०।४३१
त्रयोदशसहस्राणि ५।७९
त्रयोदशसहस्राणि ६०।३७७
त्रयोदशसहस्राणि १०।१२७
त्रयोदशविधस्यैव ३४।१०९
त्रयोदशस्तु यो द्वीपो ५।६९९
त्रयो द्रव्यार्थिकस्याद्या- ५८।४२
त्रयोदशविधोदार- ६४।४०
त्रयोविंशतिलक्षास्तु ४।१९४
त्रयोविंशतिलक्षास्तु ४।१९५
त्रयोविंशतियुक्तानि ५।५९३
त्रयोविंशतिलक्षाश्च १०।३८
त्रयोऽशीतिश्च नवतिः ६०।४८३
त्रयोऽशीत्या शताब्दानि ६०।४८०
त्रयो हस्ता धनूंष्येष ४।३१५
त्रसबादरपर्याप्त- ५६।१०८
त्रसस्थावरकायेषु ५८।१३८
त्रसिते त्वपरा प्रोक्ता ४।२५६
त्रिंशत्षड्विंशतिस्त्रीणि ६०।३१९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रिंशदेव सहस्राणि ५।५१५
त्रिंशद्वर्षसहस्राणि ६०।४७
त्रिंशद्वर्षविहीनस्तु ६०।३३६
त्रिंशदक्षमितैः कूटैर् ५७।१२९
त्रिंशद्गुणप्रथितवर्षसहस्र-१६।७४
त्रिकालयोगप्रतिमा ६४।२६
त्रिकोणा मण्डलाकारा ५७।३०
त्रिखण्डाखण्डिताज्ञोऽन्यैः ४०।६
त्रिगव्यूतिश्चतुर्भाग- ४।३५५
त्रिगुणीकृततेजस्कः ५९।९७
त्रिचत्वारिंशतं सैक- ५।१७०
त्रिचत्वारिंशदिष्टास्ताः ४।१७३
त्रिचत्वारिंशदेवातः ६०।३४४
त्रिज्ञानोपचितो राज्ये ९।६२
त्रिदण्डविस्तृताश्चित्राः ५७।४२
त्रिदशखण्डितविद्यकदम्पती १५।५४
त्रिदशावूचतुर्हेतुं २१।१२९
त्रिधा समयवृत्तीनां ७।१०
त्रिपञ्चाशत्सहस्राणि ५।६५
त्रिपदाख्यस्य मण्डूक्यां ६०।३३
त्रिःपरीत्य पुरं देवाः २।२९
त्रिःपरीत्य प्रणम्याग्रे ४७।६६
त्रिःपरीत्य स तं नत्वा ३३।११२
त्रिपृष्ठस्य सहस्राणि ६०।५१७
त्रिपृष्ठश्च द्विपृष्ठश्च ६०।२८८
त्रिवर्णाब्जनिभे यस्या ८।२३
त्रिविधाङ्गुलषट्कः स्यात् ७।४५
त्रिविधेऽपि बुधः पात्रे ७।११०
त्रिबोधशुचिचक्षुषः ३८।१०
त्रिमार्गगा प्रयात्येवं ५९।९५
त्रियोजनसहस्राणि ५।४५३
त्रिलोकसारं श्रीकान्तं ५७।११
त्रिलोकाधीशितां छत्र- ५७।१६३
त्रिलोकीवान्तसाराभा- ५९।५८
त्रिविष्टपपुराकारं १७।१८
त्रिंविंशतिसहस्राणि ६०।४५६
त्रिशती च त्रयस्त्रिंशत् ५।४३८
त्रिशत्या त्रिसहस्री तु ६०।४११
त्रिशिरा इति देवी स्याद्५।७२०
त्रिशून्यं केशवश्चैकः ६०।३२९
त्रिषष्टिरिन्द्रकैः सार्धं ४।१४८
त्रिषष्टिपटलानि स्युः ६।४२
त्रिषष्टिपुरुषोद्भूतिं १।११७
त्रिषष्टिः त्रिशती यत्र २।९५
त्रिसहस्री द्विशत्या तु ६०।४१०
त्रिसहस्री शतारे स्यात् ६।६०
त्रिसंख्या गुप्तयः पञ्च ५८।३०१
त्रीणि त्रीणि तु शुक्राणां ६।६
त्रीणि त्रीणि हि कूटानि ५।६०१
त्रैधस्तेन प्रयोगस्तै- ५८।१७१
त्रैलोक्यस्य सुखासुखानु- ३।१९७
त्रैलोक्यं संसदि स्पृष्टं २।११२
त्रैलोक्यासनकम्पशक्त- ३४।१५०
त्रैलोक्ये जिनशासनोरुप- ९।२२४
त्र्यशीतिश्च शतान्यष्टौ ५।९६
त्र्यशीतिके वर्षशते तु ६६।२३
त्वं गृहाण विभो विद्यां २६।५४
त्वं प्रकाशय सौभाग्यं ३१।३४
त्वं पुनः शिशुपालाय ४२।५५
त्वं महीध्रवनरन्ध्र- ६३।३७
त्वं मज्जनविधिं सद्यः १४।६८
त्वं राजावरजाग्रस्ते ५०।९४
त्वं वर्त्तय त्रिभुवनेश्वर- १६।५२
त्वं विधाता स्वयंबुद्धम् ८।२१३
त्वं संसारमहाचक्राद् ९।६९
त्वमस्थिशेषभूतोऽहं २१।८७
त्वमहं च खगेन्द्रोऽयं २७।१९
त्वमनङ्गभुजङ्गस्य ८।२१५
त्वन्नामग्रहणाहार- ४२।६०
त्वमेव भगवन् गत्वा २०।४१
त्वयि सकलधरित्रीं ३६।६६
त्वयि राजनि राजन्ते १९।१७
त्वत्पादन्यासलीलाया- ८।८५
त्वत्प्रवृत्तिमिव वेदितुं ६३।४०
त्वद्वियोगमहादुःख- ३०।११
त्वां पयोऽर्थमपहाय ६३।२६
त्वां मुक्त्वाम्ब न मे १४।८३
त्विषा राजतमूर्तीनि ६।१९
तां कृत्वा दक्षिणे भागे ५७।८७
तां ददर्श च शुद्धान्ते ४२।३५
तां प्रद्युम्नकुमारोऽपि ४७।११५
तां वार्तामुपलभ्यासौ ४३।२३
तां शुश्रूषाकरीं श्वश्रूं २१।१७६
ताडितः पुनरुद्वृत्तः ४८।१८
ताडितश्च विबुद्धेन २४।७९
तादृशं तनयं दृष्ट्वा ४७।२७
तानधीत्य तदुक्तेन २३।४४
तानवोचदसौ राज्ञः ३०।४९
तानि पञ्चशतोत्सेध- ५।६००
तानाश्चतुरशीति- १९।१७१
तानि वर्षसहस्राणि ७।६२
तान् प्रशाम्य गतौ दीनौ ६१।८९
तान् प्रशस्य ततश्चक्री १२।६
तान् संमान्य यथायोग्यं ५१।५
ताः पवित्रजलापूर्ण- ५७।७४
तापसा बालतपसः ३।१३४
तापस्यपि सुतां लेभे २९।३४
ताभिरष्टाभिरप्युक्ता ७।३८
ताभ्यां जिगमिषोस्तस्य ३२।१९
ताभ्यामिन्दुपुरं चक्रे १७।२७
ताभ्यामेकदिनौपम्य- ४३।१९
तामप्यादाय संप्राप्तः ३२।२६
तामयोध्यां परागोध्यां ८।२३१
तामुत्तरविदेहेषु ५।२४२
तामसास्त्रं परिक्षिप्तं ५२।५५
ताम्बूलरागनिर्मुक्त- ३०।२३
तारकापटलाद् गत्वा ६।४
ताराभरत्नजातीनां ९।७८
तारामण्डलमत्यल्पं ६।१३
तारे या परमा प्रोक्ता ४।२८१
तारे चापि ग्रहे कार्यस् १९।२५५
तार्क्ष्यकेतुमनोभिज्ञाः ५१।१९
ता वनस्पतिकायेषु १८।५८
तावग्निवायुभूती तु ४३।१३६
तावच्च द्वौ विमानाग्राद्२१।१२७
तावच्च सहसा प्राप्ताः २४।४२
तावच्च मणिवाप्यन्ते ४३।११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तावच्च सहसा बुद्ध्वा १९।१०१
तावच्चिन्तयतां साधो ४३।१३९
तावदाशु वयं शूरं ४०।१६
तावदाघ्मातमाध्याह्न- ९।१६६
तावदुद्योतिताशास्ता ५३।६
तावद्तद्व्यसनं श्रुत्वा ४३।१४१
तावदेव समागत्य ५।१५८
तावदेव गता शैले ५।१५५
तावन्त एव चैकोनाः ४।८७
तावन्त एव संख्याताः १२।७७
तावन्त्येव भवन्त्यस्यां ४।४५
तावन्त्येव च जायन्ते ४।२३१
तावन्त्येव पुनस्तानि ४।२३२
तावन्त्येव सहस्राणि १२।७३
तावारूढौ च दुर्मोच- १४।४६
ताश्चत्वारिंशदेकोना ४।१७७
ताश्चापि द्विविधाः शुद्धा १९।१७९
ताश्च पल्योपमायुष्काः ५।१३१
तासां वज्रमयी सिद्धिश् ५७।१२७
तासां मध्येषु वापीनां ५।६६९
तासु भक्त्या प्रनृत्यन्ति ५७।४०
तास्तु निश्चिन्तचित्त- ४५।१०४
तितिक्षो पृथिवीं यस्य ९।१६९
तिथिपर्वचतुर्मासो १८।९९
तिमिरभरं त्रिमूढिमयमत्र ४९।४६
तिरयन्ती रवेस्तेजः ५९।१०३
तिर्यञ्चोऽपि यथाशक्ति- २।१३५
तिर्यग्गतावपर्याप्त- ३४।११८
तिर्यञ्चो मानुषा देवा ३।१२०
तिलमात्रोऽपि देहस्य २३।११४
तिलकाद्यानि दिव्यानि ११।२२
तिष्ठ तिष्ठ दुराचार १९।१०२
तिष्ठत्यत्र पिता भ्रष्टः १९।८६
तिष्ठन्नेव महोदये २।१५१
तिष्ठत्वन्यदिहामुष्य- २३।११५
तिष्ठन्तु तावदन्यानि १९।२९
तिष्ठत्वेकोऽपराधी हि २७।५०
तिसृणामपि जातीनां १९।२१०
तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च ४८।७४
तिस्रः खेटकसंगूढा २१।१८
तिस्रो लक्षाः सहस्राणि ५।५३६
तिस्रो लक्षाः परिक्षेपः ५।४
तिस्रो लक्षाः सहस्राणि ५।५३८
तिस्रो लक्षाः सहस्राणि ५।५८७
तिस्रो लक्षाः सहस्रं च ६०।४४५
तिस्रस्त्रिंशत्सहस्राणि ६०।४३४
तिस्रोऽष्टानां पृथग्लक्षा ६०।४४१
तिस्रोऽस्य पूर्वलक्षास्तु ६०।५०२
तीक्ष्णदंष्ट्राः समाः स्निग्धा २३।९८
तीव्रधर्मसमयात्यये ६३।४५
तीव्रमन्दादिभावेन ५८।२१२
तीव्रमिथ्यात्वसंबद्धा ४।३७२
तीर्थं देवावतारारूयं ५०।६०
तीर्थं चतुर्थमन्वर्थं १।६
तीर्थं व्युच्छिन्नमुद्भाव्य १।१३
तीर्थकरनामकर्मणि ३४।१४९
तीर्थकृच्च महापद्म- ६०।५५८
तीर्थभूमिविहृतिः ६३।१०१
तीर्थयात्रागतानेक- ३।५८
तीर्थसिद्धिर्द्विधा तीर्थ- ६४।९५
तीर्थे चतुरशीतिस्तु ६०।४७७
तीर्थे भीमावलिर्जातो ५०।५३४
तीर्थे नेमिजिनस्य ६५।५९
तीर्थेनैकोनविंशेन १।२१
तुङ्गभङ्गतरङ्गोद्य- ४१।६
तुङ्गाभिमानिनः केचिद् २८।१०
तुङ्गासौ साङ्गदौ वृत्तौ ९।८
तुङ्गिकाशिखरारूढो ६५।२६
तुल्याङ्गं तुल्यमप्यस्माद् ७।२८
तुमुलरणशतानि ३६।७३
तुम्बुरुर्नारदः किं वा १९।२६३
तुरगस्त्वरया दिव्यः ४७।१०३
तुरङ्गतुङ्गमातङ्ग- ९।१५३
तुर्यव्रतोपवासैस्तु ३४।११२
तुषच्छविनखैः क्लीबाः २३।९२
तुष्टोऽनावृष्टिरप्याशु- ५१।४३
तृणाम्बुतृप्ताः स्तनलग्न- ३५।५२
तृतीयकालशेषेऽसा- ८।९७
तृतीयभवसिद्धस्त्वम् ६०।९४
तृतीयं शुक्लसामान्यात् ५६।७१
तृतीयाया द्वितीयाया ४।३८१
तृतीयान्त्यस्य निर्दिष्टा ६०।४५७
तृतीये नियतिः पक्षः १०।७०
ते काश्यप्यामपश्यन्तः ४०।३८
ते कियद्भिरपि वासु ६३।५४
ते चत्वारिंशदष्टाभिः ६।११
ते चादेशवशात्कन्ये ४६।१६
ते चाष्टयोजनागाधा ११।११३
तेजस्वी चाग्निमित्रश्च १२।५८
तेजोहीनेऽधुना लोके ७।१३५
तेन चाहमुपायेन २१।५३
तेन ते यावदायाति २०।३९
तेन नैमित्तिकादेश- २९।११
तेन पूर्वोक्तदोषोऽपि १७।१२७
तेन भोः क्षुभितान्याशु २८।९
तेन मानसवेगेन ३०।३९
तेन स्वहिण्डनाख्यानं
तेनान्तःपुरमात्मापि ५४।९
तेनायममरैः सर्वे ३।१९०
तेनाहं शान्तवेषेण २१।८१
ते नीलनिषधप्रासौ ५।२१३
तेनैव षोडशाभ्यस्त- ५।४८०
तेनोक्तं सोमदत्तेन २४।३९
ते नन्दीश्वरयात्रायां ६४।१२७
ते पञ्च नवतं भागं ५।४७९
तेऽपि तस्थुर्यथास्थानं ३।६४
तेभ्यः करणभूतेभ्यः ७।११
तेभ्यो विरतिरूपाण्य- ५८।१३४
तेऽब्रुवन्नहमेमीति १७।४५
ते महर्द्धिकदेवानां ३।१३७
तेऽर्हन्तः सन्तु नः सिद्धाः १।२८
तेषां क्षुत्क्षामगात्राणां ९।१०५
तेषां चरमदेहाना- ५९।१२४
तेषां तस्य च संग्रामो ५२।४२
तेषां तु मध्यदेशेषु ५।१२०
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च ४८।७३
तेषां मध्ये तु यौ भग्नौ २२।५३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेषामन्ये महादिक्षु ५।४०७
तेषामष्टशतं जातिर् ५७।४५
तेषामुपरि प्रत्येक- ५।२०२
तेषामृतुविमानं स्याद् ६।४४
तेषां विहरतां सार्धं २७।८
तेषु संख्येयविस्तारां ६।७८
तेषु संख्येयविस्तारा ४।१६१
ते सम्यग्दर्शनं केचित् ५८।३०७
ते सच्चित्तेन निक्षेपः ५८।१८३
तैरज्ञातकुलं दृप्तैस् ४३।५६
तैरजैः खलु यष्टव्यम् १७।६५
तैरष्टाभिर्भवेल्लिक्षा ७।४०
तैरेवावलिकासंख्यै- ७।१९
तैः सह क्रीडया यातो २१।१४
तैः संरम्भसमारम्भैः ५८।८५
तैस्तैर्देवैः कृतैः सर्वैर् २।७५
तोयार्थं मे गतो रामो ६२।५२
तोरणान्तरभूतुङ्ग- ५९।५०
तोरणान्यवगाहेन ५।१५२
तोरणैः शोभते मार्गः ५९।४८
तोषः साधुषु मे नाथौ ३४।१३
तोषिते मयि नृत्येन ९।५३
तोषी लोकप्रकाशार्थं २९।७०
तौ च निर्वाणधामानि २७।१०
तौ दृष्टिमुष्टिसन्धान- ३१।७९

[द]

दक्षप्रजापतेर्वृत्तम् १।७८
दक्षिणं पक्षमाश्रित्य ५०।१११
दक्षिणस्यां महाश्रेण्यां ५।२३
दक्षिणापरदिग्भागे ५।४२८
दक्षिणापरदिश्यन्ते ५।७२३
दक्षिणापरतो मेरोः ५।१८७
दक्षिणाभिः समा नद्यः ५।१५९
दक्षिणाशारणान्तानां ६।११९
दक्षिणाक्षिभुजास्पन्दो ३१।१०६
दक्षिणोत्तरतो दैर्घ्यात् ५।२६४
दक्षो जित्वा सुभानुं तं ४८।१४
दक्षो दक्षिणभारतार्ध- ६२।६४
दण्डः किष्कुद्वयं दण्डः ७।४६
दण्डा हस्तोऽङ्गुलान्येषु ४।३१३
दण्डाकारा घनीभूता ४।३५
दण्डाकारपरित्यागे ४।३७
दण्डाः पञ्चदशैवासौ ४।३१६
दण्डैर्मनोगजो मत्तो ४३।१९४
दण्डोपायप्रधानं तं ५०।१९
दत्तवक्त्रस्ततो दत्त- ३१।९६
दत्तप्रयाणमेनं त्व- ४०।४
दत्तनागवलिः कन्या ४२।६८
दत्तं किमिच्छकं दानं २१।१७७
दत्तं गृहाण ते राज्य- २०।२२
दत्तास्थानो नृपैर्देवैर् ९।७६
दत्तायामुत्तरश्रेण्यां २७।८०
दत्तो नारायणः कृष्णो ६०।२८९
दत्तोत्तरो विनिर्गत्य ४३।८०
दत्वासावभयं तस्य ५४।५१
ददाति तस्मै पुरुषोत्तमाय ३५।७३
दधार कर्मप्रकृतिं श्रुतिं च ६६।३०
दध्याविति स लोकेऽस्मिन् ४२।२८
दध्यौ वधूरियं कस्य १४।३६
दध्मौ नेमीश्वरः शङ्खं ५१।२०
दन्तास्थिभिरयं तुष्टः २७।७१
दमघोषं यशोघोषं ३१।२७
दया सत्यमथास्तेयं १०।७
दया सकलभूतेषु ५८।९४
दर्पणग्रहणे काश्चिद् ८।५१
दर्भशय्याश्रिते तस्मिन् ४१।१६
दर्शनस्पर्शनाभ्यां या ८।३३
दर्शनज्ञानचारित्र- १०।१३२
दर्शनानन्तरं यत्र ३१।३६
दर्शनामृतसिक्ताया ४७।११७
दर्शनीयतमाङ्गस्य १४।८
दर्शनेन तवास्याशु २२।१४५
दर्शयन्निति कान्तायै १२।४५
दर्शयन्ति स्वयं काश्चित् ८।४४
दवदिवाकरदग्धवनावली ५५।७६
दश चतुर्दशाष्टौ चा १०।७३
दश दशार्हकुमारगणावृतः ५५।३१
दशधा सत्यसद्भावे १०।९८
दशधाध्यात्मिकं धर्म्य- ५६।३८
दशमो दशमो भागो ५।५२९
दशलक्षाः चतुःषष्टि- ५।२७४
दशवर्षसहस्राणि ४।२४९
दशवर्षसहस्राणि १८।६६
दशवर्षसहस्राणि ६०।६१
दशवैकालिकं वक्ति १९।१३४
दश सप्तशती चान्या ५।३९२
दशपूर्वी विशाखाख्यः १।६२
दशशतहरिहस्ति- ३६।४४
दशधा कल्पवृक्षोत्थं ७।९१
दशषोडशभिस्तस्य ५७।१२५
दशानां कोटिलक्षाणां ७।१७०
दशानामसुरादीनां ४।५९
दशानामसुरादीनां ८।१३५
दशानामायुषः पादः ६९।३३५
दशार्धवर्णभासद्भिर् ५।३७०
दशार्हाश्चापि विख्याताः ५०।१२२
दशार्हादयो मुनयः ६५।१६
दशार्हतनयास्तास्ते ४७।१९
दशार्हवदनाम्भोज- ४१।४९
दशार्हाः सान्त्वना भोजाः ५०।६८
दशार्णवोपमायुष्का ३।१५३
दशार्णवास्तमो नाम्नि ४।२८६
दशोत्तरशतं तेषां २२।८४
दशैवोत्तरपूर्वाणां १०।७४
दशैवोपरि मूले च ५।४३४
दशोपसर्गजेतारः १०।३९
दह्यमानशरीरोऽसौ ६१।७
दह्यते विपुलः कस्य ४०।३२
दष्टः श्रीभूतिपूर्वेण २७।६५
दंष्ट्राभाजनमग्रेऽस्य २५।२७
दाक्षिणात्या जनपदा ११।७१
दाक्षिण्यभङ्गभीतेन ४५।१२४
दानपूजादिधर्मांशा ५७।१५९
दानपूजातपःशील- २७।७४
दानपूजातपःशील- १०।८
दानशीलतपःपूजा ५७।८२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दानोपवासविधिना ६०।४६
दायादः शकुनेर्वीरः ५०।७२
दारेषु परकीयेषु ५८।१४१
दाहदुःखमृतं कान्तं ४५।८२
दिक्कुमारी प्रसिद्धासौ ५।७१०
दिक्कुमारी तथा ज्ञेया ५।७०९
दिक्कुमारीकृताभिख्यां २।२४
दिक्कुमार्यस्तु कूटेषु ५।३३२
दिक्षु चत्वारि कूटानि ५।७१८
दिक्षु षट्सप्ततिर्ज्ञेया ४।१२४
दिक्षु द्वासप्ततिः सा ४।१२५
दिक्षु विंशं शतं ज्ञेयं ४।१११
दिक्षु षण्णवतिर्द्वाभ्यां ४।११९
दिक्षु द्वानवतिः सा ४।१२०
दिक्ष्वशीतिर्त्रिदिक्षु ज्ञैः ४।१२३
दिग्गताः शतरुद्राः स्युः ५।४७८
दिग्धश्चन्दनपङ्केन ८।१८७
दिग्धं चन्दनपङ्केन १४।८६
दिग्वस्त्रविभूषाभिः ६।१२२
दिग्विरत्यभिचारोऽध- ५७।१७७
दिङ्नागनासिकाजङ्घा ९।८२
दिङ्मुखानि प्रसन्नानि ८।८७
दित्या चाष्टौ निकायास्ते २२।५९
दिदृक्षया ततो याताः ४१।१
दिनं दिनं दृश्यमुखं ३७।१२
दिनान्येकोनपञ्चाशत् १८।६७
दिवः पतितुमारब्धा ८।३८
दिवश्च्युता विदेहेषु ३।१७१
दिवि कदाचिदसौ १५।४३
दिव्यरूपं तमालोक्य ४७।९९
दिव्यं वदरतन्मात्र- ७।६९
दिव्यामोषधिमालां स ११।४६
दिव्यान्यन्यानि चास्त्राणि ५२।५६
दिव्यामोदसमाकृष्ट- ८।१७३
दिव्यान् भोगान् सुरानीतान् ९।४६
दिव्यायुधं हलमभादपरा- ५३।५१
दिव्येन दह्यमानायां ६१।७७
दिव्येक्षुरसतृप्तानां ९।२७
दिव्यौषधिप्रभावेण २४।३२
दिशां मुखेभ्यः समिता ३७।४
दिशा वैश्रवणस्यैव ९।१७३
दिशागजेन्द्रकूटानि ५।५११
दिशावली प्रिया राज्ञो ४५।१०८
दिशि चोत्तरपूर्वस्यां ५।३४७
दिशि प्राच्यां प्रतीच्यां च ५।६९६
दिष्ट्या त्वं वर्द्धसे स्वामिन् १९।७२
दिष्ट्याभ्युपगतं तत्तु २१।१७०
दीक्षा कृष्णनवम्यां तु ६०।२२६
दीक्षां जग्राह जैनेन्द्रीं १३।२
दीक्षित्वा पुण्डरीकिण्यां ३४।३६
दीपैर्दीपशिखाजालैर् २२।२३
दीप्रेणाप्युपशान्तेन ९।१८१
दीयते दातुकामैर्न ५८।२८०
दीर्घनिद्रमिव वीक्ष्य ६३।२९
दीर्घजीवितसद्भावं ४३।८५
दीर्घमुष्णं च निश्वस्य २४।४८
दीर्घस्वस्तिकवृत्तैस्तैर् ५।३८९
दीर्घा दीर्घायुषां पुंसां २३।८७
दीर्घां नीत्वा निशामेषा ८।८४
दुकूलमणिभूषण- ३८।५५
दुःखत्रयमहावर्ते ९।६८
दुःखशोकवधाक्रन्द ५८।९३
दुःखमेवेति चाभेदाद् ५८।१२४
दुःखाख्यश्च महादुःखो ४।१५४
दुःखी जरत्कुमारश्च ६१।३०
दुरन्ता बन्धुसंबन्धा २६।३५
दुर्गतिष्वकुशलानु- ६३।८८
दुर्जयमप्यरिलोकमनेकैः २५।७२
दुर्जयो दुर्मुखश्चापि ५२।३७
दुर्जनैर्निशितदुर्वचो ६३।१०४
दुर्बलस्य वराकस्य २७।३२
दुर्भाग्याग्निशिखालीढः १८।१३२
दुर्भुजङ्गचरी कृत्वा २७।६६
दुर्मर्षणादयस्तेऽमी १२।४१
दुर्योधनान्वयस्तत्र ६५।१९
दुर्योधनार्जुनौ योद्धुं ५१।३१
दुर्योधनोऽन्यदा दूतं ४३।२०
दुर्लभेऽप्यभिलाषस्य १४।८५
दुर्वचो विषदुष्टान्तर् १।४६
दुष्कर्मोपशमाल्लब्ध्वा १८।९५
दुःषमा चावसर्पिण्या ७।५९
दुःषमायां तु संजातो ६४।९२
दुष्पूरो दुर्मुखाभिख्यो ४८।५१
दुःसंसारस्वभावज्ञा १२।५१
दुहितुरिति विलाप- ३६।६७
दुहितुर्मातुलस्यासौ १८।१३१
दूतप्रेषणपूर्वं स ४४।३५
दूतो गत्वा जरासन्धं ५०।६१
दूरतस्तमथ तत्र ६३।८
दूरादिन्द्रादयो यस्या ५७।९
दूरात्कटाक्षविक्षेपि १४।४३
दूराच्चाल्पधियः सर्वे ५९।९०
दृढगुणगूढगुल्फ- ४९।३
दृढपदहतिगाढा ३६।३४
दृढवर्मा च विक्रान्तस् ५०।१३२
दृढमुष्टिघनाघात- २४।६
दृढेन निगडेनेव ३।९७
दृश्यते दृष्टिहारी ५९।१०१
दृश्या दशसहस्राणि ६०।३७८
दृष्टश्रुतानुभूतस्य ७।१३९
दृष्टः संक्लिष्टधीस्ताभ्यां ६१।६०
दृष्टः सुरगणैर्यः प्राक् ८।१६८
दृष्टः सप्रश्रयं श्रीमा- २२।१५१
दृष्टं तैमिरिकं कैश्चिद् ९।१०६
दृष्टा दर्शनमोहस्य ५८।२०७
दृष्टिवादप्रमाणं स्याद् १०।४६
दृष्टिमुष्टिरनावृष्टि- ४८।६१
दृष्टिरश्मिभिराकृष्य १४।७२
दृष्टो मयाद्य सद्रूपः १४।८४
दृष्टो रुक्मिणि ते पुत्रो ४३।२३१
दृष्टो विद्याधरो वृक्षे २१।१७
दृष्ट्या दहामि दायाद- ४५।५३
दृष्ट्वा गजकुमारस्त- ६०।१३१
दृष्ट्वा विवाहमुर्वीशास् ३१।१३५
दृष्ट्वा तुष्टेन तेनामा- ३९।४४
दृष्ट्वा हृष्टा जगौ तं सः ४७।६३
दृष्ट्वा ज्येष्ठरथं दूरात् ३१।१०२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दृष्ट्वास्त्रकौशलं तस्य ३१।१२१
दृष्ट्वा चित्रगतां कन्यां ४२।४६
दृष्ट्वा कस्मात्समानीताः ५०।२
दृष्ट्वा च तं तदाध्यक्षै- २६।३२
दृष्ट्वा वृष्टिं ततश्चक्री ११।३५
दृष्ट्वा श्रुत्वा च वृत्तान्तं ३३।१२६
दृष्ट्वा च तेन तुष्टेन ३३।१२
दृष्ट्वासौ विस्मितो ४२।३९
देवकालबलोपेता ५०।२८
देवभक्त भज सांध्य- ६३।३३
देवमार्गोत्थिते दिव्ये ५९।३६
देवयात्रामिमां दिव्या- ५९।७५
देव ! वेगवती पत्नी ३२।१३
देवस्वस्य विनाशेन १८।१०२
देवदर्शनपर्यन्त- ३०।२२
देवदानवचक्रस्य ८।१२४
देवपूजा यजेरर्थस् १७।१२९
देवक्या सह वन्दित्वा ३३।४२
देवक्याः सप्तमः सूनुः ३३।९३
देवक्यास्तनया ये षट् ५९।११६
देवः कैटभपूर्वोऽसौ ४८।२
देवताधिष्ठितायास्तैश् ४५।१२९
देवताकृतमायातो १।९८
देवकं देवनाथाभं ३१।३१
देवा नन्दीश्वरं द्वीपं २२।२
देवाः सामानिका भोगं ६४।११२
देवाः शुक्रमहाशुक्रं ३।१६५
देवा वायुकुमारास्ते ३।२२
देवाः कन्दर्पनामानो ३।१३६
देवार्चनार्थमायातं १९।११६
देवी स्वयंप्रभस्यातो ६०।११६
देवी सुदर्शना तस्य ४५।११५
देवीं च रुक्मिणीं दृष्ट्वा ४३।३०
देवी त्वं च निजं येन २९।५५
देवेन रक्षिताः कंसात् ६०।६
देवेन नीयमानः सन् ५४।४०
देवैर्विद्याधरैर्वीरैः ।२०।५८
देवोपपादमाचष्टे १०।१३७
देवौ देवसुखं भुक्त्वा ४३।१४८
देवौ गन्ध-महागन्धौ ५।६४४
देव्यः शिवादयो नम्रं ३२।४१
देव्यः शिवादयो बह्वयो ६१।१०
देशप्रत्यक्षमेव स्यान् १०।१५३
देशप्रत्यक्षमुद्भूतो १०।१५२
देशानेताननुज्ञातान् ११।७६
देशाश्चापि हि तावन्तो ११।१२७
देशकं मुक्तिमार्गस्य १७।१३१
देशानुल्लङ्घ्य निःशेषान् ४०।२५
देशेष्वेकादशानां तु ५।३१०
देहः सूक्ष्मनिगोदस्य १८।७३
देहनिर्यदवयवा ६३।९४
देहदन्तप्रभाक्रान्त- १।११
देहस्थितेन शुद्धेन ४२।५
देहे देहे सवृत्तित्वे ५८।३३
दैवपौरुषसामर्थ्य- ४०।९
दैवे तु विकले काल- ५२।७२
दौर्भ्यामालिङ्ग्य तां ४४।११
दोषाकरकराप्राप्ता १४।५
दोषाकरः कलङ्क्येव ८।७९
दोषाविष्करणं दुष्टैः १०।९३
दोषोपशमसंतोष- ६४।२२
दौर्भाग्ये वा भाग्यहीने ५५।१३६
द्वन्द्वयुद्धे तदा जाते ५१।३४
द्वन्द्वयुद्धे शिरस्तुङ्गं ४२।९४
द्वन्द्वयुद्धे प्रवृत्तेऽतो ५३।१४
द्वयं तच्च समायुक्तं ४।१०२
द्वयोरन्वेषितः श्रेण्योर् २६।४२
द्वयोस्तु सप्तमी पृथ्वी ६०।५४६
द्वयोर्द्वयोर्विमानानि ६।१००
द्रव्यपर्यायरूपत्वात् ३।१०८
द्रव्यभावभवक्षेत्र- ३।७७
द्रव्यपर्यायभेदानां १०।१०७
द्रव्यस्यानन्तशक्तित्वात् ५८।५०
द्रव्याद् द्रव्यान्तरं याति ५६।६२
द्रव्यार्थान्निर्विकारत्वात् ७।८
द्रव्याणामपि जीवानां ५६।४४
द्रव्ये क्षेत्रे काले ३४।१४५
द्रव्ये क्षेत्रे च कालादौ १०।१३१
द्राग् निवृत्य निजं स्थानं ४०।४३
द्वाचत्वारिंशदिष्टानि ६०।३०७
द्वाचत्वारिंशदष्टौ च ५।१६८
द्वाचत्वारिंशदष्टौ च ५।८०
द्वाचत्वारिंशदब्दानां ७।६१
द्वाचत्वारिंशदादित्याः ६।२७
द्वात्रिंशता चतुःषष्ट्या ३४।१२३
द्वात्रिंशच्च महादिक्षु ४।१३९
द्वात्रिंशं हि शतं दिक्षु ४।१०८
द्वात्रिंशत् त्रिदशेन्द्रैः स १३।४
द्वात्रिंशद्द्वादशैकं च ६०।३२१
द्वात्रिंशदथ बाहुल्य- ४।५७
द्वात्रिंशच्च सहस्राणि ५।१८५
द्वादश स्युः सहस्राणि ५।२६६
द्वादशाङ्गधरो जातः १२।५२
द्वादशाङ्गं श्रुतज्ञानं ५९।१२२
द्वादशाङ्गं श्रुतज्ञानं १०।११
द्वादशाग्रं शतं दिक्षु ४।११३
द्वादशाङ्गविकल्पेषु २३।४२
द्वादशात्मभिदया ६३।७९
द्वादशैव सहस्राणि ५।५०२
द्वादशैव सहस्राणि ५।४१४
द्वादशैव सहस्राणि ५।४६९
द्वादशैव सहस्राणि ६०।५२१
द्वादशैव महादिक्षु ४।१४६
द्वादशैव सहस्राणि १२।७६
द्वादशैव सहस्राणि ६०।३६५
द्वादश्यां ज्येष्ठकृष्णस्य ६०।२२८
द्वादश्यां ज्येष्ठकृष्णस्य ६०।२२९
द्वादश्यां ज्येष्ठमासस्य ६०।१७२
द्वापञ्चाशन्महादिक्षु ४।१३२
द्वाभ्यां दशसहस्राणि ६०।३७०
द्व्यासना यासु शुद्धा- ३४।१४४
द्व्याद्यास्ते यत्र पञ्चान्ता- ३४।६४
द्वारस्य चोच्छ्रयस्तेषां ५।३५६
द्वारिकावधि तिष्ठन्तः ५०।१६
द्वारिका विभवालोक- ४२।८
द्वारेणोद्घाटितेनासौ ११।४
द्वावंशावथ पञ्चम्या- १९।२४५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वाविंशतिस्तथोक्तानि ६०।३११
द्वाविंशतिप्रमाणोऽयं १९।१५२
द्वाविंशतिस्त्विमा वेद्याः १९।१६०
द्वाविंशतिभिदाभिन्न- ५८।३०२
द्वाविंशतिधनुर्भिश्च ४।२३९
द्वाविंशतिरतस्तूर्ध्वं ३४।११९
द्वाविंशतिधनूंषि द्वौ ४।३२
द्वाविंशतिसहस्राणि १८।६४
द्वाविंशतिपृथिव्यङ्गा १८।५९
द्वाविंशतिशतान्याहुर् ५७।१३२
द्वाविंशतिपयोराशि ४३।२१६
द्वाविंशतिर्महापद्मे ६०।३०९
द्वाविंशतिसहस्रे द्वे ५।२८२
द्वाविंशतिर्यतिशतानि १६।७२
द्वारेकः पुनरेक एव हि ३४।९९
द्वाषष्टचब्दसहस्राणि ६०।५०९
द्वाषष्टिश्च सहस्राणि ६०।३५५
द्वाषष्टयैकं शतं त्रीणि ५।५२७
द्वासप्ततिसहस्राणि १८।६८
द्वासप्ततिसहस्राणि ५।४६७
द्वासप्तत्युत्तरं कोटी ५।६५०
द्वासप्तत्या शतं दिक्षु ४।९५
द्विकोट्यौ नवलक्षाश्च १०।१२४
द्विगुणद्विगुणायाम- ५।१२९
द्विगुणद्विगुणव्यासा ५।६२१
द्विगुणिताष्टसहस्रवधूगणै- ५५।४३
द्विगुणास्त्रिगुणाश्च स्युर् ५।३८५
द्विघ्ने संकलिते हि ३४।७५
द्विचत्वारिंशदेवातः ६०।४९२
द्विचत्वारिंशदुक्तास्ता ४।१७४
द्विजैः सामर्ग्यजुर्वेद- १७।८८
द्विट्प्रयुक्तशरासारं ३१।८१
द्वितीयायाञ्च षट्कृत्वः ४।३७७
द्वितीये तु महापीठे ५७।१४१
द्विपञ्चाशं शतं दिक्षु ४।१००
द्विपृष्ठश्च त्रिपृष्ठश्च ६०।५६७
द्विपृष्ठस्यापि कौमार्यं ६०।५१९
द्वियोजनशतक्षोणी ३।१४
द्विरष्टवर्षसु स्त्रीषु ४३।१०३
द्विविधं कर्मबन्धं च २।१०९
द्रव्यार्थादेशतः शक्तिर् ५८।२२४
द्विशत्यशीतिश्चतुरुत्तराः ३४।७३
द्विशत्यष्टौ च कोदण्डा ४।३३७
द्विशत्या सावधिः संघ- ६०।३९२
द्विशत्यातः सहस्रं हि ६०।४६६
द्विशत्या शिक्षका ६०।३९७
द्विषं तमन्वेष्टुमितः ३५।६८
द्विषड्योजनविस्तीर्णा ११।३६
द्विषड्योजनदृश्यास्ते ५७।१५
द्विषष्टियोजनोत्सेधा ५।६८२
द्विषष्टियोजनान्यूर्ध्वं ४।३५८
द्विषष्टियोजनान्यत्र ५।३०१
द्विषष्टिस्तु धनूंषि द्वौ ४।३३२
द्विषोढाविरतिर्ज्ञेया ५८।१९६
द्विसहस्ररथं सैन्यं ३१।७०
द्विसहस्राश्रयो नाना ५७।१६
द्विहानिक्रमतोऽतोऽग्रे ६।१०२
द्वीपं च धातकीखण्डं ५।५६२
द्वीपं तु कुण्डलवरं ५।६१८
द्वीपं कुशवरं नाम्ना ५।६२०
द्वीपानतीत्य संख्यातान् ५।१६६
द्वीपायनकुमारोऽसौ ६१।२८
द्वीपायनोऽपि महता ६१।४६
द्वीपेऽस्मिन् काञ्चनैस्तुल्या ५।२८०
द्वीपे च धातकीखण्डे २७।१११
द्वीपेऽत्रैरावतक्षेत्रे ६०।४८
द्वीपेष्वर्धतृतीयेषु २२।२७
द्वीपेऽस्मिन्कच्छकावत्यां ६०।७५
द्वीपेऽत्रैव सुपद्मायां ३४।३
द्वीपे तु द्वौ मतौ पूर्वौ ६।२६
द्वीपो वापि समुद्रो वा ५।६३४
द्वीपो भूतवरश्चान्यः ५।६२५
द्वीपोऽपि धातकीखण्डः ५।४८९
द्रुपदोऽस्यास्तदा भूयस् ४५।१२१
द्रुपदस्य सगोत्रस्य ४५।१४४
द्रुमकोटरमध्यास्य ४५।११७
द्रुमसेनं महावीर्यं ४४।२३
द्रुमषेणर्षिमेकान्ते ३३।१४९
द्युमणिद्योतितं द्योत्यं १।५२
द्यूते तत्रोत्तरीयं च २१।५५
द्यूते निर्जितमादाय २७।३८
द्यूतवेश्याप्रसङ्गेन ३३।१०१
द्यूते जित्वा हिरण्यस्य २६।३०
द्वेधा चारित्रमोहस्तु ५८।२३४
द्वे लक्षे च सहस्राणि ४।१४४
द्वे लक्षे च सहस्राणि ५।५३५
द्वे सहस्रशतैर्युक्ते ५।९५
द्वे सहस्रे नरेन्द्रास्ते ५८।३०८
द्वे सहस्रे शते द्वे च ६०।४१८
द्वे सहस्रे सुपार्श्वस्य ६०।३८२
द्वे सहस्रे शतान्यष्टौ ५।४८८
द्वे सहस्रे शतं पञ्च ५।५७
द्रोणाश्वत्थामवीराभ्यां ४५।१४३
द्योतमाने जिनादित्ये ३।८
द्योतिर्मण्डलवासिन्यो ५७।१५२
द्वैग्रामिकीनां जातीनां १९।२०५
द्यौरिवोरुविभवाग्नि- ६३।२३
द्वौ च सर्वप्रियो देवो १२।६०
द्वौ द्वौ दौवारिकावासा- ५७।१३०
द्वौ नवानुदिशेष्वेतौ ३४।१२०
द्वौ नीलयशसः पुत्रौ ४८।५७
द्रौपदीप्रभृतयस्तदङ्गनाः ६३।७८
द्रौपदी दीपिकेवासौ ४५।१४६
द्रौपद्यर्जुनयोर्योगः ६४।१४०
द्रौपदीशीलनिर्भेद- ५४।२१
द्वौ द्वौ चैकादयः शस्ताः ३४।७८
द्रौपदी च द्रुतं मालां ४५।१३५
द्रौपदीग्रहवश्यानां ४५।१२५
द्रौपदीहरणं कृत्वा ५४।३७
द्वौ षड्जमध्यमावंशौ १९।१९४
द्वौ सुतौ तु प्रभावत्या ४८।६३

[ध]

धनदस्य प्रिया पत्नी ६०।५०
धनश्रीपूर्वको देवो ६४।१३८
धनश्रीश्चापि मित्रश्री ६४।१३
धनश्च जिनदेवौ च १८।११४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धनदत्तो गुरुश्चैव १८।११८
धनुःसप्तकमुत्सेधः ४।३०४
धनुःशतानि चत्वारि १८।८८
धनुःशतानि पञ्चैव ४।२४१
धनुःपृथक्त्वमुत्कर्षात् १८।८०
धनुःसहस्रमेकं च ५।३९५
धनुःशतं शतं सार्द्धं ५।३८२
धनुः पञ्च शतोत्तुङ्गा- ५।२०३
धनुः पृष्ठं पुनस्तस्याः ५।३३
धनुःशतानि पञ्चाद्ये ६०।३०४
धनुषां पञ्चशत्यामा- ६।१३२
धनुस्ततोऽधिज्यमसौ ३५।७७
धनुषोऽस्य त्रयस्त्रिंशत् ५।८४
धनुषोऽस्य सहस्राणि ५।६७
धनुरन्यदुपादाय ५१।३८
धनूंषि त्रीणि संभ्रान्ते ४।२९८
धनूंष्येकोनपञ्चाशद् ४।३२९
धनूंषि सत्रिपञ्चाशद् ४।३३०
धनूंषि च पडुत्सेधः ४।३०२
धन्या कनलमालासौ ४७।११९
धन्विनः स्थानमन्यस्य ४५।१३३
धन्याः शिखिशिखाजाल- ६१।९९
धरणेन शरण्येन २२।५४
धरणस्यात्मजाः पञ्च ४८।५०
धरणेन्द्रवितीर्णे च २२।७४
धर्माधर्मौ तथाकाशं ५८।५३
धर्मास्तिकायाभावान्न ५६।८२
धर्मात्त्रिवर्गनिष्पत्तिस् १८।३५
धर्मार्थकाममोक्षेषु ११।१३७
धर्मस्याचरितस्य पूर्व- ११।१३९
धर्म एष जिनभाषितः ६३।९१
धर्मदानं जिनेन्द्रस्य ३।२८
धर्म एव परं लोके १८।३९
धर्मरत्नमहाद्वीपो ९।१६३
धर्मध्यानं धवलमुदितं ६।१४०
धर्मसाधनमाद्यं हि १८।१४३
धर्मशास्त्रार्थकुशलः १४।९
धर्मं तत्र जिनोऽवोचद् ६५।६
धर्म्यमेव हि शर्माप्त्यै १७।१४५
धर्मस्यारजिनेन्द्रस्य ६०।२७९
धर्मस्यैकान्नपञ्चाशत् ६०।४५०
धर्मं तत्र जयः श्रुत्वा १२।४७
धर्मं प्रवदता तेन १०।१
धर्मस्तु वप्रकास्थाने ६०।२१९
धर्मसिंहः सुमित्रश्च ६०।२४७
धर्मश्च दधिपर्णश्च ६०।१९६
धर्मः प्राणिदया दयापि १७।१६४
धर्मं श्रुत्वा समं सर्वे ६०।७
धर्मं श्रुत्वा गुरो राजा ६०।७७
धर्माधर्मैकजीवानां १०।३१
धर्माधर्मनभोद्रव्यं ७।३
धर्मार्थकाममोक्षेषु ९।१३७
धर्मे चार्थे च कामे च १४।५६
धर्मेणायोजयद्वीरो ३।७
धर्मो धामनि संधत्ते १८।३६
धर्मो जगति सर्वेभ्यः १८।३८
धर्मो मङ्गलमुत्कृष्ट- १८।३७
धर्मोक्तौ योजनव्यापी ३।३८
धर्म्मध्यानप्रकारं स ५६।१११
धर्ता धरणनिर्धूत- १।२५
धातकीखण्डनाथौ तु ५।६३८
धातकीखण्डपूर्वार्ध- ६०।५७
धातकीखण्डजेभ्यस्तु ५।५८९
धातक्यादिषु चन्द्रार्काः ६।३३
धात्री चेतोविदूचे तां ३१।२४
धात्री मानुष्यकं प्राप्ता ३३।१६७
धान्यानां सकला भेदाः ११।११६
धाम धाम निजं धाम ९।१७५
धाम्नि मानसवेगस्य ३०।२८
धावतोऽस्य मृगयूथ- ६३।२
धावन्ति परितो देवाः ५९।२२
धिक् मद्धेतोरयं दुःखं ३३।१४८
धिग्जन्तोः परतन्त्रस्य ९।५४
धीरमध्वनि देवानां ३।३५
धीरपुत्रशतस्यासौ ९।७४
धीरा राज्यधुरां त्यक्त्वा १३।१५
धीराः प्रच्छन्नसामर्थ्याः २०।३८
धीरो विस्मययुक्तस्तां २४।६८
धुनीं समुत्तीर्य ततोऽभि- ३५।२८
धूतासनोऽवधिज्ञानात् ९।१२९
धूमज्वालाकरान् वृद्ध- ६१।७५
धूमसिंहोऽपि चामुष्यां २१।२७
धूमाङ्गारप्रमाणाख्यैः ९।१८८
धूलीः कदम्बदमधूलि- १६।२७
धृतधर्मा ततस्तस्य ४५।३२
धृतराष्ट्रस्य तनया ४५।३६
धृतराष्ट्रश्च पाण्डुश्च ४५।३४
धृतप्रसाधना वक्त्रं ६०।२८
धृतातापनयोगश्च ६१।४८
धृताकल्पेऽभिषेकार्थं- ८।१६२
धृतातपनयोगं तं ३३।७६
धृतिदेवी धृतिकरी ४५।११
धृतिः सुदर्शने देवी ५।७१७
धृष्टद्युम्नरथस्थेन ४५।१४२
धृष्टद्युम्नोऽप्यनावृष्टिः ५०।७९
धैवत्या धैवतश्चैव १९।२२१
धैवत्या अपि कर्तव्यौ १९।२२५
धैवत्याश्च तथा द्व्यंशौ १९।२०७
धैवतश्च निषादोऽपि १९।२५६
धेनोरिव निजवत्से ३४।१४८
धौतवासं गृहीत्वासौ ८।८९
ध्यायन्नित्यादि निश्चित्य ५२।७६
ध्यानतोऽध्ययनतो ६३।१०३
ध्यानमेकाग्रचिन्ताया ५६।३
ध्यानयोग्यगिरिमार्ग- ६३।९९
ध्वजसितातपवारण- ५५।१०९
ध्रौव्यनाम्नो गुरोः २३।१३४

[न]

नक्षत्राख्यो यशःपालः १।६४
न कालादन्वतो हेतोः ७।१३
न काव्यबन्धव्यसनानु- ६६।३६
न किंचिदपि चास्त्यत्र ३३।१२३
नकुलः सहदेवश्च ४५।३८
नकुल सहदेवश्च ६५।२३
नकुलः सहदेवेन ५०।९६
न केवलमयं वेदे १७।१००

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नक्रचक्रमहारौद्रे ४३।४५
नखमणिमण्डलेन्दु- ४७।२
नखमुखदंष्ट्रिका विकट- ४९।३१
नखाग्रदंष्ट्रादृढदृष्टि- ३७।१७
न गतिर्न स्थितिस्तत्र ४।३
नगरमभिविशन्तौ ३६।३२
नगरी द्वादशायामा ४१।१९
नगर्यां पुष्कलावत्यां ४४।४५
नगरे जाम्बवाभिख्ये ६०।५३
नगरे भद्रिलाभिख्ये ३२।२९
नगौ शङ्खमहाशङ्खौ ४।४६२
न चायं संप्रदायोऽस्मा- १७।१२०
न चागम्यमगस्थान- ३०।१६
न चेदेवं करोत्येष ३१।५१
न तद् द्रव्यं न तत्क्षेत्रं ३।११४
नर्तकीप्रेक्षणक्षिप्त- २२।४५
न तृप्तिस्तैरभूद् भोगैर् ९।६०
नत्वा जिनं जिनगुरू १६।१६
नत्वा सुभद्रनामानं ६०।१००
नत्वा पृष्ट्वा ततो ज्ञात्वा ४७।६१
नत्वा पृष्टवते भूयः ४८।३८
नत्वेति ज्ञापितस्तेन १९।७३
नद्यः सरांस्यरण्यानि ५।५०९
नद्यः षोडश गङ्गाद्याः ५।२६९
नदीविस्तारहीनस्य ५।२५४
नदी तप्तजला पूर्वा ५।२४०
नदीमुखेषु कालोदे ५।६३१
नदीसमीपकूटेषु ५।२३५
नदीं गङ्गां समुत्तीर्य ४५।६०
न दूराल्पफलप्राप्ता ८।९३
न द्रव्याद् द्रव्यतः सिद्धिः ६४।९४
न नतस्य न तुङ्गस्य ८।२५
ननन्द नन्दिषेणाख्यम् १८।१३५
न नागो न रथो नाश्वो ३१।८०
ननृतुरप्सरसः सहसा- ५५।११२
नन्दश्च पुण्डरीकश्च २५।३५
नन्दनं मन्दरं कूटं ५।३२९
नन्दनात् समरुन्द्रोऽद्रिः ५।५२८
नन्दने भद्रशाले च ५।३५८
नन्दनं नलिनं चैव ६।४५
नन्दा नन्दोतरा चोभे ५।७०६
नन्दा नन्दवती चान्या ५।६५८
नन्दाभद्राजयापूर्णे ५७।७३
नन्दा नन्दोत्तरानन्दा ५७।३२
नन्दिषेणमुनिश्चैव १८।१५७
नन्दी च नन्दिमित्रश्च ६०।५६६
नन्दीश्वरवरद्वीपं ५।६१६
नन्द्यावर्तेऽमरः प्राच्यां ५।७०२
नन्वाज्ञा फलमैश्वर्य- २०।३५
न पृथिव्यादिभूतानौ ५८।२४
नभः स्वच्छतरं स्पष्ट- ५९।८९
नभःस्फटिकनिर्माणस् ५७।५६
नभःस्फटिकमूर्द्धस्थ- १७।५५
नभस्तलमितस्ततः ३८।४७
नभस्तिलकनाथश्च २५।४१
नभस्तिलकनाथश्च २५।४
नभस्यागच्छतस्तस्य ५२।६०
नभसि शुक्लतुरीयतया ५५।१२६
नभसोऽवतरन्ती वै ८।१४६
नमये मुनिमुख्याय १।२३
नमः सर्वविदे सर्व- १।३
नमः सुमतिनाथाय २२।३२
नमः पार्श्वजिनेन्द्राय २२।३९
नमस्ते कुन्थुनाथाय २२।३६
नमस्ते मृत्युमल्लाय ८।२२४
न मोहो न भयद्वेषौ ५७।१८१
नमस्तेऽनन्तबोधाय ८।२२५
नमस्ते लोकनाथाय ८।२२६
नमस्ते जिनचन्द्राय ८।२२७
नमस्ते पुष्पदन्ताय २२।३३
नमस्यासनदानादि- ४२।९
नमिर्महारथश्चापि ५०।१२१
नमिश्च निर्वृतो नेमिर् ६०।१४१
नमिश्च विनमिः २२।१०९
नमिनेम्यन्तरे चक्री ६०।२९७
नमिना भाषितो धर्मः १८।४१
नमिश्च विनमिश्चोभौ ९।१२८
नमुचिश्च सुसीमा च ४४।२९
नमेः खेचरनाथस्य १३।२०
नमेर्नवसहस्राणि ६०।४५३
नमेस्तु तनया जाता २२।१०७
नमोऽस्तु नमिनाथाय २२।३७
नमोऽस्तु वासुपूज्याय २२।३४
नमोऽष्टादशतीर्थेन १।२०
नमो भूर्श फलभरेण १६।२६
न युक्तमीदृशं कर्म ४३।१८९
नयोऽनेकात्मनि द्रव्ये ५८।३९
नरप्रधान ! कावेता ७।१२८
नरवक्रोन्मुखाख्यौ द्वौ ३०।५४९
नरा देवकुमाराभा ७।९६
न रागो न च विद्वेषो ३१।३७
नरोऽजपोतगन्धोऽय- १७।१०१
नलिनीदलसंकाशो ६०।५५६
न लोक्यन्ते यतस्तस्मिन् ४।२
नवग्रैवेयकावासा ३।१५०
नव चैव सहस्राणि ५।५१६
नव तत्र सहस्राणि ५।२९१
नवतिश्च सहस्राणि ४।१५९
नवतिर्नव चैतानि ४।२०८
नवतिकार्मुकपूर्वसुलक्षित- १५।५५
नवत्यब्दसहस्राणि ६०।५०४
नवपरिभ्रमसौख्य- ५५।४१
नवपल्लवरागाढ्याश् १४।१२
नव पूर्वाङ्गमानं स्यात् १८।६९
नवभिश्च नवत्या च ४।२३०
नवभिर्नवभिर्लक्षा ५।५६१
नवमासेष्वतीतेषु २।२५
न वयं तु तथाख्यातं ५।११२
नवराजेन सूदोऽपि ३३।१५३
नवराज्यस्थमागत्य २०।१६
नवलक्षाः सहस्राणि ६०।५२७
नववध्वा तया सार्धं ३२।१८
न विससर्ज ततः स्वपतेर्गृहं १५।४
नवशत्या सहस्राणि ६०।४६०
नवषष्टिसहस्राणि ५।५३४
नवस्थानेषु निर्ग्रन्था ३।८४
नवसङ्गमसंजात- ३१।४५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवहस्तिसहस्राणि ५०।७६
नवानुदिशदेवाना- ६।११६
नवानुदिशनामानस् ५७।१०१
नवानुदिशनामानि ६।४०
नवोरःपरिसर्पेषु १८।६२
न शक्नाश्चरितुं चर्यां ९।१२३
न षड्जो लङ्घनीयोऽशो१९।२५४
नष्टस्त्वं दृष्ट इत्युक्त्वा १७।७४
न समशीशमदस्य शशी १५।३९
न संचिद्मात्रमात्मा ५८।२९
न सा कान्तिर्न सा दीप्तिर् ९।२०
न सा स्नाति न सा भुङ्क्ते२२।११७
न स्मरत्यजशब्दस्य १७।६९
न हि चित्रगुरित्यत्र १७।१२३
न हि पौरुषमीदृक्षं २१।१८३
न हि महिषास्रपानवि- ४९।३५
नागवल्यपदेशेन ४२।६३
नागवेलन्धराधीशा ५।४६५
नागदत्ताभिधा चान्या ६०।२२४
नागयक्षयुगे तासां ५।३६३
नागलोकं विजित्येव ८।७२
नागश्रीरपि मृत्वाप- ६४।११३
नागश्रीदुष्कृतं ज्ञात्वा ६४।१२
नागानां च सहस्राणि ५।४६६
नागोक्षसिंहकमला १६।३
नात्युष्णा नातिशीताः ५९।७८
नाथ वैश्रवणेनेयं ६१।१८
नाथावाच्यमचिन्त्यं च ३३।८६
नादरे परकृते कृतादरो ६३।१११
नानन्तेनापि कालेन ९।५७
नानर्द्धियतिभिर्युक्ता १२।३७
नानादेशागतैर्भव्यैर् ४६।२०
नानापुष्पघने दीर्घे ८।६३
नानास्त्रव्यर्थताक्रुद्ध- ५२।५९
निःकीलो निर्व्रणश्चासौ २१।१९
नानानीकैः सुरैरूर्ध्वं ९।९०
नानावर्णमयस्वर्ण- २६।८
नानाविद्याधराधीशा ५३।२३
नानाजनपदोपेतौ २२।७५
नानावर्णमणिच्छन्नैः ७।७९
नान्योन्यदर्शनं जातु ५४।५९
नान्तरीयकमेतस्या- ३४।७०
नापि प्राप्तेप्सितार्थानां ३।१२९
नाभिपर्वतमानानि ५।१९३
नाभेरूर्द्ध्वं मनोवृत्ति ५६।३४
नामत्रिणवतित्वादी ३४।१२१
नामागुरुलघूच्छ्वास- ५६।१०३
नाम्ना गन्धर्वसेनेति १९।१२३
नाम्ना क्षीरकदम्बोऽभूत् १७।३८
नाम्ना बन्धुयशाकन्या ६०।४९
नाम्ना साधारणेनोक्तास् ५।२७१
नाम्ना चाङ्गारको दुष्टो १९।८५
नाम्ना तत् स जलावर्त- १९।६१
नाम्ना विभङ्गनद्यस्ताः ५।२४३
नाम्ना भूरिश्रवाः पुत्रः २४।५२
नाम्नोत्तरकुरुश्चान्या ६०।२२५
नारकस्यायुषो योगो ५८।१०८
नारीकूटं तुरीयं तु ५।१०३
नारी च नरकान्ता च ५।१२४
नारकं नारकोद्भूतं ५८।२४२
नारकाणां तनूत्सेधो ४।२९५
नारकस्वर्गतिर्यक्त्व- २८।३७
नारकादिभवानेति ५८।२१७
नारदस्तु विनीतात्मा १७।५१
नारदस्य सुतायाऽसौ २३।१४८
नारदस्याभवद्देवी ६०।८०
नारदस्य वचः सत्यं १७।७६
नारदेन समाख्यातं ५४।१८
नारदेन ततोऽवाचि १७।७२
नारदोऽपि नरश्रेष्ठः ६५।२४
नारदोऽप्सरसां सङ्घैः ५१।२५
नारदोऽपि जिनं नत्वा ४३।२२५
नारदो बहुविद्योऽसौ ४२।२०
नारायणो नरहरिः ४५।१९
नाल्पः कल्पच्युतः पुत्रो ४३।७१
नास्तिकस्य तथा तस्य २८।४२
नास्तिकैकान्तवादी स २८।३३
निकचितां कचसंपदमा-५५।१२२
निकायौ चापरौ स्यातौ २२।५८
निकारायोऽग्रसेनस्य ३३।८४
निक्षेपणं यदा दानं २।१२५
निखिलखेचरसाधितवि- १५।३२
निगद्य वसवे सर्वं १७।७९
निगद्य तानेवमसौ ५४।७१
निगूढगूढसुश्लिष्ट- २३।८९
निगूढजिनगर्भसं- ३८।४
निजं जिनान्तरं ज्ञेयं ६०।२९५
निजभुजबलशाली- ३६।७
निजमगारमगाज्जिन- ५५।१४
निजवधूजनलालितनेमिना-५५।२९
निजसारथिमाजिस्थः ३१।१०५
निजाज्ञया च कथितं १२।२४
निजोज्झिति चतुर्भाग- ५।२१४
नितम्बास्फालनैरङ्ग- १४।१०२
नित्यमस्वेदनाः कक्षाः २३।८२
नित्यशो भुक्तभोगा च २४।६६
नित्यं निर्मलिनिःस्वेदं ३।१०
नित्यं द्वारवती पुरी ४८।७५
नित्यता मम तनो- ६३।८४
नित्यान्धकारमुद्रास्य ११।२७
निदानदोषदुष्टोऽय ३३।९१
निदानमकरोत् क्लिष्टा ६४।१३५
निदानी वज्रदंष्ट्रस्य २७।१२१
निदाघेऽप्यवरैषैव ४।२७४
निद्रा तन्द्रा परिक्लेश- ५७।१८२
निद्रापाये गृहं गत्वा २१।७४
निद्रेन्द्रियकषायारि- ३।८८
निधानानि निधीरत्ना ५९।८२
निधीनिव निशाशेषे ८।५८
निन्दितं नाकरिष्यच्चेन्१८।१७३
निन्दित्वात्मानमाकर्ण्य १८।१३३
निन्युरित्थमनुवृत्ति- ६३।५९
निपत्य पादयोस्तस्याः ४३।१४
निपत्य युगपत्सर्वे ४७।७१
निपात्य शरवर्षेण ५१।२६
निष्प्रातनं च कस्यात्र १७।१०९
निःप्रमादतया याति १९।९७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निमज्जेत् स्वत एवेयं ६१।१९
निमित्तमान्तरं तत्र ७।६
निमेषोन्मेषविगम- ३।१२
निम्नैः करतलैः क्लीबाः २३।९०
नियन्त्रितो जनः सर्वस् ७।१४३
नियतिश्च स्वभावश्च १०।४९
नियुतं नियुतं गत्वा ६।३२
नियुताङ्गं परं तस्मान् ७।२६
नियतेः कालतः स्वन्तर् १०।५३
नियत्यास्ति स्वतो जीवः १०।५१
निरन्तरविशन्निर्यद् ५७।७६
निरस्यति पयस्तृष्णां ६२।२४
निरस्य नैशं निशितै- ३७।११
निरस्यन्तमनन्तानु- ४१।९
निरीक्ष्य मधुसूदनेन ५२।९२
निरुपायानुपायज्ञो ४७।८१
निरुद्ध्य निशितैर्दण्डैर् ४३।१९३
निरुद्धातिनिरुद्धाख्यो ४।१५६
निरुध्य प्रसभं धैर्यं ४३।१९८
निरुपायास्ततो गत्वा ५४।३०
निरूप्य रुक्मिणीं सत्या ४३।१३
निरूपितास्तु याः कन्याः ६१।४
निर्गमे च प्रवेशे च १९।२८
निर्गत्य निर्गती पुर्या ६१।९०
विर्गुणाऽपि गुणान् सद्भिः १।४२
निर्मित्सानन्तरं भर्त्तुर् ५७।१११
निर्यदायद्विशत्पश्यत् ५७।१८०
निर्याति सूर्यदीप्ताङ्गे १९।१०
निर्वर्तनाधिकरणं ५८।८७
निर्वर्तना च निक्षेपो ५८।८६
निर्वाणं च तथा ज्ञेया १०।८०
निर्वाहिकस्तयोरासीत् ४२।७५
निर्वाप्यते ज्वलन्नाग्निर् २०।३४
निर्वासितो विरोधस्थो ६०।२०
निर्विकृतिपश्चिमार्धा ३४।११०
निर्विकृतिं पूर्वार्धः ३४।९९
निर्वृतः सितपञ्चम्यां ६०।२७५
निर्वेदी दीनतां त्यक्त्वा ४३।१५५
निवृत्तकरणग्राम- ५६।३३
निवृत्य कंसः पुरि घोषणां ३५।७१
निवेदितमिदं वृत्तं २९।४५
निवृत्ते युधि जीवामो ५०।१००
निवृत्ताः स्थूलहिंसादेर् ७।११४
निवार्य मात्सर्यभवार्य- ६६।४७
निवेदितं ततस्ताभ्यां ४३।१०६
निवेदिता सुरेणासौ ५४।१४
निविष्टश्चक्रिणः पार्श्वे १२।४६
निशम्य वनमालायास् १४।९२
निशम्य सा स्वप्नफलं ३७।४६
निशम्य सा स्वप्नफलं ३५।१६
निशम्य शमिनो वाक्यं २७।७३
निशम्यात्मभवानित्थं ६०।७३
निशम्यार्णवमुद्गीर्ण ४१।१०
निशम्येति गुरुं नत्वा ४३।१५४
निशम्येति वचः सौम्या ४५।८३
निःशङ्काद्यष्टगुणा ३४।१३२
निशि निशितासि निर्मल- ४९।२७
निश्चितश्चापि षण्मासायु ८।५५
निःशेषनिर्गलितनीर- १६।३०
निःशेषेषु निकायेषु २२।६९
निःश्रीर्गौतमनामाऽसौ १८।१०४
निषद्यकाख्यमाख्याति १०।१३८
निषधस्पृष्टभागस्थं ५।३०९
निषधस्पृष्टभागस्थे ५।६०७
निषधादुत्तरो नद्यां ५।१९६
निषधस्योत्तराशायां ५।१९२
निषधान्नीलतस्तावत् ५।२७०
निषद्यायां यथाद्यायां ६५।७
निषादश्च निषादांशो १९।२२४
निषादः षाडजश्चैव १९।२०९
निषिद्धोऽपि वधाद्रौद्रो २१।१०६
निष्क्रान्तिः सुमतेर्भुक्त्वा ६०।२१६
निष्क्रान्तासि बहिःकान्ते २४।६४
निष्क्रान्तानामनेनामा ९।१२२
निष्क्रान्तिर्वासुपूज्यस्य ६०।२१४
निःस्वस्य चिपटा ग्रीवा २३।८३
निःसरद्भिर्विशद्भिश्च २।१४३
निस्सङ्गनिर्भयत्वाय ६४।५०
निसृष्टातिनिसृष्टाख्यौ ४।१५५
निहतश्च जरासन्धस् ५३।१८
निहता पाण्डवैः केचिद् ५१।३२
निहितकमलभारान् ३६।१०
नीचेन नीलकण्ठेन २३।२४
नीतश्च निशि निस्त्रिंश- २२।१२६
नीता मानसवेगेन ।२४।७२
नीत्वा तं कुञ्जरावर्तं १९।६८
नीरजोभिरहोरात्रं ३।२७
नीरन्ध्रशरजालेन ३१।७५
नीलवैडुर्यवर्णानि २६।१७
नीलकण्ठाश्वकण्ठौ च ६०।५७०
नीलकण्ठस्फुरत्कण्ठ- ६०।२१३
नीलकुञ्चितसुस्निग्ध- ८।२७
नीलमन्दरमध्यस्था ५।१६७
नीलकेसरबालाग्रैर् ५२।९
नीलस्तस्य सुतः कन्या २३।४
नीलस्योढ्ढभार्यस्य २३।७
नीलं नीलयशो यशो २२।१५४
नीलाम्बुदचयश्यामा २६।१४
नीलाद्रिस्पृष्टभागस्थं ५।६१०
नीलाद्रिस्पृष्टभागस्थे ५।६०८
नीलाद् ग्राहवती सीतां ५।२३९
नीलाद्याः परयोश्चोर्ध्वं ६।९८
नीलाख्यश्च महानीलो ४।१५७
नीलाद्रेर्दक्षिणाशायां ५।१९१
नीलोत्पलदलश्यामां २२।९
नीलोत्पलनिभैरेष ५२।११
नृदेवाचित्ततिर्यक् ३४।१३
नृत्यत्सुराङ्गनोद्भासि ८।२३३
नृत्यद्विद्याधरीवृन्द- ४३।६०
नृत्यन्त्या च नृपादेशात् २९।२८
नृत्यारम्भेऽन्यदा तस्या २१।४३
नृप ! कस्य न विज्ञातस् १९।३१
नृपसहस्रममानमिना ५५।१२१
नृपदत्तोऽग्रजस्तेषां ३३।१७०
नृपः स नगरद्वारं ५४।४३
नृपं शयानं सुमुखं १४।१०७
नृपस्त्वं रक्षणान्नृणां १९।१६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नृपास्तेऽपि तथा तस्थुः ९।१०२
नृपैस्तैरनुयातोऽपि ५०।३६
नृपैर्वृषभसेनस्तं ९।२१५
नृपोक्तः कंससम्बन्ध- ३३।९२
नृपो दुर्योधनो द्रोण- ५२।८८
नृपोऽवादीत्तया योगो १४।६२
नृभवाभिमुखेनेव ८।१९८
नृसुरश्रीप्रसूनस्य ३।१७६
नृसुरा मानवस्तम्भा— ५७।१२
नेत्रं मनश्च भवदत्र १६।३७
नेदुस्ततस्त्रिदशदुन्दुभयो १६।६२
नेदुरम्बुदनिर्घोषा- ९।१९२
नेपालोत्तमवर्णश्च ११।७४
नेमिसामर्थ्यविज्ञानं १।११२
नेमितीर्थकरस्यापि ४०।११
नेमिः सूर्यपुरं चित्रा ६०।२०३
नेमिनाथागमोद्भूत- ४१।११
नेमीशहरिरामादि- ४७।१४
नेमीशस्त्ववधिज्ञात- ५२।६४
नेमुः ससप्तपदमेत्य १६।६६
नेमेः सितचतुर्थ्यां तु ६०।२३०
नेमेः सारथिरूपेण १।१०७
नैकयोनिकुलकोटि- ६३।८२
नैगमः संग्रहश्चात्र ५८।४१
नैमिषं हास्तिविजयं २२।८९
नैष्ठिकव्रतमास्थाय ९।१२१
नोच्छिद्येरन्महोद्योगैर् ५०।१३
नोदयास्तमितं तत्र २।१४५
नोदितस्तैः समारूढो ४७।३२
नोदितेऽथ रथे तेन ५२।२७
नोपमा जिनरूपस्य ४१।५४
नौभिर्गङ्गां समुत्तीर्य ५४।६४
न्यायेनावसिते ह्यत्र १७।९७
न्यायेन च तयोरत्र २३।१०
न्यासश्चैवात्र गान्धारः १९।२४९
न्यासश्चात्र भवेत् षष्ठो १९।२१९

[प]

पक्षमासादिभेदेन ६४।३७
पक्षास्तु रुधिरस्यैके ३१।६१
पक्षे सिते तृतीयस्यां ६०।२६०
पङ्कप्रभा विनिर्यातो २७।२०७
पङ्कप्रभा चतुर्थी तु ४।४४
पञ्चमुष्टिभिरुत्खातान् ९।९८
पञ्चवर्णसुखस्पर्श- ७।७७
पञ्चप्रज्ञप्तयः प्रोक्ता- १०।६२
पञ्चपञ्चैककं षट् च १०।१४०
पञ्चविंशतिलक्षाश्च १०।१२८
पञ्चलोहादयो लोहा ११।११५
पञ्चभिर्नियतिपृष्ठैश् १०।५०
पञ्चमेन च विज्ञेया १९।१६९
पञ्चमे शुद्धषड्जा १९।१६६
पञ्चम्यामजितः षष्ठ्यां ६०।२६९
पञ्चसप्ततिवर्षाष्ट- २।२२
पञ्चविंशतिसंख्यानि ६०।५१३
पञ्चकौरवराज्यार्ध- ४५।५०
पञ्चषष्टिसहस्राणि ५।५८३
पञ्चलक्षास्तु कोटीना- ५।५६५
पञ्चविंशतिरेव स्याद् ५।५६
पञ्चविंशतिरस्यैव ५।४८
पञ्चविंशतिरुत्सेधः ५।२१
पञ्चविंशशतं तानि ५।४५७
पञ्चविंशतिरायामः ५।३५५
पञ्चलक्षाः सहस्राणि ५।२७३
पञ्चमेषु प्रदेशेषु ५।३१३
पञ्चचापशतव्यास- ५।३८०
पञ्चचापशतव्यासा ५।४०४
पञ्चचापशतोत्सेधा ५।६७९
पञ्चषष्टिसहस्राणि ५।६६६
पञ्चचापशतव्यासा ५।१७३
पञ्चमीमपि सिंहास्तु ४।३७४
पञ्चत्रिंशद्धनूंष्यारे ४।३२६
पञ्चषष्टिसहस्राणि ६०।४४८
पञ्चभिर्गुणितास्ते स्युः ३४।५४
पञ्चकृत्वः कृतावश्यः ३४।१११
पञ्चविंशतिकल्याण- ३४।११३
पञ्चदशीपर्यन्ता ३४।१२६
पञ्चकल्याणपूजानां १८।४२
पञ्चधाणुव्रतं प्रोक्तं १८।४५
पञ्चचापशतोत्सेधा १८।८२
पञ्चम्यन्ते चतुर्थी च ४।१३
पञ्चशैलपुरं पूतं ३।५२
पञ्चत्रिंशत्सहस्राणि ३।६३
पञ्चसंख्यस्य विध्वंसाद् ३।७
पञ्चलक्षास्तथाष्टानां ६०।४४२
पञ्चचापशतान्याद्ये ६०।३०६
पञ्च पञ्च त्वतीचारा ५८।१६३
पञ्च कन्दर्पकौत्कुच्य- ५८।१७९
पञ्चधा ज्ञानावरणं ५८।२२१
पञ्चमुष्टिभिरुत्पाट्य १३।३
पञ्चत्रिंशन्मताः सर्वे ६०।४१३
पञ्चशत्या सहस्राणि ६०।३९३
पञ्चषष्टिश्च षट्चित्रत् ४।२३६
पञ्चविंशतिसंख्याब्द ६०।५०१
पञ्चविंशति-संमिश्र- ४।३५९
पञ्चविंशतिसंख्यानि ६।५७
पञ्चमर्षभहीनं तु १९।२३०
पञ्चधाणुव्रतं केचित् २।१३४
पञ्चस्वरस्तथा चैव १९।२१७
पञ्चमं सप्रपञ्चार्थं १।७
पञ्चत्रिंशदतो लक्षा ४।१८१
पञ्चविंशतिलक्षास्तु ४।१९२
पञ्चत्रिंशत्सहस्राणि १८।१७१
पञ्चधाप्रविभक्तार्थं १।५५
पञ्चानां संगमे तासां २७।१४
पञ्चादयो द्विपर्यन्ताः ३४।६६
पञ्चानां संकलिते ३४।८१
पञ्चानामानुपूर्वेण ३।४५
पञ्चान्ता यत्र चैकाद्याः ३४।७१
पञ्चाद्या यत्र रूपान्ता ३४।६९
पञ्चादिषु नवान्तेषु ३४।५६
पञ्चाशच्च सहस्राणि ५।६५१
पञ्चाशद्योजनायाम- ५।५९७
पञ्चाशच्च सहस्राणि ५।६६
पञ्चाशद्योजनो मौलो ५।७३
पञ्चाशदात्मकसहस्र- १६।७३
पञ्चाशच्चापविस्तारा ५।३८३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पञ्चाशत्कोटिलक्षाश्च १३।१८
पञ्चाशत्त्रिशती चापि ६०।४२७
पञ्चाशता शते द्वे तु ६०।५२८
पञ्चाशता शतानि स्युः ६०।४२१
पञ्चाशता विमिश्रं तु ४।३६०
पञ्चाशच्च सहस्राणि ५।९४
पञ्चाशत्पदलक्षाभिः १०।१२१
पञ्चाशत्तु सहस्राणि ६०।४९८
पञ्चाशीतिसहस्राणि ६०।४४६
पञ्चानुत्तरसद्वक्त्रः ४।३१
पञ्चाश्चर्याण्यहं प्रापं ६०।९८
पञ्चाग्नितपसि प्रायो ३३।६२
पञ्चेन्द्रियप्रकारेषु ३।१२३
पञ्चैव च सहस्राणि ५।४२०
पञ्चैवास्य सहस्राणि ५।५१
पञ्चैव नियुतानि स्युः ६।७९
पञ्चैवैकादशाङ्गानां १।५९
पञ्चैव तु भवेत् षड्जे १९।२१८
पञ्चोनापि च लक्षैका ४।७४
पटप्रकृतिना सम्यग् ३।९५
पटहाकृतयश्चित्रा ५।६५३
पट्टचीनमहानेत्र- ११।१२१
पट्टचीनदुकूलानि ७।८७
पटुमदाकरिणः क्षुभिता ५५।६७
पटूभवन्ति मन्दाश्च ५९।१०७
पण्डितेषु यथा स्थानं १७।९३
पण्याख्ये रमते सोमस् ५।३१७
पण्याख्यं दिशि पूर्वस्याम् ५।३१५
पतद्भिरपि तत्रान्यै- ९।१०८
पतत्प्रासादशालोघै- ५४।४५
पतञ्जललवस्वच्छ- ९।८१
पतिनामाङ्कितां दृष्ट्वा २७।३९
पतितश्च शनैः शौरिस् २४।२९
पतद्भिर्मत्तमातङ्गैः ३१।७७
पतन् मनुजमातङ्गस् ५२।४१
पताका हस्तविक्षेपै- ५९।६८
पतिभिक्षां ययाचेऽसा- ४६।१३
पतिं वेगवती दृष्ट्वा २६।४०
पतिरसौ मम कोऽपि ५५।६२
पतितस्य तटे तेन २१।९१
पतिनिदेशजुषो हरियो- ५५।४४
पतित्वा पादयोस्तस्य ९।१७८
पत्न्यङ्गारवती तस्य २४।७०
पत्रिपर्णांशुकच्छन्न- २६।२०
पथि तपस्यति तत्र कृते- ५५।१३०
पदमपीदमपूर्वमिवेक्ष्यते ५५।२३
पदमर्थपदं ज्ञेयं १०।२२
पदलक्षा द्विपञ्चाशत् १०।६६
पदवी जातरूपाङ्गी ५९।३८
पदानां सप्ततिर्लक्षा १०।८८
पदानां पञ्चलक्षाभि- १०।६४
पदानां तु सहस्राणि १०।३४
पदार्थान्नव को वेत्ति १०।५४
पदाष्टाशीतिलक्षा हि १०।६९
पदैः पञ्चसहस्रैस्तु १०।७१
पद्मश्चापि महापद्मः ५।१२१
पद्मरागमयं भास्वच् ५९।८
पद्मगुल्मोऽपि नलिन- ६०।१५३
पद्मरागमहास्तूप- ५७।५५
पद्मश्रीस्तस्य कन्याभूत् २५।३
पद्मरागमणिस्फीति- २।९
पद्ममालः सुभौमश्च ४५।२४
पद्मश्च पुण्डरीकश्च ५।६३९
पद्मसेनेन निहतो ६०।५९
पद्मखण्डपुरं गत्वा २७।४४
पद्मकेतुः पवित्रात्मा ५९।३०
पद्मश्रियमुपादाय ३२।३५
पद्मराज किमारब्धं २०।३२
पद्मस्ततो नतः प्राह २०।४०
पद्माभस्य सहस्रे द्वे ६०।३७९
पद्मावत्या गृहोपान्ते ४४।४९
पद्मावती शुभाभिख्या ५।२६०
पद्मा सुपद्मा महापद्मा ५।२४९
पद्मादिर्गृह्यते सूची ५।५४३
पद्मावती सुमित्रोऽस्तु ६०।२०१
पद्माङ्गं पद्ममप्यस्मात् ७।२७
पद्मा सरस्वतीयुक्ता ५९।२७
पद्माः शतसहस्रं हि ५।१९९
पद्मावतीं समुत्पन्नां ४४।३८
पद्मे पद्मवती ज्ञेया ५।७१३
पद्मोद्भासि परं पुण्यं ५९।१०
पपाताशनिनिर्घोषो ११।४५
पपात सुमनोवृष्टि- ९।१९४
पपात सुभटः खड्ग- २५।५९
पपात मायया वाप्यां ४७।७३
पप्रच्छ तापसं कञ्चित् ३०।४४
पप्रच्छ विप्रमेकं भो २८।१६
पयःकणे घ्राणपुटं प्रविष्टे ३५।२४
परस्परकराश्लेष- ७।७६
परस्परवधं चक्रुस् ३३।१३८
परस्तात्तु गिरेस्तस्य ५।७३२
परस्त्रीहरणं सत्य ४३।१८४
परस्परं समालापे ४५।८७
परं हन्मीति संध्यातं ६१।१०३
परस्यापकृतिं कुर्वन् ६१।१०१
परस्वहरणप्रीतः २७।४१
परस्परगृहाजस्र- ४४।१९
परतः क्रमहानिस्तु ७।१७२
परतस्त्वप्रवीचारा ३।१६७
परमानन्दरूपं ते ३।१७७
परस्तात्पुष्करार्द्धे तु ६।३०
परप्रमाणको मुग्धो २३।१२३
परमतभेदसमर्थ- ३४।१४७
परतः सार्धरज्ज्वन्ते ४।२२
परमदर्शनशुद्धिविशुद्धधी- १५।७
परवधूप्रिय वीरकवैरिणं १५।५०
परस्परविरुद्धात्म- ३।९२
परं कौशलमस्त्रेषु ३१।१२४
परमेश्वरभामग्न- ५७।१५७
परद्रव्यस्य नष्टादेर् ५८।१४०
परविवाहाकरण- ५८।१७४
परलोककथापोढ- २८।४१
परदुःखविधानेन ६१।१०७
परारतिविधानं च ५८।१०१
परावृत्य पुनः पश्यन् ४३।३८
परा प्रज्वलिते येयं ४।२७६
पराचरितसावद्य ५८।७६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परावृत्य ततः कन्या ३१।४१
पराभूतिमिमां राज्ञां ३१।४९
परा तु तमके यासौ ४।२८४
परिभ्रम्य चिरं शोभां २३।१९
परिमाणं तयोर्यत्र ५८।१५६
परित्यज्य गजं श्रान्तं २४।४७
परिवेष इवार्कं यः ५७।११०
परिमाणमहत्त्वेऽपि ५८।३४
परिपर्यध्वनस्तस्मिन् ५७।१४८
परिकरं परिवध्य तदो- ५५।११
परितस्ताश्चतस्रोऽपि ५।६७१
परिणीय हरिर्गौरी ४४।३६
परिणीय सभार्यौ तौ ४४।४३
परिक्षेपः पुनस्तस्य ५।२९७
परिक्षेपो वनं चान्यन् ५।३०८
परिणीय ततः कामः ४८।१३
परिषत्प्रावृषि स्फूर्जद् १७।१४६
परितो भाति तूत्सर्पद् ५९।१०७
परिणामं प्रपन्नस्य ७।१७
परिपूर्णोभया जातू ६४।६१
परितः परिमार्जन्ति ५९।३९
परिहृत्यार्त्तरौद्रे द्वे ५६।२९
परिषदमथ दत्त- ३६।५५
परिनिर्वाणकल्याण- ६५।११
परिजनाहृतवस्त्रविभूषणै- ५५।५७
परीत्य जिष्णुधिष्ण्यं तौ २२।४४
परीत्य परिखातोऽस्थाज् ५७।२१
परुषजाम्बवतीवचसो ५५।७०
परेद्युश्च रसं पीत्वा २१।९४
परेषामनुमेयं स्यात् ५६।५६
परैर्घटितमप्यतो विघट- ४२।१०८
परै राजन्नजय्यस्य ३१।१०९
परोऽतिबल इत्यासीद् ६०।१५२
परोक्षस्य प्रमाणस्य १०।१५५
परोपदेशपूर्वं तु ५८।१९४
परो नन्दीश्वराम्भोधे- ५।६८३
पर्वतोऽपि खलीकारं १७।१५७
पर्वताग्रशिखरस्थितो ६३।९६
पर्यस्तं मन्यमानोऽयं ५४।१०
पर्यट्य चिरमागत्य १९।३४
पर्यटन्नटवीं तत्र ३१।६
पर्यटन्नटवीं वीरस् २८।२
पर्यन्तेऽङ्गुलसंख्येय- ६।१२८
पर्याप्तयः षडाहार- १८।८३
पर्यायानन्तनागेन १०।१९
पल्यस्य दशमं भागं ७।१४८
पल्यस्य शततमं भागं ७।१५०
पल्यमूनं तु जीवन्ति ६।९
पल्यं जीवन्ति चन्द्राख्यास् ।६।८
पल्लवस्थजिननाथ- ६३।७४
पल्यार्धं च चतुर्भागो ६०।४७१
पल्यानि पञ्च सौधर्मे ३।१५९
पवित्रं पञ्चकल्याणं ५७।११८
पशुस्त्रीप्रविविक्तेषु ६४।२५
पशुरपि निरपायं ३६।६८
पशुरश्मिमृगाक्षाशा १७।१२२
पशुपुत्रकलत्रादि ५६।१४
पशुपाल्यं ततः प्रोक्तं ९।३६
पश्यता च दिशो रम्या २१।१११
पश्यन्यात्मभवान् सर्वे ५९।५७
पश्यन् दिशः सकल- १६।२९
पश्यन्नपि क्षणविभङ्गुर- १६।३८
पश्य पश्य प्रिये चित्रं १२।४४
पश्चात्तापहतो दुःखी १९।५१
पश्चाद्विदितवृत्तान्तः ३३।४१
पश्चात्प्रचण्डतरमारुत- १६।३१
पश्चात्तटेऽपि सीताया ५।२०८
पाञ्चजन्यं हरिः शङ्खं ५२।८५
पाञ्चजन्यमतो दध्मौ ४२।७९
पाटलामोदसुभगो- १४।१७
पाणिपादमुखाम्भोज- ४२।३७
पाणिग्रहणमाद्यं हि २२।१३५
पाण्डवैः सह जरा- ६३।७२
पाण्डवानां सपुत्राणां ५१।२९
पाण्डवास्तु बहुराज- ६३।७६
पाण्डुकं कौशिकं वीरं २२।८८
पाण्डुकं दशमं प्रोक्तं ५।३०९
पाण्डुकं च सहस्राणि ५।५१९
पाण्डुके सन्ति चत्वारो ५।३५४
पाण्डोः कुन्त्यां समुत्पन्नः ४५।३७
पाण्डौ स्वर्गं गते देव्यां ४५।३९
पातालस्थितकायोऽसौ १७।१५२
पात्राणि स्थालकं चोल- ७।८६
पादनासाधिरोधेन १७।१३७
पादमस्तकपर्यन्तान् २३।११३
पादपद्मं जिनेन्द्रस्य ३।२४
पादः पल्यस्य पल्यार्धं ६०।४७५
पादः कुमारकालः स्याद् ६०।३३०
पादावस्थापितो तुङ्ग- ८।१९९
पादावष्टम्भसंभिन्न- ११।८५
पादोऽष्टादशसंख्यानां ६०।३३१
पापहेतुं विनिन्द्याक्ष- ३३।१३९
पापकूपे निमग्नेभ्यो २१।१५५
पापपाकेन दौर्गत्यं ४३।१२१
पापनिर्जरणात्कैश्चित् ३।१२७
पापस्योपशमात् पश्चाद् १८।१०३
पापशीला विकुर्वाणाः ५७।१७३
पापादानादिवृत्तीना- ५८।७५
पापानुबन्धदोषेण ६४।११८
पापोपदेशोऽपध्यानं ५८।१४६
पापोपदेश आदिष्टो ५८।१४८
पापोपदेशहेतुर्यो ५८।१४७
पारमेष्ठ्यमनन्यस्थं ५७।१६२
पारणासु नृपस्तस्य ३३।८०
पारगः सर्वशास्त्राणा- २१।१४०
पारम्पर्येण धर्मस्य ९।१३९
पारम्पर्येण मोक्षस्य १०।१५५
पारणासु परसंप्रवेशने ६३।७५
पारावतनिभैः पत्रैः ५२।२०
परिधिः पूर्वसूच्यास्तु ५।४९१
पार्थदर्शनपर्यन्त- ५४।२०
पार्थप्रतापविज्ञान- ४५।४९
पार्थिवेन सता तेन १७।२०
पार्थिवा षट् परिक्षेपा ५।३०४
पालयन्ति सदिग्नागैर् ५९।२१
पालिकामुखपद्मस्य- ५७।१७
पाश्चात्याञ्जनशैलस्य ५।६६२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाश्चात्यपुष्करार्द्धस्य ३४।१५
पाश्चात्यं साधयन् विश्वं ११।१५
पांशुक्रीडा विधायाम्बा ४७।१२४
पार्श्वे मदनवेगाया २६।४३
पार्ष्णिग्राहितयानुमार्गम- ४०।४६
पिङ्गलैर्मूर्धजैर्युक्तास् २६।१९
पिण्डशुद्धिविधानेन २।१२४
पितरौ जन्मनक्षत्रं ६०।१८१
पितरौ भ्रातरौ लोके ५०।९७
पितर्युपरते तावत् २४।२०
पिता काञ्चनदंष्ट्रोऽथ ३२।२०
पिता मे यदि वा माता ६१।३८
पिता मे पृष्टवानेवं १९।८८
पितापुत्रौ च तौ नील- २३।९
पितृसुतपूर्वकस्य यदु ४९।१२
पितृपुरःसरबन्धुजनं जिन५५।१०८
पित्रा हिरण्यनाभस्य ४४।४०
पिपासाकुलितोऽत्यर्थ- ६२।२०
पिप्पलादस्य शिष्योऽहं २१।१४७
पिष्टकिण्वादिमद्याङ्गैस् ६१।३५
पिष्टकिण्वोदकाद्येषु ५८।२५
पिष्टेनापि न यष्टव्यं १७।१३४
पीठानि त्रीणि भास्वन्ति५७।१४०
पीठार्हा श्रीपदद्वारं ५७।९१
पीत्वा धर्मामृतं लब्ध- ६४।३
पीनस्तनस्तबकभार- १६।७
पीनौ समौ प्रलम्बौ च २३।८६
पीतेन जानुना ह्याढ्यो २३।८१
पुण्यपापकृदेकोऽयं २६।३६
पुण्यवान् ननु पूज्योऽहं २१।३३
पुण्यमित्थमुपात्तं यत् ९।२०१
पुण्यक्षयात्तु तावेव ६२।२
पुण्यपञ्चनमस्कार- २२।२६
पुण्यास्रवः सुखानां हि ५८।१९१
पुण्यापुण्यविधाता यो २८।३६
पुण्डरीकोऽरमल्ल्यन्तर् ६०।३००
पुण्योदयात्पुरा प्राप्ता ६२।१
पुण्डरीकस्य पत्रेण ९।१४
पुण्डरीकः कटीमात्र- ५३।३८
पुण्डरीकिण्यखण्डश्रीः ६०।१४७
पुत्रपौत्रकलत्राणि ६२।६०
पुत्रचक्षुर्मुखालोकाच् ७।१५८
पुत्रपुत्रवियोगोग्र- ६०।७८
पुत्रशोकाग्निदग्धाहं ४३।२४०
पुत्रचक्रसमुत्पत्त्या ९।२१३
पुत्रं च सुव्रतमसौ १६।५५
पुत्रं पात्रं श्रियां तस्यां २४।३३
पुत्रा गन्धर्वसेनायास् ४८।५५
पुत्रास्त्रयस्तयोश्चिन्ता ३४।१७
पुत्रान् सिद्धशिलारूढान्१८।१२१
पुत्राः षष्टिसहस्राणि १३।२८
पुत्राः षडभिचन्द्रस्य ४८।५२
पुत्रि सर्वरहस्येषु १४।८१
पुत्रीं चक्रभृतस्तत्र ३४।६
पुत्रो मे ते यदा कन्या २३।५
पुत्रोदन्तं ततः श्रुत्वा ४७।७५
पुत्रो मे सिंहदंष्ट्राख्यस् २२।११३
पुत्रौ विजयसेनाया ४८।५४
पुद्गलात्माभिधानं च १०।८५
पुनर्जन्मकथेवेयं ४२।५४
पुनरपि जितजेयं ३६।७२
पुनः पृष्टे कथं नाथ ! १९।९०
पुनः प्रणम्य पप्रच्छ ४६।४७
पुनस्तापसवेषेण ४५।६९
पुनः कृत्वा सुविश्रब्धास्ते ९।११६
पुनरुत्पत्य पञ्चोर्ध्वं ५०।२५
पुनः प्रणम्य भक्त्यासौ ३।१९१
पुनः प्रदेशहान्यैव ४।४०
पुनः पुनर्जागरणेन ३७।२३
पुनश्चासनमारुह्य ८।१२९
पुनर्मेघमुखा घोरै- ११।३४
पुरग्रामादिषु ख्यातां ६५।२९
पुरस्ताद्गोपुराणां च ५७।५२
पुरं सोपारकं याता ६०।३६
पुरं मङ्गलकं नाम्ना ६०।२४०
पुरस्य राजगेहस्य ९।१६४
पुरजनोऽथ यथार्ह- ५५।३२
पुरग्रामनिवेशाश्च ९।३८
पुरं गन्धसमृद्धं द्राक् ३२।२३
पुरं गिरितटं तत्र २३।२६
पुरं गन्धसमृद्धं च २२।९४
पुरमथोत्तरदिग्जगतीमितं१५।२५
पुरमिहोत्तरमस्ति सुखक्षमं१५।२२
पुराणवस्तुनो वीर ! २२।४९
पुरातपःसाधितदेवतास्ता- ३५।३९
पुरि वितीर्य नु तत्र ५५।१२९
पुरि विधृतार्यिकागण- ४९।१४
पुरीयं द्वादशे वर्षे ६१।२३
पुरुपुरगृहशोभा ३६।१५
पुरुषपुरस्सरोऽभिरुचि- ४९।५०
पुरुषोत्तमकौमार्य- ६०।५२३
पुरुषान्वेषिणीमन्यां ३१।८
पुरे विजयखेटो च ३२।२४
पुरेषु तेषु च स्तम्भास् २२।१०२
पुरे राजगृहे सोऽथ १८।१२९
पुरेषु ग्रामघोषेषु २।१५०
पुरैव परिशोधिते ३८।२
पुरोऽप्यष्टाग्रदेवीनां ५।३४०
पुरोधाः सोऽभ्यदाद्भर्तर् ११।५९
पुरो बहिरसौ दृष्ट्वा २४।३८
पुर्यां त्वं पुष्कलावत्यां ६०।९३
पुर्याः प्रभुरभूत्तस्याः १४।६
पुर्यास्तेऽमरकङ्काया ५४।४१
पुर्यामर्धचतुर्थानि ४१।४५
पुलाको वकुशश्चैव ६४।५८
पुलाका भावनाहीना ६४।५९
पुलाकस्योपपादः स्यात् ६४।७८
पुलाकस्योत्तरास्तिस्रो ६४।७६
पुलोमपुरमेतेन १७।२५
पुंवेदे नोकषायाणां ५६।९४
पुष्पवृष्टिं प्रवर्षन्तो ३।१८२
पुष्पवृष्टिभिरानम्र- ३।३२
पुष्पदन्तजिनेन्द्रस्य ६०।१२
पुष्यकृष्णचतुर्दश्यां ६०।२६३
पुष्करिण्यः शिलाकूट- ५।५३०
पुष्करेषु वसन्त्युच्चैः ५।१३०
पूजयन्तो यथाकामं ५७।१७६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य पूर्वभृतोरस्य ६०।४१२
पूज्या तापसलोकस्य ४५।७५
पूरयित्वा रसं तेन २१।९०
पूरणं गलनं कुर्वन् ५८।५५
पूरितं कोटिशो द्युम्नैर् २१।७०
पूर्यमाणः पुरोनिर्यन् १४।२९
पूर्णभद्रोपदिष्टेषु ४१।४३
पूर्णचन्द्र इतीन्द्राभः २७।४७
पूर्णचन्द्रमुनेः श्रुत्वा २७।५७
पूर्णचन्द्रस्तु राज्यस्थः २७।५९
पूर्णभद्रस्तयोर्ज्येष्ठो ४३।१४९
पूर्णप्रसवमासेऽत्र ४३।३५
पूर्णेषु नवमासेषु ४८।७
पूर्णेषु तेषु मासेषु ८।१०३
पूर्णैर्दधिमधुक्षीरे ७।७८
पूर्वकोपानुबन्धेन २८।४६
पूर्वजानां च दत्तानि २५।४४
पूर्वलक्षाः कुमारत्वे १३।५
पूर्वजन्मसु बहुष्वना- ६३।२५
पूर्वमभ्येत्य तत्रैव ५०।६६
पूर्वमेव मया तस्मै २३।५३
पूर्वकायप्रमाणः सन् ५६।७६
पूर्वप्रच्युतदेवस्य २४।५६
पूर्वमालवमासाद्य ५०।५८
पूर्वलक्षा कुमारेऽगु- ६०।४९४
पूर्ववत्पुनरुत्थान- २२।४२
पूर्वमेवोपशमिकं २।१४४
पूर्वकोट्यायुषं नाभि ७।१६९
पूर्वरूपधरवंश- ६३।७१
पूर्वस्यां त्रिशिरा वज्रे '।६९०
पूर्वस्यां विमले चित्रा ५।७१९
पूर्ववैरवशात्क्रुद्धस् २७।१२
पूर्वमानार्द्धमानाश्च ५।४०८
पूर्वदक्षिणदिग्भागे ५।३३४
पूर्वतः प्रभृति प्रोक्ताः ५।२५०
पूर्वस्य विजयस्याद्रे ५।५५०
पूर्वस्मादुत्तरो भूभृद् ५।१६
पूर्वस्माद् द्विगुणो व्यासो ५।५०५
पूर्वस्मान्मन्दरात्पूर्वः ५।५४०
पूर्ववत्तीर्थकृन्मेधस् ५९।१३३
पूर्ववत्समवस्थान- ६५।५
पूर्वपक्षमुपन्यस्तं २१।१३६
पूर्वस्मिन् धातकीखण्डे ३३।१३१
पूर्वमुत्पादपूर्वाख्यं १०।७५
पूर्वजन्मनि युष्माभिर् ७।१३८
पूर्ववद्रचिते तत्र ५९।११४
पूर्वदेशजशालीना- १८।१६१
पूर्वं प्रच्युत्य माहेन्द्रात् ३४।३७
पूर्वं सत्यप्रवादाख्यं १०।९१
पूर्वं कृतोपकारस्य २१।१५७
पूर्वः सर्वपुराणानां ८।२११
पूर्वाचार्येभ्य एतेभ्यः १।६६
पूर्वापरसमुद्रान्ता १८।२८
पूर्वात्पूर्वादधोऽधः स्यात् ३।११८
पूर्वाख्यातचतुःषष्टि- ५।६८१
पूर्वाद्यास्तु त्रिकूटश्च ५।२२९
पूर्वादयस्त्वमी वेद्या ५।२४८
पूर्वापरविदेहान्ताः ५।२८१
पूर्वार्धभारते तस्य ६०।१५०
पूर्वापरौ महामेरोर् ५।४९४
पूर्वान्मन्दरतः पूर्वैर् ५।५५८
पूर्वापरान्तयोरद्रे ५।३९
पूर्वाण्यायुस्त्रयोऽशीति- ६०।५३९
पूर्वान्तमपरान्तं च १०।७८
पूर्वापरायतानां हि ५।११३
पूर्वाङ्गप्रमितिः पूर्वा ६०।५००
पूर्वापरविदेहानां ४२।११
पूर्वाह्णेऽश्वयुजस्यातः ५६।११२
पूर्विणोऽष्टशती शान्तेः ६०।४०७
पूर्विणोऽनन्तनाथस्य ६०।४०२
पूर्वे पञ्चदशान्तास्तु ३४।८०
पूर्वेणैव क्रमेणामी ५४।६३
पूर्वैः सहैकनामानः ५।४९७
पूर्वोत्तरे तु विजया ५।७२५
पूर्वोत्तरस्या वैडूर्ये ५।७२२
पूषा किं वा भवेदेष ९।१४७
पृच्छति स्म स तां कामः ४७।५७
पृथिव्यप्तेजसां वायोः ३३।६३
पृथिवी सुप्रतिष्ठोऽस्य ६०।१८८
पृथिवीति महादेवी ३०।७
पृथिवीपरिणामस्य ५।१८०
पृथिव्यप्कायभेदेषु ३।१२१
पृथिव्योराद्ययोर्युक्ता ४।३४३
पृथिव्यप्तेजसां काये १८।५४
पृथुः शतधनुश्चापि ५०।१२६
पृथुः शतधनुश्चैव ४८।६८
पृथुरथं चतुरश्वयुतं तदा ५५।८१
पृथुभिरश्वयुतैर्ययुरीश्वरा ५५।३०
पृथग्भावः पृथक्त्वं ५६।५७
पृथक्त्वेन वितर्कस्य ५६।५९
पृथ्वीं रत्नप्रभां यातो २७।११३
पृष्टः कंसो नृपेणाख्यत् ३३।१३
पृष्टस्तथा तथा शौरिस् २८।१३
पृष्टा वदत यूयं मे १७।९
पृष्टा पूर्वापरं राज्ञा ३३।१६
पृष्टया वसुदेवेन २६।५
पृष्टो लक्ष्मणया नत्वा ६०।७४
पृष्ठकाण्डकसंख्यानं ७।६८
पृष्ठरक्षा नृपास्तस्य ५०।११८
पृष्ठे चन्द्रयशा भूपः ५०।१२८
पोदने चूर्णचन्द्रो यो २७।५५
पौण्ड्रः पद्मरथश्चापि ५०।८२
पौरुषाधिकमानीतं ८।२०२
पौलोम्या मातुरुत्संगे ८।२३२
पौषस्य कृष्णपक्षस्य ६०।२३३
प्रकटितलोकपालचरिताः ४९।३९
प्रकाममाकाङ्क्षितकाम- ६६।४६
प्रकाशभीरुः सहसा ततोऽसौ ३५।६२
प्रकीर्णकासुरी सूनुः ४६।८
प्रकृतिः प्रतिपन्ना तु ५८।२०८
प्रकृतिदेशरसानुभवस्थितिः ५५।९५
प्रकृतिः स्यात्स्वभावो ५८।२०४
प्रकृतिश्च स्थितिश्चापि ५८।२०३
प्रकृत्या मधुमांसादि ३।१२६
प्रकृतेः सप्रदेशाया ५८।२१४
प्रकृतेः स्थिततोऽनुभवाच्च ३९।९
प्रक्रमोपक्रमौ प्रोक्ता १०।८३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृष्टवैदग्ध्यहृतात्मनो- १४।१०५
प्रकृष्टद्युम्नधामत्वात् ४३।६१
प्रकृष्टोऽनुभवः पुण्य- ५८।२९०
प्रकृष्टौ ज्येष्ठमाणिक्य ८।१८१
प्रक्षीणः कल्पवृक्षात्मा ८।२
प्रक्षीणघातिकर्माणः ६४।६४
प्रक्षयात् पञ्चभेदस्य ३।६८
प्रघूर्णितोत्तुङ्गतरङ्ग- ३७।१६
प्रचण्डशाल्मलीखण्डे ६०।१११
प्रचण्डवाहनस्तत्र ४५।९६
प्रच्युत्य पुष्कलावत्या ३४।३४
प्रजघान शमेनासौ ५१।३६
प्रजाः प्रकृतिभिः सर्वाश् ४०।२२
प्रजानां च तदा जातः ७।१५१
प्रजातमात्रं खलु दैवयोगात् ३५।५
प्रज्वाल्यात्रान्तरे गेहान् २६।२६
प्रज्ञप्तिश्च प्रभावत्या ३०।३७
प्रज्ञप्तिः श्रेणिक ज्ञाता ५।७३४
प्रज्ञप्ती रोहिणी विद्या २२।६२
प्रणतप्रिय ! संप्रति ३९।५
प्रणयसहितमित्थं ३६।२०
प्रणम्यात्मभवान् पृष्टो ६०।१०
प्रणम्य पितरं स्नेहान् ४७।८३
प्रणम्य जिनमादाय ८।१५३
प्रणनाम ततस्तुष्टा ६०।९
प्रणन्तव्यः प्रयत्नेन ८।२२२
प्रणतश्च स तं प्राह ३१।६८
प्रणतेस्ते कृती कायो ८।२२३
प्रणेमुरर्हमिन्द्रास्त्वं ८।११९
प्रणामेनार्चितस्तेषां ४३।२२८
प्रतापवश्याखिलराजके ६६।१
प्रतापविध्वस्तरिपुः ३५।१५
प्रतिसेवनाकुशीलाः ६४।६८
प्रतिसेवनाकुशीलाः ६४।६६
प्रतिसेवनाकुशील- ६४।७३
प्रतिकृतिरर्चिता भुवि कृ-४९।४३
प्रतिनिधिराश्रयश्च सध- ४९।४२
प्रतिघातमनेकाऽभूत् १९।१०९
प्रतिविहितसुपूजः ३६।५९
प्रतिपद्य वचस्तौ तत् ११।८१
प्रतिपद्य स तद्वाक्य- ४३।९
प्रतिविबुध्य युवा सहसा ५५।२०
प्रतिदिनं वसति स्म हरि-५५।५०
प्रतिश्रुतिरभूदाद्यस् ७।१२५
प्रतिश्रुतं वचस्ताभिर् ७।१४७
प्रतिभवं भयदुःखखनी- ५५।९६
प्रतिशत्रुस्त्रिपिष्टस्य २८।३१
प्रतिष्ठा ब्रह्मनिष्ठोर्वी ५७।१२१
प्रतिक्षिप्तेन स क्षिप्र- ३१।११६
प्रतिशत्रुरयं राजा ४०।१४
प्रतिदधिमुखं चत्वा- ३४।८४
प्रतिवनं प्रतिगुल्मलता- ५५।४२
प्रतिमां व्योमगाः सर्वे २७।१२९
प्रतिविबुद्धपथः स्वयमेव५५।१०३
प्रतिग्रहोऽतिथेरुच्चैः ९।१९९
प्रतिमेरुविदेहाश्च ५।५३९
प्रतिबन्धमिहान्धस्य १७।६६
प्रतिवर्षविनिष्पन्न- २।२
प्रतिगृह्य तमुत्थाय ६४।१०
प्रतिग्रहादिशु प्राया- ५८।१८७
प्रतिकारसमर्थोऽपि १८।१४५
प्रतीक्ष्य कथमीदृश्यः २१।३
प्रतीक्षया प्रमादस्य ५६।२४
प्रतीत्य वर्तते भावान् १०।१०१
प्रतीत्य सप्तभूमीनां ३४।११७
प्रतीक्षमाणया तस्य ४५।६६
प्रत्यभिज्ञा कुतो नाथ २१।११७
प्रत्यङ्गमङ्गजमत्तङ्गज- १६।३९
प्रत्यक्षीकृतविश्वार्थं २।८९
प्रत्यक्षं सर्वलोकस्य १७।१५४
प्रत्यहं परया भूत्या ४६।२
प्रत्ययाय हरिदत्त- ६३।४९
प्रत्यहं शिखिनां मांसं २४।१४
प्रत्यासन्नापवर्गस्य २१।१८०
प्रत्याख्यातस्य धृष्टस्य ४६।३२
प्रत्याख्यानस्य विद्यानु- २।९९
प्रत्यासन्नममुञ्चन्तो १२।३४
प्रत्याशादग्धचित्तश्च २७।२६
प्रत्युवाच विबुधो ६३।६४
प्रत्येककायापर्याप्त- ५६।१०४
प्रत्येकं प्रत्यहं हानि २२।२१
प्रत्येकं मेरुमध्यौ तौ ५।५७९
प्रत्येकं तस्य चत्वारि ५।६८९
प्रत्येकं षोडशस्वेषु ५।२३४
प्रत्येकं शासनं देव्यो ८।४१
प्रत्येकं प्रकृतीः पञ्च ५६।९८
प्रत्येकमष्टावुपवासभेदा ३४।९८
प्रत्येकं सप्तलक्षाः स्युर् १८।५७
प्रत्येकं सहिताः सर्वे २।६९
प्रत्येकं नामचिह्नाद्यै- ५२।४
प्रत्येकं योषितस्तेषां ५९।११७
प्रथमनववधूकौ ३६।६३
प्रथमगर्जितशीतपयःकणा५५।७५
प्रथममदनरंगे- ३६।६४
प्रथमो हिमवानन्यो ५।१५
प्रदक्षिणकृतावर्त्तं ८।१५
प्रदर्शितजगज्जीव्यो २२।५१
प्रदातुं तेच्छतीदानी- २७।२९
प्रदीपवदयं देही १७।१४०
प्रदीप्तमुद्यन्तमिनं तमो- ३५।१२
प्रदेशहानितः पञ्च ४।३८
प्रदेशबुद्धितः सप्त- ४।३९
प्रदेशिनीं सृता रेखा २३।९५
प्रदोषसमये हारं ४८।३
प्रदोषसमये ततो ४२।१०३
प्रदोषनिह्नवादाने ५८।९२
प्रद्युम्न इति नाम्नाऽसौ ४३।९६
प्रद्युम्नशम्बनामाद्याः ४८।७२
प्रद्युम्नागमचिह्नानि ४७।११३
प्रद्युम्नो रक्षितोऽपायान्४३।२२३
प्रधानपुरुषादीनां ५३।३९
प्रपद्य शरणं सर्वे ११।६२
प्रबलशोकवशा प्रवि- ५५।१३१
प्रबुद्धश्च हरिर्दिष्ट्यै ४३।३७
प्रबुद्धा सर्वतोभद्रे ५४।१५
प्रबोधाख्या भवन्त्यन्ये ५७।१०६
प्रभवप्रलयस्थिति- ३९।७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभासा भास्वती भाषा ५७।३५
प्रभाते च जनो दृष्ट्वा ४३।१३८
प्रभाते तौ कुरुश्रेष्ठौ ९।१६०
प्रभासतीर्थतीरस्थ- ४४।३०
प्रभाते पौरलोकस्तं २४।८
प्रभावतीसमीपं ३०।५३
प्रभावत्याः परिप्राप्ति १।८६
प्रभातपटहस्फुटध्वनन- ४२।१०७
प्रभामण्डलसंवीत, ७।१३१
प्रभासममरं तत्र ११।१६
प्रभातकाले कृतभङ्ग- ३७।२४
प्रभुत्वमखिलस्त्रीणां ४३।१७६
प्रभुर्विभुरविध्वंसो १३।११
प्रभुतया प्रविधाय पराभवं १५।४५
प्रभूतदानधारार्द्र- ८।५९
प्रभू भद्र सुभद्रौ तु ५।६४५
प्रभो ! मे दुहितुर्भर्ता २५।७
प्रभोः कल्पद्रुमाः पूर्वं ९।२६
प्रभोस्तस्य समादेशात् ४०।३
प्रमदभारवशीकृतमान- १५।१०
प्रमदमथ वहन्तः ३६।७४
प्रमदः संमदो हर्षः ६०।५७१
प्रमत्तसंयतस्यापि ५८।२००
प्रमादस्य निरासाय ६२।४५
प्रमादालस्यदर्पेभ्यो २३।१२४
प्रमाणं दक्षिणार्द्धे यद् ५।९७
प्रमाणयोजनव्यास- ७।४७
प्रमाणप्रमितार्थानां १०।१५७
प्रमाणनयमार्गाभ्या- ७।२२१
प्रमाणनयनिक्षेप- ५८।३८
प्रमाणाङ्गुलमेकं स्यात् ७।४२
प्रमितशिरस्यतिभ्रमर- ४९।१०
प्रमिताप्रमितं तत्र १०।११२
प्रमीनमिथुनोन्मेष- ८।६९
प्रमोदा नाम संत्यन्ये ५७।१०५
प्रयत्नेन मनोहस्ती ४३।१९५
प्रयाहि भ्रातृबन्धूना- ५०।१०१
प्रयुज्य प्रणतिं तुष्टा ८।४०
पर्वतोऽपि ततोऽवोचत् १७।६३
प्रलापानुपदं गत्वा २१।२०
प्रलम्बालककाम्लान- ३०।२१
प्रलोनानेव तान्मत्वा ४५।५९
प्रोल्लसत्स्थूलधम्मिल्लां ४३।१२
प्रवर्धमानेष्वथ तत्र तेषु ३५।९
प्रवर्तिताश्च ते वेदा २३।१४७
प्रवव्राज नृपोऽस्यान्ते ३४।९
प्रवर्धतां भ्रातृशरीर- ३५।२६
प्रव्यक्तलक्षणे तत्र ४१।५२
प्रव्रज्य मुनिमार्गस्थः २९।५७
प्रवालमौक्तिकैरर्घ्यं ४१।१२
प्रविष्टा तुष्टचित्ता च २२।१४९
प्रविश्य नरकं पापा ४६।५२
प्रविष्टश्च पुनर्वेगात् ४७।३३
प्रविष्टौ च नृपास्थानीं १७।८३
प्रविश्य नगरं ततः ३८।३९
प्रविष्टास्तु पुरीं व्याला ६१।५७
प्रविशन्तु पुरीं सर्वे ४१।४०
प्रविश्य कंसः स्वसृसूतिगेहं ३५।६
प्रविश्य नगरीं रम्यां ५०।३८
प्रविश्य विधिवद्भक्त्या ५७।१७५
प्रविलसदतिभास्वत् ३६।९
प्रविष्टाश्च वयं चम्पां २१।३७
प्रविष्टश्च विशिष्टाना- ५३।४१
प्रवृत्तिरकृतादन्य- ५८।६२
प्रवृत्तिर्वेगवत्यास्तु ३०।९
प्रवेशितः पुरं सोऽथ २४।८३
प्रवेशितस्तया स्रस्त- ३०।२०
प्रशस्ततिथिनक्षत्र- ३०।५५
प्रशस्तस्तिमितध्यान- ८।२१६
प्रशस्तवंशो हरिवंश- ६६।३५
प्रशस्ततिथिनक्षत्र- ४०।२४
प्रशस्ततिथिनक्षत्र- १९।७५
प्रशस्ताध्यवसायार्थ- ६४।४८
प्रशस्यं च यशस्यं च ४३।२७
प्रशमसमाधिभागनशन- ४९।३०
प्रशंसितो वशिष्ठोऽय- ३३।६०
प्रश्नितेन तया तेन ४२।४३
प्रसवभरविभूति- ३६।५
प्रसवसमयतोऽर्वाग् ३६।२४
प्रसार्य करयुग्मं सा ४३।५४
प्रसारितकरो विद्ये ४७।६५
प्रसिद्धाष्टगुणाः सिद्धा ३।७४
प्रसिद्धं च गृहं जैनं २९।५
प्रसीदेत इतो देवे ५९।२८
प्रसीद भगवन् ! दीक्षां ४३।१३४
प्रसुप्तोऽजगरस्तत्र २१।९७
प्रस्तावेऽत्र गणिज्येष्ठं ४२।१२
प्रस्तावे हरिरप्राक्षीद् ६०।१३५
प्रस्तारश्चास्य विन्यस्य ३४।६०
प्रसेनजितमायोज्य ७।१६७
प्रस्थितौ दक्षिणामाशां ६२।३
प्रहारवज्रनादान- ५१।४०
प्रहासशीलतादि स्याद् ५८।९९
प्रहिताश्च हितास्ताभ्याम् ४३।३६
प्राक् प्रशस्तानुरागाढ्या ३।१७९
प्राक् स्त्रीवैरानुबन्धेन ४३।२२२
प्राकारस्योच्छ्रयस्तस्य ५।४००
प्राकारोऽन्तःपरीयाय ५७।२४
प्राकारोऽन्तःपरीयाय ५७।४९
प्राकृतास्त्रैस्तयोरासीत् २५।६५
प्राकृतानामपि प्रीत्या ४५।१५४
प्रागेव मदनावेश- ३०।५६
प्राग्भद्रिलपुरेऽत्राभून् ६०।११
प्राग्भारभूर्नरक्षेत्र ६।८९
प्राग्दिवाकरदेवाख्यः २३।१४३
प्रागशोकवनं तत्र ५।६७२
प्राग्दूर्वाङ्कुरमासाद्य १४।२२
प्राग्भवे पुण्डरीकिण्यां ६०।१४३
प्रागुपोष्य कवलस्य ३४।९१
प्राघूर्णिकोऽद्य सोऽस्माक- ९।१७२
प्राङ्मुखास्ते शतायामाः ५।६७७
प्राच्या एव विशुद्धाया ८।१०४
प्राच्यां दिशि तु वैडूर्ये ५।६०२
प्राच्यां पातालमाशायां ५।४४३
प्राचुर्यञ्च कषायाणां ५८।१०७
प्राणताग्रार्धरज्ज्वन्ते ४।२७
प्राणाधिष्ठानतन्निष्ठं ९।१३८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राणाः सप्त पुनः स्तोकः ७।२०
प्राणते पुनरष्टाभिश् ६।७३
प्राणिनो दुःखहेतुत्वाद् ५८।१२८
प्राणिजातस्य सर्वस्य ।६१।७६
प्राणिघातकृतः स्वर्गः १७।१४४
प्राणिप्रीतिकरं प्रायः १९।१४४
प्राणी श्रीधर्मणः पूर्वः २७।११६
प्राणी प्रत्यपकाराय २३।१३१
प्राणैरपि हि मे नार्थश् २१।६९
प्रातिहार्यैस्ततोऽष्टाभिर् ९।२१२
प्रादक्षिण्येन वन्दित्वा ५७।१७२
प्रादायि मेघनादाय ६०।११८
प्रादुर्भूतसमस्त- ३१।१३८
प्रादुःष्यन्ति सुराः सद्यः ५९।६
प्रातिहार्यादिविभवैर् ३।३९
प्रातिहार्यैर्युतोऽष्टाभिश् १२।३५
प्रातिहार्यैर्युतोऽष्टाभि- २।६७
प्रापद्विजयखेटाख्यं १९।५३
प्राप्तः शरदृतुर्दृप्तः २३।१३
प्राप्तश्च मत्तमातङ्गो २४।४५
प्राप्तसप्तर्द्धिसम्पद्भिः २।४०
प्राप्तः पामरको दृष्ट्वा ४३।१२२
प्राप्य पञ्चशतीं प्राची ५।१३८
प्राप्य गन्धसमृद्धं च ३२।५४
प्राप्य पापमतिश्चासौ ६१।७४
प्राप्तावपश्यतां विप्रा ४३।१०८
प्राप्ता मार्गवशाद्विश्वे ४५।१२०
प्राप्ता कदाचिदथ १६।२२
प्राप्तां घनकृताश्लेषां ३३।१२
प्राप्तोऽभिषेकममरेन्द्र- ८।२३६
प्राप्तो भौमविहारेण ४३।५०
प्रायः स्वर्गच्युतानां ४८।७६
प्राव्रजद्रामदत्ता सा २७।५८
प्राविक्षद् यागदीक्षायै २९।२७
प्रावृषेण्याम्बुधारेव ५९।५
प्रासादस्योपकण्ठे च ४४।१७
प्रासादस्थोऽन्यदा श्रुत्वा २३।१
प्रासादादिकमत्रापि ५।३४६
प्रासादाः सङ्गतास्तस्यां ४१।२३
प्रासादैर्मण्डपैश्चान्यैः ५७।७९
प्रासादे विजयस्यात्र ५।४११
प्रासादेषु शिरस्येषां ५।१६४
प्रासादेषु यथास्थानं ७।१४५
प्रासुकद्रव्ययोगेन १८।१४२
प्रासुकास्वथ विविक्त- ६३।१०२
पितृष्वस्रापि साऽवाचि ४२।७२
प्रियङ्गुलतिके त्वस्य ३३।५०
प्रियङ्गुसुन्दरी तस्य २८।६
प्रियङ्गुसुन्दरीलाभ- २८।१४
प्रियङ्गुसुन्दरीं शौरी २९।६७
प्रियङ्गुसुन्दरी तं च २९।१४
प्रियङ्गुसुन्दरी नाम्ना २९।५८
प्रियसर्वहितार्थ- ३९।८
प्रियवचनपयोभिर् ३६।७०
प्रियवधूकरधारितसत्क- १५।११
प्रियवादीति विश्वस्य २१।८९
प्रियालापेक्षिभिः स्निग्धैः १४।४५
प्रियामुखमिवात्मीयं ८।२१
प्रियां मदनवेगां ता- ३२।२२
प्रिये यदुत्पत्तिमियं ३७।२५
प्रिये ! किमिदमित्युक्ते ४३।५५
प्रियोग्रसेनेन नृपेण दत्तां ३५।२५
प्रीतिकल्याणमध्ये स्युर् ५७।४८
प्रीतिकरविमानेशः २७।८९
प्रेक्षमाणां निजं रूपं ४२।२६
प्रेक्षकैः सुरसङ्घातैः ११।८७
प्रेक्षाशाले विशाले स्तः ५७।९३
प्रेत्यभावो भवोऽमीषां ५६।४७
प्रेष्यप्रयोगानयन- ५८।१७८
प्रोक्तं सीमन्धरेशेन ४३।२४१
प्रोद्यदादित्यवर्णाभाः ७।६७
प्रोद्दंष्ट्रान्तरविस्फारि- ८।१४३
प्रौढयौवनयोर्योग- १४।९७
प्रौढेऽस्ताभिमुखे ध्वस्त- १४।७१

[फ]

फणा मणिद्योतविभिन्न- ३७।१९
फलपुष्पभरानम्र- ३।५६
फलमस्य विधेः श्रेष्ठं ३४।६१
फलकुचगुरुभारा ३६।४
फलभारवशान्नम्रा ९।२९
फल्गु गायन्ति किन्नर्यो ५९।१८
फाल्गुनासितपक्षेऽभूद् ६०।१७४
फाल्गुनासितपक्षस्य ६०।२३६
फाल्गुनाष्टाह्निकाद्येषु ५।६८०
फाल्गुने कृष्णपक्षस्य ६०।२५७
फेनपुञ्जप्रतीकाशै- ५२।५

[ब]

बद्धमूलं भुवि ख्यातं १।५०
बन्धमोक्षफलं यत्र २।११०
बन्धहेतोरभावाद्धि ५८।३०३
बन्धुषेणस्तथा सिंह- ४८।६२
बन्धुमप्युपगूढाङ्गं २९।२०
बन्धुकार्यमिदं साधु ४३।२३९
बन्धुकौमुदखण्डानां ९।१६१
बभाण भगवानन्ते १८।१२५
बभार गर्भं युगलात्मकं सा ३५।३
बभूवुः प्रत्यगारं च ६१।७३
बभूव हरिवंशानां १७।१
बभूवतुरिमौ भूमौ ४३।१०१
बभौ प्रालम्बसूत्रेण ८।१८३
बर्बरा यमनाभीरः ५०।७३
बलद्वयस्य संपाते ५३।१३
बलदेवसमुत्पत्ति १।८७
बलरिपुश्च तदा चलिता- ५५।१३
बलवतां गणनास्वथ ५५।५
बलकेशवचक्रित्वं ४।३८२
बलकेशवयोश्चापि ५०।२४
बलेन महता तस्य ४२।६६
बलनारायणौ श्रुत्वा ६१।५८
बलदर्शनतो जित्वा ४८।१७
बलकेशववीराभ्यां ५१।४४
बलस्तस्मादभूत्पुत्रः १३।८
बलिनो दुर्बलाश्चापि २७।३१
बली हलधरस्तत्र ५०।११४
बहिर्विजयपुर्यास्तु ५।४२१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहुसंस्थानभाजस्तु १८।७१
बहुरसपूर्णवर्णकुलशैल- ४९।५
बहुत्रिदशपङ्क्तिभिः ३८।४९
बहुजनपदराज- ३६।३९
बहुप्रकारस्फुरदंश- ३७।४१
बहुषु तु वर्षवासरगणेषु ४९।२६
बहुदिनानशनव्रतधारणः १५।१४
बहुष्वेवमतीतेषु २७।३०
बहुराजसहस्राणां ४१।४७
बहुवर्षसहस्राणि ४३।२१३
बहूनां दह्यमानाना- ६१।९४
बह्वभिग्रहपरिग्रहो ६३।९३
ब्रह्मदत्तमुपाध्यायं २३।३३
ब्रह्मब्रह्मोत्तरोद्भूताः ३।१६४
ब्रह्मलोकं समासाद्य ६५।५७
ब्रह्मलोकोपपादं च १।१२२
ब्रह्माणं विष्णुमीशानं १७।१३२
बालक्रीडामृतरसः ९।३
बालुकाप्रभभूमेर्यो २७।८५
बाल्यादारभ्य लावण्य- ४७।२३
बाहुः प्रसारितस्तेन २०।३०
बाह्यद्रव्यव्यपेक्षत्वात् ६४।२७
बाह्यचैत्यगृहोद्याने २४।३
बाह्यसूच्यास्त्वसौ लक्षाः ५।४९३
बाह्यमान्तरमसौ ६३।१०६
बाह्यबाह्यालिकां भानु- ४७।१०२
बाह्याध्यात्मिकभावानां ५६।३५
बाह्याभ्यन्तरभेदेन १।६९
बाह्याभ्यन्तरवर्तिभ्य- २।१२१
बाह्यान्तराणि लक्षे द्वे ५।६६८
बाह्यस्त्रीणि सहस्राणि ५।५२४
बाह्यस्तस्य सहस्राणि ५।५२५
बाह्याः सप्तदश न्यस्ता ५७।१०९
बाह्योद्याने च तत्रासौ २८।१५
बाह्योद्यानेऽथ चम्पाया- १९।११४
बाह्यो यो गिरिविष्कम्भः ५।२९८
बाह्लीकात्रेयकाम्बोजा ११।६६
बाह्वाद्यैः षड्भिरभ्यस्ता- १०।१४९
ब्राह्मणस्य स्वभावेन २७।६२
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः १७।८४
ब्राह्मी च सुन्दरी चोभे ९।२१७
ब्राह्मीयं सुन्दरीयं च १२।४२
बिभ्राणो वसुदेवोऽत्र २४।८५
बिभेद पादनिर्घातै- ५४।४४
बिभेम्यतः प्रियेऽवश्यं ३३।११८
बुद्धवार्तो जरासन्धः ५०।९
बुद्ध्वा नत्वा जिनेन्द्रं ६०।१२४
बुद्बुदापाण्डुगण्डान्ता ९।८०
बुद्ध्वा स्वावधिकात्प्राप्तः ११।१९
बुद्ध्वाप्यङ्गारकं शत्रुं १९।१००
बुद्ध्वोपवासिनं तत्र ११।४९
ब्रुवाणामिति तां शार्ङ्गी ४२।८७
बृहद्वसुरिति ज्ञेयः १७।५८
बोधत्रयाम्बुनिर्धूत- ४१।५६
बोधमाप्य परितः ६३।१४
बोधितः सुरमुख्यैः स ६५।४१
बोधिलाभनिमित्ताया १८।१५०
बोधिलाभपरिप्राप्ता १८।१५१
बोधितावधिनेत्रेण ६०।३५
बोध्यं यथास्वमुत्सेध- ७।४३

[भ]

भक्तपानोपकरण- ५८।८९
भक्त्यार्चयन् त्रिभुवनेश्वर १६।६७
भक्त्या शक्राज्ञया चाभूत् ९।६
भक्षणं फलमूलादे- ९।११३
भगवन् भुक्तिवेलाया- ६०।३
भगवन्नत्र कंसोऽयम् ३३।४३
भगवन् तिष्ठ तिष्ठेति ९।१८४
भगवन् ब्रूहि किंनामा ३।१८४
भगवन् भवते मेऽद्य ६०।२
भग्नभोगा भुजङ्गी तु ३३।१६०
भग्ने कच्छमहाकच्छ- ९।१७०
भञ्जाजृम्भाक्षितोद्गार- ५६।३७
भटमण्डलमध्यस्थो २२।८
भट्टपुत्र ! किमित्येव १७।६७
भद्रशालवनोद्भूतै- ८।१९०
भद्रशालवनं मेरोः ५।२३६
भद्रशालवने भान्ति ५।२०९
भद्रशालवनं भूमौ ५।३०७
भद्रशाले वने स्त्रीभिर् २७।११
भद्रशाले जगत्युच्चैर् ८।१९२
भद्रवत्सविदेहाश्च ११।७५
भद्रकाली महाकाली २२।६६
भद्रवाणस्य तद्राज्यं ६०।४९१
भद्र ! दत्ता यथा प्राणा २१।२१
भद्रके भद्रभावेन २८।२८
भद्रासनस्थितायास्मै ८।९१
भद्रिला प्रथमाषाढा ६०।१९१
भयान्म्लेच्छास्ततो याताः ११।३२
भयोत्पादनमन्येषां ५८।१०३
भरतश्चक्रवर्त्याद्यः ६०।२८६
भरतान्तर्विष्कम्भो ५।५८१
भरतं भुजयन्त्रेण ११।८६
भरतानन्दनं नन्दा ९।२१
भरतासनमध्यास्य ८।२१२
भरतो दीर्घदन्तश्च ६०।५६३
भरतोऽयं नृपैः सार्द्ध- १२।४३
भरणीषु जिनो मल्लिर् ६०।२०८
भर्तरि स्वर्गते सापि ६०।११९
भर्ता योजनगन्धाया ४५।३१
भर्तुर्या भूतयो बाह्यास् ५७।१५०
भर्तृप्रभावसदृशा ५९।७४
भ्रमच्चक्रसमारूढो ४५।१३४
भवनानां तथा लक्षा ४।६१
भवनं नन्दने तेषां ५।३१६
भवनकूटतटान्यपतन् ५५।६८
भवनानां परिक्षेप- ५।३२०
भवनालयवासिन्यो ५७।१५४
भवपद्धतिपान्थस्य ५८।१७
भवतेह भुवां त्रितये ३९।४
भवसुखानि बहिर्विषयो- ५५।९७
भवतोर्जीवतोः पुत्रौ ६१।८८
भवतोद्धृतशल्यं मां २१।३०
भवतो न भुजिष्योऽह- ११।७८
भवतोऽपि तपः प्राप्तिस् ६१।२७
भवपञ्चकसम्बन्ध- १२।२५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवन्त्यब्बहुले भागे ४।७१
भवत्यनन्तरैवैषा ४।२६८
भवान्न किं श्रेणिक वेत्ति ६६।६
भविता तव कन्यायाः १९।९१
भविता यो हि देवक्या ३३।३६
भविष्यदुःखमाशेषे ६०।५५४
भवेत्तु भेत्ता भव ३७।४०
भवेनैकेन मार्गस्थः ५८।३०५
भवेद्वर्षसहस्रं तु ७।२३
भवैः सिद्धिस्त्रिभिस्ते ६०।१०४
भव्यसत्त्वमसौ बुद्ध्वा १८।१०६
भव्यः पञ्चेन्द्रियः संज्ञी ६४।५२
भव्यकूटाख्यया स्तूपा ५७।१०४
भव्यसत्त्वैर्यदा कैश्चित् ३।१४१
भव्याः कतिपयैरेव ६०।५७२
भव्याभव्याभवेऽनन्ता ३।१०७
भव्यत्वाद्विप्रकृष्टेष्वपि च ३।१९८
भव्यत्वाहारपर्यन्त- ५८।३७
भस्मयामि लघु द्वेषि- ४५।५५
भस्त्रां कृत्वा सशस्त्रं मां २१।१०८
भागः पञ्चदशः शुक्ले ५।४४९
भांगाश्चास्य शतं प्रोक्ता ५।५८२
भाजनं भोजनं शय्या ११।३१
भाण्डशालाः समस्तासु २७।२३
भाण्डागारप्रविष्टं च २७।४८
भाण्डागारहुताशो ३४।१३९
भानुः प्राव्रजदन्तेऽसौ ३३।१००
भानुना वर्धमानेन ४४।२
भानुः सुभानुभीमौ च ४८।६९
भान्त्येकादशकूटानि ५।५२
भान्ति सूर्यविमानानि ६।१५
भात्यशोकवनं प्राच्यां ५७।२८
भाद्रपदशुक्लपक्षे ३४।१२७
भामायास्तनुजः श्रीमान् ४४।१
भ्राजते वातवलयै- ४।४२
भ्रातरौ रामकृष्णौ ५४।२२
भ्रातरोऽपि दशार्हास्ते ४१।३८
भ्रातर्याहि ततः स्वर्गं ६५।५०
भ्राता मदनवेगायाः २५।१
भ्राता मे कुपितः प्राप्तः ४२।८५
भ्रात्रा हयपुरीन्द्राय ४४।४७
भ्रात्रो राज्याभिषेकं च १।१११
भ्रान्ते द्वे धनुषी हस्ता ४।२९७
भार्गवाचार्यवंशोऽपि ४५।४४
भार्गवाचार्यकं द्रोणो ४५।४३
भारतं दक्षिणं तत्र ५।१३
भारतापरवैदेहा ५।३५३
भारुण्डैरण्डजैः पूर्वं २६।३४
भारुण्डैश्चण्डतुण्डाभ्यां २१।१०९
भार्या विजयसेना मे २१।१२०
भार्यां वेगवतीं दृष्ट्वा ३२।१७
भावशुद्धिरपि श्रेष्ठा ५६।३१
भावलिङ्गं प्रतीत्यामी ६४।७५
भावनाः पापबन्धस्य ५७।१५५
भावनानां भवत्यब्धिः ३।१३९
भावलेश्या कषायस्वा- ५६।२८
भावमात्राभ्युपगमैर् १०।५८
भावना व्यन्तरा देवा ३।१३५
भावाभावद्वया द्वैते ५८।१०
भावांस्त्रैणान्यतो याति ५८।२३७
भाविना स्वामिना ४५।१३०
भाविनी न ततः सेयं ४७।९२
भावोपमाव्यवहार- ३४।१०७
भाषामनःशरीराक्ष- ६५।३६
भास्वत्कल्पलतारूढ- ४१।२२
भास्वत्फणामणिज्योति- ५९।६४
भास्वते हरिवंशाद्रि- १।२४
भास्वराम्बरभूषैषा ८।८३
भिन्नपात्रः स चागत्य २७।२५
भिक्षाकालेऽन्यदा तेषां ६४।९
भिक्षार्थिमुनिसंकल्पा ६४।२३
भिक्षौषधोपकरण- ५८।१५९
भीतानामभयं दत्त्वा ११।३९
भीमसेनो महाभीमं ४५।९४
भीमदर्शनयाकृष्ट- २२।१२६
भीमश्चान्यमहाभीमो ६०।५४८
भीमावलेस्तनूत्सेधः ६०।५३७
भीमो राजगृहे राज्ञा ४५।१०९
भीष्मश्च विदुरो द्रोणो ४५।४१
भीष्मजा भीष्मसंसार- ६०।४१
भीष्मोऽपि शन्तनोरेव ४५।३५
भीर्ष्या स्वपक्षपैशुन्य- ३४।१०१
भृङ्गाभृङ्गनिभाप्यन्या ५।३४३
भृङ्गारं कुम्भतोयं च ११।२०
भृङ्गारकलशादर्श- ५।३६४
भृतघोरतपोभाराः ३३।१३०
भृत्यपुत्रकलत्राणि ९।१०३
भुक्त्यभावो जिनेन्द्रस्य ५९।९१
भुक्त्वा देवसुखं देवश् ६०।२२
भुक्त्वा संसृतिसार- ३४।१५१
भुजलतयोः शिरीषमृदु ४९।८
भुजयुद्धे ततो लग्ने ४६।१२
भुजगकोटिमणिद्युति- ५५।६०
भुजङ्गशय्यामिह सिंह- ३५।७२
भुञ्जानः स तया २४।३७
भुञ्जानः पायसं पात्र्या २५।२९
भुञ्जानस्य तथा नाभे- ८।३६
भुञ्जानानाह राजन्यान् ३३।१४६
भुवः स्वर्भूर्निवासिन्यो ५९।७०
भुवः स्वर्भूस्तपः सत्यं ५७।११४
भुवि हरिबलदेवौ ३६।६०
भूचरान् खेचरान् भूपा- ५३।४७
भूचरेषु ततोऽन्येषु १२।५३
भूतपूर्वव्यपेक्षात- ६४।१०४
भूतव्यन्तरसंघातान् ११।१२
भूतसंश्लेषजातस्य २८।३९
भूतधात्री पुराकल्पः ५७।१२०
भूत्वा जातिस्मरा मूर्च्छां १२।१३
भूत्वा स्वयंप्रभद्वीपे ६४।११४
भूत्वा देवकुरुष्वास- ६०।९९
भूत्वा क्षीणकषायस्यो- ५६।९७
भूत्वैकादशपल्यायु- ६०।७१
भूपतिर्विश्वसेनाभूद् ६०।५८
भूपाः संभूय भूयांसो २८।८
भूपोद्धृतां नभसि देवगणै १६।५६
भूपो धारणयुग्मेऽभूत् २३।४६
भूभृत्सहस्रपरिवारभृदेष १६।५७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूभृतायुपरिज्ञेया ५।११८
भूभृतोऽतिविषमं ६३।६२
भूभृतोऽर्द्धतृतीयेषु ५।५०६
भूभृतो रत्नवीर्यस्य २७।१३५
भूभृतोऽतिबलस्याभूत् २७।७८
भूमिशय्याव्रतं दन्त- २।१२९
भूमिभिः सप्तदशभिः ५।४०२
भूमेः स्वभावभूताया ५७।५
भूमौ निपात्य पादाभ्याम् ४६।३५
भूमौ राजसुतान् काम- २९।५९
भूमौ कीर्तिरभूत्तस्य १७।५६
भूमौ रथ्या यथा स्त्री- १९।१२
भूवधूः सर्वसम्पन्न- ५९।७९
भूषितादित्यवंशस्य २३।४७
भूषौषधिप्रभापिण्ड- २२।१३७
भेरी-दुन्दुभि-शङ्खादि ८।१४१
भेरीशङ्खानकैर्वीणा ११।१२०
भेर्यास्तस्या रवं श्रुत्वा ४०।२०
भोक्तुकामोऽपि नो ५८।२८१
भोगसंसारनिर्वेद- ३४।११६
भोगतृष्णोर्मिनिर्मग्ना २६।३८
भोगसंसारशारीर- ४३।२०२
भोगङ्करा भोगवती ५।२२७
भोगास्ते स्वपरयोर्ये ४३।१८६
भोगाभिलाषविषमाग्नि- १६।४७
भोग्यान्यपि यथाकामं ५९।४६
भोग्याद्या वेणुदेवस्य ५।६६३
भोजराजकुलयादव- ६३।२४
भोजनेऽग्रासने विप्रः ४७।११०
भो धीर ! ते यथा दृष्टं ३१।१११
भो भो नागसुपर्णाद्याः ११।४४
भो भो मानेन रूपेण ९।११४
भो भो बुध्यस्व बुध्यस्व २४।४
भौमा मसूरसंस्थाना- १८।७०
भ्रातृस्नेहसमुद्रेकात् ३१।१२८
भ्रातृस्नेहवशो देवो ६५।५५
भ्राम्यन्तं तं तथा नाथं ९।१४५
भ्रूकर्णाक्षिशिरःकण्ठ- ४२।३८
भ्रूलताकुटिलचाप- ६३।१००

[म]

मकरध्वजमुत्तुङ्गं ४७।३५
मक्षिकापक्षसूक्ष्मान्तो ५।४३९
मक्षिकादंशमशकैः ४७।१०८
मगधासारनलकां २२।९९
मङ्गलोत्तमकल्याण- ५७।११६
मञ्चस्थस्योपकण्ठेऽस्य ३१।४४
मज्जयत्यभिनिवेश्य ६३।५८
मज्जेतापि यदीदृक्षो ५२।७४
मणिगणांशुलसत्पटली- ५५।१२३
मणिसुवर्णसुवर्णधराधरे ५५।११६
मणिराशिष्विवाम्भोधौ ५०।६
मणिकाञ्चनकूटं च ५।१०४
मणिद्युमणिनित्याभे ४।६५
मणिगणच्छविविच्छुरितो- १५।१६
मणितोरणपार्श्वेषु ५७।२६
मणिकुट्टिमभूमौ ता ९।१६८
मणिकाञ्चनसंज्ञायां ४२।१८
मण्डलेशत्वमेतद्धि ६०।५२४
माता स्वसा च तनुजा ४६।५८
मतिज्ञानविकल्पोऽयं १०।१५१
मतिषु बोधचतुष्क- ५५।१२५
मतिश्रुतावधिज्ञान- ५८।२२३
मतिश्रुतावधिश्रेष्ठ- ८।१९७
मत्या विपुलया युक्ताः ५९।१३१
मत्तेभं तमिवान्वेष्टु ८।६१
मत्यादेः केवलान्तस्य २।१०६
मत्स्यशङ्खाकुशाद्यङ्कौ २३।५९
मत्स्यकूर्मविमुक्तश्च ५।३७२
मत्स्यो भद्रपुरं जित्वा १७।३०
मर्त्या हिमवतोरग्रे ५।५७१
मर्त्यास्त्वेकोरुकाः पूर्वे ५।४७१
मत्वेतरमनुष्याणां ९।१३६
मथुरायामिहैवासीत् ३३।४७
मथुरायामथ संप्राप्तो ३३।७५
मदखेदविनोदार्थः ५८।२२७
मदनभङ्गकृतप्रभवे भवे ५५।१२७
मद्यभेदाः प्रसन्नाद्या ७।९०
मधुपानमदोन्मत्त- २३।१७
मधुलिहां मधुपानजुषां ५५।३७
मधुपैः परपुष्टैश्च १४।२६
मधुकैटभवीरौ ता ४३।१६१
मधुपानमदोन्मत्त- १४।२४
मधुः सकैटभः श्रुत्वा ४३।२०१
मधुरस्निग्धशीलानां ११।९३
मधुरस्निग्धगम्भीर- ५८।९
मधुरा त्वं रामदत्ताभू- २७।६४
मधुदिग्धोग्रखड्गाग्र- ३।९६
मधुर्मांससुराहारा ३।११२
मधूदकोभयस्वादः ५।६२९
मध्यलोकस्वरूपान्तर् ५७।९७
मध्यं बिभेद सेनानी ५१।२२
मध्यत्वं च समासाद्य ५०।१०६
मध्यदेशे जिनेशेन ३।१
मध्यमग्रामजाश्चापि १९।१६७
मध्यमं तु भवेत्पात्र- ७।१०९
मध्यमा दक्षिणस्यां स्याद् ५।३४१
मध्यमा पद्मलेश्या तु ६।११०
मध्यमाया विधिर्योऽत्र १९।२४६
मध्यमाया भवेदंशौ १९।२४१
मध्यमायां गृहांशौ तु १९।२१२
मध्यमोदीच्यवायाःस्या- १९।२४४
मध्यमो दिव्यवा १९।१७७
मध्यमोदीच्यवायास्तु १९।२०६
मध्यस्था एव सर्वत्र ७।१०४
मध्यान्तराणि लक्षैका ५।६६७
मध्याह्नेषु पुरग्राम- ९।१४४
मध्ये च मध्यदेशास्तु ५०।१०८
मध्ये कालिन्दसेनाख्या १८।२४
मध्ये वापि चतस्रोऽत्र ५७।१३
मध्ये भारतमन्योऽद्रि- ५।२०
मध्ये तस्य चतुर्दिक्षु ५।६५२
मध्येऽनेकविकल्पास्तु ६४।१००
मध्ये चानुदिशाख्याना- ६।५४
मनकस्यापि विस्तारो ४।१८६
मनके नवदण्डाश्च ४।३०८
मनसि शुभे निजे वचसि वा ४९।४५
मनःपर्ययपर्यन्त- २।५६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनुजदेवनरामरमर्त्यज-४३।२४४
मनुष्यभावमापन्नः ४३।२२१
मनुष्यभवसंप्राप्तौ ६४।१२८
मनुश्च मानवस्तत्र २२।५७
मनुष्यत्वेऽपि जन्तूनाम् ३।१२८
मनो भुवनरक्षणे ३८।५
मनोज्ञस्वरनिर्वृत्तिर् ५८।२७१
मनोज्ञविप्रयोगस्य ५६।१७
मनोज्ञविप्रयोगस्य ५६।८
मनो हरन्नरस्त्रीणां ४७।४७
मनोवाक्कायशुद्धस्य १।६८
मनोवेगरिपोर्लेभे ४७।४०
मनोवचनकायाना- ९।२००
मनोनियमनार्थत्वा- ६४।२८
मनोहरशिशुक्रीडा ४७।१२५
मनोवाक्कायदानानां १०।६०
मन्दमत्र गुरौ बाह्यो ३१।१०३
मन्दमध्यातितीव्रत्वात् ५८।८३
मन्दरस्तूपनामानो ५७।९८
मन्दरार्यो जयो रिष्ट- ६०।३४८
मन्दारकुसुमैर्मत्त- ५९।४१
मन्दारादिद्रुमाणां ५६।११६
मन्द्रात्वं पसरो नास्ति १९।२०३
मन्मथो मदनः कामः ४७।२५
मन्युरुद्धगलगद्गद- ६३।४८
मन्ये दिवसमप्येषा १४।६३
मन्त्रवादिपरिव्राजा ३०।४६
मन्त्रशक्तिरियं किंनु ८।२०१
मन्त्राविदार्यगलया १९।१५१
मन्त्राणां वाहने साक्षाद्१७।१०८
मन्त्रिणो हि प्रभोश्चक्षुर् ५०।११
मन्त्रैर्गरुडदण्डेन २७।४९
मया खेटपुराम्भोधि- ४८।२६
मयासौ ग्राहितो धर्म- २९।५१
मरुच्चलितवस्त्रान्त- ६२।३२
मरुदेवस्य काले च ७।१६५
मर्यादा रक्षणोपाय- ७।१७६
मर्यादोल्लङ्घनेच्छस्य ७।१४२
मर्त्यलोके सुखं तद् यच् ११।९६
मलदो भार्गवश्चामी ११।६९
मलग्रस्तशरीरोऽसा- १८।१३०
मल्लिः पञ्चशतैः सिद्धः६०।२८३
मल्लेस्तु पञ्चपञ्चाशत् ६०।४३८
म्लेच्छः-शृगालदत्तस्तद् २७।७०
म्लेच्छराजसहस्राणि ११।३०
मसारगल्वगोमेद- ४।५३
महत्खस्पर्द्धयेवोद्ध्वं ४१।३
महत्तरप्रतीहारी ४३।२
महावलेपानखिला- ३७।२९
महासमुद्रस्य महामृता- ३७।३७
महादेवीभिरिष्टाभि- ४४।५०
महापद्मो महानागो ५२।३८
महाप्रभावसम्पन्नास् ९।२२२
महातमःप्रभां प्राप्तो २७।१०९
महापद्महृदाद् रोह्या ५।१३३
महाभुजोऽपि तस्यां स्यात्५।६९१
महासरांसि षट् तेषु ५।९
महातमः प्रभा भूमिः ४।४५
महापुरुषकोटीस्थ- ४५।१५५
महादिक्षु चतस्रोऽस्या ५७।१०
महासेनस्य तनयः ४८।४१
महाहिशय्यामिह सज्जितां३५।७६
महायुद्धमभूत्तस्य ५१।२४
महाप्रभावसम्पन्ने ६५।४४
महाश्वेतापि मायूरी २२।६३
महापुरं पुष्पमालं २२।९१
महासेनस्य मधुरा १।३३
महाव्रतानि साधूना- १८।४३
महालब्धिमतस्तस्य १८।१३८
महापुरात्समादाय ३२।२८
महाबलस्य विद्येशो ९।५८
महाभूतानि सर्वाणि ५९।४
महातपोभृद् विनयंधर- ६६।२५
महारक्षाधिकारस्य ४३।४२
महाभुजगशोभाङ्क- २६।२२
महावैराग्यसम्पन्नस् ४६।३७
महाशत्रुरसौ मृत्वा २७।८८
महामृतरसायनैः ३८।६
महानेमिधराक्रूर- ५०।८३
महाणुव्रतयुक्तानां ५८।११७
महाराज्यपदोदार- ४७।२८
महितं महतां मह- ३९।६
महिषमृगध्वजवृत्तं २८।५१
महिमाग्रे सुरेशाष्ट- ५९।११
महिषी रुद्रदत्तस्य ६०।८७
महिषाभ्यामिव क्षोभो ४३।१०९
महीदत्तेन नगरं १७।२९
महीजयः सुफल्गुश्च ४८।४४
महेन्द्रो मलयः सह्यो ४८।४९
महेभकुम्भाभकुचा- ३७।९
महोपसर्गे शरणं ६६।४३
महोग्रभग्नसंचार ३३।२७
मागधः शाम्यमानोऽपि ५०।५५
मागधाभिधदेशेऽसौ १८।१२७
मागधोऽत्रान्तरेऽप्राक्षीत् ४५।३
माघत्रयोदशतिथौ सित- १६।७६
माघशुक्लत्रयोदश्यां ६०।१७६
माघस्य कृष्णपक्षस्य ६०।२३४
माघशुक्लचतुर्दश्यां ६०।१७५
माघकृष्णचतुर्दश्यां ६०।२६६
मातङ्ग इति मा मंस्था२२।१३०
मातङ्गीभिर्भृशं भृङ्गी २२।१२८
मातङ्गीनां च विद्यानां २२।८१
मातङ्गो विनमेः सूनुः २२।११०
मातल्यधिष्ठितं सास्त्रं ५१।११
माता सुताः समाराध्या१८।१२३
माता ज्ञात्वा सुताचित्तं २१।५२
मातुलं मातरं पत्नीं २१।१७५
मातुः शिशुं विकृत्यान्यं २।३०
मात्सर्योपहतास्त्वन्ये ३१।४८
मात्रा त्यक्ता स्वपापेन ६०।३४
मात्रे निवेद्य वृत्तान्तं १७।५०
माथुराः सौर्यजा वीर्य- ४१।४४
मादृक्षोऽपि यदीदृक्षं ४३।१९०
माधवोऽपि निजं राज्यं४३।२०४
माधुर्यः शौर्यपूर्वं च ४०।२१
माध्यस्थ्यैकत्वगमनं ५८।१५३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मानसं ज्वलने तं च ५६।९५
मानस्तम्भादि संलक्ष्यं १९।११५
मानस्तम्भैस्तथा स्तूपैस् २।७४
मानितासनदानाद्यैः १४।७८
मानोन्मानस्वरं देहं २३।१०७
मानसैर्वाचिकैः कायैः २३।१०५
मानुषस्यायुषो हेतु- ५८।१०९
मानुषोत्तरशैलस्य ५।७३
मानुषोत्तरतः पूर्व- ६।२३
मानुषोत्तरपर्यन्ता ५।६३३
मानुषक्षेत्रमर्यादा ५।५७७
मानुषक्षेत्रविष्कम्भश् ५।५९०
मान्यो मान्याभिरन्यस्त्रो ४७।१३६
मा भैषीरेष विद्यानां ३०।३१
मायया शायितं सैन्यं ४७।१३४
मायामर्कटमायाश्वैर् ४७।१०७
मायायुद्धमिदं दृष्ट्वा १९।११०
मारे तु या परा सैव ४।२८२
मार्गणास्थानभेदैश्च २।१०७
मार्जारेण सता तेन १२।१९
मार्ष्टि मार्दवगुणेन ६३।२२
मालतीवल्लभां मासश् १४।१९
मालतीमल्लिकाद्युद्यत् ७।८८
मालावली कदल्याद्याः ५।३८६
माल्यवांश्च नदीमध्ये ५।१९५
माल्यदानापदेशेन ३३।१०८
मासस्याभ्यन्तरे भूप ५४।२६
मासान् पञ्चदशाजन्य- २।४५
मासे मासे समाजश्च १९।१२७
मासोपवासिने तस्मै ३३।७८
मांसमद्यमधुद्यूत- १८।४८
मांसमद्यमधुद्यूत- ५८।१५७
मांसदोषं नृपः श्रुत्वा २३।१५२
मांसप्रियस्य तस्यासीत् ३३।५१
मांसलं हृदयं राज्ञां २३।७९
मांसलैर्मृदुलैः पार्श्वैर् २३।७७
मासे पक्षेऽह्नि चामुष्मिन् २७।२८
मासोपवासिनौ दृष्ट्वा ५०।५९
मा स्प्राक्षीस्त्वं रसं भद्र २१।८४
माहिषाद्यैश्च नावाद्यै- ८।१३४
माहेन्द्रेऽष्टौ तु लक्षे द्वे ६।५६
माहेन्द्रे नियुतं प्रोक्तं ६।८१
मित्रश्रियः सुमित्राख्यः ४८।५८
मित्रकार्यसमुद्युक्तौ २१।१७२
मित्रश्रियं प्रगृह्यागान् ३२।३२
मिथुनमर्भकयोः सुखला- १५।२९
मिथुनानि यथा नृणां ७।९९
मिथिलानाथमुत्पाद्य १७।३४
मिथिला राजगृहकं ६०।२४३
मिथिला रक्षिता कुम्भो ६०।२००
मिथिला विजयो वप्रा ६०।२०२
मिथ्यादर्शनमात्मस्थं ५८।१९२
मिथ्यादृष्टिर्यथार्थोऽन्यः ३।८०
मिथ्या ये दुष्कृताद्यै- ६४।३३
मिथ्यादर्शनवाक् सा या १०।९७
मिथ्यादृष्टेः सतो जन्तोर् ६१।९७
मिथ्यात्वे त्वर्धसंशुद्धे ५८।२३३
मिनोमि पाप पश्य त्वं २०।५२
म्रियमाणोऽतिदुःखेन १७।१४३
म्रियन्ते स्वल्पवृषणा २३।६६
मिलितैः खलभूपालैः २३।१२१
मिश्राः शतसहस्रं तु ५।१८६
मीनौ कृतजलक्रीडौ ८।६६
मुक्तश्च दुःखिना खिन्नः १९।१११
मुक्तबन्धा च नत्वा सा २६।४९
मुक्तकेकारवं तत्र २३।२२
मुक्तान्मुक्तान्नृपेणासा- ३१।११७
मुक्तामरकतालोकैर् २।१०
मुक्तावलीवदेतेषां ५।४५५
मुक्तावालुकविस्तीर्ण- ५७।७७
मुक्ताफलतया दानात् १।४५
मुक्त्यभावे कुतः सौख्य- १८।१५२
मुक्त्वा मातुलमश्वेन २१।७७
मुक्तिमूलमहानर्घ्य- ३।१७०
मुक्ति गते महावीरे ६०।५५२
मुक्त्वा लोकपुराण- १।१२८
मुक्त्वोपकरणं क्षेत्रे ४३।११७
मुखरनिर्झरपातपतत्रिभि- ५५।१५
मुखरशङ्खरवेण दिशां ५५।६६
मुखेन्दौ नेत्रयुग्माब्जे १४।३३
मुग्धः सदुग्धिको रज्ज्वा २१।८२
मुदितभोजसुतानगराङ्गना- ५५।८२
मुद्रिकाभरणेनाभाद् ८।१८६
मुनिमासाद्य तौ धर्मं ४३।१४५
मुनिराह भवत्सूनोर् २५।३९
मुनिसुव्रतनाथश्च ६०।१४६
मुनिसुव्रतमल्ल्यन्तर् ६०।२९६
मुनिसुव्रतनम्योस्तु ६०।३०१
मुनिसुव्रतनाथस्य ६०।४१९
मुनिपादसमीपे तान् ६५।३१
मुनिवचनमवन्ध्यं ३६।२३
मुनिपादोपकण्ठेऽसौ ३३।११४
मुनिर्धैर्यपरीक्षार्थं १८।१५८
मुनीन् कालान्तरेणामून् ३३।१२८
मुनेर्विनयदत्तस्य ४६।५५
मुनेर्निन्दातिपापेन ६०।३०
मुरजार्धमधोभागे ४।७
मुरारिरपि रुक्मिणी ४२।१०४
मूकीभूय स्थितास्तावद् ४३।२३६
मूर्च्छितां विषवेगेन ३३।१०९
मूर्च्छितेनापि तत्पादौ ९।१८२
मूढसत्यविमूढेन १७।१४९
मूलकाश्मकदाण्डीक- ११।७०
मूलमध्यान्तदुःस्पर्शा ११।९५
मूलप्रकृतिभेदोऽय- ५८।२२०
मूले तन्मात्रमेवैषां ५।२९
मूले गव्यूतिविस्तीर्णः ५।१७७
मूले द्वादशमध्येऽष्टौ ५।३७८
मृगध्वजमुनिः प्राह २८।३०
मृगमोक्षविधानं च १।११३
मृतवतामृतदीधिति- १५।५३
मृता नागवधूर्जाता २९।४७
मृतिर्जातस्य नियता ६१।९८
मृतो गृहीतधर्मोऽहं २१।१५४
मृत्युजन्मजरानिष्ट- ३।७६
मृत्युदुःखपरिपीडितस्य ६३।८१
मृत्वोत्तरकुरुष्वासीद् ६०।८८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मृत्वा श्रावकधर्मेण २७।११०
मृत्वा श्वेताम्बिका पुर्यां ३३।१६१
मृत्वा पापोपदेशेन १७।१६०
मृत्वा क्रोधाग्निनिर्दग्ध- ६१।६९
मृत्वा मृगायणो राज्ञ- २७।६३
मृदुशय्यासनं वस्त्रं ९।५
मृदङ्गसदृशाकाराः ५।६८४
मृदुतरङ्गघने शयनस्थले १५।२
मेखलात्रयसंयुक्तः ५।२८४
मेघनादमहानादौ ५२।३४
मेघश्यामवपुः श्रीमान् ६०।२११
मेघप्रभो मघायोध्या- ६०।१८६
मेघनादोऽपि तत्काले २५।६
मेघायामिन्द्रकेषूक्तं ४।२२०
मेचकं वस्त्रयुगलं ४१।३६
मेरावेकक्रमो न्यस्तो २०।५३
मेरुरक्षौहिणीस्वामी ५०।७०
मेरुचूलिकया सार्द्ध- ६।३५
मेरुषु प्रतिवनं तु षष्ठतः ३४।८५
मेरुश्चैव सुमेरुश्च ५।३७४
मेरुं प्रदक्षिणीकृत्य ३४।२४
मेरोः पूर्वोत्तराशायां ५।१७२
मेरोः प्राग्दक्षिणाशायां ५।२१२
मेरोः पूर्वोत्तराशायां ५।२११
मेरोः प्रभृतिकूटानि ५।२१६
मेरोरुत्तरपूर्वस्यां ५।३२८
मेरौ जन्माभिषेकं च १।९७
मेषाकृतिगिरौ लेभे ४७।३६
मैत्रीप्रमोदकारुण्य- ५८।१२५
मोक्षकारणभूतानां ५८।१९०
मोक्षमिक्ष्वाकवो जग्मुर् १३।१३
मोक्षसाधनमप्येष ६१।६३
मोहमूढमनसोऽस्य ६३।१३
मोहस्य प्रकृतिः सप्त ५६।८७
मोहस्योदयतो जीवः ३।७९
मोहयित्वा जडं लोकं ६०।१४
मोहनास्थानसंज्ञाश्च ५।३८७
मोहादप्राप्तसम्यक्त्वा ६०।६०
मौकमत्स्यकनीयांश्च ३।४
मौनिना निजशरीर- ६३।१०७
मौलिकुण्डलकेयूर २।८५

[य]

य एव विषया रम्या ९।४९
यः प्रसिद्धैरभिज्ञानैः ५८।१४४
यः प्रागुत्पत्स्यते यस्या ४३।२१
यः सिंहरथमुद्वृत्तं ३३।४
यः स्वर्गसौख्यजलधी- १६।४५
यज्ञमित्रो यज्ञदत्तः १२।६४
यतः साकमितं यत्प्राक् ८।१५०
यतस्ततः पुराणार्थः १।७०
यतस्तु रमणीयत्वं ५८।२७२
यतस्तस्यामुदाराय ५३।३३
यतयात्मधिया जित- ३९।९
यतिधर्मविधानज्ञः ३३।७४
यतिवर्गादयः सर्वे ५७।१४७
यतीनभ्यन्तरीकृत्य २०।२३
यतो यतश्च यातीशस् ५९।९४
यतो भवति सुश्लिष्ट- ५८।२५४
यत्कथामृततृप्तानां ९।१७१
यत्कुण्डलवरो द्वीपस् ५।६८६
यत्तूपायविचार्यं तद् ५८।२९५
यत्तदद्य त्वया वस्तु १९।१४१
यत्तन्मानकषायी स ९।१२७
यत्त्रयोदशकोटीभिः १०।११८
यत्पक्षाः पाण्डवाश्चण्डाः ५०।२५
यत्स्वतन्त्राभिमानस्य ९।५५
यत् षट्त्रिंशत्सहस्रैस्तु १०।२८
यत्सत्याणुव्रतस्यामी ५८।१७०
यत्र कायचिकित्सादि १०।११९
यत्र पाति धरित्रीय २।१४
यत्र प्रासादसंघातैः २।६
यत्र षष्ठोपवासाः स्युश् ३४।६८
यत्र सूक्ष्मशरीरस्य ५८।२७३
यत्रापि पितरौ भद्रे ! ४२।७३
यत्रैका दशलक्षाश्च १०।३७
यथा कृषिस्तथात्यर्थं १९।१९
यथाक्रमं नभोयानाः ५३।२८
यथाक्रममशेषाणां ४७।१५
यथा क्षेत्रविभागेन ६४।११०
यथाख्यातमथाख्यात- ६४।१९
यथागतं यथा दृष्टं ४३।२२९
यथाग्निहोत्रं जुहुयान् १७।१०४
यथाजागोमहिष्यादि- ५८।२११
यथा नदीसहस्राणां १७।१२
यथा यथासौ परिवर्धतेऽ- ३५।१७
यथायथं नृपा जग्मु- ४८।३६
यथायथमनीकिनः ३८।३०
यथायथं विनोदेन ४६।२५
यथा देवसभेऽस्तौषीत् १८।१६७
यथादेशमिति प्रोच्य २१।१६३
यथोद्दिष्टं ततस्तेन ३१।१०४
यथायोगपरावृत्त- ५।४५८
यथायोग्यं सभोग्यास्ते ५३।४२
यथा पुरा तौ मथुरा सुपुर्यां ३५।२
यथास्वमिन्द्रकैर्हीना ६।८६
यथास्वस्वं निमित्तेभ्यः ८।१३२
यथा स्वं शिविरस्थानं ३१।१३३
यथा स्वमपि सप्तभिः ३८।२०
यथा स्थित्या तथा द्युत्या ३।१६८
यथाप्रश्नमितस्तस्मै ६०।१३७
यथाहरौ भूरिजनानुरागो ३५।६७
यथोक्तमेषां हि तपो- ३४।८९
यथोक्तादानसक्तस्य ५८।७७
यथासत्त्वं यथाभावं १४।१०३
यथैव सूचकः पुंसां २३।१२२
यदत्र युक्तमाधातुं १९।३२
यदत्र किंचिद्रचितं ३६।३४
यदत्र निखिले सैन्ये ४७।९५
यदर्थं रक्षिता कन्या २१।१७९
यदर्था सन्निधानेऽपि १०।९९
यदवोऽपि ययुः स्वेच्छ- ४०।४४
यदार्यानार्यनानात्व- १०।१०४
यदा परीक्षितो राज्ञा ३३।५७
यदा हारादिपर्यासि- ५८।२७४
यदुक्तं मन्त्रतो मृत्योर् १७।१३६
यदुपाण्डववर्गौ तौ ४७।१६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यदुभोजकुलप्रेष्ठा ५८।३१०
यदुवृद्धिमिति श्रुत्वा ५०।५
यदुषु विषमदृष्टिष्वेक- ३६।४७
यदुष्वतिरथो नेमि ५०।७७
यदूनां यादवीनां च ६१।९३
यदि च परस्परव्युदसन- ४९।४९
यदि नाम महैश्वर्य ५०।१२
यदीयं नानुभूयेत १४।३७
यदीयोदयतो जीवः ५८।२४१
यदीयोदयतो जन्तुर् ५८।२४३
यदीयोदयतो ह्यात्मा ५८।२३९
यदीयोदयतो वृत्तं ५८।२४०
यदीयोदयनिर्वृत्तं ५८।२६४
यदेव जायते नृत्वं ३।१३०
यदेन्दति तदैवेन्द्रो ५८।४९
यदैव केवलोत्पत्तिः ६०।४५४
यदैक्षिलक्ष्मीरभिषेकिणी ३७।३०
यमुनोत्तंसमुद्यानं १४।४८
यत्कल्पाकल्पसंज्ञं स्यात् १०।१३६
यद्ग्रामनगराचार- १०।१०५
यद्रागद्वेषमोहादेः ५८।१३९
यद्रागद्वेषमोहेभ्यः २।११८
यद्येवं दीयतां मह्यं ४७।९६
यद्येन चिन्तितं पथ्य- १८।१४१
यद्येन यादृशं कर्म ६५।४८
यद्येष दग्धदेवेन २३।११७
यद्यप्यविरता तृष्णा ३।९१
यद्यप्यनवगाह्याब्धि- ५०।१५
यद्यमीभ्यः परः कोऽपि ३१।३८
यद्वस्तुभुवनेऽनर्घ्यं १७।१०
यद्धेतुद्योतनं देहे ५८।२६५
यद्धेतुवर्णभेदस्तद् ५८।२६०
यद्धेतुरसभेदः स्यात् ५८।२५८
यन्निसर्गाधिकरण ५८।९०
यन्नोपयुज्यते यस्य १८।१४६
यमदण्डमथैशानं २५।४८
यशःप्रकाशमानोऽपि १४।४०
यशसा धवलीकृत- ३९।३
यशोदायां सुतया यशोदया ६६।८
यशोदया दामगुणेन जातु ३५।४५
यशोदयानीय यशोदयाढ्यं ३५।५७
यश्चचार चतुर्वेदस् २३।३९
यस्तीर्थं स्वार्थसंपन्नः १।९
यस्य चाज्ञाकराः सर्वे ३१।२१
यस्य पल्लवतल्पोऽपि १४।८८
यस्याश्च चरणौ चारु ८।१०
यस्यां यस्यां दिशीशः ५९।९३
यस्यानुपालनव्यग्राः ४०।१२
यस्माद् भूमिगृहे जातः २५।१३
यस्मिन् भवति रागश्च १९।२००
यस्योदयाच्छरीराणां ५८।२५१
यस्योदयाद्भवेद्गन्धो ५८।२५९
यस्योदयादयोऽवत्तु ५८।२६२
यच्चतुर्विधबन्धस्य ५६।४५
यजूंषि प्रणवारम्भ- १७।८६
यागकर्मणि निर्वृत्ते २९।३०
याज्ञवल्क्यो वृतो वादे २१।१३७
याज्ञवल्क्य इति ख्यातः २१।१३४
याति रागं श्रुतिश्चैव १९।१७३
यात्युपाधिवशाद् भेदं ७।१२०
यात्वा दक्षिणतः कुण्डात् ५।१४८
यादवाः कौरवा भोजा ४०।४०
यादवस्य ध्वजं तुङ्गं ५१।३७
यादवानां सभाक्षोभं १।१०४
यादवानां च माहात्म्यं ५०।४
यादवान्वयसंभूताः ५०।२१
यादवेन्द्रशिवादेव्योर् ५०।३
यादृशी समवस्थान- ५७।४
या प्रत्यक्षपरोक्षेषु ६४।४१
या प्रवर्तयति स्तेये १०।९६
यामिताभ्युदये पार्श्वे १।४०
यामिनीषु मनीषिभ्यां ४३।२१०
या मिथ्यादर्शनारम्भ- ५८।८१
यावन्तोऽपि वचो मार्गास् ५८।५२
यावच्च मार्यते तावत् २१।१०७
यावच्चोद्धतयोर्युद्धं २१।९८
यावद्वनवती तेषा- ५३।२४
या संप्रज्वलिने दीर्घा ४।२७९
यियासवस्तु युक्तानां ४५।९०
युक्तः प्राप जिनो जैन्या ३।५१
युक्तियुक्तमुपन्यस्त १७।१५०
युक्तो रत्नलताचित्र- ५९।५२
युक्त्यागमबलादेव ७।१५
युगप्रधानमम्भोधि- ४१।१३
युग्मधर्मभुजो भूत्वा ७।६५
युतं च संघेन चतुर्विधेन १०।१६२
युद्धे रन्ध्रमसौ लब्ध्वा २५।४२
युद्धे भेर्यस्तथा शङ्खा ५१।१४
युद्धे बद्धेऽर्ककीर्तौ च १२।९
युद्धे सिंहरथं जित्वा ४७।२६
युधिष्ठिरकुमारेन्दु- ४५।६३
युधिष्ठिरोऽत्र शल्येन ५१।३०
युधिष्ठिरोऽर्जुनो ज्येष्ठो ४५।२
युधिष्ठिराय वीराय ४५।१०२
युधिष्ठिराय ताः सर्वाः ४५।९९
युधिष्ठिराय सा दत्ता ४५।७१
युध्यमाने तथा तस्मिन् ३१।८३
युवयोः पृथुसेनाभ्या- ४२।८६
युवराजः स नमुचिः ४४।२८
युवानौ तौ ततो भुक्त्वा २७।१३७
युष्माकं पश्यतामेव ४७।१२७
युष्माभिः सर्वकालेन ४८।२३
यूयमेव स्फुटं ब्रूत ५०।४२
ये कषायकुशीला ये ६४।६९
ये जम्बूद्वीपसिद्धास्ते ६४।१०९
येऽतीतापेक्षयानन्ताः १।२७
ये तु चारित्रमोहस्य ३।१४७
ये द्वे पूर्वोत्तरे पङ्क्ती ५९।७
येन तीर्थमभिव्यक्तं १।४
येन सप्तदशं तीर्थं १।१९
येऽमी षोडश नागेन्द्राः ५।६९५
ये रागहेतवो बाह्या ९।४८
ये लक्षास्त्रिंशदेकोना ४।१०४
यैः प्रध्वस्तमहाध्वान्त- ५७।६२
योगस्थो योगभक्त्यासौ २१।११४
योगनिःप्रणिधानानि ५८।१८०
योऽगो विद्याधराधारो ९।१३१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योजनभूरिसहस्रनभोगं ३९।१०
योजनत्रयविस्तारो ५९।४७
योजनं तु त्रयः क्रोशाः ४।३४१
योजनानि हि तावन्ति ४।२३७
योजनानि हि यावन्ति ४।२३४
योजनानि त्रिपञ्चाश- ५।६४९
योजनानि त्रिनवति ५।१५०
योजनानि नवोद्विद्ध- ५।१३७
योजनानि दशातीत्य ५।२४
योजनानि क्षितेरूर्ध्वं ५।२२
योजनानां सहस्रं स्यात् ५।१६२
योजनानां शतान्येक- १८।९१
योजनानां सहस्राणि ४।५८
योजनानां सहस्राणि ४।३६
योजनानां सहस्राणि ४।४८
योजनानां सहस्राणि ५।५०
योजनानां सहस्राणि ५।४२३
योजनानां शते द्वे ५।३४
योजनानां चतुःषष्टि ४।२२५
योजनानां सहस्रं तु ५।५९१
योजनानां सहस्रं तु ५।४६
योजनानां प्रसिद्धेषु ५।३७
योजनानां तु लक्षे द्वे ५।४३०
योजनानां तु लक्षैका ५।४६४
योजनार्द्धेन न प्राप्ता ५।१६३
योजनोद्धृतविष्कम्भं ५।१२८
योऽतिमुक्तक इत्यासी- ४।७५
यो नामस्थापनाद्रव्यैर् १७।१३५
योऽपि नेमिकुमारोऽत्र ४३।७८
यो मरीचिकुमारस्तु ९।१२५
योऽमावस्योपवासी ३४।९०
योऽशेषोक्तिविशेषेषु १।३७
यौऽसौ बाहुबली तस्माज् १३।१६
यो हनिष्यति तं विन्ध्ये ४५।११६
यो हरिस्नेहसंभारो ६२।३०
यौ द्वौ धर्माश्रमौ धर्म्यौ २३।४१
यौवनं स परिप्राप्तः ६०।१२७
यौवनं स परिप्राप्तः ४७।२४
यौवनेन कृताश्लेषा १७।५

[र]

रक्तान्तैः पद्मपत्राभैर् २३।१०३
रक्तायाश्चित्तमादाय १४।४७
रक्तापाण्डुकयोर्दैर्घ्यं ५।३५०
रक्तया सह रक्तोदा ५।१२५
रक्तमालाधराश्चैते २६।७
रक्तपल्लवसन्तान- ५।१७९
रक्तकिंशुकपुष्पाभो ६०।२१२
रक्तहस्ततलौ श्रेष्ठ ८।१८
रुक्मिणीसत्यभामाद्याः ६१।४०
रक्षणार्थमनर्थेभ्यः ७।१४४
रक्षतां बलकृष्णौ च ६१।७९
रक्षिता शत्रुमात्राहं ३०।१३
रक्ष्यं यक्षसहस्रेण ११।८९
रक्ष्यतां रक्ष्यतां साधो ६१।६२
रङ्गसेना च गणिका २९।२६
रचितः परिवर्गेण ९।१६७
रजतं पूर्णभद्राख्यं ५।२२०
रजस्तिमिरिकापाय- ५९।८८
रज्जुः प्रथमरज्ज्वन्ते ४।१७
रज्जुद्वितीयरज्ज्वन्ते ४।१८
रजोबहुलमारूक्षं १।४७
रटत्पटहशङ्खशब्द- ३८।४६
रणन्नूपुरचारुस्त्री १४।१४
रणमुखेपुरणार्जितकीर्तयः ५५।९०
रतिव्यतिकरम्लान- २१।१६
रतिमिव रतिमालो ३६।६१
रत्यरत्यभिधे वोभे १०।९४
रत्नचित्रतटाः सर्वे ५।१९७
रत्नकाञ्चननिर्माणाः ५।३६२
रत्नसंचयजः कुन्थुः ६०।१४४
रत्नचित्राम्बरधरा १४।४
रत्नत्रयसमृद्धस्य ६।१०७
रत्नचिह्नाभिधानोऽस्मात् १३।२१
रत्नप्रभादिषु ज्ञेयं ३।११६
रत्नसिंहासने तस्मै ११।५२
रत्नकाञ्चननिर्माणैः ४१।२०
रत्नप्रभा यथा भाति ७।७१
रत्नोच्चयो दिशामादिर् ५।३७५
रथमुद्धृत्य हस्तेन ५४।६७
रथमारोप्य तां वार्धौ ५४।५५
रथनूपुरमानन्दं २२।९३
रथरक्षान्वितौ राम- ५०।११७
रथषष्टिसहस्रैस्तु ५०।१२९
रथमथ चतुरश्वं ३६।४८
रथः पद्मरथस्यैष ५२।१९
रथस्थो मागधो युद्धे ५२।३
रथं हिरण्यनाभः स्वं ३१।६२
रथं नोदयतः क्षोण्यां ६१।८३
रथं दिव्यास्त्रसंपूर्ण- ४१।३७
रथादुत्तीर्य विनतं ४७।५०
रथैः केचिद्गजैः केचित् २२।६
रथैः षष्टिसहस्रैस्तैः ४२।८१
रथ्याभिरभिरामान्तः ४१।२४
रन्ध्रे व्याघ्रवदापत्य- २४।२२
रममाणोऽद्य तेनाहं २१।२८
रमिता यदुसूर्येण २९।६८
रम्यं नागलताश्लिष्टैः १४।४९
रम्यकाद्यष्टमं कूट- ५।१०१
रम्याङ्गनाश्च कुलशैल- १६।२०
ररक्ष गर्भं प्रसवव्यपेक्षः ३५।१८
रविणा शौरिणेवाशु २२।१४१
रविनिशाकरयोरुभया- ५५।११४
रश्मिवेगोऽन्यदा यातः २७।८३
रश्मिवेगोऽमृतः कल्पे- २७।८७
रसभावविवेकस्य २१।४८
रसकूपे परिव्राजा- २१।१५३
रसाभिनयभावानां २२।१५
रसाया मूलमासाद्य २१।८३
रसितचूतलतारसकोकि- ५५।३६
रहस्यावाह्य चापृच्छ्य २९।१५
रहस्यकृतवक्षसा २३।१५३
रहोऽभ्याख्यानमेकान्त- ५८।१६७
रक्षसोऽद्य महाकायः २७।१५
राक्षसास्त्रं परिक्षिप्तं ५२।५४
रागादीनां समुत्पत्ता- ५८।१६१
रागार्द्रीकृतचित्तत्वा- ५८।६९
राजक्षत्रोग्रभोजाद्याः ९।१००

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजधान्यश्चतुस्त्रिंशत् ५।१०
राजा को रक्षणे दक्षः ९।९५
राजस्त्रीनरसंघातो ६१।४३
राजयुद्धकथासक्ताः २८।३
राजलक्षणयुक्तः स ४५।८८
राजक्षत्रोग्रभोजाद्यास् २२।५२
राजपुत्राश्च ते सर्वे ३३।१६४
राजन् ! वस्तुविसंवादा १७।९४
राजतीन्द्रध्वजः सोऽयं ५७।८५
राजा राज्यं च मत्पित्रे १९।८४
राजा मेघपुरे चैव ३३।१३५
राजा राज्ये नियोज्यैतौ ६०।१९
राजा प्राह प्रिये ! वार्धौ २७।३३
राजा दशरथश्चापि ५०।१२५
राजा सिंहकटिः प्रोक्तो २३।६९
राजा मनोहरोद्याने ३४।८
राजा हिरण्यनाभस्तु ५१।१३
राजा मेघरथः सिंह- ६०।१५४
राजा सभार्य इभ्यश्च ४५।१०३
राजाद्या प्राव्रजन् श्रुत्वा २८।४९
राजा तत्र तदा धीरो ३१।९
राजानश्च तथैवान्यं ९।४५
राजीमत्यास्तपःप्राप्ति १।११४
राजीमत्याश्चारुराजी- ५५।१३४
राजोपरिचरः पृष्टस् १७।१४८
राज्ञः स गन्धमित्रस्य २७।१०२
राज्ञा मद्वचनात् ज्ञात्वा २४।५८
राज्ञा विज्ञाय चाज्ञप्ते २८।२७
राज्ञा ह्यानाय्य पृष्टोऽसौ ३३।५३
राज्ञां कोटिषु कालेन ४५।१०
राज्ञां स षोडशसहस्रगुणै-५३।५२
राज्ञी चापि सधात्रीका ३३।१६५
राज्ञो भोजकवृष्णेर्या १८।१६
राज्यस्थितः स हरि- १६।२१
राज्यस्थोऽपि न सन्तुष्टः१९।१०३
राज्यं प्रज्ञप्तिविद्यां च १९।८२
राज्यं मानसवेगे च २४।७१
राज्यं यदनया युक्तं ४३।१६७
राज्ये पुत्रशतं प्राज्ये २३।३८
राज्ये भोजकवृष्णिश्च १८।१७९
राज्ये तौ यौवराज्ये च २१।१२२
राज्ये संस्थाप्य मां २१।११९
रात्रौ प्रतिभया तस्थौ १८।३०
रामकेशवयोः प्लुष्ट १।११९
रामकृष्णसुतैः संख्ये ५१।२८
रामदत्तासुतौ राज- २७।५४
रामदत्तापि सम्यक्त्वात् २७।७५
रामदत्ता प्रिया तस्य २७।२१
रामदामोदरानन्दं ४१।५०
रामभद्रसमेतानां ३३।९५
राशिद्वयान्तराले स्यु- ५।६२७
राष्ट्रवर्धनराजोऽपि ४४।३२
राष्ट्रवर्धन इत्यासीत् ४४।२६
राहुभद्रमुनेः पार्श्वे २७।५६
रिङ्गतामपि ससैव ७।९३
रिपुरयमिह कंसो ३६।३८
रिपुं कालमुखं प्राप्तं ३१।९७
रिपोर्भयात् पुत्र वियो- ३५।६१
रिप्यका [हृष्यका] १९।१६४
रुक्मिणी तु शिरःस्नाता ४३।२९
रुक्मिणी रौक्मिणेयाय ४८।११
रुक्मिणीहरण भास्वद्- १।१००
रुक्मिणीजाम्बवत्यौ ते ४७।१३५
रुक्मिणीं परिणीयासौ ४२।९६
रुक्मिण्यास्तनुजं दृष्ट्वा ४३।२२७
रुक्मिण्यापि ततः पृष्टः ६०।२५
रुक्मिण्यादि हरिस्त्रीणां १।११८
रुक्मिण्याः सुतमालोक्य ४३।४१
रुक्मिणः शिशुपालस्य ४२।७८
रुक्मीति तनयस्तस्य ४२।३४
रुक्मी विदितवृत्तान्तः ४२।८०
रुचकादिवरद्वीपं ५।६१९
रुचका दिक्कुमारीणां ८।११६
रुचिरं च तथार्कं च ६।४६
रुद्रः क्रूराशयः प्राणी ५६।१९
रुद्रदत्तः पितृव्यो मे २१।४०
रुधिरविलिप्तगुप्तपथ- ४९।३२
रुधिरो मधुरैर्वाक्यैर् ३१।६२
रुद्रं चन्द्रसमच्छायं ३२।२
रुष्टयोः शरजालेन ४२।९२
रूक्षशीतलविरुद्ध- ६३।१०८
रूढ्या क्रियावशाद्वाच्ये १७।१२४
रूपशोभासमस्तेयं ३।१७
रूपलावण्यसौभाग्य- ४५।१२२
रूपयौवनलावण्य ८।४२
रूपविज्ञानपाशेन २२।१६
रूपमादिरधि यत्र पञ्च- ३४।८७
रूपलावण्यसौभाग्य- ४७।५३
रूपयौवनसम्पूर्णा २९।७
रूपसौभाग्यतो ह्यन्यां ४२।३१
रूपलावण्यसौभाग्य- १९।१२५
रूपलावण्यसौभाग्य- १९।८
रूपं नाम च तस्यासौ ३०।२७
रूपातिशयसम्पूर्णाः ४५।९७
रूपातिशयतो लोके ८।२०५
रूपान्तराः पञ्चदशाव- ३४।७२
रूपकैः कृत्रिमैः स्वर्णैर् ५८।१७३
रूपि द्रव्यस्वरूपं च १०।६८
रेजे शाल्यादिसस्यौघैर् ३।२५
रेमे प्रियङ्गुसुन्दर्या २९।७१
रेमे कामं स कामिन्या १९।७६
रोधो नितम्बगलदम्बु १६।२४
रोहिणी देवकी पूर्वा ६०।१२३
रोह्यायां रोहितास्यायां ५।२७६
रौक्मस्य रुक्मिणोऽप्यग्रे ५।१०२
रौद्रध्यानं स दध्यौ मे ६१।७१
रौद्रं दाहोपसर्गं ते ६५।२१
रौद्रध्यानाविलात्मानो ३।११०
रौधिरं युधि सान्निध्यं ३१।७१
रौरुके धनुरुत्सेधस् ४।२९६

[ल]

लक्षद्वयं चतुर्थ्यां तु ४।१६४
लक्षद्वयं सहस्राणि ५।४५०
लक्षभागं स पल्यस्य ७।१५५
लक्षणं द्विविधं बाह्यं ५६।५५
लक्षणं द्विविधं तस्य ५६।३६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लक्षणं द्विविधं तत्र ५६।२१
लक्षणं द्विविधं तस्य ५६।५
लक्षणं रक्तगान्धार्या १९।२३७
लक्षणानां समस्तानां २३।१०६
लक्षया पर्वतैरुद्धं ५।४९९
लक्षद्वयं विभागस्य ४।२१५
लक्ष्यलक्षणयोगेन १९।५७
लक्ष्मणाभवनाभ्यर्णं ४४।३१
लक्ष्मीमत्यात्मजं राज्ये ९।२१६
लक्ष्मीं स तत्र निक्षिप्य १८।२
लक्षैकात्र सहस्राणि ५।८३
लक्षैका योजनानां स्यात् ४।४७
लक्षैकेन विनाशीतिः ६०।४४७
लक्षैका पञ्चपञ्चाशत् ६०।३८८
लक्षा नरकभेदानां ४।७३
लक्षाशीतिसहस्राणि १०।१४१
लक्षा विंशतिरुद्दिष्टा ४।१९७
लक्षा द्वानवतिर्यत्र १०।४०
लक्षा षड्विंशतिर्ज्ञेयाः ५७।१३६
लक्षा नवसहस्राणि २।१३७
लक्षा द्वादश-त्र्यंशौ च ४।२०५
लक्षा द्वादश वर्चस्के ४।२०६
लक्षा दश षडस्योक्ता ४।२०७
लक्षा नवसहस्राणि ४।२०८
लक्षास्तमः श्रुतेरष्टौ ४।२०९
लक्षाः सप्तभ्रमस्यासौ ४।२१०
लक्षाः षडेव विस्ताराः ४।२११
लक्षाः पञ्चैव चान्ध्रस्य ४।२१२
लक्षाः सप्तसहस्राणि ५।५३२
लक्षाः षण्णवतिर्यत्र १०।७६
लक्षाः पञ्चदशाशीत्या ५।४३१
लक्षाः षट् च सहस्राणि ५।५४४
लक्षाः षोडशसंख्येय- ६।८७
लक्षाः षड्विंशतिः प्रोक्ता ४।१९१
लक्षाः सप्तदश प्रोक्ता ४।२००
लक्षाः षोडशविस्तारो ४।२०१
लक्षाः पञ्चदशत्र्यंशो ४।२०२
लक्षास्तिस्रो हिमस्यापि ४।२१४
लक्षाश्चतस्र उद्दिष्टास् ४।२१३
लक्षाश्चैव चतुःषष्टिर् ५।५६६
लक्षाश्चास्याः परिक्षेपः ५।५४२
लक्षाश्चतुरशीतिश्च ६०।५४०
लक्षाश्चतुरशीतिस्तु ११।१२९
लक्षाश्चतुरशीतिर्या १०।६७
लक्षाश्चतुरशीतिस्तु १०।१११
लक्षाश्चतुरशीतिस्तु ६०।३१७
लक्षाः स्वर्गविमानानां ६।४१
लक्षाश्चतुर्दशाष्टाभिर् ४।१२८
लक्षास्तिस्रस्तृतीयायां ४।१६३
लक्षाश्चतुर्दशैवोक्ताः ४।२०३
लक्षास्त्रयोदश त्र्यंश- ४।२०४
लघु निरुध्य रथं सह- ५५।८६
लघु विमुच्य मृगान्मृग-५५।१०४
लघु समेत्य नतानत- ५५।१०२
लघ्व्योऽङ्गुष्टप्रसेनाद्या १०।११४
लङ्घनीयौ च तौ नित्य-१९।२३६
लतां व्यपनयन्तीभ्यां ११।१०१
लब्धषोडशलाभोऽयं ४३।२३२
लब्धप्रत्याशया कन्या २९।१९
लब्धवार्तो रुषा गत्वा २१।१४५
लब्धसंज्ञा समुत्थाय २४।५४
लब्धस्त्वमचिरेणैव १९।९२
लब्धधीः साह शौर्यादीन् ३१।२५
लब्धं दिव्यं रथं शुभ्रैर् ४७।४६
लब्धासत्यफलं सद्यो १७।१५५
लब्धादेशा जनन्याः सा ८।१५२
लब्धादेशास्ततस्तुष्टास् ४७।७०
लब्धादेशा तथेत्युक्त्वा २६।५५
लब्धा लुब्धेन रन्ध्रं १९।२७१
लब्धिश्चैवोपयोगश्च १८।८५
लब्धो वर्णविवेको न १४।७६
लब्धेति द्रौपदीवार्ता ५४।३६
लभेतापि च निर्वाणं ४।३८०
लभ्येत यदि साधु १८।१६३
ललाटपट्टविन्यस्ता ८।१७९
लल्लकस्य तु लक्षैका ४।२१६
लल्लके तु जघन्येय- ४।२९३
लवणाब्धिपतिं देवं ५४।३९
लवणो लवणस्वादस् ५।६२८
लवणोदेऽत्र ये सिद्धाः ६४।१०८
लवणोदे महामत्स्याः ५।६३०
लाक्षलेशतृणशर्करा- ६३।१०९
लाक्षाभैरीश्वरा निःस्वा २३।९१
लाभं कन्यकयोस्तस्य १।८०
लाभः साधारणस्तेषा- ३।११५
लाभं मदनवेगाया १।८५
लान्तवे ब्रह्महृदयं ६।५०
लान्तवेऽपि च कापिष्टे ६।८२
लिङ्गसाधनसंख्यान- ५८।४७
लेखार्थमिति तत्त्वार्थ- ४२।६४
लेणवेदिकया तुल्या ५।४१०
लेभे सान्तानकं तस्मात् ११।१७
लेभे नागगुहायां च ४७।३४
लेभे च सोऽचलग्रामे २४।२५
लेश्यायाः परिणामश्च १०।८४
लोकसंस्थितिरनाद्य ६३।८९
लोकपालास्त एवात्र ५।३२१
लोकसंस्थानमत्रादौ १।७१
लोकस्य प्रतिबोधार्थ- ९।१५५
लोकं वीक्ष्य तु तत्रासौ १९।१२१
लोकस्य मार्यमाणस्य २४।४४
लोकः शौर्यपुरोद्भवोऽपि ३२।४४
लोकाञ्जलिपुटालोक- ९।८७
लोकानामेकनाथोऽय- ५९।७३
लोकानां भूतये भूति- ५७।१६७
लोकान्धीकरणे दक्षां ५२।७५
लोकालोकविभागोक्ति ४८।३१
लोकालोकप्रकाशाद्यौ ५७।११३
लोके प्रतारको भूत्वा १७।१५९
लोके भावनदेवानां ८।१२०
लोकोऽयमेकतो भूयात् १४।३८
लोकोपालम्भतो भीत्या ३३।२०
लोभसंज्वलनं सूक्ष्मं ५६।९६
लोलश्च लोलुपश्चापि ४।७९
लोलां निपतितां दृष्टिं १४।३५
लोले चतुर्दशैवासौ ४।३१४
लोहजङ्घवचोऽत्यन्त- ५०।६२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोहिताक्षमयः पूर्वः ५।३०५
लोहिताक्षं च वज्रं च ६।४७
लोहिताञ्जनहारिद्र- ५।३२२
लौकान्तिका ललित- १६।५०
लौकान्तिकाः सुरो यान्ति ५९।२६

[व]

वकुशः सोपकरणो ६४।७२
वकुशेन कुशीलौ द्वौ ६४।८३
वक्ता श्रोता च पापस्य ४५।१५६
वक्तुः श्रोतुश्च सद् ४५।१५७
वक्रं भूतं भविष्यन्तं ५८।४६
वक्रायामः कुरूणां स्याद् ५।५३७
वक्रान्ते धनुषां षट्कं ४।३०३
वक्षारायामवृद्धिस्तु ५।५५२
वक्षाराणां च तासां च ५।२४४
वक्षोभिश्च क्षमैराढ्याः २३।८०
वक्षोद्वयसमुत्क्षिप्ता ५३।३७
वचनमनस्तनुभिरभियः ४९।१९
वचः पत्युरसौ श्रुत्वा ४३।३१
वचोऽनन्तरमेषाहं २४।६३
वचोहरवचः श्रुत्वा ५०।४६
वञ्चनाप्रवणं जीवं १०।९५
वज्रमूलः सवैडूर्य- ५।३७३
वज्रं वज्रप्रभं नाम्ना ५।३१९
वज्रकूटं विनिर्दिष्ट- ५।३३०
वज्रश्च चमरो वज्र- ६०।३४७
वज्रनाभिरभूदाद्यो ६०।१५१
वज्रमुष्टेः सुभद्रायां ६०।५१
वज्रसूरेर्विचारिण्यः १।३२
वज्रसंहननोऽनन्त- ३४।८३
वज्रसेन इति ख्यातस् ६०।१५८
वज्रात्मसंहनन-संहत- १६।३४
वज्रायुधाय सा दत्ता २७।९२
वज्रायुधोऽपि विन्यस्य २७।९४
वज्रायुधचरश्च्युत्वा २७।१२२
वज्राभो वज्रबाहुश्च १३।२३
वणिक् सुमित्रदत्तोऽस्ति २७।२४
वत्सा सुवत्सा महावत्सा ५।२४७
वत्से वत्सेश्वरेणाहं १४।९३
वद विद्याधरी चेयं २१।४
वदतां वरमानम्य ५८।२
वदामि शृणु तेजस्विन् ४०।३४
वध्नानाः सततं पाप- ३।१०९
वनकस्यापि विस्तारो ४।१८७
वनके दशदण्डा द्वौ ४।३०९
वनक्रीडापरिश्रान्ता ६१।४९
वनमहिषं निपात्य विषमं ४९।३३
वनमाले प्रिये वत्से १४।७९
वनमालानुरागेण १४।५२
वनवासिसुरैर्वन्य- ५९।५१
वनस्पतिजलक्षास्ता- १८।६०
वनलताः कुसुमस्तवको ५५।४५
वनश्रियो यथा मूर्ता ५७।१५३
वनस्योत्तरपूर्वस्याम् ५।४२६
वनात् पूर्वापरान्तस्था ५।२३८
वने प्रियङ्गुखण्डेऽसौ २७।१०८
वने सौमनसे तेषां ५।३५७
वन्दनार्थं नृपो लोकं २०।६
वन्दयन्त्या अपि न्यासा १९।२५३
वन्द्या चन्द्रपुरी चन्द्र- ६०।१८९
वन्दिगेहे गृहीत्वा तां ६०।११२
वन्दित्वा तद्गुरुं भक्त्या ४३।१५२
वपुषो नारकीयस्य ४।३३४
वप्रप्राकारपरिखा- १४।३
वप्रप्राकारपरिखा- ८।१४७
वप्रा सुवप्रा महावप्रा ५।२५१
वयं तु वसुदेवोक्ता ५३।२२
वयं स्वयंवरव्याजात् ३३।१३७
वरतुरङ्गरथद्वयसंकुले ५५।२७
वरदत्तश्च नृपतिर् ६०।२४८
वरदत्तः स्वयंभूः ६०।३४९
वरदत्तादिसङ्घं च ६५।१५
वरं वृणीष्व तेनोक्तं ३३।११
वराहगोमुखाभिख्य- २१।१३
वराहमहिषान् सिंहान् ८।१३५
वराकी मारिता मृत्वा ६०।३२
वराङ्गनेव सर्वाङ्गैः १।३५
वरित्वा वरमादत्स्व २९।६४
वरेण स्वसुरोऽवाचि ३१।६४
वरे प्रेम वरं जात २३।१५२
वरेणैव तु निर्वर्त्या ५८।७४
वरो नववधूहारि ३१।१३७
वर्तयन्ति सुरास्तस्मिन् ५७।१६९
वर्तनालक्षणो लक्ष्यः ५८।५६
वर्धस्व नन्द जय जीव १६।५१
वर्धते स्म तयो हर्षो ४८।६
वर्धस्व जय नन्देति १४।३१
वर्धतां वर्धतां नित्यं ५९।१५
वर्धमानजिनेन्द्रस्य ६०।४७३
वर्धमानौ च तौ गर्भौ ४३।३४
वर्धमानपुराणोद्य- १।४१
वर्धमानजिनेशस्य १।१२५
वर्धमानपुरं ख्यातं ६०।२४२
वर्धमानजिनेन्द्रस्य ६०।४३०
वर्धमाने क्रमाद् गर्भे ८।९९
वर्धमानजिनेन्द्रस्य १।७५
वर्धमानः सुरैः सेव्यो २।४६
वर्धमानजिनेन्द्रास्या- १।६०
वर्णगंधरसस्पर्शैः ७।३६
वर्णगंधरसस्पर्श- ७।१
वर्णगंधाढ्यमापिष्य ४३।६
वर्णसङ्करविक्षेपि १४।७
वर्चस्के परमा यासौ ४।२८३
वर्दले स्थितिरेषैव ४।२९२
वर्षसंख्या व्यतिक्रान्तः ७।३१
वर्षलक्ष्यास्ततो लक्ष्याः ६०।३१४
वर्षलक्षास्त्रयोऽशीति- ६०।५१८
वर्षाणि सप्त कौमार्ये ६०।५४५
वर्षाणां चतुरशीति- ६०।३२०
वर्षाणां षट्शती त्यक्त्वा ६०।५५१
वर्षाणि बहुपत्नीकः १२।३२
वर्षलक्षास्त्रयोशीतिस् ६०।४९७
वर्षासु जीवरक्षार्थं ४३।२०९
वर्षेण पारणाद्यस्य ६०।२३७
वर्षे द्वादश चोद्वस्य ६१।४४
वर्षैरष्टाभिरिष्टार्चैः ५३।३२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वलितास्फोटिताटोपं ११।८४
वलिः प्रहरणाभिख्यो ६०।२९२
वलेर्देशे समुत्पन्नः २५।३६
वल्लभेव पुरावल्ली ११।१००
वल्गुप्रभविमानेशः ५।३२७
वल्लीवनमतोऽप्यन्तः ५७।२३
वल्मीकरन्ध्रनिर्यातैः ११।९९
ववृधेऽनुकुमारं च १७।४
वशिष्ठेन किमज्ञोऽह- ३३।६१
वशीकृत्य वशी शीत- १९।६४
वसुदेवो बलः कृष्णः ६१।१५
वसता तत्र वर्षाणि २१।५९
वसतां शान्तचित्तानां ४५।५६
वसन्तसेनया द्यूता २१।५६
वसन्तमिव साक्षात् तं १४।३०
वसन्तसेनां गणिकां ६४।१३४
वसन्ती तत्र सा भीरुः २५।१२
वसुना वासवेनेव १७।५४
वसुनिभवसुदेवो ३६।५०
वसुन्धरपुरेशस्य ४५।७०
वसुन्धरा तथा चित्रा ८।१०९
वसुदेवकुमारस्य १९।२७
वसुदेवः समासीनस् १९।१३६
वसुदेवस्य सर्वोऽपि ४८।३३
वसुदेवरिपूणां ते ५१।६
वसुदेवस्ततः प्राह ४८।२५
वसुदेवस्तु निःशङ्को १९।५२
वसुदेवोपकारेण ३३।२८
वसुदेवस्य वृत्तान्ते १९।४९
वसुदेवस्य पुत्राणां ५३।२१
वसुदेवोऽपि तत्रैव ।३१।१४
वसुदेवस्ततो धीरः ३१।५२
वसुदेवोऽर्द्धचन्द्रेण ३१।८९
वसोरपि पिता राज्यं १७।५३
वस्तुनः पञ्चमस्यात्र १०।८१
वस्त्रसंवृतसर्वाङ्गः ६२।५९
वस्त्रालंकारमालाद्यै- २।४३
वस्त्रैरग्निविशोध्यैर्मा २१।१६०
वस्वौकं सारनिवहं २२।८७
वंशालयः पांशुमूलो २२।६०
वंशालयं सौमनसं २२।९२
वंशालयानां विद्यानां २२।८२
वंशीपत्रकृतोत्तंसाः २६।२१
वाक्यं त्रिकालविषयार्थ-६०।५७४
वागाद्यतिशयोपेते १०।३
वाङ्मात्रेण ततो भूमौ १७।१५१
वाचयित्वेति विज्ञाय ३३।२४
वाजिभिः पञ्चवर्णैर्यो ५२।२२
वाडवानभरद्वाज ३।६
वाडवाचिच्छलेनास्य ४०।३६
वाढमित्यभिधायासौ २१।३६
वातातपपरिम्लानः १९।३६
वादित्रध्वनयो धीरा ५२।८६
वादितोऽष्टसहस्राणि ६०।३८५
वादिवाग्मिगमको ६३।११२
वादी चापि च संवादी १९।१५४
वार्धेः क्षीरवरस्येशौ ५।६४२
वापीकोणसमीपस्था ५।६७३
वापीपुष्करिणी दीर्घ- ४१।२१
वामदेवः सुतस्तस्य ४५।४६
वामपक्षमुपाश्रित्य ५०।१२३
वामे जानुनि विन्यस्य ६२।२८
वायव्यं व्यमुचच्छस्त्र- ५२।५१
वायव्यवारुणाद्यैस्तौ ३१।११८
वायुशर्मा सुबाहुश्च १२।५७
वायोरुच्छ्वासंनिश्वासौ ५।४४८
वारयन्त्यशुभादाशु ५८।७
वाराणसी च वर्मा च ६०।२०४
वाराणसीं समासाद्य ३३।५९
वाराणस्यां पुराणार्थं- २१।१३१
वारिधारास्फुरद्धारा ९।८३
वारितीर्थमवगाह्य ६३।६
वारिबन्धेऽन्यदा गन्ध- २४।२८
वारीबन्धमिवायानं ४६।३४
वारुणी काञ्चनाख्ये स्या ५।७१६
वारुणीवरवार्धीशौ ५।६४१
वारुणीवरनामानं ५।६१४
वारुणी सा पुराणापि ६१।५१
वारुणीमतिनिषेव्य- ६३।३०
वारे षष्ठे तु तन्निष्ठ- २८।३२
वार्तमुग्रतपसा ६३।११३
वार्तानिवेदनायाहं २४।७४
वार्ता प्रादुरभूत्पुर्या २९।१३
वार्यमाणं तु तच्चक्र- ५२।६५
वार्ष्णेयखड्गघातेन ५१।४१
वासुकिर्वासवाभिख्यो ४५।२६
वासुदेवगृहैश्चक्रे ६५।५६
वासुदेवस्य पुण्येन ४१।१८
वासुदेववचनाज्जरा ६३।४६
वासुपूज्यजिनाधीशाद् ३।५७
वाह्यमानेन तेनासौ ४७।१०४
विकासमगमद् विधोः ४२।१०२
विकीर्णघनशीकरैः ३८।२६
विकृत्य सुरमायया ३८।४०
विकृत्य क्षौल्लकं वेषं ४७।१११
विकृत्य दिव्यसामर्थ्या ४०।२९
विक्रान्ते सप्तचापानि ४।३०५
विख्यातामृतधारं च २२।१००
विचित्रभक्तिध्वज- ३७।१८
विचित्रक्रीडनासक्ति ५८।१००
विचित्रपुष्पाम्बुजंखण्ड- ३७।३६
विचित्रस्योपरिस्थेन ८।१८४
विचित्ररससंस्पर्श- १४।४२
विचित्रकुण्डलाटोपा २६।१२
विचित्रवर्णविस्तीर्ण- ४२।३
विचिन्त्य शङ्काकुलितस्त- ३५।३२
विचित्रौषधिहस्तास्तु २६।१०
विच्छिन्नसम्प्रदायस्य ९।६७
विजयं वैजयन्तं च ६।६५
विजयं वैजयन्तं च ५।३९०
विजयं वैजयन्तं च २२।८६
विजयस्व महादेव ५७।१४४
विजयस्यापि षट् पुत्रा ४८।४८
विजयोऽचलः सुधर्मा- ६०।२९०
विजयः षोडशाब्दानि ६०।५१६
विजयो विश्रुतं कीर्तिर् ५७।५७
विजया वैजयन्ती च ५।६६०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजयोऽब्दशतं लक्षा ६०।५२०
विजयश्रीरिति ख्यातः १२।६१
विजयादिचतुर्दिक्का ५७।१०२
विजयादुत्तराशायां ५।४१७
विजया वैजयन्ती च ५।२६३
विजयाभिजया जैत्री ५७।३३
विजया वैजयन्ती च ८।१०६
विजयाजिरकोणेषु ५७।९४
विजयार्धकुमाराख्यं ५।२७
विजयार्द्धस्थिति पित्रोर् १।१०१
विजयार्द्धेषु सर्वेषु ३।३५९
विजयादिपुरद्वाःसु ५७।६३
विजयार्धकुमाराख्यं ५।१११
विजयार्धगिरौ रम्ये ४७।२१
विजयो बुद्धिलाभाख्यो १।६३
विजयन्तं जयन्ताभं ५७।११७
विजया वैजयन्ती च ८।११५
विजये विहरत्येष ५९।१४
विजहार वने हृद्ये १४।५०
विजितदोषकषायपरीषहं १५।९
विजित्य भारतं वर्षं ११।५६
विजहार पुनर्देशान् ६०।१२५
विज्ञाय बलदेवोऽय- ६२।९
विज्ञाय सुमुखाकूतं १४।७०
विज्ञेयाः पङ्कबहुलाच् ४।५६
विटपकैरपि सालतमालजै- ५५।४७
वितर्कः कर्कशं दृष्ट्वा ४५।१३२
विदर्भपतिपुत्री तन् ४२।५७
विदिक्षु शशकर्णास्तु ५।४७२
विदिक्षु क्षुद्रपाताल- ५।४५१
विदिक्षु सक्रमा हैमी ५।३४८
विदेहेष्वपरेष्वेते ५।२३१
विदेहक्षेत्रमध्यस्थः ५।२८३
विदेहे चित्रकूटाख्यः ५।२२८
विदितहरिसमीहश् ३६।६
विदितरिपुविचेष्टास् ३६।१३
विद्यां साधयतस्तस्य २४।८०
विद्याशाखाबलेनोत्थां १९।१०८
विद्यादानं बालचन्द्रा- २६।५६
विद्याबलेन निःशेषं ४७।१३०
विद्याविकृतसैन्येन ४७।७६
विद्याकरिवरं प्राप ४७।३७
विद्याधरभवं पूर्व- १२।१५
विद्यानां वृक्षमूलानां २२।८३
विद्यानां पाण्डुकीनां च २२।८०
विद्याधरोचिता विद्या ४७।२२
विद्यानामदितिस्त्वष्टौ २२।५६
विद्याधरा न गच्छन्ति ५।६१२
विद्याधरजनो धीरौ ९।१३४
विद्युत्कुमारनामानो ४।६४
विद्युत्कुमार्य एतास्तु ५।७२१
विद्युद्वेगोऽपि गौरीणां २६।४
विद्युत्प्रभो नरपतिर् ४८।४७
विद्युन्मुखः सुवक्त्रश्च १३।२४
विद्धपादतलोऽहं भो ६२।३५
विद्धतालपदः शौरि ६२।३४
विधाय च सुरद्विप ३८।४२
विधाय पूर्ववद्व्यूहौ ५२।२
विधिदेयविशेषाभ्यां ५८।१८६
विधिमुपालभते वरहारिणं ५५।१३२
विधीनामिह सर्वेषा- ३४।१२५
विनयः खलु कर्तव्यो १०।५९
विनयश्रीस्तु कृत्वासौ ६०।९२
विनयश्रीर्गुणैः ख्याता ६०।९०
विनिःसृत्य महारण्यात् २१।९९
विनिमीलितनेत्राया ५४।१६
विनिर्ययुस्ततः पुर्या ४७।१२९
विनिद्रो रौद्रनादेन २४।५
विनीतः संवरश्चोभा- १२।६३
विनीता मरुदेवी च ६०।१८२
विनैकेन तु पञ्चाश- ४।२३३
विन्दन् भोगफलं भूरि ४४।५१
विन्दुसारः सुतस्तस्मात् १८।२०
विन्ध्यपृष्ठेऽभिचन्द्रेण १७।३६
विपक्षप्रेक्षणासक्ति- २२।४६
विपाण्डुरपयोधरां ३८।११
विपुलराज्यपदस्थिति- ५५।९४
विपुलसपर्यया प्रणत- ४९।४१
विपुलोपगता ये ते ६०।३७४
विपुलपुलिनफेन- ३६।३
विप्रस्य सोमदेवस्य ६४।५
विप्रयोगश्च मे माभूद्- ५६।१६
विप्रकृष्टमपि ह्यर्थं १।५४
विप्रकीर्णा तदा माला ४५।१३६
विबुद्धस्तु पतिः पत्नी २४।६२
विबुद्धा च प्रभाते तान् ३२।४
विबुद्धा च समाख्यौ ४३।३०
विबुद्धो देहभूषाभा २९।२१
विबुध्य सहसा मात्रा ४५।५७
विबुध्यस्व विबोधाय ८।७७
विभज्य कौरवं राज्यं ४५।४०
विभवेन नरेन्द्रोऽसौ ११।१३३
विभ्रान्तश्च तथा त्रस्तो ४।७७
विभिन्नमपि सप्तधा ३८।२५
विभुमपि प्रति ता- ५५।५३
विभूत्योद्धतया भूत्यै ५९।१०९
विभूत्या परयागत्य ६१।१६
विमलाय नमस्तस्मै १।१५
विमलानन्तशान्तीनां ६०।२७८
विमलाय नमो नित्य २२।३५
बिमलामलशार्दूला ५०।४९
विमलोऽनन्तजिद्धर्मः ६०।१४०
विमानं कामगं कामः ४७।१००
विमाननाथामरनाथ- ३७।३९
विमानानि त्रयस्त्रिंश- ६।७५
विमानानि समारूढा ८।१३६
विमाने श्रीप्रभे तत्र २७।६८
विमानैश्च महामानैर् २५।५५
विमुक्तनारदेनोभौ ४७।१३२
विमुक्तमलसंपर्को ६०।५६५
विमुखीकृतचैद्येन ४२।७७
विमुच्य वियतः शौरि २६।२८
वियदतीत्य भुवौ दशयो- १५।२७
वियद्भूयौनिभीभङ्ग- ५७।१३४
वियोजिता मया नून- ४३।६४
विरचितां कुसुमैर्विविधैः ५५।४८
विरत्या विरतिर्मिश्रा ५८।१९९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विरथीकृत्य पौण्ड्रोऽपि ३१।८८
विरहदुःखमपोह्य ततो- ५५।२८
विरागस्यापि मिथ्यादृग् ३३।६४
विराटनगरं जातु ४६।२८
विरुद्धदेशवस्तूनां १८।१६४
वीर्यप्रवादपूर्वार्थ- २।९८
विललाप च हा पुत्र ४३।६३
विलम्बितसहस्रार्क- ५९।२४
विलङ्घितक्ष्माभृत- ३७।८
विलापमिति कुर्वन्त्यां ४३।६५
विलिख्य पट्टके स्पष्टं ४२।४५
विलोक्य मनसश्चौरीं १४।९५
विलोक्यमानमालोक्य ६५।३८
विवाहमङ्गलं दृष्ट्वा ४५।१४७
विवाहारम्भसमये ६०।१२९
विवाहसमयस्तेऽपि ४२।५६
विविधकरणदक्षौ ३६।२९
विविशुर्द्वारिकां भूत्या ४१।४२
विशल्यकारिणी चैव २२।७१
विशल्यकरणं चास्त्रं २५।४९
विशालायतशाखाभिः ७।८३
विशतिश्च सहस्राणि ५।८६
विंशतिस्तु महादिक्षु ४।१४२
विंशत्यब्धिसमायुष्काः ३।१५५
विंशतिस्ते सहस्राणि १२।७५
विंशतिस्तु सहस्राणि ६०।३६०
विंशतिश्च त्रयस्त्रिंश- ३४।८२
विंशतिश्चैव वर्षाणि ६०।५२५
विंशत्या त्रिशतायुक्तास् ६०।३५३
विशेषको भुवामीशो ८।१९३
विंशस्य तस्य चरितस्य १६।७८
विशिष्टा परिहारेण ६४।१७
विशुद्धं दर्शनं यत्र ४७।१०
विशुद्धतमदृष्टयो ३८।१६
विशुद्धान्वयसम्भूताः ४३।२०३
विश्वक्कृतयशाः पुत्रो ४४।५
विश्वसेनस्ततो जातः ४५।१८
विश्वाशा विशदाः शरद् ५८।३१२
विश्वानलस्तु दशमे ६०।५३५
विश्वावसू रविः सूर्यः १७।५९
विश्वाभ्युदयसौख्यानां १८।४०
विश्वाः सतोरणा लक्ष्यास् ५७।३१
विश्वास्य दिव्यरूपोऽसौ ९।१३०
विश्वान् विद्याधरान् ३४।३२
विश्वेऽप्यश्वरवात्तस्मात् २८।११
विश्वे वैश्वानरा यान्ति ५९।६५
विश्रमन्त्वधुना गत्वा ९।७०
विश्रम्य यत्र ते सौम्या ४६।१७
विश्रम्य च क्षणं वीरौ ६२।१५
विषकण्टकशस्त्राग्नि- ५८।१५१
विषयस्यामनोज्ञस्य ५६।७
विषहते स्म वियोगविषं १५।३
विषयायामवृद्धिश्च ५।५५१
विषयायामवृद्धयाद्यो ५।५४९
विषये पुष्कलावत्यां ४३।९०
विषादविषदूषितं ५१।४५
विष्कम्भत्रितयं ज्ञेय- ५।५०४
विष्णुगीतक्रमोद्देश- १९।२६४
विष्णुरूचे स्वयोगस्था २०।४७
विष्णुश्रीर्विष्णुराजश्च ६०।१९२
विसृष्टाश्च यथास्थानं ५३।४८
विसृष्टश्चापि गङ्गायां २४।३४
विस्मयं परमं प्राप्ताः ४८।३५
विस्मितः स्वयमेवासौ १९।६५
विस्मृतन्यस्तसंख्यस्य ५८।१६८
विस्रब्धा भयमुज्झित्वा ५४।२८
विस्ताररहिता सूची ५।४८६
विस्तारेणार्णवस्पर्शी ५।३
विस्तीर्णोन्नतगम्भीर- २३।७२
विहरन्नन्यदा यातः २७।७
विहरन्नथ नाथोऽसौ २।५७
विहरत्युपकाराय ३।२१
विहारा तु गृहीतायां ५९।१०८
विहाराभिमुखेऽगाग्राज् ५९।१
विहिततत्समयोचित- ५५।७३
विहृत्य पूज्योऽपि महीं ६६।१४
विहृत्य चिरमुद्यानं ४३।१८
विहृत्य चिरमीशानः ६१।१३
विहृत्य विविधान् देशान् ४५।११९
विह्वलान्तःपुरस्त्रीभिः १२।११
वीणा घोषोत्तरश्रेणौ २०।६१
वीणावाद्यविदग्धेषु १९।१३५
वीणावेणुमृदङ्गोरु ५५।१६
वीणा वंशश्च गानं च १९।१९५
वीतभीभ्यः प्रजाभ्यस्ते ४५।९५
वीतशोकाभिधानाया ६०।६९
वीरनिर्वाणकाले च ६०।४८७
वीरस्य केवलोत्पादः ६०।२५५
वीरस्य गणिनां वर्षा ६०।४८२
वीरस्यैकस्य निर्वाणः ६०।२८२
वीरस्यैकस्यनिष्क्रान्तिस् ६०।३५०
वीरकेवलिनां कालो ६०।४७९
वीर ! किं स्वपिषि ६३।१०
वीरभद्रगुरुश्चागात् ३३।५९
वीराख्यो गङ्गदत्तश्च ५२।३३
वीरेऽवतरति त्रातुं २।२०
वीरको ह्येकपत्नीकस् १४।८०
वीराङ्गदे च कटके ११।१४
वृकोदरोऽवदद्दोर्भि- ५४।६६
वृक्षादिच्छेदनं भूमि- ५८।१५०
वृणीष्व रोहिणीशं तं ३१।२२
वृत्तवृद्धयै विशुद्धात्मा ९।१८९
वृद्धः शीतमयूखस्य ९।२
वृद्धसेवाविवृद्धा मे २१।६०
वृषभस्य विनीतायां ६०।२१५
वृषभस्य श्रेयसो मल्लेः ६०।२५६
वृषभस्य सुतो भोऽहं ११।४८
वृषभश्चैत्रकृष्णस्य ६०।१६९
वृषभे भरतश्चक्री ६०।२९४
वृषस्य वासुपूज्यस्य ६०।२८०
वृषमल्लीशपार्श्वाना- ६०।२५३
वृषच्छद्मस्थकालोऽत्र ६०।३३७
वृषाद्या धर्मपर्यन्ता ६०।३२४
वृषो धर्मश्च शान्तिश्च ६०।१६४
वृषो दशसहस्रैस्तु ६०।२८५
वृषोऽजितोऽपि च श्रेयान् ६०।२७६
वृष्णिदीक्षां तथा राज्यं १।७९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वृष्णिरप्यागतो भक्त्या १८।३३
वेगश्रमागतस्वेद- ३४।३०
वेगाद् वेगवती मात्रा ३०।३६
वेगाद्विपाद्य तां भस्त्रां २१।११०
वेणुश्च वेणुदारी ता ५।१९०
वेणुदारी च विक्रान्तो ५०।८५
वेत्रासनमृदङ्गोरु ४।६
वेदाध्ययननिर्घोष- २३।२७
वेदार्थभावनाजात- ४३।१०२
वेदाध्ययनसक्तानां १७।४१
वेदिकान्तरदेशेषु ५।१८३
वेदिकाबद्धवीथीषु ५७।६७
वेदिकाभ्यन्तरे कान्तं ५।३८१
वेद्यते वेदयत्येवं ५८।२१६
वेदोत्पत्तिमुपाख्यानं १।८३
वेद्यमेकं मनुष्यायुर् ५६।१०७
वेलायां तत्र संमन्त्र्य १४।७७
वेश्ममूलशिलापीठ- ६।९२
वैक्रियास्तु सहस्राणि ६०।४१४
वैक्रियाश्च सहस्राणि ६०।४०१
वैचित्र्यमेतदवगम्य भवस्य४६।५९
वैजयन्त्यं शिवं ज्येष्ठं ५७।५८
वैजयन्तादयो देवा ५।४२९
वैणाश्चापि च शारीरा १९।१४६
वैडूर्ये विजया देवी ५।७०५
वैडूर्यमयनीलस्य ५।९९
वैताढ्येऽस्ति नृपः श्रेण्यां२१।२२
वैताढ्यवृत्तवैताढ्यास् ५।५८८
वैदिकार्थविचारोऽयं १७।९५
वैनयिकं विनेयेभ्यः २।१०३
वैपरीत्यं ततो ज्ञात्वा ४७।५८
वैपञ्ची वैणिकश्चैव २२।१३
वैभवो विजया ख्याति ५९।६९
वैभारो दक्षिणामाशां ३।५४
वैयावृत्त्यप्रवृत्तो यः १८।१५६
वैयावृत्त्यमहानन्द १८।१५९
वैरबन्धमिति ज्ञात्वा २७।१२६
वैशाखस्यापुनात्सिद्धया ६०।२७०
वैशाखस्येव शुद्धस्य ६०।२२७
वैश्यस्य धनदेवस्या- ६४।११९
व्यक्तियोग्यत्वसद्भावा- ५८।२२५
व्रजन्ति खलु जन्तवः ५२।९३
व्रजति नित्यमुखे सुमुखे- १५।१५
व्यजिज्ञपत् ततस्तं सा २९।४०
व्रतगुणसंयमोपवसनादि- ४९।२५
व्रतगुप्तिसमित्यक्ष- ४७।११
व्रतगुणशीलराशिरति- ४९।५१
व्रतानां राज्यभुक्तेश्च ६४।७१
व्यतिक्रान्तेषु बहुषु २९।६
व्यतीतशोकनामान्यो ६०।१६३
व्यपहृतभूषणस्रगिय- ४९।२२
व्यपनीय प्रियाश्लेष- ३०।४
व्यपगतेषु नृपेषु बहुष्वतः १५।६१
व्यतिक्रान्तो जिनादेश- ६१।४७
व्यर्थिकाः शवशरीर- ६३।५५
व्यन्तराः सुन्दराकारा ५७।१५६
व्यवस्थायां विधाता त्वं ८।२०८
व्याख्या प्रज्ञप्तिहृदयं २।९३
व्याधपूर्वोऽपि सप्तम्या- २७।११८
व्याधिमिथ्यात्वसंपात- ६४।४५
व्यापी विजयविस्तारः ५।५४६
व्यामिश्राण्यपि सद्रत्नैः २७।४०
व्यामोह्य पौरलोकं च ४७।१०९
व्योम्नि दुन्दुभयो नेदु- ५२।६७
व्युत्सृष्टापरसङ्गसन्तति ६६।५४

[श]

शकटाकृतयः सर्वे ११।११२
शक्तस्य शातने शेष- ५६।७४
शक्तस्योपेक्षमाणस्य १८।१४८
शङ्कुकर्णा महीपालाः २३।१०१
शङ्कुनेव ततः कर्णे २१।६७
शक्रप्रशंसनादेत्य १२।३०
शक्रचक्रिगणेशत्वं ३४।६३
शक्रस्य लोकपालानां ५।६६१
शक्राज्ञया प्रतिदिनं १६।२
शकुनिर्यवनो भानु ५०।८४
शक्नुयुः सुखमाहर्तुं ६५।४९
शङ्खचक्रगदापाणिर् ६५।५३
शङ्खपद्मौ ज्वलन्मौलि- ५९।६३
शङ्खभेरीहरिध्वान- २।२७
शङ्खवज्रं च नाभान्तं २२।९६
शङ्खश्च शङ्खचिह्नस्य च५३।५०
शङ्खतूर्यरवस्यान्ते ३१।१९
शङ्खानां निनदं श्रुत्वा ५१।२१
शङ्खावर्तसमग्रीवा ८।१९
शङ्काविषसमापन्नान् ६५।३०
शङ्खो यातोऽन्यदादाय ३३।१४५
शतमखप्रतिमाः शतशस्ततः१५।६०
शतमेव पुनर्ज्ञेयम् ६०।३४२
शतयोजनमाकाशं ५।१३९
शतयोजनमानः स्यात् ५।४५
शतं कोटीभिरष्टाभिः .१०।४५
शतं चतुरशीतिश्च ४।९२
शतानि तनयाः पञ्च .४७।२९
शतानि त्रीणि षष्ट्या तु११।१२४
शतद्वयं च पञ्चाशद् ४।३३८
शतं द्वावनत दिक्षु ४।९०
शतं पञ्चशता पञ्च ६०।३८४
शतं रासभराजानां ६०।४९०
शतं लक्ष्मणकौमार्यं ६०।५३१
शतं षण्णवतं दिक्षु ४।८९
शतं षष्ट्याधिकं दिक्षु ४।९८
शतानि द्वादश प्रोक्ताः ६०।४२३
शताध्वरभुजोद्धृतैर् ३८।५२
शतानि द्वादशैव स्यात् ५।५३१
शतानि नव धर्मस्य ६०।४०४
शतानि नव तत्रापि ४।१४९
शतानि नव सैकानि ५।७५
शतानि नव गत्वोर्ध्वं ६।२
शतानि नवविंशत्या ६०।५३३
शतानि नव विज्ञेयाः ६०।४२६
शतानि पञ्च तुर्यस्य ६०।३७१
शतानि पञ्च कौमार्यं ६०।५१०
शतानि पञ्चविंशत्या ५।४२
शतानि षोडशैव स्युर् ६०।४१५
शतानि षोडश ख्याताः६०।४२२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शतानि षोडशाद्रौ तु ५।१५४
शतानि सप्त पञ्चाशद् ६०।४२९
शतानि सप्त गत्वोर्ध्वं ६।१
शतानि सप्त कालेन ३।४८
शतान्यवधिनेत्रास्तु ५९।१३०
शतान्यर्द्धचतुर्थानि सहस्रा-५।५२२
शतान्यर्द्धचतुर्थानि ५।५२०
शतान्यष्टौ जयेनामा १२।५०
शतान्यष्टौ सहस्राणि ६०।३७२
शतान्यष्टादशोत्सेधो ७।१७१
शतान्येकादश ज्ञेया ६०।३९९
शतारश्च सहस्रार- ६।३८
शतारे पञ्चपञ्चाशत् ६।७२
शते दत्तस्य कौमार्यं ६०।५३०
शतेनाष्टसहस्राणि ६।६६
शत्रुघ्नो जितशत्रुस्ता ३३।१७१
शत्रुञ्जयो महासेनो ५०।१३१
शत्रुमुत्प्लुत्य कंसस्तं ३३।१०
शत्रौ मित्रे सुखे दुःखे २२।२९
शनैः स प्रेरितस्तेन २५।२५
शनैरुत्थाय गच्छन्त- २१।९६
शनैर्याति ततः काले १२।७
शनैश्चरविमानानि ६।२१
शब्दगन्धरसस्पर्श- १०।१४८
शब्दभेदेऽर्थभेदार्थी ५८।४८
शब्दरूपरसस्पर्श- ४३।१९७
शब्दस्यार्थं स्वतो वेत्ति १७।११९
शमयति रिपुलोको ३६।७५
शमितशोकभरा वचनै-५५।१३३
शमितान्यकषाया ये ६४।६२
शम्बः क्रीडासु सर्वासु ४८।१०
शम्बाद्यास्तु तदानेके ६१।६८
शयने सर्वतोभद्रे ६५।३७
शयनासनवस्तूनां ११।११८
शय्यासनविधौ काश्चिद् ८।५०
शरः पपात वज्राशो ११।७
शरदभ्रावलीशुभ्रे ८।५७
शरद्वीपश्च राजाऽसौ ४५।३०
शरभसिंहवनद्विपयूथपान् ५५।९१
शरान् शत्रुञ्जयोत्क्षिप्तान् ३१।९५
शरावपर्वते लेभे ४७।३८
शरीरभोगसंसार- ६४।७
शरीरपञ्चकस्यास्य ५८।२४७
शरीरमपि संन्यस्तं ९।१२०
शरीरमशुचिर्भोगाः ५६।४६
शरीरं दर्शनं ज्ञानं १८।१५४
शरीराकृतिनिर्वृत्तिर् ५८।२५२
शरीरान्तर्मलत्यागः २।१२६
शरैः शरान् निवार्यासौ ३१।९१
शर्मा च कृतवर्मा च ६०।१९४
शल्यं रथेन सम्प्राप्तं ३१।९८
शशलोहितसंकाशैर् ५२।२१
शशाङ्कविशदैरश्वै- ५२।१०
शशाङ्कस्य करस्पर्शान् १४।९८
शष्कुलीकर्णनामानः ५।४७३
शस्त्रजालकरच्छन्न- २५।५६
शस्त्रशास्त्रकठोरापि ४३।१६६
शस्त्रशास्त्रार्थनिपुणाः ५०।८०
शस्त्रशास्त्रार्णवस्यान्ते २५।२४
शस्त्रार्थैः प्राकृतैर्योधाः २५।६२
शंभवे वा विमुक्तौ वा १।५
शाकेष्वब्दशतेषु ६६।५२
शाण्डिल्याकृतिरूपोऽद्य २३।१३३
शातकुम्भमयस्तम्भो ८।३
शाधि किं करवाणीश ११।११
शान्तक्षीणकषायौ तौ ५८।२०१
शारीरं मानसं सौख्यं ५८।२३०
शान्तचित्तं कदाचित्तं २।४९
शान्तये नाम लोकस्य ५०।५०
शान्तस्यापि च वक्रोक्ती १।३६
शान्तायुधसुतः श्रीमान् २९।३६
शान्तिकुन्थ्वरनामानः ६०।२०९
शान्तेर्माण्डलिकत्वे तु ६०।५०५
शान्तेःसिद्धितिथिःसिद्धा६०।२७१
शापितश्चास्य दास्याहं ३३।५४
शारीरं मानसं दुःखं ४।३६५
शार्वरं तिमिरमुग्र- ६३।२८
शार्ङ्गी शक्तिगदाद्यानि ५३।६१
शार्ङ्गी स षोडशसहस्र- ५३।५३
शालशैलमहावप्र- २।११
शालः कुण्डपुरं वीरः ६०।२०५
शालास्त्रयोऽप्यमी त्वेक- ५७।६४
शालीक्षुक्षेत्रनिक्षिप्तं ७।११२
शासनस्थितिविद् विद्वान्१८।१५५
शास्त्रव्यसनिनो मेऽभून् २१।३९
शास्त्रकौशलतायुक्तो २९।२९
शास्त्रार्थी स्त्रीप्रियोनित्य-२३।७५
शिक्षकाःविंशतिःप्राप्ताः६०।३८३
शिक्षकाः षट्शतैः सार्धं६०।३६३
शिक्षा लक्षाः तृतीयस्य६०।४४४
शिखरे च गिरेस्तस्य ५।१४५
शिखावलीलीढनभस्त- ३७।४२
शिखाकरालं शिखिनं ३७।२१
शिखिहंसगरुत्मत्स्रक् ५७।४४
शिरःप्रकम्पितं प्रोक्तं ७।३०
शिलाबलेन विज्ञातो ५३।४०
शिलायां तत्र कृत्वादौ ५३।३४
शिवा च रोहिणी देवी ५८।३०९
शिवादेव्याः सुतोत्पत्तौ १।९६
शिशुमारमुखाश्चैव ५।५७०
शिशुमुद्धृत्य बाहुभ्यां ४३।४३
शिशोर्निरञ्जनस्यास्ये ८।१९४
शीतदीधितिरस्ताभो ७।१३७
शीतलस्य चतुःशत्या ६०।३९१
शीतापि च यशःकूटे ५।७१४
शीर्णः शरज्जलधरः १६।३२
शीलप्राकाररक्षाऽह- ३०।१२
शीलमात्रमहाश्वासा ५४।३५
शीलव्रतरक्षायां ३४।१३४
शुकवर्णसमैरश्वै- ५२।६
शुकान् परभृतान् क्रौञ्चान्८।१३८
शुक्रशोणितकुबीज- ६३।८५
शुक्रे विंशतियुक्तानि ६।५९
शुक्लध्यानसमाविष्टा ६५।२२
शुक्लः सोमसुतस्यैव ५२।१७
शुक्लं तत्प्रथमं शुक्ल- ५६।६३
शुक्लं शुचित्वसम्बन्धाच्५६।६३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुक्लाष्टम्यां हि माघस्य ४२।६१
शुक्ले पञ्चसहस्राणि ५।४३७
शुचिशीतलतीर्थस्य १।१२
शुचिदत्तस्तुरीयस्तु ३।४२
शुद्धज्ञानप्रकाशाय १।२
शुद्धदेवीयुतान्याहुर् ६।१२१
शुद्धप्रकृतिरत्यन्त- ४२।७
शुद्धमौक्तिकसंघात ९।१५
शुद्धवृत्तं न भोगेषु २।४८
शुद्धं दर्शयता भावं २१।३२
शुद्धस्य मार्गशीर्षस्य ३४।१२९
शुद्धे श्रेणिक ! शीतलस्य १३।३४
शुभपरिमलसद्यस् ३६।२७
शुभः पुण्यस्य सामा- ५८।११५
शुभलक्षणपूर्वस्य २३।११९
शुभंयवो नमन्त्येत्या ५९।९२
शुभायुर्नामगोत्राणि ५८।२९८
शुभात्मपरिणामेन ५८।२३२
शुभाम्बुपूर्णं जलपुष्प- ३७।१५
शुम्भद्रत्नमहास्तम्भ- ५।३६१
शुष्का तद्गतवेलाया ४३।२३४
शूकरासुरतः शङ्खं ४७।३९
शून्यानि दश पञ्चातस् ६०।३२८
शून्यान्यमोचितागार- ५८।१२०
शूरः सुवीरमास्थाय १८।९
शूरश्चापि सुवीरश्च १८।८
शूरसेनस्तमादर्श्य ३३।११५
शूरसेनश्च सप्तैते ३३।९८
शूरसेननृपे पाति ३३।९६
शूराश्चान्धकवृष्ण्याद्याः १८।१०
शूराणां भूतलस्पर्शि ५९।२५
शूलवाधाश्च दारिद्र्यं २३।७३
शृङ्गमेवमचलस्य ६३।७३
शृणु देव ! नमेर्वंशे २५।२
शृणु देवास्ति शैलेऽस्मिन् २३।३
शृणु त्वं दक्षिणश्रेण्यां २६।५०
शृणु कारणमेतस्य १९।७९
शृणु त्वं धीर ! विश्रब्धो २९।२३
शृणुत विनुत राजा ३६।५६
शृणोमि चरितं सर्वं ३।१९५
शृण्वन्तु मद्वचः सन्तः १७।११४
शेषपुष्पफलाहाराः ५।४८३
शेषोभयान्तकूटेषु ५।२२६
शैलं वृषभसेनाद्यैः १३।६
शैशव एव जनातिगसत्त्वः ३९।१२
शोकवानपि चित्तेन ४३।८१
शोकभारमपनीय ६३।३१
शोकारातिभयोद्वेग- ५६।११
शोचनं यद्विपाकात्स- ५८।२३६
शोणवर्णैर्हयैर्भाति ५२।१२
शोधिते बहवो मत्स्याः ३३।५६
शोभनाभिनयं काचिद् ८।४५
शोभयाहृतचित्तं त- २३।२३
शोभन्ते तद्विपार्श्वेषु ५७।५१
शौरिपक्षतया केचित् ३०।३५
शौरिरश्वरथारूढः २२।७
शौरिर्मदनवेगां ता २६।६५
शौरिस्तदा नियुक्तैस्तु ३०।४८
शौरिं हिरण्यवत्याह २२।१४२
शौरेर्मदनवेगायां २६।१
शौर्यप्रभावसुवशीकृत- १६।३६
शौर्यशैल ! तवोत्तुङ्ग ३१।११२
श्मशानास्थिकृतोत्तंसा २६।१६
श्यामयाशनिवेगस्य २२।१४४
श्यामाककणमात्रो न ५८।३२
श्यामाया वचनं श्रुत्वा १९।९५
श्यामामादाय संप्राप्तः ३२।२७
श्यामिके स्त्रीवधो लोके १९।१०५
श्रद्धादिगुणसंपूर्णः ९।१८६
श्रद्धावान् सुप्रसिद्धोऽद्रिर् ५।२३०
श्रद्धावान् विजयावांश्च ५।१६१
श्रद्धेयपरलोकस्य ५६।२३
श्रमजवारिलवाञ्चित- ५५।१२
श्रमप्रस्विन्नसर्वाङ्गौ १४।१०४
श्रमादिप्रभवात्मानं ५८।२२८
श्रवणादपि पापघ्ना ३४।५१
श्रवणीयं वचः श्रुत्वा ३४।४०
श्रान्तोऽत्यन्तं कुमार ! त्वं १९।३५
श्रावणस्यासिते पक्षे २।९१
श्रावणे शुक्लसप्तम्यां ६०।२७३
श्रावस्तीसंभवः सेना ६०।१८४
श्रावस्त्यामस्ति विस्तीर्ण- २८।५
श्रित्वा मदनवेगाया २६।४४
श्रियं ह्रियं धृतिं बुद्धिं २२।११
श्रिया च धृतिराशया ३८।३५
श्रीकान्ता प्रथमा वापी ५।३४४
श्रीचन्द्रसुप्रतिष्ठाद्या ४५।१२
श्रीचन्द्रात्मजराजोऽसौ ३४।४५
श्रीचूलारत्नभा चक्र- ५७।१८
श्रीधरं धर्मसंज्ञं च ६०।१७
श्रीधरस्य सुरेशस्य ९।५९
श्रीधरापूर्वको देवः २७।९१
श्रीधर्मानन्तवीर्याख्यौ ६०।२१
श्रीध्वजो नन्दनश्चैव ४८।६७
श्रीप्रभश्रीवरौ नाथौ ५।६४०
श्रीभूतिरिति भूतोऽन्यः ६०।५६४
श्रीमण्डपस्थितान् सर्वा- ३२।११
श्रीमन्तं प्रवदन्तीमं २२।१४३
श्रीमतामनुरूपं य- ८।१
श्रीमती वज्रजङ्घाभ्यां ९।१८३
श्रीमतोऽस्य महाराज ३।१८६
श्रीमातङ्गान्वयव्योम- २२।११२
श्रीर्ललाटस्य नासायाः ९।१२
श्रीलक्ष्मीधृतिकीर्त्याद्या ८।३९
श्रीवत्सलक्षणेनोरु ९।९
श्रीविद्युद्दिक्कुमारीभिः ८।९०
श्रीवृक्षलक्षितोरस्के ११।१३५
श्रीव्रतो व्रतधर्मा च ४५।२९
श्रीशचीकीर्तिलक्ष्मीभिः ८।१९५
श्रीशीतलादिह परेषु १६।१
श्रीसनाथैस्ततः सर्वैर् ५९।६२
श्रीहास्तिनपुरं प्रीत्या ५३।४६
श्रीहास्तिनपुरं रम्यं ६०।२३९
श्रुतगुरुरसि विद्वान् ३६।२१
श्रुतज्ञानविकल्पः स्यात् १०।१४
श्रुतं च स्वसमासेन १०।१२
श्रुतं शब्दात्मकं विश्वं ९।१०७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रुतानुभूतवार्तादि ३०।४१
श्रुतितूलततौ वृद्धौ ३१।१८
श्रुतीन्धनसमृद्धोऽनु- ४२।६९
श्रुत्वा कन्यापिता क्रुद्धः ४४।१३
श्रुत्वा कंसभवान्तरं ३३।१७४
श्रुत्वा कंसोऽपि शङ्का ३३।३८
श्रुत्वा क्षीरकदम्बोऽपि १७।४३
श्रुत्वा चकितचित्ता सा ५४।१९
श्रुत्वा च तत्तया तेऽपि २४।७६
श्रुत्वा गजकुमारोऽसौ ६१।२
श्रुत्वा गोत्रक्षयः सोऽपि ६२।४८
श्रुत्वा तत्सत्यभामोक्ते ४३।१६
श्रुत्वा तद्द्विशतक्षत्रै- ३३।१६३
श्रुत्वा तां घोषणां श्रव्यां ३३।८
श्रुत्वा दधिमुखस्योक्तं २५।४५
श्रुत्वा देवनिकायेभ्यः ९।१९७
श्रुत्वा नारदमाकाशे ४७।९३
श्रुत्वा सभाजनाश्चापि ४८।३४
श्रुत्वेति खेचरास्तस्थुर- ३४।२६
श्रुत्वेति चारुदत्तीय २१।१८४
श्रुत्वेति जरतीवाक्यं ४०।४२
श्रुत्वैवं कृपया तेन २८।२५
श्रुत्वैवं शब्दमात्रेण २३।३२
श्रूयतां सुकुमारि द्वे ६४।१२५
श्रेणिकेन पुनः पृष्ट- ५४।१
श्रेणिकेन तु यत्पूर्वं २।१३६
श्रेणिकोऽपि च संप्राप्तः २।७१
श्रेणिकोऽपि गुणश्रेणि २।१४२
श्रेणीबद्धान्तरं चास्यां ४।२४८
श्रेणिबद्धानि चैतानि ४।११६
श्रेणिबद्धानि चामूनि ४।१२७
श्रेणिबद्धान्यमूनि स्युः ४।१०३
श्रेण्यां तु दक्षिणस्यां २२।१०१
श्रेण्योः स्युर्नगराण्येषां ५।२५६
श्रेयःप्रभृतिधर्मान्तान् ६०।२९९
श्रेयः श्रेयस्करतीर्थं ५७।११५
श्रेयसा पात्रनिक्षिप्त- ९।१९५
श्रेयसि श्रेयसा पात्रे ९।१९०
श्रेयसो दानधर्मस्य ८।२१४
श्रेयान् सोमप्रभश्चेति ४५।७
श्रेयोदानयशोराशि- ९।१९३
श्रेष्ठी तु कामदत्तोऽव २८।१८
श्रेष्ठी सुरेन्द्रदत्तोऽभूद् १८।९८
श्रोत्रं गीतरवे रूपे ७।९७
श्लाघात्मधम्मिल्ल- ३७।४४
श्लक्ष्णधीः श्लक्ष्णरोमा- ४४।२०
श्लिष्टांगुलिदलौ गूढ़- ८।९
श्वस्तन्यां कृतसङ्केतो २९।६३
श्वसुरोऽशनिवेगोऽसौ ५१।२
श्वसुरास्तस्य यावन्तः ३१।१३१
श्वापदानि पदशब्द- ६३।३५
श्वेतभानुरयं किन्तु ९।१४६
श्वेतच्छत्रैर्ध्वजैश्चित्रै- ८।१४०
श्वेतैर्मुक्तादिभिर्भूमि ७।७३

[ष]

षट्कला भरतज्योत्स्ना ५।४०
षट्कर्मणां विधातारं १७।१३०
षट्कर्मसु प्रजाः प्राप्ताः २३।३६
षट्खण्डप्रभवः केचिद् ३।१७२
षड्गुणास्तेषु विज्ञेया १९।२१६
षट्चत्वारिंशद्दोषा ३४।१०८
षट् च चत्वारि च ५।३६७
षट्षष्टि द्वे शते दण्डा ५।४४०
षट्योजनसहस्राणि ५।५००
षट्सहस्राणि विपुलां ६०।३९०
षट्शतानि सहस्राणि ६०।३६८
षट्संस्थानभृतो मर्त्यास् १८।७२
षट् च षष्टिसहस्राणि ६।२८
षट्युगलेषु शेषेषु ६।१०१
षट्त्रिंशत्पदलक्षाभिः १०।६३
षट्त्रिंशं हि शतं दिक्षु ४।१०७
षट्त्रिंशच्च महादिक्षु ४।१३८
षट्त्रिंशच्च तथा लक्षाः ४।१८०
षट्त्रिंशच्च शतानि स्याद् ५।६०
षट्त्रिंशच्च सहस्र च ५।६४८
षट्त्रिंशच्च सहस्राणि ५९।१३३
षट् पञ्चाशद् द्विकोत्थे ३४।७७
षट् पञ्चाशं शतं दिक्षु ४।९९
षट्पञ्चाशन्महादिक्षु ४।१३१
षट्पञ्चाशत्सहस्राणि १०।३६
षट्पञ्चाशत्सहस्राणि ५।२७७
षट्पञ्चाशत्सहस्राणि ५७।४७
षट्पञ्चाशद्दिनानि ६०।३४०
षट्पञ्चैकस्वरास्तानाः १९।१६९
षट्पञ्चाशत्सहस्राणि ५।५३३
षट् चापविस्तृतान्येषां ५।३८४
षट्लक्षाः पञ्चलक्षाश्च ६०।४७२
षट्शतैकान्न पञ्चाशत् ६।८८
षट्शतानि सहस्राणि ६०।४०५
षट्शतानि च कालोदे- ५।५६४
षट्षष्टिदिवसान् भूयो २।६१
षट्षष्टिर्वर्षलक्षाभिः ६०।४६९
षट्षष्ट्या षट् कोदण्डा ४।३३६
षट्सप्तत्या शतं दिक्षु ४।९४
षट्स्वराश्चैव विज्ञेया १९।१८७
षट्स्वरे सप्तमस्त्वंशो १९।१९०
षट्सप्तति कलाषट्कं ५।१५३
षट्सु कालेषु पल्याष्ट ६०।४८४
षट्सहस्रनृपस्त्रीभिः ५७।१४६
षडे तु परमा यासौ ४।२८५
षड्गुणः स्वावगाहस्तु ५।५०७
षड्जश्चेतुःश्रुतिश्चैव १९।१५२
षड्जश्चाप्यृषभश्चैव १९।१५३
षड्जश्च मध्यमश्चैव १९।२२८
षड्जेनोत्तरमन्द्रा स्याद् १९।१६५
षड्जौदीच्यवती चैव १९।१८४
षड्जमध्या तथा चैव १९।१७५
षड्जश्चतुःश्रुतिश्च १९।१५६
षड्जपञ्चमहीनं च १९।२२२
षड्जमध्यास्तु सर्वेषा- १९।२३१
षड्जमध्यमयोश्चात्र १९।२४३
षडप्यविघ्ना वसुदेवपुत्रा ३५।८
षड्भिः कर्मभिरासाद्य ९।४०
षड्योजनी सगव्यूता ५।१४०
षड्योजनानि गव्यूतं ५।१३६
षड्रसान्यतिमृष्टानि ७।८५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

षड्वर्षलक्षपरिमाण- १६।७७
षड्विंशतिसहस्राणि ५।५२३
षड्विंशतिधनूंष्येष ४।३२२
षडेताः सप्तभागेन ४।२०
षण्णवत्या नवशती ६।८३
षण्मासानशनस्यान्ते ९।१४२
षण्मासवसुवृष्ट्या च ८।९४
षष्टियोजनविस्तीर्णं ५।१४२
षष्टिवर्षसहस्राणि २५।३३
षष्टिराद्येऽवगाहोऽपि ६।९६
षष्टिरेव महादिक्षु ४।१३०
षष्टिर्वर्षसहस्राणि ६०।३२३
षष्टिर्वर्षाणि तद्राज्यं ६०।४८८
षष्टिर्वर्षसहस्राणि ६०।४९५
षष्ठभक्तभृतां दीक्षा ६०।२१७
षष्ठाष्टमादिषण्मास- ४३।२०७
षष्ठादयः सहामीषां ५९।१२३
षष्ठीतस्तु विनिर्यातो ४।३७९
षष्ठे दशोपवासाः स्यु- ३४।१०६
षष्ठो गणधरो धीमान् १२।५६
षष्ठोपवासिनि परेद्यु १६।५९
षष्ट्यां सुपार्श्वनाथस्य ६०।२६७
षष्ट्यां च कृष्णयैवोर्ध्वं ४।३४५
षाड्जी स्यादार्षभी १९।१७४
षाडवे वैयतो नास्ति १९।१९२
षोडशानां निकायानां २२।६१
षोडशानां सहस्राणां ४२।५२
षोडशाग्रं शतं दिक्षु ४।११२
षोडशाल्पकलावस्था ८।२९
षोडशास्य सहस्राणि ५।७७
षोडशेष्वपि चैतेषु ४७।४४
षोडशैव महादिक्षु ४।१४५
षोडशैव सहस्राणि ६०।३८१
षोडशोद्गमदोषैश्च ९।१८७

[स]

संगताश्च समस्तास्ता ५।२७८
संगत्याङ्गारकः स्वैरं १९।९८
संग्रहादधिकारैः स्वैः १।७३
संग्रहेण विभागेन १।७४
संघः परिषदि श्रीमान् १२।७१
संघः सप्तविधः पूर्व- ६०।३५७
संघावष्टसहस्राणि ६०।३८६
संक्लिश्यते विषयभोग- १६।४४
संकोचः पद्मखण्डानां १४।७४
संजयन्तचरितं जगत्त्रये २७।१३९
संजयश्चरमस्यासीत् १७।२८
संजयं च जये सक्तं ३१।२९
संजयोऽरिञ्जयो नाम्ना २२।१०४
संजातो वज्रदंष्ट्रोऽस्मा- १३।२२
संपातश्च तयोर्जातः ३१।७३
संपूर्णविधयो गत्वा ४७।३
संपूर्णैर्धनिनः पार्श्वैर् २३।७०
संपूज्यमानचरणो नृसुरा ४६।६१
संभावयामि नेदृक्ष- ८।१२६
संमान्य भ्रातरं तस्या ४४।१८
संभ्रान्ते तू जघन्येयं ४।२५४
संभ्रान्त्यान्वितलोकस्य ९।१७४
संप्रयुक्तमपि वल्लभैः ३०।५७
संप्राप्य प्रातराक्रन्द- १९।५०
संप्राप्तश्च त्वमस्माभिः २५।४३
संप्राप्तः कुरुभोजाद्यैः ९।२१४
संप्राप्ति चारुहासिन्या १।८४
संप्राप्ते दिवसे तस्मिन् १९।१३२
संप्राप्तोऽथ सदा दानैर् ९।१५७
स आह वर्धते वैरी २५।१९
स एवैकेन्द्रियादीनां १८।७४
स एष नारदो राजन् ४२।२४
स एष बन्धुमध्यस्थो ४३।१२४
स एव च सहस्रोनो ५।२९३
सकषायाकषायौ द्वौ ५८।५८
सकलयदुमनोज्ञं ३६।५८
सकलश्रुतमत्यवधि- ३९।१
सकालयवनः काल- ५२।२९
स कथं युधि जीयेत ५०।२३
सकृत्क्षुतं धनेशानां २३।१०२
सकुलशैलसरःसरितांतया १५।३६
सकृदपि जीवघातकृद- ४९।१८
सकेवलावधी सङ्घौ ६०।४२५
स कृष्णैकादशीं पार्श्वः ६०।१८०
सक्रियाः शतधाशीत्या १०।४८
सक्रोशोऽपि च सत्रिंशद् ५।५९२
स खलु पश्यति तत्र तदा ५५।८५
स खलु खेचरराजसुतं सुरः १५।४८
सखीभिः क्रीडितुं याता ६०।६६
सखीनामभवत्तुङ्ग- ४४।१२
सखेटखर्वटाटोपि २।३
सगरः क्षत्रलोकेन २३।१३९
सगरस्य प्रतीहारी २३।५०
स गतीन्द्रियषट्काय- ५८।३६
स गत्वा पञ्चनवतिं ५।४३६
स गान्धार्या कृते प्रश्ने ६०।८६
स गोपतिं दृप्तमशेषघोष- ३५।४७
स गौरवमिमौ दृष्टा ४४।३९
स गौरीश्यामयोर्मध्ये ९।१९
सघटैः सुरसङ्घातैर् ८।१६३
सचतुर्गोपुरातोऽन्तर् ५७।५४
सचतुर्गोपुरातोऽपि ५७।४१
स चन्द्रसंदर्शनतः ३७।३२
स चाराध्य महाशुक्रे १८।१७४
स चाष्टाविंशतिर्लक्षाः ५।४९२
स चाष्टादशलक्षास्ताः ४।१९९
सचित्ताहारसंबन्ध- ५८।१८२
सचिवस्तस्य निस्तीर्ण- २८।३२
सचिवानपकर्ण्याशु ५०।३२
सचिवोपायतस्तस्या ३३।८८
सचेतनानुबन्धो यः ५८।७०
सच्छिद्रौ सकषायौ च २३।६२
स जगत्त्रयरूपिण्या ९।१८
सज्यचापाकृतिस्तस्य ३।५५
सज्यतां सुलघु ६३।५७
सज्जीवभावविक्तो वा १०।५५
स तत्र यूनि व्यवसायिनि ६६।३
स तत्र विधिनानीय ६२।३१
स तद्दुःखविधानाय ५४।७
सत्यवादी नरेन्द्रस्य २७।२२
सत्यमेव विगतोऽ- ६३।६७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्यवचोनिवहैः सुरसंघा ३९।१५
सत्यदेव इति ज्ञेयः १२।६२
सत्यभूतः स्वयं जीवो ५८।३०
सत्यमेतद् द्विज ! ज्ञातं १९।११८
सत्यपि व्रतसंबन्धे ५८।१३५
सत्यं यदि मयि प्रेम ४२।७१
सत्यं ब्रूहि हितं साधो ! २४।१८
सत्यभामादिदेवीनां ४८।२१
सत्यभामागृहाभ्यर्ण- ४३।१
सत्यभामा त्वियं रूप ४२।२९
स त्वं पामरको विप्रः ४३।१२५
सत्वरं स ततो गत्वा ४४।२२
स ताडवींस्पष्टकृताट्टहासां ३५।६९
स तामुत्तीर्य संप्राप्तस् ३०।४३
स तां पप्रच्छ शङ्कावान् १९।४३
सत्या सुतार्थमानीतां ४८।१९
सत्यातिमुक्तकादेशं १।८९
सत्यां क्षित्यादि सामग्र्या १७।१२८
सत्येन श्रावितेनास्या १७।८१
सत्संख्याद्यनुयोगैश्च २।१०८
सत्रमध्ये व्यवस्थाप्य २५।२२
स तोषमपरेऽपि ते ३८।५३
स दक्षः शौर्यसम्पन्नः ५०।५७
स दक्षं दक्षनामानं १७।२
सदसदनेकमेकमथ नित्य- ४९।४८
सदसल्लक्षणस्यापि ५८।२०६
सदर्थमसदर्थं च ५८।१३०
सदपि दुरीहितं रहसिजं हि ४९।३६
सदवक्तव्यजीवज्ञो १०।५६
स दष्टोऽमोघमन्त्रेण २९।५०
सदःसागरसंक्षोभ- १७।९१
सदसि सभ्यकथामृत- ५५।२
स दध्यौ च स्वयंबुद्धो ९।५०
स दिव्यध्वनिना विश्व- २।९०
स दुर्जयवने लेभे ४७।४३
स दूतोऽजितसेनोऽपि ५०।३७
स दृष्टिमुष्टिसन्धान- ११।६
सदृगाजीवकानां च ६।१०४
स देवः सर्वदेवेन्द्र- ५९।३४
स देवकीमानसतापकारी ३५।३३
सद्गन्धाकृष्टसंभ्रान्त- ५९।५४
सद्गन्धस्य सुवृक्षस्य ४५।१३८
सद्गुणाच्छादनं निन्दा ५८।११३
सद्धर्मदेशना जैनी ३।१८०
सद्दृष्टिज्ञानचारित्र- ३।१०१
सदाप्तवचनादेव ३।१०३
सद्दृग्बोधक्रियोपाय- ३।६७
सद्रुद्रिलपुरे राजा १८।११२
सद्भावं दर्शयन्तीह ९।५२
सद्भावोत्पत्तिविद् वा १०।५७
सद्भूतस्यापि दोषस्य ४५।१५३
स द्यूतवेश्याव्यसनी १८।१००
सद्यो विद्याधरी वृन्दं २२।१३६
सद्योजातं पिता नद्यां ३३।२५
स द्रव्यक्षेत्रकालोक्त- ५८।२८९
स द्वाविंशत्यहोरात्रो ३४।४२
सद्वात्रिंशत्सहस्राणां ११।१३४
सद्वात्रिंशत्सहस्राः स्युर् ५७।४६
स द्वादशस्वथ गणेषु १६।६८
सद्वेद्यं चाप्यसद्वेद्यं ५६।९९
स धर्मो मानुषे देहे १८।५२
सनत्कुमारकौमार्यं ६०।५०३
सनत्कुमारकल्पे तु ६।८०
स नमिर्दक्षिणश्रेण्यां ९।१३२
स नवव्यञ्जनशते ९।१६
सन्नह्य ते नृपाः केचिद् ४५।१४०
स निषण्णमधीयानं १७।४९
सनीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ ५८।११४
स नीलयशसा शौरिर् २२।१५३
सन्तः सप्तसहस्राणि ६०।४०६
सन्तप्तं च स षण्मासान् ३३।७३
सन्तापहेतुरन्तःस्थो ८।१०१
सन्तानपारिजातादि ८।१८९
सन्ताने मेघनादस्य २५।३४
सन्ति संख्येयविस्तारा- ४।१६२
सन्ति चानन्तभेदास्ते १८।५५
सन्ति योधा यथास्माक- ५०।५२
सन्ध्याकारेऽन्तरद्वीपे ४५।११४
सन्ध्यारागानुसन्धाने १४।७५
सन्ध्यारागेण चच्छन्नं १४।७३
सन्ध्यारागाङ्गरागाढ्यं ८।६५
सन्दग्धानयने काश्चित् ८।४८
सन्नासिकातिमध्यस्था ८।२२
सन्निद्रानिद्राप्रचला ५६।९१
सन्मानितयथायोग- ३२।४२
सपञ्चनवतिर्लक्षाः १०।१४३
सपञ्चाशत्सहस्रास्ता १२।७८
स पञ्चाग्नितपः कुर्वन् २७।१२०
स पञ्चकल्याणमहामहेश्वरः ६६।१८
सपदि मुक्तजलाम्बरपीलने ५५।५८
स पद्मसेनो गुणपद्म- ६६।२७
सपद्मरागोज्ज्वलवज्र- ३७।२०
स पर्युपासनाहेतो- ३३।७२
सपुत्रनप्तृकः क्षेमी ५३।८
सपुत्रानमितानेक- २।८६
सपौरान्तःपुरो राज ५४।४६
सप्तपर्णपुरं पूर्व- ५।४२७
सप्ततिश्च सहस्राणि ४।१६७
सप्तत्रिंशदतो लक्षा ४।१७९
सप्तत्रिंशत्सहस्राणि ५।५८
सप्तत्रिंशद् भवेन्मूले ५।३०३
सप्तप्रकृतिमिश्रेण ३।९४
सप्तकृत्वः कृतान्ताभः २५।१५
सप्रलम्बजटाभार- ९।२०४
सप्तविंशति लक्षाः स ४।१९०
सप्तविंशतिचापानि ४।३२३
सप्तजीवादितत्त्वानि १०।५२
सप्तमस्य च षष्ठस्य १९।२५२
सप्तशत्या सहस्रे द्वे ५।५५४
सप्नमस्तु सुतो देव्या ३३।१४४
सप्तमेऽपि च वारेऽहं २१।१४९
सप्तम्यामप्रतिष्ठाने ४।२२४
सप्तसु श्रुतवार्त्तासु ३३।१२७
सप्तमीस्थनिगोदोत्थाः ४।३६१
सप्तषष्टिसहस्रार्द्ध- ५।५२१
सप्तषष्टिशतान्यस्याः ५।६२
सप्ततिर्मोहनीयस्य ५८।२८५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सप्तमीतो विनिर्यातः ४।३७८
सप्तप्राणप्रमाणं तु २२।३०
सप्तसु प्रतिबोद्धव्यः ४।३४०
सप्तपर्णसुरभेः ६३।६०
सप्तभिः पञ्चभिः पूज्या १८।११९
सप्तम्युद्वर्तितो यायात् ४।३७५
सप्ताप्याराध्य माहेन्द्रे ३३।१४०
सप्तानीकमहामेदाः २।२८
सप्ताहश्चैव पक्षः स्यान् ४।३७१
सप्ताप्कायिकजीवानां १८।६५
सप्ताहान्ताविरोमाग्रै- ७।४८
सप्तम्यामेव संप्राप्तः ६०।२५८
सप्ताहोरात्रवर्षेण ४३।११८
सप्रकीर्णकनक्षत्र- २।८४
सप्रज्ञप्तिमहाविद्या ४३।९७
सप्रदक्षिणमागत्य ८।१५६
सप्रणाममिति प्रोक्तो ४३।२४३
सप्रणामस्ततो दृष्ट्वा ४७।४८
स प्राहानन्दभेर्या त्वं ४८।२९
सप्तान्तेष्वेकपूर्वेषु ३४।५७
स प्राच्यानां प्रतीच्याना- ५०।३३
स प्राह भरतेऽत्रैव २७।६१
स प्राहैवमिहैवाभूत् २७।१७
सबालभावात्सुकुमारभावस् ३५।६५
स बुभुजे भुजदण्डवशीकृत- १५।५६
स भानुः काञ्चनरथो ५२।३१
स भुक्तसुरसौख्यस्ते १८।१७५
स भुक्त्वामानया कामं २७।१०३
स भूतरमणाटव्या- २७।११९
स भ्रात्रा वार्यमाणोऽपि ३३।१५९
समगुणात्परिणामविशेषतः १५।१३
समं च चतुरस्रं च ८।१७५
समपादौ पुरः स्थित्वा २२।२४
समस्तव्यस्तरूपास्तु ५८।१९८
समस्ततोऽश्रान्तमदाम्बु- ३७।६
समस्तं वाङ्मनोयोगं ५६।७०
समस्तसामन्तकृतानुयान- ५४।७२
समस्तयदुपत्नीनां ४१।५१
समस्तरसपुष्टिकं ३८।२८
समस्तशास्त्रसन्दर्भं १७।७७
समस्तयदुनाशाय ४०।२
समस्तबलसंयुक्तौ ५३।२९
समस्ततेजस्विजनस्य ३७।३३
समयावलिकोच्छ्वास- ७।१६
समन्दरार्योऽपि च ६६।२६
समवसरणभूमौ ५७।१८३
समन्ततः शिवस्थानाद् ५८।८
समयनीतयथोचितवाहना ५५।३४
समवादि समापादि ५७।१
समवतारमिनोऽङ्गिकृ- ५५।१२४
समविशत्समदेभगति- ५५।२
समग्रबलयुक्तास्ते ५३।१२
समर्प्य ताभ्यामरहस्यभेदं २५।२९
समर्प्य वसुदेवं च १८।१७८
समर्प्य तं स्वविद्याया १९।११३
समाजः समतीतश्च १९।१२८
समातृभ्रातृकस्यास्य ४५।८१
स मातृपितृसेवाख्यं २१।१४६
समाधिगुप्तनामानं ६०।२९
समाधिगुप्तनामान्यः ६०।५६१
समागमश्च विज्ञातः २४।५७
समादिचतुरस्रोऽतो ५८।२५३
समानश्रुतिकाः शब्दाः १७।१२१
समागत्योपविष्टं तं ६०।१३०
समादायान्नपानं तौ ६२।१३
समारोप्य विमाने तां ३२।२४
समुद्रदत्तनामान- १८।१०५
समुद्रविजयः श्रुत्वा ४५।९१
समुद्रविजयाक्षोभ्य ५२।६३
समुद्रविजयो भूभृदष्टानां १९।२
समुद्रविजयाक्षोभ्य ४१।१४
समुद्रविजयोद्भूता- ४८।४३
समुद्रविजयाद्याश्च ५१।२७
समुद्रविजयस्त्वं चेत् ३१।११४
समुद्रविजयादेशात् ३१।१०१
समुद्रविजयो राजा ५०।७८
समुद्रवेलासु मनोहरासु ५४।७४
समुद्रा इव चत्वारस् ४५।५१
समुद्रयात्रया यातः २१।७९
समुद्रविजयं दृष्ट्वा ३२।४३
समुद्रविजयः शिवां १८।१८०
समुद्रविजयं प्राह ३१।९९
समुद्रविजयोऽक्षोभ्यः १८।१३
समुत्क्षिप्य शिलां स्वैर- ४३।५२
समुत्पादितकैवल्य- २३।४०
स मेरुर्मेरुनिष्कम्पः २७।१३८
समेत्य पत्यातिशय- ३७।५
सम्यक्कायकषायाणां ५८।१६०
सम्यक्त्वज्ञानचारित्र- ७।१०८
सम्यक्त्वविनयज्ञान- ३४।११४
सम्यक्त्वशुद्धिशुद्धे तु १८।१४९
सम्यक्त्वं च व्रतित्वं च ५८।११०
सम्यक्त्वं शीलसद्दानं २।१४०
सम्यक्त्वज्ञानचारित्र- १०।१५८
सम्यक्त्वस्थिरमूलस्य ३।१७५
सम्यग्दर्शनसद्रत्नं २।११५
सम्यक्त्वपरमानन्त- ३।७२
सम्यक्त्वंचापिमिथ्यात्वं ५८।२३१
सम्यक्त्वं वमतामन्तर् ३।९३
सम्यग्दर्शनसंशुद्धो ४७।६२
सम्यग्दर्शनसंशुद्धाः २।१३३
सम्यग्दर्शनमूलोऽयं १०।९
सम्यग्दर्शनसंशुद्धि २१।७
सम्यग्दर्शनशुद्धाया ६४।१४२
सम्यग्दर्शनमत्रेष्टं ५८।१९
सम्यग्दर्शनलाभस्य ३।१३८
सम्यग्ज्ञानादिवृद्धयादि ५८।१८५
सम्यग्दृष्टिः पुनः पात्रे ७।१२१
सम्यग्दृष्टिरशेषोऽपि १८।१४४
सयोगकेवली स्थान- ५६।१०६
स रक्षन् पितृमर्यादां ७।१४९
सरलः संवरोऽयोध्या- ६०।१८५
सरागसंयमश्रेष्ठा ३।१४९
स राजगृहनाथेन ६०।११३
स राजसुतया तया २९।७२
स रात्रौ गृहमागत्य ३३।११०
स रावणसमो भूत्वा १८।२३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सरित्तटेषु चोच्छ्रायस् ५।२३३
सर्पीभूयापि हन्तव्यो २९।३२
सर्वगुप्तस्त्रिगुप्त्याढ्यश् ६०।१६१
सर्वर्तुकुसुमामोद- २६।११
सर्वर्तुकुसुमाकीर्ण- ५।११४
सर्वर्तुकुसुमेनान्य- ५७।१६४
सर्वतोऽपि सुदुःप्रेक्ष्यां ११।९४
सर्वतोऽनन्तविस्तार- ४।१
सर्वतोभद्रसंज्ञोऽसौ ८।४
सर्वतोभद्रनामाय ३४।५५
सर्वतोऽथ नमन्तीषु २।१९
सर्वत्रैवात्र संख्येय- ६।८५
सर्वत्राङ्गुलमानादौ ५।३११
सर्वथा सर्वकल्याण- ८।९५
सर्ववर्णनिभैरश्वै- ५२।२३
सर्वज्ञवीतरागस्य ३।९
सर्वज्ञाः षट्सहस्राणि ६०।३९८
सर्वथा मम पुण्येन ४५।८९
सर्वप्रकारतः सिन्धुः ५।१५१
सर्वपूर्वधरस्येदं ५६।६४
सर्वमत्र जिनभाषितं ६३।६८
सर्वप्रत्यक्षमन्त्यं स्यात् १०।१५४
सर्वबन्धास्रवाणां हि ५६।७८
सर्वलोकमलोकं च ६।१३७
सर्वविद्यास्पदं कर्म ३।१५
सर्वस्वराणां प्रवरो १९।१९७
सर्वस्वराणां नाशस्तु १९।१९६
सर्वस्यास्यामनोज्ञस्य ५६।१२
सर्वस्यैव हि जीवस्य १०।१७
सर्वप्रीतिकरो यस्मात् ५८।२७०
सर्वरत्नमयैस्तुङ्गैर् ४१।२५
सर्वरत्नात्ममध्या सा ५।३७९
सर्वश्रीरिति भार्यास्य २७।६
सर्वश्रेणीविमानाना- ६।९१
सर्वसाधारणं नृणाम् २१।३४
सर्वस्वराणां संचार १९।२३३
सर्वात्मभूत इत्यन्यो ६०।५५९
सर्वार्थश्रीमतीजन्मा २।१३
सर्वार्थसिद्धा सिद्धार्था २२।७०
सर्वानुपदिदेशासौ ९।३४
सर्वाः पठितविद्यास्ताः २२।७३
सर्वाः परमकल्याण्यः २२।७२
सर्वायुधयुतं दिव्यं ४१।३५
सर्वा सर्वजनानन्दो ६०।१६०
सर्वासामेव शुद्धीनां १२।३१
सर्वान् संपूज्य संपूज्य ४३।१७३
सर्वेषामेव भावानां ७।५
सर्वेष्वात्मप्रदेशेष्व- ५८।२९६
सर्वेन्द्रकनिगोदास्ते ४।३५२
सर्वेषामादिभिक्षासु ६०।२४९
सर्वोदितमभात्प्राच्या- २२।१४०
सर्वो द्वारवतीलोको ५७।२
सललितमभितस्थौ ३६।३३
सल्लकीपल्लवोल्लासि १४।२३
सवज्रद्वारवंशश्च ५।४०६
स वज्रमुष्टये मङ्गीं २३।१०४
सवत्सधेनुध्वनयोऽतिधीरा ३५।५३
सविशेषमसौ तत्र १९।९६
सवाग्गुप्तिमनोगुप्ती ५८।११८
स विनिगृह्य चिरा- १५।४०
सविदिक् दिक्कुमारीणां ५।७२९
सविधियाचितभोजसुता ५५।७२
स विन्ध्यवनमध्यास्य ४७।८
सवीचारविवीचार ५६।५४
सशङ्खचक्रादिसुलक्षिता- ३५।२०
सशब्दमूत्राः सुखिनो २३।६७
स श्रीगौतमसंज्ञाकः १८।१०७
स श्रुत्वा तदवस्थां तां २२।१२२
स श्रेयान् ब्रह्मदत्तश्च ६०।२४५
स श्रेयानीक्षमाणस्तं ९।१८०
सषड्जो मध्यमश्चात्र १९।२६१
स षट्षष्टिसहस्राणां ५।३२४
स षोडशसहस्रैश्च ११।१३२
स संयमस्य वृद्ध्यर्थ- ५८।१५८
स सिद्धसेनोभयभीम- ६६।२९
ससिद्धप्रतिमाशोकः ५७।२९
सस्त्रीकः स्त्रीकृताकारः ५४।५०
सस्त्रीकाः खेचरा याता २६।२
सस्थावरातपोद्योत- ५६।९२
सस्मार स्वभवान् सर्वान् ६०।९६
सह दशार्हचक्रेण ५२।८२
सहदेव इति ख्यातो ५२।३०
सह प्रदक्षिणीकृत्य ५२।६६
सह समाभिनयोद्ध्वमुखो ५४।१०
सह ज्ञानत्रयेणात्र ८।२०७
सहस्रगुणितोदिता ३८।२९
सहस्रभागमाजीव्य ७।१५२
सहस्रयोजनव्यासौ ५।४९५
सहस्रमवगाहश्च ५।४५६
सहस्रयोजनव्यासं, ५।७०१
सहस्रमवगाहः स्याद् ५।७००
सहस्रयोजनायामः ५।१२६
सहस्रमवगाहोऽस्य ५।६८७
सहस्रमवगाढास्तु ५।६७०
सहस्रपत्रसच्छन्नाः ५।६५६
सहस्रयोजनं पद्मं १८।७५
सहस्रयोजनो मत्स्यः १८।७७
सहस्रमवगाहोऽस्य ५।२८५
सहस्रगुणिता सा तु ६०।३५४
सहस्रगुणिता द्वीपे ५।७
सहस्रमवगाढां च ५।५१४
सहस्रवर्षं वृषभो ९।२०३
सहस्रमेकमष्टौ च ५।४४
सहस्रद्वितयं तेषां ५।२५३
सहस्रसिक्थः कबलो ११।१२५
सहस्रद्वितयं चातो ६०।४६५
सहस्रं विस्तृतिस्त्रेधा ५।६८८
सहस्रं पञ्चशत्येक- ५।४९
सहस्राणि च पञ्चाशत् ५।४३३
सहस्राणि द्विषष्टिं च ५।२९५
सहस्राणि त्रयस्त्रिंशत् ५।१७१
सहस्राणि चतुःशत्या ६०।३८९
सहस्राणि नव द्वे तु ५।६९
सहस्राणि तु चत्वारि ५।६३
सहस्राणि दशामीषां ५।३५
सहस्राणि पुनस्त्रिंशत् ५।२१५
सहस्राणि तु पञ्चाशत् ६।३१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सहस्राणि नव श्रेणी ४।१६०
सहस्राणि नवान्यानि ५।७८
सहस्राणि षडेवास्यां ४।२४६
सहस्राणि च चत्वारि ४।२४२
सहस्राणि च षट्षष्ट्यां ४।२४४
सहस्राणि तु चत्वारि ४।२४०
सहस्राणि च चत्वारि १२।७२
सहस्राणि नवाधीता १२।७४
सहस्राण्येकपञ्चाशत् ६०।४४९
सहस्राण्यभियुक्तानि ६०।३७६
सहस्रारं हसद्दीप्त्या ३।२९
सहस्रारात्तु विमल- ६०।१६७
सहस्राक्षसहस्राक्षि ५९।९
सहस्रार्धं च गत्वोर्ध्वं ५।५१८
सहस्राम्रवनाद्येषु ६०।२२०
सहस्रैः षट् च शत्यात्मा ६०।४१७
सहस्रैः पञ्चविंशत्या १०।६५
सहस्रैः सप्तभिः सत्रा १८।९३
सहस्रैर्विमलः षड्भिः ६०।२८४
स हन्ता जामदग्न्यस्य २५।१४
सहसा दुःप्रमृष्टाना- ५८।८८
सहसा कन्ययादर्शि ४४।१०
सहायं मां परिप्राप्य २३।१३६
सहायैः सहजैः स्वच्छैः ९।७
स हास्तिनपुराधीशः १२।१०
स हि सुमित्र इति श्रुत- १५।६२
स हि मुष्णन् सह- १८।१०१
सहेन्दुना बन्धुरयाग्र- १४।१०६
सहैव रुचकप्रभा ३८।३७
स ह्रस्वोच्चारणवतीः ५६।११०
संकथाभिर्विचित्राभिर् ४७।८४
संकथाक्रोशगीताट्ट- ५९।१७
संकर्षणस्य हत्वेच्छां ४७।११२
संक्रीडमानमेकान्ते ४२।१७
संक्लेशेच्छानिरोधस्य ३४।११५
संक्षोभं मनसो विष्णो २०।५७
संख्येयद्वीपपर्यन्तो ५।३९७
संख्येयव्यासयुक्तानां ४।३५३
संग्रहाक्षिप्तसत्तादेर् ५८।४५
संघट्टः पुरनारीणां १९।११
संघटोद्घटितसंमुखो ६३।१२
संघट्टोऽभूत्पुरद्वारे ६२।१०
संघाटे द्वादशोत्सेधो ४।३११
संघातपञ्चकं चापि ५६।१००
संजगौ च शयितो ६३।१७
संज्ञया दर्शयत्ताभ्या- ६१।६६
संन्यस्तवपुराहारः १८।१७२
संपतद्भिरभितः वि- ६३।५
संपदत्र करिकर्ण- ६३।७०
संपरायाः कषायास्तु ६४।१८
संपृष्टः कामदेवेन ४७।८६
संपृष्टस्तेन भोः कस्त्वं २१।८८
संभवः पद्मभासश्च ६०।२७७
संभ्रमेण परिप्राप्तौ ६१।५९
संमूर्च्छनजसत्त्वानां १८।७८
संयतासंयतोऽन्वर्थः ३।८१
संयतासंयता ये च ३।१४८
संयतासंयतान्तेषु ३।८५
संयमप्रतिपत्तिर्वा ६१।२१
संयमादिकसद्ध्यान- ६४।२१
संयमादिभिरष्टाभि- ६४।६५
संयमाधिक एकस्य ६०।५४४
संयमस्थानभेदास्तु ६४।८०
संयमस्य सहस्रे द्वे ६०।३६६
संयमे च यथाख्याते ६४।६७
संयोगाश्च वियोगाश्च ४३।८६
संयोज्य हरिणा कन्या ४२।४०
संरक्ततालुजिह्वाग्र- ८।२०
संविधानकमाकर्ण्य २९।४
संवर्द्धितः शिशू राजत् ३३।१७
संवादो मध्यमग्रामे १९।१५५
संविभज्य मनोदुःखं १४।५७
संसर्पन्नुरसा जातस् ४७।१२३
संसारहेतवः प्रायस् ५६।३९
संसारस्थितिविच्चक्री १३।३०
संसारभीरुरासाद्य ६१।३
संसारतरणं तीर्थं १०।२
संसारभीरवः शुद्ध- २।१३२
संसारान्तकरं पुंसा- ६१।१०४
संसारोत्साचलस्थान- १९।२०२
संसारे भ्रमतो जन्तोः ५८।२९४
संस्थाननाम षट्कं च ५६।१०१
संस्थाप्य त्रिबुधानीत २।४२
संस्थाप्य सहदेवं स ५३।४४
संस्थाप्य पाण्डुकशिला १६।१७
संहर्ति नृपसिंहोऽसौ १८।२७
संहृताति बहुरोदनैस् ६३।५२
साकमंशुमता यातो २४।३१
साकारमन्त्रभेदोऽसौ ५८।१६९
सा कुमारी दिवश्च्युत्वा- ६४।१३९
साकेता सिंहसेनश्च ६०।१९५
साकेते रत्नवीर्यस्य १८।९७
साक्षाच्चकार युगपत्स- १६।६५
साक्षादभ्युदयोपायः १८।५१
सागरत्रयमेवैषा ४।२७०
सागराम्बुहलाकृष्टं ६१।८१
सागराश्चानगारश्च ५८।१३६
सागारो रागभावस्थो ५८।१३७
सा चानुमतिका नाम्ना ४६।५७
सा चुक्षोभ सभा- १९।१३३
साञ्जलिः प्रणनामासौ ४२।४२
सा जगाद ततो रुष्टा १९।४२
सा तं षोडशसुस्वप्न- २।२१
सा तं पितृसमं दृष्ट्वा ४३।८२
सातासातविकल्पस्य ३।६९
सातिरेकावरा सैव ४।२५९
सातिवल्लभिका तस्य ३३।१०५
साऽतोऽचिन्तयदत्यन्त- ४७।११४
सात्यकिः प्राह सत्यं भोः ४३।११३
सा त्रयोदशपल्यायु- ६०।५२
सादर्शयच्च पत्येऽङ्गं ४७।६८
साधयन्ती महाविद्यां २६।५१
साधारणमनेकेषा- ५८।२६८
साधिते भारते वास्ये ११।५८
साधिकैका दशांशाभ्याम् ५।३१४
साधिका तु परे चासा- ४।२५०
साधिकैकान्नपञ्चाशद् ५।५८६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधुसाधितकायां सा ३०।२६
साधुकारो मुहुर्दत्तस् १७।१४७
साधुरस्यति काव्यस्य १।४३
साधुदर्शनतः शान्तः ४६।५०
साधुदर्शनयोगेन २७।१०५
साधु संसाध्य युक्तेन ११।८८
साधुदानानुमोदेन १२।२०
साधु पृष्टं त्वया पूज्ये ! ४५।७९
साधुप्रकृतयः केचित् ३१।६०
साधु नाथ यथाख्यातं ९।६५
साधुना वधिरेणैव ४६।४४
साधुनावधिनेत्रेण ४३।११०
साधोः शीतलशीलस्य २०।३७
साध्वसाधुसमाकार- १।४८
साध्वी साध्वी सुधीणेयं १९।१३८
सार्द्धहस्तत्रयं पूर्वं ६।१३४
सानत्कुमारमाहेन्द्र ३।१६३
सानन्दा साकुलाक्षी तं ४७।११६
सा निवृत्तिकरी षष्ठी ६०।२२२
सा निशम्य हतास्मीति १७।७५
सानुधर्या महेन्द्रस्य ६०।८१
सानुज्ञाता करेणास्य २२।१३३
सानुरक्तां त्रपायुक्तां ४२।७४
सानुत्सेकतनुक्रोध- ५८।१०६
सान्तःपुरेण कर्णेन ५०।९१
सान्तःपुरान् स्वसाम- ४३।१७२
सान्त्वयित्वाश्रुसंधौत- ४३।७३
सान्ध्यरागपटलेन ६३।३२
सापराधतया यूयं ५०।४३
सापायमत्र वित्रास- २२।१८
सापि तस्मै यथावृत्त- ४७।५९
सापि दर्शनतस्तस्य १४।४१
सा पारिग्राहिकी ज्ञेया ५८।८०
सा प्रणम्याभणीत्सौम्य २४।६९
सा प्रणम्य वरं वव्रे १९।७८
सा प्रासानुमतिः प्रीता ३०।१८
साभिज्ञानमभिज्ञोऽसौ ३०।१७
साभिमानमुदस्यान्तं २९।१७
सामग्रीकृतकायस्य १०।१०२
सामश्चोपप्रदानस्य ५०।१८
सामायिकं त्रिसन्ध्यं तु १८।४७
सामायिकं यथार्थाख्यं २।१०२
सामायिकं करोमीति २२।२८
सामुद्रिकोऽन्यदाद्राक्षीत् २३।११२
सामुद्रिकवचः श्रुत्वा २३।१२०
सा संप्रज्वलिते हीना ४।२७८
साम्येनैव ततो वर्षे ५०।६४
सा योषिद्गुणमञ्जूषा २३।४८
सा यक्षगृहपूजार्थ- ६०।६४
सारणेन कुमारेण ५२।४४
सारमेयीं पुरेऽत्रैव ४३।१५६
सार्धं मासमिह स्थित्वा ४५।११३
सार्धाः षष्ठ्यां त्रयः ४।२२३
सार्वत्वमभयाधान- ५७।१६५
सार्धौ द्वाविन्द्रकेष्वेतौ ४।२२१
सालङ्कारं परित्यक्तं ९।११९
सावद्ययोगविरहं ३४।१४३
सावधाने स्थिते धर्म- १८।३४
सावधानसभान्तस्थं ५८।१६
सावधिः षट्सहस्राणि ६०।३९५
सा वसन्तोत्सवे रन्तुं ३३।१०७
सावष्टम्भभुजस्तम्भैः ८।७०
सा विभङ्गनदी वृद्धिः ५।५५३
सा व्यालस्याद्धि शास्त्रो- ५८।७८
सा शिला योजनोच्छ्राय- ५३।३५
साशीतिकं शतं दिक्षु ४।९३
साशीतिपदलक्षैक- १०।११०
साश्रुलोचनयाजस्र- ३०।१५
साष्टषष्टिशतं दिक्षु ४।९६
साष्टत्रिंशत्सहस्राणि ५।५९
साष्टभागं त्रिकं चाग्रे ५।३९९
साष्टावेव मुहूर्ताः स्यात् ५८।२८७
सा सहस्रारकल्पस्य ६०।१२०
सा सप्तदशतन्त्रीकां १९।७७
सा स्वपापोदयात्साधौ ६४।११
सास्य निर्बन्धतो वाचा ३३।८७
सासूत सूतिसमयेन्द्र- १६।१२
सा सेना सर्वतः सर्वा ५७।१७९
सास्यै मुग्धावदत्तस्य २९।१६
साह विष्णुकुमारस्य १९।१४०
सा ह्यार्तेन खरी भूत्वा ६०।३१
सिताख्यां विजयः ख्यातां १९।४
सितेन तापसेनान्ते ४६।५४
सिद्धविद्यः प्रणम्यासौ २४।८१
सिद्धविद्या प्रसिद्धासौ ३४।१९
सिद्धशब्दार्थसंबन्धे १७।१०२
सिद्धः सिद्धेतरश्च द्वौ ३।६६
सिद्धं विद्युत्प्रभाभिख्यं ५।२२२
सिद्धं ध्रौव्यव्ययोत्पाद- १।१
सिद्धं सौमनसाभिख्यं ५।२२१
सिद्धाः षष्टिसहस्राणि ६०।४४३
सिद्धाः शुद्धाः प्रबुद्धार्थाः ६।१३८
सिद्धायतनकूटं प्राक् ५।५३
सिद्धायतनकूटं प्राक् ५।२६
सिद्धायतनकूटे च ५।३०
सिद्धायतनकूटं स्यात् ५।११०
सिद्धायतनकूटं स्यात् ५।७१
सिद्धायतनकूटं स्यात् ५।२१७
सिद्धायतनकूटं च ५।८८
सिद्धार्थप्रियकारिण्योः २।४४
सिद्धार्थसारथिभ्राता ३१।४१
सिद्धायतनकूटेषु ५।२२५
सिद्धादेशस्य सत्साधो २३।८
सिद्धानां तु परं स्थानं ६।१२६
सिद्धाख्यं माल्यवत्कूटं ५।२१९
सिद्धार्थपादपाः सन्ति ५७।७०
सिद्धार्थः सुप्रतिष्ठोऽह- ६०।१५५
सिद्धिः प्रत्येकबुद्धानां ६४।९७
सिद्धिरव्यपदेशेन ६४।९६
सिद्धिक्षेत्रेऽमला सिद्धि ६४।८८
सिद्धस्तूपाः प्रकाशन्ते ५७।१०३
सिद्धिसीमन्तकत्वाख्यं १०।३२
सिद्धिर्ज्ञानविशेषैरै- ६४।९८
सिद्धिः सिद्धिगतौ ज्ञेया ६४।९३
सिद्धयन्निहैव संसिद्ध- ५६।८०
सिन्दूरः श्यामको द्वीपस् ५।६२३
सिन्धुकक्षं महाकक्ष २२।९७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिन्धुदेव्यभिषिच्यैनं ११।४०
सिन्धुदेशाधिपो मेरु- ४४।३३
सिंहसेनो मृतो जातः २७।५३
सिंहचन्द्रमुनिः सम्यगा- २७।७६
सिंहविद्यारथं दिव्यं ५१।९
सिंहदंष्ट्रात्मजां दृष्ट्वा ३२।२५
सिंहविक्रीडितं कृत्वा ६०।१५७
सिंहसेनो महाराजो २७।२७
सिंहहंसगजाम्भोज- ५।३६९
सिंहासनं सुरेन्द्रस्य ५।३३८
सिंहासनस्थमाशीभिर् १७।८९
सिंहासनं नरेन्द्रौघैर् ३।३७
सिंही व्याघ्री च किं १९।१०७
सीताकूटं चतुर्थं स्यात् ५।१००
सीतोदाकूटमन्यत्तु ५।२२३
सीतोदापि गिरिं गत्वा ५।१५७
सीतोत्तरतटे कूटं ५।२०५
सीमन्तकस्य विस्तारो ४।१७१
सीमन्तके चतुर्दिक्षु ४।८६
सीमन्तकेन्द्रकस्यामी ४।१५२
सीमन्तको मतः पूर्वो ४।७६
सीमन्धरजिनेन्द्रेण ४३।२२४
सीरिणाक्षतजगन्धतः ६३।११
सीरिणा स गदितम् ६३।६३
सीरिरक्षणमुक्तस्य १।१२०
सीतोदापूर्वतीरे तु ५।२०६
सुकण्ठगोपालकलोपगीतं ३५।५०
सुक्षेत्रे विधिवत्क्षिप्तं ७।१११
सुकिंपुरुषकिन्नरा ३८।१८
सुकुमारः सुतस्तस्य ४५।१७
सुकुमारैः कुमारैस्तैर- ११।६३
सुकृष्णनीलकापोत- ५६।२६
सुकृष्णशिखराः शैलास् ५।६५४
सुखदुःखरसोन्मिश्र- १२।१७
सुखनिद्राप्रसुप्तोऽसौ ३०।२
सुखमृत्युः श्रुतेः पुंसां ७।१०५
सुखं कृतक्रीडझषद्वये ३७।३४
सुखं देवनिकायेषु १०।५
सुखं वा यदि वा दुःखं ६२।५१
सुखासि कापि नैकान्तान् १७।१३८
सुगतगताममूं परमका- ४९।३४
सुगन्धसर्वगन्धाख्या ५।६४६
सुगन्धिमुखनिश्वासस् ४२।७६
सुगन्धिवायुभिः सार्ध- ५२।६८
सुग्रीव इत्यनुग्राही १९।५४
सुग्रीवश्च यशोग्रीव १९।२६९
सुग्रीवेण सतोषेण १९।५८
सुगौतमायुष्यपुराण- ६६।१२
सुघनाङ्गुलयोऽर्धाढ्या २३।९४
सुघने जघने तस्या १४।३४
सुघोषाख्यां ततो वीणां १९।१३७
सुचन्द्रो बालचन्द्रश्च ६०।५६९
सुतयाकम्पनस्यासा १२।३३
सुता चेटकराजस्य २।७०
सुतागमनवेलैतैर् ४३।२३७
सुताभूद्देवसेनायां ६०।६३
सुतासीत्पुष्कलावत्यां ६०।४३
सुतास्तु पाण्डोर्हरिचन्द्र- ५४।७३
सुतो नरपतिस्तस्मात् १८।७
सुतोऽभवच्चन्द्र इव ६६।४
सुतो हिमगिरिस्तस्यां ४४।४६
सुतैर्दशभिरन्योऽन्य- १७।६०
सुतौ गगनसुन्दर्यां ३४।३५
सुत्रामाद्यैश्च संप्राप्तैश्च् ९।७२
सुदर्शनममोघं च ६।५२
सुदर्शना तु शिविका ६०।२२१
सुदर्शनायिकापार्श्वे १८।११७
सुनन्दगोपेन यशोदया च ३५।४६
सुनन्दा बाहुबलिनं ९।२२
सुनन्दासूनवे दत्त्वा ३४।४७
सुनिमित्तविसंवादो ३१।१०७
सुनीलघनकेशासौ ९।८४
सुन्दरश्च विशालश्च ५।६९४
सुपद्मः पद्मदेवश्च ४५।२५
सुपात्रे सुफलं दानं ७।११९
सुपार्श्वश्च जिनेन्द्रोऽस्मात् १३।३२
सुपार्श्वनामधेयोऽन्यश ६०।१३९
सुपार्श्वेशोऽनुराधायां ६०।२०७
सुपीतवासोयुगलं वसानं ३५।५५
सुपूर्णकुम्भद्वयदर्शनात् ३७।३५
सुपृष्टमुत्सृष्टमुदात्त- ६६।४९
सुप्रतिष्ठं प्रतिष्ठाय ३४।४४
सुप्रतिष्ठं प्रणम्येयुस् १८।१७७
सुप्रतिष्ठितमाकाश- ५६।४८
सुप्त एव विषमेषुणा ६३।१५
सुप्त एव सुखनिद्रया ६३।९
सुप्तमात्रमपशस्त्र- ६३।१८
सुप्रतिध्वनिविक्षिप्त- ८।६०
सुप्रभे तु महापद्मो ५।६९२
सुप्रसन्नं भ्रमज्ज्वालं ८।७४
सुबन्धूकाधरच्छायां २२।१०
सुभगाः स्युरनुद्धूतैश् २३।७८
सुभद्रः सागरो भद्रो १३।९
सुभद्रोऽतो यशोभद्रो १।६५
सुभानुरर्ककीर्तिश्च ३३।९७
सुभूमश्च महापद्मो ६०।२८७
सुभृतभारतभूरिगिरिशते १५।२१
सुभृतमाचरणं शरणं भ-४५।१५९
सुभौमस्य सहस्राणि ६०।५०८
सुभौमे वर्धमाने तु २५।१७
सुमतिः श्रावणस्यासीद् ६०।१७१
सुमतेर्द्वे सहस्रे तु ६०।३७५
सुमत्यादिचतुर्णां च ६०।१४८
सुमनः सौमनस्यं च ६।५३
सुमन्दरगुरोः पार्श्वे १८।११६
सुमित्रस्तापसस्तत्र ४२।१५
सुमित्रदत्तिका तस्य २७।४५
सुमित्राख्या प्रियास्यासौ ६०।७६
सुमुग्धमुखकोशकै- ३८।२४
सुमुखराजकृतं च पराभवं १५।४४
सुमुखमुख्यवधूजनमुख्यतां १५।५
सुमृदुसुरभिगन्ध्युद् ३६।२८
सुमृदुनापि तदा मृदुनि ५५।१८
सुरं वरतनुं तत्र ११।१३
सुरत्नसिंहासनदर्शनेन ३७।३८
सुरत्नहेमकेयूर- ८।१८०
सुरत्नपरिणामानि ५।११७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुरत्नासनमध्यस्था ५७।६१
सुरवधूनिवहादिपरिग्रहः १५।४२
सुरवधूवरसुन्दरकन्दरे १५।३५
सुरभिपुष्परजःसुरभौ ५५।३५
सुरभिगन्धशुभाक्षत- १५।१२
सुरभीणां घटोघ्नीनां ९।३०
सुरासुरनराधीश २।४७
सुराणामसुराणाञ्च ८।१४९
सुराष्ट्रमत्स्यलाटोरु- ५९।११०
सुरूपमिन्दीवरवर्णशोभं ३५।३६
सुरेन्द्रवर्धनः खेन्द्रः ४५।१२६
सुरेन्द्रदत्तनाम्नाहं २१।७८
सुरेभवदनत्रिके ३८।४३
सुलसायाज्ञवल्क्यौ तौ २१।१३८
सुलसा जल्पकालेऽस्य २१।१३५
सुलसापहृतिं ध्यात्वा २३।१२८
सुलसां च परित्यज्य २३।१०९
सुलसे ! शृणु वत्से मे २३।५१
सुवर्णवरनामातो ५।६२४
सुवर्णकर्णिकारोरु ८।२३०
सुवर्णकूलया रक्ता ५।१३५
सुवर्णरिक्षया चार्य्या २।३५
सुवर्णद्वीपमाविष्य- २१।१०१
सुवर्णमणिरत्नरौप्य ३८।५१
सुवर्णकर्णाभरणोज्ज्व- ३५।५६
सुवशस्तु मनोहस्ती ४३।१९६
सुवसोस्त्वभवत्सूनुः १८।१७
सुविधिर्मार्गशीर्षस्य ६०।१७३
सुविशालश्च वज्रश्च १२।६७
सुवीरादित्यनागाख्यौ ५२।३२
सुवृत्तदीर्घसंचारि २।३७
सुव्यवस्थाप्य चम्पाया- २१।१७४
सुशाल्मलीखण्डसुमण्ड- ३५।७०
सुशास्त्रदानेन वदान्यता- ६६।३२
सुश्रृङ्गमुत्तुङ्ग- ३७।७
सुश्लिष्टपदजङ्घोद्य ९।१०
सुषमासुषमाद्या स्यात् ७।५८
सुष्ठुकारे प्रयुक्तेऽस्याः २१।४५
सुसीमा तनया भूत्वा ६०।७२
सुसीमा कुण्डलाभिख्या ५।२५९
सुसूक्ष्मत्वादवध्योऽय- १७।१३९
सुस्थिता प्रणिधान्यासु ८।१०८
सुस्नातोऽलङ्कृतोभूत्या २२।१५०
सुस्वप्नदर्शनानन्दं ८।७६
सुसौरभाम्भोभरकुम्भ- ३७।१४
सुहरिविष्टरवर्तितमीश्वरं ५५।१०६
सूचिरभ्यन्तरा पञ्च ५।४९०
सूचिनाटकसूच्यग्रे २१।४४
सूतकस्येव संघातः ४।३६४
सूदेन कुपितेनासौ ३३।१५४
सूनवो विनमेर्युक्ताः २२।१०३
सूनुर्मदनवेगाया ५०।११६
सूनुं विजयसेनाया १९।५९
सूनुं सीमङ्करं नाम्ना ७।१५४
सूनुनांशुमतात्यन्तं ३१।३०
सूनुर्जरत्कुमारोऽस्मि ६२।३८
सूनोः क्षीरकदम्बस्य २३।१३५
सूपकारो मृतः प्राप ३३।१५६
सूयन्ते यत्र राजानः २३।१४२
सूरसेनमहाराष्ट्र- ३३।३१
सूर्यं चक्षुर्दिशं श्रोत्रं १७।११०
सूर्यप्रभसुरश्च्युत्वा २७।७७
सूर्यकान्तकरासंगात् २।८
सूर्यश्च चन्द्रवर्मा च ४८।७१
सूर्याचरणविख्याति ५।३७६
सूर्याचन्द्रमसस्तेषां ६।२४
सूर्याचन्द्रमसामगोचर- ४।३८४
सूर्याभो विभुरस्यासा- ३४।१६
सूर्याश्चन्द्राश्च तत्रस्था ६।७
सूर्याकारौ सिरानद्धौ २३।६१
सूरिः सीमन्धराभिख्यः ६०।१५९
सेति पृष्टा जगौ हेतुम् ६४।१२४
सेत्युक्त्यानुज्ञया मुक्ता २२।१२४
सेत्युक्ते त्यक्तसंशीति ६०।५५
सेनापतिरयोध्यश्च ११।२३
सेनानां नायकं शूर- ५१।१२
सेनानीः परसेनान्या ५१।२३
सेनानीः परिघं शक्तिं ५२।६२
सेन्द्राः सुरास्तदागत्य ९।४१
सेयं त्वा नासितो २२।१३१
सेव्यमानः सुरैरीशः ९।९२
सैकस्त्रिंशत्सहस्राणि ५।२८८
सैकास्त्रिंशत्सहस्राणि ५।२८६
सैकादशगणाधीशस् ३।५०
सैषैवाद्या विघाटेऽपि ४।२६३
सोऽगो नागपुरं सूर्यः ६०।१९८
सोऽङ्गलग्नमनपाय- ६३।९८
सोऽर्चनीयोऽभिगम्यश्च ५६।६८
सोऽटन् यदृच्छयाद्राक्षीत् २६।४७
सोऽथ नीलाञ्जसां दृष्ट्वा ९।४७
सोद्दण्डपुण्डरीकौघं ८।६८
सोद्यानभूमयश्चित्राः ७।८२
सोऽध्वा द्विगुणितो रज्जुस् ७।५२
सोऽन्यदा मुनिमप्राक्षी- २५।३८
सोऽन्तर्मुहूर्तशेषायु- ५६।७२
सोऽन्तरेण तु हली ६३।६६
सोपचारं नृपं दृष्ट्वा २९।५२
सोपवासव्रतश्रान्तः २७।६७
सोऽपि सूक्ष्मनिगोदस्या १०।१६
सोऽपि विश्रम्भदूरास्त १४।१००
सोऽपि मृत्वा सुतस्यैव ४३।१२३
सोऽपि ज्ञात्वानुजं प्राप्तो ६२।४३
सोऽपि लब्धाभिमानेऽसौ १८।३
सोऽप्यविज्ञातवृत्तान्तो २३।४०
सोपासिता नवनवत्युप- १६।४
सोऽब्रवीच्चारुदत्ताख्यः १९।१२२
सोऽभवद्रामदत्तायाः २७।४६
सोऽभिनन्दिततद्वाच्यः ३१।११०
सोमदत्तसुतायास्तु ४८।६०
सोमदत्तो महादत्तः ४०।२४६
सोमिनी भामिनी तस्य ४५।१०१
सोमप्रभस्य देवीभिर् ९।१७९
सोमशर्मा सुतात्याग- ६१।६
सोमश्रीबन्धुभिस्तत्र ३०।४०
सोमश्रीर्निशि हर्म्यस्था २४।५३
सोऽयं वर्षशतेऽतीते ३१।१२७
सोऽयं द्वैपायनो योगी ६१।५४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोऽयं यक्षलिको नाम्ना ३३।१६२
सोऽयोगकेवली ह्यात्मा ५६।७९
सोल्वावृष्टत्रिगर्ताश्च ११।६५
सोऽवतीर्य विमानाग्राद् ३२।४०
सोऽवरोधनराजीव १४।१०
सोऽवगाह्य हरिद्दूत- ६३।४७
सोऽवोचद्दक्षिणश्रेण्या ४४।४
सोऽवोचद्वसुदेवोऽत्र २३।२९
सोऽवोचच्चारुदत्तस्य २१।१६८
सोऽहं नेमिजिनादेश- ६२।३९
सौगन्धिके ततोऽपाच्यां ५।६०३
सौदासोऽपि च तत् २४।१९
सौधर्मः प्रथमः कल्पः ६।३६
सौधर्मपूर्वविबुधाश्च १६।५४
सौधर्माधिपतेर्देव्या ६४।१२६
सौधर्माद्यैस्तदा देवैः २।६४
सौधर्माद्यैः सुरैरेत्य २।५०
सौधर्मादिषु देवेषु ३।६०
सौधर्मेन्द्रस्तदारूढो ८।१४२
सौधर्मेन्द्रस्य भोग्याद्या ५।६५९
सौधर्मेशानदेवानां ६।१०९
सौधर्मे च विमानानां ६।५५
सौधर्मेशानयोर्देवाः ४।६९
सौधर्मेशानयोरायुः ३।१५२
सौन्दर्येण सुखात्मानो ५७।१५८
सौभाग्यहृतचेतस्कं १९।१३
सौभाग्यरूपनवयौवन- १६।३५
सौभाग्यातिशयं सत्या- ४३।७
सौम्याग्नेयगुणा देव ५९।६६
सौराज्ये पाण्डुपुत्राणां ५४।३
सौरूप्यस्य पराकोटिः ९।१४९
सौर्पकाङ्गारवैगारि- २५।६३
सौलक्षण्यं च सौरूप्यं ४२।३६
सौवीरो हरिणाश्वा च १९।१६३
सृष्टषोडशतीर्थाय १।१८
स्तनकस्य तु विस्तारो ४।१८५
स्तनके नवदण्डास्तु ४।३०७
स्तनैरन्यस्त्रियाःक्लेशा- २१।१४३
स्तरकस्य त्रयस्त्रिंशत् ४।१८४
स्तरकेऽष्टौ धनूंषि द्वौ ४।३०६
स्तम्भितेन विमानेन ४३।४०
स्तरकः स्तनकश्चैव ४।७८
स्तवनपूर्वममी च ५५।१२८
स्तुवन्ति मङ्गलस्तोत्रैर् ५९।१९
स्तूपा द्वादशभूभूषा ५७।७१
स्तोकाः समुद्रसिद्धास्तु ६४।१०७
स्त्यानगृद्धिर्यास्त्यान ५८।२२९
स्त्रीणामाद्यं पारतन्त्र्यं ५५।१३५
स्त्रीवैरविषदग्धस्य २३।१२९
स्त्रीवक्त्रमनपत्यानां २३।१००
स्त्रीपुंनपुंसकैस्तिर्यग् १०।४२
स्त्रीपुंसलक्षणैः पूर्णा ७।९५
स्त्रीपुंसङ्गपरित्यागः २।१२०
स्त्रीपुंसपशुसंपाति ५८।७२
स्त्रीरत्नं प्रतिगृह्याभ्यां ११।५०
स्त्रीरत्नलाभतुष्टेन २५।३१
स्त्रीरागकथाश्रुत्या ५८।१२१
स्त्रीलक्षणवती लक्ष्मी ४२।५१
स्थण्डिले निशि दिवा ६३।९५
स्थानमेकमतस्तूर्ध्वं ६४।८६
स्थानक्रमास्त्रिकं द्वे च ५।५५५
स्थानान्यतोऽकषायाणि ६४।८५
स्थानेषु नियमेनोर्ध्वं ३।१००
स्थावरत्रसकायेषु १८।५३
स्थावरे त्रसकुले ६३।९०
स्थित प्रति मया रात्रौ २०।११
स्थितं सिंहबलं दुर्गे २०।१७
स्थिताः कालमहाकाल- ४।१५८
स्थितो रङ्गविभागेऽत्र २२।१२
स्थिता द्वीपिमुखाश्चाग्रे ५।५७२
स्थितिरेषैव बोधव्या ४।२६५
स्थितिबन्धविकल्पस्तु ५८।२८३
स्थितिमितं विजयार्ध- १५।३७
स्थितिरेकैव विज्ञेया ४।२६०
स्थितेषु हास्तिनपुरे ५४।२
स्थित्युत्सेधप्रवीचारा ६।११८
स्थित्वा तत्रापि सौख्येन ४६।१८
स्थिरमनसि विधाय ३६।३०
स्थापिता वसुराज्येऽष्टौ १७।१६१
स्थापितोऽन्यः पदे तस्य २७।४३
स्थूलमुक्ताफलेनास्य ८।१८२
स्थूलस्फिक् च पुमान्निः- २३।६८
स्थूला घनविमुक्तानां २३।८८
स्नानभोजनवेलाया १९।३७
स्नानासनमभून्मेरुः ८।१७०
स्नात्वा भुक्त्वा स तेनामा १९।३९
स्नात्वा भुक्त्वा कृतातिथ्या ५४।५४
स्नात्वा पयोधरोन्मुक्तैर् २२।१२५
स्निग्धताम्रनखौ पादौ २३।६०
स्निग्धाभिरपि सुस्निग्धा ८।३१
स्नुषा बुद्धिरभूत्तस्यां ४५।१५०
स्नेहपाशं दृढं छित्वा १२।४८
स्नेहानपेक्ष्य कैवल्य- ५।२१७
स्नेहवानथ जलार्थ- ६३।१
स्नेहगह्वरमोहिन्यौ १८।१२२
स्नेहोऽपत्यकृतोऽमीषु ६०।८
स्पर्शं रसं च गन्धं च १८।९२
स्पर्शनस्योदयाद्यस्य ५८।२५६
स्पर्शनं नैकसंस्थानं १८।८६
स्पर्शनं रसनं घ्राणं १८।८४
स्पर्शेनोष्णेन वाध्यन्ते ४।३४६
स्पृष्टा नृपोत्किरण- १६।९
स्फटिके लम्बुसा त्वङ्के ५।७१५
स्फुरत्पुलकसंसक्त- ५७।८३
स्मितेऽथ नाथे तपसि ६६।९
स्याच्चत्वारि सहस्राणि ६०।४०३
स्यादष्टौ हि सहस्राणि ५।७४
स्याद्द्विधास्रवनिरोध- ६३।८६
स्यात्परस्परकल्याणा ३४।१२४
स्यात्पर्यायसमासेषु १०।२१
स्यान्मिथ्यात्वं स्त्रीत्व- ५५।१३७
स्याद्विवेको विभजनं ६४।३५
स्याद्विंशतिसहस्रैस्तु ६०।४३५
स्याद् षट्त्रिंशत्सहस्राणि ५।३००
स्यात्संरम्भसमारम्भा ५६।२२
स्यात्सामायिकचारित्रं ६४।१५
स्यात्सूक्ष्मसाम्पराये च ६४।७७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्युः कषायकुशीलास्ते ६४।७४
स्युर्विंशतिसहस्राणि ६०।३६४
स्युर्द्वादशसहस्राणि ६०।३६१
स्युर्द्वाषष्टिसहस्राणि ६०।४३६
स्युश्चतुर्विंशतिर्भागा ५।४८७
स्युश्चतुर्दशलक्षास्तु ५।२७९
स्युश्चत्वारि सहस्राणि ६०।३५८
स्युस्तत्र पञ्चशतपूर्वधरा १६।७१
स्युस्तेषामशुभतराः ४।३६८
स्रजचक्रदुकूलाब्ज- २।७३
स्रजमितोऽथ सवस्त्र- ५५।११९
स्रजोः सुगन्धायतयोः ३७।३१
स्रजौ प्रलम्बे विमलाम्बरे३७।१०
स्वकर्मबन्धभीरुत्वान् २०।४४
स्वकलत्रेऽपि यत्रायं ४३।१९१
स्वकृतो बन्धनाद्यैः स्याद्५८।२६३
स्वक्रोधलोभभीरुत्व- ५८।११९
स्वचरणभुजदण्डा ३६।३७
स्वच्छस्फटिकरूपास्ते ५७।९६
स्वच्छानामनुकूलानां ११।९२
स्वजनकृताभिनिष्क्रमण- ४९।२४
स्वजननिजवधूनां ३६।५२
स्वजननीस्तनपान- १५।३०
स्वत एवाग्रतो जन्म ७।१२
स्वतनुबुद्धिमतश्च शनैः १५।३१
स्वदोषच्छादनायासौ ३३।१२२
स्वपक्षमित्युपन्यस्य १७।११३
स्वपक्षगेहेषु तदाविरासन् ३५।२१
स्वपन्निपीदनुरसा प्रसर्पन् ३५।४३
स्वपरिग्रहभेदे तु ५६।२५
स्वपुर्याश्च मनोहर्याः २७।१०
स्वपूर्ववैरिणा दाहं १२।२१
स्वप्रमादकृतानर्थ- ६४।१६
स्वप्रदेशपरिस्पन्द- ५६।७७
स्वप्रशंसापरानिन्द्याः ३।१११
स्वसुः प्रसूतिं प्रतिविद्य- ३५।३१
स्वप्नार्थमिति बुद्धा तौ ९।१६५
स्वप्नार्थं सोऽवधार्येतां ८।९२
स्वप्नान्तरिक्षभौमाङ्ग- १०।११७
स्वभर्तुः सोमभूतेस्तु ६४।१३६
स्वभावमत्सरारम्भा ८।८२
स्वभावमुखसौगन्ध्य- ४३।५
स्वभावगहनाहीन- ३।७३
स्वभावादार्जवोपेताः ३।१२५
स्वभावाच्चण्डतुण्डोऽय- ३३।१८
स्वभावोऽयं जिनादीनां ६५।१३
स्वमन्त्रेणेष्टमात्रेण १७।१११
स्वमुखेनानुभूयन्ते ५८।२९२
स्वयमेव बलोद्रेकात् २५।५१
स्वयंवरे प्रवृत्तेऽत्र ४४।४२
स्वयंवरविधौ तस्याः ३१।१२
स्वयंवरमगुस्तस्या ३३।१३६
स्वयंवरविधौ स्मृत्वा ६४।१३१
स्वयंवरगता कन्या ३१।५३
स्वयंवरविधेः कन्या २४।४०
स्वयंवरधरोत्खात- २३।५७
स्वयंवरार्थिनां तेषां २३।५८
स्वयंवरे नरश्रेष्ठः २३।१२५
स्वयं कृतं नर्म ततो- ५४।६९
स्वयं कर्म करोत्यात्मा ५८।१२
स्वयमेव रथं दोर्भ्यां- ६१।८४
स्वयंभूरमणाभिख्यौ ५।६२६
स्वम्भूरमणेऽप्यादौ ५।६३२
स्वयम्भूरमणद्वीप- ५।७३०
स्वयमुषा दुहितास्य- ५५।१७
स्वयम्प्रभविमानेशः ५।३२३
स्वयमेवात्मनात्मानं ५८।१२९
स्वयोगवक्रता चान्य- ५८।१११
स्वरसाधारणगतास्तिस्रो १९।१७८
स्वरत्रिंत्रयहीनोक्त ५७।६५
स्वराः सर्वे च विज्ञेया १९।२१४
स्वरूपालोकनाक्षिप्त- ४२।२७
स्वरैरपि च सप्तभिर् ३८।२७
स्वर्गच्यवनपर्यन्तं १२।२३
स्वर्गसौन्दर्यसन्दर्भ- ८।७१
स्वर्गश्रियं श्रिया जेत्री ५७।६
स्वर्गावतारकाले यः ५०।२२
स्वर्गावतरणं जैन- ८।९८
स्वर्गावतारजननाभिषव- २।२३७
स्वर्गापवर्गमूलस्य १०।१०
स्वर्गापवर्गमार्गस्य ८।२१९
स्वर्गाग्रादवतीर्याऽथ १३।२६
स्वर्णदासगृहक्षेत्र- ५८।१४२
स्वर्वेत्युक्ताः समात्मानः ५९।८१
स्वर्णषोडशकोटीषु २१।६१
स्वल्पाकाशषडंशाश्च ७।३५
स्ववंशभाविनं श्रुत्वा ३४।१
स्वविमानावधिस्तूर्ध्वं ६ ११७
स्ववेषकृतसंचाराः २६।२३
स्वशोकोत्पादनं चान्य- ५८।१०२
स्वसंबन्धं ततः श्रुत्वा ४७।६०
स्वस्वभावविभक्तान्य- १९।२२
स्वसंवेगादि रागार्थं ५८।१२६
स्वसैन्यं परसैन्यं च ५२।८७
स्वस्थानमेककोऽनल्प- ८।५
स्वस्थानाच्चलयेदलं २०।६५
स्वं विवेश गृहं शीरी ४२।९७
स्वं विंशतितमं तीर्थं १।२२
स्वं बुद्ध्वा ह्रियमाणं खे१९।९९
स्वाङ्गैरस्याङ्गसङ्गं या ४७।५२
स्वाधीनमप्रतिहतं १६।६०
स्वाधीने सति रूपास्त्रे १७।६
स्वाध्यायध्यानयोगस्थौ ४३।२१२
स्वाध्यायः पञ्चधा ज्ञान- ६४।३०
स्वान्तरङ्गजनैर्जातु ४१।५५
स्वान्तःपुरगृहालीभिः ४१।२९
स्वान्तःशुद्धि जिनेशाय ३।१९
स्वान्तकाले निमित्तत्वं ६१।२०
स्वाभिप्रायवशाद्भेदे १७।११६
स्वामिनं कौलपुत्रांश्च ९।११२
स्वामिकार्यं परित्यज्य ५०।९८
स्वामिन्नशनिवेगस्य १९।७०
स्वामिनि ! स्वामिनी ४७।२४
स्वामिन् वरप्रसादो मे ३३।३९
स्वाम्यादेशे कृते तेन ८।१३१
स्वायम्भुवं सुधाधात्री ५७।११९
स्वायम्भुवे महाभागे ११।१३६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वायामः क्षेत्रवक्षार- ५।५४७
स्वास्यारविन्दसौगन्ध्य- २४।६०
स्वीकृत्य वारुणीमाशां ४०।१७
स्वोपयोगविशेषस्य ५६।७३
स्वोत्सेधत्रिगुणात्मीय- ५७।११
स्वोदरस्थितनिःशेष- ४।३२
स्वोत्तम्भस्तम्भसंकाशैः ५९।५५
स्वेष्टाय तेऽष्टवर्षाय ४२।१९
स्वेष्टाङ्गनामुखरनूपुर- १६।४३
स्वे स्वे काले मनुष्याणा- ७।४४

[ह]

हटद्घाटकपीठस्थाः ५७।५०
हतक्षत्रियसंघानां २५।२०
हते सेनापतौ तत्र ५१।४२
हयैस्तित्तिरकल्माषैः ५२।१४
हरति केयमिह प्रवरा ५५।२२
हरिकृताभिगतिर्हरि- ५५।३
हरिचन्दनगन्धाढ्यैर् २२।२२
हरिणेव रणे रौद्रे ४२।९३
हरितालमयः षष्ठः ५।३०६
हरिद्वती सरिच्चण्ड- २७।१३
हरिवधूनिवहैरुपरोधितः ५५।५१
हरिवंशनभश्चन्द्र- २२।११५
हरिवंशपुराणस्य १।१२६
हरिवंशनभोभानु- ३।१८८
हरिवंशप्रदीपस्य १।११४
हरिवंशशशाङ्कस्य ३३।१७२
हरिवाहनविद्येशं ६०।८२
हरिरवेत्य निजाम्बुज- ५५।६९
हरिरयं प्रभवः प्रथमोऽ- १५।५८
हरिरतो बलशम्बमनो- ५५।२६
हरिरपि हरिशक्ति- ३६।४६
हरिरिति हरिवंशं ३६।२५
हरिसभागतराजकभारती ५५।७
हरिश्मश्रोर्दुरीहस्य २८।४३
हरिषेणस्य कौमार्य ६०।५१२
हरिषेणा सुता ज्येष्ठा ६४।१३०
हरिं सत्यापि संप्राप्ता ४८।५
हरेरन्यास्वपि स्त्रीषु ४८।९
हलकोटी तथा गावस् ११।१२८
हलधरं बलवन्तमलं ५५।६
हलधृदवधृतार्थो ३६।१६
हली जर्जरितं कृत्वा ४२।९५
हसन्ती नर्मभावेन ३३।३३
हस्त्यश्वरथपादात- ३१।७४
हस्तसंवाहने काश्चिद् ८।४६
हस्तपादशिरश्छेदं ४३।१८२
हस्तास्त्रयस्तथैव स्याद् ५।२८९
हस्तास्त्रयोऽङ्गुलानि ५।३९३
हस्ताभ्यां किमु मृद्नामि ४३।४४
हस्तिशीर्षपुराधीशं ६०।१०६
हस्ते स्तनानुलुप्तां तां १४।९६
हंसक्रौञ्चासनैर्मुण्डैर् ५।३८८
हंसालीपातलीलै- ५६।११७
हा जगत्सुभग- ६३।२०
हा प्रधानपुरुषैक- ६३।५१
हारकुण्डलकेयूर- ७।८९
हारं स पृथिवीसारं ११।१०
हारिणा स्वर्गिणा धात्रीं ३३।१६९
हारिणौ वारिणा पूर्णौ ८।६७
हारि ब्रारि परिताप- ६३।२१
हावभावविदग्धाभिर् ६।१२३
हावभावाभिरामं च ८।१६०
हितसहजतयोत्थ- ३६।२६
हिताः सतामप्रतिचक्र- ६६।४४
हित्वा ततो विषयसौख्य- १६।४८
हिंसादिभ्यो यथाशक्ति- ३।९०
हिंसानन्दमृषानन्द- १७।१५३
हिंसानृतपरादत्त- ३।८९
हिंसानृतवचश्चौर्या- ५८।११६
हिंसानोदनयानार्षान् २३।१४०
हिन्दोलग्रामरागेण १४।२०
हिमवत्प्राक् प्रतीच्योः स्युः ५।४७५
हिमवत्कूटतुल्यानि ५।१०८
हिमवद्वेदिका तुल्या ५।१२७
हिमवर्दललल्लक्कास् ४।८४
हिमविन्ध्यस्तनाभोगां २३।३७
हिमशिशिरवसन्तग्रीष्म- ५३।५४
हिरण्यनाभवीरेण ५१।३५
हिरण्यवर्मपूर्वोऽह- १२।१४
हिरण्यवृष्टिरिष्टाभूद् ८।२०६
हिरण्यरोमतनया २१।२५
हिरण्यस्वर्णयोर्वास्तु ५८।१७६
हिंसादिष्विह चामुष्मिन् ५८।१२३
हिंसादेर्देशतो मुक्तिः १८।४६
हिंसाद्यकर्तुः कर्तुर्वा १०।९२
हिंसारागादिसंबंधि ५८।१५२
हीनेन दानमित्येषाम् ५८।१७२
ह्रीः श्रीः धृतिः परा सा ८।११२
ह्रीकूटं हरिकान्तादि ५।७२
ह्रीकूटं धृतिकूटं च ५।८९
ह्रीदयाक्षान्तिशान्त्या- ५७।१५१
ह्रीमन्तं पर्वतं ताभ्या- २१।२४
हृतविद्या यतस्तत्र २७।१३४
हृतो यक्षकुमारीभ्यां १९।११९
हृदयान्तस्थिरोऽप्यङ्के ५।६९३
हृदयेन समं तस्मिन् ११।८
हृदिकात्कृतिधर्मासौ ४८।४२
हृष्टा प्रद्युम्नशम्बाभ्यां ४८।८
हेतिज्वालावहैरेभिः ५३।१६
हेतुना केन नाथेन २७।४
हेतुः पुण्यगुणाख्यातेः ५८।२७७
हेतुस्तीर्थकरत्वस्य ५८।२७८
हेमाम्भोजरजःपुञ्जा ५७।२२
हैयङ्गवीनमुत्तप्त- १८।१६२
हैरण्यवत (भौ)- ५।१४
हैरण्यवतमित्यन्यत् ५।१४
हैरण्यवतकूटं च ५।१०६

□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दानुक्रमणिका

इस ग्रन्थमें हरिवंशपुराणमें आगत व्यक्तिवाचक, भौगोलिक पारिभाषिक और कुछ साहित्यिक शब्दोंका अर्थ अवगत कराया गया है। व्यक्तिवाचकके आगे कोष्ठकमें (व्य), भौगोलिकके आगे (भौ) और पारिभाषिक शब्दके आगे (पा) दिया गया है। साहित्यिक शब्द = चिह्न देकर खाली छोड़ दिये गये हैं। इन शब्दोंमें ६०वें सर्गमें आगत तीर्थंकरोंसे सम्बद्ध शब्द संकलित नहीं हैं क्योंकि उनका विवरण पृथक् स्तम्भमें दिया गया है। इसी प्रकार अन्तिम सर्गमें वर्णित आचार्य-परम्पराके नाम भी संगृहीत नहीं हैं क्योंकि उनका प्रस्तावनामें उल्लेख कर दिया गया है। इस ग्रन्थमें एक-एक शब्द अनेकों स्थानों पर प्रयुक्त हुआ है परन्तु उनका एक बार ही उल्लेख किया जा सका है। शब्दों के आगे सर्ग और श्लोकोंके अंक दिये गये हैं। समानता रखनेवाले वे ही शब्द पुनरुक्त किये गये हैं जिनका भिन्न अर्थ होता है।

[अ]

अकम्पन (व्य) कृष्णका पुत्र ४८।७०

अङ्गारक (भौ) देशका नाम ११।६८

अग्निगतिदक्षिणा २२।६९

अङ्गारक (व्य) ज्वलनवेगकी विमला रानीसे उत्पन्न पुत्र १९।८३

अधर्म (पा) जीव और पुद्गलकी स्थितिमें कारण एक द्रव्य ७।२

अधर्मास्तिकाय (पा) जीव और पुद्गलके ठहरनेमें सहायक द्रव्य ४।३

अधिकारिणी (पा) एक क्रिया ५८।६७

अधित्यका = पर्वतका ऊपरी मैदान २।३३

अकम्पन (व्य) भगवान् महावीरका अष्टम गणधर ३।४३

अकम्पन (व्य) सात सौ मुनियोंके प्रमुख आचार्य २०।५

अतिथिसंविभाग (पा) शिक्षाव्रतका भेद ५८।१५८

अतिदारुण (व्य) एक भीलका पुत्र २७।१०७

अतिदुःषमा (पा) अवसर्पिणीका छठा काल ७।५९

अजित (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३५

अजित (व्य) द्वितीय तीर्थंकर १३।२६

अटट (पा) चौरासी लाख अटटाङ्गोंका एक अटट ७।२८

अटटाङ्ग (पा) चौरासी लाख वर्षोंका एक अटटाङ्ग ७।२८

अटनप्रिय = घूमनेका शौकीन १९।३६

अग्निभूति (व्य) पुत्रविशेष ६४।६

अग्निभूति (व्य) भगवान् ऋषभदेवका गणधर १२।५७

अग्निमित्र (व्य) भगवान् ऋषभदेवका गणधर १२।५८

अग्निला (व्य) सोमदेव ब्राह्मणकी स्त्री ४३।१००

अतिनिरुद्ध (भौ) पाँचवीं पृथिवीके प्रथम प्रस्तारसम्बन्धी तम इन्द्रककी पश्चिम दिशामें स्थित महानरक ४।१५६

अजितसेन (व्य) जरासन्धका एक दूत ५०।३२

अजितशत्रु (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३५

अजितञ्जय = कृष्णका धनुष ३५।७२

अजितञ्जित = चक्रवर्तीका रथ ११।४

अञ्जनमूलक (भौ) रत्नप्रभाके खर भागका ग्यारहवाँ पटल ४।५३

अञ्जनमूलकूट (भौ) मानुषोत्तरकी पश्चिमदिशाका एक कूट ५।६०४

अजितसेना (व्य) अरिंजयपुरके राजा अरिंजयकी स्त्री ३४।१८

अतिमुक्तक (व्य) एक मुनि १।८९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतिपिपास (भौ) प्रथम पृथिवी-के प्रथम प्रस्तारसम्बन्धी सीमन्तक इन्द्रककी उत्तर दिशामें स्थित महानरक ४।१५१
अग्निशिखर (व्य) कृष्णका पुत्र ४८।६९
अग्रजन्मा = ब्राह्मण ४३।९९
अग्निला (व्य) एक स्त्री ६४।६
अक्षय (पा) स्फटिक सालका उत्तर गोपुर ५७।६०
अक्षर (पा) श्रुतज्ञानका भेद १०।१२
अक्षरसमास (पा) श्रुतज्ञानका भेद १०।१२
अधोव्यतिक्रम (पा) दिग्व्रतका अतिचार ५८।१७७
अध्वा(पा) समस्त द्वीपसागरोंका एक दिशाका विस्तार ७।५२
अध्रुव (पा) आग्रायणी पूर्वकी वस्तु १०।७८
अध्रुव संप्रणधि (पा) आग्रायणी पूर्वकी एक वस्तु १०।७९
अङ्गज (व्य) रुद्र ६०।५७१
अङ्गज = कामदेव १६।३९
अनङ्गक्रीडा (पा) ब्रह्मचर्याणुव्रतका अतिचार ५८।१७४
अनङ्गशरीरज (व्य) प्रद्युम्नका पुत्र अनिरुद्ध ५५।१९
अधोक्षज = कृष्ण ३५।१९
अग्निज्वाल (भौ) वि. उ. नगरी २२।९०
अक्षोभ्य (पा) स्फटिक सालका पश्चिम गोपुर ५७।५९
अङ्गार (व्य) एक विद्याधर राजा २५।६३
अङ्गुल (पा) आठ यवोंका एक अंगुल ७।४०
अग्निकुमार=भवनवासी देवोंका एक भेद २।८२
अजीवविचय (पा) धर्म्यध्यानका भेद ५६।४४
अतिनिसृष्ट(भौ) चौथी पृथिवीके प्रथम प्रस्तारसम्बन्धी और इन्द्रककी पश्चिम दिशामें स्थित महानरक ४।१५५
अतिवीर्य (व्य) प्रतापवान्का पुत्र १३।१०
अतिवेगा (व्य) पृथिवीतिलकके राजा प्रियंकरकी स्त्री २७।९१
अतिवेलम्ब (व्य) मानुषोत्तरके बेलम्बकूटका वासी देव ५।६०९
अतीतानागत (पा) आग्रायणी पूर्वकी वस्तु १०।८०
अतुलार्थ (पा) स्फटिक सालका उत्तर गोपुर ५७।६०
अद्गु (व्य) सगर चक्रवर्तीके साठ हजार पुत्रोंमें ज्येष्ठ पुत्र १३।२८
अतिमुक्तक (व्य) कंसके बड़े भाई जो मुनि हो गये थे ३३।३२
अर्ककीर्ति (व्य) भरत चक्रवर्तीका पुत्र १२।९
अगन्धन (व्य) श्रीभूति मरकर 'अगन्ध' साँप हुआ २७।४२
अगर्त (भौ) देशका नाम ११।७२
अगस्त्य = एक नक्षत्र जिसका उदय शरद् ऋतुमें होता है ३।२
अग्निकुमार = भवनवासी देवोंका एक भेद ४।६४
अन्नपाननिरोध (पा) अहिंसाणुव्रतका अतिचार ५८।१६५
अनन्तजिद् (व्य) अनन्त संसारको जीतनेवाले चौदहवें तीर्थंकर १।१६
अङ्क (भौ) अनुदिश ६।६४
अचलावती (व्य) दिक्कुमारी देवी ५।२२७
अचेलता (पा) मुनियोंका एक मूलगुण वस्त्रका त्याग-करना, नग्न रहना २।१२८
अकम्पन(व्य) वाराणसीका राजा सुलोचनाका पिता १२।९
अङ्क (भौ) रुचिक गिरिका उत्तर-दिशासम्बन्धी कूट ५।७१५
अङ्ककूट (भौ) मानुषोत्तरकी उत्तर दिशाका एक कूट ५।६०६
अङ्कावती (भौ) विदेहकी एक नगरी ५।२५९
अणुव्रत (पा) पाँच पापोंका एकदेशत्याग, इसके अहिंसाणुव्रत आदि पाँच भेद हैं २।१३४
अकम्पन (व्य) विजयका पुत्र ४८।४८
अक्रूर (व्य) वसुदेवका विजयसेना नामक स्त्रीसे उत्पन्न हुआ पुत्र १९।५९
अक्रूर (व्य) राजा श्रेणिकका एक पुत्र २।१३९
अक्रूर (व्य) एक राजा ५०।८३
अक्रियावादी (पा) मिथ्यात्वका एक भेद ५८।१९४
अकल्पित (व्य) एक राजा ५०।१३०
अक्षौहिणी (पा) विशिष्ट सेना ५०।७५, ७६
अकुतोभयतः = किसीसे भय न होनेके कारण १।९५
अङ्क, अङ्कप्रभ(भौ) कुण्डलगिरिके पश्चिम दिशासम्बन्धी कूट ५।६९३
अङ्गारक (व्य) श्यामाका शत्रु १९।७९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अङ्गना = स्त्री २।९
अङ्गबाह्य (पा) द्वादशांगके परिमाणसे बाहरका श्रुत २।१०१
अङ्गारिणी = एक विद्या २२।६२
अङ्गारवती (व्य) स्वर्णाभपुरके राजा चित्तवेगकी स्त्री २४।७०
अङ्गारक (व्य) एक विद्याधर १।८१
अङ्ग (भौ) रत्नप्रभाके खर भागका बारहवाँ पटल ४।५४
अङ्ग = तालगत गान्धर्वका एक प्रकार १९।१५१
अङ्गावर्त (भौ) वि. द. नगरी २२।९५
अङ्ग (पा) अष्टांगनिमित्तज्ञानका एक अंग १०।११७
अचौर्य महाव्रत (पा) अदत्त वस्तुका ग्रहण नहीं करना २।११९
अच्युत (भौ) अच्युत स्वर्गका तीसरा इन्द्रक ६।५१
अच्युत (भौ) सोलहवाँ स्वर्ग ६।३८
अच्युत (व्य) श्रीकृष्ण नारायण ५०।२
अच्युत (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३६
अग्रायणीपूर्व (पा) पूर्वगत श्रुतका एक भेद २।९७
अचल (व्य) भगवान् महावीरका नवम गणधर ३।४३
अचल (व्य) अन्धकवृष्णि और सुभद्राका पुत्र १८।१३
अचल (व्य) अचलका पुत्र ४८।४९
अचल (व्य) दूसरा बलभद्र ६०।२९०
अचल ग्राम (भौ) एक ग्राम, जहाँ वसुदेवने वनमाला कन्याको प्राप्त किया २४।२५
अञ्जनागिरि (व्य) रुचकगिरिके वर्धमान कूटका निवासी देव ५।७०३
अञ्जनगिरि (भौ) मेरुसे दक्षिणकी ओर शीतोदा नदीके पश्चिम तटपर स्थित एक कूट ५।२०६
अञ्जन द्वीप (भौ) अन्तिम सोलह द्वीपोंमें पाँचवाँ द्वीप ५।६२३
अञ्जन पर्वत (भौ) नन्दीश्वर द्वीपकी चारों दिशाओंमें स्थित पर्वत-विशेष ५।६५२
अञ्जनमूलक कूट (भौ) रुचिक गिरिका एक कूट ५।७०६
अच्युता = एक विद्या २२।६५
अच्यवनलब्धि (पा) आग्रायणी पूर्वकी वस्तु १०।७८
अञ्जनक (भौ) रुचिक गिरिका उत्तरदिशासम्बन्धी कूट ५।७१५
अञ्जन (भौ) सानत्कुमार युगलमें पहला इन्द्रक ६।४८
अञ्जन (भौ) पाण्डुकवनका एक भवन ५।३५२
अञ्जन (भौ) पूर्वविदेहका क्षारगिरि ५।२२९
अञ्जन (भौ) रत्नप्रभाके खरभागका दसवाँ पटल ४।५३
अञ्जना (भौ) पंकप्रभाका रूढि नाम ४।४६
अञ्जनकूट (भौ) मानुषोत्तर पर्वतकी दक्षिण दिशाका एक कूट ५।६०४
अञ्जनकूट (भौ) रुचिक गिरिका एक कूट ५।७०६
अग्निभूति (व्य) वैदिक विद्वान् २।६८
अनिरुद्ध (व्य) प्रद्युम्नका पुत्र ५५।१७
अनिवृत्तिकरण (पा) परिणाम विशेष ३।१४२
अनिवृत्तिकरण (पा) नौवाँ गुणस्थान ३।८२
अनिवृत्ति (व्य) एक मुनि २७।११३
अनिलवेग (व्य) वसुदेवकी श्यामा स्त्रीसे उत्पन्न पुत्र ४८।५४
अनवेक्ष्यसंस्तरसंक्रम (पा) प्रोषधोपवास व्रतका अतिचार ५८।१८१
अनवेक्ष्यादान (पा) प्रोषधोपवासका अतिचार ५८।१८१
अनवेक्ष्यमलोत्सर्ग (पा) पोषधोपवास व्रतका अतिचार ५८।१८१
अनाकांक्षा (पा) एक क्रिया ५८।७८
अनादर (व्य) जम्बूवृक्षपर रहनेवाला देवविशेष ५।१८१
अनादर (पा) प्रोषधोपवास व्रतका अतिचार ५८।१८१
अनादरता (पा) सामायिक व्रतका अतिचार ५८।१८०
अनाभोग क्रिया (पा) एक क्रिया ५८।७३
अनावृत्त यक्ष (व्य) जम्बूद्वीपका रक्षक यक्ष ५।६३७
अनावृष्टि (व्य) वसुदेव और मदनवेगाका पुत्र ४८।६१
अनावृष्टि = कृष्णका सेनापति ५१।३५
अनावृष्टि (व्य) एक राजा ५०।७९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनिकाचित (पा) आग्रायणी पूर्वके चतुर्थ प्राभृतका योगद्वार १०।८५
अनिच्छ (भौ) दूसरी पृथिवीके प्रथम प्रस्तार सम्बन्धी तरक इन्द्रककी पूर्व दिशामें स्थित महानरक ४।१५३
अनिन्दिता (व्य) नन्दनवनमें रहनेवाली दिक्कुमारी देवी ५।३३३
अनघ (पा) स्फटिक सालका दक्षिण गोपुर ५७।५८
अनगार (व्य) शीतलनाथका प्रथम गणधर ६०।३४७
अनगार = सामान्यमुनि ३।६२
अनन्तवीर्य (व्य) जयकुमारका पुत्र १२।४८
अनन्तवीर्य (व्य) चारणमुनि ६०।२१
अनन्तवीर्य (व्य) आगामी तीर्थंकर ६०।५६३
अनन्तमित्र (व्य) उग्रसेनके चाचा शान्तनुका पुत्र ४८।४०
अनन्तमति (व्य) एक मुनि २७।११७
अतिबल (व्य) धरणीतिलक नगरका राजा २७।७८
अतिबल (व्य) साकेत नगरका राजा २७।६३
अतिबल (व्य) महाबलका पुत्र १३।८
अतिबल (व्य) आगामी नारायण ६०।५६६
अतिबल (व्य) ऋषभदेवका गणधर १२।६८
अतिभारारोपण (पा) अहिंसाणुव्रतका अतिचार ५८।१६४
अनिवर्तक (व्य) आगामी तीर्थंकर ६०।५६१
अनीक = सेना—यह सेना, पदाति, अश्व, वृषभ, रथ, हाथी, गन्धर्व और नर्तकीके भेदसे सात प्रकारकी होती है ३८।२२
अनीकदत्त (व्य) देवकीका पुत्र ३३।१७०
अनीक पालक (व्य) देवकीका पुत्र ३३।१७०
अनुत्तर (भौ) अनुदिशोंके ऊपर स्थित पाँच विमान ६।४०
अनुत्तर (भौ) नौ अनुदिशोंके ऊपर एक पटलमें स्थित विजय आदि पाँच विमान ३।१५०
अनुत्तर (वि) श्रेष्ठनय २।१३८
अनुत्तरोपपादिकदशाङ्ग (पा) = द्वादशांगका एक भेद २।९४
अनुत्सेक = गर्व नहीं करना ५८।११४
अनुन्धरी (व्य) विश्वसेनकी स्त्री ६०।५८
अनुदात्त = वेदमें प्रत्युक्त होनेवाला स्वरविशेष (नीचैरनुदात्तः) १७।८७
अनुदिश (भौ) ग्रैवेयकोंके ऊपर स्थित नौ विमान ६।४०
अनुदिशस्तूप (पा) समवसरणका स्तूप ५७।१०१
अनुदिश (भौ) ग्रैवेयकोंके ऊपर स्थित एक पटलके नौ विमान ३।१५०
अनुपम (व्य) ऋषभदेवका गणधर १२।६९
अनुप्रेक्षा (पा) अनु + प्रा + ईक्षा पदार्थके स्वरूपका बार-बार चिन्तन करना। इसके अनित्य, अशरण आदि १२ भेद हैं २।१३०
अनुभवबन्ध (पा) बन्धका एक भेद ५८।२०३
अनुमतिका (व्य) द्रौपदीका भवान्तर ४६।५७
अनुमति (व्य), कापिष्ठलायनकी स्त्री १८।१०३
अनुयोग (पा) श्रुतज्ञानका भेद १०।१३
अनुयोग (पा) प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग २।१४७
अनुयोग (पा) दृष्टिवाद अंगका एक भेद १०।६१
अनुवादी = स्वर प्रयोगका एक प्रकार १९।१५४
अनुवीर्य (व्य) एक राजा ५०।१२६
अनेकप = अनेककी रक्षा करनेवाला ३७।२७
अनेकप = हाथी ३७।२७
अनेकाम्ल (पा) प्रोषधोपवास व्रतका अतिचार ५८।१८१
अन्तकृद्दशाङ्ग (पा) द्वादशांगका एक भेद २।९३
अन्तप (भौ) देशविशेष ११।७४
अन्तराय (पा) विघ्नका कारण ५८।२१८
अन्तरिक्ष (पा) अष्टांग निमित्तज्ञानका एक अंग १०।११७
अन्तरेण (अ) बिना २।११३
अन्तर्द्विष् = अन्तरंग शत्रु १।२३
अन्ध्र (भौ) धूमप्रभा पृथिवीके चतुर्थ प्रस्तारका इन्द्रक बिल ४।१४१
अन्धकवृष्णि (व्य) यदुवंशी शूरका पुत्र १८।१०
अन्तर्भूमिचर = विद्याधर जाति २६।११
अन्तर्वत्नी = गर्भवती १८।१२०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्तर्विचारिणी = एक विद्या २२।६८
अन्ववाय = कुल ४५।४
अपघन = शरीर १६।१९
अपथाशिन् (वि) कुमार्गको नष्ट करनेवाले १।१२
अपदर्शन कूट (भौ) नीलकुलाचलका नौवाँ कूट ५।१०२
अपध्यान (पा) अनर्थदण्डका भेद ५८।१४६
अपराजित(व्य) राजा जरासन्धका भाई १८।२५
अपराजित(पा) स्फटिक सालका उत्तर गोपुर ५७।६०
अपराजित (भौ) जम्बूद्वीपका जगतीका उत्तर द्वार ५।३९०
अपराजित (व्य) एक श्रुतकेवली आचार्य १।६१
अपराजित (भौ) अनुत्तर विमान ६।६५
अपराजित (व्य) जरासन्धका भाई ५।१४
अपराजित (भौ) वि. उ. नगरी २२।८७
अपराजित (व्य) सिंहपुरके राजा अर्हद्दास-जिनदत्ताका पुत्र। भगवान् नेमिनाथका जीव ३४।५
अपराजित (व्य) भगवान् वृषभदेवका गणधर १२।६१
अपराजित (व्य) चक्रपुरका राजा २७।८९
अपराजित (व्य) एक राजा ६०।१०५
अपराजिता (व्य) रुचिकगिरिके अरिष्टकूटपर रहनेवाली देवी ५।५०७
अपराजिता (व्य) रुचिकगिरिके रत्नोच्चय कूटपर रहनेवाली देवी ५।७२६
अपराजिता (पा) समवसरणके सप्तपर्ण वनकी वापिका ५७।३३
अपराजिता (भौ) नन्दीश्वर द्वीपके दक्षिण दिशासम्बन्धी अंजनगिरिकी उत्तर दिशासम्बन्धी वापिका ५।६६०
अपराजिता (भौ) विदेहकी एक नगरी ५।२६३
अपरान्त (पा) आग्रायणीपूर्वकी एक वस्तु १०।७८
अपरविदेहकूट (भौ) नीलकुलाचलका सातवाँ कूट ५।१००
अपरिग्रह महाव्रत (पा) बाह्याभ्यन्तर परिग्रहका त्याग २।१२१
अपवर्ग = मोक्ष १०।१०
अपात्र (पा) जो स्थूल हिंसादिके अनिवृत्त हैं ७।११४
अपाय विचय (पा) धर्म्यध्यानका एक भेद ५६।३९-४०
अपूर्वकरण (पा) परिणामविशेष ३।१४२
अपूर्वकरण (पा) आठवाँ गुणस्थान ३।८२
अप्रणति भाषा (पा) सत्यप्रवाद पूर्वकी १२ भाषाओंमें-से एक भाषा १०।९५
अप्रतिष्ठान (भौ) महातमःप्रभा पृथिवीका इन्द्रक विल ४।१५०
अप्रतिघ (पा) स्फटिक सालका दक्षिण गोपुर ५७।५८
अप्रत्याख्यान क्रिया (पा) एक क्रिया ५८।२२
अप्रमत्तसंयत (पा) सातवाँ गुणस्थान ३।८१
अब्ज = शंख ३५।७२
अभय (व्य) राजा श्रेणिकका पुत्र २।१३९
अभयनन्दी (व्य) एक मुनि ३३।१००
अभ्याख्यानभाषा (पा) सत्यप्रवाद पूर्वकी १२ भाषाओंमें-से एक भाषा १०।९२
अभिख्या = शोभा २।२४
अभिचन्द्र (व्य) राजा भद्रका पुत्र १७।३५
अभिचन्द्र (व्य) दसवाँ कुलकर ७।१६१
अभिजया (पा) समवसरणके सप्तपर्णवनकी वापिका ५७।३३
अमितवेग (व्य) गगनचन्द्र और गगनसुन्दरीका पुत्र ३४।३५
अभिनन्दन (व्य) चतुर्थ तीर्थंकर १३।३१
अभिनन्दन (व्य) चतुर्थ तीर्थंकर १।६
अभिनन्दिनी (पा) समवसरणके अशोकवनकी वापिका ५७।३२
अभिसन्धि = अभिप्राय १७।११२
अभिषव = अभिषेक २।५०
अभिषवाहार (पा) भोगोपभोगव्रतका अतिचार ५८।१८२
अभीक्ष्णज्ञानोपयोग = भावना ३४।१३५
अभ्यर्ण = अनिकट ४३।१
अभिचन्द्र (व्य) अन्धकवृष्णि और सुभद्राका पुत्र १८।१४
अभिराम = सुन्दर ३२।१०
अभिरुद्गता = षड्ज ग्रामकी मूर्च्छना १९।१६२
अमर (व्य) राजा सूर्यका पुत्र १७।३३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अमरकङ्का (भौ) धातकीखण्डके भरतक्षेत्र अंगदेशकी एक नगरी ५४।८
अमरावर्त (व्य) कौथुमिका शिष्य ४५।४५
अमम (पा) चौरासी लाख अममांगोंका एक अमम ७।२८
अममाङ्ग (पा) चौरासी लाख अटटोंका एक अममांग ७।२८
अमल (व्य) समुद्रविजयका मन्त्री ५०।४९.
अमा (अव्यय) साथ ५५।२९
अमितगति (व्य) चारुदत्तके द्वारा उपकृत और चारुदत्तका उपकार करनेवाला विद्याधर २१।२३
अमितगति (व्य) वसुदेवका गन्धर्वसेनासे उत्पन्न पुत्र ४८।५५
अमिततेज (व्य) गगनचन्द्र और गगनसुन्दरीका पुत्र ३४।३५
अमित्रेतरमण्डल = मित्रमण्डल–सूर्यमण्डल २।११
अमितसार (पा) स्फटिक सालका पश्चिम गोपुर ५७।५९
अमितप्रभ (व्य) वसुदेव और बालचन्द्राका पुत्र ४८।६५
अमृतपायिन् = देव ५५।२५
अमृतप्रभ (व्य) अभिचन्द्रका पुत्र ४८।५२
अमृतबल (व्य) अतिबलका पुत्र १३।८
अमृतरसायन (व्य) चित्ररथका रसोइया ३३।१५१
अमोघ (भौ) रुचिकगिरिका दक्षिण दिशा सम्बन्धी कूट ५।७०८
अमोघ–चक्रवर्तीका बाण ११।६
अमोघ (भौ) अधोग्रैवेयकका दूसरा इन्द्रक ६।५२
अमोघक (पा) स्फटिक सालका उत्तर गोपुर ५७।६०
अमोघमूला (शक्ति) = कृष्णका शक्ति नामका अस्त्र ५३।४९
अमोघदर्शन (व्य) चन्दनवन नगरका राजा २९।२४
अम्बा (व्य) राजा धृतराजकी एक स्त्री ४५।३३
अम्बर (पा) सब द्रव्योंको स्थान देनेवाला आकाश द्रव्य ७।२
अम्बिका (व्य) राजा धृतराजकी एक स्त्री ४५।३३
अम्बुज = श्रीकृष्णका पांचजन्य शंख ५५।६१
अम्बुदावर्त (भौ) भगली देशका एक पर्वत ६०।२०
अम्बालिका (व्य) राजा धृतराजकी एक स्त्री ४५।३३
अम्भोधि (व्य) समुद्रविजयके भाई अक्षोभ्यका पुत्र ४८।४५
अयन (पा) तीन ऋतुओं—छह मासका एक अयन होता है ७।२१
अयुत = दश हजार ४२।८१
अयोगकेवली (पा) चौदहवाँ गुणस्थान ३।८३
अयोध्य (व्य) भरत चक्रवर्तीका सेनापति ११।२३
अयोधन (व्य) धारणयुग्म नगरका राजा २३।४६
अयोधन (व्य) राजा मत्स्यका सौ पुत्रोंमें ज्येष्ठ पुत्र १७।३१
अयोध्या (भौ) विदेहकी एक नगरी ५।२६३
आयुकर्म (पा) नरकादिपर्यायका कारण कर्म ५८।२१७
अर (व्य) सप्तम चक्रवर्ती
अर (व्य) आगामी तीर्थंकर ६०।५६०
अरम् = शीघ्र ३५।३०
अर (व्य) अठारहवें तीर्थंकर सातवें चक्रवर्ती ४५।२२
अरजा (भौ) विदेहकी एक नगरी ५।२६२
अरतिभाषा (पा) सत्यप्रवाद पूर्वकी बारह भाषाओंमें-से एक भाषा १०।९४
अरिंजय (व्य) विनमिका पुत्र २२।१०४
अरिंजय (भौ) वि. द. नगरी २२।९३
अरिंजयपुर (भौ) विदेहका एक नगर ३४।१८
अरिंजय (व्य) अरिंजयपुरका राजा ३४।१८
अरिंजय (भौ) वि. उ. नगरी २२।८६
अरिन्दम (व्य) विनमिका पुत्र २२।१०५
अरिन्दम (व्य) एक मुनि १९।८२
अरिष्टनेमि (व्य) राजा महीदत्तका पुत्र १७।२९
अरिष्ट (भौ) ब्रह्मयुगलका पहला इन्द्रक ६।४९
अरिष्टपुर (भौ) विदेहका एक नगर ६०।७५
अरिष्टपुर (भौ) एक नगर जहाँ राजा रुधिर रहता था ३१।९
अरिष्टविमान (भौ) यमलोकपालका विमान ५।३२५
अरिष्टसेन (व्य) आगामी चक्रवर्ती ६०।५६५
अरिष्टसेन (व्य) धर्मनाथका प्रथम गणधर ६०।३४८
अरिष्ट (भौ) रुचकगिरिका एक कूट ५।७०५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अरिष्टा (भौ) धूमप्रभाका रूढ़ि नाम ४।४६
अरिष्टनेमि (व्य) बाईसवें तीर्थंकर १।२४
अरिष्टनेमि (व्य) समुद्रविजयके पूर्व बाईसवें तीर्थंकर ४८।४३
अरिषड्वर्ग=काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य यह अन्तरंग छह शत्रु हैं १७।१
अरुण, अरुणप्रभ (व्य) अरुणद्वीपके रक्षक देव ५।६४५
अरुण (भौ) सौधर्म युगलका छठा इन्द्रक ६।४४
अरुण (व्य) हरिक्षेत्रके नाभिगिरिपर रहनेवाला व्यन्तर देव ५।१६४
अरुणद्वीप (भौ) नौवाँ द्वीप ५।६१७
अरुणसागर (भौ) नौवाँ सागर ५।६१७
अरुण (व्य) लौकान्तिक देवका एक भेद ५५।१०१
अरुणोद्भासद्वीप (भौ) दसवाँ द्वीप ५।६१७
अरुणोद्भास सागर (भौ) नौवाँ सागर ५।६१७
अर्क (व्य) लौकान्तिक देवका एक भेद दूसरा नाम आदित्य ५५।१०१
अर्क (व्य) राजा वसुका पुत्र १७।५८
अर्कप्रभ (व्य) कापिष्ठ स्वर्गका एक देव (रश्मिवेगका जीव) २७।८७
अर्कमूल (भौ) वि. द. नगरी २२।९९
अर्चाख्य (पा) स्फटिक सालका उत्तर गोपुर ५७।६०
अर्चि (भौ) पहला अनुदिश ६।६३
अर्चिर्माली (व्य) किन्नरोद्गीत नगरका राजा १९।८१
अर्चिमालिनी (भौ) दूसरा अनुदिश ६।६३
अर्चिष्मान् (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।४०
अर्जुन (व्य) पाण्डव ४५।२
अर्थपद (पा) अर्थबोधक पदसमूहको अर्थपद कहते हैं १०।२३
अर्थ (पा) आग्रायणी पूर्वकी वस्तु १०।७९
अर्हन् = अरहन्त १।१३
अर्हद्दत्त (व्य)धनदत्त और नन्दयशाका पुत्र १८।११५
अर्हद्भक्ति = भावना ३४।१४१
अर्हद्दास (व्य) गन्धिला देशकी अयोधा नगरीका राजा २७।११२
अर्हद्दास (व्य) धनदत्त और नन्दयशाका पुत्र १८।११४
अर्हद्दास (व्य) ज. वि. सुपद्मा देशके सिंहपुर नगरका राजा ३४।३
अलका (व्य) मद्रलिसा नगरीके सेठकी स्त्री ३३।१६७
अलका (व्य) मेघदलपुरके सेठ मेघकी स्त्री ४६।१५
अलका (भौ) विद्याधरोंकी नगरी ६०।१८
अलंकारविधि = शरीर स्वरका भेद १९।१४८
अलोक (पा) लोकके बाहरका अनन्त आकाश २।११०
अलोकाकाश (पा) चौदह राजु प्रमाण लोकके बाहरका अनन्त आकाश ४।१
अलञ्जल = गोली ५।४४५
अलम्बुष (व्य) विजयका पुत्र ४८।४८
आलोक = प्रकाश २।१०
अलंकार = वैणस्वरका एक भेद १९।१४७
अवक्रान्त (भौ) रत्नप्रभा पृथिवीके बारहवें प्रस्तारका इन्द्रक विल ४।७७
अवग्रह (पा) मतिज्ञानका भेद १०।१४६
अवतंस = कानका आभूषण ४३।२४
अवदात = उज्ज्वल २।३२
अवधिज्ञानचक्षुष् = अवधिज्ञानके धारक ३।४७
अवध्या (भौ) विदेहकी एक नगरी ५।२६३
अवनद्ध = चमड़े मढ़े हुए मृदंग आदि वादित्र १९।१४२
अवयव = तालगत गान्धर्वका प्रकार १९।१५१
अवाय (पा) मतिज्ञानका भेद १०।१४६
अवर्णवाक् (पा) मिथ्यादोष कथन ५८।९६
अवसर्पिणी (पा) जिसमें बुद्धि, बल, विद्या आदि सद्गुणोंका ह्रास हो ऐसा कालभेद १।२६
अवसर्पिणी (पा) दश कोड़ाकोड़ी अद्धा सागरोंकी एक अवसर्पिणी ७।५६–५७
अवसंज्ञ (पा) अनन्तानन्त परमाणुओंका समूह ७।३७
अवन्तिसुन्दरी (व्य) वसुदेवकी एक स्त्री ३१।७
अविदार्य = तालगत गान्धर्वका एक प्रकार १९।१५१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अविपाकजा (पा) निर्जराका भेद ५८।२९५
अविध्वंस (व्य) विभुका पुत्र १३।११
अशनिघोष (व्य) मानुषोत्तरके अंजनकूटपर रहनेवाला देव ५।६०४
अशनिवेग (व्य) विजयार्ध पर्वतके कुंजरावर्त नगरका राजा १९।७०
अशनिवेग (व्य)अर्चिर्माली और प्रभावतीका पुत्र १९।८१
अशनिवेग (व्य) वसुदेवका सम्बन्धी एक विद्याधर ५१।२
अशय्याराधिनी = एक विद्या २२।७०
अशित (व्य)एक राजा५०।१३०
अशुभश्रुति (पा) अनर्थदण्डका भेद ५८।१४६
अशोक (व्य) एक राजा६०।६९
अशोक (भौ) वि. उ. नगरी २२।८९
अशोकपुर (भौ) अशोक नामक देवका निवास स्थान५।४२६
अशोकवन (भौ) विजयदेवके नगरसे २५ योजन दूर पूर्वमें स्थित एक वन ५।४२२
अशोका (भौ) नन्दीश्वर द्वीपके पश्चिम दिशा सम्बन्धी अंजनगिरिकी पूर्व दिशामें स्थित वापिका ५।६६२
अशोका (व्य) राजा प्रचण्ड-वाहनकी पुत्री ४५।९८
अशोका (भौ) विदेहकी एक नगरी ५।२६२
अश्मक(भौ) देशका नाम११।७०
अश्मगर्भ = नीलमणि ५।१७८
अश्मगर्भकूट (भौ) मानुषोत्तर पर्वतकी पूर्व दिशाका एक कूट ५।६०२
अश्वकण्ठ (व्य) आगामी प्रति-नारायण ६०।५७०
अश्वक्रान्ता = षड्जस्वरकी मूर्च्छना १९।१६२
अश्वग्रीव (व्य) आगामी प्रति-नारायण ६०।५७०
अश्वग्रीव (व्य) त्रिपिष्टिक नारायणका प्रतिनारायण २८।३१
अश्वग्रीव (व्य) एक शास्त्र ५२।५५
अश्वग्रीव (व्य)पहला प्रतिनारा-यण ६०।२९१
अश्वत्थामा (व्य) द्रोणाचार्यका पुत्र ४५।४८
अश्वपुरी (भौ) विदेहकी एक नगरी ५।२६१
अश्वयुज = आश्विन माह ५६।११२
अश्विनी (व्य)द्रोणाचार्यकी स्त्री ४५।४८
अश्वसेन (व्य) वसुदेव और अश्वसेनाका पुत्र ४८।५९
अष्टअष्टम=व्रतविशेष३४।९३-९४
अष्टम = तीन उपवास ३४।१२५
अष्टगुणात्मक (वि) ज्ञान, दर्शन, अव्याबाधत्व, सम्यक्त्व, अवगाहनत्व,सूक्ष्मत्व,अगुरु-लघुत्व,वीर्य इन आठ गुण-रूप मोक्ष २।१०९
अष्टापद = कैलास पर्वत १९।८७
अष्टप्रातिहार्य – अशोक वृक्ष, सिंहासन, छत्रत्रय आदि आठ प्रातिहार्य २।६७
अष्टप्रातिहार्य (पा) समवसरणमें प्राप्त होनेवाले, जिनेन्द्रके आठ विशेष भूषण—१ अशोक, २ सिंहासन, ३ छत्रत्रय, ४ भामण्डल, ५ दिव्यध्वनि, ६ पुष्पवृष्टि, ७ चतुःषष्टि चामर, ८ दुन्दुभि बाजा
अष्टमभक्त = तीन दिनका उप-वास १।९८
असंग (व्य) वज्रधर्मका पुत्र ४८।४२
असंभ्रान्त (भौ) रत्नप्रभा पृथिवीके सातवें प्रस्तारका इन्द्रक विल ४।७६
असमीक्ष्याधिकरण (पा) अनर्थ-दण्डका अतिचार५८।१७९
असंयतसम्यग्दृष्टि (पा) चतुर्थ गुणस्थान ३।८०
असांप्रत = अनुचित— अयुक्त ५४।६२
असितपर्वत (भौ) वि.उ. नगरी २२।९६
असुधारिन् = प्राणी २।२०
असुर = भवनवासी देवोंका एक भेद ४।६३
असुरोद्गीत (भौ) विद्याधरोंका एक नगर ४६।८
अस्वष्ट (भौ) देशविशेष ३।३
अस्तिकाय (पा) बहुप्रदेशी द्रव्य (कालको छोड़कर जीवादि पाँच द्रव्य) ४।५
अस्ति-नास्तिप्रवाद(पा)पूर्वगत-श्रुतका एक भेद ३।९८
अस्नान(पा) मुनियोंका एक मूल गुण जीव-रक्षाके लिए स्नान न करना २।१२८
अहमिन्द्र (पा) ग्रैवेयक आदिके वासी देव ३।१५१
अहिंसामहाव्रत (पा)षट्कायिक जीवोंकी हिंसासे निवृत्ति २।११८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहोरात्र (पा) तीस मुहूर्त्तका एक दिन-रात होता है ७।२१
अंशुमान् (व्य) वसुदेवका साला कपिलाका भाई २४।२७
अंशुमान् (व्य) नमिका पुत्र २२।१०७

[आ]

आकर(पा) सोना-चाँदी आदिकी खानोंसे युक्त नगर २।३
आकाशगता (पा)दृष्टिवाद अंगके चूलिका भेदका उपभेद १०।१२३
आकूपारम् = समुद्रपर्यन्त १।३८
आखण्डल (व्य) इन्द्र २।५
आख्यान (तिङन्त) = पदगत गान्धर्वकी विधि १९।१४९
आक्रन्द (पा) असाता वेदनीयका आस्रव ५८।९३
आगति = तालगत गान्धर्वका एक प्रकार १९।५१
आग्नेय = विद्यास्त्र २५।४७
आचाराङ्ग (पा) द्वादशांगका एक भेद २।९२
आचाम्लवर्धन = व्रत विशेष ३४।९५-९६
आचार्यभक्ति=भावना३४।१४१
आचिता = व्याप्त ५५।२
आजवञ्जव = संसार १।१३
आज्ञानिक(पा)मिथ्यात्वका एक भेद ५८।१९४
आज्ञाविचय (पा) धर्म्यध्यानका भेद ५६।४९
आज्ञाव्यापादिकी (पा) एक क्रिया ५८।७७
आत्माञ्जन (भौ) पूर्व विदेहका वक्षार गिरि ५।२२९
आत्मप्रवाद (पा) पूर्वगतश्रुतका एक भेद २।९८
आत्रेय (व्य) भार्गवाचार्यका प्रथम शिष्य ४५।४५
आत्रेय (भौ) देश विशेष ३।५
आदित्य विद्याके निकायका नामान्तर २२।५८
आदित्य(व्य)लौकान्तिक देवोंका एक भेद ९।६४
आदित्य (भौ) अनुदिशोंका इन्द्रक ६।५४
आदित्य (भौ) अनुत्तर विमान ६।६४
आदित्य (व्य) लौकान्तिक देवोंकी एक जाति २।४९
आदित्यधर्मा (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३८
आदित्यनगर (भौ) विजयार्धकी उत्तरश्रेणीकी नगरी२२।८५
आदित्यनाग (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३२
आदित्ययशस् (व्य) भरत चक्रवर्तीका पुत्र प्रचलित नाम अर्ककीर्ति १३।१
आदित्याभ (व्य) लान्तवेन्द्र २७।११४
आधि = मानसिक व्यथा ८।२८
आनक (व्य) वसुदेव १।९०
आनकदुन्दुभि (व्य) वसुदेव ५१।७
आनत (भौ) तेरहवाँ स्वर्ग ६।३८
आनत(भौ) आनतस्वर्गका प्रथम इन्द्रक ६।५१
आनन्द (भौ) वि. द. नगरी २२।९३
आनन्द(व्य) एक राजा५०।१२५
आनन्दा (भौ) नन्दीश्वर द्वीपसे उत्तर दिशा सम्बन्धी अंजनगिरिकी पश्चिम दिशामें स्थित वापिका ५।६६४
आनन्दा (व्य) रुचिकगिरिके अंजनकूटपर रहनेवाली देवी ५।७०६
आनन्दा (पा) समवसरणके अशोक वनकी वापिका ५७।३२
आनन्द (भौ) वि. उ. नगरी २२।८९
आनन्द कूट (भौ) गन्धमादनका एक कूट ५।२१८
आनन्दवती (पा) समवसरणके अशोक वनकी वापिका ५७।३२
आनन्दपुर(भौ) जरासन्धके नष्ट होनेपर यादवोंने जहाँ आनन्दनृत्य किया था५३।३०
आनन्द श्रेष्ठी (व्य) एक सेठ ६०।९७
आनन्दिनी = भेरी ४०।१९
आनयन (पा) देशव्रतका अतिचार ५८।१७८
आन्ध्री = मध्यमग्रामके आश्रित जाति १९।१७७
आप्त = रागादि दोष तथा ज्ञानावरणादि घातिया कर्मोंसे रहित १०।११
आप्य=जलकायिक जीव १८।७०
आभियोग्य = देवोंकी एक जाति ३।१३६
आभीर(भौ)देशका नाम११।६६
आभ्यन्तर परिग्रह(पा)मिथ्यात्व क्रोध, मान, माया, लोभ तथा हास्यादि ९ नोकषायके भेदसे १४ प्रकारका आभ्यन्तर परिग्रह २।२१
आमलक = आँवला ७।६९
आमोद = गन्ध २।३३
आर (भौ) पंकप्रभा पृथिवीके प्रथम पटलका इन्द्रक४।१२९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आरण (भौ) पन्द्रहवाँ स्वर्ग ६।३८
आरण (भौ) अच्युत स्वर्गका दूसरा इन्द्रक ६।५१
आरण (भौ) पन्द्रहवाँ स्वर्ग ४।१६
आरम्भ (भौ) कार्य करना शुरू करना ५८।८५
आर्य कूष्माण्ड देवी = एक विद्या २२।६४
आर्त्तध्यान (पा) खोटा ध्यान १ इष्टवियोगज २ अनिष्ट योगज ३ वेदनाजन्य ४ निदान ५६।४
आर्य = विद्याके निकायका नामान्तर २२।५८
आर्य (व्य) पवनगिरि और मृगावतीका पुत्र—सुमुखका जीव १५।२४
आर्या = साध्वी २।७०
आर्यवती = एक विद्या २।६५
आर्षभी = षड्ज स्वरसे सम्बद्ध जाति ११।१७४
आवाप=तालगत गान्धर्वका एक प्रकार १९।१५०
आवर्त (भौ) वि द. नगरी २२।९५
आवर्त (भौ) देशका नाम ११।७३
आवर्ता (भौ) पश्चिम विदेहका एक देश ५।२४५
आवली (पा)असंख्यात समयकी एक आवली होती है ७।१९
आवश्यकापरिहाणि = भावना ३४।१४२
आवृष्ट (भौ) देशका नाम ११।६५
आशा = दिशा ३।२७
आशा (व्य) रुचिकगिरिके कांचन कूटपर रहनेवाली देवी ५।७१६
आशाविश्वम्भराः = दिशारूपी पृथिवियाँ ३।३२
आशीविष (भौ)पश्चिम विदेहका वक्षारपीठ ५।२३०
आशीविषवधू=सर्पिणी ५४।२४
आषाढ़ (भौ) वि द. नगरी २२।९५
आसादन (पा) ज्ञानाव. और दर्शनाव. का आस्रव५८।९२
आसिङ्क (भौ) देशका नाम ११।७०
आसुवसु (व्य) वसुध्वजका पुत्र ६६।४
आस्थाङ्गणा (पा) समवसरणकी एक भूमि ५७।१२
औडव = चौदह मूर्च्छनाओंका एक स्वर १९।१६९
औपशमिक (पा) सम्यग्दर्शनका एक भेद ३।१४४
औषधी (भौ) विदेहकी नगरी ५।२५७
औषधीश = चन्द्रमा ४२।३
आधि=मानसिक व्यथा २८।२८

[इ]

इक्षुवरद्वीप (भौ) सातवाँ द्वीप ५।६१५
इक्षुवर सागर (भौ) सातवाँ सागर ५।६१५
इक्ष्वाकु (व्य) = इक्ष्वाकु वंशमें उत्पन्न हुए राजा २।४
इन = सूर्य २।९
इन = स्वामी ३५।१५
इभ्य = सेठ ४५।१००
इभपुर (भौ) हस्तिनापुर९।१५७
इभवाहन (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।१५
इन्दीवरा (व्य) राजा प्रचण्डवाहनकी पुत्री ४५।९८
इन्दु = चन्द्रमा २।२५
इन्दुवर (भौ) अन्तिम सोलह द्वीपोंमें पन्द्रहवाँ द्वीप ५।६२५
इन्द्र (पा) देवोंके स्वामी ३।१५१
इन्द्रक (भौ) रत्नप्रभा आदि पृथिवियोंके पटलोंके मध्यगत विल ४।१०३
इन्द्रक निगोद = नरकोंके इन्द्रक नामा विल ४।३५२
इन्द्रगिरि (व्य) एक राजा गान्धारीका पिता ६०।९३
इन्द्रगिरि (व्य) गान्धार देशकी पुष्कलावती नगरीका राजा ४४।४५
इन्द्रजुष्ट (वि) इन्द्रके द्वारा सेवित १।१०
इन्द्रद्युम्न (व्य) सूर्यका पुत्र १३।१०
इन्द्रध्वज (पा) समवसरणकी एक भूमि, जिसमें हेमपीठ होता है ५७।८५
इन्द्रमोदना = इन्द्रकी प्रेरणासे २।६८
इन्द्रपुर (भौ) पौलोम और चरमके द्वारा रेवाके तटपर बसाया हुआ नगर १७।२७
इन्द्रभूति(व्य)भगवान् महावीरका प्रथम गणधर अपर नाम गौतम ३।४१
इन्द्रवीर्य (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।२७
इन्द्रशर्मा (व्य) गिरितट नगरका एक ब्राह्मण २४।१
इला (व्य) रुचिकगिरिके लोहिताख्य कूटपर रहनेवाली देवी ५।७१२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इला (व्य) राजा दक्षकी स्त्री १७।३
इलाकूट (भौ) हिमवत् कुलाचलका चौथा कूट ५।५३
इलावर्धन (भौ) राजा दक्षकी इला रानीके द्वारा बसाया हुआ नगर १७।१८
इलावर्धनपुर (भौ) एक नगर जहाँ वसुदेव पहुँचे २४।३४
इष्वाकार (भौ) धातकीखण्ड और पुष्करार्ध द्वीपमें स्थित, पूर्व और पश्चिम भागके विभाजक पर्वत ५।४९४
इष्वाकार पर्वत (भौ) पुष्कर द्वीपके दक्षिण और उत्तरमें स्थित पूर्व और पश्चिम भागका विभाग करनेवाले पर्वत ५।५७८

[ई]

ईति=अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मूषक, शलभ, शुक और निकटवर्ती राजाओंके उत्पात, ये छह उपद्रव १।१८
ईर्यापथ (पा) आस्रवका भेद ५८।५९
ईर्यापथ क्रिया (पा) एक क्रिया ५८।६५
ईर्यासमिति (पा) प्रमादरहित हो चार हाथ जमीन देखकर चलना २।१२२
ईश्वर (व्य) नेमिनाथ भगवान् ५५।१०६
ईषत्प्राग्भार पृथिवी (भौ) आठवीं पृथिवी ६।४०
ईहापुर (भौ) एक नगर ४५।९३
ईहा (पा) मतिज्ञानका भेद १०।१४६

[उ]

उग्रसेन (व्य) मथुराका राजा १।९३
उग्रसेन (व्य) श्रीकृष्णके पक्षका राजा ५०।६९
उग्रसेन (व्य) भोजकवृष्णि और पद्मावतीका पुत्र १८।१६
उच्छ्वास-निश्वास(पा) संख्यात आवलियोंका समूह ७।१९
उज्जयिनी (भौ) नगरी ६०।१०५
उज्ज्वलित (भौ) बालुकाप्रभा पृथिवीके समस्त प्रस्तरका इन्द्रक विल ४।१२४
उत्कीलन = एक दिव्य ओषधि २१।१८
उत्कृष्ट शातकुम्भ = व्रतविशेष ३४।८७-८९
उत्कृष्टसिंह निष्क्रीडित = एक उपवास व्रत ३४।८०
उत्तमपात्र (पा) रत्नत्रयसे युक्त मुनि आदि ७।१०८
उत्तमवर्ण (भौ) देशविशेष ११।७४
उत्तरकुरु (भौ) नील कुलाचल और मेरुके बीचमें स्थित प्रदेश, जहाँ भोगभूमिकी रचना है ५।१६७
उत्तरकुरु (भौ) नीलपर्वतसे साढ़े पाँच सौ योजन दूर, नदीके मध्यमें स्थित ह्रद ५।१९४
उत्तरकुरु कूट (भौ) माल्यवान् पर्वतका कूट ५।२१९
उत्तरकुरु कूट (भौ) गन्धमादन पर्वतका एक कूट ५।२१७
उत्तरमन्द्रा = षड्ज स्वरकी मूर्च्छना १९।१६१
उत्तरश्रेणी (भौ) विजयार्धपर्वतकी उत्तर कगार, जिसपर साठ नगर स्थित हैं ५।२३
उत्तराध्ययन (पा) अंगबाह्यश्रुतका एक भेद २।१०३
उत्तराफाल्गुनी=एक नक्षत्र २।२३
उत्तरायता = षड्जस्वरकी मूर्च्छना १९।१६१
उत्तरार्ध (भौ) विजयार्धका आठवाँ कूट ५।२७
उत्तरार्ध कूट (भौ) ऐरावतके विजयार्धका दूसरा कूट ५।११०
उत्तानशय = चित्त सोनेवाला बालक ४२।१६
उत्पला (भौ) मेरुकी आग्नेय दिशामें स्थित एक वापी ५।३३४
उत्पलगुल्मा (भौ) मेरुपर्वतकी आग्नेय दिशामें स्थित वापी ५।३३४
उत्पलोज्ज्वला (भौ) मेरुकी आग्नेय दिशामें स्थित एक वापी ५।३३५
उत्पाद (पा) नवीन पर्यायका उत्पन्न होना १।१
उत्पादपूर्व (पा) पूर्वगत श्रुतका एक भेद २।९७
उत्पातिनी = एक विद्या २२।६८
उत्सर्पिणी (पा) दस कोड़ाकोड़ी अद्धा सागरोंकी एक उत्सर्पिणी ७।५६–५७
उदक (व्य) आगामी तीर्थ ६०।५५९
उदक, उदवास (भौ) लवणसमुद्रमें दक्षिण दिशाके कदम्बुक पातालके दोनों ओर स्थित दो पर्वत ५।४६१
उदक, उदवास (व्य) लवणसमुद्रमें शंख और महाशंख पर्वतके निवासी देव ५।४६२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदधि (व्य) दुर्योधनकी पुत्री, जो प्रद्युम्नको विवाही गयी ४७।९१
उदधि (व्य) कृष्णका पुत्र४८।७०
उदधिकुमार = भवनवासी देवोंका एक भेद ४।६३
उदय (पा) स्फटिक सालका पूर्व गोपुर ५७।५७
उदय(पा)आग्रायणी पूर्वके चतुर्थ प्राभृतका योगद्वार १०।८३
उदय (पा) स्फटिक सालका उत्तर गोपुर ५७।६०
उदयपर्वत (भौ) वि. द. नगरी २२।९९
उदात्त = वेदमें प्रयुक्त होनेवाला स्वरविशेष (उच्चैरुदात्तः) १७।८७
उदितपराक्रम (व्य) सुवीर्यका पुत्र १३।१०
उदीच्यवा = षड्जस्वरसे सम्बद्ध जाति १९।१७४
उद्व = उत्कृष्ट २।१५
उद्धव (व्य) समुद्रविजयके भाई अक्षोभ्यका पुत्र ४८।४५
उद्धारपल्य (पा) कालका एक परिमाण ७।४९–५०
उद्धारसागर (पा) दश कोड़ाकोड़ी उद्धारपल्योंका एक उद्धार सागर ७।५१
उद्भ्रान्त (भौ) रत्नप्रभाके पंचम प्रस्तारका इन्द्रक विल ४।७६
उद्यभाषण (अनुवीचिभाषण) = आगमानुकूल वचन बोलना ५८।११९
उदंग, उदवास (व्य) लवणसमुद्रके कौस्तुभ और कौस्तुभास पर्वतके निवासी देव ५।४६०
उन्मग्नजला (भौ) विजयार्धकी गुहामें पड़नेवाली नदी ११।२६
उन्मत्तजला (भौ) विदेह क्षेत्रकी एक विभंगा नदी ५।२४०
उन्मुख (व्य) नौवाँ नारद ६०।५४८
उन्मुण्ड (व्य) बलदेवका पुत्र ४८।६६
उन्मूल व्रणरोह = एक दिव्य ओषधि २१।१८
उपक्रम (पा) आग्रायणी पूर्वके चतुर्थ प्राभृत योगद्वार १०।८३
उपनन्दन (भौ) मेरुका एक वन ५।३०८
उपपाण्डुक (भौ) मेरुका एक वन ५।३०९
उपभोग(पा)जो एक बार भोगनेमें आये ५८।१५५
उपभोगपरिभोग परिमाण (पा) शिक्षाव्रतका भेद ५८।१५५-५६
उपभोगादिनिरर्थन (पा) अनर्थदण्ड व्रतका अतिचार ५८।१७९
उपसौमनस (भौ) मेरुका एक वन ५।३०८
उपाधिवाक् भाषा (पा) सत्यप्रवादपूर्वकी द्वादश भाषाओंमें-से एक भाषा १०।९४
उपाध्याय (व्य) उपाध्याय परमेष्ठी १।२८
उपाध्याय (पा) आग्रायणीपूर्वकी वस्तु १०।८०
उपायविचय (पा) धर्म्यध्यानका भेद ५६।४१
उपायानाय = उपायरूपी जाल ५०।१५
उपशमक (पा) चारित्रमोहका उपशम करनेवाला ३।८२
उपशान्त कषाय (पा) ग्यारहवाँ गुणस्थान ३।८२
उपसर्ग = पदगत गान्धर्वकी विधि १९।१४९
उपसर्ग (पा) देव, मनुष्य, पशु और अचेतनकृत उपद्रव १।१२३
उपांशु = एकान्त १९।१४
उर्वरा = भूमि ३६।४
उरश्छद = कवच ११।१३
उलूक(व्य)कृष्ण और जरासन्धके युद्धका एक पात्र जिसका नकुलके साथ युद्ध हुआ ५१।३०
उल्मुक (व्य) एक राजा५०।८३
उशीरावर्त (भौ) एक देश, जहाँ चारुदत्त व्यापारके लिए गया था २१।७५
उषा (व्य) शोणितपुरके निवासी बाण विद्याधरकी पुत्री ५५।१७

[ऊ]

ऊर्जयन्त (भौ) गिरिनार पर्वत १।११५
ऊर्ध्वव्यतिक्रम (पा) दि. व्रतका अतिचार ५८।१७७
ऊर्मिमान् (व्य) स्तिमितसागरका पुत्र ४८।४६
ऊर्मिमालिनी (भौ) विदेहकी विभंगा नदी ५।२४२
ऊरुधर्म(व्य)एक मुनि६०।११०
ऊह(पा) चौरासी लाख ऊहांगोंका एक ऊह ७।३०
ऊहाङ्ग (पा)चौरासी लाख अममांगोंका एक ऊहांग ७।३०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[ऋ]

ऋजुकूलापगा (भौ) गिरीडीहके पासकी वराकट नदी २।५७

ऋजुमति (पा) मनःपर्ययज्ञानका एक भेद १०।१५३

ऋजुसूत्र (पा) एक नभ ५८।४१

ऋतु (भौ) सौधर्म युगलमें प्रथम इन्द्रक ६।४४

ऋतु (पा) दो मासकी एक ऋतु होती है ७।२१

ऋद्धीश (भौ) सौधर्म युगलका तेरहवाँ इन्द्रक ६।४५

ऋषभ = एक स्वर १९।१५३

ऋषभ (व्य) प्रथम तीर्थंकर ९।७३

ऋषि = ऋद्धिधारी मुनि ३।६१

ऋषिगिरि (भौ) राजगृहीकी एक पहाड़ीका नाम ३।५३

ऋषिगुप्त (व्य) ऋषभदेवका गणधर १२।६३

ऋषिदत्त (व्य) ऋषभदेवका गणधर १२।६३

ऋषिदत्ता (व्य) अमोघदर्शनकी चारुमति स्त्रीसे तापसोंके वनमें उत्पन्न कन्या २९।३४

[ए]

एक कल्याणविधि = व्रतविशेष ३४।११०

एकत्ववितर्कावीचार (पा) शुक्लध्यानका दूसरा भेद ५६।६५

एकपर्वा = एक विद्या २२।६७

एकभक्त (पा) मुनियोंका एक मूलगुण, दिनमें एक बार ही भोजन करना २।१२८

एकशैल (भौ) पूर्वविदेहका वक्षारगिरि ५।२२८

एकातपत्र = अद्वितीय ३।३६

एकादशाङ्ग = आचारांग आदि ग्यारह अंग

एकावलीविधि = एक उपवास ३४।६७

एणीपुत्र (व्य) श्रावस्तीका राजा २८।५

एणीपुत्र (व्य) श्रावस्तीके राजा शीलायुधकी ऋषिदत्ता स्त्रीसे उत्पन्न पुत्र २९।५३

एरा (व्य) राजा विश्वसेनकी स्त्री, भगवान् शान्तिनाथकी माता ४५।१८

एवंभूत (पा) एक नय ५८।४१

एषणा समिति (पा) दिनमें एक बार शुद्ध आहार ग्रहण करना २।१२४

एषणा समिति व्रत = व्रतविशेष ३४।१०८

[ऐ]

ऐरावण (भौ) नील पर्वतसे साढ़े पाँच सौ योजन दूर नदीके मध्यमें स्थित एक ह्रद ५।१९४

ऐरावत = सौधर्मेन्द्रका हाथी ३८।२१

ऐरावतकूट (भौ) शिखरिकुलाचलका दसवाँ कूट ५।१०७

ऐरावत (भौ) जम्बू द्वीपकी उत्तर दिशामें शिखरिन् कुलाचल और लवणसमुद्रके मध्य स्थित सातवाँ क्षेत्र ५।१४

ऐरावती (भौ) एक नदी २७।११९

ऐरावती (भौ) एक नदी २१।१०२

ऐलेय (व्य) राजा दक्ष और इलाका पुत्र १७।३

ऐशान (भौ) द्वितीय स्वर्ग ४।१४

ऐशान = विद्यास्त्र २५।४९

ऐशान (भौ) दूसरा स्वर्ग ६।३६

ऐशान = द्वितीय स्वर्गका इन्द्र २।३८

[क]

ककुभ्=पूर्वादि दशों दिशाएँ १।८

कच्छ (व्य) ऋषभदेवका गणधर १२।६८

कच्छकावती (भौ) पश्चिम विदेहका एक देश ५।२४५

कच्छा (भौ) पश्चिम विदेहका एक देश ५।२४५

कच्छा कूट (भौ) माल्यवान् पर्वतका एक कूट ५।२१९

कज्जला (भौ) मेरुके नैऋत्यमें स्थित एक वापी ५।३४३

कज्जलप्रभा (भौ) मेरुके नैऋत्यमें स्थित एक वापी ५।३४३

कण्ठक=गलेका आभूषण ६२।८

कदन = युद्ध १।१०८

कदम्बुक (भौ) लवणसमुद्रका पश्चिम दिशास्थित पाताल ५।४४३

कनक कनकाभ (व्य) घृतवर समुद्रके रक्षक देव ५।६४२

कनक (व्य) आगामी प्रथम मनु ६०।५५५

कनक कूट (भौ) मानुषोत्तरकी पश्चिम दिशाका एक कूट ५।६०४

कनककेशी (व्य) खमाली तापसकी स्त्री २७।११९

कनकपुञ्जश्री (व्य) नमिकी पुत्री २२।१०८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कनक कूट (भौ) रुचिकगिरिका एक कूट ५।७०५
कनक (भौ) कुण्डलगिरिकी पूर्व-दिशाका एक कूट ५।६९०
कनकचित्रा (व्य) रुचिकगिरिके नित्यालोक कूटपर रहने-वाली देवी ५।७१९
कनकध्वज (व्य) आगामी चौथा मनु ६०।५५५
कनकपुङ्गव (व्य) आगामी पाँचवाँ मनु ६०।५५५
कनकप्रभ (भौ) कुण्डलगिरिकी पूर्व दिशाका एक कूट ५।६९०
कनकप्रभ (व्य) आगामी दूसरा मनु ६०।५५५
कनकप्राकार (पा) समवसरणका स्वर्ण निर्मित कोट ५७।२४
कनकमञ्जरी (व्य) नमिकी पुत्री २२।१०८
कनकमाला (व्य) राजा काल-संवरकी स्त्री ४३।४९
कनकमाला (व्य) महेन्द्र और सानुधरीकी पुत्री ६०।८१
कनकमालिनी (व्य) गिरिनगरके राजा चित्ररथकी स्त्री ३३।१५०
कनकमेखला (व्य) मेघदल नगरके राजा सिंहकी स्त्री ४६।१४
कनकराज (व्य) आगामी तीसरा मनु ६०।५५५
कनकावलीविधि = एक उपवास व्रत ३४।७३-७७
कनकावर्त (व्य) सिंह और कनकमेखलाकी पुत्री ४६।१५
कमीयस् (भौ) देशविशेष ३।४
कन्दर्प = देवविशेष ३।१३६
कन्दर्प (पा) अनर्थदण्डव्रतका अतिचार ५८।१७९
क्षपकश्रेणी (पा) जिसमें चारित्र-मोह कर्मका क्षय होता है ५६।८८
कपाट (पा) लोकपूरण समुद्-घातका दूसरा चरण५६।७४
कपिल (व्य) एक राजा ५०।८२
कपिल (व्य) धातकीखण्डके भरतक्षेत्रका नारायण ५४।५६
कपिल (व्य) वसुदेव और कपिलाका पुत्र २४।२७
कपिला (व्य) वेदसामपुरके राजा कपिलश्रुतिकी पुत्री २४।२६
कपिल (व्य) वसुदेव और मित्र-श्रीका पुत्र ४८।५८
कपिला (व्य) सत्यभामाके भवान्तर वर्णनसे सम्बद्ध एक स्त्री ६०।११
कपिलश्रुति (व्य) वेदसामपुरका राजा २४।२६
कपिष्ठल (व्य) वामदेवका शिष्य ४५।४६
क्षपक (पा) क्षपकश्रेणीवाला चारित्रमोहका क्षय करने-वाला मुनि ३।८२
कवल (पा) एक हजार चावल-का एक कवल-ग्रास होता है ११।१२५
कमल (पा) चौरासी लाख कमलांगोंका एक कमल ७।२७
कमला (पा)समवसरणके चम्पक वनकी वापिका ५७।३४
कमला (व्य) उज्जयिनीके वृषभध्वज राजाकी स्त्री ३३।१०३
कमला (व्य) चित्रबुद्धि मन्त्रीकी स्त्री २७।९८
कमलाङ्ग (पा) चौरासी लाख नलिनोंका एक कमलांग ७।२७
कम्बल (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३७
कर = सूँड २।३७
कराल ब्रह्मदत्त (व्य) एक मुनि २३।१५०
कर्करिका = झारी १५।११
कर्कोटक (व्य) धरणका पुत्र ४८।५०
कर्कोटक (भौ) कुम्भकण्टक द्वीप-का एक पर्वत २१।१२३
कर्कोटक (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३६
कर्ण (व्य) राजा पाण्डुका कन्या अवस्थामें कुन्तीसे उत्पन्न पुत्र ४५।३७
कर्णसुवर्ण(भौ)जहाँ राजा कर्णने कर्णकुण्डल छोड़े थे ५२।९०
कर्बुक (भौ) देशका नाम११।७१
कर्मक्षयविधि = व्रतविशेष ३४।१२१
कर्मन् (पा) आग्रायणी पूर्वके चतुर्थ प्राभृतका योगद्वार १०।८२
कर्मप्रवाद (पा) पूर्वगत श्रुतका एक भेद २।९८
कर्मभूमि (पा) जहाँ असि, मषी आदि छह कर्मोंसे आजीविका होती है३।११२
कर्मारवी=मध्यमग्रामके आश्रित जाति १९।१७७
कर्मस्थिति (पा) आग्रायणी पूर्वके चतुर्थ प्राभृतका योगद्वार १०।८६
कलत्र=स्त्री १।११९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कलहभाषा (पा) सत्यप्रवादपूर्वकी १२ भाषाओंमें-से एक भाषा १०।९२
कलधौत = स्वर्ण १।४३
कलध्वान = मधुर शब्द करनेवाले १।४७
कलरव = कबूतर ३६।१
कलिङ्ग (भौ)देशका नाम११।७०
कलिङ्गसेना (व्य) चम्पापुरीकी एक प्रसिद्ध गणिका२१।४१
कलिन्दसेना (व्य) राजा जरासन्धकी स्त्री १८।२४
कलोपनता = मध्यम ग्रामकी मूर्च्छना १९।१६३
कल्प (पा) बीस कोड़ाकोड़ी कालको कल्प कहते हैं अव० + उत्सर्पिणी ७।६३
कल्प (पा)सोलह स्वर्ग ३।१४९
कल्प = स्वर्ग ४।१६
कल्प (पा) आग्रायणी पूर्वकी वस्तु १०।७९
कल्पाकल्प (पा) अंग बाह्यश्रुतका एक भेद २।१०४
कल्पपुर (भौ) राजा महीदत्तका बसाया नगर १७।२९
कल्पभूमि (पा) समवसरणकी आधारभूमि ५७।५
कल्पवासिन् =स्वर्गोंमें रहनेवाले वैमानिक देव ३।१३५
कल्पव्यवहार (पा) अंग बाह्यश्रुतका एक भेद
कल्पवासस्तूप (पा)समवसरणके स्तूप ५७।९९
कल्पनिवासिनी = स्वर्गकी देवांगनाएँ २।७७
कल्पातीत (पा) सोलह स्वर्गोंके आगेके देव ३।१५०
कल्याणपूर्व (पा) पूर्वगतश्रुतका एक भेद २।९९
कल्याणाङ्गण (पा) समवसरणकी एक भूमि ५७।६७
कल्लीवनोपान्त (भौ) देशका नाम ११।७१
काञ्चि (भौ) देशका नाम ११।७२
काकणीमणि = चक्रवर्तीका एक मणि जिससे प्रकाश होता है ११।२७
काकली = चौदह मूर्च्छनाओंका एक स्वर १९।१६९
काङ्क्ष (भौ) प्रथम पृथिवी सम्बन्धी प्रथम प्रस्तारके सीमन्तक इन्द्रककी पूर्व दिशामें स्थित एक महानरक ४।१५१
काञ्चन (भौ) वि. उ. नगरी २२।८८
काञ्चन (भौ) रुचिकगिरिका उत्तर दिशा सम्बन्धी कूट ५।७१६
काञ्चना (भौ) सौधर्म युगलका नौवाँ इन्द्रक ६।४५
काञ्चना(व्य)रुचिकगिरिके कुमुद कूटपर रहनेवाली देवी ५।७१३
काञ्चनक (व्य)मेरु पर्वतके कूटोंपर बसनेवाले देव ५।२०४
काञ्चनकूट (भौ) सीता-सीतोदा नदियोंके तटपर स्थित पर्वतविशेष ५।२००
काञ्चनकूट (भौ) रुचिकगिरिका एक कूट ५।७०५
काञ्चनकूट (भौ) सौमनस पर्वतका एक कूट ५।२२१
काञ्चनपुर (भौ) कलिंगदेशका एक नगर २४।११
काञ्चनरथ (व्य)जरासन्धका पुत्र ५२।३१
कान्ता (व्य) भानुषेणकी स्त्री ३३।९९
कादम्बरी = मदिरा ६१।३६
कान्दिशीक=भयसे पलायमान ३१।६५
कानीन = कन्या अवस्थाका पुत्र कर्ण ५०।८८
कापथमलाविल (वि) कुमार्गरूपी मलसे मलिन १।१५
कापिष्ट (भौ) आठवाँ स्वर्ग४।१५
कापिष्ठलायन (व्य) एक ब्राह्मण १८।१०३
कापोतलेश्या = लेश्याका एक भेद ४।३४३
काम (व्य) रुद्र ६०।५७१
काम (व्य) प्रद्युम्न ४८।१३
कामतीव्राभिनिवेश (पा) ब्रह्मचर्याणुव्रतका अतिचार ५८।१७४
कामद (व्य) रुद्र ६०।५७१
कामदत्त (व्य) श्रावस्तीका एक सेठ २८।११८
कामदृष्टि (व्य) चक्रवर्तीका गृहपतिरत्न ११।२८
कामदेव (व्य) श्रावस्तीके कामदत्त सेठके वंशमें उत्पन्न हुआ एक सेठ २९।६
कामदेव (व्य) ऋषभदेवका गणधर १२।६९
कामपताका (व्य) रंगसेना गणिकाकी पुत्री २९।२७
काम्बोज(भौ)देशका नाम ११।६६
कायोत्सर्ग = निश्चित समय तक शरीरसे ममता त्याग ३४।१४६
कार्ण (भौ) देशविशेष ३।६
कार्तवीर्य(व्य) गजपुर-(हस्तिनापुर)के कौरव वंशमें उत्पन्न हुआ एक राजा २५।८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काल (पा) परिणमनमें सहायक एक द्रव्य ५८।५६
काल (भौ) सातवीं पृथिवीके अप्रतिष्ठान इन्द्रककी पूर्व दिशामें स्थित महानरक ४।१५८
काल (व्य) कालोदधिका रक्षक देव ५।६३८
काल (पा) चक्रवर्तीकी एक निधि ११।११०
काल (व्य) पाँचवाँ नारद ६०।५४८
काल=दिति देवीके द्वारा प्रदत्त विद्यानिकाय २२।५९
कालकेशपुर (भौ) वि. द. नगरी २२।९८
कालमुख(व्य)एक राजा ३१।९७
कालमुखी=एक विद्या २२।६६
कालयवन (व्य) राजा जरासन्धका पुत्र १८।२४
कालश्वपाकी = विद्याधरोंकी एक जाति २६।१८
कालसंवर (व्य) मेघकूट नगरका राजा ४३।४९
कालाञ्जला=एक अटवी ४६।७
कालातिक्रम (पा) अतिथिका अतिचार ५८।१८३
कालिङ्गी (व्य) पूरणकी स्त्री १९।५
कालिन्दी (भौ) यमुनानदी १४।२
कालिन्दी (व्य) सुभानुकी स्त्री ३३।९९
कालियाहि (व्य) यमुनाके ह्रदमें रहनेवाला एक सर्प ३६।७
काली = एक विद्या २२।६६
कालोदसागर (भौ) धातकीखण्ड द्वीपको घेरकर स्थित कालोदधि समुद्र ५।५६२
काव्य=रमणीयार्थके प्रतिपादक शब्दविशेषोंका समूह १।४४
काशि (भौ) देशका नाम ११।६४
काष्ठा = दिशा ५४।७३
किन्नरोद्गीत (भौ) विजयार्धका एक नगर १९।८०
किरीटी (व्य) अर्जुन ५५।५
किल्विषक = देवोंकी एक जाति ३।१३६
किष्किन्ध (भौ) देशका नाम ११।७३
किष्कु (पा) दो हाथोंका एक किष्कु ७।४५
कीचक(व्य)राजा चूलिकका पुत्र
कीर्ति(पा) स्फटिक सालका पूर्व गोपुर ५७।५७
कीर्ति (द्वितीय) (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।२५
कीर्ति (व्य) केसरि सरोवरमें रहनेवाली देवी ५।१३०
कीर्तिकूट (भौ)नील कुलाचलका पाँचवाँ कूट ५।१००
कीर्तिमती (व्य) रुचिकगिरिके रुचकोत्तर कूटपर रहनेवाली देवी ५।७१०
कुकुन्दर = नितम्बोंमें पड़नेवाले गर्तविशेष ८।१४
कुञ्जरावर्त (भौ) वि. द. नगरी २२।९६
कुणिम (व्य) ऐलेयका पुत्र १७।२३
कुणीयान् (भौ) देशका नाम ११।६५
कुण्डपुर(भौ) गोदावरीके निकट एक ग्राम ३१।३
कुण्डपुर (भौ) महावीर स्वामीका जन्मस्थान ६६।७
कुण्डल (भौ) रुचिकगिरिका उत्तर दिशा सम्बन्धी कूट ५।७१६
कुण्डलगिरि (भौ) कुण्डलवर द्वीपके मध्यमें स्थित चूड़ीके आकारका एक पर्वत५।६८६
कुण्डलवर सागर (भौ)ग्यारहवाँ सागर ५।६१८
कुण्डलवर द्वीप (भौ) ग्यारहवाँ द्वीप ५।६१८
कुण्डला (भौ) विदेहकी एक नगरी ५।२५९
कुण्डिन(भौ)विदर्भ देशकी वरदा नदीके तटपर बसा एक नगर, इसे कुणिमने बसाया था १७।२३
कुण्डिन(भौ) एक नगर ६०।३९
कुण्डिन(भौ)एक नगर रुक्मिणीका जन्म-स्थान ४२।३३
कुतुप = नटोंका समूह २२।१३
कुतीर्थध्वान्त = मिथ्यामतरूपी अन्धकार १।१४
कुन्तल(भौ)देशका नाम११।७०
कुन्ती (व्य) अन्धकवृष्णिकी बहन, पाण्डुकी स्त्री१८।१५
कुन्थु (व्य) श्रेयांसनाथका प्रथम गणधर ६०।३४७
कुन्थु (व्य) सत्रहवें तीर्थंकर, छठे चक्रवर्ती ४५।२०
कुन्थु (व्य) अरनाथका प्रथम गणधर ६०।३४८
कुपात्र (पा) मिथ्यादर्शन ज्ञान चारित्रके धारक ७।११४
कुपूतना (व्य) कंसकी पूर्वभव सम्बन्धी विद्या देवता ३५।४२
कुप्यप्रमाणातिक्रम (पा)परिग्रह परिमाणाणुव्रतका अतिचार ५८।१७६
कुबेर (व्य) देवविशेष १।९९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुबेरदत्त (व्य) महापुरका एक सेठ २४।५०
कुब्जा (व्य) शिवादेवीकी एक दासी १९।४१
कुमारदेव (व्य) धनदेव और सुकुमारिकाका पुत्र ४६।५१
कुमारसेन (व्य) एक आचार्य १।३८
कुम्भ (व्य) भगवान् ऋषभदेवका गणधर १२।५५
कुमुद (पा) चौरासी लाख कुमुदांगोंका एक कुमुद ७।२६
कुमुद (व्य) वसुदेवका पुत्र ५०।११५
कुमुद (भौ) रुचिकगिरिका पश्चिम दिशा सम्बन्धी कूट ५।७१३
कुमुद कूट(भौ) मेरुसे पश्चिमकी ओर शीतोदा नदीसे दक्षिण तटपर स्थित एक कूट ५।२०६
कुमुदाङ्ग (पा) चौरासी लाख निपुणोंका एक कुमुदांग ७।२६
कुमुदामेलक (व्य) भरतचक्रवर्तीका घोड़ा ११।२३
कुमुदप्रभा (भौ) मेरुके ऐशानमें स्थित एक वापी ५।३४५
कुमुदा (भौ) मेरुके ऐशानमें स्थित एक वापी ५।३४५
कुमुदा (भौ) नन्दीश्वर द्वीपके पश्चिम दिशा सम्बन्धी अंजनगिरिकी पश्चिम दिशामें स्थित वापिका ५।६६२
कुमुदा (पा) समवसरणके चम्पक वनकी वापिका ५७।३४
कुमुदा (भौ) पूर्व विदेहका एक देश ५।२४९
कुम्भकण्टक (भौ) एक द्वीप २१।१२३
कुरु (व्य) जयकुमारका पुत्र ४५।९
कुरु (व्य) कुरुवंशका एक दानी ४५।१९
कुरुचन्द्र (व्य) कुरुका पुत्र ४५।९
कुरुजाङ्गल देश (भौ) हस्तिनापुरका समीपवर्ती प्रदेश ४५।६
कुरुद्वय = देवकुरु, उत्तरकुरु ५।८
कुरुमती (भौ) एक नगरी ६०।८५
कुल(पा) जीवोंके शरीर निर्माणके योग्य पुद्गल वर्गणाएँ कुलकोटी २।११६
कुलकर (पा) मनु, ये १४ होते हैं ७।१२३
कुलकीर्ति (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।२५
कुलिशायुध = इन्द्र ३८।२२
कुश (भौ) देशविशेष ११।७५
कुशद्य (भौ) देशविशेष १८।९
कुशवर द्वीप(भौ) पन्द्रहवाँ द्वीप ५।६२०
कुशवर सागर (भौ) पन्द्रहवाँ सागर ५।६२०
कुशाग्र (भौ) देशका नाम ११।६५
कुशाग्रपुर (भौ) राजगृहीका दूसरा नाम १५।६१
कुशील (पा) मुनिका एक भेद ६०।५८
कुसन्ध्य (भौ) देशविशेष ३।३
कुसुमकोमला (व्य) राजा वर्णकी पुत्री ४५।६२
कुसुमचित्रसभा = श्रीकृष्णकी सभा ५५।२
कुसुमवती (भौ) वरुण पर्वतके समीप पंचनद समागमकी एक नदी २७।१४
कुसुमावली (व्य) सुनार विद्याधरकी स्त्री ४६।९
कूटदोष = मिथ्यादोष ४५।१५५
कूटलेख क्रिया (पा) सत्याणुव्रतका अतिचार ५८।१६७
कूष्माण्ड गणमाता=एक विद्या २२।६४
कृतमाल (व्य) तमिस्रगुहाका निवासी देव ११।२१
कृतवर्मा(व्य)एक राजा ५०।८३
कृतात्मन् (वि)=कृतकृत्य १।९
कृति (पा) आग्रायणी पूर्वके चतुर्थ प्राभृतका योगद्वार १०।८२
कृतिकर्म (पा) अंगबाह्यश्रुतका एक भेद २।१०३
कृतिधर्मा (व्य) हृदिकका पुत्र ४८।४२
कृष्ण (व्य) निर्नामिक जीव, देवकीका पुत्र ३३।१७३
कृष्ण (व्य) नौवाँ नारायण ६०।२८९
कृष्णलेश्या (पा) लेश्याका एक भेद ४।३४४
कृष्णा (व्य) द्रौपदी ५४।३३
केतुमती(व्य) जरासन्धकी पुत्री, जितशत्रुकी स्त्री ३०।४५
केतुमती (व्य) एक कन्या, जो पुण्डरीक नारायणकी स्त्री हुई २६।५२
केतुमाल (भौ) वि. उ. नगरी २२।८६
केतुमाली (व्य)जरासन्धका पुत्र ५२।३५
केतुमालिन् (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।४०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केवलज्ञान (पा) सकल प्रत्यक्ष ज्ञान १०।१५४
केवलिन् = केवलज्ञानके धारक सर्वज्ञ १।५८
केशव = कृष्ण १।११९
केशरिन् (व्य) विजयका पुत्र ४८।४८
केसरिन् (भौ) नीलकुलाचलका-ह्रद ५।१२१
कैकय (भौ)देशका नाम ११।६६
कैटभ(व्य)हेमनाथ और धरावती-का पुत्र ४३।१६९
कैशिकी=मध्यम ग्रामके आश्रित जाति १९।१७७
कोदण्ड=(पा) धनुष (चार हाथ-का एक धनुष होता है) ४।३३६
कौण्डिन्य (व्य) वैदिक विद्वान् २।६८
कौत्कुच्य (पा) अनर्थदण्डव्रतका अतिचार ५८।१७९
कौथुमि (व्य) आत्रेयका शिष्य ४५।४५
कौन्तेय=युधिष्ठिर आदि पाण्डव ४५।४३
कौमुदी (व्य) श्रीकृष्णकी गदा ५३।४९
कौबेर (पा) स्फटिक सालका उत्तर गोपुर ५७।६०
कौशल (भौ) एक देश ४६।१७
कौशल्य (भौ) देशविशेष ३।३
कौशाम्ब वन (भौ) एक वन ६२।१५
कौशाम्बी (भौ) एक नगरी ३३।१३
कौशाम्बी नगरी (भौ) वत्स देश-की राजधानी १४।२
कौशिक = विद्याधरोंकी जाति २६।१३
कौशिक(व्य) एक ऋषि२५।११
कौशिक (भौ) वि. उ. नगरी २२।८८
कौशिक = अदिति देवीके द्वारा विद्याओंका एक निकाय २२।५७
कौशिक (व्य) एक जटाधारी ऋषि २९।२९
कौशिका(भौ)एक नगरी४५।६१
कौस्तुभ, कौस्तुभास (भौ) लवणसमुद्रमें पूर्व दिशाके पाताल विवरकी दोनों ओर स्थित दो पर्वत ५।४६०
क्रम = चरण ८।८
क्रमण (व्य) मानुषोत्तरके कनक कूटपर रहनेवाला देव ५।६०५
क्वाथतोय (भौ) देशविशेष३।६
क्वाथतोय (भौ) देशका नाम ११।६६
क्रियावादी (पा) मिथ्यात्वका एक भेद ५८।१९४
क्रियाविशाल पूर्व (पा) पूर्वगत भेद श्रुतका एक भेद२।१००
क्रूर (व्य) वसुदेवकी विजयसेना स्त्रीसे उत्पन्न पुत्र ४८।५४
क्रौञ्चवर द्वीप (भौ) सोलहवाँ द्वीप ५।६२०
क्रौञ्चवर सागर (भौ) सोलहवाँ सागर ५।६२०
कंस(व्य) वसुदेवका शिष्य राजा उग्रसेन और पद्मावतीका पुत्र ३३।२
कंस (व्य) जरासन्धका जामाता उग्रसेनका पुत्र ५०।१४
कंस (व्य)मथुराका राजा१।८७
कंसाचार्य (व्य) ग्यारह अंगके ज्ञाता एक आचार्य १।६४
क्षत्रिय (व्य) दशपूर्वके ज्ञाता एक आचार्य १।६२
क्षान्ति (पा) सातावेदनीयका आस्रव ५८।९४
क्षायिकसम्यक्त्व (पा) दर्शन मोहकी तीन और अनन्तानु-बन्धीकी चार इन सातके क्षयसे होनेवाला सम्यग्दर्शन २।१३७
क्षायोपशमिक (पा) सम्यग्दर्शन-का एक भेद ३।१४३
क्षुत = छींक ३५।२४
क्षीणकषाय (पा) बारहवाँ गुण-स्थान ३।८३
क्षीरवर द्वीप (भौ) पाँचवाँ द्वीप ५।६१४
क्षीरसागर = (भौ) पाँचवाँ समुद्र २।४२
क्षीरकदम्ब (व्य) एक वेदविद् ब्राह्मण १७।३८
क्षीरोद सागर (भौ) पाँचवाँ समुद्र ५।६१४
क्षीरोदा (भौ) विदेहकी एक विभंगा नदी ५।२४१
क्षुद्र (व्य) एक म्लेच्छ ४६।४९
क्षेत्र (पा) खेत—अन्न उपजनेका स्थान २।३
क्षेत्रवृद्धि (पा) दिग्व्रतका अतिचार ५८।१७७
क्षेमंकर (व्य) तीसरा कुलकर ७।१५०
क्षेमन्धर (व्य) चौथा कुलकर ७।१५२
क्षेमधूर्त (व्य)एक राजा५०।८२
क्षेमपुरी (भौ) सुकच्छा देशकी राजधानी ५।२५७
क्षेमा (भौ) कच्छा देशकी राजधानी ५।२५७
क्षोणी = पृथिवी ३।१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[ख]

खग = विद्याधर ४४।४
खग = विद्याधर १।१०४
खड्ग (भौ) देशका नाम ११।६८
खड्गा (भौ) विदेहकी एक नगरी ५।२५७
खड्गा (भौ) विदेहकी एक नगरी ५।२६३
खण्डक प्रपात (भौ) विजयार्धका तीसरा कूट ५।२६
खण्डक प्रपात कूट (भौ) ऐरावतके विजयार्धका सातवाँ कूट ५।१११
खण्डका पात (भौ) विजयार्धकी गुफा ११।५३
खण्डिका (भौ) वि. उ. नगरी २२।८९
खद्योत = जुगनू १।५२
खमाली (व्य) एक तापस २७।११९
खर निदाघ = तीक्ष्ण उष्णऋतु ५५।५०
खरभाग (भौ) रत्नप्रभा पृथिवीका पहला भाग ४।४८
खर्वट (पा) पर्वतसे घिरा नगर २।३
खरी = गधी ६०।३१
खलव्याल = दुर्जन रूपी साँप १।४६
खलीकार=तिरस्कार १७।१५७
खेट (पा) नगर और पर्वतसे घिरा नगर २।३

[ग]

गगनचन्द्र (व्य) गगनवल्लभ नगरका राजा ३४।३५
गगनायन = आकाशगमन ३।१४
गगनमण्डल (भौ) वि. उ. नगरी २२।८५
गगनवल्लभ (भौ) वि. उ. नगरी २२।८५
गगनवल्लभ (भौ) पुष्कलावती देशके वि. उ. का एक नगर ३४।३४
गगनवल्लभा (व्य) अच्युतेन्द्रकी महादेवी ६०।३८
गगनसुन्दरी (व्य) गगनवल्लभ नगरके राजा गगनचन्द्रकी स्त्री ३४।३५
गङ्ग, गङ्गदत्त (व्य) हस्तिनापुरके राजा गंगदेव और नन्दयशाके युगल पुत्र ३६।१४१
गङ्गदत्त (व्य) कृष्ण ३३।२२
गङ्गदत्त (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३३
गङ्गदेव (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।११
गङ्गदेव (व्य) दशपूर्वके ज्ञाता एक आचार्य १।६३
गङ्गरक्षित, नन्द (व्य) युगलयुक्त ३३।१४१
गङ्गा (भौ) चौदह महानदियोंमेंसे एक नदी ५।१२३
गङ्गाकूट (भौ) हिमवत् कुलाचलका पाँचवाँ कूट ५।५४
गङ्गादेवी (व्य) गंगाकूटपर रहनेवाली देवी ११।५१
गङ्गानुकूल = गंगाके किनारे-किनारे ११।३
गङ्गा-सिन्धु (भौ) विदेह क्षेत्रके कच्छा आदि देशोंमें बहनेवाली नदियाँ ५।२६७
गजकुमार (व्य) श्रीकृष्णके एक भाई १।११६
गजपुर (भौ) हस्तिनागपुर १८।१०३
गजवती (भौ) वरुण पर्वतके समीप पंचनद समागमकी एक नदी २७।१४
गणधारिन् = तीर्थंकरकी सभा प्रमुख श्रोता४ ज्ञानके धारी अपर नाम गणधर ३।४१
गणभृद् = गणधर १।७५
गणबद्ध (व्य) भरत चक्रवर्तीके आज्ञाकारी देव ११।३७
गण्यपुर (भौ) ज. प. विदेहके रूप्याचलकी उत्तर श्रेणीका एक नगर ३४।१५
गति=तालगत गान्धर्वका एक प्रकार १९।१५१
गन्ध (व्य) इक्षुवर समुद्रका रक्षक देव ५।६४४
गन्धकुटी (पा) समवसरणका एक स्थान जिसमें तीर्थंकर विराजते हैं ५७।७
गन्धदेवी कूट(भौ) शिखरि कुलाचलका नौवाँ कूट ५।१०७
गन्धमादन (भौ) मेरुपर्वतकी पश्चिमोत्तर दिशामें स्थित स्वर्णमय एक पर्वत५।२१०
गन्धमादन (व्य) हिमवत्का पुत्र ४८।४७
गन्धमादन (भौ) वि. उ. नगरी २२।९७
गन्धमादन=शौर्यपुरके उद्यानमें स्थित गन्धमादन नामका एक पर्वत १८।२९
गन्धमादन (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३१
गन्धमादन (भौ) एक पर्वत ६०।१६
गन्धमादन कूट (भौ) गन्धमादन पर्वतका एक कूट ५।२१७
गन्धमादिनी (भौ) विदेहकी विभंगा नदी ५।२४२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गन्धमालिनी (भौ) जम्बूद्वीप विदेह क्षेत्रका एक नगर २७।११५
गन्धमालिनी (भौ) पश्चिम विदेहका एक देश ५।२५१
गन्धमालिनी (भौ) जम्बूद्वीप विदेह क्षेत्रका एक देश २७।५
गन्धमालिनीका कूट (भौ) गन्धमादनका एक कूट ५।२१७
गन्धमित्र (व्य) एक राजा २७।१०२
गन्धर्व (भौ) मेरुके नन्दन वनकी पश्चिम दिशामें स्थित एक भवन ५।३१५
गन्धर्व = विद्याके निकायका नामान्तर २२।५८
गन्धर्वसेना (व्य) एक कन्या जिसका वसुदेवके साथ विवाह हुआ १।८१
गन्धर्वसेना (व्य) चारुदत्तकी कन्या १९।१२३
गन्धर्वसेना (व्य) अमितगति विद्याधरकी विजयसेनासे उत्पन्न पुत्री जो चारुदत्त-के द्वारा वसुदेवको दी गयी २१।१२०
गन्धवत् (भौ) हैरण्यवत क्षेत्रके मध्यमें स्थित एक गोलाकार पर्वत ५।१६१
गन्धसमृद्ध (भौ) वि. द. नगरी २२।९४
गन्धसमृद्ध (भौ) वि. द. के गान्धार देशका एक नगर ३०।६
गन्धा (भौ) पश्चिम विदेहका एक देश ५।२५१
गन्धार (व्य) वसुदेव और प्रभा-वतीका पुत्र ४८।६३
गन्धार (व्य) वि. द. के गन्ध-समृद्ध नगरका राजा ३०।६
गन्धावती (भौ) एक नदी ६०।१६
गम्भीर (व्य) एक राजा ५०।१३१
गम्भीर (व्य) कृष्णका पुत्र ४८।७०
गरुड (भौ) सानत्कुमार युगलका चौथा इन्द्रक ६।४८
गरुडकान्त (व्य) सेनकान्त (व्य) चित्रचूल और मनोहरीके युगल पुत्र ३३।१३३
गरुडदण्ड (व्य) सिंहपुरका एक गारुडिक, सर्पविषको दूर करनेवाला २७।४९
गरुडध्वज गरुडवाहन चित्रचूल और मनोहरीके युगल पुत्र ३३।१३३
गरुडव्यूह (पा) समुद्रविजयकी सेनाका निवेश प्रकार ५०।११३-१२९
गरुडाङ्क (व्य) वृषभध्वजका पुत्र १३।११
गरुत्मान् (व्य) जरासंधका पुत्र ५२।३९
गव्यूति = कोश ४।३५५
गाण्डीव = एक धनुष ४५।१२६
गान्धर्वसेना (व्य) एक विद्या-धरपुत्री जो चारुदत्तके द्वारा वसुदेवको विवाही गयी २१।१
गान्धर्वसेनक (व्य) विद्याओंका एक भण्डार २२।५६
गान्धार = एक स्वर १९।१५३
गान्धार (भौ) देशविशेष ३।५
गान्धार = अदितिदेवीके द्वारा विद्याओंका एक निकाय २२।५७
गान्धार विद्याधर = विद्याधरों-की एक जाति २६।७
गान्धारी (व्य) इन्द्रगिरि और मेरुसतीकी पुत्री कृष्णकी एक पट्टराज्ञी ४४।४६
गान्धारी = एक विद्या २२।६५
गान्धारी=मध्यम ग्रामके आश्रित जाति १९।१७६
गान्धारोदीच्यका = मध्यम ग्राम-के आश्रित जाति १९।१७६
गन्धिका (भौ) पश्चिम विदेहका एक देश ५।२५१
गन्धिका (भौ) धातकी खण्डके पूर्व मेरुसे पश्चिम विदेहका एक देश २७।१११
गिरि (व्य) वसुगिरिका पुत्र १५।५९
गिरि (व्य) अचलका पुत्र ४८।४९
गिरिकूट (भौ) एक पर्वत २१।१०२
गिरितट (भौ) विजयार्धका एक नगर २३।२६
गिरिनगर (भौ) सौराष्ट्रका एक नगर ६०।७२
गीति = तालगत गन्धर्वका एक प्रकार १९।१५१
गुणश्रेणी (पा) सम्यग्दृष्टि श्रावक विरतान्त वियोजक आदि स्थानोंमें होनेवाली निर्जरा
गुणधर (व्य) राजा उग्रसेनका पुत्र ४८।३९
गुणप्रभा (व्य) राजा प्रचण्ड-वाहनकी पुत्री ४५।९८
गुणवती (व्य) एक आर्यिका २७।८२
गुणवती (व्य) आर्यिका ६४।१३
गुणव्रत (पा) जो अणुव्रतोंका उपकार करे इसके दिग्व्रत, देशव्रत और अनर्थ दण्डके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भेदसे ३ भेद हैं २।१३४

गुणस्थान (पा) मोह और योग-के निमित्तसे होनेवाला आत्माका क्रमिक विकास ३।७९

गुप्तफल्गु (व्य) ऋषभदेवका गणधर १२।६४

गुप्ति(पा)योगोंका निग्रह करना १ मनोगुप्ति, २ वाग्गुप्ति, ३ कायगुप्ति ये तीन गुप्तियाँ हैं। २।१२७

गुरु = पाँच परमेष्ठी १।२८

गुरु = पिता २१।१२२

गुरु = बृहस्पति, पक्षमें आचार्य २।७६

गुरुत्वं = पितापना २।१५

गुह्यक = देव विशेष ५९।४३

गूढदत्त (व्य) आगामी चक्रवर्ती ६०।५६४

गृहाङ्ग = एक कल्पवृक्ष ७।८०

गृहीता गृहीतेत्वरिकागमन (पा) ब्रह्मचर्याणुव्रतका अतिचार ५८।१७४

गोकुल (भौ) मथुरासे कुछ दूरी-पर स्थित एक प्रदेश १।९१

गोतम (व्य) लवणसमुद्रके अन्त-र्गत गोतम द्वीपका अधि-ष्ठाता देव ५।४७०

गोतम(भौ) लवणसमुद्रके मध्य-में स्थित एक द्वीप ५।४७०

गोतम(व्य) सौधर्मेन्द्रका आज्ञा-कारी एक देव ४१।१७

गोत्र (पा) उच्च-नीच व्यवहार-का कारण ५८।२१८

गोमुख (व्य) चारुदत्तका मित्र २१।१३

६ **गोमेद** (भौ) रत्नप्रभाके खर-भागका छठवाँ भेद ४।५३

गोवर्धन (व्य) एक श्रुतकेवली आचार्य १।६१

गोविन्द (व्य) श्रीकृष्ण ४४।५१

गौतम (व्य) भगवान् महावीर-के प्रथम गणधर २।८९

गौतम (व्य) कृष्णका पुत्र ४८।७०

गौतम(व्य)एक राजा ५०।१३१

गौतम (व्य) कापिष्ठलायन और अनुमतिका पुत्र १८।१०४

गौतम (व्य) समुद्रविजयका पुत्र ४८।४४

गौतम (व्य) गौतम नामका देव १।९९

गौतम (व्य) वसुदेवने सुग्रीव गान्धर्वाचार्यको अपना कृत्रिम गोत्र बताया 'गौतम' १९।१३०

गौरमुण्ड(व्य)अमितगति विद्या-धरका मित्र २१।२३

गौरिक (भौ) वि. उ. नगरी २२।८८

गौरिक = अदिति देवीके द्वारा दत्त विद्याओंका एक निकाय २२।५७

गौरिक विद्याधर = विद्याधरोंकी एक जाति २६।६

गौरिकूट (भौ) वि. द. नगरी २२।९७

गौरी(व्य) वीतभय नगरके राजा मेरु और चन्द्रमतीकी पुत्री कृष्णकी पट्टराज्ञी ४४।१४

गौरी = एक विद्या २७।१३१

गौरी = एक विद्या २२।६२

ग्राहवती (भौ) विदेह क्षेत्रकी विभंगा नदी ५।२३९

ग्राम = समूह २।५७

ग्राम (पा) बाड़ीसे घिरा छोटा गाँव २।३

ग्राम = शारीर स्वरका भेद १९।१४८

ग्राम = वैण स्वरका एक भेद १९।१४७

ग्रैवेयक = हार ११।१३

ग्रैवेयक (भौ) सोलह स्वर्गोंके ऊपर स्थित नौ पटल ३।१५०

ग्रैवेयक स्तूप (पा) समवशरणके स्तूप ५७।१००

[घ]

घन = काँसेके झाँझ-मजीरा आदि १९।१४२

घनवात (पा) एक वातवलय ४।३३

घनोदधि (पा) एक वातवलय ४।३३

घर्मा (भौ) रत्नप्रभाका रूढ़ि नाम ४।४६

घर्मा (भौ) रत्नप्रभा पृथिवी ४।२१८

घाट (भौ) शर्कराप्रभा पृथिवीके पंचम प्रस्तारका इन्द्रक-बिल ४।१०९

घातिसंघातं (पा) ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय इन चार कर्मोंका समूह २।५९

घृतवर द्वीप (भौ) छठवाँ द्वीप ५।६१५

घृतवर समुद्र (भौ) छठवाँ समुद्र ५।६१५

घोष (पा) अहीरोंकी वसति २।३

[च]

चक्र (भौ) सानत्कुमार युगलका सातवाँ इन्द्रक ६।४८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्रपाणि = कृष्ण ३५।३९
चक्रपाणिजिनार = चक्रवर्ती और तीर्थंकर पदके धारक अठारहवें अरनाथ जिनेन्द्र १।२०
चक्रपुर (भौ) एक नगर २७।८९
चक्रवर्तिन् (वि) छत्रखण्ड पृथिवीके स्वामी १।१९
चक्रवाल (भौ) वि. द. नगरी २२।९३
चक्रव्यूह (पा) सेनाके निवेशका एक प्रकार ५०।१०३-१११
चक्रा (भौ) विदेहकी एक नगरी ५।२६३
चक्रायुध (व्य) शान्तिनाथका प्रथम गणधर ६०।३४८
चक्रायुध (व्य) चक्रपुरके राजा अपराजित और सुन्दरीका पुत्र २७।९०
चक्री = श्रीकृष्ण नारायण ५४।३०
चक्रेश (वि) चक्ररत्नके स्वामी चकवर्ती १।१८
चक्षुष्मान् (व्य) मानुषोत्तर पर्वतका रक्षक देव ५।६३९
चक्षुष्मान् (व्य) आठवाँ कुलकर ७।१५७
चञ्चत् (भौ) सौधर्म युगलका ग्यारहवाँ इन्द्रक ६।४५
चञ्चला = बिजली १५।१७
चण्डरोचिष् = सूर्य ३।३४
चण्डबाण (व्य) एक व्याध ६०।१११
चण्डवेग (व्य) विद्युद्वेगका पुत्र २५।४०
चण्डवेगा (भौ) वरुण पर्वतके समीप पंच नदोंके समागमकी एक नदी २७।१४
चतुरङ्ग(वि) हाथी, घोड़ा, रथ, पैदल सिपाही इन चार अंगोंसे सहित, सेना २।७१
चतुर्थक=एक उपवास ३४।१२५
चतुर्थ काल (पा) सुषमा काल १।२६
चतुर्दश पूर्विन् = उत्पाद पूर्व आदि १४ पूर्वोंके ज्ञाता १।५८
चतुर्मुख (व्य) सातवाँ नारद ६०।५४८
चतुर्विंशतिस्तव (पा) अंगबाह्य श्रुतका एक भेद २।१०२
चतुरस्र = चौकोन ३।५३
चतुरष्टका = बत्तीस ५।२४४
चतुरस्रानुयोग (पा) १ प्रथमानुयोग, २ करणानुयोग, ३ चरणानुयोग, ४ द्रव्यानुयोग ५८।४
चतुष्क = चौक ५।२६६
चतुस्त्रिंशद् महाद्भुत = चौंतीस अतिशय १० जन्मके १० केवलज्ञानके १४ देवकृत २।६७
चन्दनपुर (भौ) एक नगर ६०।८१
चन्दनवन(भौ) एक नगर २९।२४
चन्दना (व्य) राजा चेटककी लघुपुत्री २।७०
चन्द्र (भौ) रुचिकगिरिका दक्षिण दिशासम्बन्धी कूट ५।७१०
चन्द्र (व्य) आगामी बलभद्र ६०।५६८
चन्द्र (व्य) चन्द्र नामक देव ६०।१०८
चन्द्र (भौ) नील पर्वतसे साढ़े पाँच सौ योजन दूर, नदीके मध्यमें स्थित एक ह्रद ५।१९४
चन्द्र (व्य) अभिचन्द्रका पुत्र ४८।५२
चन्द्र (व्य) राजा उग्रसेनका पुत्र ४८।३९
चन्द्र (भौ) सौधर्म युगलका तीसरा इन्द्रक ६।४४
चन्द्रकान्त (व्य) वसुदेव और सोमदत्तकी पुत्रीका पुत्र ४८।६०
चन्द्रकान्ता (व्य) शूरसेनकी स्त्री ३३।९९
चन्द्रचूड (व्य) ऋषभदेवका गणधर १२।६७
चन्द्रधर (व्य) आगामी बल ६०।५६८
चन्द्रदेव (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।४०
चन्द्रपर्वत (भौ) वि. द. नगरी २२।९७
चन्द्रप्रज्ञप्ति(पा) परिकर्म श्रुतका एक भेद १०।६२
चन्द्रप्रभ (व्य) अष्टम तीर्थंकर १।१०
चन्द्रप्रभा (व्य) चन्द्रकी स्त्री ६०।१०८
चन्द्रमति (व्य) मेरुचन्द्रकी स्त्री ६०।१०३
चन्द्रमाल (भौ) पश्चिम विदेहका वक्षार गिरि ५।२३२
चन्द्रयश (व्य) एक राजा ५०।१२८
चन्द्ररथ (व्य) रत्नचिह्नका पुत्र १३।२१
चन्द्रवती (व्य) वीतभय नगरके राजा मेरुकी स्त्री ४४।३३
चन्द्रवर्मा (व्य) कृष्णका पुत्र ४८।७१
चन्द्रवर्मा (व्य) एक राजा ५०।१३२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चन्द्रानन्द (व्य) एक राजा ५०।१२५
चन्द्राभ (भौ) रत्नप्रभाके खर भागका चौदहवाँ पटल ४।५४
चन्द्राभ (व्य) अभिचन्द्रका पुत्र ४८।५२
चन्द्राभ (व्य) ग्यारहवाँ कुलकर ७।१६३
चन्द्राभ (व्य) एक विद्याधर २७।१२०
चन्द्राभ (भौ) ब्रह्मस्वर्गका एक विमान २७।११७
चन्द्राभा (व्य) वटपुरके वीरसेन राजाकी स्त्री ४३।१६५
चपलगति (व्य) सूर्याभ और धारिणीका पुत्र ३४।१७
चमर (व्य) सुमतिनाथका गणधर ६०।३४७
चमर चम्पा (भौ) वि. उ. नगरी २२।८५
चम्पक (व्य) कंसका एक हाथी ३६।३३
चम्पकपुर (भौ) चम्पक देवका निवास स्थान ५।४२८
चम्पकवन (भौ) विजयदेवके नगरसे २५ योजन दूर पश्चिममें स्थित एक वन ५।४२२
चम्पा(भौ) अंगदेशकी राजधानी चम्पापुरी वर्तमान नाम नाथनगर(भागलपुर) १।८१
चम्पा (भौ) धानक खण्डके भरत क्षेत्रकी एक नगरी ५४।५६
चम्पा (भौ) वि. उ. नगरी २२।८८
चर्चिका (पा) चौरासी लाख हस्त प्रहेलिकाओंकी एक चर्चिका होती है ७।३०
चरम (व्य) पुलोमका पुत्र १७।२५
चर्या (व्य) राजा प्रचण्डवाहनकी पुत्री ४५।९८
चाणूर (व्य) कंसका एक मल्ल ३६।४०
चान्द्रायणविधि = व्रतविशेष ३४।९०
चाप (पा) धनुष (चार हाथ) ४।३४२
चार = गुप्तचर ५०।११
चारण (भौ) मेरुके नन्दनवनकी दक्षिण दिशामें स्थित एक भवन ५।३१५
चारित्र (पा) सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म साम्पराय और यथाख्यात—ये चारित्रके पाँच भेद हैं २।१२९
चारित्रमोह (पा) मोहनीय कर्मका एक भेद ३।१४५
चारित्र शुद्धि = व्रतविशेष (अहिंसामहाव्रत) ३४।१००
चारु (व्य) कुरुवंशी एक राजा ४५।२३
चारुकृष्ण (व्य) कृष्णका पुत्र ४८।७१
चारुकृष्ण(व्य) एक राजा ५०।८३
चारुचन्द्र(व्य) चन्दनवनके राजा अमोघदर्शनके चारुमति स्त्रीसे उत्पन्न पुत्र २९।२५
चारुदत्त(व्य) सम्भवनाथके प्रथम गणधर ६०।३४६
चारुदत्त (व्य) बलदेवका पुत्र ४८।६६
चारुदत्त (व्य) चम्पानगरीका प्रसिद्ध सेठ १९।१२२
चारुदत्त (व्य) श्रीकृष्णका हितैषी एक राजा ५०।७२
चारुपद्म (व्य) कुरुवंशी एक राजा ४५।२३
चारुमति (व्य) चन्दनवन नगरके राजा अमोघदर्शनकी स्त्री २९।२५
चारुरूप (व्य) कुरुवंशी एक राजा ४५।२३
चारुलक्ष्मी (व्य) मेघ सेठ और अलका सेठानीकी पुत्री ४६।१५
चारुहासिनी (व्य) भद्रिलपुरके राजा पौण्ड्रकी पुत्री जिसे वसुदेवने वरा २४।३१
चारुहासिनी (व्य) वसुदेवकी स्त्री १।८४
चालन = एक दिव्य औषधि २१।१८
चित्तवेग (व्य) स्वर्णाभपुरका राजा विद्याधर २४।६९
चित्तेन्द्रिय निरोध (पा) मुनियोंका एक मूल गुण—पाँच इन्द्रियों तथा मनको वश करना २।१२८
चिन्तागति (व्य) सूर्याभ और धारिणीका पुत्र ३४।१७
चित्र (भौ) नील कुलाचलकी दक्षिण दिशा और सीतानदीके पूर्व तटपर स्थित एक कूट ५।१९१
चित्र (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।२७
चित्रक (भौ) मेरुके नन्दनवनकी उत्तर दिशामें स्थित एक भवन ५।३१५
चित्रक (व्य) समुद्रविजयका पुत्र ४८।४४
चित्रकारपुर (भौ) भरतक्षेत्रका एक नगर २७।९७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्रकूट (भौ) पूर्व विदेहका वक्षारगिरि ५।२२८
चित्रकेतु (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३०
चित्रगुप्त (व्य) आगामी तीर्थंकर ६०।५६०
चित्राङ्गद (व्य) चित्रचूल और मनोहरीका पुत्र सुभानुका जीव ३३।१३२
चित्राङ्गद (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३३
चित्रचूल (व्य) नित्यालोक नगरका राजा ३३।१३२
चित्रबुद्धि (व्य) प्रीतिभद्रका मन्त्री २७।९८
चित्रमाला (व्य) चक्रायुधकी स्त्री २७।९०
चित्रमाली (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३१
चित्ररथ (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।२८
चित्ररथ (व्य) गिरिनगरका राजा ३३।१५०
चित्रलेखिका (व्य) बाण विद्याधरकी पुत्री उषाकी सखी ५५।२४
चित्रवसु (व्य) राजा वसुका पुत्र १७।५८
चित्रवाहन (व्य) आगामी चक्र ६०।५६५
चित्रसमालभन=अनेक प्रकारके विलेपन ५५।५४
चित्रा (व्य)रुचिकगिरिके विमल कूटपर रहनेवाली देवी ५।७१९
चित्रा (व्य) रुचिकगिरिके सुप्रतिष्ठ कूटपर रहनेवाली देवी ५।७१०
चित्रा (भौ) मेरु पर्वतसे एक हजार योजन विद्यमान चित्रा नामकी पृथिवी४।१२
चित्रा (भौ) रत्नप्रभाके खर भागका पहला पटल ४।५२
चूडामणि (व्य) विनमिका पुत्र २२।१०५
चूडामणि (भौ) वि. उ. नगरी २२।९१
चूतपुर (आम्रपुर) (भौ) आम्रदेवका निवास स्थान५।४२८
चूतवन (आम्रवन) (भौ)विजयदेवके नगरसे २५ योजन दूर उत्तरमें स्थित एक वन ५।४२२
चूलिक (व्य) चूलिका नगरीका राजा ४६।२६
चूलिका (पा) दृष्टिवाद अंगका एक भेद १०।६१
चूलिका (पा) अंगप्रविष्ट श्रुतका एक भेद २।१००
चूलिका (भौ) एक नगरी ४६।२६
चेटक (व्य) वैशालीका राजा राजा सिद्धार्थका श्वसुर २।१७
चेदिराष्ट्र (भौ)अभिचन्द्रके द्वारा विन्ध्यपृष्ठपर बसाया देश १७।३६
चैत्यालय = जिन मन्दिर ४।६१
चोदना वाक्य = 'अजैर्यष्टव्यम्' इस वेदवाक्यमें १७।१२५

[छ]

छायासंक्रामिणी = एक विद्या २२।६३
छिन्न(पा) अष्टांग निमित्त ज्ञानका एक अंग १०।११७
छेद (पा) अहिंसाणुव्रतका अतिचार ५८।१६४
छेदन = विद्यास्त्र २५।४९
छेदोपस्थापना (पा) चारित्रका एक भेद ६४।१६

[ज]

जगत् (भौ) सौधर्म युगलका उनतीसवाँ इन्द्रक ६।४७
जगती (भौ) जम्बूद्वीपको चारों ओरसे घेरे हुए वज्रमयी भित्ति ५।३७७
जगत्कुसुम (भौ) रुचिकगिरिका पश्चिम दिशासम्बन्धी कूट ५।७१२
जगत्स्थामा (व्य) कपिष्टलका पुत्र ४५।४६
जघन्यपात्र (पा) अविरत सम्यग्दृष्टि ७।१०९
जघन्य शातकुम्भविधि = एक व्रतविशेष ३४।८७
जघन्यसिंहनिष्क्रीडित = एक उपवासव्रत ३४।७८
जननाभिषव = जन्माभिषेक ८।२३७
जनपद सत्य (पा) दश प्रकारके सत्योंमें-से एक सत्य १०।१०४
जनार्दन व्य) श्रीकृष्ण ४३।७६
जन्मदन्त (व्य) आगामी चक्रवर्ती ६०।५६४
जमदग्नि (व्य) कामधेनुका धनी एक तपस्वी २५।९
जम्बू (व्य) जम्बूस्वामी नामक केवली १।६०
जम्बूद्वीप (भौ) आद्यद्वीप २।१
जम्बूद्वीप (भौ) असंख्यात द्वीप समुद्रोंको उल्लंघन करनेके बाद स्थित द्वीपविशेष ५।१६६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जम्बूपुर (भौ) वि. द. का एक नगर ४४।४
जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति (पा) परिकर्म श्रुतका एक भेद १०।६२
जम्बूशङ्कुपुर (भौ) वि.द. नगरी २२।१००
जम्बूस्थल (भौ) मेरुपर्वतकी ऐशान दिशामें सीता नदीके पूर्वतटपर नीलकुलाचलका निकटवर्ती प्रदेश जहाँ जामुनका वृक्ष है ५।१७२
जय (व्य) दश पूर्वके ज्ञाता एक आचार्य १।६२
जय(व्य) नमिका पुत्र २२।१०८
जयकुमार (व्य) हस्तिनापुरके राजा सोमप्रभका पुत्र दूसरा नाम मेघस्वर ४३।८
जय (व्य) वसुदेवका पुत्र ५०।११५
जय (व्य) आगामी तीर्थंकर ६०।५६१
जय (व्य) एकादश चक्र ६०।२८७
जय (व्य) अनन्तनाथका प्रथम गणधर ६०।३४८
जयकीर्ति (व्य) आगामी तीर्थंकर ६०।५५९
जयदेव (व्य) एक गृहस्थ ६०।१०९
जयन्त (व्य) वीतशोका नगरीके वैजयन्त राजाका पुत्र २७।७
जयन्त (पा) स्फटिक सालका पश्चिम गोपुर ५७।५९
जयन्त (भौ) वि. उ. नगरी २२।८७
जयन्त (भौ) भरतक्षेत्रका एक नगर ६०।११७
जयन्त (भौ) अनुत्तर विमान ६।६५
जयन्त (भौ) जम्बूद्वीपकी जगतीका पश्चिम द्वार ५।३९०
जयन्तगिरि (भौ) एक पर्वत ४७।४३
जयन्ती = एक विद्या २२।७०
जयन्ती (भौ) चरमके द्वारा बसाया हुआ एक नगर १७।२७
जयन्ती (भौ) नन्दीश्वर द्वीपके दक्षिणसम्बन्धी अंजनगिरिकी पश्चिम दिशामें स्थित वापिका ५।६६०
जयन्ती(व्य) रुचिकगिरिके सर्वरत्न कूटपर रहनेवाली देवी ५।७२६
जयन्ती (व्य) रुचिकगिरिके कनक कूटपर रहनेवाली देवी ५।७०५
जयन्ती (भौ) विदेहकी एक नगरी ५।२६३
जयपुर (भौ) एक नगर जहाँ वसुदेव गये २४।३०
जयराज (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।१५
जयसेन (व्य) समुद्रविजयका पुत्र ४८।४३
जया = एक विद्या २२।७०
जया (पा) समवसरणकी एक वापिका ५७।७३
जयाङ्गण(पा) समवसरणकी एक भूमि ५७।७६
जयावह (भौ) वि. उ. नगरी २२।८८
जयोत्तरा (पा) समवसरणके सप्तपर्ण वनकी वापिका ५७।३३
जरत्कुमार(व्य)श्रीकृष्णके मरणमें कारण प्रवासी यादव १।१२०
जरत्कुमार(व्य) श्रीकृष्णका एक भाई ५२।१६
जरत्कुमार (व्य) वसुदेव और जराका पुत्र ४८।६३
जरा (व्य) म्लेच्छ राजाकी कन्या, जिसे वसुदेवने वरा ३१।६
जरासन्ध (व्य) बृहद्रथका राजगृहीका राजा (नौवाँ प्रतिनारायण) १८।२२
जरासुत (व्य) जरत्कुमार ६३।४६
जलकेतु (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३०
जलगता (पा) दृष्टिवाद अंगके चूलिकाभेदका उपभेद १०।१२३
जलगति दक्षिणा = एक विद्या २२।६८
जलधि (व्य) समुद्रविजयके भाई अक्षोभ्यका पुत्र ४८।४५
जलप्रभ विमान (भौ) वरुण लोकपालका विमान ५।३२६
जलावर्त (भौ) वि. द. नगरी २२।९५
जातरूप = सुवर्ण ६०।२
जाति = शारीरस्वरका एक भेद १९।१४८
जाति = पदगत गान्धर्वकी विधि १९।१४९
जानुदघ्न = घुटनों प्रमाण ११।५
जाम्बव (व्य) एक विद्याधर ६०।५३
जाम्बव (भौ) एक नगर ६०।५३
जाम्बव (व्य) वि. द. के जम्बूपुर नगरका राजा ४४।४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाम्बवती (व्य) जम्बूपुरके राजा जाम्बव और रानी शिव चन्द्राकी पुत्री कृष्णकी एक पट्टराज्ञी ४४।५
जारसेय (व्य) जरत्कुमार ६३।५३
जितपद्मप्रभा (वि) कमलकी कान्तिको जीतनेवाली १।८
जितशत्रु(व्य) एक राजा, राजा सिद्धार्थकी छोटी बहनका पति ६६।६
जितशत्रु (व्य) श्रावस्तीका एक इक्ष्वाकुवंशीय प्राचीन राजा २८।१७
जितशत्रु (व्य) देवकीका पुत्र ६३।१७०
जितशत्रु (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३४
जितशत्रु (व्य) हरिवंशका एक राजा १।१२४
जितशत्रु (व्य) एक राजा ३।१८७
जितशत्रु (व्य) कलिंगदेशके कांचनपुर नगरका राजा २४।११
जिन = कर्मरूप शत्रुओंको जीतनेवाले जिनेन्द्र १।१६
जिनगुण सम्पत्ति = व्रतविशेष ३४।१२२
जिनदत्त (व्य) धनदत्त और नन्दयशाका पुत्र १८।११५
जिनदत्ता (व्य) एक आर्यिका ३३।१००
जिनदत्ता (व्य) एक आर्यिका ६०।७०
जिनदत्ता (व्य) राजा अर्हद्दास-की स्त्री २७।११२
जिनदत्ता (व्य) ज. वि. सुपद्मा-देशके सिंहपुर नगरके राजा अर्हद्दासकी स्त्री ३४।४
जिनदास (व्य) धनदत्त और नन्दयशाका पुत्र १८।११४
जिनपाल (व्य) धनदत्त और नन्दयशाका पुत्र १८।११४
जिनसेन (व्य) पार्श्वाभ्युदय आदिके रचयिता जिनसेनाचार्य १।४०
जिनेन्द्र (व्य) तीर्थंकर १।६
जिनेश्वर(व्य) आगामी तीर्थंकर ६०।५६०
जिह्व (भौ) शर्कराप्रभा पृथिवी-के सप्तम प्रस्तारका इन्द्रक विल ४।१११
जिह्वक (भौ) शर्करा पृथिवीके अष्टम प्रस्तारका इन्द्रक विल ४।११२
जिह्विका (भौ) हिमवत् पर्वतके दक्षिण तटपर स्थित एक प्रणाली ५।१४०
जीवद्यशस् (व्य) जरासन्धकी पुत्री, जो कंसको विवाही गयी ३३।७
जीवद्रव्य (पा) चैतन्य लक्षण-युक्त जीव २।१०७
जीवविचय (पा) धर्म्यध्यानका भेद ५६।४३
जीवसिद्धि (व्य) समन्तभद्राचार्यके द्वारा रचित जीव-सिद्धि नामक ग्रन्थ और जीवोंकी सिद्धि १।२९
जीवस्थान (पा) जीवसमास २।१०७
जीवाधिकरण (पा) आस्रवका एक भेद जिसके १०८ भेद होते हैं ५८।८४
जीविताशंसा (पा) सल्लेखनाका अतिचार ५८।१८४
जृम्भक (व्य) देवविशेष ४२।१७
जृम्भण = विद्यास्त्र २५।४८
जृम्भिक ग्राम (भौ) विहार प्रान्तका एक गाँव २।५७
जैत्री (पा) समवसरणके सप्तपर्ण वनकी वापिका ५७।३३
जैन (पा) जिनेन्द्रदेवके द्वारा प्रणीत १।१
ज्ञातृधर्मकथाङ्ग (पा) द्वादशांगका एक भेद २।९३
ज्ञानप्रवाद (पा) पूर्वगत श्रुतका एक भेद २।९८
ज्ञानावरण (पा) ज्ञानगुणको घातनेवाला कर्म ५८।२१५
ज्योतिष्क = सूर्य-चन्द्रमा आदि ज्योतिषी देव ३।१३५
ज्योतिरङ्ग = एक कल्पवृक्ष ७।८०
ज्योतिर्देव = ज्योतिष्क देव सूर्य-चन्द्रमा आदि २।७९
ज्येष्ठ (पा) स्फटिक सालका दक्षिण गोपुर ५७।५८
ज्योतिर्माला (व्य) एक विद्याधरी ६०।१८
ज्वलन (व्य) वसुदेवकी श्यामा नामक स्त्रीसे उत्पन्न पुत्र ४८।५४
ज्वलनवेग (व्य) अर्चिर्माली और प्रभावतीका पुत्र १९।८१
ज्वलनप्रभा (व्य) दिव्य नाग-कन्या २९।२०
ज्वलितवेगा (व्य) विजय नामक व्यन्तरकी स्त्री ६०।६०

[झ]

झष (भौ) धूमप्रभा पृथिवीके तृतीय प्रस्तारका इन्द्रक-विल ४।१४०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[ट]

टङ्कण देश (भौ) एक देश २१।१०३

[त]

तडित्प्रभ (भौ) निषध पर्वतसे उत्तरकी ओर नदीके मध्यमें स्थित एक ह्रद ५।१९६

तत = तारसे बजनेवाले बाजे १९।१४२

तद्धित=पदगत गन्धर्वकी विधि १९।१४९

तनयसोम (व्य) नमिका पुत्र २२।१०७

तनुवात (पा) लोकको चारों ओरसे घेरनेवाला तीसरा वायुमण्डल (वातवलय) ५।१

तप (पा) अनशनादि छह बाह्य और प्रायश्चित्त आदि छह अन्तरंगके भेदसे बारह प्रकारका तप २।१२९

तपन (भौ) बालुकाप्रभा पृथिवीके तृतीय प्रस्तारका इन्द्रक विल ४।१२०

तपन (व्य) तेजस्वीका पुत्र १३।९

तपनकूट (भौ) विद्युत्प्रभपर्वतका एक कूट ५।२२२

तपित (भौ)बालुकाप्रभा पृथिवीके द्वितीय प्रस्तारका इन्द्रक विल ४।११९

तपनीयक (भौ) मानुषोत्तरकी आग्नेय दिशाका कूट५।६०६

तपनीयक (भौ) सौधर्म युगलका उन्नीसवाँ इन्द्रक ६।४६

तपनीयक कूट (भौ) मानुषोत्तर पर्वतकी आग्नेय दिशाका एक कूट ५।६०१

तप्त (भौ) बालुकाप्रभा पृथिवीके प्रथम प्रस्तारका इन्द्रक विल ४।११८

तप्तजला (भौ) विदेहक्षेत्रकी एक विभगा नदी ५।२४०

तपःशुद्धि = एक व्रतविशेष ३४।९९

तमक (भौ) पंकप्रभा पृथिवीके पंचम प्रस्तारका इन्द्रक विल ४।१३३

तमस् (भौ) धूमप्रभा पृथिवीके प्रथम प्रस्तारका इन्द्रक विल ४।१३८

तमःप्रभा (भौ) नरकोंकी छठी भूमि ४।४४

तमस्तम (भौ) सातवाँ नरक २।१३६

तमिस्र (भौ) धूमप्रभा पृथिवीके पञ्चम प्रस्तारका इन्द्रक विल ४।१४२

तमिस्र गुहा (भौ) विजयार्धकी गुहा ११।२१

तमोऽन्तक (व्य) चारुदत्तका मित्र २१।१३

तरङ्गिणी (भौ) एक नदी४६।४९

तार्क्ष्यकेतु (व्य) कृष्ण ५१।१९

ताप (पा) असातावेदनीयका आस्रव ५८।९३

तापन(भौ)बालुकाप्रभा पृथिवीके चतुर्थ प्रस्तारका इन्द्रक विल ४।१२१

तापस(भौ)देशका नाम ११।७२

तामिन् (वि) पालक-रक्षक १।१०

तामिस्रगुहक (भौ) विजयार्धका आठवाँ कूट ५।२७

तामिस्रगुहकूट (भौ) ऐरावतके विजयार्धका तीसरा कूट ५।११०

ताम्रलिप्त (भौ) एक नगर २१।७६

ताम्रलिप्ति (भौ) एलेयके द्वारा अंगदेशमें बसाया हुआ एक नगर १७।२०

तार (भौ) पंकप्रभापृथिवीके द्वितीय प्रस्तारका इन्द्रक विल ४।१३०

तारा (व्य) राजा कीर्तवीर्यकी गर्भवती स्त्री २५।११

तारक (व्य) दूसरा प्रतिनारायण ६०।२९१

तार्ण (भौ) देशविशेष ३।६

तिर्यग्लोक (भौ) मध्यलोक ५।१

तिर्यग्व्यतिक्रम (पा) दिग्व्रतका अतिचार ५८।१७७

तिरस्करिणी=एक विद्या २२।६३

तिलका (व्य) भानुकीर्तिकी स्त्री ३३।३९

तिलकानन्द (व्य) एक मुनि ५०।५९

तिलवस्तुक (भौ) एक नगर, जहाँ वसुदेव पहुँचे २४।२

तीर्थ (पा) धर्मकी आम्नाय १।४

तीर्थंकर (पा) धर्मकी आम्नाय चलानेवाला, ये २४ होते हैं २।१४६

तीर्थकृत् (पा) तीर्थंकर १।८

तीर्णकर्ण (भौ) देशका नाम ११।६७

तेजःसेन (व्य) समुद्रविजयका पुत्र ४८।४४

तेजस्वी (व्य) प्रभूत तेजका पुत्र १३।९

तेजस्वी (व्य) भगवान् ऋषभदेवका गणधर १२।५८

तेजोराशि (व्य) ऋषभदेवका गणधर १२।६६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तुङ्गीगिरि (भौ) मांगीतुंगी नामका पर्वत ६३।७२
तुट्य (पा) चौरासी लाख तुटयांगोंका एक तुटय ७।२८
तुट्याङ्ग (पा) चौरासी लाख कमलोंका एक तुट्याङ्ग ७।२८
तुलिङ्ग(भौ)देशका नाम ११।६४
तुषित (व्य) लौकान्तिक देवका एक भेद ५५।१०१
तूर्याङ्ग = एक कल्पवृक्ष ७।८०
तृणबिन्दु (व्य) चन्द्रवंशी एक राजा २३।४७
तृतीय काल (पा) सुषमादुःषमा काल १।२६
तोक = पुत्र २७।११९
तोमर (व्य) एक राजा५०।१३०
तोयधारा (व्य) नन्दनवनमें रहनेवाली दिक्कुमारी ५।३३३
त्रसरेणु (पा) आठ त्रुटिरेणुओंका एक त्रसरेणु होता है ७।३८
त्रसित (भौ) रत्नप्रभा पृथिवीके दशवें प्रस्तारका इन्द्रक विल ४।७७
त्रस्त (भौ) रत्नप्रभा पृथिवीके नौवें प्रस्तारका इन्द्रक विल ४।७७
त्रुटिरेणु (पा)आठ संज्ञा संज्ञाओंका एक त्रुटिरेणु होता है ७।३८
त्रिकूट (भौ)पूर्व विदेहका वक्षार गिरि ५।२२९
त्रिगर्त्त (भौ) देशविशेष ३।३
त्रिगिञ्छ (भौ) निषध कुलाचलका ह्रद ५।१२१
त्रिगुप्ति, त्रिसमितिव्रत = व्रतविशेष ३४।१०६
त्रिदश = देव १८।१२
त्रिदिव = स्वर्ग २१।१६३
त्रिपद (व्य) एक ढीमर ६०।३३
त्रिपर्वा = एक विद्या २२।६७
त्रिपातिनी = एक विद्या २२।६८
त्रिपृष्ठ (व्य) पहला नारायण ६०।२८८
त्रिपुर (भौ) देशविशेष ११।७३
त्रिपृष्ठ (व्य) आगामी नारायण ६०।५६७
त्रिलक्षण (वि) उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य रूप तीन लक्षणोंसे सहित २।१०८
त्रिलोकसार विधि=एक उपवास व्रत ६४।५९-६१
त्रिवर्ग = धर्म, अर्थ, काम २१।१८५
त्रिविष्टपपुर = स्वर्गपुरी ५।२३
त्रिशृङ्ग (भौ) एक नगर४५।९५
त्रिशिरस् (व्य) कुण्डलगिरिके वज्रकूटपर रहनेवाला देव ५।६९०
त्रिशिरस् (व्य) रुचिकगिरिके स्वयंप्रभ कूटपर रहनेवाली देवी ५।७२०
त्रिशिखर (व्य) नभस्तिलक नगरका राजा २५।४१
त्रिशिरस् (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३७
त्रिषष्टि पुरुष(पा) त्रेशठ शलाका पुरुष, २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण, ९ बलभद्र १।११७
त्विष् = कान्ति १।११

[द]

दक्ष = चतुर १७।२
दक्ष (व्य) सुव्रतका पुत्र १७।२
दक्षप्रजापति (व्य) राजा दक्ष १।७८
दक्षिण = निपुण ३।१९३
दक्षिण = उदार प्रकृतिवाला ५४।३८
दक्षिणश्रेणी (भौ) विजयार्धपर्वतकी दक्षिण दिशावर्ती कगार जिसपर ५० नगर स्थित हैं ५।२३
दक्षिणार्धकूट (भौ) ऐरावतके विजयार्धका आठवाँ कूट ५।१११
दक्षिणार्द्धककूट (भौ) विजयार्धका दूसरा कूट ५।२६
दण्ड (पा) लोकपूरण समुद्घातका प्रथम चरण ५६।७४
दण्ड (पा) दो किष्कुओंका एक दण्ड ७।४६
दण्डभूतसहस्रक = एक विद्या २२।६५
दण्डाध्यक्षगण = एक विद्या २२।६५
दत्त (व्य) सातवाँ नारायण ६०।२८९
दत्तक (व्य) चन्द्रप्रभका प्रथम गणधर ६०।३४७
दत्तवती (व्य) एक आर्यिका २७।५६
दत्तवस्त्र (व्य) एक राजा ३१।९६
दन्तमलमार्जनवर्जन (पा) मुनियोंका एक मूलगुण—दातौन नहीं करना २।१२९
दधिमुख (व्य) इस नामका विद्याधर २४।८४
दधिमुख (व्य) एक विद्याधर जो रोहिणीके स्वयंवरके समय होनेवाले युद्धमें वसुदेवका सारथि था ३१।१०३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दधिमुख (भौ) नन्दीश्वर द्वीपकी वापिकाओंमें स्थित पर्वत ५।६६९
दभ्र = गवाक्ष–झरोखा ५।२६५
दमवर (व्य) एक मुनि ३४।३२
दमरक(व्य) वसुदेवके भवान्तरसे सम्बन्ध रखनेवाला एक पुरुष १८।१३१
दमघोषज = शिशुपाल ४२।९३
दर्शन = नेत्र ८।२३।
दर्शनक्रिया (पा) एक क्रिया ५८।६९
दर्शनावरण(पा) दर्शनको ढकनेवाला कर्म ५८।२१५
दर्शनविशुद्धि = भावना ३४।१३२
दर्शनशुद्धि = व्रतविशेष ३४।९८
दशपर्विका=एक विद्या २२।६७
दशपूर्विन् = दशपूर्वके ज्ञाता १।५८
दशम = चार उपवास ३४।१२५
दशरथ (व्य) बलदेवका पुत्र ४८।६७
दशरथ (व्य) एक राजा ५०।१२५
दशवैकालिक (पा) अंगबाह्य श्रुतका एक भेद २।१०३
दशार्णक (भौ) देशका नाम ११।७३
दशार्ह = यादव ४१।४९
दशार्ह = योग्य अथवा पूज्य १८।१४
दशार्ह (व्य) राजाविशेष ५०।६८
दशेरुक (भौ) देशका नाम ११।६७
दासीदास प्रमाणातिक्रम (पा) परिग्रह परिमाणाणुव्रतका अभिचार ५८।१७६
दान (पा) सातावेदनीयका आस्रव ५८।९४
दाण्डीक (भौ) देशका नाम ११।७०
द्वारवती (भौ) सौराष्ट्र देशमें स्थित नगरी १।७२
दारु (व्य) वसुदेवकी स्त्री पद्मावतीका पुत्र ४८।५६
दारुक (व्य) वसुदेवकी स्त्री पद्मावतीका पुत्र ४८।५६
दारुण (व्य) एक भील २७।१०७
दिक्कुमार = भवनवासी देवोंका एक भेद ४।६४
दिग्गजेन्द्र (व्य) देवोंकी एक जाति ५।२०९
दिग्नन्दन (भौ) रुचिकगिरिका एक कूट ५।७०६
दिति (व्य) धरणेन्द्रकी देवी २२।५४
दिति (व्य) धारणयुग्म नगरके राजा अयोधनकी स्त्री २३।४७
दिव्यचक्षु = अवधिज्ञानी४२।५०
दिव्यध्वनि (पा) भगवान्‌की निरक्षरी वाणी ३।१८१
दिव्यपुर (पा) समवसरणका एक भाग जिसके त्रिलोकसार आदि सौ नाम हैं ५७।११२
दिव्यलक्षण पंक्तिविधि = व्रतविशेष ३४।१२३
दिव्यवाद (व्य) आगामी तीर्थंकर ६०।५६२
दिव्यौषध (भौ) वि. द. नगरी २२।९९
दिशानन्दा (व्य) वैदिशपुरके राजा वृषध्वजकी पुत्री ४५।१०९
दिशावली (व्य) वैदिशपुरके राजा वृषध्वजकी स्त्री ४५।१०८
दीपन (व्य) सुखरथका पुत्र १८।१९
दीर्घदन्त (व्य) आगामी चक्रवर्ती ६०।५६३
दीर्घबाहु (व्य) सुबाहुका पुत्र १८।२
दीर्घह्रस्व (पा) आग्रायणीपूर्वके चतुर्थ प्राभृतका योगद्वार १०।८४
दुःख (पा) असातावेदनीयका आस्रव ५८।९३
दुःख (भौ) तीसरी पृथिवीके प्रथम प्रस्तारसम्बन्धी तप्त नामक इन्द्रकी पूर्वदिशामें स्थित महानरक ४।१५४
दुःखहरणविधि = व्रतविशेष ३४।११७
दुग्धवारिधि (भौ) अरिसमुद्र नामका पाँचवाँ समुद्र २।५३
दुन्दुभि = दुन्दुभि नामका वर्ष १९।२२
दुर्ग (भौ) देशका नाम ११।७१
दुर्जय (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३७
दुर्दर्श(व्य) पूरणका पुत्र४८।५१
दुर्धर (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३१
दुर्धर (व्य) राजा उग्रसेनका पुत्र ४८।३९
दुर्धर (व्य) पूरणका पुत्र ४८।५१
दुर्भग = भाग्यहीन १८।१२८
दुर्मुख (व्य) जरासंधका पुत्र ५२।३७
दुर्मुख (व्य) पूरणका पुत्र ४८।५१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुर्मुख(व्य) वसुदेव और अवन्तीका पुत्र ४८।६४
दुर्मुख (व्य) एक राजा ५०।८३
दुर्मुख (व्य) वसुदेवका पुत्र ५०।११५
दुर्योधन (व्य)कौरवाग्रज हस्तिनापुरका राजा ४३।२०
दुर्विध = दरिद्र १८।१२७
दुःशासन (व्य) एक राजा [कौरव] ५०।८४
दुःषमा (पा) अवसर्पिणीका पाँचवाँ काल ७।५९
दुष्पक्वाहार (पा) भोगोपभोगका अतिचार ५८।१८२
दुष्पूर(व्य)पूरणका पुत्र ४८।५१
दूषण (पा) ज्ञाता और दर्शनावरणका आस्रव ५८।९२
दृढधर्मा (व्य) हृदिकका पुत्र ४८।४२
दृढनेमि (व्य) समुद्रविजयका पुत्र ४८।४३
दृढबन्ध (व्य) एक राजा ५०।१२६
दृढमुष्टि (व्य) राजा वृषभध्वजका योद्धा ३३।१०३
दृढमुष्टि (व्य) वसुदेव-मदनवेगाका पुत्र ५०।११६
दृढवर्मा (व्य) एक राजा ५०।१३२
दृढव्रत (व्य) समुद्रविजयके भाई अक्षोभ्यका पुत्र ४८।४५
दृढरथ(व्य) भगवान् ऋषभदेवका गणधर १२।५५
दृढरथ (व्य) बृहद्रथका पुत्र १८।१८
दृढरथ (व्य) नरवरका पुत्र १८।१८
दृढरथ (व्य) राजा मेघरथ और सुभद्राका पुत्र १८।११२
दृढायुध (व्य] वैदिशपुरका युवराज ४५।१०७
दृति = मशक ४३।१२२
दृष्टिवादाङ्ग (पा) द्वादशांगका एक भेद
दृष्टिमोह (पा) सम्यग्दर्शनको घातनेवाला दर्शनमोह २।११३
दृष्टिमुष्टि (व्य) वसुदेव और मदनवेगाका पुत्र ४८।६१
दृष्टिविष = सर्पविशेष ११।९४
देव (व्य) देवनन्दी, अपर नाम पूज्यपाद आचार्य १।३१
देवकी (व्य) कंसकी बहन जो वसुदेवको विवाही गयी ३३।२९
देवकुरु (भौ) सुमेरु और निषधके बीचमें स्थित प्रदेश, जहाँ भोगभूमिकी रचना है ५।१६७
देवकुरु (भौ) निषध पर्वतसे उत्तरकी ओर नदीके मध्यमें स्थित एक ह्रद ५।१९६
देवकुरुकूट(भौ) सौमनस्य पर्वतका एक कूट ५।२२१
देवकुरुकूट(भौ) विद्युत्प्रभ पर्वतका एक कूट ५।२२२
देवगर्भ (व्य) बिन्दुसारका पुत्र १८।२०
देवच्छन्द (भौ) अकृत्रिम चैत्यालयोंका गर्भगृह ५।३६०
देवदत्त (व्य) राजा अमरका पुत्र १७।३३
देवदत्त (व्य) अर्जुनके शंखका नाम ५१।२०
देवदत्त (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३६
देवदत्त (व्य) कृष्णका पुत्र ४८।७१
देवदेव (व्य) आगामी तीर्थंकर ६०।५५९
देवपाल (व्य) देवकीका पुत्र ३३।१७०
देवपाल (व्य) धनदत्त और नन्दयशाका पुत्र १८।११४
देवमति (व्य) देविलकी स्त्री ६०।४३
देवनन्द (व्य) राजा गंगदेवका पुत्र ३३।१६३
देवनन्द (व्य) बलदेवका पुत्र ४८।६७
देवरमण (भौ) मेरुका एक वन ५।३०७
देववर (भौ) अन्तिम सोलह द्वीपोंमें चौदहवाँ द्वीप ५।६२५
देवशर्मा (व्य) भगवान् ऋषभदेवका गणधर १२।५५
देवशर्मा (व्य) एक राजा ५०।८४
देवसम्मति (भौ) ब्रह्मयुगलका दूसरा इन्द्रक ६।४९
देवसेन (व्य) भोजकवृष्णि और पद्मावतीका पुत्र १८।१६
देवसेना (व्य) यक्षिलकी स्त्री ६०।६३
देवस्व = देवद्रव्य १८।१०२
देवाग्नि (व्य) भगवान् ऋषभदेवका गणधर १२।५७
देवानन्द (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३५
देवानन्द (व्य) एक राजा ५०।१२५
देवारण्य(भौ)विदेहक्षेत्रमें स्थित वन ५।२८१
देवावतार (भौ)पूर्वमालव देशमें स्थित एक तीर्थ ५०।६०
देविल (व्य) एक मनुष्य६०।४३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देविला (व्य) जयदेवकी पत्नी ६०।१०९
देशसत्य (पा) दश प्रकारके सत्योंमें-से एक सत्य १०।१०५
देशावधि (पा) अवधिज्ञानका एक भेद १०।१५२
दैवकेय = देवकीका पुत्र श्रीकृष्ण ३५।२५
दोष् = भुजा ३६।२२
दोषत्रय = राग, द्वेष, मोह२।८९
द्युति (व्य) शूरदत्तकी स्त्री ३३।९९
द्युमणि = सूर्य ४।६४
द्युम्नधारा = रत्नधारा २।४५
द्योतिः (भौ) रत्नप्रभाके खरभागका आठवाँ पटल ४।५३
द्योतितस्य तथा तस्य १।५३
द्रव्य (पा) उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यसे युक्त अथवा गुण और पर्यायसे युक्त जीवादि छह द्रव्य १।१
द्रव्यादि (पा) द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव १।१
द्रव्यार्थिक नय (पा) सामान्यग्राही नय ५८।४२
द्रुतम् = शीघ्र ही ५१।४२
द्रुपद (व्य) माकन्दीका राजा ४५।१२१
द्रुपद (व्य) एक राज ५०।८१
द्रुम (व्य) जरासंधका पुत्र ५२।३०
द्रुमपेक (व्य) एक मुनिराज ३३।१४९
द्रुमसेन (व्य) जरासंधका पुत्र ५२।३०
द्रुमसेन (व्य) सिंहलके राजा श्लक्ष्णरोमका सेनापति ४४।२३
द्रोण (व्य) द्रोणाचार्य ४५।४१
द्रोणाचार्य (व्य) विद्रावणका पुत्र ४५।४७
द्रोणामुख (पा) नदीके तटवर्त्ती नगर २।३
द्रौपदी (व्य) माकन्दीके राजा द्रुपदकी पुत्री ४५।१२२
द्वादश विभाग = समवसरणकी बारह सभाएँ २।६६
द्विकावलीविधि = एक उपवासविधि ३४।६८
द्विपर्वा = एक विद्या २२।६७
द्विपृष्ठ (व्य) दूसरा नारायण ६०।२८८
द्विपृष्ठ (व्य) आगामी नारायण ६०।५६७
द्विविधकर्मबन्ध = शुभ-अशुभ कर्मबन्ध २।१०९
द्विशतग्रीव (व्य) बलि प्रतिनारायणके वंशमें उत्पन्न हुआ एक राजा २५।३६
द्वीप (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।३०
द्वीपकुमार = भवनवासी देवोंका एक भेद ४।६३
द्वीपसमुद्र प्रज्ञप्ति (पा) परिकर्म श्रुतका भेद १०।६२
द्वीपायन (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।३०
द्वीपायनमुनि (व्य) द्वारिकादाहमें कारणभूत एक मुनि १।११८

[ध]

धनञ्जय (व्य) अर्जुन ५०।९४
धनञ्जय (व्य) मेघपुरका राजा ३३।१३५
धनञ्जय (व्य) धरणका पुत्र ४८।५०
धनञ्जय (व्य) विनमिका पुत्र २२।१०४
धनञ्जय (भौ) वि. उ. नगरी २२।८६
धनञ्जय (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३६
धनदेव (व्य) भगवान् ऋषभदेवका गणधर १२।५६
धनदेव (व्य) इभ्यपुरका सेठ ६०।९५
धनद (व्य) कुबेर ५५।१
धनदत्त (व्य) एक सेठका नाम १८।११३
धनदेव (व्य) एक वैश्य ४६।५०
धराधर (भौ) वि. द. नगरी २२।९७
धनपाल (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३२
धनपाल (व्य) धनदत्त और नन्दयशाका पुत्र १८।११४
धनमित्र (व्य) धनदत्त सेठकी स्त्री नन्दयशाका पुत्र १८।१२०
धनवाहिक (व्य) ऋषभदेवका गणधर १२।६५
धनधान्य प्रमाणातिक्रम (पा) परिग्रह परिमाणाणुव्रतके अतिचार ५८।१७६
धनश्री (व्य) स्त्री ६४।६
धनश्री (व्य) मेघपुरके राजा धनंजय और रानी सर्वश्रीकी पुत्री ३३।१३५
धनुष् (पा) दो किष्कु—चार हाथका एक धनुष ७।४६
धनुर्धर (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३०
धम्मिल (व्य) श्रीभूति ब्राह्मणके स्थानपर रखा गया एक ब्राह्मण २७।४३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर (व्य) एक राजा ५०।८३
धर (व्य) राजा उग्रसेनका पुत्र ४८।३९
धरण (व्य) भवनवासियोंका इन्द्र ९।१२९
धरणीतिलक (भौ) वि. द. का एक नगर २७।७७
धरणेन्द्र (व्य) जयन्त मुनिका जीव २७।१७
धरावती (व्य) अयोध्याके राजा हेमनाभकी स्त्री ४३।१५९
धर्म (व्य) धर्मनाथ–पन्द्रहवें तीर्थंकर १।१७
धर्म (पा) जीव और पुद्गलके गमनमें कारण एक द्रव्य ७।२
धर्म (पा) इसके उत्तम क्षमा आदि १० भेद हैं २।१३०
धर्मतीर्थ = धर्मकी आम्नाय ३।१
धर्मचक्र (पा) तीर्थंकर जिनेन्द्रके समवसरणमें विद्यमान देवोपनीत चक्र २।१४५
धर्मचक्रिन् = धर्मचक्रके धारक जिनेन्द्र-तीर्थंकर ५४।५८
धर्म्यध्यान (पा) प्रशस्त-ध्यानका भेद ५६।३५
धर्ममार्ग (व्य) सुभद्र और सुमित्राकी पुत्री ६०।१०१
धर्मरुचि (व्य) एक मुनि ६४।९
धर्मरुचि (व्य) धनदत्त और नन्दयशाका पुत्र १८।११५
धर्मसंज्ञ(पा)एक चारण ऋद्धिधारी मुनि ६०।१७
धर्मसेन (व्य) एक मुनि६०।६४
धर्मसेन (व्य) दशपूर्वके ज्ञाता एक आचार्य १।६३
धारण (पा) स्फटिक शालका दक्षिण गोपुर ५७।५८
धारण (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।२९
धारण (व्य)एक राजा५०।११८
धारण (व्य) अन्धकवृष्णि और सुभद्राका पुत्र १८।१३
धारण (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३७
धारणयुग्म (भौ) भारतवर्षका एक नगर २३।४६
धारणा (पा) मतिज्ञानका भेद १०।१४६
धारिणी (व्य) सूर्याभकी स्त्री ३४।१७
धारिणी (व्य) अयोध्याके समुद्रदत्त सेठकी स्त्री ४३।१४९
धारिणी = एक विद्या २२।६८
धार्तराष्ट्र (व्य) दुर्योधन आदि सौ कौरव ४५।४३
धातकीखण्ड (भौ) दूसरा द्वीप ५।४८९
धातु=वैणस्वरका भेद १९।१४७
धीमान् (व्य) बलदेवका पुत्र ४८।६७
धीर (व्य) कृष्णका पुत्र ४८।७०
धुनी = नदी (यमुना) ३५।२८
धूपिन = एक जहरीला साँप ३३।१०८
धूमप्रभा (भौ)नरकोंकी पाँचवीं भूमि ४।४४
धूमकेतु (व्य)एक असुर प्रद्युम्नका वैरी ४३।३९
धूमकेतु (व्य) प्रद्युम्नका पूर्वभवका वैरी देवविशेष १।१००
धूमसिंह (व्य) अमितगति विद्याधरका मित्र २१।२३
धृत (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।२९
धृति (व्य) अक्षोभ्यकी स्त्री १९।३
धृति (व्य) तिगिंछ सरोवरमें रहनेवाली देवी ५।१३०
धृति (व्य) रुचिकगिरिके सुदर्शन कूटपर रहनेवाली देवी ५।७१६
धृतिकर (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।१३
धृतिकर (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।११
धृतिकर (व्य) शुभंकरका पुत्र ४५।९
धृतिकूट (भौ) निषधाचलका छठा कूट ५।८९
धृतिक्षेम (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४३।११
धृतिद्युति (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।१३
धृष्टद्युम्न (व्य) राजा द्रुपदका पुत्र ४५।१२१
धृष्टद्युम्न (व्य)एक राजा५०।७९
धृततेजस् (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।३२
धृतिदृष्टि (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।१३
धृतिदेव (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।११
धृतधर्मा (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।३२
धृतपद्म (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।१२
धृतमान (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।३२
धृतिमित्र (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।११
धृतयशस् (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।३२
धृतराज (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।३३
धृतराष्ट्र(व्य)राजा धृतराज और अम्बिकाका पुत्र ४५।३४
धृतराष्ट्रसुत = कौरव १।१०८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धृतव्यास (व्य) राजा शन्तनुका पुत्र ४५।३१
धृतवीर्य (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।१२
धृतिषेण (व्य) दशपूर्वके ज्ञाता एक आचार्य १।६२
धृतेन्द्र (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।१२
धृतोदय (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।३२
धैवत = एक स्वर १९।१५३
धैवती = षड्जस्वरसे सम्बन्ध रखनेवाली जाति १९।१७४
ध्रुव (व्य) एक राजा ५०।१२४
ध्रुव (पा) आग्रायणी पूर्वकी वस्तु १०।७८
ध्रुव (व्य) बलदेवका पुत्र ४८।६६
ध्रुवसेन (व्य) ग्यारह अंगके दाता एक आचार्य १।६
ध्रौव्य (पा) पूर्वोत्तर पर्यायमें स्थिर रहना १।१
ध्वजिनी = सेना ३।५२

[न]

नक्षत्र (व्य) ग्यारह अंगके ज्ञाता एक आचार्य १।६४
नकुल (व्य) पाण्डव ४५।२
नग(व्य) अचलका पुत्र ४८।४९
नन्द (व्य) बलभद्र २५।३५
नन्दक (व्य) एक मुनि ५०।५९
नन्द (भौ) अकृत्रिम चैत्यालयोंकी पूर्वदिशामें विद्यमान एक ह्रद ५।३७२
नन्दन (भौ) वि. उ. नगरी २२।९०
नन्दन (व्य) मानुषोत्तरके रुचक कूटपर रहनेवाला देव ५।६०३
नन्दन (भौ) सौधर्म युगलका सातवाँ इन्द्रक ६।४५
नन्दन (व्य) बलदेवका पुत्र ४८।६७
नन्दन (व्य) भगवान् ऋषभदेवका गणधर १२।५६
नन्दन = पुत्र ९।२१
नन्दन (भौ) नन्दनवनका एक कूट ५।३२९
नन्दन (भौ) मेरुका एक वन ५।३०७
नन्दनवन (भौ) मेरुपर्वतपर स्थित एक वन ५।२९०
नन्दघोषा (पा) समवसरणके अशोकवनकी वापिका ५७।३२
नन्दयन्ती = मध्यम ग्रामके आश्रित जाति १९।१७७
नन्दयशा (व्य) धनदत्त सेठकी स्त्री १८।११३
नन्दयशा(भौ) श्वेताम्बिका पुरीके राजा वासवकी वसुन्धरा नामक स्त्रीसे उत्पन्न ३३।१६१
नन्दशोकपुर (भौ) एक नगर ६०।९७
नन्दा (व्य) रुचिकगिरिके दिग्नन्दन कूटपर रहनेवाली देवी ५।७०५
नन्दा(पा) समवसरणके अशोक वनकी वापिका ५७।३२
नन्दा (व्य) ऋषभदेवकी स्त्री ९।१८
नन्दा (पा) समवसरणकी एक वापिका ५७।७३
नन्दा, नन्दवती, नन्दोत्तरा, नन्दीघोषा (भौ) नन्दीश्वर द्वीपके पूर्वदिशासम्बन्धी अंजनगिरिकी पूर्वादि दिशाओंमें स्थित वापिकाएँ ५।६५८
नन्दिन (व्य) आगामी नारायण ६०।५६६
नन्दिनी (भौ) वि. उ. नगरी २२।९०
नन्दिभद्र (व्य) एक चारण मुनि ६०।७८
नन्दिभूतिक (व्य) आगामी नारायण ६०।५६६
नन्दिमित्र (व्य) आगामी नारायण ६०।५६६
नन्दिमित्र (व्य) सातवाँ बलभद्र ६०।२९०
नन्दिमित्र (व्य) ऋषभदेवका गणधर १२।६९
नन्दिमित्र (व्य) एक श्रुतकेवली आचार्य १।६१
नन्दिवर्द्धन (व्य) एक मुनिका नाम ४३।१०४
नन्दिषेण (व्य) वसुदेवका भवान्तर १८।१३५
नन्दी (व्य) ऋषभदेवका गणधर १२।६९
नन्दी (व्य) आगामी नारायण ६०।५६६
नन्दी, नन्दिप्रभ(व्य) नन्दीश्वर द्वीपके रक्षक देव ५।६४४
नन्दीश्वर व्रतविधि = एक व्रतविशेष ३४।८४
नन्दीश्वर द्वीप (भौ) आठवाँ द्वीप ५।६१६
नन्दीश्वर समुद्र (भौ) आठवाँ सागर ५।६१६
नन्दोत्तर (व्य) मानुषोत्तरके लोहिताक्ष कूटपर रहनेवाला देव ५।६०३
नन्दोत्तरा (पा) समवसरणके अशोकवनकी वापिका ५७।३२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नन्दोत्तरा (व्य) रुचिकगिरिके स्वस्तिक नन्दन कूटपर रहनेवाली देवी ५।७०६
नन्द्यावर्त (भौ) सौधर्म युगलका छब्बीसवाँ इन्द्रक ६।४७
नन्द्यावर्त (भौ) रुचिकगिरिकी पूर्व दिशासम्बन्धी कूट ५।७०२
नभस् = सावनका महीना ५५।१२६
नभस् (पा) अवगाह दानमें समर्थ आकाश ५८।५४
नभस्तिलक (भौ) वि. उ. नगर २२।९८
नभस्तिलक (भौ) विजयार्धगिरिका एक नगर ९।१३३
नभस्तिलक (भौ) एक नगर २५।४
नभसेन (व्य) हरिषेणका पुत्र १७।३४
नमस्या=नमस्कार, पूजा ४२।९
नमि (व्य) ऋषभदेवका गणधर १२।६८
नमि (व्य) इक्कीसवें तीर्थंकर १८।५
नमि (व्य) भगवान् ऋषभदेवके सालेका पुत्र ९।१२८
नमि (व्य) यादव ५०।१२१
नमुचि (व्य) अजाखुरीके राजा राष्ट्रवर्धनका पुत्र ४४।२७
नमुचि (व्य) उज्जयिनीके राजा श्रीधर्माका मन्त्री २०।४
नय (व्य) यादव ५०।१२१
नयनसुन्दरी (व्य) विश्रृंगपुरके सेठ प्रियमित्रकी पुत्री ४५।१०१
नरकान्तक कूट (भौ) नीलकुलाचलका छठा कूट ५।१००
नरकान्ता (भौ) एक महानदी ५।१२४
नरकालय = नारकियोंके बिल ४।७०
नरदेव (व्य) बलदेवका पुत्र ४८।६८
नरपति (व्य) राजा यदुका पुत्र १८।७
नरवक्र (व्य) आठवाँ नारद ६०।५४९
नरवर (व्य) दृढरथका पुत्र १८।१८
नरहरि (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।१९
नर्मद (भौ) देशका नाम ११।७२
नर्मदा (व्य) वसुन्धरपुरके राजा विन्ध्यसेनकी स्त्री ४५।७०
नर्मदा (भौ) एक नदी ४५।११३
नलिन (भौ) रुचिकगिरिका पश्चिम दिशासम्बन्धी कूट ५।७१२
नलिन(भौ) पूर्व विदेहका वक्षार गिरि ५।२२८
नलिनगुल्मा (भौ)मेरुके ऐशानमें स्थित एक वापी ५।३४५
नलिन (व्य) आगामी छठा मनु ६०।५५६
नलिनराज(व्य) आगामी आठवाँ मनु ६०।५५६
नलिनध्वज(व्य) आगामी नौवाँ मनु ६०।५५७
नलिन (भौ) सौधर्म युगलका आठवाँ इन्द्रक ६।४५
नलिन(पा) चौरासी लाख नलिनांगोंका एक नलिन ७।२७
नलिनपुङ्गव (व्य) आगामी दसवाँ मनु ६०।५५७
नलिनप्रभ(व्य) आगामी सातवाँ मनु ६०।५५६
नलिना (भौ) मेरुकी आग्नेय दिशामें स्थित एक वापी ५।३३४
नलिना (भौ) मेरुके ऐशानमें स्थित एक वापी ५।३४५
नलिनाङ्ग (पा) चौरासी लाख पद्मोंका एक नलिनांग ७।२७
नलिनी (भौ) पूर्व विदेहका एक देश ५।२४९
नलिनी(पा) समवसरणके चम्पक वनकी वापिका ५७।३४
नवनवम = व्रतविशेष ३४।९३-९४
नवमिका (व्य) रुचिकगिरिके सौमनस कूटपर रहनेवाली देवी ५।७१३
नवराष्ट्र (भौ) देशका नाम ११।७०
नवश्री(व्य) आगामी प्रतिनारायण ६०।५६९
नाग = भवनवासी देवोंका एक भेद ४।६३
नाग (व्य) दशपूर्वके ज्ञाता एक आचार्य १।६२
नाग (भौ) सानत्कुमार युगलका तीसरा इन्द्रक ६।४८
नागकुमारादि = भवनवासी देव २।८१
नागपुर (भौ) हस्तिनागपुर १७।१६२
नागपुर (भौ) हस्तिनापुर २०।१२
नागमाल (भौ)पश्चिम विदेहका वक्षारगिरि ५।२३२
नागरमण (भौ) मेरुका एक वन ५।३०७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नागवर (भौ) अन्तिम सोलह द्वीपमें ग्यारहवाँ द्वीप५।६२४
नागवेलन्धर(व्य)वेलन्धरजातिके नागकुमार देव ५।४६५
नागश्री (व्य) एक स्त्री ६४।६
नाट्यमाल (व्य) एक देव ११।५४
नाडी (पा) दो किष्कु—चार हाथकी एक नाडी ७।४६
नान्दी (व्य) छठा बलभद्र ६०।२९०
नान्दीवर्धना (व्य) रुचिकगिरिके अंजनमूलक कूटपर रहनेवाली देवी ५।७०६
नाभिगिरि (भौ) हैमवत, हरिरम्यक और हैरण्यवत क्षेत्रके मध्यमें स्थित श्रद्धावत आदि पर्वत ५।१६३
नाभिराज (व्य) चौदहवाँ कुलकर ७।१६९
नाभेय (व्य) भगवान् वृषभदेव ९।२५
नाम (सुबन्त) = पदगत गान्धर्वकी विधि १९।१४९
नामकर्म (पा) शरीरादि रचनाका हेतु कर्म ५८।२१७
नामसत्य (पा) दश प्रकारके सत्योंमें-से एक सत्य१०।९८
नामादिक (पा) नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव ये चार निक्षेप २।१०८
नामान्त (भौ) वि. द. नगरी २२।९६
नारद (व्य) एक देव ६०।८०
नारक (भौ) रत्नप्रभा पृथिवीके द्वितीय प्रस्तारका इन्द्रक बिल ४।७६
नारद (व्य) क्षीरकदम्बका एक शिष्य १७।३८
नारद (व्य) पदवीधर नारद ५४।४
नारद (व्य) वसुदेव और सोमश्रीका पुत्र ४८।५७
नारसिंह(व्य)वसुदेवका सम्बन्धी एक विद्याधर ५१।३
नारायण (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।१९
नारायण (व्य) आठवाँ नारायण ६०।२८९
नारी(भौ) एक महानदी ५।१२४
नारीकूट (भौ) रुक्मिकुलाचलका चौथा कूट ५।१०३
नासारिक (भौ) देशका नाम ११।७२
निकृतिभाषा (पा) सत्यप्रवाद पूर्वकी १२ भाषाओंमें एक भाषा १०।९५
निक्षेप (पा) अजीवाधिकरण आस्रवका भेद ५८।८६
निक्षेपादानसमिति (पा) योग्य वस्तुको देखकर रखना-उठाना २।१२५
निगोद (पा) नरकोंके बिल ४।३५३
नित्यालोक (भौ) धातकीखण्ड वि द. का एक नरक ३३।१३१
नित्यालोक (भौ) रुचिकगिरि या दक्षिण-दिशासम्बन्धी एक विशिष्ट कूट ५।७१९
निदान (पा) सल्लेखना व्रतका अतिचार ५८।१८४
निदाघ (भौ) बालुकाप्रभा पृथिवीके पंचम प्रस्तारका इन्द्रक बिल ४।१२२
नित्योद्योत (भौ) रुचिकगिरिका उत्तर दिशासम्बन्धी एक विशिष्ट कूट ५।७२०
निधत्तानिधत्तक (पा) आग्रायणी पूर्वके चतुर्थ प्राभृतका योगद्वार १०।८५
निपुणमति (व्य) रानी रामदत्ताकी धाय २७।२१
निबन्धन (पा) आग्रायणी पूर्वके चतुर्थ प्राभृतका योगद्वार १०।८२
निमग्नजला (भौ) विजयार्धकी गुहाके भीतर मिलनेवाली एक नदी ११।२६
नियुत(पा)चौरासी लाख नियुतांगोंका एक नियुत ७।२६
नियुताङ्ग (पा) चौरासी लाख पूर्वांगोंका एक नियुतांग ७।२६
निरुद्ध (भौ) पाँचवीं पृथिवीके प्रथम प्रस्तारसम्बन्धी तम इन्द्रककी पूर्व दिशामें स्थित महानरक ४।१५६
निरोध (भौ) चौथी पृथिवीके प्रथम प्रस्तारसम्बन्धी आर इन्द्रककी दिशामें स्थित महानरक ४।१५५
निर्घृण (वि) निर्दय ११।९१
निर्घृणता = निर्दयता ५५।८९
निर्ग्रन्थ (पा) मुनिका एक भेद ६४।५८
निर्वक्ष शाड्वला = एक विद्या २२।६३
निर्नामक (व्य) रानी नन्दयशाका पुत्र ३३।१४६
निवर्तना (पा) अजीवाधिकरण आस्रवका भेद ५८।८६
निर्विचिकित्सा = बिना किसी ग्लानिके १८।१६५
निर्वाण = मोक्ष १।१२५
निर्वाण (पा) आग्रायणी पूर्वकी वस्तु १०।८०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्विण्ण = विरक्त १।१२१
निर्वृति (व्य)प्रतिमाओंके समीप विद्यमान एक देवी ५।३६३
निर्वृति = एक विद्या २२।६५
निवृत्ति (पा)इन्द्रियाकार पुद्गलका परिणमन १८।८५
निशान्त = घर ३५।१
निशान्त = प्रातःकाल ३५।११
निशुम्भ (व्य) चौथा प्रतिनारायण ६०।२९१
निश्चयकाल (पा) लोकाकाशके प्रत्येक प्रदेशपर स्थित अमूर्तिक कालाणु ७।३
निष्कषाय(व्य)आगामी तीर्थंकर ६०।५६०
निषद्यका (पा) = अंग बाह्यश्रुतका एक भेद २।१०५
निषध (व्य) निषध देशका राजा ५०।१२४
निषध (भौ) जम्बूद्वीपका तीसरा कुलाचल ५।१५
निषध (भौ) निषध पर्वतसे उत्तरकी ओर नदीके मध्य स्थित एक ह्रद ५।१९६
निषध (भौ) नन्दनवनका एक कूट ५।३२९
निषध (व्य एक राजा ५०।८३
निषध (व्य) बलदेवका पुत्र ४८।६६
निषध कूट (भौ) निषधाचलका दूसरा कूट ५।८८
निषाद = एक स्वर १९।१५३
निषाद = भील ३५।६
निषादजा=षड्ज स्वरसे सम्बन्ध रखनेवाली जाति१९।१७४
निष्कम्प (व्य) विजयका पुत्र ४८।४८
निष्क्रमण = दीक्षाकल्याणक २।५५
निष्क्राम = तालगत गान्धर्वका एक प्रकार १९।१५०
निष्क्रान्त = दीक्षित हो गया। १८।१७८
निसर्गक्रिया (पा) एक क्रिया ५८।७५
निसर्ग (पा) अजीवाधिकरण आस्रवका भेद ५८।८६
निसृष्ट (भौ) चौथी पृथिवीके प्रथम प्रस्तारसम्बन्धी आर इन्द्रककी पूर्व दिशामें स्थित महानरक ४।१५५
निहतशत्रु (व्य) शतधनुके वंशका एक राजा १८।२१
निह्नव (पा) ज्ञाना. और दर्शना. का आस्रव ५८।९२
नील (भौ) छठी पृथिवीके प्रथम प्रस्तारसम्बन्धी हिम इन्द्रककी पूर्व दिशामें स्थित महानरक ४।१५७
नील (व्य)नीलवान् विद्याधरका पुत्र २३।४
नील (भौ) जम्बूद्वीपका छठा कुलाचल ५।१५
नीलक (व्य) रुचकगिरिके श्रीवृक्ष कूटका निवासी देव ५।७०२
नीलकण्ठ (व्य) नीलका पुत्र २३।७
नीलकण्ठ (व्य) आगामी प्रतिनारायण ६०।५७०
नीलकण्ठ (व्य) एक विद्याधर राजा २५।६३
नीलकूट (भौ) नील कुलाचलका दूसरा कूट ५।९९
नीलगुहा(भौ) राजगृहके समीपवर्ती एक गुफा ६०।३७
नीलयशा (व्य) सिंहदंष्ट्र और नीलांजनाकी पुत्री २२।११३
नीलयशा (व्य) चारुदत्तकी स्त्री १।८२
नीलाञ्जना(व्य) नीलवान् विद्याधरकी पुत्री २३।४
नीललेश्या = लेश्याका एक भेद ४।३४३
नीलाञ्जना (व्य) सिंहदंष्ट्रकी स्त्री २२।११३
नीलाञ्जसा (व्य)इन्द्रकी नर्तकी ९।४७
नीलवान् (व्य) शकटामुख नगरका स्वामी विद्याधर २३।३
नीलवान् (भौ) नील कुलाचलसे साढ़े पाँच सौ योजन दूर नदीके मध्यमें स्थित एक ह्रद ५।१९४

[प]

पङ्क (भौ) छठी पृथिवीके हिम नामक इन्द्रकी दक्षिण दिशामें स्थित महानरक ४।१५७
पङ्कप्रभा (भौ) चौथी पृथिवी ४।४४
पङ्कबहुल (भौ) रत्नप्रभा पृथिवीका दूसरा भाग ४।४८
पक्ष (पा) व्यवहार कालका भेद १५ दिनका पक्ष होता है ७।२१
पण्डक = नपुंसक ३।११३
पञ्चकल्याणविधि (पा) एक व्रतका नाम ३४।१११
पञ्चम (पा) एक स्वरका नाम १९।१५३
पञ्चमहाव्रत (पा) परिग्रहत्याग महाव्रत २।१२१
पञ्चमी (पा) मध्यम ग्रामके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आश्रित एक जाति(संगीत-का भेद) १९।१७६

पञ्चशिरस् (व्य) कुण्डलवर गिरिपर रहनेवाला एक देव ५।६९०

पञ्चशत ग्रीव (व्य) बलिके वंशका एक राजा २५।३६

पञ्चशैलपुर (भौ) बिहार प्रान्त-का 'राजगृही नगर' ३।५२

पञ्चविंशति कल्याणभावनाविधि (पा) एक व्रतका नाम ३४।११३

पञ्चाल (भौ) भारतवर्षका एक देश ३।३

पञ्चाश्चर्य (पा) भगवान्के दान देते समय प्रकट होनेवाले 'अहोदान' आदिकी ध्वनि रूप पाँच आश्चर्य ९।१९०

पटच्चर (भौ) एक देशका नाम ११।६४

पणव = एक बाजा ३१।३९

पण्य (भौ) नन्दन वनकी पूर्व दिशामें स्थित एक भवन ५।३१५

पण्डितम्मन्य = अपने आपको पण्डित माननेवाला ६०।११

पत्तन (भौ) एक देश ११।७४

पद (पा) श्रुतज्ञानका भेद १०।१२

पदसमास(पा) श्रुतज्ञानका भेद १०।१२

पद्म (पा) एक निधि ५९।६३

पद्म (पा) व्यवहारकालका एक भेद ७।२७

पद्म (भौ) सौधर्म स्वर्गका पटल ६।४६

पद्म (व्य) पुष्कर द्वीपका रक्षक देव ५।६३९

पद्म (व्य) कुण्डलगिरिका वासी एक देव ५।६९१

पद्म (भौ) हिमवत्कुलाचलका ह्रद ५।१२१

पद्म (व्य)वसुदेवका पुत्र ४८।५८

पद्म (व्य) अनन्तनाथ भगवान्-का पूर्वभवका नाम ६०।१५३

पद्म (व्य) हस्तिनापुरके राजा महापद्मका पुत्र २०।१४

पद्म (व्य) चन्द्रप्रभ भगवान्के पूर्वभवका नाम ६०।१५२

पद्मक (व्य) वसुदेवका पुत्र ४८।५८

पद्मकूट (भौ) एक वक्षार गिरि ५।२२८

पद्मककूट (भौ) विद्युत्प्रभ पर्वत-का एक कूट ५।२२२

पद्मकूट (भौ) रुचकगिरिका एक कूट ५।७१३

पद्मखण्डपुर (भौ) एक नगर २७।४४

पद्मगुल्म (व्य) शीतलनाथ भगवान्का पूर्वभवका नाम ६०।१५२

पद्मदेव (व्य) एक राजा ४५।२५

पद्मदेवी (व्य) भरतक्षेत्रके शाल्मली खण्ड नामक ग्राम-में देविला और जयदेवका पुत्र ६०।१०९

पद्मध्वज (व्य) आगामी कुलकर ६०।५५७

पद्मनाभ (व्य) पूर्वधातकी खण्ड-के भरत क्षेत्रकी अमरकंका पुरीका राजा ५४।८

पद्मनामक (व्य) आगामी चक्र-वर्ती ६०।५६४

पद्मनिधि (पा) चक्रवर्तीकी एक निधि ११।१२१

पद्मपुङ्गव (व्य) आगामी कुलकर ६०।५५७

पद्मप्रभ (व्य) छठे तीर्थंकर २२।३२

पद्मप्रभ (व्य) आगामी कुलकर ६०।५५७

पद्ममाल (व्य) एक राजा ४५।२४

पद्मयान (व्य) कमलयान जिस-पर भगवान्का विहार होता है ५९।१०

पद्मरथ (व्य) एक राजा ४५।२४

पद्मरथ (व्य) कुण्डग्रामका राजा ३१।३

पद्मरागमय (भौ) मेरुकी एक परिधि ५।३०५

पद्मराज (व्य) आगामी कुलकर ६०।५५७

पद्मवेदिका (भौ) विदेहक्षेत्रकी रत्नमयी वेदिकाओंकी लघु वेदिका ५।१७६

पद्मश्री (व्य) अरिञ्जयपुरके राजा मेघनादकी पुत्री ३५।३

पद्मसेन (व्य) धातकीखण्डद्वीप-की अयोध्याका एक राजा ६०।५९

पद्मकावती (भौ) एक विदेह ५।२४९

पद्मा (व्य) त्रिशृंग नगरके राजा प्रचण्डवाहनकी पुत्री ४५।९८

पद्मा (भौ) एक वापिका५७।३४

पद्मा (भौ) एक विदेह ५।२४९

पद्माङ्ग (पा) व्यवहार कालका एक भेद ७।२७

पद्माल (भौ) विजयार्धके उत्तर श्रेणीका एक नगर २२।८६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पद्मासन (व्य) विमलनाथ भगवान्‌का पूर्व भवका नाम ६०।१५३
पद्मावती (व्य) रुचिकगिरिके पद्मकूटपर रहनेवाली देवी ५।७१३
पद्मावती (व्य) वसुदेवकी एक स्त्री १।८३
पद्मावती (भौ) विदेहकी एक नगरी ५।२६०
पद्मावती (व्य) मुनिसुव्रत भगवान्‌की माता राजा सुमित्रकी रानी १६।२
पद्मावती (व्य) एक दिक्कुमारी देवी ८।११०
पद्मावती (व्य) भोजक वृष्णिकी स्त्री १८।१६
पद्मोत्तर (भौ) मेरुपर्वतसे पूर्वकी ओर सीमा नदीके उत्तर तटपर स्थित कूट ५।२०५
पद्मोत्तर (व्य) कुण्डलगिरिका वासी एक देव ५।६९१
पद्मोत्तर (व्य) रुचकगिरिके नन्द्यावर्तकूटपर रहनेवाला देव ५।७०२
पद्मोत्तर(व्य) वासुपूज्य भगवान्‌का पूर्वभवसम्बन्धी नाम ६०।१५३
परमाणु(पा) पुद्गलद्रव्यका सबसे छोटा हिस्सा ७।१७
परमावधि (पा) अवधिज्ञानका एक भेद १०।१५२
परविवाहकरण (पा) ब्रह्मचर्याणु व्रतका अतिचार ५८।१७४
परशुराम (व्य) जमदग्निका पुत्र २५।९
परस्पर कल्याणविधि (पा) एक व्रतका नाम ३४।१२४
पराख्य (व्य) भगवान् ऋषभदेवका एक गणधर १२।६१
परावर्त (पा) तालगत गान्धर्वका एक भेद १९।१५०
परिकर्म (पा) द्वादशांगका एक भेद २।९६
परिखा = खाई ५७।२१
परिणाम(पा) कालद्रव्यका कार्य ७।५
परिदेवन (पा) असातावेदनीयका आस्रव ५८।९३
परिव्राजक = संन्यासी २१।१३४
परोक्षप्रमाण (पा) मतिश्रुतज्ञान १०।१५५
पर्याय (पा) श्रुतज्ञानका भेद १०।१२
पर्याय समास (पा) श्रुतज्ञानका भेद १०।१२
पर्याप्ति (पा) नामकर्मका एक भेद ५६।१०४
पर्वत (व्य)क्षीरकदम्बका पुत्र—मिथ्या मार्गको चलानेवाला १७।३९
पर्वतक (व्य) एक भीलका नाम ६०।१६
पलाशकूट (भौ) सीतोदा नदीके उत्तर तटपर स्थित एक कूट ५।२०७
पल्य(पा) व्यवहार कालका एक भेद ३।१२४
पल्लव (भौ) दक्षिण भारतका एक देश ६१।४२
पाणिग्रहण=विवाह ४५।१४६
पाञ्चजन्य (व्य) कृष्णके शंखका नाम १।११२
पाण्डव (व्य) युधिष्ठिर आदि ४५।१
पाण्डु (भौ) पाण्डुकवनका एक भवन ५।३२२
पाण्डु (व्य) युधिष्ठिरादिके पिता ४५।३४
पाण्डु (व्य) ग्यारह अंगके ज्ञाता एक मुनि १।६४
पाण्डुक (भौ) मेरुका एक भाग ५।३०९
पाण्डुक (भौ) राजगृहीके पाँच पहाड़ोंमें-से एक पहाड़ ३।५५
पाण्डुक (भौ) वि. उ. श्रे. का एक नगर २२।८८
पाण्डुक (व्य) कुण्डलगिरिके महेन्द्र कूटका वासी देव ५।६९४
पाण्डुक=विद्याधरोंकी एक जाति २६।१७
पाण्डुका (भौ) सुमेरुके पाण्डुक वनमें स्थित एक शिला २।४१
पाण्डुकम्बला (भौ) पाण्डुक वनकी एक शिला ५।३४७
पाण्डुकी (व्य) विद्याविशेष २२।८०
पाण्डुकेय (व्य) पाण्डुकी विद्यासे सम्बद्ध विद्याधर २२।८०
पाण्डुर (व्य) कुण्डलगिरिके हिमवत् कूटका वासी देव ५।६९४
पाण्डुर (व्य) क्षीरवरद्वीपका रक्षक देव ५।६४१
पात्र (पा) जिन्हें दान दिया जाता हो ऐसे मुनि, श्रावक और अविरत सम्यग्दृष्टि ७।१०८
पात्री = एक मंगल द्रव्य ५।३६४
पाद (पा) छह अंगुलोंका एक पाद होता है ७।४५
पाद भाग(पा) तालगत गान्धर्वका एक प्रकार १९।१५१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पापोपदेश (पा) अनर्थदण्डका भेद ५८।१४६
पारणा (व्य) व्रतके बाद होनेवाला भोजन ३३।७९
पारशर(व्य) एक राजा ४५।२९
पारिणामिक भाव (पा) कर्मोंके उपशमादिके बिना स्वयं होनेवाला एक भाव ३।७९
पारिग्राहिकी क्रिया (पा) पचीस क्रियाओंमें-से एक क्रिया ५८।८०
पार्थ (व्य) अर्जुन ४५।१३१
पार्थिव (व्य) एक राजा५२।३३
पार्वतेय = विद्याधरोंकी एक जाति २६।२०
पार्श्व (व्य) तेईसवें तीर्थंकर १।२५
पांसुमूल (भौ) वि. द. श्रेणीका एक नगर २२।९९
पिङ्गल (व्य) वसुदेवका पुत्र ४८।६३
पिण्डशुद्धि = भोजनशुद्धि २।१२४
पितृष्वसा = बुआ ४२।७२
पिपास (भौ) प्रथम पृथ्वीके सीमन्तक इन्द्रकके दक्षिण दिशामें स्थित महानरक ४।१५१
पिप्पलाद (व्य) याज्ञवल्क्य और सुलसाका पुत्र २१।१३९
पिहितास्रव (व्य) एक मुनि २७।८
पिहितास्रव (व्य) एक मुनि २७।९३
पिहितास्रव (व्य) पद्मप्रभ भगवान्‌के पूर्वभवके गुरु ६०।१५९
पीठिका (भौ) विदेहक्षेत्रके जम्बू स्थलका एक भाग जो मूलमें १२, मध्यमें ८ और अन्तमें ४ कोश चौड़ा है ५।१७५
पुण्डरीक (व्य) पुष्करद्वीपका रक्षक देव ५।६३९
पुण्डरीक (भौ) शिखरीकुलाचल का ह्रद ५।१२१
पुण्डरीक (व्य) एक नारायणका नाम ६०।५२९
पुण्डरीक (पा) प्रकीर्णकश्रुतका एक भेद २।१०४
पुण्डरीकिणी (व्य) एक दिक्कुमारी देवी ८।११२
पुण्डरीकिणी (व्य) रुचिकगिरि, के अंजनक कूटपर रहनेवाली देवी ५।७१५
पुण्डरीकिणी (भौ) विदेहकी एक नगरी ५।२५७
पुण्डरीकिणी (व्य) एक देवी ३८।३५
पुण्यमूर्ति (व्य) आगामी तीर्थंकर ६०।५६०
पुद्गल(पा) रूप, रस, गन्ध और स्पर्शसे युक्त एक द्रव्य ४।३
पुद्गलात्मा (पा) कर्मप्रकृति वस्तुका एक अनुयोगद्वार १०।८५
पुष्कर = कमल ५।५७६
पुष्करद्वीप (भौ) एक द्वीपका नाम ५।५७६
पुष्करोद (भौ) मध्यलोकका एक समुद्र ५।५९६
पुष्कला(भौ) पश्चिम विदेहक्षेत्रमे स्थित एक विदेह ५।२४५
पुष्कलावती (भौ) पश्चिम विदेहक्षेत्रमें स्थित एक विदेह ५।२४५
पुरु (भौ) वि. उ. श्रेणीका एक नगर २२।९१
पुरुष (भौ) एक देश ११।७०
पुरुषसिंह (व्य) एक नारायणका नाम ६०।५२७
पुरुषोत्तम (व्य) एक नारायणका नाम ६०।५२३
पुरुहूत (व्य) एक विद्याधर २२।१०७
पुरोधस् (पा) चक्रवर्तीका एक रत्न (चेतनरत्न) ११।१०८
पुलस्त्य (व्य) एक विद्याधर २२।१०८
पुलोम (व्य) कुण्डिनपुरके राजा कुणिमका पुत्र १७।२४
पुलोमपुर (भौ) राजा पुलोमका बसाया एक नगर १७।२५
पुष्पक (भौ) आनत स्वर्गका एक इन्द्रक ६।५१
पुष्पदन्त (व्य) नौवें तीर्थंकर १।११
पुष्पदन्त (व्य) क्षीरवर द्वीपका रक्षक देव ५।६४१
पुष्पदन्त (व्य) एक क्षुल्लक २०।२७
पुष्पचूड (भौ) वि. उ. श्रे. का एक नगर २२।९१
पुष्पमाल (भौ) वि. उ. श्रेणीका एक नगर २२।९१
पुष्पमाला (व्य) एक दिक्कुमारी देवी ५।३३३
पुष्पोत्तर (भौ) स्वर्गका एक विमान १।२०
पूतिगन्धिका (व्य) रुक्मिणीका एक भवान्तरका नाम ६०।३३
पूरण (व्य) समुद्रविजय आदि दस भाइयोंमें आठवाँ भाई १८।१३
पूर्ण (व्य) इक्षुवरद्वीपका रक्षक देव ५।६४३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्णभद्र (भौ) विजयार्धपर्वतका एक कूट ५।२६
पूर्णभद्र (व्य) अयोध्याके समुद्रदत्त सेठका पुत्र ४३।१४९
पूर्णभद्र (व्य) एक यक्षका नाम ५।५०१
पूर्णचन्द्र (व्य) आगामी बलभद्र ६०।५६८
पूर्णप्रभ (व्य) इक्षुवर द्वीपका रक्षक देव ५।६४३
पूर्णचन्द्र (व्य) रामदत्ताका पुत्र, सिंहचन्द्रका अनुज २७।४७
पूर्णभद्रकूट (भौ) ऐरावतके विजयार्ध पर्वतका एक कूट ५।१११
पूर्णभद्रकूट (भौ) माल्यवान् पर्वतका एक कूट ५।२२०
पूर्ण (भौ) एक वापिका ५८।७३
पूर्व (पा) श्रुतज्ञानका भेद १०।१३
पूर्व (पा) चौरासी लाख पूर्वांगका एक पूर्व होता है ७।२५
पूर्वगत (पा) दृष्टिवाद नामक बारहवें अंगका एक भेद २।९६
पूर्वविदेहकूट (भौ) नील पर्वतका एक कूट ५।९९
पूर्वपक्ष = शंकापक्ष २१।१३६
पूर्वसमास (पा) श्रुतज्ञानका भेद १०।१३
पूर्वाङ्ग (पा) चौरासी लाख वर्षोंका एक पूर्वांग होता है ७।२४
पूर्वान्त (पा) आग्रायणीय पूर्वकी एक वस्तु १०।७८
पृथक्त्ववितर्कवीचार (पा) शुक्लध्यानका एक भेद ५६।५४
पृथिवी (व्य) एक दिक्कुमारी देवी ८।११०
पृथिवी (व्य) वि. द. श्रेणी गान्धारदेशके गन्धसमृद्ध नगरके राजा गान्धारकी स्त्री ३०।७
पृथिवीकाय (पा) एकेन्द्रियजीवोंका एक भेद, मिट्टी पाषाण आदि रूप ३।१२१
पृथु (व्य) एक राजा ४५।१४
पैशुन्यभाषा (पा) एक भाषाका भेद १०।९३
पोदनपुर (भौ) एक नगर २७।५५
पौण्ड्र (भौ) एक देश ११।६८
पौण्ड्र (व्य) एक राजा ३१।२८
पौण्ड्र (व्य) वसुदेवका पुत्र ४८।५९
पौण्ड्रा (व्य) वसुदेवकी स्त्री ४८।५९
पौरवी (पा) एक मूर्च्छनाका भेद १९।१६३
पौलोम (व्य) राजा पुलोमका पुत्र १७।२५
प्रकाम (व्य) आगामी रुद्र ६०।५७१
प्रकीर्णक (पा) अंगबाह्यश्रुतका भेद १०।१२५
प्रकृतिद्युति (व्य) एक राजा ५०।१२४
प्रकृति (पा) आग्रायणीयपूर्वकी पंचमवस्तुके बीस प्राभृतोंमें-से कर्मप्रकृति प्राभृतके चौबीस अनुयोग द्वारोंमें एक अनुयोगद्वार १०।८२
प्रक्रम (पा) कर्मप्रकृति वस्तुका एक अनुयोगद्वार १०।८३
प्रचण्डवाहन (व्य) त्रिशृंग नगरका राजा ४५।९६
प्रचला (पा) दर्शनावरणका भेद ५६।९७
प्रचला-प्रचला (पा) दर्शनावरणकर्मका एक भेद ५६।९१
प्रच्छाल (भौ) एक देश ३।६
प्रजाग (प्रयाग) (भौ) भगवान् ऋषभदेवका दीक्षास्थान ९।९६
प्रजापति (व्य) भगवान् ऋषभदेवका एक गणधर १२।६५
प्रज्ञप्ति = एक विद्या २७।१३१
प्रणिधान्या (व्य) एक दिक्कुमारी देवी ८।१०८
प्रणिधि (व्य) एक देवी ३८।३३
प्रतिपत्तिसमास (पा) श्रुतज्ञानका भेद १०।१२
प्रतिष्ठापनिका (पा) एक सीमित निर्जन्तु स्थानमें मलमूत्र छोड़ना २।१२६
प्रतिष्ठित (व्य) एक राजा ४५।१२
प्रतिसर (व्य) एक राजा ४५।२९
प्रतीहारी = द्वारपालिनी २३।१
प्रतीत्य सत्य (पा) सत्यवचनका एक भेद १०।१०१
प्रत्याख्यान पूर्व (पा) द्वादशांगका एक भेद २।९९
प्रत्येक (पा) नामकर्मका एक भेद ५६।१०४
प्रथमानुयोग (पा) द्वादशांगका एक भेद २।९६
प्रदीपाङ्ग (भौ) एक प्रकारका कल्पवृक्ष ७।८०
प्रदेश (पा) आकाशद्रव्यका सबसे छोटा भाग ७।१७
प्रदोष (पा) ज्ञानावरण और दर्शनावरणका आस्रव ५८।९२
प्रद्युम्न (व्य) श्रीकृष्ण-रुक्मिणीका पुत्र १।१००
प्रद्युम्न (व्य) श्रीकृष्ण-रुक्मिणीका पुत्र ४३।६१
प्रबोध (भौ) एक स्तूपका नाम ५७।१०६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभङ्कर (भौ) सौधर्मस्वर्गका एक पटल ६।४७
प्रभङ्करा (भौ) विदेहकी एक नगरी ५।२५९
प्रभञ्जन (व्य) एक विद्याधर २२।१०४
प्रभञ्जन (भौ) मानुषोत्तर पर्वतका एक कूट ५।६१०
प्रभञ्जन (व्य) मानुषोत्तरके प्रभंजन कूटपर रहनेवाला देव ५।६१०
प्रभा (भौ) सौधर्म स्वर्गका एक पटल ६।४७
प्रभावती (व्य) जयकुमारकी भवान्तरकी स्त्री १२।११
प्रभावती (व्य) वि. द. श्रेणीके राजा गन्धार और पृथिवीकी पुत्री ३०।७
प्रभावती (व्य) भगवान् मुनि-सुव्रतनाथकी स्त्री १६।५५
प्रभास (व्य) धातकीखण्ड द्वीपका रक्षक देव ५।६३८
प्रभास (व्य) भगवान् महावीरका एक गणधर ३।४३
प्रभासा (भौ) एक वापिका ५७।३५
प्रभामण्डल (पा) भगवान्का एक प्रातिहार्य ३।३४
प्रभावती (व्य) वसुदेवकी स्त्री १।८६
प्रभुशक्ति = राजाओंकी तीन शक्तियोंमें-से एक शक्ति ८।२०१
प्रभूततेज (व्य) शशीका पुत्र एक राजा १३।९
प्रमोदय (व्य) भविष्यत्कालसम्बन्धी तीर्थंकरका नाम ६०।५५९
प्रमत्तसंयत (पा) छठा गुणस्थान ३।९०
प्रमद (व्य) आगामी रुद्र ६०।५७१
प्रमदा (भौ) समवसरणकी नाट्यशाला ५७।९३
प्रमाणपद (पा) आठ अक्षरका एक प्रमाणपद होता है १०।२२
प्रमाणाङ्गुल (पा) उत्सेधांगुलसे पाँच सौ गुना बड़ा अंगुल ७।४२
प्रमाद(पा)४ कषाय, ४ विकथा, ५ इन्द्रियोंके विषय, १ निद्रा १ स्नेह ये १५ प्रमाद हैं ५८।१९२
प्रमादाचरित (पा) अनर्थदण्डका एक भेद ५८।१४६
प्रमोद (पा) एक भावना ५८।१२५
प्रवाल (भौ) रत्नप्रभा पृथिवीके खरभागके १६ पटलोंमें-से सातवाँ पटल ४।५३
प्रवीचार = मैथुन ३।१६२
प्रवेशन (पा) तालगत गान्धर्वका एक भेद १९।१५०
प्रशान्ति (व्य) एक राजा ४५।१९
प्रश्नव्याकरणाङ्ग (पा) श्रुतज्ञानका एक भेद १०।४३
प्रश्नकीर्ति (व्य) आगामी तीर्थंकर ६०।५५९
प्रष्ठक (भौ) सौधर्मस्वर्गका एक पटल ६।४७
प्रसेनजित् (व्य) एक कुलकर ७।१६६
प्रहारसंक्रामिणी(व्य) एक विद्या २२।७०
प्रह्लाद (व्य) उज्जयिनीके राजा श्रीधर्माका एक मन्त्री २०।४
प्राण (पा) व्यवहारकालका एक भेद ७।१९
प्राणत (भौ) तेरहवाँ स्वर्ग ३।१५५
प्राणत (भौ) आनत स्वर्गका इन्द्रक ६।५१
प्राणावायपूर्व (पा) द्वादशांगका एक भेद २।९९
प्रातिहार्य (पा) तीर्थंकरके समवसरणमें प्रकट होनेवाले अशोक-वृक्ष आदि आठ प्रातिहार्य ३।३९
प्राद्योतिष (भौ) एक देश ११।६८
प्राभृत (पा) श्रुतज्ञानका भेद १०।१३
प्राभृतसमास (पा) श्रुतज्ञानका भेद १०।१३
प्राभृतप्राभृत (पा) श्रुतज्ञानका भेद १०।१३
प्राभृतप्राभृतसमास (पा) श्रुतज्ञानका भेद १०।१३
प्रायोपगमन (पा) संन्यासमरणका एक भेद ३४।४२
प्रासाद = महल २३।१
प्रास्थाल(भौ) एक देश ११।६७
प्रियकारिणी(व्य) राजा सिद्धार्थकी स्त्री भगवान् महावीरकी माता २।२१
प्रियङ्गुलतिका (व्य) जिनदास सेठकी पनिहारिन ३३।५०
प्रियङ्गुसुन्दरी (व्य) श्रावस्ती नगरीके राजा एणीपुत्रकी कन्या २८।६
प्रियदर्शन (व्य) धातकीखण्ड द्वीपका रक्षक देव ५।६३८
प्रियदर्शन (भौ) सुमेरुका एक नाम ५।३७४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रियंवद = मधुरभाषी २१।३१
प्रीति(भौ) एक वापिका५७।३६
प्रीतिकर(व्य) एक राजा४५।१३
प्रीतिंकर (व्य) प्रीतिभद्र राजा-का पुत्र २७।९७
प्रीतिङ्कर (भौ) ऊर्ध्वग्रैवेयकका एक इन्द्रक विमान ६।५३
प्रीतिभद्र (व्य) भरतक्षेत्र चित्र-कारपुरका राजा २७।९७
प्रीतिमती (व्य) अरिंजयपुरके राजा अरिंजय और अजित-सेनाकी पुत्री ३४।१८
प्रेक्षागृह = नाट्यशाला ५७।९३
प्रोष्ठिल (व्य) ११ अंग और दश पूर्वके ज्ञाता एक मुनि १।६२
प्रोष्ठिल व्य) भगवान् महावीर-के पूर्वभवके गुरुका नाम ६०।१६३

[ब]

बद्धप्रलाप (पा) सत्यप्रवाद पूर्व की १२ भाषाओंमें एक भाषा १०।९३
बन्ध (पा) आत्माका कर्मोंके साथ एक क्षेत्रावगाह ५८।२०२
बन्ध(पा) अहिंसाणुव्रतका अति-चार ५८।१६४
बन्धन = विद्यास्त्र २५।४८
बन्धन (पा) आग्रायणी पूर्वके चतुर्थ प्राभृतका योगद्वार १०।८२
बन्धुमती (व्य) वसुदेवकी स्त्री १।८५
बन्धुमती(व्य)अरिष्टपुर निवासी रेवतीकी पुत्री, बलदेवकी स्त्री ४४।४१
बन्धुमती (व्य) बन्धुषेणकी स्त्री ६०।४८
बन्धुमती(व्य) श्रावस्तीके काम-देव सेठकी पुत्री २९।७
बन्धुयशा (व्य) एक कन्या ६०।४९
बन्धुषेण (व्य) वसुदेव और बन्धुमतीका पुत्र ४८।६२
बन्धुषेण (व्य) एक राजा ६०।४८
बहिर्द्विष् = बाह्यशत्रु १।२३
बहुकृत्वः = अनेकबार ६०।३
बहुकेतु (भौ) वि. उ. नगरी २२।९३
बहुशिलामय (भौ) रत्नप्रभाके खरभागका सोलहवाँ पटल ४।५४
बहुश्रुतभक्ति=भावना ३४।१४१
बह्नि (व्य) लौकान्तिक देवका एक भेद ५५।१०१
बल (व्य) स्मितयशका पुत्र १३।८
बलदेव (व्य) वसुदेव और रोहिणीका पुत्र ४८।६४
बलभद्र (भौ)सानत्कुमार युगल-का छठा इन्द्रक ६।४८
बलभद्र (व्य) आगामी नारायण ६०।५६६
बलभद्रकदेव (व्य) नन्दनवनके बलभद्र कूटपर रहनेवाला देव ९।३२८
बलभद्रक कूट (भौ) नन्दनवनके मध्यमें स्थित एक कूट ५।३२८
बलरिपु (व्य) इन्द्र ५५।१३
बलसिंह (भौ) वैजयन्ती नगरी-का राजा ३०।३३
बलि(व्य)विजयका पुत्र ४८।४८
बाण (व्य) विजयार्धके शोणित-पुर नगरका निवासी विद्या-धर ५५।१६
बालचन्द्र (व्य) आगामी बल. ६०।५६९
बालचन्द्रा (व्य) वि. द. के गगनवल्लभ नगरकी राज-कन्या २६।५०
बालुकाप्रभा (भौ) नरकोंकी तीसरी भूमि ४।४३
बाह्लीक (व्य) वसुदेव और जरा-का पुत्र ४८।६३
बाहुबली (व्य) भगवान् ऋषभ-देवका पुत्र ९।२२
बाहुल्य = मोटाई ४।४९
बाह्यपरिग्रह (पा) धन-धान्यादि १० प्रकारका बाह्य परि-ग्रह २।१२१
बुद्धि (व्य) महापुण्डरीक सरोवर-में रहनेवाली देवी ५।१३०
बुद्धिकूट (भौ) रुक्मिकुलाचलका पाँचवाँ कूट ५।१०३
बुद्धिल (व्य) दशपूर्वके ज्ञाता एक आचार्य १।६३
बुद्धिसेना (व्य) एक गणिका २७।१०१
बृहद्गृह (भौ) वि. द. नगरी २२।९५
बृहद्ध्वज (व्य) राजा वसुका पुत्र १७।५९
बृहद्ध्वज (व्य) एक राजा ५०।१३०
बृहद्ध्वज (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।१७
बृहद्ध्वज (व्य) जरासन्धका पुत्र ५३।३१
बृहद्रथ (व्य) कुंजरावर्त नागपुर—(हस्तिनापुरमें) रहनेवाले सुवसुका पुत्र १८।१७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बृहद्रथ (व्य) शतपतिका पुत्र १८।२२
बृहद्रथ (व्य) कृष्णका पुत्र ४८।६९
बृहद्बलि (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।४०
बृहस्पति (व्य) एक भविष्य-वक्ता २३।८
बृहस्पति (व्य) उज्जयिनीके राजा श्रीधर्माका मन्त्री २०।४
बृहद्वसु (व्य) राजा वसुका पुत्र १७।५८
बोधचतुष्क (पा) मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय ये चार ज्ञान ५५।१२५
बोधि (पा) रत्नत्रय–सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र ३।१९०
ब्रध्नमण्डल=सूर्यमण्डल २।१४५
ब्रह्म (भौ) पाँचवाँ स्वर्ग ६।३६
ब्रह्म (भौ) ब्रह्मयुगलका तीसरा इन्द्रक ६।४९
ब्रह्मदत्त (व्य) बारहवाँ चक्रवर्ती ६०।२८७
ब्रह्मदत्त (व्य) गिरितटनगरका एक उपाध्याय २३।३३
ब्रह्मचर्य महाव्रत (पा) कृत, कारित, अनुमोदनासे स्त्री-पुरुषके गमागमका त्याग २।१२०
ब्रह्मलोक (भौ) पाँचवाँ स्वर्ग १।१२२
ब्रह्मशिरस् (व्य) एक शस्त्र ५२।५५
ब्रह्महृदय (भौ) लान्तव युगल-का प्रथम इन्द्रक ६।५०
ब्रह्मोत्तर (भौ) छठा स्वर्ग ४।२३
ब्रह्मोत्तर (भौ) ब्रह्मयुगलका चौथा इन्द्रक ६।४९
ब्राह्मी (व्य) भगवान् ऋषभदेव-की पुत्री ९।२१

[भ]

भगदत्तक (व्य) एक राजा ५०।८२
भगीरथ (व्य)प्रभावतीका पिता-मह एक विद्याधर ३०।५२
भद्र (व्य) सागरका पुत्र १३।९
भद्र (भौ)सौधर्मयुगलका इक्की-सवाँ इन्द्रक ६।४६
भद्र (व्य) नन्दीश्वरवर समुद्रका रक्षक देव ५।६४५
भद्र (भौ) देशविशेष ११।७५
भद्र (व्य) शंखका पुत्र १७।३५
भद्रक (व्य) श्रावस्तीके कामदत्त सेठके एक भैंसेका नाम २८।२५
भद्रकार (भौ) देशविशेष ३।३
भद्रकाली=एक विद्या २२।६६
भद्रकूट (भौ) रुचिकगिरिका पश्चिम दिशासम्बन्धी कूट ५।७१४
भद्रपुर (भौ) एक नगर१७।३०
भद्रवाम (व्य) ऋषभदेवका गणधर १२।६९
भद्रबाहु (व्य) एक श्रुतकेवली आचार्य
भद्रशाल वन (भौ) मेरुपर्वतको घेरकर स्थित एक वन ५।२०९
भद्रा (व्य)वाराणसीके सोमशर्मा ब्राह्मणकी एक पुत्री २२।१३२
भद्रा (व्य) विनमिकी पुत्री २२।१०६
भद्रा (व्य) समवसरणकी एक वापिका ५७।७३
भद्रावलि (व्य) ऋषभदेवका गणधर १२।६८
भद्रिका (व्य) रुचिकगिरिके भद्रकूटपर रहनेवाली देवी ५।७१४
भद्रिलपुर (भौ)एक नगर, जहाँ वसुदेव गये २४।३१
भद्रिलसा (भौ) एक नगरी ३३।१६७
भरत (व्य) कृष्णका पुत्र४८।७१
भरत (व्य) प्रथम चक्रवर्ती ६०।२८६
भरत (व्य) आगामी चक्रवर्ती ६०।५६३
भरत (व्य) भगवान् ऋषभदेव-का पुत्र ९।२१
भरुकच्छ (भौ) देशका नाम ११।७२
भरतकूट (भौ) हिमवत्कुलाचल-का तीसरा कूट ५।५३
भव (व्य) रुद्र ६०।५७१
भवधारण (पा) आग्रायणी पूर्वके चतुर्थ प्राभृतका योगद्वार १०।८४
भव्य (पा) जिसे सम्यग्दर्शनादि गुण प्रकट होनेकी योग्यता हो १।५
भव्यकूटस्तूप (पा)समवसरणका स्तूप ५७।१०४
भागदत्त (व्य) ऋषभदेवका गणधर १२।६४
भागफल्गु (व्य) ऋषभदेवका गणधर १२।६४
भाजनाङ्ग = एक कल्पवृक्ष७।८०
भानु (व्य) एक राजा५०।१३०
भानु (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३१
भानु (व्य) श्रीकृष्ण-सत्यभामा-का पुत्र ४४।१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भानु (व्य) मथुराका एक सेठ ३३।९६
भानु (व्य) कंसकी स्त्री जीवद्यशाका भाई ३५।७५
भानु (व्य) कृष्णका पुत्र४८।६९
भानु (व्य) भानुकुमार नामका श्रीकृष्णका पुत्र १।१००
भानु (व्य) लब्धाभिमानका पुत्र १८।३
भानुकीर्ति (व्य) मथुराके भानु और मथुराका पुत्र ३३।९७
भानुदत्त (व्य) चम्पा नगरीका एक सेठ, चारुदत्तका पिता २१।६
भानुमालिनी (व्य) समवसरणके आम्रवनकी वापिका ५७।३५
भानुषेण (व्य) मथुराके भानु और यमुनाका पुत्र३३।९७
भामा (व्य) सत्यभामा ४३।३
भार्गव (भौ) देशका नाम ११।६९
भारत (भौ) जम्बूद्वीपका दक्षिण दिशामें स्थित प्रथम क्षेत्र ५।१३
भद्रिलपुर (भौ) एक नगर ६०।११
भारद्वाज (भौ) देशका नाम ११।६७
भाव = पदार्थ ४।२
भावादिविचय (पा)धर्मध्यानका एक भेद ५६।४७
भावन = असुरकुमार आदि भवनवासी देव ३।१३५
भावनाविधि = व्रतविशेष ३४।११२
भावसत्य (पा) दश प्रकारके सत्योंमें-से एक सत्य १०।१०६
भाषासमिति (पा) धर्मकार्योंमें हित-मित प्रिय वचन बोलना २।१२३
भाषासमितिव्रत = व्रतविशेष ३४।१०७
भासा (पा) समवसरणके आम्रवनकी वापिका ५७।३५
भास्कर (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३८
भास्वती (पा) समवसरणके आम्रवनकी वापिका ५७।३५
भीम (व्य) सुभानुका पुत्र१८।३
भीम (व्य) मध्यम पाण्डव ५०।७८
भीम (व्य) कृष्णका पुत्र४८।६९
भीम (व्य) पहला नारद ६०।५४८
भीमक (व्य) एक उद्दण्ड राजा ४३।१६२
भीमसेन(व्य) पाण्डव ४५।२
भीरु (भौ) देशविशेष ३।५
भीष्म (व्य) राजा शन्तनुके वंशमें राजा रुक्मण और रानी गंगासे उत्पन्न पुत्र ४५।३५
भीष्म (व्य) रुक्मिणीका पिता ६०।३९
भीष्मज = भीष्मके पुत्र, रुक्मी ४२।९३
भीष्मजा = रुक्मिणी ६०।४१
भुजगवरद्वीप (भौ) चौदहवाँ द्वीप ५।६१९
भुजगवरसागर (व्य) चौदहवाँ सागर ५।६१९
भुजबली (व्य) सुबलका पुत्र १३।१७
भुजिष्य = सेवक ११।७८
भुजिष्या = दासी ४०।३९
भूतरमण (भौ) मेरुका एक वन ५।३०७
भूतरमण (भौ) एक अटवी २७।११९
भूतवर (भौ) अन्तिम सोलह द्वीपोंमें बारहवाँ द्वीप ५।६२५
भूतारण्य (भौ) विदेहक्षेत्रमें स्थित वनविशेष ५।२८१
भूति (व्य)भगवान् ऋषभदेवका गणधर १२।५९
भूभृत् = पर्वत ३।६०
भूमिकुण्डल कूट (भौ) वि. द. नगरी २२।१००
भूमिलुण्ड=अदिति देवीके द्वारा दत्त विद्याओंका एक निकाय २३।५७
भूमिशय्याव्रत (पा) मुनियोंका मूल गुण जमीनपर सोना २।१२९
भूरिश्रवस् (व्य) महापुरके राजा सोमदत्तका पुत्र २४।५२
भूरिश्रवस् (व्य) एक राजा ५०।७९
भूषाङ्ग = एक कल्पवृक्ष ७।८१
भृङ्गनिभा (भौ) मेरुके नैऋत्यमें स्थित एक वापिका५।३४३
भृङ्गराक्षस (व्य) नरमांसभोजी राक्षस तुल्य एक दुष्ट मनुष्य ४५।९४
भृङ्गा (भौ) मेरुके नैऋत्यमें स्थित वापिका ५।३४३
भृगु = पहाड़की चट्टान १।१२८
भोग (पा) चक्रवर्तीके दश भोग १ भाजन, २ भोजन, ३ शय्या, ४ सेना, ५ वाहन, ६ आसन, ७ निधि, ८ रत्न, ९ नगर, १० नाट्य ११।१३१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भोगङ्करा (व्य) दिक्कुमारी देवी ५।२२७
भोगभूमि (भौ) वह भूमि—जहाँ कल्पवृक्षोंसे १० प्रकारके भोग प्राप्त होते हैं २।७७
भोगमालिनी (व्य) दिक्कुमारी देवी ५।२२७
भोगवती (व्य) दिक्कुमारी देवी ५।२२७
भोगवती (व्य) माकन्दीके राजा द्रुपदकी स्त्री ४५।१२१
भोगवर्धन (भौ) देशका नाम ११।७०
भोज (व्य) कृष्णका पक्षपाती एक राजा ५२।१५
भोजकवृष्णि (व्य) यदुवंशी मथुराके राजा सुवीरका पुत्र १८।१०
भोजनाङ्ग = एक कल्पवृक्ष ७।८०
भोजसुता (व्य) राजीमती ५५।७२
भौम = व्यन्तर देव ३।१६२
भौम = पृथिवीकायिक जीव १८।७०
भौम (पा) अष्टांग निमित्त ज्ञानका एक अंग १०।११७
भौमावय (पा) आग्रायणी पूर्वकी वस्तु १०।७९
भ्रकुंश = नटवेषधारी नपुंसक ५४।४८
भ्रम (भौ) धूमप्रभा पृथिवीके द्वितीय प्रस्तारका इन्द्रक ४।१३९
भ्रमरघोष (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।१४
भ्रान्त (भौ) रत्नप्रभा पृथिवीके चतुर्थ प्रस्तारका इन्द्रक ४।७६

[म]

मकरध्वज (व्य) प्रद्युम्न५५।३१
मकराकर = समुद्र ४१।४
मगध (भौ) देशका नाम (बिहारका एक भाग) ४३।९९
मगधासार नलक (भौ) वि. द. नगरी २२।९९
मगधेश्वर (व्य) राजा श्रेणिक ५०।२
मघवान् (व्य) तीसरा चक्रवर्ती ६०।२८६
मघवी (भौ) तमःप्रभाका रूढ़ि नाम ४।४६
मङ्गल कूट (भौ) सौमनस्य पर्वतका एक कूट ५।२२१
मङ्गला = एक विद्या २२।७०
मङ्गलावती (भौ) धातकीखण्ड पूर्वविदेहका एक देश ६०।५७
मङ्गलावती (भौ) पूर्वविदेहका एक देश ५।२४७
मङ्गी (व्य) विमलचन्द्र राजाकी विमला रानीसे उत्पन्न पुत्री जो वज्रमुष्टिको दी गयी ३३।१०४
मङ्गी (व्य) एक भीलनी २७।१०७
मञ्जूषा (भौ) विदेहकी नगरी ५।२५७
मज्जोदरी (व्य) एक कलालिन जिसके यहाँ कंस पला ३३।१५
मटम्ब (पा) पाँच सौ गाँवोंसे घिरा नगर २।३
मणिकाञ्चन = विजयार्धकी एक गुहा ४२।१८
मणिकाञ्चन (भौ) वि. उ. नगरी २२।८९
मणिकाञ्चन कूट (भौ) शिखरिकुलाचलका ग्यारहवाँ कूट ५।१०७
मणिकाञ्चन कूट (भौ) रुक्मिकुलाचलका आठवाँ कूट ५।१०४
मणिचूल-हिमचूल (व्य) चित्रचूल और मनोहरीके युगल पुत्र ३३।१३३
मणिचूल (व्य) विनमिका पुत्र २२।१०४
मणिप्रभ (भौ) वि. द. नगरी २२।९६
मणिप्रभ (भौ) रुचिक गिरिका नैर्ऋत्य दिशासम्बन्धी कूट ५।७२३
मणि मणिप्रभ (भौ) कुण्डलगिरिके पश्चिम दिशासम्बन्धी कूट ५।६९३
मणिभद्र (भौ) विजयार्धका छठा कूट ५।२७
मणिभद्र (व्य) अयोध्याके सेठ समुद्रदत्तका छोटा पुत्र ४३।१४९
मणिभद्रकूट (भौ) ऐरावतके विजयार्धका चौथा कूट ५।११०
मणिवज्र (भौ) वि. उ. नगरी २२।८८
मण्डित (भौ) वि. द. नगरी २२।९३
मण्डूक (भौ) एक गाँव ६०।३३
मण्डूकी (व्य) एक धीवरी ६०।३२
मतङ्गज(व्य) वसुदेव और नीलयशाका पुत्र ४८।५७
मत्तजला(भौ) विदेहक्षेत्रकी एक विभंगा नदी ५।२४०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मत्सरीकृता = षड्जस्वरकी मूर्च्छना १९।१६१
मत्स्य (भौ) देशका नाम ११।६५
मत्स्य (भौ) देशविशेष ३।४
मत्स्य (व्य) राजा महीदत्तका पुत्र १७।२९
मथुरा = यमुनातटपर स्थित प्रसिद्ध नगरी १७।१६२
मथुरा (व्य) दक्षिणसमुद्र तटपर पाण्डवोंके द्वारा बसायी हुई एक नगरी ५४।७३
मदन (व्य) कृष्णका पुत्र प्रद्युम्न ५५।१७
मदनवेगा (व्य) एक कन्या जो वसुदेवको विवाही गयी २४।८४
मद्यवान् (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३६
मद्याङ्ग = एक कल्पवृक्ष ७।८०
मदन = प्रद्युम्न ४३।२४४
मद्रक (भौ) देशका नाम ११।६६
मद्रकार (भौ) देशका नाम ११।६४
मद्री(व्य) अन्धकवृष्णिकी पुत्री, पाण्डुकी स्त्री १८।१५
मधु (व्य) हेमनाभ और धरावतीका पुत्र ४३।१६९
मधु = वसन्त ऋतु ५५।२९
मधुकैटभ (व्य) पाँचवाँ प्रतिनारायण ६०।२९१
मधुपिङ्गल (व्य) राजा तृणबिन्दु और सर्वयशाका पुत्र २३।५२
मधुरा (व्य) वर्धकि गाँवके मृगायण ब्राह्मणकी स्त्री २७।६२
मध्य देश (भौ) मध्यवर्ती देश ३।१
मध्यम = एक स्वर १९।१५३
मध्य मध्यम (व्य) वारुणीवर समुद्रके रक्षक देव ५।६४१
मध्यमपद (पा) सोलह सौ चौंतीस करोड़ तेरासी लाख सात हजार आठ सौ अठासी अक्षरोंका एक मध्यम पद होता है १०।२४
मध्यमपात्र (पा) संयतासंयत श्रावक ७।१०९
मध्यमा=मध्यम ग्रामके आश्रित जाति १९।१७६
मध्यम शातकुम्भ = व्रतविशेष ३४।८७
मध्यम सिंह निष्क्रीडित = एक उपवासव्रत ३४।७९
मध्यमोदीच्यवा=मध्यम ग्रामके आश्रित जाति १९।१७७
मध्यलोक स्तूप(पा) समवसरणके स्तूप ५७।९७
मनक (भौ) शर्कराप्रभा पृथिवीके तृतीय प्रस्तारका इन्द्रक बिल ४।१०७
मनःपर्यय (व्य) दूसरेके मनकी बातको जाननेवाला ज्ञानविशेष २।५६
मनःशिलद्वीप (भौ) अन्तिम सोलह द्वीपोंमें पहला द्वीप ५।६२२
मनु = कुलकर ८।१
मनु = अदिति देवीके द्वारा विद्याओंका एक निकाय २२।५७
मनु (भौ) वि. उ. नगरी २२।८८
मनुपुत्रक = विद्याधर जाति २६।९
मनोगति (व्य) सूर्याभ और धारिणीका पुत्र ३४।१७
मनोभव (व्य) रुद्र ६०।५७१
मनोभू = काम १७।७
मनोरमा (व्य) अमितगति विद्यागरकी स्त्री २१।१२०
मनोरमा (व्य) मेघपुरके राजा पवनवेग और मनोहरी रानीकी पुत्री, वनमालाका जीव १५।२७
मनोहरी (व्य) चित्रचूलकी स्त्री ३३।१३२
मनोहरी (व्य) मेघपुरके राजा पवनवेगकी स्त्री १५।२६
मनोहरी (व्य) राजा दक्ष और इलाकी पुत्री १७।३
मन्दर (भौ) मेरुपर्वत ४।११
मन्दरस्तूप (पा) समवसरणके स्तूप ५७।९८
मन्दर (व्य) मथुराके राजा रत्नवीर्यकी अमितप्रभा रानीसे उत्पन्न पुत्र, धरणेन्द्रका जीव २७।१३५
मन्दर (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३५
मन्दर (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।११
मन्दर (भौ) नन्दनवनका एक कूट ५।३२९
मन्दर(भौ) रुचिकगिरिका दक्षिण दिशासम्बन्धी कूट ५।७०८
मन्दोदरी (व्य) राजा सगरकी प्रतीहारी २३।५०
मय (व्य) समुद्रविजयका पुत्र ४८।४४
मयूरग्रीव (व्य) आगामी प्रतिनारायण ६०।५७०
मरकत = हरे रंगका मणि२।१०
मरीचि (व्य) सत्यभामाके भवान्तर वर्णनमें उल्लिखित एक ब्राह्मण ६०।११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मरीचिकुमार (व्य) भगवान् ऋषभदेवका पोता ९।१२५
मरुत्=देव ९।११४
मरुदेव (व्य) वसुदेव और सोमश्रीका पुत्र ४८।५४
मरुदेव (व्य) बारहवाँ कुलकर ७।१६४
मरुदेवी (व्य) नाभिराज कुलकरकी स्त्री ८।६
मरुन्मार्ग=आकाश १२।४५
मरुभूति (व्य) चारुदत्तका मित्र २१।१३
मलद (भौ) देशका नाम ११।६९
मलय (भौ) एक देश ३३।१५७
मलय (व्य) अचलका पुत्र ४८।४९
मलय (व्य) कालयवनका हाथी ५२।२९
मलयाद्रि (भौ) दक्षिणदिशाका एक पर्वत जिसपर चन्दन होता है ५४।७४
मल्ल (भौ) देशका नाम ११।६८
मल्लि (व्य) मुनिसुव्रत नामका प्रथम गणधर ६०।३४८
मल्लि (स्य) मल्लिनाथ नामक उन्नीसवें तीर्थंकर १।२०
मसारगल्व (भौ) रत्नप्रभाके खरभागका पाँचवाँ भेद ४।५३
मस्तक(भौ)देशका नाम ११।६८
महाकक्ष (भौ) वि. द. नगरी २२।१७
महाकच्छ (व्य) ऋषभदेवका गणधर १२।६८
महाकच्छा (भौ) पश्चिम विदेहका एक देश ५।२४५
महाकल्प (पा) अंगबाह्यश्रुतका एक भेद २।१०४
महाकाङ्क्ष (भौ) प्रथम पृथिवीसम्बन्धी प्रथम प्रस्तारके सीमन्तक इन्द्रकी पश्चिम दिशामें स्थित महानरक ४।१५१
महाकाल (व्य) उज्जयिनीका एक वन ३३।१०२
महाकाल (भौ)सातवीं पृथिवीके अप्रतिष्ठान इन्द्रककी पश्चिम दिशामें स्थित महानरक ४।१५८
महाकाल (पा) चक्रवर्तीकी निधि ११।११०
महाकाल (व्य) मधुपिंगल मुनि मरकर महाकाल देव हुआ २३।१२६
महाकाल (व्य) कालोदधिका रक्षक देव ५।६३८
महाकाल (व्य) छठा नारद
महाकाली=एक विद्या २२।६६
महागन्ध (व्य) इक्षुवर समुद्रका रक्षक देव ५।६४४
महागिरि (व्य) हरिका पुत्र १५।५९
महागौरी=एक विद्या २२।६२
महाचन्द्र (व्य) आगामी बलभद्र ६०।५६८
महाजय (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३८
महाज्वाल (भौ) वि. उ. नगरी २२।९०
महादुःख (भौ)तीसरी पृथिवीके प्रथम प्रस्तारसम्बन्धी तप्त नामक इन्द्रककी पश्चिम दिशामें स्थित महानरक ४।१५४
महादेवी=पट्टराज्ञी १।११५
महाद्युति (व्य) यादव ५०।१२१
महाधि=भारी मानसिक दुःख ५५।१९
महाधनु (व्य) बलदेवका पुत्र ४८।६८
महानन्द (व्य) एक राजा
महातमःप्रभा (भौ) नरकोंकी सातवीं भूमि ४।४५
महानाग (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३८
महानाद (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३४
महानिच्छ (भौ)दूसरी पृथिवीके प्रथम प्रस्तारसम्बन्धी तरक इन्द्रक बिलकी पूर्वदिशामें स्थित महानरक ४।१५३
महानिरोध (भौ) चौथी पृथिवीके प्रथम प्रस्तारसम्बन्धी आर इन्द्रककी उत्तरदिशामें स्थित महानरक ४।१५५
महानील (भौ) छठी पृथिवीके प्रथम प्रस्तारसम्बन्धी हिम इन्द्रककी पश्चिम दिशामें स्थित महानरक ४।१५७
महानुभाव (व्य) ऋषभदेवका गणधर १२।६९
महानेमि (व्य) यादव५०।१२०
महानेमि (व्य) एक यदुवंशी राजा ५०।८३
महानेमि (व्य) समुद्रविजयका पुत्र ४८।४३
महानेमिकुमार (व्य) कृष्णके पक्षका योद्धा ५२।१४
महापङ्का (भौ) छठी पृथिवीके प्रथम प्रस्तारसम्बन्धी हिम इन्द्रककी उत्तर दिशामें स्थित महानरक ४।१५७
महापद्म (व्य) नवम चक्रवर्ती ६०।२८७
महापद्म (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३८
महापद्म (व्य) कुण्डलगिरिके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुप्रभ कूटका निवासी देव ५।६९२
महापद्म (भौ) महाहिमवत् कुलाचलका ह्रद ५।१२१
महापद्म (व्य) आगामी चक्रवर्ती ६०।५६५
महापद्म (व्य) आगामी तीर्थंकर ६०।५५८
महापद्मा (भौ) पूर्वविदेहका एक देश ५।२४९
महापुण्डरीक (भौ) रुक्मिकुलाचलका ह्रद ५।१२१
महापुण्डरीक (पा) अंगबाह्यश्रुतका एक भेद २।१०४
महापुर (भौ) वि. उ. नगरी २२।९१
महापुर (भौ) एक नगर, जहाँ वसुदेव गये थे २४।३७
महापुरी (भौ) विदेहकी एक नगरी ५।२६१
महाप्रभ (व्य) क्षीरवर द्वीपका रक्षक देव ५।५४२
महाप्रभ (भौ) कुण्डलगिरिका दक्षिण दिशाका कूट ५।६९२
महाबल (व्य) एक विद्याधर ६०।१८
महाबल (व्य) भगवान् ऋषभदेवका पूर्वभव ९।५८
महाबल (व्य) एक राजा ५०।१२५
महाबल (व्य) सोमयशका पुत्र १३।१६
महाबल (व्य) सुबलका पुत्र १३।८
महाबल (व्य) ऋषभदेवका गणधर १२।६६
महाबल (व्य)आगामी नारायण ६०।५६६
महाबाहु (व्य) विनमिका पुत्र २२।१०५
महाबाहु (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३४
महाभानु (व्य) कृष्णका पुत्र ४८।६९
महाभुज (व्य) कुण्डलगिरिके कनकप्रभकूटका निवासी देव ५।६९०
महाभीम (व्य) दूसरा नारद ६०।५४८
महामालिन् (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।४०
महारथ (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।२८
महारथ (व्य) वसुदेव और अवन्तीका पुत्र ४८।६४
महारथ (व्य) ऋषभदेवका गणधर १२।६६
महाराज (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।१५
महारुद्र (व्य) चौथा नारद ६०।५४८
महारौरव (भौ) सातवीं पृथिवीके अप्रतिष्ठान इन्द्रककी उत्तरदिशामें स्थित महानरक ४।१५८
महालता (पा) चौरासी लाख महालतांगोंकी एक महालता होती है ७।२९
महालताङ्ग (पा) चौरासी लाख लताओंका एक महालतांग होता है ७।२९
महावत्सा (भौ) पूर्वविदेहका एक देश ५।२४७
महावप्रा (भौ) पश्चिम विदेहका एक देश ५।२५१
महावसु (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३२
महावसु (व्य) राजा वसुका पुत्र १७।५८
महाविन्ध्य (भौ) दूसरी पृथिवीके प्रथम प्रस्तारसम्बन्धी इन्द्रककी उत्तर दिशामें स्थित, महाभयानक नरक ४।१५३
महाविमर्दन (भौ) पाँचवीं पृथिवीके प्रथम प्रस्तारसम्बन्धी तम इन्द्रककी उत्तर दिशामें स्थित महानरक ४।१५६
महावीर (व्य) अन्तिम तीर्थंकर २।१८
महावेदन (भौ)तीसरी पृथिवीके प्रथम प्रस्तारसम्बन्धी तप्त नामक इन्द्रक विलकी उत्तर दिशामें स्थित महानरक ४।१५४
महाव्रत (पा) हिंसा आदि पाँच पापोंका सर्वदेश त्याग करना, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह— ये पाँच महाव्रत हैं २।११७
महाशिरस् (व्य) कुण्डलगिरिके कनककूटपर रहनेवाला देव ५।६९०
महाशुक्र(भौ)दसवाँ स्वर्ग ४।२५
महाशुक्र (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३३
महाशुक्र (भौ) दसवाँ स्वर्ग ६।३७
महाश्वेता—एक विद्या २२।६३
महासर (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।२९
महासर्वतोभद्र = एक उपवास व्रत ३४।५७-५८
महासेन (व्य)भोजकवृष्णि और पद्मावतीका पुत्र १८।१६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महासेन (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३८
महासेन (व्य) कृष्णकी लक्ष्मणा स्त्रीका भाई ४४।२५
महासेन (व्य) उग्रसेनके चाचा शान्तनुका पुत्र ४८।२४०
महासेन (व्य)—एक आचार्य १।३३
महासेन (व्य) कृष्णका पुत्र ४८।७०
महासेन (व्य) एक राजा ५०।१३१
महाहिमवत् (भौ) जम्बूद्वीपका दूसरा कुलाचल ५।१५
महाहिमवत्कूट (भौ) महाहिमवत्कुलाचलका दूसरा कूट ५।७१
महाहृदय (व्य) कुण्डलगिरिके अंकप्रभ कूटका निवासी देव ५।६९३
महीजय (व्य) समुद्रविजयका पुत्र ४८।४४
महीजय (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३०
महीदत्त (व्य) पौलोमका पुत्र १७।२८
महीधर (व्य) भगवान् ऋषभदेवका गणधर १२।५८
महीपाल (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३१
महेन्द्र (भौ) कुण्डलगिरिका उत्तर दिशासम्बन्धी कूट ५।६९४
महेन्द्र (व्य) एक राजा६०।८१
महेन्द्र [भौ] वि. उ. नगरी २२।९०
महेन्द्र (व्य) अचलका पुत्र ४८।४९
महेन्द्रगिरि (व्य) वसुदेवकी गन्धर्वसेना स्त्रीसे उत्पन्न पुत्र ४८।५५
महेन्द्रदत्त (व्य) ऋषभदेवका गणधर १२।६६
महेन्द्रजित् (व्य) इन्द्रद्युम्नका पुत्र १३।१०
महेन्द्रविक्रम (व्य) उदितपराक्रमका पुत्र १३।१०
महेन्द्रविक्रम (व्य) विजयार्धकी दक्षिण श्रेणीके शिवमन्दिर नगरका राजा २१।२२
महेन्द्रसेन(व्य)एक मुनि४३।१५०
महोदय(व्य) समवसरणका एक मण्डप ५७।८६
माकन्दी [भौ] एक नगरी ४५।१२०
मागध [व्य] पूर्व लवणसमुद्रका वासी देव ११।७
मागध [व्य] जरासन्ध १।१०८
मागध = राजा श्रेणिक ४५।३
मागधेशपुर [भौ] नगरविशेष १८।१७
मातङ्ग=दिति देवीके द्वारा प्रदत्त विद्यानिकाय २२।५९
मातङ्ग [व्य] नमिका पुत्र २२।१०८
मातङ्ग = विद्याधरोंकी जाति २६।१५
मातङ्गपुर [भौ] वि. द. नगरी २२।१००
मातरिश्वा = कुत्ता ४६।५३
मातलि[व्य]इन्द्रके द्वारा प्रेषित नेमिनाथके रथका सारथि ५१।११
मातृष्वसा = मौसी १८।१२८
मात्रा=तालगत गान्धर्वका एक प्रकार १९।१५१
माद्री [व्य] राजा पाण्डुकी द्वितीय स्त्री ४५।३८
माधवी [भौ] महातम-प्रभाका रूढि नाम ४।४६
माणव [भौ] देशका नाम११।६
माणव (पा) चक्रवर्तीकी एक निधि ११।११०
माण्डव्य [व्य] भगवान् महावीरका छठा गणधर ३।४२
माधवमास = वसन्तका महीना ५५।४३
माधव=[व्य] श्रीकृष्ण ४२।६८
माधवी=एक लता ११।१००
मानव (व्य) अदिति देवीके द्वारा दत्त विद्याओंका एक निकाय २२।५७
मानव (भौ) वि. द. नगरी २२।९५
मानवपुत्रक = विद्याधरोंकी एक जाति २६।८
मानवर्तिक (भौ) देशका नाम ११।६८
मानसवेग (व्य) चित्तवेग विद्याधरका पुत्र २४।७०
मानसवेग (व्य) वसुदेवका वैरी एक विद्याधर २६।२७
मानसवेग (व्य) वसुदेवका सम्बन्धी एक विद्याधर ५१।३
मानस्तम्भ=समवसरणकी चारों दिशाओंमें स्थित महिमायुक्त स्तम्भ २।७४
मानाङ्गणा (पा) समवसरणकी एक भूमि ५७।९
मानुषोत्तरभूभृत् (भौ) पुष्करद्वीपके मध्यमें स्थित चूडीके आकारका पर्वत ३।५७७
मानुषोत्तर (भौ) मेरु पर्वतका एक वन ५।३०७
मानुष (व्य) मानुषोत्तरके रजत-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कूटपर रहनेवाला एक देव ५।६०५
मायागता (पा) दृष्टिवाद अंगके चूलिकाभेदका उपभेद १०।१२३
मायाक्रिया (पा) एक क्रिया ५८।८०
मायूरी = एक विद्या २२।६३
मार (भौ) पंकप्रभापृथिवीके तृतीय प्रस्तारका इन्द्रक बिल ४।१३१
मार (व्य) रुद्र ६०।५७१
मारुत (भौ) सौधर्मयुगलका बारहवाँ इन्द्रक ६।४५
मार्ग=तालगत गान्धर्वका प्रकार १६।१५१
मार्गणा (पा) गति आदि १४ मार्गणाएँ जीवोंकी खोजके स्थान २।१०७
मार्गप्रभावना=भावना३४।१४७
मार्गवी=मध्यमग्रामकी मूर्च्छना ११९।१६३
माल्य(भौ) देशका नाम११।७१
माल्य (भौ) वि. उ. नगरी २२।९०
माल्याङ्ग = एक कल्पवृक्ष ७।८०
माल्यवत्कूट (भौ) माल्यवान् पर्वतका एक कूट ५।२१९
माल्यवान् (भौ) नीलपर्वतसे साढ़े पाँच-सौ योजन दूर नदीके मध्यमें स्थित एक ह्रद ५।१९४
माल्यवान् (भौ) मेरुकी पूर्वोत्तर दिशामें स्थित वैडूर्यमणिमय एक पर्वत ५।२११
माल्यवान् (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३७
माल्यवान् (व्य) हिमवत्का पुत्र ४८।४७
मास (पा) दो पक्षका एक मास होता है ७।२१
माहिनी = ब्राह्मणी २१।१३१
माहिषक (भौ) देशका नाम ११।७०
माहिष्मती (भौ) राजा ऐलेयके द्वारा नर्मदाके तटपर बसायी हुई नगरी १७।२१
माहेम (भौ) देशका नाम ११।७२
माहेन्द्र = विद्यास्त्र २५।४७
माहेन्द्र (भौ) चौथा स्वर्ग ६।३६
माहेन्द्र (व्य) भगवान् ऋषभदेवका गणधर १२।५८
मांसल = पुष्ट ८।२६
मित्र (व्य) ऋषभदेवका गणधर १२।६२
मित्र (भौ) सौधर्म युगलका तीसवाँ इन्द्रक ६।४७
मित्रकलु (व्य) ऋषभदेवका गणधर १२।६५
मित्रवती (व्य) चारुदत्तके मामाकी पुत्री जिसे चारुदत्तने विवाहा २१।३८
मित्रसागर (व्य) एक मुनि ६०।९७
मित्रानुराग (पा) सल्लेखनाव्रतका अतिचार ५८।१८४
मित्रा (व्य) अरिष्टपुरके राजा रुधिरकी स्त्री ३१।१०
मित्रा (व्य) राजा सुदर्शनकी स्त्री अरनाथकी माता ४५।२१
मिथुन = दम्पती १५।१
मिथिला (भौ) एक नगरी २०।२५
मिथिलानाथ (व्य) देवदत्तका पुत्र १७।३४
मिथ्यादर्शन भाषा (पा) सत्यप्रवादपूर्वकी १२ भाषाओंमें-से एक भाषा १०।९७
मिथ्यादर्शनक्रिया (पा) एक क्रिया ५८।८१
मिथ्यात्वक्रिया (पा) एक क्रिया ५८।६२
मिथ्यादृष्टि (पा) पहला गुणस्थान ३।८०
मिथ्योपदेश (पा) सत्याणुव्रतका अतिचार ५८।१६५
मिश्रकेशी (व्य) रुचिकगिरिके अंककूटपर रहनेवाली देवी ५।७१५
मुक्तावलीविचि = एक उपवास व्रत ३४।६९-७०
मुनि = प्रत्यक्षज्ञानी मुनि ३।६१
मुनिचन्द्र (व्य) एक जैनमुनि २७।८१
मुरजमध्यविधि = एक उपवास ३४।६६
मुण्डशलायन (व्य) एक ब्राह्मण ६०।११
मुनिसुव्रत (व्य) बीसवें तीर्थंकर १६।१३
मुहूर्त (पा) सात लवोंका एक मुहूर्त होता है ७।२०
मूल (व्य) राजा अयोधनका पुत्र १७।३२
मूलज (भौ) देशका नाम ११।७०
मूलवर्यक=अदिति देवीके द्वारा दत्त विद्याओंका एक निकाय २२।५८
मूलवीर्य विद्याधर = विद्याधरोंकी एक जाति २६।१०
मूर्च्छना = वैणस्वरका भेद १९।१४७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मृगध्वज (व्य) जितशत्रुका पुत्र २८।१७
मृगशृङ्ग (व्य) खमाली और कनककेशीका पुत्र २७।१२०
मृगशृङ्गिणी (व्य) सितकी स्त्री तापसी ४६।५४
मृगाङ्क (व्य) गरुडांकका पुत्र १३।११
मृगायण (व्य) वर्धकि गाँवका एक ब्राह्मण २७।६१
मृगावती (व्य) हरिपुरके राजा पवनगिरिकी स्त्री १५।२३
मृतसंजीवनी = एक विद्या २२।७१
मृत्यु-आशंसा (पा) सल्लेखनाका अतिचार ५०।१८४
मृदङ्गमध्यविधि = एक उपवास ३४।६४
मृध = रण ४०।१
मेघ (व्य) मेघदलपुरका एक सेठ ४६।१५
मेघ (भौ) सौधर्मयुगलका बीसवाँ इन्द्रक ६।४५
मेघ (व्य) यादव ५०।१२१
मेघ (व्य) समुद्रविजयका पुत्र ४८।४४
मेघा (भौ) बालुकाप्रभा पृथिवी ४।२२०
मेघकूट (भौ) वि. द. नगरी २२।९६
मेघकूट (भौ) विजयार्धका एक नगर ४३।४९
मेघकूट (भौ) निषध पर्वतकी उत्तर दिशामें सीतोदा नदीके तटपर स्थित कूट ५।१९२
मेघङ्करा (व्य) नन्दनवनमें रहनेवाली दिक्कुमारी ५।३३२
मेघघोष (व्य) मेघनादका पुत्र ६०।११८
मेघदल (भौ) एक नगर ४६।१४
मेघनाद (व्य) भद्रिलपुरका राजा ६०।११८
मेघनिनाद = रत्नायुधका एक हाथी २७।९६
मेघनाद (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३४
मेघपुर (भौ) एक नगर ३३।१३५
मेघपुर (भौ) विजयार्धकी उत्तरश्रेणीका एक नगर १५।२५
मेघनाद (व्य) अरिञ्जयपुरका स्वामी २५।२
मेघमाल (भौ) पश्चिम विदेहका वक्षारगिरि ५।२३२
मेघमाल (भौ) वि. उ. नगरी २२।९१
मेघमाला (व्य) मथुराके राजा रत्नवीर्यकी स्त्री २७।१२५
मेघमालिनी (व्य) नन्दनवनमें रहनेवाली दिक्कुमारी ५।३३३
मेघमालिनी (व्य) नारद नामक देवकी देवी ६०।८०
मेघमुख (व्य) म्लेच्छोंका कुलदेवता ११।३२
मेघवती (व्य) नन्दनवनमें रहनेवाली दिक्कुमारी देवी ५।३३२
मेघानीक (व्य) विनमिका पुत्र २२।१०४
मेघरथ (व्य) गिरिनगरके चित्ररथ राजाका पुत्र ३३।१५२
मेघरथ (व्य) सद्भद्रिलपुरका राजा १८।११२
मेघवाहन (व्य) भरतक्षेत्र चम्पापुरीका राजा ६४।४
मेघवेग (व्य) त्रिकूटाचलका स्वामी ४५।११५
मेघेश्वर (व्य) ऋषभदेवका गणधर, दूसरा नाम जयकुमार १२।६७
मेरु (व्य) भगवान् ऋषभदेवका गणधर १२।५९
मेरु (भौ) विदेहक्षेत्रमें स्थित सुदर्शन मेरु नामका पर्वत १।९७
मेरु (व्य) सिन्धुदेशके वीतभय नगरका स्वामी ४४।३३
मेरु (व्य) मथुराके राजा रत्नवीर्य और मेघमालाका पुत्र, लान्तवेन्द्रका जीव २७।१३५
मेरु (व्य) श्रीकृष्णके पक्षका राजा ५०।७०
मेरुक (व्य) तीसरा प्रतिनारायण ६०।२९१
मेरुचन्द्र (व्य) एक राजा ६०।१०३
मेरुदत्त (व्य) नग्नजित्का पुत्र, कृष्णका पक्षपाती ५२।२१
मेरुनन्दना (व्य) व्यन्तरकी स्त्री ६०।४६
मेरुपङ्क्तिव्रत = एक व्रतविशेष ३४।८५
मेरुमती (व्य) गान्धारीकी माता ६०।९३
मेरुमती (व्य) गान्धारदेशकी पुष्कलावती नगरीके राजा इन्द्रगिरिकी स्त्री ४४।४५
मेदार्य (व्य) भगवान् महावीरका दशम गणधर ३।४३
मोक (भौ) देशका नाम ११।६५
मोक्ष (पा) अष्टकर्मसे रहित आत्माकी शुद्ध परिणति २।१०९
मोक्ष (पा) आग्रायणी पूर्वके चतुर्थप्राभृतका योगद्वार १०।८३
मोक्षण = विद्यास्त्र २५।४८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोघ (व्य) मानुषोत्तरके अंक कूटपर रहनेवाला देव ५।६०६
मोघ (मोष) भाषा (पा) सत्य-प्रवाद पूर्वकी १२ भाषाओं-में-से एक भाषा १०।९६
मोहन = विद्यास्त्र २५।४८
मोहनीय(पा) आत्माको स्वरूप-से च्युत करनेवाला कर्म ५८।२१६
मौक (भौ) देशविशेष ३।४
मौखर्य (पा) अनर्थदण्डव्रतका अतिचार ५८।१७९
मौन = मुनियोंका १२।८२
मौलि = मुकुट २।८५
मौर्यपुत्र = (व्य) भगवान् महा-वीरका सप्तम गणधर ३।४२

[य]

यक्षदेवी (व्य) यक्षिल और देव-सेनाकी पुत्री ६०।६३
यक्षलिक (व्य) यज्ञदत्त और यक्षिलाका पुत्र ३३।१५८
यक्षवर (भौ) अन्तिम सोलह द्वीपोंमें तेरहवाँ द्वीप ५।६२५
यक्षिल (व्य) एक वैश्य ६०।६३
यति=कषायोंका अन्त करनेवाले विशिष्ट मुनि ३।६१
यति = तालगत गान्धर्वका एक प्रकार १९।१५१
यथाख्यातचारित्र (पा) मोहके अभावमें होनेवाला चारित्र ५६।७८
यज्ञ (व्य) भगवान् ऋषभदेवका गणधर १२।५९
यज्ञगुप्त (व्य) ऋषभदेवका गणधर १२।६३
यज्ञदत्त (व्य) ऋषभदेवका गणधर १२।६४
यज्ञदत्त, यक्षिला (व्य) इस नामका दम्पती ३३।१५८
यज्ञदेव (व्य) ऋषभदेवका गणधर १२।६३
यज्ञमित्र (व्य) ऋषभदेवका गणधर १२।६४
यदु (व्य) हरिवंशके अन्तर्गत यदुवंशका स्थापक राजा १८।६
यदुनन्दन = वसुदेव २८।१४
यम (व्य) देवविशेष (लोकपाल) ५।३१७
यमकूट (भौ) निषध पर्वतकी उत्तर दिशामें सीतोदा नदीके तटपर स्थित कूट ५।१९२
यमदण्ड = विद्यास्त्र २५।४८
यमुना (व्य) मथुराके भानु सेठ-की स्त्री ३३।९६
यव (पा) आठ यूकाओंका एक यव ७।४०
यवन (भौ) देशका नाम११।६६
यवन (व्य) एक राजा ५०।८४
यवु (व्य) भानुका पुत्र १८।३
यशःकूट (भौ) रुचिक गिरिका पश्चिम दिशा सम्बन्धी कूट ५।७१४
यशःपाल (व्य) ग्यारह अंगके ज्ञाता एक आचार्य १।६४
यशस्कान्त (व्य) मानुषोत्तरके अश्मगर्भ कूटपर रहनेवाला देव ५।६०२
यशस्वान् (व्य) मानुषोत्तर पर्वतके वैडूर्यकूटपर रहने-वाला देव ५।६०२
यशस्विनी (व्य) धनदेवकी स्त्री ६०।९५
यशस्वी (व्य) नौवाँ कुलकर ७।१६०
यशोदा (व्य) सुनन्दगोपकी स्त्री ३५।३०
यशोदा(व्य) एक कन्या जिसका महावीरके साथ विवाह करनेकी जितशत्रुको इच्छा थी ६६।८
यशोदया (व्य) यशोदाकी माता ६६।८
यशोधन (व्य) एक राजा ५०।१२६
यशोधर (व्य) एक मुनिराज ३४।४५
यशोधर (भौ) मध्यम ग्रैवेयकका प्रथम इन्द्रक ६।५२
यशोधर(व्य) मानुषोत्तर पर्वतके सौगन्धिक कूटपर रहने-वाला देव ५।६०२
यशोधरा (व्य) रुचिकगिरिके विमलकूटपर रहनेवाली देवी ५।७०९
यशोधरा (व्य) अलकाके राजा सुदर्शन और रुधिराकी पुत्री २७।७९
यशोभद्र (व्य) आचारांगके ज्ञाता एक आचार्य १।६५
यशोबाहु (व्य) आचारांगके ज्ञाता एक आचार्य १।६५
याज्ञवल्क्य (व्य) एक परिव्राजक २१।१३४
याम्य (पा) स्फटिक सालका दक्षिण गोपुर ५७।५८
यादव = वसुदेव १९।५७
यादवेन्द्र (व्य) समुद्रविजय नमिनाथके पिता ५०।३
युक्तिक (व्य) राजा उग्रसेनका पुत्र ४८।३९
युक्त्यनुशासन (व्य) समन्तभद्र-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वारा रचित युक्त्यनुशासन नामका ग्रन्थ और युक्ति-युक्त अनुशासन १।२९

युग (व्य) पाँच वर्षका एक युग होता है ७।२२

युगन्त (व्य) विजयका पुत्र ४८।४८

युग्म = स्त्री-पुरुषोंका युगल ७।९१

युग्य = बैल ४३।२

युगल (व्य) सहदेव और नकुल ५५।५

युधवरोधन (व्य) दुर्योधनका वंशज ६५।१९

युधिष्ठिर (व्य)पाण्डव ४५।२

यूका (पा) आठ लिक्षाओंकी एक यूका ७।४०

यूपकेसर (भौ) लवणसमुद्रका उत्तर दिशास्थित पाताल ५।४४३

योग (पा) आत्मप्रदेशोंका कम्पन ५८।५७

योगनिःप्रणिधान (पा) सामायिक व्रतके अतिचार, इसके तीन भेद हैं ५८।१८०

योजन(पा) आठ हजार दण्डका एक योजन ७।४६

योजन (पा) अकृत्रिम चीजोंके नापमें दो हजार कोशका एक योजन होता है और कृत्रिम चीजोंके नापमें चार कोशका ४।३६

योजनगन्धा (व्य) शन्तनुकी स्त्री ४५।३१

योनिविकल्प = सचित्त, अचित्त, सचित्ताचित्त, शीत, उष्ण, शीतोष्ण, संवृत, विवृत, संवृत-विवृत ये नौ योनियाँ २।११६

योषित् = स्त्री २।८

[र]

रक्तकम्बला (भौ) पाण्डुकवनके वायव्यमें स्थित शिला ५।३४७

रौरव (भौ) सातवीं पृथिवीके अप्रतिष्ठान इन्द्रककी दक्षिण दिशामें स्थित महानरक ४।१५

रुक्मि कूट (भौ) रुक्मिकुलाचलका दूसरा कूट ५।१०२

रुक्मिन् (भौ) जम्बूद्वीपका छठा कुलाचल ५।१५

रवि (व्य) राजा वसुका पुत्र १७।५९

रोहिणी(पा) पाँच सौ महाविद्याओंमें-से एक १०।११५

रोहिणी (व्य) अरिष्टपुरके राजा रुधिरकी पुत्री ३१।११

रौरुक (भौ) रत्नप्रभा पृथिवीके तृतीय प्रस्तारका इन्द्रक विल ४।७६

रूपगता (पा) दृष्टिवाद अंगके चूलिकाभेदका उपभेद १०।१२३

रूपसत्य (पा) दस प्रकारके सत्योंमें-से एक सत्य १०।९९

रूपवर (भौ) अन्तिम सोलह द्वीपोंमें सातवाँ द्वीप५।६२३

रोहितकूट (भौ) हिमवत् कुलाचलका सातवाँ कूट ५।५४

रोहिताकूट (भौ) महाहिमवत् कुलाचलका चौथा कूट ५।७१

राजीमती (व्य) भगवान् नेमिनाथका जिसके साथ विवाह होनेवाला था १।११४

रम्या (भौ) पूर्वविदेहका एक देश ५।२४७

रम्यक (भौ) जम्बूद्वीपके नील और रुक्मिकुलाचलके मध्यमें स्थित पाँचवाँ क्षेत्र ५।१३

रोहिणी (व्य) वसुदेवकी स्त्री १।८६

रोहिणी = एक विद्या २७।१३१

रोहित, लोहिताङ्क (व्य) लवणसमुद्रमें उदक और उदवास पर्वतोंके निवासी दो देव ५।४६३

रोहितास्या (भौ) एक महानदी ५।१२३

रोहया (**रोहित्**) (भौ) चौदह महानदियोंमें एक नदी ५।१२३

रवती (व्य) अरिष्टपुरनिवासी रेवतकी पुत्री बलदेवकी स्त्री ४४।४१

रेवती (व्य) एक धाय ३३।१४४

रवि (व्य) रविषेणाचार्य १।३४

रेवत (व्य) अरिष्टपुरके राजा हिरण्यनाभका बड़ा भाई ४४।४०

रमणीया (भौ) पूर्वविदेहका एक देश ५।२४७

रम्यककूट (भौ) नील कुलाचलका आठवाँ कूट ५।१०१

रम्यककूट(भौ) रुक्मिकुलाचलका तीसरा कूट ५।१०२

रम्यका (भौ) पूर्वविदेहका एक देश ५।२४७

रम्यपार्वतेय (भौ) वि. उ. नगरी २२।९८

रुक्मी (व्य) कुण्डिनपुरके राजा भीष्मका पुत्र रुक्मिणीका भाई ४२।३४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रुक्मी (व्य) एक राजा५०।७८
रुक्मिणी (व्य) कुण्डिनपुरके राजा भीष्मकी पुत्री कृष्णकी पट्टराज्ञी ४२।३४
रजोबहुल = पापसे युक्त, पक्षमें धूलिसे परिपूर्ण
रैवतकगिरि = गिरनार पर्वत ४२।९६
रोचनकूट (भौ) मेरुसे उत्तर सीता नदीके पूर्व तटपर स्थित एक कूट ५।२०८
रजत, रजतप्रभ (भौ) कुण्डल गिरिके दक्षिण दिशासम्बन्धी कूट ५।६९१
रजत (भौ) नन्दनवनका एक कूट ५।३२९
रजत (भौ) रुचिकगिरिका उत्तर दिशासम्बन्धी कूट ५।७१६
रजतकूट (भौ) मानुषोत्तरको पश्चिम दिशाका एक कूट ५।६०५
रजक (भौ) नन्दनवनका एक कूट ५।३२९
रघूत्तम (व्य) रामचन्द्रजी ४६।२२
रङ्गसेना (व्य) चन्दनवन नगरकी एक गणिका २९।२६
रक्तोदा (भौ) एक महानदी ५।१२५
रक्ताकूट (भौ) शिखरिकुलाचल का पाँचवाँ कूट ५।१०६
रक्तगान्धारी = मध्यम ग्रामके आश्रित जाति १९।१७६
रक्तपञ्चमी = मध्यम ग्रामके आश्रित जाति १९।१७६
रक्तवती कूट (भौ) शिखरिकुलाचलका आठवाँ कूट ५।१०७
रक्ता (भौ) एक महानदी ५।१२५
रजनी = षड्जस्वरकी मूर्च्छना १९।१६१
रत्नवीर्य (भौ) अन्धकवृष्णिके पूर्वभवोंसे सम्बन्ध रखनेवाला एक राजा १८।९७
रक्ता (भौ) पाण्डुकवनके नैर्ऋत्यमें स्थित शिला ५।३४७
रेवतक (भौ) गिरनार पर्वत ५५।५९
रोमशैत्य (व्य) बलदेवका पुत्र ४८।६८

[ल]

लक्षण (पा) अष्टांग निमित्तका एक अंग १०।११७
लक्षपर्वा = एक विद्या २२।६७
लक्ष्मणा (व्य) सिंहल द्वीपके श्लक्ष्णरोम राजाकी पुत्री, कृष्णकी एक पट्टराज्ञी ४४।२०
लक्ष्मी (व्य) पुण्डरीक सरोवरमें रहनेवाली देवी ५।१३०
लक्ष्मीकूट (भौ) वि. द. नगरी २२।९७
लक्ष्मीकूट (भौ) शिखरिकुलाचलका छठा कूट ५।१०६
लक्ष्मीग्राम (भौ) एक ग्राम ६०।२६
लक्ष्मीमती (व्य) राजा सोमप्रभकी स्त्री ९।१७९
लक्ष्मीमती (व्य) महापद्म चक्रवर्तीकी स्त्री, पद्मकी माता २०।१४
लक्ष्मीमती(व्य) सोमदेवकी स्त्री ब्राह्मणी ६०।२७
लक्ष्मीमती (व्य) युधिष्ठिरकी स्त्री ४७।१८
लक्ष्मीमती (व्य) रुचिकगिरिके रुचक कूटपर रहनेवाली देवी ५।७०९
लघु = शीघ्र ३८।२३
लता(पा) चौरासी लाख लतांगोंकी एक लता होती है ७।२९
लताङ्ग(पा) चौरासी लाख ऊहोंका एक लतांग ७।३०
लब्धाभिमान (व्य) वज्रबाहुका पुत्र १८।३
लब्धि(पा) क्षयोपशम, विशुद्धि, प्रायोग्य, देशना तथा करण ये पाँच लब्धियाँ ३।१४१
लब्धि (पा) ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे प्रकट हुई देखने आदिकी भावेन्द्रिय रूप शक्ति १८।८५
लम्बुसा (व्य) रुचिकगिरिके स्फटिक कूटपर रहनेवाली देवी ५।७१५
लय = तालगत गान्धर्वका एक प्रकार १९।१५१
ललिताङ्ग (व्य) भगवान् ऋषभदेवका पूर्व भव ९।५८
लल्लक (भौ) तमःप्रभा पृथिवीके तृतीय प्रस्तारका इन्द्रक बिल ४।१४७
लव (पा) सात स्तोकोंका एक लव होता है ७।२०
लवणार्णव (भौ) लवणसमुद्र ५।४३०
लाङ्गल (भौ) सानत्कुमार युगल का पाँचवाँ इन्द्रक ६।४८
लाङ्गलावर्ता (भौ) पश्चिमविदेहका एक देश ५।२४५
लान्तव(भौ) सातवाँ स्वर्ग ६।३७
लान्तव (भौ) लान्तव युगलका दूसरा इन्द्रक ६।५०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिक्षा (पा) आठ वालाग्रोंकी एक लिक्षा ७।४०
लेण (भौ) देवोंका उत्पत्तिस्थान ५।४०३
लेश्या (पा) आग्रायणी पूर्वके चतुर्थ प्राभृतका योगद्वार १०।८३
लेश्या कर्म (पा) आग्रायणी पूर्वके चतुर्थ प्राभृतका योगद्वार १०।८३
लेश्या परिणाम (पा) आग्रायणी पूर्वके चतुर्थ प्राभृतका योगद्वार १०।८४
लोक (पा) अनन्त आकाशके मध्यमें स्थित पुरुषाकार १४ राजुप्रमाण आकाश ४।४
लोक पूरण (पा) लोक पूरण समुद्घातका चौथा चरण ५६।७४
लोकबिन्दुसार (पा) पूर्वगत श्रुतका एक भेद २।१००
लोकसंस्थान=लोकका आकार १।७१
लोकस्तूप (पा) समवसरणके स्तूप ५७।९४
लोकाभिनन्दन (वि) जनसमूहको आनन्दित करनेवाले १।६
लोकोत्सादन (व्य) विद्यास्त्र २५।४७
लोच (पा) मुनियोंका एक मूलगुण—केश उखाड़ना २।१२८
लोल (भौ) शर्कराप्रभा पृथिवीके नवम प्रस्तारका इन्द्रक विल ४।११३
लोलुप (भौ)शर्कराप्रभा पृथिवीके दशम प्रस्तारका इन्द्रक विल ४।११४
लोहजङ्घ (व्य) समुद्रविजयका दूत ५०।५६
लोहाचार्य (व्य) आचारांगके ज्ञाता एक आचार्य १।६५
लोहित (भौ) पाण्डुक वनका एक भवन ५।३२२
लोहिताक्ष (भौ) सौधर्मयुगलका चौबीसवाँ इन्द्रक ६।४७
लोहिताक्ष कूट (भौ) मानुषोत्तरकी दक्षिण दिशाका एक कूट ५।६०३
लोहिताक्ष कूट (भौ) गन्धमादन पर्वतका एक कूट ५।२१८
लोहिताङ्क (भौ) रत्नप्रभाके खर भागका चौथा पटल ४।५२
लोहिताख्य (भौ)रुचिकगिरिका पश्चिम दिशासम्बन्धी कूट ५।७१२
लोहिताक्षमय (भौ) मेरुकी एक परिधि ५।३०५
लौकान्तिक (व्य) पाँचवें स्वर्गके अन्तमें रहनेवाले देवविशेष २।४९

[व]

वक (व्य) एक राजा ५०।८४
वकुश (पा) मुनिका एक भेद ६०।५८
वक्रान्त (भौ) रत्नप्रभापृथिवीके ग्यारहवें प्रस्तारका इन्द्रक विल ४।७७
वक्रोक्ति (व्य) शान्तिषेण द्वारा रचित ग्रन्थविशेष १।३६
वङ्ग (भौ) देशका नाम ११।६८
वचोहर = दूत ५०।४६
वज्र (भौ) अनुदिश ६।६३
वज्र (व्य) वज्रायुधका पुत्र १३।२२
वज्र (भौ) सौधर्मयुगलका पचीसवाँ इन्द्रक ६।४७
वज्र (भौ) कुण्डलगिरिका पूर्व दिशासम्बन्धी कूट ५।६९०
वज्र (भौ) सौमनस वनका एक भवन ५।३१९
वज्र (व्य) अभिनन्दननाथका प्रथम गणधर ६०।३४८
वज्र (व्य) ऋषभदेवका गणधर १२।६७
वज्र (व्य) एक राजा ५०।८१
वज्र = हीरा २।१०
वज्रककूट (भौ) मानुषोत्तरकी ऐशान दिशाका एक कूट ५।६०६
वज्रकपाट (भौ) वज्रमुख कुण्डमें स्थित पर्वतपर बने गृहका द्वार ५।१४७
वज्रकाण्डधनुः = चक्रवर्तीका धनुष ११।५
वज्रकूट (भौ) मानुषोत्तर पर्वतकी ऐशान दिशाका एक कूट ५।६०१
वज्रकूट (भौ) नन्दन वनका एक कूट ५।३३०
वज्रखण्डिक (भौ) देशविशेष ११।७५
वज्रजङ्घ (व्य) चन्द्ररथका पुत्र १३।२१
वज्रचमर (व्य) पद्मप्रभका गणधर ६०।३४७
वज्रजङ्घ (व्य) भगवान् ऋषभदेवका पूर्वभव ९।५८
वज्रदत्त (व्य) एक मुनि २७।९६
वज्रदंष्ट्र (व्य) वज्रसेनका पुत्र १३।२२
वज्रदंष्ट्र (व्य) एक विद्याधर २७।१२१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वज्रदंष्ट्र (व्य) वसुदेव और बालचन्द्राका पुत्र ४८।६५
वज्रधर्म (व्य) सत्यकका पुत्र ४८।४२
वज्रध्वज (व्य) वज्रदंष्ट्रका पुत्र १३।२२
वज्रनाभ (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३४
वज्रनाभि (व्य) भगवान् ऋषभदेवका पूर्वभव ९।५९
वज्रपाणि (व्य) वज्रास्यका पुत्र १३।२३
वज्रपाणि (व्य) नभस्तिलक नगरका राजा २५।४
वज्रपुर (भौ) राजा अमरके द्वारा बसाया नगर १७।३३
वज्रप्रभ (भौ) कुण्डलगिरिकी पूर्वदिशाका कूट ५।६९७
वज्रप्रभ (भौ) सौमनसवनका एक भवन ५।३१९
वज्रबाहु (व्य) वज्राभका पुत्र १३।२३
वज्रबाहु (व्य) विनमिका पुत्र २२।१०५
वज्रबाहु (व्य) दीर्घबाहुका पुत्र १८।२
वज्रभानु (व्य) वज्रपाणिका पुत्र १३।२३
वज्रभृत् (व्य) सुवज्रका पुत्र १३।२२
वज्रमध्यविधि (व्य) एक उपवासव्रत ३४।६२-६३
वज्रमयवप्र (पा) समवसरणका वज्रनिर्मित कोट ५७।२०
वज्रमय (भौ) मेरुकी एक परिधि ५।३०५
वज्रमुख (भौ) पद्मसरोवरका वह द्वार जिससे गंगा निकली है ५।१३६
वज्रमुखकुण्ड (भौ) पृथिवीपर स्थित एक कुण्ड जिसमें गंगा गिरती है ५।१४२
वज्रमुष्टि (व्य) एक पुरुष ६०।५१
वज्रमुष्टि (व्य) दृढ़मुष्टि और वप्रश्रीका पुत्र ३३।१०४
वज्रायुध (व्य) चक्रायुध और चित्रमालाका पुत्र (राजा सिंहसेनका जीव)
वज्रायुध (व्य) वज्रध्वजका पुत्र १३।२२
वज्रवर (भौ) अन्तिम सोलह द्वीपोंमें नौवाँ द्वीप ५।६२४
वज्रवान् (व्य) वज्रभानुका पुत्र १३।२३
वज्रसुन्दर (व्य) वज्रांकका पुत्र १३।२३
वज्रसूरि (व्य) एक प्राचीन आचार्य १।३२
वज्रसेन (व्य) वज्रजंघका पुत्र १३।२१
वज्रा (भौ) रत्नप्रभाके खरभागका दूसरा पटल ४।५२
वज्राङ्क (व्य) वज्रबाहुका पुत्र १३।२३
वज्राभ (व्य) वज्रभृत्का पुत्र १३।२३
वज्रास्य (व्य) वज्रसुन्दरका पुत्र १३।२३
वटपुर (भौ) एक नगर ४३।१६३
वडवामुख (भौ) लवणसमुद्रका दक्षिण दिशास्थित पाताल ५।४४३
वणिज्या = व्यापार १८।९९
वत्स (भौ) देशविशेष ११।७५
वत्सकावती (भौ) पूर्वविदेहका एक देश ५।२४७
वत्सदेश (भौ) प्रयागका समीपवर्ती प्रदेश १४।१
वत्समित्रा (व्य) दिक्कुमारी देवी ५।२२७
वत्सा (भौ) पूर्वविदेहका एक देश ५।२४७
वतंसकूट (भौ) मेरुसे उत्तर सीता नदीके पश्चिम तटपर स्थित एक कूट ५।२०८
वदर = बेर ७।६९
वध (पा) असातावेदनीयका आस्रव ५८।९३
वनक (भौ) शर्कराप्रभा पृथिवीके चतुर्थप्रस्तारका इन्द्रकबिल ४।१०८
वनमाला (व्य) कौशाम्बीकी एक स्त्री १४।५१
वनमाला (भौ) सानत्कुमार युगलमें दूसरा इन्द्रक ६।४८
वनवास्य (भौ) चरमके द्वारा बसाया हुआ एक नगर १७।२७
वन्दना=आवर्त्त तथा शिरोनमि आदिकी क्रिया करना ३४।१४४
वन्दना (पा) अंगबाह्य श्रुतका एक भेद २।१०२
वन्धुमती (व्य) हस्तिनापुरके सेठकी स्त्री ३३।१४१
वप्रश्री (व्य) दृढ़मुष्टिकी स्त्री ३३।१०३
वप्रा (भौ) पश्चिम विदेहका एक देश ५।२५१
वप्रकावती (भौ) पश्चिम विदेहका एक देश ५।२५१
वप्रथु (व्य) सुमित्रका पुत्र १८।१९
वर (पा) स्फटिक सालका पूर्व गोपुर ५७।५७
वरकुमार (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।१७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वरदत्त (व्य) नेमिनाथ भगवान्‌का प्रथम गणधर ५८।२
वराङ्गचरित (व्य) जटासिंहनन्दीका एक काव्य ग्रन्थ १।३५
वराङ्गना = वेश्या १।३५
वर्चक(भौ)रत्नप्रभाके खरभागका पन्द्रहवाँ पटल ४।५४
वर्चस्क (भौ) पंकप्रभा पृथिवीके चतुर्थ प्रस्तारका इन्द्रक बिल ४।१३२
वराट (व्य) एक राजा ५०।८३
वर्ण = पदगत गान्धर्वकी विधि १९।१४९
वर्ण = शारीरस्वरका भेद १९।१४८
वर्ण (व्य) कौशिका नगरीका राजा ४२।६१
वर्ण = वैणस्वरका एक भेद १९।१४७
वर्णाश्रम=ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये चार वर्ण, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी ये चार आश्रम ५४।३
वरुण (व्य) देवविशेष (लोकपाल) ५।३१७
वरुण (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३९
वरुण (व्य) ऋषभदेवका गणधर १२।६५
वरुण (व्य) वारुणीवर द्वीपका रक्षक देव ५।६४०
वरुण (व्य) कंसका हितैषी एक निमित्तज्ञ ३५।३७
वरुण (व्य) एक मुनि ६४।१२
वरुण (पा) स्फटिक सालका पश्चिम गोपुर ५७।५९
वरुण (भौ) भरतक्षेत्रसम्बन्धी विजयार्धके दक्षिण भागके समीपमें स्थित एक पर्वत २७।२
वरुणप्रभ (व्य) वारुणीवर द्वीपका रक्षक देव ५।६४०
वरुणाभिख्य (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३८
वर्तना (पा) षट्स्थानपतित हानिवृद्धिरूप परिणमन ७।१
वरतनु (व्य) दक्षिण लवणसमुद्रका वासी देव ११।१३
वरद (पा) स्फटिक सालका पश्चिम गोपुर ५७।५९
वरदा (भौ) एक नदी १७।२३
वरदत्त(य) एक मुनि६०।१०६
वरदत्त (व्य) नेमिनाथका प्रथम गणधर ६०।३४९
वर्दल (भौ) तमःप्रभा पृथिवीके द्वितीय प्रस्तारका इन्द्रकबिल ४।१४६
वर्धकि (भौ) भरतक्षेत्र कोशल देशका एक गाँव २७।६१
वरधर्म (य) एक मुनिराज ३३।१११
वर्धमान (भौ) रुचिकगिरिकी उत्तर दिशाका एक कूट ५।७०२
वर्धमान (व्य) अन्तिम तीर्थंकर महावीर २।४६
वर्धमान जिनेन्द्र (व्य) अन्तिम तीर्थंकर
वधमान जिनेशिने(पा)चौबीसवें तीर्थंकर १।२
वर्धमानपुराण = अज्ञातकविका एक ग्रन्थ १।४१
वराह (भौ) वि. उ. नगरी २२।८७
वराह (व्य) चारुदत्तका मित्र २१।१३
वराहक(व्य) वसुदेवका सम्बन्धी एक विद्याधर ५१।२
वरिष्ठ (पा) स्फटिक सालका दक्षिण गोपुर ५७।५८
वर्ष (पा) दो अयनका एक वर्ष होता है ७।२२
वलाहक (भौ) राजगृहीका एक पर्वत ३।५५
वलाहक (व्य) कृष्णके सेनापति अनावृष्टिके शंखका नाम ५१।२१
वलाहक (भौ) वि. उ. नगरी २२।९१
वलि (व्य) मेघनादकी छठी पीढ़ीका एक राजा जो प्रतिनारायण था २५।३४
वलि (व्य) सुपार्श्वनाथका गणधर ६०।३४७
वलि (व्य) छठा प्रतिनारायण
वल्गु (भौ)..सौधर्म युगलका चौथा इन्द्रक ६।४४
वल्गुप्रभविमान (भौ) कुबेर लोकपालका विमान५।३२७
वल्लरी (व्य) एक भीलनी ६९।१६
वशिष्ठ (व्य) मथुराका एक तापस, जो बादमें वाराणसी जाकर जैन मुनि हो गया ३३।४७
वसन्त (व्य) मनोयोगका वैरी एक विद्याधर ४७।४०
वसन्तभद्र = एक उपवासव्रत ३४।५६
वसन्तसुन्दरी (व्य) राजा विन्ध्यसेन और नर्मदाकी पुत्री ४५।७०
वसन्तसेना (व्य) चम्पापुरीकी कलिंगसेना गणिकाकी पुत्री २१।४१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वसुकीर्ति (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४२।२५
वसुकीर्ति (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४२।२५
वसुगिरि (व्य) हिमगिरिका पुत्र १५।५९
वसुगिरि (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३३
वसुदेव (व्य) गिरितट नगरमें रहनेवाला एक ब्राह्मण २३।२९
वसुदेव (व्य) श्रीकृष्णके पिता १।७९
वसुदेव (व्य) भगवान् ऋषभदेवका गणधर १२।५८
वसुदेव (व्य) अन्धकवृष्णि और सुभद्राका पुत्र १८।१४
वसुदेवविचेष्टित = कृष्णके पिताकी विविध चेष्टाएँ १।७१
वसुधर्म (व्य) एक राजा ५०।१३१
वसुधर्मा (व्य) कृष्णका पुत्र ४८।७०
वसुधारा = रत्नधारा ८।३८
वसुधारा = रत्नोंकी धारा ५९।५
वसुध्वज (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३४
वसुध्वज (व्य) जरत्कुमारका पुत्र ६६।२
वसुन्धर (व्य) भगवान् ऋषभदेवका गणधर १२।५८
वसुन्धर (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।२६
वसुन्धरपुर (भौ) एक नगर ४५।७०
वसुन्धरा (व्य) रुचिकगिरिके चन्द्रकूटपर रहनेवाली देवी ५।७१०
वसुमती (व्य) राजा अभिचन्द्रकी स्त्री १७।३७
वसुमान् (व्य) स्तिमितसागरका पुत्र ४८।४६
वसुमित्र (व्य) भगवान् ऋषभदेवका गणधर १२।६१
वसुरथ (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।२७
वसुवृष्टि = रत्नवृष्टि २।१९
वसु (व्य) राजा अभिचन्द्र और रानी वसुमतीका पुत्र १७।३७
वसु (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।२६
वसु (व्य) राजा वसु १।७८
वसुसेन (व्य) ऋषभदेवका गणधर १२।६१
वसुसेन (व्य) राजा वासवका पुत्र ६०।७७
वस्तु (पा) श्रुतज्ञानका भेद १०।१३
वस्तु (पा) श्रुतका एक भेद २।१००
वस्तुसमास (पा) श्रुतज्ञानका भेद १०।१३
वस्त्राङ्ग = एक कल्पवृक्ष ७।८०
वस्त्रौक (भौ) वि. उ. नगरी २२।८७
वंशा (भौ) शर्कराप्रभाका रूढ़ि नाम ४।४६
वंशालय = दिति देवीके द्वारा प्रदत्त विद्यानिकाय २२।६०
वंशालय (भौ) वि. उ. नगरी २२।९२
वंशालय = विद्याधरोंकी एक जाति २६।२१
वाग्बलि (व्य) पिप्पलादका शिष्य २१।१४७
वाचाट=बकवादी ४३।१२
वाटवान (भौ) देशका नाम ११।६६
वाडवान (भौ) देशविशेष ३।६
वाणमुक्त (भौ) देशका नाम ११।६९
वादी=स्वरप्रयोगका एक प्रकार १९।१५४
वामदेव (व्य) समुद्रविजयके भाई अक्षोभ्यका पुत्र ४८।४५
वामदेव (व्य) सितका पुत्र ४५।४५
वायव्य = विद्यास्त्र २५।४८
वायु (व्य) जयन्तगिरिका राजा एक विद्याधर ४७।४३
वायुकुमार = भवनवासी देवोंका एक भेद ३।२२
वायुभूति (व्य) वैदिक विद्वान् २।६८
वायुभूति (व्य) भगवान् महावीरका तृतीय गणधर ३।४१
वायुभूति (व्य) सोमदेव और अग्निलाका पुत्र ४३।१००
वायुवेग (व्य) वसुदेवकी गन्धर्वसेना स्त्रीसे उत्पन्न पुत्र ४८।५५
वायुवेग (व्य) वसुदेव और वेगवतीका पुत्र ४८।६०
वायुशर्मा (व्य) भगवान् ऋषभदेवका गणधर १२।५७
वाराणसी (भौ) बनारस ३३।५८
वाराणसी (भौ) बनारस १८।११८
वाराहग्रीव (व्य) अमितगति विद्याधरका पुत्र २१।१२१
वारिषेण (व्य) राजा श्रेणिकका एक पुत्र २।१३९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वारिषेणा (व्य) दिक्कुमारी देवी ५।२२७
वारुण=विद्यास्त्र २५।४७
वारुणी=मदिरा ६१।५१
वारुणी (व्य) रुचिकगिरिके कांचनकूटपर रहनेवाली देवी ५।७१६
वारुणी (व्य) मृगायण ब्राह्मणकी पुत्री २७।६२
वारुणीवरद्वीप (भौ) चौथा द्वीप ५।६१४
वारुणीवरसमुद्र (भौ) चौथा समुद्र ५।६१४
वार्क्षमूलिक = विद्याधरोंकी एक जाति २६।२२
वार्ष्णेय (व्य) अनावृष्टि नामक कृष्णका सेनापति ५१।४१
वलि (व्य) उज्जयिनीके राजा श्रीधर्माका मन्त्री २०।४
वालाग्र (पा) आठ रथरेणुओंका एक उ. भो. मनुष्यका वालाग्र होता है ७।३९
वासव = इन्द्र २।४४
वासव (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३८
वासव (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।२६
वासव (व्य) अरिष्टपुरका राजा ६०।७५
वासव (व्य) राजा वसुका पुत्र १७।५८
वासव(व्य)नमिकापुत्र २२।१०८
वासवीर्य (पा) स्फटिक सालका पूर्व गोपुर ५७।५७
वासुकि (व्य) कुण्डलगिरिके महाप्रभ कूटका निवासी देव ५।६९२
वासुकि (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३७
वासुकि (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।२६
वासुकि (व्य) धरणका पुत्र ४८।५०
वासुदेव (व्य) श्रीकृष्ण १।९१
वासुपूज्य (व्य) बारहवें तीर्थंकर ३।५७
वासुवेग व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३९
वास्तुक्षेत्र प्रमाणातिक्रम (पा) परिग्रहपरिमाणाणु व्रतका अतिचार ५८।१७६
वास्य = क्षेत्र ११।५८
वाह्लीक (भौ) देशविशेष ३।५
वाह्लीक (व्य) एक राजा ५०।८४
वाहिनी = सेना ५०।६६
वाहिनी = नदी २।१६
विकचा (व्य) राजा चूलिककी स्त्री ४६।२६
विकचोत्पला (पा) समवसरणके चम्पक वनकी वापिका ५७।३४
विक्रान्त (व्य) एक राजा ५०।१३२
विक्रान्त (व्य) एक राजा ५०।८५
विक्रान्त (भौ)रत्नप्रभा पृथिवीके तेरहवें पटलके इन्द्रक विलका नाम ४।१०१
विकृत्य (अ. क्रि.) विक्रियासे बनाकर २।३०
विघृण = निर्दय ३५।३१
विक्षेप = तालगत गान्धर्वका एक प्रकार १९।१५०
विख्यातामृतधार (भौ) वि. द. नगरी २२।१००
विघ्न (पा) ज्ञाना. और दर्शना. का आस्रव ५८।९२
विचित्र (भौ) नीलकुलाचलकी दक्षिण दिशामें सीता नदीके पूर्वतटपर स्थित एक कूट ५।१९१
विचित्र (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।२७
विचित्रवीर्य (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।२८
विचित्रमति (व्य) चित्रबुद्धि और कमलाका पुत्र२७।९८
विचित्रा(व्य) नन्दन वनमें रहनेवाली दिक्कुमारी ५।३३३
विच्छुरित = व्याप्त १५।१६
विजय (भौ) वि. उ. नगरी २०।८६
विजय (व्य) अन्धकवृष्णि और सुभद्राका पुत्र १८।१३
विजय (व्य) नमिका पुत्र २२।१०८
विजय (व्य) द्वितीय जम्बूद्वीपका रक्षक देव ५।३९७
विजय (पा)समवसरणके स्फटिक शालके पूर्व गोपुरका नाम ५७।५७
विजय (व्य) वसुदेवका पुत्र ५०।११५
विजय (भौ) अनुत्तर विमान ६।६५
विजय (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।१५
विजय (व्य) दशपूर्वके ज्ञाता एक आचार्य १।६३
विजय (भौ)जम्बूद्वीपकी जगतीका पूर्व द्वार ५।३९०
विजय (व्य) विजयद्वारमें रहनेवाला एक व्यन्तर ६०।६०
विजय (व्य) जयकुमारका छोटा भाई १२।३२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजय (व्य) पहला बलभद्र ६०।२९०
विजय (व्य)भगवान् ऋषभदेवका गणधर १२।६०
विजया (पा) समवसरणके सप्त पर्णको वापिका ५७।३३
विजया (व्य) रुचिकगिरिके रत्नकूटपर रहनेवाली देवी ५।७२५
विजया (भौ) विदेहकी एक नगरी ५।२६३
विजया (व्य) अपराजितकी स्त्री ६०।१०५
विजया (व्य) रुचिकगिरिके वैडूर्य कूटपर रहनेवाली दिक्कुमारी देवी ५।७०५
विजया (भौ) नन्दीश्वर द्वीपके दक्षिणदिशासम्बन्धी अंजनगिरिकी पूर्व दिशामें स्थित वापिका ५।६६०
विजया (व्य) सहदेवकी स्त्री ४७।१८
विजयखेट (भौ) एक नगर १९।५३
विजयगुप्त(व्य) भगवान् ऋषभदेवका गणधर १२।६०
विजयपर्वत (व्य) भरत चक्रवर्तीका हाथी ११।२५
विजयपुर (भौ) संख्येय द्वीपोंके बाद दूसरे जम्बूद्वीपके रक्षक विजयदेवका निवासनगर ५।३९७
विजयमित्र (व्य) भगवान् वृषभदेवका गणधर १२।६०
विजयपुर (भौ) जम्बूद्वीप ऐरावतक्षेत्रका एक नगर ६०।४८
विजयश्री (व्य) भगवान् वृषभदेवका गणधर १२।६१
विजयश्रुति (व्य) ऋषभदेवका गणधर १२।६६
विजयसेना (व्य) एक कन्या जो वसुदेवकी स्त्री हुई १।८०
विजयसेना (व्य)सुग्रीव गन्धर्वाचार्यकी पुत्री १९।५५
विजयसेना (व्य) अमितगति विद्याधरकी स्त्री २१।१२०
विजयाङ्गण (पा) समवसरणकी एक भूमि ५७।२४
विजयावत् (भौ) हरिक्षेत्रके मध्यमें स्थित एक गोलाकार पर्वत ५।१६१
विजयावान् (भौ)पश्चिम विदेहका वक्षारगिरि ५।२३०
विजयापुरी (भौ) विदेहकी एक नगरी ५।२६१
विजयार्द्ध (भौ) विद्याधरोंका निवासभूत एक पर्वत, जो कि भरत, ऐरावत और प्रत्येक विदेहक्षेत्रमें होता है। कुल १७० विजयार्ध पर्वत हैं। ५।२०
विजयार्धकुमार (भौ) विजयार्धका पाँचवाँ कूट ५।२७
विजयार्धकुमार कूट (भौ) ऐरावतके विजयार्धका पाँचवाँ कूट ५।१११
विजयार्द्धकुमार (व्य) विजयार्ध गिरिका वासी देव ११।१९
विडौजस् = इन्द्र ११।१३५
विततता (भौ) एक नदी ११।७९
वितस्ति (पा) दो पादोंकी एक वितस्ति ७।४५
विदग्ध = चतुर २०।१८
विदर्भ (भौ) एक देश आधुनिक नाम बरार १७।२३
विदारणक्रिया (पा) एक क्रिया ५८।७६
विदुर (व्य) राजा धृतराष्ट्र तथा अम्बा नामक स्त्रीसे उत्पन्न पुत्र ४५।३४
विदूरथ (व्य) वसुदेव और रोहिणीका पुत्र ४८।६४
विदूरथ (व्य) एक राजा ५०।८१
विदेह (भौ) देशविशेष ११।७५
विदेहकूट (भौ) निषधाचलका आठवाँ कूट ५।८९
विदेह (भौ) जम्बूद्वीपके निषध और नील कुलाचलके मध्यमें स्थित चौथा क्षेत्र ५।१३
विपाकजानिर्जरा (पा)निर्जराका भेद ५८।२९४
विरुद्धराज्यातिक्रम(पा)अचौर्याणुव्रतका अतिचार५८।१७१
वीचि = तरंग १।४४
वीतभय (व्य) बलभद्र (रत्नमालाका जीव) २७।११२
वीतभय (भौ) सिन्धु देशका एक नगर ४४।३३
वीतभी (व्य) अविध्वंसका पुत्र १३।११
वीतशोका (भौ) विदेहकी एक नगरी २७।५
वीर (भौ) वि. उ. नगरी २२।८८
वीर (व्य) अन्तिम तीर्थंकर महावीर २।४७
वीरक (व्य) कौशाम्बीवासी एक पुरुष—वनमालाका पति १४।६१
वीरभद्रगुरु (व्य) एक जैनमुनि ३३।५९
वीर (व्य) वसुदेवका पुत्र ५०।११५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वीर (व्य) स्तिमितसागरका पुत्र ४८।४६

वीर (भौ) सौधर्म युगलका पाँचवाँ इन्द्रक ६।४४

वीरसेन (व्य) वटपुरका राजा ४३।१६३

वीरसेनगुरु (व्य) षट्खण्डागमके टीकाकार वीरसेनाचार्य १।३९

वीर्य (व्य)कुरुवंशका एक राजा ४५।२७

वीर्यपुर (भौ) यादवोंकी निवास-भूमिका एक नगर ४१।४४

वीराख्य (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३३

वीर्यप्रवादपूर्व (पा) पूर्वगत श्रुतका एक भेद २।९८

विद्युत्कुमार=भवनवासी देवोंका एक भेद ४।६४

विद्युद्दंष्ट्र (व्य) विद्याधर वज्र-दंष्ट्र और विद्युत्प्रभाका पुत्र २७।१२१

विद्युद्दंष्ट्र (व्य) सुवक्त्रका पुत्र १३।२४

विद्युद्दंष्ट्र (व्य) गगनवल्लभ नगरका विद्याधर २७।१

विद्युद्वेग (व्य) विद्युद्दासका पुत्र १३।२४

विद्युद्वेग (व्य) वसुदेवका श्वसुर (मदनवेगाका पिता) २५।३७

विद्युत्प्रभ (भौ) मेरुसे दक्षिण-पश्चिम कोणमें स्थित एक स्वर्णमय पर्वत ५।२१२

विद्युत्प्रभ (व्य) हिमवत्का पुत्र ४८।४७

विद्युत्प्रभकूट (भौ) विद्युत्प्रभ-पर्वतका एक कूट ५।२२२

विद्युत्प्रभ (भौ) वि. उ. नगरी २२।९०

विद्युत्प्रभा (व्य) वज्रदंष्ट्रकी स्त्री २७।१२१

विद्युदाभ (व्य) विद्युत्वान्का पुत्र १३।२४

विद्यानुवाद (पा) पूर्वगत श्रुत-का एक भेद २।९९

विद्युन्मुख (व्य) वज्रवान्का पुत्र १३।२४

विद्युन्मति (व्य) विद्युद्वेगकी स्त्री ६०।८९

विद्युत्वान् (व्य) विद्युद्दंष्ट्रका पुत्र १३।२४

विद्युन्माली (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३५

विद्रावण (व्य) रावणका पुत्र ४५।४७

विद्रुत = भाग गयीं ५१।४२

विद्रुम (व्य) बलदेवका पुत्र ४८।६७

विनमि (व्य) भगवान् वृषभदेव-के सालेका पुत्र ९।१२८

विनमि (व्य) ऋषभदेवका गण-धर १२।६८

विनयदत्त (व्य) एक मुनि ४६।५५

विनयश्री (व्य) अपराजितकी पुत्री ६०।१०५

विनयश्री (व्य) रुद्रदत्तकी स्त्री ६०।८७

विनयसम्पन्नता = भावना ३४।१३३

विनया (व्य) सुराष्ट्र देशकी अजाखुरी नगरीके राजा राष्ट्रवर्धनकी स्त्री ४४।२६

विनिहात्र (भौ) देशका नाम ११।७४

विनीत (व्य) ऋषभदेवका गण-धर १२।६३

विनीता (भौ) अयोध्या ११।५६

विनेय = शिष्य २।१०३

विन्दुसार (व्य) वप्रथुका पुत्र १८।२०

विन्ध्य (भौ) दूसरी पृथिवी-सम्बन्धी प्रथम प्रस्तारके इन्द्रक विलकी दक्षिण दिशामें स्थित महा भया-नक नरक ४।१५३

विन्ध्यसेन (व्य) वसुन्धरपुरका राजा ४५।७०

विपञ्ची = वीणा १९।७७

विपश्चित् = विद्वान् २२।१०९

विपाकविचय (पा) धर्म्यध्यान-का एक भेद ५६।४५

विपाकसूत्राङ्ग (पा) द्वादशांगका एक भेद २।९४

विपुल (व्य) आगामी तीर्थंकर ६०।५६०

विपुल (भौ) राजगृहीकी एक पहाड़ीका नाम ३।५४

विपुलबुद्धि = विपुलमति मनः-पर्ययज्ञानी ३।४८

विपुलमति (पा) मनःपर्ययज्ञान-का एक भेद १०।१५३

विपुलवाहन (व्य) सातवाँ कुल-कर ७।१५६

विपृथु (व्य) एक राजा ५०।१२६

विप्रकृष्ट=दूरवर्ती १।५४

विभक्ति=पदगतगान्धर्वकी विधि १९।१४९

विभीषण (व्य) नारायण (रत्नायुधका जीव) २७।११२

विभु (व्य) प्रभुका पुत्र १३।११

विभ्रान्त (भौ) रत्नप्रभा पृथिवीके प्रस्तारका इन्द्रक विल ४।७७

विमल (भौ) रुचिकगिरिका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दक्षिण दिशासम्बन्धी कूट ५।७०९
विमल (पा) स्फटिकसालका पूर्व गोपुर ५७।५७
विमल (भौ) वि. उ. नगरी २२।९०
विमल (व्य) समुद्रविजयका मन्त्री ५०।४९
विमल (भौ) रुचिकगिरिका पूर्व दिशासम्बन्धी एक विशिष्ट कूट ५।७१९
विमल (भौ) सौधर्म युगलका दूसरा इन्द्रकपटल ५६।४४
विमल (व्य) तेरहवें तीर्थंकर १।१५
विमलप्रभ (व्य) अरिवरसमुद्रके रक्षक देव ५।६४२
विमल कूट (भौ) सौमनस्य पर्वतका एक कूट ५।२२१
विमानपङ्क्तिव्रत = एक व्रतविशेष ३४।८६
विमलवाहन (व्य) आगामी चक्रवर्ती ६०।५६५
विमलवाहन (व्य) विदेहके एक तीर्थंकर ३४।८
विमलसंज्ञ (व्य) आगामी तीर्थंकर ६०।५६२
विमलप्रभा (व्य) विश्रृंगपुरके राजा प्रचण्डवाहनकी स्त्री ४५।९६
विमलश्री (व्य) श्रीधर और श्रीमतीकी पुत्री ६०।११७
विमला (व्य) ज्वलनवेगकी स्त्री १९।८३
विमर्दन (भौ) पाँचवीं पृथिवीके प्रथम प्रस्तारसम्बन्धी तमइन्द्रककी दक्षिण दिशामें स्थित महानरक ४।१५६
विमानपङ्क्ति वैराज्य = व्रतविशेष ३४।१२९
विमुक्ति = मोक्ष १।५
विरजा (भौ) विदेहकी एक नगरी ५।२६२
विरागविचय (पा) धर्म्यध्यानका एक भेद ५६।४६
विराट (व्य) विराटनगरका राजा ४६।२३
विराट नगर (भौ) एक नगर ४६।२३
विवर्द्धनकुमार (व्य) भरतचक्रवर्तीके ९२३ पुत्रोंमें-से एक पुत्र, जो अनादि मिथ्यादृष्टि थे १२।३
विवादी = स्वरप्रयोगका एक प्रकार १९।१५४
विबुध = देव २।४२
विशल्यकारिणी = एक विद्या २२।७१
विशल्यकरण = विद्यास्त्र २५।४९
विशरारुता = भंगुरता-अनित्यता १६।३२
विशाखगणी (व्य) मुनि सुव्रतनाथका गणधर १६।६८
विशालाक्ष (व्य) कुण्डलगिरिके स्फटिकप्रभकूटका निवासी देव ५।६९४
विशाख (व्य) दशपूर्वके ज्ञाता एक आचार्य १।६२
विशाख (व्य) मल्लिनाथका प्रथम गणधर
शिष्टक कूट (भौ) सौमनस्य पर्वतपर स्थित एक कूट ५।२२१
विशेषत्रयवादिन् = विशेषत्रयके रचयिता १।३७
विश्व = समस्त २।९०
विश्व (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।१७
विश्वा (व्य) राजा प्रचण्डवाहनकी पुत्री ४५।९८
विश्वजनीन=सबका हित करनेवाले ३९।४
विश्वधृक् (पा) स्फटिकमालका पूर्व गोपुर ५७।५७
विश्वभूति (व्य) राजा सगरका पुरोहित २३।५६
विश्वसेन (व्य) भगवान् शान्तिनाथके पिता ४५।१८
विश्वसेन (व्य) एक राजा ६०।५८
विश्वरूप (व्य) धरणका पुत्र ४८।५०
विश्वावसु (व्य) राजा वसुका पुत्र १७।५९
विश्रुत (पा) समवसरणके स्फटिक सालके पूर्व गोपुरका नाम ५६।५७
विषद (व्य) उग्रसेनके चाचा शान्तनुका पुत्र ४८।४०
विषय = देश २।१४९
विष्टप = लोक ३।३५
विष्टरश्रवस् (व्य) कृष्ण ५४।४९
विष्णु (व्य) श्रीकृष्ण १।९८
विष्णु (व्य) एक श्रुतकेवली आचार्य १।६१
विष्णु (व्य) एक राजा ५०।१३०
विष्णु (व्य) महापद्म चक्रवर्तीका पुत्र, जो कि मुनि होनेपर विक्रिया ऋद्धिका धारक हुआ ४५।२४
विष्णुसञ्जय (व्य) कृष्णका पुत्र ४८।६९
विष्णुस्वामी (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३९
विष्वक्सेन (व्य) जम्बूपुरके राजा जाम्बवका पुत्र ४४।५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वृक्षमूल = दितिदेवीके द्वारा प्रदत्त विद्यानिकाय २२।६०
वृत्तरथ (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।२८
वृत्त = पदगत गान्धर्वकी विधि १९।१४९
वृत्तवैताढ्य (भौ) नाभिगिरि-पर्वत ५।५८८
वृत्ति = वैणस्वरका एक भेद १९।१४७
वृकार्थक (भौ) देशविशेष ३।४
वृकोदर (व्य) भीमसेन पाण्डव ५४।६६
वृत्त = गोल ३।५५
वृन्दावन (भौ) मथुराके समीप-वर्ती एक उपनगर ३५।२८
वृषभ (व्य) प्रथम तीर्थंकर ३।७
वृद्धार्थ (व्य) वसुदेवकी स्त्री पद्मावतीका पुत्र ४८।५६
वृषानन्त (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।२८
वृषभध्वज (व्य) वीतभीका पुत्र १३।११
वृषभध्वज (व्य) उज्जयिनीका राजा ३३।१०३
वृषध्वज (व्य) वैदिशपुरका राजा ४५।१०७
वृषभदत्त (व्य) कुशाग्रपुर निवासी एक पुरुष मुनि सुव्रतनाथको प्रथम आहार देनेवाला १६।५९
वृषभपर्वत(भौ) चौंतीस वृषभा-चल, भरत और ऐरावतमें एक-एक तथा बत्तीस विदेहोंमें बत्तीस ५।२८०
वृषभसेन (व्य) भगवान् वृषभ-देवका गणधर १२।५५
वृषभसेन (व्य) भगवान् वृषभ-देवके पुत्र ९।२३
वृषध्वज (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।२८
वृष्णिपुत्र (व्य) अन्धकवृष्णिके दश पुत्र १।७८
वेगवती (व्य) वसुदेवकी एक विद्याधर स्त्री २६।३३
वेगवती (भौ) एक नदी४६।४९
वेगवान् (व्य) वसुदेव और वेग-वतीका पुत्र ४८।६०
वेणु (व्य) मानुषोत्तरके पूर्वदक्षिण कोणमें स्थित रत्नकूटपर रहनेवाला देव ५।६०७
वेणु (भौ) वि. उ.नगरी २२।८९
वेणु (व्य) शाल्मली वृक्षपर रहनेवाला देव ५।१९०
वेणुदारी (व्य) एक राजा५०।८५
वेणुदारी (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३९
वेणुदारी (व्य) मानुषोत्तरके सर्वरत्नकूटका निवासी देव ५।६०८
वेणुदारिन् (व्य) शाल्मली वृक्ष-पर रहनेवाला देव५।१९०
वेद = ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद १।८३
वेदन (भौ) तीसरी पृथिवीके प्रथम प्रस्तारसम्बन्धी तप्त नामक इन्द्रक विलकी दक्षिण दिशामें स्थित महा-नरक ४।१५४
वेदना (पा) आग्रायणी पूर्वके चतुर्थ प्राभृतका योगद्वार १०।८२
वेदसामपुर (भौ) एक नगर जहाँ वसुदेव गये २४।२५
वेलम्बकूट (भौ) मानुषोत्तरके दक्षिण-पश्चिम कोणमें निषधाचलसे लगा एक कूट ५।६०९
वैकुण्ठ (व्य) श्रीकृष्ण ५०।९२
वैक्रिय = विक्रियाऋद्धिके धारक ३।४७
वैगारि (व्य) एक विद्याधर राजा २५।६३
वैजयन्त (भौ) जम्बूद्वीपकी जगतीका दक्षिण-द्वार ५।३९०
वैजयन्त (भौ) वि. उ. नगरी २२।८६
वैजयन्त (व्य) वीतशोका नगरी-का राजा २७।५
वैजयन्त (भौ) अनुत्तर विमति ६।६५
वैजयन्त (पा) स्फटिकसालका दक्षिण गोपुर ५७।५८
वैजयन्ती (भौ) विजयार्धकी एक नगरी ३०।३३
वैजयन्ती (पा) समवसरणके सप्तपर्ण वनकी वापिका ५७।३३
वैजयन्ती (भौ) विदेहकी एक नगरी ५।२६३
वैजयन्ती (भौ) नन्दीश्वर द्वीपके दक्षिण दिशासम्बन्धी अंजन-गिरिकी दक्षिण दिशा-सम्बन्धी वापिका ५।६६०
वैजयन्ती (व्य) रुचिकगिरिके कांचनकूटपर रहनेवाली दिक्कुमारी देवी ५।७०५
वैजयन्ती (व्य) रुचिकगिरिके रत्नप्रभ कूटपर रहनेवाली देवी ५।७२५
वैडूर्य(भौ) रत्नप्रभाके खरभाग-का तीसरा पटल ४।५२
वैडूर्य=नील रंगका मणि २।१०
वैडूर्य (भौ) रुचिकगिरिका ऐशान दिशासम्बन्धी कूट ५।७२२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैडूर्य (भौ) सौधर्म युगलका चौदहवाँ इन्द्रक ६।४५
वैडूर्यकूट (भौ) महाहिमवत् कुलाचलका आठवाँ कूट ५।७२
वैडूर्यकूट (भौ) रुचिकगिरिका पूर्व दिशासम्बन्धी एक कूट ५।७०५
वैडूर्यकूट (भौ) मानुषोत्तर पर्वतकी पूर्व दिशाका एक कूट ५।६०२
वैडूर्यप्रभ (भौ) सहस्रार स्वर्गका एक विमान २७।७४
वैडूर्यमय (भौ) मेरुकी एक परिधि ५।३०५
वैडूर्यवर (भौ) अन्तिम सोलह द्वीपोंमें दसवाँ द्वीप ५।६२४
वैण = स्वरका एक भेद १९।१४६
वैताढ्य (भौ) विजयार्धका दूसरा नाम ५।५८८
वैताढ्य पर्वत (भौ) विजयार्धगिरि ४२।१७
वैदर्भ (व्य) पुष्पदन्तका प्रथम गणधर ६०।३४७
वैदर्भ (भौ) देशका नाम ११।६९
वैदर्भी (व्य) रुक्मिणीके भाई रुक्मीकी पुत्री ४८।११
वैदग्ध्य = चतुराई १९।८
वैदिश (भौ) देशविशेष ११।७४
वैदिशपुर (भौ) एक नगर ४५।१०७
वैद्युत (व्य) विद्युद्वेगका पुत्र १३।२४
वैनयिक (पा) अंग बाह्यश्रुतका एक भेद २।१०३
वैभार (भौ) राजगृहीकी एक पहाड़ीका नाम ३।५४
वैयावृत्य=वैयावृत्य नामका तप-सेवा (दुःखेभ्यो व्यावृत्तिः प्रयोजनं यस्य) १८।१३९
वैयावृत्य = भावना ३४।१४०
वैर (व्य) ऋषभदेवका गणधर १२।६७
वैरोचन (भौ) अनुदिश ६।६३
वैशाखस्थान = बराबरीपर पाँव फैलाकर खड़े होना ४।८
वैष्णव = विद्यास्त्र २५।४७
वैश्रवण (भौ) पूर्वविदेहका वक्षारगिरि ५।२२९
वैश्रवण (व्य) कुबेर ६१।१८
वैश्रवणकूट (भौ) ऐरावतके विजयार्धका नौवाँ कूट ५।११२
वैश्रवणकूट (भौ) हिमवत् कुलाचलका ग्यारहवाँ कूट ५।५५
वैश्ववेतु (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।१७
वैश्वानर (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।१७
व्यय (पा) = पूर्वपर्यायका नाश १।१
व्यञ्जन (पा) शब्द ५६।६२
व्यञ्जन (पा) अष्टांग निमित्त ज्ञानका एक अंग १०।११७
व्यन्तर=किन्नर, किम्पुरुष आदि व्यन्तर देव ३।१३५
व्यन्तर देव = किन्नर, किम्पुरुष, गन्धर्व आदि देवोंका एक समूह २।८०
व्यवहारपल्य (पा) कालका एक परिमाण ७।४७-४९
व्यसु = मृत ३५।५
व्युच्छिन्न (वि) विच्छेदको प्राप्त हुए १।१३
व्योमचर = विद्याके निकायका नामान्तर २२।५८
व्रणसंरोहिणी = एक विद्या २२।७१
व्रणसंरोहण = विद्यास्त्र २५।४९
व्रत (पा) हिंसादि पाँच पापका परित्याग १ अहिंसा, २ सत्य, ३ अचौर्य, ४ ब्रह्मचर्य और ५ अपरिग्रह ५६।१
व्रतधर (व्य) एक मुनिराज ४९।१४
व्रतधर्मा (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।२९
व्याख्याप्रज्ञप्ति (पा) परिकर्मश्रुतका भेद १०।६२
व्याख्याप्रज्ञप्ति अङ्ग (पा) द्वादशांगका एक भेद १।९३
व्यवहार (पा) एक नद ५८।४१
व्रत्यनुरागिता (पा) सातावेदनीयका आस्रव ५८।९४
व्रात (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।११
व्रात = समूह १२।८०
व्यास = विस्तार ४।२४
वेदनीय (पा) सुख-दुःखका अनुभव करानेवाला एक कर्म ५८।२१६
वैनयिक (पा) मिथ्यात्वका एक भेद ५८।१९४

[श]

शकट (भौ) भरतक्षेत्रका एक देश २७।२०
शकुनि (व्य) एक राजा ५०।८४
शकुनि (व्य) दुर्योधनका मन्त्री ४५।४१
शकटामुख (भौ) वि. उ. नगरी २२।९३
शक्रन्दमन (व्य) बलदेवका पुत्र ४८।६६
शक्तितस्तप = भावना ३४।१३८
शक्तितस्त्याग=भावना ३४।१३७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शङ्कुक = अदिति देवीके द्वारा दत्त विद्याओंका एक निकाय २२।५८
शङ्ख (व्य) कृष्णका पुत्र४८।७१
शङ्ख (व्य) बन्धुमतीका पुत्र ३३।१४१
शङ्ख (पा) चक्रवर्तीकी एक निधि ११।११०
शङ्ख (व्य) नभसेनका पुत्र १७।३५
शङ्खनाम (भौ) वि. द. नगरी २२।९६
शङ्खवर द्वीप (भौ) बारहवाँ द्वीप ५।६१८
शङ्ख, महाशङ्ख (भौ) लवण-समुद्र में पश्चिम दिशाके वडवामुख पातालकी दोनों ओर स्थित दो पर्वत ५।४६२
शङ्खवर सागर (भौ) बारहवाँ सागर ५।६१८
शङ्खा (भौ) पूर्वविदेहका एक देश ५।२४९
शतज्वलकूट (भौ) विद्युत्प्रभ-पर्वतका एक कूट ५।२२२
शतद्रुत (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३५
शतधनु (व्य) देवगर्भका पुत्र १८।२०
शतधनु (व्य) बलदेवका पुत्र ४८।६८
शतधनु (व्य) एक राजा ५०।१२६
शतानीक (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३८
शतानीक (व्य) विनमिका पुत्र २२।१०५
शतपति (व्य) निहतशत्रुका पुत्र १८।२१
शतपर्वा = एक विद्या २२।६७
शतमख = इन्द्र १६।१८
शतमुख (व्य) धरणका पुत्र ४८।५०
शतार (भौ) ग्यारहवाँ स्वर्ग ६।३७
शतारक (भौ) सहस्रार स्वर्गका इन्द्रक ६।५०
शत्रुघ्न (व्य) देवकीका पुत्र ३३।१७०
शत्रुदमन (व्य) भगवान् ऋषभ देवका गणधर १२।५५
शत्रुञ्जय (व्य) विनमिका पुत्र २२।१०४
शत्रुञ्जय (व्य) एक राजा ५०।१३१
शत्रुञ्जयगिरि (भौ) पालीनाथ-के समीपवर्ती पर्वत६५।१८
शत्रुञ्जय (व्य) एक राजा ३१।९४
शत्रुञ्जय (भौ) वि. उ. नगरी २२।८६
शत्रुदमन (व्य) एक राजा ५०।१२४
शत्रुसेन (व्य) जरत्कुमारकी सन्ततिका एक पुत्र ६६।५
शन्तनु (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।३१
शन्तनु (व्य) बलदेवका पुत्र ४८।६७
शन्तनु (व्य) एक राजा ५०।१२५
शब्द (पा) एक नय ५८।४१
शब्दानुपात (पा) देशव्रतका अतिचार ५८।१७८
शर (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।२९
शरद्वीप (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।३०
शरधि = तरकश ८।११
शरासन (व्य) सरवरका पुत्र ४५।४६
शरीरजा = पुत्री ३५।३०
शर्कराप्रभा (भौ) नरकोंकी दूसरी पृथिवी ४।४३
शम् = सुख १।५
शम्ब (व्य) कैटभका जीव, जो कृष्णकी जाम्बवती स्त्रीसे उत्पन्न हुआ ४३।२१८
शम्ब (व्य) एक राजा ५०।८१
शम्भव (व्य) तृतीय तीर्थंकर १।५
शम्भु (व्य) तृतीय तीर्थंकर १।५
शम्याताल = तालगत गान्धर्व-का एक प्रकार १९।१५०
शल्य (व्य) एक राजा ५०।७९
शतवलि (व्य) एक विद्याधर ६०।१८
शशरोमन् (व्य) दुर्योधनका एक मित्र ४५।४१
शतह्रद (भौ) वि. द. नगरी २२।९५
शशाङ्क (व्य) अभिचन्द्रका पुत्र ४८।५२
शशाङ्काङ्क (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।१९
शशिप्रभ (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३९
शशिप्रभ (भौ) वि. उ. नगरी २२।९१
शशिप्रभ (व्य) वसुदेव और सोमदत्तकी पुत्रीका पुत्र ४८।६०
शशी (व्य) रवितेजस्का पुत्र १३।९
शशी (व्य) अभिचन्द्रका पुत्र ४८।५२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शाक्र (व्य) नेमिनाथके शंखका नाम ५१।२०
शार्ङ्ग (व्य) श्रीकृष्ण ५५।६१
शार्ङ्ग = कृष्णका एक नाम ५३।४९
शातकुम्भमय (वि) स्वर्णनिर्मित २।४२
शाखामृग = वानर २७।५३
शारदी (वि) शरदृतुसम्बन्धिनी २।७८
शारीर = स्वरका एक भेद १९।१४६
शार्ङ्गपाणि = कृष्ण ४२।९७
शान्त (व्य) शान्तिषेण नामक आचार्य १।३६
शान्ति (व्य) सोलहवें तीर्थंकर, पंचम चक्रवर्ती ४५।१८
शान्ति (व्य) पंचम चक्रवर्ती ६०।२८६
शान्ति (व्य) सोलहवें तीर्थंकर १।१८
शान्तिचन्द्र (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।९९
शान्तिभद्र (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।३०
शान्तिवर्धन (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।१९
शान्तिषेण (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।३०
शार्दूल (व्य) समुद्रविजयका मन्त्री ५०।४९
शाल (व्य) राजा मूलका पुत्र १७।३२
शालगुहा (भौ) एक नगरी जहाँ वसुदेव गये २४।२९
शालिग्राम (भौ) मगधदेशका एक गाँव ४३।९९
शालिग्राम (भौ) वसुदेवके भवान्तरसे सम्बन्ध रखनेवाला एक ग्राम १८।१२७
शालिग्राम (भौ) एक गाँवका नाम ६०।६२
शाल्मलीखण्ड (भौ) एक ग्राम ६०।१०९
शाल्मली स्थल (भौ) मेरुकी नैऋत्य दिशामें सीतोदा नदीके दूसरे तटपर निषधाचलके समीप स्थित स्थलविशेष, जहाँ शाल्मली वृक्ष होता है ५।१८७
शासन (पा) मत, सिद्धान्त १।१
शिक्षाव्रत (पा) जिनसे मुनिव्रतकी शिक्षा मिले। इसके चार भेद हैं—सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग परिमाण और अतिथि संविभाग २।१३४
शिखण्डिन् (व्य) एक राजा ५०।८४
शिखरिकूट (भौ) शिखरिकूलाचलका दूसरा कूट ५।१०५
शिखरिन् (भौ) जम्बूद्वीपका सातवाँ कुलाचल ५।१५
शिखिकण्ठ (व्य) आगामी प्रतिनारायण ६०।५७०
शिरःप्रकम्पित (पा) चौरासी लाख महालताओंका एक शिरःप्रकम्पित ७।३०
शिखिन् = मयूर ३६।१
शिव = कल्याण ३८।२
शिव (पा) स्फटिक सालका दक्षिण गोपुर ५७।५७
शिव, शिवदेव (व्य) लवणसमुद्रमें उदक और उदवास पर्वतके निवासी देव ५।४६१
शिवचन्द्रा (व्य) वि. द. के जम्बूपुर नगरके राजा जाम्बवकी स्त्री ४४।४
शिवनन्द (व्य) समुद्रविजयका पुत्र ४८।४४
शिवमन्दिर (भौ) वि. द. नगरी २२।९४
शिवमन्दिर (भौ) विजयार्धकी दक्षिण श्रेणीका एक नगर २१।२२
शिवा (व्य) राजा समुद्रविजयकी स्त्री
शिवि (व्य) उग्रसेनके चाचा शान्तनुका पुत्र ४८।४०
शिबिका = पालकी २।५०
शिशुपाल (व्य) चेदी देशका राजा ४२।५६
शीता (व्य) रुचिकगिरिके यशःकूटपर रहनेवाली देवी ५।७१४
शीतल (व्य) दशम तीर्थंकर १३।३२
शीरायुध=बलभद्र ३५।३९
शीरी (व्य) बलदेव ४२।९७
शीलायुध (व्य) श्रावस्तीका एक राजा जो शान्तायुधका पुत्र था २९।३६
शीलायुध (व्य) वसुदेव और प्रियंगुसुन्दरीका पुत्र ४८।६२
शीलव्रतेष्वनतीचार = भावना ३४।१३४
शुक्र (भौ) नौवाँ स्वर्ग ६।३७
शुक्र (भौ) महाशुक्र स्वर्गका इन्द्रक ६।५०
शुक्तिमती (भौ) शुक्तिमती नदीके तटपर राजा अभिचन्द्रके द्वारा बसायी हुई नगरी १७।३६
शुक्तिमती (भौ) एक नदी १७।३६
शुक्लध्यान (पा) प्रशस्तध्यानका एक भेद ५३।५३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुक्लापाङ्ग = मयूर २३।१२
शुचिदत्त (व्य) भगवान् महावीरका चतुर्थ गणधर ३।४२
शुद्धमध्यमा = मध्यम ग्रामकी मूर्च्छना १९।१६३
शुद्धान्त = अन्तःपुर १९।३७
शुद्धषड्जा=षड्जस्वरकी मूर्च्छना १९।१६१
शुभङ्कर (व्य) कुरुचन्द्रका पुत्र ४५।९
शुभा (भौ) विदेहकी एक नगरी ५।३६०
शुभ्रपुर (भौ) राजा सूर्यके द्वारा बसाया नगर १७।३२
शूर (भौ) देशका नाम ११।६६
शूर (व्य) मथुराके भानु और यमुनाका पुत्र ३३।९७
शूर (व्य) यदुवंशी राजा नरपतिका पुत्र १८।८
शूर्पणखी (व्य) त्रिशिख विद्याधरकी विधवा पत्नी २६।२६
शूरदत्त (व्य) मथुराके भानु और भानुदत्ताका पुत्र ३३।९७
शूरसेन (व्य) मथुराके भानु और मथुराका पुत्र ३३।९८
शूरसेन (व्य) मथुराका राजा ३३।९६
शूरसेन (व्य) वसुदेवकी एक स्त्री ३१।७
शृगालदत्त (व्य) एक भील २७।७०
शेषवती (व्य) भीमकी स्त्री ४७।१८
शैल (व्य) अचलका पुत्र४८।४९
शौर्यपुर (भौ) वटेश्वरके पास विद्यमान नगरविशेष१८।९
शैलन्ध्री (व्य) द्रौपदी ४६।३२
शैवेय (व्य) नेमिनाथ ६१।१६
शोक (पा) असातावेदनीयका आस्रव ५८।९३
शोणितपुर (भौ) विजयार्धका एक नगर, जहाँ बाण विद्याधर रहता था५५।१६
शौच (पा) सातावेदनीयका आस्रव ५८।९४
शौरि (व्य) यादव-यदुवंशी १।९७
शौरि = वसुदेव १९।५९
श्मशाननिलय = विद्याधरकी जाति २६।१६
श्यामा(व्य)एक कन्या, जिसका वसुदेवके साथ सम्बन्ध हुआ १।८०
श्यामा = यौवनवती १९।७५
श्यामा (व्य) अशनिवेग विद्याधरकी कन्या जिसे वसुदेवने विवाहा १९।७५
श्यामलछाया (व्य) वसुदेवकी स्त्री श्यामाकी दासी १९।११२
श्यामक (भौ) अन्तिम सोलह द्वीपोंमें चौथा द्वीप ५।६२३
श्लक्ष्णरोम (व्य)सिंहलका राजा ४४।२०
श्लक्ष्णरोमा (व्य)लक्ष्मणा रानीका पिता ६०।८५
श्लेष्मान्तक (भौ) एक वन ४५।६९
श्वपाकी = विद्याधरोंकी एक जाति २६।१९
श्वसन = वायु ५५।३५
श्वेताम्बिका (भौ) एक नगरी ३३।१६१
श्वेतभानु = सूर्य ९।१४६
श्रद्धावान् (भौ) पश्चिम विदेहका वक्षारगिरि ५।२३०
श्रद्धावत (भौ) हैमवत क्षेत्रके मध्यमें स्थित एक गोलाकार पर्वत ५।१६१
श्रमजवारि = पसीना ५५।१२
श्रव्या = श्रवण करने योग्य-मनोहर २०।२
श्रावक=देशव्रतके पालक ३।६३
श्रावकाध्ययनाङ्ग (पा) द्वादशांगका एक भेद, अपरनाम उपासकाध्ययनांग २।९३
श्रावस्ती (भौ) एक नगरी २८।५
श्री (व्य) रुचिकगिरिके रुचककूटपर रहनेवाली देवी ५।७१६
श्री (व्य) पद्मसरोवरमें रहनेवाली देवी ५।१३०
श्री (व्य) राजा प्रचण्डवाहनकी पुत्री ४५।९८
श्रीकान्त (व्य)आगामी चक्रवर्ती ६०।५६५
श्रीकान्ता (व्य) अरिष्टपुरके राजा हिरण्यनाभकी स्त्री ४४।३७
श्रीकान्ता (व्य) अशोक और श्रीमतीकी पुत्री ६०।६९
श्रीकान्ता (भौ) मेरुके वायव्यमें स्थित वापी ५।३४४
श्रीकान्ता (व्य) शूरकी स्त्री ३३।९९
श्रीकूट(भौ) हिमवत् कुलाचलका छठा कूट ५।५४
श्रीकूट (भौ) वि. द. नगरी २२।९७
श्रीचन्द्र (व्य) आगामी बलभद्र ६०।५६८
श्रीचन्द्र (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।१२
श्रीचन्द्र (व्य) नागपुरका राजा ३४।४३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीचन्द्रा (भौ) मेरुके वायव्यमें स्थित वापी ५।३४४
श्रीदत्ता (व्य) श्रीभूति—सत्यघोषकी स्त्री २७।२२
श्रीदत्ता (व्य) श्रीधर्म विद्याधर राजाकी स्त्री २७।११७
श्रीदाम (व्य) श्रीधर्म और श्रीदत्ताका पुत्र २७।११६
श्रीधर (व्य) भगवान् ऋषभदेवका पूर्वभव ९।५९
श्रीधर (व्य) सहस्रार स्वर्गका एक देव २७।६८
श्रीधर (व्य) एक मुनि ६०।८७
श्रीधर (व्य) जयन्त नगरका राजा ६०।११७
श्रीधर (व्य) एक चारणर्द्धिसे युक्त मुनि ६०।१७
श्रीधर (व्य) एक मुनि ६०।१९
श्रीधरा (व्य) अतिबल और सुलक्षणाकी पुत्री रामदत्ताका जीव २७।७८
श्रीधर्म(व्य) चारण मुनि ६०।२१
श्रीधर्म (व्य) एक विद्याधर राजा २७।११६
श्रीधर्मा (व्य) उज्जयिनीका राजा २०।३
श्रीध्वज (व्य) बलदेवका पुत्र ४८।६७
श्रीध्वज (व्य) एक राजा ५०।१२४
श्रीनिकेतन (भौ) वि. उ. नगरी २२।८९
श्रीनिलया (भौ) मेरुके वायव्यमें स्थित एक वापी ५।३४४
श्रीपाल (व्य) सुलोचनाके द्वारा वर्णित श्रीपाल नामका चक्रवर्ती १।२
श्रीपुर (भौ) वि. उ. नगरी २२।९४
श्रीप्रभ (व्य) पुष्करवर द्वीपका रक्षक देव ५।६४०
श्रीप्रभ (भौ) सहस्रार स्वर्गका एक विमान २७।६८
श्रीभूति (व्य) सिंहपुरका एक ब्राह्मण, दूसरा नाम सत्यघोष २७।२२
श्रीभूति (व्य) आगामी चक्रवर्ती ६०।५६५
श्रीमती (व्य) राजा सिद्धार्थकी स्त्री (भगवान् महावीरकी दादी) २।१३
श्रीमती (व्य) जयन्त नगरके राजा श्रीधरकी रानी ६०।११७
श्रीमती (व्य) राजा श्रेयान्सका पूर्वभव ९।१८३
श्रीमती (व्य) साकेत नगरके राजा अतिबलकी स्त्री २७।६३
श्रीमती (व्य) रुक्मिणीकी माता ६०।३९
श्रीमती (व्य) पद्मनाभकी स्त्री ६०।१२१
श्रीमती (व्य) अशोककी पत्नी ६०।६९
श्रीमती = उज्जयिनीके राजा श्रीधर्माकी स्त्री २०।३
श्रीमती (व्य) नागपुरके राजा श्रीचन्द्रकी स्त्री ३४।४३
श्रीमती (व्य) राजा सूर्यकी स्त्री, कुन्थुनाथकी माता ४५।२०
श्रीमहिता (भौ) मेरुके वायव्यमें स्थित एक वापी ५।३४४
श्रीमान् (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३३
श्रेयान् (व्य) हस्तिनापुरके राजा सोमप्रभका छोटा भाई ९।१५८
श्रेयान् (व्य) हस्तिनापुरके राजा सोमप्रभका भाई ४५।७
श्रीवर (व्य) पुष्करवर द्वीपका रक्षक देव ५।६४०
श्रीवर्द्धमान (वि) अनन्तचतुष्टयरूप लक्ष्मीसे वृद्धिको प्राप्त १।२
श्रीवृक्ष (भौ) रुचकगिरिकी पश्चिम दिशाका कूट ५।७०२
श्रीवृक्ष (व्य) कुण्डलगिरिके मार्ग कूटका निवासी देव ५।६९३
श्रीवसु (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।२६
श्रीव्रत (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।२९
श्रीश्रेयस् (व्य) लक्ष्मीसे युक्त ग्यारहवें तीर्थंकर १।१३
श्रीषेण (व्य) आगामी चक्रवर्ती ६०।५६४
श्रुतदेवी (व्य) प्रतिमाओंके पास विद्यमान एक देवी ५।३६३
श्रुतविधि = व्रतविशेष ३४।९७
श्रुतसागर (व्य) एक मुनि २७।९९
श्रुति = वैणस्वरका एक भेद १९।१४७
श्रेणिक (व्य) मगध देशके राजा अपर नाम बिम्बसार १।७६
श्रेणिबद्ध (भौ) रत्नप्रभा आदि पृथिवियोंके पटलोंमें पंक्तिबद्ध बिल ४।१०३

[ष]

षड (भौ) पंकप्रभा पृथिवीके षष्ठ प्रस्तारका इन्द्रक बिल ४।१३४
षडषड (भौ) पंकप्रभा पृथिवीके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सप्तम प्रस्तारका इन्द्रक विल ४।१३५
षडावश्यक (पा) मुनियोंके मूल गुण–समता, वन्दना, स्तुति, प्रतिक्रमण,स्वाध्याय और कायोत्सर्ग....ये छह आवश्यक हैं २।१२८
षड्ज = स्वरका एक भेद १९।१५३
षड्जकैशिकी = षड्ज स्वरसे सम्बद्ध जाति १९।१७४
षड्जमध्या=षड्जस्वरसे सम्बद्ध जाति १९।१७४
षड्जीव निकाय=पृथिवीकायिकादि पाँच स्थावर और एक त्रस २।११७
षष्ठ=वेला—दो दिनका उपवास २।५८
षाड्जी = षड्जस्वरसे सम्बद्ध जाति १९।१७४
षाडव = चौदह मूर्च्छनाओंका एक स्वर १९।१६९
षोडशार्द्ध = आठ २।८३

[स]

सककापिर (भौ) देशका नाम ११।६९
सकन्दर्पप्रिय = कामीजनोंको प्रिय ४२।२१
सकलभूतदया (पा) सातावेदनीयका आस्रव ५८।९४
सक्ति = लगाव ३।९
सङ्घ (व्य) एक मुनि १८।१३३
सगर (व्य) एक राजा २३।५०
सगर (व्य) द्वितीय चक्रवर्ती ६०।२८३
सगर (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३६
सङ्घट्ट = भीड़ १९।११
सचित्तनिक्षेप (पा) अतिथिका अतिचार ५८।१८३
सचित्तावरण (पा) अतिथिका अतिचार ५८।१८३
सचित्ताहार (पा) भोगोपभोगका अतिचार ५८।१८२
सचित्तसंबन्धाहार (पा) भोगोपभोगका अतिचार५८।१८२
सचित्तसंमिश्राहार (पा) भोगोपभोगव्रतका अतिचार ५८।१८२
सञ्जयन्त (व्य) विदेहक्षेत्रके एक मुनि २७।३
सञ्जय (व्य) राजा चरमका पुत्र १७।२८
सञ्जय (व्य) एक राजा ५०।१३०
सञ्ज्वलित (भौ) बालुकाप्रभाके अष्टम प्रस्तारका इन्द्रक विल ४।१२५
सत्कल्याण = विवाह १९।२
सत्यक (व्य) कृष्णके पक्षका एक योद्धा ५२।१४
सत्यक (व्य) एक राजा ५०।१२४
सत्यक (व्य) शिविका पुत्र ४८।४१
सत्यप्रवाद (पा) पूर्वगत श्रुतका एक भेद २।९८
सत्यदेव (व्य) ऋषभदेवका गणधर १२।६२
सत्यनेमि (व्य) यादव५०।१२०
सत्यनेमि (व्य) समुद्रविजयका पुत्र ४८।४३
सत्यभामा (व्य) कृष्णकी स्त्री १।९३
सत्यमहाव्रत (पा)रागद्वेष मोहपूर्वक परतापकारी वचनोंका त्याग २।११८
सत्यवान् (व्य) ऋषभदेवका गणधर १२।६२
सत्यवेद (व्य) ऋषभदेवका गणधर १२।६२
सत्रशाला = दानशाला २५।२१
सत्सभा = सज्जनोंका समूह १।४४
सत्यसत्त्व (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३२
सत्संख्यादि (पा) सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव, अल्पबहुत्व ये आठ अनुयोग-द्वार २।१०८
सत्ययशस् (व्य) ऋषभदेवका गणधर १२।६५
सत्या (व्य) सत्यभामा ४३।१३
सद्भद्रिलपुर (भौ) एक नगर १८।११२
सिद्धार्था = एक विद्या २२।७०
सानत्कुमार (भौ) तीसरा स्वर्ग ६।३६
सनत्कुमार(व्य) अकृत्रिम चैत्यालयोंकी प्रतिमाओंके समीप स्थित यक्ष ५।३६३
सनत्कुमार (व्य) चौथा चक्रवर्ती ६०।२८६
सनत्कुमार (व्य) कुरुवंशमें उत्पन्न चौथा चक्रवर्ती ४५।१६
सनिकाचित (पा) आग्रायणी पूर्वके चतुर्थ प्राभृतका योगद्वार १०।८५
सन्निपात = तालगत गान्धर्वका एक प्रकार १९।१५०
सन्तान = कल्पवृक्ष विशेष८।१८९
सन्दरार्य (व्य) विमलनाथका प्रथम गणधर ६०।३४८
सन्ध्याकार (भौ) विन्ध्याचलका एक नगर ४५।११४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन्धि=पदगत गान्धर्वकी विधि १९।१४९

सन्मति (व्य)प्रतिश्रुति कुलकरका पुत्र दूसरा कुलकर ७।१४८

सन्नरेन्द्र=उत्तम विषवैद्य, पक्षमें उत्तम राजा १।४६

सपर्या=पूजा २२।७

सपाणि=तालगत गान्धर्वका एक प्रकार १९।१५१

सप्तकृत्व = सात बार २५।१५

सप्तपर्णपुर (भौ) सप्तपर्ण देवका निवासस्थान ५।४२७

सप्तसप्तमतप=व्रतविशेष ३४।९१

सप्तवर्णवन (भौ) विजयदेवके नगरसे २५ योजन दूर दक्षिणमें स्थित एक वन ५।४२

सप्तपञ्चार्थ (वि) विस्तारपूर्ण अर्थसे सहित १।७

सप्तर्द्धि (पा)तप, बुद्धि, विक्रिया, अक्षीण, औषध, रस और बल ३।४०

सभामण्डल = समवसरण २।१४४

समन्तभद्र (व्य)समन्तभद्र नामक आचार्य १।२९

समन्तानुपातिनि (पा) एक क्रिया ५८।७२

समयसत्य (पा) दश प्रकारके सत्योंमें-से एक सत्य १०।१०७

समवसरण=तीर्थंकरकी धर्मसभा २।६६

समवस्थान = समवसरण १।११३

समय (पा) कालद्रव्यकी सबसे छोटी पर्याय ७।१८

समभिरूढ(पा) एक तप ५८।४१

समवायाङ्ग (पा) द्वादशांगका एक भेद २।९२

समादान क्रिया (पा)एक क्रिया ५८।६४

समाधिगुप्त(व्य) आगामी तीर्थंकर ६०।५६१

समाधिगुप्त (व्य) एक मुनि ६०।२८

समारम्भ (पा) कार्यके साधन जुटाना ५८।८५

समालम्भन = विलेपन १९।४१

समावर्जित = धारण किये हुए ३८।५४

समासवर्ष = एक वर्ष एक माह १६।६४

समिति (पा)प्रमादरहित प्रवृत्ति १ ईहा, २ भाषा, ३ एषणा, ४ आदान-निक्षेपण और ५ प्रतिष्ठापन

समीरण = वायु ३।२०

समुच्छिन्न क्रियापाति (पा) शुक्लध्यानका चतुर्थ भेद ५६।७७

समुद्रदत्त (व्य) अयोध्याका एक सेठ ४३।१४८

समुद्रदत्त (व्य) एक मुनिराज १८।१०५

समुद्रविजय (व्य) बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथके पिता १।७९

समुद्रविजय (व्य) अन्धकवृष्णि और सुभद्राके पुत्र, भगवान् नेमिनाथके पिता १८।१३

समुद्वर्तन = उपटना ३८।५४

सम्फली = दूती १४।७८

सम्भव (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३७

सम्भवनाथ (व्य) तृतीय तीर्थंकर १३।३१

सम्भ्रान्त (भौ)रत्नप्रभा पृथिवीके छठे प्रस्तारका इन्द्रक ४।७६

सम्मद (व्य) रुद्र ६०।५७१

सम्मेदशैल (भौ) सम्मेदशिखर निर्वाणभूमि १६।७५

सम्यक्त्वक्रिया (पा) एक क्रिया ५८।६१

सम्यग्मिथ्यादृग् (पा) तीसरा गुणस्थान अपर नाम मिश्र ३।८०

सम्यग्दर्शन (पा) जीवादि सात तत्त्वोंका श्रद्धान करना २।११५

सम्यग्दर्शन भाषा (पा) सत्यप्रवाद पूर्वकी १२ भाषाओंमें-से एक भाषा १०।९६

सयोगकेवली (पा) तेरहवाँ गुणस्थान ३।८३

सरवट (व्य) जगत्स्थामाका पुत्र ४५।४६

सरस्वती (व्य) जयन्तगिरिके राजा वायुविद्याधरकी स्त्री ४७।४३

सरस्वती (व्य)एक देवी५९।२७

सरागसंयम (पा) सातावेदनीयका आस्रव ५८।९४

सरिता (भौ) पूर्वविदेहका एक देश ५।२४९

सर्वाह्न (व्य)प्रतिमाओंके समीप विद्यमान एक यक्ष ५।३६३

सर्वगन्ध (व्य) अरुणवर द्वीपका रक्षक देव ५।६४५

सर्वगुप्त (व्य) भगवान् ऋषभदेवका गणधर १२।५९

सर्वञ्जय (व्य) विनमिका पुत्र २२।१०५

सर्वतोभद्र (व्य) नाभिराजके भवनका नाम ८।४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वतोभद्र = श्रीकृष्णका भवन जो अठारह खण्डका था ४१।२७
सर्वतोभद्र = एक उपवासव्रत ३४।५२-५५
सर्वात्मभृत (व्य)आगामी तीर्थंकर ६०।५५९
सर्वदेव (व्य) भगवान् ऋषभदेवका गणधर १२।६०
सर्वप्रिय (व्य) भगवान् ऋषभदेवका गणधर १२।६०
सर्वरत्न (पा) चक्रवर्तीकी एक निधि ११।११०
सर्वरत्न (भौ) रुचिकगिरिकी नैर्ऋत्य दिशामें स्थित एक कूट ५।७२६
सर्वरत्न कूट (भौ) मानुषोत्तरके पूर्वोत्तर कोणमें निषधाचलसे लगा हुआ एक कूट ५।६०८
सर्वरत्नमय (भौ) मेरुकी एक परिधि ५।३०५
सर्वार्थ (व्य) राजा सिद्धार्थके पिता (भगवान् महावीरके बाबा) २।१३
सर्वार्थ (व्य) चारुदत्तका मामा २१।३८
सर्वार्थसिद्धा = एक विद्या २२।७०
सर्वार्थकल्पक (पा) आग्रायणी पूर्वकी वस्तु १०।७९
सर्वार्थसिद्धि (भौ) अनुत्तरविमानोंका इन्द्रक ६।५४
सर्वार्थसिद्धि (भौ) अनुत्तरविमान ६।६५
सर्वार्थसिद्धि स्तूप (पा) समवसरणके स्तूप ५७।१०२
सर्वविद्याप्रकर्षिणी = एक विद्या २२।६२
सर्वविद्याविराजिता=एक विद्या २२।६४
सर्वयशा (व्य) राजा तृणबिन्दुकी स्त्री २३।५२
सर्वावधि (पा) अवधिज्ञानका एक भेद १०।१५२
सर्वविदे (वि) सर्वज्ञाय १।३
सर्वसह (व्य) भगवान् ऋषभदेवका गणधर १२।५९
सर्वास्त्रच्छादन = विद्यास्त्र २५।४९
सर्वश्री (व्य) मेघपुरके राजा धनंजयकी स्त्री ३३।१३५
सर्वश्री (व्य) वीतशोका नगरीके वैजयन्त राजाकी स्त्री २७।६
सल्लेखना (पा) कषायको कृश कर शक्तिसे मरण करना ५८।१६०
सवर्णकारिणी = एक विद्या २२।७१
सवस्तुक = तालगत गान्धर्वका एक प्रकार १९।१५०
सवाच्यस्य = सापराधनिन्दनीय ५४।४७
सवित्री = कृष्णकी माता देवकी ३५।४९
सल्य (व्य) एक राजा ३१।९८
ससारस्वत (भौ) देशका नाम ११।७२
सहदेव (व्य) पाण्डव ४५।२
सहदेव (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३०
सहदेव (व्य) एक राजा५०।७९
सहस्रग्रीव (व्य) बलि प्रतिनारायणके वंशका एक राजा २५।३६
सहस्रार (वि) हजार आरोंवाला ३।२९
सहस्रार (भौ) बारहवाँ स्वर्ग ४।१५
सहस्रार (भौ) बारहवाँ स्वर्ग ६।३८
सहस्रदिक् (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३९
सहस्रपर्वा = एक विद्या २२।६७
सहस्रानीक (व्य) विनमिका पुत्र २२।१०५
सहस्ररश्मि (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।४०
सह्य (व्य) अचलका पुत्र४८।४९
संक्रम (पा) आग्रायणी पूर्वके चतुर्थ प्राभृतका योगद्वार १०।८३
संगमक (व्य) पातालवासी एक देव जिसकी राजा पद्मनाभने आराधना की ५४।१२
संग्रह (पा) एक नय ५८।४१
संघाट (भौ) शर्कराप्रभा पृथिवीके षष्ठ प्रस्तारका इन्द्रक विल ४।११०
संघात (पा) श्रुतज्ञानका भेद १०।१२
संजय (व्य) विनमिका पुत्र २२।१०४
संजयन्त (व्य)वीतशोका नगरीके वैजयन्त राजाका पुत्र २७।६
संज्ञासंज्ञा(पा)आठ अवसंज्ञाओंकी एक संज्ञासंज्ञा होती है ७।३८
संप्रज्वलित (भौ) बालुकाप्रभाके नवम प्रस्तारका इन्द्रक विल ४।१२६
संयम (पा) पाँच इन्द्रियों और मनको वश करना तथा छह कायके जीवोंकी हिंसा न करना २।१२९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संयतासंयत (पा) पापोंका एक देश करनेवाले श्रावक ३।१४८
संयतासंयत (पा) पाँचवाँ गुणस्थान ३।८१
संयोग (पा) अजीवाधिकरण आस्रवका भेद ५८।८६
संयोजनासत्य (पा) दश प्रकारके सत्योंमें-से एक सत्य १०।१०३
संरम्भ (पा) कार्य करनेका संकल्प करना ५८।८५
संवर (व्य) ऋषभदेवका गणधर १२।६३
संवादी = स्वरप्रयोगका एक प्रकार १९।१५४
संवेग = भावना ३४।१३६
संवृतिसत्य (पा) दश प्रकारके सत्योंमें-से एक सत्य १०।१०२
संसद् = समवसरण सभा २।११२
संस्थान = आकार ३।१९७
संस्थानविचय (पा) धर्म्यध्यानका भेद ५६।४८
सिंह (भौ) वि. उ. नगरी २२।८७
साकारमन्त्रभेद (पा) सत्याणुव्रतका अतिचार ५८।१६९
साकेत (भौ) अयोध्यानगरी १८।९७
सागर (व्य) सुभद्रका पुत्र १३।९
सागर(पा) असंख्यात वर्षोंका पुत्र एक सागर होता है ४।२५२
सागर (व्य) राजा उग्रसेनका ४८।३९
सागर(व्य) एक राजा ५०।११८
सागर कूट (भौ) माल्यवान् पर्वतका एक कूट ५।२१९
सागरचन्द्र (व्य) मेघकूट नगरके जिनालयमें विद्यमान एक अवधिज्ञानी मुनि ४७।६०
सागरचित्रक (भौ) नन्दनवनका एक कूट ५।३२९
सागरसेन(व्य) एक मुनि ६०।७६
सागरसेन (व्य) दीपनका पुत्र १८।९
सातासात (पा) आग्रायणी पूर्वके चतुर्थ प्राभृतका योगद्वार १०।८४
सात्यकि (व्य) एक मुनि ४३।११०
साधारण = वैणस्वरका भेद १९।१४७
साधारणक्रिया = शारीरस्वरका भेद १९।१४८
साधारणकृत = चौदह मूर्च्छनाओंका एक स्वर १९।१६९
साधु = सज्जन १।४३
साधु (व्य) साधुपरमेष्ठी १।२८
साधुसमाधि=भावना ३२।१३९
साधुसेन (व्य) ऋषभदेवका गणधर १२।६१
सानुकार (भौ) अच्युत स्वर्गका प्रथम इन्द्रक ६।५१
सानुधरी (व्य) महेन्द्रकी स्त्री ६०।८१
सामायिक (पा) अंगबाह्यश्रुतका एक भेद २।१०२
सामायिक=समस्त सावद्ययोगका त्याग कर चित्त स्थिर करना ३४।१४३
सामायिक चारित्र (पा) चारित्रका एक भेद ६४।१५
साम्परायिक (पा) आस्रवका भेद ५८।५८
सारण(व्य) वसुदेव और रोहिणीका पुत्र ४८।६४
सारण (व्य) एक राजा ५२।२०
सारनिवह (भौ) वि. उ. नगरी २२।८७
सारमेय=कुत्ता ४३।१५१
सारस्वत (व्य) लौकान्तिक देवोंका एक भेद ९।६४
सालम्बप्रत्याख्यान = यदि जीवित रहे तो अन्न-पानी ग्रहण करेंगे इस प्रकारकी प्रतिज्ञासे युक्त संन्यास २०।२४
सालाम्याशशिलातले = सागौन वृक्षके निकटवर्ती शिलातलपर २।५८
साल्व (भौ) देश-विशेष ३।३
सासादन (पा) दूसरा गुणस्थान ३।८०
सित (व्य) अमरावर्तका शिल्प ४५।४५
सित(व्य) एक तापस ४६।५४
सिता (व्य) विजयकी स्त्री १९।४
सिद्ध (पा) आठ कर्मोंको नष्ट करनेवाले मुक्त जीव ३।६६
सिद्ध (पा) वादि-प्रतिवादियोंके द्वारा निर्णीत १।१
सिद्ध (व्य) सिद्धपरमेष्ठी १।२८
सिद्धसेन (व्य) एक आचार्य १।३०
सिद्धस्तूप (पा) समवसरणके स्तूप ५७।१०३
सिन्दूर (भौ) अन्तिम सोलह द्वीपोंमें तीसरा द्वीप ५।६२३
सिद्धार्थ (व्य) बलदेवका सारथि ६१।४१
सिद्धार्थ (व्य) दशपूर्वके ज्ञाता एक आचार्य १।६२
सिद्धार्थ (व्य) बलदेवका स्नेही देशविशेष १।१२१
सिद्ध (व्य) मानुषोत्तरके अंजन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूल कूटपर रहनेवाला देव ५।६०४
सिद्धकूट (भौ) सौमनस्यपर्वतका एक कूट ५।२२१
सिद्धकूट (भौ) माल्यवान् पर्वतका कूट ५।२१९
सिद्धकूट (भौ) विद्युत्प्रभ पर्वतका कूट ५।२२२
सिद्धायतन (भौ) शाल्मली वृक्षकी दक्षिण शाखापर स्थित चैत्यालय ५।१८९
सिद्धायतन (भौ) जम्बू वृक्षकी उत्तर दिशाकी शाखापर स्थित चैत्यालय ५।१८१
सिद्धायतनकूट(भौ) गन्धमादनपर स्थित एक कूट ५।२१७
सिद्धायतनकूट (भौ) ऐरावतके विजयार्धका पहला कूट ५।११०
सिद्धायतनकूट(भौ) रुक्मिकुलाचलका पहला कूट ५।१०२
सिद्धायतनकूट (भौ) शिखरिकुलाचलका पहला कूट ५।१०५
सिद्धायतनकूट (भौ) हिमवत्कुलाचलका प्रथम कूट ५।५३
सिद्धायतनकूट (भौ) निषधाचलका प्रथम कूट ५।८८
सिद्धायतनकूट (भौ) विजयार्ध पर्वतका प्रथम कूट ५।२६
सिद्धायतनकूट (भौ) नीलकुलाचलका पहला कूट ५।९९
सिद्धायतनकूट (भौ) महाहिमवत् कुलाचलका पहला कूट ५।७१
सिद्धार्थ (व्य) भगवान् महावीरके पिता २।१३
सिद्धिक्षेत्र = मुक्तजीवोंके ठहरनेका स्थान—तनुवातवलयका अन्तिम ५२५ धनुष प्रमाण स्थान ३।६७
सिद्धि (पा) आग्रायणी पूर्वकी वस्तु १०।८०
सिद्धेतर (पा) सिद्धोंसे भिन्न संसारी जीव ३।६६
सिन्धुकक्ष (भौ) वि. द. नगरी २२।९७
सिन्धु (भौ) देशका नाम ११।६७
सिन्धु (भौ) चौदह महानदियोंमें-से एक नदी ५।१२३
सिन्धु (भौ) देशविशेष ३।५
सिन्धुकूट (भौ) हिमवत्कुलाचलका आठवाँ कूट ५।५४
सिन्धुदेवी (व्य) सिन्धुकूटपर बसनेवाली देवी ११।४०
सिंह (व्य) मेघदलपुरका राजा ४६।१४
सिंह (व्य) वसुदेव और नीलयशाका पुत्र ४८।५७
सिंहल (भौ) सिंहलद्वीप४४।२०
सिंहकटि (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३३
सिंहघोष(व्य) सन्ध्याकार नगरका राजा ४५।११४
सिंहचन्द्र (व्य) एक चारण ऋद्धिधारी मुनि २७।६०
सिंहचन्द्र (व्य) आगामी बलभद्र ६०।५६८
सिंहचन्द्र (व्य) सुमित्रदत्त वणिक् मरकर रानी रामदत्ताके सिंहचन्द्र पुत्र हुआ २७।४६
सिंहदंष्ट्र (व्य) प्रहसित और हिरण्यवतीका पुत्र२२।११३
सिंहदंष्ट्र (व्य) वसुदेवका सम्बन्धी एक विद्याधर ५१।२
सिंहनाद (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३४
सिंहपुर (भौ) ज. वि. के सुपद्मा देशका एक नगर ३४।३
सिंहपुर (भौ) भरतक्षेत्रके शकट देशका एक नगर २७।२०
सिंहपुरी (भौ) विदेहकी एक नगरी ५।२६१
सिंहबल (व्य) राजा पद्मका विरोधी एक उद्दण्ड राजा २०।१७
सिंहयश (व्य) अमितगति विद्याधरका पुत्र २१।१२१
सिंहरथ (व्य) राजगृहका राजा ६०।११३
सिंहरथ (व्य) कालसंवरका विरोधी एक विद्याधर राजा ४७।२६
सिंहरथ (व्य) सिंहपुरका उद्दण्ड राजा ३३।४
सिंहवाहिनी नागशय्या=कृष्णकी शय्या ३५।७२
सिंहविष्टर = सिंहासन २।४१
सिंहसेन (व्य) भरतक्षेत्रमें स्थित शकट देशके सिंहपुरका राजा २७।२०
सिंहसेन(व्य) वसुदेव और बन्धुमतीका पुत्र ४८।६२
सिंहसेन (व्य) अजितनाथके प्रथम गणधर ६०।३४६
सिंहाङ्क (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३१
सीता (व्य) रामचन्द्रजीकी स्त्री ४६।२१
सीता (व्य) अरिष्टपुरके निवासी रेवतकी पुत्री बलदेवकी स्त्री ४४।४१
सीता (भौ) जम्बूद्वीप विदेह क्षेत्रकी एक नदी ६०।६२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सीता (भौ) एक महानदी ५।१२३

सीताकूट (भौ) माल्यवान् पर्वतका एक कूट ५।२२०

सीताकूट (भौ) नीलकुलाचलका चौथा कूट ५।१००

सीतोदा (भौ) एक महानदी ५।१२३

सीतोदा (भौ) विदेहकी एक विभंगा नदी ५।२४१

सीतोदाकूट (भौ) विद्युत्प्रभका एक कूट ५।२२३

सीतोदाकूट (भौ) निषधाचलका सातवाँ कूट ५।८९

सीमंकर (व्य) पाँचवाँ कुलकर ७।१५४

सीमन्तक (भौ) रत्नप्रभा पृथिवीके प्रथम प्रस्तारका इन्द्रक नामक बिल ४।७६

सीमन्धर (व्य) विदेहके तीर्थंकर ४३।७९

सीमन्धर (व्य) छठा कुलकर ७।१५५

सुंदरी = बलदेव १।१२०

सुकृत (व्य) आगामी प्रतिनारायण ६०।५७०

सुकच्छ (व्य) ऋषभदेवका गणधर १२।६८

सुकच्छा (भौ) पश्चिम विदेहका एक देश ५।२४५

सुकक्ष (भौ) विदेह नगरी २२।९७

सुकान्त (व्य) जयकुमारका पूर्वभव १२।१०

सुकुमार (व्य) सनत्कुमार चक्रवर्तीका पुत्र ४५।१७

सुकुमारिका (व्य) तापसकी कन्या २१।२५

सुकुमारिका (व्य) धनदेव वैश्यकी स्त्री ४६।५०

सुकीर्ति (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।२५

सुकेतु (व्य) विजयार्धका निवासी एक विद्याधर ३।६

सुखरथ (व्य) दृढ़रथका पुत्र १८।१९

सुखानुबन्ध (पा) सल्लेखनाव्रतका अतिचार ५८।१८४

सुखावह (भौ) पश्चिम विदेहका वक्षारगिरि ५।२२०

सुगन्ध (व्य) अरुणवर द्वीपका रक्षक देव ५।६४५

सुगन्धा (भौ) पश्चिम विदेहका एक देश ५।२५१

सुगर्भ (व्य) वसुदेव और रत्नवतीका पुत्र ४८।५९

सुग्रीव (व्य) विजयखेट नगरमें रहनेवाला एक गन्धर्वाचार्य १९।५४

सुघोष = बलदेवके शंखका नाम ४२।७९

सुघोष = गन्धर्वसेनाके द्वारा वसुदेवको दी हुई वीणा १९।१३७

सुचक्षु (व्य) मानुषोत्तर पर्वतका रक्षक देव ५।६३९

सुचन्द्र (व्य) आगामी बलभद्र ६०।५६९

सुचारु (व्य) कृष्णका पुत्र ४८।७१

सुचारु (व्य) कुरुवंशी एक राजा ४५।२३

सुज्येष्ठा (व्य) राष्ट्रवर्धनकी स्त्री ६०।७१

सुज्येष्ठा (व्य) धनदत्त सेठ और नन्दयशाकी पुत्री १८।११३

सुतार (व्य) प्रकीर्णकाशुनीका पुत्र एक विद्याधर ४६।८

सुतेजस् (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।१४

सुदर्शन (व्य) एक यक्ष १८।३०

सुदर्शन = चक्रवर्तीका चक्ररत्न ११।५७

सुदर्शन (व्य) अलका नगरीका राजा २७।७९

सुदर्शन (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३२

सुदर्शन (व्य) पाँचवाँ बलभद्र ६०।२९०

सुदर्शनचक्र = कृष्णका एक रत्न ५३।४९

सुदर्शन (व्य) भगवान् अरनाथके पिता ४५।२१

सुदर्शन (भौ) रुचिकगिरिका उत्तर दिशासम्बन्धी कूट ५।७१६

सुदर्शन (भौ) अधोग्रैवेयकका पहला इन्द्रक ६।५२

सुदर्शन (व्य) मानुषोत्तरकी उत्तर दिशामें स्थित स्फटिक कूटपर रहनेवाला देव ५।६०५

सुदर्शना (व्य) भगवान् ऋषभदेवकी दीक्षाकालकी पालकी ९।७७

सुदर्शना (व्य) धनदत्त सेठ और नन्दयशाकी पुत्री १८।११३

सुदर्शना (व्य) राजा विराट्की स्त्री ४६।२३

सुदर्शना (व्य) सन्ध्याकार नगरके राजा सिंहघोषकी स्त्री ४५।११५

सुदर्शना (भौ) नन्दीश्वर द्वीपके उत्तर दिशासम्बन्धी अंजनगिरिकी उत्तर दिशामें स्थित वापिका ५।६६४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुदर्शनार्यिका(व्य)एक आर्यिका १८।११७
सुदृष्टि (व्य) सुप्रतिष्ठ और सुनन्दाका पुत्र ३४।४६
सुदृष्टि (व्य) भद्रिलसा नगरीका सेठ ३३।१६७
सुधर्म (व्य) सुधर्माचार्य केवली १।६०
सुधर्म (व्य) भगवान् महावीरका पंचम गणधर ३।४२
सुधर्म (व्य) एक मुनिराज ३३।१५२
सुधर्म (व्य) तीसरा बलभद्र ६०।२९०
सुधर्मक (व्य) वासुपूज्यका गणधर ६०।३४७
सुधर्मा (भौ) विजयदेवके भवनसे उत्तर दिशामें स्थित सभा ५।४१७
सुधाम (पा) स्फटिकसालका पश्चिम गोपुर ५७।५९
सुनन्द, नन्दिषेण (व्य) युगल पुत्र ३३।१४१
सुनन्दा (व्य) सुप्रतिष्ठकी स्त्री ३४।४७
सुनन्दा (व्य) ऋषभदेवकी स्त्री ९।१८
सुनन्द गोप (व्य) वृन्दावनमें रहनेवाला एक गोप ३५।२८
सुन्दर (व्य) कुण्डलगिरिके स्फटिक कूटका निवासी देव ५।६९४
सुन्दरी (व्य)भगवान् ऋषभदेवकी पुत्री ९।२२
सुन्दरी (व्य) चक्रपुरके राजा अपराजितकी स्त्री २७।८९
सुन्दरी (व्य) एक आर्यिका ६०।५१
सुन्दरी (व्य) सूरदेवकी स्त्री ३३।९९
सुन्दरी (व्य) चित्रकारपुरके राजा प्रीतिभद्रकी स्त्री २७।९७
सुनीता (व्य) हिमवान्की स्त्री १९।३
सुनेमि (व्य) यादव ५०।१२०
सुनेमि (व्य) समुद्रविजयका पुत्र ४८।४३
सुनैगम (व्य) एक देव ३५।४
सुपद्म (व्य)कुरुवंशका एक राजा ४५।२५
सुपद्मा (भौ) ज. वि. का एक देश ३४।३
सुपद्मा (भौ) पूर्वविदेहका एक देश ५।२४९
सुपर्णतनय=भवनवासी देवोंका एक भेद ४।६३
सुपार्श्व (व्य) = सप्तम तीर्थंकर १।९
सुपार्श्व (व्य) आगामी तीर्थंकर ६०।५५८
सुपार्श्व (व्य) सप्तम तीर्थंकर १३।३२
सुप्रणिधि (व्य) रुचिकगिरिके सुप्रबुद्ध कूटपर रहनेवाली देवी ५।७०८
सुप्रतिष्ठ (व्य) एक मुनिराज १८।३०
सुप्रतिष्ठ (व्य) श्रीचन्द्र और श्रीमतीका पुत्र ३४।४३
सुप्रतिष्ठ (व्य) एक मुनि १।७८
सुप्रतिष्ठ(व्य)शूर और सुवीरको दीक्षा देनेवाले एक मुनि १८।११
सुप्रतिष्ठ (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।१२
सुप्रतिष्ठ (भौ) रुचिकगिरिका दक्षिण दिशासम्बन्धी कूट ५।७१०
सुप्रबुद्ध (भौ) अधोग्रैवेयकका तीसरा इन्द्रक ६।५२
सुप्रबुद्ध (भौ) रुचिकगिरिका दक्षिण दिशासम्बन्धी कूट ५।७०८
सुप्रबुद्धा (व्य) रुचिकगिरिके मन्दर कूटपर रहनेवाली देवी ५।७०८
सुप्रबुद्धा (भौ) नन्दीश्वर द्वीपके पश्चिम दिशासम्बन्धी अंजनगिरिकी दक्षिण दिशामें स्थित वापिका ५।६६२
सुप्रभ (पा) स्फटिक सालका पश्चिम गोपुर ५७।९५
सुप्रभ (व्य) चौथा बलभद्र ६०।२९०
सुप्रभ (भौ) कुण्डलगिरिका दक्षिण दिशाका कूट५।६९२
सुप्रभ (व्य) घृतवर द्वीपका रक्षक देव ५।६४२
सुप्रभंकरा (भौ) नन्दीश्वर द्वीपके उत्तर दिशासम्बन्धी अंजनगिरिकी पूर्व दिशामें स्थित वापिका ५।६६४
सुप्रभा (व्य) अशनिवेगकी स्त्री १९।८३
सुप्रभा (पा)समवसरणके आम्रवनकी वापिका ५७।३५
सुप्रभा (व्य) अभिचन्द्रकी स्त्री १९।५
सुप्रभा (व्य) राजा प्रचण्डवाहनकी पुत्री ४५।९८
सुप्रबुद्ध (व्य) मानुषोत्तरके प्रवाल कूटपर रहनेवाला देव ५।६०६
सुफल्गु (व्य)समुद्रविजयका पुत्र ४८।४४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुबल (व्य) महाबलका पुत्र १३।१७
सुबल (व्य) बलका पुत्र १३।८
सुबाहु (व्य) राजा वसुके पुत्र वृहद्ध्वजका लड़का १८।१
सुबाहु (व्य) भगवान् ऋषभदेवका गणधर १२।५७
सुभद्र (व्य) आचारांगके ज्ञाता एक आचार्य १।६५
सुभद्र (व्य) अमृतबलका पुत्र १३।९
सुभद्र (व्य) एक मुनि ६०।१००
सुभद्र (व्य) एक सेठ ६०।१०१
सुभद्र (भौ) मध्यम ग्रैवेयकका द्वितीय इन्द्रक ६।५२
सुभद्र (व्य) नन्दीश्वरवर समुद्रका रक्षक देव ५।६४५
सुभद्रा (व्य) अन्धकवृष्णिकी स्त्री १८।१२
सुभद्रा (व्य) चारुदत्तकी माता २१।६
सुभद्रा (व्य) विनमिकी पुत्री भरतकी पट्टराज्ञी २२।१०६
सुभद्रा (व्य) राजा मेघरथकी स्त्री १८।११२
सुभद्रा (व्य) वज्रमुष्टिकी स्त्री ६०।५१
सुभद्रा (व्य) अर्जुनकी स्त्री ४७।१८
सुभद्रा (व्य) भरत चक्रवर्तीकी पट्टराज्ञी १२।४६
सुभानु (व्य) श्रीकृष्णकी सत्यभामा रानीसे उत्पन्न पुत्र ४८।७
सुभानु (व्य) मनुका पुत्र १८।३
सुभानु (व्य) मथुराके भानु सेठ और उनकी यमुना स्त्रीका एक पुत्र ३३।९७
सुभानु (व्य) कृष्णका पुत्र ४८।६९
सुभानुक (व्य) कृष्णका पुत्र ४८।६९
सुभूम (व्य) अष्टम चक्रवर्ती ६०।२८७
सुभोगा (व्य) दिक्कुमारी देवी ५।२२७
सुभौम (व्य) राजा कार्तवीर्यकी स्त्री ताराके गर्भसे उत्पन्न पुत्र जो चक्रवर्ती हुआ २५।१३
सुभौम (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।२४
सुमति (वि) उत्तममति = ज्ञानसे युक्त १।७
सुमति (व्य) पाँचवें तीर्थंकर १।१
सुमति (व्य) वज्रमुष्टि और सुभद्राकी पुत्री ६०।५१
सुमति (व्य) विश्वसेनका अमात्य ६०।५८
सुमति (व्य) कौशाम्बीके राजा सुमुखका मन्त्री १४।५३
सुमतिनाथ (व्य) पंचम तीर्थंकर १३।३१
सुमनस् (भौ) उपरिम ग्रैवेयकका प्रथम इन्द्रक ६।५३
सुमनाः (सुमनस्)(भौ) नन्दीश्वर द्वीपके उत्तर दिशासम्बन्धी अंजनगिरिकी दक्षिण दिशामें स्थित वापिका ५।६६४
सुमन्दरगुरु (व्य) एक मुनिराज १८।११६
सुमन्दिरगुरु (व्य) एक मुनि ३४।४४
सुमित्रदत्तिका (व्य) सुमित्रदत्त वणिक्की स्त्री २७।४५
सुमित्र (व्य) सागरसेनका पुत्र १८।१९
सुमित्र (व्य) एक तापस ४२।१५
सुमित्र (व्य) कुशाग्रपुरका राजा भगवान् मुनिसुव्रतनाथका पिता १५।६२
सुमित्र (व्य) एक मनुष्य ६०।४४
सुमित्र (व्य) वसुदेव और मित्रश्रीका पुत्र ४८।५८
सुमित्रा (व्य) चारुदत्तके मामा सर्वार्थकी स्त्री २१।३८
सुमित्रा (व्य) दिक्कुमारी देवी ५।२२७
सुमित्रा (व्य) सुभद्र सेठकी स्त्री ६०।१०१
सुमित्रा (व्य) अरिष्टपुरके राजा वासवकी स्त्री ६०।७६
सुमुख (व्य) वसुदेवका पुत्र
सुमुख (व्य) हयपुरीका राजा ४४।४७
सुमुख (व्य) वत्सदेश-कौशाम्बी नगरीका राजा १४।६
सुमुख (व्य) वसुदेव और अवन्तीका पुत्र ४८।६४
सुमेघा (भौ) नन्दनवनमें रहनेवाली दिक्कुमारी देवी ५।३३३
सुयोधन (व्य) कौरवाग्रज ५०।८१
सुरदत्त (व्य) भगवान् ऋषभदेवका गणधर १२।५६
सुरदेव (व्य) ६०।५५८
सुरदेवी कूट (भौ) शिखरिकुलाचलका चौथा कूट ५।१०६
सुरादेवीकूट (भौ) हिमवत् कुलाचलका नौवाँ कूट ५।५४
सुरभि = सुगन्धित १८।१६१
सुरा (व्य) रुचिकगिरिके जगत्कुसुम कूटपर रहनेवाली देवी ५।७१२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुराष्ट्र (भौ) सौराष्ट्र देश—काठियावाड़ ४४।२६
सुराष्ट्र (भौ) देशका नाम ११।७२
सुराष्ट्र (भौ) सौराष्ट्र देश ६०।७१
सुरेन्द्रदत्त (व्य) चारुदत्तके पिताका मित्र २१।७८
सुरेन्द्रदत्त (व्य) एक सेठ १८।९८
सुरेन्द्रवर्धन (व्य) एक विद्याधर ४५।१२६
सुरेश्वर=इन्द्र २।२६
सुलक्षणा (व्य) धरणीतिलकके राजा अतिबलकी स्त्री २७।७८
सुलस(भौ) निषध पर्वतसे उत्तरकी ओर नदीके मध्यमें स्थित एक ह्रद ५।१९६
सुलसा (व्य) वाराणसीके सोमशर्मा ब्राह्मणकी एक पुत्री थी २२।१३२
सुलसा (व्य) धारण युग्मके राजा अयोधन और दितिकी पुत्री २३।४८
सुलोचना (व्य) सुलोचना नामकी कन्या और अच्छे नेत्रोंवाली स्त्री १।३३
सुलोचना (व्य) वाराणसीके राजा अकम्पन की पुत्री. जो जयकुमारको विवाही गयी १२।८
सुवक्त्र (व्य) विद्युन्मुखका पुत्र १३।२४
सुवसु (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।२६
सुवज्र(व्य) वज्रका पुत्र १३।२२
सुवत्सा (भौ) पूर्वविदेहका एक देश ५।२४७
सुवप्रा (भौ) पश्चिम विदेहका एक देश ५।२५१
सुवर्णकूट (भौ) शिखरिकुलाचलका सातवाँ कूट५।१०६
सवर्णकूला (भौ) एक महानदी ५।१२४
सुवर्णद्वीप (भौ) एक द्वीप जहाँ चारुदत्त व्यापारके लिए गया २१।१०१
सुवर्णप्रभ (भौ) सौमनसवनका एक भवन ५।३१९
सुवर्णभवन (भौ) सौमनसवनका एक भवन ५।३१९
सुवर्णरिक्षा = स्वर्णनिर्मित छोटी छोटी घण्टियोंकी माला २।३५
सुवर्णवती (भौ) वरुण पर्वतके समीप पंचनद समागमकी एक नदी २७।१४
सुवर्णवर (भौ) अन्तिम सोलह द्वीपोंमें आठवाँ द्वीप५।६२४
सुवसु (व्य) राजा वसुका पुत्र १७।५९
सुविधि (व्य) भगवान् ऋषभदेवका पूर्वभव ५।५९
सुविशाल (व्य) ऋषभदेवका गणधर १२।६७
सुविशाल (भौ) मध्यम ग्रैवेयकका तृतीय इन्द्रक ६।५२
सुवीर(व्य) यदुवंशी राजा नरपतिका पुत्र १८।८
सुवीर (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३२
सुवीर्य (व्य) अतिवीर्यका पुत्र १३।१०
सुव्रत (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।११
सुव्रत (व्य) मुनिसुव्रतनाथका पुत्र १७।१
सुव्रत (व्य) आगामी तीर्थंकर ६०।५५९
सुव्रत (व्य) एक मुनि ४६।५१
सुव्रता (व्य) अर्हद्दास राजाकी स्त्री २७।११२
सुव्रजा (व्य) एक आर्यिका ३३।१६४
सुव्रता (व्य) एक आर्यिका ४९।१४
सुशान्ति (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।३०
सुषड्जा = षड्जस्वरसे सम्बद्ध जाति १९।१७४
सुषमा (पा) अवसर्पिणीका दूसरा काल ७।५८
सुषमादुःषमा (पा) अवसर्पिणीका चौथा काल ७।५८
सुषमादुःषमा (पा) अवसर्पिणीका तीसरा काल ७।५८
सुषमासुषमा (पा) अवसर्पिणीका पहला काल ७।५८
सुषिर = छिद्रसहित वादित्र बाँसुरी आदि १९।१४२
सुषेण (व्य) महासेनका पुत्र ४८।४१
सुसीमा (व्य) अजाखुरीके राजा राष्ट्रवर्धनकी पुत्री ४४।२७
सुसीमा (भौ) विदेहकी एक नगरी ५।२५९
सुस्थित (व्य) लवणसमुद्रका स्वामी देवविशेष ५४।३९
सुस्थित (व्य) लवणसमुद्रका देव ५।६३७
सुहिताः = तृप्त १९।२०
सूर्य (व्य) राजा शालका पुत्र १७।३२
सूर्य (भौ) वि. द. नगरी २२।९५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूर्य (व्य) राजा वसुका पुत्र १७।५९
सूर्य (व्य) भगवान् कुन्थुनाथके पिता ४५।२०
सूर्य (भौ) निषध पर्वतसे उत्तर-की ओर नदीमें स्थित एक ह्रद ५।१९६
सूर्य (व्य) कृष्णका पुत्र४८।७१
सूर्यक (व्य) त्रिशिखरका पुत्र २५।४१
सूक्ष्मसाम्पराय (पा) चारित्र-भेद ६४।१८
सूक्ष्मसाम्पराय(पा) दसवाँ गुण-स्थान ३।८२
सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति (पा) शुक्ल-ध्यानका तीसरा भेद ५६।७१
सूतक (सूदक) = पारा ४।३६५
सूत्र (पा) दृष्टिवाद अंगका एक भेद १०।६१
सूत्रकृताङ्ग(पा) द्वादशांगका एक भेद २।९२
सूत्रगत (पा) दृष्टिवाद अंगका एक भेद २।९६
सूत्रामणि (व्य) रुचिकगिरिके नित्योद्योतकूटपर रहनेवाली देवी ५।७२०
सूपकार = रसोइया २४।१४
सूर (भौ) देशविशेष ३।५
सूरदेव(व्य) मथुराके भानु और यमुनाका पुत्र ३३।९७
सूरसेन (भौ) देशविशेष ३।४
सूरसेन (भौ) देशका नाम ११।६४
सूरि (व्य) आचार्य परमेष्ठी १।२८
सूरिसूर्यकृतालोकं= आचार्यरूपी सूर्यके द्वारा प्रकाशित१।५४
सूर्पार (भौ) देशका नाम११।७१
सूर्य (व्य) महेन्द्रविक्रमका पुत्र १३।१०
सूर्यघोष (व्य) कुरुवंशका एक राजा ४५।१४
सूर्यपुर (भौ) भगवान् नेमिनाथ का जन्मनगर ३८।३०
सूर्यप्रज्ञप्ति(पा) परिकर्मश्रुतका भेद १०।६२
सूर्यप्रभ (व्य) रानी रामदत्ता-का जीव सहस्रार स्वर्गमें देव हुआ २७।७५
सूर्यमाल (भौ) पश्चिम विदेह-का वक्षारगिरि ५।२३२
सूर्याभ (व्य) गण्यपुरका राजा ३४।१६
सूर्यावर्त (व्य) वि. उ. के प्रभा-करपुरका स्वामी २७।८०
सेन (व्य) यादव ५०।१२१
सेन्द्र = देव २।२८
सैतव (भौ) देशविशेष ११।७५
सोपारक (भौ) एक नगर ६०।३६
सोम (व्य) देवविशेष (लोक-पाल) ५।३१७
सोम (व्य) अभिचन्द्रका पुत्र ४८।५२
सोमक (व्य) नेमिनाथका प्रथम गणधर ६०।३४८
सोमदत्त (व्य) महापुरका राजा २४।५१
सोमदत्त (व्य) एक राजा ५०।८४
सोमदत्त (व्य) भगवान् ऋषभ-देवका गणधर १२।५६
सोमदत्तसुता (व्य) सोमदत्तकी पुत्री वसुदेवकी स्त्री १।८४
सोमदत्त (व्य) सोमदेव और सोमिलाका पुत्र ६५।५
सोमदेव(व्य)एक ब्राह्मण ६४।५
सोमप्रभ (व्य) हस्तिनापुरका राजा ४५।७
सोमभूति(व्य) एक पुरुष ६४।५
सोमयशस् (व्य) सुमित्र तापस-की स्त्री ४२।२५
सोमयशस् (व्य) बाहुबलिका पुत्र १३।१६
सोमश्री (व्य) महापुरके राजा सोमदत्तकी पुत्री २४।५२
सोल्व(भौ)देशका नाम ११।६५
सोमशर्मा (व्य) वाराणसीका एक ब्राह्मण २१।१३१
सोमश्री (व्य) स्त्री ६४।६
सोमश्री (व्य) चारुदत्तकी स्त्री १।८२
सोमश्री (व्य) गिरितटवासी वसुदेव ब्राह्मणकी पुत्री २३।२९
सोमा(व्य) एक कन्या जो वसु-देवकी स्त्री हुई १।८०
सोमा (व्य) सोमशर्मा ब्राह्मण-की पुत्री जिसे राजकुमारने विवाहा ६०।१२८
सोमा (व्य)सुग्रीव गन्धर्वाचार्य-की पुत्री १९।५५
सोमिनी (व्य) त्रिशृंगपुरके सेठ प्रियमित्रकी स्त्री ४५।१०१
सोमिल (व्य) सोमदेवकी स्त्री ६४।५
सोमिल (व्य) एक पुरुष ६४।५
सोमिला (व्य) वाराणसीके सोमशर्मा ब्राह्मणकी स्त्री २१।१३१
सौकर (भौ) वि. उ. नगरी २२।८७
सौगन्धिककूट (भौ) मानुषोत्तर-की पूर्वदिशाका एक कूट ५।६०३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सौदास (व्य) एक राजा १।८३
सौदास (व्य) कांचनपुरके राजा जितशत्रुका पुत्र २४।१३
सौदामिनी = बिजली ५९।४०
सौधर्म (भौ) पहला स्वर्ग६।३६
सौधर्म(भौ) पहला स्वर्ग८।१४८
सौनन्दक = कृष्णकी तलवार ५३।४९
सौमनसकूट (भौ) सौमनस्य पर्वतका एक कूट ५।२२१
सौमनस (भौ) रुचिकगिरिका पश्चिम दिशासम्बन्धी कूट ५।७१३
सौमनस (भौ) मेरुका एक वन ५।३०८
सौमनसवन (भौ) मेरु पर्वतका एक वन ५।२९५
सौमनस्य (भौ) मेरुकी पूर्व-दक्षिण दिशामें स्थित एक रजतमय पर्वत ५।२१२
सौमनस्य (भौ) उपरिमग्रैवेयक-का द्वितीय इन्द्रक ६।५३
सौमनस (भौ) वि. उ. नगरी २२।९२
सौराज्य = उत्तम राज्य ५४।३
सौरूप्य = सौन्दर्य २१।४२
सौम्य (भौ) अनुदिश ६।६३
सौम्यरूपक (भौ) अनुदिश ६।६३
सौवीर (भौ) देशविशेष ३।५
सौवीर (भौ) देशका नाम ११।६७
सौवीरी=मध्यमकी एक मूर्च्छना १९।१६३
सौर्पक (व्य) एक विद्याधर राजा २५।६३
सौहित्य = तृप्ति-सुख १६।४५
स्कन्धावार = सेनाका निवेश—पड़ाव ११।२७
स्कन्ध (पा) आग्रायणी पूर्वके चतुर्थ प्राभृतका योगद्वार १०।८६
स्तनक (भौ)शर्कराप्रभा पृथिवी-के द्वितीय प्रस्तारका इन्द्रक विल ४।१०६
स्तनलोलुप (भौ) शर्कराप्रभा पृथिवीके एकादश प्रस्तार-का इन्द्रक विल ४।११५
स्तनित = मेघकी गर्जना ३।२३
स्तनितकुमार=भवनवासी देवों-का एक भेद ३।२३
स्तम्भन = विद्यास्त्र २५।४८
स्तरक (भौ) शर्कराप्रभा पृथिवी के प्रथम प्रस्तारका इन्द्रक विल ४।१०५
स्तिमितसागर (व्य) अन्धक-वृष्णि और सुभद्राका पुत्र १८।१३
स्तुति = चौबीस तीर्थंकरोंका स्तवन ३४।१४३
स्तेनप्रयोग (पा) अचौर्याणुव्रत-व्रतका अतिचार ५८।१७१
स्तेनाहृतादान (पा) अचौर्याणु-व्रतका अतिचार ५८।१७१
स्तोक (पा) सात प्राणोंका एक स्तोक होता है ७।२०
स्थलगता (पा) दृष्टिवाद अंगके चूलिकाभेदका उपभेद १०।१२३
स्थापनासत्य (पा) दश प्रकार-से सत्योंमें-से एक सत्य १०।१००
स्थान = शारीरस्वरका भेद १९।१४८
स्थानाङ्ग (पा) द्वादशांगका एक भेद २।९२
स्थाने(अ) युक्त—ठीक ३।१९६
स्थिति = ध्रौव्य — पूर्व और आगामी दोनों पर्यायोंमें रहना ३९।७
स्थितिबन्ध (पा) बन्धका एक भेद ५८।२०३
स्थितिभुक्ति (पा) मुनियोंका एक मूलगुण, खड़े-खड़े आहार लेना २।१२८
स्थिरहृदय (व्य) कुण्डलगिरिके अंककूटका निवासी देव ५।६९३
स्नातक (पा) मुनिका एक भेद ६०।५८
स्पर्श (पा) आग्रायणी के चतुर्थ प्राभृतका योगद्वार १०।८२
स्पर्श-क्रिया (पा) एक क्रिया ५८।७०
स्फटिक (भौ) सौधर्मयुगलका अठारहवाँ इन्द्रक ६।४६
स्फटिक (भौ) रत्नप्रभाके खर-भागका तेरहवाँ पटल ४।५४
स्फटिक (भौ) रुचिकगिरिका उत्तर दिशासम्बन्धी कूट ५।७१५
स्फटिककूट (भौ) मानुषोत्तरकी उत्तर दिशाका कूट५।६०१
स्फटिककूट (भौ) गन्धमादन पर्वतका एक कूट ५।२१८
स्फटिक, स्फटिकप्रभ (भौ) कुण्डलगिरिकी उत्तर दिशा-सम्बन्धी कूट ५।६९४
स्फटिकसाल (पा) स्फटिकमणि-से बना हुआ समवसरणका तीसरा कोट ५७।५६
स्फुट (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३३
स्फुटिक (भौ) अनुदिश ६।६४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्मितयशस् (व्य) अर्ककीर्तिका पुत्र १३।७
स्मृत्यनुपस्थान (पा) सामायिक व्रतके अतिचार ५८।१८०
स्मृत्यन्तराधान (पा) दिग्व्रतका अतिचार ५८।१७७
स्रोतोऽन्तर्वाहिनी (भौ) विदेहकी एक विभंगा नदी ५।२४१
स्वपाक = दिति देवीके द्वारा प्रदत्त विद्यानिकाय २२।५९
स्वप्न (पा) अष्टाग निमित्तज्ञानका एक भेद १०।११७
स्वयंप्रभ (भौ) रुचिकगिरिका पश्चिम दिशासम्बन्धी एक विशिष्ट कूट ५।७२०
स्वयंप्रभ (व्य) आगामी तीर्थंकर ६०।५५८
स्वयंप्रभविमान (भौ) सोमलोकपालका विमान ५।३२३
स्वयंप्रभा (व्य) धनद=कुबेरकी स्त्री ६०।५०
स्वयंप्रभा (व्य) सत्यभामाकी माता ६०।२२
स्वयंप्रभा (पा) समवसरणके आम्रवनकी वापिका ५७।३५
स्वयंप्रभा (व्य) स्तिमितसागरकी स्त्री १९।३
स्वयंभू (व्य) कुन्थुनाथका प्रथम गणधर ६०।३४८
स्वयंभू (व्य) पार्श्वनाथका प्रथम गणधर ६०।३४९
स्वयंभू (व्य) आगामी तीर्थंकर ६०।५६१
स्वयंभू (व्य) तीसरा नारायण ६०।२८८
स्वयंभू (व्य) विदेहके एक तीर्थंकर २०।७
स्वयंभूरमणद्वीप (भौ) अन्तिम सोलह द्वीपोंमें सोलहवाँ द्वीप ५।६२५
स्वयंभूरमणसमुद्र (भौ) सबसे अन्तिम समुद्र ५।६२६
स्वयंप्रभ (व्य) विदेहके एक तीर्थंकर ३४।३६
स्वयंप्रभगिरि (भौ) स्वयम्भूरमण द्वीपके मध्यमें स्थित वलयाकार एक पर्वत ५।७३०
स्वर = वैणस्वरका एक भेद १९।१४७
स्वर = शारीर स्वरका भेद १९।१४८
स्वर = पदगत गान्धर्वकी विधि १९।१४९
स्वर (पा) अष्टांगनिमित्त ज्ञानका एक अंग १०।११७
स्वरित=वेदमें प्रयुक्त होनेवाला स्वरविशेष (समाहारः स्वरितः) १७।८७
स्वर्गी = देव १८।१७०
स्वर्णनाभ (हिरण्यनाभ) (व्य) राजा रुधिरका पुत्र ३१।६२
स्वर्णनाभ (व्य) पद्मावतीका पिता ६०।१२१
स्वर्णनाभ (भौ) वि. द. नगरी २२।९५
स्वर्णबाहु (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३६
स्वर्णाभपुर (व्य) विजयार्धकी दक्षिण श्रेणीका एक नगर २४।६९
स्वस्तिकनन्दन (भौ) रुचिकगिरिका कूट ५।७०६
स्वस्तिक (भौ) रुचिकगिरिकी दक्षिण दिशाका कूट ५।७०२
स्वस्तिक (भौ) मेरुसे दक्षिणकी ओर सीतोदा नदीके पूर्वतटपर स्थित एक कूट ५।२०६
स्वस्तिक (व्य) कुण्डलगिरिके मणिप्रभ कूटका निवासी देव ५।६९३
स्वस्तिककूट (भौ) विद्युत्प्रभ पर्वतका एक कूट ५।२२२
स्वस्तिमती (व्य) क्षीरकदम्बकी स्त्री १७।३८
स्वस्थ (व्य) उग्रसेनके चाचा शान्तनका पुत्र ४८।४०
स्वस्त्रीय = बहनका लड़का, भानजा ४८।७३
स्वहस्तक्रिया (पा) एक क्रिया ५८।७४
स्वहस्तिन् (व्य) रुचिकगिरिके स्वस्तिक कूटपर रहनेवाला देव ५।७०२
स्वहिण्डवाख्यानं = अपने परिभ्रमणका वृत्तान्त १।१०३
स्वाङ्गुल (पा) अपना-अपना अंगुल ७।४४
स्वाति (व्य) मानुषोत्तरके तपनीयक कूटपर रहनेवाला देव ५।६०६
स्वाति (व्य) हैमवत क्षेत्रके नाभिगिरिपर रहनेवाला व्यन्तर देव ५।१६४
स्वाध्याय = शास्त्राध्ययन करते हुए अपनी आत्माका अध्ययन करना १।६९
स्वायम्भुव (व्य) ऋषभदेवका गणधर १२।६४
स्वार्थसम्पन्न (वि) आत्महितसे युक्त १।९
स्वस्थिता (व्य) रुचिकगिरिके अमोघ कूटपर रहनेवाली देवी ५।७०८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[ह]

हंस = बत्तखके आकारका एक जलपक्षी, जो बड़ी-बड़ी झीलोंमें रहता है ८।१४४

हंसगर्भ (भौ) विजयार्धके उत्तर-श्रेणीकी एक नगरी२२।९१

हरि (व्य) राजा आर्य और मनोरमाका पुत्र १५।५७

हरि (व्य) कृष्ण ३५।२२

हरि = मर्कट ५५।११७

हरि = सिंह ५५।११७

हरि = विष्णु ५५।११७

हरि = इन्द्र ५५।११७

हरिकण्ठ (व्य) दूसरा प्रति-नारायण ६०।५६९

हरिचन्द्र (व्य) कृष्णचन्द्र ५४।७३

हरिक्षेत्र (भौ) जम्बूद्वीपके सात क्षेत्रोंमें एक क्षेत्र ५।१३

हरिकण्ठ (व्य) हयग्रीवका दूसरा मन्त्री २८।४३

हरिण = हिरनकी एक जाति ८।१३७

हरिकान्त (भौ) महाहिमवान्के आठ कूटोंमें-से एक कूट ५।७२

हरिकान्ता (भौ) महापद्मह्रदसे निकली हुई एक नदी ५।१३३

हरित् (भौ) जम्बूद्वीपकी एक नदी ५।१२३

हरिवर्ष (भौ) महाहिमवान्के आठ कूटोंमें-से एक कूट ५।७२

हरिद्वती (भौ) विजयार्धके दक्षिण श्रेणीकी एक नदी २७।१३

हरिवर्ष (भौ) निषध पर्वतके नौ कूटोंमें-से एक कूट ५।८८

हरिषेण (व्य) मिथिलाके राजा देवदत्तका पुत्र १७।३४

हरिवंश = भगवान् नेमिनाथका वंश १।७१

हरिवंश = जैनपुराण १।५१

हरिविष्टर = सिंहासन ३८।१६

हरिशक्तिः = हरेः सिंहस्येव शक्तिर्यस्य सः ३६।४३

हरिश्चन्द्र (व्य) आगामी नौ बलभद्रोंमें-से पाँचवाँ बल-भद्र ६०।५६८

हरिषेण (व्य) दसवाँ चक्रवर्ती ६०।५१२

हरिषेणा (व्य) अयोध्याके राजा श्रीषेणकी श्रीकान्ता स्त्रीसे उत्पन्न कन्या ६४।१३०

हरिश्मश्रु (व्य) राजा अश्वग्रीव-का मन्त्री २८।३२

हरिश्मश्रु (व्य) राजा विनमिका पुत्र २२।१०४

हरिचन्द्र (व्य) एक मुनि २७।८३

हरिसह कूट (भौ) विद्युत्प्रभ पर्वतपर स्थित नौ कूटोंमें-से एक कूट ५।२२३

हरिसह कूट (भौ) माल्यवान् पर्वतपर स्थित नौ कूटोंमें एक कूट ५।२२०

हस्तिनायक (भौ) विजयार्धके उत्तर श्रेणीकी एक नगरी २२।८७

हस्तन्यास = धरोहर १७।७९

हस्तसंवाहन = हाथ दबाना ८।४६

हस्तप्रहेलिका (भौ) चौरासी लाख शिरःप्रकम्पितोंकी एक हस्तप्रहेलिका होती है ७।३०

हलधर = बलभद्र २५।३५

हलभृद् (व्य) बलदेव ३६।१६

हलायुध (व्य) बलदेव ३५।६२

हली (व्य) बलभद्र १।१२७

हायन = वर्ष ५२।२०

हार = एक आभूषण ७।८९

हारिद्र (भौ) इकतीस पटलोंमें-से एक पटल ६।४६

हारी (व्य) इन्द्रका आज्ञाकारी एक देव ३३।१६९

हारी = एक विद्या २२।६३

हास्तिन (भौ) विजयार्धके उत्तर श्रेणीकी एक नगरी२२।८७

हास्तिविजय (भौ) विजयार्धके उत्तर श्रेणीकी एक नगरी २२।८९

हास्तिनपुराधीश =हस्तिनापुरका राजा १२।१०

हिंसा = प्रमत्तयोगात् प्राणव्य-परोपणं हिंसा (त. सू. ७।१३) ५८।१२७

हिंसाव्युदास = हिंसाका त्याग १७।१६४

हिडम्ब (व्य) विन्ध्याचलके सन्ध्याकार नामक नगरका एक वंश ४५।११४

हिमवान् (व्य) अन्धकवृष्णिका सुभद्रासे उत्पन्न पुत्र१८।१३

हिमपुर (भौ) विजयार्धके दक्षिण श्रेणीकी नगरी २२।९८

हिमवान् (भौ) जम्बूद्वीपका एक पर्वत ५।१५

हिममुष्टि (व्य) वसुदेव-मदनवेगा-का पुत्र ४८।६१

हिमवत् (व्य) एक राजा ४८।४७

हिमवान् (व्य) जरासन्धका पुत्र ५२।३५

हिमशीकर = बरफके कण१५।३

हिमवत कूट(भौ) हिमवत् कुला-चलके ग्यारह कूटोंमें-से एक कूट ५।५३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हिरण्यगर्भ (व्य) हिरण्यं गर्भे यस्य सः=भगवान् ऋषभदेवका एक नाम ८।२०६
हिरण्यनाभ (व्य) एक यादव महारथी राजा ५०।७९
हिरण्यवती (व्य) हिडम्बवंशके राजा सिंहघोष और रानी सुदर्शनाकी पुत्री ४५।११५
हिरण्यवती (व्य)राजा अतिबल और उसकी रानी श्रीमतीकी पुत्री २२।१३०
हिरण्यवर्मा (व्य) जयकुमारके पूर्वभवका नाम १२।१३
हुण्डकसंस्थान (पा)एक संस्थान ४।३६८
हुताशन = अग्नि १५।३०
हृदिक (व्य) राजा वृषमित्रका पुत्र ४८।४१
हृषीकेश (व्य) जरासन्धका एक पुत्र ५२।३६
हृष्यका = स्वरग्रामकी एक मूर्च्छना १९।१६४
हृष्यकान्ता = स्वरग्रामकी एक मूर्च्छना १९।१६७
हेतु = कारण ७।१४
हेला = क्रीडा ३६।३७
हेमवेत्रकर=सोनेकी छड़ी हाथमें लेकर ८।५३
हैडिम्ब = हिडम्ब वंशसम्बन्धी ४५।११८
हैम (पा) पाँच वर्णके मणियोंमेंसे एक मणि ७।७२
हैमवत कूट (भौ) महा हिमवान् पर्वतके आठ कूटोंमें-से एक कूट ५।७२
हैमासन = स्वर्णमय सिंहासन ८।७०
हैयङ्गवीन = नवनीत १८।१६२
हैरण्यवत कूट (भौ) शिखरी पर्वतके अग्रभागपर स्थित एक कूट ५।१०६
हैरण्यवत कूट (भौ)रुक्मी पर्वतके अग्रभागमें स्थित एक कूट ५।१०३
हैरण्यवत (भौ) जम्बूद्वीपके सात क्षेत्रोंमें-से एक क्षेत्र ५।१४
हैमवत (भौ) जम्बूद्वीपके सात क्षेत्रोंमें एक क्षेत्र ५।१३
ह्रदवती(व्य)नीलपर्वतसे निकली हुई एक नदी ५।२३९
ह्री (व्य) पद्मसरोवरकी एक देवी ५।१३०
ह्री (व्य) उत्तर दिशाके आठ कूटोंमें-से छठे कुण्डल कूटपर स्थित एक देवी ५।७१६
ह्रीकूट (भौ) महाहिमवान् पर्वतके आठ कूटोंमें-से एक कूट ५।७२
ह्रीकूट (भौ) निषध पर्वतके नौ कूटोंमें-से एक कूट ५।८९
ह्रीमन्त (भौ) एक पर्वत २२।१४३

□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित

पुराण, चरित एवं अन्य काव्य-ग्रन्थ

आदिपुराण (संस्कृत, हिन्दी) : (दो भागों में)
—आचार्य जिनसेन
सम्पा.-अनु. : डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य

उत्तरपुराण (संस्कृत, हिन्दी) : आचार्य गुणभद्र
सम्पा.-अनु. : डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य

पद्मपुराण (संस्कृत, हिन्दी) : (तीन भागों में)
—आचार्य रविषेण
सम्पा.-अनु. : डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य

हरिवंशपुराण (संस्कृत, हिन्दी) : आचार्य जिनसेन
सम्पा.-अनु. : डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य

समराइच्चकहा (प्राकृत, हिन्दी) : (दो भागों में)
—हरिभद्र सूरि
अनु. : डॉ. रमेशचन्द्र जैन, बिजनौर

कथाकोष (संस्कृत) : पण्डिताचार्य
सम्पा. : डॉ. आ.ने. उपाध्ये

धर्मशर्माभ्युदय (संस्कृत, हिन्दी) : महाकवि हरिचन्द्र
सम्पा.-अनु. : डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य

पुरुदेव चम्पू (संस्कृत, हिन्दी) : महाकवि अर्हद्दास
सम्पा.-अनु. : डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य

वीरजिणिंदचरिउ (अपभ्रंश, हिन्दी) : कवि पुष्पदन्त
सम्पा.-अनु. : डॉ. हीरालाल जैन

महापुराण (अपभ्रंश, हिन्दी) : (पाँच भागों में)
—कवि पुष्पदन्त
अनु. : डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन

पज्जुण्णचरिउ (प्रद्युम्नचरित) (अपभ्रंश, हिन्दी)
—महाकवि सिंह
सम्पा.-अनु. : डॉ. विद्यावती जैन

वड्ढमाणचरिउ (अपभ्रंश, हिन्दी) : विबुध श्रीधर
सम्पा.-अनु. : डॉ. राजाराम जैन

जसहरचरिउ (अपभ्रंश, हिन्दी) कवि पुष्पदन्त
सम्पा.-अनु. : डॉ. हीरालाल जैन

सिरिवालचरिउ (अपभ्रंश, हिन्दी) नरसेन देव
सम्पा.-अनु. : डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन

पउमचरिउ (अपभ्रंश, हिन्दी) : (पाँच भागों में)
—महाकवि स्वयम्भू
सम्पा.-अनु. : डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन

रिट्ठणेमिचरिउ (अपभ्रंश, हिन्दी) : महाकवि स्वयम्भू
सम्पा.-अनु. : डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भारतीय ज्ञानपीठ

स्थापना : सन् 1944

उद्देश्य

ज्ञान की विलुप्त, अनुपलब्ध और अप्रकाशित सामग्री का अनुसन्धान और प्रकाशन तथा लोकहितकारी मौलिक साहित्य का निर्माण

संस्थापक

स्व. साहू शान्तिप्रसाद जैन

स्व. श्रीमती रमा जैन

अध्यक्ष

श्रीमती इन्दु जैन

कार्यालय : 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-110 003

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org